भारत में आर्थिक नियोजन

[आर्थिक नियोजन एवं प्रगति के सिद्धान्त
तथा
विदेशों में आर्थिक नियोजन सहित]

ECONOMIC PLANNING IN INDIA
[With Principles of Economic Planning and Growth & Planning Abroad]

डॉ० के० सी० भण्डारी, एम० काम० पी एच० डी०,
भूतपूर्व अध्यक्ष वाणिज्य विभाग होल्कर कॉलिज इन्दौर
एवं
महारानी लक्ष्मीबाई कॉलिज, ग्वालियर
अध्यक्ष वाणिज्य विभाग शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
मंदसौर (म० प्र०)
एवं
डा० एम० पी० जौहरी एम० काम० पी एच० डी०
अध्यक्ष, वाणिज्य विभाग शासकीय महाविद्यालय
नरसिंहपुर (म० प्र०)।

लक्ष्मी नारायण अग्रवाल
शिक्षा साहित्य के प्रकाशक, आगरा ३।

पंचम संशोधित एवं
परिवर्द्धित संस्करण १९७०

मूल्य बारह रुपये मात्र

मुद्रक
मॉडर्न प्रेस नमक मंडी, आगरा ३

प्रस्तावना

(पचम सस्करण)

भारत म आर्थिक नियोजन क पाँचवें सस्करण म सम्पूण पुस्तक को नवीन स्वरूप प्रदान किया गया है। इस सस्करण म आर्थिक प्रगति का सद्धान्तिक पक्ष विस्तृत रूप म सम्मिलित कर लिया गया है क्योंकि आर्थिक नियाजन का अध्ययन आर्थिक प्रगति क सिद्धान्ता क अध्ययन क बिना सम्पूण नही हो सकता है। पूजी निर्माण, विदशी यापार जनसख्या, घाटे का अथ प्रबन्धन मौद्रिक नीति आदि का विस्तृत अध्ययन भारतीय नियाजित विकास के सदभ म किया गया है। भारतीय बकों क राष्ट्रीयकरण क उद्देश्यो एव समस्याआ पर विशेष प्रकाश डाला गया है। नियोजन की प्रक्रिया एव तन्त्र प्रजातन्त्र क अतगत नियाजन तथा नियाजन प्राथमिकताओ क सम्बन्ध म नवीन विचारधाराआ का प्रस्तुत किया गया है। भारतीय नियाजन क अन्तगत तीन वार्षिक योजनाआ एव प्रस्तावित चतुथ योजना का आलोचनात्मक अध्ययन एव अतिम स्वरूप (प्रधानमन्त्री द्वारा १८ मई, सन् १९७० का लोक सभा म प्रस्तुत) का भी विवेचन अन्त म प्रस्तुत किया गया है तथा भारतीय नियाजन म अपनाया गया विभिन्न रीतिया का विश्लेषण आधुनिक प्रवृत्तिया क आधार पर करन का प्रयत्न किया गया है। विदेशी सहायता से सम्बन्धित समस्याआ का विवरण दते हुए पी० एल० ४८० की सहायता का आलाचनात्मक अध्ययन भी किया गया है।

हम पूण आशा है कि उपयुक्त समस्त सशोधना एव परिवतना क साथ यह सस्करण आर्थिक नियोजन एव आर्थिक प्रगति का अध्ययन करन वाल विद्यार्थियो के लिए उपयोगी होगा। भारतीय नियोजित विकास म रुचि रखन वाल सभी विद्वज्जना को भी इस सस्करण म उपयोगी सामग्री उपलब्ध हो सकगी।

डॉ० के० सी० भण्डारी।
डा० एम० पी० जौहरी।

विषय सूची

भाग १

आर्थिक नियोजन के सिद्धान्त
(Principles of Economic Planning)

भाग २

आर्थिक प्रगति के सिद्धान्त

(Principles of Economic Growth)

भाग ८

भारत मे आर्थिक नियोजन (Planning in India)

भाग 1

आर्थिक नियोजन के सिद्धान्त

[Principles of Economic Planning]

विषय-प्रवेश
[Introduction]

[नियोजन का परिचय, नियोजन का प्रारम्भ नियोजन को प्रोत्साहन देने वाले घटक—विवेकपूर्ण विचारधारा, समाजवादी विचारधारा, राजनैतिक एवं राष्ट्रीय विचारधारा प्रथम एवं द्वितीय महायुद्ध, आर्थिक कठिनाइयाँ, एकाधिकार, तान्त्रिक प्रगति, राजकीय वित्त जनसंख्या की वृद्धि, पूँजी की कमी, अन्य विकसित अर्थ-व्यवस्थाएं पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था के दोष—नियोजित एवं अनियोजित अर्थ व्यवस्था की तुलना]

नियोजन का परिचय

आधुनिक युग अतिशय तीव्र प्रतियोगिता का युग यन्त्रों के प्रयोग द्वारा अत्यधिक निर्माण का युग विज्ञान की प्रगति एवं विकास के लहराते यौवन का युग अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपणास्त्रों का युग कृत्रिम उपग्रह के माध्यम से प्रकृति विजय का युग विध्वंसकारी अणु एवं उद्‌जन बमों का युग मानव की सभ्यता की रक्षा एवं शान्ति के लिए बिलखते तड़पते प्राणों का युग—जीवन के हर क्षेत्र में प्रत्येक चरण में प्रत्येक दिशा में नियोजन का युग है। विश्व का जो परिवर्तित रूप आज मानवता का विकराल आनन प्रस्तुत कर रहा है वह नियोजन का वरदान है। विश्व की आर्थिक व्यवस्था की धमनियों में अर्थ नहीं, नियोजन प्रवाहित है। वास्तव में प्रकृति स्वयं इतनी नियोजित है कि मनीषियों एवं विद्वानों ने अकिंचन सी अनियमितता को भूकम्प तथा यदाकदा प्रलय की भयावह संज्ञाएं प्रदान कर दी हैं। चाहे मानव प्रकृति पर कितनी भी विजय प्राप्त करे वह रहेगा प्रकृति का दास ही किन्तु एक बुद्धिमान दास प्रकृति का सच्चा सपूत जिसने योजना या नियोजित व्यवस्था को अपने जीवन का अंग ही नहीं, अपितु जीवन ही मान लिया है। आज प्रश्न यह नहीं है कि नियोजन कहाँ-कहाँ होता है प्रत्युत प्रश्न यह है कि नियोजन कहाँ नहीं होता।

आचार्य अपने विद्यार्थियों को किसी विषय के अध्ययन करने के तरीके बताते समय व्यवस्थित अध्ययन को अधिक महत्व देता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति अपनी आय का—जो सीमित है विभिन्न इच्छाओं का जो असीमित हैं—पूर्ति पर व्यय करने से पूर्व अपने मस्तिष्क में कुछ विचारों को जन्म देता है जो नियोजन का प्रारूप है।

इस नियोजन में ज्ञात व अज्ञात सभी कठिनाइयों और सुविधाओं को ध्यानावस्थित कर आय को विभिन्न व्ययों पर वितरित करना होता है। आय का वितरण आय की सीमाओं और इच्छाओं की निस्सीमता के कारण, इच्छाओं की तीव्रता अथवा प्रमुखता के आधार पर होना चाहिए अन्यथा अनावश्यक इच्छाओं की अपूर्ति और कम आवश्यक इच्छाओं की पूर्ति अवश्यम्भावी है जिसके परिणामस्वरूप उपभोक्ता का मानसिक उद्वेलन तथा शारीरिक कष्ट हो सकता है। साथ ही, अधिक आय का व्यवस्थित रूप तथा चतुरता से व्यय न करने से साधनों का दुरुपयोग होता है जो बाद काल में कष्टदायक सिद्ध होता है। इस प्रकार नियोजन द्वारा सम्भाव्य परिस्थिति के प्रादुर्भाव के पूर्व ही उसकी निवारण व्यवस्था की जाती है। 'कठिनाइयों की वृद्धि पर प्रतिबन्ध लगाने अथवा उनके भार एवं तीव्रता को कम करने के लिए की गयी पूर्व-व्यवस्था ही नियोजन है।'

जिस प्रकार एक व्यक्ति अपने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सफलता प्राप्ति हेतु योजनाबद्ध कार्यक्रम की शरण लेता है ठीक उसी प्रकार एक राष्ट्र को भी उसके सर्वांगीण विकास के लिए नियोजन की सहायता लेनी पड़ती है। 'नियोजक को नियोजन के उद्देश्य बताना, उन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु नीति निर्धारित करना और विभिन्न नियन्त्रणों को जो चुने हुए लक्ष्यों की ओर प्रगति करने के लिए वांछनीय हैं निश्चित करना आवश्यक है। यह लक्ष्य ऐसे वर्ग रहित समाज की स्थापना करना हो सकता है जिसमें वस्तुओं का उचित वितरण हो, साधनों का अपव्यय न हो। युद्ध के लिए साधनों का एकत्रीकरण अथवा स्वाधिकार वर्गों को सहायता प्रदान करना हो सकता है।'[1]

नियोजन का प्रारम्भ

आर्थिक नियोजन के वर्तमान स्वरूप का विचार मार्क्सवादी समाजवाद में निहित था और इस विचारधारा का व्यावहारिक उपयोग रूस में साम्यवादी शासन स्थापित होने के पश्चात ही किया गया। यूरोप के अर्थशास्त्रियों विद्यार्थियों एवं लेखकों को १९वीं शताब्दी के अन्त में पूँजीवाद के दोषों का जब आभास होने लगा तो राजकीय हस्तक्षेप के द्वारा अर्थ-व्यवस्था में आवश्यक समायोजन करने की विचारधारा उदय हुई। इसके अन्तर्गत सरकार को अर्थ-व्यवस्था में समायोजन करने हेतु कार्य-वाहियाँ तब ही करनी थी जब अर्थ-व्यवस्था में क्रान्ति एवं हानिकारक परिस्थितियाँ

---

1 Planners necessarily have to suggest objectives policies to achieve them and various checks to assure that progress is being made towards the selected goal This goal may be a classless society with fair *distribution of goods and non wastage of* resources or it may be a mobilisation of resources for war and for favouring the privileged class

(Seymour E Harris *Economic Planning* p 13)

उत्पन्न हो गई हों अथवा उनके उदय होने की सम्भावना हो गई हो। इसके अतिरिक्त सरकारी हस्तक्षेप केवल उन्हीं क्षेत्रों तक सीमित रखा जाता था जिनमें कठिन परिस्थितियाँ उदय हो रही हों और अर्थ-व्यवस्था के शेष सभी क्षेत्र मुक्तरूप से कार्य कर सकते थे। सरकारी हस्तक्षेप की प्रमुख कार्यवाहियाँ संरक्षणात्मक शुल्क विपणि नियन्त्रण उत्पादन एवं विक्रय का कोटा निर्धारित करना, कारखाना अधिनियम मूल्य नियन्त्रण कच्चे माल के वितरण पर नियन्त्रण आदि हैं। इस प्रकार सरकारी हस्तक्षेप द्वारा देश के आर्थिक जीवन पर सचेत (Conscious) एवं समन्वित नियन्त्रण नहीं होता है जो आर्थिक नियोजन के प्रमुख अंग होते हैं। आर्थिक नियोजन का विचारधारा को राजकीय हस्तक्षेप की विचारधारा से नैतिक बल तो अवश्य प्राप्त हुआ परन्तु राजकीय हस्तक्षेप अपने आप में आर्थिक नियोजन का स्वरूप नहीं समझा गया।

आर्थिक नियोजन की विचारधारा का प्रारम्भ विकास एवं विस्तार २०वीं शताब्दी का ही उपहार है। सन् १६१० में नार्वे के अर्थशास्त्री प्रोफेसर क्रिस्टियन शोनहेडर (Kristian Schonheyder) ने आर्थिक क्रियाओं का निरूपण करते समय आर्थिक नियोजन को एक महत्वपूर्ण व्यवस्था के रूप में स्थान दिया। यह केवल एक सैद्धान्तिक विश्लेषण था।

प्रथम महायुद्ध में जर्मनी ने सरकारी हस्तक्षेप को विस्तृत किया और युद्ध के प्रशासन के लिए नियोजन का उपयोग किया गया। योरोप के अन्य राष्ट्रों ने भी आर्थिक नियोजन एवं सरकारी हस्तक्षेप की तकनीक का उपयोग युद्ध के प्रशासन के लिए किया। परन्तु यह समस्त व्यवस्था अत्यन्त अस्थायी थी जिसका जीवनकाल युद्ध समाप्ति के कुछ वर्ष बाद तक रहकर समाप्त हो गया।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि नियोजन का जो विस्तृत क्षेत्र आज हमारे सम्मुख उपस्थित है उसकी आयु ५० वर्ष से अधिक नहीं है। आधुनिक युग में संसार के सभी राष्ट्रों में नियोजन किसी न किसी रूप में प्रयोग में लाया जाता है। रूस में नियोजन की आश्चर्यजनक सफलताओं के पूर्व नियोजन का उपयोग केवल सीमित उद्देश्य के लिए ही किया जाता था विशेषकर युद्ध के समय में युद्धोपरान्त पुनर्निर्माण हेतु तथा प्राकृतिक संकटों के निवारणार्थ। आर्थिक तथा सामाजिक विकास के लिए नियोजन का प्रयोग शान्तिकाल में सर्वप्रथम रूस द्वारा ही किया गया। योरोपीय देशों में 'स्वतन्त्र साहस' (Free Enterprise) का बोलबाला था। योरोपीय तथा अमेरिकी देशों में 'स्वतन्त्र साहस की नीतियों (Laissez Faire Policies) द्वारा उत्पादन में वृद्धि भी हुई थी। स्वतन्त्र अर्थ व्यवस्था में उत्पादन तथा उपभोग पर शासकीय नियन्त्रण अत्यन्त सीमित होता है तथा सरकार विपणि उत्पादन तथा उपभोग पर अदृश्य नियन्त्रण रखती है अथवा माँग तथा पूर्ति के नियमों के अनुसार अर्थ व्यवस्था सचालित की जाती है। रूस ने नियोजित अर्थ व्यवस्था की स्थापना की और पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था की तुलना में अधिक उत्पादन के लक्ष्यों को अत्यन्त न्यून

अवधि में प्राप्त कर संसार के अर्थशास्त्रियों का ध्यान नियोजन की ओर आकृष्ट किया।

सन् १९२८ के पश्चात् रूस ने लगातार तीन पंचवर्षीय योजनाओं की घोषणा की और इन योजनाओं द्वारा रूस के उत्पादन में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई जबकि अमेरिकी, ब्रिटिश तथा फ्रांसीसी अर्थ-व्यवस्था में मूल्यों के उतार चढ़ाव की अनिश्चितता ने उत्पादन को सीमाबद्ध कर रखा था। जिज्ञासु मस्तिष्कों ने पश्चिम के स्थान पर पूर्व की ओर देखना प्रारम्भ कर दिया। रूस के उत्पादन तथा औद्योगीकरण के क्षेत्र में सफलताएं महत्त्वपूर्ण थीं। कभी भी किसी देश ने इतने कम समय में पिछड़े हुए कृषि प्रधान राष्ट्र को एक आधुनिक औद्योगिक शक्ति में परिवर्तित होने का अनुभव नहीं किया था।"[1]

पूँजीवादी राष्ट्रों में सन् १९३० में विश्व के आर्थिक इतिहास का सबसे बड़ा मन्दी का दौर प्रारम्भ हुआ जिसके फलस्वरूप पूँजीवाद पर लोगों का विश्वास शिथिल होने लगा। इसी समय कीन्स के लेखों द्वारा भी इस बात की पुष्टि की गई कि पूँजीवादी राष्ट्रों में राज्य का आर्थिक प्रगति में सक्रिय योगदान आवश्यक है और उन्हें अर्थ-व्यवस्था की घटनाओं को एक दर्शक मात्र के रूप में स्वीकार नहीं करना चाहिए। लगभग इसी समय नाजी जर्मनी तथा फासिस्ट इटली (Fascist Italy) में आर्थिक जीवन को नियन्त्रित करने हेतु इन देशों की सरकारों ने कठोर कार्यवाहियों को प्रारम्भ किया। इन देशों का उद्देश्य अपनी सैनिक शक्ति शीघ्रातिशीघ्र इतना बढ़ाना था कि वे विश्वविजय प्राप्त कर सकें। इस प्रकार सन् १९३० के बाद आर्थिक नियोजन का एक ओर रूस में आर्थिक प्रगति के लिए और दूसरी ओर जर्मनी एवं इटली में युद्ध की तैयारियों के लिए प्रयोग किया जाने लगा।

सन् १९३९ में द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हुआ जिसके कुशल संचालन हेतु युद्ध में सम्मिलित राष्ट्रों ने अपनी-अपनी अर्थ-व्यवस्थाओं को राजकीय नियोजन के अन्तर्गत पुनर्गठन किया। सन् १९४४ में युद्ध-समाप्ति के पश्चात युद्ध में क्षतिग्रस्त राष्ट्रों ने अपना पुनर्निर्माण करने हेतु आर्थिक नियोजन का उपयोग जारी रखा। संयुक्त राज्य अमेरिका ने मार्शल प्लान के अन्तर्गत इन्हीं क्षतिग्रस्त राष्ट्रों का पुनर्निर्माण हेतु सहायता देना स्वीकार किया जो ऐसी पुनर्निर्माण-योजनाओं का संचालन करें जिनसे अर्थ-व्यवस्था के सभी क्षेत्रों का विकास हो सकता हो।

---

1 "...inquiring minds began to look eastward rather than westward as they had in the twenties Russian successes were striking nevertheless in the rise of output of productivity and in the rate of industrialisation. No country had ever experienced so rapid a transformation from a backward agricultural state to a modern industrialized power."

(S E Harris *Economic Planning* pp 14-15)

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् साम्राज्यवादी युग की समाप्ति का शुभारम्भ हुआ और एक के बाद एक एशियाई एवं अफ्रीका राष्ट्र विदेशी सत्ताओं से स्वतन्त्र होने लगे। राजनीतिक स्वतन्त्रता की सुरक्षा के लिए इन देशों को अपने नागरिकों के आर्थिक कल्याण की समस्या सबसे अधिक गम्भीर थी। इन देशों (जिन्हें अल्प विकसित राष्ट्र का नाम दिया जाता है) के लिए आवश्यक था कि शीघ्र आर्थिक विकास के लिए अपनी अर्थ व्यवस्थाओं का सचालन युद्ध स्तरीय सिद्धान्तों के आधार पर करें और इनके लिए आर्थिक नियोजन का उपयोग स्वाभाविक था।

आधुनिक युग में इस प्रकार आर्थिक नियोजन एक अत्यन्त स्वाभाविक क्रिया है जिसके उपयोग पर सामान्यत कोई आपत्ति नहीं करता। कोई सरकार अब अर्थ व्यवस्था को शक्तियों एवं निजी सस्थाओं के निश्चयों पर नहीं छोड़ देती है। आधुनिक सरकारों का सुरक्षा एवं अन्य सामूहिक आयोजनों (Collective Provisions) पर होने वाला व्यय इतना अधिक होता है कि अर्थ व्यवस्था के बड़े भाग पर सरकार का नियन्त्रण हो ही जाता है। इसके अतिरिक्त तान्त्रिक प्रगति का जन कल्याण से इतना घनिष्ट सम्बन्ध हो गया कि आधुनिक सरकारों का नाविष्कारों के उपयोग का नियन्त्रित करना स्वाभाविक हो गया है और इस नियन्त्रण को अर्थ व्यवस्था के सभी क्षेत्रों में समन्वित करने के लिए आर्थिक नियोजन का उपयोग किसी न किसी रूप में करना अनिवार्य हो गया है।

आर्थिक नियोजन को प्रोत्साहन प्रदान करने वाले घटक

वर्तमान युग में आर्थिक नियोजन की विचारधारा इतनी सामान्य एवं स्वाभाविक हो गयी है कि किसी भी राजनीतिक वाद को मानने वाली सरकार द्वारा नियोजन का प्रयोग किसी न किसी रूप में अवश्य किया जाता है। ऐसे रूढ़िवादी विचारधारा के लोग अब बहुत कम हैं जो इस व्यवस्था को अव्यावहारिक एवं अन्याय पूर्ण समझकर इसका विरोध करें। वास्तव में आर्थिक नियोजन को अब एक ऐसी विवेकपूर्ण व्यवस्था माना जाता है जिसके प्रयोग से पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की उपलब्धि द्रुत गति से की जा सकती है। यह लक्ष्य आर्थिक प्रगति जन कल्याण युद्ध प्रशासन सैनिक शक्ति में वृद्धि आदि कुछ भी हो सकते हैं। वास्तव में आर्थिक प्रगति आर्थिक नियोजन का मूल उद्देश्य माना जाता है और अन्य सभी लक्ष्य इस मूल उद्देश्य के पूरक अथवा सहायक होते हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि आधुनिक युग में आर्थिक नियोजन को आर्थिक प्रगति की सर्वश्रेष्ठ प्रविधि (Process) समझा जाता है। यह बात अल्प विकसित राष्ट्रों के लिए शत प्रतिशत सत्य बैठती है। यही कारण है कि लगभग सभी अल्प विकसित राष्ट्रों में आर्थिक नियोजन द्वारा आर्थिक प्रगति के मार्ग को प्रशस्त किया जा रहा है।

इस प्रकार वर्तमान युग में हम यह देखते हैं कि पूंजीवादी विकसित राष्ट्रों जैसे अमेरिका ब्रिटेन फ्रांस आदि में आर्थिक नियोजन का सीमित उपयोग किया

जाता है और इसके द्वारा पूँजीवाद में उत्पन्न होने वाले असन्तुलनों एवं विषमताओं का समायोजित किया जाता है। साम्यवादी राष्ट्रों में जैसे रूस चीन आदि में आर्थिक नियोजन का विस्तृत एवं व्यापक उपयोग होता है और मानव जीवन नियोजन की जंजीरों में अनुशासित रहता है। इन राष्ट्रों में नियोजन के द्वारा मानव शक्ति बढ़ाने के लक्ष्य की उपलब्धि की जाती है। तीसरे वर्ग में अल्प विकसित राष्ट्र हैं जिनमें निर्धनता, अज्ञान, निरक्षरता, विषमता आदि का बाहुल्य है और इन समस्याओं का निवारण करने हेतु आर्थिक नियोजन का उपयोग किया जाता है। यह राष्ट्र अपनी परम्परागत अर्थ-व्यवस्थाओं में धीरे धीरे परिवर्तन करके इनका नियोजन के विस्तृत उपयोग के लिए उपयुक्त बना रहे हैं।

पिछले ३० वर्षों के जीवनकाल में आर्थिक नियोजन की विचारधारा का जिस गति से विस्तार एवं विकास हुआ है वह अद्वितीय है। किसी आर्थिक विचारधारा ने इतनी जल्दी सार्वभौमिक मान्यता नहीं प्राप्त की है। नियोजन की विचारधारा को विस्तृत करने में निम्नलिखित घटकों ने सहायता प्रदान की है—

(१) विवेकपूर्ण विचारधारा (Rationalized Outlook)—इसके प्रादुर्भाव से विवेक एवं विज्ञान की तुला पर ठीक उतरने वाले विचारों की स्वीकृति प्रदान करने की प्रवृत्ति का विस्तार हुआ। वैज्ञानिक एवं तात्त्विक विचारों ने ऐसे राज्य की स्थापना को महत्त्व दिया, जो एक मशीन के समान निरन्तर देश के साधनों का अधिकतम सन्तोष के लिए उपयोग कर सके। देश के उत्पादक साधनों को इस प्रकार संगठित किया जा सके जिससे समाज का अधिकतम हित हो। वास्तव में विवेकीकरण जब देश की सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था को आच्छादित कर लेता है तो इस व्यवस्था को आर्थिक नियोजन कहा जाता है। विवेकीकरण से प्रतिस्पर्धा के दोषों को दूर किया जाता है और उत्पादन अनुमानित माँग के अनुसार ही किया जाता है। ठीक इसी प्रकार नियोजन द्वारा आर्थिक व्यवस्था में स्थिरता लाने के लिए नियोजन के लक्ष्य के आधार पर उत्पादन निर्धारित किया जाता है। विवेकीकरण द्वारा श्रमिकों में अधिकतम कार्यक्षमता उत्पन्न होती है। कच्चे माल मशीनों तथा श्रम के अपव्यय को रोका जा सकता है। आर्थिक नियोजन द्वारा भी प्रतिस्पर्धीय अर्थ-व्यवस्था के अपव्यय को रोका जाता है। विवेकीकरण के समान ही आर्थिक नियोजन में नवीनतम मशीनों के उपयोग तथा अधिकतम तान्त्रिक कार्यक्षमता को महत्त्व प्राप्त होता है। इस प्रकार विवेकीकरण की विचारधारा से आर्थिक नियोजन के विचार को पुष्टि प्रदान हुई है।

(२) समाजवादी विचारधारा—इसके विस्तार ने आर्थिक नियोजन के विस्तार एवं विकास में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया है और आधुनिक युग में आर्थिक नियोजन समाजवाद का अभिन्न अंग बन गया है। समाजवाद की विचारधारा २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक केवल सिद्धान्त मात्र ही समझी जाती थी।

समाजवाद ने अब व्यावहारिक राजनीति का रूप ग्रहण किया है और इसे

आधुनिक युग में सभी राष्ट्रों में मान्यता प्राप्त होने लगा है। समाजवाद समाज के ऐसे आर्थिक संगठन को कहते हैं जिसमें उत्पादन के भौतिक साधनों पर समस्त समाज का अधिकार होता है और जिनका संचालन ऐसे संगठनों द्वारा जो समाज के प्रतिनिधि हों और समाज के प्रति उत्तरदायी हों एक सामान्य योजना के अनुसार किया जाता है। इसमें समाज के समस्त सदस्यों को समाजीकृत एवं नियोजित उत्पादन के लाभों में समान हित प्राप्त करने का अधिकार होता है।[1] इस परिभाषा में समाजवाद के सामाजिक पहलू को विशेष महत्व दिया गया है जिसके द्वारा देश की राष्ट्रीय आय के समान वितरण का आयोजन किया जाता है। ऐसी व्यवस्था में उत्पादक साधनों का उपयोग केन्द्रीय अधिकारियों के निश्चयों के अनुसार किया जाता है। सन् १८३८ से सन् १९२५ तक समाजवाद का अर्थ उत्पादन के साधनों पर सामाजिक अधिकार समझा जाता था परन्तु अब इसे नियन्त्रित उत्पादन कहा जाता है।

समाजवाद के निम्नलिखित तीन मुख्य अंग हैं—

(१) उत्पादन के साधनों पर समाज का अधिकार।

(२) आर्थिक नियोजन।

(३) समानता।

समानता में तीन घटकों को सम्मिलित किया जाता है—(अ) धन के वितरण में समानता, (आ) आर्थिक अवसरों की समानता (इ) आर्थिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की समानता।

२०वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही समाजवाद का महत्व बढ़ने लगा और समाजवाद के साथ-साथ आर्थिक नियोजन भी विख्यात होने लगा। जर्मनी के सन् १९१९ के चुनाव में समाजवादी पक्षों की शक्ति बढ़ती हुई प्रतीत हुई और The *National Socialist German Labour Party* जो सन् १९२० में स्थापित की गया था सन् १९३३ के चुनाव में विजयी हुई। इसी प्रकार ब्रिटेन में सन् १९२४ के चुनाव में Labour Party को लगभग एक तिहाई वोट प्राप्त हुए। सन् १९३५ में Labour Party के वोटों की संख्या और भी बढ़ गयी और सन् १९४५ में समाजवादियों ने बहुमत में अपनी सरकार बनायी। ब्रिटेन की नयी सरकार ने युद्धकाल के विस्तृत सरकारी नियन्त्रणों को जारी रखना उचित समझा और इस प्रकार आर्थिक नियोजन के सिद्धान्तों को मान्यता प्राप्त हुई। सन् १९४६ में फ्रांस में भी लगभग १/३

1 Socialism is an economic organisation of society in which the material means of production are owned by the whole community and operated by organs representative of and responsible to the community according to a general plan all members of the community being entitled to benefits from the results of such socialised planned production on the basis of equal rights

(Dickinson *Economics of Socialism* p 11)

डिप्युटीज (Deputies) समाजवादी थे। रूस ने भी समाजवाद एवं साम्यवाद का निरन्तर रूप प्रस्तुत किया है। इटली बलगारिया आस्ट्रेलिया हंगरी जर्मन्स्लावाकिया, नार्वे न्यूजीलैण्ड आदि अन्य देशों में भी समाजवाद के प्रति झुकाव है। पूर्व में चीन, संयुक्त अरब गणराज्य आदि देशों में भी समाजवाद एवं समाजवादी अर्थ-व्यवस्था की स्थापना के प्रयत्न जारी हैं। इस प्रकार समाजवाद की विचारधारा के व्यावहारिक महत्व हो जाने से आर्थिक नियोजन की विचारधारा को पुष्टि प्राप्त हुई है।

(३) राजनैतिक अथवा राष्ट्रीय विचारधारा—नियोजन द्वारा साधन एवं सहायता में समन्वय सुविधापूर्वक स्थापित किया जा सकता है। इनसे निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए समन्वित प्रयास सम्भव होता है। इसके द्वारा आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण सम्भव होता है। राजनीतिज्ञ एवं राष्ट्रवादी इसका उपयोग अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कर सकते हैं। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में कुछ राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति सरल निहित होती है। राष्ट्र की सुरक्षा का प्रबन्ध नियोजित अर्थ-व्यवस्था में अत्यधिक सुगम होता है इसलिए युद्धकाल में आर्थिक नियन्त्रणों एवं शक्तियों के केन्द्रीयकरण का उपयोग होता है जो आर्थिक नियोजन के मुख्य अंग हैं। हिटलर ने जर्मनी में नियोजित अर्थ-व्यवस्था का सचालन इस प्रकार किया कि विभिन्न राष्ट्रों पर साम्राज्य स्थापित कर सके। युद्धकाल में नियोजन को अत्यधिक महत्व प्राप्त हुआ और आर्थिक नियोजन का जो स्वरूप हम देख रहे हैं यह युद्धकाल की ही देन है। प्रारम्भ में आर्थिक नियन्त्रण युद्धकाल की एक तान्त्रिकता थी, परन्तु अब इस तान्त्रिकता का उपयोग आर्थिक नियोजन के नाम से शान्तिकाल में आर्थिक विकास के लिए किया जाने लगा है।

इस प्रकार राष्ट्रवादियों राजनीतिज्ञों तथा वैज्ञानिकों ने आर्थिक नियोजन की कला को एक तान्त्रिकता के रूप में महत्व प्रदान किया जिसके द्वारा राष्ट्र के उपलब्ध एवं सम्भावित साधनों से अधिकतम आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। समाजवादियों ने दूसरी ओर इस तान्त्रिकता का सामाजिक एवं आर्थिक समानता स्थापित करने का मुख्य यन्त्र बताया।

सन् १९३० से १९४० में आर्थिक नियोजन का महत्व राष्ट्रीय विचारधारा के कारण बढ़ा जबकि सन् १९५० से १९६० तक वैज्ञानिक एवं तान्त्रिक विचारधाराओं का जोर रहा। इस विचारधारा ने प्रजातान्त्रिक देशों को विशेषरूप से प्रभावित किया जिसके कारण प्रजातान्त्रिक देशों में आर्थिक नियोजन को स्थान प्राप्त हुआ है।

(४) प्रथम एवं द्वितीय महायुद्ध—प्रथम एवं द्वितीय महायुद्धों के विध्वंसों के कारण अधिकाधिक राष्ट्रों को अपनी अर्थ-व्यवस्था के पुनर्निर्माण की आवश्यकता प्रतीत हुई। युद्ध में वह देश ही विजयी हो सकता है जो अपनी अर्थ-व्यवस्था नियोजित ढंग से सचालित करता है और राज्य की इच्छानुसार राष्ट्र के समस्त साधनों को युद्ध-विजय प्राप्त करने सम्बन्धी कार्यक्रमों में लगाता है। युद्धकाल में वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति शीघ्रातिशीघ्र करने की आवश्यकता होती है।

इस आवश्यकता की पूर्ति हेतु प्रतिस्पर्धी अर्थ व्यवस्था में आवश्यक समायोजन दीर्घ काल में ही सम्भव होते हैं जबकि नियोजित अर्थ-व्यवस्था को राज्य जिस ओर चाहे शीघ्र ही प्रवाहित कर सकता है। इस प्रकार युद्ध सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति नियोजित अर्थ व्यवस्था में उचित समय के अन्दर की जा सकती है। युद्धकाल में निजी व्यवसायी की जोखिम की मात्रा अत्यधिक होती है और वह नवीन उद्योगों एवं व्यवसायों की स्थापना करने तथा पुराने व्यवसायों के विस्तार करने की जो जोखिम होती है उसे सुलभता से अपने ऊपर लेने को तैयार नहीं होता है। ऐसी परिस्थिति में युद्ध सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सरकारी क्षेत्र का विस्तार करना अनिवार्य हो जाता है जिसे नियोजित अर्थ व्यवस्था में सुगमतापूर्वक किया जा सकता है।

(५) आर्थिक कठिनाइयाँ (Economic Crisis)—आर्थिक उच्चावचान जो पूँजीवाद की विशेषता है के द्वारा उत्पन्न हुई आर्थिक कठिनाइयों का निवारण करने हेतु राजकीय हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है। जर्मनी में सन् १६२६ की मन्दी के पश्चात् जर्मन अर्थ व्यवस्था को बड़ी क्षति पहुँची। इसका निवारण करने के लिए *जर्मन सरकार ने मुद्रा संकुचन (Deflationary Policy) का अनुसरण किया।* संयुक्त राज्य अमेरिका में रूजवेल्ट सरकार का सन् १६३३ की मन्दी का सामना करते समय यह ज्ञात हो गया कि यह मन्दी अनियोजित अर्थ व्यवस्था का परिणाम है और इसलिए राज्य ने अर्थ व्यवस्था में स्थिरता लाने हेतु बहुत सी कार्यवाहियों का अनुसरण किया। मुद्रा स्फीति, मुद्रा प्रसार मन्दी मूल्यों की वृद्धि आदि की कठिनाइयों को दूर करने एवं उनकी उपस्थिति को रोकने के लिए आर्थिक नियोजन एक शक्तिशाली अस्त्र का रूप ग्रहण कर सकता है।

(६) एकाधिकार (Monopoly)—सन् १६२६ की विश्वव्यापी मन्दी के पश्चात संसार भर में सामूहीकरण का दौरदौरा हुआ। व्यवसायियों ने यह विचार किया कि मन्दी का सबसे बड़ा कारण उनकी पारस्परिक प्रतिस्पर्धा है और इस प्रतिस्पर्धा को दूर करने के लिए प्रन्यास (Trusts) पायद (Cartels) एकीकरण (Amalgamation) आदि का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार अर्थ-व्यवस्था में स्थिरता लाने हेतु एकाधिकार प्राप्त करने की प्रवृत्ति सामान्य हो गया परन्तु इस निजी एकाधिकार की प्रवृत्ति का आधार केवल व्यवसायियों का हित था और ग्राहक उपभोक्ता तथा सामान्य जनता के हितों को कोई स्थान नहीं था। ऐसी परिस्थिति में विभिन्न देशों की सरकारों ने इस एकाधिकार की प्रवृत्ति का पूर्ण लाभ उठाने हेतु इसे सामान्य जनहित की एक औज़ार बना लिया और विभिन्न देशों में अर्थ-व्यवस्था के अनेक क्षेत्रों में सरकारी एकाधिकार स्थापित किए जाने लगे जिनका अन्तिम लक्ष्य केवल लाभोपार्जन न होकर सामान्य जनता का हित था। सरकारी एकाधिकार आर्थिक नियोजन का मुख्य अंग होने के कारण आर्थिक नियोजन के विस्तार में सहायक सिद्ध हुआ। जर्मनी में सरकारी हस्तक्षेप एवं नियन्त्रण की आधारशिला निजी पायद (Private Cartels) ने डाली थी।

(७) तान्त्रिक प्रगति (Technological Advancement)—तान्त्रिक प्रगति के फलस्वरूप अधिक उत्पादन, श्रमिको की वास्तविक आय मे वृद्धि तथा पूँजी निर्माण की गति मे वृद्धि होती है। रोजगार, बचत एवं विनियोजन मे भी वृद्धि होना स्वाभाविक होता है। इस प्रकार प्रगतिशील अर्थ-व्यवस्था के लाभों को सभी वर्गों तक पहुँचाने के लिए अर्थ व्यवस्था पर सामाजिक नियन्त्रण आवश्यक होता है। प्रगतिशील अर्थ व्यवस्था को दिन प्रतिदिन समायोजित करना अत्यन्त आवश्यक होता है जिसे एक केन्द्रीय अधिकारी ही कर सकता है। उन्नतशील अर्थ-व्यवस्था पर सरकारी नियन्त्रण न होने के फलस्वरूप आवश्यकता से अधिक उत्पादन, निजी एकाधिकारों का प्रादुर्भाव आदि का भय रहता है। अर्द्ध विकसित राष्ट्रों मे नवीन व्यवसायों की स्थापना हेतु पूँजी उपलब्ध करना भी कठिन होता है क्योंकि इन देशों मे पूँजी गर्मीली होती है। इस परिस्थिति मे बड़ी औद्योगिक इकाइयाँ सरकारी क्षेत्र मे ही स्थापित की जा सकती हैं।

तान्त्रिक प्रगति एवं जनकल्याण मे आधुनिक युग मे अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों ही प्रकार का है अर्थात् तान्त्रिक प्रगति द्वारा उपलब्ध उत्पादन प्रविधियों एवं तकनीकियों के विस्तृत उपयोग से समाज मे कुछ दोषों का प्रादुर्भाव होना स्वाभाविक है, जैसे बेरोजगारी, नगरों मे अधिक गहन जनसंख्या, हानिकारक प्रतिस्पर्द्धा, अति उत्पादन, अनावश्यक एवं विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन, धन एवं आय का केन्द्रीयकरण आदि आदि। इन दोषों को दूर रखने के लिए राज्य को आर्थिक क्रियाओं को नियन्त्रित करना आवश्यक होता है और इस काम के लिए आर्थिक नियोजन का उपयोग किया जाता है।

तान्त्रिक प्रगति एवं जनकल्याण मे सकारात्मक सम्बन्ध का अर्थ है कि आधुनिक तान्त्रिक प्रविधियों का विस्तृत उपयोग करके जनजीवन को अधिक सुखी एवं कल्याणकारी बनाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। इसके लिए भी राज्य के नियन्त्रण की आवश्यकता होती है। बहुत से जनसेवा सम्बन्धी उद्योगों एवं व्यवसायों में सरकार का एकाधिकार के रूप मे चलाना आवश्यक होता है जिससे समस्त नागरिकों को आवश्यक सेवाएँ एवं वस्तुएं उचित मूल्य पर एवं पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हो सकें।

आधुनिक तान्त्रिकताओं के फलस्वरूप युद्ध सामग्री बनाने वाले उद्योगों का संचालन निजी साहसियों को नहीं सौंपा जा सकता है क्योंकि एक ओर इन उद्योगों के लिए बहुत अधिक पूँजी एवं तकनीक की आवश्यकता होती है और दूसरी ओर आधुनिक शस्त्रों का उपयोग इतना भयानक है कि उन पर सरकारी कठोर नियन्त्रण एवं अधिकार अनिवार्य है। यही कारण है कि आधुनिक तान्त्रिकताओं और आर्थिक नियोजन का इतना अधिक घनिष्ट सम्बन्ध है।

(८) राजकीय वित्त (Public Finance)—प्रथम महायुद्धकाल मे सरकारों के सुरक्षा-व्यय मे अत्यधिक वृद्धि हुई, नवीन करों को लगाया गया तथा पुराने करों की दर मे वृद्धि हुई।

युद्धकाल में सरकारी व्यय कर एवं सरकारी ऋण (Public Debt) में महत्व पूर्ण वृद्धि हुई जो युद्ध के पश्चात् भी जारी रखी गयी। सरकारों के उत्तरदायित्व बढ़ गये और जो पहले निजी आवश्यकताएं समझी जाती थीं उन्हें सामाजिक आवश्यकताएँ समझा जाने लगा जिनके प्रति सरकार का उत्तरदायित्व बढ़ गया। इस उत्तरदायित्व को निभाने के लिए यह आवश्यक हो गया कि सरकारी आय में भी निरन्तर वृद्धि की जाय। इस विधि को द्वितीय महायुद्ध में और अधिक प्रोत्साहन मिला जिसके फलस्वरूप राज्य राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न अंगों पर नियन्त्रण एवं हस्तक्षेप करने लगा। सरकारी आय एवं व्यय में वृद्धि के अनुसार सरकारी कार्यवाहियों में वृद्धि स्वाभाविक ही था। सरकारी कार्यवाहियों में वृद्धि होने का तात्पर्य हुआ—*सरकारी क्षेत्र का विस्तार तथा निजी क्षेत्र का संकुचन*—इस प्रकार सरकार का अर्थ व्यवस्था पर नियन्त्रण एवं हस्तक्षेप बढ़ता रहा जिसका फल आर्थिक नियोजन का संचालन हुआ। राजकीय ऋण के विस्तार से देश की मुद्रा साख एवं पूँजी के क्षेत्र में संगठनात्मक (structural) परिवर्तन हो जाते हैं। जब मुद्रा एवं साख का प्रसार होता है तो मुद्रा स्फीति का दबाव बढ़ जाता है जिसे रोकने के लिए सरकारी हस्तक्षेप एवं नियन्त्रण आवश्यक होता है। मुद्रा प्रसार होने पर सरकार को मूल्यों, मजदूरी, उत्पादन, उपभोग, बैंकों की कार्यवाहियों तथा प्रतिभूति के बाजारों पर नियन्त्रण करना अत्यन्त आवश्यक होता है। मन्दीकाल में सरकारी आय-व्यय भी कम हो जाते हैं जिससे मूल्यों में और कमी आ जाती है और बेरोजगारी की गम्भीरता बढ़ती जाती है। ऐसी परिस्थिति में सरकारी व्यय में वृद्धि करना आवश्यक होता है क्योंकि सरकारी व्यय में वृद्धि होने पर ही मूल्यों में स्थिरता एवं रोजगार में वृद्धि की जा सकती है। जब सरकारी काम में वृद्धि करने का उत्तरदायित्व सरकार ले लेती है तो दीर्घकालीन बजट बनाने तथा दीर्घकालीन नियोजन की आवश्यकता होती है।

(९) **जनसंख्या की वृद्धि**—अर्द्ध विकसित राष्ट्रों में जनसंख्या की वृद्धि तथा जीवनस्तर में कमी यह दो लक्षण सामान्य रूप से पाये जाते हैं। जनसंख्या की अधिक वृद्धि को रोकने हेतु परिवार नियोजन का उपयोग किया जा सकता है परन्तु परिवार नियोजन आर्थिक पुनर्निर्माण की अनुपस्थिति में निरर्थक समझा जाता है। सभी अर्द्ध विकसित राष्ट्रों में अब यह माना जाता है कि अति जनसंख्या (Over population) की समस्या का निवारण शीघ्र आर्थिक विकास द्वारा ही सम्भव है। आर्थिक विकास एक राष्ट्रीय योजना के अन्तर्गत ही सुगमतापूर्वक हो सकता है।

(१०) **पूँजी की कमी**—अर्द्ध विकसित राष्ट्रों में आर्थिक विकास हेतु पर्याप्त पूँजी उपलब्ध नहीं होती है। अनियोजित अर्थ व्यवस्था में उत्पादन एवं उपभोग स्वतन्त्र होते हैं और उपभोक्ता अपने उपभोग की वस्तुएँ खरीदने के पश्चात् ही बचत की बात का विचार कर सकता है। प्रति व्यक्ति आय अत्यन्त न्यून होने के कारण अर्द्ध विकसित राष्ट्रों में पर्याप्त उपभोग सामग्री क्रय करना ही सम्भव नहीं होता है।

ऐसी परिस्थिति में आन्तरिक बचत की मात्रा अत्यन्त कम होती है। इसे बढ़ाने के लिए अनिवार्य बचत की आवश्यकता होती है जो नियोजित अर्थ-व्यवस्था में सम्भव हो सकती है।

(११) अल्प विकसित अर्थ-व्यवस्थाएँ—द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् बहुत से राष्ट्रों को विदेशी दासता से स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है और उनमें अधिकतर राष्ट्र विकास के लिए तत्पर हो गए हैं। अल्प विकसित राष्ट्रों के शीघ्र आर्थिक विकास के लिए आर्थिक नियोजन की व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है क्योंकि इसके अन्तर्गत साधनों के उपयोग का लेखकर उन्हें वांछित क्षेत्रों में विनियोजित करना सम्भव होता है। आर्थिक प्रगति का प्रतिमान करने के लिए यह भी आवश्यक होता है कि सर्वोत्तम विकास-नीतियों का निर्धारण वर्तमान परिस्थितियों का विश्लेषण करके भविष्य की सम्भावनाओं एवं समस्याओं के आधार पर किया जाय तथा इन नीतियों का निर्विघ्न सम्पादन दीर्घ काल तक होना भी आवश्यक होता है। यह कार्य तब ही सफलतापूर्वक किया जा सकता है जब अर्थ-व्यवस्था पर केन्द्रीय नियन्त्रण हो। इसी कारण अल्प विकसित राष्ट्र स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था के स्थान पर आर्थिक नियोजन का प्रयोग करने लगे हैं।

(१२) पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था के दोष—पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था के प्रचलन के फलस्वरूप विभिन्न राष्ट्रों में आर्थिक अस्थिरता, आर्थिक विषमता तथा बेरोजगारी का प्रादुर्भाव हुआ। समाज में दो वर्ग 'धनवान' एवं निर्धन की स्थापना हो गयी और धनी वर्ग को निर्धन-वर्ग का शोषण करने के अवसर प्राप्त होते रहे। श्रमिक-वर्ग का शोषण हुआ और इस प्रकार पूँजीवादी देशों में आर्थिक प्रगति के साथ-साथ आर्थिक विषमता भी बढ़ती गयी। निर्धन-वर्ग के बड़े भाग में असन्तोष उत्पन्न हुआ और पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था का स्थानापन्न करने की आवश्यकता महसूस की गयी। अब ऐसी अर्थ-व्यवस्था की स्थापना करनी थी जिसमें आर्थिक विकास के साथ आर्थिक विषमताओं में कमी हो सके और इसके लिए नियोजित अर्थ-व्यवस्था को श्रेष्ठ माना गया।

द्वितीय महायुद्धोपरान्त संयुक्त राष्ट्र संघ तथा उसकी अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय तथा अन्य विकास-संस्थाओं की स्थापना ने जनसमुदाय में लोकतन्त्र के प्रति जागृति उत्पन्न की और अनेक देशों में जो विदेशी सरकारों की दासता की जंजीरों में जकड़े रहे थे राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए हिंसक तथा अहिंसक क्रान्तियाँ हुईं, साम्राज्यवाद की नैय्या भँवर में डोलने लगी। इस प्रकार जिन देशों ने स्वतन्त्रता प्राप्त की, वे आर्थिक सामाजिक बौद्धिक नैतिक आदि सभी दृष्टियों से पिछड़े हुए थे। इन राष्ट्रों के निवासियों का जीवन-स्तर दयनीय था। स्वतन्त्र राष्ट्रीय सरकारों का यह कर्तव्य हो गया कि वे इस पिछड़ी अविकसित एवं कठिन परिस्थितियों से राष्ट्र को मुक्ति दिलावें। इन राष्ट्रों में साधनों तथा प्रशिक्षित व्यक्तियों की न्यूनता थी। भावी साधनों (Potential Resources) की खोज एवं उपयोग करना अत्यन्त

आवश्यक था। यह कार्य सम्पादन नियोजन द्वारा ही न्यूनातिन्यून अवधि में सम्भव था। अब एशिया के सभी राष्ट्रों में विकास की ओर सत्वर गति से एक दौड़ हो रही है। भारत और चीन इस दौड़ में सबसे आगे हैं। ये सभी राष्ट्र नियोजन द्वारा सीमित साधनों से अधिकतम लाभ उठाने में प्रयत्नशील हैं।

आज के युग का लोकतन्त्र केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता तक ही सीमित नहीं। आधुनिक युग के लोकतन्त्र में समान व्यवहार के नियमों का अनुसरण करना तथा एक राष्ट्र के अधिकतम लोगों को जीवन के समस्त क्षेत्रों में पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ कार्य करने का अवसर प्रदान करना, कुछ सीमित अङ्कुशों के साथ जो जनसमुदाय के हित में हों सम्मिलित होता है। इसलिए लोकतन्त्र को अर्थ-व्यवस्था के ढाँचे में हेर-फेर करने के लिए निरन्तर कार्यरत रहना पड़ता है जिसमें न केवल समान अवसर ही प्रदान किया जा सके प्रत्युत अधिकतम जनसंख्या के अधिकतम हित के दृष्टिकोण से भी यह न्यायोचित प्रतीत हो।[1]

यह निष्कर्ष निकालना अनुचित होगा कि नियोजन का महत्त्व लोकतन्त्र तक ही सीमित है। आज के युग में सभी राजनीतिक विचारधाराओं में आर्थिक तथा सामाजिक समानता को मान्यता प्राप्त है। साम्यवादी तथा समाजवादी तो विशेषत इन दो उद्देश्यों को प्रमुखता देते हैं। तानाशाही में भी इन उद्देश्यों को स्थान प्राप्त है किन्तु इसके साथ अनन्यशासक (Dictator) के सम्मान तथा शक्ति की ओर भी ध्यान केन्द्रित किया जाता है। आर्थिक तथा सामाजिक समानता नियोजन के माध्यम से ही कम से कम समय में प्राप्त की जा सकती है। पाकिस्तान भी नियोजन द्वारा आर्थिक विकास की ओर अग्रसर है जहाँ एक रूप में तानाशाही शासन-व्यवस्था है।

नियोजित एवं अनियोजित अर्थ-व्यवस्था की तुलना

आधुनिक युग में नियोजित अर्थ-व्यवस्था अनियोजित अर्थ-व्यवस्था की तुलना में अधिक विवेकपूर्ण एवं उचित समझी जाती है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में निश्चित लक्ष्य कम समय में उचित रीतियों द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं। निम्न कारणों से नियोजित अर्थ-व्यवस्था को अनियोजित अर्थ-व्यवस्था की तुलना में प्राथमिकता प्रदान की जाती है—

(१) विस्तृत दृष्टिकोण—नियोजित अर्थ-व्यवस्था के कार्यक्रम विस्तृत दृष्टिकोण

---

1 Democracy in the modern age has come to be associated with a pursuit of equality of opportunity and full fledged freedom of action to the majority of the people of a country in all walks of life with due limitations impo ed upon them in their own interest Democracy constantly works to bring about the requisite changes in the structure of economy so as not only to afford equality of opportunity but al o to justify from the point of view of the greatest good of the largest number of population

(V Vithal Babu *Towards Planning* p 16)

से निश्चित किये जाते हैं। नियोजन अधिकारी नियोजन के लक्ष्य तथा कार्यक्रम निश्चित करते समय किसी विशेष क्षेत्र, वर्ग अथवा समुदाय की ओर ही अपना ध्यान केन्द्रित नहीं करता अपितु समस्त राष्ट्र की आवश्यकताएँ लक्ष्यों के निर्धारण का केन्द्र-बिन्दु होती हैं। 'अनियोजित तथा उद्योगों की प्रतियोगी-व्यवस्था का मूल तत्व यह है कि उत्पत्ति तथा विनियोजन के विषय में निश्चय करने वाले व्यक्ति नजरहीन होते हैं। वे किसी एक वस्तु की उत्पत्ति के इतने थोड़े अंश पर प्रभुत्व रखते हैं कि औद्योगिक क्षेत्र की अन्य माँग का ही विचार में ला सकते हैं। उनको अपने निश्चय के परिणामों का ज्ञान न तो होता ही है और न हो ही सकता है। वे सामाजिक प्रतिक्रियाओं को भी ध्यान में नहीं रखते।'[1]

(२) **उत्पादन एवं साधनों में समन्वय**—नियोजित व्यवस्था में वित्तीय साधनों तथा उत्पादन में समन्वय स्थापित करना सरल होता है। "पूँजीवादी समाज का मुख्य पूर्ण लक्षण निरन्तर मन्दी एवं सम्पन्नता की अस्थिरता है तथा अर्थशास्त्रियों में वास्तविक सहमति है कि औद्योगिक व्यवसायों में अधिक हेर फेर साख-नीति तथा उत्पादन के अनुचित प्रबन्ध के कारण होते हैं।'[2] अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में जनता की बचत अर्थात् आय का वह भाग जो उपभोग पर व्यय नहीं किया जाता है तथा विनियोजन जो नये उद्योगों की स्थापना के लिए किया जाता है, में कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता है और न कोई संस्था ही बचत को तुरन्त विनियोजित करने की व्यवस्था पर ध्यान देती है। निजी अधिकोषण संस्थाएँ दूसरी ओर विनियोजन की राशि में वृद्धि कर देती हैं जबकि वास्तविक बचत की मात्रा में कोई वृद्धि नहीं होती। इन कारणों के परिणामस्वरूप पूँजीवाद के सम्पूर्ण इतिहास में बेरोजगारी तथा मन्दी का विशेष स्थान है। नियोजित व्यवस्था में वित्तीय क्षेत्र के लिए एक अधिकारी नियुक्त किया जा सकता है जो देश की समस्त बचत तथा विनियोजन का उपयोग राष्ट्र के हित में कर सकता है। साथ ही, वह निजी हितों के प्रभाव को इन क्षेत्रों से पृथक रख सकता है।

---

1 It is essence of an unplanned and competitive arrangement of industry that persons who take decisions about output and investment should be blind They control such a small fraction of the output of a single commodity and therefore take into account such a small part of the industrial field that they are not and cannot be aware of the consequences of their own actions They are not aware of economic results They do not even consider social repurcussions
(E F M Durbin *Problems of Economic Planning* p 30)

2 'The constant recurrence of depression and the instability of prosperity is one of the most marked features of capitalistic society and there is a virtual unanimity among economists that the wide movements of industrial activity are traceable to the mismanagement of relation between credit policy and production
(E F M Durbin *Problems of Economic Planning* p 52)

(३) उत्पादन के घटकों को उचित स्थान—नियोजित तथा केन्द्रित व्यवस्था में उत्पादन के विभिन्न घटकों का उत्पादन क्षेत्र में उचित स्थान किया जा सकता है क्योंकि यहाँ व्यक्तिगत हित का कोई महत्व नहीं रहता और इस प्रकार उत्पादन घटकों में समन्वय बना रहता है तथा उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि होता है। श्रमिकों को उद्योगों के प्रबन्ध में भाग लेने का अधिकार तथा उन्हें पारिश्रमिक के अतिरिक्त लाभांश देकर श्रमिकों में उत्पादन के प्रति रुचि का प्रादुर्भाव किया जा सकता है।

(४) आर्थिक विकास सुलभ—नियोजित व्यवस्था द्वारा राष्ट्र का आर्थिक विकास सुलभ होता है। फर्डिनेंड ज्वेग (Fredynand Zweig) के अनुसार नियोजित अर्थ व्यवस्था के कार्यक्रमों का संचालन निश्चित सामाजिक अथवा राजनीतिक उद्देश्यों के आधार पर किया जाता है जिससे इन उद्देश्यों की पूर्ति में सुलभता होता है। दूसरी ओर अनियोजित अर्थ व्यवस्था में अपने पृथक पृथक नियम, गुण एवं मान्यताएँ होती हैं जिससे इसमें निश्चित उद्देश्य निर्धारित करके राष्ट्र के समस्त साधनों को इन उद्देश्यों की पूर्ति की ओर आकर्षित करना सम्भव नहीं होता है। अनियोजित अर्थ व्यवस्था एक रूप में स्वतन्त्र अर्थ व्यवस्था होती है जिसमें व्यक्तिगत आर्थिक स्वतन्त्रता को विशेष महत्व प्राप्त होता है। इस व्यवस्था में उत्पादन एवं विनियोजन के लक्ष्य व्यक्तिगत मान्यताओं के आधार पर पृथक-पृथक निश्चित किये जाते हैं। नियोजित अर्थ व्यवस्था में उत्पादन एवं विनियोजन सम्बन्धी लक्ष्य नियोजन के उद्देश्यों जैसे युद्ध, आर्थिक विकास आदि के आधार पर आधारित होते हैं और इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु पृथक पृथक निश्चयों के स्थान पर सामूहिक निश्चय को ही मान्यता प्राप्त होती है जिससे लक्ष्यों की पूर्ति एवं तदनुसार आर्थिक विकास सुलभ होता है।

(५) प्राथमिकताओं का उपयोग—नियोजित अर्थ व्यवस्था में प्राथमिकताओं (Priorities) का विशेष स्थान होता है। परिस्थिति के अनुसार तीव्रतम कठिनाइयों के निवारण का आयोजन सर्वप्रथम किया जाता है। ऐसी समस्याएँ जो राष्ट्र के जीवन का प्रमुख अंग हों तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करती हों उनके उन्मूलनार्थ साधनों का अधिक भाग आवंटित किया जा सकता है। इस प्रकार आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुसार प्राथमिकताओं की एक सूची का निर्माण किया जा सकता है। उसे दृष्टिगत करके अर्थ व्यवस्था का संचालन तथा संगठन किया जा सकता है। अनियोजित अर्थ व्यवस्था में इस प्रकार प्राथमिकताओं का सूची बनाना सम्भव नहीं है और किसी राष्ट्र में इस प्रकार न तो अर्थ व्यवस्था में ही सुधार किया जा सकता है और न उस अर्थ व्यवस्था में आर्थिक तथा सामाजिक बुराइयों को ही दूर किया जाना सम्भव है।

(६) साधनों का राष्ट्रीय हित के लिए उपयोग—अनियोजित अर्थ व्यवस्था में उत्पादन उपभोक्ताओं की माँग के अधीन रहता है। उद्योगपति तथा उत्पादक उन्हीं

वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, जिनकी बाजार में अधिक माँग होती है। इस प्रकार उपभोक्ता की इच्छा की छाप सदा ही उत्पादन पर लगी रहती है। साधनों का वितरण भी उपभोक्ता उपभोक्ताओं की आवश्यकतानुसार करता है। उपभोक्ताओं की माँग असंगठित होती है जिसमें राष्ट्रीय हित के स्थान पर व्यक्तिगत हित का प्रभुत्व होता है। उपभोक्ता अपनी माँग करते समय अपनी माँगों के आर्थिक सामाजिक, राजनीतिक तथा अन्य प्रभावों से अनभिज्ञ होते हैं और इस प्रकार राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था में परिवर्तन अथवा विकास करना कठिन होता है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में उपभोक्ता की स्वतन्त्रता को सीमित कर दिया जाता है तथा राष्ट्र के साधनों का वितरण राष्ट्रीय हितों के अनुसार किया जाता है। उत्पादन उपभोक्ता द्वारा नहीं प्रत्युत नियोजन के कार्यक्रम द्वारा संचालित होता है। इस प्रकार अधिकाधिक साधनों को पूँजीगत सम्पत्तियों के उत्पादन में लगाया जा सकता है और अर्थ-व्यवस्था को शीघ्र ही विकास के पथ पर अग्रसर किया जा सकता है।

(७) **व्यापारिक उच्चावचान**—नियोजित अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत समस्त अर्थ-व्यवस्था की आवश्यकताओं तथा उपलब्ध साधनों के सन्दर्भ में उत्पादन-कार्यक्रम निर्धारित किए जाते हैं और यह निर्धारण नियोजन-अधिकारी द्वारा किया जाता है। ऐसी परिस्थिति में अति अथवा न्यून उत्पादन की समस्या गम्भीर नहीं हो पाती है और कोई एकाधिकारिक उत्पादक अथवा व्यापारी विपणि पर प्रभाव डालने में असमर्थ रहता है। केवल वाञ्छनीय प्रतिस्पर्धा को ही छूट दी जाती है और अर्थ-व्यवस्था को स्वतः समायोजित होने के लिए नहीं छोड़ा जाता है क्योंकि यह स्वतः समायोजन दीर्घ काल में ही सम्भव हो सकता है। इस दीर्घ काल में जनसमुदाय को जो कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं उनसे बचाना नियोजन द्वारा ही सम्भव होता है। व्यापारिक चक्रों का नियोजित अर्थ व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान नहीं होता है क्योंकि इन पर नियोजन-अधिकारी प्रभावशाली नियन्त्रण रखता है।

(८) **साधनों का उपयोगरहित न रहना**—अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में उत्पादन सम्बन्धी निर्णय निजी व्यवसायियों तथा उनकी संस्थाओं द्वारा अपने व्यक्तिगत लाभ के आधार पर करते हैं अर्थात् जिस व्यवसाय में लाभ की सम्भावना अधिक होती है उसमें अधिक से अधिक साहसी विनियोजन करते हैं, जिसका नतीजा कुछ समय पश्चात् यह होता है कि कुछ व्यवसायों में अति विनियोजन एवं अति उत्पादन हो जाता है और कुछ व्यवसाय हीन अवस्था में रहते हैं। इस प्रकार अर्थ व्यवस्था में उपलब्ध उन साधनों का तो अधिकतम उपयोग होता है जिनमें लाभ अधिक उपलब्ध होता है और शेष उद्योगों के लिए उपलब्ध साधन उपयोगरहित रहते हैं। यदि अर्थ-व्यवस्था में व्यवसायों एवं उद्योगों का विकास समन्वित रूप से उपलब्ध साधनों के सन्दर्भ में किया जाय तो कुल उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि हो सकती है और आर्थिक प्रगति भी द्रुत गति से हो सकती है। उपलब्ध साधनों का अधिकतम विवेकपूर्ण उपयोग आर्थिक

नियोजन के अन्तगत होता है क्योंकि नियोजन अधिकारी उत्पादन का समन्वित कार्यक्रम निर्धारित कर सकता है। ऐसे व्यवसायों का संचालन किया जा सकता जो प्रारम्भ में अधिक लाभप्रद नहीं होते हैं। नवीन साधनों की खोज भी नियोजित अर्थ व्यवस्था में सुलभता से की जा सकती है।

(६) साधनों का अधिकतम तान्त्रिक कुशलता के आधार पर उपयोग—नियोजित अर्थ व्यवस्था के अन्तगत नवीन उत्पादक संगठनों की स्थापना, उत्पादक साधनों का पुनर्वितरण तथा आवश्यकतानुसार सामाजिक, आर्थिक एवं वधानिक व्यवस्था में परिवर्तन करना सम्भव होता है जिसके फलस्वरूप उद्योगों एवं व्यवसायों का उपयुक्त स्थानों पर स्थापित एवं स्थानान्तरित करना, उनमें आधुनिक तकनीकियों में यन्त्रों का उपयोग करना उनका उपयुक्त आर्थिक संगठनों द्वारा संचालित करना, व्यवसायों का एकीकरण (Amalgamation) तथा इनमें पारस्परिक सहयोग स्थापित करना आदि सम्भव होते हैं। अनियोजित अर्थ व्यवस्था के अन्तगत इस प्रकार की व्यवस्था नहीं होती क्योंकि प्रत्येक उद्योगपति एवं व्यवसायी को इन सबके सम्बन्ध में पृथक पृथक निर्णय करने की स्वतन्त्रता होती है। उपयुक्त व्यवसायों से उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है और विशिष्टीकरण में सहायता प्राप्त होती है।

(१०) साधनों का जन हित के सम्बन्ध में वितरण—आर्थिक नियोजन का प्रमुख उद्देश्य जनकल्याण होना है और एक उद्देश्य की उपलब्धि के लिए रोजगार के साधनों आय एवं धन के वितरण की विषमता को कम करने का प्रयत्न किया जाता है। उत्पादक साधनों का वितरण माँग मूल्य अथवा लाभ के आधार पर नहीं किया जाता बल्कि जनकल्याण के लिए जिन अनिवार्य सेवाओं एवं वस्तुओं की अधिक आवश्यकता होती है, उनकी पूर्ति में वृद्धि को आधार माना जाता है तथा उन्हें निधन वर्ग तक उचित मूल्य पर पहुँचाने का प्रयत्न किया जाता है। दूसरी ओर अनियोजित अर्थ व्यवस्था में साधनों का वितरण माँग मूल्य एवं लाभ के आधार पर किया जाता है। प्रभावशाली माँग वही वर्ग प्रस्तुत कर सकता है जिसके पास अधिक क्रय शक्ति हो और अधिक क्रय शक्ति सम्पन्न वर्ग के पास ही होती है। इस प्रकार अनियोजित अर्थ व्यवस्था में आराम एवं विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए साधनों का उपयोग कर लिया जाता है जबकि निधन वर्ग की अनिवार्यताओं की पूर्ति की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। नियोजित अर्थ व्यवस्था में यह सम्भव हो सकता है।

(११) अधिकतम तान्त्रिक कुशलता—नियोजित अर्थ व्यवस्था के अन्तगत उत्पादन-साधनों का वृहद् स्तर पर पुनर्गठन करके विभिन्न व्यवसायों एवं उद्योगों को उपलब्ध किया जाता है। संगठन एवं उत्पादन के स्तर में विस्तार हो जाने से यन्त्रों एवं श्रम के और अधिक विशिष्टीकरण में सहायता प्राप्त होती है। उद्योगों एवं व्यवसायों को अधिकतम उपयुक्त स्थानों में ले जाने तथा उनका अधिकतम कुशल संचालन करने के लिए निजी साहसियों के हितों पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं होती है।

परन्तु एक बार, इस प्रकार जो तान्त्रिक कुशलता प्राप्त होती है, वह सरकारी अधिकारियों की लालफीताशाही द्वारा नष्ट हो जाती है और नियोजित अर्थ-व्यवस्था इस व्यवस्था का पूर्ण लाभ प्राप्त करने में असमर्थ रहती है।

(१२) सामाजिक लागत (Social Costs)—अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में निजी साहसियों द्वारा संचालित उद्योगों से समाज को कुछ कठिनाइयाँ प्राप्त होती हैं जैसे औद्योगिक बीमारियाँ, चक्रीय बेरोजगारी, औद्योगिक दुर्घटनाएँ, नगरों में अधिक भीड़ भाड़। निजी उद्योगपति इन सब सामाजिक दोषों की ओर विशेष ध्यान नहीं देते जब तक कि उन पर राज्य द्वारा इस सम्बन्ध में दबाव नहीं डाला जाता। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में इन दोषों को दूर करने का पर्याप्त आयोजन किया जाता है और इन पर विचार उद्योगों की स्थापना एवं विस्तार के समय ही कर लिया जाता है।

निष्कर्ष यह है कि अनियोजित अर्थ-व्यवस्था एक आकस्मिक अर्थ-व्यवस्था होती है जबकि नियोजित अर्थ-व्यवस्था एक विचारपूर्ण (Deliberate) व्यवस्था है, जिसमें अर्थ-व्यवस्था के उद्देश्य विचारपूर्ण निश्चित करके इसका संचालन किया जाता है। इस प्रकार नियोजित अर्थ-व्यवस्था अधिक सफल और विवेकपूर्ण प्रतीत होती है। अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में व्यक्तिगत उत्तरदायित्व, व्यक्तिगत पहल (Initiative) तथा निर्णयों की शीघ्रता तथा परिवर्तनशीलता को विशेष अवसर प्रदान किया जाता है। दूसरी ओर, नियोजन में व्यवस्थित समन्वय, वैज्ञानिक तथा तान्त्रिक ज्ञान का विवेकपूर्ण उपयोग तथा माँग और पूर्ति में समन्वय करना जिससे उचित जीवन-स्तर का आयोजन हो सके आदि उद्देश्य सम्मिलित होते हैं।

नियोजन की परिभाषा एवं उद्देश्य
[Definition and Aims of Planning]

[परिभाषा, नियोजन के तत्व राजकीय हस्तक्षेप एवं आर्थिक नियोजन, आर्थिक नीति एवं आर्थिक नियोजन, नियाजन के उद्देश्य आर्थिक उद्देश्य, अधिकतम उत्पादन अविकसित क्षेत्रों का विकास युद्धोपरान्त पुर्ननिमाण, विदेशी बाजारो पर प्रभुत्व, विकास के लिए विदेशी सहायता आर्थिक सुरक्षा, आय की समानता, अवसर की समानता, पूर्ण रोजगार, सामाजिक उद्देश्य राजनीतिक उद्देश्य रक्षात्मक उद्देश्य आक्रामक उद्देश्य, आन्तरिक राजनीति मे प्रभुत्व, अन्य उद्देश्य भारत मे नियाजन के उद्देश्य]

परिभाषा

नियोजन का शाब्दिक अर्थ पहले से व्यवस्था करना है। किन्हीं परिस्थितियो के उपस्थित होने के पूर्व उनके लिए व्यवस्था करना नियोजन का मूल अर्थ है। भविष्य मे उपस्थित होने वाली ज्ञात एव अज्ञात परन्तु अनुमानित कठिनाइयो के विरुद्ध उचित प्रबन्ध करना एक बुद्धिमत्तापूर्ण एव विवेकपूर्ण काय है। जिस प्रकार एक व्यक्ति भविष्य मे आने वाली समस्याओ का सामना करने के लिए अपने साधनों का विश्लेषण करके उनको विभिन्न प्रयोगों मे विवेकपूर्ण रीति से वितरण करता है तथा कठिनाइयो की तीव्रतानुसार प्राथमिकता निश्चित कर साधनो का आवटन करता है ठीक इसी प्रकार एक राष्ट्र को भी अपने साधनों का विवेकपूर्ण आवटन करना चाहिए जिससे भविष्य मे ज्ञात व अज्ञात परन्तु सम्भावित घटनाओ के विरुद्ध आयोजन किया जा सके। एक राष्ट्र को अपने नागरिको के जीवन स्तर मे वृद्धि करने के लिए उत्पादन मे वृद्धि करना साधनो का इस प्रकार आवटन करना कि उनसे अधिक से अधिक समाज का हित हो सके उत्पादन का उचित वितरण तथा वैज्ञानिक ज्ञान का विवेकपूर्ण उपयोग करना आदि सभी आवश्यक काय होते है। इस प्रकार नियोजन आवश्यकरूपेण एक विवेकपूर्ण व्यवस्था कही जा सकती है जिसके द्वारा किसी राष्ट्र की अधिकतम जनसख्या का अधिकतम हित लक्षित होता है।

नियोजन के साथ जब हम आर्थिक शब्द जोड देते है तो अर्थ मे कोई विशेष परिवर्तन नही आता प्रत्युत इस विवेकपूर्ण व्यवस्था मे आर्थिक क्रियाओ को विशेष स्थान दिया जाता है। इस प्रकार आर्थिक नियोजन एक विवेकपूर्ण व्यवस्था होती है

साधारण शब्दों मे, प्रो० हैरिस के अनुसार नियोजन अधिकारी द्वारा निश्चित किये गये लक्ष्यो के आधार पर साधनों के वितरण को नियोजन कहते हैं। इस परिभाषा के तीन मुख्य तत्व हैं—

(१) लक्ष्यो का उचितरूपेण निश्चय

(२) नियोजन अधिकारी तथा

(३) साधनो का वितरण।

लक्ष्यो का निश्चित करना नियोजन की सर्वप्रथम अवस्था है। वे लक्ष्य प्राप्त उन्नति को मापने तथा निश्चित करने मे सहायक होते हैं। नियोजन के उद्देश्यो की पूर्ति हेतु एक निश्चित समय निर्धारित किया जाता है और नियोजन की सफलता प्राप्त उन्नति के पूर्व निश्चित लक्ष्यो से तुलना द्वारा ज्ञात की जाती है। ये लक्ष्य इस प्रकार नियोजन की सफलता परीक्षण हेतु वायुभारमापक यन्त्र (Barometer) का कार्य करते हैं।

नियोजन अधिकारी का तात्पर्य यहाँ दो बातो से है—प्रथम नियोजन का सगठन तथा द्वितीय, नियोजन को जन समर्थन। नियोजन अधिकारी नियोजन की समस्त व्यवस्था का सगठन करके उसे सचालित करता है। नियोजन अधिकारी को राष्ट्र के साधनो पर नियन्त्रण करने का अधिकार प्राप्त होना आवश्यक है। साथ ही, उसे उन साधनो के उपयोग तथा वितरण पर भी पूर्ण अधिकार होना चाहिए। प्रजातान्त्रिक नियोजन मे यह अधिकार केवल सरकार द्वारा ही नहीं दिए जा सकते जनता का सहयोग तथा समर्थन भी आवश्यक है। जनता के सहयोग से नियोजन अधिकारी का कार्य भार भी कम हो जाता है। तानाशाही नियोजन मे जनता का सहयोग शक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है।

साधनो के वितरण मे चार क्रियाए सम्मिलित हैं—

(१) राष्ट्र मे वितरणार्थ क्या क्या साधन उपलब्ध हैं? इस सम्बन्ध मे राष्ट्र के वास्तविक तथा सम्भावी (Potential) साधनो की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए।

(२) नियोजन अधिकारी को उन साधनो की प्राप्ति एव वितरण पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जिससे उन साधनो का अधिकतम लाभप्रद उपयोग हो सके।

(३) नियोजन अधिकारी जनता की इच्छाओ को ज्ञात करे और साधनो का वितरण जन माँगो की प्राथमिकता के आधार पर करे अर्थात् जन समस्याओ मे जिस समस्या की तीव्रता तथा उग्रता अधिक हो उसके निवारणार्थ साधनो का सर्वप्रथम उपयोग किया जाना चाहिए।

(४) साधनो का आवटन करते समय इनके उपयोगो मे समन्वय होना भी आवश्यक है जिससे एक उद्देश्य की पूर्ति अन्य उद्देश्य के पथ मे बाधक सिद्ध न हो।

श्री विट्ठल बाबू के अनुसार किसी राष्ट्र की वर्तमान भौतिक मानसिक तथा प्राकृतिक शक्तियो अथवा साधनों को जनसमूह के अधिकतम लाभार्थ विवेकपूर्ण

उपभोग करने की कला को नियोजन कहते हैं।'[1] साधनों का विवेकपूर्ण उपयोग एक सामाजिक तथा आर्थिक विधि है, जिसमें संगठित नियन्त्रण द्वारा सामाजिक तथा आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है। इस प्रकार प्रत्येक नियोजन के समक्ष कुछ सामाजिक उद्देश्य होते हैं जिनकी पूर्ति आर्थिक साधनों के उचित उपयोग द्वारा की जाती है।

भारत में योजना आयोग ने नियोजन को परिभाषित करते हुए स्पष्ट किया है— 'नियोजन साधनों के संगठन की एक विधि है जिसके माध्यम से साधनों का अधिकतम लाभप्रद उपयोग निश्चित सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है। नियोजन की इस विचारधारा में दो तत्व निहित हैं—(अ) उद्देश्यों का क्रम जिनकी पूर्ति का प्रयास किया जाय तथा (आ) वर्तमान साधनों का ज्ञान तथा उनका सर्वोत्तम आवंटन।'[2]

इस परिभाषा के अनुसार नियोजन में किसी भी राष्ट्र की मानवीय शक्तियों तथा भौतिक साधनों का समाज के अधिकतम हित के लिए उपयोग करना सम्मिलित है। राष्ट्र के लिए नियोजन-आयव्ययपत्रक के निर्माणार्थ राष्ट्र के वर्तमान तथा सम्भाव्य आर्थिक साधनों, जनसंख्या के सामान्य परिवर्तन तथा सभ्यता की सामान्य स्थिति का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। इस व्यापक ज्ञान की प्राप्ति हेतु मानवीय शक्तियों तथा भौतिक साधनों का परीक्षण तथा उनके विभिन्न उपयोगों की सूची का निर्माण आवश्यक है जिससे कथित साधनों के सर्वोत्तम सम्भव उपयोग द्वारा उत्पादन तथा लोकजीवन-स्तर में वृद्धि की जा सके। प्रत्येक नियोजन की अवधि निश्चित होती है जिसमें निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति करना होती है। राष्ट्र की सम्पूर्ण सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था को नवीन तथा विवेकपूर्ण विधियों से संगठित करना एवं निवासियों में नूतन जीवन-संचार करना नियोजन का प्रमुख कार्य है। संसार की परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुकूल राष्ट्र की आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था में भी परिवर्तन लाना नियोजन का उद्देश्य होना चाहिए।

डॉ० डाल्टन ने आर्थिक नियोजन की परिभाषा करते हुए कहा है 'आर्थिक नियोजन विस्तृत दृष्टिकोण से वह क्रिया है, जिसमें वृहद साधनों पर नियन्त्रण रखने

---

1 Planning stands for any technique of national utilization of the existing physical mental and material forces or resources of a country for the maximum benefit of its people
(V Vithal Babu *Towards Planning* p 3)

2 Planning is essentially a way of organising and utilizing resources to the maximum advantage in terms of defined social ends. The two main constituents of the concept of planning are (a) system of ends to be pursued and (b) knowledge as to available resources and their optimum allocation
(*Planning Commission The First Five Year Plan, Draft Outline* p 7)

वाले व्यक्ति जानबूझ कर आर्थिक क्रियाओं को निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सचालित करते हैं।'[1] इस परिभाषा मे नियोजन के तीन लक्षणों का विवेचना की गयी है—(१) नियोजन का तात्पर्य योजना अधिकारी के आदेशों के अनुसार अर्थ-व्यवस्था को सचालित करना है। (२) ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनके नियन्त्रण में राष्ट्र के अधिकतम साधन रहते हैं। डा० डाल्टन का तात्पर्य यहां राज्य से है। (३) निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अर्थ-व्यवस्था का सचालन किया जाता है।

श्रीमती बारबरा वूटन के अनुसार आर्थिक नियोजन का मुख्य लक्षण जानबूझ कर *आर्थिक प्राथमिकताओं का चयन करना है।* उन्होंने कहा है 'क्या मैं इस रुपये का रोटी पर व्यय करूं अथवा अपनी माता की जन्म तिथि के अवसर पर शुभकामनाओं का तार भेजने पर? क्या मैं मकान क्रय कर लूं अथवा किराये पर ले लूं? क्या इस भूमि को जोत कर खेती की जाय अथवा उस पर भवन बनाया जाय? प्रत्येक वस्तु असीमित मात्रा में उत्पन्न करना असम्भव है इसीलिए प्राथमिकता निर्धारित करना तथा चयन करना आवश्यक है।'[2]

चयन एव प्राथमिकता निर्धारण करने की दो विधियां हो सकती हैं—प्रथम जानबूझ कर प्राथमिकताएँ निर्धारित करना और द्वितीय प्राथमिकताओं को स्वत बाजार तान्त्रिकताओं (Market Mechanism) द्वारा निर्धारित होने देना। जब ये प्राथमिकताएँ जानबूझ कर निर्धारित की जायें तो उसे आर्थिक नियोजन कहना चाहिए। श्रीमती बारबरा वूटन ने अपनी दूसरी पुस्तक 'Plan or No Plan' में आर्थिक नियोजन को इसी आधार पर इस प्रकार परिभाषित किया है— आर्थिक नियोजन वह विधि है जिसमें बाजार तान्त्रिकताओं को जानबूझ कर इस उद्देश्य से नियन्त्रित किया जाता है कि ऐसी व्यवस्था उत्पन्न हो जो बाजार-तान्त्रिकताओं को स्वतन्त्र छोड़ने पर उत्पन्न हुई व्यवस्था से भिन्न हो।[3] आर्थिक नियोजन में प्राथमिकताएँ

---

1 Economic planning in the widest sense is the deliberate direction of persons in charge of large resources of economic activity towards chosen ends

(Dr Dalton *Practical Socialism for Great Britain*)

2 Shall I spend this rupee on bread or send a greeting telegram to my mother on her birthday? Shall I buy a house or rent one? Shall this field be ploughed and cultivated or built on? Since it is impossible to produce everything in indefinite quantities there must be choice and priority

(Mrs Barbara Wooton *Freedom Under Planning* p 12)

3 Economic Planning is a system in which the market mechanism is deliberately manipulated with the object of producing a pattern other than that which would have resulted with its own spontaneous activity

(Mrs Barbara Wooton *Plan or No Plan* pp 47 49)

निर्धारित करने का उद्देश्य निश्चित लक्ष्यों की पूर्ति करना होता है। एक प्रतिस्पर्धात्मक अर्थ-व्यवस्था में किसी भी वस्तु के उत्पादन-लक्ष्य निश्चित समय में पूरा करना सम्भव इसलिए नहीं होता कि इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु जानबूझ कर कोई व्यवस्था नहीं की जाती है। दूसरे शब्दों में इस लक्ष्य की पूर्ति अवसर पर छोड़ दी जाती है। परन्तु नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य लक्ष्य निर्धारित करके उनकी निश्चित काल में पूर्ति हेतु व्यवस्था करता है। जब तक लक्ष्यों की पूर्ति का काल निश्चित न किया जाय आर्थिक नियोजन का अर्थ अस्पष्ट रहेगा। इसलिए लक्ष्यों की पूर्ति का निश्चित काल होना भी आवश्यक है।

हरमैन लेवी ने आर्थिक नियोजन की परिभाषा निम्न प्रकार दी है—'आर्थिक नियोजन का अर्थ माँग और पूर्ति में उत्तम सन्तुलन प्राप्त करने से है। यह सन्तुलन स्वतः संचालित अदृश्य तथा अनियन्त्रित घटकों द्वारा निर्धारित होने के लिए नहीं छोड़ा जाता बल्कि उत्पादन अथवा वितरण अथवा दोनों पर विचारपूर्ण एवं जानबूझ कर नियन्त्रण करके निर्धारित किया जाता है।'[1] इस परिभाषा में नियोजन को माँग और पूर्ति में अनुकूल सन्तुलन उत्पन्न करने की क्रिया का स्वरूप दिया गया है। वास्तव में, नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत निश्चित लक्ष्यों की पूर्ति तब ही सम्भव हो सकती है जब माँग एवं पूर्ति का सन्तुलन नियोजन अधिकारी के कार्यक्रमों के अनुरूप किया जा सके।

कार्ल लैण्डौर (Carl Landaur) के अनुसार 'आर्थिक नियोजन का अर्थ उस सामंजस्य से है जो विपणि द्वारा स्वतः प्राप्त करने की बजाय समाज के किसी संगठन द्वारा जानबूझ कर किये गये प्रयास से प्राप्त किया जाता है। इसलिए नियोजन एक सामूहिक प्रकार की क्रिया है और इसमें व्यक्तियों की क्रियाओं का समाज द्वारा नियन्त्रित किया जाता है।'[2] इस परिभाषा में नियोजन को एक सामूहिक क्रिया बताया गया है क्योंकि राज्य समाज के प्रतिनिधि के रूप में इस क्रिया का संचालन करता है। जब अर्थ-व्यवस्था के समस्त अंगों में राज्य द्वारा इस प्रकार सामंजस्य स्थापित किया जाता है कि निश्चित लक्ष्यों की पूर्ति निश्चित काल में हो सके तो इस क्रिया को आर्थिक नियोजन कहना चाहिए।

---

1 Economic Planning means securing a better balance between demand and supply by a conscious and thoughtful control either of production or distribution or of both rather than leave this balance to be affected by automatically working invisible and uncontrolled force (Herman Levy *New Industrial System*)

2 Planning means coordination through a conscious effort instead of the automatic coordination which takes place in the market and that conscious effort is to be made by an organ of society Therefore Planning is an activity of collective character and its regulation of the activities of individuals by the community
(Carl Landauer *Theory of National Economic Planning* p 12.)

ज्युग (Zweig) के मतानुसार "आर्थिक नियोजन समस्त अर्थ व्यवस्था पर केन्द्रीय नियन्त्रण की व्यवस्था है चाहे वह केन्द्रीय नियन्त्रण किसी भी उद्देश्य तथा कि ही भी विधियो द्वारा किया जाय।" इस परिभाषा म आर्थिक नियोजन के तीन लक्षण सम्मिलित हैं—

(अ) राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था का केन्द्रीयकरण—अर्थ-व्यवस्था के केन्द्रीयकरण से तात्पर्य अधिकार के केन्द्रीयकरण उत्पादन के केन्द्रीयकरण अथवा नियन्त्रण के केन्द्रीय करण से है। आर्थिक नियोजन का केन्द्रीयकरण सदव निहित रहता है। केन्द्रीय अर्थ व्यवस्था म नियोजन का अपनाने अथवा नही अपनाने की समस्या नही होती है। इस व्यवस्था म तो केवल यह निश्चय करना होता है कि विभिन्न केन्द्रित क्षेत्रो म किस प्रकार की योजना सवश्रेष्ठ रहगी। केन्द्रीयकरण अर्थ व्यवस्था को नियोजन का आरम्भ जाता है।

(आ) राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था का निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु नियन्त्रण—स्वतन्त्र बाजार-व्यवस्था म किसी भी प्रकार के नियन्त्रण को स्थान नही होता है। इस व्यवस्था म आर्थिक निश्चय स्वत सचालित माँग और पूर्ति के घटको पर आधारित होते हैं। नियोजित अर्थ व्यवस्था मे आर्थिक निश्चय अर्थ साधनो म जानबूझ कर नियन्त्रण करके लिए गये हैं। इसका अर्थ यह नही है कि नियोजित अर्थ व्यवस्था मूल्य यान्त्रिकता (Price Mechanism) को कोई स्थान नही देती। वास्तव म नियोजित अर्थ व्यवस्था में मूल्यो का सचालन बाजार की माँग पूर्ति आदि घटको द्वारा किया जाता है। नियोजित अर्थ व्यवस्था म उत्पादन का चयन व्यवसाय का चयन विनिमय का चयन बचत एव विनियोजन का चयन तथा उपभोग का चयन व्यवसायियो श्रमिकों उपभोक्ताओ तथा उत्पादको द्वारा नही किया जाता है। यह चयन नियोजन अधिकारी द्वारा नियोजन के उद्देश्यो के अनुसार किये जाते है। इस प्रकार नियोजित अर्थ व्यवस्था म चयन (Choose) करने के अधिकार का नियन्त्रण किया जाता है। इस नियन्त्रण की मात्रा विभिन्न राष्ट्रो म परिस्थितियो के अनुसार भिन्न रहती है।

(इ) आर्थिक नियोजन मे राष्ट्रीय जीवन की सम्पूर्ण व्यवस्था होती है—*आर्थिक नियोजन द्वारा राष्ट्रीय जीवन के समस्त क्षेत्रो के सम्बन्ध मे योजनाए बनायी* जाती हैं। समस्त राष्ट्र को एक इकाई मान कर कायक्रम निधारित किये जाते हैं। आर्थिक नियोजन की सफलतार्थ अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो म सामजस्य होना अति आवश्यक होता है।

<u>राष्ट्रीय योजना समिति</u> *(National Planning Committee)* ने *जिसकी* स्थापना स्व० श्री जवाहरलाल नहरू की अध्यक्षता म सन् १९३७ म की गयी थी आर्थिक नियोजन की परिभाषा निम्न प्रकार दी है—

'<u>प्रजातान्त्रिक ढाँचे म नियोजन को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता</u> <u>है कि यह उपभोग, उत्पादन नियोजन व्यापार आय वितरण के स्वायरहित</u>

(disinterested) विशेषज्ञों का प्राविधिक समन्वय है जो राष्ट्र की प्रतिनिधि-संस्थाओं द्वारा निर्धारित विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्राप्त किया जाय।

इस परिभाषा में इस बात पर जोर दिया गया है कि लक्ष्यों का निर्धारण जनसमुदाय के प्रतिनिधियों द्वारा किया जाय और उनकी पूर्ति हेतु विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों को समन्वित कार्यक्रम निर्धारित करना चाहिए।

नियोजन के तत्त्व

उपर्युक्त समस्त परिभाषाओं के विश्लेषणात्मक एवं सूक्ष्म अध्ययन निष्कर्ष के रूप में अधोलिखित विवरण नियोजन के आवश्यक तत्त्वों को प्रस्तुत करता है—

(१) नियोजित अर्थ-व्यवस्था आर्थिक संगठन की एक पद्धति है।

(२) आर्थिक नियोजन में राष्ट्रीय साधनों का तान्त्रिक समन्वय (Technical Co-ordination) होता है।

(३) नियोजन में साधनों का वितरण प्राथमिकताओं के अनुसार विवेकपूर्ण रीति से किया जाता है।

(४) नियोजन के संचालनार्थ एक केन्द्रीय एवं उचित अधिकारी होना चाहिए जो साधनों का परीक्षण करे, लक्ष्य निर्धारित करे तथा लक्ष्यों की पूर्ति के उपाय निकाले।

(५) नियोजन में राष्ट्र की आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था से सम्बन्धित उद्देश्य निश्चित होने चाहिए।

(६) लक्ष्यों की पूर्ति हेतु एक निश्चित अवधि होनी चाहिए।

(७) राष्ट्र के वर्तमान तथा सम्भाव्य साधनों का विवेकपूर्ण उपयोग उत्पादन को अधिकतम स्तर पर लाने के लिए किया जाना चाहिए।

(८) नियोजन को जनता का समर्थन प्राप्त होना चाहिए तथा उसके संचालन में लोक-सहयोग का उचित स्थान होना चाहिए।

(९) नियोजन के अन्तर्गत अर्थ-व्यवस्था के समस्त क्षेत्रों का विकास निहित होता है और यह एक समन्वित कार्यक्रम प्रस्तुत करता है।

उपर्युक्त तत्त्वों की आधारशिला पर एक सूक्ष्म एवं एकीकृत परिभाषा नियोजन-स्वरूप का सार इस प्रकार कह सकती है कि नियोजन अर्थ-व्यवस्था के लोकतन्त्रीय एवं लोक-समर्थन-प्राप्त ऐसे संगठन को कहते हैं जिसमें नियोजन-अधिकारी द्वारा पूर्व-निश्चित आर्थिक एवं सामाजिक उद्देश्यों की निश्चित अवधि में पूर्ति करने हेतु राष्ट्रीय वर्तमान एवं सम्भाव्य साधनों का प्राथमिकताओं के अनुसार तान्त्रिक विवेकपूर्ण एवं समन्वित उपयोग किया जाता है।

राजकीय हस्तक्षेप एवं आर्थिक नियोजन

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत राज्य द्वारा विपणि-तान्त्रिकता (Market Mechanism) पर नियन्त्रण किया जाता है और राज्य देश के आर्थिक जीवन को नियोजन के उद्देश्यों के अनुरूप निर्देशित करता है।

इस प्रकार आर्थिक नियोजन में राजकीय हस्तक्षेप सदैव निहित रहता है परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं समझना चाहिए कि राजकीय हस्तक्षेप एवं आर्थिक नियोजन एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं। राजकीय हस्तक्षेप उस व्यवस्था को कहते हैं जिसके अन्तर्गत राज्य समय समय पर अर्थ-व्यवस्था को उन क्षेत्रों (Sectors) में नियन्त्रित कर देता है जिनमें असन्तुलन उत्पन्न हो गया हो अथवा जो देश की आर्थिक प्रगति के अनुकूल सचालित न हो रहे हों अथवा जिन क्षेत्रों को प्रोत्साहित करके विकसित करना आवश्यक समझा जाय। इस प्रकार के हस्तक्षेप में सरक्षणात्मक शुल्क कारखाना अधिनियम कोटा निर्धारण आयात एवं विनिमय नियन्त्रण आदि सम्मिलित हैं। इस प्रकार के हस्तक्षेप का उपयोग आजकल पूंजीवादी राष्ट्रों में, जहाँ विपणि अर्थ व्यवस्था को आधार समझा जाता है उपयोग होता है।

दूसरी ओर आर्थिक नियोजन उस समन्वित राजकीय हस्तक्षेप को कहते हैं जिसके अन्तर्गत अर्थ व्यवस्था के सभी क्षेत्रों एवं खण्डों पर राज्य नियन्त्रण करता है जिससे उनका सचालन नियोजन के उद्देश्यों के अनुकूल किया जा सके। इस प्रकार आर्थिक नियोजन समन्वित राजकीय हस्तक्षेप होता है जो अर्थ व्यवस्था के समस्त क्षेत्रों पर आच्छादित होता है। इस आधार पर अब यह कहा जा सकता है कि सभी प्रकार के आर्थिक नियोजन में सरकारी हस्तक्षेप सम्मिलित रहता है जबकि सभी राजकीय हस्तक्षेप को आर्थिक नियोजन नहीं कहा जा सकता है।

प्रथम एवं द्वितीय महायुद्ध के समय राजकीय हस्तक्षेप द्वारा विभिन्न राष्ट्रों ने अपनी अर्थ व्यवस्थाओं को युद्ध की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सचालित किया था। ब्रिटेन ने व्यापार कृषि एवं उद्योग पर विभिन्न प्रकार के राजकीय नियन्त्रण एवं प्रतिबन्ध लागू किये। युद्ध समाप्ति के पश्चात उन्हें पुनर्निर्माण हेतु राजकीय हस्तक्षेप आवश्यक समझा गया और युद्ध से प्रभावित सभी राष्ट्रों में इसे जारी रखा गया। दूसरी ओर संयुक्त राज्य अमेरिका में सन् १९२० की बड़ी मन्दी (Depression) से जो अर्थ व्यवस्था को क्षति पहुँची थी उसे सुधारने हेतु New Deal के अन्तर्गत राजकीय हस्तक्षेप किया गया। इस प्रकार इन सभी राजकीय हस्तक्षेपों का उद्देश्य अल्पकालीन असन्तुलन एवं अव्यवस्थाओं को दूर करना था परन्तु इन्हें आर्थिक नियोजन नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इन कार्यवाहियों के अन्तर्गत न तो समन्वित कार्यक्रम निर्धारित किये गये और न ही यह अर्थ-व्यवस्था के समस्त क्षेत्रों को आच्छादित करते थे।

सरकारी हस्तक्षेप उपयुक्त एवं अनुपयुक्त हो सकता है। उपयुक्त हस्तक्षेप उस व्यवस्था को कहते हैं जिसमें राजकीय हस्तक्षेप का परिमाण इतना कम रहता है कि विपणि व्यवस्था के यथावत सचालन में विघ्न नहीं पड़ता है। दूसरी ओर, अनुपयुक्त राजकीय हस्तक्षेप के अन्तर्गत हस्तक्षेप कठोर एवं विस्तृत होता है जिससे विपणि व्यवस्था छिन्न भिन्न हो जाती है अथवा अत्यन्त सीमित हो जाती है।

अतः नियोजन के अन्तर्गत अनुपयुक्त राजकीय हस्तक्षेप का अभाव होता है क्योंकि इसके द्वारा समस्त आर्थिक जीवन को नियन्त्रित करके नियोजन के उद्देश्यों के अनुरूप संचालित किया जाता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि आर्थिक नियोजन मुक्त विपणि व्यवस्था के सर्वथा विरुद्ध व्यवस्था होती है। परन्तु आर्थिक नियोजन की आधुनिक विचारधारा के अन्तर्गत नियोजित व्यवस्था और मुक्त विपणि-व्यवस्था दोनों का संचालन एक साथ किया जा सकता है। भारत एवं अन्य प्रजातान्त्रिक राष्ट्रों में नियोजित अर्थ-व्यवस्था का संचालन इस प्रकार किया गया है कि विपणि-व्यवस्था पर केवल सीमित नियन्त्रण लगाया गया है और विपणि-व्यवस्था को सर्वथा छिन्न भिन्न नहीं किया गया है। इस विचार के आधार पर अब यह कहा जा सकता है कि आर्थिक नियोजन एवं अनुपयुक्त राजकीय हस्तक्षेप (Incompatible State Intervention) आवश्यक नहीं है।

आर्थिक नीति एवं आर्थिक नियोजन—किसी भी देश में आधुनिक राज्य देश की आर्थिक क्रियाओं के प्रति सर्वथा उदासीन नहीं रह सकता है। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि राज्य द्वारा आर्थिक क्रियाओं में हस्तक्षेप अनिवार्य समझा जाने लगा है और आर्थिक क्रियाओं को नियन्त्रित करने हेतु आर्थिक नीतियाँ निर्धारित करना आवश्यक होता है। विदेशों से आर्थिक सम्बन्ध भी राजकीय स्तर पर स्थापित किये जाते हैं और इन सम्बन्धों का नियमन करने हेतु आर्थिक नीति की आवश्यकता होती है। इस प्रकार आर्थिक नीति उन आधारभूत सिद्धान्तों को कहा जा सकता है जिनके आधार पर देश के आर्थिक जीवन का नियमन एवं संचालन किया जाता है। इस नियमन का परिमाण उस देश के राजनीतिक ढाँचे पर निर्भर रहता है।

दूसरी ओर आर्थिक नियोजन में वे सब कार्यक्रम सम्मिलित रहते हैं जिनके द्वारा देश की आर्थिक क्रियाओं को पूर्व-निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु संगठित एवं संचालित किया जाता है। नियोजन में सम्मिलित कार्यक्रमों का आधार देश की आर्थिक नीति होती है। इस प्रकार आर्थिक नीति आर्थिक नियोजन का आधार होती है परन्तु प्रत्येक आर्थिक नीति को आर्थिक नियोजन नहीं कहा जा सकता है क्योंकि आर्थिक नीति केवल आर्थिक सिद्धान्त निर्धारित करती है। ये सिद्धान्त आर्थिक नियोजन का स्वरूप ले भी सकते हैं और नहीं भी। ऐसे देश जिनमें आर्थिक नियोजन को नहीं अपनाया जाता है, राज्य द्वारा आर्थिक नीति निर्धारित की जाती है। इन देशों की आर्थिक नीति का उद्देश्य आर्थिक क्रियाओं को सन्तुलित बनाए रखना होता है।

नियोजन के उद्देश्य

नियोजन के तत्वों से यह स्पष्ट है कि इसमें कार्यों का एक क्रम सम्मिलित होता है जो उद्देश्यों की आधारशिला पर निर्मित होता है, नियोजन का संचालन एवं कार्यक्रम उसके उद्देश्यों के अधीन होता है। कोई भी कार्यक्रम, व्यवस्था अथवा निर्माण-कार्य नियोजन है अथवा नहीं इसका ज्ञान उस कार्यक्रम, व्यवस्था अथवा

निर्माण कार्य के उद्देश्यों के निरीक्षण द्वारा ही सम्भव है। वास्तव में, नियोजन एक उद्देश्यपूर्ण क्रिया है। इसे एक तटस्थ (Neutral) यन्त्र अथवा व्यवस्था कहा जा सकता है जिसका उपयोग किसी भी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जा सकता है। परन्तु नियोजन का प्रकार उन उद्देश्यों पर निर्भर रहता है जिनकी पूर्ति के लिए नियोजन का संचालन किया जाता है। समाजवादी एवं प्रजातान्त्रिक राष्ट्रों में आर्थिक नियोजन के प्रमुख उद्देश्य आर्थिक सुदृढ़ता सामाजिक सुरक्षा एवं पूर्ण रोजगार होते होते हैं। दूसरी ओर साम्यवादी राष्ट्रों में आर्थिक उद्देश्यों के साथ साथ राजनीतिक उद्देश्यों का भी महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

आधुनिक युग में आर्थिक नियोजन शीघ्र विकास का साधन माना जाता है और वे सभी राष्ट्र जो विकास के दृष्टिकोण से पिछड़े हुए हैं आर्थिक नियोजन की व्यवस्था का उपयोग विकास की गति को तीव्रता प्रदान करने के लिए करते हैं। इस प्रकार अल्प विकसित राष्ट्रों में आर्थिक नियोजन द्वारा उन सभी घटकों को शिथिल अथवा क्रियाहीन बनाना होता है जो देश के विकास में बाधक होते हैं। आर्थिक पिछड़ेपन के कारणों में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से विदेशी पूंजी का प्रभुत्व, विदेशी राष्ट्रों द्वारा आर्थिक उलटफेर द्वारा देश को दूसरे राष्ट्रों पर निर्भर बनाए रखना देश को केवल कृषिप्रधान राष्ट्र बनाये रखने की कार्यवाहियाँ जिससे वह अन्य देशों के लिए उपयुक्त बाजार बना रहे, असन्तुलित एवं असमान व्यापारिक सम्बन्ध आदि प्रमुख हैं। यह समस्त घटक देश के औद्योगिक विकास में बाधक होते हैं और जनजीवन स्तर को ऊंचा नहीं उठने देते हैं। विकास नियोजन द्वारा इन सभी बाधक घटकों को नियन्त्रित एवं गतिहीन करना आवश्यक होता है। इस प्रकार एक ओर विकास आयोजन द्वारा बाधक घटकों को नियन्त्रित किया जाता है और दूसरी ओर देश के शीघ्र औद्योगीकरण कृषि क्षेत्र का आधुनीकरण आर्थिक स्वतन्त्रता को सुदृढ़ बनाना तथा सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करने के उद्देश्य निहित रहते हैं।

विभिन्न राष्ट्रों में आर्थिक नियोजन के व्यावहारिक संचालन का यदि हम अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि नियोजित अर्थ व्यवस्था द्वारा आर्थिक उद्देश्यों की तुलना में राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति को अधिक महत्व दिया जाता है। प्रायः आर्थिक उद्देश्य राजनीतिक उद्देश्यों के अधीन होकर रह जाते हैं। सिद्धान्तरूप से आर्थिक नियोजन में वही उद्देश्य सम्मिलित होने चाहिए जो समस्त समाज के हित से सम्बन्धित हों। आर्थिक नियोजन इस प्रकार एक जन अर्थव्यवस्था (Mass Economy) होती है जिसका सफल संचालन जन सहयोग (Mass Cooperation) द्वारा ही हो सकता है। उपर्युक्त विवरण को ध्यान में रखकर आर्थिक नियोजन के उद्देश्यों का विश्लेषण निम्न प्रकार किया जा सकता है--

(१) आर्थिक उद्देश्य—आर्थिक नियोजन में आर्थिक उद्देश्यों का प्रभुत्व होता है। अन्य उद्देश्य आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के अधीन होते हैं। सिद्धान्तरूप से

नियोजन में आर्थिक उद्देश्यों को सर्वोच्च स्थान मिलना चाहिए परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता है और आर्थिक नियोजन के कार्यक्रम एवं उद्देश्य राजनीतिक विचार-धाराओं से अत्यधिक प्रभावित होते रहते हैं। नियोजन के आर्थिक उद्देश्यों में निम्न-लिखित क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं—

(क) अधिकतम उत्पादन—अधिकतम उत्पादन नियोजन का प्रमुख उद्देश्य होना है। जनसमुदाय के जीवन-स्तर में वृद्धि करने के लिए उत्पादन के समस्त क्षेत्रों—कृषि, उद्योग, खनिज आदि में उन्नति करना आवश्यक है। अधिकतम उत्पत्ति हेतु निम्न कार्य करना आवश्यक हैं—

(अ) राष्ट्रीय सम्भावी साधनों एवं जन शक्ति का शोषण तथा उचित उपयोग।

(आ) उत्पादन के साधनों का पुन विवेकपूर्ण तथा वैज्ञानिक वितरण। जो साधन ऐसे उद्योगों में लगे हों जिनसे समाज का अधिकतम हित न होता हो, उन्हें पुन वितरित करना भी आवश्यक होगा।

(इ) नवीनतम तान्त्रिक ज्ञान कुशल श्रम तथा योग्य साहसी का उचित उपयोग करके राष्ट्रीय साधनों से अधिकतम उत्पादन प्राप्त करना।

(ई) श्रमिकों एव प्रबन्ध के सम्बन्धों में सुधार किया जाय जिससे श्रमिक कारखानों को अपना मान कर कार्य करें। पारस्परिक अच्छे सम्बन्ध होने से श्रमिक अधिक परिश्रम से कार्य करते हैं। बेरोजगारी के भय को दूर करने हेतु पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करनी चाहिए। श्रमिकों को प्रबन्ध में सहयोग देने का अवसर देना भी आवश्यक होता है।

(उ) अनिपूर्ण एवं हानिकारक प्रतिस्पर्धा पर रोक लगाने हेतु उत्पादित वस्तुओं का प्रमापीकरण करना चाहिए।

(ऊ) बड़े पैमाने के उत्पादन की मितव्ययता का लाभ उठाने हेतु स्थापित एकाधिकार अथवा किन्हीं विशेष कारणों से अस्थायी रूप से बने हुए एकाधिकार पर मूल्य, लाभ एव विक्रय की शर्तों के सम्बन्ध में राज्य को नियन्त्रण में रखना चाहिए।

(ए) नवीन उद्योगों (Infant Industries) को प्रोत्साहन देने हेतु आयात-कर तथा अर्थ-सहायता का आयोजन किया जाना चाहिए।

(ऐ) देश में मौद्रिक स्थिरता का वातावरण होने पर उत्पादन को अधिकतम सीमा तक ले जाया जा सकता है। मुद्रा-स्फीति एव संकुचन दोनों ही उत्पादन की वृद्धि में रोक लगाते हैं।

(ओ) अधिक मात्रा में विनियोजन का आयोजन किया जाना चाहिए। विनि-योजन की वृद्धि हेतु ऐच्छिक घरेलू बचत विदेशी मुद्रा की बचत मुद्रा प्रसार द्वारा बचत तथा सरकारी बचत आदि सभी में वृद्धि होनी चाहिए।

(औ) विवेकीकरण एव वैज्ञानिक प्रबन्ध की विभिन्न विधियों को समस्त उद्योगों पर लागू किया जाना चाहिए।

जनसाधारण के जीवन-स्तर मे वृद्धि करने हेतु आर्थिक नियोजन द्वारा सभी प्रकार के उद्योगो—कृषि खनिज निर्माण उद्योग आदि के उत्पादन मे वृद्धि करने का आयोजन करना मुख्य उद्देश्य होता है।

(ख) अविकसित एव अर्द्ध विकसित क्षेत्रों का विकास—सम्पूर्ण राष्ट्र के जीवन स्तर म समानता स्थापित करने हेतु राष्ट्र के अविकसित तथा अद्ध विकसित क्षेत्रो को राष्ट्र के अ य उन्नत क्षेत्रा के सम्यक करना भी नियोजन का एक प्रमुख ध्येय है। दलित क्षेत्रा की उन्नति द्वारा ही सम्पूण देश की आर्थिक स्थिति को सुधारा जा सकता है। अविकसित क्षत्रा क विकास हतु राष्ट्र क उपलध तथा सम्भा य साधनो का उचित एव यायपूण वितरण करना आवश्यक है। यक्तिगत साहसी अविकसित क्षेत्रो म विनियाग करन तो डरते हैं अत राज्य को इस क्षत्र म अग्रसर होकर औद्योगीकरण का अनुसरण करना चाहिए। नियाजन म केवल पिछडे क्षत्रो का ही विकास आववश्यक नही होता वरन् उन्नत क्षत्रो का साथ ही साथ विकास आवश्यक है जिससे राष्ट्रीय आय मे वृद्धि करके जन समूह क जावन-स्तर म उन्नति की जा सके। यद्यपि नियाजन पिछडेपन से सम्बन्धित है तथापि यह विचारधारा यायसगत नही है कि योजना का मुख्य उद्देश्य उन पिछडे क्षेत्रो म सुधार करना ही है।[1]

(ग) युद्धोपरान्त पुनर्निर्माण—युद्ध म क्षतिग्रस्त राष्ट्रा म नियोजित अथ व्यवस्था का उपयोग पुनर्निर्माण के लिए किया जाता है। पुनर्निर्माण के अन्तगत युद्ध अथ यवस्था को शान्तिकाल की अथ व्यवस्था म परिवर्तित करना होता है। युद्ध म क्षतिग्रस्त क्षत्रो विशेषकर उद्योगा एव यातायात के साधनो के पुनर्निर्माण एव सुधार का आयोजन किया जाता है। इसके अतिरिक्त युद्ध के अनुभवा के आधार पर अथ व्यवस्था को इस प्रकार सगठित एव उसके विभिन्न खण्डो को इस प्रकार विकसित किया जाता है कि भविष्य म देश युद्ध से अपने आपसे सुरक्षित रख सक। अधिकतर युद्धोपरान्त पुनर्निमाण के अन्तगत औद्यागीकरण एव पिछडे हुए क्षेत्रो क विकास का आयोजन नियोजित अथ यवस्था द्वारा किया जाता है। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात की रूस का पचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य पुनर्निर्माण एव पुनर्स्थापन था।

(घ) विदेशी बाजारो एव कच्चे माल के साधनो पर प्रभुत्व प्राप्त करना—आधुनिक युग म बडे एव विकसित राष्ट्रों के सामने एक बडी समस्या अथ व्यवस्था

1 Planning necessitates the development of not only the backward areas but also the forward areas so as to increase the aggregate national dividend of the country with a view to raise the standard of living of masses Though Planning is connected with backwardness still it can be justifiably argued that the main objective of Planning is to correct the mal adjustment in those backward areas (V Vithal Babu *Towards Planning* p 24)

की प्रगति की गति का निर्वाह करना होती है। विकास की ऊँची श्रेणियों पर पहुँच कर विकास के निर्वाह के लिए देश में उपभोग बढ़ाने तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को अधिक आदान प्राप्त करने की आवश्यकता पड़ती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विदेशी बाजारों पर प्रभुत्व स्थापित करना होता है जिसके लिए विदेशों में राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने के साथ साथ विदेशी सहायता अनुदान एवं ऋण प्रदान करके आर्थिक प्रभुत्व उपलब्ध करना आवश्यक होता है। अर्थ-व्यवस्था को इस प्रकार संचालित करना होता है कि एक ओर, विदेशी बाजारों के लिए आवश्यक निर्यात वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाया जा सके और दूसरी ओर, विदेशी सहायता आदि के लिए आवश्यक साधन उपलब्ध हो सकें। अर्थ-व्यवस्था में इस उद्देश्य के लिए नियमन करने की आवश्यकता होती है जो आर्थिक नियोजन द्वारा सुलभता से किया जा सकता है। इस प्रकार विकसित राष्ट्रों में नियोजित अर्थ-व्यवस्था का एक उद्देश्य विदेशी बाजारों एवं इनके साधनों पर प्रभुत्व प्राप्त करना भी होता है।

(ङ) विकास के लिए विदेशी सहायता प्राप्त करना—अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय एवं विकास संस्थाओं एवं विकसित राष्ट्रों द्वारा विदेशी सहायता उन्हीं राष्ट्रों को सुगमता से प्रदान की जाती है जिनमें नियोजित अर्थ व्यवस्था का संचालन किया जाता है। विकसित राष्ट्र भी ऐसी परियोजनाओं को सहायता प्रदान करते हैं जिनमें विकासशील राष्ट्र की सरकार की प्रतिभूति हो अथवा सरकार द्वारा संचालित होती हों। अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों में विदेशी सहायता द्वारा ही विकास को गति प्रदान करना सम्भव होता है और विदेशी सहायता का प्रवाह बनाये रखने के लिए नियोजित अर्थ-व्यवस्था का संचालन किया जाता है।

(च) आर्थिक सुरक्षा (Economic Security)—नियोजित अर्थ-व्यवस्था द्वारा जहाँ राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि का आयोजन किया, वहीं आय, अवसर एवं धन के समान वितरण का भी आयोजन करना आवश्यक समझा जाता है जिससे समाज के दलित एवं निधन-वर्गों के लोगों के जीवन-स्तर में सुधार किया जा सके। अवसर की समानता के फलस्वरूप पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करने की सम्भावना हो जाती है।

आय की समानता

आर्थिक समानता में, जिसे आर्थिक सुरक्षा भी कहा जा सकता है, राष्ट्रीय आय तथा अवसरों का समान वितरण निहित है। यद्यपि आय की समानता का उद्देश्य पूर्णतः प्राप्त करना असम्भव है क्योंकि लोगों के काय में भिन्नता होती है और एक उन्नतशील समाज में न्यायानुसार आय वितरण आवश्यक है, अन्यथा काय के प्रति प्रोत्साहन एवं रुचि समाप्त हो जायगी। आय के समान वितरणार्थ राष्ट्रीय आय तथा सम्पत्ति दोनों का ही पुनर्वितरण करना आवश्यक है क्योंकि आय की असमानता का प्रमुख कारण व्यक्तिगत प्रयास नहीं, बल्कि सम्पत्ति का असमान वितरण है।

सरकार आय का पुनर्वितरण करो द्वारा कर सकती है। सम्पन्न समुदाय से अधिक कर भार द्वारा प्राप्त कर आय को निधन वग की सस्ती सेवाएँ उदाहरणार्थ, चिकित्सा सम्बन्धी सेवाए शिक्षा, सामाजिक बीमा, सस्ते भवन सस्ते खाद्य पदार्थ आदि उपलब्ध कराने पर व्यय किया जा सकता है। दूसरी ओर राज्य मजदूरी के स्तर पर नियन्त्रण करके श्रमिको को कार्यानुसार न्यूनतम पारिश्रमिक प्रदान कराके साहसी का लाभ कम कर सकता हैं। किन्तु इस कृत्य के पूव साहसी से प्रलोभन (Inducement) को भी दृष्टिगत करना होगा जिसके कारण वह उद्योग चलाता है। यदि साहसी का लाभ अधिक पारिश्रमिक देने के कारण कम हो जायगा, तो वह अपने साधनो को अन्य कार्यों तथा उद्योगो म लगा देगा तथा उसके समक्ष सामाजिक हित महत्वहीन हो जायगा। आय की असमानता को दूर करने के लिए मूल्य नियन्त्रण तथा प्रतिबन्ध (Rationing) का भी उपयोग किया जा सकता है। आवश्यक वस्तुओ के वितरण पर सरकारी नियन्त्रण होने मे सम्पन्न लोग विपन्न लोगो की भाँति ही उनका समान उपयोग कर सकेंगे। परन्तु मूल्य नियन्त्रण तथा प्रतिबन्ध की सफलता चोर बाजार की सम्भावनाओ के कारण सन्दव सन्देहपूण रहती है।

अवसर की समानता

अवसर की समानता का तात्पय राष्ट्र के समस्त नागरिको को जीविकोपाजन के समान अवसर प्रदान करने का है। अवसर की समानता प्रदान करने के लिए सम्पत्ति तथा कुशलता का समान वितरण होना आवश्यक है क्योकि ये दो घटक ही आय के प्रधान साधन है। कुशलता की न्यूनता के कारण ही आय के पारिश्रमिक म असमानता पायी जाती है। खनिज से अधिक डाक्टर आय उपार्जित करता है क्योकि डाक्टरी की माँग की तुलना म पूर्ति न्यून है जबकि खनिको की पूर्ति माँग की अपेक्षा अधिक है। यदि समाज का प्रत्येक शिशु बिना अधिक व्यय के डाक्टर बन सके तो डाक्टरो की घरेलू सेवको की भाति कोई कमी नही रहेगी तथा ये डाक्टर फिर इतनी आय उपार्जित नहीं कर सकेंगे अत करारोपण से पूव आय की असमानता के निवारणार्थ हम अवसर की समानता म वृद्धि करनी चाहिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति शिक्षा प्रणाली मे सुधार द्वारा की जा सकती है। समस्त समाजवादियो का उद्देश्य होता है कि समस्त बच्चो को उनकी योग्यतानुसार शिक्षा प्राप्त करने योग्य बनाया जाय तथा शिक्षा और बच्चो के पालको की आय मे कोई सम्बन्ध न हो। यदि ऐसी स्थिति वास्तव में प्राप्त हो सके तो विभिन्न व्यवसायो की आय की असमानता स्वत ही कम हो जायगी।[1]

---

1 It is the shortage of skill which explains differences in remuneration for work Doctors earn more than miners because in relation to the demand for doctors there is much greater (Contd)

सम्पत्ति का समान वितरण करना आय में समानता लाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। सम्पत्ति में असमानता का मुख्य कारण उत्तराधिकार का विधान है। व्यक्तिगत धनोपार्जन का अधिकांश पैतृक सम्पत्ति से प्राप्त होता है। धनिक को जो आर्थिक सुविधाएँ प्राप्त होती हैं, वह उसकी व्यक्तिगत योग्यता तथा कुशलता के कारण नहीं अपितु उसके सम्पत्तिवान् परिवार में जन्म लेने के कारण है। उनकी स्थिति उत्तरोत्तर सुदृढ़ होती जाती है क्योंकि धनवान अपनी पूँजी में बचत द्वारा वृद्धि कर सकते हैं तथा अधिक आय वाले व्यवसायों में सुविधापूर्वक विनियोग कर सकते हैं। इस प्रकार उत्तराधिकार विधान द्वारा सम्पत्ति तथा आय की असमानता में वृद्धि होती है। सम्पत्ति का पुनर्वितरण सरकार द्वारा कर तथा क्षतिपूर्ति के माध्यम से अपहरण करके किया जा सकता है किन्तु सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण से उद्देश्य की पूर्ण प्राप्ति नहीं होती क्योंकि सम्पत्ति के स्वामियों को क्षतिपूर्ति राशि दी जाती है जो सम्पत्ति के स्थान पर अधिक आय-दाता सिद्ध होती है। तानाशाही नियोजन में यह कार्य सम्पादन शक्ति द्वारा सम्भव है किन्तु प्रजातान्त्रिक नियोजन में इस उद्देश्य की पूर्ति मृत्यु कर उत्तराधिकार-कर आदि द्वारा शनैः शनैः सम्भव है।

पूर्ण रोजगार

पूर्ण रोजगार द्वारा राष्ट्र के समस्त कार्य करने योग्य नागरिकों को रोजगार का प्रबन्ध करना भी आवश्यक है। पूर्ण रोजगार का आयोजन किये बिना आर्थिक समानता तथा अधिकतम उत्पादन के उद्देश्यों की पूर्ति भी सम्भव नहीं है। श्रम उत्पादन का प्रमुख एवं क्रियाशील घटक है और जब तक उत्पादन के समस्त साधनों का पूर्णतः उपयोग नहीं किया जायगा तब तक अधिकतम उत्पादन बिन्दु का [illegible] प्राप्त नहीं हो सकता। दूसरी ओर, जब तक पूर्ण रोजगार का प्रबन्ध नहीं होगा, बेरोजगार नागरिकों को आर्थिक समानता का लाभ प्रदान नहीं किया जा सकता। आर्थिक समानता में वृद्धि के साथ-साथ बेरोजगारी की समस्या का भी निवारण स्वतः होता जायगा। अतः राष्ट्र की समस्त उपलब्ध शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों का पूर्ण उपयोग एवं शोषण होना चाहिए। बेरोजगार तथा आंशिक रोजगार से समाज को

---

shortage of doctors than there is of miners. If every child in the community could become a doctor at no cost doctors would not be as scarce as domestic servants and would not earn much more *In order therefore to even out earnings from work before* taxation what we have to do is to increase equality of opportunity The key to this is of course the educational system. All socialists aim at enabling all children to have whatever education their abilities fit them for without *reference to the incomes* of their parents and if this state of affairs can really be achieved, differences between the incomes of different professions will be very greatly reduced

(W Arthur Lewis *The Principles of Economic Planning* p 36)

आय तथा क्रय शक्ति म कमी आती है जो उपभोक्ता तथा निर्माण दोनों ही उद्योगो का क्षतिकारक होता है।

अर्द्ध विकसित राष्ट्रों म नियोजन का मुख्य उद्देश्य देश के पिछडे प्रदेशो का औद्योगीकरण करना होता है। अर्द्ध विकसित अर्थ व्यवस्थाओं म या तो पूर्ण रोजगार के आधार पर कार्यक्रम निर्धारित किये जाते हैं या फिर कार्यक्रमो द्वारा रोजगार मे वृद्धि होना स्वाभाविक होता है। विकसित अर्थ व्यवस्थाओं म मन्दीकाल एवं आर्थिक स्थिरता के वातावरण म नियोजन का मुख्य उद्देश्य पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करना होता है। ऐसी परिस्थिति म रोजगार की वृद्धि हेतु विशेष कार्यक्रम निर्धारित किए जाते है क्योकि अर्थ व्यवस्था का विकास होने पर भी इन अर्थ व्यवस्थाओं मे बेरोजगार उपस्थित रहता है। पूर्णत नियोजित अर्थ व्यवस्था मे रोजगार की व्यवस्था एक सर्वमान्य घटक होती है और इसे नियोजन के मुख्य उद्देश्यो म सम्मिलित करना आवश्यक नही होता है। यहाँ विकास की योजना का अर्थ रोजगार की वृद्धि से होता है, परन्तु प्रजातान्त्रिक समाजवादी राष्ट्रो म जहाँ पूर्णत नियोजित अर्थ व्यवस्था नही होती नियोजन की प्रत्येक योजना मे रोजगार का स्थान होता है और नियोजन के उद्देश्यो म एक उद्देश्यपूर्ण रोजगार की व्यवस्था करना भी होता है।

पूर्ण रोजगार का लक्ष्य दीर्घ काल ही म उपलब्ध करने के प्रयत्न किये जाते हैं। वास्तव म पूर्ण रोजगार एक आदर्श लक्ष्य (Ideal Target) होता है जिसकी पूर्ति बढती हुई जनसंख्या वाले राष्ट्रो म बहुत बडे काल के सतत् प्रयत्नो द्वारा ही सम्भव हो सकती है। पूर्ण रोजगार की व्यवस्था के साथ-साथ आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत रोजगार कलेवर (Employment Structure) को भी सुधारने का प्रयत्न किया जाता है। जिन व्यवसायो म आयोपार्जन कम होता है उनसे श्रम शक्ति को हटाकर अधिक आयोपार्जन के क्षेत्रो म ले जाया जाता है।

(२) सामाजिक उद्देश्य—आर्थिक नियोजन के सामाजिक उद्देश्यो का मूलाधार अधिकतम जनता को अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करना है। इस उद्देश्य को एक अन्य सज्ञा सामाजिक सुरक्षा भी दी जा सकती है। सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत समाज के समस्त अगो को उनके कार्य तथा सेवानुसार न्यायोचित पारिश्रमिक दिया जाता है। श्रमिक वर्ग तथा उद्योगपति दोनो को ही उत्पत्ति का उचित अश मिलना चाहिए। श्रमिक वर्ग का उचित तथा वास्तविक पारिश्रमिक इतना अवश्य होना चाहिए जिससे वह अपने परिवार का अपनी योग्यता तथा स्थिति के अनुसार भरण पोषण कर सके। इसके अतिरिक्त श्रमिक वर्ग को सामाजिक बीमा का लाभ भी प्राप्त होने चाहिए। बेरोजगारी बीमारी वृद्धावस्था आदि ऐसी स्थितियाँ है जिनम श्रमिको का अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पडता है। इस प्रकार की समस्त समस्याओ तथा कठिनाइयो से श्रमिक स्वतन्त्र होना चाहिए।

उद्योगपति को दूसरी ओर लाभ मे उचित भाग उसके जोखिम तथा कार्या-

नुसार मिलना चाहिए जिससे उद्योगों के प्रति उसका प्रलोभन एवं रुचि नष्ट न हो सके। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में साहसी का भाग कम अवश्य हो जायगा, फिर भी यह कमी इतनी अधिक न हो कि साहसी के प्रोत्साहन के लिए हानिकारक हो। आर्थिक नियोजन के सामाजिक उद्देश्यों में एक वर्गरहित समाज की स्थापना करना भी सम्मिलित है। उन वर्ग, जातियों तथा समुदाय जिन्हें समाज में उचित स्थान प्राप्त न हो, उन्हें समानता के स्तर पर लाना भी आवश्यक है। समाज के आर्थिक वर्ग अर्थात धनवान तथा निर्धन के वर्ग भेद को आर्थिक समानता द्वारा नष्ट किया जाता है। सामाजिक वर्गों की समाप्ति हेतु पिछड़ी जातियों तथा समुदायों को शिक्षा में सुविधाएं देकर, नागरिक सेवाओं में प्राथमिकता प्रदान कर तथा सामाजिक, रूढ़िवादी तथा हीन नियमों को विधान द्वारा वर्जित कर अन्य सम्मान प्राप्त जातियों तथा समुदायों के समान स्तर पर लाना भी नियोजन का उद्देश्य होता है।

अल्प विकसित राष्ट्रों की एक गम्भीर सामाजिक समस्या बढ़ती हुई जनसंख्या होती है। नियोजित अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत इस समस्या का निवारण करने का लक्ष्य रखा जाता है और समाज में जन्म-दर को कम करने के लिए परिवार-नियोजन आदि कार्यवाहियों का संचालन किया जाता है। समाज में छोटे परिवार के प्रति आकर्षण उत्पन्न किया जाता है। बढ़ती हुई जनसंख्या वाले अल्प विकसित राष्ट्रों में जनसंख्या की मूल समस्या होती है जो विकास की गति में बाधक होती है।

(३) राजनीतिक उद्देश्य—वर्तमान युग में आर्थिक नियोजन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य राष्ट्र की राजनीतिक सत्ता की रक्षा, शक्ति तथा सम्मान में वृद्धि करना भी है। रूस में नियोजन के मुख्य उद्देश्य आर्थिक तथा सामाजिक समानता होते हुए भी राष्ट्र-सुरक्षा को विशेष महत्व दिया जाता है। राष्ट्र में राजनीतिक स्थिरता की उपस्थिति में ही अर्थ व्यवस्था में स्थिरता सम्भव है तथा निश्चित नीतियों तथा कार्यक्रम को सुगमता एवं सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया जा सकता है। अतएव राष्ट्रीय साधनों, उद्योगों तथा कृषि का संगठन इस प्रकार किया जाता है कि सम्भावी युद्ध के भय से देश की रक्षा की जा सके।

आधुनिक युग में शीत-युद्ध का बोलबाला है, जिसकी पृष्ठभूमि में साम्राज्यवाद का स्थान आर्थिक प्रभुत्व ने ले लिया है। संसार के सभी बड़े राष्ट्र अन्य बाजारों तथा कच्चे माल की पूर्ति करने वाले क्षेत्रों पर प्रभुत्व प्राप्त करना चाहते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु आर्थिक विकास के साथ-साथ राजनीतिक उन्नति तथा सम्मान प्राप्त करना भी आवश्यक है अन्यथा आर्थिक उन्नत क्षेत्र सीमित एवं प्रतिबन्धित रहेगा।

नियोजन के राजनीतिक उद्देश्यों को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—

(अ) रक्षात्मक उद्देश्य—आधुनिक युग में प्रत्येक राष्ट्र अपनी सुरक्षा को सर्वाधिक महत्व देता है। देश की रक्षा की समस्या विकसित एवं अल्प विकसित दोनों

हो प्रकार के राष्ट्रो म विद्यमान है। विकसित राष्ट्रा म से अधिकतर ससार के दो शक्तिशाली ब्लाको (Blocks)—अमेरिकी ब्लाक तथा रूसी ब्लाक—म से किसी एक के सदस्य हैं। इन दोनो ब्लाको को सदव एक दूसरे क आक्रमण का भय बना रहता है और इसी कारण इन ब्लाका म विकसित राष्ट्र अपनी सन्य शक्ति को बढाने म प्रयत्नशील रहता है जिससे वह दूसरे ब्लाक के देशा से अधिक शक्तिशाली बना रहे और दूसरे ब्लाक के देश उस पर आक्रमण करने का साहस न कर सकें।

दूसरा ओर अल्प विकसित राष्ट्रा को अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रा को सुदृढ करने के लिए रक्षात्मक तयारियाँ करना आवश्यक होता है। प्राय यह देखा जाता है कि अल्प विकसित राष्ट्र अपने पडोसी राष्ट्रा से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने म प्राय असमर्थ रहते हैं और उन्हे अपने देश की सीमाओ एव व्यापार की सुरक्षा क लिए रक्षात्मक तयारियाँ रखना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त अल्प विकसित राष्ट्रा को हिंसात्मक साम्यवादी गतिविधियों पर नियन्त्रण रखने के लिए रक्षात्मक तयारियाँ करना पडती हैं। यही कारण है कि अल्प विकसित राष्ट्रो की नियोजित आर्थिक प्रगति की प्रक्रिया का सचालन इस प्रकार किया जाता है कि राष्ट्र का सुरक्षात्मक शक्ति म निरन्तर वृद्धि होती रहे।

रूस की प्रथम पचवर्षीय योजना का प्रमुख उद्देश्य देश क उत्पादक साधना को औद्योगीकरण द्वारा बढाकर विकसित पूजीवादी अर्थव्यवस्थाओं की तुलना म देश के आर्थिक एव तकनीकी स्तर को ऊचा करना था जिससे समाजवादी प्रणाली की पूँजीवादी प्रणाली पर विजय हो सके। इन योजना म रूस का शीघ्र औद्योगीकरण करके समाजवाद को पूजीवाद से सुरक्षा प्रदान करने का आयोजन किया गया था। रूस के सन् १६३६ के सविधान म भी यह आयोजन किया गया कि देश क आर्थिक जीवन का राजकीय योजनाओं द्वारा निर्देशन करके जनसाधारण क स्वास्थ्य भौतिक सम्पन्नता एव सास्कृतिक स्तर को बढाया जाय और रूस की स्वतन्त्रता एव सुरक्षा की शक्ति का सुदृढ बनाया जाय। रूस की तीसरी एव चौथी योजनाओं मे क्रमश युद्ध की तयारी एव युद्धोपरान्त पुनर्निर्माण का आयोजन किया गया था। चौथी योजना म रक्षा सेना को आधुनिक अस्त्र शस्त्रो से लस करने की व्यवस्था की गयी।

रूस के समान हो नाजी जमनी एव इटली म भी नियोजित अर्थव्यवस्था द्वारा देश को सनिक दृष्टिकोण से शक्तिशाली बनाया गया था। इसी प्रकार साम्यवादी चीन मे भी सविधान म नियोजित अर्थव्यवस्था के अन्तगत उत्पादक शक्तिया को बढाकर लोगों के भौतिक एव सास्कृतिक जीवन का सम्पन्न बनाने तथा लोगा की स्वतन्त्रता एव सुरक्षा का सुदृढ बनाने का आयोजन किया गया।

भारतीय योजनाओ म सन् १६६२ के चीनी आक्रमण के पूर्व देश की सुरक्षा शक्ति को बढाने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया था परन्तु चीनी आक्रमण के फलस्वरूप तृतीय योजना क कार्यक्रमो म मूलभूत परिवतन किए गये और सुरक्षा उत्पादन

(Defence Production) को केन्द्रीय सरकार के बजट में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाने लगा है। संक्षेप में, यह कहा सकता है कि देश की सुरक्षा सभी राष्ट्रों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है और इसका सुव्यवस्थित आयोजन नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत किया जाता है।

(आ) आक्रामक उद्देश्य—नियोजित अर्थ-व्यवस्था का उपयोग आक्रमणात्मक उद्देश्यों के लिए भी किया जाता है। इसके ज्वलन्त उदाहरण नाजी जर्मनी तथा इटली है। इन देशों के तानाशाहों (Dictators) ने नियोजित अर्थ-व्यवस्था द्वारा देश की सैन्य शक्ति को इतना बढ़ाया कि वे अपने क्षेत्र को बढ़ा सकें। हिटलर की इच्छा थी कि जर्मन जाति की जनसंख्या में वृद्धि हो और इस बढ़ती हुई जनसंख्या को नए स्थापित उपनिवेशों में बसा दिया जाय। हिटलर जर्मन जाति को Master Race कहता था जिसे दूसरी जातियों पर प्रभुत्व रखने का अधिकार एवं योग्यता है। साम्यवादी चीन द्वारा भी *अपनी सैन्य शक्ति को तीव्र गति से बढ़ाया गया है जिससे वह पड़ोसी-राष्ट्रों के* कुछ भागों को हड़प कर बढ़ती हुई चीनी जनसंख्या को बसा सके।

सुरक्षात्मक तैयारियों में आक्रमणात्मक तैयारियाँ स्वभावतः निहित हो रहती है क्योंकि दोनों की क्रियाओं में एक प्रकार के प्रसाधनों का उपयोग होता है परन्तु शान्तिप्रिय राष्ट्र नियोजित अर्थ-व्यवस्था के स्पष्ट लक्ष्यों में आक्रमणात्मक उद्देश्यों को सम्मिलित नहीं करते हैं और इनकी आक्रमणात्मक कार्यवाहियाँ सुरक्षात्मक *कार्यवाहियों के अधीन रहती है।*

(इ) आन्तरिक राजनीति में प्रभुत्व—नियोजित अर्थ-व्यवस्था का उपयोग केवल अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से ही सम्बद्ध नहीं होता है बल्कि आन्तरिक राजनीति में इसके द्वारा सत्तारूढ़ दल अथवा अनन्य शासक (Dictator) अपने प्रभुत्व को बढ़ाने का प्रयत्न करता है। यह बात साम्यवादी एवं तानाशाही राष्ट्रों में अधिक सत्य उतरती है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था द्वारा राज्य के हाथ में राजनीतिक सत्ताओं के साथ आर्थिक सत्ताएँ भी पहुँच जाती हैं तो ऐसे वर्गों, समुदायों एवं जातियों की आर्थिक शक्ति को क्षीण कर दिया जाता है जो सरकार की नीतियों का विरोध करने की सामर्थ्य रखती है। यही कारण है *कि साम्यवादी राष्ट्रों में विरोधी राजनीतिक* दल अनुपस्थित रहते हैं।

सामाजिक नियन्त्रण के पर्दे में आर्थिक सत्ताओं का केन्द्रीयकरण जब राज्य के सर्वोच्च अधिकारी अथवा राजनीतिक नेताओं के हाथ में होने लगता है तो कुछ ही लोगों के व्यक्तित्व का प्रभुत्व समाज पर छा जाता है। रूस में स्टैलिन के व्यक्तित्व के उभरने का प्रमुख कारण सामाजिक नियन्त्रण था। सामाजिक नियन्त्रण एवं हित के उद्देश्य को दिखाकर स्टैलिन अपनी सत्ता एवं व्यक्तित्व को दिन प्रतिदिन बढ़ाता गया था। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि नियोजन के अन्तर्गत व्यक्तियों का समाज पर इतना अधिक प्रभुत्व स्थापित हो ही जाय। प्रजातान्त्रिक राष्ट्रों में प्रजा-

तान्त्रिक या सत्ताएँ, व्यवस्थाएं एवं संस्थाएं इस प्रकार के प्रभुत्व पर अंकुश लगाए रहती हैं। फिर भी, यह तो स्वीकार करना ही पड़ता है कि नियोजन एक ऐसा तटस्थ औजार (Neutral Instrument) है जिसका उपयोग व्यक्तिगत प्रभुत्व के विस्तार के लिए भी किया जा सकता है।

(४) *अन्य उद्देश्य—नियोजन द्वारा परिस्थितियों तथा रीति रिवाजों में इस* प्रकार परिवर्तन करना कि जिससे भविष्यत् पीढ़ी का स्वास्थ्य मस्तिष्क तथा जीवन-स्तर राष्ट्र की विकसित अवस्थाओं के अनुकूल बन सके आवश्यक होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु गृह निर्माण, शिक्षा प्रसार, रूढ़िवादी सामाजिक प्रथाओं में परिवर्तन, जनसाधारण में नूतन जीवन के प्रति सहज आकर्षण जाग्रत करना आदि के लिए उचित आयोजन होना चाहिए। नियोजन अधिकारी को उद्योगों के केन्द्रीयकरण पर नियन्त्रण होना चाहिए जिससे घने बसे क्षेत्रों स्वास्थ्यवर्द्धक स्थानों एवं प्राकृतिक दृश्य के स्थानों के वातावरण को कायम रखा जा सके। स्वास्थ्य के प्रति हानिप्रद गृहों तथा गन्दे अहातों (Slums) को हटाकर उनके स्थान पर स्वास्थ्यकर स्वच्छ एवं उचित भवन निर्माण व्यवस्था होनी चाहिए। नियोजन अधिकारी को समस्त शिशु आवश्यकताओं स्वास्थ्य शिक्षा भोजन वस्त्र तथा मनोरंजन का आयोजन करना चाहिए। कला जीवन का प्रमुख अंग होने के कारण कला के क्षेत्र में भी पर्याप्त विकास अत्यावश्यक है। संगीत चित्रकला तथा चलचित्र उद्योग आदि सभी में राष्ट्र की विकसित अवस्था में अनुकूल उत्थान होना अपेक्षित है।

इस प्रकार नियोजन द्वारा अधिकतम जनसंख्या को अधिकतम सन्तोष सुख एवं सुविधा तथा समृद्धि प्रदान करने के लिए जन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को व्यवस्थित रूप में तथा विवेकपूर्ण विधियों द्वारा संगठित कर विकासो मुख प्रगति-पथ पर निर्देशित करना आवश्यक है।

भारत में नियोजन के उद्देश्य

भारत सरकार के सन् १९५० के प्रस्ताव के अनुसार भारत में नियोजन का उद्देश्य देश के साधनों का कुशल शोषण एवं उपयोग करके उत्पादन में वृद्धि करके तथा समाज की सेवा करने हेतु सभी लोगों को रोजगार के अवसर प्रदान करके जन साधारण के जीवन स्तर में शीघ्र वृद्धि करना है। प्रथम योजना का निर्माण इन मूलाधार उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया गया।

जैसा हम जानते हैं कि प्रथम पंचवर्षीय योजना का निर्माण अर्थ व्यवस्था के क्षतिपूर्ण क्षेत्रों के पुनर्निर्माण तथा जनसाधारण को आधारभूत अनिवार्यताएं प्रदान करने हेतु हुआ था। इस योजना के मुख्य उद्देश्य अधिक उत्पादन तथा विषमताओं में कमी करने थे। विषमताओं की कमी को हम आर्थिक एवं सामाजिक दोनों ही प्रकार का उद्देश्य मानना चाहिए। विषमताओं को कमी हेतु प्रथम योजना में जो कार्यवाही की गयी, उनमें से मुख्य हैं—कम्पनी विधान में सुधार करके औद्योगिक इकाइयों पर

पूँजीपतियों के अधिकार एवं नियन्त्रण को सीमित करना, इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण करके जन-साधारण की बचत का जन-कल्याण के लिए उपयोग करना, आधारभूत उद्योगों का सरकारी क्षेत्रों के अन्तर्गत चलाना, सरकारी क्षेत्र का विकास, सामुदायिक विकास-योजनाओं तथा राष्ट्रीय विस्तार-सेवा का संचालन, जायदाद-कर, पूँजीगत लाभों पर कर तथा अन्य कर-सम्बन्धी सुधार, समाज-कल्याण के कार्यक्रम तथा रोजगार के अवसरों में वृद्धि आदि।

दिसम्बर सन् १९५४ में लोक-सभा द्वारा प्रस्तावित किया गया कि भारत सरकार की आर्थिक नीति का उद्देश्य देश में समाजवादी प्रकार के समाज की स्थापना करना होगा और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए देश की सामान्य आर्थिक क्रियाओं और विशेषकर औद्योगिक विकास का अधिकतम गतिमान करना आवश्यक होगा। द्वितीय योजना का निर्माण इसी प्रस्ताव के आधार पर किया गया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय आय में २५% वृद्धि, तीव्र औद्योगीकरण, रोजगार के अवसरों में वृद्धि तथा विषमताओं में कमी थी, परन्तु इन सभी आर्थिक उद्देश्यों का अन्तिम लक्ष्य देश को कल्याणकारी राज्य (Welfare State) में परिवर्तित करना था जिससे जनसाधारण को आर्थिक एवं सामाजिक न्याय का आश्वासन मिल सके। इस योजना का अन्तिम लक्ष्य देश में ऐसा वातावरण उत्पन्न करना था जो समाजवादी समाज की स्थापना के अनुकूल हो। योजना में समाज-कल्याण हेतु शिक्षा-प्रसार, सामुदायिक विकास योजनाओं एवं राष्ट्रीय विस्तार-सेवा के विकास, चिकित्सा की सुविधाओं में वृद्धि आदि का आयोजन किया गया था जिससे समस्त नागरिकों के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में पर्याप्त सुधार हो सके। योजना में रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने को विशेष महत्त्व दिया गया। यद्यपि योजना में पूर्ण रोजगार की व्यवस्था नहीं की गयी फिर भी रोजगार में वृद्धि करना योजना का एक प्रमुख उद्देश्य माना गया।

द्वितीय योजना समाजवादी समाज की स्थापना की ओर प्रथम चरण थी। इस योजना में इसी कारण से जनसाधारण के जीवन-स्तर में सुधार करने के उद्देश्य के साथ अवसरों की उपलब्धि में सभी लोगों के लिए वृद्धि, दलित-वर्गों में व्यवसायों के प्रवलन तथा समाज के समस्त समुदायों में देश की विकास क्रियाओं में भागीदारी की भावना जाग्रत करने के उद्देश्य भी सम्मिलित किए गये। इस योजना में एक ओर आर्थिक प्रगति का आयोजन किया गया और दूसरी ओर, इस आर्थिक प्रगति को प्रजातान्त्रिक मान्यताओं के अन्तर्गत संगठित करने का लक्ष्य रखा गया। इसके लिए द्वितीय योजना में संस्थानीय (Institutional) परिवर्तनों की व्यवस्था भी की गयी। इस योजना में इस सम्बन्ध में स्पष्ट किया गया कि 'अल्प विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं के सम्मुख केवल वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाओं से अधिक से अधिक अच्छे फल प्राप्त करने की ही आवश्यकता नहीं है बल्कि इन संस्थाओं को इस प्रकार सुधारना

एवं रूप परिवर्तन करना है कि यह अधिक अच्छे फल देने के साथ-साथ गहन एवं वृहद सामाजिक मान्यताओं की उपलब्धि में प्रभावशाली योगदान दे सकें। इस प्रकार द्वितीय योजना केवल एक विकास कार्यक्रम ही नहीं थी बल्कि इसके द्वारा सामाजिक क्रान्ति का प्रारम्भ भी किया जाना था।

तृतीय योजना में उन्हीं लक्ष्यों को बढ़ाया गया जो द्वितीय योजना में प्रारम्भ किये गये। इसके अन्तर्गत आर्थिक क्रियाओं को इस प्रकार संगठित किया जाना था कि उत्पादन की वृद्धि एवं प्रगति के साथ साथ समान वितरण के लक्ष्य का भी पूर्ति होता चले। जनसाधारण और विशेषकर कम आय प्राप्त समुदायों के जीवन स्तर में वृद्धि करने के लिए यह अनिवार्य समझा गया कि आर्थिक प्रगति की दर दीर्घ काल तक ऊंची बनी रहे। एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था को कुशलता विज्ञान एवं तान्त्रिकता के उपयोग की ओर प्रगतिशील तथा उस स्तर तक विकसित होने के योग्य होना चाहिए जहां समस्त जनसमूह का कल्याण उपलब्ध हो सके।[1] नियोजित विकास द्वारा अर्थ व्यवस्था का विस्तार होता है जिससे सरकारी एवं निजी दोनों ही क्षेत्रों को और अधिक अवसर उपलब्ध होते हैं। परन्तु निजी एवं सरकारी क्षेत्र को एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करना होता है। योजना में इस बात पर जोर दिया गया कि नियोजित विकास के अन्तर्गत जो अवसर निजी क्षेत्र को उपलब्ध होते हैं उनके फलस्वरूप आर्थिक सत्ताओं का केन्द्रीयकरण कुछ ही लोगों के हाथ में न हो जाय और समाज में आय एवं धन के वितरण की विषमताएं बढ़ती न रहें। राज्य का यह कर्तव्य है कि वह अपनी आर्थिक एवं अन्य नीतियों द्वारा समाज के निर्बल वर्गों के उत्थान में सहायक हो जिससे यह वर्ग अन्य वर्गों के समान हो सके। योजना में निजी क्षेत्र के अन्तर्गत सहकारी संस्थाओं को विशेष महत्व दिया गया है। सहकारी संस्थाओं की प्रजातान्त्रिक विधियों द्वारा सामाजिक स्थिरता एवं आर्थिक विकास सम्भव होता है। भूमि सुधार, कृषि भूमि की अधिकतम मात्रा निर्धारित करना सिंचाई सुविधाएं पिछड़ी जातियों के लिए कल्याण कार्यक्रम ६ से ११ वर्ष के बच्चों को अनिवार्य शिक्षा प्रारम्भिक स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना पीने के जल का ग्रामीण क्षेत्रों में प्रबन्ध रोगों का उन्मूलन स्त्री एवं शिशु-कल्याण हेतु समाज-सेवा की संस्थाओं की स्थापना सामुदायिक विकास योजनाओं का विस्तार आदि समस्त ऐसी कार्यवाहियाँ हैं जिनके द्वारा आर्थिक एवं सामाजिक विषमता कम करने में सहायता मिलेगी। योजना में समस्त क्षेत्रों के सन्तुलित विकास का भी आयोजन है।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में आर्थिक क्रियाओं को उस सीमा तक गतिमान करने का प्रस्ताव है कि अर्थ-व्यवस्था में सुदृढ़ता (stability) बनायी रखी जा सके और आत्म निर्भरता के लक्ष्य की ओर बढ़ते रहें। योजना में गहन सिंचित कृषि

1 Third Five Year Plan

(Intensive Irrigated Agriculture) में वृद्धि करने तथा आधुनिक आधारभूत उद्योगों के विकास का आयोजन किया गया है। औद्योगिक विकास द्वारा एक ओर भविष्य की तान्त्रिक प्रगति का आयोजन है और दूसरी ओर औद्योगिक क्रियाओं और व्यवसायों के विकेन्द्रीयकरण की व्यवस्था की गयी है। योजना में क्षेत्रीय एवं स्थानीय नियोजन (Regional and Local Planning) द्वारा छोटे एवं निबल उत्पादकों के बड़े समूह को सहायता प्रदान करने तथा तत्कालीन एवं भविष्यत रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने का प्रस्ताव किया गया है।

चौथी योजना में अर्थ-व्यवस्था की सुदृढ़ता को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बफर स्टाक द्वारा खाद्यान्नों एवं अन्य आवश्यक सामग्रियों के मूल्यों को स्थिर रखने का आयोजन किया गया है। आर्थिक सत्ताओं के केन्द्रीयकरण को कम करने के लिए एकाधिकार अधिनियम एवं राज-कोषीय नीति के उपयोग का प्रस्ताव है। निबल उत्पादक इकाइयों को सुदृढ़ बनाने के लिए १४ बड़े अधिकोषों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक एवं आर्थिक प्रजातन्त्र स्थापित करने हेतु स्थानीय नियोजन में पंचायत-राज संस्थाओं तथा सहकारी संस्थाओं का उपयोग किया जाता है। योजना में सरकारी क्षेत्र व व्यवसायों के प्रबन्ध को पुनर्गठित करने का प्रस्ताव है जिससे सरकारी क्षेत्र का कुशलता से विस्तार हो सके।

भारत की चार योजनाओं के उद्देश्यों के अवलोकन से यह ज्ञात हो जाता है कि भारत में नियोजन का उद्देश्य केवल राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करना ही नहीं है वरन इस बात की व्यवस्था करना भी है कि विकास का लाभ समता के साथ वितरित हो। आय एवं जीवन-स्तर की विषमताओं में विस्तार न होकर इनमें कमी हो तथा नियोजित कार्यक्रमों एवं नीतियों के संचालन से सामाजिक तनाव उत्पन्न न हो। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए नियोजन-कार्यक्रमों के संचालन में यह देखना आवश्यक है कि समाज के निबलतम-वर्ग को विकास का लाभ सर्वप्रथम प्राप्त होता है। इसके लिए सम्बन्धित नीतियों का प्रभावशाली संचालन तथा राजकोषीय एवं अन्य नीतियों द्वारा धन के केन्द्रीयकरण को रोकने विलासपूर्ण उपभोग पर प्रतिबन्ध लगाने तथा बचत में वृद्धि करने की आवश्यकता होगी। इस प्रकार भारत में नियोजित विकास का उद्देश्य विकास के लाभों का समान वितरण अधिकतम जनसंख्या को सम्पूर्ण जीवन की व्यवस्था तथा एक सुदृढ़ एवं समन्वित प्रजातान्त्रिक राष्ट्र की स्थापना करना है।

भारतीय योजनाओं में राजनीतिक उद्देश्य देश की सुरक्षा करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु देश में आधारभूत उद्योगों—लोहा एवं इस्पात रासायनिक एवं इंजी-नियरिंग उद्योगों की स्थापना, विकास एवं विस्तार करने का आयोजन किया गया है। भारतीय नियोजन अर्थ-व्यवस्था की विशेषता यह है कि सत्तारूढ़ दल अपने निजी

राजनीतिक हितों की पूर्ति योजनाओं द्वारा नहीं करता है। भारतीय नियोजन के अन्तगत देश म राजनीतिक स्वतन्त्रता पर कोई अकुश नही लगाये गये हैं। इसके अतिरिक्त देश म आर्थिक साधनो का भी उपयोग राजनीतिक हितो की पूर्ति हेतु नही किया जाता है। प्रजातान्त्रिक राज्य म किसी दल के निरन्तर सत्तारूढ रहने क लिए जनसाधारण म उस दल के प्रति विश्वास एव सद्भावना उत्पन्न करना आवश्यक होता है। यह विश्वास एव सद्भावना जनसाधारण को आधारभूत अनिवार्यताएँ उपलब्ध कराके किया जाता है। सत्तारूढ दल अपनी सत्ता को सुरक्षित रखने हेतु अधिकतम जन समाज के अधिकतम सन्तोष का योजनाओ द्वारा आयोजन कर सकता है। भारत की योजनाओ द्वारा इस उद्देश्य की पूर्ति की जा रही है।

अध्याय ३

राजकीय नियन्त्रण एवं नियोजन
(State Control & Planning)

[राजकीय हस्तक्षेप, राजकीय नियन्त्रण की आवश्यकता, नियन्त्रण की सीमा, नियन्त्रण एवं त्याग, नियन्त्रण के प्रकार, उत्पादन के चयन पर नियन्त्रण, विनियोजन पर नियन्त्रण, विनिमय नियन्त्रण, मूल्य, मजदूरी एवं ब्याज पर नियन्त्रण, व्यवसाय एवं पेशे के चयन पर नियन्त्रण, उपभोग पर नियन्त्रण ।]

सरकारी हस्तक्षेप का तात्पर्य अर्थ-व्यवस्था के किसी एक अथवा एक से अधिक क्षेत्रों में जानबूझ कर हस्तक्षेप करने से है। स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था के कुछ क्षेत्रों को सरकारी नियमन के अधीन आवश्यकतानुसार किया जा सकता है। उदाहरणार्थ संरक्षण कर (Protection Duties) मूल्य नियन्त्रण एवं मात्रात्मक कोटा निर्धारित करना, किसी विशेष वस्तु के व्यापार के लिए आज्ञा-पत्र जारी करना आदि। इस प्रकार के सरकारी हस्तक्षेप के दो मुख्य लक्षण होते हैं—प्रथम अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में स्वतन्त्रता बनी रहती है और विपणि-व्यवस्था सरकारी हस्तक्षेप से उत्पन्न हुए सुधारों से प्रभावित होती है। द्वितीय लक्षण यह है कि देश की विभिन्न स्वतन्त्र आर्थिक इकाइयों की कार्यवाहियों में समन्वय स्थापित नहीं होता है। इस व्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप द्वारा राष्ट्र के आर्थिक जीवन पर सरकारी नियन्त्रण नहीं होता है। दूसरी ओर, आर्थिक नियोजन में राज्य जानबूझ कर समन्वित प्रयास करता है कि समस्त अर्थ-व्यवस्था का सचालन निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जा सके। राजकीय हस्तक्षेप नियोजन का अभिन्न अंग है। आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर समन्वित राजकीय हस्तक्षेप किया जाता है इसलिए यह कहना उचित है कि हर प्रकार के नियोजन में सरकारी हस्तक्षेप निहित होता है परन्तु अर्थ व्यवस्था के प्रत्येक सरकारी हस्तक्षेप को आर्थिक नियोजन नहीं कहा जा सकता है। जब सरकारी हस्तक्षेप समन्वित रूप से किया जाय तथा इसके द्वारा अर्थ-व्यवस्था के समस्त क्षेत्र प्रभावित होते हों तो उसे आर्थिक नियोजन कह सकते हैं। इस प्रकार अर्थ-व्यवस्था के सचालन की तीन विधियाँ हो जाती हैं—प्रथम स्वतन्त्र व्यापार (Laissez Faire) द्वितीय, स्वतन्त्र बाजार-व्यवस्था में यदा कदा सरकारी हस्तक्षेप और तृतीय नियोजित अर्थ-व्यवस्था। जब सरकारी हस्तक्षेप का इतना विस्तार किया जाय कि वह समस्त अर्थ व्यवस्था को प्रभावित करने लगे और

इसके द्वारा पूर्व निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति निश्चित काल मे हो सके, तो इस सरकारी हस्तक्षेप को आर्थिक नियोजन कह सकते हैं। प्रारम्भ मे ससार के समस्त राष्ट्र स्वतन्त्र बाजार व्यवस्था के अनुयायी थे। प्रथम एव द्वितीय महायुद्ध मे सरकारी हस्तक्षेप अर्थ व्यवस्था के कुछ क्षेत्रों पर आच्छादित हुआ और आधुनिक काल मे यह सरकारी हस्तक्षेप आर्थिक नियोजन का स्वरूप ग्रहण करता जा रहा है।

सरकारी नियन्त्रण की आवश्यकता

आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर नियन्त्रण सरकार द्वारा किया जाना अनिवार्य है, यद्यपि इस नियन्त्रण की मात्रा नियोजन के प्रकार कार्य क्षेत्र एव उद्देश्यो पर निर्भर रहती है। किसी भी राजनीतिक विचारधारा के अन्तर्गत नियोजित अर्थ व्यवस्था का सफल सचालन सरकारी नियन्त्रण की अनुपस्थिति मे सम्भव नही हो सकता है। नियोजित अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत देश मे उपलब्ध भौतिक एव मानवीय साधनों को योजना अधिकारी द्वारा निर्धारित प्राथमिकताओं के अनुसार उपयोग करना होता है, अर्थात् योजना अधिकारी को ऐसे पथ प्रदर्शक एव नियन्त्रणकर्त्ता के अधिकार दिये जाते है जिसके द्वारा देश के आर्थिक एव सामाजिक विकास के लिए समस्त आवश्यक कार्यवाहियाँ की जा सकती हैं। योजना अधिकारी अपने विचारो, मान्यताओं एव जनसमुदाय के विचार विमर्श के बाद यह निश्चय करता है कि देश मे उपलब्ध साधनों का पूर्व निश्चित उद्देश्यो की पूर्ति हेतु किस प्रकार उपयोग किया जाय। इस प्रकार साधनो के उपयोग के सम्बन्ध मे प्रत्येक व्यक्ति एव सस्था को निजी रूप से निश्चय करने के अधिकार से वचित कर दिया जाता है और अब ये निश्चय योजना अधिकारी द्वारा व्यापक दृष्टिकोण से किये जाते हैं।

नियन्त्रण की सीमा—सरकारी नियन्त्रण की सीमाए योजना के प्रकार एव देश की राजनीतिक विचारधाराओ पर निर्भर होता हैं। यदि समस्त देश के प्रत्येक क्षेत्र को आच्छादित करने वाली योजना का निर्माण किया जाय तो सरकारी नियन्त्रण के स्वरूप को व्यापक रखने की आवश्यकता होगी। उपभोग उत्पादन विदेशी एव आन्तरिक व्यापार रोजगार का चयन आदि समस्त आर्थिक क्रियाओं पर नियन्त्रण रखने की आवश्यकता होती है। नियन्त्रण करने की तान्त्रिकताए देश की राजनीतिक विचारधाराओ पर निर्भर रहती है। प्रजातन्त्र के अन्तर्गत राज्य नियन्त्रण करने हेतु समस्त आर्थिक क्रियाओ को अपने हाथ मे नही लेता बल्कि यह नियन्त्रण बाजार-व्यवस्था के अन्तर्गत ही किया जाता है। सरकार ऐसी परिस्थिति मे बाजार मे एक महत्वपूर्ण क्रेता विक्रेता उपभोक्ता अथवा उत्पादक के रूप मे प्रवेश करती है और अपनी बाजार की क्रियाओं द्वारा नियन्त्रण का सचालन करती है। इसके अतिरिक्त कर एव तट कर, मौद्रिक एव अन्य आर्थिक नीतियो द्वारा अर्थ व्यवस्था पर नियन्त्रण किया जाता है। इस प्रकार प्रजातान्त्रिक ढाँचे मे सरकार द्वारा प्रत्यक्ष नियन्त्रण का

व्यापक उपयोग नहीं किया जाता है। कुछ क्षेत्रों में जिनको राज्य विकास का आधार मानता हो, प्रत्यक्ष नियन्त्रण का भी उपयोग किया जाता है। दूसरी ओर, साम्यवाद एवं अन्य शासन प्रणाली के अन्तर्गत सरकार समस्त आर्थिक क्रियाओं का स्वयं सचालन करती है और बाजार व्यवस्था राज्य द्वारा पूर्णत नियन्त्रित होती है।

नियन्त्रण एवं त्याग—आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत जनसमुदाय को किसी न किसी रूप में त्याग करने की आवश्यकता होती है। यह त्याग कितना और किसके द्वारा किया जाय यह निश्चय करने का अधिकार योजना अधिकारी को होता है। उदाहरणार्थ देश के विभिन्न आय के वर्गों को कितना त्याग करना चाहिए, यह योजना के अर्थ साधनों की आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित किया जाता है और त्याग कराने के लिए कर एवं मौद्रिक नीतियों का उपयोग किया जाता है। वर्तमान उपभोग को कम करके ही विकास के लिए साधनों को जुटाया जा सकता है। निर्धन देशों में जनसमुदाय में उपभोग की इच्छा तीव्र होती है और वह अतिरिक्त आय के अधिक से अधिक भाग का उपभोग पर व्यय करना चाहता है, परन्तु योजना-अधिकारी विकास की गति को तीव्र करने के लिए साधनों के विनियोजन को महत्त्व देता है और उपभोग पर नियन्त्रण रखने की आवश्यकता होती है। यह नियन्त्रण मूल्य नियन्त्रण, वितरण पर नियन्त्रण, उपभोग-सामग्री के क्षेत्रीय आवागमन पर नियन्त्रण आदि द्वारा किया जाता है। देश के उत्पादक, स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था में उत्पादन करने के निश्चय उपभोक्ता की इच्छाओं पर निर्भर रखते हैं परन्तु नियोजित अर्थ व्यवस्था में एक ओर, उपभोग पर नियन्त्रण करके उपभोक्ताओं को साधनों की बचत करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है और दूसरी ओर, उत्पादकों को उपलब्ध साधनों को निर्धारित उद्योगों पर विनियोजित करने के लिए प्रोत्साहित अथवा विवश किया जाता है। उत्पादन पर नियन्त्रण करने के लिए नवीन उद्योगों की स्थापना एवं वर्तमान उद्योगों के विस्तार के लिए योजना अधिकारी की अनुमति लेना, सरकारी क्षेत्र में उद्योगों की स्थापना, न्यून पूर्ति वाले कच्चे माल का वांछनीय उद्योगों को ही वितरित करना, विदेशों से कच्चे माल एवं मशीनों के आयात पर नियन्त्रण करना आदि विधियों का उपयोग किया जाता है। उपभोग एवं उत्पादन पर नियन्त्रण को प्रभावशाली बनाने हेतु आन्तरिक एवं विदेशी व्यापार पर भी प्रतिबन्धों, तट-कर एवं संरक्षण-नीति आदि द्वारा नियन्त्रण किया जाता है। इस प्रकार नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर नियन्त्रण करने के दो प्रमुख उद्देश्य हैं—प्रथम, योजना के साधन जुटाने के लिए जनसमुदाय के वांछनीय वर्गों से त्याग कराना तथा द्वितीय उपलब्ध साधनों का पूर्व निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उपयोग करना। यदि किसी देश के जनसमुदाय में इतनी अधिक जागरूकता उपस्थित हो कि वह अपनी इच्छा से ही त्याग करने को तैयार हो और स्वतन्त्र साधनों का उपयोग योजना की आवश्यकताओं के अनुसार किया जा सके, तो सरकार को न्यूनतम नियन्त्रण द्वारा

नियोजित अथ-व्यवस्था को सफलतापूवक सचालित करना सम्भव होगा परन्तु जाग रूकता का इस सीमा तक उपस्थित रहना किसी भी राष्ट्र में सम्भव नही है। इसी कारण नियोजित अथ व्यवस्था का सचालन नियन्त्रण की अनुपस्थिति म सम्भव नही होता।

नियन्त्रण की मात्रा एव कठोरता जितनी अधिक होगी उतना ही देश म सत्ताओ का केन्द्रीयकरण होता जायगा इसी कारण प्रजातन्त्र के अन्तगत नियन्त्रण के स्थान पर प्रोत्साहन का अधिक महत्व दिया जाता है। वास्तव म, प्रोत्साहन भी एक अप्रत्यक्ष नियन्त्रण का स्वरुप धीरे धीरे ग्रहण कर लेता है। उदाहरणाथ यदि किसी विशेष उद्योग की स्थापना एव विकास हेतु सरकार वित्तीय एव अन्य सहायता प्रदान करती है तो स्वभावत अन्य उद्योगो की स्थापना की ओर उद्योगपति कम आकर्षित होग।

नियन्त्रण की तान्त्रिकताओ सीमाओं एव कठोरताओ म हेर फेर करके विभिन्न प्रकार की नियोजित अथ-व्यवस्थाओ का सचालन किया जाता है। यह कदापि सम्भव नही हो सकता है कि नियन्त्रण को निमू ल करके नियोजित अथ व्यवस्था का सचालन किया जा सके। वास्तव मे प्रशासन का मुख्य अग नियन्त्रण है। आधुनिक युग म किसी भी देश का प्रशासन नियन्त्रण के बिना नही किया जा सकता और नियोजित अथ व्यवस्था भी प्रशासन अथवा राज्य द्वारा सचालित होने के कारण नियन्त्रण की शरण लती है। यह अवश्य कहा जा सकता है कि जसे जसे जनसमुदाय म जागरुकता का विस्तार होता जाय और जन सहयोग म वृद्धि होती जाय वसे वसे नियन्त्रण की सीमाओ एव कठोरता को कम किया जा सकता है परन्तु ऐसी परिस्थिति म भी समाज क अवाछनीय एव विनाशकारी तत्वो पर नियन्त्रण रखने की आवश्यकता होगी।

नियन्त्रण के प्रकार

नियन्त्रण एक ऐसी प्रक्रिया है कि जिसके द्वारा यक्ति की स्वतन्त्रता जो किसी भी विशेष काय से सम्बद्ध हो सकती है को प्रतिबन्धित किया जाता है। दूसरे शब्दो म यह भी कहा जा सकता है कि व्यक्ति की चयन करने की स्वतन्त्रता पर जब किसी प्रकार रोक लगाइ जाय तो उस रोक लगाने की क्रिया को नियन्त्रण कहा जा सकता है। समाज म व्यक्ति का स्थान उत्पादक एव उपभोक्ता दोनो का ही होता है। प्रत्येक व्यक्ति कुछ वस्तु अथवा सेवा का उत्पादन करता है और उसी व्यक्ति के द्वारा समाज द्वारा उत्पादित वस्तुओ का उपयोग किया जाता है। नियोजित व्यवस्था के अन्तर्गत उपयोग किये जाने वाले नियन्त्रणो द्वारा उत्पादक एव उपभोक्ता दोनो की चयन करने की स्वतन्त्रताओ को प्रतिबन्धित किया जाता है। उत्पादक को उत्पादन करने के सम्बन्ध म उत्पादन की वस्तु एव प्रकार चयन करने विनियोग करने विनिमय करने, मूल्य एव मजदूरी निर्धारित करने व्यवसाय अथवा पेशा का चयन

करने की स्वतन्त्रता हो सकती है। जब इनमें किसी अथवा कुछ अथवा सबको प्रतिबंधित कर दिया जाता है तो उसे 'उत्पादन पर नियन्त्रण' का नाम दिया जाता है। दूसरी ओर, उपभोक्ता को अपनी इच्छानुसार वस्तुओं का क्रय एवं उपभोग करने की स्वतन्त्रता, बचत एवं विनियोजन करने की स्वतन्त्रता, अपनी इच्छानुसार बाजार की परिस्थिति के अनुसार मूल्य, किराया, ब्याज आदि तय करने की स्वतन्त्रता होती है। जब इन स्वतन्त्रताओं को प्रतिबंधित किया जाता है तो उसे 'उपभोग पर नियन्त्रण' कहते हैं। विभिन्न क्षेत्रों पर नियन्त्रण का उपयोग किस प्रकार किया जाता है इसकी विवेचना निम्न प्रकार की जा सकती है

(अ) उत्पादन के चयन पर नियन्त्रण—उत्पादन के चयन का तात्पर्य यह निश्चय करने की स्वतन्त्रता से है कि क्या और किस प्रकार उत्पादन किया जाय, कौन-से उत्पादन के घटकों का उपयोग किया जाय, उत्पादन के लिए किन तान्त्रिकताओं का उपयोग किया जाय तथा किस लागत पर उत्पादन किया जाय। अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में प्रत्येक उत्पादक को उपर्युक्त सभी बातें चयन करने की स्वतन्त्रता होती है परन्तु उसे चयन करते समय विपणि की स्थिति का ध्यान में रखना होता है अर्थात निर्माण की स्थिति उसकी चयन करने की स्वतन्त्रता को नियन्त्रित करती है। दूसरी ओर, नियोजित अर्थ-व्यवस्था में यह चयन करने का अधिकार व्यक्ति का न होकर समाज को अर्थात नियोजन अधिकारी अथवा राज्य को होता है। कठोर समाजवादी व्यवस्था में यह नियन्त्रण सम्पूर्ण होता है और किसी भी क्षेत्र में किसी भी व्यक्तिगत उत्पादक को चयन करने का कोई अधिकार नहीं होता है। इस प्रकार की व्यवस्था में व्यक्तिगत उत्पादक का समाज में रहना ही असम्भव होता है क्योंकि समस्त आर्थिक क्रियाओं का संचालन राज्य द्वारा किया जाता है। जब यह नियन्त्रण चयनात्मक होता है और केवल कुछ आधारभूत क्षेत्रों तक ही सीमित रहता है तो इसे आंशिक नियन्त्रण कहते हैं और इसके द्वारा मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का प्रादुर्भाव होता है।

(आ) विनियोजन पर नियन्त्रण—दूसरे, उत्पादक को चयन करने की स्वतन्त्रता विनियोजन करने की होती है। अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में प्रत्येक उत्पादक को अपने साधनों को अपनी इच्छानुसार किसी भी उत्पादन-कार्य में जिसे वह लाभप्रद समझे विनियोजन करने की स्वतन्त्रता होती है। दूसरी ओर नियोजित अर्थ-व्यवस्था में राज्य स्वयं विनियोजक होता है और उत्पादन की क्रियाओं के निर्धारण के अनुसार वह अपना विनियोजन-कार्यक्रम निर्धारित करता है। कुछ क्षेत्रों में व्यक्तिगत उत्पादकों द्वारा विनियोजन पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है जबकि कुछ कम महत्वपूर्ण क्षेत्रों में राज्य एवं व्यक्तिगत उत्पादकों दोनों को ही विनियोजन करने का अधिकार प्राप्त होता है। इस प्रकार राज्य व्यक्तिगत विनियोजनों को भी निर्देशित (Direct) करता है। इसके लिए राजकोषीय एवं मौद्रिक नीतियों का उपयोग किया जाता है।

विनियोजन पर नियन्त्रण का प्रकार एवं प्रवृत्ति नियोजन के उद्देश्यों तथा

उद्देश्ति आर्थिक संरचना (Economic Pattern) पर निभर रहती है। पूणत समाज वादा नियोजित व्यवस्था म समस्त विकास व्यय सरकारी क्षेत्र म किया जाता है जबकि मिश्रित अथ-व्यवस्थाओ म निजी क्षेत्र का विनियोजन कुछ विशेष क्षेत्रो तक सीमित कर दिया जाता है और इसे राजकीय नीतिया द्वारा प्रोत्साहित किया जाता है। विकास नियोजन म प्राय सुरक्षा एव भारी उद्योगों क विनियोजन को नियन्त्रित रखा जाता है।

विनियोजन पर नियन्त्रण तब ही सफल हो सकता है जब उत्पादन विनिमय अधिकोषण साख एव उपभोग सभी पर नियन्त्रण लगा दिये जायें। जब विभिन्न क्षेत्रो म होने वाले विनियोजन को नियन्त्रित किया जाता है तो उत्पादन पर स्वत ही नियन्त्रण हो जाता है। विदेशी विनिमय पर नियन्त्रण द्वारा देश की पूजी को देश के बाहर जाने पर रोक लगाई जाती है। अधिकोष एव साख को नियन्त्रित करके अथ साधनो को वाछित क्षेत्रो म पर्याप्त मात्रा मे विनियोजित किया जा सकता है। उपभोग को नियन्त्रित करके समाज म बचत की मात्रा मे वृद्धि की जा सकती है और बचत को वाछित विनियोजन क्षेत्रो म ले जाया जा सकता है।

इस प्रकार विनियोजन नियन्त्रण आर्थिक नियोजन का मूलाधार होता है। विनियोजन द्वारा उत्पादन की क्रियाओ का निर्धारण होता है और विनियोजन नियन्त्रण-तन्त्र द्वारा ही नियोजन अधिकारी परियोजनाओ का सचालन सफलतापूर्वक कर सकता है।

(इ) विनिमय नियन्त्रण—विदेशी विनिमय नियन्त्रण आर्थिक नियोजन का एक अभिन्न अग है। विनिमय नियन्त्रण का परिमाण एव कठोरता नियोजित अथ व्यवस्था के प्रकार—कठोर समाजवादी अथवा प्रजातान्त्रिक देश का भुगतान शेष एव व्यापार-सन्तुलन देश के पास स्वण एव विदेशी प्रतिभूतिया के सचय तथा अथ व्यवस्था का विश्व की अथ व्यवस्था म प्राप्त स्थान पर निभर रहता है। विकास नियोजन म विदेशी सहायता का आधुनिक युग म अत्यधिक महत्व है। विकास कायक्रमों क सचालनाथ विकासोन्मुख राष्ट्रो को विदेशों से यन्त्र सामग्री एव तान्त्रिक ज्ञान बडी मात्रा म आयात करना आवश्यक हो गया है और इस आयात का शोधन विदेशी एव अधिक निर्यात द्वारा करने की आवश्यकता होती है। उपलब्ध विदेशी विनिमय वाछित आयात क लिए उपलब्ध रखने के लिए विदेशी विनिमय नियन्त्रण अनिवाय समझा जाता है। विनिमय नियन्त्रण के अन्तगत विदेशी विनिमय दरो विदेशी विनिमय क व्यवहारो स्वण सिक्के एव प्रतिभूतियो क निर्यात, तथा विदेशी सम्पत्तिया का अधिकार मे रखने को नियन्त्रित किया जाता है।

विदेशी विनिमय का नियन्त्रित करने के लिए विदेशी व्यापार को भी नियन्त्रित करना आवश्यक होता है। नियोजित अथ व्यवस्था म इसीलिए या तो विदेशी व्यापार पर राज्य का एकाधिकार होता है अथवा राज्य द्वारा आयात एव निर्यात निर्देशित रहते है।

(ई) मूल्यों, मजदूरी एव ब्याज पर नियन्त्रण—मूल्यों मजदूरी एव ब्याज का नियन्त्रण करने का उद्देश्य उपभोक्ताओं एव उत्पादकों का संरक्षण प्रदान करना तथा आर्थिक स्थिरता के साथ विकास करना होता है। यह नियन्त्रण विदेशी व्यापार को सतुलित रखने के लिए भी आवश्यक होता है। विकास विनियोजन के लिए जब हीनार्थ प्रबन्धन (Deficit Financing) का उपयोग होता है तो मुद्रा-स्फीति के दबाव को अधिक न बढ़ने देने के लिए मूल्य मजदूरी एव ब्याज नियन्त्रण का उपयोग करना आवश्यक होता है।

मूल्यों को वांछित सीमाओं में नियन्त्रित रखने के लिए वस्तु-सी विधियों का उपयोग करना होता है क्योंकि उपभोक्ताओं के हित के साथ उत्पादकों के प्रोत्साहन को भी ध्यान में रखना आवश्यक होता है। ऐसी प्रमापित वस्तुएँ जिनका उत्पादन सगठित उद्योगों द्वारा किया जाता है के मूल्य सरकार पारस्परिक समझौता द्वारा निर्धारित करती है। अनिवार्य वस्तुओं के सम्बन्ध में मूल्य नियन्त्रण हेतु राशनिंग एव दण्ड आदि का आयोजन करके नियन्त्रण में रखे जाते हैं। अनिवार्य वस्तुओं के मूल्यों को नियन्त्रित करने के लिए सरकार स्वय इन वस्तुओं का क्रय विक्रय करती है। उत्पादकों से निर्धारित मूल्यों पर यह वस्तुएँ खरीदने के लिए सरकार को विधान का सहारा लेना पड़ता है और अधिनियम द्वारा सरकार इन वस्तुओं का खरीदने का एकाधिकार अपने हाथ में ले लेती है।

मूल्यों पर नियन्त्रण करने के लिए प्राय तीन विधियों का उपयोग करते हैं—

(१) मूल्यों का अधिकतम एव न्यूनतम स्तर निर्धारित कर दिया जाता है। यह सीमाएँ निर्धारित करने के लिए औसत लागत की गणना करके उसमें कुछ प्रतिशत लाभ जोड दिया जाता है। जब मूल्य अधिकतम स्तर से ऊपर जाने लगते हैं तो सरकार अपने बफर स्टाक से इन वस्तुओं का विक्रय उचित मूल्य पर करने लगती है। दूसरी ओर, जब मूल्य न्यूनतम स्तर से नीचे गिरने लगते हैं तो उत्पादकों के प्रोत्साहन को बनाए रखने के लिए सरकार उचित मूल्य पर इन वस्तुओं का क्रय करने लगती है। इस विधि से उन्हीं वस्तुओं का मूल्य निर्धारित होता है जो प्रमापित होती हैं तथा जिनकी लागत में विशेष परिवर्तन नहीं होता। आवश्यक वस्तुओं एव सामग्रियों के सम्बन्ध में ही इस विधि का प्रयोग किया जाता है।

(२) मूल्य नियन्त्रण की दूसरी विधि के अन्तर्गत वस्तुओं का मूल्य लागत सामान्य लाभ के आधार पर निर्धारित किया जाता है। इस विधि के अन्तगत विभिन्न आराम एव आवश्यकता की वस्तुओं के मूल्य निर्धारित होते हैं। प्रत्येक वस्तु विभिन्न उत्पादकों की लागत का अध्ययन करके उसकी यथोचित लागत की गणना की जाती है। इस लागत में कुछ प्रतिशत लाभ जोड कर नियन्त्रित मूल्य ज्ञात किया जाता है।

(३) तीसरी विधि के अन्तगत मूल्यों को वर्तमान स्तर पर रोक दिया जाता है और उन्हें इससे आगे बढ़ने पर वैधानिक कार्यवाही की जाती है। इस विधि का

उपयोग प्राय युद्धकाल म किया जाता है। ब्रिटेन म दिसम्बर सन् १९३९ म मूल्य के वढन पर रोक लगायी गयी। भारत म भी कोरिया युद्ध के पूव २ दिसम्बर सन् १९५० को एक अध्यादेश जारी करके मूल्यो के बढ़ने पर रोक लगायी गयी थी। ब्रिटेन म इस विधि का उपयोग अभी हाल म किया गया जब ब्रिटेन के पौण्ड का मूल्य घटने लगा था और ब्रिटेन के स्वण सचय म कमी हो गयी था। मूल्यो को वत मान स्तर पर रोक देना (Freezing of Prices) एक अल्पकालीन क्रिया होती है क्योकि मूल्यो क वतमान स्तर को लम्बे समय तक बनाये रखना सम्भव नही होता है। इस विधि के द्वारा राज्य को मूल्यो को नियन्त्रित करने के लिए अन्य कायवाहियाँ करने का समय प्राप्त हो जाता है।

मूल्य नियन्त्रण नियोजित अथ व्यवस्था म जब ही सफल होता है जब अन्य नियन्त्रण प्रभावशाली ढग से सचालित किए जा रहे हो तथा अथ व्यवस्था के अधिकतर क्षेत्र सुसगठित हो। इसके अतिरिक्त मूल्य नियन्त्रण का कुशल सचालन करने के लिए राज्य की व्यापारिक मौद्रिक एव राजकोषीय नीतियाँ भी सुदृढता के साथ सचालित होनी चाहिए।

(उ) मजदूरी पर नियन्त्रण—मूल्य नियन्त्रण का सफल बनाने के लिए मजदूरी पर नियन्त्रण करना अनिवाय होता है क्योकि मजदूरी उत्पादन लागत का प्रमुख अग होता है और मजदूर वग की क्रय शक्ति पर वस्तुओं की माँग निभर रहती है। पूणत समाजवादी अथ व्यवस्था म जहाँ उत्पादन के समस्त व्यवसाय राज्य द्वारा सचालित रहते हैं प्राकृतिक साधनो से उत्पन्न होने वाली वस्तुओ एव सेवाओ को सामाजिक उत्पादन समझा जाता है और यह सामाजिक फण्ड म जमा कर दिया जाता है। इस सामाजिक उत्पादन म कुछ भाग श्रमिकों की सेवाओं के बदले म उन्हे दिया जाता है। श्रमिको का भाग उनके द्वारा किए उत्पादन एव उनके वांछित जीवन स्तर के आधार पर निर्धारित किया जाता है। प्रजातान्त्रिक नियोजन के अन्तगत राज्य मालिको एव श्रमिकों के मध्य उचित मजदूरी निर्धारित करने के लिए सलाह एव निर्देश देती है। कुछ क्षेत्रो म, विशेषकर लघु उद्योग कृषि तथा ठेके पर काय करने वाले श्रमिको के सम्बन्ध म न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण आवश्यक होता है।

नियोजित अथ-व्यवस्था म साख नियन्त्रण एक अत्यन्त महत्वपूर्ण क्रिया समझी जाती है और इसके लिए केन्द्रीय बक ब्याज की दरो को नियन्त्रित करता है। कभी कभी भेदात्मक (discriminating) ब्याज दरो का भी उपयोग किया जाता है। वे व्यवसाय जिनम अधिक विनियोजन एव साख वाछनीय समझी जाती है उनके लिए साख पर ब्याज की दरें कम रखी जाती हैं। साख नियन्त्रण के लिए व्यापारिक बको का राष्ट्रीयकरण भी किया जाता है।

(ऊ) व्यवसाय एवं पेशे के चयन पर नियन्त्रण—व्यवसाय एव पेशे का नियन्त्रण पूणत नियन्त्रित समाज म ही सम्भव हो सकता है। इस नियन्त्रण का उपयोग प्राय

युद्ध अथवा आपातकाल में किया जाता है। परन्तु इन समाजवादी राष्ट्रों जिनमें मानव शक्ति के बजटिंग (Man Power Labour Budgeting) का सचालन किया जाता है व्यवसाय एवं धन का चयन राज्य द्वारा ही किया जाता है। इसके लिए बच्चों को शिक्षा प्रारम्भ होने से ही आवश्यक व्यवस्थाएं करनी होती हैं। व्यवसाय एवं धन्धे के चयन पर नियन्त्रण रखना उस समय भी आवश्यक होता है जब किसी व्यवसाय में आवश्यकता से अधिक श्रम लगा हो और अन्य व्यवसायों के लिए श्रम की कमी हो गयी हो। प्राय व्यवसाय के चयन पर प्रतिबन्ध लगाकर इसे नियन्त्रित नहीं किया जाता अपितु जिन व्यवसायों में अधिक श्रम का आवटित करना होता है उसे अधिक लाभप्रद अथवा आकर्षक बनाया जाता है तथा उस धन्धे के सम्बन्ध में प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था सरकार की ओर से कर दी जाती है।

(ए) उपभोग पर नियन्त्रण—उपभोग नियन्त्रण प्रतिबन्धात्मक तथा विस्तारात्मक हो सकता है। अल्प विकसित राष्ट्रों में जहाँ शीघ्र औद्योगीकरण, द्रुत गति से आर्थिक प्रगति, जीवन-स्तर में वृद्धि, पिछड़े क्षेत्रों का विकास आदि उद्देश्यों की पूर्ति के लिए नियोजन को अपनाया जाता है, प्रतिबन्धात्मक उपभोग नियन्त्रण की आवश्यकता होती है। विकास-कार्यक्रमों के लिए उत्पादक-वस्तुओं के उद्योगों में विनियोजन बड़ी मात्रा में करने की आवश्यकता होती है और इसके लिए अधिक साधन प्राप्त करने हेतु उपभोक्ता-वस्तुओं के उद्योगों के विनियोजन को सीमित किया जाता है। इस से उपभोक्ता-वस्तुओं की कमी होती है और इन वस्तुओं का मनमाना उपभोग रोकने के लिए नियन्त्रणों का उपयोग किया जाता है। उपभोग पर नियन्त्रण रखने की सर्वश्रेष्ठ विधि राशनिंग (Rationing) समझी जाती है। इसके अतिरिक्त जन-साधारण को अधिक बचत करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है जिससे इनके उपभोग-स्तर को कम करना सम्भव होता है। उपभोग नियन्त्रण के लिए उत्पादन एवं आयात-कर का भी उपयोग किया जाता है। विलासिता एवं न्यून मात्रा में उपलब्ध वस्तुओं पर अधिक उत्पादन एवं आयात-कर लगाकर उनके उपभोग को महँगा कर दिया जाता है जिससे कुछ लोग इन वस्तुओं का उपभोग नहीं करते हैं और महँगी होने पर इनका उपभोग करते हैं तो अधिक मूल्य देने के कारण अन्य वस्तुओं के उपभोग से वंचित रह जाते हैं। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से उपभोग पर नियन्त्रण लगाया जाता है।

आधुनिक युग में मुद्रा प्रसार द्वारा भी उपभोग पर बिवशतापूर्ण नियन्त्रण (Forced Controls) लगाए जाते हैं। मुद्रा प्रसार से वस्तुओं के मूल्य बढ़ जाते हैं जिससे जनसाधारण अपनी वर्तमान मौद्रिक आय से कम उपभोग की वस्तुएँ क्रय कर पाता है।

दूसरी ओर, विस्तारात्मक उपभोग नियन्त्रण का उपयोग विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं में किया जाता है, जहाँ ऐच्छिक बचत इतनी अधिक होती है कि उसका उत्पादक विनियोजन करते रहने के लिए समाज के उपभोग के स्तर को बढ़ाना

आवश्यक होता है जिससे अधिक विनियोजन से उत्पादित वस्तुओं की माग बनी रहे। विस्तारात्मक उपभोग नियन्त्रण के लिए वस्तुओं के मूल्यो को कम रखने के लिए राज्य सहायता प्रदान करता है तथा अधिक उपभोग करने वालों को कर सम्बन्धी छूट दी जाती है।

उपयुक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि नियन्त्रण आर्थिक नियोजन का एक शक्तिशाली तन्त्र होता है जिसके सफल सचालन पर नियोजित अर्थ-व्यवस्था की सफलता निर्भर रहती है। विभिन्न क्षेत्रों पर नियन्त्रण का सचालन समन्वित रूप से करने पर वांछित उद्देश्यों की पूर्ति हो सकती है। प्रत्येक नियन्त्रण अपने आप में स्वतन्त्रतापूर्वक सचालित नहीं किया जा सकता है। उसकी सफलता के लिए अन्य क्षेत्रों पर नियन्त्रण आवश्यक होता है।

अध्याय ४

प्रजातन्त्र के अन्तर्गत आर्थिक नियोजन एवं व्यक्तिगत स्वतन्त्रता

[Planning Under Democracy and Individual Freedom Under Planning]

[प्रजातन्त्र के गुण, नियोजित अर्थ-व्यवस्था के लक्षण, आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत स्वतन्त्रता, स्वतन्त्रता के प्रकार, स्वतन्त्रता के स्वरूप—सांस्कृतिक स्वतन्त्रता, नागरिक स्वतन्त्रता, आर्थिक स्वतन्त्रता, राजनीतिक स्वतन्त्रता]

प्रजातन्त्र के गुण

प्रजातन्त्र के अन्तर्गत समाज के समस्त सदस्यों को जाति, लिंग अथवा धर्म का भेद-भाव किए बिना आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक न्याय निहित रहता है। प्रजातन्त्र के अन्तर्गत आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में सत्ताओं का बाँटन (Diffusion) व्यक्तियों के छोटे समूहों एवं संगठनों को किया जाता है। प्रजातन्त्र व्यक्ति को चयन करने की स्वतन्त्रता को मान्यता देता है। यह चयन करने की स्वतन्त्रता उत्पादन, उपभोग, पेशे अथवा व्यवसाय, बचत एवं विनियोजन, विनिमय आदि किसी से सम्बद्ध हो सकती है। प्रत्येक व्यक्ति को इन समस्त आर्थिक क्रियाओं में चयन करने की स्वतन्त्रता का आश्वासन प्रजातन्त्र के अन्तर्गत रहता है। प्रजातन्त्र में निहित सामाजिक एवं आर्थिक गुणों का यदि हम विश्लेषण करें तो ज्ञात होगा कि प्रजातन्त्र निम्नलिखित गुणों से मिलकर बनता है—

(अ) आर्थिक एवं सामाजिक समानता।

(आ) सत्ताओं का व्यक्तियों के छोटे समूहों एवं संगठनों में बाँटन।

(इ) उत्पादन के साधनों एवं सम्पत्ति को अधिकार में रखने, खरीदने व बेचने का प्रत्येक नागरिक को अधिकार है।

(ई) प्रत्येक नागरिक को पेशा एवं व्यवसाय चयन करने की स्वतन्त्रता।

(उ) समस्त क्रियाओं एवं मान्यताओं का केन्द्रबिन्दु व्यक्ति होता है।

(ऊ) उत्पादन अपनी इच्छानुसार अपने द्वारा चयन किये गये तरीकों से करने का अधिकार।

(ए) उपभोग की स्वतन्त्रता।

(ऐ) राज्य की क्रियाओं की स्वतन्त्रतापूर्वक आलोचना करने का अधिकार।

(ओ) राज्य की क्रियाओ मे प्रत्येक नागरिक को सक्रिय भाग लेने का अधिकार।

(अ) बचत करने तथा अपनी बचत अपने निणयो के आधार पर विनियोजित करने का अधिकार।

(अ) प्रत्येक समस्या एव क्रिया म मानवीय मूल्यो को सर्वोच्च स्थान दिया जाना।

व्यक्ति को जब यह सभी स्वतन्त्रताए द दी जायेंगी तो राज्य का काय केवल एक चौकीदार के समान अपने नागरिको के जीवन एव सम्पत्ति की सुरक्षा की व्यवस्था करना ही रह जाता है। राज्य का केवल यही काय प्राचीन काल म समझा जाता था। परन्तु जसे जसे सभ्यता का विस्तार हुआ राज्य का कायक्षेत्र भी बढता गया और अब प्रजातन्त्र के अन्तगत राज्य जन स्वास्थ्य, सुरक्षा चरित्र एव कल्याण, शिक्षा यातायात एव सचार तथा अन्य जनोपयोगी सेवाओ की व्यवस्था करता है। यह समस्त क्रियाए अब लगभग प्रत्येक राष्ट्र म राज्य के नियन्त्रण एव अधिकार मे रहती है जिससे इन सुविधाओ का आयोजन बिना किसी भेद भाव के समस्त नागरिको के लिए किया जा सके।

नियोजित अथ व्यवस्था के लक्षण

दूसरी ओर आर्थिक नियोजन एक सामूहिक व्यवस्था होती है जिसके अन्तगत निम्नलिखित लक्षण सम्मिलित रहते है—

(१) आर्थिक सत्ताओ पर राज्य का नियन्त्रण एव अधिकार।

(२) उत्पादन के घटको पर राज्य का अधिकार।

(३) उत्पादन उपभोग बचत विनियोजन एव पेशे से सम्बन्धित व्यक्ति एव व्यक्तियो के समूह की आर्थिक क्रियाओ का राज्य द्वारा नियन्त्रण एव निर्देशन।

(४) सामूहिक अथ-व्यवस्था जिसम समस्त सम्पत्ति व उत्पादन के साधन आदि का समाज द्वारा समाज के हित के लिए उपयोग किया जाता है।

(५) व्यक्ति को मूल रूप से उत्पादन का घटक समझा जाता है और तदनुसार उसे पारिश्रमिक प्रदान किया जाता है।

इस प्रकार प्रजातन्त्र एव आर्थिक नियोजन एक दूसरे के बिलकुल विपरीत होते हैं और प्रजातन्त्र के अन्तगत नियोजन का सचालन सम्भव प्रतीत नहीं होता है। परन्तु आर्थिक नियोजन एव प्रजातन्त्र दोनो मे एक बात म सादृश्य अथवा समानता पायी जाती है और वह बात है कि ऐसे समाज की स्थापना जिसम समस्त नागरिको को समान अधिकार प्राप्त हो और इस एक सादृश्य के कारण ही दोनों ही व्यवस्थाएँ एक साथ सचालित हो सकती हैं। इस उद्देश्य की उपलब्धि के लिए नियोजन एव प्रजातन्त्र म जो तरीके अपनाये जाते है उनम बहुत अन्तर होता है। प्रजातन्त्र मे विषमतारहित समाज स्थापित करने के लिए ऐसे तरीको को उचित समझा जाता है जो सद्धान्तिक दृष्टिकोण से उचित हों। इसम मानव की भावनाओ को अधिक

महत्व दिया जाता है और मानव को पहले मानव और बाद में उत्पादन का घटक समझा जाता है। दूसरी ओर, आर्थिक नियोजन में भौतिक तत्वों को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है और मानव की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है। इस प्रकार जहाँ तक मानव का सम्बन्ध है आर्थिक नियोजन एवं प्रजातन्त्र में बहुत अन्तर है और इन दोनों का सह अस्तित्व तब ही सम्भव हो सकता है जब दोनों के तत्त्वों में कुछ सुधार किया जाय और विरोधी-तत्त्वों को कम किया जाय। यह सुधार का काम भारत में सफलता के साथ किया गया है जिसके फलस्वरूप प्रजातान्त्रिक नियोजन का जन्म हुआ है।

आर्थिक नियोजन एवं प्रजातन्त्र दोनों ही व्यवस्थाओं के तत्वों में सुधार करके इनका सह अस्तित्व सफल हो सकता है यह *भारतीय अनुभवों एवं प्रयोगों से स्पष्ट हो* गया है। प्रजातन्त्र को अपना सैद्धान्तिक पक्ष जिसके अन्तर्गत व्यक्ति को असीमित स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है का थोड़ा लचीला करना होता है और आर्थिक नियोजन को पूर्ण राज्य नियन्त्रण एवं अधिकार की कठोरता को सीमित करना होता है। इस प्रकार राज्य को यह चयन करना होता है कि किन आर्थिक क्षेत्रों को राज्य के नियन्त्रण अथवा अधिकार में रखा जाय जिसके परिणामस्वरूप मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का प्रादुर्भाव स्वाभाविक होता है। उत्पादन के साधनों को सरकारी एवं निजी क्षेत्रों में आवश्यकतानुसार विभक्त कर दिया जाता है। जहाँ तक व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का सम्बन्ध है इन्हें *सर्वथा प्रतिबन्धित नहीं किया जाता।* ऐसी स्वतन्त्रताओं जिनसे नियोजन के संचालन में बाधा नहीं पड़ती को बनाए रखा जाता है। विपणि-सार्वभौमिकता को भी बनाए रखा जाता है परन्तु इस पर नियोजन के उद्देश्यों के अनुरूप यदा-कदा राज्य का नियन्त्रण लागू किया जाता है। प्रजातान्त्रिक नियोजन में यद्यपि समाज की समस्त क्रियाओं का केन्द्रबिन्दु माना जाता है परन्तु मानव को उत्पादन का केवल महत्वपूर्ण घटक मात्र नहीं माना जाता बल्कि उसके नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास का भी आयोजन किया जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट ही है कि आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं को असीमित छूट नहीं दी जाती है और इनमें कुछ को प्रतिबन्धित करना आवश्यक होता है।

आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत स्वतन्त्रता

स्वतन्त्रता का अर्थ—आर्थिक नियोजन में राजकीय नियन्त्रण एवं हस्तक्षेप सदैव निहित होता है और इसलिए स्वतन्त्रता के पक्षपाती विद्वानों ने आर्थिक नियोजन को गुलामी अथवा दासता का मार्ग बताया है। ऐसे पक्षपाती विद्वानों में प्रो० हयक को सर्वप्रथम स्थान दिया जा सकता है। स्वतन्त्रता शब्द का अर्थ पृथक् पृथक् समुदाय एवं व्यक्ति पृथक् पृथक् रूप से ले लेते हैं। केनेथ ई० बोल्डिंग ने लिखा है—'स्वतन्त्रता' शब्द एक भड़काने वाला शब्द है। इससे गहरी भावनाएं एवं इच्छाएं जाग्रत होती हैं

और कुछ ऐसा स्पष्ट आवाहन होता है जो मानव हृदय को अत्यधिक मूल्यवान होता है परन्तु इसकी मूल शक्ति कुछ अंशों में इसकी अस्पष्टता पर निर्भर होती है। इसका अर्थ विभिन्न लोगों का भिन्न भिन्न होता है। जब अमेरिकन लोग स्वतन्त्र विश्व की बात करते हैं, जब हिटलर ने स्वतन्त्रता (Freiheit) को अपना नारा बनाया, जब सेंट पाल ने भगवान की सेवा को पूर्ण स्वतन्त्रता बताया, जब रूजवेल्ट और चर्चिल ने चार स्वतन्त्रताओं की घोषणा की और जब साम्यवादी यह दावा करते हैं कि उनका समाज ही केवल स्वतन्त्र समाज है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि एक ही शब्द के बहुत से अर्थ हैं। यह अस्पष्टता एवं झगड़ा दोनों ही का कारण है।[1] इस अस्पष्टता के कारण आधुनिक काल में स्वतन्त्रता का वास्तविक अर्थ साधारणतः समझ में बाहर हो गया है।

स्वतन्त्रता के वास्तविक अर्थ की अस्पष्टता के कारण विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं ने इसकी विभिन्न सीमाएँ एवं तत्व निर्धारित किये हैं। स्वतन्त्रता का अर्थ असीमित स्वतन्त्रता से नहीं है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के पक्ष को सर्वोच्च महत्व देने वाले अर्थशास्त्री एवं राजनीतिज्ञ भी असीमित स्वतन्त्रता को मान्यता नहीं देते हैं। वास्तव में असीमित स्वतन्त्रता का अर्थ तो विधानरहित समाज की स्थापना करना है जो केवल असभ्य समाज अथवा जंगली पशुओं में ही सम्भव हो सकता है। हम जब स्वतन्त्रता की सीमाएं निर्धारित कर देते हैं तो उसकी परिभाषा एवं तत्व निर्धारित करना भी सम्भव होना चाहिए। स्वतन्त्रता शब्द को एक स्थिर विचारधारा नहीं कहा जा सकता क्योंकि विभिन्न समाज एवं राष्ट्रों में अलग अलग समय में इसके पृथक-पृथक अर्थ लगाये गये हैं। स्वतन्त्रता इस प्रकार एक परिवर्तनशील विचारधारा है जिसकी सर्वव्यापक परिभाषा नहीं दी जा सकती है। स्वतन्त्रता में सम्मिलित होने वाले तत्व सामाजिक दशाओं, समय, राजनीतिक विचारधाराओं, भौगोलिक परिस्थितियों एवं ऐतिहासिक परम्पराओं से प्रभावित होते हैं। प्रजातान्त्रिक समाज में कार्य करने एवं विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता को विशेष महत्व दिया जाता है परन्तु इसकी सीमाएं सामाजिक आदर्श एवं जन हित द्वारा निर्धारित होती हैं। इन दो घटकों के अतिरिक्त किसी विशेष समय पर उपस्थित परिस्थितियाँ भी स्वतन्त्रता की

---

1 Freedom is a fighting word It arouses deep emotions and desires and clearly evokes something that is very precious to the human heart Its very power however depends in parts on its vagueness It means very different things to different people When Americans speak of free world when Hitler used *Freiheit* as one of his slogans when St Paul wrote that in His service is perfect freedom when Roosevelt and Churchill promulgated the four freedoms and when Communists claim that theirs is only free society it is obvious that the one word covers a multitude of meanings This is source both of confusion and conflict
(Kenneth E Boulding *Principles of Economic Policy*)

सीमाएं निर्धारित करती है जैसे प्रत्येक व्यक्ति को उत्सव के अवसर पर खुशियाँ मनाने बाजे बजाने आदि की स्वतन्त्रता है परन्तु यदि उसके पड़ोस मे किसी की मृत्यु हो जाय तो उसे अपनी स्वतन्त्रता का उपयोग करने का अधिकार नहीं है। इस प्रकार स्वतन्त्रता पूर्णतम दासता तथा पूर्णतम व्यक्तिवाद के मध्य की अवस्था का कहा जा सकता है।

स्वतन्त्रताओं के प्रकार—आधुनिक युग में प्रत्येक समाज म स्वतन्त्रताओं पर कुछ न कुछ अकुश लगाये जाते हैं, परन्तु इन अकुशों की मात्रा एव कठोरता प्रत्येक समाज की वर्तमान आर्थिक सामाजिक एव राजनीतिक मान्यताओं पर निर्भर रहती है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था म अन्तगत कुछ स्वतन्त्रताओं का उन्मूलन कुछ का प्रतिबधित एव कुछ का जीवित रखा जाता है। विभिन्न प्रकार की स्वतन्त्रताओ में अन्तर निम्न प्रकार निर्धारित किये जा सकते हैं—

(१) कुछ धनवानों की स्वतन्त्रता एव निर्धनों के बड़े समाज की स्वतन्त्रता—समाजवादी एव साम्यवादी स्वतन्त्रता का अर्थ प्रत्येक व्यक्ति का इतने आर्थिक साधन उपलब्ध कराने म लगाते हैं जिसमे वह जीवन निर्वाह की आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त कर सके। इस प्रकार आय, धन एव अवसर *की समानता को अधिक महत्व दिया* जाता है और धनवान व्यक्तियों के द्योग से समूह की स्वतन्त्रताओं का नियन्त्रित करके साधनों का वह निर्धन-वर्ग का आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करने के लिए उपयोग किया जाता है। दूसरी ओर, जब किसी समाज म उत्पादन के साधनों के क्रय, विक्रय, उपयोग एव अधिकार म रखने की स्वतन्त्रता समस्त नागरिकों *को दी जाती है तो यह स्वतन्त्रता उन्हीं के लिए उपयोगी होती है* जिनके पास धन होता है और निर्धन-वर्ग के लिए इस स्वतन्त्रता का कोई महत्व नहीं होता है। आर्थिक नियोजन द्वारा इस प्रकार की व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं का नियन्त्रित करके निर्धनो का आर्थिक कठिनाइयों से मुक्त किया जाता है।

(२) वाछनीय एव अवाछनीय स्वतन्त्रता—*उपभोक्ता को इच्छानुसार उपभोग* करने तथा उत्पादकों को इच्छानुसार उत्पादन करने की स्वतन्त्रता देने से समाज मे हानिकारक कार्यवाहियों का प्रादुर्भाव हो सकता है। उपभोक्ताओं का बहुत बड़ा वर्ग या तो अज्ञान के कारण या फिर अन्य महत्वहीन विचारधाराओं, जैसे दिखावा (display) आदि से प्रभावित होकर उपभोग के सम्बन्ध मे विवेकपूर्ण चयन *नहीं करता है जिसके फलस्वरूप एक ओर समाज में चरित्रहीनता का प्रोत्साहन* मिलता है और दूसरी ओर समाज मे उत्पादक साधनों का अपव्यय अथवा अनुचित उपयोग होता है। ऐसी परिस्थिति मे उपभोग की स्वतन्त्रता का नियन्त्रित करने से समाज एव व्यक्ति-विशेष *का अधिक हित सम्भव हो सकता है और स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगने से उस व्यक्ति का जो हानि होगी उससे कहीं अधिक उसे एव समाज को* आर्थिक नतिक एव सामाजिक लाभ होगा। इसी प्रकार उत्पादक भी अपनी स्वतन्त्रता का उपयोग लाभ हेतु उत्पादन करने के लिए करता है। वह उत्पादन सम्बन्धी निर्णय

करते समय अपने लाभ को सर्वाधिक महत्व देता है, चाहे उसके निश्चयों द्वारा समाज का हानि क्यों न होती हो अथवा साधनों का अधिकतम उपयुक्त उपयोग न होता हो। ऐसी परिस्थिति में उत्पादन की स्वतन्त्रताओं को नियन्त्रित करने से साधनों का समाज के अधिकतम हित के लिए उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार पूंजीवाद एवं स्वतन्त्र व्यापार-व्यवस्था के अन्तर्गत जो उपभोग एवं उत्पादन की स्वतन्त्रताएँ व्यक्तियों को प्रदान की जाती हैं वे वास्तव में एक छोटे से ही धनी वर्ग के लिए अधिक उपयोगी होती हैं और जनसमुदाय का बहुत बड़ा वर्ग बीमारी, निर्धनता, अज्ञानता, बेकारी तथा निरक्षरता का शिकार बना रहता है। इस वर्ग को इन पाँच भयानक राक्षसों से स्वतन्त्रता मिलना वांछनीय है और इसके लिए नियोजित अर्थ-व्यवस्था द्वारा पूंजीवादी उत्पादन एवं उपभोग सम्बन्धी स्वतन्त्रताओं को नियन्त्रित करना उचित है।

(३) इच्छित एवं अनिच्छित स्वतन्त्रता—कुछ कार्य एवं वस्तुएं ऐसी होती हैं जिनके सम्बन्ध में यदि स्वतन्त्रता को समाप्त कर दिया जाय तो उससे किसी प्रकार की हानि नहीं होती जैसे कार्य करने के घण्टों का नियमन, स्त्रियों एवं बच्चों को जोखिम पूर्ण कार्यों पर कार्य करने के लिए प्रतिबन्ध आदि। इस प्रकार के प्रतिबन्ध श्रमिकों की कार्य करने की स्वतन्त्रता को कुछ समय के लिए प्रतिबन्धित कर देते हैं परन्तु यह स्वतन्त्रता प्रायः एक अनिच्छित स्वतन्त्रता होती है और इसके प्रतिबन्धित होने से श्रमिकों को कोई विशेष हानि नहीं होती। इस प्रकार की बहुत सी ऐसी स्वतन्त्रताएँ हैं जिनका जीवन में व्यक्तिगत रूप से अधिक महत्व नहीं होता और इनको प्रतिबन्धित करने से मूलभूत व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं पर कुठाराघात नहीं होता।

(४) नकारात्मक एवं सकारात्मक स्वतन्त्रता—चयन करने की बहुत सी स्वतन्त्रताएँ जनसमुदाय के बहुत बड़े वर्ग को केवल सिद्धान्त रूप में ही प्राप्त होती हैं और वह वास्तविकता से बहुत दूर रहती हैं जैसे प्रत्येक व्यक्ति को अच्छा भोजन करने, अच्छे मकान में रहने, घूमने फिरने आदि की स्वतन्त्रता है परन्तु इस स्वतन्त्रता का वास्तविक लाभ उन्हीं व्यक्तियों को हो सकता है जो पर्याप्त आर्थिक साधन भी रखते हैं। निर्धन वर्ग के लिए यह स्वतन्त्रता नकारात्मक स्वतन्त्रता के समान है क्योंकि वह धन के अभाव में इनका कोई उपयोग नहीं कर सकता है।

स्वतन्त्रताओं के स्वरूप—विभिन्न प्रकार की स्वतन्त्रताओं के अन्तर को अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि स्वतन्त्र अथवा अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में अधिकतर स्वतन्त्रताएँ वास्तव में धनी वर्ग के लिए ही उपलब्ध होती हैं और समाज का बहुत बड़ा भाग सिद्धान्त मात्र में ही उनका लाभ उठाता है। यदि समाज में वास्तविक एवं वांछनीय स्वतन्त्रताओं को जनसमुदाय के सभी वर्गों को प्रदान करना है तो आर्थिक नियोजन द्वारा समस्त नागरिकों को आर्थिक स्वतन्त्रता प्रदान की जाय, अर्थात् समस्त नागरिकों की आय एवं अवसर की समानता का आयोजन किया जाय और यह आयोजन तभी सम्भव हो सकता है जब धनी वर्ग की स्वतन्त्रताओं पर

प्रतिबन्ध लगाया जाय और समस्त समाज की अवांछनीय स्वतन्त्रताओं को प्रतिबन्धित किया जाय। आर्थिक नियोजन द्वारा इस प्रकार एक ओर अवांछनीय स्वतन्त्रताओं को प्रतिबन्धित किया जाता है, दूसरी ओर, नकारात्मक स्वतन्त्रताओं को सकारात्मक या वास्तविक स्वतन्त्रताओं में परिवर्तित किया जाता है। आर्थिक नियोजन द्वारा चयन करने की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं। चयन करने के बहुत प्रकार हैं। इनके मुख्य रूपों का निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है—

(१) सांस्कृतिक स्वतन्त्रता (Cultural Freedom)

(२) नागरिक स्वतन्त्रता (Civil Freedom),

(३) आर्थिक स्वतन्त्रता (Economic Freedom)

(४) राजनीतिक स्वतन्त्रता (Political Freedom)।

सामान्यतः यह विचार किया जाता है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था में इन सभी प्रकार की स्वतन्त्रताओं को नियन्त्रित कर दिया जाता है।

(१) सांस्कृतिक स्वतन्त्रता—इसके अन्तर्गत विचार व्यक्त करने तथा धर्म-सम्बन्धी स्वतन्त्रताएँ सम्मिलित होती हैं। सांस्कृतिक स्वतन्त्रता का आर्थिक नियोजन से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। वास्तव में इस स्वतन्त्रता की उपस्थिति की मात्रा देश के राजनीतिक गठन पर निर्भर रहती है। यह कहना भी उचित नहीं है कि सांस्कृतिक स्वतन्त्रता पर नियन्त्रण किए बिना आर्थिक नियोजन सफल नहीं हो सकता है। राज्य यदि चाहता है कि राष्ट्र में समान संस्कृति का अनुसरण हो जिससे आर्थिक नियोजन के कार्यक्रमों को सुगमतापूर्वक संचालित किया जा सके तो जनसमुदाय को एक विशेष संस्कृति का अनुसरण करने के लिए बाध्य किया जा सकता है परन्तु यह तब ही सम्भव हो सकता है जब देश में प्रजातान्त्रिक सरकार न हो। प्रजातान्त्रिक राज्य में धर्म एवं विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता पर सर्वथा रोक नहीं लगायी जा सकती है क्योंकि सरकार को सदैव जनसमुदाय की इच्छाओं को विचाराधीन करना होता है, अन्यथा सरकारी सत्ता एक दल से दूसरे दल के हाथ में चली जाती है। तानाशाही राज्य में सांस्कृतिक स्वतन्त्रता को बड़ी मात्रा तक सीमित कर दिया जाता है। इस विवरण से यह स्पष्ट है कि सांस्कृतिक स्वतन्त्रता राजनीतिक गठन से प्रभावित होती है न कि आर्थिक नियोजन के अनुसरण से।

(२) नागरिक स्वतन्त्रता—इसके अन्तर्गत विभिन्न न्याय-सम्बन्धी एवं वैधानिक अधिकारों को सम्मिलित किया जाता है। इन अधिकारों का विशेषरूप से उन नागरिकों से सम्बन्ध होता है जो विधान द्वारा किसी अपराध के लिए अपराधी ठहराये गये हों अथवा ठहराये जाने वाले हों। आर्थिक नियोजन के संचालन के लिए नागरिक स्वतन्त्रता पर अंकुश लगाने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती है और आर्थिक नियोजन एवं नागरिक स्वतन्त्रता एक साथ रह सकते हैं। वास्तव में नागरिक स्वतन्त्रता सत्ताधारी व्यक्तियों की विचारधाराओं पर निर्भर रहती है। एक डिक्टेटर

सदव नागरिक स्वत त्रता को सीमित करता है जबकि प्रजातान्त्रिक ढांचे म नागरिक स्वतन्त्रता को विशेष महत्व दिया जाता है।

(२) आर्थिक स्वतन्त्रता—आर्थिक स्वतन्त्रता का अथ बड़ा विवादपूण रहा है। पू जीवादी आर्थिक स्वतन्त्रता मे उपभोक्ता को अपनी इच्छानुसार उपभोग की वस्तुए क्रय करने की स्वतन्त्रता तथा उत्पादक को अपने निजी लाभ के आधार पर उत्पादन काय करने की स्वतन्त्रता को सम्मिलित करते हैं। दूसरी ओर समाजवादी आर्थिक स्वतन्त्रता का अथ आर्थिक सुरक्षा बताते हैं। स्वतन्त्रता की आधुनिक विचार-धारा बहुत कुछ भिन्न है। इसका अथ असुरक्षा इच्छा अस्वच्छता रोग अज्ञान तथा शिथिलता से मुक्ति है। स्वतन्त्रता को पुरानी विचारधारा सवथा भिन्न थी। इसका अथ इच्छानुसार चाहे जितने घण्टे काय करने की स्वतन्त्रता बच्चो को कारखाने तथा खेतो पर भेजने भूखे रखने योग्य ही मजदूरी देने, एकाधिकार मूल्य लगाने लाभदायक मूल्य प्राप्त न होने पर खराब वस्तुओ को बेचने स्वप्न म पर धन एकत्रित करना तथा इस धन को दूसरों को निधन एवं दरिद्र बनाने के लिए उपयोग करने की स्वतन्त्रता समझा जाता था।[1]

(1) उपभोक्ता की स्वतन्त्रता—किसी भी देश म वस्तुओं के वितरण के दो तरीके हो सकते है—प्रथम वस्तुए खुले बाजार द्वारा माँग और पूर्ति के दबाव के आधार पर निर्धारित मूल्य पर रुपये के बदले म उपभोक्ताओ को उपलब्ध करायी जा सकती हैं। दूसरा तरीका नियमित एव नियन्त्रित वितरण है, जिसे राशनिंग कहते है। इस तरीके का उपयोग अधिकतर वस्तुओं की न्यूनता होने पर ही किया जाता है। उपभोक्ताओ को वस्तुए निश्चित मात्रा म एव निश्चित मूल्य देने पर प्राप्त होती हैं। यद्यपि दोनो ही विधियो म उपभोक्ता वस्तुओ को रुपए के बदले मे क्रय करता है परन्तु खुले बाजार की व्यवस्था म उपभोक्ताओ को जो भी वस्तु चाहे उसे क्रय करने की स्वतन्त्रता होती है जबकि नियमित एव नियन्त्रित वितरण होने पर उपभोक्ता को वस्तुओ का चयन करने तथा वस्तु के सम्बन्ध म स्वतन्त्रता नही होता।

उसे वे ही वस्तु क्रय करनी होती है जो अधिकारी उपलब्ध कराते है तथा वे वस्तुए उपभोक्ताओ द्वारा सीमित मात्रा म ही क्रय की जा सकती हैं। वस्तुओ के

---

1 The modern conception of freedom is very much different—it is the conception of freedom from insecurity from want disease squalor ignorance and idleness The old conception of freedom was quite different It referred to freedom to work as many hours as one chooses to send children to factories and farms to pay starvation wages to charge monopoly prices to sell wretched goods when remunerative prices are not to be had to amass undreamt wealth and to parade it shamelessly to despoil and beggar those one can
(G D Karwal *Economic Freedom and Economic Planning* p 152)

आर्थिक स्वतन्त्रता को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—
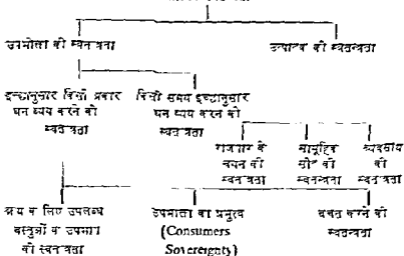
वितरण की दोनों ही विधियाँ नियोजित एवं अनियोजित व्यवस्था में अपनायी जाती है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में घरेलू बचत एवं विनियोजन बढ़ाने हेतु उपभोग को सीमित करने की आवश्यकता पड़ती है और यह सीमाएं निर्धारित करने हेतु राशनिंग का उपयोग किया जाता है। अधिकतर राशनिंग का उपयोग न्यून पूर्ति वाली वस्तुओं को उचित मूल्य पर उपलब्ध कराने हेतु किया जाता है। इस प्रकार वस्तुओं के वितरण पर किये जाने वाले नियन्त्रण का उद्देश्य उपभोक्ता की स्वतन्त्रता को सीमित करना नहीं होता अपितु निर्धन-वर्ग को उचित मूल्य पर आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध कराना होता है। कुछ वस्तुओं के उपभोग को इसलिए भी सीमित किया जाता है कि वे वस्तुएं जन-स्वास्थ्य एवं राष्ट्रीय चरित्र के लिए हानिकारक होती हैं।

वास्तव में नियोजित अर्थ-व्यवस्था में वस्तुओं के उत्पादन एवं पूर्ति में वृद्धि करने का प्रयत्न किया जाता है और प्रारम्भिक काल में जो भी नियन्त्रण उपभोक्ता पर लगाये जाते हैं उनका लक्ष्य शीघ्र ही उन्हें अधिक वस्तुएं उपलब्ध कराना होता है। प्रत्यक्ष रूप से इसलिए यह कहना उचित नहीं है कि नियोजित व्यवस्था में उपभोक्ता की स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है। उपभोक्ता की स्वतन्त्रता को नियन्त्रित एवं सीमित किया जाय अथवा नहीं, इस प्रश्न का उत्तर आर्थिक नियोजन के प्रकार एवं के राजनीतिक ढांचे तथा उपभोक्ता-वस्तुओं की पूर्ति पर निर्भर रहता है।

(ख) उपभोक्ता का प्रभुत्व (Consumers Sovereignty)—उपभोक्ता के प्रभुत्व का तात्पर्य यह है कि उत्पादन उपभोक्ता की माँग के अनुसार किया जाय। उपभोक्ता बाजार में बिक्री के लिए उपस्थित वस्तुओं में से अपने लिए वस्तुओं को

चयन करता है। जिन वस्तुओं की माग अधिक होती है उनका उत्पादन उत्पादक अधिक मात्रा में करता है। वस्तुओं का उत्पादन बढ़ने पर मूल्य कम हो जाता है और उत्पादन कम होने पर मूल्य बढ़ जाता है। इसी प्रकार वस्तुओं की माग बढ़ने पर मूल्य बढ़ता है और उत्पादन बढ़ाने के प्रयत्न किये जाते हैं। माग कम होने पर उस वस्तु का मूल्य कम हो जाता है और उत्पादक का लाभ भी कम होने लगता है। ऐसी परिस्थिति में उत्पादक की उस वस्तु के उत्पादन में रुचि कम हो जाती है और उत्पादन गिरने लगता है। प्रतिस्पर्धीय अर्थ-व्यवस्था की इस अवस्था को उपभोक्ता का प्रभुत्व कहते हैं। *नियोजित अर्थ-व्यवस्था में उत्पादन उपभोक्ता के चयन एवं माँग पर निर्भर* नहीं होता है। नियोजन अधिकारी प्राथमिकतानुसार यह निश्चय करता है कि किन किन वस्तुओं का उत्पादन कितनी मात्रा में किया जाय? उपभोक्ता का प्रभुत्व तभी प्रभावशाली हो सकता है जब उसके पास पर्याप्त क्रय शक्ति हो। किसी वस्तु की माग करने के लिए पर्याप्त क्रय शक्ति होना भी आवश्यक होता है। जब क्रय शक्ति का सचय कुछ चुने हुए लोगों के हाथ में हो तो अर्थ-व्यवस्था के एक बड़े भाग पर चुने हुए वर्ग का ही प्रभुत्व हो जायगा। जनसाधारण जिनके पास धन का अभाव है न तो प्रभावशाली माग प्रस्तुत कर सकेगा और न उसकी आवश्यकतानुसार उत्पादन ही *किया जायगा। ऐसी परिस्थिति में उपभोक्ता का प्रभुत्व तब ही प्रभावशाली माना* जा सकता है जब समस्त समाज के पास क्रय शक्ति का पर्याप्त सचय हो। जनसाधारण को क्रय शक्ति उपलब्ध कराने हेतु ही आर्थिक नियोजन द्वारा धन अवसर आय आदि के समान वितरण का आयोजन किया जाता है। जनसाधारण के हाथों में अधिक क्रय शक्ति पहुँचने से उसमें उत्पादन पर नियन्त्रण करने की क्षमता में वृद्धि होती है। फिर भी इतना कहना सर्वथा सत्य होगा कि आर्थिक नियोजन द्वारा पूजीपति वर्ग के प्रभुत्व को ठेस पहुँचती है और वह उत्पादन की क्रियाओं को प्रभावित करने में असमर्थ हो जाता है।

(ख) *बचत करने की स्वतन्त्रता—बचत करने का मुख्य उद्देश्य भविष्य में* अधिक उपयोग करने का आयोजन करना होता है। उपभोक्ता वर्तमान उपयोग को कम करके बचत करता है और उसका विनियोजन कर देता है जिससे भविष्य में उसे ब्याज अथवा लाभांश की अतिरिक्त आय हो सके और वह अधिक उपभोग कर सके। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में बचत को अत्यधिक प्रोत्साहन दिया जाता है और विनियोजन की उपयुक्त सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। विनियोजन करने के पूर्व प्रत्येक व्यक्ति अपने विनियोजन की सुरक्षा चाहता है जो इस अर्थ-व्यवस्था में ही सम्भव होती है। प्रतिस्पर्धीय अर्थ-व्यवस्था में जहा उच्चावचन अत्यधिक होते हैं विनियोजन को सुरक्षित नहीं कहा जा सकता है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में बचत एवं विनियोजन दोनों में सामजस्य स्थापित किया जाता है और अर्थ-व्यवस्था को मन्दी एवं तेजी के

दबाव से बचाया जाता है। ऐसी परिस्थिति में चयन करने की सुरक्षा की न्यूनतम होती है।

(ii) उत्पादक की स्वतन्त्रता—(ब) रोजगार के चयन की स्वतन्त्रता—नियोजन के अन्तर्गत श्रमिकों को किन्हीं व्यवसायों में काम करने के लिए आदेश दिया जा सकता है अथवा उनको प्रोत्साहित किया जा सकता है। आदेश द्वारा जो व्यवसायों में रोजगार दिलाए जाते हैं वे प्रभावशाली तो अवश्य होते हैं परन्तु रोजगार चयन करने की स्वतन्त्रता पर अंकुश लग जाता है। प्रोत्साहन द्वारा किन्हीं विशेष व्यवसायों में रोजगार प्राप्त कराने से लोगों में उस रोजगार के प्रति रुचि रहती है और रोजगार चयन करने की स्वतन्त्रता बनी रहती है। रोजगार चयन करने की स्वतन्त्रता को सीमित करने हेतु प्रायः दो प्रकार के अंकुश लगाए जाते हैं—आर्थिक एव वैधानिक। *आर्थिक अंकुशों के अन्तर्गत राज्य उन व्यवसायों को, जिनमें रोजगार बढ़ाना चाहता है* आर्थिक एवं अन्य सहायता प्रदान करता है, कच्चे माल को उपलब्ध कराता है, बिक्री आदि की सुविधाएँ प्रदान कराता है। इसके विपरीत वे व्यवसाय जिनमें रोजगार कम करने की आवश्यकता समझी जाय उनको राज्य कोई विशेष सुविधाएँ प्रदान नहीं करता है। वैधानिक अंकुशों में दो तत्व सम्मिलित होते हैं—प्रथम अपने व्यवसाय को चयन करने की स्वतन्त्रता पर वैधानिक अंकुश और द्वितीय किसी कार्य अथवा नौकरी को छोड़ने अथवा स्वीकार न करने पर वैधानिक अंकुश। जब किसी व्यवसाय में लोगों की आवश्यकता हो और प्रोत्साहन द्वारा उस व्यवसाय में लोग न आते हों तो वैधानिक अंकुशों द्वारा लोगों को उस व्यवसाय के रोजगार को स्वीकार कराया जाता है। ऐसी कठोर कार्यवाही युद्धकाल में ही आवश्यक होती है क्योंकि प्रत्येक कार्य को शीघ्रातिशीघ्र करने की आवश्यकता होती है और प्रोत्साहन विधियों में समय नष्ट नहीं किया जा सकता है।

आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत वास्तव में रोजगार चयन करने की स्वतन्त्रता में वृद्धि होती है परन्तु प्रत्यक्ष रूप से इस स्वतन्त्रता को सीमाबद्ध कर दिया जाता है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत उन व्यवसायों के द्वारा नवीन श्रमिकों को लेना बन्द कर दिया जाता है जिनमें पहले से ही श्रम का आधिक्य होता है। इस प्रकार लोगों को उस विशेष व्यवसाय अथवा कारखाने में रोजगार प्राप्त करने की स्वतन्त्रता पर अंकुश लग जाता है, परन्तु यह अंकुश आर्थिक कठिनाइयों से बचने के लिए किए जाते हैं। यदि ऐसे अंकुश न लगाये जायें तो सम्पूर्ण रोजगार की स्थिति छिन्न भिन्न हो जाती है। वास्तव में, नियोजित अर्थ-व्यवस्था का लक्ष्य पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करना होता है और नवीन रोजगार के अवसर बड़ी मात्रा में उत्पन्न किए जाते हैं। इस प्रकार लोगों को रोजगार के एक बड़े समूह में चयन करने की स्वतन्त्रता मिलती है। अर्थ-व्यवस्था के केवल एक बहुत छोटे क्षेत्र के लिए ही अंकुश लगाये जाते हैं और शेष रोजगारों में चयन करने के अवसरों में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है।

नियोजित अर्थव्यवस्था मे रोजगार के कार्यालयो (Employment Exchanges) को विशेष स्थान दिया जाता है। समस्त रिक्त स्थानो की इन दफ्तरो को सूचना देना अनिवार्य होता है। ऐसी परिस्थिति म रिक्त स्थानो की सूचना अधिक से अधिक लोगो को मिल जाती है और वे रोजगार चयन करने के अधिकार का अधिक प्रभावशाली उपयोग कर सकते है। अनियोजित अर्थव्यवस्था म प्राय भय बना रहता है कि एक रोजगार छोडने पर दूसरे रोजगार का मिलना कठिन होता है और दीर्घ काल तक बेरोजगार रहने का अवसर आ सकता है। ऐसी परिस्थिति मे कर्मचारी अपने पुराने रोजगार को प्रतिकूल दशाओ मे भी अपनाये रहते है और अच्छे रोजगार के अवसरो का लाभ उठाने की जोखिम नही लेते। नियोजित अर्थ-व्यवस्था म एक ओर पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करने हेतु नवीन अवसर उत्पन्न किए जाते हैं तो दूसरी ओर बेरोजगारी के विरुद्ध बीमे का प्रबन्ध भी किया जाता है। ऐसी परिस्थिति म लोगो को अच्छे रोजगार के चयन के अधिक अवसर उपलब्ध होते हैं।

(आ) सामूहिक सौदे की स्वतन्त्रता—नियोजित अर्थव्यवस्था मे श्रम सघो का कार्य किसी विशेष व्यवसाय के श्रमिको के हितो की सुरक्षा करना ही नही होता है। इनके कार्य है—श्रमिको का अधिक मजदूरी प्राप्त करने के स्थान पर योजना के निर्माण मे सहायता करना, श्रम की उत्पादकता बढाना श्रमिको के पारिश्रमिक को नियमित करना और यह देखना कि श्रमिको को मजदूरी उनके कार्य के अनुसार मिलती है। उत्पादित वस्तु का गुण (Quality) सुधारना तथा उत्पादन लागत कम करना सामाजिक बीमा का सचालन करना, झगडो के फैसले मे सहयोग देना आदि। उनके समस्त कार्य राष्ट्रीय हित से सम्बन्धित होते है। जब श्रम सघो को यह सब कार्य करने का अवसर दिया जाता है तो यह कहना उचित नही होता कि उनकी स्वतन्त्रताओ को सीमित कर दिया जाता है। दूसरी ओर आधुनिक युग म नियोजित एव अनियोजित सभी अर्थ-व्यवस्था वाले देशों म सुलह (Conciliation) एव अनिवार्य पच फसला (Compulsory Arbitration) द्वारा मजदूरी निर्धारित होती है। ऐसी परिस्थिति म सामूहिक सौदे की परम्परागत स्वतन्त्रता के कोई मानी नही रह जाते हैं।

(इ) साहस की स्वतन्त्रता—यह कहना किसी प्रकार उचित नही है कि नियोजित अर्थव्यवस्था म निजी क्षेत्र को सर्वथा समाप्त कर दिया जाता है। ससार के बहुत से देशो म आर्थिक नियोजन का सचालन होते हुए भी निजी क्षेत्र कार्य करता है। वास्तव म नियोजित अर्थव्यवस्था म निजी क्षेत्र का नियन्त्रित एव नियमित कर दिया जाता है। निजी क्षेत्र को नियमित करने की प्रथा आधुनिक युग म अनियोजित अर्थव्यवस्था म भी है। पूजीवादी अर्थ-व्यवस्था म भी हम देखते हैं कि सरकारी क्षेत्र द्वारा जनोपयोगी उद्योगो का सचालन किया जाता है। दूसरी ओर नियोजित अर्थ-व्यवस्था म भी निजी क्षेत्र का कार्य करने का अवसर दिया जाता है। नियोजित

अर्थ-व्यवस्था में निजी व्यवसाय सरकारी क्षेत्र के सहायक होते हैं और जब तक सरकारी एवं निजी क्षेत्र में प्रभावशाली समन्वय नहीं होता, योजना का सफल होना सम्भव नहीं होता। इस प्रकार नियोजित अर्थ-व्यवस्था एवं साहस की स्वतन्त्रता साथ साथ रह तो सकती है, परन्तु निजी साहस को नियमबद्ध अवश्य कर दिया जाता है।

(४) राजनीतिक स्वतन्त्रता (Political Freedom)—राजनीतिक स्वतन्त्रता के अन्तर्गत सरकार की आलोचना करने का अधिकार, विरोधी दल बनाने का अधिकार, जनसाधारण का सरकार बदलने का अधिकार आदि सम्मिलित होते हैं। वास्तव में, इन अधिकारों का नियोजन से किसी प्रकार प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता और न इनकी उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति नियोजन के संचालन को प्रभावित करती है। प्रोफेसर हेयक एवं उनके साथियों की धारणा कि नियोजन द्वारा देश में तानाशाही का प्रादुर्भाव होता है उचित प्रतीत नहीं होती। राजनीतिक तानाशाही आर्थिक नियोजन द्वारा उत्पन्न नहीं होती है और न नियोजन के संचालन हेतु तानाशाही आवश्यक ही होती है। राजनीतिक स्वतन्त्रता को सीमाबद्ध करना सरकार की नीति पर निर्भर रहता है। यदि सरकार में तानाशाही प्रवृत्ति के लोग होंगे तो राजनीतिक स्वतन्त्रता पर अंकुश लगाना स्वाभाविक है। आर्थिक नियोजन का संचालन प्रजातान्त्रिक ढाँचे में भी उतना ही सफल हो सकता है जितना तानाशाही ढाँचे में। दूसरी ओर यह कहना भी उचित नहीं कि प्रजातान्त्रिक ढाँचे में दीर्घकालीन कार्यक्रम नहीं बनाये जा सकते हैं क्योंकि सरकार के बदलने पर पहली सरकार द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यक्रमों को रद्द कर दिया जाता है। वास्तव में, योजना में अधिकतर कार्यक्रम सामान्य हित के लिए होते हैं और विरोधी दल की सरकार बनने पर भी उन कार्यक्रमों को निरस्त करना उचित नहीं समझा जाता है। उनके संचालन की विधियाँ भले ही बदल जायें परन्तु वह कार्यक्रम अवश्य चालू रखे जाते हैं। कभी-कभी राजनीतिक मतभेद के कारण कुछ काम निरस्त भी किए जा सकते हैं परन्तु निरस्त होने के भय से नियोजन का संचालन न किया जाय अथवा विरोधी दल को ही नष्ट कर दिया जाय, इन दोनों में से एक भी कार्य उचित न होगा। आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत आर्थिक शक्तियों का केन्द्रीयकरण सरकार के हाथ में हो जाता है जिनका उपयोग सामान्य हित के लिए किया जाता है। आर्थिक शक्तियों के साथ राजनीतिक शक्तियों का संचय करना सदैव अनिवार्य नहीं होता है। अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में धन का संचय एक छोटे वर्ग के हाथ में होता है, जो देश की राजनीति को भी प्रभावित करता है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में धन के केन्द्रीयकरण को रोका जाता है और धनी को राजनीतिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अवसर कम मिलता है। इस प्रकार आर्थिक नियोजन का राजनीतिक स्वतन्त्रता से प्रत्यक्ष रूप में किसी प्रकार सम्बन्ध नहीं होता है।

राजकीय नियन्त्रण एवं व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं पर राजकीय प्रतिबन्ध आर्थिक

नियोजन की सफलता के लिए आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है परन्तु इस कथन का यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि आर्थिक नियोजन एवं व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में पारस्परिक शत्रुता है और यह दोनों समाज में एक ही समय में विद्यमान नहीं रह सकते हैं। प्रजातन्त्र के अन्तर्गत जब आर्थिक नियोजन का संचालन किया जाता है तो व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं को पूर्णतः प्रतिबन्धित नहीं किया जा सकता। प्रजातन्त्र में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को देश के संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त हो सकती है और राज्य व्यक्तियों के चयन करने के अधिकार को सर्वथा अपने अधिकार में नहीं ले सकता है। ऐसी परिस्थिति में *राज्य को विभिन्न व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं में से उनका चयन करना* होता है जिनके नियन्त्रित किए बिना नियोजित अर्थ-व्यवस्था का सफलतापूर्वक संचालन नहीं किया जा सकता हो। प्रजातन्त्र के अन्तर्गत चयन करने के अधिकार को राज्य प्रत्यक्ष रूप में अपने अधिकार में नहीं लेता बल्कि छोटी छोटी विकेन्द्रित संस्थाओं जैसे सहकारी संस्थाएं स्थानीय संस्थाएं आदि की स्थापना की जाती है और इनको सामूहिक रूप से चयन करने की स्वतन्त्रता दी जाती है। दूसरी ओर साम्यवादी नियोजित व्यवस्था में चयन करने की स्वतन्त्रता केवल राज्य को होती है और उसके निर्देशानुसार समस्त नागरिकों एवं उनकी संस्थाओं को कार्य करना होता है। इस प्रकार प्रजातान्त्रिक नियोजन में चयन करने की स्वतन्त्रता को व्यक्तियों से हटाकर उनके समूहों को सौंप दिया जाता है जबकि साम्यवाद में यह अधिकार राज्य में केन्द्रित हो जाता है। इसी कारण नियोजित अर्थ-व्यवस्था में अधिकारों का केन्द्रीयकरण अवश्य होता है परन्तु साम्यवाद में यह केन्द्रीयकरण अधिक कठोर एवं जटिल होता है। जैसे जैसे समाज में नियोजन के प्रति जागरूकता उत्पन्न होती जाय स्वतन्त्रताओं पर लगे हुए प्रतिबन्ध धीरे धीरे कम किये जा सकते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नियोजित अर्थ व्यवस्था एवं अवांछनीय स्वतन्त्रताओं में पारस्परिक विरोध है परन्तु आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत वास्तविक *एवं वांछनीय स्वतन्त्रताओं की व्यापकता को बढ़ाने का आयोजन किया जाता है।* बारबरा वूटन ने इसी कारण कहा है कि स्वतन्त्रता की सुरक्षा के लिए हम विद्वान् सक्रिय एवं सूचित (Informed) होना चाहिए जिससे हम अपनी स्वतन्त्रताओं के सम्बन्ध में जानकार रहें और उनकी माँग अपने एवं समाज के अन्य सदस्यों के लिए कर सकें। वास्तव में जनसमुदाय की सतर्कता एवं बुद्धिमत्ता पर ही समाज की स्वतन्त्रताएँ निर्भर रहती हैं।

वास्तव में आर्थिक नियोजन द्वारा समाज को बेकारी बीमारी निरक्षरता विषमता एवं इच्छा से स्वतन्त्र कर दिया जाता है जिससे ऐसे विषमतारहित समाज की स्थापना होती है जिसमें इन वास्तविक स्वतन्त्रताओं का आयोजन होता है। आर्थिक नियोजन द्वारा आर्थिक सुरक्षा का आयोजन किया जाता है जो वास्तविक स्वतन्त्रताओं का मूलाधार होती है। इस प्रकार आर्थिक नियोजन व्यक्ति की कुछ स्वतन्त्रताओं को प्रतिबन्धित करता और दूसरी ओर कुछ अन्य स्वतन्त्रताएँ प्रदान करता है। प्रायः प्राप्त होने वाली स्वतन्त्रताएं कहीं अधिक एवं वास्तविक होती हैं।

परन्तु स्वतन्त्रताओं का यह लाभ कुछ मूलभूत मान्यताओं पर निर्भर रहता है। यदि आर्थिक नियोजन का सचालन योग्य, ईमानदार एव उचित व्यक्तियों द्वारा किया जाता है जो सामाजिक कल्याण के लक्ष्य की उपलब्धि के लिए ईमानदारी एव तत्परता के साथ प्रयत्नशील रहते हैं तो जनसाधारण को जिन स्वतन्त्रताओं को खोना पड़ेगा उनसे कहीं अधिक वास्तविक स्वतन्त्रताएँ प्राप्त होंगी। इसी प्रकार जनसाधारण में जितनी अधिक जागरूकता, समझदारी एव अपनी स्वतन्त्रताओं को प्रभावशाली ढंग से मांगने की योग्यता होगी, उतनी ही अधिक स्वतन्त्रताएँ आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत उन्हें प्राप्त हो सकेंगी।

नियोजन के सिद्धान्त एव परिसीमाएँ तथा प्रो० हेयक के विचारो की आलोचना

[Principles and Limitations of Planning and Criticism of Prof Hayek s Views]

[नियोजन के सिद्धा त—राजकीय निय त्रण की सीमा, साधनो का उचित एव विवेकपूर्ण उपयोग सविधान द्वारा निर्धारित राज्य के कर्त्त व्यो की पूर्ति, अधिकतम जन समुदाय का अधिकतम कल्याण, प्राथमिकताओ के आधार पर प्रगति व्यक्तिगत एव सामाजिक हित म सम वय, राष्टीय सस्कृति की सुरक्षा, राष्टीय सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा एव समानता वित्त विनियोजन, रोजगार एव उत्पादन मे सम वय, आर्थिक उच्चावचनो से बचाव, समन्वित एव सार्वभौमिक विकास आर्थिक एव सामाजिक कल्याण मे सम वय—नियोजित अथ यवस्था की परिसीमाएँ—विधान का शासन नही रहता, उप भोक्ता एव पेशे की स्वतन्त्रता की समाप्ति तानाशाही का प्रादुर्भाव निजी साहस एव हित का विनाश, नियोजन के अन्तगत बुरे लोगो के हाथ मे सत्ता नियोजन दासता का माग वहद् अथशास्त्रीय सिद्धा तो का अधिक मान्यता, वतमान पीढ़ी मे असन्तोष नवीन तान्त्रिकताओ मे अप यय बुजुआपन एव लालफीताशाही, राजनीतिक परिवतनो का भय, अप्राकृतिक निय त्रणो मे त्रुटि प्राकृतिक परिस्थितियो की अनिश्चितता कृषि क्षेत्र का विकास असम्भावित, विदेशी सहायता का अभाव, मुद्रा स्फीति का भय]

नियोजन के सिद्धान्त

नियोजित अथ यवस्था का प्रमुख उद्देश्य अथ व्यवस्था को निर्धारित गतिविधि के साथ पूव निश्चित मार्गों स लेकर विकास की ओर अग्रसर करना होता है। यद्यपि नियोजित अथ व्यवस्था की काय प्रणाली देश की राजनीतिक विचारधाराओ एव आर्थिक ढाँचे पर निभर रहती है परन्तु यह काय प्रणाली कुछ सामा य सिद्धान्तो पर आधारित होती है। नियोजन के उद्देश्यो के आधार पर इन सिद्धान्तो का अस्तित्व प्रत्येक प्रकार के नियोजन म पाया जाता है। आधुनिक युग म आर्थिक नियोजन का उपयोग राष्ट्रीय उत्पादन मे वृद्धि एव आर्थिक व सामाजिक समानता उत्पन्न करने

के लिए किया जाता है और प्राय नियोजित अर्थ-व्यवस्था का प्रादुर्भाव पूँजीवाद के फलस्वरूप होता है और इसीलिए नियन्त्रित अर्थ-व्यवस्था में पूँजीवाद के दोषों को दूर करना एक सार्वभौमिक सिद्धान्त माना जाता है। अधिनायकवादी नियोजन (Fascist Planning) तथा साम्यवादी नियोजन में सिद्धान्तरूप से यह मान लिया जाता है कि देश के विकास के लिए देश की सैनिक दृष्टिकोण से अत्यन्त शक्तिशाली बनाना आवश्यक है। अधिनायकवादी नियोजन और आधुनिक काल में तो चीनी साम्यवादी में भी देश की सीमाओं को शक्ति द्वारा बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है। इसी कारण नियोजन के सिद्धान्तों में राष्ट्रीय सुरक्षा एवं सैनिक शक्ति को अधिक महत्व दिया जाता है। नियोजित अर्थ व्यवस्था में विकास कार्यक्रम निम्नलिखित सिद्धान्तों के आधार पर निर्धारित होते हैं

(१) **राजकीय नियन्त्रण की सीमा**—*नियोजन के कार्यक्रम निर्धारित करने के पूर्व राजकीय नियन्त्रण की सीमा निर्धारित कर लेना आवश्यक होता है क्योंकि इसी के आधार पर साधनों की उपलब्धि उपभोग की मात्रा, उत्पादन के लक्ष्य, आयात एवं निर्यात आदि सभी बातों का पूर्व-निश्चय किया जा सकता है। प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में राजकीय नियन्त्रण कठोर रूप धारण नहीं कर सकता है और इसी कारण यह निर्धारित करना आवश्यक होता है कि राज्य का नियन्त्रण किन किन आर्थिक क्रियाओं पर किस सीमा तक होगा। नियन्त्रण के आधार पर ही व्यक्तिगत स्वतन्त्रता* का निर्धारण भी सम्भव होता है।

(२) **साधनों का उचित एवं विवेकपूर्ण उपयोग (Proper and Rational Utilization of Resources)**—नियोजन द्वारा ऐसी व्यवस्था का संगठन किया जाय जिससे राष्ट्र के साधनों, वर्तमान तथा सम्भावित, का उचित एवं विवेकपूर्ण उपयोग किया जा सके। जब तक राष्ट्र के साधनों का सुनिश्चित उद्देश्यों के आधार पर उपयोग नहीं किया जाता नियोजन को सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। एक ओर सम्भावी साधनों का उपयोग किया जाय तथा दूसरी ओर वर्तमान उत्पादन के साधनों के उपयोग में आवश्यक समायोजन किया जाय, जिससे इनका उपयोग उत्पादन के उस क्षेत्र से हटाकर जिनको नियोजन अधिकारी ने महत्व नहीं दिया है ऐसे क्षेत्र में किया जाय जिन्हें नियोजन-कार्यक्रमों में स्थान प्राप्त है। साधनों की कमी होने पर उनका उपयोग विवेकपूर्ण होना चाहिए अर्थात उनके द्वारा उत्पादन के साधनों को बढ़ावा देने पूँजी निर्माण करने और विनियोजन बढ़ाने में सहायता मिलनी चाहिए। साथ ही साथ, उत्पादन के साधनों को उपभोग के क्षेत्र से हटाकर विनियोजन के क्षेत्र में लाना आवश्यक होता है। नियोजित अर्थ व्यवस्था का संगठन इस प्रकार किया जाय कि उत्पादन के साधनों का अत्यन्त मितव्ययतापूर्ण उपयोग करके अधिकतम उत्पादन के लक्ष्य की पूर्ति की जा सके। देश में उपलब्ध उत्पादन के समस्त साधनों, जिनमें श्रम भी सम्मिलित है, का अधिकतम उत्पादन एवं उपयोगी उपयोग

होना चाहिए। जब तक देश म विद्यमान एव सम्भाव्य समस्त उत्पादन के साधनो का उपयाग नही किया जायगा अधिकतम उत्पादन के लक्ष्य की पूर्ति नही हो सकती है। उत्पादन के समस्त साधनो का विभिन्न उत्पादन क्षेत्रो म इस प्रकार सम्मिलित (Combine) करना चाहिए कि उनस अधिकतम लाभ राष्ट्र को प्राप्त हो सक। इस प्रकार एक ओर विद्यमान साधनो का अधिकतम लाभप्रद उपयोग तथा दूसरी ओर सम्भावित साधनो की खोज करना नियोजन का सिद्धान्त है।

(३) **देश के सविधान द्वारा निर्धारित राज्य के कर्त्तव्यों की पूर्ति**—प्रत्येक राष्ट्र मे सविधान द्वारा राज्य का कर्त्तव्य होता है कि देश मे किस प्रकार के समाज की स्थापना करे और कभी कभी राज्य की आर्थिक नीति का समावेश देश के सविधान म पाया जाता है। उदाहरणार्थ भारत म राज्य का कर्त्तव्य है कि समस्त जन-समुदाय को पौष्टिक भोजन रोजगार एव सामाजिक समानता का आयोजन करे और इन उद्देश्यो की पूर्ति क लिए भारत सरकार ने देश म प्रजातान्त्रिक समाजवाद की स्थापना का लक्ष्य अपन सम्मुख रखा है। नियोजित अर्थ व्यवस्था को सविधान द्वारा निर्धारित राज्य के कर्त्तव्यो की पूर्ति क लिए उपयोग किया जाता है और अर्थ-व्यवस्था पर नियन्त्रण करके उसका इस प्रकार सचालन करना होता है कि निर्धारित उद्देश्यो की पूर्ति हो सके। वास्तव मे सविधान म जो जनसमुदाय को सरक्षण प्रदान किये जाते हैं उनके आधार पर नियोजन के कार्यक्रम निर्धारित किये जाते हैं।

(४) **अधिकतम जनसमुदाय का अधिकतम कल्याण**—नियोजित अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक समानता सामाजिक न्याय एव सामाजिक सुरक्षा का आयोजन करना आवश्यक समझा जाता है। आर्थिक नियोजन एक ओर राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि का आयोजन करता है और दूसरी ओर राष्ट्रीय आय क वितरण म समानता लाने के लिए प्रयत्न किये जाते हैं। साम्यवादी समाजवादी एव प्रजातान्त्रिक नियोजन म दलित वर्गों जो अपने आप म जनसख्या का बहुत बडा भाग होता है क जीवन-स्तर म सुधार करने के आयोजन किये जाते हैं। यह कहना उचित न होगा कि आर्थिक नियोजन सिद्धान्तरूप से समस्त जनसमुदाय के कल्याण की क्रिया है क्योंकि पूँजीपति का आर्थिक समानता की कार्यवाहियो से हानि होती है और साम्यवादी नियोजन म तो पूजीपति का श्रमिक म परिवर्तन कर दिया जाता है परन्तु यह सर्वथा सत्य है कि नियोजन द्वारा अधिकतम जनसमुदाय के अधिकतम कल्याण का आयोजन किया जाता है।

(५) **प्राथमिकताओ के आधार पर प्रगति**—आर्थिक नियोजन द्वारा देश की समस्त सामाजिक एव आर्थिक समस्याओ का निवारण करने का प्रयत्न किया जाता है। परन्तु अर्द्ध विकसित राष्ट्रो म समस्या अधिक और साधन कम होते हैं इस कारण समस्त समस्याओ का निवारण एक ही समय म सम्भव नही होता। ऐसी परिस्थिति म विभिन्न समस्याओ क महत्व के अनुसार प्राथमिकताए निर्धारित की जाती हैं और

विभिन्न क्षेत्रों का विकास कार्यक्रम ऐसी प्राथमिकताओं के आधार पर निर्धारित किया जाता है। यद्यपि आर्थिक नियोजन राष्ट्रीय जीवन के समस्त आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों पर आच्छादित होता है परन्तु यह क्रिया साधनों को दृष्टिगत करते हुए पूर्व निश्चित प्राथमिकताओं के आधार पर निर्धारित होती है।

(६) व्यक्तिगत एवं सामाजिक हित में समन्वय—आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत आर्थिक सत्ताओं का केन्द्रीयकरण राज्य के हाथों में होना स्वाभाविक होता है और राज्य समस्त देश को दृष्टिगत करते हुए कार्यक्रम निर्धारित करता है। ऐसी परिस्थिति में सामाजिक हित को व्यक्तिगत हित की तुलना में अधिक महत्व दिया जाता है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में प्रायः यह सिद्धान्त स्वीकार किया जाता है कि सामाजिक हित से व्यक्तिगत हित होता है अतः इसी कारणवश प्रायः व्यक्तिगत लाभ हेतु क्रियाओं को नियन्त्रित किया जाता है। साम्यवादी नियोजन में तो व्यक्तिगत हित सामाजिक हित के सर्वथा अधीन होता है परन्तु अन्य प्रकार की नियोजित अर्थ-व्यवस्था में सामाजिक एवं व्यक्तिगत हित में समन्वय स्थापित करने के प्रयत्न किये जाते हैं।

(७) राष्ट्रीय संस्कृति, सभ्यता एवं परम्पराओं को सुरक्षित रखना—नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत देश की संस्कृति को बनाये रखने एवं प्रोत्साहन देने के लिए आवश्यक आयोजन किये जाते हैं। इसके अन्तर्गत परम्परागत कलाओं, ऐतिहासिक एवं धार्मिक भवनों, प्राचीन साहित्य आदि को सुरक्षित रखने एवं उन्नतशील करने के लिए नियोजन में व्यवस्था की जाती है। सिद्धान्त रूप में यह माना जाता है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था देश की सभ्यता को बनाये रखने में सहायक होनी चाहिए।

(८) राष्ट्रीय सुरक्षा (National Security)—जब तक राष्ट्र में सुरक्षा की भावना न हो, कोई भी नियोजन-कार्यक्रम सफलतापूर्वक संचालित नहीं किया जा सकता। योजना के दीर्घकालीन कार्यक्रमों के संचालनार्थ राजनीतिक स्थिरता की आवश्यकता होती है और राजनीतिक स्थिरता तभी सम्भव है, जब राष्ट्र को पड़ोसी राष्ट्रों की ओर से आक्रमण आदि का भय न हो। नियोजन द्वारा राज्य को आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टिकोण से सुदृढ़ बनाया जाता है किन्तु यह स्थिरता राष्ट्रीय सुरक्षा की अनुपस्थिति में अल्पकालीन हो सकती है। यदि राष्ट्र को अपनी सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय साधनों का अधिक भाग व्यय करना पड़े तो आर्थिक विकास को पर्याप्त साधन उपलब्ध होना असम्भव है। नियोजन की सफलता के लिए राष्ट्र का इतना शक्तिशाली बनाना अनिवार्य है कि अन्य दूसरे राष्ट्रों से किसी प्रकार का भय न हो। १६वीं शताब्दी में राष्ट्र की सुरक्षा के लिए खाद्य-सामग्री को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता था क्योंकि वही देश युद्ध में सफल होता था जो अपनी सेना को पर्याप्त खाद्य-सामग्री अधिक काल तक प्रदान कर सकता था परन्तु आधुनिक युग में यन्त्र, उद्योग, यातायात एवं संचार तथा खनिज का महत्त्व अधिक हो गया है। आज के युद्ध में मनुष्य नहीं प्रत्युत् अस्त्र-शस्त्र अधिक महत्वपूर्ण हैं अतः आज वही देश युद्ध विजयी है जिसके पास

संगठित उद्योग लोहा एवं इस्पात का पर्याप्त उत्पादन तथा शक्ति के साधनों—कोयला पट्रोलियम तथा विद्युत शक्ति की पर्याप्त एवं सुगम उपलब्धि है। इस प्रकार राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से नियोजन द्वारा राष्ट्र के उद्योगों को शक्तिशाली सुसंगठित एवं पर्याप्त बनाना आवश्यक है।

नियोजित अर्थ-व्यवस्था के राष्ट्रीय सुरक्षा के सिद्धान्त का ज्वलन्त उदाहरण भारतीय तृतीय योजना को चीनी एवं पाकिस्तानी आक्रमण के पश्चात् सुरक्षा सम्बन्धी पुट देना है।

(९) सामाजिक सुरक्षा एवं समानता—नियोजित अर्थ-व्यवस्था से देश में आय एवं धन के समान वितरण की व्यवस्था की जाती है और आर्थिक विषमताओं को कम करने के लिए प्रभावशाली कार्यवाहियाँ की जाती हैं। अवसरों की समानता के लिए समस्त जनसमुदाय को उनकी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार प्रशिक्षण एवं शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जाती है।

(१०) वित्त, विनियोजन, रोजगार एवं उत्पादन में समन्वय—नियोजित अर्थ-व्यवस्था में आन्तरिक अर्थ साधनों को बढ़ाने एवं सक्रिय बनाने के लिए उचित एवं समन्वित वित्तीय एवं मौद्रिक नीतियों का संचालन किया जाता है और इन साधनों को वांछित क्षेत्रों में इस प्रकार विनियोजित किया जाता है कि रोजगार में वृद्धि होने के साथ उत्पादन में निरन्तर वृद्धि होती रहे। ऐसी वित्तीय संस्थाओं की स्थापना की जाती है जो विनियोजकों तथा विनियोजन प्राप्त करने वाली संस्थाओं में सम्बन्ध स्थापित कर सकें।

(११) आर्थिक उच्चावचनों से बचाव—नियोजित अर्थ-व्यवस्था में सरकार देश की आर्थिक क्रियाओं में सक्रिय भाग लेती है और नियोजन अधिकारी अर्थ-व्यवस्था को आर्थिक उच्चावचनों से बचाने के लिए निरन्तर सतर्क रहता है और आवश्यकता पड़ने पर सरकार द्वारा इन उच्चावचनों के गम्भीर स्थिति ग्रहण करने के पूर्व देशव्यापी उचित कार्यवाहियाँ की जाती हैं। ये कार्यवाहियाँ इसलिए अधिक प्रभावशाली होती हैं कि समस्त देश को एक आर्थिक इकाई मानकर आर्थिक समायोजन किए जाते हैं तथा अर्थ-व्यवस्था को अपने आप समायोजित होने के लिए मुक्त नहीं छोड़ दिया जाता है।

(१२) समन्वित एवं सार्वभौमिक विकास—नियोजित व्यवस्था के अन्तर्गत जन साधारण के जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए कार्यक्रम संचालित किए जाते हैं। अर्थ-व्यवस्था के समस्त क्षेत्रों के समन्वित विकास का आयोजन किया जाता है और इस प्रकार किसी भी क्षेत्र को पिछड़ा नहीं छोड़ा जाता है। आर्थिक क्रियाओं का जान बूझकर इस प्रकार संचालन किया जाता है कि एक आर्थिक क्रिया दूसरी आर्थिक क्रिया के लिए विनाशकारी सिद्ध न हो और विभिन्न आर्थिक क्रियाएँ एक दूसरे की पूरक एवं सहायक रहें।

(१३) आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण में समन्वय—नियोजित अर्थ-व्यवस्था का अन्तिम लक्ष्य आर्थिक प्रगति के स्थान पर सामाजिक कल्याण होता है और आर्थिक प्रगति सामाजिक कल्याण का एक साधनमात्र समझी जाती है। इसलिए आर्थिक प्रगति द्वारा जिन दोषों एवं सामाजिक कठिनाइयों का प्रादुर्भाव होता है उन्हें दूर करने का आयोजन किया जाता है। श्रम-कल्याण, श्रम-नीति, रोजगार की सुरक्षा, स्वास्थ्य की सुरक्षा, उचित निवास-गृहों की व्यवस्था, औद्योगिक नगरों में दबाव आदि का आयोजन करके सामाजिक दोषों को दूर किया जाता है।

नियोजित अर्थ-व्यवस्था की परिसीमाएँ एवं प्रो० हेयक के विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन

नियोजित अर्थ-व्यवस्था की परिसीमाएँ

नियोजन की परिसीमाओं पर विचार करते समय हमें प्रोफेसर हेयक की प्रसिद्ध पुस्तक 'दासता का मार्ग' (Road of Serfdom) में प्रकट किए विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन करना चाहिए। यह पुस्तक सन् १९४४ में प्रकाशित की गयी, जबकि सोवियत रूस द्वारा आर्थिक नियोजन से आश्चर्यजनक प्रगति करके समस्त संसार के अर्थशास्त्रियों का नियोजित अर्थ-व्यवस्था के गुण-दोषों एवं उपयुक्तता के सम्बन्ध में विचार करने के लिए विवश किया। प्रो० हेयक के विचारों का खण्डन हर्मन फाइनर (Herman Finer) ने अपनी पुस्तक, Road to Reaction अर्थात् 'प्रतिक्रिया का मार्ग' द्वारा तथा प्रो० डर्बिन (Darbin) ने अपने लेख Problems of Economic Planning अर्थात् 'आर्थिक नियोजन की समस्याएँ' द्वारा किया। प्रो० हेयक के विचारों की विवेचना निम्न प्रकार की जा सकती है

(१) विधान का शासन नहीं रहता—प्रो० हेयक ने इस विचार का कि नियोजित अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत विधान का शासन नहीं हो सकता, खण्डन प्रोफेसर हर्मन फाइनर (Herman Finer) द्वारा किया गया। प्रो० हेयक के अनुसार विधान का शासन उसे समझना चाहिए जब समस्त निर्णय पूर्व निर्धारित नियमों के अनुसार किए जायें और सरकार को इन नियमों को परिवर्तित करने के लिए जनसाधारण की अनुमति लेनी चाहिए। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में आर्थिक निर्णय करने के अधिकार नियोजन अधिकारी को दिए जाते हैं, जो परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुसार आर्थिक निर्णयों में हेर फेर करता रहता है। किसी विशेष समय पर विद्यमान परिस्थितियों के अनुसार आर्थिक निर्णयों का निर्धारण किया जाता है। आर्थिक निर्णयों को इस प्रकार निरन्तर बदलते रहना पड़ता है जो प्रतिनिधि सभा द्वारा नहीं किया जाता है। यह परिवर्तन जानबूझकर नियुक्त अधिकारी द्वारा किए जाते हैं जिससे विधान के अनुसार शासन संचालित हो ही नहीं सकता। इस प्रकार इस अधिकारी को पूर्व-निर्धारित नियमों के उल्लंघन का अधिकार मिल जाता है जिसके फलस्वरूप विधान के शासन को ठेस पहुँचती है। प्रो० हेयक ने नियोजित अर्थ-व्यवस्था का सञ्चालन

केन्द्रीय अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत सम्भव समझा था जिसमें समस्त निर्णय कुछ गिने-चुने अधिकारियों द्वारा किए जाते हैं परन्तु आर्थिक नियोजन प्रजातान्त्रिक अर्थ-व्यवस्था में भी सचालित की जाती है जिसमें निर्णय जनसाधारण की अनुमति द्वारा किए जाते हैं और नियमों एवं अधिनियमों को बनाना एवं सुधारना जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में होता है। आर्थिक नियोजन के सचालनार्थ यह अनिवार्य नहीं होता कि योजना अधिकारी द्वारा निर्धारित बजट को अनिवार्य रूप से दबाव द्वारा लागू किया जाय और जनसाधारण की आर्थिक स्वतन्त्रताओं को सर्वथा प्रतिबंधित कर लिया जाय। प्रो० हयक का यह विचार कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था द्वारा शासन एवं अधिकार का अधिकतम केन्द्रीयकरण किया जाता है उचित नहीं है। वास्तव में नियोजन के अन्तर्गत राष्ट्रीय प्रयासों को इस प्रकार सगठित समन्वित एवं सुगठित किया जाता है कि जनसाधारण का अधिकतम हित हो सके। इस कार्य के लिए विभिन्न राजनीतिक विधियों का उपयोग किया जा सकता है। यह देश के सत्तारूढ़ राजनीतिक दल पर निर्भर रहता है कि वह तानाशाही अथवा प्रजातान्त्रिक विधियों में से किसका उपयोग करता है।

(२) उपभोक्ता एवं पेशे की स्वतन्त्रता की समाप्ति—प्रो० हयक का विचार है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत उपभोक्ता को अपनी इच्छानुसार उपभोग तथा जनसाधारण को अपनी इच्छानुसार पेशा अथवा व्यवसाय चलाने की स्वतन्त्रता नहीं रहती है और योजना अधिकारी केवल उन्हीं वस्तुओं के उत्पादन की अनुमति देता है जिन्हें वह उचित समझता है और उसके द्वारा निर्धारित उत्पादन के पेशों को सचालित करने हेतु जनसाधारण को अपने पेशे एवं व्यवसाय चुनने पड़ते हैं। प्रो० हयक का यह विचार कुछ सीमा तक सत्य है परन्तु इस सम्बन्ध में इतनी कठोरता नहीं अपनायी जाती है कि जनसाधारण को कठिनाई महसूस हो। वास्तव में नियोजित अर्थ व्यवस्था में विवेकपूर्ण विचारधारा एवं जनसाधारण की सुविधाओं को ध्यान में रखकर निर्णय किए जाते हैं क्योंकि बिना इनके कोई भी योजना जनसहयोग की अनुपस्थिति में अधिक समय तक सफलतापूर्वक सचालित नहीं की जा सकती है। नियोजन के अन्तर्गत केवल अवांछित क्रियाओं उपभोग एवं उत्पादन को प्रतिबंधित एवं नियन्त्रित किया जाता है। अनियोजित अर्थ-व्यवस्था द्वारा प्रदान की गयी उपभोग की स्वतन्त्रता केवल उन्हीं लोगों के लिए वास्तविक है जिनके पास पर्याप्त क्रय-शक्ति होती है अर्थात् केवल धनी-वर्ग ही इस स्वतन्त्रता का वास्तविक उपयोग कर सकता है। दूसरी ओर नियोजित अर्थ-व्यवस्था में निर्धन वर्ग को सम्पन्न बनाने के लिए कार्यक्रम सचालित किए जाते हैं जिसके फलस्वरूप उनकी क्रय-शक्ति एवं जीवन-स्तर में वृद्धि होती है और वह वर्ग उन वस्तुओं का उपभोग कर पाता है जो उसे अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में निर्धनता के कारण उपलब्ध नहीं होता है।

प्रो० हयक का विचार है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था में मूल्य की तान्त्रिकताओं

को स्वतन्त्रता से काम नहीं करने दिया जाता है जिसके फलस्वरूप उपभोक्ता एवं उत्पादक दोनों की स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है। वास्तव में नियोजित अर्थ-व्यवस्था में मूल्य की शक्तियों को खुली छूट नहीं दी जाती है। उनको इस प्रकार नियमित एवं नियन्त्रित किया जाता है कि अर्थ-व्यवस्था में से शोषण के तत्व को हटाया जा सके और समस्त राष्ट्र के आर्थिक हित के लिए उचित कार्यवाहियाँ की जा सकें। कुछ सीमा तक हमें प्रो० हेयक की इस बात से सहमत होना पड़ेगा कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत उपभोक्ताओं एवं उत्पादकों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं को सीमित कर दिया जाता है परन्तु ये सीमाएँ राष्ट्रीय हित के लिए लगायी जाती हैं इसलिए इनको अविवेकपूर्ण एवं तानाशाही कार्यवाही किसी प्रकार नहीं कहा जा सकता है। अर्थ-व्यवस्था के छोटे से समूह वर्ग की स्वतन्त्रताओं को सीमित करके बहुत बड़े निर्धन-वर्ग के आर्थिक कल्याण का आयोजन नियोजित अर्थ-व्यवस्था में किया जाता है।

प्रो० हेयक ने यह विचार भी व्यक्त किया कि नियोजन द्वारा व्यक्तिगत चरित्र (Individual s Moral Power) में भी कमी होती है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में उत्पादन के समस्त साधन समाज के अधिकार में होते हैं और इनका उपयोग एक ही योजना के अनुसार किया जाता है। इस प्रकार समस्त निर्णय एक सामाजिक एवं सामूहिक विचारधारा के अनुसार किए जाते हैं जिसके फलस्वरूप व्यक्ति को यह निर्णय करने का अधिकार कि 'क्या करना चाहिए' और 'क्या नहीं करना चाहिए' प्राप्त नहीं होता है। अन्ततः व्यक्ति की चारित्रिक शक्ति का विनाश होने लगता है। प्रो० हेयक का यह विचार भी न्यायसंगत नहीं है क्योंकि प्रजातान्त्रिक समाजवाद के अन्तर्गत नियोजन का सचालन करते समय व्यक्तिगत निर्णयों पर इतना अधिक कठोर नियन्त्रण नहीं किया जाता है। आर्थिक निर्णयों के क्षेत्र के बाहर भी व्यक्ति को बहुत से अन्य निर्णय करने होते हैं जिससे उसकी निर्णय करने की शक्ति को क्षति पहुँचना आवश्यक नहीं है।

(३) तानाशाही को जन्म मिलता है—प्रो० हेयक का विचार है कि नियोजन का सफल सचालन केवल तानाशाही राजनीतिक व्यवस्था में ही सकता है। इसी कारण सत्तारूढ़ अधिकारी नियोजन के सचालनार्थ धीरे धीरे तानाशाह बन बैठते हैं और जनसाधारण के हित के स्थान पर उनका उद्देश्य अपनी व्यक्तिगत सत्ता एवं हितों का पोषण करना भर रह जाता है। प्रो० हेयक का सम्भवतः इस तर्क से यह तात्पर्य है कि राज्य जो पहले से ही राजनीतिक सत्ता का केन्द्र होता है और जब उसे आर्थिक सत्ताओं का भी केन्द्र बना दिया जाता है तो वह इतना शक्तिशाली बन जाता है कि उसके सर्वोच्च अधिकारी पथ भ्रष्ट होकर तानाशाही प्रवृत्तियों के शिकार बन जाते हैं। प्रो० हेयक का यह विचार काफी तथ्यपूर्ण प्रतीत होता है परन्तु इसमें नियोजित अर्थ-व्यवस्था को दोषपूर्ण ठहराना न्यायोचित नहीं होगा क्योंकि नियोजित अर्थ-व्यवस्था तो एक साधन अथवा यान्त्रिकतामात्र है जिसके उपयोग से अच्छे एवं बुरे

दोनों ही प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति हो सकती है। वास्तव में जब प्रजातन्त्र के अन्तर्गत नियोजन का संचालन किया जाता है तो सत्ताओं के विकेन्द्रीकरण को विशेष महत्व प्रदान किया जाता है और छोटी छोटी प्रजातान्त्रिक संस्थाओं की स्थापना की जाती है, जो नियोजित कार्यक्रमों के संचालन में सहयोग देती है। इस प्रकार सत्ताओं के विकेन्द्रीकरण द्वारा तानाशाही प्रवृत्तियाँ नियोजित अर्थ-व्यवस्था के संचालित रहते हुए भी पनपने नहीं पाती हैं।

प्रो० हेयक ने वास्तव में नियोजन के अन्तर्गत पूर्णतः समाजवादी व्यवस्था की स्थापना को अनिवार्य माना है। उन्होंने मिश्रित अर्थ व्यवस्था की विचारधारा पर कोई ध्यान नहीं दिया। आधुनिक युग में मिश्रित अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत जब नियोजन का संचालन किया जाता है तो व्यक्तिगत क्षेत्र को सर्वथा प्रतिबन्धित नहीं किया जाता है तथा व्यक्तिगत आर्थिक स्वतन्त्रताओं को कुछ सीमा तक जीवित रखा जाता है। इस प्रकार नियोजन द्वारा तानाशाही का उदय होना आवश्यक नहीं है।

(४) निजी साहस एवं हित का विनाश—प्रो० हेयक के विचार में केवल दो प्रकार की अर्थ व्यवस्थाओं का आभास मिलता है—प्रतियोगितापूर्ण अथवा निजी अर्थ व्यवस्था एवं समाजवादी अर्थ व्यवस्था। उनके अनुसार समाजवादी अर्थ व्यवस्था में समस्त आर्थिक साधन राज्य के हाथ में होते हैं जो सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाओं का संचालन करता है परन्तु आधुनिक काल में कठोर समाजवाद अथवा राजकीय समाजवाद के स्थान पर प्रजातान्त्रिक समाजवाद को अधिक मान्यता प्रदान की जाती है जिसके अन्तर्गत सरकारी, निजी सहकारी एवं मिश्रित सभी क्षेत्रों के विकास हेतु पर्याप्त अवसर प्रदान किये जाते हैं। इस कारण मिश्रित अर्थ-व्यवस्था को आधुनिक काल में अधिक सफल एवं प्रभावशाली समझा जाता है। दूसरी ओर प्रो० हेयक द्वारा जिस पूर्ण प्रतियोगितापूर्ण अर्थ व्यवस्था का प्रतिपादन किया गया है वह स्वतन्त्र यतेच्छाकारी अर्थ व्यवस्था आधुनिक युग में किसी भी देश में नहीं पायी जाती है। संयुक्त राज्य अमरीका प्रतियोगी अर्थ व्यवस्था का आजकल आदर्श माना जाता है परन्तु इस राष्ट्र में भी सरकार द्वारा अर्थ व्यवस्था में समय समय पर हस्तक्षेप किया जाता है जिससे पूँजीवाद के दोषों एकाधिकार धन के असमान वितरण सामाजिक भेद भाव एव व्यापारिक कुरीतियों को नियन्त्रित एवं प्रतिबन्धित किया जा सके। इस प्रकार प्रो० हेयक की केवल दो अर्थ व्यवस्थाओं की विचारधारा तर्कसंगत प्रतीत नहीं होती है।

प्रो० हेयक के अनुसार 'हमारी पीढ़ी ने यह भुला दिया है कि निजी सम्पत्ति की पद्धति केवल उन्हीं लोगों को स्वतन्त्रता का आश्वासन प्रदान नहीं करता है जिनके अधिकार में सम्पत्ति है बल्कि उनको भी जिनके पास सम्पत्ति नहीं है उत्पादन के साधन बहुत से लोगों में वितरित होने के कारण ही किसी भी एक व्यक्ति का हमारे ऊपर सम्पूर्ण नियन्त्रण करने का अधिकार नहीं होता। प्रो० हेयक का यह विचार तब ही मान्य समझा जा सकता है जब हम व्यक्तिगत अधिकार को मान्यता देते हैं। जब

उत्पादन के साधन एक व्यक्ति के स्थान पर समस्त समाज के अधिकार में रहे जाते हैं तो स्वतन्त्रता के विनाश का भय उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं होता है।

(५) नियोजन के अन्तर्गत बुरे लोगों के हाथ में सत्ता पहुँचती है—आर्थिक नियोजन द्वारा जिन लोगों के हाथों में सत्ता का केन्द्रीयकरण होता है उनमें बुरी आदतों का प्रादुर्भाव होता है। वे जनसाधारण को कैम्पों में रखकर उन पर जुल्म करने लगते हैं। यह सब सरकारी संगठन के रूप में कार्य करते हैं। हेयक के विचार में नियोजन द्वारा सैनिक निर्देशन (Military Regimentation) का प्रादुर्भाव होता है क्योंकि नियोजन का एक ही ज्ञात (Concious) लक्ष्य होता है। जिस प्रकार युद्ध में युद्ध पर विजय पाना एकमात्र लक्ष्य होता है और इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए सैनिकों को सेनापति के आदेशों का अक्षरशः पालन करना आवश्यक होता है उसी प्रकार जब नियोजन के द्वारा अर्थ-व्यवस्था का पूर्व निर्धारित एक ही लक्ष्य की ओर सञ्चालित किया जाता है तो जनसाधारण को नियोजन अधिकारी के निर्देशों का अक्षरशः पालन करना आवश्यक होता है। इस प्रकार नियोजन द्वारा तानाशाही एवं स्वेच्छाचारिता का उदय अत्यन्त स्वाभाविक होगा। वास्तव में हेयक के इन विचारों का आधार रूस एवं जर्मनी में आर्थिक नियोजन की सञ्चालन विधि थी। रूस में नियोजन के प्रारम्भिक काल में कठोरता के साथ सैनिक दबाव द्वारा आर्थिक नीतियों का सञ्चालन किया गया। परन्तु नियोजन के अन्य देशों के अनुभवों से यह स्पष्ट है कि नियोजन द्वारा तानाशाही का प्रादुर्भाव होना आवश्यक नहीं है।

(६) नियोजन दासता का मार्ग है—प्रो० हेयक के विचार में मुक्त व्यवसाय की व्यवस्था में यदि कोई हेर फेर किया गया तो आर्थिक नियोजन का उदय हो जाना आवश्यक होगा अर्थात् आर्थिक क्रियाओं का विवेक एवं विज्ञान के उपयोग से यदि सुधारने का प्रयास किया जाय तो आर्थिक नियोजन का प्रादुर्भाव होगा और यह आर्थिक नियोजन दासता को जन्म देता है। हेयक के विचार में मुक्त व्यवसाय (Free Enterprise) पद्धति को सर्वोच्च महत्त्व दिया जाना चाहिए और इसमें कितने भी दोष होते हुए भी यदि उसमें कोई नियन्त्रण अथवा नियमन किया गया तो दासता का प्रादुर्भाव होना स्वाभाविक होगा। आर्थिक नियोजन का आधार विवेक एवं विज्ञान होते हैं और नियोजन का उपयोग न करने का अर्थ यह ही है कि सामाजिक क्षेत्र में विवेक एवं विज्ञान का उपयोग न किया जाय। मुक्त व्यवसाय पद्धति के अन्तर्गत उत्पादक एक अन्धे के समान प्रतिस्पर्धा करता है क्योंकि उसे यह ज्ञात नहीं होता है कि उसकी क्रियाओं का क्या फल होगा। दूसरी ओर आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत समस्त उपलब्ध साधनों का सर्वेक्षण करके समस्त अर्थ-व्यवस्था की आवश्यकताओं का ध्यान में रखकर निर्णय किया जाता है। इस प्रकार आर्थिक नियोजन में 'कारण और प्रभाव दोनों की जानकारी रहती है और ऐसी नियोजित अर्थ-व्यवस्था को जानकार (Concious) अर्थ-व्यवस्था कहा जाता है। प्रो० हेयक का यह विचार किसी प्रकार

भी उचित नहीं प्रतीत होता कि आर्थिक क्रियाओं के सगठन के लिए कारण एवं प्रभाव की जानकारी का उपयोग न किया जाय।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि प्रो० हेयक द्वारा प्रकट किए गये विचार पूर्णत सत्य नहीं हैं परन्तु उनके द्वारा नियोजित अर्थ की आलोचनाएँ, नियोजित अर्थ व्यवस्था की परिसीमाओं की ओर अवश्य सकेत करती हैं। इन परिसीमाओं के अतिरिक्त विभिन्न राष्ट्रों मे नियोजन के सचालन द्वारा प्राप्त अनुभवों के आधार पर नियोजन की निम्न परिसीमाएँ और अकित की जा सकती है—

(१) वृहद् अर्थशास्त्रीय (Macro Economics) सिद्धान्तों को अधिक मान्यता—नियोजित अर्थ व्यवस्था में नियोजन अधिकारी द्वारा निर्णय अर्थ-व्यवस्था में एक इकाई मान कर किए जाते हैं और व्यक्ति एवं व्यक्तिगत इकाइयों के आर्थिक हित को द्वितीयक स्थान प्राप्त होता है। यह मान लिया जाता है कि समस्त अर्थ व्यवस्था इन व्यक्तियों एवं व्यक्तिगत इकाइयों से बनी है और जब समस्त समूह का विकास होता है तो उसके पृथक पृथक भागों का विकास स्वाभाविक ही है परन्तु अनुभवों से ज्ञात होता है कि विकास कार्यक्रमों का लाभ अर्थ व्यवस्था के समस्त भागों को समान रूप से प्राप्त नहीं होता है और सम्पन्न क्षेत्रों के साथ निर्धन एवं आर्थिक दृष्टिकोण से पिछड़े हुए क्षेत्र ज्यों के त्यों बने रहते हैं। नियोजित अर्थ व्यवस्था के वृहद् अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तों के फलस्वरूप उन क्षेत्रों में जिनको विकास का लाभ प्राप्त नहीं होता असन्तोष की भावना जाग्रत होती है।

(२) वर्तमान पीढ़ी (Generation) में असन्तोष—नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत *विकास के सम्बन्ध में दीर्घकालीन उद्देश्य निर्धारित होते हैं और इन* उद्देश्यों की पूर्ति हेतु कार्यक्रम निर्धारित किए जाते हैं। योजना में सम्मिलित बहुत सी परियोजनाएँ दीर्घ काल में पूरी होती हैं। इस प्रकार वर्तमान पीढ़ी को अपने उपभोग एवं सुविधाओं का *त्याग कर* अधिक बचत एवं विनियोजन के लिए योगदान देना होता है जिसके द्वारा सचालित परियोजनाओं का लाभ आगे आने वाली पीढ़ियों को प्राप्त होता है। साम्यवादी राष्ट्रों में यह त्याग इतना अधिक होता है कि जीवन कठोरतम बन जाता है। यह परिस्थिति वर्तमान पीढ़ी में उत्साह को कम करती है और असन्तोष को जन्म देती है।

(३) नवीन तान्त्रिकताओं एवं विधियों के प्रयोग में अपव्यय—प्रायः नियोजन *द्वारा असाधारण एवं आश्चर्यजनक सफलताएँ प्राप्त करने के प्रयत्न* किए जाते हैं, जिसके लिए अर्थ व्यवस्था में उचित समायोजन करने के प्रयत्न किए जाते है। इन समायोजनाओं के लिए ऐसी तान्त्रिकताओं एवं विधियों का *उपयोग किया जाता है,* जिनकी सफलता पर स्वयं नियोजन अधिकारियों को भी पूर्ण विश्वास नहीं होता है। इन विधियों के उपयोग में परीक्षण एवं त्रुटि (Trial and Error) के सिद्धान्त को

अपनाया जाता है जिसके फलस्वरूप साधनों एवं प्रयासों का अपव्यय होता है और कभी-कभी कुछ परियोजनाएँ अधूरी ही छोड़ दनी पड़ती हैं।

(४) **नौकरशाही एवं लालफीताशाही का बोलबाला (Bureaucracy and Red Tapism)**—आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत स्वभावतः राज्य को आर्थिक क्रियाओं में सक्रिय भाग लेना पड़ता है और राज्य द्वारा की जाने वाली क्रियाएँ राज्य के प्रशासनिक कर्मचारियों द्वारा संचालित की जाती हैं। यह कर्मचारी प्रशासन सम्बन्धी जटिल नियमों का अक्षरशः विधान-कार्यक्रमों पर भी लागू करते हैं। इनमें प्रारम्भिकता एवं जोखिम लेने की क्षमता का अभाव होता है और अधिकतर अधिकारी उत्तरदायित्वपूर्ण निर्णय शीघ्र एवं समय पर नहीं लेते हैं। सरकारी फाइलें (Files) एक कार्यालय से दूसरे कार्यालय तथा एक अधिकारी से दूसरे अधिकारी के पास घूमने के पश्चात भी किसी निश्चय पर नहीं पहुँच पाती हैं। सरकारी अधिकारियों का व्यक्तिगत उत्तरदायित्व न होने के कारण कार्य के प्रति लगन एवं रुचि भी नहीं होती है। इन सब दोषों के साथ रिश्वतखोरी, गबन आदि का भी बोलबाला हो जाता है।

(५) **राजनीतिक परिवर्तनों का भय**—जैसा अभी बताया गया कि नियोजित अर्थ व्यवस्था में दीर्घकालीन कार्यक्रम एवं उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं जिनकी पूर्ति हेतु समन्वित एवं समान नीतियों का दीर्घ काल तक संचालन करना आवश्यक होता है। देश में राजनीतिक उथल-पुथल के फलस्वरूप आधारभूत नीतियाँ बदल जाती हैं और नियोजित अर्थ व्यवस्था को आघात पहुँचने के साथ बहुत सी अधूरी परियोजनाओं पर किए गए व्यय व्यर्थ जाते हैं।।

(६) **अप्राकृतिक आर्थिक नियन्त्रणों में त्रुटि का भय**—*नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत मूल्य माँग एवं पूर्ति को अपने आप स्वतन्त्रता से समायोजित होने* के लिए छोड़ा नहीं जाता है। नियोजन-अधिकारी बाजार-यान्त्रिकताओं (Market Mechanism) को इस प्रकार नियन्त्रित करने का प्रयत्न करता है कि विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्य, माँग एवं पूर्ति में योजना के उद्देश्यों के अनुकूल अप्राकृतिक सन्तुलन स्थापित हो सके। इस अप्राकृतिक सन्तुलन को क्रियान्वित करने के लिए बहुत-से आर्थिक नियन्त्रणों का उपयोग किया जाता है जिनके द्वारा *सम्भावित प्रभाव उत्पन्न* नहीं होते हैं और सन्तुलन को बनाए रखना अत्यन्त कठिन हो जाता है। *विभिन्न नियन्त्रणों में किसी एक के भी ठीक प्रकार संचालित न होने पर अर्थ-व्यवस्था के समस्त क्षेत्रों पर गलत प्रभाव पड़ता है।*

(७) **प्राकृतिक परिस्थितियों की अनिश्चितता**—नियोजित अर्थ व्यवस्था के के अन्तर्गत जो लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं वे वर्तमान परिस्थितियों एवं भविष्य के अनुमानों पर आधारित रहते हैं परन्तु प्राकृतिक परिस्थितियाँ इतनी अनिश्चित होती हैं कि उनके सम्बन्ध में कोई अनुमान ठीक प्रकार से नहीं लगाया जा सकता है। अर्थ व्यवस्था के ऐसे क्षेत्र जिन पर प्राकृतिक परिस्थितियाँ प्रभाव डालती हैं उनका

विकास लक्ष्य के अनुसार होना अत्यन्त कठिन होता है। कृषि प्रधान अल्प विकसित राष्ट्रों में कृषि का विकास इसलिए नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत लक्ष्य के अनुसार प्राप्त नहीं हो पाता है। कृषि क्षेत्र में नियमित प्रगति न होने पर नियोजित अर्थ-व्यवस्था छिन्न भिन्न होने का भय रहता है।

(८) **कृषि क्षेत्र का विकास असम्भावित**—कुछ अर्थशास्त्रियों का विचार है कि केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था (Centralised Economy) में कृषि का पर्याप्त विकास नहीं किया जा सकता है। कृषि क्षेत्र में निजी प्रारम्भिकता, निर्णय एवं जोखिम की आवश्यकता प्रत्येक कार्यवाही करते समय होती है। केन्द्रीय अर्थ-व्यवस्था में प्रत्येक आर्थिक क्रिया आदेशों के अनुसार की जाती है और निजी निर्णयों को कोई स्थान नहीं दिया जाता है। इसी कारण हम देखते हैं कि साम्यवादी राष्ट्रों में कृषि क्षेत्र की प्रगति औद्योगिक क्षेत्र की तुलना में कम रही है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत भी कृषि विकास के लिए की गयी केन्द्रीय कार्यवाहियाँ अधिक उपयुक्त नहीं होती हैं और इसके लिए विकेन्द्रित संस्थाओं एवं निजी प्रोत्साहन की आवश्यकता होती है जिनको योजना अधिकारों के निर्णयों के अनुसार संचालित करना अत्यन्त कठिन होता है। कुछ सीमा तक इस प्रकार यह कहना ठीक है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था कृषि-विकास की तुलना में औद्योगिक विकास के अधिक उपयुक्त होती है।

(९) **विदेशी सहायता का अभाव**—नियोजित अर्थ-व्यवस्था के द्वारा *प्रत्येक राष्ट्र यह प्रयत्न करता है कि वह अधिक से अधिक क्षेत्रों में आत्मनिर्भर* हो सके और इसके लिए अपने ही देश में उत्पादक एवं पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगों का विस्तार एवं विकास करना होता है, जो बिना विदेशी सहायता—धन तान्त्रिक जानकारी एवं विशेषज्ञों के रूप में—सम्भव नहीं हो सकता है। विदेशी सहायता का प्रवाह दीर्घ काल तक जारी रहने पर ही नियोजन के लक्ष्यों की पूर्ति की जा सकती है। परन्तु राजनीतिक कारणों एवं अन्तर्राष्ट्रीय वैमनस्य के कारण विदेशी सहायता दीर्घ काल तक प्राप्त होना प्राय सम्भव नहीं होता है और कभी कभी नियोजन अधिकारी विदेशी सहायता के साथ जुड़ी हुई कठोर राजनीतिक शर्तों को मानकर विदेशी सहायता प्राप्त करने को राजी हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप देश में राजनीतिक दासता का भय उत्पन्न होता है। यह बात इण्डोनेशिया के हाल के दंगों से पुष्ट हो जाती है क्योंकि इन दंगों द्वारा आर्थिक एवं सैनिक सहायता प्रदान करने वाले चीन *ने सत्ता को ऐसी सरकार के हाथों में दिलवाने का प्रयत्न किया जो चीन के हाथों* की कठपुतली हो।

(१०) **मुद्रा स्फीति का भय**—नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत अधिक विनियोजन करने की आवश्यकता होती है, जिसके लिए पर्याप्त धन एकत्रित करने हेतु मुद्रा प्रसार का उपयोग किया जाता है। यदि विनियोजन का उत्पादक क्रियाओं में उचित अथवा पूर्णतम एवं प्रभावशाली उपयोग नहीं किया जाता है तो मूल्य-स्तर

बढ़ने लगते हैं। पर्याप्त नियन्त्रण-व्यवस्था न होने पर मूल्य-स्तर की एक वृद्धि आगे की वृद्धि का कारण बन जाती है और इस प्रकार जब यह चक्र जारी हो जाता है तो अर्थ-व्यवस्था आर्थिक विप्लव (Economic Chaos) की ओर अग्रसर हो जाती है।

नियोजित अर्थ-व्यवस्था की परिसीमाओं का अध्ययन करने से स्पष्ट है कि इनमें अधिकतर परिसीमाएँ नियोजित अर्थ व्यवस्था का कुशलतापूर्वक न चलाने के कारण उदय होती हैं। यदि अनियोजित अर्थ-व्यवस्था की नियोजित अर्थ-व्यवस्था की परिसीमाओं से तुलना करें तो हमें ज्ञात होता है कि बाद वाली परिसीमाएँ अत्यन्त कम गम्भीर हैं। इसके अतिरिक्त नियोजित अर्थ-व्यवस्था की परिसीमाओं का ज्ञान शीघ्र हो जाता है और उनके कारणों का पता लगाना भी सम्भव होता है क्योंकि नियोजित अर्थ-व्यवस्था एक खुली दृष्टि (open eyes) वाली व्यवस्था होती है जिसके गुणों एवं दोषों को जानबूझ कर समय-समय पर आंका जाता है और आवश्यक समायोजन उचित समय पर कर लिये जाते हैं। दूसरी ओर अनियोजित अर्थ-व्यवस्था दृष्टिहीन अर्थ-व्यवस्था होती है जिसमें प्रत्येक क्रिया स्वयं समायोजित होने के लिए छोड़ दी जाती है, जिसके फलस्वरूप यह समायोजन देर से हो पाते हैं और इस मध्य-काल में साधनों का अपव्यय एवं शोषण जारी रहता है।

———

नियोजित अथ व्यवस्था मे प्राथमिकताओ का निर्धारण
[Determination of Priorities in Planned Economy]

[प्राथमिकताओ की समस्या के दो पहलू—अथ साधनो की उपलब्धि, अथ साधनो का आवटन क्षेत्रीय प्राथमिकताएँ, उत्पादन एव वितरण सम्बन्धी प्राथमिकताएँ तान्त्रिकताए सम्बन्धी प्राथमिकताएँ, विनियोजन एव उपभोग सम्बन्धी प्राथमिकताएँ, उद्योग एव कृषि सम्बन्धी प्राथमिकताएँ और सामाजिक प्राथमिकताएँ, परियोजनाओ के चयन हेतु लागत लाभ का विश्लेषण, सामाजिक लागत एव लाभ, भारत म लागत लाभ-पद्धति का उपयोग]

विकास नियोजन वास्तव मे भविष्य के सम्बन्ध मे अनुमानो का एक समूह होता है। भविष्य के बारे म ठीक ठीक अनुमान लगाने का कोई विश्वसनीय तरीका न होने के कारण हम भूत काल की घटनाओ को आधार मानकर भविष्य की सम्भावनाओ का अनुमान लगाना होता है। नियोजन के अन्तगत इन अनिश्चित सम्भावनाओं एव अनुमानो के आधार पर प्राथमिकताए निर्धारित करने की आवश्यकता होती है। प्राथमिकताए निर्धारित करने की क्रिया के अन्तगत साधनो को विभिन्न विकास कायक्रमो पर इस प्रकार आवटित करना होता है कि राष्ट्रीय आय म अधिकतम वृद्धि की जा सके। राष्ट्रीय आय की वृद्धि के सम्बन्ध म यह भी निश्चय करना होता है कि यह वृद्धि वतमान राष्ट्रीय आय म होनी चाहिए अथवा भविष्य म। राष्ट्रीय आय की वृद्धि का आयोजन वतमान वृद्धि का त्याग करके किया जाय। वास्तव म वतमान एव भविष्य दोनो ही कालो की राष्ट्रीय आय म वृद्धि करने का लक्ष्य आर्थिक नियोजन के अन्तगत होता है। इसी कारण नियोजन के अन्तगत जितना महत्व वतमान उत्पादन वृद्धि को दिया जाता है उससे कही अधिक महत्व उत्पादनक्षमता को बढाने का दिया जाता है। उत्पादनक्षमता म वृद्धि करने के लिए उत्पादक वस्तुओं के उद्योग के विस्तार को प्राथमिकता दी जाती है जिसके फलस्वरूप उपभोग्य वस्तुओ के उद्योगो के उत्पादन म तुरन्त अधिक वृद्धि नही होती है। इसके फलस्वरूप रोजगार की स्थिति आय के वितरण विभिन्न क्षेत्रो का विकास आदि सभी प्रभावित होते हैं। इसी कारण नियोजन के अन्तगत प्राय उत्पादनक्षमता का वतमान उपभोग से विरोधाभास होता है। इसके साथ ही उत्पादन एव रोजगार प्रगति एव आय वितरण

तथा वर्तमान एवं भविष्य के लाभों में विरोधाभास उत्पन्न होता है। इन विरोधाभासों पर जब राजनीतिक छाप लगती है तो इनमें समन्वय एवं सामंजस्य स्थापित होना और भी कठिन हो जाता है। अन्ततः इन आर्थिक विरोधाभासों में सामंजस्य राजनीतिक विचारधाराओं के आधार पर ही स्थापित होता है।

नियोजित विकास के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था के समस्त क्षेत्रों की प्रगति का आयोजन किया जाता है। अर्थव्यवस्था का कोई भी क्षेत्र नियोजित विकास से अछूता नहीं रहता परन्तु किस क्षेत्र को कब और कितना महत्व दिया जाय यह प्राथमिकताओं के आधार पर निर्धारित किया जाता है। प्राथमिकताओं की प्रविधि इस प्रकार एक गतिशील प्रविधि है जिसमें सदैव परिवर्तन करते रहना आवश्यक होता है। प्राथमिकताओं का कोई भी क्रम सभी राष्ट्रों एवं सभी समयों के लिए उपयुक्त नहीं समझा जा सकता है। अर्थव्यवस्था में एक क्षेत्र का महत्व दूसरे क्षेत्र के सम्बन्ध को बदलता है और इस प्रकार जैसे-जैसे विकास होता रहता है प्राथमिकताओं का क्रम भी बदलता जाता है।

अल्प विकसित राष्ट्र का आर्थिक विकास करने के लिए अधिकतम साधनों की आवश्यकता होती है और इन राष्ट्रों में अर्थ-साधनों की सर्वदा न्यूनता होती है अर्थात् इन राष्ट्रों में समस्याएँ असीमित और साधन अल्प होते हैं। ऐसी परिस्थिति में सभी समस्याओं का निवारण एक ही समय में होना सम्भव नहीं है। आर्थिक नियोजन द्वारा इन न्यून साधनों का विवेकपूर्ण उपयोग इस प्रकार किया जाता है जिससे अधिकतम सामाजिक हित हो सके। अधिकतम सामाजिक हित प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक होगा कि विभिन्न समस्याओं की तीव्रता एवं अनिवार्यता के आधार पर उनकी सीमाएँ निश्चित की जायें। जो समस्याएँ अत्यावश्यक एवं आधारभूत प्रतीत हों उन्हें साधनों का अधिकतम अंश वितरित किया जाना चाहिए। वास्तव में राष्ट्रीय साधनों का आवंटन समसीमान्त उपयोगिता नियम (Law of Equi Marginal Utility) अथवा प्रतिस्थापन का नियम (Law of Substitution) के आधार पर होना चाहिए। साधनों का विभिन्न मदों पर वितरण करते समय जनसमुदाय के वर्तमान उपभोग-स्तर पर ध्यान आकर्षित करना पर्याप्त न होगा बल्कि साधनों का विभिन्न क्षेत्रों पर व्यय होने से भविष्य में अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह भी दृष्टिगत करना आवश्यक है। जब राष्ट्रीय समस्याओं का उनकी तीव्रतानुसार सूचीबद्ध कर लिया जाता है तो अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में साधनों का वितरण सुगम एवं सुविधाजनक होता है। यह कार्य प्रायः योजना-आयोग द्वारा ही सम्पादित किया जाता है। यदाकदा एक प्राथमिकता मण्डल (Priorities Board) की स्थापना भी की जाती है। यह एक गम्भीर समस्या है जिसका विवेकपूर्ण निवारण आर्थिक नियोजन हेतु अत्यन्त आवश्यक है। यह मूल समस्या है जिसमें सम्पूर्ण नियोजन-तन्त्र की सफलता व असफलता निहित है। जब या कोई भी क्षेत्र अति-प्रभावित होगा अर्थात् विनियोग

अविवेक भी भयंकर परिणामों का कारण हो सकता है और नियोजन-वृक्ष के सशक्त तने की कल्पना करना भी निरर्थक हो जायगा उसका निर्माण तो दूर रहा। सामान्य आय वाले एवं अगणित आवश्यकताओं वाले एक व्यक्ति के सम्मुख जो समस्याएं उपस्थित होती हैं वे यदि कहीं कहीं मिलकर सामूहिक रूप धारण कर लें तो वही रूप राष्ट्र के समक्ष एक समस्या के समतुल्य होगा क्योंकि राष्ट्र के सम्मुख अधिकतम सामाजिक हित प्रश्नवाचक होता है न कि व्यक्तिगत स्वार्थ। सत्वर बहुमुखी आर्थिक विकास उद्देश्य होना है न कि एकाकी उपभोग मात्र। भविष्यत् स्वप्न भी साकार करने होते हैं एकमात्र वर्तमान सन्तुष्टि ही नहीं। एतदर्थ प्रत्येक समस्या का आमूल गहन अध्ययन परिणामों की जानकारी तीव्रता का अनुमापन एवं विश्लेषणात्मक व्याख्या नियोजन के आवश्यक अंग हैं।

प्राथमिक समस्या के दो पहलू—प्राथमिकता की समस्या का अध्ययन दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—*प्रथम अर्थ साधनों की उपलब्धि तथा द्वितीय उपलब्ध अर्थ साधनों का वितरण।*

अर्थ साधनों की उपलब्धि—अर्थ की उपलब्धि पर ही विकास योजनाओं का कार्यान्वित किया जाना निर्भर रहता है अतः अर्थ को सर्वप्रथम प्राथमिकता प्रदान की जानी चाहिए। अर्थ सम्बन्धी प्राथमिकताएं अन्य कृषि उद्योग आदि सम्बन्धी प्राथमिकताओं से भिन्न होती हैं क्योंकि आर्थिक प्राथमिकताओं में राष्ट्र के अर्थ साधनों को एकत्रित करने की ओर ध्यान दिया जाता है। आर्थिक प्राथमिकताओं के दो पहलू हैं—राजकीय तथा निजी। राजकीय क्षेत्र में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों एवं स्थानीय संस्थाओं द्वारा अधिकतम अर्थ साधन प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। कर *व्यवस्था को पुनर्सगठित किया जाता है जिससे कर को कम से कम छिपाया जा सके तथा उसके क्षेत्र में अधिकतम जनसंख्या को लाया जा सके। अतिरिक्त करारोपण भी सम्भव है जिससे साधनों की कमी को पूरा किया जा सके। कर वृद्धि तथा नवीन करारोपण के समय कतिपय आधारभूत तथ्यों को दृष्टिगत करना आवश्यक है। प्रथम* कर द्वारा केवल समर्थ एवं उपयुक्त व्यक्तियों पर कर भार पड़ना चाहिए जिससे वे अपना जीवन स्तर बनाये रख सकें। द्वितीय, कर द्वारा जनता में नये व्यवसायों की स्थापना करने तथा अधिक उत्पादन एवं लाभोपार्जन के प्रति रुचि में कमी न आये। तृतीय कर प्राप्ति के लिए दुराचारी कार्यों को वैधानिक संरक्षण प्राप्त नहीं होना चाहिए। अन्ततः कर द्वारा धन के समान वितरण को सहायता प्राप्त होनी चाहिए। कर के अतिरिक्त राज्य के अन्य आर्थिक साधनों जैसे जनता से ऋण मुद्रा प्रसार आदि के हेतु भी निश्चय करना आवश्यक होता है। विदेशी पूंजी प्राप्त करने के लिए भी प्रयत्न किया जाना आवश्यक होता है। योजना के कार्यक्रमों के आधार पर यह निश्चय किया जाता है कि कितनी विदेशी पूंजी की आवश्यकता होगी और इसको किन किन देशों से उचित शर्तों पर प्राप्त किया जा सकता है।

आधुनिक युग में सार्वजनिक क्षेत्र के व्यवसायों से भी राज्य को पर्याप्त आय प्राप्त होती है। समाजवादी राष्ट्रों में अर्थ व्यवस्था के अधिकतर अग सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा सचालित होते हैं और इन राष्ट्रों की राज्य की आय का बहुत बड़ा भाग सार्वजनिक क्षेत्र के व्यवसायों के लाभ से प्राप्त होता है। इस व्यवसायों की आय इनके कुशल प्रशासन एव मूल्य नीति पर निर्भर रहती है। सार्वजनिक क्षेत्र के व्यवसायों की मूल्य-नीति सरकार को प्राप्त होने वाली आय के आधार पर ही निर्धारित नहीं की जाती वल्कि जनकल्याण का भी ध्यान म रखना पड़ता है। जनोपयोगी सेवाओं के मूल्य इस प्रकार निर्धारित करने होते हैं कि जनसाधारण को इनके उपयोग में कठिनाई न हो तथा इन सेवाओं का उपयोग करने वाले व्यवसायों को अधिक लागत न देनी पड़े। सार्वजनिक क्षेत्र म चलाये जाने वाले व्यवसायों म उत्पादों का मूल्य निर्धारित करने म प्रतिस्पर्धा के घटक का कोई महत्व नहीं होता है क्योंकि इन व्यवसायों को एकाधिकार का लाभ रहता है। जब राज्य जनसाधारण द्वारा अत्यधिक त्याग कराना चाहता है तो इन व्यवसायों के मूल्यों को ऊंचा रखा जाता है जिसस विवशतापूर्ण बचत उदय होती है। दूसरी ओर, पूँजीवादी एव प्रजातान्त्रिक राष्ट्रों म प्राय जनोपयोगी सेवाओं से सम्बन्धित व्यवसायों का संचालन सार्वजनिक क्षेत्र म किया जाता और इनकी आय म वृद्धि करने के लिए इनकी सेवाओं एव उत्पादों के मूल्य अधिक ऊँचे निर्धारित करना सम्भव नहीं होता है क्योंकि जनसाधारण द्वारा इसका विरोध किया जाता है और अर्थ व्यवस्था के निजी व्यवसायों का प्रभाव इन पर पड़ता रहता है।

अर्थ साधन प्राप्त करने के विभिन्न स्रोतों म से किस का, कितनी सीमा तक उपयोग किया जाय, यह निर्धारण करना योजना-अधिकारी का काम होता है। देश की विकास स्थिति, जनसाधारण का जीवन स्तर, राज्य की राजनीतिक मान्यता, जन साधारण के विकास के प्रति जागरूकता आदि के आधार पर इन स्रोतों म चयन किया जाता है। विकास विनियोजन की आवश्यकताएँ अत्यधिक होने के कारण लगभग सभी स्रोतों का उपयोग करके अर्थ साधन प्राप्त करने के प्रयत्न किए जाते हैं। जब इन स्रोतों से भी पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं हो पाते तो हीनार्थ प्रबन्धन का उपयोग किया जाता है। हीनार्थ प्रबन्धन द्वारा जनसाधारण से विवशतापूर्ण बचत करायी जाती है। परन्तु हीनार्थ प्रबन्धन से बहुत से दोषों के अर्थ व्यवस्था म प्रविष्ट होने का भय होता है जिसके कारण इस स्रोत का उपयोग बड़ी सावधानी एव सीमित परिमाण मे करना होता है।

अर्थ-साधनों का आवंटन—प्रत्येक राष्ट्र की आर्थिक समस्याएँ यद्यपि कुछ सीमा तक समान होती हैं तथापि उनकी तीव्रता प्रत्येक राष्ट्र म भिन्न होती है। समस्या की तीव्रतानुसार ही साधनों का आवटन किया जाता है अतएव एक राष्ट्र की निश्चित प्राथमिकताएँ दूसरे राष्ट्र के लिए आवश्यक रूप से लाभदायी नहीं हो सकती

हैं। प्राथमिकता का अर्थ यह कभी भी नहीं समझना चाहिए कि इसमें केवल एक क्षेत्र के विकास को ही महत्व दिया जाता है। आर्थिक नियोजन में राष्ट्र के सभी क्षेत्रों के विकास के लिए प्रयत्न किया जाता है परन्तु उन क्षेत्रों को जिनका विकास होना अत्यावश्यक हो साधनों का अपेक्षाकृत अधिक भाग मिलना चाहिए और अन्य क्षेत्रों को उनकी तीव्रतानुसार साधनों का वितरण किया जाता है। साधनों के वितरण के सम्बन्ध में प्राथमिकताओं का अध्ययन निम्नलिखित समूहों में किया जा सकता है

(क) क्षेत्रीय प्राथमिकताएं (Regional Priorities)।

(ख) उत्पादन तथा वितरण सम्बन्धी प्राथमिकताएं।

(ग) तान्त्रिकताओं सम्बन्धी प्राथमिकताएं।

(घ) उपभोग एवं विनियोजन सम्बन्धी प्राथमिकताएं।

(ङ) उद्योग एवं कृषि सम्बन्धी प्राथमिकताएं।

(च) सामाजिक प्राथमिकताएँ।

(क) क्षेत्रीय प्राथमिकताएँ—एक विशाल राष्ट्र में जो विभिन्न जलवायु भूमि भाषा सामाजिक प्रथाएं आदि के आधार पर विभिन्न प्रान्तों एवं क्षेत्रों में विभक्त हो सभी क्षेत्रों के जीवन स्तर का समान होना कदापि सम्भव नहीं होता है। ऐसे राष्ट्र में कुछ क्षेत्र आर्थिक दृष्टिकोण से अन्य क्षेत्रों की तुलना में सम्पन्न होते हैं और कुछ देश के औसत जीवन स्तर से भी बहुत निम्न श्रेणी में रहते हैं। ऐसे समाज में विकास का प्रारम्भ करते समय सन्तुलित क्षेत्रीय विकास की समस्याएं उदय होती हैं। किस क्षेत्र का, किस समय कितना विकास किया जाय यह निर्णय नियोजन अधिकारी को करने होते है। नियोजन अधिकारी के सम्मुख क्षेत्रीय विकास के सम्बन्ध में तीन प्रकार के दावे प्रस्तुत किए जाते हैं—प्रथम आर्थिक उपयुक्तता के आधार पर द्वितीय राजनीतिक दबाव के आधार पर और तृतीय सामाजिक न्याय के आधार पर। देश में अर्थ साधनों की अपर्याप्तता के कारण योजना अधिकारी को यह सम्भव नहीं होता है कि इन तीनों प्रकार के दावों की पूर्ति कर सके। उसे इन तीनों दावों की गम्भीरता के आधार पर क्षेत्रीय प्राथमिकताएं निर्धारित करनी होती हैं। आर्थिक उपयुक्तता के अन्तर्गत विकास परियोजनाओं का संचालन ऐसे क्षेत्रों में किया जाना उचित होता है जहाँ पहले से ही विकास का स्तर ऊंचा हो क्योंकि इन क्षेत्रों में नवीन व्यवसायों की स्थापना के लिए आवश्यक सुविधाएं—यातायात संचार विद्युत शक्ति श्रम जन कच्चा माल आदि उपलब्ध होती हैं। दूसरी ओर राजनीतिक स्तर पर भी विकसित क्षेत्रों का दबाव अधिक होता है क्योंकि यह क्षेत्र राज्य की आय का बड़ा भाग प्रदान करते हैं और इस आधार पर विकास विनियोजन में से अधिक भाग का दावा करते हैं। राजनीतिक दबाव डालने हड़ताल तोड़ फोड़, अनशन आदि की कार्यवाहियाँ की जाती हैं। तीसरी ओर सामाजिक न्याय का पक्ष जो प्राय निर्बल होता है अपना दावा प्रस्तुत करता है। सामाजिक न्याय के दृष्टिकोण से क्षेत्रीय सन्तुलन विकास आर्थिक न्याय एवं समानता

के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है। देश के समस्त नागरिकों को समान जीवन-स्तर प्रदान करने के लिए, अविकसित क्षेत्रों में अधिक विनियोजन किया जाना आवश्यक होता है। परन्तु इन क्षेत्रों को प्राथमिकता प्रदान करने पर आर्थिक एवं राजनीतिक विरोध सामने आता है तथा इन क्षेत्रों में विकास का प्रारम्भ करने के लिए सामाजिक उपरिव्यय सुविधाओं (यातायात, संचार, स्वास्थ्य, जल शक्ति आदि) की व्यवस्था करने के लिए बड़े पैमाने पर विनियोजन करना पड़ता है जिसका तुरन्त के उत्पादन का लाभ नहीं मिलता है। इन विरोधाभासों के मध्य योजना अधिकारी को क्षेत्रीय प्राथमिकताएँ निर्धारित करनी पड़ती हैं। दोनों विचारधाराओं में सामंजस्य स्थापित करने में कभी कभी अनावश्यक परियोजनाओं की भी स्थापना करनी पड़ती है।

(ख) उत्पादन एवं वितरण सम्बन्धी प्राथमिकताएँ—प्रति व्यक्ति आय कम होने के साथ साथ राष्ट्रीय आय तथा उत्पादन भी अत्यन्त कम होना अल्प विकसित राष्ट्रों का प्रमुख लक्षण है। योजना आयोग को एक ओर राष्ट्रीय धन के समान वितरण की ओर क्रियाशील होना पड़ता है तो दूसरी ओर राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि हेतु आवश्यक योजनाओं को क्रियान्वित करना भी वांछनीय होता है। यदि समान वितरण की समस्या को प्राथमिकता दी जाय तो राज्य को आय तथा अवसर के समान वितरण करने के लिए कठोर कार्यवाहियाँ करने की आवश्यकता होगी। एतदर्थ राष्ट्र की आर्थिक क्रियाओं के राष्ट्रीयकरण को विशेष महत्व दिया जाना चाहिए तथा साधनों का अधिकतम भाग इस ओर वितरित किया जाना चाहिए। दूसरी ओर यदि राष्ट्र में न्यूनताओं का आधिक्य हो और उपभोग की आधारभूत वस्तुओं, जैसे खाद्य पदार्थ, वस्त्रादि की अत्यन्त कमी हो तो राज्य को उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि करने के लिए आवश्यक कार्यवाही करना अनिवार्य होगा। उत्पादन में तुरन्त वृद्धि हेतु राष्ट्र के वर्तमान उत्पादन के आकार प्रकार में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं होने चाहिए जिसमें निजी क्षेत्र को विशेष स्थान प्राप्त होता है। साथ ही राज्य को निजी साहसियों को उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। ऐसी परिस्थिति में राज्य का केवल आधारभूत तथा सुरक्षा सम्बन्धी उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करना उचित होगा। निर्धन वर्ग के व्यक्ति सदैव राष्ट्रीय धन के समान वितरण के लिए आवाज उठाते हैं जबकि धनी-वर्ग यह प्रयत्न करता है कि उनका अस्तित्व बना रहे और निर्धन-वर्ग को अधिक उत्पादन से सन्तुष्ट कर दिया जाय। योजना आयोग को दोनों के मध्य मार्ग खोजना होता है।

(ग) तान्त्रिकताएं सम्बन्धी प्राथमिकताएँ—तान्त्रिकताओं का चयन करना नियोजित विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग होता है जिसके आधार पर देश के विकास की गति आर्थिक गति विधि एवं सामाजिक संरचना निर्भर रहती है। विकास का प्रारम्भ करते समय तथा विकास के आगे बढ़ने पर समय समय पर अधिकारी को यह निर्णय करना होता है कि देश की विकास-योजनाओं में पूँजी प्रधान अथवा श्रम-

प्रधान तान्त्रिकताओं का उपयोग किया जाय। पूंजी प्रधान (Capital Intensive) उत्पादन विधियों में ऐसे यन्त्रों एवं पूंजीगत प्रसाधनों का उपयोग किया जाता है जिनमें श्रम की बचत होती है अर्थात् श्रम का तुलनात्मक कम उपयोग होता है। दूसरी ओर श्रम प्रधान तान्त्रिकताओं में यथासम्भव श्रम का अधिकाधिक उपयोग किया जाता है और पूंजी प्रसाधनों का प्रति श्रमिक कम उपयोग किया जाता है। अल्प विकसित राष्ट्रों में इन दोनों तान्त्रिकताओं में से किसको प्राथमिकता दी जाय इस सम्बन्ध में बहुत मतभेद हैं। विभिन्न विशेषज्ञों एवं अर्थशास्त्रियों ने जो विचार व्यक्त किए हैं उनका संक्षिप्त अध्ययन यहाँ किया जायगा।

अल्प विकसित राष्ट्रों में उत्पादन के घटकों का सम्मिश्रण एवं उपलब्धि इस प्रकार की होती है कि श्रम का अन्य उत्पादन के घटकों की तुलना में बाहुल्य होता है। यदि विकास के इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जाय कि देश में उपलब्ध उत्पादन के विभिन्न घटकों का अधिकतम उपयोग करके उत्पादन में वृद्धि की जाय तो ऐसी तान्त्रिकताओं का चयन करना चाहिए जिनमें श्रम का अधिकतम उपयोग हो सके और पूंजी की न्यून उपलब्धि के कारण पूंजी प्रसाधन प्रति श्रमिक कम मात्रा में प्रदान करके उत्पादन किया जा सके। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि ऐसा श्रम प्रधान तान्त्रिकताओं का उपयोग किया जाय कि जिनमें पूंजी श्रम उत्पाद कम रहे तथा उत्पाद पूंजी का अनुपात अधिक हो सके। श्रम प्रधान तान्त्रिकताओं का उपयोग करने से प्रति श्रमिक की उत्पादकता कम रहती है यद्यपि श्रम का अधिक उपयोग करके देश के कुल उत्पादन में वृद्धि करना सम्भव होता है। श्रम प्रधान तान्त्रिकताओं के अन्तर्गत हल्के एवं सरल पूंजी प्रसाधनों एवं यन्त्रों का उपयोग किया जाता है और इनके उपयोग में लचीलापन अधिक होता है। दूसरी ओर, यह तान्त्रिकताएं देश की बेरोजगारी एवं अदृश्य बेरोजगारी की समस्याओं के निवारण में भी सहायक होती हैं। परन्तु आर्थिक प्रगति के लिए श्रम प्रधान तान्त्रिकताएं निम्न कारणों से अधिक उपयुक्त नहीं समझी जाती हैं—

(अ) कम पूंजी उपयोग करने वाली तान्त्रिकताओं की कुशलता अन्य उपलब्ध पूंजी प्रधान तान्त्रिकताओं से कम होती है और इनके अन्तर्गत श्रम की उत्पादकता भी कम रहती है। अल्प विकसित राष्ट्रों के विकसित न होने का प्रमुख कारण अकुशल तान्त्रिकताओं का उपयोग होता है। यदि विकास विनियोजन के अन्तर्गत तान्त्रिकताओं को यथावत् रखा जाता है तो समाज की आर्थिक एवं सामाजिक संरचना संगठन उत्पादन विधियों आदि में परिवर्तन करना सम्भव नहीं होता और अर्थ व्यवस्था में उस गतिशीलता (Dynamics) का संचार नहीं हो पाता है जो विकास का मूलाधार होता है। इसके अतिरिक्त श्रम प्रधान तान्त्रिकताओं के निरन्तर उपयोग के परिणामस्वरूप समाज में ऐसे वातावरण को सुदृढ़ता प्राप्त होती है जो किसी

परिवर्तन को स्वभावतः स्वीकार नहीं करता है। विकास परिवर्तन का परिणाम होने के कारण उसके उपयुक्त वातावरण का विद्यमान होना आवश्यक होता है।

(आ) श्रम प्रधान तान्त्रिकताओं का उपयोग करने पर पूँजी का अत्यधिक कम उपयोग करना सम्भव नहीं होता है क्योंकि इनके लिए उपरिव्यय सुविधाओं (overhead facilities) एवं अन्य सामग्रियों की आवश्यकता पूँजी-प्रधान तान्त्रिकताओं के समान ही पड़ती है। उपरिव्यय सुविधाओं में लगने वाली पूँजी का अनुपात भी व्यवसायों में लगने वाली पूँजी में यदि जोड़ दिया जाय तो श्रम प्रधान तान्त्रिकताओं की पूँजी की आवश्यकताएं विशेष कम नहीं रहती हैं। इसके अतिरिक्त पूँजी-प्रधान तान्त्रिकताओं में प्रारम्भिक अवस्था में अधिक विनियोजन करना होता है परन्तु बाद में इनकी रख-रखाव-लागत एवं इन पर होने वाले पूँजी विनियोजन की मात्रा कम रहती है। श्रम प्रधान तान्त्रिकताओं में थोड़ी-थोड़ी पूँजी दीर्घ काल तक विनियोजित करते रहना पड़ता है।

(इ) श्रम प्रधान तान्त्रिकताओं में प्रारम्भिक अवस्था में तो अधिक रोजगार प्रदान करने की क्षमता होती है परन्तु इनकी रोजगार प्रदान करने की क्षमता में भविष्य में वृद्धि नहीं होती है। दूसरी ओर पूँजी प्रधान तान्त्रिकताओं में रोजगार प्रदान करने की सम्भावनाएं अधिक होती हैं क्योंकि इनके द्वारा बड़े पैमाने पर उत्पादन करने के लिए इनके सहायक उद्योगों एवं व्यवसायों का विस्तार होता है जिनमें रोजगार के अतिरिक्त अवसर उदय होते हैं।

(ई) कुछ परियोजनाएं ऐसी होती हैं जो आर्थिक प्रगति के लिए अनिवार्य होती हैं परन्तु इनका संचालन, पूँजी प्रधान तान्त्रिकताओं के अन्तर्गत ही हो सकता है। उदाहरणार्थ प्राकृतिक साधनों विशेषकर खनिज पदार्थों का विदोहन एवं शोधन, इस्पात का निर्माण, खनिज तेल का शोधन, यातायात, संचार एवं बन्दरगाहों आदि का विस्तार एवं विकास पूँजी प्रधान तान्त्रिकताओं के उपयोग द्वारा ही सम्भव हो सकते हैं। यह समस्त आयोजन आर्थिक प्रगति के अनिवार्य अंग होते हैं और इनकी व्यवस्था किये बिना प्रगति की प्रविधि को पुष्ट नहीं किया जा सकता है।

(उ) समाज का वह वर्ग जो लाभ प्राप्त करता है, अपनी आय का अधिक पुनर्विनियोजन करने में समर्थ एवं उद्यत रहता है और जिस अर्थ-व्यवस्था की प्रगति के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय का बड़ा भाग लाभ पाने वाले वर्ग को प्राप्त होता है। उसमें बचत विनियोजन एवं पूँजी निर्माण अधिक होता है। दूसरी ओर मजदूरी, वेतन एवं लगान पाने वाला वर्ग अपनी आय-वृद्धि का अधिकतर भाग उपभोग कर लेता है और उत्पादक विनियोजन के लिए बचतकाल में समर्थ नहीं होता है। श्रम प्रधान तान्त्रिकताओं के उपयोग के फलस्वरूप जो राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि होती है उसका बड़ा भाग श्रमिक-वर्ग को प्राप्त होता है क्योंकि व्यवसायों में पूँजी की मात्रा कम और श्रम का परिमाण अधिक होता है। अधिक श्रम को रोजगार देने से राष्ट्रीय

आय का वितरण श्रमिक वग के अनुकूल होता है। श्रमिक वग की आय वचन मे बचत विनियाजन एव पूँजी निर्माण की दर म पर्याप्त वृद्धि नही होती है और आर्थिक प्रगति की दर म वृद्धि करना सम्भव नही होता है। इसके विपरीत पूजा प्रधान तात्रिकताआ का उपयोग करन पर लाभ का बडा भाग साहसी का मिलता है जो बचत एव विनियाजन दर बढाकर आर्थिक प्रगति को गतिमान कर सकता है। अल्प विकसित राष्ट्रा म जनसंख्या की वृद्धि तीव्र गति स होती है और इस परिस्थिति म प्रति व्यक्ति आय बचत एव विनियाजन बढान के लिए यह आवश्यक होता है कि प्रारम्भिक विनियोजन इस प्रकार किया जाय कि प्रति व्यक्ति उत्पादन म शीघ्र ही अधिक वृद्धि हो सक। प्रति व्यक्ति उत्पादन म पर्याप्त वृद्धि पूजा प्रधान तात्रिकताआ द्वारा ही सम्भव हो सकती है।

(ऊ) अल्प विकसित राष्ट्रा म तात्रिकताआ का चयन करन के लिए समय घटक पर भी ध्यान देना आवश्यक होता है। परियाजनाआ की पूर्ति म जो समय लगता है वह भी विकास की गति पर प्रभाव डालता है। श्रम प्रधान तात्रिकताओ म सरल उत्पादन विधियो एव यत्रों का उपयाग किया जाता है जिनकी स्थापना म अधिक समय नही लगता और यह परियोजनाए अल्प काल म ही उत्पादन प्रारम्भ कर देती है। दूसरी आर पूजी प्रधान तात्रिकताआ का स्थापना एव इनका निर्माणकाल अधिक होता है और इनके द्वारा पूरी समता का उत्पादन दीघ काल म प्रारम्भ हो पाता है। यदि इन दोना प्रकार की परियाजनाआ के द्वारा किए गय दीघकालीन उत्पादन की तुलना की जाय तो पूँजा प्रधान तात्रिकताओ का उत्पादन अत्यधिक होता है परन्तु अल्प काल म जहा पूँजी प्रधान तात्रिकताए राष्ट्र क उत्पादन म लगभग शून्य के बराबर योगदान देत है श्रम प्रधान तात्रिकताओं का उत्पादन का परिमाण अधिक होता है। अल्प विकसित राष्ट्रा को प्रारम्भिक अल्प काल म पूजी प्रधान तात्रिकताआ क उपयाग स बहुत सी वित्तीय कठिनाइयो का सामना करना पडता है क्योकि इन तात्रिकताआ म देश म उपल ध साधना का बडा भाग एव विदेशा से प्राप्त सहायता का विनियाजन हो जाता है जिससे रोजगार म वृद्धि होती है। जनसाधारण की आय म वृद्धि होन म उनक द्वारा उपभोग की अधिक वस्तुओं की माँग की जाती है। परन्तु अल्प काल म पूँजी प्रधान तात्रिकताओं द्वारा उत्पादन न किए जान क कारण अथ व्यवस्था म आय वृद्धि के अनुरूप उत्पादन म वृद्धि नही होती है जिसक परिणामस्वरूप मुद्रा स्फीति का प्रारम्भ होता है जो देश के विदेशी व्यापार शेष एव भुगतान-शेष पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। भारतवष भी इन परिस्थितियों स होकर गुजर रहा है। परन्तु जब दीघकालीन विकास का लक्ष्य सामन रखा जाय तो इन सक्रान्तिक (Transitional) कठिनाइयो को समाज का वहन करना ही होता है क्योकि पूँजी प्रधान तात्रिकताओ की अनुपस्थिति म विकास को दीघकालीन जीवन प्रदान करना सम्भव नही हो सकता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि योजना-अधिकारी को समस्त बातों पर विचार करके तान्त्रिकताओं का चयन करना होता है। जिन क्षेत्रों म पूँजी एव श्रम-प्रधान तान्त्रिकताओं का वैकल्पिक उपयोग हो सकता हो उनम रोजगार की स्थिति, पूँजी की उपलब्धि तथा लक्षित विकास की गति का ध्यान में रखकर श्रम-प्रधान तान्त्रिकताओं को प्राथमिकता दी जाती है परन्तु इन श्रम प्रधान तान्त्रिकताओं के सम्बन्ध म यह भी निर्णय करना होता है कि इन्हें अर्थ-व्यवस्था में स्थायी स्थान दिया जायगा अथवा इनका महत्व केवल उस मध्यकाल तक सीमित रहेगा जब तक अर्थ-व्यवस्था प्रारम्भिक विकास की अवस्था से गुजरती है।

(ए) उपयोग एव विनियोजन सम्बन्धी तान्त्रिकताएँ—प्रजातान्त्रिक समाज में विनियोजन तथा उपभोग में प्राथमिकता निर्धारित करना सबसे कठिन होता है। जनसमुदाय सदव वर्तमान सुविधाओं को महत्व देता है जबकि नियोजन-अधिकारी भविष्यगत हित को अधिक महत्व देता है। इसीलिए वह अधिकतम साधनों का भविष्यगत उपभोग के लिए विनियोजन करना चाहता है। भविष्यगत उपभोग का आयोजन करने के लिए देश में आधारभूत उत्पादक एव पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगों कच्चे माल के निर्माण से सम्बन्धित उद्योगों तथा उपरिव्यय सुविधाओं के विस्तार से सम्बन्धित व्यवसायों की स्थापना विकास एव विस्तार पर अधिक विनियोजन करने की आवश्यकता होती है। विकास-विनियोजन का बड़ा भाग जब इन आधारभूत उद्योगों को चला जाता है तो उपभोक्ता-वस्तुओं के उद्योगों के उत्पादन का विस्तार करने के लिए अल्प काल में आवश्यक साधन प्रदान करना सम्भव नहीं होता है। इस प्रकार एक ओर, आधारभूत उद्योगों में अधिक विनियोजन करने हेतु जनसाधारण को अधिक बचत करने का प्रोत्साहित एव विवश किया जाता है और दूसरी ओर उन्हें आवश्यकतानुसार पर्याप्त उपभोक्ता-वस्तुएँ प्रदान नहीं की जाती हैं जिसके परिणामस्वरूप विकास की प्रारम्भिक अवस्था म लोगों के जीवन-स्तर में और कमी आ सकती है। वर्तमान जीवन-स्तर एव उपभोग-स्तर में कितनी कमी करना सम्भव है यह राजनीतिक एव सामाजिक वातावरण पर निर्भर रहता है। नियोजन-अधिकारी का योजना के लक्ष्यों के अनुरूप उपभोक्ता अथवा उत्पादक-उद्योगों को प्राथमिकता प्रदान करनी होती है। प्राय अनिवार्यता की उपभोक्ता-वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए अधिक प्राथमिकता प्रदान करनी पड़ती है। अनिवार्य वस्तुओं के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि करने के लिए भी तान्त्रिकताओं में सुधार करना होता है और यह सुधार पूँजीगत विनियोजन द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

(ऐ) उद्योग अथवा कृषि को प्राथमिकता—प्राय सभी अल्प विकसित राष्ट्रों मे कृषि एक प्रमुख व्यवसाय है और उनकी अधिकांश जनसंख्या भूमि से ही अपनी जीविकोपार्जन करती है। इसका मुख्य कारण यह है कि अल्प विकसित राष्ट्रों में कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों का पर्याप्त विकास नहीं होता है। जनसमुदाय को अपने जीवन

निर्वाह के लिए कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों में रोजगार के साधन उपलब्ध नहीं होते। ऐसी परिस्थिति में आर्थिक विकास का समारम्भ करने के लिए नवीन तथा अतिरिक्त औद्योगिक तथा कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों को उत्पन्न करना आवश्यक होता है जिससे श्रम को अन्यत्र रोजगार दिया जा सके। इसके साथ यह भी आवश्यक है कि कृषि क्षेत्र के उत्पादन में भी पर्याप्त वृद्धि हो। इस हेतु कृषि में लगे हुए श्रमिकों की उत्पादन शक्ति में वृद्धि करना और कृषि विधियों में आवश्यक सुधार एवं कृषि व्यवसाय का पुनसंगठन वाञ्छनीय होता है। कृषि उत्पादन में इतनी वृद्धि करना आवश्यक होगा जिससे कृषकों के जीवन-स्तर में उन्नति के साथ साथ अन्य व्यवसायों में लगे व्यक्तियों को पर्याप्त खाद्य एवं अन्य कृषि पदार्थ प्राप्त होते रहें तथा निर्यात योग्य कृषि उत्पादन का निर्माण करके पूँजीगत वस्तुओं के आयात हेतु आवश्यक विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सके।

अदृश्य बेरोजगारी का पता तभी चलता है जब उसके उत्पादक उपयोग का प्रयत्न किया जाता है। यह एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में मात्रा तथा उपयोगिता में भिन्न होता है। लेटिन अमरीकी राष्ट्रों में मौसमी बेरोजगारी की समस्या है। यदि इन राष्ट्रों में कृषि क्षेत्र से स्थायी रूप से पृथक् कर कुछ श्रम को अन्य क्षेत्रों में लगा दिया जाय तो कृषि के उत्पादन में कमी हो जायगी। ऐसी स्थिति में राष्ट्र का औद्योगिक विकास कृषि क्षेत्र से श्रमिकों को हटाने के पूर्व कृषि उत्पादन में वृद्धि द्वारा सम्भव है। इसके सर्वथा विपरीत पूर्वी यूरोप मध्य-पूर्व तथा दक्षिणी पूर्वी एशिया तथा सुदूर पूर्व में कृषि क्षेत्र में श्रम का आधिक्य है और आर्थिक विकास हेतु इस अधिक श्रम को उत्पादक उपयोग में लाना आवश्यक होगा। इन राष्ट्रों में कृषि के क्षेत्र से श्रम को हटाने से उत्पादन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। कुछ राष्ट्रों में श्रमाधिक्य को कृषि से पृथक् किए जाने पर कृषि उत्पादन में वृद्धि होने की सम्भावना की जा सकती है। इन राष्ट्रों की समस्या को निम्नरूपेण समझा जा सकता है—

(अ) कृषि क्षेत्र के अधिक श्रम को लाभप्रद रोजगार में लगाना जिससे आर्थिक विकास में सहायक सिद्ध हो।

(आ) श्रमिकों को अन्य व्यवसायों में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित अथवा विवश करना तथा उनको संगठित करके उनके प्रशिक्षण का प्रबन्ध करना जिससे उनके द्वारा अन्य क्षेत्रों में अधिकतम उत्पादन हो सके।

(इ) अधिक श्रम के कृषि से पृथक् हो जाने के कारण शेष कृषकों की आय तथा जीवन-स्तर में वृद्धि हो जाती है और वे कृषि उत्पादन का अधिक तथा अच्छा भाग स्वयं उपभोग करना चाहते हैं। नियोजन अधिकारियों का यह आयोजन करना आवश्यक है कि कृषि के क्षेत्र से पर्याप्त मात्रा में कृषि उत्पादन अन्य क्षेत्रों के उपभोग के लिए उपलब्ध हो सके।

इन राष्ट्रों में कृषि से पृथक् किए गये अतिरिक्त श्रम को कम पूँजी विनियोजन

वाले व्यवसायों में काम मिलना चाहिए क्योंकि अल्प विकसित राष्ट्रों में पूँजी का अत्यन्त अभाव होता है और उपलब्ध साधनों से कृषि का भी पर्याप्त विकास किया जाना आवश्यक होता है। इस प्रकार ऐसे उद्योगों की स्थापना की जानी चाहिए जिनमें पूँजीगत सामग्री का कम तथा साधारण विधियों का ही प्रयोग होता हो। रूस में भी प्रारम्भिक अवस्था में प्राचीन औजारों से ही औद्योगिक विकास का समारम्भ किया गया था और अधिक श्रम लगने वाले उद्योगों की स्थापना की गयी थी। और इसी प्रकार प्रत्येक अल्प विकसित राष्ट्र पहले पहल इस मध्यम अवस्था में निम्न कम पूँजी लगने वाले उद्योगों की स्थापना कर सकता है।

यदि प्रारम्भिक काल में ही वृहद् उद्योगों की स्थापना को प्राथमिकता दी जाती है तो कृषि के क्षेत्र से हटाए गए अतिरिक्त श्रम को निपुण (Skilled) तथा अर्द्ध निपुण (Semi Skilled) श्रम में इतने शीघ्र परिवर्तन किया जाना सम्भव नहीं होता है। साथ ही दृढ़ औद्योगिक आधार की स्थापना के लिए पूँजीगत वस्तुओं की आवश्यकता होती है और इन पूँजीगत वस्तुओं के निर्माण के लिए भी पूँजीगत वस्तुओं की आवश्यकता होती है। किसी भी अल्प विकसित राष्ट्र में पूँजीगत वस्तुओं के उद्योग इतने विकसित नहीं होते और न अल्प काल में उनका इतना विकास ही किया जा सकता है कि वे राष्ट्र का औद्योगीकरण करने के लिए आवश्यक पूँजीगत सामग्री प्रदान कर सकें। ऐसी परिस्थिति में पूँजीगत सामग्री का आयात करके ही औद्योगिक उत्थान सम्भव हो सकता है। पूँजीगत सामग्री के आयात का शोधन करने के लिए कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि होनी चाहिए जिसके निर्यात द्वारा आवश्यकता-नुकूल वैदेशिक मुद्रा अर्जित की जा सके। इसके साथ ही, निपुण तथा अर्द्ध-निपुण श्रमिकों को अधिक पारिश्रमिक दिया जाता है, अतः उनकी उपभोग आवश्यकताओं में भी वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार औद्योगिक विकास के लिए कृषि का इतना विकास होना आवश्यक होगा कि उसके द्वारा विदेशी मुद्रा पर्याप्त मात्रा में अर्जित की जा सके तथा कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में लगे अन्य श्रमिकों को आवश्यक उपभोग सामग्री उपलब्ध हो सके। विलासिता की वस्तुओं के आयात को प्रतिबन्धित करके तथा कलात्मक वस्तुओं के निर्यात से पूँजीगत सामग्री का आयात कुछ सीमा तक सम्भव हो सकता है।

दूसरी ओर ऐसे राष्ट्र में, जहाँ अतिरिक्त श्रम वर्ष में केवल कुछ ही समय के लिए बेकार रहता हो वहाँ लाभप्रद रोजगार का आयोजन करने के लिए स्थानीय रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना आवश्यक होगा। उनको भूमि से स्थायी रूप से पृथक नहीं किया जा सकता क्योंकि उनके कृषि से हटाये जाने पर कृषि उत्पादन में कमी होने की सम्भावना रहती है। ग्रामीण क्षेत्र के आर्थिक विकास की योजनाओं में इस अतिरिक्त श्रम को काम देना उचित होगा। छोटी-छोटी सिंचाई-योजनाओं दल-दली भूमि को कृषि-योग्य बनाने सहायक मार्गों का निर्माण करने अच्छे कृषि औजारों

का निर्माण करने पेय जल का प्रबन्ध करन आदि जसी कम पूँजी की आवश्यकता वाली योजनाओं म अतिरिक्त श्रम को सुविधापूवक रोजगार दिया जा सकता है। इस प्रकार इन कायक्रमो को अधिक प्राथमिकता देना आवश्यक है। ग्रामीण तथा गृह उद्योग का विकास भी मौसमी तथा अदृश्य बेरोजारी का लाभप्रद काय दिलान म सहायक होता है। इन उद्योगो के विकास हेतु तान्त्रिक प्रशिक्षण इनके उत्पादन का प्रमापीकरण (Standerdization) कच्चे माल की सुगम पूर्ति अल्पकालीन साख का प्रबन्ध आदि का आयोजन करना अत्यावश्यक होता है। यदि ग्रामीण गृह तथा लघु उद्योगो के साथ वृहद उद्योगो का विकास किया जाना है तो इन दोनों म सामजस्य स्थापित किया जाना चाहिए। दोनो को इस प्रकार नियन्त्रित एव सगठित किया जाय कि वे परस्पर पूरक का काय करें, प्रतिस्पर्धी का नहीं। लघु तथा ग्रामीण उद्योगो को स्थायी रूप मे काटा निश्चित करके अथवा कारखाना के उत्पादन पर कर लगा कर सरक्षण देने से अधिक लाभ नही होता है क्योकि इस प्रकार की नीतियो से वस्तुओ की लागत म वृद्धि होती है और स्थायी पू जी के पूणतम उपयोग मे बाधाएँ आ जाती हैं। ऐसे गृह उद्योगों का स्थायी तथा स्वतन्त्र विकास किया जा सकता है जिनकी उत्पादन लागत कारखानो की उसी प्रकार की वस्तुओ की उत्पादन लागत से अत्यधिक न हो। इस प्रकार एक राष्ट्र मे लघु तथा वृहद दोनो प्रकार के उद्योगो का समानान्तर विकास किया जा सकता है।

वास्तव म औद्योगिक तथा कृषि विकास मे चुनाव करने का कोई प्रश्न नहीं होना चाहिए क्योकि दानों के समानान्तर विकास द्वारा ही आर्थिक विकास की विधि का प्रारम्भ हो सकता है परन्तु इन राष्ट्रो म जहाँ श्रम की न्यूनता है, औद्योगीकरण कृषि विकास द्वारा ही सम्भव है। दूसरी ओर उन राष्ट्रो म जहाँ ग्रामीण जनसख्या अधिक हो कृषि विकास हेतु उद्योगो का उत्थान करना आवश्यक होगा। जहाँ कृषि व्यवसाय म श्रम का आधिक्य हो और पूँजीगत साधनो की न्यूनता हो अधिक श्रम का उपयोग करन वाली योजनाओ को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इसके विपरीत जिन अद्ध विकसित राष्ट्रो म श्रम की कमी होती है उनम ऐसी योजनाओ को प्राथमिकता प्राप्त होनी है जिनम श्रम की तुलना म पू जी की अधिक आवश्यकता होनी है। इस प्रकार श्रम की उपलब्धि के आधार पर ही योजनाओ की प्राथमिकता निश्चित की जा सकती है (यदि अन्य सभी बातें समान रह), परन्तु साधारणत अन्य सभी बातें कभी समान नही रहती इसलिए प्रत्यक योजना की प्राथमिकता विकास कायक्रम के उद्देश्यो के आधार पर ही निश्चित की जाती है। कुछ योजनाएँ ऐसी होती हैं जिनम पूँजी की अधिक आवश्यकता होते हुए भी उनका प्राथमिकता दी जाती है जसे शक्ति उत्पादन केन्द्र अथवा विशेष सुविधा प्राप्त कोई राष्ट्रीय उद्योग जसे पाकिस्तान का जूट उद्योग।

कुछ योजनाएँ ऐसी होती हैं जिनमें पूँजी तथा श्रम के अनुपात में कोई परिवर्तन करना नियोजक की शक्ति के बाहर होता है उदाहरणार्थ लोहा तथा इस्पात उद्योग। अन्य कतिपय योजनाएँ ऐसी हैं जिनमें पूँजी व श्रम के अनुपात में नियोजक परिवर्तन कर सकता है जैसे बांध निर्माण सिंचाई-योजनाएँ मार्ग निर्माण आदि। इन दोनों प्रकार की योजनाओं में से चयन करते समय नियोजक उनकी एकमात्र श्रम उपयोग करने की शक्ति के आधार पर ही निश्चय नहीं कर सकता। यद्यपि लोहा तथा इस्पात उद्योग में पूँजी की अधिक आवश्यकता होती है किन्तु यह शीघ्र औद्योगीकरण का आधार-स्तम्भ है। इसकी तुलना में उपभोग की वस्तुओं के उद्योगों का विकसित करना किसी भी दृष्टि से बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं जिनमें अल्प काल में अधिक श्रम का उपयोग और पूँजी की कम आवश्यकता होती है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि उद्योगों तथा कृषि का समानान्तर विकास आवश्यक होता है और यह विभिन्न राष्ट्रों की परिस्थितियों पर निर्भर होता है कि कृषि विकास से औद्योगिक विकास में सहायता मिले अथवा इसके विपरीत अर्थात् औद्योगिक विकास से कृषि विकास में सहायता मिले। प्रश्न केवल क्रम का है अर्थात् सर्वप्रथम उद्योगों का विकास किया जाय अथवा कृषि का। भारतवर्ष जैसे कृषि प्रधान देशों में जहाँ न्यून उत्पादन, कृषि में अधिक श्रम, बेरोजगारी, खाद्यान्नों का अभाव आदि आधारभूत समस्याएँ हैं हम उपर्युक्त विचारधाराओं के आधार पर ही प्राथमिकता निश्चित कर सकते हैं। नियोजन-अधिकारियों को एक ओर पर्याप्त खाद्यान्नों की पूर्ति का प्रबन्ध करना होता है और दूसरी ओर, अतिरिक्त कृषि श्रम तथा शिक्षित बेरोजगारों को लाभप्रद रोज्गार का भी आयोजन करना होता है। अधिक रोजगार के अवसरों का प्रबन्ध करने के लिए उद्योगों तथा कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों का उत्थान करना आवश्यक होता है परन्तु ऐसे उद्योगों को प्राथमिकता दी जाना आवश्यक होगा जिनमें अधिकतर श्रम का उपयोग होता है। गृह लघु तथा ग्रामीण उद्योगों के विकास का इस प्रकार प्राथमिकता दी जा सकती है परन्तु क्या इन उद्योगों का राष्ट्र के विकास में स्थायी स्थान दिया जाना चाहिए अथवा इनके विकास को केवल तत्कालीन समस्याओं के हल के लिए अस्थायी स्थान प्राप्त होना चाहिए? इनके विकास से कृषि-क्षेत्र के अधिक श्रम का कार्य प्राप्त हो सकता है तथा ग्रामीण क्षेत्र में जीवन-स्तर में वृद्धि हो सकती है। इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्र में करदेय तथा बचत-क्षमता में वृद्धि होगी और अधिक पूँजी निर्माण में सहायता प्राप्त हो सकती है। लघु और कुटीर उद्योगों द्वारा शीघ्र विकास एवं उपभोग के स्तर में वृद्धि भी सम्भव हो सकती है। इनके द्वारा मुद्रा-स्फीति के दबाव को भी कम किया जा सकता है। इस प्रकार लघु तथा कुटीर उद्योगों में विकास द्वारा वृहद उद्योगों की स्थापना एवं उत्थान हेतु आवश्यक अर्थ-साधन प्राप्त हो सकते हैं।

प्राचीन अर्थशास्त्रियों (Classical Economists) ने औद्योगिक विकास के

तीन क्रम निश्चित किये हैं—(१) प्राथमिक कच्चे माल का उत्पादन (२) उनकी उपभोग की वस्तुओं म परिवर्तन (३) पू जीगत सामग्री का उत्पादन। अन्तर्राष्ट्रीय विकास बक (I B R D) तथा अमरीकी सरकार ने भी श्रीलंका मिस्र कोलम्बिया तथा अन्य अर्द्ध विकसित राष्ट्रों के छोटे उद्योगों को प्राथमिकता प्रदान करने का सुझाव दिया है, परन्तु आधुनिक युग म केवल आर्थिक विचारधाराओ के आधार पर ही आर्थिक योजनाओ का निर्माण नहीं होता योजनाओं मे प्राथमिकता निश्चित करते समय राजनीतिक तथा सामाजिक विचारधाराओं को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता है। लघु उद्योगों के विकास को प्राथमिकता मिलना तब अधिक महत्वपूर्ण है जब राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था म निजी साहस को विशेष स्थान प्राप्त होता है और राज्य केवल इनकी सहायता करने प्रशिक्षण सगठन, सरक्षण तथा आधारभूत सेवाओ के आयोजन करने तक ही अपना कार्यक्षेत्र सीमित रखता है परन्तु निजी क्षेत्र (Private Sector) को विशेष स्थान देने से नियोजन की सफलता सन्देहजनक हो जाती है क्योंकि निजी क्षेत्र सदव अपने व्यक्तिगत लाभ को अधिक महत्व देता है। जब राज्य औद्योगिक क्षेत्र म सक्रिय भाग लेता है और राजकीय क्षेत्र के विकास तथा वृद्धि को विशेष महत्व दिया जाता है तब वृहद् उद्योगो के विकास को प्राथमिकता दी जा सकती है। वृहद् उद्योगो को प्राथमिकता देने के पूर्व यह भी देख लेना चाहिए कि राज्य को स्वयं की नियोजन सम्बन्धी शक्तियाँ तथा अर्थ व्यवस्था से निजी क्षेत्र का क्रम किये जाने पर उद्भूत विरोध को वहन करने की शक्तियाँ कितनी है।

वृहद् उद्योगों म कृषि क्षेत्र के अधिक श्रम को काय देने हेतु कृषि का अधिक राम विकास करना आवश्यक होगा क्योकि कृषि उत्पादन से बढती हुई जनसख्या की खाद्यान्न आवश्यकताओ की पूर्ति होना आवश्यक ही नही अनिवाय है अन्यथा विदेशो से खाद्यान्न आयात करने की आवश्यकता होगी और विदेशो से पू जीगत सामग्री के आयात म बाधा पड जायगी। इसके साथ कृषि द्वारा वृहद् उद्योगो के कच्चे माल की पूर्ति भी होनी चाहिए। जब राष्ट्र मे खाद्यान्नो म न्यूनता हो तो वृहद् उद्योगो की स्थापनाथ पू जीगत सामग्री विदेशी ऋण द्वारा ही आयात की जा सकती है जिसको खाजन का भार भी अल्प काल म कृषि पर ही पडना सम्भव है। भारत जसे प्राचीन राष्ट्र मे कृषि उत्पादन म वृद्धि हेतु रासायनिक उवरक वज्ञानिक नवीन कृषि विधियाँ तथा अन्य अन्य औजारो की आवश्यकता होती है। इन सभी की पूर्ति के लिए उद्योगो की स्थापना आवश्यक है। इस प्रकार कृषि तथा उद्योगो के विकास म इतना पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है कि किसी भी एक का अन्य की सहायता की अनुपस्थिति म विकास असम्भव है। पूर्णत आर्थिक विचारधाराओ के आधार पर भारत जसे प्राचीन राष्ट्र म कृषि विकास को प्राथमिकता मिलनी चाहिए।

(घ) सामाजिक प्राथमिकताए—नियोजन अधिकारियो को योजना के काय क्रम निश्चित करते समय यह निर्धारित करना भी आवश्यक होगा कि साधनो का

कितना भाग उत्पादक-सामग्री में तथा कितना भाग जनसमुदाय पर विनियोजित किया जाना चाहिए। उत्पादक-सामग्री उसी समय हितकर हो सकती है, जब जनसमुदाय का स्वास्थ्य, शिक्षा एवं गृह-सम्बन्धी सुविधाएँ भी आयोजन द्वारा प्रदान की जायें। अधिकतर यह विचार किया जाता है कि जनसमुदाय के लिए आधारभूत सुविधाओं का आयोजन करने के लिए जो विनियोजन किया जाता है, वह अनुत्पादक होता है, परन्तु प्रोफेसर शुल्ज (Prof Schultz) जो लेटिन अमरीकी राष्ट्रों के विचारक समझे जाते हैं के विचार में जनसमुदाय का उत्पादन का एक घटक समझ कर उनकी आधारभूत सुविधाओं का आयोजन करना चाहिए। जनसमुदाय का जीवन-स्तर सुधारने में जनसमुदाय की कार्य कुशलता में वृद्धि होती है तथा इन सुविधाओं में विनियोजित राशि से अधिक लाभ प्राप्त होता है, जितना पूँजीगत सामग्री में विनियोजन द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता। जब तक जनसमुदाय की उत्पादन-शक्ति में पर्याप्त वृद्धि नहीं होती है कोई भी आर्थिक विकास पूर्ण तथा सफल नहीं कहा जा सकता। भारत जैसे राष्ट्रों में पिछड़ी जातियों के लोगों का सामाजिक सुधार करना आवश्यक होता है। इस प्रकार सामाजिक कार्यक्रमों को उचित स्थान मिलना आवश्यक होता है।

परियोजनाओं के चयन हेतु लागत लाभ विश्लेषण

योजना में सम्मिलित की जा सकने वाली विभिन्न परियोजनाओं का अध्ययन करने पर प्रत्येक पर लगने वाली कुल लागत तथा उससे प्राप्त होने वाले लाभों की तुलना की जाती है और उन परियोजनाओं का चयन किया जाता है जिनकी लागत एवं लाभ अधिक अनुकूल अनुपात में अनुमानित होता है। इस तुलना का सामान्य तरीका यह है कि प्रत्येक परियोजना का निर्माण करने की लागत की गणना की जाती है और उससे उत्पादित होने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं का अनुमान लगाया जाता है। इस प्रकार का तुलनात्मक अध्ययन केवल ऐसी अर्थ-व्यवस्थाओं में सम्भव हो सकता है, जहाँ विपणि यान्त्रिकता सचालित रहती है क्योंकि विपणि-यान्त्रिकता द्वारा परियोजना के निर्माण में लगने वाले उत्पादन के घटकों का मूल्यांकन तथा उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं का विपणि-मूल्य निकालना सम्भव होता है। प्रतिस्पर्धी अर्थ-व्यवस्था में प्रत्येक परियोजना में लगने वाली पूँजी पर मिलने वाले प्रतिफल की तुलना उस प्रतिफल से की जाती है जो उसी पूँजी को अन्य परियोजना में लगाए जाने पर उपलब्ध हो सकता है। इस प्रकार प्रतिस्पर्धा द्वारा यह निर्धारित होता है कि साधनों का कम प्रतिफल वाले क्षेत्रों से अधिक प्रतिफल वाले क्षेत्रों में हस्तान्तरण होता रहे।

दूसरी नियोजित अर्थ-व्यवस्था में सरकारी क्षेत्र की स्थिति कुछ भिन्न रहती है। प्रायः सरकारी सेवाओं के लिए प्रत्यक्ष रूप से कोई मूल्य नहीं लिया जाता है, जैसे सड़कें, स्कूल, स्वास्थ्य-सेवाएँ आदि। इन सेवाओं का बड़े पैमाने पर विपणि-

यान्त्रिकता द्वारा लाभों की गणना किए बिना आयोजन किया जाता है। सरकारी व्यवसायों द्वारा समाज की सामूहिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है। सरकारी व्यवसायों द्वारा जिन लोगों को लाभ एवं सेवा पहुँचायी जाती है उनका समूह उन लोगों के समूह से अलग होता है जो इन व्यवसायों का संचालन करने के लिए करादि देते हैं। ऐसी परिस्थिति में लाभ की गणना निम्नलिखित विचारधाराओं से की जाती है—

(अ) समस्त देश के दृष्टिकोण से अर्थात परियोजना द्वारा राष्ट्रीय आय में कितनी वृद्धि होने की सम्भावना है अथवा

(आ) सरकार के दृष्टिकोण से अर्थात परियोजना द्वारा सरकार की आय में कितनी वृद्धि होगी अथवा सरकार के व्यय में कितनी कमी होगी, अथवा

(इ) तुरन्त लाभ पाने वालों के दृष्टिकोण से अर्थात उत्पादित वस्तुओं का बाजार मूल्य तथा उसको आयात करने की लागत पर लाभ के मूल्य की गणना की जाती है।

इसी प्रकार परियोजनाओं की लागत की गणना की जाती है। उन परियोजनाओं को जिनके निर्माण में ऐसे साधनों का उपयोग होने वाला हो जिनके अन्यथा बेकार रहने की सम्भावना लागत शून्य के बराबर मानी जा सकती है। इसी कारण से अल्प विकसित राष्ट्रों में उन परियोजनाओं को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है जिनमें अदृश्य बेरोजगारी (जिस श्रम को अन्य उत्पादक क्रियाओं में लगाना सम्भव नहीं होता है) का उपयोग होता है।

सामाजिक लागत एवं लाभ—नियोजित अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत परियोजनाओं का केवल आर्थिक लागत एवं लाभ पर ही विचार नहीं किया जाता है बल्कि सामाजिक लागत एवं लाभ का भी अध्ययन किया जाता है। परियोजनाओं के संचालन से केवल विनियोजन को ही लाभ अथवा हानि नहीं होती है बल्कि परियोजना के बाहर *समाज को तथा परियोजनाओं को लाभ अथवा हानि प्राप्त होती है।* प्रत्येक परियोजना का अन्य परियोजनाओं के उत्पादन पर समाज के उपयोग पर परियोजनाओं में उपभोग होने वाली सामग्री का अन्य परियोजनाओं के उत्पादन एवं उपभोग पर प्रभाव पड़ता है। जब यह प्रभाव अपने से बाहर हानिकारक होता है तो उसे उस परियोजना की सामाजिक लागत समझा जाता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक परियोजना का सामाजिक वातावरण पर भी प्रभाव पड़ता है जैसे किसी स्थान पर कारखाना खुलने पर वहाँ गन्दगी होती है गन्दा धुआँ गैस आदि फैलाती है उस नगर की जनसंख्या घना होती है औद्योगिक बीमारियाँ फैलती हैं आदि आदि। दूसरी ओर, उस कारखाने के बन जाने से लोगों को रोजगार मिलता है, आय बढ़ती है जीवन-स्तर में सुधार होता है व्यापार का क्षेत्र बढ़ता है आदि। इस प्रकार प्रत्येक परियोजना के कुछ सामाजिक लाभ और कुछ सामाजिक हानियाँ होती हैं।

परियोजनाओं के केवल वर्तमान सामाजिक लाभ एवं लागत का ध्यान में रखना पर्याप्त नहीं होता है। उनमें दीर्घ काल में जो सामाजिक लाभ एवं लागत हो सकती है उस पर भी विचार करना चाहिए। इसी प्रकार कुछ परियोजनाओं में होने वाली हानि एवं लागत के प्रभाव का फैलाव समाज के बड़े क्षेत्र पर होता है और कुछ अन्य केवल कुछ ही नागरिकों को प्रभावित करती हैं।

लागत लाभ पद्धति का उपयोग—लागत-लाभ की विश्लेषण पद्धति का उपयोग करने के लिए परियोजना का कार्यक्षेत्र परिमापित करके उनसे प्राप्त होने वाले वर्तमान लाभों तथा उस पर लगने वाली वर्तमान लागत का अनुमान लगाना चाहिए और फिर इस लागत एवं लाभ का मौद्रिक मूल्य ज्ञात करना चाहिए। इसके पश्चात परियोजना द्वारा जो प्रति वर्ष शुद्ध लाभ प्राप्त होने वाला हो उसका अनुमान लगाना चाहिए। इन सब अनुमानों को तैयार करने के पश्चात यह निश्चय किया जा सकता है कि किसी विशिष्ट योजना से प्राप्त होने वाले प्रतिफल अथवा लाभ की दर इतनी ऊँची है कि उसका संचालन करना न्यायोचित है।

भारत में लाभ-लागत-पद्धति का उपयोग

लाभ लागत पद्धति का भारतवर्ष में पूर्णरूपेण उपयोग करना सम्भव नहीं है क्योंकि यहाँ पर सांख्यकीय तथ्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हैं तथा यह तथ्य शुद्ध एवं विश्वसनीय भी नहीं होते हैं। वर्तमान एवं भूतकालीन विस्तृत सांख्यिकीय तथ्यों की अनुपस्थिति में परियोजनाओं के आर्थिक तथा सामाजिक लाभ-लागत का अनुमान लगाना सम्भव नहीं हो सकता। यह भी पता लगाना सम्भव नहीं होता कि परियोजना का संचालन न होने पर लोगों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति क्या होती। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष में बहुत सी परियोजनाओं का संचालन एक साथ प्रारम्भ किया गया है जिससे प्रथक प्रथक परियोजनाओं के लाभ लागत ज्ञात करना सम्भव नहीं है। परियोजनाओं का प्रारम्भ होते समय कुछ साधन उपलब्ध हो जाते हैं परन्तु बाद में उनकी पूर्ति एवं कुशल पर्याप्त साधन, विशेषकर विदेशी विनिमय उपलब्ध नहीं होता है जिसके फलस्वरूप परियोजनाओं की लागत एवं लाभ का ठीक अनुमान लगाना सम्भव नहीं हो सकता है।

भारत में बेरोजगार अदृश्य बेरोजगार एवं अदृश्य बेरोजगार श्रम का बाहुल्य है जबकि उत्पादन के अन्य घटकों विशेषकर पूँजी एवं तान्त्रिक ज्ञान की बहुत कमी है। परियोजनाओं की श्रम-लागत का अनुमान लगाना इसी कारण सम्भव नहीं होता। भारतवर्ष की परियोजनाओं की सामाजिक लागत की गणना भी अत्यन्त कठिन है और इस ओर नियोजकों द्वारा कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया है क्योंकि इसकी पूर्ति निर्माण-संस्था द्वारा नहीं करनी पड़ती है। सरकारी क्षेत्र में होने वाले विनियोजन के ब्याज का उचित दर पर नहीं लगाये जाने के कारण परियोजनाओं की लागत की गणना शुद्ध नहीं होती है।

दूसरी ओर, लाभो का अनुमान भी ठीक से लगाना सम्भव नही होता है क्योंकि भारत में मूल्य स्तर म बडी अनिश्चितता रहती है। मूल्य स्तर कृषिक्षेत्र की सफलता पर निर्भर रहता है और यह सफलता अनिश्चित मानसून पर निर्भर रहती है। इस प्रकार भविष्य के लाभो की गणना वर्तमान मूल्यो पर करने से शुद्धता का अभाव रहता है। परन्तु अब बफर स्टाक की पद्धति से मूल्य स्तर को स्थिर बनाने के प्रयत्न किये जा रहे है और यदि यह प्रयत्न सफल रहे तो परियोजनाओ की लागत शुद्धता के साथ अनुमानित हो सकेगी।

परियोजनाओ के लागत लाभ विश्लेषण म एक सबसे बडी कठिनाई होना है राजनीतिक विचारधाराओ एव दबाव की। प्रजातान्त्रिक राष्ट्रो म परियोजनाओ का चयन केवल आर्थिक दृष्टिकोण से ही नही किया जाता है बल्कि राजनीतिक दबाव का बोलबाला रहता है। इस बात का प्रमाण हम कई परियोजनाओ के सम्बन्ध मे मिलता है जैसे विशाखापटनम मे भारी इस्पात का कारखाना खोलने के लिए कुछ समय पूर्व आन्दोलन किया गया था। इस प्रकार राजनीति दबाव के कारण भी लागत लाभ का उपयोग भारत म पूर्णरूपेण नही किया जा सका है।

———

अध्याय ७

आर्थिक नियोजन की प्रविधि एवं प्रक्रियाएँ

[Techniques and Methodology of Economic Planning]

[विकास-योजना के अंग—वित्तीय नीति का निर्धारण, मौद्रिक नीति का निर्धारण, व्यक्तियों, व्यवसायों एवं संस्थाओं पर नियन्त्रण—नियोजन की प्रविधियाँ—परियोजना नियोजन, समन्वित नियोजन, लक्ष्य नियोजन, क्षेत्रीय नियोजन, गतिशील बनाम स्थिर नियोजन, निकट भविष्य बनाम सुदूर भविष्य के लिए नियोजन, कार्य-प्रधान बनाम निर्माण-प्रधान नियोजन, भौतिक बनाम वित्तीय नियोजन, प्रोत्साहन द्वारा बनाम निर्देशन द्वारा नियोजन, निम्न स्तर बनाम उच्च स्तर से नियोजन, प्रदेशीय बनाम राष्ट्रीय नियोजन, अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन]

आर्थिक नियोजन मूलतः से एक संगठन-व्यवस्था है जिसका उद्देश्य पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों को निश्चित काल में प्राप्त करना होता है। इस व्यवस्था में अर्थ-व्यवस्था का इस प्रकार संगठित एवं संचालित किया जाता है कि देश में उपलब्ध भौतिक एवं मानसिक साधनों का कुशल एवं पूर्णतम उपयोग पूर्व-निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जा सके। नियोजित अर्थ-व्यवस्था के संचालनार्थ उपयोग की जाने वाली प्रविधि एवं प्रक्रियाएँ विभिन्न राष्ट्रों के राजनैतिक एवं आर्थिक कलेवर पर निर्भर रहती हैं। नियोजित अर्थ-व्यवस्था के सफल संचालन हेतु केवल वित्तीय मौद्रिक एवं विदेशी विनिमय सम्बन्धी प्रविधियों का ही उपयोग नहीं करना पड़ता, अपितु अर्थ-व्यवस्था में कुछ संस्थागत परिवर्तन करने पड़ते हैं। परम्परागत आर्थिक संस्थाओं के विस्तार पर रोक लगायी जाती है और उनके स्थान पर उपयुक्त नवीन संस्थाओं की स्थापना की जाती है। *इस प्रकार एक विकास-योजना के निम्नलिखित* तीन प्रमुख अंग होते हैं—

विकास योजना के अंग

(१) वित्तीय नीति का निर्धारण—इसके अन्तर्गत विनियोजन की मात्रा, कर, बचत, सरकारी ऋण, विदेशी सहायता आदि का निर्धारण किया जाता है। इनको पर्याप्त मात्रा में प्राप्त करने हेतु नीतियाँ एवं विधियाँ निर्धारित की जाती हैं। यह क्रिया प्रायः दो बजट (*Budget*) बनाकर की जाती है। एक बजट में पूँजीगत विनियोजन एवं व्यय का विवरण दिया जाता है और दूसरे बजट में अन्य सरकारी व्ययों

का ब्यौरा दिया जाता है। पूँजीगत एवं आगम-व्ययों के साथ-साथ उनके लिए आवश्यक अर्थ प्राप्त करने हेतु साधनों का ब्यौरा भी दिया जाता है। इस प्रकार वित्तीय नीति द्वारा उत्पादक-साधनों के आवंटन को नियन्त्रित किया जाता है।

(२) **मौद्रिक नीति का निर्धारण**—इसके अन्तर्गत नियोजित अर्थ-व्यवस्था के *लिए मुद्रा एवं साख की माँग एवं पूर्ति का अनुमान लगाया जाता है और माँग एवं* पूर्ति को अनुमानानुसार रखने हेतु मौद्रिक एवं साख नियन्त्रण की विधियों का निर्धारण किया जाता है। मौद्रिक नीतियों को वित्तीय नीति के समय समायोजित एवं समन्वित भी किया जाता है।

(३) **व्यक्तियों, व्यवसायों एवं संस्थाओं पर नियन्त्रण करने हेतु अधिनियम एवं नियम निर्धारण करना**—*आर्थिक नियोजन के आर्थिक एवं सामाजिक उद्देश्यों की* पूर्ति हेतु निजी व्यक्तियों, संस्थाओं एवं व्यवसायों का योगदान प्राप्त करने के लिए आवश्यक अधिनियम एवं नियम बनाने का कार्यक्रम निर्धारित किया जाता है। इसके साथ ही योजना के कार्यक्रमों के कुशल संचालन हेतु परम्परागत संस्थाओं का पुनर्गठन एवं नवीन संस्थाओं की स्थापना के लिए नियमों एवं अधिनियमों का भी आयोजन *किया जाता है।*

आर्थिक नियोजन की उपर्युक्त तीन नीतियाँ ही समस्त अन्य नीतियों एवं कार्यक्रमों को नियन्त्रित करती है। उपर्युक्त मूलभूत नीतियाँ निर्धारित करने के पूर्व योजना के उद्देश्यों को निर्धारित कर लिया जाता है और फिर आधारभूत नीतियाँ वर्तमान परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए निर्धारित की जाती हैं। नियोजित अर्थ-*व्यवस्था के अन्तर्गत अनियोजित अर्थ-व्यवस्था* के समान सीमान्त परिवर्तनों (Marginal Changes) पर निर्भर नहीं रहा जाता है। अनियोजित व्यवस्था में समस्त सन्तुलन सीमान्त परिवर्तनों एवं सीमान्त समायोजनों (Marginal Changes and Marginal Adjustment) के द्वारा संचालित होते हैं जबकि नियोजित अर्थ व्यवस्था में सामाजिक एवं आर्थिक कलेवर में आधारभूत परिवर्तन करके आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त करने के प्रयत्न किए जाते हैं। इसी कारण नियोजित अर्थ-व्यवस्था की प्रविधि एवं प्रक्रियाएं अनियोजित अर्थ-व्यवस्था से भिन्न होती हैं। विभिन्न राष्ट्रों में नियोजन *के कुशल संचालन हेतु परिस्थिति के अनुसार* विभिन्न प्रविधियों एवं प्रक्रियाओं का उपयोग किया जाता है जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण का विवेचन नीचे किया गया है—

नियोजन की विभिन्न प्रविधियाँ

(१) **परियोजना नियोजन (Project Planning)**—इस प्रविधि के अन्तर्गत अर्द्ध विकसित राष्ट्र कुछ विशेष परियोजनाओं जो उपस्थित परिस्थितियों में अधिक महत्वपूर्ण समझी जाय, को ही संचालित किया जाता है। इसके लिए उचित संगठन विनियोजन आदि की व्यवस्था कर दी जाती है। अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्रों को ज्यों *का त्यों जारी रखा जाता है।* इस प्रकार देश के लिए एक व्यापक एवं समन्वित

योजना नहीं बनायी जाती है बल्कि कुछ प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों के लिए ही परि-योजनाएँ निर्धारित की जाती हैं परन्तु इस प्रकार की विकास परियोजना का अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्रों से समन्वित करने में कठिनाई होती है क्योंकि नियोजित कार्य-क्रमों के लिए केवल क्षेत्र एवं विनियोजन ही पर्याप्त नहीं होते अपितु संस्थागत (Institutional) परिवर्तन करना आवश्यक होता है।

(२) खण्डित नियोजन (Sectional Planning)—खण्डित नियोजन की विचारधारा का अर्थ कई प्रकार से समझा जाता है। कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार इसके अन्तर्गत समस्त अर्थ-व्यवस्था की प्रगति की अभीष्ट दर की प्राप्ति हेतु पूँजी-विनियोजन एवं सम्पत्ति का विभाजन करके पूर्व अनुमान प्रस्तुत करते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि समस्त अर्थ-व्यवस्था की अभीष्ट प्रगति के अनुसार उप कार्यक्रम निर्धारित किए जाते हैं तो इसे खण्डित नियोजन कहते हैं।

कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों के अनुसार खण्डित नियोजन वह व्यवस्था को कहते हैं जिसमें अर्थ-व्यवस्था में विभिन्न खण्डों (Sectors) की तुलनात्मक प्रगति की दरों का निर्धारण किया जाता है और इस प्रगति की प्राप्ति करने हेतु आवश्यक नीति निर्धा-रित किए जाते हैं। कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों का विचार है कि खण्डित नियोजन उप-र्युक्त दोनों विचारधाराओं का सम्मिश्रण होता है। इसके अन्तर्गत विभिन्न विकास-खण्डों (Development Sectors) के लिए कार्यक्रम एवं संस्थागत परिवर्तन भी आयोजित किये जाते हैं।

(३) लक्ष्य नियोजन (Target Planning)—लक्ष्य-नियोजन सबसे अधिक प्रभावशाली एवं उपयोगी समझा जाता है। इसके अन्तर्गत केवल सार्वजनिक विनियोजन परियोजनाएँ (Public Investment Projects) नवीन नियमों नवीन एवं परिवर्तित संस्थाओं तथा समस्त अर्थ-व्यवस्था की आर्थिक प्रगति की दर ही निर्धारित नहीं की जाती अपितु उत्पादन की मात्रा के लक्ष्य भी विभिन्न क्षेत्रों के लिए पृथक् पृथक् निर्धा-रित किए जाते हैं। इतना ही नहीं उत्पादन की मात्रा के लक्ष्य प्रत्येक इकाई एवं संस्था के लिए भी निर्धारित कर दिए जाते हैं। लक्ष्य नियोजन की समस्याओं का अधिक सुगम होता है परन्तु विभिन्न क्षेत्रों के लक्ष्य निर्धारित करने के पूर्व इस बात पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए कि विभिन्न क्षेत्रों के लक्ष्यों में समन्वय बना रहे। लक्ष्यों के समन्वय के सम्बन्ध में सतर्क न रहने पर समस्त अर्थ-व्यवस्था की लक्षित प्रगति होने पर भी अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न खण्डों की प्रगति में विपमता हो सकती है, जो भविष्य में विकास के लिए बाधाओं को जन्म दे सकती है। विभिन्न खण्डों (Sectors) के विकास को समन्वित रखने हेतु विभिन्न परिमाण-सम्बन्धी अतिरिक्त उप-लक्ष्य भी निर्धारित करने चाहिए जैसे बजट को सन्तुलित रखने का लक्ष्य विदेशी भुगतानों के सन्तुलन का लक्ष्य पूँजी-निर्माण का लक्ष्य कृषि-क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र में जनसंख्या के हस्तान्तरण का लक्ष्य जनसंख्या के पुनर्वास का लक्ष्य, श्रमिकों के प्रशिक्षण का लक्ष्य आदि।

(४) क्षेत्रीय नियोजन एवं विकास (Area Planning and Development)—बड़े क्षेत्र वाले राष्ट्रों में सन्तुलित प्रादेशीय विकास द्वारा सामाजिक एवं आर्थिक न्याय का उचित आयोजन नहीं किया जा सकता है। भारतीय नियोजित अर्थ व्यवस्था की प्रथम तीन योजनाओं में प्रादेशीय योजनाओं के आधार पर विकास कार्य-क्रम संचालित किये गये जिसके फलस्वरूप यह अनुभव किया गया है कि विभिन्न प्रदेशों में लक्ष्य के अनुसार प्रगति होते हुए भी उस प्रदेश में बहुत ऐसे क्षेत्र रहते हैं जिनको नियोजित अर्थ व्यवस्था का पर्याप्त लाभ प्राप्त नहीं होता है। क्षेत्रीय नियोजन का उद्देश्य क्षेत्रीय स्तर पर नियोजन को सुदृढ़ बनाकर उस क्षेत्र की प्रगति की सम्भावनाओं को बढ़ाना होता है। इसके अन्तर्गत उस विशिष्ट क्षेत्र में कार्यक्रमों का कुशल संचालन करना, क्षेत्रीय प्रारम्भिकता (initiative) एवं सहयोग (Participation) प्राप्त करना तथा उस क्षेत्र के समुदाय की क्रियाओं में नियोजन के उद्देश्यों को उचित स्थान प्राप्त कराना होता है। क्षेत्रीय नियोजन की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से पड़ती है—

(१) राष्ट्रीय योजना को जनसमुदाय के जीवन का एक मूलभूत अंग बनाने हेतु उसे क्षेत्रीय परियोजनाओं (Local Projects) में विभक्त करना आवश्यक होता है। क्षेत्रीय योजनाओं की अनुपस्थिति में जनसाधारण में नियोजन के प्रति जागरूकता नहीं रहती और वह इसे सरकार द्वारा संचालित की जाने वाली एक क्रिया मात्र समझता है।

(२) विभिन्न अविकसित क्षेत्रों में विकास की गति को तीव्र करने हेतु विशेष प्रयास किये जाने चाहिए और इनके लिए विशेष परियोजनाओं का संचालन किया जाना चाहिए। दूसरी ओर ऐसे क्षेत्र भी होते हैं जिनमें विकास तीव्र गति से किया जाना सम्भावित होता है और इन्हें शीघ्र विकसित करके अन्य क्षेत्रों को आदर्श प्रस्तुत किया जा सकता है।

(३) विकास सम्बन्धी विभिन्न परियोजनाओं को क्षेत्रीय स्तर पर समन्वित करके प्रत्येक क्षेत्र का सन्तुलित विकास किया जा सकता है।

(४) स्थानीय साधनों का (जिनका अन्यथा उपयोग ही नहीं होता अथवा पूर्ण उपयोग नहीं होता) जिनमें जन शक्ति भी सम्मिलित है, का उत्पादक एवं कल्याणकारी उपयोग किया जा सकता है। स्थानीय सहयोग भी प्राप्त करना सम्भव हो सकता है।

क्षेत्रीय विकास योजनाओं का निर्माण करने के लिए स्थानीय अथवा क्षेत्रीय साधनों की जाँच की जानी चाहिए। प्रत्येक क्षेत्र की भूमि का उपजाऊपन, फसलों, पशुओं, वनों, स्थानीय कला कौशल, जन शक्ति, व्यवसायों, यातायात के साधनों की पूर्ण जाँच (Survey) की जानी चाहिए और इस जाँच से प्राप्त सूचनाओं एवं साख्य के आधार पर विकास सम्बन्धी सम्भावनाओं का अनुमान लगाना चाहिए। तत्पश्चात् समन्वित विकास-कार्यक्रम निर्धारित किये जाते हैं।

क्षेत्रीय विकास योजनाओं का राष्ट्रीय योजनाओं में निश्चित स्थान को स्पष्ट रूप

से पारिभाषित किया जाना चाहिए, अन्यथा विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न विकास-परियोजनाओं के आवंटन (Allotment) के लिए प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो सकती है और प्रत्येक क्षेत्र अपने विकास हेतु राजनीतिक दबाव का उपयोग करने लगेगा, जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय योजना प्रभावशाली नहीं हो सकेगी। क्षेत्रीय परियोजनाएं राष्ट्रीय नियोजन की सहायक एवं पूरक होनी चाहिए।

(५) गतिशील बनाम स्थिर नियोजन (Dynamic vs Static Planning)—नियोजन का तात्पर्य केवल प्राथमिकताओं के आधार पर लक्ष्य एवं विनियोजन करना ही नहीं होना चाहिए। वास्तव में नियोजन एक सतत विधि (Continuous Process) है जिसके द्वारा निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रयत्न किये जाते हैं, परन्तु इन लक्ष्यों को यदि इतना कठोर (Rigid) बना दिया जाय कि परिस्थितियों में परिवर्तन होते हुए भी इनमें कोई परिवर्तन सम्भव न हो तो इस प्रकार के नियोजन को हम स्थिर नियोजन कह सकते हैं। वास्तव में ऐसे कार्यक्रम जिनके लक्ष्य एवं आयोजन अपरिवर्तनशील हों उन्हें आर्थिक नियोजन कहना न्यायसंगत न होगा क्योंकि आर्थिक परिस्थितियों एवं वातावरण में परिवर्तनशीलता स्वाभाविक एवं अनिवार्य है और किसी आर्थिक कार्यक्रम को स्थिरता दिया जाना सर्वथा असम्भव प्रतीत होता है। गतिशील नियोजन इसके विपरीत परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तनीय होते हैं जिनका ठीक-ठीक अनुमान योजना निर्माण के समय योग्य से योग्य नियोजन अधिकारी भी नहीं लगा सकते। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण का भी प्रभाव आन्तरिक अर्थ-व्यवस्था पर पड़ता है, जिस पर नियोजन अधिकारियों का कोई नियन्त्रण नहीं होता, केवल कठोर नियन्त्रण एवं नियमन द्वारा ही स्थिर कार्यक्रम का संचालन सम्भव हो सकता है। कठोर नियमन और नियन्त्रण तानाशाही नियोजन में ही सम्भव एवं उचित है। स्थिर नियोजन में नियोजन अधिकारी एवं राज्य को प्रगति का अध्ययन करने के स्थान पर योजना के कार्यक्रमों के संचालन को विशेष महत्व देना पड़ता है। इस प्रकार के नियोजन को जन-सहयोग भी प्राप्त नहीं होगा।

(६) निकट भविष्य बनाम सुदूर भविष्य के लिए नियोजन (Prospective vs Perspective Planning)—दूसरे शब्दों में इस प्रकार के नियोजन को दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन नियोजन भी कहा जा सकता है। दीर्घकालीन नियोजन में सुदूर भविष्य के लिए अनुमानित आवश्यकताओं के अनुसार एक विकास का ढांचा निर्मित कर लिया जाता है। इस निर्धारित ढांचे की प्रगति हेतु निरन्तर प्रयास की आवश्यकता होती है। निर्धारित विकास को दीर्घ काल में ही प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए कार्यक्रमों को अल्प काल में विभाजित करके निश्चित दीर्घकालीन लक्ष्य की प्राप्ति की जाती है। अल्पकालीन योजना में कार्यक्रमों के समस्त विवरण रखे जाते हैं और उनको इस प्रकार निर्धारित किया जाता है कि एक के पश्चात् दूसरी अल्पकालीन योजना दीर्घकालीन लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक हो। अल्पकालीन योज-

नाओ म प्राथमिकताओ के अनुसार तत्कालीन समस्याओं का निवारण करन के साथ साथ दीघकालीन लक्ष्यो की ओर अग्रसर होने के लिए पृष्ठभूमि तयार की जाती है। सुदूर भविष्य की योजनाओ म केवल महत्वपूण एव आधारभूत उद्देश्य ही सम्मिलित होते हैं और उनका विवरण तयार नही किया जा सकता क्योकि परिस्थितिया की परिवतनशीलता के कारण दीघकालीन अनुमान लगाना सम्भव नही होता है। उदाहरणाथ भारत म सन् १९८० ८१ के अत तक राष्ट्रीय उत्पादन एव शुद्ध विनियोजन को (सन् १९६७ ६९ के मूल्यो पर) क्रमश बढा कर ५८२२० करोड रुपये एव १० २५० करोड रुपये तक करने का लक्ष्य योजना का दीघकालीन उद्देश्य है। इसकी प्राप्ति हेतु चतुथ योजना के कायक्रमो का विवरण प्रकाशित कर दिया गया है जिसके द्वारा राष्ट्रीय आय को बढा कर ३८४७० करोड रुपये करन का लक्ष्य है। चतुथ योजना के अत होते ही उस समय की परिस्थितिया के अनुसार एव पचवर्षीय योजना के लक्ष्यो को दृष्टिगत करते हुए पाँचवी योजना के कायक्रमो को निर्धारित किया जायगा। अब यह भी अनुभव किया जाने लगा है कि पचवर्षीय योजनाओ के कायक्रमो को वार्षिक कायक्रमो म विभक्त किया जाना चाहिए। फलस्वरूप वार्षिक प्रगति आँकी जा सके और उस प्रगति के अनुसार आगामी वष क कायक्रमों मे हेर फर किया जा सके।

(७) काय प्रधान बनाम निर्माण प्रधान नियोजन (Functional vs Structural Planning)—काय प्रधान नियोजन उस कायक्रम को कहते है जिसम वतमान आर्थिक एव सामाजिक प्रारूप के अतगत ही नियोजन क कायक्रमो का सचालन करके आर्थिक कठिनाइयो का निवारण किया जाता है। इस प्रकार के कायक्रमो म सस्थनीय परिवतन नहीं किए जाते। एक नवीन सस्थनीय आकार का प्रादुर्भाव नही होता है। इस प्रकार क कायक्रमो को कम साधनो एव तात्रिक विशेषज्ञो द्वारा सचालित किया जा सकता है परन्तु यह नियोजन चतुमुखी विकास एव जनसमुदाय म नवीन जीवन-सचारण हेतु अनुपयुक्त है। इसमे तो केवल विशेष समस्याओ का निवारण होता है एव अथ व्यवस्था की विशिष्ट दुबलताओ को कम किया जाता है।

दूसरी ओर निर्माण-सम्बन्धी नियोजन म सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था म सस्थनीय परिवतन द्वारा एक नवीन व्यवस्था का निर्माण किया जाता है। इसके द्वारा समाज म सवतोमुखी विकास और नवीन जीवन सचार होता है। निर्माण सम्बन्धी नियोजन म उत्पादन की नवीनतम विधियो का प्रयोग किया जाता है। भारत की प्रथम पचवर्षीय योजना को काय प्रधान नियोजन कहा जा सकता है क्योंकि इस योजना के कार्यक्रम को इस प्रकार निर्धारित किया गया था कि तत्कालीन *उत्पादन-व्यवस्था म* न्यूनातिन्यून हेर-फेर द्वारा उत्पादन मे वृद्धि की जा सके। इस योजना म आर्थिक एव सामाजिक व्यवस्था म समायोजन करन को विशेष महत्व दिया गया था क्योकि द्वितीय महायुद्ध एव देश के विभाजन से पहुँची क्षति की पूर्ति आवश्यक थी। फिर भी, इस

योजना में कुछ क्षेत्रों में सस्थनीय परिवर्तन हुए हैं। इन क्षेत्रों में भूमि प्रबन्ध सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। द्वितीय योजना में एक नवीन अर्थ-व्यवस्था के निर्माण का लक्ष्य रखा गया है और सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) का विकास एवं विस्तृत करके उत्पादन के क्षेत्र में सस्थनीय परिवर्तन किए गये हैं। तृतीय योजना में सहकारी-कृषि उद्योगों में सार्वजनिक क्षेत्र का अधिक महत्व, समाज सेवाओं के कार्यक्रमों एवं सामुदायिक विकास आदि द्वारा सस्थनीय परिवर्तन की ओर भी अधिक महत्व दिया गया है, इसलिए इन दोनों योजनाओं को निर्माण प्रधान योजना कहा जा सकता है।

अर्द्ध विकसित राष्ट्रों में निर्माण-प्रधान योजना को अधिक महत्व दिया जाता है। इसके द्वारा एक नवीन व्यवस्था का निर्माण होता है और पुरानी व्यवस्था में, जिसकी प्रभावशीलता समाप्त हो चुकी है बड़े बड़े सुधार कर दिए जाते हैं। रूस एवं चीन में नियोजन का स्वरूप निर्माण प्रधान है। चीनी नियोजन द्वारा चीन की मिश्रित अर्थ व्यवस्था को समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में परिवर्तन किया गया है। इसी प्रकार रूसी नियोजन के प्रारम्भिक काल में नियोजन का स्वरूप निर्माण प्रधान था और इसके द्वारा समाज के ढाँचे में परिवर्तन किए गये।

वास्तव में निर्माण प्रधान नियोजन को अधिक प्रभावशाली माना जा सकता है। इसके द्वारा ही धन एवं आय का समान वितरण तथा अवसर एवं धन में वृद्धि की जा सकती है। किसी राष्ट्र की निर्धनता को समाप्त करने हेतु धन एवं आय का समान वितरण तथा अधिकतम उत्पादन दोनों ही आवश्यक हैं और इन दोनों का आयोजन अर्थ-व्यवस्था में सस्थनीय परिवर्तन द्वारा ही किया जा सकता है। वास्तव में, कार्य प्रधान एवं निर्माण प्रधान नियोजन में कोई विशेष अन्तर नहीं है। निर्माण-प्रधान नियोजन भी कुछ समय पश्चात् कार्य प्रधान नियोजन का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। निर्माण प्रधान योजना के संचालन के कुछ वर्षों पश्चात् अर्थ-व्यवस्था एवं सामाजिक व्यवस्था में आवश्यक सस्थनीय परिवर्तन हो जाते हैं और फिर बड़े पैमाने पर व्यवस्था में सस्थनीय परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं होती है। ऐसी परिस्थितियों में निर्माण प्रधान योजना कार्य प्रधान योजना बन जाती है। रूसी नियोजन ने अब कार्य प्रधान नियोजन का स्वरूप ग्रहण कर लिया है। इसी प्रकार कुछ वर्षों पश्चात् चीनी एवं भारतीय नियोजन भी कार्य प्रधान नियोजन बन जायेंगे।

(८) **भौतिक बनाम वित्तीय नियोजन (Physical vs Financial Planning)**—जब नियोजन का कार्यक्रम निर्धारित करते समय उपलब्ध वास्तविक साधनों को दृष्टिगत किया जाता है तो इसे भौतिक नियोजन कहते हैं। योजना के कार्यक्रम पूर्ण होने पर उत्पन्न हुई पूर्ति एवं माँग के सम्बन्ध में अनुमान लगाने का कार्य भी भौतिक नियोजन का अंग होता है। इतना ही नहीं, योजना बनाते समय केवल पृथक योजनाओं के लिए साधनों की आवश्यकताओं को ही दृष्टिगत करना पर्याप्त नहीं होता है, प्रत्युत समस्त विकास-कार्यक्रमों के आवश्यक वास्तविक साधनों का निर्धारण भी

जरूरी होता है। योजना के द्वारा अर्थ व्यवस्था के वर्तमान सन्तुलन को छिन्न भिन्न करके नवीन सन्तुलन का निर्माण किया जाता है। नवीन सन्तुलन स्थापित करने से पूर्व आवश्यक सामग्री यन्त्र श्रम आदि की उपलब्धि को दृष्टिगत करना आवश्यक होगा। यदि कुछ सामग्री विदेशों से आयात करना हो तो यह भी आंकना पड़ेगा कि कथित सामग्री प्राप्त की जा सकती है अथवा नहीं और साथ ही क्या इस सामग्री के आयात के शोधनार्थ देश में निर्यात योग्य अतिरिक्त वस्तुएं उपलब्ध हैं या नहीं। इस प्रकार योजना के कार्यक्रमों की भौतिक साधनों सम्बन्धी आवश्यकताओं एवं उपलब्धि के अध्ययन तथा निश्चयों को भौतिक नियोजन कहते हैं।

दूसरी ओर, वित्तीय नियोजन में योजना के कार्यक्रमों की वित्तीय आवश्यकताओं को आंका जाता है एवं उनका प्रबन्ध किया जाता है। विनियोजन का प्रकार निश्चित करके विभिन्न मदों पर व्यय होने वाली राशियाँ निश्चित की जाती है। विकास-व्यय द्वारा मूल्यों एवं मौद्रिक आय पर पड़ने वाले प्रभाव का अनुमान लगाकर माँग एवं पूर्ति के अनुमान लगाये जाते हैं। बजट सम्बन्धी नीतियों द्वारा मूल्य आय एवं उपभोग पर नियन्त्रण किया जाता है। इन सभी कार्यों को वित्तीय नियोजन में सम्मिलित किया जाता है। किसी भी योजना को सफल बनाने के लिए भौतिक एवं वित्तीय—दोनों ही विचारधाराएं एवं अनुमान आवश्यक हैं। योजना में इन दोनों विचारधाराओं को पृथक पृथक नहीं किया जा सकता। यह अवश्य है कि किसी योजना में वित्तीय विचारधाराओं को और किसी में भौतिक विचारधाराओं को महत्व प्रदान किया जाता है। वित्तीय साधनों में राज्य वृद्धि कर सकता है किन्तु इनकी वृद्धि कुछ लाभदायक नहीं होगी, जब तक कि वास्तविक भौतिक साधनों में वृद्धि न हो। दूसरी ओर यदि भौतिक साधनों को ही अधिक महत्व दिया जाय तो वित्तीय व्यवस्था के अभावों का लाभ प्राप्त नहीं हो सकेगा। इस प्रकार वित्तीय नियोजन एवं भौतिक नियोजन एक दूसरे के पूरक हैं और इन दोनों का समन्वित उपयोग आवश्यक होता है।

योजना बनाने के पूर्व योजना आयोग को भौतिक लक्ष्य निर्धारित करना आवश्यक होता है। इन भौतिक लक्ष्यों में पारस्परिक समन्वय होना भी अत्यन्त आवश्यक है। एक उद्योग का निर्मित माल दूसरे उद्योग के लिए कच्चा माल होता है। ऐसी परिस्थिति में दोनों उद्योगों के लक्ष्यों में समन्वय होना आवश्यक है अन्यथा विकास छिन्न भिन्न हो जायेगा। प्रत्येक उद्योग के लिए आवश्यक सामग्री एवं कच्चे माल की मात्रा तथा उसके द्वारा निर्मित माल की माँग निर्धारित करना योजना अधिकारी का मुख्य कर्त्तव्य होता है। इस प्रकार विभिन्न उद्योगों की कच्चे माल श्रम एवं सामग्री सम्बन्धी आवश्यकताओं तथा उनके द्वारा उत्पादित वस्तु की मात्रा को निर्धारित करने को नियोजन का भौतिक स्वरूप कहते हैं। जब इन भौतिक लक्ष्यों एवं निश्चयों को वित्तीय स्वरूप दिया जाता है तो उसे नियोजन का वित्तीय स्वरूप कहते हैं।

इस बात में अर्थशास्त्रियों में मतभेद है कि अर्द्ध विकसित राष्ट्रों में भौतिक अथवा वित्तीय—किस पक्ष को योजना का आधार माना जाय। वास्तव में प्रत्येक योजना के लिए दोनों ही पक्षों की आवश्यकता होती है। केवल निश्चय यह करना होता है कि किस पक्ष को आधार समझा जाय। अर्द्ध विकसित राष्ट्रों में राष्ट्रीय बचत इतनी कम होती है कि यदि उसको आधार मानकर विकास योजनाओं का निर्माण किया जाय तो विकास की गति अत्यन्त धीमी रहेगी। दूसरी ओर, अर्थ-व्यवस्था की भौतिक आवश्यकताओं की जाँच करके उनकी पूर्ति हेतु अर्थ-साधनों की खोज की जाय तो विकास की गति तीव्र हो सकती है, परन्तु यह अर्थ-साधन कहाँ से उपलब्ध हों सकेंगे क्योंकि देश में बचत एवं विनियोजन का स्तर अत्यन्त न्यून होता है जिसको शीघ्रता से बढ़ाया जाना सम्भव नहीं होता है। इन साधनों को इस प्रकार विदेशी सहायता एवं मुद्रा-प्रसार से जुटाया जाता है। विदेशी सहायता पर्याप्त मात्रा में मिलते रहना प्रायः सम्भव नहीं होता है और यदि पर्याप्त विदेशी सहायता उपलब्ध भी हो जाय तो इस सहायता का वह भाग जिसका उपयोग विदेशों से आयात करने पर व्यय नहीं किया जाता मुद्रा प्रसार को उग्र बनाने में सहायक होता है। दूसरी ओर, मुद्रा-पूर्ति में वृद्धि द्वारा भी मुद्रा प्रसार के दबाव को प्रोत्साहन मिलता है। इस प्रकार मुद्रा-प्रसार की वृद्धि में विकास की गति को अधिक समय तक तीव्र रखना सम्भव नहीं होता है, परन्तु मुद्रा-प्रसार पर राज्य विभिन्न मौद्रिक एवं वित्तीय क्रियाओं द्वारा नियन्त्रण रख सकता है और विकास की वांछित गति बनाये रखी जाती है। इन्हीं कारणों से आधुनिक युग में भौतिक नियोजन को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है परन्तु भौतिक कार्यक्रमों को आधार मानते हुए भी उनकी अधिकतम सीमा, उपलब्ध हो सकने वाले सम्भावित साधनों पर निर्भर रहती है।

(६) प्रोत्साहन द्वारा नियोजन बनाम निर्देशन द्वारा नियोजन (Planning by Inducement vs Planning by Direction)—नियोजित व्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक क्रियाओं पर राजकीय नियन्त्रण करना आवश्यक होता है, परन्तु इस नियन्त्रण की कठोरता नियोजन के प्रकार पर निर्भर रहती है। जब सरकार द्वारा नियुक्त केन्द्रीय नियोजन अधिकारी राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था का सचालन करता है तथा सरकार के हाथ में आर्थिक एवं राजनीतिक दोनों ही सत्ताओं का सम्पूर्ण केन्द्रीयकरण हो जाता है तो ऐसी नियोजन-व्यवस्था को निर्देशन द्वारा नियोजन समझा जाता है। निर्देशन द्वारा नियोजन में केन्द्रीय अधिकारी के आदेशों के अनुसार उत्पादन उपभोग वितरण, व्यापार, मूल्य आदि समस्त आर्थिक तत्वों का निर्धारण किया जाता है और जनसमुदाय को इन आदेशों के अनुसार ही अपनी समस्त आर्थिक एवं सामाजिक क्रियाओं को करना होता है। इस प्रकार व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को कुठाराघात पहुँचता है और जनसाधारण को दबाव द्वारा त्याग करने के लिए विवश किया जाता है। एक केन्द्रीयकरण व्यवस्था नागरिक जीवन को आच्छादित कर लेती

और राज्य के निर्देशों का उल्लघन करने पर कठोर दण्ड का आयोजन किया जाता है। इस प्रकार के नियोजन मे कुछ सीमा तक लक्ष्यो की पूर्ति आश्चर्यजनक रहती है परन्तु जैसे जैसे जनसमुदाय म असन्तोष की भावना बढ़ती जाती है योजना की सफलता सन्देहजनक होती जाती है। निर्देशन द्वारा नियोजन का उपयोग अधिनायकवादी अथवा तानाशाही तथा साम्यवादी नियोजन म किया जाता है।

दूसरी ओर प्रोत्साहन द्वारा नियोजन के अन्तगत आर्थिक क्रियाओ म राजकीय नियन्त्रण सदा कम रहता है अर्थात राज्य उन्ही आर्थिक क्रियाओ का सचालन अपने हाथ मे लेती है जिनका आर्थिक विकास व कायक्रमो की सफलता पर गहरा प्रभाव पड सकता हो तथा जो योजना के आधारभूत उद्देश्यो की पूर्ति हेतु प्रत्यक्षरूप मे सम्बन्ध रखती हो। इस प्रकार विपणि यान्त्रिकताओ को जीवित रख कर राज्य प्रलोभन प्रोत्साहन लोकप्रसिद्धि (Publicity) द्वारा जनसमुदाय को योजना के कायक्रमो म सहयोग देने साधनों को योजना की प्राथमिकताओ के अनुसार विनियोजित तथा योजना की सफलता के लिए त्याग करने के लिए आकर्षित करता है। इस प्रकार प्रोत्साहन विधि के अन्तगत विकास की गति धीमी और लक्ष्यो की पूर्ति आश्चयजनक नही होती है परन्तु दीर्घ काल मे इस प्रकार के नियोजन के अन्तगत प्रगति की गति तीव्र की जा सकती है। प्रोत्साहन द्वारा नियोजन मे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता बनी रहती है और व्यक्तिगत एव सामाजिक हितो को समन्वित किया जाता है।

(१०) निम्न स्तर से नियोजन बनाम उच्च स्तर से नियोजन (Planning from Below vs Planning from Above)—नीचे के स्तर से बनायी जाने वाली योजनाओ का निर्माण स्थानीय क्षेत्रीय तथा व्यक्तिगत सस्थाओ द्वारा बनायी गयी योजनाओ को समन्वित करके किया जाता है। नीचे के स्तर से नियोजन का अथ यह है कि *राष्ट्र के सबसे पिछड़े हुए वग को सवप्रथम उससे ऊचे वग के स्तर पर लाया जाय* और फिर इस दूसरे वग को उसमे ऊचे वग के स्तर तक लाया जाय। इस प्रकार का नियोजित व्यवस्था का सबसे अधिक लाभ नीचे के वर्गों को मिलता है। उच्च स्तर से बनायी जाने वाली योजनाओं मे योजना की निर्माण विधि बिल्कुल विपरीत होती है। नियोजन के आधारभूत लक्ष्य कायक्रम एव नीतियाँ केन्द्रीय सस्था द्वारा निधारित किये जाते हैं और इन आधारभूत तथ्यो के आधार पर नीचे के अधिकारी एव सस्थाएँ द्वारा अपने अपने क्षेत्र के लिए विस्तृत योजनाए बनायी जाती हैं। सर्वोदयी नियोजन नीचे के स्तर से नियोजन का आदश स्वरूप होता है जबकि अधिनायकवादी नियोजन ऊपर के स्तर से नियोजन का उचित उदाहरण है। ऊपर के स्तर के नियोजन-कायक्रमो म समन्वय अधिक होता है परन्तु योजना के लाभ का वितरण समान नही होता।

(११) प्रदेशीय बनाम राष्ट्रीय योजना (Regional vs National Planning)—बड़े बड़े राष्ट्रो म जहाँ के विभिन्न क्षेत्रो के आर्थिक साधनो एव लक्षणो सामाजिक वातावरण एव रीति रिवाजों तथा इन क्षेत्रो के पृथक पृथक हितो म

समानता नहीं होती है तो प्रदेशीय विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता होती है और प्रत्येक प्रदेश के लिए राष्ट्रीय नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत पृथक्-पृथक् प्रदेशीय योजनाएँ बनायी एवं संचालित की जाती हैं। वास्तव में विकेन्द्रित योजना का ही दूसरा नाम प्रदेशीय नियोजन है। भारत की विभिन्न राज्यों की पृथक्-पृथक् योजनाओं को प्रदेशीय नियोजन कहा जा सकता है। इसके अन्तर्गत प्रदेशीय अधिकारियों को नियोजन के निर्माण, संचालन एवं निरीक्षण सम्बन्धी अधिकार दे दिये जाते हैं। इस प्रकार की योजनाएँ राष्ट्रीय नीतियों एवं कार्यक्रमों के अन्तर्गत बनायी जाती हैं और इन पर अन्तिम नियन्त्रण योजना अधिकारी का ही होता है। संयुक्त अरब गणराज्य में भी राष्ट्रीय विकास योजना के अन्तर्गत मिस्र एवं सीरिया प्रदेश के विकास के लिए पृथक् योजना बनायी गयी थी। इन दोनों ही प्रदेशों के आर्थिक साधनों एवं विकास की स्थिति में बहुत अन्तर है। प्रत्येक बड़े राष्ट्र में जो कई भागों में फैला हो, प्रदेशीय नियोजन की आवश्यकता होती है। इस नियोजन का उद्देश्य प्रदेश के साधनों का उचित उपयोग करके उसे अन्य प्रदेशों के स्तर पर लाना होता है परन्तु इस प्रकार के नियोजन का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि विभिन्न प्रदेश अपने आप में आत्म-निर्भर बनने का प्रयत्न करें तथा अन्य प्रदेशों के साथ सामञ्जस्य स्थापित करने के स्थान पर अपने ही विकास के लिए प्रयत्नशील रहें। प्रदेशीय नियोजन का वास्तविक उद्देश्य उपलब्ध साधनों का अधिकतम कार्यशील उपयोग करना तथा समस्त प्रदेशों में आर्थिक सन्तुलन स्थापित करना होता है।

राष्ट्रीय नियोजन के अन्तर्गत राष्ट्र की समस्त राजनीतिक सीमाओं में सम्मिलित प्रदेशों को एक इकाई मानकर विकास के आयोजन किये जाते हैं। जब समस्त राष्ट्र के साधनों एवं आवश्यकताओं को एक साथ दृष्टिगत करके योजना बनायी जाती है तो उसे राष्ट्रीय नियोजन कहा जाता है। वास्तव में आर्थिक नियोजन का वास्तविक अर्थ राष्ट्रीय आर्थिक नियोजन समझना चाहिए। आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत भी समस्त राष्ट्र के विकास के लिए योजना बनायी जाती है। राष्ट्रीय नियोजन को अधिक प्रभावशाली बनाने हेतु इसे प्रदेशीय योजनाओं में विभाजित किया जा सकता है। भारत की योजनाओं को राष्ट्रीय योजना कहना उचित होगा। इनके अन्तर्गत समस्त राष्ट्र के साधनों एवं आवश्यकताओं को दृष्टिगत किया जाता है परन्तु इनकी प्रभावशीलता बढ़ाने एवं सन्तुलित प्रदेशीय विकास करने हेतु हमारी योजनाओं को राज्यों की योजनाओं में विभाजित कर दिया जाता है। कम क्षेत्र वाले राष्ट्रों में राष्ट्रीय योजना को प्रदेशीय योजना में विभाजित करना आवश्यक नहीं होता है। ऐसी परिस्थिति में योजना का उद्देश्य राष्ट्र के उत्पादन में वृद्धि करना होता है और देश के समस्त प्रदेशों का सन्तुलित विकास करने के लिए विशेष प्रयास सम्भव नहीं होते हैं।

(१२) **अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन**—अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन उस व्यवस्था को कहते हैं जिसमें एक से अधिक देशों के साधनों का उपयोग सामूहिक रूप से समस्त सदस्य-

राष्ट्रों द्वारा किया जाता है। वास्तव में इसके अन्तर्गत विभिन्न राष्ट्रों के साधनों का एकीकरण (Pooling) होता है। इस प्रकार के नियोजन का संचालन किसी बड़े साम्राज्य में ही सम्भव हो सकता है जहाँ कई राष्ट्र किसी एक राष्ट्र के अधीन हों। विभिन्न राष्ट्रों की पृथक पृथक आर्थिक समस्याएं एवं साधन होने है और अधिकतर स्वतन्त्र राष्ट्र कभी भी अपने समस्त साधनों का एकत्रीकरण करके विकास की ओर अग्रसर होना स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि यह विकास व्यावहारिक दृष्टिकोण से भी सम्भव नहीं हो सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन का ढीला स्वरूप ही व्यावहारिक हो सकता है जिसमें एक से अधिक राष्ट्र जो स्वतन्त्र हों और जिनका राजनीतिक अस्तित्व एक दूसरे से पृथक हो, अपनी अर्थ व्यवस्था के कुछ अंगों को एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के नियन्त्रण में रखना स्वीकार कर लेते हैं।

वास्तव में आर्थिक मामलों में सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय समझौते को भी अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन का स्वरूप मानना चाहिए। General Agreement on Trade and Tariffs (Gatt) के अन्तर्गत यह आयोजन किया गया कि किसी भी सदस्य देश में किसी अन्य देश में उत्पादित किसी वस्तु को जब कोई लाभ व सर्वाधिकार (Privilege) आदि दिया जाय तो अन्य सदस्य देशों के उत्पादन को भी वही लाभ एवं सर्वाधिकार प्राप्त होगा जो सर्वाधिक पक्ष प्राप्त (Favoured) राष्ट्र को दिया गया है। इस प्रकार के समझौते से राष्ट्रीय नियोजन को इनके अनुसार बनाना आवश्यक होता है और कभी कभी राष्ट्रीय नियोजन में बड़ी कठिनाइयाँ पड़ जाती हैं। भारत इस समझौते का सदस्य है। फरवरी सन् १९५४ में विदेशी मुद्रा की कठिनाई उपस्थित होने पर भारत को यह आवश्यक हो गया कि वह विदेशों को दी गयी रियायतों को बन्द कर दे और भारत सरकार को इस कार्यवाही के लिए समझौते के अधिकारियों से विशेष आज्ञा प्राप्त करनी पड़ी।

अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के अन्तर्गत यूरोपियन कामन मार्केट का उल्लेख करना आवश्यक है। २५ मार्च सन् १९५७ को रोम की सन्धि के अन्तर्गत यूरोपीय आर्थिक समुदाय (European Economic Cummunity) की स्थापना का आयोजन किया गया। इस समुदाय में ६ यूरोपीय देश—बेलजियम, फ्रान्स, फेडरल रिपब्लिक आफ जर्मनी, इटली, लकजमबर्ग तथा नीदरलैण्डस सम्मिलित हुए। इसकी स्थापना १ जनवरी सन् १९५८ को हुई और *इसके अन्तर्गत सदस्य देशों की आर्थिक क्रियाओं के समन्वित* विकास अधिक आर्थिक स्थिरता तथा जीवन-स्तर में वृद्धि का उद्देश्य रखा गया। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सदस्य देशों को निम्नलिखित कार्यवाहियाँ करनी थी—

(१) सदस्य देशों के पारस्परिक आयात एवं निर्यात पर से कर एवं उनकी यात्रा पर लगाये प्रतिबन्धों को हटाना तथा व्यक्तियों, सेवाओं एवं पूंजी के आने जाने को रोकों को भी लागू न करना।

(२) सामान्य कृषि एवं यातायात की नीतियों का संचालन।

(३) सामान्य बाजार (Common Market) में प्रतिस्पर्धा सीमित करने के लिए व्यवस्था करना।

(४) सामान्य विदेशी वाणिज्य-नीति अपनाना जो सामान्य बाजार (Common Market) के बाहर के देशों से व्यापार करने पर लागू की जानी थी। इन कार्यवाहियों के अतिरिक्त एक यूरोपीय विनियोजन बैंक की स्थापना की जानी थी, जिसे समुदाय के आर्थिक विस्तार का कार्य करना था। रोजगार एवं जीवन-स्तर में वृद्धि करने हेतु एक यूरोपीय विशिष्ट फण्ड का आयोजन भी किया जाना था। इस सन्धि के अनुसार सदस्य-देशों के पारस्परिक आयात एवं निर्यात पर से प्रतिबन्ध एवं कर हटाने तथा अन्य देशों से व्यापार करने की सामान्य नीति अपनाने का कार्य १२ वर्षों में किया जाना है।

ब्रिटेन ने भी इस Common Market में सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की थी परन्तु British Commonwealth के राष्ट्रों ने इसका विरोध किया था क्योंकि उन्हें जो इंगलैण्ड के बाजार में सुविधाएँ प्राप्त होती थीं, वे सब बन्द हो जातीं। भारत के सन् १९६०-६१ के समस्त निर्यात ६२५ करोड़ में लगभग २०० करोड़ ब्रिटेन को भेजा गया। इस प्रकार भारत के लिए ब्रिटेन के बाजार का उपर्युक्त महत्त्व है। ब्रिटेन के Common Market में सम्मिलित होने पर भारत को ब्रिटेन को भेजे जाने वाले अपने निर्यात पर उतना कर आदि देना होगा जितना यह यूरोपियन आर्थिक समुदाय के सदस्य देशों को भेजे जाने वाले निर्यात पर देता है। इस प्रकार भारत की वस्तुओं का मूल्य ब्रिटेन के बाजार में बढ़ जायेगा और भारत को अपने निर्यात बढ़ाने का अवसर न मिल सकेगा।

इन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के अतिरिक्त मार्शल प्लान, मास्को प्लान, कॉमीकोन (COMECON—Council for Mutual Economic Assistance) ओसहद (OSSHD—Organisation of Socialist Railroads) आदि अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ भी विकास के लिए सदस्य-देशों को सहायता प्रदान करती हैं। मार्शल प्लान के अन्तर्गत योरोप के कई राष्ट्रों ने मिलकर योरोपीय सहयोग संगठन (OEEC—Organisation of European Cooperation) की स्थापना सन् १९४७ में की। संयुक्त राज्य अमेरिका का सेक्रेटरी ऑफ स्टेट था और उसने यह सुझाव दिया कि योरोपीय राष्ट्रों को सहायता आदि के लिए अमेरिका से सहायता मांगने के पूर्व अपने आपको संगठित करना चाहिए और पहले अपनी आवश्यकताओं को स्वयं पूरा करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस संगठन के कार्यक्रम में (अ) सदस्य-देशों में खाद्यान्नों के उत्पादन का युद्ध के स्तर तक बढ़ाना, कोयले का उत्पादन युद्ध के पूर्व के स्तर से $\frac{1}{3}$ अधिक बिजली और इस्पात का उत्पादन युद्ध के पूर्व के स्तर से $\frac{1}{3}$ अधिक करना, (आ) आन्तरिक वित्तीय स्थिरता उत्पन्न करना तथा उसका निर्वाह करना (इ) सदस्य-देशों में अधिकतम पारस्परिक सहयोग स्थापित करना (ई) योरोपीय व्यापार असन्तुलन

की समस्या को अमरीकी दशा के साथ हल करना सम्मिलित किए गये । इस सगठन की नीतियो को सफलतापूवक सचालित किया गया ।

कोलम्बो योजना के अन्तगत दक्षिणी एव दक्षिण-पूर्वी एशियाई राष्ट्रो का पारस्परिक एव अन्तर्राष्ट्राय सहयोग द्वारा जीवन स्तर उठान का उद्देश्य था ।

कामेकोन (Comecon) की स्थापना सन् १९४८ म मार्शल प्लान के नमून पर साम्यवादी राष्ट्रो न को । इसम पूर्वी योरोप क राष्ट्र सम्मिलित थे । यह एक अन्तर्राष्ट्रीय तान्त्रिक एव वित्तीय सहयाग की सस्था है जिसम वे देश ही सदस्य हो सकने है जो नियोजित विकास मे आस्था रखते है । इसीलिए इसम कवल समाजवादी राष्ट्र—रूस बलगरिया, जेकास्लोवेकिया पूर्वी जमनी, हगरी पोलण्ड रूमानिया तथा बाहरा मगोलिया सम्मिलित है ।

इसी प्रकार चीन अल्बानिया, उत्तरी वियतनाम उत्तरी तथा कोरिया आशड (OSSHD) क सदस्य है । यह सस्था रेल माग स्थापित करने के सम्बन्ध म तान्त्रिक सहयाग प्रदान करती है ।

इस प्रकार उपयुक्त अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाए विभिन्न क्षत्रों म पारस्परिक सहयोग प्रदान करती है । विभिन्न सदस्य देश अपने साधनो एव ज्ञान का लाभ अन्य सदस्य देशो को प्रदान करत हैं ।

————

आर्थिक विधियाँ एवं नियोजन के प्रकार
[Economic Systems and Types of Planning]

[पूँजीवाद—पूँजीवाद के लक्षण, पूँजीवाद के दोष—समाजवाद, श्रेणीमूलक समाजवाद, राजकीय समाजवाद साम्यवाद—साम्यवादी अर्थ-व्यवस्था के लक्षण अधिनायकवाद नियोजन के प्रकार, समाजवादी नियोजन समाजवादी नियोजन के लक्षण, साम्यवादी नियोजन साम्यवादी नियोजन के लक्षण पूँजीवादी नियोजन प्रजातान्त्रिक नियोजन, प्रजातान्त्रिक नियोजन के लक्षण अधिनायकवादी अथवा तानाशाही नियोजन सर्वोदय अथवा गांधीवादी नियोजन]

नियोजित अर्थ-व्यवस्था का जन्म व्यापक दृष्टिकोण से राज्य के जन्म के साथ ही हो गया था क्योंकि राज्य का प्रारम्भ से ही आर्थिक क्षेत्र में कुछ नियन्त्रण करना प्रमुख कर्त्तव्य रहा है। जैसे-जैसे राज्य के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत आर्थिक क्रियाओं में वृद्धि होती गयी और इन समस्त आर्थिक क्रियाओं का एक समन्वित रूप दिया जाने लगा नियोजित अर्थ-व्यवस्था के आधुनिक स्वरूप का प्रादुर्भाव हुआ। नियोजित अर्थ-व्यवस्था के स्वरूप को देश में मान्य एवं प्रचलित आर्थिक एवं राजनीतिक विचार-धाराओं ने प्रभावित किया और उसका प्रकार भी इन्हीं विचारधाराओं के आधार पर निर्धारित किया जाने लगा। इंगलैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति (सन् १७६०) के पूर्व यूरोप में प्रचलित राजनीतिक विचारधाराएँ—भौतिक बुद्धिवाद विरक्तिवाद पाण्डित्य-वाद (Scholosticism) राज्य का ईश्वरवाद अनुबन्धवाद उपयोगितावाद आदर्श-वाद आदि—धर्म विवेक आदर्श व्यक्तिगत इच्छाओं आदि पर आधारित थीं। इन विचारधाराओं में आर्थिक तत्त्वों की छाप का अभाव था। इंगलैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति ने राजनीतिक विचारधाराओं पर पर्याप्त प्रभाव डाला।

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप बड़े-बड़े कारखानों नगरों पूँजीवाद, श्रमिक-वर्ग आदि का जन्म हुआ। मशीन द्वारा बड़े पैमाने पर उत्पादन के फलस्वरूप कुछ व्यक्तियों ने धन का संचय किया और इस धन-संग्रह की क्रिया में राज्य द्वारा कम से कम हस्तक्षेप रखने हेतु इनके द्वारा यह माँग की गयी कि प्रत्येक व्यक्ति को उत्पादन उपभोग, व्यापार रोजगार आदि के सम्बन्ध में स्वतन्त्रता होनी चाहिए जिसके परि-णामस्वरूप व्यक्तिवाद विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ। व्यक्तिगत विचारधारा ने

धीरे धीरे बहुत से रूप धारण किये और इनके आधार पर पूंजीवाद, जनतन्त्रवाद एवं राष्ट्रीयवाद का प्रादुर्भाव हुआ।

पूंजीवाद—व्यक्तिवाद के अन्तर्गत राज्य को व्यक्ति की सुख-सुविधा का साधनमात्र माना गया और राज्य के कर्तव्यों के क्षेत्र को अत्यन्त सीमित रखा गया। व्यक्तिगतवादियों के मतानुसार राज्य के मुख्य रूप से दो कार्य करने चाहिए—शान्ति रक्षा तथा न्याय व्यवस्था। एडम स्मिथ, माल्थस, रिकार्डो तथा जॉन स्टुअर्ट आदि अर्थशास्त्रियों ने व्यक्तिगतवाद का समर्थन किया। व्यक्तिवादी अर्थशास्त्र का जन्म फ्रांस में भौतिक अर्थशास्त्रीय विचारकों द्वारा हुआ जिनको फिजियोक्रेट्स कहते थे। इनके विचारों को अंग्रेज अर्थशास्त्रियों—एडम स्मिथ (सन् १७२३-९०) माल्थस (सन् १७६६-१८३४) रिकार्डो (सन् १७७२-१८२३) जॉन स्टुअर्ट मिल ने उत्तरोत्तर विकसित किया। व्यक्तिवादी अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र के नियमों को प्राकृतिक नियमों के अनुसार अपरिवर्तनीय नियम बनाया। इनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने हानि लाभ को अन्य किसी व्यक्ति संस्था या समूह की तुलना में अधिक अच्छी तरह समझता है और यदि राज्य प्रत्येक व्यक्ति को आर्थिक क्षेत्र में स्वतन्त्र छोड़ दे तो व्यक्ति, समाज एवं राज्य का अधिक हित हो सकता है। व्यक्तिवादियों के अनुसार माँग एवं पूर्ति के घटक आर्थिक क्रियाओं में सन्तुलन बनाये रखने में अत्यन्त प्रभावशाली होते हैं और राज्य को बाजार तान्त्रिकताओं (Market Mechanism) में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए तथा हस्तक्षेप रहित अर्थ व्यवस्था (Laissez Faire) को मान्यता दी जानी चाहिए। व्यक्तिवादी अर्थव्यवस्था में स्वतन्त्र प्रतियोगिता को मान्यता दी गयी और इसके सुचारु रूप से संचालन करने हेतु उन्मुक्त व्यापार नीति (Free Trade) को आवश्यक बताया गया। इस प्रकार व्यक्तिवादी अर्थव्यवस्था का तीन आधारशिलाएँ थीं—व्यक्तिगत लाभ हेतु आर्थिक क्रियाएं, बाजार-तान्त्रिकताएं एवं स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा तथा उन्मुक्त व्यापार। इन तीन आधारभूत नियमों से पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था को सुदृढ़ता प्राप्त हुई।

पूंजीवाद के अन्तर्गत निजी लाभ हेतु उत्पादन किया जाता है और उत्पादन के साधन निजी अधिकार में रहते हैं। उत्पादन कार्य मजदूरी पर रखे गये श्रम द्वारा किया जाता है और उत्पादित वस्तु पर पूंजीपति का अधिकार होता है। इस व्यवस्था में आर्थिक निश्चय किसी केन्द्रीय अधिकारी द्वारा नहीं किये जाते अपितु व्यापारी व्यक्तिगत रूप से आर्थिक निश्चय करता है। जीवन-स्तर एवं भौतिक सम्पन्नता का अनुमान व्यक्तिगत दृष्टिकोण से लगाया जाता है। समस्त आर्थिक क्रियाओं का आधार व्यक्तिगत लाभ अथवा हित होता है। पूंजीवाद में उत्पादन के समस्त घटकों की तुलना में पूंजी को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त होता है।

श्रम को एक वस्तु के समान ही समझा जाता है। कार्ल मार्क्स के अनुसार इसे बाजार में क्रय विक्रय किया जाता है। कार्ल मार्क्स के अनुसार पूंजीवाद एक ऐसा

(३) पूँजीवाद में प्रत्येक व्यक्ति को आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है अर्थात् वह साहस, प्रसंविदा तथा निजी सम्पत्ति के मनोवांछित उपयोग में पूर्ण स्वतन्त्र होता है।

(४) पूँजीवादी व्यवस्था आर्थिक समानता को कोई महत्व नहीं देती। परिणामस्वरूप समाज तीन विभिन्न वर्गों—सम्पन्न, मध्यमवर्गीय तथा निर्धन में विभक्त हो जाता है। इन वर्गों में सदा पारिवारिक संघर्ष होना स्वाभाविक है।

(५) पूँजीवादी व्यवस्था में स्वतन्त्र साहस एवं पूर्ण प्रतियोगिता को महत्व दिया जाता है। उत्पादन उपभोक्ताओं की इच्छानुसार व्यक्तिगत लाभ के दृष्टिकोण से किया जाता है तथा सरकार आर्थिक क्रियाओं में न्यूनातिन्यून हस्तक्षेप करता है। *उत्पादकों का उत्पादकों से विक्रेताओं की विक्रेताओं से, उपभोक्ताओं की उपभोक्ताओं* से तथा श्रमजीवियों की श्रमजीवियों से सतत पारस्परिक प्रतिस्पर्धा बनी रहती है। इस प्रकार प्रतियोगिता सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का आधारस्तम्भ होती है।

(६) पूँजीवादी व्यवस्था का मुख्य लक्षण व्यक्तिगत लाभ की भावना है। साहसी अपने निजी लाभ को सर्वोच्च महत्व देता है तथा किसी व्यवसाय की स्थापना एवं विस्तार करने से पूर्व यह विचार करता है कि उसे कम से कम त्याग करके से किस व्यवसाय में अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है। राष्ट्रीय एवं सामाजिक हित का उसके व्यक्तिगत हित के समक्ष कोई मूल्य नहीं है।

(७) पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन के साधनों में सर्वोपरि स्थान पूँजी को प्राप्त है। जो व्यक्ति व्यवसाय में धन एवं पूँजी लगाता है वही उसका नियन्त्रक भी होता है अर्थात् श्रम, भूमि, साहस आदि सभी अन्य घटक पूँजी के अधीन हो जाते हैं।

(८) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था स्वयं ही अपने विनाश का कारण बन जाती है। *जैसे जैसे* किसी राष्ट्र में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का विकास होता है बड़े पूँजीपतियों का प्रादुर्भाव होता जाता है जो संख्या में गिने चुने होते हैं परन्तु दूसरी ओर भृतिपर *कार्य करने वाले श्रमिकों की संख्या बढ़ती जाती है जिसके फलस्वरूप वर्ग संघर्ष* बढ़ जाता है जिसमें श्रमिकों की अन्त में विजय होता है और पूँजीवाद धीरे धीरे समाजवाद में बदलने लगता है।

पूँजीवाद के दोष

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में बहुत से आर्थिक एवं सामाजिक दुर्गुणों का सामंजस्य होता है। इसका कारण है उत्पादन तथा वितरण पर प्रभावशील शासकीय नियन्त्रण की शिथिलता। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के दुर्गुणों ने नियोजन के महत्व में वृद्धि की है। पूँजीवाद के मुख्य दोष तीन प्रकार के हैं—

(१) आर्थिक अस्थिरता (Economic Instability)—उच्चावचन, तेजी, *मन्दी आदि पूँजीवाद की मुख्य देन हैं। अनियोजित पूँजीवाद में* उच्चावचन की उपस्थिति के तीन मुख्य कारण हैं—

(अ) वस्तु की माँग की पूर्ति पर प्रभाव डालने वाले अनिश्चित कारण (Unforeseen Causes),

(आ) माँग और पूर्ति में अपूर्ण समायोजन और

(इ) मूल्यों में आर्थिक कारणों से परिवर्तन।

जब उत्पादन-सम्बन्धी निश्चयों का आधार व्यक्तिगत रूप से अनुमान है तो इन निश्चयों में त्रुटि रहना स्वाभाविक ही होता है।

व्यापारी व्यक्तिगत रूप से केवल एक अत्यन्त संकुचित क्षेत्र का निरीक्षण करके निश्चय कर सकता है। उसे उसके अन्य साथी-व्यापारियों के निश्चयों का भी पता नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में उत्पादन-सम्बन्धी अनुमान सदैव माँग की तुलना से कम अथवा अधिक रहते हैं। माँग एवं पूर्ति स्वयं पारस्परिक समायोजन करने का प्रयत्न तो करते हैं परन्तु यह समायोजन कभी हो नहीं पाता है। इसी कारण पूँजीवाद में अधिक उत्पादन तथा कम उत्पादन की समस्या सदैव उपस्थित रहती है। माँग एवं पूर्ति में समायोजन न होने के कारण ही मन्दी एवं तेजी आता है। इसके अतिरिक्त वित्तीय व्यवस्था का प्रभाव मूल्यों पर पड़ता रहता है जिससे मूल्यों में वास्तविक स्थिरता नहीं आ पाती है। मूल्यों में स्थिरता न होने पर समस्त आर्थिक क्रियाएँ अस्थिर हो जाती हैं।

(२) आर्थिक विषमता—अनियन्त्रित पूँजीवाद में धन, आय एवं अवसर का असमान वितरण होता है। राष्ट्रीय धन एवं आय का बड़ा भाग जनसमुदाय के छोटे से वर्ग के हाथ में होता है और जनसमुदाय का बहुत बड़ा भाग निर्धन रहता है। धन अथवा पूँजी को अर्थ-व्यवस्था में सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया जाता है। पूँजीपति-वर्ग उत्पादन के घटकों, आय के साधनों एवं रोजगार के अवसरों पर अधिकार प्राप्त कर लेता है जिसके फलस्वरूप धनवान के धन में निरन्तर वृद्धि होती है और निर्धनता सदैव बढ़ती रहती है। व्यापारी-वर्ग एकाधिकार प्राप्त करने हेतु पारस्परिक समझौते कर लेते हैं और उत्पादन को सीमित इसलिए रखते हैं कि मूल्यों में वृद्धि करके अधिक लाभोपार्जन किया जा सके। इस प्रकार उत्पादन के घटकों का आधिक्य होते हुए भी अधिक उत्पादन नहीं किया जाता है और [illegible] के वातावरण में सभी दबे रहते हैं। पूँजीपति सदैव ऐसे व्यवसायों का विस्तार एवं विकास करता है जिनसे अधिक लाभ उपार्जन करके व्यक्तिगत हित हो सके। सामाजिक हित का व्यापारी-वर्ग व्यक्तिगत हित के पश्चात् ध्यान देता है। आय की विषमता का मुख्य कारण उत्तराधिकार का विधान तथा दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली होते हैं। उत्तराधिकार के विधान के अनुसार निजी सम्पत्ति पिता से पुत्र को उसके बिना किसी परिश्रम के ही प्राप्त होती है और पुत्र के हाथों में उत्पादन के घटकों का संचय हो जाता है जिससे वह अधिक धनोपार्जन कर सकता है। दूसरी ओर शिक्षा के क्षेत्र में भी केवल धनी वर्ग ही अपने बच्चों को उच्च शिक्षा दिला सकता है क्योंकि उच्च शिक्षा की लागत इतनी

अधिक रहता है जो धनी वर्ग ही सहन कर सकता है। ऐसी परिस्थिति में भी धनोपार्जन की योग्यता भी केवल धनी वर्ग को ही प्राप्त होती है और रोजगार के अवसर इसी धनी वर्ग को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार धन एवं अवसर की विषमता के कारण आय की विषमता सदैव बनी रहती है।

(३) **अकुशलता** (Inefficiency)—पूँजीवाद में व्यवसायी सदैव अपने लाभ के लिए उत्पादन करता है। यह विलासिता की वस्तुओं के उत्पादन को अधिक महत्व देता है क्योंकि इनमें अधिक लाभोपार्जन किया जा सकता है। समाज कल्याण हेतु उत्पादन निजी व्यवसायियों द्वारा नहीं किया जाता है। उत्पादन का प्रकार सदैव मूल्यों पर आधारित रहता है। किसी वस्तु का मूल्य बढ़ने पर उसका उत्पादन बढ़ाया जाता है और मूल्य कम होने पर उत्पादन कम करने का प्रयत्न किया जाता है। बारबरा वूटन (Barbara Wooten) के मतानुसार पूँजीवादी व्यवस्था को एक विवेकपूर्ण व्यवस्था कहना उचित नहीं है क्योंकि इस व्यवस्था में बहुतायत के काल में भी लाखों लोग भूखे रहते हैं लाखों को बेरोजगारी तथा निर्धनता का भय सदैव बना रहता है और जिसमें लाखों लोगों के जीवन की आवश्यक सामग्री उपलब्ध नहीं होती है। किसी भी अर्थव्यवस्था की कुशलता को इस बात में जाँचना कि उसमें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की कितनी मात्रा है मूल्यों का अर्थ-व्यवस्था में क्या स्थान है तथा बाजार में प्रतिस्पर्धीय वातावरण में व्यवहार किए जाते हैं अथवा नहीं उचित नहीं है।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में भले ही स्वतः सचालन तथा स्वतः नियमन उपस्थित हो परन्तु इसमें आन्तरिक एवं बाह्य अव्यवस्था उत्पन्न होती है तथा आधुनिक आर्थिक समस्याओं का निवारण नहीं हो सकता है। उच्चावचन (Ups and Downs) के वातावरण में देश के साधनों का न तो पूर्णतया उपयोग ही हो सकता है और न इनके उपयोग द्वारा अधिक जनसमुदाय का अधिकतम कल्याण हो सम्भव है। इस व्यवस्था में समाज के समस्त वर्गों की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं को दृष्टिगत नहीं किया जाता है। उत्पादन माँग पर आधारित है और माँग केवल वही समुदाय प्रस्तुत कर सकता है जिसके पास क्रय शक्ति हो। इस प्रकार पूँजीवाद में केवल क्रय शक्ति रखने वाले समुदाय की आवश्यकतानुसार उत्पादन किया जा सकता है। लाखों व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए न तो उन्हें क्रय शक्ति ही प्रदान की जाती है और न आवश्यक सामग्री ही उत्पादित की जाती है।

(४) **पूर्ण प्रतिस्पर्धा की अनुपस्थिति**—पूँजीवाद की सफलता के लिए पूर्ण प्रतिस्पर्धा की उपस्थिति अत्यन्तावश्यक है। पूर्ण प्रतिस्पर्धा के अन्तर्गत ही माँग और पूर्ति में समायोजन सम्भव हो सकते हैं और मूल्यों में सामान्य स्थिरता लायी जा सकती है। पूर्ण प्रतिस्पर्धा से अकुशल उत्पादकों को अपने व्यवसाय बन्द करने पड़ते हैं। मन्दीकाल में होने वाली मूल्यों में कमी को रोकने वाले व्यवसायी इस बात का प्रयत्न

करने हैं कि प्रतिस्पर्धा को सीमित कर दिया जाय और इसी कारण पारस्परिक समझौतों द्वारा उत्पादन को प्रतिबन्धित कर दिया जाता है। उत्पादन को सीमित करके मूल्यों को ऊँचे स्तर पर बनाये रखने के प्रयत्न किये जाते हैं और वस्तुओं की अप्राकृतिक (Artificial) कमी उत्पन्न की जाती है। इस प्रकार पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था का सम्पूर्ण ढाँचा दूषित हो जाता है।

(५) वर्ग-संघर्ष—पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था वर्गों की स्थापना एवं उनमें वैमनस्य उत्पन्न करने में सहायक होती है। इससे सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में दोष उत्पन्न हो जाते हैं और देश की सुरक्षा एवं शान्ति को आघात पहुँचता है।

(६) शोषण की भावना—इस अर्थ-व्यवस्था की प्रत्येक आर्थिक क्रिया व्यक्तिगत लाभ हेतु की जाती है और प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत हित-प्राप्ति के लिए दूसरे का शोषण करने में कोई दोष नहीं देखता है। इस प्रकार निर्बल एवं निर्धन का निरन्तर शोषण होता है और निर्धन परिवार में जन्म लेना ही एक अभिशाप बन जाता है।

(७) साधनों का अपूर्ण उपयोग—पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था में साधनों का उचित एवं पर्याप्त मात्रा में शोषण एवं उपयोग नहीं किया जाता है क्योंकि बड़े-बड़े पूँजीपति सदैव प्रयत्न करते रहते हैं कि वस्तुओं और सेवाओं में इतनी प्रचुरता न हो जाय कि उनको मनमाना मूल्य एवं लाभ प्राप्त न हो सकें। इसी कारण नवीन साधनों की खोज, शोषण एवं उपयोग नहीं किया जाता है।

१८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर १९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक इंगलैण्ड व अन्य यूरोपीय देशों में व्यक्तिवाद के अन्तर्गत पूँजीवाद का बड़ा जोर रहा, परन्तु पूँजीवाद के दोषों के फलस्वरूप लोगों का विश्वास इस व्यवस्था से धीरे-धीरे कम होने लगा। बड़े पैमाने के उत्पादन ने पूँजीपतियों को अधिक से अधिक लाभोपार्जन करने के लिए प्रोत्साहित किया और श्रमिकों की शारीरिक एवं भौतिक दशा पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। औद्योगिक सभ्यता ने आर्थिक एवं सामाजिक जीवन को इतना जटिल बना दिया कि व्यक्ति राज्य की सहायता के बिना अपने को अनेक बातों में असमर्थ अनुभव करने लगा इसलिए राज्य को श्रमजीवियों की रक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य व शिक्षा, उद्योग व व्यापार की उन्नति, बेकारों की सहायता, औद्योगिक झगड़ों व हड़तालों का निपटारा आदि विषयों के लिए कानून बनाने पड़े। इस प्रकार १९वीं शताब्दी के अन्त तक राज्य के कार्य जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों पर आच्छादित हो गये और व्यक्तिवाद नीति का सर्वत्र अन्त हो गया। पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था ने भी बदलते हुए वातावरण के अनुकूल राज्य को सत्ता की कुछ व्यक्तिगत अधिकार सौंप देना स्वीकार कर लिया। व्यक्तिवाद की प्रतिक्रियास्वरूप समाजवाद, समष्टिवाद, साम्यवाद आदि विचारधाराओं का उदय हुआ।

संघवाद (Syndicalism)—संघवाद का जन्म फ्रांस के श्रमिक आन्दोलन के

परिणामस्वरूप हुआ और इसका प्रचार भी मुख्यत फ्रास इटली स्पेन व सयुक्त राज्य अमरीका तक सीमित रहा। फ्रास म श्रमिकों के सगठन बहुत समय तक अवध थे और श्रमिको को गुप्त एव अवधानिक विधियो से अपन आपको सगठित करना पडा। फ्रास म *बोर्स नाम की छोटी छोटी श्रमिक गोष्ठियों का विकास हुआ* जो कुछ समय पश्चात एव सवदेशीय सघ, जिसका नाम ला फेडरेशन जनरल द जवेल था म सगठित करदी गयी। सघवादी वधानिक एव प्रजातात्रिक काय प्रणाली म विश्वास नही रखत थे। वे राजनीतिक क्षेत्र से अपन आपको पृथक रखना चाहते थे। वे राजनीतिक कायक्रमो को छोडकर प्रत्यक्ष आदोलन व सघष को मान्यता दत थे। 'प्रत्यक्ष सघष के अतगत तोड फोड (Sabotage) की कायवाहियो तथा हडताल के उपयोग को उचित समझा गया। सघवादी मुख्य रूप से विद्यमान व्यवस्था को क्रान्ति क उपायो द्वारा भग करन म रुचि रखत थ। क्रान्ति क पश्चात समाज क नवीन सगठन के सम्बन्ध म उनके विचार स्पष्ट नही थे। सघवादी व्यवस्था म राज्य एव सरकार को कोई स्थान नही दिया गया क्योंकि इनको सघवादी पू जीवादी सस्था मानत थे। प्रत्यक उद्योग कला अथवा काय के लिए एक सघ (Syndicate) की स्थापना का आयोजन किया गया जिसम उस उद्योग म काय करने वाले सम्मिलित रहत थे। प्रत्येक व्यवसाय के लिए पृथक सघो की स्थापना की जाती थी। प्रत्यक नगर एव ग्राम म इस प्रकार क विविध व्यवसायो के स्थानीय सघ स्थापित किये जाते थे और उनके ऊपर समान सघो के प्रतिनिधियो द्वारा निर्मित क्षेत्रीय सघ और सबक ऊपर प्रत्यक व्यवसाय क एक एक राष्ट्रीय सघ की स्थापना की जाती थी। प्रत्येक राष्ट्रीय सघ अपने काय क्षेत्र के सम्बन्ध म स्वतन्त्र होता था और उसके ऊपर कोई उच्च नियन्त्रणकारी सस्था या सत्ता नही होती थी। इस प्रकार सघवाद के अतगत एक सप्रभुत्वपूण राज्य के स्थान पर बहुत से समकक्ष एव स्वतन्त्र सघों की स्थापना की जाती थी। प्रत्येक सघ का प्रबन्ध उसम काय करने वाले श्रमजीवी उत्पादको के हाथ मे रहता था। जो श्रमिक नही थे उन्ह इन सघो म कोई अधिकार नही होता था। इस प्रकार सघवाद म उत्पादकों के प्रभुत्व को महत्व दिया गया। सघवादी व्यवस्था को व्यावहारिक नही कहा जा सकता क्योंकि श्रमिक वग राजनीति म भाग लिये बिना पू जीवादियों की शक्ति को कम नहीं कर सकत थे। वे हडताल एव विध्वस की कायवाहियो से पू जीपतियो को उनक अधिकारो को छोडने के लिए विवश नही कर सकते थे। सघवादी व्यवस्था म उपभोक्ताओ के हितो पर कोई ध्यान नही दिया गया और उत्पादको को एकाधिकार प्रदान करने की व्यवस्था की गयी।

श्रेणी-मूलक समाजवाद (Guild Socialism)—श्रेणी-मूलक समाजवाद का जन्म २०वी शताब्दी म ब्रिटेन मे हुआ। इसके अन्तगत क्रान्तिकारी उपायो के स्थान पर वध एव शान्तिमय उपायो को मान्यता दी गयी। श्रेणी अथवा गिल्ड एक औद्योगिक व व्यावसायिक सस्था को कहते हैं जिसम किसी विशेष उद्योग के सभी

कारीगर व श्रमिक सम्मिलित होते हैं। यह अपने सदस्यों की रक्षा व सहायता करता है और मजदूरी की दर, श्रम सम्बन्धी समस्त मामले तैयार माल का मूल्य तथा उसकी उत्कृष्टता का मापदण्ड निश्चित करता है। श्रेणी एक स्वयं शासित संस्था होती है जिसके अन्तर्गत उत्पादन करने वाले श्रमिक अपनी कार्य-व्यवस्था स्वयं निर्धारित करते हैं। गिल्ड की स्थापना मध्यकालीन यूरोप में की गयी थी। पूँजीवाद के विकास के साथ जब श्रमिक के साथ पशु के समान व्यवहार किया जाने लगा तो इंगलैण्ड के कुछ अर्थशास्त्रियों एवं विचारकों जिनमें प्रमुख जे० ए० पन्टी हॉबसन तथा जी० डी० एच० कोल हैं ने मध्यकालीन गिल्ड प्रथा को कुछ आवश्यक परिवर्तन करके पुनः जीवित करना चाहा और इस नवीन व्यवस्था को श्रेणी मूलक समाजवाद का नाम दिया गया।

श्रेणी मूलक समाजवाद के अन्तर्गत वेतन प्रथा को समाप्त करके उद्योगों में श्रमजीवियों का स्वराज्य स्थापित करने का उद्देश्य निश्चित किया गया। प्रत्येक उद्योग के लिए एक राष्ट्रीय श्रेणी की स्थापना की जाती थी, जिसके नीचे क्षेत्रीय एवं स्थानीय श्रेणियाँ स्थापित की जाती थीं। यह श्रेणियाँ आर्थिक एवं औद्योगिक मामलों से सम्बन्ध रखती थीं और शेष समस्त विषय शान्ति रक्षा न्याय शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि राज्य के हाथ में रहते थे। इस प्रकार श्रेणी मूलक समाजवाद में आर्थिक एवं औद्योगिक मामले श्रेणियों के अधिकार में और राजनैतिक मामले राज्य के हाथ में रहते थे। जनसाधारण से सम्बन्ध रखने वाले आर्थिक मामलों के सम्बन्ध में निर्णय श्रमिकों की समितियों तथा उपभोक्ताओं की समितियों के सहयोग एवं परामर्श से होते थे। श्रेणी-समितियों के समानान्तर स्थानीय क्षेत्रीय व राष्ट्रीय स्तर पर उपभोक्ताओं की समितियाँ भी स्थापित की जाती थीं जो श्रेणी समितियों को सहयोग एवं सलाह प्रदान कर सकें। राष्ट्रीय श्रेणियों के ऊपर उनकी प्रतिनिधि-संस्था श्रेणी कांग्रेस (Guilds Congress) की स्थापना होनी थी और इसी के समान राज्य की प्रतिनिधि-संस्था संसद होनी थी। जो विषय राजनैतिक व औद्योगिक दोनों ही क्षेत्रों से सम्बन्धित थे वे श्रेणी कांग्रेस व संसद के पारस्परिक परामर्श से तय किए जाते थे।

श्रेणी मूलक समाजवादी पूँजीवाद का प्रतिस्थापना करने के लिए तीन दक्ष एवं शान्तिपूर्ण उपायों का उपयोग करना चाहते थे। उनका प्रथम उपाय श्रमजीवियों का श्रेणी मूलक संगठन करके उद्योगों के प्रबन्ध व संचालन पर अधिकार जमाना था। श्रेणी संगठन में प्रत्येक उद्योग में समस्त कार्यकर्ताओं—चाहे वह शारीरिक श्रमिक हो अथवा बौद्धिक, चाहे मैनेजर हो अथवा चपरासी, सभी को सम्मिलित किया जाता था और इस भाँति इन श्रेणियों का संगठन आधुनिक श्रम संघों से अधिक प्रभावशाली होता था। श्रेणी-मूलक समाजवाद का दूसरा उपाय सामूहिक ठेके को महत्व देना था। इसके अन्तर्गत श्रमिक मिल मालिकों से कार्य करने का ठेका लें और पुनः कार्य

का अपनी इच्छानुसार स्वाधीनतापूर्वक करें। तीसरे उपाय के अन्तर्गत श्रमिकों को पूंजीपतियों के उद्योगों की प्रतिस्पर्धा में अपने उद्योग स्थापित करना था। श्रेणी मूलक समाजवाद में नीचे से ऊपर तक दोहरे संगठन की व्यवस्था थी परन्तु यह स्पष्ट नहीं था कि संसद तथा श्रेणी कांग्रेस में मतभेद होने पर निर्णय किस प्रकार किए जायेंगे। इसके साथ ही पूंजीवाद का प्रतिस्थापन करने के लिए जो उपाय निर्धारित किए गये उनकी प्रभावशीलता सन्देहपूर्ण थी।

राजकीय समाजवाद अथवा समष्टिवाद (State Socialism or Collectivism)—राजकीय समाजवाद का विचार मार्क्सवाद की आलोचना के फलस्वरूप आरम्भ हुआ। मार्क्सवाद की विचारधाराओं में संशोधन करके प्रजातान्त्रिक मान्यताओं के अनुकूल बनाने के प्रयास किए गये। ब्रिटेन में सन् १८८४ में फेबियन समाज की स्थापना की गयी। फेबियनवाद के अन्तर्गत समाजवाद को उचित एवं श्रेष्ठ प्रमाणित करने का प्रयत्न किया गया। इस प्रकार राजकीय समाजवाद को मार्क्सवाद के संशोधन एवं फेबियनवाद से मौलिक प्रेरणा मिली। राजकीय समाजवाद के निम्नलिखित प्रमुख लक्षण हैं—

(१) राजकीय समाजवाद की स्थापना हेतु वैधानिक शान्तिमय तथा विकासमूलक उपायों को मान्यता दी जाती है और हिंसात्मक अथवा क्रान्तिकारी विधियों का उपयोग नहीं किया जाता है।

(२) राजकीय समाजवाद का प्रजातन्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसके अन्तर्गत प्रजातान्त्रिक विधियों से ही समाजवादी व्यवस्था की स्थापना एवं संचालन किया जाता है। प्रजातन्त्रात्मक राज्य इसकी समस्त योजनाओं की आधारशिला होता है और इसमें तानाशाही को स्थान नहीं दिया जाता।

(३) समाजवादी संगठन में राज्य को केन्द्रीभूत स्थान दिया जाता है। वह समस्त आर्थिक एवं औद्योगिक क्रियाओं की व्यवस्था एवं संचालन करता है। इसमें राज्य और उसके कार्यों का महत्व बढ़ा दिया जाता है।

(४) समाजवाद के अन्तर्गत वर्ग संघर्ष का कोई स्थान नहीं दिया जाता और वर्ग सामंजस्य स्थापित किया जाता है। यह श्रमिक एवं दलित वर्ग के हितों के प्रति अधिक जागरूक होता है परन्तु किसी वर्ग का विनाश नहीं चाहता।

(५) समाजवाद में व्यक्तिगत सम्पत्ति अथवा उद्योगों का निषेध करना अनिवार्य नहीं है परन्तु दलित वर्गों के शोषण को रोकने तथा आर्थिक एवं सामाजिक विषमता को कम करने के लिए सम्पत्ति एवं उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण किया जा सकता है।

(६) समाजवाद में उत्पादन लाभ के लिए नहीं अपितु उपयोग के लिए किया जाता है और वस्तुओं तथा सेवाओं का वितरण लोगों की योग्यता एवं कार्यानुकूल किया जाता है।

(७) समाजवाद के अन्तर्गत भौतिक साधनों का राज्य अपने अधिकार में लेकर उनका उपयोग ऐसे संगठनों द्वारा करता है जो समाज के प्रतिनिधि हों और समाज के प्रति उत्तरदायी हों।

(८) राष्ट्रीकृत भौतिक साधनों का उपयोग एक पूर्व निश्चित योजना के अनुसार सार्वभौमिक सामाजिक तथा आर्थिक समानता स्थापित करने के लिए किया जाता है। नियोजित आर्थिक विकास समाजवाद का प्रमुख अंग है।

(९) राजकीय समाजवाद में स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा एवं निजी-व्यापारिकता को खुली छूट नहीं दी जाती है। इसके द्वारा उत्पन्न हानिकारक प्रभावों तथा अन्य दोषों को दूर करने के लिए राज्य सदैव सतर्क रहता है। वह स्वयं खुले बाजार की क्रियाओं द्वारा अथवा राजकीय अधिनियम द्वारा विपणि-व्यवस्था पर नियन्त्रण करता है।

राजकीय समाजवाद में राज्य जो राजनैतिक दृष्टि से सर्वाधिक शक्तिशाली होता है जब आर्थिक क्रियाओं को अपने अधिकार एवं नियन्त्रण में ले लेता है तो व्यक्ति की वास्तविक स्वतन्त्रता पर कुठाराघात होता है। समाजवाद की प्रजातान्त्रिक विधियाँ अत्यन्त मन्द गति से देश के सामाजिक एवं आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन ला सकती हैं और पूँजीवाद एवं उसके दोषों का अन्त शीघ्र सम्भव नहीं हो सकता।

साम्यवाद—साम्यवाद के मूल सिद्धान्त हैं, सम्पत्ति एवं उत्पादन के साधनों पर व्यक्ति के स्थान पर सम्पूर्ण समाज का अधिकार तथा धनी एवं निर्धन के अन्तर का उन्मूलन करना। साम्यवाद वास्तव में उतना ही प्राचीन है जितना मानव की सभ्यता है क्योंकि आदिम समुदायों में भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार के बजाय अधिकतर पूरे ग्राम का अधिकार होता था। भारत और रूस के प्राचीन ग्राम-समुदायों में भी इस व्यवस्था का प्रचलन था। भारत में प्राचीन बौद्ध मठों की आर्थिक व्यवस्था साम्यवाद से मिलती जुलती थी। जेरूसलम के ईसाई समुदायों में व्यक्तिगत सम्पत्ति को मान्यता नहीं दी जाती थी। अफलातून ने अपने ग्रन्थों में सिद्धान्त-रूप से साम्यवाद के सिद्धान्तों को ही श्रेष्ठ बताया था परन्तु आधुनिक साम्यवाद कार्ल मार्क्स के विचारों से प्रभावित हुआ है। आधुनिक साम्यवाद तथा प्राचीन एवं मध्यकालीन साम्यवाद में मूलभूत अन्तर है। प्राचीन तथा मध्यकालीन साम्यवाद के उद्देश्य राजनैतिक अथवा धार्मिक थे जबकि आधुनिक मार्क्सवादी साम्यवाद के प्रमुख उद्देश्य आर्थिक हैं। औद्योगिक क्रान्ति के कारण जो विभिन्न देशों की अर्थ-व्यवस्था में परिवर्तन हुए और धनी एवं निर्धन-वर्गों का प्रादुर्भाव हुआ उनके दुष्परिणामों का आभास कार्ल मार्क्स ने किया। वास्तव में साम्यवाद व्यक्तिवाद की एक प्रतिक्रिया थी। व्यक्तिवाद को हटाकर समाजवाद की स्थापना करने के लिए साम्यवाद का जन्म हुआ।

मार्क्सवादी अर्थ-व्यवस्था में किसी भी वस्तु का मूल्य उसमें उपयोग होने वाले श्रमकाल पर निर्भर करता है परन्तु अकेला श्रम कोई उत्पादन नहीं कर सकता। उत्पादन करने के लिए पूँजी (कच्चा माल, औजार, मशीनें आदि) की आवश्यकता

होती है। मार्क्स के अनुसार पूंजी एकत्रित श्रम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। परिश्रम द्वारा उपार्जित वह द्रव्य जो उपयोग में न लाया गया हो और बचाकर उत्पादन में लगा दिया जाय पूँजी का रूप धारण करता है। इस प्रकार यह पूंजी भी श्रमजीवियों द्वारा उत्पादित धन है जिसे धोखे व अन्याय से पूंजीपतियों ने अपने अधिकार में कर रखा है। पूंजीपति मूल के सिद्धान्त की सहायता से श्रमिकों से उनका न्यायोचित परिश्रम फल छीनता है और स्वयं धनी बन जाता है। पूंजीपति मजदूरों को केवल जीवन निर्वाह योग्य मजदूरी देता है जो वस्तु की लागत में शामिल करली जाती है। यदि मजदूरी की दर बढ़ा दी जाय तो वस्तु की लागत बढ़ने से पूंजीपति का लाभ कम हो जाता है और इसलिए वह सदैव कम से कम मजदूरी देने के लिए प्रयत्नशील रहता है जिसके फलस्वरूप पूंजीपतियों और श्रमिकों में सदैव वर्ग संघर्ष चलता रहता है। पूंजीवाद के अन्तर्गत उत्पादन और वितरण में सन्तुलन नहीं रहता क्योंकि एक ओर नये नये आविष्कारों द्वारा उत्पादन क्षमता बढ़ती जाती है और दूसरी ओर धन का संचय पूंजीपति के हाथ में होता जाता है। जन-साधारण की क्रय शक्ति कम होती जाती है जिसके कारण आर्थिक मन्दी बेरोजगारी आदि कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं और श्रमजीवियों को इतना कष्ट उठाना पड़ता है कि वह पूंजीवादी व्यवस्था को हिंसात्मक क्रान्ति द्वारा उखाड़ फेंकता है और इस प्रकार साम्यवादी व्यवस्था का निर्माण होता है।

साम्यवादी आन्दोलन एक क्रान्तिकारी आन्दोलन होता है। इसके अन्तर्गत श्रमजीवी वर्ग संक्रमण-काल में क्रान्ति के शत्रुओं को पूर्णतः नष्ट करके अपनी सत्ता को सुदृढ़ और स्थायी बनाने का प्रयत्न किया करता है। श्रमजीवी वर्ग पूंजीपतियों को सदैव के लिए परास्त करने हेतु अपना एकाधिपत्य स्थापित करने का प्रयत्न करता है। इस भांति एकाधिपत्य द्वारा जो सरकार की स्थापना की जाती है इसमें श्रमजीवियों के अतिरिक्त और किसी वर्ग का कोई भाग या अधिकार नहीं दिया जाता। इसे प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था नहीं कहा जा सकता है। इसकी कार्य प्रणाली कठोर हिंसात्मक तथा उत्पीडक होती है क्योंकि इसका मुख्य उद्देश्य क्रान्ति को स्थायी बनाना होता है।

साम्यवादी अर्थ व्यवस्था के लक्षण

अर्थ व्यवस्था में निजी सम्पत्ति का उन्मूलन करना मुख्य लक्ष्य होता है। उत्पादन के प्रत्येक साधन पर राज्य का पूर्ण स्वामित्व होता है जिससे लाभोपार्जन हेतु होने वाले सामाजिक शोषण को रोकने का प्रयत्न किया जा सकता है। भविष्य में धन सम्पत्ति एकत्रित करने को रोकने के लिए बहुत से उपाय किये जाते हैं। उत्तराधिकार के नवीन नियमों से धन सम्पत्ति के हस्तान्तरण को कम से कम कर दिया जाता है। उद्योग व्यापार तथा कृषि में निजी सम्पत्ति का उपार्जन प्राय समाप्त हो जाता है। नवीन आर्थिक नीति के फलस्वरूप ब्याज लाभ तथा किराया पाना असम्भव तथा

अवधानिक बन जाता है। उत्पादन के साधनों पर राज्य स्वामित्व या सामुदायिक स्वामित्व होता है जिसका अर्थ यह नहीं कि सभी उत्पादन का कार्य केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकार चलाये अपितु कुछ प्रमुख उद्योगों को छोड़कर अन्य उद्योगों को राज्य प्रत्यक्ष रूप से नहीं चलाता। वे सहकारी तथा व्यक्तिगत क्षेत्र के लिए छोड़ दिए जाते हैं परन्तु इन पर राज्य का पूरा और प्रत्यक्ष निर्देशन रहता है। निजी सम्पत्ति के उन्मूलन का अर्थ यह है कि प्रत्येक नागरिक व्यक्तिगत सम्पत्ति केवल उपभोग के लिए रख सकता है न कि उत्पादन के लिए। कृषि क्षेत्र में सामुदायिक किसानों का भी व्यक्तिगत भूमि रखने का भी अधिकार दिया जा सकता है जिसकी उपज उनकी निजी हो सकती है।

सामुदायिक निर्णय एवं साधनों का बँटवारा—पूँजीवाद में आर्थिक साधनों का बटवारा उपभोक्ताओं की रुचि के अनुसार असंख्य व्यापारियों के निर्णय द्वारा होता है। व्यक्तिगत उपभोक्ता उत्पादक पूँजीपति, व्यापारी तथा विभिन्न हितों में मध्यस्थों में स्वार्थ-संघर्ष (Clash of Interests) होना पूँजीवाद का मुख्य लक्षण है। इस स्वार्थ संघर्ष से बचने के लिए साम्यवादी व्यवस्था में कठोर केन्द्रीय संचालन तथा नियंत्रण का मार्ग अपनाया जाता है। समस्त आर्थिक निर्णय तथा लक्ष्य निर्धारण व्यक्तिगत प्रभाव से हटा कर एक केन्द्रीय संस्था को सौंप दिए जाते हैं। इस केन्द्रीकरण के फलस्वरूप व्यक्तिगत एवं वर्गों के स्वार्थपूर्ण हितों का स्थान देश और समाज का हित ले लेता है अर्थात् समस्त आर्थिक निर्णय एवं लक्ष्य समस्त देश एवं समाज के हित को दृष्टिगत कर केन्द्रीय अधिकारी द्वारा किए जाते हैं। इस व्यवस्था में उपभोक्ता की रुचि उसकी मात्रा गुण एवं प्रकार का उचित सीमाओं में बाँधना पड़ता है। राशनिंग उपभोग के साधनों की बनावटी कमी तथा प्रमापीकरण (Standardization) इसके लिए मुख्य साधन हैं अतः योजनाओं में जनता की आवश्यकताओं एवं रुचि व्यक्तिगतरूप से निर्धारित नहीं होती है अपितु सामूहिक रूप से निर्धारित की जाती है। योजनाओं में निर्धारित प्राथमिकताओं के अनुसार अर्थ-साधनों को अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में बाँटा जाता है। साधनों के बँटवारे के पूर्व यह भी निश्चय करना आवश्यक होता है कि देश की योजना में उत्पादक एवं उपभोक्ता उद्योगों में क्या अनुपात रखा जाय।

साम्यवादी अर्थ व्यवस्था में औद्योगीकरण को अधिक महत्व दिया जाता है क्योंकि औद्योगीकरण द्वारा जनता को श्रम के प्रति जागरूक बनाना सम्भव होता है जिसके द्वारा साम्यवाद की बुनियादों को दृढ़ बनाया जा सकता है। औद्योगीकरण देश में विद्यमान पूँजीवादी प्रवृत्तियों का उन्मूलन करने का एक उचित एवं महत्वपूर्ण साधन समझा जाता है।

समाजवादी उत्पादन—साम्यवादी अर्थ-व्यवस्था में पूँजीवाद के मुख्य लक्षण एवं आधार प्रतिस्पर्धा को कोई स्थान नहीं दिया जाता है। समाजवादी उत्पादन एवं

विशाल सहकारी सगठन के रूप मे काय करता है जिसम अधिकतम सन्तुलन द्वारा राष्ट्रीय साधना का अनावश्यक प्रयोग एव अपव्यय दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। समाजवादी प्रतिस्पर्धा पूजीवादी प्रतिस्पर्धा से सर्वथा भिन्न है। साम्यवाद ने यह सिद्ध कर दिया है कि अकला आर्थिक स्वार्थ ही उत्पादन के प्रति उत्साह वन एव ध्यय का कारण नही है। इसम आर्थिक प्रेरक के स्थान पर सामाजिक प्रेरका को अधिक महत्व दिया जाता है। लाभ की आशा की तो जाती है परन्तु यह उत्पादन का मुख्य ध्येय नही है। सफल प्रबन्ध का माप लाभ की मात्रा के अतिरिक्त कम समय म अधिक उत्पादन श्रमिकों की दशा म सुधार और उत्पादन की लागत म कमी भी समझे जाते हैं। पूँजीवाद म कुशल उत्पादन क बदले धन एव उसस उत्पन्न होने वाली सामाजिक प्रतिष्ठा का ध्येय होता है। समाजवाद म इसके स्थान पर व्यक्तिगत प्रभाव एव शक्ति को स्थान दिया गया है। साम्यवादी अर्थव्यवस्था से सफलता का पारितोषिक महान् है और असफलता का दण्ड कठोर। सफल प्रबन्धक कम्युनिस्ट पार्टी म प्रभावशाली बन जाता है और उसकी शक्ति का पारिचायक पार्टी म प्रभाव होता है। सफल प्रेरणा हेतु आर्थिक वेतन के अतिरिक्त दूसरी सुविधाए अधिक प्रभावशाली समझी जाती हैं। श्रमिक की आवश्यकतानुसार उनके वेतन का निर्धारित किया जाता है और उसी क आधार पर वस्तुओ और सेवाओ का वितरण किया जाता है।

साम्यवाद मे लाभ का अर्थ केवल मौद्रिक लाभ से नही लिया जाता। इसम उत्पादन के प्रयोग का लाभ भी सम्मिलित रहता है। प्रत्येक कारखाने का उत्पादन का लागत घटा कर लाभ म विस्तार करने को कहा जाता है परन्तु अधिक लाभ हेतु दूसरा आवश्यकताओ पर उचित ध्यान न देना अपराध समझा जाता है। उत्पादन के लक्ष्य को पूरा करना, सामान की किस्म को गिरने न देना और मजदूरो की दशा तथा वेतन मे लगातार सुधार क साथ साथ लागत कम करके यदि कोई कारखाना लाभ दिखाता है तभी इसका प्रशसनीय माना जाता है।

व्यापार—साम्यवादी व्यवस्था म व्यापार का उद्देश्य केवल लाभ प्राप्त करना या उपभोक्ताओ की रुचि का ही पता लगाना नही है। पूजीवादी अर्थव्यवस्था के समान क्रेताओ को न तो बाजार म नवीन माडल व डिजाइन की वस्तुए ही मिलती है और न क्रेताओ के पास अधिक क्रय शक्ति ही होती है। क्रान्ति के पश्चात ही देशी एव विदेशी व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाता है। देश का थोक व्यापार राजकीय सस्थाओ क हाथ मे रहता है। विभिन्न उत्पादको को आयोजित मूल्य पर खरीद कर सहकारी समितियो तथा कारखाना स्टोर्स द्वारा निर्धारित मूल्य पर उप उपभोक्ताओ तक पहुँचाया जाता है। फुटकर मूल्य जो बदलते रहते हैं उनके द्वारा लोगों की आय एव बाजार म उपलब्ध वस्तुओ का विक्रय मूल्य सन्तुलित रखने का प्रयत्न किया जाता है।

साम्यवाद एव समाजवाद क उद्देश्य लगभग समान ही होते है परन्तु इनकी

कार्यप्रणाली एक-दूसरे से भिन्न होती है। समाजवाद के अनुसार वैधानिक शान्तिमय और प्रजातन्त्रीय कार्यप्रणाली द्वारा पूँजीवादी व्यवस्था को बदला जाता है जबकि साम्यवाद के अनुसार हिंसात्मक क्रान्ति को ही एकमात्र पूँजीवाद के अन्त करने का साधन समझा जाता है। सोवियत रूस के विचारकों के अनुसार समाजवादी एवं साम्यवादी व्यवस्थाओं में वितरण-प्रणाली में ही अन्तर होता है। समाजवादी व्यवस्था में वितरण श्रमिकों के कार्य एवं योग्यता के अनुसार किया जाता है परन्तु साम्यवाद में वस्तुओं और सेवाओं का वितरण उनकी आवश्यकतानुसार किया जाता है।

अधिनायकवाद अथवा तानाशाही (Fascism)—अधिनायकवाद सामान्यतः किसी देश में जब ही विद्यमान होता है, तब वहाँ का शासन शिथिल एवं अक्षम हो जाता है और जनसमुदाय राष्ट्रीय अपमान की भावना का आभास करने लगता है। इटली के फासिस्टवाद (Fascism) तथा जर्मनी का नात्सीवाद (Nazism) का इसी प्रकार जन्म हुआ। इटली की महत्वाकांक्षाओं के प्रथम युद्ध में पूरा न होने तथा जर्मनी की पराजय होने के कारण इन देशों में अधिनायकवाद ने जोर पकड़ा। अधिनायकवाद के अन्तर्गत जो व्यक्ति अपने आपको अधिनायक होने योग्य समझता है वह आगे आता है और समस्त असन्तुष्ट जनसमुदाय को अपने में सम्मिलित करने का प्रयत्न करता है। अधिनायक का चुनाव अथवा नियुक्ति नहीं की जाती है। वह असन्तुष्ट जनसमुदाय की पीड़ा को दूर करने, राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति के नाम पर प्रायः नवयुवकों एवं विद्यार्थियों को अपने दल में सम्मिलित होने के लिए आकर्षित करता है। इस प्रकार अधिनायक एक दलीय नेता के रूप में कार्य प्रारम्भ करता है और धीरे-धीरे एक अनन्य शासक का रूप ग्रहण कर लेता है। वह एक कुशल वक्ता एवं प्रचार-कार्य में कुशल होता है। अधिनायकवादी राज्य को सर्वोच्च नैतिकता व देश की समस्त क्रियाओं का आधार मानते हैं। राज्य को शक्तिशाली करने के लिए समस्त व्यक्तियों व समुदायों को राज्य के पूर्णतया अधीन करके एकता की स्थापना की जाती है। लोकतन्त्र तथा सरकार-विरोधी दलों को कोई स्थान अधिनायकवाद में नहीं दिया जाता है। स्वतन्त्र मजदूर-सभाओं, मजदूर-आन्दोलनों और हड़तालों का बलपूर्वक अन्त कर दिया जाता है और राज्य द्वारा स्वीकृत निर्मित श्रम-संगठनों की स्थापना की जाती है जिनके संचालक अधिनायक के विश्वासपात्र व्यक्ति नियुक्त किये जाते हैं।

उद्योग एवं व्यवसाय को यद्यपि व्यक्तिगत अधिकार में ही रहने दिया जाता है परन्तु उनके संचालन पर राज्य का कठोर नियन्त्रण होता है। राज्य समस्त जनसमुदाय को रोजगार देने तथा निर्वाह योग्य वेतन की व्यवस्था करने का प्रयत्न करता है। अधिनायकवाद का झुकाव पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था की ओर अधिक होता है। राज्य व्यक्तिगत जीवन के सभी क्षेत्रों में हस्तक्षेप एवं नियन्त्रण करता है और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का सम्पूर्णतः अन्त हो जाता है। इस प्रकार अधिनायकवाद के अग्रलिखित मुख्य लक्षण हैं—

(१) अधिनायकवाद म भौतिक सुखवाद जीवन का उद्देश्य नही माना जाता है और इसी कारण अधिनायक जनसमुदाय की भौतिक आवश्यकताओं पर कठोर नियन्त्रण लगाकर साधनों को अन्य उद्देश्यों की पूर्ति हेतु एकत्रित करता था जसे जमनी म हिटलर ने द्वितीय महायुद्ध म धन का उपयोग किया गया था।

(२) अधिनायकवाद म समानता के सिद्धान्त को कोई स्थान नही देता है।

(३) अधिनायकवाद बहुमत की निणय पद्धति को मान्यता नहीं देता। अधिनायक द्वारा किय गय निणय ही सवमा य होते है।

(४) अधिनायकवाद क अन्तगत राज्य का प्रमुख उद्देश्य अधिनायक को शक्तिशाली बनाकर दश को शक्तिशाली बनाना होता है। व्यक्तियों के विकास का उत्तरदायित्व राज्य स्वीकार नही करता।

(५) अधिनायकवाद म व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का कोई स्थान नही होता और समस्त राजनीतिक आर्थिक एव अन्य क्रियाओ पर राज्य का कठोर नियन्त्रण होता है।

(६) अधिनायकवाद म मनुष्य की क्रियाओ का उद्देश्य धन एव आयोपाजन के स्थान पर एक स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना होता है।

अधिनायकवाद एव साम्यवाद की काय प्रणालियो म बहुत कुछ समानता है। दोनो ही वादो म सक्रिय नागरिकता को अधिक महत्व दिया जाता है जिसके अन्तगत प्रत्यक नागरिक से यह आशा की जाती है कि वह निर्दिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सक्रिय सहयोग दें। दोनो ही वादो म राज्य व्यक्ति के जीवन के समस्त क्षेत्रो पर आच्छादित होना चाहता है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का सवथा अन्त करन का प्रयत्न किया जाता है। लोकतन्त्रवादी मान्यताओं को दोनो ही वादो म कोई स्थान नहीं है। भाषण मुद्रण सभा सगठन आदि की स्वतन्त्रताओ का लोप म ही अभाव होता है। दोनो ही वादो म सत्तारूढ दल राज्य के समस्त सूत्रो को अपने हाथ म रखता है। दोनो वादो म उपयु क्त समानता होने हुए भी उनके उद्देश्यो म भिन्नता है। साम्यवाद क अन्तगत श्रमजीवी वग को एकाधिपत्य प्रदान किया जाता है जबकि अधिनायकवाद म पूजीपति वग का सरक्षण एव हित साधन होता है। साम्यवाद क अन्तगत आर्थिक साधन एव क्रियाओ का नियन्त्रण सचालन एव अधिकार राज्य क हाथ म होता है जबकि अधिनायकवाद म आर्थिक क्रियाए एव साधन पूजीपतियों क हाथ म रहते हैं। केवल उनका सचालन राज्य क कठोर नियन्त्रण के अन्तगत किया जाता है।

उपयु क्त विभिन्न राजनीतिक एव आर्थिक विचारधाराओ तथा व्यवस्थाओ क अध्ययन स ज्ञात होता है कि आधुनिक युग म आर्थिक व्यवस्थाओं और राजनीतिक विचारधाराओ न आर्थिक व्यवस्थाओ को प्रभावित किया है। विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं क अन्तगत विभिन्न अथ व्यवस्थाओ का प्रादुर्भाव हुआ और आर्थिक नियोजन का सचालन इन विभिन्न व्यवस्थाओ क अन्तगत विभिन्न देशों म किया गया है। प्रत्यक देश की राजनीतिक स्थिति के अनुसार उसक आर्थिक नियोजन क प्रकार

का निर्धारण होता है। आर्थिक नियोजन एक राजकीय क्रिया होने के कारण राज्य की राजनीतिक मान्यताओं से प्रभावित होता है। लगभग समस्त प्रकार के नियोजन में मूल उद्देश्य समान होते हैं। परन्तु इन उद्देश्यों की पूर्ति एवं प्राप्ति हेतु जो विधियाँ अपनायी जाती हैं, उनका निर्धारण देश में मान्य राजनीतिक विचारधाराओं पर आधारित होता है। वास्तव में नियोजन के प्रकारों का निर्णय नियोजन के अन्तर्गत अपनाने वाली विधियों के आधार पर किया जाता है। सभी प्रकार के नियोजन में सामाजिक तथा आर्थिक सुरक्षा प्रमुख उद्देश्य समझे जाते हैं और राष्ट्र के समस्त साधनों का उपयोग इन दोनों मूलभूत उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है। अधिनायकवादी या तानाशाही नियोजन में आर्थिक अथवा सामाजिक सुरक्षा के स्थान पर अधिनायक को शक्तिशाली बनाना होता है जिसके द्वारा देश को शक्तिशाली बनाया जा सके।

नियोजन के प्रकार

(१) समाजवादी नियोजन (Socialistic Planning)
(२) साम्यवादी नियोजन (Communistic Planning)
(३) पूँजीवादी नियोजन (Capitalistic Planning),
(४) प्रजातान्त्रिक नियोजन (Democratic Planning)
(५) अधिनायकवादी या तानाशाही नियोजन (Fascist Planning)
(६) सर्वोदयी अथवा गांधीवादी नियोजन (Sarvodaya or Gandhian Planning)।

समाजवादी नियोजन

आर्थिक नियोजन वास्तव में समाजवाद का एक अभिन्न अंग है। सैद्धान्तिक रूप से हम भले ही यह विचार कर सकते हैं कि समाजवाद एवं आर्थिक नियोजन में कुछ अन्तर है परन्तु व्यावहारिक रूप से इन दोनों का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि आर्थिक नियोजन की अनुपस्थिति में समाजवाद की विचारधारा को व्यावहारिक रूप नहीं दिया जा सकता है। समाजवाद के अन्तर्गत राज्य को ऐसी विधियों का उपयोग करना होता है कि अर्थ-व्यवस्था को समाजवादी रूपों को ओर अग्रसर किया जा सके। सरकार द्वारा जब इन विधियों का उपयोग किया जाता है तो इसका रूप सरकारी नियोजन बन जाता है। सामाजिक एवं आर्थिक समानता का आयोजन करने हेतु सरकार को निजी व्यवसाय, सम्पत्ति एवं प्रतिस्पर्धा पर नियन्त्रण करके देश के आर्थिक साधनों का इस प्रकार उपयोग करना होता है कि आर्थिक विकास के लाभ समस्त समाज को प्राप्त हो सकें। राज्य द्वारा इस कार्यवाही को किये जाने से अर्थ व्यवस्था का सचालन स्वतन्त्र बाजार-पद्धति से बदलकर केन्द्रीय व्यवस्था हो जाता है जो आर्थिक नियोजन का स्वरूप होता है।

समाजवादी नियोजन के अन्तर्गत समाज के पूर्ण आर्थिक साधनों एवं श्रम-

शक्ति का प्रयोग समस्त समाज के लिए किया जाता है। उत्पादन का लक्ष्य समस्त समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है न कि व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करना। समाजवाद के अन्तर्गत मानवीय श्रम का उपयोग पूँजी संग्रह के लिए नहीं किया जाता है अपितु संगृहीत पूँजी मानवीय श्रम के उत्थान एवं आराम के लिए प्रयोग की जाती है। केन्द्रीय नियन्त्रण होने पर अर्थव्यवस्था से निरर्थक प्रतिस्पर्धा का उन्मूलन हो जाता है और अपव्यय को कम किया जा सकता है। समाजवादी नियोजन में भारी उत्पादक उद्योगों का आधार उपभोक्ता उद्योग नहीं होते हैं। भारी उद्योगों के विकास को केन्द्रीय अधिकारी सर्वश्रेष्ठ स्थान देते हैं।

समाजवाद का वास्तविक स्वरूप आधुनिक युग में केवल एक सिद्धान्त मात्र है क्योंकि इसके मूल उद्देश्यों आर्थिक एवं सामाजिक समानता की पूर्ति के लिए अन्य से तरीके अपनाये जाने लगे हैं। समाजवादी नियोजन में केन्द्रीय नियन्त्रण का विशेष महत्व होता है। सरकारी क्षेत्र का विकसित तथा निजी क्षेत्र को संकुचित किया जाता है। राष्ट्रीय उत्पादन तथा वितरण कार्य पर सरकार द्वारा धीरे धीरे नियन्त्रण प्राप्त किया जाता है। मूल तथा आधारभूत उद्योगों जैसे यातायात शक्ति युद्धसामग्री निर्माण लोहा तथा इस्पात रसायन तथा इन्जीनियरिंग आदि का राष्ट्रीयकरण किया जाता है। भूमि को भी शासन अपने अधिकार में कर लेता है। इस प्रकार राज्य प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन क्षेत्र का सचालन करता है। राष्ट्र के अधिक से अधिक साधनों को पूंजीगत वस्तुओं के उद्योगों में विनियोजित किया जाता है। उद्योगों का प्रबन्ध निगमों द्वारा होता है जिनमें मजदूर वर्ग के प्रतिनिधियों को भी स्थान दिया जाता है। वित्तीय मामलों पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए केन्द्रीय तथा अन्य अधिकोषों का राष्ट्रीयकरण किया जाता है। दीर्घकालीन विनियोजन नीति को बीमा का राष्ट्रीयकरण वित्तीय निगमों की स्थापना तथा अन्य बचत योजनाओं द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। निजी सम्पत्ति का अपहरण मृत्यु तथा उत्तराधिकार-कर द्वारा किया जाता है।

इस प्रकार पूर्णत समाजवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादक तथा उपभोक्ता की स्वतन्त्रता को कोई विशेष स्थान प्राप्त नहीं होता। सरकार नियोजन के लक्ष्य अधिक ऊँचे निश्चित करती है और उनकी पूर्ति के लिए उपलब्ध साधनों का अधिकांश भाग पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगों में विनियोजित करती है उपभोक्ता वस्तुओं (Consumer Goods) का उत्पादन देश की बढ़ती हुई आवश्यकता की तुलना में कम रहता है। ऐसी अवस्था में उपभोक्ता को राशनिंग तथा मूल्य नियन्त्रण द्वारा वस्तुएं सीमित मात्रा में उपलब्ध होती हैं। साथ ही उत्पादन भी सरकार की नीति के अनुसार ही किया जाता है। साधनों का आवंटन पूर्व निश्चित उत्पादन लक्ष्यों के अनुसार किया जाता है। इस प्रकार उपभोक्ता को अपनी इच्छानुसार वस्तुएं क्रय करने तथा उत्पादकों को उपभोक्ता की माँग के अनुसार उत्पादन करने की स्वतन्त्रता नहीं होती है।

समाजवादी इस मनोवैज्ञानिक स्वतन्त्रता को विशेष महत्व नहीं देते हैं।

उनके लिए स्वतन्त्रता का अर्थ जनसमूह को इच्छाओं, बीमारी, असमानता, बेकारी तथा असुरक्षा से स्वतन्त्रता प्रदान करना है। इन सभी कठिनाइयों से स्वतन्त्रता समाजवादी नियोजन द्वारा शीघ्र तथा अधिक मात्रा में प्राप्त की जा सकती है। समाजवादी व्यवस्था में व्यक्तिगत राजनीतिक स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखना कठिन होता है क्योंकि नियोजन में दीर्घकालीन कार्यक्रम को सफलतापूर्वक सञ्चालित करने के लिए राजनीतिक स्थिरता की आवश्यकता होती है। एक पक्ष की सरकार जो दीर्घकालीन नियोजन का कार्यक्रम बनाती है उसकी पूर्ति के लिए उस पक्ष की सरकार का बना रहना आवश्यक होता है अन्यथा नवीन सरकार आने पर पूर्व के कार्यक्रमों को रद्द कर दिया जाना स्वाभाविक है। यदि विपक्षी दल नियोजन के मूल उद्देश्यों से सहमत हो और अपनी आलोचना इन उद्देश्यों की सीमा तक ही सीमित रखता हो तब राजनीतिक स्वतन्त्रता बनाये रखने में कोई खतरा नहीं होता क्योंकि विपक्षी सरकार बनने पर नियोजन के कार्यक्रम रद्द किए जाने की सम्भावना नहीं होती है। जब विपक्षी दल नियोजन के मूल उद्देश्यों से सहमत न हो तब उसकी स्वतन्त्रता पर नियन्त्रण रखना आवश्यक होता है परन्तु समाजवादी नियोजन का सञ्चालन विभिन्न संस्थाओं तथा नियमों द्वारा किया जाता है और ये नियम लोकसभा के विधानों द्वारा स्वीकृत किए जाते हैं। विपक्षी सरकार बनने पर भी इन संस्थाओं का विघटन करना सम्भव नहीं होता है। इस प्रकार राजनीतिक स्वतन्त्रता पर कोई विशेष अंकुश रखने की आवश्यकता नहीं होती है।

समाजवादी नियोजन के अनिवार्य-तथ्यों की पूर्ति के लिए जनसमूह को प्रारम्भिक अवस्था में अधिक त्याग और कठिनाई उठानी पड़ती है क्योंकि उपभोक्ता की स्वतन्त्रता तथा निजी स्वामित्व को सीमित कर दिया जाता है। विदेशी व्यापार भी सरकारी नियमों द्वारा सञ्चालित तथा नियन्त्रित होता है और समय-समय पर सरकार की विदेशी व्यापार-नीति घोषित की जाती है, जिसमें पूँजीगत वस्तुओं के आयात तथा उपभोग की वस्तुओं के निर्यात पर जोर दिया जाता है। नियोजन की विदेशी सहायता केवल अन्य राष्ट्रों की सरकारों तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं से प्राप्त हो जाती है क्योंकि विदेशी पूँजीपति राष्ट्रीयकरण तथा अपहरण के भय से समाजवादी देशों में विनियोजन करना अच्छा एवं हितकर नहीं समझते हैं।

समाजवादी नियोजन के केन्द्रीय नियन्त्रण में समस्त नीतियाँ तथा कार्य सरकारी अधिकारियों द्वारा निर्मित तथा सञ्चालित किए जाते हैं। यह कर्मचारी शासकीय सिद्धान्तों की जटिलता की ओर विशेष ध्यान देते हैं। सरकारी नियम दृढ़ होते हैं जिनमें परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन करना सम्भव नहीं होता है। सरकारी कर्मचारियों में आत्मबल (Initiative) तथा नये कार्य प्रारम्भ करने के लिए रुचि का अभाव होता है इसीलिए जोखिम के कार्यों में ये उचित एवं उत्तम नीति-निर्धारण में सफल नहीं होते। सरकारी नीतियों में इस प्रकार नौकरशाही (Beaurocratic

Feelings को छाप लगी रहती है जिससे जनता का सहयोग प्राप्त नहीं होता उत्पादन कार्य में शिथिलता आती है तथा साधनों का अपव्यय होता है।

समाजवादी नियोजन के लक्षण

समाजवादी नियोजन के प्रमुख लक्षणों को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—

(१) **नियोजन समाजवाद का अभिन्न अंग**—समाजवादी राज्य की स्थापना के साथ साथ नियोजित अर्थ-व्यवस्था का संचालन एक अनिवार्य घटक होता है क्योंकि समाजवाद के अन्तर्गत जब राज्य आर्थिक साधनों एवं क्रियाओं को अपने अधिकार एवं नियन्त्रण में ले लेता है तो उनका एक समन्वित कार्यक्रम के अन्तर्गत पूर्व निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उपयोग करना आवश्यक होता है। समाजवादी राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्था की स्थापना आर्थिक नियोजन की अनुपस्थिति में नहीं की जा सकती जो तथ्य अन्य राजनीतिक व्यवस्थाओं के लिए सत्य नहीं होता है।

(२) **सामाजिक एवं आर्थिक समानता**—समाजवादी नियोजन का अन्तिम लक्ष्य सामाजिक एवं आर्थिक समानता उत्पन्न करना होता है और इसके अन्तर्गत संचालित समस्त कार्यक्रम इस उद्देश्य को दृष्टिगत करते हुए संचालित किए जाते हैं।

(३) **उत्पादन के साधन राज्य के अधिकार एवं नियन्त्रण में**—समाजवादी नियोजन के अन्तर्गत उत्पादन के समस्त या मूलभूत साधन राज्य के नियन्त्रण एवं अधिकार में होते हैं। राज्य धीरे धीरे समस्त आर्थिक क्रियाओं का प्रजातान्त्रिक एवं शान्तिमय विधियों से राष्ट्रीयकरण करता है और सरकारी क्षेत्र का विस्तार किया जाता है। राज्य का यह कर्त्तव्य होता है कि वह प्रत्येक नागरिक को आय अवसर और रोजगार उचित मात्रा में प्रदान करे।

(४) **सामाजिक हित**—समाजवादी नियोजन में व्यक्तिगत हित एवं लाभ के स्थान पर समस्त जनसमुदाय के हित को अधिक महत्व दिया जाता है और इसी कारण देश में उपलब्ध समस्त उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार को कोई मान्यता प्रदान नहीं की जाती। समाज के हित के लिए व्यक्ति को त्याग करने के लिए विवश किया जा सकता है।

(५) **प्रोत्साहन द्वारा नियोजन**—यद्यपि समाजवादी नियोजन में राज्य उत्पादन के साधनों पर नियन्त्रण करके आर्थिक क्रियाओं का संचालन करता है, परन्तु प्रजातान्त्रिक कार्यप्रणाली होने के कारण राज्य के अधिकार में रहने वाले साधनों का उपयोग करने हेतु व्यक्तियों के समूहों स्थानीय संस्थाओं क्षेत्रीय संस्थाओं आदि की स्थापना की जाती है। इस प्रकार सत्ताओं का विकेन्द्रीयकरण करने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार के नियोजन में व्यक्तिगत निर्णयों का प्रतिस्थापन करके सामूहिक निर्णयों को मान्यता दी जाती है परन्तु व्यक्तियों पर दबाव डाल कर त्याग करने को अधिक महत्व नहीं दिया जाता। उन्हें विभिन्न प्रकार के प्रलोभन देकर

योजना के लिए सहयोग प्रदान करने हेतु प्रोत्साहित किया जाता है। इस प्रकार केन्द्रीय नियन्त्रण होते हुए भी योजना का संचालन निर्देशों द्वारा (By Direction) नहीं किया जाता।

(६) **नीचे के स्तर से नियोजन** (Planning From Below)—जनतन्त्रवादी राष्ट्रों में जनतन्त्रवाद की स्थापना प्रजातान्त्रिक विधियों से की जाती है जिसके अन्तर्गत नागरिक को राज्य के निर्माण में अपना मत देने का अधिकार रहता है। प्रत्येक व्यक्ति को योजना के कार्यक्रम के सम्बन्ध में अपना विचार प्रकट करने का अधिकार होता है। योजना के कार्यक्रम भी जनसाधारण की विभिन्न संस्थाओं एवं व्यक्तिगत विचारों के आधार पर बनाये जाते हैं। इस प्रकार नियोजित कार्यक्रमों का अनुसरण केन्द्रीय अधिकारी द्वारा लागू नहीं किया जाता है।

(७) **उपभोक्ता के प्रभुत्व पर नियन्त्रण**—जनतन्त्रवादी नियोजन के अन्तर्गत उत्पादन उपभोक्ताओं की इच्छाओं के अनुसार नहीं किया जाता है क्योंकि उत्पादन आर्थिक नियोजकों का संचालन पूर्व निश्चित प्राथमिकताओं के अनुसार करता है। यद्यपि उपभोक्ताओं के दीर्घकालीन कल्याण को सदैव ध्यान में रखा जाता है। ऐसी परिस्थिति में उपभोक्ता-वस्तुओं के वितरण पर नियन्त्रण करके उपभोक्ता की स्वतन्त्रता को सीमित कर दिया जाता है। दूसरी ओर निजी उत्पादक के महत्त्व का उन्मूलन कर दिया जाता है और इस प्रकार उपभोग, उत्पादन एवं रोजगार की स्वतन्त्रताओं पर अंकुश लगाये जाते हैं।

(८) **निर्बाध प्रतियोगिता पर नियन्त्रण**—जनतन्त्रवादी अर्थ-व्यवस्था में माँग और पूर्ति के घटकों को मूल्यों पर प्रभाव डालने की छूट नहीं दी जाती क्योंकि उत्पादन एवं वितरण का योजना द्वारा निर्धारित कार्यक्रमों एवं लक्ष्यों के अनुसार किया जाता है। उपज विदेशी एवं आन्तरिक व्यापार पर भी नियन्त्रण रहता है।

साम्यवादी नियोजन

साम्यवाद के अन्तर्गत राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का नियोजित निर्देशन (Planned Direction) राज्य द्वारा किया जाता है। साम्यवादी सरकार राष्ट्रीय आर्थिक विकास के उद्देश्य, उत्पादन की मात्रा, उपभोक्ता नियन्त्रण, आर्थिक विकास की गति एवं अनुपात, कच्चे माल, अर्थ-साधनों तथा श्रम का वितरण, आन्तरिक एवं विदेशी व्यापार की मात्रा, मूल्य, कृषि आदि सभी का निर्धारण करती है। राज्य सहकारी संस्थाओं एवं सामूहिक फार्मों (Collective Farms) का पथ-प्रदर्शन अपनी चुनी हुई संस्थाओं द्वारा करता है। राज्य शिक्षा-व्यवस्था तथा विद्यार्थियों के प्रशिक्षण का संचालन करता है। इस प्रकार एक साम्यवादी सरकार अपनी आर्थिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक कार्यवाहियों द्वारा सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर आच्छादित होती है। लेनिन के विचार में राजनीति अर्थशास्त्र का केन्द्रित उच्चारण (Expression) होता है। इस सिद्धान्त के आधार पर साम्यवादी व्यवस्था में राजनीतिक एवं आर्थिक नेतृत्व में कोई

अन्तर नहीं समझा जाता जिसके परिणामस्वरूप राज्य समाज का केवल राजनीतिक नेतृत्व ही नहीं करता बल्कि उसके हाथ में आर्थिक सत्ताओं का केन्द्रीयकरण भी होता है। ऐसी राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक नियोजन का स्वरूप केन्द्रित नियोजन (Centralised Planning) हो जाता है। रूस में केन्द्रित अर्थव्यवस्था के फलस्वरूप ७०% फुटकर व्यवसाय सरकार द्वारा संचालित होते हैं तथा ६०% उत्पादन के साधन राज्य के अधिकार में हैं। सरकारी क्षेत्र द्वारा देश का ६४% औद्योगिक उत्पादन किया जाता है।

साम्यवादी नियोजन के अन्तर्गत समन्वित दीर्घकालीन योजनाओं का निर्माण केन्द्रीय निर्देशों के अनुसार किया जाता है। साम्यवादी नियोजन की प्रशासन व्यवस्था लेनिन द्वारा प्रतिपादित प्रजातान्त्रिक केन्द्रीयकरण (Democratic Centralisation) के सिद्धान्तों के आधार पर की जाती है। प्रजातान्त्रिक केन्द्रीयकरण के अन्तर्गत राष्ट्रीय योजना में सम्मिलित किए जाने वाले प्रमुख कार्यक्रम निर्धारित करके विकास सम्बन्धी आवश्यक निर्देश, गति तथा अनुपात का निर्धारण करता है। इन आधारभूत निर्देशों के आधार पर विभिन्न व्यवसायी तथा क्षेत्रीय अधिकारी विस्तृत योजनाएं अपने अपने कार्य क्षेत्र के सम्बन्ध में तैयार करते हैं। स्थानीय परिस्थितियों तथा सम्भावनाओं का योजनाएँ बनाते समय विशेष ध्यान रखा जाता है। इस प्रकार साम्यवादी नियोजन में प्रजातन्त्र का प्रदर्शन विस्तृत योजनाओं को बनाते समय होता है क्योंकि यह विस्तृत योजनाएं औद्योगिक इकाइयों, निर्माण-स्थानों, सामूहिक तथा राजकीय कृषि-फार्मों पर बनायी जाती हैं जिससे जनसमुदाय को अपने स्थानीय अनुभवों का योजना के निर्माण में उपयोग करना सम्भव होता है। साम्यवाद के 'प्रजातन्त्र का अर्थ जन समुदाय की उपयुक्त सरकार से है। इसके अन्तर्गत जनसमुदाय की क्रियाओं एवं प्रारम्भिकता को अधिकतम कार्यक्षेत्र प्रदान किया जाता है। वह जनसमुदाय के लिए स्वयं की सरकार होता है।'[1] जब एक बार योजना में सम्मिलित किये जाने वाले कार्यक्रम क्षेत्रीय एवं स्थानीय संस्थाओं के सहयोग से तैयार कर लिये जाते हैं और उनको केन्द्रीय अधिकारियों द्वारा स्वीकृति प्रदान कर दी जाती है तब नीचे के स्तर के योजना एवं प्रबन्ध अधिकारियों एवं संस्थाओं का कर्त्तव्य होता है कि योजना के लक्ष्यों को पूर्ण करें। साम्यवादी नियोजन में उत्पादन के क्षेत्र में एक व्यक्ति प्रबन्ध (One man Management) के सिद्धान्तों को मान्यता दी जाती है। इसका तात्पर्य यह होता है कि प्रबन्धक को आवश्यक अधिकार दिये जाते हैं कि वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को आवश्यक निर्देश देकर निर्दिष्ट लक्ष्यों की पूर्ति के कर्त्तव्य का पालन

1 To us democracy means genuine government by the people it implies maximum scope for the activity and initiative of the masses self government for the people'
—N S Khrushchev *Control Figures For Economic Development of the U S S R for 1959 1965* p 126

करे। लेनिन के अनुसार एक व्यक्ति प्रबन्ध में मानवीय क्षमताओं का उत्तम उपयोग होता है तथा काम पर वास्तविक नियन्त्रण रहता है। इस प्रकार साम्यवादी प्रजातान्त्रिक केन्द्रीयकरण के अन्तर्गत नेता के अधिकारों तथा उसके नेतृत्व में रहने वाले व्यक्तियों की प्रारम्भिकता का सम्मिश्रण होता है।

साम्यवादी नियोजन में श्रमिकों को अर्थ-व्यवस्था के संचालन-कार्य में भाग लेने का अधिकार होता है। श्रमिक वर्ग में योजना के लक्ष्यों की पूर्ति, नवीन मशीनों तथा तान्त्रिक विधियों का आविष्कार करने, श्रम के यन्त्रीकरण, कच्चे माल की बचत करने, श्रमिकों की योग्यताओं का बढ़ाना आदि के लिए समाजवादी प्रतिस्पर्धा होती है। इस प्रकार जो श्रमिक इस समाजवादी प्रतिस्पर्धा में विशेष सफलता का परिचय देता है उसे अर्थ-व्यवस्था के प्रबन्ध एवं राजनीतिक संस्थाओं में उच्च स्थान प्रदान किया जाता है। श्रम संघ द्वारा श्रमिक वर्ग प्रबन्ध के कार्यों पर नियन्त्रण रखता है। श्रम-संघ उत्पादन कार्यों में भाग लेते हैं और योजनाओं के निर्माण, संचालन तथा समाजवादी प्रतियोगिता में प्रत्यक्ष भाग लेते हैं।

नियोजित अर्थ-व्यवस्था का सर्वप्रथम संचालन रूस में ही हुआ, जहाँ अर्थ-व्यवस्था का समाजीकरण करने का भरसक प्रयत्न किया गया है और विपणि-नान्त्रिकता (Market Mechanism) तथा स्वतन्त्र साहस का नियमित रूप से पूर्णतः दबा दिया गया है। सोवियत नियोजक शीघ्र तथा आश्चर्यजनक विकास में विश्वास रखते हैं, इसलिए राष्ट्र के अधिक से अधिक साधनों को पूँजीगत वस्तुएँ बनाने वाले उद्योगों में विनियोजित किया जाता है। उपभोक्ता उद्योगों को विशेष सुविधाएँ प्रदान नहीं की जाती हैं जिससे उपभोक्ता वस्तुओं की न्यूनता के कारण जनसमूह को अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है। नियोजन की दिन प्रति-दिन प्रगति की ओर ध्यान दिया जाता है और नियोजन को सफल बनाने के लिए अधिक से अधिक त्याग, कठिनाइयों का सामना तथा कठोर नियन्त्रण की आवश्यकता होती है। इस प्रकार इस व्यवस्था में मानव जीवन कठोरतापूर्ण तथा सैन्यीकरण की व्यवस्था में ढल जाता है।

'सोवियत संघ में आर्थिक नियोजन उच्चतम कोटि की विकसित स्थिति पर पहुँच गया है। इसमें स्पष्टतः पूँजीवादी व्यवस्था का प्रतिस्थापन होता है। पूँजीवादी व्यवस्था में आर्थिक साधनों का आवंटन मूल्य तथा आय से निश्चित होता है तथा यह उपभोक्ता की स्वतन्त्रता से सम्बन्धित होता है और इसमें निश्चय बहुत से व्यापारियों द्वारा किये जाते हैं। (रूस में) राज्य अपने गोसप्लान (Gosplan) द्वारा उत्पादन की रूपरेखा निश्चित करता है जिसके मुख्य निश्चयों को समाज के महत्वपूर्ण उद्देश्यों अथवा पॉलिटब्यूरो (Politburo) पर आधारित किया जाता है। वास्तव में दुर्लभ साधनों का आवंटन निर्मित वस्तुओं से प्राप्त होने वाले मूल्य के आधार पर न करके नियोजन की प्रमुखताओं के अनुसार किया जाता है। प्रबन्धकों तथा श्रमिकों को पारिश्रमिक मुद्रा में मिलता है। यह पारिश्रमिक प्राप्त-परिणामों तथा श्रमिकों का

आवश्यक पूर्ति को बनाये रखने के लिए न्यूनतम मजदूरी पर आधारित होता है। मुद्रा मे भुगतान होते हुए भी श्रमिको को उपभोक्ता चुनाव का अधिकार सीमित होता है। दूसरी ओर *नियोजक उपभोग की वस्तुओ के उत्पादन मे समायोजन चुनाव के अनुसार* करता है। स्पष्टत योजना बनाने वाले एकमात्र उपभोक्ता की माँगो पर विश्वास नही करते हैं। वे राष्ट्रीय दुर्लभ साधनो को आवश्यक वस्तुओ के उत्पादन से अनावश्यक वस्तुओ के उत्पादन मे केवल इसलिए नही लगाते कि उपभोक्ता उन वस्तुओ को प्राथमिकता प्रदान करता है और न ही नियोजक प्रतिबन्धित आयात को उपभोक्ता की इच्छानुसार परिवर्तित करते हैं।[1]

इस प्रकार *नियोजन द्वारा पूर्णत समाजवादी समाज की स्थापना की* जाती हैं जिसमे निजी क्षेत्र का कोई स्थान नही होता। अर्थ व्यवस्था पर पूर्णरूप से राज्य का नियन्त्रण रहता है और शक्तियो का केन्द्रीयकरण उत्कृष्ट होता है। निजी *सम्पत्ति का अपहरण बल तथा करो द्वारा किया जाता है। राष्ट्र के समस्त* उद्योग राज्य के अधीन होते हैं। देश तथा विदेशी व्यापार भी राज्य अथवा राज्य द्वारा नियन्त्रित सस्थाओ द्वारा किया जाता है। निजी क्षेत्र को जिसे आवश्यक रूप से समाज विरुद्ध समझा जाता है कठोर विधियो द्वारा *अन्तत समाप्त कर दिया जाता* है। केवल सीमित प्रतिबन्धित तथा अस्थायी रूप से आर्थिक विकास मे स्थान दिया जाता है। यह स्थान समाजवाद मे परिवर्तित होने तक केवल इसलिए दिया जाता है क्योकि समाजवाद अनायास क्रियान्वित नही किया जा सकता और क्योकि निजी

---

1 In the U S S R the economic plan has reached its highest State of development It is obviously a substitute for that allocation of economic resources which in a capitalist system is determined by prices and incomes and related in turn to consumer s sovereignty and decisions made by innumerable businessmen The State through its Gosplan determines the outlines of production plan bearing its principal decisions upon the broad objectives of the society of the Politburo Obviously they will allocate scarce resources in accordance with the priorities of the Plan not primarily according to the prices bid for the finished products Managers and workers will receive compensation in currency the compensation *will vary with results* attained and wages required to elicit the necessary supply of labour Payments in money will enable the workers to exercise a limited consumers choice the planners in turn readjusting output of consumer goods in accordance with the selections made Obviously architects of the plan will not rely exclusively on the dictates of the consumers They will not divert scarce domestic resource from essentials to non essentials merely because consumers express a preference for the latter nor will they divert restricted imports

(S E Harris *Economic Planning* pp 17 19)

साहस अर्थ-व्यवस्था के कुछ क्षेत्रों को समाजवाद के योग्य बनाने में व्यावहारिक विधियाँ उपस्थित करता है।"[1]

साम्यवादी नियोजन के लक्षण

साम्यवादी नियोजन के प्रमुख लक्षणों का विश्लेषण निम्न प्रकार किया जा सकता है—

(१) साम्यवादी नियोजन का लक्ष्य आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति उत्पन्न करना होता है। इन दोनों ही दृष्टिकोणों से एक वर्गरहित समाज की स्थापना की जाती है।

(२) देश के समस्त साधनों को समाज की सम्पत्ति माना जाता है जिसके फलस्वरूप राज्य समस्त उत्पादन के साधनों पर नियन्त्रण एवं अधिकार रखता है और निजी व्यवसाय को कठोरता द्वारा दबा दिया जाता है।

(३) साम्यवादी नियोजन में आर्थिक साधनों का बँटवारा उपभोक्ताओं की रुचि के अनुसार अथवा व्यापारियों के निर्णय द्वारा नहीं होता है और समस्त आर्थिक निर्णय तथा लक्ष्य निर्धारण केन्द्रीय संस्था के द्वारा किया जाता है। यह केन्द्रीय संस्था समस्त समाज के हित को दृष्टिगत करके उसका आर्थिक निर्णय करती है।

(४) साम्यवादी नियोजन में उपभोक्ता की रुचि को उपभोग की मात्रा, गुण एवं प्रकार की सीमाओं में बाँध दिया जाता है। जनता की आवश्यकता एवं रुचि व्यक्तिगत आधार पर निर्धारित नहीं की जाती है बल्कि इनका निर्धारण समस्त समाज की आवश्यकताओं के आधार पर किया जाता है अर्थात् योजना अधिकारी जिन कार्यक्रमों से समाज के हित होने का अनुमान लगाते हैं उन्हीं कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी जाती है।

(५) साम्यवादी नियोजन में लाभ हेतु प्रतिस्पर्धा को कोई स्थान नहीं दिया जाता है। समाजवादी उत्पादन इसका एक मुख्य लक्षण है। समाजवादी उत्पादन एक विशाल सहकारी संगठन के रूप में कार्य करता है जिसमें अधिकतम सन्तुलन द्वारा राष्ट्रीय साधनों का अनावश्यक प्रयोग एवं अपव्यय दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। इसके अन्तर्गत आर्थिक प्रोत्साहन के स्थान पर सामाजिक प्रोत्साहन का

1 Private enterprise being regarded as fundamentally anti social and eventually doomed to extinction by exorable processes of history is given only a limited and strictly temporary role in economic development During the Transition to Socialism it has its part to play but only because Socialism cannot be introduced over night and because private enterpri e may offer the most practical method of raising certain sectors of economy to a level where they become ripe for socialisation
(A H Hanson, *Public Enterprise & Economic Development* p 14)

अधिक महत्व दिया जाता है जबकि कृषक उत्पादन को बन्ता अधिक श्रम के स्थान पर सामाजिक प्रतिष्ठा के रूप में दिया जाता है।

(६) साम्यवादी नियोजन के अन्तर्गत स्वतन्त्र बाजार-व्यवस्था का लगभग समाप्त कर दिया जाता है और मूल्य पर माग और पूर्ति के घटकों का प्रभाव नगण्य सामित कर दिया जाता है। राज्य माग और पूर्ति दोनों घटकों पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है। जनसाधारण के हाथ में उतनी ही क्रय शक्ति दी जाती है जितने उतनी ही वस्तुओं की पूर्ति की जा सके। राशनिंग और मूल्य नियन्त्रण का वृह पमाने पर उपयोग किया जाता है।

(७) साम्यवादी नियोजन में शक्तियों का केन्द्रीयकरण राज्य के हाथ में हो जाता है और राज्य राजनैतिक सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टिकोण से सर्व शक्तिमान हो जाता है जिसके फलस्वरूप व्यक्तिगत स्वतन्त्रताएं समाप्त हो जाती हैं और व्यक्ति एक साधन मात्र बन जाता है जिसे समाज के हित के लिए काम करना होता है।

(८) साम्यवादी नियोजन के अन्तर्गत जनसाधारण को अत्यधिक त्याग करना होता है। यह त्याग आदेशों द्वारा कराया जाता है और इसलिए साम्यवादी नियोजन को निर्देशन द्वारा नियन्त्रण (Planning by Direction) कहते हैं। इसमें व्यक्तिगत हितों का कोई स्थान प्राप्त नहीं होता। सामाजिक हित के फलस्वरूप ही व्यक्तिगत हित हो सकता है। इस बात पर विशेष जोर दिया जाता है।

साम्यवादी नियोजन में सत्ताओं का केन्द्रीयकरण राज्य के हाथों में होने के फलस्वरूप राज्य अपनी योजनाओं की पूर्ति के लिए दबाव और कठोरता के साथ जन साधारण को त्याग करने के लिए विवश कर सकता है और राष्ट्र के साधनों का शीघ्रातिशीघ्र पूर्णतम उपयोग प्राथमिकताओं के अनुसार विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जा सकता है। जनसाधारण में भय की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और वह राजकीय कार्यवाहियों में योगदान देने के लिए विवश हो जाता है। इन्हीं कारणों से साम्यवादी नियोजन के अन्तर्गत उत्पादन में आश्चर्यजनक वृद्धि होती है।

पूँजीवादी नियोजन

वास्तव में यह कहना उचित ही है कि शुद्ध पूंजीवाद, जो मूल्य एवं निजी लाभ पर आधारित होता है में आर्थिक नियोजन का संचालन असम्भव है। नियोजन के अन्तर्गत देश की उत्पादन क्रियाओं को जानबूझकर निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु राज्य द्वारा संचालन किया जाता है जबकि पूंजीवाद उत्पादक को पूर्ण स्वतन्त्रता की मान्यता देता है। ऐसी परिस्थिति में इन दोनों में समन्वय तब ही हो सकता है जब पूंजीवाद के शुद्ध स्वरूप में कुछ परिवर्तन कर दिए जाय। वास्तव में नियोजित पूंजीवाद होने पर पूंजीवाद का स्वरूप नष्ट हो जाता है। जब ही अर्थ व्यवस्था के कुछ क्षेत्रों पर राजकीय नियन्त्रण होता है पूंजीवाद अपना वास्तविक स्वरूप खोने लगता

है। नियोजन एक सामूहिक क्रिया है, जो अर्थ-व्यवस्था के समस्त अंगों को आच्छादित करती है और जिसे राज्य द्वारा किया गया संगठित एवं समन्वित प्रयास कहा जा सकता है। पूँजीवाद में अर्थ व्यवस्था के कुछ अंगों पर राजकीय नियन्त्रण प्राप्त करके नियोजन का प्रारम्भ होता है और धीरे धीरे इस नियन्त्रण का प्रभाव अन्य क्षेत्रों पर पड़ने लगता है जिससे पूँजीवाद का स्वरूप धीरे धीरे परिवर्तित होता जाता है।

आधुनिक युग में पूँजीवादी राष्ट्रों में भी नियोजन ने महत्व प्राप्त कर लिया है। इसमें केन्द्रीय व्यवस्था का सीमित तथा अस्थायी स्थान प्राप्त होता है। प्रारम्भिक अवस्था में पिछड़े हुए राष्ट्रों में राज्य को उद्योगों की स्थापना तथा विकास में प्रत्यक्ष रूपेण भाग लेना पड़ता है क्योंकि निजी साहस दुर्बल एवं उस समय जोखिम के सहन के अयोग्य होता है। जैसे जैसे निजी साहस का विकास होता जाता है, राज्य उद्योगों को निजी साहस के हाथों में सौंपता जाता है। जापान में राज्य ने आधारभूत सेवाओं के उद्योगों के अतिरिक्त शेष समस्त उद्योगों के प्रवर्तक का कार्य सम्पादन किया है। जब वे उद्योग दृढ़तापूर्वक स्थापित हो गए एवं लाभोपार्जन करने लगे, तब उन्हें निजी साहसियों के हाथ बेच दिया गया। दूसरी ओर, मैक्सिको में राज्य की दृष्टि में निजी साहस को ही प्रारम्भ से ही सुदृढ़ समझा जाता है और केवल आर्थिक तथा अन्य सहायता देने की आवश्यकता ही समझी गयी है। इन परिस्थितियों में राज्य साहसी का कार्य स्वयं करने के स्थान पर निजी साहस को आवश्यक सहायता प्रदान करके विकास हेतु प्रोत्साहित करता है। इस प्रकार पूँजीवादी देशों में निजी साहस के सुदृढ़ होने तक ही राजकीय क्षेत्र का उपयोग किया जाता है।

पूँजीवादी नियोजन में विपणि की स्थिति में हेर फेर करके नियोजन के उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है। उपभोक्ता की स्वतन्त्रता पर कोई अंकुश नहीं लगाया जाता। परिणामस्वरूप उत्पादन आवश्यक रूप से उपभोक्ता की इच्छाओं द्वारा नियन्त्रित होता है। आर्थिक स्वतन्त्रता के साथ साथ राजनीतिक तथा सांस्कृतिक स्वतन्त्रता पर्याप्त मात्रा में उपस्थित रहती है।

पूँजीवादी देशों में नियोजन का उपयोग प्रायः आकस्मिक संकटों, जैसे मन्दी, युद्ध, प्राकृतिक संकट आदि से बचने के लिए किया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में सन् १६३० की मन्दी को दूर करने के लिए नियोजन का प्रयोग किया गया था। इसमें राज्य आर्थिक साधनों को पुनः व्यवस्थित करके निजी साहस तथा स्वतन्त्र स्पर्धा की व्यवस्था कर देता है।

पूँजीवाद के अन्तर्गत नियोजन को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं— प्रथम, सुधार सम्बन्धी नियोजन (Corrective Planning) और द्वितीय, विकास सम्बन्धी नियोजन। सुधार सम्बन्धी नियोजन का अर्थ ऐसे कार्यक्रमों से है जो राज्य द्वारा अर्थ व्यवस्था की प्रतिकूल प्रवृत्तियों में सुधार करने के लिए सचालित किए जायें। इस प्रकार के नियोजन का उदाहरण संयुक्त राज्य अमरीका के रोजगार विधान, सन्

सन् १९४६ मे मिलता है। यह विधान राज्य ने अर्थ-व्यवस्था की अवनति की प्रवृत्ति (Recessionary Trends) को रोकने के लिए बनाया था। इस विधान का मुख्य उद्देश्य मन्दी एवं तेजी के मध्य के माग का आयोजन किया जाना था। इस कार्यवाही के लिए अमरीकी सरकार एक विभाग रखती है जो अर्थ-व्यवस्था की वर्तमान स्थितियों पर कड़ी निगाह रखती है और जैसे ही उच्चावचन हानिप्रद रूप ग्रहण करने लगते हैं यह विभाग उचित कार्यवाही करके, अर्थात् मन्दी होने पर राजकीय निर्माण कार्य एवं सस्ती मुद्रा नीति द्वारा और तेजी होने पर प्रतिबन्धों का उपयोग करके अर्थव्यवस्था में स्थिरता बनाए रखने का प्रयत्न करता है। मन्दी की प्रवृत्ति होने पर उपभोग करने की प्रवृत्ति में वृद्धि अधिक विनियोजन करने हेतु प्रोत्साहन तथा सरकारी व्यय में वृद्धि की जाती है और तेजी होने पर उसमे बिलकुल विपरीत कार्यवाहियाँ की जाती हैं। इन कार्यवाहियो द्वारा उपभोक्ता एवं उत्पादक की आधारभूत स्वतन्त्रता पर कोई प्रत्यक्ष प्रतिबन्ध नही लगाया जाता है। वास्तव मे, इस प्रकार की सुधार सम्बन्धी कार्यवाहियो को आर्थिक नियोजन कहना उचित नही है क्योंकि इनके द्वारा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर प्रभाव नही पड़ता है और न इनके द्वारा देश के साधनों का विवेकपूर्ण एवं अधिकतम उपयोग ही सम्भव होता है।

पूँजीवादी राष्ट्रों का विकास सम्बन्धी विनियोजन किसी विशेष क्षेत्र के विकास अथवा राष्ट्र के सम्पूर्ण विकास के लिए हो सकता है। अर्थ-व्यवस्था के किसी विशेष क्षेत्र अथवा क्षेत्रों के विकास का कार्यक्रम सरकार इसलिए सचालित करती है जिससे अर्थव्यवस्था सुचारु रूप से चलती रहे। फ्रांस की मोनेट योजना (Monnet Plan) का सम्बन्ध मुख्य रूप से औद्योगिक सामग्री के नवीनीकरण से था। इसी प्रकार अर्जेन्टाइना की सरकार ने महायुद्ध के पश्चात् जनसंख्या वृद्धि की योजना सचालित की थी परन्तु आधुनिक युग में अर्थव्यवस्थाएं इतनी जटिल एवं परस्परनिर्भरता पर आधारित हैं कि अर्थव्यवस्था के एक क्षेत्र के विकास से अन्य क्षेत्रों का प्रभावित होना अवश्यम्भावी है। ऐसी परिस्थिति में विकास की किसी विशेष क्षेत्र में सम्बन्ध रखने वाली योजनाएँ सफल होना कठिन होता है।

दूसरी ओर सम्पूर्ण नियोजन का अर्थ एक ऐसी समन्वित योजना से होता है जिसके द्वारा राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के समस्त क्षेत्रों का विकास होता हो। यह पहले ही बताया गया है कि पूँजीवादी नियोजन के अन्तर्गत देश में आर्थिक एवं सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन नहीं किए जाते हैं। पूँजीवाद में विकास सम्बन्धी योजना राज्य द्वारा बनायी जाती है और इस योजना को कार्यान्वित करने का कार्य अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न पक्षों को दे दिया जाता है। राज्य द्वारा योजना के क्रियान्वित कराने हेतु कोई दबाव उपयोग में नहीं लाया जाता है। राज्य अप्रत्यक्ष विधियों द्वारा निजी साहसियों को योजना कार्यान्वित करने हेतु प्रोत्साहित करती है। राज्य केवल अत्यन्त कठिन परिस्थितियों में ही निजी उत्पादकों को आज्ञाएं देती है। ब्रिटेन की लेबर सरकार

द्वारा, जो सन् १९४५-४६ के काल में योजना सचालित की गयी, उसे सम्पूर्ण विकास की योजना कह सकते हैं। इस योजना के अन्तर्गत ब्रिटेन की अधिकतर आर्थिक कार्यवाहियाँ राज्य के नियन्त्रण के बाहर थीं। राज्य ने आज्ञाएँ केवल कुछ ही वस्तुओं के उत्पादकों को दीं।

भारत की प्रथम पचवर्षीय योजना को पूँजीवाद के अन्तर्गत सम्पूर्ण नियोजन कहा जा सकता है क्योंकि इस योजना द्वारा राष्ट्र के आर्थिक एवं सामाजिक ढाँचे में कोई परिवर्तन करने का आयोजन नहीं किया गया।

प्रजातान्त्रिक नियोजन

प्रजातान्त्रिक नियोजन (Democratic Planning) एक ऐसी व्यवस्था को कहा जा सकता है जिसमें पूँजीवाद और समाजवाद का सम्मिश्रण होता है। जब समाजवादी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लोकतान्त्रिक विधियों का उपयोग किया जाता है तब इस व्यवस्था को प्रजातान्त्रिक नियोजन कह सकते हैं। भारत में इस प्रकार की व्यवस्था का सम्भवतः प्रथम प्रयोग किया जा रहा है। ब्रिटेन में द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् पुनर्निमाण कार्य के लिए वहाँ की श्रमिक सरकार ने वहाँ की लोकतन्त्रीय व्यवस्था के कुछ क्षेत्रों को नियोजित किया था परन्तु श्रमिक सरकार इस दिशा में कोई विशेष सफलता प्राप्त न कर सकी थी। आधुनिक युग में जबकि अनेक पिछड़े हुए राष्ट्रों को राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है, नियोजित आर्थिक विकास करना आवश्यक एवं महत्वपूर्ण हो गया है। भारत ने इस ओर अग्रसर होकर नियोजन के इतिहास में एक नवीन किन्तु स्वर्णिम अध्याय जोड़ दिया है। भारत में नियोजन की सफलता में नियोजन के दोनों का सफल निर्धारण निहित है।

प्रजातान्त्रिक नियोजन में निजी तथा सरकारी दोनों क्षेत्रों को स्थान प्राप्त होता है। निजी क्षेत्र को समाप्त करने की अपेक्षा उसके कार्यक्षेत्र को सीमित एवं नियन्त्रित करके सरकारी क्षेत्र के साथ कार्य करने का अवसर प्रदान किया जाता है। निजी क्षेत्र सरकारी क्षेत्र का सहायक, सहकारी एवं पूरक होता है उसे प्रतिस्पर्धी होने से रोका जाता है। कुछ आधारभूत उद्योगों को राज्य पूर्णतः अपने हाथ में ले लेता है कुछ दूसरे प्रकार की आर्थिक संस्थाएँ निजी साहसी का ही कार्यक्षेत्र बना दी जाती हैं शेष तृतीय प्रकार के उद्योग निजी तथा सरकारी दोनों क्षेत्रों में सम्मिलित किये जाते हैं। 'सरकारी क्षेत्र द्वारा निजी क्षेत्र में अथवा इसके विपरीत हस्तक्षेप को अवसर पर नहीं छोड़ दिया जाता है प्रत्युत नियोजन अधिकारियों द्वारा राष्ट्र के आर्थिक हितों को दृष्टिगत करते हुए इसे निश्चित किया जाता है।'[1]

---

1 Encroachment of the public on the private sector or vice versa are not to be left to chance but to be decided or at least guided by the planning authorities in the light of what is helped to be the national interest '
(A H Hanson *Public Enterprise & Economic Development* p 15)

प्रजातान्त्रिक नियोजन में जन हित और जन-कल्याण को अधिक महत्व होने के कारण उपभोग को न्यूनतम स्तर तक नहीं लाया जा सकता है। विकास और कल्याण में समन्वय स्थापित किया जाता है। भारतीय नियोजन में मानवीय स्वतन्त्रता तथा सम्मान का विशेष ध्यान रखा जाता है। इसी कारण यहाँ की विकास योजनाएँ कठिन तथा समर्थ होते हुए भी कल्याणकारी हैं। स्वतन्त्र विपणि व्यवस्था को भारतीय अर्थ-व्यवस्था में उचित स्थान प्राप्त है। इस प्रकार भारत में एक मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का विकास हुआ है जिसमें राजकीय तथा निजी साहस दोनों साथ साथ *काम करते हैं।*

प्रजातान्त्रिक नियोजन में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का विशेष महत्व है। प्रधान मन्त्री स्व० श्री जवाहरलाल नेहरू ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा भारतीय समाजवाद पर अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है— समाजवाद का मतलब यह है कि राज्य में हर आदमी को तरक्की करने के लिए बराबर मौका मिलना चाहिए। मैं हरगिज इस बात को पसन्द नहीं करता कि राज्य हर चीज पर नियन्त्रण रखे क्योंकि मैं इन्सान की व्यक्तिगत आजादी को अहमियत देता हूँ। मैं उस तरह किस्म के राज्य समाजवाद को पसन्द नहीं करता जिसमें सारी ताकत राज्य के हाथों में होती है और देश के करीब-करीब सभी कामों पर उसी की हुकूमत हो। राजनीतिक दृष्टि से राज्य बहुत ताकतवर है। अगर आप आर्थिक दृष्टि से भी बहुत ताकतवर बना देंगे तो वह सत्ता का अधिकार का केन्द्र बन जायगा जिसमें इन्सान की आजादी राज्य के मनमानेपन की गुलाम बन जायेगी।[1] इस प्रकार सत्ता के विकेन्द्रीयकरण की ओर अग्रसर होना भी आवश्यक है। पूर्णतः समाजवादी तथा साम्यवादी व्यवस्था में सत्ता के केन्द्रीयकरण की वृद्धि की जाती है परन्तु लोकतान्त्रिक नियोजन के अन्तर्गत आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को रोका जाता है। दूसरी ओर आर्थिक आयोजन के मूल तत्व— राष्ट्र के भौतिक मानवीय तथा वित्तीय साधनों का पूर्णतम तथा विवेकपूर्ण उपयोग करने के लिए यथेच्छाचारिता तथा प्रतियोगिता प्रधान अर्थ व्यवस्था को खुली छूट नहीं दी जा सकती क्योंकि इसमें शोषण का तत्व प्रधान होता है और मानवीय सम्पदा की बहुत अधिक बर्बादी होती है। जिसे आमतौर पर स्वतन्त्र बाजार और स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था कहते हैं, वह आखिर में चलकर योग्यतम के ही अस्तित्व के सिद्धान्त के मुताबिक ताकतवर और गलाकाटू प्रतियोगिता को जन्म देती है इसलिए अब पूँजीवादी देशों में भी यह मान लिया गया है कि स्वतन्त्र उद्यम और यथेच्छाचारिता की प्रणाली बेकार और पुरानी हो चुकी है और उस पर राज्य का नियन्त्रण और नियम लागू होना चाहिए। अगर हम यह मानते हैं कि आयोजन और

१ जवाहरलाल नेहरू हमारा समाजवाद (आर्थिक समीक्षा, १६ मार्च, १९५७ पृष्ठ ४)।

लोकतन्त्र का मेल नहीं बैठता तो इसका यह मतलब नहीं होगा कि लोकतन्त्रीय संविधान के भीतर राष्ट्रीय साधनों का उपयोग नहीं हो सकता। असल बात यह है कि असली आयोजन, जो व्यक्ति और समाज दोनों के हितों के बीच सामजस्य स्थापित करता है, केवल लोकतन्त्रीय प्रणाली के भीतर ही सम्भव है।"[1]

प्रजातान्त्रिक नियोजन में केवल चुने हुए व्यवसायों तथा उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया जाता है। जिन व्यवसायों तथा उद्योगों को राज्य सफलतापूर्वक कल्याणकारी रीतियों के अनुसार चलाने के योग्य होता है उनका राष्ट्रीयकरण उचित मुआवजा देने के पश्चात् किया जाता है। नियोजन के उद्देश्य साधारणतः उपभोक्ता की सुविधाओं को ध्यान में रखकर निर्धारित किए जाते हैं। विदेशी सहायता का इस प्रकार के नियोजन में विशेष महत्व होता है। विदेशी सरकारों तथा पूँजीपतियों से पूँजी प्राप्त होती है क्योंकि उद्योगों के बल द्वारा अपहरण का कोई भय नहीं होता।

प्रजातान्त्रिक नियोजन के प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार हैं—

(१) प्रजातान्त्रिक नियोजन में निजी तथा सरकारी दोनों ही क्षेत्रों का स्थान प्राप्त होता है। निजी क्षेत्र को सरकारी नीतियों के अनुकूल चलाने के लिए नियन्त्रित अवश्य कर दिया जाता है और निजी क्षेत्र सरकारी क्षेत्र का सहायक, सहकारी एवं पूरक होता है।

(२) प्रजातान्त्रिक नियोजन में व्यक्तिगत हित एवं जन-कल्याण में समन्वय स्थापित किया जाता है, अर्थात् सामूहिक कल्याण के लिए व्यक्तिगत हितों को सर्वथा छोड़ नहीं दिया जाता।

(३) इसमें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को विशेष महत्व दिया जाता है। व्यक्ति की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्वतन्त्रताएँ उपलब्ध रहती हैं।

(४) प्रजातान्त्रिक नियोजन के अन्तर्गत देश में विकेन्द्रित समाज की स्थापना की जाती है। आर्थिक क्रियाओं में समस्त जनसमुदाय को योगदान देने का अवसर दिया जाता है। सहकारी संस्थाओं तथा अन्य लोकतन्त्रीय संस्थाओं की स्थापना द्वारा सत्ताओं का विकेन्द्रीयकरण किया जाता है।

(५) प्रजातान्त्रिक नियोजन में राष्ट्रीयकरण की नीति को बड़े पैमाने पर उपयोग करने की आवश्यकता नहीं होती है। केवल आधारभूत जन-सेवा सम्बन्धी तथा ऐसे व्यवसाय जिनमें निजी क्षेत्र पूँजी लगाने को तैयार नहीं होता है का राष्ट्रीयकरण किया जाता है। राष्ट्रीयकरण करने पर उचित मुआवजा दिया जाता है।

(६) प्रजातान्त्रिक नियोजन के अन्तर्गत स्वतन्त्र बाजार-व्यवस्था को बनाये रखा जाता है, परन्तु उस पर पर्याप्त नियन्त्रण अवश्य रहता है जिससे गलाघोंटू प्रतिस्पर्धा को रोका जा सके।

---

१ श्रीमन्नारायण (भूतपूर्व सदस्य, योजना कमीशन) "आयोजन और लोकतन्त्र" (आर्थिक समीक्षा, ? अक्तूबर १९५८, पृष्ठ ६)।

(७) प्रजातान्त्रिक नियोजन के कार्यक्रम का संचालन आज्ञाओं द्वारा नहीं किया जाता है। जनसाधारण की योजना के उद्देश्यों को समझाकर व उनके कर्तव्यों को बताकर योजना के लिए त्याग करने को प्रोत्साहित किया जाता है।

(८) इसके अन्तर्गत अवसरों की समानता उत्पन्न की जाती है तथा सामाजिक एवं आर्थिक पिछड़ेपन के कारण उत्पन्न होने वाली जनसाधारण की कठिनाइयों को समाप्त करने का आयोजन किया जाता है।

(९) आय एवं धन के वितरण की विषमताओं को दूर करने के लिए एकाधिकारों तथा उद्योग एवं भूमि सम्बन्धी स्वामित्व एवं अधिकार की विषमताओं को समाप्त किया जाता है।

(१०) प्रजातान्त्रिक नियोजन के अन्तर्गत सामाजिक सुरक्षा के विस्तृत कार्यक्रमों का संचालन किया जाता है तथा आर्थिक जीवन का संगठन इस प्रकार किया जाता है कि समस्त नागरिकों को न्यायपूर्ण एवं उचित जीवन स्तर प्रदान किया जा सके।

लोकतन्त्र में राजनीतिक तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का दुरुपयोग किया जाता है जिसका प्रभाव नियोजन के कार्यक्रम पर भी पड़ता है। विपक्षी राजनीतिक दलों द्वारा कभी कभी विनाशकारी कार्यक्रम भी संचालित होते रहते हैं जो समस्त कल्याणकारी कार्यक्रमों के सुगम संचालन में बाधा पहुँचाते हैं तथा नियोजन अधिकारियों के अनुमानों की सिद्धि कठिन प्रतीत होने लगती है। इस प्रकार विकास की गति कुछ मन्द हो जाती है और राष्ट्र के साधनों का अपव्यय भी होता है। सत्ता का विकेन्द्रीयकरण करने के लिए पंचायतों सहकारी संस्थाओं तथा अन्य क्षेत्रीय प्रबन्धक संस्थाओं की स्थापना की जाती है। प्रारम्भिक अवस्था में सत्ता हाथ में आने पर उसका दुरुपयोग अवश्यम्भावी है। सरकारी क्षेत्र में कर्मचारियों को इस नवीन स्थिति में अपनी सत्ता क्षतिग्रस्त होती प्रतीत होती है अतः वे सरकारी नियमों के जाल को और कठोर बनाने का यत्न करते है। इस प्रकार राष्ट्रीय साधनों का अपव्यय होता है।

अधिनायकवादी तथा तानाशाही नियोजन

प्रा० हयक ने अपनी पुस्तक *The Road to Serfdom* (दासता का मार्ग) में नियोजन की आलोचना से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि आर्थिक नियोजन से राजनीतिक तानाशाही का प्रादुर्भाव होता है। इनके विचार में राजनीतिक स्वतन्त्रता का आधार साहस की आर्थिक स्वतन्त्रता रहा है और जब साहस की स्वतन्त्रता पर अंकुश लगाये जाते है तो राजनीतिक तानाशाही का प्रादुर्भाव होना स्वाभाविक हो जाता है। 'हमारे नियोजकों की माँग है कि एक योजना के अनुसार समस्त आर्थिक क्रियाओं का केन्द्रीय संचालन किया जाय और इस योजना में विशेष उद्देश्यों की विशेष प्रकार से पूर्ति करने हेतु समाज के साधनों को जानबूझ कर उपयोग करने के

नहीं होता है परन्तु ऐसे राष्ट्रों में जहाँ तानाशाही शासन हो नियोजित अर्थ व्यवस्था का संचालन किया जा सकता है।

राष्ट्र में तानाशाही सरकार होने पर ही तानाशाही नियोजन (Fascist Planning) का प्रश्न उठता है। तानाशाही नियोजन में सत्ता का केन्द्रीयकरण जनता की प्रतिनिधि सरकार में न होकर अन्य शासक (Dictator) में होता है। राष्ट्र के समस्त साधनों को डिक्टेटर की इच्छानुसार उपयोग में लाया जाता है। सरकार की समस्त क्रियाओं का उद्देश्य डिक्टेटर की सत्ता शक्ति और सम्मान में वृद्धि करना होता है। आर्थिक राजनीतिक तथा सामाजिक स्वतन्त्रता भी डिक्टेटर की इच्छानुसार नियन्त्रित होती है। इस प्रकार राष्ट्र में सामावरण की स्थिति की स्थापना हो जाती है। तानाशाही नियोजन में निजी क्षेत्र का ह्रास किया जाता सरकारी नियमन तथा नियन्त्रण द्वारा किया जाता है। जन समुदाय के जीवन स्तर को सुधारने के लिए सरकारी नीतियों को शक्ति द्वारा क्रियान्वित किया जाता है। राष्ट्र भर में भय की छाप लगी रहती है फलतः कठोर कार्यवाही करना सुगम एवं सुविधाजनक होता है। आवश्यक सेवाओं तथा आधारभूत उद्योगों का अपहरण भी किया जाता है। सरकारी कार्यक्रम का संचालित करने हेतु निजी सम्पत्ति का शक्ति द्वारा अपहरण कर लिया जाता है। इस प्रकार तानाशाही नियोजन में राष्ट्रीय आय तथा उत्पादन में वृद्धि अवश्य की जाती है, किन्तु उसका समान वितरण नहीं किया जाता या यों कहें कि प्रायः ऐसा नहीं होता। धनिक वर्ग उसी स्थिति पर आरूढ़ रहते हैं निर्धन यद्यपि निर्धन रहते हैं तथापि कतिपय सुविधाएँ उन्हें उपलब्ध की जाती हैं। साम्यवादी नियोजन की भाँति इसकी सफलता भी कभी कभी आश्चर्यजनक होती है परन्तु मानवीय तत्वों का कोई महत्व नहीं दिया जाता जिसमें मानवीय व्यक्तिगत स्वतन्त्रता बिलकुल लुप्त हो जाती है। सरकार में आर्थिक तथा राजनीतिक दोनों सत्ताएँ निहित होती हैं और व्यक्ति सरकार का दास मात्र बनकर रह जाता है। इस प्रकार का नियोजन आकस्मिक संकटों जैसे युद्ध प्राकृतिक संकट मन्दी आदि का मुकाबला करने के लिए उपयोग में लाया जाता है। द्वितीय महायुद्धकाल में जर्मनी में तानाशाही अर्थ व्यवस्था का आयोजन किया गया था। आधुनिक युग में पाकिस्तान की तानाशाही सरकार भी निर्धारित आयोजन द्वारा आर्थिक विकास कर रही है।

सर्वोदयी नियोजन अथवा गाँधीवादी नियोजन

सर्वोदय नियोजन की विचारधारा भारत में उत्पन्न हुई है और इसके सिद्धान्त भारत की परिस्थितियों के अनुकूल ही निर्धारित किए गये हैं। गाँधीवादी अर्थतन्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर सर्वोदय नियोजन का निर्माण किया गया है। सर्वोदय उस व्यवस्था को कहा जाता है जिसमें समस्त समाज का अधिकतम कल्याण आर्थिक एवं राजनीतिक शक्तियों के विकेन्द्रीकरण द्वारा किया जाता है। गाँधीजी सदैव यह विचार प्रकट करते थे कि स्वराज्य के द्वारा भारत के प्रत्येक ग्राम एवं झोपड़ी में

स्वतन्त्रता की लहर दौड़नी चाहिए। भारतीय संस्कृति के अनुकूल नियोजन का संचालन करने हेतु हमें पश्चिमवादी तथा साम्यवादी मार्गों की नकल करना उचित नहीं है। हमें अपनी प्राचीन संस्कृति तथा अन्य देशों के अनुभवों का अध्ययन करके ऐसी आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था का खोज निकालना चाहिए जो हमारे समाज के लिए सर्वाधिक उपयुक्त हो।

सर्वोदय एक नये अहिंसक समाज का निर्माण करना चाहता है और इस समाज के निर्माण हेतु जिन योजनाबद्ध कार्यक्रमों का संचालन करना आवश्यक हो, उन्हें सर्वोदय नियोजन कह सकते हैं। ३० जनवरी सन् १९५० को सर्वोदय योजना के सिद्धान्त सर्वप्रथम प्रकाशित किए गए। इन सिद्धान्तों की विशेष बातें इस प्रकार थीं—

(१) कृषि भूमि पर वास्तविक अधिकार जोत करने वाले का होगा भूमि का पुनः वितरण भूमि के समान वितरण के लिए किया जायगा भूमि की आर्थिक इकाइयों को सहकारी फार्मों में संग्रहीकृत किया जायेगा तथा जोत करने वाले का कोई भी शोषण नहीं कर सकेगा।

(२) आय एवं धन का न्यायोचित एवं समान वितरण किया जायेगा तथा न्यूनतम और अधिकतम आय भी निर्धारित कर दी जायेगी।

(३) भारत में स्थित विदेशी व्यवसायों को देश से हटने को कहा जाय, अथवा उनसे उनके संगठन प्रबन्ध एवं उद्देश्य-परिवर्तन करने को कहा जाय अथवा उन्हें राजकीय अधिकार के अन्तर्गत चलाया जाय।

(४) केन्द्रीय उद्योगों पर समाज का अधिकार होगा जिनका संचालन स्वतन्त्र निगमों अथवा सहकारी संस्थाओं द्वारा किया जाय तथा विकेन्द्रित उद्योगों में उत्पादन के यन्त्रों पर व्यक्तिगत अथवा सहकारी संस्थाओं के अन्तर्गत सामूहिक अधिकार होगा।

(५) ऐसी वित्त-व्यवस्था की स्थापना करना इसका उद्देश्य होना चाहिए जिसमें संगृहीत राजकीय वित्त (*Public Revenue*) का ५०% ग्रामीण पंचायतों द्वारा व्यय किया जाय तथा शेष ५०% अन्य उच्च संस्थाओं के प्रशासन पर व्यय किया जाय।

सर्वोदय नियोजन का लक्ष्य सर्वोदयी समाज-व्यवस्था की स्थापना करना है। सर्वोदय का अर्थ है सर्वांगीण उन्नति। सर्वोदय मानता है कि समाज के अन्दर व्यक्तियों और संस्थाओं के सम्बन्धों का आधार सत्य और अहिंसा होना चाहिए। इसका यह भी विश्वास है कि समाज में सब व्यक्ति समान और स्वतन्त्र हैं और इनके बीच कोई चिरस्थायी सम्बन्ध हो सकता है जो इनको एक साथ रख सकता है तो वह प्रेम और सहयोग ही है, न कि बल और जोर-जबरदस्ती। मनुष्य के भीतर तीव्र प्रतियोगिता और लड़ाई की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देकर समाज में प्रेम और सहयोग न तो उत्पन्न किया जा सकता है और न इसका संवर्द्धन किया जा सकता है। सर्वोदयी

समाज ऐसे वातावरण मे पैदा नहीं हो सकता जहाँ जुल्म के मन्त्र पूर्णता को पहुँचा दिये गये है और व्यक्तिगत स्वार्थ या मुनाफा कमाने का लोभ इतना बलवान बन गया है कि उसने प्रेम और भ्रातृभाव को दबा लिया हो और समानता की भावना को नष्ट कर दिया हो। सर्वोदय को ऐसी समाज रचना कायम करनी है जिसके अन्दर सत्ताओं द्वारा सत्ता का प्रयोग अनावश्यक बना दिया जायेगा क्योंकि यह भी तो बल प्रयोग का एक प्रतीक ही है अथवा सत्ता के प्रयोग को इतना घटा दिया जायेगा कि जो हमारी अहिंसा की यात्रा मे एकदम अनिवार्य हो।[1]

सर्वोदय व्यवस्था म बल के प्रयोग को स्थान नहीं है। यह माना गया है कि इस व्यवस्था के अन्तगत आवश्यक शिक्षा प्राप्त करने पर मनुष्य अपने आप इतना सयम कर लेगा कि वह बिना किसी बाहरी दबाव के भी समाज के हित को करेगा। ज्यो ज्यो मनुष्य इन सयमों की सीढ़ियो को चढ़ता जायेगा राज्य सत्ता का उपयोग घटता जायेगा और यह सत्ता समाज सेवा सम्बन्धी सस्थाओ के हाथो मे पहुँच जावेगी जिनको इसका उपयोग करने की आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि इनकी क्रियाविधि का आधार बल प्रयोग के स्थान पर प्रेम, सहयोग समझाना बुझाना और प्रत्यक्ष समाज-हित होगा। सर्वोदय समाज की स्थापना करने के लिए द्विमुखीय उपाय करने होगे। एक ओर तो वतमान राजनीतिक एव आर्थिक सस्थाओ के हाथो म जो सत्ता केन्द्रित है उसका विकेन्द्रीयकरण करना होगा और दूसरी ओर जनता को सत्याग्रह और करा की शिक्षा दी जावेगी।

सन् १६५५ मे सर्वोदय योजना समिति ने सर्वोदयी योजना के दोहराये गये लक्ष्य निम्न प्रकार स्पष्ट किये हैं—

(१) *समाज के प्रत्येक सदस्य को पूरे समय तथा पेट भरने योग्य काम देना*— इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु समाज के समस्त आर्थिक ढाँचे म परिवतन करने होगे। तभी ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की जा सकेंगी कि प्रत्येक स्त्री पुरुष अपनी रुचि के अनुसार काय का चुनाव करके खुशी खुशी काय कर सके। यह कार्य एक ओर, समाज की भौतिक एव सास्कृतिक आवश्यकताओ की पूर्ति करे तथा दूसरी ओर उस काय से जान अथवा अनजान म शरीर का स्वास्थ्य बौद्धिक एव मानसिक विकास की प्रशिक्षा मिलती रहे। ऐसे काम अथवा पेशे मे आवश्यक कुशलता प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षण की सुविधाएं भी समाज व्यक्ति को दे तथा काम करने के औजार तथा साधन प्राप्त करने म भी समाज उसकी सहायता करे। समाज का कर्तव्य होगा कि वह ऐसी अनुकूलताएँ उत्पन्न करे कि व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार काय अथवा पेशे का चयन कर सके। वह काम उसे पूरे समय मिलता रहे वह पेट भर रोजी दे सके उसे अपनी बुद्धि के विकास तथा अपनी शक्तियो का पूरा पूरा उपयोग करने का अवसर मिल सके।

---

१ सर्वोदय सयोजन अखिल भारतीय सवसेवा सघ प्रकाशन पृष्ठ ४६ ४७।

सर्वोदयी योजना में पूरा काम और रोजी के लक्ष्य के आधार पर उद्योग प्रणाली में परिवर्तन करने होंगे जिससे ऐसे उद्योगों की व्यवस्था बनायी जा सके, जो अधिक से अधिक लोगों को काम दे सकने की क्षमता रखते हों। बेकारी को मिटाने हेतु यंत्र की अपेक्षा अधिक से अधिक श्रमिकों का काम लेना होगा। उद्योगों का पुनर्गठन करना होगा तथा अधिक से अधिक मनुष्यों को काम देने की शक्ति रखने वाले उद्योगों के यंत्रों में आवश्यक सुधार करने होंगे जिससे वह कम से कम समय में अधिक और अच्छा उत्पादन दे सकें। सर्वोदय समाज विकेन्द्रीयकरण पर आधारित है और इसमें उत्पादन के साधन कुछ ही लोगों के हाथों में केन्द्रित नहीं होंगे। कोई किसी को नौकरी नहीं देगा। सब अपनी रोजी कमायेंगे। जिन उत्पादन के साधनों पर व्यक्तियों का स्वामित्व नहीं हो सकता है उन पर सहकारी संस्थाओं ग्राम-संस्थाओं तथा राज्य का स्वामित्व होगा।

(२) यह निश्चित करना है कि समाज के प्रत्येक सदस्य की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाय जिससे वह अपने व्यक्तित्व का पूरा-पूरा विकास कर सके और समाज की उन्नति में भी उचित योगदान दे सके।

(३) *जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं के विषय में यह प्रयत्न हो सके कि* प्रत्येक प्रदेश स्वावलम्बी हो—जिन क्षेत्रों में प्राकृतिक साधनों की उपलब्धता होगी वहाँ प्राथमिक आवश्यकताओं—अन्न, वस्त्र, मकान, प्राथमिक शिक्षा तथा साधारण रोगों की चिकित्सा के सम्बन्ध में सर्वप्रथम स्वावलम्बन निर्माण किया जायगा। जिन प्रदेशों में प्राकृतिक अनुकूलताओं की न्यूनता होगी वहाँ कुछ गाँवों के ऐसे ग्राम-समूह बना दिए जायेंगे जो सहयोग, विनिमय और अपनी उपज का एकत्रित करके अपनी न्यूनता की पूर्ति कर लें। जहाँ यह भी सम्भव न हो, वहाँ वे जिला या क्षेत्र स्तर में अपने साधनों का अधिक से अधिक उपयोग करके तथा अन्य ग्राम उद्योगों की व्यवस्था करके शेष कमी की पूर्ति उस प्रदेश की योजना में से कर सकेंगे।

स्वावलम्बन के लक्ष्य की पूर्ति हेतु कोई कड़ी भौगोलिक सीमाएँ नहीं खींच दी जायेंगी। स्वावलम्बी इकाइयाँ ऐसी अनेक वस्तुओं के बारे में एक-दूसरे की पूर्ति कर दिया करेंगी जो जीवन की प्राथमिक आवश्यकताएँ न हों। प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अन्य प्रदेशों पर निर्भर रहने से परावलम्बी प्रदेशों की जनता के स्वाभिमान को भी हानि पहुँचती है और आवश्यकता पूर्ति करने वाले प्रदेश उनके साथ भेद भाव का बर्ताव एवं शोषण करने लगते हैं।

(४) यह भी निश्चय करना होगा कि उत्पादन के साधन और क्रियाएँ ऐसी न हों जो प्रकृति का शोषण निर्मम बनकर कर डालें। उत्पादन की विभिन्न क्रियाओं, साधनों एवं पद्धतियों का उपयोग करते समय केवल तत्कालीन हित एवं लाभ का ही दृष्टिगत रखना उचित न होगा। प्राकृतिक सम्पत्तियों का शोषण करते समय आने वाली पीढ़ियों की कठिनाइयों पर विचार करना उचित होगा। किसी ऐसी प्राकृतिक

सम्पत्ति का, जिसकी पूर्ति होने की सम्भावना न हो शोषण तब ही किया जाना चाहिए जब इसके द्वारा समस्त मानव समाज का सदव के लिए हित साधन सम्भव होता हो।

उपयुक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि सर्वोदयी योजना जो बेकारी को पूर्ण रूपेण मिटाना चाहती है और उद्योगों का सगठन विकेन्द्रीयकरण के सिद्धान्तों के आधार पर करना चाहती है धन प्रधान नहीं श्रम प्रधान होगा। वह प्रत्यक्ष इकाई ग्राम परिवार तथा औद्योगिक परिवार के रूप म सर्वोदय नगरों की व्यवस्था होगी। सर्वोदय समाज के विचार के जन्मदाता महात्मा गाँधी ने २८ जुलाई सन् १९४६ को 'हरिजन' म इस समाज की रूपरेखा इस प्रकार स्पष्ट की—

'यह समाज अनगिनत गाँवों का बना होगा। उसका ढाँचा एक के ऊपर एक के ढग का नहीं बल्कि लहरों की तरह एक के बाद एक जसे घेरे की (वतुल की) शक्ल म होगा। जावन मीनार की शक्ल म नहीं होगा जहाँ ऊपर की सकुचित चोटी नीचे के चौड पाये पर भार डाल कर खडी रहे वहाँ तो जीवन समुद्र की लहरों की तरह एक के बाद एक घेरे की शक्ल मे होगा जिसका केन्द्र व्यक्ति होगा। व्यक्ति गाँव के लिए और गाँव समूह के लिए मर मिटने को हमेशा तयार रहेगा। इस तरह अन्त म सारा समाज ऐसे व्यक्तियों का बन जायगा जो अहकार पाकर भी कभी किसी पर हावी नहीं होंगे बल्कि सम्र विनीत रहगे और उस समुद्र के गौरव के हिस्सेदार बनेंगे जिसके व अविभाज्य अग हैं।

इसलिए सबके बाहर का घेरा अपनी शक्ति का उपयोग भीतर वालों को कुचलने म नहीं करेगा बल्कि भीतर वाला सबको ताकत पहुँचायेगा और स्वय उनसे बल ग्रहण करेगा। युक्लिड की परिभाषा का बिन्दु भले ही मनुष्य को खींच न सके तो भी उसका शाश्वत मूल्य तो है ही। इसी तरह मेरे इस चित्र का भी मानव जाति के जीवित रहने के लिए अपना मूल्य है। इस तस्वीर के आदर्श तक पूरी तरह पहुँचना सम्भव नहीं है फिर भी भारत की जिन्दगी का यही मकसद होना चाहिए। हम क्या चाहिए इसका सही चित्र तो हमारे पास होना ही चाहिए तभी तो हम उसके करीब पहुँचेंगे। यदि कभी भारत के प्रत्येक गाँव म एक एक गणतन्त्र स्थापित हुआ तो मेरा दावा है कि मैं इस चित्र की सचाई सिद्ध कर सकूँगा जिसम सबसे आखिरी और सबसे पहला दोनों बराबर होगे या दूसरे शब्दों म यह तो न कोई पहला होगा न आखिरी।

अध्याय ९

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था एवं आर्थिक नियोजन तथा भारत में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था

[Mixed Economy and Economic Planning and Mixed Economy in India]

[ऐतिहासिक अवलोकन मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का महत्त्व, ग्रेटब्रिटेन में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था, मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की विशेषताएँ, सरकारी क्षेत्र का महत्त्व, निजी क्षेत्र का महत्त्व, मिश्रित क्षेत्र, सहकारी क्षेत्र, मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक नियोजन भारत में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था, संविधान के नीति निर्देशक तत्त्व, भारतीय नियोजित अर्थ-व्यवस्था में सरकारी एवं निजी क्षेत्र, भारतीय मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के लक्षण]

नियोजन के अन्तर्गत नियन्त्रण एवं संगठन की समस्या अधिकार की समस्या से अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। नियोजन अर्थ-व्यवस्था का सफलतापूर्वक संचालन दोनों ही निजी एवं सरकारी क्षेत्र के अन्तर्गत किया जा सकता है। पूँजीवादी नियोजन में निजी क्षेत्र को अर्थ-व्यवस्था के लगभग समस्त क्षेत्रों में कार्य करने दिया जाता है, परन्तु इस निजी क्षेत्र पर सरकार का नियन्त्रण होता है। दूसरी ओर साम्यवादी नियोजन के अन्तर्गत नियोजन का संचालन सरकारी क्षेत्र द्वारा किया जाता है। मिश्रित अर्थ-व्यवस्था में सरकारी क्षेत्र एवं नियन्त्रित निजी क्षेत्र के द्वारा नियोजन का संचालन किया जाता है। अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों में नियोजन का संचालन करने से पूर्व क्षेत्र का चयन करना भी एक समस्या होती है। नियोजन के वृहद् विकास-कार्यक्रमों के लिए अधिक विनियोजन की आवश्यकता होती है और इनमें अधिक जोखिम निहित होती है। निजी साहसी नवीन जोखिमपूर्ण कार्यों में अपनी पूँजी लगाना अधिक पसन्द नहीं करता है। नियोजन के कार्यक्रमों को सफल बनाने हेतु एक या अधिक उत्पादक-परियोजनाएँ संचालन करने की समस्या ही नहीं होती, वरन् समस्त जनसमुदाय को नवीन वातावरण के लिए तैयार करना होता है। इन दोनों के विभिन्न प्रयासों में समन्वय स्थापित करने का कार्य विपणि-तान्त्रिकताओं द्वारा नहीं किया जा सकता और सरकारी क्षेत्र का विस्तार आवश्यक होता है। दूसरी ओर, सरकार को निजी क्षेत्र पर प्रभावशील नियन्त्रण रखना सम्भव नहीं होता। निजी क्षेत्र सदैव नियन्त्रणों का विरोध करता है और इस नियन्त्रण की प्रभावशीलता को

विफल करने के लिए प्रयत्नशील रहना है परन्तु *निजी क्षेत्र को अर्थ व्यवस्था में बनाए रखने की आवश्यकता प्रजातान्त्रिक फ्लावर के अन्तर्गत पड़ती है।* साहस की स्वतन्त्रता प्रजातान्त्रिक ढाँचे का एक अंग होती है। ऐसी परिस्थिति में योजना अधिकारी को निजी एवं सरकारी क्षेत्र के कार्यक्षेत्र को निर्धारित करने की समस्या का निवारण करना होता है, यद्यपि नियोजन के लिए सरकारी क्षेत्र का होना आवश्यक नहीं होता परन्तु नियोजित अर्थ व्यवस्था के केन्द्रीय नियन्त्रण में सरकारी क्षेत्र की उपस्थिति एवं विस्तार स्वाभाविक हो जाता है। अर्द्ध विकसित राष्ट्रों की नियोजित अर्थ व्यवस्था में प्रायः शक्ति का आयोजन यातायात, कृषि उत्पादन में सुधार हेतु सिंचाई योजनाएँ, खाद के कारखाने, खाद्य संस्थाएँ, मार्केटिंग परिषदें, भारी एवं आधारभूत उद्योगों आदि का संचालन सरकारी क्षेत्र द्वारा किया जाता है। हेन्सन ने आर्थिक नियोजन एवं सरकारी क्षेत्र से सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए कहा है *'सरकारी क्षेत्र योजना की अनुपस्थिति में कुछ सफलता प्राप्त कर सकता है परन्तु एक योजना का सरकारी क्षेत्र की अनुपस्थिति में एक कागजी योजना रहना सम्भव है।'*[1]

ऐतिहासिक अवलोकन—प्राचीन काल में सामान्यतः इस विचार को मान्यता प्राप्त थी कि राज्य को देश की आर्थिक क्रियाओं में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और व्यक्तियों एवं आर्थिक संस्थाओं को पूर्ण आर्थिक स्वतन्त्रता होनी चाहिए। इस काल में लगभग सभी राष्ट्रों में व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं को समाज का एक मुख्य अंग माना जाता था। इसके साथ इस विचार को भी विशेष मान्यता थी कि राज्य आर्थिक क्रियाओं का संचालन सुचारु रूप से तथा मितव्ययता के साथ नहीं कर सकता है। राज्य एवं व्यापारी दोनों के स्वभाव में अत्यधिक असमानता होती है। निजी साहसी कुशलता एवं मितव्ययता से अपने व्यवसायों को चलाता है। उसमें उद्योगों की उन्नति के लिए बहुत करने की आकांक्षा तथा उत्साह होता है। *वह अपनी पूँजी लगाकर व्यवसाय चलाता है और व्यवसाय के लाभ अथवा हानि के लिए स्वयं जिम्मेदार होता है* जिस कारण से वह अपव्यय कदापि नहीं करता है। इसके विपरीत राज्य जटिल नियमों में बंधा होता है। उसमें व्यक्तिगत उत्साह एवं रुचि का अभाव होता है। वह जनता का धन लगाकर व्यवसाय चलाता है। राज्य द्वारा चलाये व्यवसायों में जिम्मेदारी का विकेन्द्रीयकरण हो जाता है। इन कारणों से राज्य द्वारा संचालित व्यवसायों में अपव्यय होता है। प्राचीन अर्थशास्त्रियों के ये विचार इतनी दृढ़तापूर्वक प्रारम्भ में स्वीकार किये गये कि उत्पादक एवं उपभोक्ता की स्वतन्त्रता आर्थिक *क्रियाओं के प्रत्येक क्षेत्र पर आच्छादित हो गयी और स्वतन्त्र व्यापार (Laissez Faire) को आर्थिक सम्पन्नता का मुख्य अंग माना जाने लगा। स्वतन्त्र साहस एवं*

---

1 Public Sector without a Plan can achieve something a plan without public enterprise is likely to remain on paper
(Hanson *Public Enterprise & Economic Development*)

व्यापार की व्यवस्था के कट्टर पक्षपातियों में एडम स्मिथ जे० बी० स० डेविड रिकार्डो, मिल आदि अर्थशास्त्री थे।

२०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में स्वतन्त्र व्यापार एवं अर्थव्यवस्था के दोष अर्थशास्त्रियों को ज्ञात होने लगे। स्वतन्त्र व्यापार के फलस्वरूप गलाकाट प्रतिस्पर्धा पारस्परिक शोषण, व्यापार चक्र, आर्थिक साम्राज्यवाद और आर्थिक सङ्कट आदि का प्रादुर्भाव हुआ। इन दोषों ने लोगों का स्वतन्त्र व्यापार की उपयुक्तता पर से विश्वास उठा दिया। प्रथम महायुद्ध के समय स्वतन्त्र व्यापार का भारी पतन हो गया था। इसी समय कीन्स (Keynes) की पुस्तक End of Laissez Faire 1926 प्रकाशित हुई जिसमें स्वतन्त्र व्यापार के दोषों का वर्णन किया गया। इसी समय मन्दी एवं आर्थिक सङ्कट उत्पन्न हुए जिनसे कीन्स के विचारों को और पुष्टि प्राप्त हुई। इस प्रकार स्वतन्त्र व्यापार की नीति का पतन होता चला गया और यह विश्वास किया जाने लगा कि राज्य आर्थिक क्रियाओं में हस्तक्षेप करके स्वतन्त्र व्यापार एवं साहस से उत्पन्न हुई कठिनाइयों का अन्त कर सकता है। इस विचारधारा की पुष्टि मिलने लगी कि स्वतन्त्र व्यापार के दोषों का निवारण समाजवाद द्वारा किया जा सकता है। इसी समय पीगू (Pigou) ने अपनी पुस्तक समाजवाद बनाम पूँजीवाद (Socialism Versus Capitalism) में बताया कि उत्पादन को समाजीकृत करके आर्थिक शान्ति स्थापित की जा सकती है। उन्होंने विचार प्रकट किया कि केन्द्रीय नियोजन प्रणाली पूँजीवादी व्यवस्था की तुलना में कहीं अच्छी है। प्रो० कीन्स ने पूर्ण समाजीकरण का विरोध किया। उनका विचार था कि राज्य स्वयं साहसी के रूप में कुशलता से कार्य नहीं कर सकता है। उनके विचार में देश की सर्वोत्तम अर्थ-व्यवस्था वह होगी जिसमें स्वतन्त्र साहस राज्य के नियन्त्रण में सञ्चालित किया जाता हो।

सन् १९२८ के पश्चात् रूस में केन्द्रीय नियोजित अर्थ-व्यवस्था के फलस्वरूप आश्चर्यजनक विकास हुआ जिसने पूँजीवाद की नींवों को हिला दिया और पूँजीवाद पर से लोगों का विश्वास हटने लगा। बहुत से राष्ट्रों ने पूँजीवादी व्यवस्था को त्याग दिया और समाजवाद का अनुसरण करने लगे। कुछ अन्य राष्ट्रों ने पूँजी के स्वरूप में परिवर्तन कर दिये और पूँजीवाद में भी राजकीय नियन्त्रण को स्थान दिया जाने लगा। चीन की समाजवादी व्यवस्था ने पूँजीवाद के प्राचीन स्वरूप को और भी ठेस पहुँचायी। चीन की योजनाओं की सफलता से अब यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा है कि शीघ्र आर्थिक विकास के लिए नियोजित अर्थ-व्यवस्था अनिवार्य है।

मिश्रित अर्थ व्यवस्था का महत्व—पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक नियोजन का सञ्चालन किया जाना सम्भव न होने के कारण पिछले १० से २० वर्षों में बहुत से राष्ट्रों ने मिश्रित अर्थ व्यवस्था को अपना लिया है। वास्तव में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था भारत के लिए कोई नवीन व्यवस्था नहीं है। स्वतन्त्र व्यापार एवं स्वतन्त्र साहस के पतन के पश्चात् लगभग समस्त पूँजीवादी राष्ट्रों में राज्य

आर्थिक क्रियाओ मे हस्तक्षेप करने लगा है जिसके कारण मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ है। लगभग सभी राष्ट्रो मे रेलें डाक व तार तथा सचार आदि व्यवसायों तथा जनोपयोगी सेवाओ को राजकीय क्षेत्र द्वारा सचालित किया जाता है। जब किसी राष्ट्र मे राजकीय क्षेत्र का अधिक विस्तार हो जाता है तो अर्थ व्यवस्था की प्रवृत्ति को समाजवादी कहा जाता है। दूसरी ओर जब किसी राष्ट्र मे राजकीय क्षेत्र की तुलना मे निजी क्षेत्र का महत्व अर्थ व्यवस्था मे अधिक होता है तो ऐसी अर्थ व्यवस्था की प्रवृत्तियो को पूँजीवादी कहा जाता है। वास्तव मे प्रत्येक राष्ट्र मे जब पूँजीवाद से समाजवाद की ओर कदम बढाये जाते है तो समाजवादी अर्थ व्यवस्था की स्थापना के पूर्व मिश्रित अर्थ व्यवस्था का प्रादुर्भाव होना स्वाभाविक होता है क्योंकि समाजवाद की स्थापना करने के लिए कुछ समय की आवश्यकता होती है।

ग्रेटब्रिटेन मे मिश्रित अर्थ व्यवस्था—मिश्रित अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत नियोजन का सचालन सवप्रथम ग्रेटब्रिटेन मे किया गया था। ब्रिटेन की लेबर सरकार ने कुछ उद्योगो एव जनोपयोगी सेवाओ का राष्ट्रीयकरण करके सामूहिक नियन्त्रण एव नियोजित अर्थ-व्यवस्था की स्थापना की। बैंक आफ इगलण्ड केबिल एव वायरलेस हवाई यातायात कोयले की खाने अन्तर्देशीय यातायात बिजली तथा गैस आदि का राष्ट्रीयकरण किया गया। इन सब व्यवसायों को सरकारी क्षेत्र मे ले लिया गया और शेष उद्योगो एव व्यवसायो को निजी क्षेत्र के लिए छोड दिया गया परन्तु इन पर राज्य ने कुछ नियन्त्रण एव प्रतिबन्ध रखे। कच्चे माल को विभिन्न उद्योगो में निर्धारित करने पर सरकार का नियन्त्रण था। औद्योगिक वस्तुओ जैसे मशीनें एव मशीनो के औजारो का वितरण लाइसेन्सो द्वारा किया जाता था। आवश्यक उद्योगो के लिए जन शक्ति के वितरण पर भी राज्य का नियन्त्रण था। कुछ वस्तुओ के उत्पादन पर रोक लगायी गयी तथा कुछ वस्तुओ के उत्पादन की मात्रा निर्धारित कर दी गयी। इसके अतिरिक्त बजट ट्रेजरी तथा राष्ट्रीय केन्द्रीय बैंक द्वारा बहुत से वित्तीय नियन्त्रण भी लगाये गये। सन् १९४५ मे उद्योगो के वितरण का विधान (The Distribution of Industries Act 1945) पास किया गया जिसके द्वारा राज्य का नवीन उद्योगो के स्थानीयकरण पर नियन्त्रण प्राप्त हो गया था।

मिश्रित अर्थ व्यवस्था की विशेषताएं—मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत विकास कार्यक्रमो को विभिन्न क्षेत्रो मे विभक्त करना आवश्यक है क्योंकि इस अर्थ व्यवस्था मे सभी क्षेत्रो को विकसित होने के अवसर प्रदान किए जाते हैं। प्राय मिश्रित अर्थ व्यवस्था में चार क्षेत्रों में अन्तर्गत विकास कार्यक्रमो को सचालित किया जाता है—सरकारी क्षेत्र निजी क्षेत्र सरकारी एव निजी क्षेत्र का सम्मिश्रण तथा सहकारी क्षेत्र। इनमे किस क्षेत्र को सर्वाधिक महत्व दिया जाय यह विकास कार्यक्रमो के अन्तिम उद्देश्यो पर निर्भर रहता है। यदि नियोजित अर्थ व्यवस्था का अन्तिम लक्ष्य देश मे समाजवादी अर्थ-व्यवस्था की स्थापना करना होता है तो सरकारी क्षेत्र को सबसे

अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है और अन्य क्षेत्रों का अर्थ-व्यवस्था में केवल अस्थायी महत्व रहता है। दूसरी ओर, प्रजातान्त्रिक समाजवाद की स्थापना हेतु सरकारी क्षेत्र के विस्तार एवं विकास के साथ निजी क्षेत्र को सरकारी क्षेत्र में परिवर्तित करने के प्रयत्न जारी रहते हैं। कुछ राष्ट्रों में विकास का प्रारम्भ करने के लिए सरकारी व्यवसायों की स्थापना की जाती है जो कुछ समय के उपरान्त संचालन के पश्चात् निजी क्षेत्र को हस्तान्तरित कर दिए जाते हैं। ऐसी मिश्रित अर्थ-व्यवस्था में निजी क्षेत्र का अधिक महत्व प्राप्त होता है और सरकारी क्षेत्र को केवल अस्थायी स्थान प्राप्त होता है। मिश्रित अर्थ-व्यवस्थाओं के अन्तर्गत सम्मिलित होने वाले क्षेत्रों का विकास-कार्यक्रमों के संचालन हेतु निम्न कारणों से महत्व दिया जाता है—

सरकारी क्षेत्र का महत्व—नियोजित अर्थ-व्यवस्था में निम्नलिखित कारणों के फलस्वरूप सरकारी क्षेत्र के व्यवसायों का विस्तार होता है—

(१) *यदि नियोजन अधिकारी समाजवाद का प्रतिपादन करता हो अथवा यह कहना अधिक उचित होगा कि राज्य जब समाजवाद का अनुसरण करता हो तो व्यव*-सायों के राष्ट्रीयकरण को अधिक महत्व दिया जाता है। जनसाधारण भी समाजवादी सिद्धान्तों के अनुकूल अधिक से अधिक व्यवसायों के राष्ट्रीयकरण की माँग करता है। *समाजवादी उद्देश्यों, आर्थिक एवं सामाजिक समानता की पूर्ति हेतु सरकारी क्षेत्र का विस्तार आवश्यक होता है।*

(२) ऐसे उद्योगों को सरकारी अधिकार में लिया जा सकता है जिनके विकास हेतु निजी व्यवसायी पूँजी विनियोजन करने को तैयार न हों।

(३) ऐसे व्यवसायों को जिनमें केन्द्रीय नियन्त्रण आवश्यक एवं अधिक कार्य-शील समझा जाता हो, सरकारी क्षेत्र द्वारा संचालित किया जाता है।

(४) राजनीतिक अथवा राष्ट्रीय कारणों से किन्हीं उद्योगों का निजी क्षेत्र के हाथ में छोड़ना उचित न समझा जाय तो इन उद्योगों को सरकारी क्षेत्र में चलाया जाता है, उदाहरणार्थ, रक्षा सम्बन्धी उद्योग।

(५) कुछ कारखानों का राष्ट्रीयकरण इसलिए भी किया जा सकता है कि उन उद्योगों में श्रमिक निजी पूँजीपति के अधीन रहकर कार्य नहीं करना चाहते। सन् १९१७ के पश्चात् रूस में बहुत से कारखानों का राष्ट्रीयकरण इसी आधार पर किया गया।

(६) *निजी एकाधिकार सरकारी एकाधिकार की तुलना में अच्छा नहीं समझा* जाता है, इसलिए ऐसे व्यवसायों को जिनमें एकाधिकार प्राप्त करना आवश्यक होता है सरकारी क्षेत्रों में ले लिया जाता है। इस प्रकार के व्यवसाय अधिकतर जनउपयोगी सेवाओं में सम्मिलित होते हैं जैसे बिजली-सप्लाई एवं जल-सप्लाई व्यवस्था आदि।

(७) अच्छे प्रशासन के लिए भी सरकारी क्षेत्र की स्थापना एवं विस्तार की आवश्यकता होती है। सरकारी क्षेत्र के व्यवसायों से कर वसूली, मूल्य-नियमन

उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण आदि में सुविधा होती है। सरकारी उत्पादन एवं वितरण सम्बन्धी नीतियों को अधिक प्रभावशील बनाने के लिए भी सरकारी क्षेत्र के विस्तार की आवश्यकता होती है।

निजी क्षेत्र का महत्त्व

(१) प्रजातान्त्रिक राष्ट्रों में प्रत्येक नागरिक को सम्पत्ति एवं उत्पादन के साधनों को क्रय करने, उनके सम्बन्ध में अनुबन्ध करने तथा उन्हें बेचने का अधिकार प्राप्त होता है अर्थात् निजी सम्पत्ति को मान्यता दी जाती है और राज्य एवं नागरिकों का वैधानिक दृष्टिकोण से पृथक्-पृथक् अस्तित्व समझा जाता है। ऐसी परिस्थिति में वह व्यवसाय जो पहले से ही निजी क्षेत्र में संचालित है, सरकार के अधिकार में लेने हेतु उचित क्षतिपूर्ति प्रदान करना अनिवार्य होता है। यदि नियोजित अर्थ-व्यवस्था के संचालन हेतु समस्त आर्थिक साधनों को सरकारी क्षेत्र के अधिकार में लिया जाय तो राज्य के उपलब्ध साधनों का बहुत बड़ा भाग दीर्घ काल तक क्षतिपूर्ति के रूप में प्रदान करना होगा और प्रगति के साधनों में वृद्धि करना सम्भव नहीं हो सकेगा। दूसरी ओर जब निजी सम्पत्तिधारियों को क्षतिपूर्ति प्रदान की जाती है तो उनके पास अन्य उत्पादन के साधन क्रय करने के लिए अर्थ पहुँच जाता है जिसके फलस्वरूप निजी क्षेत्र का अस्तित्व फिर भी बना रहता है। इस प्रकार अर्द्ध विकसित राष्ट्रों में निजी क्षेत्र के व्यवसायों को संचालित रहने दिया जाता है और राज्य सरकारी क्षेत्र में ऐसे नवीन व्यवसायों में विनियोजन करता है जिनकी देश को अधिक आवश्यकता होती है। इस प्रकार उत्पादन की तीव्र वृद्धि एवं आर्थिक प्रगति तीव्र गति के लिए निजी क्षेत्र को बनाये रखना आवश्यक होता है।

(२) देश के आर्थिक विकास हेतु अधिक बचत, विनियोजन एवं पूँजी निर्माण की आवश्यकता होती है। जनसाधारण बचत एवं विनियोजन उसी हालत में करने को तैयार होता है जब उसके द्वारा उसे उचित प्रतिफल प्राप्त होने की सम्भावना हो। निजी क्षेत्र का स्वामित्व जनसाधारण में सरकार के प्रति विश्वास की भावना जाग्रत करता है और निजी अर्थ साधन विकास के लिए उपलब्ध होते रहते हैं और अर्थ साधनों की प्राप्ति हेतु कठोर क्रियाओं की आवश्यकता नहीं होती है।

(३) विदेशों से पूँजी एवं आर्थिक सहायता प्राप्त करने हेतु भी निजी क्षेत्र को अर्थ-व्यवस्था में उचित स्थान प्रदान किया जाता है। विदेशी पूँजीपति एवं उद्योगपति उस अर्द्ध विकसित राष्ट्र में विनियोजन करने के लिए आकर्षित होते हैं, जिनमें व्यवसायों के राष्ट्रीयकरण का भय न हो, जिनमें निजी व्यवसायों के संचालनार्थ उचित सुविधाएं प्रदान की जाती हैं तथा जिनमें सरकारी क्षेत्र निजी क्षेत्र के साथ कठोर प्रतिस्पर्धा नहीं करता है। दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ भी आर्थिक सहायता देते समय इस बात पर ध्यान देती है कि सहायता द्वारा स्थापित व्यवसायों का लाभ केवल उसी देश के निवासियों को ही न मिले बल्कि संसार के अन्य राष्ट्र भी उसमें लाभ

उठा सकें और इनके लिए निजी क्षेत्र के व्यवसायों के संचालन की स्वतन्त्रता आवश्यक होती है। ऐसी परिस्थिति में विदेशी पूँजी एवं सहायता प्राप्त करने हेतु निजी क्षेत्र का अर्थ-व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान होता है।

(४) कुछ विशेष प्रकार के व्यवसायों के कुशल संचालन के लिए व्यक्तिगत प्रारम्भिकता तथा साहस अनिवार्य होता है। इस प्रकार के व्यवसायों का सर्वोत्तम उदाहरण कृषि-व्यवसाय है। इस प्रकार के व्यवसायों के कुशल संचालन हेतु निजी क्षेत्र को मान्यता दी जाती है।

(५) कुछ लोगों का विचार है कि निजी क्षेत्र शोषण के तत्व का प्रमुख होता है और देश में सामाजिक एवं आर्थिक समानता की स्थापना में यह बाधक एवं अवरोधक होता है। निजी क्षेत्र के सम्बन्ध में यह दोषारोपण उसी परिस्थिति में सत्य होता है जब उसे खुली छूट दे दी जाती है और राज्य द्वारा इस पर उचित नियन्त्रण एवं नियमन नहीं किया जाता है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य उचित नियमन एवं नियन्त्रण द्वारा निजी क्षेत्र को देश की समाज कल्याण की नीतियों के अनुकूल चलने के लिए विवश कर सकता है। इस प्रकार निजी क्षेत्र के शोषण-तत्व का विनाश करके उसको आर्थिक प्रगति का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बनाया जा सकता है।

मिश्रित क्षेत्र (Mixed Sector)

इस क्षेत्र के दो प्रारूप हैं—

(अ) कुछ निर्धारित व्यवसायों की स्थापना करने का अधिकार जब सरकारी एवं निजी क्षेत्र दोनों को ही होता है तो इन व्यवसायों के क्षेत्र को मिश्रित क्षेत्र कहते हैं।

(आ) ऐसी व्यावसायिक एवं औद्योगिक जिनमें सरकारी एवं निजी क्षेत्र दोनों ही पूँजी विनियोजन करते हैं और दोनों अपने प्रतिनिधियों द्वारा सम्मिलित रूप से प्रबन्ध करते हैं तो ऐसी इकाइयों को मिश्रित क्षेत्र के अन्तर्गत समझा जाता है। इस प्रकार के व्यवसायों के लिए सीमित दायित्व वाली कम्पनियों की स्थापना की जाती है जिनकी पूँजी सरकारी एवं निजी दोनों ही क्षेत्र जुटाते हैं। इनमें प्रायः सरकार द्वारा ५०% से अधिक पूँजी लगायी जाती है, जिससे सरकार इन पर उचित नियन्त्रण कर सके।

मिश्रित क्षेत्र का अर्थ व्यवस्था में निम्न कारणों से महत्व होता है—

(१) मिश्रित क्षेत्र में संचालित व्यवसायों को सरकारी संरक्षण, निजी विनियोजन तथा कुशल प्रबन्ध का लाभ प्राप्त होता है। एक ओर यह क्षेत्र सरकारी दफ्तरशाही या लालफीताशाही से मुक्त रहते हैं और दूसरी ओर इनके द्वारा शोषण का भय भी नहीं रहता है।

(२) मिश्रित क्षेत्र के व्यवसायों को विदेशी पूँजी एवं सहायता सुगमता से प्राप्त हो जाती है क्योंकि सरकार का संरक्षण इन्हें मिलते रहने की सम्भावना होती

है और कभी-कभी सरकार विनियोजकों को पूँजी की वापसी एवं उचित ब्याज की दर की प्रतिभूति (Guarantee) भी प्रदान करता है।

(३) जब मिश्रित क्षेत्र में निजी साहसियों एवं राज्य दोनों के ही द्वारा इकाइयों की स्थापना की जाती है तो यह क्षेत्र ऐसे व्यवसायों के अधिक उपयुक्त होता है जिनमें पूर्ति की तुलना में माँग अधिक हो क्योंकि इसकी विपरीत परिस्थिति में सरकारी एवं निजी इकाइयों में विनाशकारी प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो सकती है। इस क्षेत्र के व्यवसायों का मुख्य उद्देश्य पूरक का काम करना होता है अर्थात जब किसी विशेष व्यवसाय एवं उद्योग में निजी क्षेत्र पर्याप्त उत्पादन नहीं कर रहा हो तो सरकारी क्षेत्र कमी की पूर्ति करने को अपनी इकाइयाँ खोल देता है। इसके विपरीत परिस्थिति होने से निजी क्षेत्र नवीन इकाइयों की स्थापना कर सकता है। इस प्रकार निजी क्षेत्र सरकारी क्षेत्र का और सरकारी क्षेत्र निजी क्षेत्र का पूरक कार्य करते हैं।

(४) मिश्रित क्षेत्र के कुशल संचालन हेतु सरकारी एवं निजी क्षेत्र में पर्याप्त समन्वय एवं सहयोग अत्यावश्यक होता है। यह घटक मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की सफलता की कसौटी होती है। इसकी अनुपस्थिति में अर्थ-व्यवस्था में असन्तुलन स्थापित हो जाता है और विकास की गति मन्द हो जाती है।

सहकारी क्षेत्र (Cooperative Sector)

आर्थिक विकास को संचालित करने वाले क्षेत्रों में सहकारी क्षेत्र ही एक ऐसा क्षेत्र है जो सरकारी एवं निजी क्षेत्र में सन्तुलन स्थापित करता है और जो लगभग सभी प्रकार की अर्थ-व्यवस्था में उपयोगी सिद्ध होता है। मिश्रित अर्थ-व्यवस्था में सहकारी क्षेत्र को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया जाता है। उसके निम्नलिखित कारण हैं—

(१) इस क्षेत्र में सहकारी एवं निजी दोनों ही क्षेत्रों का सम्मेलन हो जाता है। सहकारी संस्थाओं द्वारा आर्थिक क्रियाओं का संचालन करने से एक ओर जन सहयोग एवं साधन उपलब्ध होते हैं और दूसरी ओर सहकारी निर्देशन में आर्थिक क्रियाओं का संचालन इस प्रकार किया जाता है कि आर्थिक समानता के लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है। सहकारी संस्थाओं में पूँजी के स्थान पर व्यक्ति को अधिक महत्व दिया जाता है और इसी कारण इनके निर्णयों के लिए सदस्यों को पूँजी के अनुपात से मत देने का अधिकार नहीं दिया जाता है। प्रत्येक सदस्य को एक ही मत देने का अधिकार होता है चाहे उसने कितनी भी पूँजी सहकारी संस्था में क्यों न जुटाई हो। इस प्रकार इन संस्थाओं में लाभांश का वितरण भी पूँजी के अनुपात में नहीं किया जाता है। सदस्यों को लाभांश उनके द्वारा संस्था की सेवाओं के उपयोग के अनुपात में वितरित किया जाता है। इस प्रकार यह संस्थाएँ आय के पुनर्वितरण में सहायक होती हैं।

(२) नियोजित अर्थ-व्यवस्था में नियन्त्रण को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया

जाता है। नियन्त्रण का उद्देश्य समस्त आर्थिक क्रियाओं को इस प्रकार समन्वित करना होता है कि एक क्रिया दूसरी क्रिया से समन्वित रहे और वांछित लक्ष्यों की पूर्ति हो सके। राज्य संगठित एवं बड़ी आर्थिक संस्थाओं पर सुगमता से नियन्त्रण कर सकता है परन्तु बिखरी हुई छोटी छोटी इकाइयों को राष्ट्रीय नीतियों के अनुरूप संचालित करने में अत्यधिक कठिनाई होती है। राज्य का इन बिखरी हुई इकाइयों तक पहुँचना ही कठिन होता है। इस कठिनाई को सहकारिता द्वारा दूर किया जा सकता है। अर्द्ध विकसित राष्ट्रों के विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों में लघु इकाइयों की बाहुल्यता होती है। यह लघु इकाइयाँ ग्रामीण क्षेत्रों की अर्थ व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के नियोजित विकास हेतु इन बिखरी हुई लघु इकाइयों को संगठित करने के लिए सहकारिता सबसे अधिक प्रभावशाली व्यवस्था समझी जाती है क्योंकि इसके द्वारा आर्थिक सत्ताओं का केन्द्रीयकरण नहीं होता है तथा यह व्यवस्था सहकारी एवं निजी क्षेत्र में सुगमता के साथ समन्वय प्राप्त कर सकती है।

(३) निजी क्षेत्र के शोषण-तत्व (Exploitative Element) को समाप्त करने के लिए राज्य विभिन्न वित्तीय एवं मौद्रिक नियन्त्रणों का उपयोग करता है परन्तु यह नियन्त्रण प्रशासनिक कुशलता की कमी एवं नैतिक चरित्र के निम्न स्तर के फल-स्वरूप पूरी तरह सफल नहीं हो पाता है, और अन्ततः निजी क्षेत्र आर्थिक विषमता को सुदृढ़ बनाता है। इस दोष को दूर करने हेतु निजी क्षेत्र में संस्थानीय परिवर्तन करना आवश्यक होता है। सहकारिता निजी क्षेत्र के वांछनीय गुण—व्यक्तिगत प्रारम्भिकता साहस एवं अधिकार भी बने रहते हैं।

सहकारिता के उपर्युक्त गुणों के कारण ही मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत जब नियोजन का संचालन किया जाता है तो निजी क्षेत्र को धीरे धीरे सहकारी क्षेत्र में परिवर्तित करने के प्रयत्न किए जाते हैं।

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक नियोजन

प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में व्यवसायों के स्वामित्व एवं प्रबन्ध में विकेन्द्रीकरण का आयोजन करना आवश्यक होता है। कभी कभी राज्य के हाथों में स्वामित्व (Ownership) का केन्द्रीयकरण होने से राजनैतिक सत्ताओं का भी केन्द्रीयकरण हो जाता है और नियोजन की समस्त व्यवस्था पर राजनीतिज्ञों का पूरा नियन्त्रण हो जाता है। उत्पादन के साधनों पर अधिकारियों का कठोर केन्द्रीयकरण होने पर एक सामन्त शैली (Feudal) समाज का निर्माण होता है जिसमें अन्यायपूर्ण एकाधिकार-पूर्ण पूँजीवाद को शक्तिशाली बनाया जाता है जिसमें कुछ ही राजनीतिज्ञ देश के समस्त साधनों का शोषण अपने निजी हितों के लिए करने लगते हैं। ऐसे पूर्ण केन्द्रित अधिकार वाले समाज में संगठित रूप से शोषण होने लगता है। इस शोषण को, प्रोत्साहित करने की सत्ता तथा जनसाधारण की अज्ञानता से सुगमता प्राप्त होती रहती है। इन कारणों के फलस्वरूप अब यह विचार किया जाने लगा है कि नियोजित

अर्थ व्यवस्था को अधिक उपयोगी एवं सफल बनाने के लिए न केवल निजी साहस और सरकारी साहस उपयुक्त हैं अपितु दोनों को ही अर्थ-व्यवस्था में स्थान दिया जाना उचित है।

भारत में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था

भारतीय संविधान के Preamble तथा वाक्य ३८ तथा ३९ में राज्य द्वारा देश में सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करने के कर्तव्य का स्पष्टीकरण किया गया है। इनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि संविधान के निर्माताओं ने संसार में प्रचलित विभिन्न वादों (isms) में किसी को भी मान्य नहीं दी है और विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं के गुणों का न्यायपूर्ण सम्मिश्रण करके एक नयी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना का आयोजन किया है। यह नया सामाजिक व्यवस्था भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल होना चाहिए।

संविधान के नीति निर्धारिक तत्व

भारतीय संविधान में राज्य की सामाजिक एवं आर्थिक नीति निर्धारण हेतु निम्नलिखित नीति तत्व (Directive Principles of State Policy) अंकित किए गये हैं। राज्य को अपने अधिनियमों द्वारा निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति करना है—

(अ) समस्त नागरिकों—पुरुष एवं स्त्री को पर्याप्त जीविकोपार्जन के साधन समानरूप से प्राप्त करने का अधिकार है।

(आ) समाज के भौतिक साधनों पर अधिकार एवं नियन्त्रण का वितरण किया जायगा जिससे सर्वाधिक समान हित (Common Good) सम्भव हो सके।

(इ) आर्थिक व्यवस्था के संचालन के फलस्वरूप धन एवं उत्पादन के साधनों का समान अहित (Common Detriment) के लिए केन्द्रीयकरण नहीं होना चाहिए।

(ई) पुरुष व स्त्री दोनों को ही समान कार्य के समान पारिश्रमिक का आयोजन होना चाहिए।

(उ) स्त्री व पुरुष श्रमिकों की शक्ति एवं स्वास्थ्य तथा बच्चों की कोमल आयु (Tender Age) का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। नागरिकों की आर्थिक आवश्यकताओं के कारण ऐसे कार्य अथवा धन्धे करने की विवशता नहीं होना चाहिए जो उनकी आयु एवं शक्ति के लिए अनुपयुक्त हों।

(ऊ) बच्चों तथा युवकों का शोषण तथा भौतिक एवं चरित्र सम्बन्धी परित्याग से संरक्षण प्रदान किया जाय।

नीति निर्देशक तत्वों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि भारतीय संविधान में भौतिक साधनों का इस प्रकार वितरित करना है कि धन एवं उत्पादन के साधनों का केन्द्रीयकरण शोषण करने के लिए न हो सके।

संविधान में उत्पादन साधनों पर केवल राज्य के अधिकार की बात नहीं कही गयी है। यह साधन किसी के भी अधिकार एवं नियन्त्रण में क्यों न हों इनके द्वारा

शोषण नहीं होना चाहिए। सविधान म भौतिक साधनों का राजकीय अथवा निजी किसी भी एक क्षेत्र क अधिकार म रखने की बात नहीं की गयी है। दूसरे शब्दों म, यह भी कह सकते हैं कि भारतीय सविधान म साधनों क उपयोग से उपलब्ध होने वाले उद्देश्यों को अधिक महत्व दिया गया है। यह निणय करना अब राज्य का अधिकार है कि अथ-व्यवस्था क किस क्षेत्र का सचालन राज्य कर और किनका निजी क्षेत्र।

इसके अतिरिक्त सविधान क वाक्य १६ तथा ३१ म निजी सम्पत्ति को भी मान्यता दी गयी है अर्थात व्यक्ति को सम्पत्ति पर अधिकार रखने तथा उसे क्रय एव विक्रय करने का अधिकार है। साथ ही सम्पत्ति उत्तराधिकार क रूप म निरन्तर हस्तान्तरित होने को भी सविधान म मान्यता दी गयी है। परन्तु राज्य सामाजिक हित के लिए किसी भी निजी सम्पत्ति को अपने अधिकार म उचित पारिश्रमिक देकर ले सकती है।

उपर्युक्त विवरण म यह ज्ञात होता है कि भारतीय सविधान म एक ओर पूँजीवाद के लक्षण—निजी सम्पत्ति और सम्पत्ति का उत्तराधिकार म हस्तान्तरण को मान्यता दी गयी है और दूसरी ओर, समाजवाद के लक्षण—समानता सभी प्रकार क शोषण पर प्रतिबन्ध समान अवसर, धन के केन्द्रीयकरण पर रोक आदि को मान्य समझा गया है। इस प्रकार हमारे सविधान निर्माताओं ने भारत में एक ऐसे समाज का विचार किया जिसमे पूँजीवाद एव समाजवाद दोनों के ही लक्षण हों परन्तु यह समाज न ही पूर्णरूपेण पूँजीवादी हो और न समाजवादी। दूसरे शब्दों में भारतीय सविधान द्वारा नयी सामाजिक व्यवस्था मे मुक्त व्यवसाय, निजी प्रारम्भिकता एव व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के लाभों को बनाये रखने का आयोजन है और दूसरी ओर, उन क्षेत्रो पर सामाजिक नियन्त्रण का लाभ उठाने का आयोजन है जिन पर सामाजिक नियन्त्रण द्वारा सामान्य हित सम्भव हो सकता हो।

सविधान द्वारा निर्धारित व्यवस्था में निजी एव सरकारी दोनों ही क्षेत्रों को स्थान दिया गया है और इन दोनों को एक-दूसरे के पूरक एव सहायक के रूप म काय करने का आयोजन किया जाता है। इस प्रकार सविधान द्वारा भारत में मिश्रित व्यवस्था की स्थापना का आयोजन किया गया है। देश की आर्थिक एव सामाजिक व्यवस्था का सचालन इस प्रकार किया जाता है कि अन्ततः अधिकतम उत्पादन एव समान वितरण-लक्ष्यों की पूर्ति हो सके। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर अथ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों को निजी एव सरकारी क्षेत्र में वितरित करना आवश्यक है जिसमे इन दोनों क्षेत्रों मे कलह एव घातक प्रतिस्पर्धा उत्पन्न न हो। राज्य को उन सभी क्षेत्रों को राजकीय अधिकार एव नियन्त्रण रखना चाहिए जिनका वह अधिक कुशल सचालन कर सकता हो, जिनको निजी क्षेत्र सचालित न कर सकता हो जिनके सचालन से जन जीवन पर बडे परिमाण में प्रभाव पडता हो। दूसरी ओर वह क्षेत्र जिनमें निजी क्षेत्र अधिकतम उत्पादन कर सकता हो, निजी क्षेत्र के अधिकार के लिए

छोड़े जा सकते हैं। 'यदि निजी क्षेत्र पर आर्थिक नियोजन के सफल संचालन हेतु राज्य का नियन्त्रण आवश्यक समझा जाय तो यह नियन्त्रण अत्यन्त सीमित होना चाहिए जो केवल महत्वपूर्ण बिन्दुओं को आधारित करता हो और जिससे निजी क्षेत्र के कार्य-संचालन प्रारम्भिकता एवं साहस में अनावश्यक प्रशासकीय हस्तक्षेप को रोका जा सके।'[1] इसके साथ ही राजकीय क्षेत्र के व्यवसायों का संचालन सरकारी विभागों की तरह न करके शुद्ध व्यापारिक सिद्धान्तों के आधार पर होना चाहिए।

सन् १९४८ की औद्योगिक नीति को आधार मान कर सरकारी (Public) तथा निजी साहस के क्षेत्रों को निश्चित किया गया। इसके अन्तर्गत राज्य का कर्त्तव्य था कि वह राजकीय क्षेत्र का जन्म दे तथा वृद्धि करे और उसके सफल संचालनार्थ प्रयास करे। इसके साथ ही, निजी क्षेत्र को भी राज्य द्वारा संरक्षण प्रदान किया जाना आवश्यक था क्योंकि संविधान में व्यक्ति के मूल अधिकारों में उसे उत्पादनों के साधनों पर अधिकार रखने तथा उनका क्रय विक्रय करने का अधिकार दिया गया था। राज्य को किसी भी निजी सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्ति हेतु क्षति-पूर्ति करना आवश्यक है। इस प्रकार निजी क्षेत्र का पूर्णरूपेण राष्ट्रीयकरण करना असम्भव था क्योंकि राज्य के पास पर्याप्त अर्थ साधन नहीं थे तथा निजी क्षेत्र के राष्ट्रीयकरण द्वारा निजी क्षेत्र के अधिकार में क्षतिपूर्ति के रूप में प्राप्त धन फिर भी रह जाता और वह उत्पादन के साधनों पर किसी अन्य रूप में अधिकार प्राप्त कर सकता था। इसके अतिरिक्त योजना में उत्पादन वृद्धि को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गयी थी तथा इस वृद्धि की शीघ्रातिशीघ्र प्राप्ति हेतु वर्तमान उत्पादन व्यवस्था को सर्वथा छिन्न भिन्न करना अनुचित था। इन्हीं कारणों से सामान्य राष्ट्रीयकरण की नीति को योजना में नहीं अपनाया गया परन्तु राज्य को आधारभूत क्षेत्रों पर पूर्ण नियन्त्रण उपलब्ध कराने के लिए उनका राष्ट्रीयकरण किया जा सकता था।

सन् १९५६ के औद्योगिक नीति प्रस्ताव द्वारा निजी एवं सरकार के कार्य क्षेत्र को और स्पष्ट कर दिया गया और भारी उद्योग जैसे लोहा एवं इस्पात, शस्त्र अस्त्र भारी ढलाई आदि, भारी मशीन एवं यन्त्र निर्माण, भारी विद्युत यन्त्र निर्माण, अणु शक्ति तथा रेल उद्योग सरकारी क्षेत्र के लिए रक्षित कर दिये गये। दूसरी ओर समस्त उपभोक्ता उद्योग जैसे वस्त्र, सीमेंट, कागज, शक्कर, पूर्व मशीनों व औजार औद्योगिक यन्त्र, हल्के इन्जीनियरिंग एवं रसायन उद्योग को निजी क्षेत्र में रखा गया। परन्तु इस नीति प्रस्ताव में यह भी आयोजन किया गया कि राज्य उपभोक्ता उद्योगों में भी भागीदार हो सकती है। निजी क्षेत्र का संचालन बहुत से सरकारी नियन्त्रणों के अन्तर्गत होता है। कम्पनी अधिनियम को अधिक प्रभावशाली बनाने के साथ साथ

1 C N Vakil Respective Roles of Public & Private Sectors in a Mixed Economy —*Commerce* 12 8 1967

औद्योगिक लाइसेन्सिग, पूँजी निगमन नियन्त्रण आयात लाइसेन्सिग तथा कुछ वस्तुओं के वितरण एवं मूल्य पर नियन्त्रण आदि का सचालन किया गया है।

भारतीय नियोजित अर्थ-व्यवस्था में सरकारी एवं निजी क्षेत्र

भारतीय योजनाओं के विनियोजन वितरण की प्रवृत्ति तृतीय योजना तक सरकारी क्षेत्र का नवीन विनियोजन में अधिक भाग देने की रही है। परन्तु चतुर्थ योजना में निजी क्षेत्र के विस्तार के लिए विशेष अवसर प्रदान किए गये है। चतुर्थ योजना में निजी क्षेत्र में १०,००० करोड रुपये का विनियोजन करने का लक्ष्य रखा गया जबकि तृतीय एवं द्वितीय योजनाओं में निजी क्षेत्र के विनियोजन की राशि क्रमश ४,१०० तथा ३,१०० करोड रुपये थी। इस प्रकार चतुर्थ योजना में निजी क्षेत्र के विनियोजन की राशि तृतीय योजना की तुलना में १४४ प्रतिशत अधिक है।

तालिका न० १—चार योजनाओं के अन्तर्गत विनियोजन की प्रवृत्ति

(वर्तमान मूल्यों पर करोड रुपयों में)

क्षेत्र	प्रथम योजना		द्वितीय योजना		तृतीय योजना		चतुर्थ योजना	
	राशि	वृद्धि का %	राशि	वृद्धि का %	राशि	वृद्धि का %	राशि	वृद्धि का %
१ सरकारी क्षेत्र मे विनियोजन	१५६०	—	३६५०	१३४	६३००	७२	१२२५२	९५
२ निजी क्षेत्र मे विनियोजन	१८००	—	३१००	७२	४१००	३२	१००००	१४४
३ सरकारी विनियोजन का कुल विनियोजन से प्रतिशत	४६	—	५४	—	६१	—	५५	—
४ निजी क्षेत्र के विनियोजन का कुल विनियोजन से प्रतिशत	५४	—	४६	—	३९	—	४५	—

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि सरकारी एवं निजी क्षेत्र के विनियोजन का अनुपात चतुर्थ योजना में निजी क्षेत्र के अनुकूल है। चतुर्थ योजना में तृतीय योजना की तुलना में जहा सरकारी क्षेत्र के विनियोजन में ९५% की वृद्धि हुई वहीं निजी क्षेत्र के विनियोजन की राशि में १४४% की वृद्धि कर दी गयी है।

भारत में निजी क्षेत्र का महत्व सरकारी क्षेत्र की तुलना में आकार विनियोजन उत्पादन एवं विनियोजित पूँजी सभी दृष्टिकोणों से अधिक है। प्रथम तीन योजनाओं के १५ वर्षीय काल में निजी क्षेत्र में लगभग ९००० करोड रुपये का विनियोजन किया गया। समामेलित क्षेत्र से कम्पनियों की प्रदत्त पूँजी (Paid up Capi-

ia) सन् १९५१ में ७५० करोड़ रुपये से बढ़कर सन् १९६४ में १५३० करोड़ रुपया हो गई। निजी क्षेत्र ने इन पन्द्रह वर्षों में (सन् १९५०-६४) में लगभग ६२०० करोड़ रुपये की अतिरिक्त आय उत्पादित की जो इस काल की कुल अतिरिक्त आय की तीन चौथाई के बराबर है। दूसरी ओर सरकारी व्यापारिक एवं औद्योगिक व्यवसायों में सन् १९५१ में कुल विनियोजन ४४ करोड़ रुपया था जो सन् १९५१-६६ के काल में बढ़कर ११ ५१० करोड़ रुपया हो गया। प्रथम योजना के प्रारम्भ (सन् १९५१) में निजी क्षेत्र के औद्योगिक क्षेत्र का विनियोजन लगभग ७८० करोड़ रुपया था और कृषि, खनिज, अधिकोषण एवं व्यापार जो निजी क्षेत्र में ही सचालित थे का कुल विनियोजन लगभग १० ००० करोड़ रुपये अनुमानित था। निजी क्षेत्र का यह विनियोजन सन् १९६६ के अन्त तक औद्योगिक क्षेत्र में बढ़कर ६ ००० करोड़ रुपया और कृषि, खनिज, अधिकोषण एवं व्यापार में लगभग २५ ००० करोड़ रुपया होने का अनुमान है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र का विस्तार तीव्र गति से हुआ है।

यदि हम सरकारी क्षेत्र एवं निजी क्षेत्र के सकल उत्पादन की तुलना करें तो ज्ञात होगा कि सन् १९६५-६६ के अन्त तक सरकारी क्षेत्र देश के कुल सकल राष्ट्रीय उत्पादन का १३ ६% ही उत्पादित करता था और शेष ८६ ४% निजी क्षेत्र में ही उत्पादित होता था। उत्पादन के दृष्टिकोण से भी यह स्पष्ट है कि निजी क्षेत्र का भारतीय अर्थव्यवस्था में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। सन् १९६५-६६ में सरकारी क्षेत्र का सकल उत्पादन ३०४२ करोड़ रुपया और निजी क्षेत्र का उत्पादन १९ ३८५ करोड़ रुपया था।

हमारे देश में सरकारी क्षेत्र का विस्तार धीरे धीरे किया जाता है। अभी हाल में १४ बड़े व्यापारिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण से सरकारी क्षेत्र का राष्ट्रीय उत्पादन एवं विनियोजन में अंशदान और बढ़ जायगा और सरकारी क्षेत्र के विस्तार में सहायता मिलेगी। सन् १९६०-६१ में सरकारी क्षेत्र द्वारा देश में सकल राष्ट्रीय उत्पादन का ११% भाग उत्पादित किया गया। यह प्रतिशत सन् १९६५-६६ में बढ़कर १३ ६ हो गया है।

भारतवर्ष में एशिया के अन्य देशों की तुलना में सरकारी क्षेत्र का आकार बड़ा नहीं कहा जा सकता जैसा अग्रांकित तालिका से स्पष्ट होता है।

तालिका स० २ से यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष में सरकारी आय एवं व्यय सकल राष्ट्रीय उत्पादन का बहुत कम भाग होता है।

भारतीय मिश्रित अर्थव्यवस्था के मुख्य लक्षण

(१) अर्थ-व्यवस्था में निर्धारित तीन क्षेत्रों की उपस्थिति—(अ) सरकारी क्षेत्र (आ) सरकारी एवं निजी क्षेत्र का सम्मिलित क्षेत्र तथा (इ) निजी क्षेत्र।

(२) निजी क्षेत्र तथा सरकारी क्षेत्र की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा पर राज्य

तालिका सं० २—विभिन्न देशों में सरकारी क्षेत्र का आकार

		सकल राष्ट्रीय उत्पादन की तुलना में सरकारी आय एवं व्यय	
विभिन्न देश	साल	सरकारी चालू आय सकल राष्ट्रीय उत्पादन का प्रतिशत	सरकारी व्यय सकल राष्ट्रीय उत्पादन का प्रतिशत
बर्मा	१९६३	१८	२९
सीलोन	१९६५	१०	१९
चीन (ताईवान)	१९६४	१७	२२
भारत	१९६२–६३	१२	१६
पाकिस्तान	१९६४–६५	११	१९
फिलीपाइन्स	१९६५	१०	१४
थाइलैण्ड	१९६५	—	१५

नियन्त्रण रखना है अर्थात यह दोनों क्षेत्र एक-दूसरे के सहायक एवं पूरक के रूप में कार्य करते हैं।

( ) भारत की योजनाओं के अन्तर्गत सरकारी एवं निजी क्षेत्र दोनों का ही विस्तार किया जाता है परन्तु सरकारी क्षेत्र का विकास एवं विनियोजन निजी क्षेत्र की अपेक्षा बढ़ता जा रहा है। प्रथम योजना में सरकारी एवं निजी क्षेत्र का विनियोजन १ ५०० और १ ६०० करोड़ रु० था। द्वितीय योजना में यह विनियोजन क्रमशः ३ ६५० और ३,१०० करोड़ रु० था और तृतीय योजना में विनियोजन क्रमशः ६,३०० करोड़ और ४ १०० करोड़ रु० है। इन आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि सरकारी क्षेत्र का विकास निजी क्षेत्र की अपेक्षा तीव्रता से हो रहा है। चौथी योजना में निजी क्षेत्र के महत्व को घटा दिया गया है।

(४) भारतीय अर्थ-व्यवस्था में निजी क्षेत्र के विस्तार पर एवं कार्य सचालन पर कोई कठोर अंकुश नहीं लगाये गये हैं परन्तु निजी क्षेत्र को सरकारी नियमन में रखना आवश्यक है जिससे निजी क्षेत्र सरकारी नीतियों के अनुकूल ही कार्य करें।

(५) निजी क्षेत्र में लघु एवं ग्रामीण उद्योगों तथा उपभोक्ता उद्योगों को विशेष-रूप से सम्मिलित किया गया है। दूसरे शब्दों में, हम यह कह सकते हैं कि विकेन्द्रित समाज की स्थापना हेतु छोटी छोटी इकाइयां निजी क्षेत्र द्वारा विकसित की जायेंगी और बड़े-बड़े आधारभूत उद्योग सरकारी क्षेत्र में रहेंगे।

(६) निजी क्षेत्र के अन्तर्गत सहकारिता को विशेष स्थान दिया गया है अर्थात् सहकारी संस्थाओं को साख कच्चे माल, बाजार-व्यवस्था औजार तथा प्रशिक्षण की सुविधाएँ प्रदान करके राज्य एक विकेन्द्रित समाज की स्थापना करना चाहता है।

भारत की मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का स्वरूप इस प्रकार का है जिसमें पूँजीवाद और समाजवाद दोनों के ही लक्षणों का समन्वय हो गया है। भारत के प्रजातान्त्रिक ढाँचे में इस प्रकार की अर्थ-व्यवस्था को ही सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में सरकारी क्षेत्र के विस्तार के साथ साथ निजी क्षेत्र के विस्तार पर विशेष ध्यान दिया गया है। नियोजकों द्वारा यह महसूस किया गया है कि निजी क्षेत्र पर से यदि अनावश्यक प्रतिबंध हटा लिये जायें तो यह क्षेत्र बहुत जल्दी अधिकतम उत्पादन दे सकता है। यद्यपि चतुर्थ योजना में सन् १६५६ के औद्योगिक नीति प्रस्ताव के आधार पर ही औद्योगिक विकास के कार्यक्रम निर्धारित किये गये परन्तु सरकारी क्षेत्र में वे ही कार्यक्रम रखे गये हैं जो ऊँची प्राथमिकता क्षेत्र में हैं और जिनके द्वारा औद्योगिक कलेवर की कमियों की पूर्ति की जा सके। जिन उद्योगों का विस्तार निजी एवं सरकारी क्षेत्र में हो सकता हो उनको सरकारी क्षेत्र में सम्मिलित नहीं किया जायगा।

इसके अतिरिक्त देश में पूंजीगत सामग्रियों एवं कच्चे माल की अधिक उपलब्धि होने के कारण उन उद्योगों के विस्तार पर नियन्त्रण रखने की आवश्यकता नहीं है जो प्रायः देश में उपलब्ध साधनों का उपयोग करते हैं। इसी कारण ऐसे उद्योग जिनमें पूंजीगत सामग्री एवं कच्चे माल को विदेशों से आयात करने की आवश्यकता नहीं होगी, उनकी स्थापना एवं विस्तार के लिए औद्योगिक लाइसेन्स प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होगी। इसी प्रकार जिन उद्योगों में कुल पूंजीगत सामग्री का यदि १०% कम भाग विदेशों से आयात करना हो उन्हें भी औद्योगिक लाइसेन्स से मुक्त कर दिया गया है। इस प्रकार चतुर्थ योजना में निजी क्षेत्र को औद्योगिक विस्तार की छूट दी गयी है जिसके फलस्वरूप निजी क्षेत्र में अधिक विनियोजन को प्रोत्साहन मिलने की आशा है।

उपर्युक्त समस्त विवरण के आधार पर यह कहना अनुचित न होगा कि मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की सफलता हेतु देश की आर्थिक नीतियों को असाधारण कुशलता एवं सतर्कता से सचालित करने की आवश्यकता होती है। निजी क्षेत्र को बनाये रखने हेतु बाजार-तान्त्रिकताओं (Market Mechanism) को जारी रखना आवश्यक होता है जिसके अन्तर्गत मूल्य माँग एवं पूर्ति के घटक आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। बाजार-तान्त्रिकता जारी रहने पर सरकारी एवं निजी क्षेत्र दोनों को ही साधनों की प्राप्ति के लिए मुद्रा बाजार की शरण लेनी होती है और स्वभावतः यह प्रतिस्पर्धा को जन्म देती है। राज्य के छाया में राजनीतिक एवं आर्थिक सत्ताएँ होने के कारण साधन प्राप्त करने में अधिक सफल हो सकता है परन्तु वह कठोर कार्यवाहियों की शरण नहीं ले सकता है। इस प्रकार मिश्रित अर्थ-व्यवस्था में प्रतिस्पर्धा उत्पन्न होना अत्यधिक स्वाभाविक होता है जिसके फलस्वरूप आर्थिक प्रगति नियोजित कार्यक्रमों के अनुकूल नहीं हो पाती है और कभी-कभी उलझी हुई अर्थ-व्यवस्था (Muddled Economy) का रूप ग्रहण कर सकती है। निजी क्षेत्र माँग एवं पूर्ति के घटकों को इस प्रकार सचालित करने का प्रयत्न करता है कि धनी वर्ग को अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हो सके। सरकारी नियमों एवं नियन्त्रणों से बचने के लिए अवांछनीय (और

कभी कभी अवैधानिक) उपायों का उपयोग किया जाता है। वस्तुओं का संग्रह, सट्टा आदि अर्थ-व्यवस्था के सुचारु संचालन में विघ्न डालते हैं। इस प्रकार मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की सफलता निजी एवं सरकारी क्षेत्र के सहयोग एवं समन्वय पर निर्भर रहती है। सिद्धान्तरूप से मिश्रित अर्थ-व्यवस्था पूँजीवादी एवं साम्यवादी दोनों ही अर्थ व्यवस्थाओं से श्रेष्ठ समझी जा सकती है क्योंकि इसके अन्तर्गत साम्यवाद की तरह व्यक्तिगत स्वतन्त्रताएँ एवं साहस लुप्त नहीं होते और न ही पूँजीगत अर्थ-व्यवस्था के शोषण सम्बन्धी तत्व को पनपने दिया जाता है।

नियोजित अर्थ व्यवस्था में वित्तीय व्यवस्था
[Financial Mechanism of Planned Economy]

[नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अर्थ साधन ऐच्छिक बचत, राजकीय बचत प्रत्यक्ष कर अप्रत्यक्ष कर, अन्य कर, कर एवं बचत की तुलनात्मक श्रेष्ठता करारोपण एवं मुद्रा-स्फीति का दबाव करारोपण का निजी विनियोजन पर प्रभाव, करारोपण का प्रोत्साहन पर प्रभाव, प्रोत्साहन सम्बन्धी करारोपण के रूप—मुद्रा प्रसार द्वारा प्राप्त बचत, बजट के साधनों की पारस्परिक तुलना विदेशी मुद्रा की बचत, विदेशी मुद्रा की प्राप्ति की विधियाँ—राजकीय आयात नीति एवं अर्थ-साधन, राजकीय निर्यात-नीति एवं अर्थ साधन विदेशी निजी विनियोजन विदेशों से ऋण एवं सहायता, विदेशी व्यवसायों का अपहरण]

आर्थिक विकास के कार्यक्रमों का संचालन करने के लिए अर्थ साधनों की आवश्यकता होती है—ऐसे अर्थ साधन जो देश की उपभोग की आवश्यकताओं के अतिरिक्त *विकास कार्यक्रमों को उपलब्ध हो सकें। वास्तव में, देश के राष्ट्रीय उत्पादन* का बहुत बड़ा भाग उपभोग पर व्यय होता है और एक अत्यन्त न्यून प्रतिशत विकास के लिए उपलब्ध होता है। योजना में सम्मिलित कार्यक्रमों—कृषि, विकास कार्यक्रम सिंचाई एवं शक्ति की परियोजनाएं *नवीन उद्योगों की स्थापना तथा वर्तमान उद्योगों* का विस्तार, यातायात के साधनों में वृद्धि एवं सुधार रोजगार के अवसरों में वृद्धि आदि के लिए अर्थ साधनों की आवश्यकता होती है जो आन्तरिक एवं विदेशी साधनों *से प्राप्त किए जाते हैं। प्राय आन्तरिक साधनों को अधिक महत्व दिया जाता है और* इसी कारण वर्तमान राष्ट्रीय आय के अधिक प्रतिशत को बचत एवं विनियोजन की ओर आकर्षित किया जाता है। विकास कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप जो राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है उस वृद्धि के बड़े *भाग को विनियोजन के लिए प्राप्त करने के प्रयत्न* किए जाते हैं यद्यपि जनसमुदाय अर्द्ध विकसित राष्ट्रों में इस आय की वृद्धि के अधिक से अधिक भाग का उपभोग पर व्यय करना चाहता है। राज्य को इस प्रकार आन्तरिक साधनों को एकत्रित करने के लिए *बहुत सी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष तान्त्रिकताओं का* उपयोग करना होता है।

यद्यपि अर्थ साधनों का आन्तरिक तथा विदेशी दोनों साधनों से प्राप्त किया

जा सकता है परन्तु अर्थशास्त्रियों का सामान्य मत है कि विदेशी सहायता से मुदृढ आर्थिक विकास सीमित मात्रा तक ही सकता है। विदेशी व्यय द्वारा दाहरी अर्थ-व्यवस्था में असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है तथा विदेशी सहायता का प्रवाह रुक जाने पर विकास की गति धीमी ही नहीं अवरुद्ध-सी हो जाती है। विदेशी सहायता द्वारा दीर्घ काल तक स्वदेशी उत्पादन-साधनों की न्यूनता का प्रतिस्थापन नहीं किया जा सकता।

अल्प विकसित राष्ट्रों का एक ओर विकास की गति तीव्र करने के लिए अधिक अर्थ की आवश्यकता होती है जबकि निजी साहसी उत्पादक क्रियाओं में विनियोजन करने के लिए तैयार नहीं होता है। ऐसी परिस्थिति में नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य को बचत एवं विनियोजन का नियन्त्रित करना चाहिए जिससे वांछित गति से आर्थिक विकास सम्भव हो सके।

नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अर्थ-साधन—नियोजित कार्यक्रमों को सचालन करने हेतु निम्नलिखित साधनों से प्राप्त किया जाता है—

(अ) ऐच्छिक आन्तरिक बचत (Voluntary Domestic Savings)

(आ) राजकीय बचत (Governmental Savings)

(इ) मुद्रा-प्रसार द्वारा प्राप्त बचत (Inflationary Savings)

(ई) विदेशी बचत (Foreign Savings)।

(अ) ऐच्छिक आन्तरिक बचत—नियोजित व्यवस्था के अन्तर्गत अद्ध-विकसित राष्ट्रों में विकास हेतु आन्तरिक बचत की सदैव न्यूनता रहती है क्योंकि आय तथा अवसर की समानता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहा जाता है तथा धनिक-वर्ग निर्धन-वर्ग की अपेक्षा अधिक बचत कर सकने के योग्य होता है। यही कारण है कि इन राष्ट्रों में, जहा राष्ट्रीय आय का वितरण अधिक असमान होता है सामान्यतः आन्तरिक बचत की मात्रा भी अधिक होती है परन्तु अद्ध-विकसित राष्ट्रों में अधिक आय वाला वर्ग प्रतिष्ठा सम्बन्धी उपभोग को अधिक महत्व देता है तथा विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं के नागरिकों के समान उपभोग का स्तर प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। इसके अतिरिक्त यह वर्ग अपनी बचत को उपभोक्ताओं, व्यापारियों तथा कृषकों को अल्पकालीन ऋण प्रदान करने एवं वस्तुओं का सग्रह करके सट्टात्मक (Speculative) लाभ प्राप्त करने के लिए उपयोग करता है क्योंकि इसके द्वारा लाभोपार्जन सम्भव होता है। इस प्रकार अर्थ-व्यवस्था में आर्थिक विषमताओं के रहते हुए विकास सम्बन्धी विनियोजन के लिए बचत पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं होती है। आर्थर ल्यूस (Arthur Lewis) के अनुसार आय के विषम वितरण वाली उन्हीं अर्थ-व्यवस्थाओं में ऐच्छिक बचत विकास सम्बन्धी विनियोजन के लिए उपलब्ध होती है जिनमें राष्ट्रीय आय में साहसियों के लाभ का अश अधिक होता है। ऐसी अर्थ-व्यवस्थाओं में जहा राष्ट्रीय आय का बड़ा भाग जमींदारों तथा व्यापारियों को प्राप्त होता है विकास-सम्बन्धी विनियोजन के लिए ऐच्छिक बचत प्राप्त होने की सम्भावना

कम होती है। इन्हीं कारणों से अर्द्ध विकसित राष्ट्रों में ऐच्छिक बचत एवं निजी विनियोजन आर्थिक प्रवृत्ति हेतु वित्त प्रदान करने में अधिक सहायक नहीं होते हैं परन्तु आर्थिक प्रगति की प्रारम्भिक अवस्था में एच्छिक बचत के द्वारा उपभोग का प्रतिबंधित करने में सहायता मिलती है जिसके फलस्वरूप मुद्रा स्फीति के दवाव को कम करना सम्भव होता है। यदि बचत किया या संगृहीत (Hoard) कर लिया जाय अथवा देश में उपलब्ध मूल्यवान धातुओं आदि में विनियोजित कर दिया जाय तो इसका वही प्रभाव होगा, जो बचत को वित्तीय संस्थाओं में जमा करने से होगा। जब नियोजन-अधिकारी को यह आश्वासन हो जाय कि निर्गमित मुद्रा का निश्चित भाग संगृहीत कर लिया जायगा और उपभोग पर व्यय नहीं किया जायगा तब वह संगृहीत राशि के बराबर विकास कार्यक्रमों के लिए वित्त प्रदान करने हेतु साख (Credit) में विस्तार कर सकती है परन्तु प्रायः यह संगृहीत बचत अचानक ही उपभोग पर व्यय कर दी जाती है जिसके फलस्वरूप मुद्रा स्फीति का दवाव बढ़ जाता है। संगृहीत बचत के अचानक व्यय करने पर नियन्त्रण करने हेतु यह आवश्यक समझा जाता है कि बचत को साख संस्थाओं में जमा करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। यही कारण है कि विकास की ओर अग्रसर राष्ट्रों में साख संस्थाओं का विस्तार किया जाता है। यह संस्थाएं जनसमुदाय में बचत करने के स्वभाव का निर्माण करती हैं परन्तु यथा-सम्भव इन संस्थाओं को एक केन्द्रीय अधिकारी अथवा बैंक के अधीन होना चाहिए जिससे इनको प्राप्त बचत का समन्वित विनियोजन विकास सम्बन्धी कार्यों में किया जा सके।

इसके अतिरिक्त इन साख संस्थाओं—बैंक, डाक विभाग, सहकारी संस्थाओं, जीवन बीमा आदि के कर्मचारियों में ईमानदारी, तत्परता तथा सहायता करने की भावनाओं के स्तर में वृद्धि होना भी आवश्यक है। इन संस्थाओं की कार्य करने की विधि इतनी सरल तथा प्रणाली इतनी सुगम होनी चाहिए कि बचत जमा करने तथा निकालने में समय का अपव्यय, कष्ट एवं असुविधा नहीं होनी चाहिए। इसके साथ ही ग्रामीण विकास की योजनाओं के अन्तर्गत कृषक तथा श्रमिक वर्ग को धन के व्यय तथा अपव्यय सम्बन्धी शिक्षा प्रदान की जाय। यह कार्य अत्यन्त कठिन तथापि आवश्यक है क्योंकि ग्रामीणों के रूढ़िवादी, अन्धविश्वासी एवं अशिक्षित चिर स्वभाव को परिवर्तित करना सरल नहीं है। अल्प विकसित राष्ट्रों में आर्थिक विकास के साथ मुद्रा प्रसार भी एक आवश्यक लक्षण होता है। जनता जनार्दन को यह विश्वास प्रदान कराना भी आवश्यक है कि मुद्रा प्रसार अत्यधिक नहीं होगा तथा इस प्रकार उनके विनियोजन तथा ब्याज की राशि की क्रय शक्ति अथवा वास्तविक मूल्य में कोई विशेष कमी नहीं होगी।

ऐच्छिक बचत को राज्य जनसमुदाय से ऋण के रूप में प्राप्त करता है। राज्य की योजना के अन्तर्गत होने वाले चालू अथवा आवर्तक व्ययों (Recurring

Expenses) के लिए ऋण नहीं लेना चाहिए। केवल ऐसे उत्पादक (अथवा पूँजीगत) व्ययों के लिए जन ऋण लिये जाने चाहिए जिनके द्वारा उत्पादित अतिरिक्त आय से यथासम्भव ऋण का भुगतान अवधि में ऋण का ब्याज तथा मूलधन का भुगतान किया जा सके। जन ऋण द्वारा राज्य अपनी भविष्य की चालू आय का कम कर देता है क्योंकि भविष्य की आय में से ऋण के ब्याज एवं मूलधन का भुगतान करना होता है। इस प्रकार जन ऋण द्वारा एक ओर तो जनसमुदाय को उपभोग के लिए उपलब्ध होने वाली वर्तमान आय का कम कर दिया जाता है और दूसरी ओर जनसमुदाय की भविष्य की आय बढ़ने का निश्चय हो जाता है। भविष्य में जनसमुदाय ब्याज आदि की अतिरिक्त आय के अधिक भाग को उपभोग पर व्यय कर सकता है और इसलिए भविष्य में अर्थ-व्यवस्था में अधिक उपभोग की वस्तुएँ उपलब्ध होनी चाहिए। जन ऋण द्वारा अर्थ-व्यवस्था में वर्तमान उपभोग कम करने में सहायता मिलती है परन्तु भविष्य में या तो इन ऋणों को अन्य ऋणों में परिवर्तित किया जाए या फिर उनके विनियोजन के लिए अन्य साधनों का आयोजन किया जाए। जन-ऋण नियोजित अर्थ-व्यवस्था को वित्त प्राप्त कराने का एक महत्वपूर्ण साधन है और जो धन कर के द्वारा प्राप्त न किया जा सकता हो उसे ऋण लेकर प्राप्त किया जाता है। यद्यपि नियोजन-कार्यक्रमों के लिए धन प्राप्त करने वाले साधनों में कर को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है परन्तु कर द्वारा एक ओर तो जनसमुदाय को अत्यधिक कठिनाई होती है और दूसरी ओर जनता में योजना के प्रति सहानुभूति नहीं रहती है। इसके साथ ही अधिक कर अधिक आय-उपार्जन को निजी क्षेत्र में हतोत्साह करते हैं।

ऋण द्वारा प्राप्त राशि का उचित उपयोग होना चाहिए। यदि इसका उपयोग सावधानी के साथ किया जाय और आय-उपार्जनक्षमता में कोई वृद्धि न हो तो ये ऋण भविष्य के विकास के लिए एक बहुत बड़े वित्तीय बाधक हो जाते हैं। जन-ऋण का महत्व प्रजातान्त्रिक एवं समाजवादी नियोजन में अधिक होता है क्योंकि इन अर्थ-व्यवस्थाओं में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता कुछ सीमा तक बनी रहती है। आर्थिक बाधा उत्पन्न होने पर ऐच्छिक जन-ऋण को अनिवार्य ऋण का रूप दिया जा सकता है जैसे भारत में अनिवार्य बचत योजना सन् १९६३-६४ में लागू की गयी थी। साम्यवादी अर्थ-व्यवस्था में जन-ऋण का कोई महत्व नहीं होता क्योंकि वहाँ व्यक्तिगत पूँजी का कोई अस्तित्व नहीं है। अधिनायकवादी नियोजन में जन ऋण अनिवार्य ऋण के रूप में लिया जाता है।

जन-ऋण प्राप्त करने का सबसे उपयुक्त साधन सरकारी प्रतिभूतियों का निर्गमन समझा जाता है। इन प्रतिभूतियों की ब्याज की दरें तथा शोधन-तिथि ऐसी होनी चाहिए कि वर्तमान बचत इनकी ओर आकर्षित हो। सरकारी प्रतिभूतियों के शोधन की सुविधा केन्द्रीय बैंक द्वारा बिना किसी विलम्ब के उपलब्ध कराना चाहिए। यह प्रतिभूतियाँ केन्द्रीय बैंक एवं उसकी शाखाओं के पास विक्रय के लिए उपलब्ध

होनी चाहिए। प्रतिभूतियों का शोधन शीघ्र न मांगने हेतु उन पर उपार्जित होने वाला ब्याज समय बढ़ने के साथ बढ़ता रहना चाहिए। ग्रामीण कृषकों एव व्यापारियों के लिए ऐसी प्रतिभूतियाँ निर्गमित की जा सकती है जिनको निक्षेप रूप म रखकर कृषि एव व्यापार के लिए ऋण प्राप्त किये जा सकें। इनसे अल्पकालीन बचत विनियोजन हेतु उपलब्ध हो सकेगी। प्रतिभूतियों को आकर्षक विनियोजन बनाये रखने के लिए सरकार को सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए कि मुद्रा स्फीति का दबाव अर्थ व्यवस्था पर अधिक न हो क्योंकि मुद्रा स्फीति के फलस्वरूप इन प्रतिभूतियों का वास्तविक मूल्य कम हो जाता है और विनियोजक ऐसी प्रतिभूतियों म विनियोजन करना पसन्द नहीं करते हैं।

(आ) राजकीय बचत—राज्य को विभिन्न साधनों से आय प्राप्त होती है जिनमें से कर, शुल्क राजकीय उपक्रमों का लाभ, अर्थ दण्ड तथा हीनार्थ प्रबन्धन प्रमुख आय के साधन हैं। राजकीय बचत के साधनों म कर एक श्रेष्ठ साधन माना जाता है। कर के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से भविष्य की अर्थ व्यवस्था पर कोई भार नहीं पड़ता क्योंकि कर द्वारा प्राप्त राशि का शोधन करने का कोई भी प्रश्न नहीं उठता, परन्तु कर जनसमुदाय के आयोपार्जन करने के प्रोत्साहन से प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध होते है दूसरी ओर कर द्वारा अर्थ व्यवस्था म आर्थिक समानता उत्पन्न करना सम्भव होता है।

प्रत्यक्ष कर—प्रत्यक्ष कर द्वारा पूँजी के साधनों को प्राप्त करने हेतु सरकार को धनी वर्गों की अधिक करारोपणक्षमता पर निर्भर रहना है। धनी वर्ग के उन साधनों को जो निष्क्रिय पड़े हों अथवा जिनका राष्ट्र की दृष्टि से लाभप्रद उपयोग न होता हो, कर के रूप म प्राप्त करना आवश्यक होता है। इसके लिए अधिक आय सम्पत्ति तथा विलासताओं पर कर लगाये जा सकते हैं। ऐसे करारोपण की आवश्यकता होती है कि आय, सम्पत्ति तथा विलासताओं की वृद्धि के साथ कर की दर म वृद्धि होती रहे। इसके लिए आय कर को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है। जापान मिस्र तथा भारत म आय कर सरकारी आय का एक प्रमुख एव महत्वपूर्ण साधन है, परन्तु अन्य दक्षिण पूर्वी सुदूर पूर्वी तथा अफ्रीकी राष्ट्रों म अब भी आय कर को कोई विशेष स्थान नहीं दिया जाता है। यद्यपि आय कर आधुनिक समाजवाद की विचार धाराओं के सर्वथा अनुकूल साधन है परन्तु अल्प विकसित राष्ट्रों म प्रबन्ध सम्बन्धी, आर्थिक तथा राजनीतिक कारणों से इस कर को पूर्ण महत्व नहीं दिया जाता है।

आय कर का एकत्र करना एक जटिल कार्य होता है। इसको प्रभावशाली बनाने के लिए ऐसे संगठन की आवश्यकता होती है जिसमें अधिकारी ईमानदार तथा कर एकत्रीकरण के तौर-तरीकों मे निपुण हों। अर्द्ध विकसित राष्ट्रों म ऐसे संगठन की उपलब्धि लगभग असम्भव है। फलस्वरूप, धनिक वर्ग, जो कर बचाने की कला में अधिक निपुण होता है कर को कपटपूर्ण रीतियों द्वारा बचा लेता है और इस कर की

प्रभावशीलता समाप्त हो जाती है। धनी-वर्ग राजकीय नीतियों पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्षरूपेण नियन्त्रण रखता है तथा अधिकांश राजनीतिक दल जमींदार, उद्योगपति तथा बड़े-बड़े व्यापारियों द्वारा प्रदत्त दानों के कारण ही प्रगति करते हैं। इस कारण अल्प विकसित राज्यों की सरकारें आर्थिक विकास हेतु धनिक-वर्ग पर अधिक करारोपण नहीं कर पातीं।

अप्रत्यक्ष कर—दूसरी ओर अप्रत्यक्ष कर वस्तुओं के क्रय विक्रय उत्पादन, आयात निर्यात लाभ-कर तथा सामाजिक बीमा आदि के रूप में लगाये जाते हैं। पूँजीवादी राष्ट्रों में अप्रत्यक्ष करों को अधिक महत्व दिया जाता है क्योंकि इसके कारण धनिक-वर्ग के पास बचत के साधन उपलब्ध रहते हैं और उनको अपनी पूँजी के विनियोजन के परिणामस्वरूप अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है। नियोजित व्यवस्था और विशेषकर साम्यवादी अर्थ-व्यवस्था में राजकीय बचत को अधिक महत्व दिया जाता है अतएव कर भार भी अधिक रहता है। साम्यवादी व्यवस्था में भी अप्रत्यक्ष कर को अधिक महत्व दिया जाता है परन्तु इसका उद्देश्य व्यक्तिगत बचत को उचित अवसर प्रदान करना नहीं होता है प्रत्युत इसके कारण श्रम, योग्यता तथा उत्तरदायित्व का उचित प्रतिफल प्रदान किया जा सकता है। अप्रत्यक्ष करों द्वारा अनिवार्य बचत को प्रोत्साहन मिलता है और कर राशि के समतुल्य उपभोग में कटौती हो जाती है। जो भी अप्रत्यक्ष कर वस्तुओं पर लगाया जाता है वह वस्तुओं के विक्रय-मूल्य में जुड़ जाता है और उपभोग की वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि हो जाती है।

अन्य कर—कृषक-वर्ग की बढ़ती हुई आय में से कर भाग लेना आवश्यक होता है। इस हेतु भूमि तथा अन्य प्रकार की सम्पत्तियों पर करारोपण किया जा सकता है। इस कर में भी क्रमागत वृद्धि होनी चाहिए और इसके द्वारा ग्रामीण क्षेत्र की बचत, जो अधिकांश अनुत्पादक मदों पर व्यय की जाती है राष्ट्र निर्माण में सहायक हो सकती है परन्तु ग्रामीण क्षेत्र में कर इस प्रकार लगाये जायें कि ग्रामीण जीवन-स्तर पर किसी प्रकार का प्रभाव न पड़े उनकी आय के परिवर्तन के साथ कर में आवश्यक समायोजन किये जा सकें तथा कर का जमींदार आदि किसी अन्य वर्ग को हस्तान्तरित न कर सकें।

सम्पत्ति-कर, उन्नत कर (Betterment Levy) पूँजी-लाभ-कर (Capital Profit Tax) तथा उपभोग्य किन्तु सुधार न की गयी भूमि पर कर आदि ऐसे कर हैं, जिनका शीघ्र हिसाब लगाया जाता है। इसके साथ भूमि लगान में वृद्धि भी की जा सकती है, जो अधिक समय पूर्व निश्चित किए गये होते हैं, परन्तु कृषक-वर्ग पर, जिनमें राष्ट्र की अधिकांश जनसंख्या सम्मिलित या सम्बद्ध है करारोपण करते समय आर्थिक विचारधाराओं को ही ध्यान में न रखा जाय, प्रत्युत राजनीतिक कठिनाइयों को भी विचाराधीन करना होगा। जब तक शासन के हाथ इतने सुदृढ़ न हों कि वह जनसाधारण के विरोध का सामना कर सके और उनसे नियोजन के प्रति योग्यता प्राप्त कर सके, तब तक इस प्रकार के कर अकार्यशील एवं प्रभावहीन रहेंगे।

ऐसे राष्ट्र में जो समाजवाद के प्रति अग्रसर हो प्रत्यक्ष कर को अधिक महत्व दिया जाता है क्योंकि यह केवल आय प्राप्ति के ही साधन नहीं होते अपितु आर्थिक विषमता कम करने में भी सहायक होते हैं। प्रत्यक्ष कर वाछित वर्गों पर लगाना सम्भव होता है और इसका प्रशासन मितव्ययतापूर्ण होता है। इसके सम्बन्ध में ठीक ठीक अनुमान लगाये जा सकते हैं और इसमें कमी या वृद्धि करना सम्भव होता है। प्रत्यक्ष करों को कर दाता किसी अन्य व्यक्ति पर चालित (Shift) नहीं कर सकता। इसके साथ ही कर दाता में देश और मे जनता के प्रति अपने योगदान का आभास रहता है और वह सरकार की नीतियों का आलोचनात्मक अध्ययन करता है। दूसरी ओर अप्रत्यक्ष कर के द्वारा सरकार प्रत्येक व्यक्ति से कर वसूल करती है और इसलिए इनका प्रशासन व्यय अधिक होता है। कर दाता का कर का भार ज्ञात नहीं होता परन्तु ऐसे कर का चालित करना सम्भव होता है और इसका अन्तिम भार उपभोक्ता को ही उठाना पडता है।

आर्थिक विकास के कार्यक्रमों के लिए करों द्वारा अधिक से अधिक साधन प्राप्त किए जाने चाहिए परन्तु करारोपण की कुछ सीमाएं भी हैं जिनमें जन साधारण की आय एवं जीवन स्तर के अनुसार कर दयक्षमता सरकार की राजनीतिक सुदृढ़ता तथा प्रशासनिक व्यवस्था की कुशलता प्रमुख हैं। करों द्वारा वर्तमान उपभोग को कम करके भविष्य के उपभोग को बढ़ाने के साधन जुटाये जाते हैं।

शुल्क (Fees)—सरकार द्वारा साधारणत ऐसे कार्यक्रमों का सचालन किया जाता है जिनसे समस्त जनसमुदायों को लाभ हो परन्तु सरकार के कुछ कार्य ऐसे भी है जिनसे कुछ विशेष व्यक्तियों को भी लाभ होता है और इस विशेष सुविधा का उपयोग करने के लिए उनसे शुल्क (Fees) लिया जाता है।

शासकीय उद्योगों के लाभ—शासकीय उद्योगों के लाभ को प्राय वस्तुओं और सेवाओं के गुणों में वृद्धि करने तथा उनके मूल्य घटाने में उपयोग किया जाता है परन्तु नियोजित अर्थ-व्यवस्था में इन लाभों को आर्थिक विकास के कार्यक्रमों में विनियोजित किया जा सकता है। अल्प विकसित राष्ट्रों में शासकीय क्षेत्र अत्यन्त सीमित होता है तथा इसके द्वारा केवल आवश्यक सेवाओं अथवा वस्तुओं का उत्पादन तथा नियन्त्रण किया जाता है। शासकीय उद्योगों के लाभ में जन हितार्थ वृद्धि करने के लिए आवश्यक सेवाओं तथा वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि करना भी आवश्यक होता है। इस प्रकार की वृद्धि से उपभोग में अनिवार्यरूपेण कटौती होती है। प्रजातान्त्रिक अल्प विकसित समाज में इस प्रकार की कार्यवाही करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है क्योंकि जनसाधारण जिसका जीवन-स्तर पूर्व से ही निम्नतम एवं न्यूनतम है उपभोग की और अधिक कटौती को सहन के योग्य नहीं होता है। फलस्वरूप उत्कट विरोधी भावनाएं जाग्रत होती हैं जो दीर्घ काल में तो हानिप्रद होती ही हैं।

कर एव बचत की तुलनात्मक श्रेष्ठता

ऐच्छिक बचत एव कर में से किस को विकास के लिए वित्त प्राप्त करने का श्रेष्ठ साधन माना जाय—इस प्रश्न के उत्तर मे यही कहा जा सकता है कि इन साधनो म से, जिनसे की विनियोजन वृद्धि बिना मुद्रा प्रसार की जा सकती है, उस ही श्रेष्ठ वित्त साधन माना जाना चाहिए। करारोपण द्वारा या तो जनसमुदाय की बचत को कम कर दिया जाता है या फिर उनके वतमान उपभोग म कमी आती है। यदि कर बचत की जान वाली राशि म से दिये जायें तो विकास वित्त मे कर के द्वारा कोई वृद्धि नही होती है, बल्कि बचत का रूप कर म परिवर्तित हो जाता है और जनसमुदाय अपने आपको अधिक निर्धन समझने लगता है। दूसरी ओर बचत स जनसमुदाय की तरल सम्पत्तियो म वृद्धि होती है और सम्पन्नता की भावना जाग्रत होती है। वास्तव म, कर एक विवशतापूर्ण बचत का रूप ग्रहण करता है जिसके फलस्वरूप जन-समुदाय की व्यय करने की क्षमता म कमी होती है। दूसरी ओर बचत एच्छिक होने के कारण व्यय करने की क्षमता को इतना ही कम करती है कि जनसमुदाय क जीवन स्तर पर बुरा प्रभाव न पडे। साधारणत उच्च आय वाले वग बचत करते हैं और निम्न आय वाले वग अपनी आय का सम्पूर्ण भाग व्यय कर देते हैं। इस प्रकार यदि मुद्रा-स्फीति के बिना ही विकास के लिए वित्त प्राप्त करना हो तो निम्न आय वाले वग से बचत एव कर प्राप्त करने की आवश्यकता होती है क्योंकि जितना भाग इनकी आय से कर एव बचत के रूप म ले लिया जाता है, उस सीमा तक उपभोग की वस्तुओं की माग कम रहती है और मूल्यों मे वृद्धि नहीं हो पाती है।

करारोपण एव मुद्रा-स्फीति का दबाव—विकास वित्त प्राप्त करने हतु जो करारोपण किया जाता है, इसके सम्बन्ध मे निम्न बातो पर विशेष रूप से विचार किया जाता है—(१) करारोपण द्वारा मुद्रा प्रसार के दबाव पर क्या प्रभाव पडता है ? (२) करारोपण अधिक उत्पादन एव आयोपाजन क प्रयासों को प्रोत्साहित करता है या नहीं तथा ( ) करारोपण से आय के समान वितरण पर क्या प्रभाव पडता है ? कर की मात्रा मे वृद्धि द्वारा उत्पन्न कर सग्रह करने की क्रिया से मुद्रा-स्फीति का दबाव नही बढता है। कर-सग्रह की क्रिया एव उसके द्वारा प्राप्त वित्त के व्यय करने की विधियों से अथ व्यवस्था के मूल्य स्तर पर प्रभाव पडता है। कर से प्राप्त होन वाली आय सरकार द्वारा विभिन्न आर्थिक कार्यक्रमों पर व्यय की जाती है जिसके फलस्वरूप जनसमुदाय के निम्न आय वाले वग की आय म वृद्धि होती है और यह आय की वृद्धि उपभोग पर ही व्यय की जाती है क्योंकि इस वग म उपभोगक्षमता (Propensity to Consume) अधिक होती है। दूसरी ओर, कर म वृद्धि करने से उत्पादक भी अपनी वस्तुओं एव सेवाओं का मूल्य बढा देते हैं जिसके फलस्वरूप प्रारम्भिक अवस्था मे वस्तुओं की माग कम हो जाने के कारण उत्पादन भी कम हो जाता है। इस प्रकार एक ओर व्यय करने वाले वग के हाथ म अधिक मौद्रिक आय होती है और

दूसरी ओर, उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि नहीं की जाती है। यह दोनों घटक अर्थ-व्यवस्था में मूल्य स्तर ऊँचा रखने में सहायक होते हैं।

विकास सम्बन्धी वित्त के लिए जो अतिरिक्त करारोपण किया जाता है वह प्रायः उस समुदाय से प्राप्त किया जाता है जो अधिक आय वाला वर्ग है और जो धन की बचत करता है। दूसरी ओर सरकार अतिरिक्त कर से प्राप्त धन को या तो निर्धन वर्ग को आवश्यक सेवाएं उपलब्ध कराने या फिर ऐसी आर्थिक क्रियाओं पर व्यय करती है जिनके द्वारा रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है और निर्धन वर्ग के लोगों की भृति एवं वेतन के रूप में अधिक आय प्राप्त होती है। इस प्रकार अतिरिक्त करारोपण आय का स्थानान्तरण बचत करने वाले समुदाय से व्यय करने वाले समुदाय को करता है जिसके फलस्वरूप मुद्रा स्फीति का दबाव बढ़ जाता है। यदि कर से प्राप्त वित्त का व्यय इस प्रकार किया जाय कि आय का पुनर्वितरण न हो तो साधारणतः अतिरिक्त करारोपण मुद्रा स्फीति के दबाव को कम करने में सहायक हो सकता है। अतिरिक्त करारोपण के फलस्वरूप अर्थ व्यवस्था में मुद्रा के प्रवाह में कमी होती है और अल्प काल में वस्तुओं एवं सेवाओं की पूर्ति में तदनुसार कमी करना सम्भव नहीं होता है। ऐसी परिस्थिति में अर्थ व्यवस्था मुद्रा के प्रवाह की कमी की पूर्ति बैंक साख द्वारा करने का प्रयत्न करती है और यदि मौद्रिक नियन्त्रणों द्वारा साख के विस्तार को बढ़ने से रोक दिया जाय तो मूल्यों में वृद्धि नहीं हो पाती है। इस विवेचन से यह सिद्ध होता है कि अतिरिक्त करारोपण के द्वारा मुद्रा स्फीति के दबाव को रोकने हेतु मौद्रिक नियन्त्रणों का उचित उपयोग करना चाहिए परन्तु जब अतिरिक्त करारोपण द्वारा उत्पादन क्रियाएं एवं जोखिम लेने के प्रयास हतोत्साहित होते हैं तो मुद्रा के प्रवाह की कमी से कहीं अधिक वस्तुओं एवं सेवाओं की पूर्ति में कमी हो जाती है। यदि पूर्ति की कमी के फलस्वरूप बेरोजगारी में वृद्धि नहीं होती है तो उपर्युक्त परिस्थितियों में अन्तर्गत अतिरिक्त करारोपण मुद्रा स्फीति के दबाव को बढ़ाने में सहायक होता है परन्तु पूर्ति में कमी होने से प्रायः बेरोजगारी में वृद्धि हो जाती है जिसके फलस्वरूप अर्थ व्यवस्था में पूर्ति के अनुसार माँग में भी कमी हो जाती है और मुद्रा-स्फीति का दबाव बढ़ने नहीं पाता है।

(१) अतिरिक्त करारोपण का निजी विनियोजन पर प्रभाव

जब लाभ पर अतिरिक्त करारोपण किया जाता है तो स्थिर अर्थ-व्यवस्था में साहसियों द्वारा पूँजी विनियोजन करने का प्रोत्साहन कम हो जाता है और अन्ततः उत्पादन भी कम होने लगता है और उपभोग के लिए उपलब्ध वस्तुओं एवं सेवाओं में इतनी अधिक कमी हो जाती है कि कर द्वारा उत्पन्न की गयी मुद्रा के प्रवाह की कमी का कोई प्रभाव नहीं रह जाता है और अर्थ-व्यवस्था में मूल्य-स्तर बढ़ने लगता है परन्तु एक विकासशील अर्थ-व्यवस्था में परिस्थितियाँ कुछ भिन्न होती हैं। विकासशील अर्थ व्यवस्था में अतिरिक्त कर से प्राप्त वित्त को सरकार विनियोजित

करती है जिसके फलस्वरूप पूँजीगत एवं उत्पादक-वस्तुओं के उत्पादन में शीघ्र काल में वृद्धि होती है। इस प्रकार लाभ पर अतिरिक्त करारोपण द्वारा विनियोजन निजी क्षेत्र से हटकर सरकारी क्षेत्र में चला जाता है और उपभोक्ता-वस्तुओं के उद्योगों के स्थान पर पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन करने हेतु विनियोजन किया जाता है। इस प्रकार के सरकारी विनियोजन का जब लाभ का, या श्रमिकों की भृति एवं वेतन के रूप में दिया जाता है या आच्छादित (Covered) करने के लिए उपभोग्य-वस्तुओं के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि नहीं होती है और इस प्रकार मूल्यों की वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है परन्तु कर से प्राप्त वित्त का यदि कुछ ही भाग इस प्रकार भृति एवं वेतन के रूप में दिया जाय तब अतिरिक्त कर द्वारा उत्पन्न मुद्रा के प्रवाह की कमी के फलस्वरूप हुई माँग की कमी अधिक भृति एवं वेतन की माँग से उत्पन्न हुई माँग की वृद्धि से कहीं अधिक रहती है और इस प्रकार मुद्रा-स्फीति का दबाव कुछ सीमा तक घट जाता है।

(४) अतिरिक्त करारोपण का प्रोत्साहन पर प्रभाव

कर एवं मौद्रिक नीति निर्धारित करते समय नियोजन-अधिकारी को केवल मूल्य-स्तर पर पड़ने वाले प्रभावों पर ही विचार नहीं करना होता अपितु प्रोत्साहनों साधनों के गठन तथा आय के वितरण पर पड़ने वाले प्रभावों पर भी विचार करना होता है। साधारणतः अतिरिक्त करारोपण लाभ कम करने अथवा जोखिम लेने के प्रोत्साहन को कम करता है और नियोजन-अधिकारी इस बात का प्रयत्न करता है कि इस प्रकार कर प्रणाली को अपनाये कि एक ओर मुद्रा एवं मूल्य प्रसार का दबाव न बढ़े और दूसरी ओर अधिक आय करने व्यापारी एवं उद्योगपति अधिक देने हेतु अधिक उत्पादन करने तथा उच्च आय वाले वर्गों को बचत एवं विनियोजन करने के लिए हतोत्साहित न होना पड़े। प्रोत्साहन को बनाये रखने के लिए सरकार द्वारा कृषकों, उद्योगपतियों, व्यापारियों एवं श्रमिकों को विभिन्न सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। इन सुविधाओं में उद्योगपतियों एवं कृषकों को साख सम्बन्धी सुविधाएँ और श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा का आयोजन किया जाता है। इन सभी सुविधाओं का आयोजन मूल्य-स्तर को ऊँचा करने में सहायक होता है और नियोजन अधिकारियों का यह कर्तव्य होता है कि वह करारोपण एवं साख-सुविधाओं में इस प्रकार समन्वय स्थापित करें कि मुद्रा-स्फीति दबाव के रोकने के साथ प्रोत्साहन को आघात न पहुँचे। इसके अतिरिक्त कर नीति निर्धारित करते समय यह भी विचार किया जाना चाहिए कि उत्पादक-साधनों का उपयोग वांछित क्षेत्रों में होता रहे और इनके फलस्वरूप साधनों द्वारा स्थानान्तरण (Shifting) अवांछित क्षेत्रों में न किया जाय।

प्रोत्साहन-सम्बन्धी करारोपण के रूप

प्रोत्साहन-सम्बन्धी करारोपण के साधारणतः पाँच रूप हो सकते हैं—

(१) करों में सामान्य कमी—करों की दरों में सामान्य कमी करके अधिक

उत्पादन को प्रोत्साहित करने की विधि को विकासशील अर्थ-व्यवस्था में उपयुक्त नहीं समझा जाता है क्योंकि इसके द्वारा एक ओर सरकार को विकास वित्त कम प्राप्त होता है और दूसरी ओर कर से बची हुई राशि का उपयोग उपभोग-व्यय पर किया जाने लगता है और वस्तुओं का उत्पादन उपभोग-व्ययवृद्धि के अनुकूल नहीं हो पाता है जिससे मुद्रा स्फीति का दबाव बढ़ जाता है। इसी कारण कर की दरों में सामान्य कमी के स्थान पर चुनी हुई छूटों को अधिक महत्व दिया जाता है।

(२) चुने हुए विशिष्ट करों में कमी—इस विधि का उपयोग नवीन विनियोजन पर उपार्जित होने वाली आय को सन्तुलित करने के लिए किया जाता है। ऐसे उद्योग जिनके उत्पादन या माग एवं उत्पादन में उच्चावचन अत्यधिक होते हैं उनके लाभ पर कर कुछ वर्षों के औसत लाभ के आधार पर लिया जा सकता है। यह प्रोत्साहन विधि खनिज निकालने, खनिज तेल आदि उद्योगों के लिए अधिक उपयुक्त है।

(३) नवीन विनियोजन को कर से मुक्ति—नवीन विनियोजन को अधिक जोखिमपूर्ण होने के कारण कर से कुछ वर्षों के लिए मुक्त रखा जाता है। कुछ उद्योगों के लिए सामान्य से अधिक उत्पादन करने पर कर की दर कम कर दी जाती है जिससे यह उद्योग नवीन तान्त्रिकताओं का उपयोग करके उत्पादन में वृद्धि कर सकें परन्तु इस विधि के लिए यह अत्यावश्यक है कि नवीन विनियोजन की परिभाषा में ऐसे ही उद्योग सम्मिलित किये जायं जिनमें (अ) बिना कर की मुक्ति के विनियोजन किया जाना सम्भावित न हो (आ) जिनमें जोखिम अधिक हो तथा (इ) जो अपने जीवन में प्रारम्भिक काल में पर्याप्त लाभोपार्जन नहीं कर सकते हैं। ऐसे उद्योग जो अपने प्रारम्भिक काल में बिल्कुल लाभोपार्जन नहीं करते हैं उन्हें कर से मुक्त करना व्यर्थ ही है क्योंकि लाभ न होने पर उन पर करारोपण किया ही नहीं जाता।

विनियोजन का समय एवं प्रकार नियन्त्रित करने के लिए भी इस विधि का उपयोग किया जाता है। नियोजन अधिकारी जिन उद्योगों की स्थापना एवं विस्तार को अधिक महत्व देता है उनके सयन्त्रादि पर कर की गणना के लिए अधिक ह्रास स्वीकृत किया जा सकता है। यह विधि शान्तिकाल की अर्थ-व्यवस्था को सुरक्षा सम्बन्धी अर्थ-व्यवस्था में परिवर्तित करने के लिए भी उपयोग की जाती है। दूसरी ओर विनियोजन का समय नियन्त्रित करने हेतु समामेलित संस्थाओं एवं सहकारी संस्थाओं को अपने लाभ में कुछ भाग विशेष संचिति के रूप में रखने पर उतने भाग पर कर से छूट दी जा सकती है। इन संचितियों के विनियोजन के प्रकार एवं समय को सरकार नियन्त्रित करती है। इस प्रकार कर की छूट द्वारा विनियोजन के समय एवं प्रकार को नियन्त्रित किया जा सकता है।

(४) ऐसा करारोपण जिससे बचने के लिए जनसमुदाय को वांछित कार्य करना

पड़े—इस प्रकार के कर प्राय: दण्ड का रूप ग्रहण करते हैं। उदाहरणार्थ, धन एवं वस्तुओं के निश्चित भाग से अधिक संग्रह करने पर करारोपण किया जा सकता है। इसी प्रकार सम्पत्तियों पर उनकी तरलता एवं जोखिम के आधार पर करारोपण किया जा सकता है। रोकड़ शेष, कच्चे माल एवं उपयोग न किए जाने वाली भूमि पर कर की दर ऊँची रखी जा सकती है जबकि उत्पादक-सम्पत्तियों पर कर की दरें अत्यन्त कम रखी जा सकती हैं। इस प्रकार बचत का उत्पादक विनियोजन की ओर आकर्षित किया जा सकता है।

(५) **प्रोत्साहन कर जिनके द्वारा करदाता को उत्पादन बढ़ाने के लिए विवश किया जाता है**—यह कर प्राय: प्रति व्यक्ति अथवा एक मुश्त राशि कर (Lump sum Tax) के रूप में लगाये जाते हैं और इनमें उत्पादन के घटने अथवा बढ़ने पर कोई परिवर्तन नहीं किया जाता है। कृषि-क्षेत्र में यह कर प्राय: प्रति एकड़ भूमि पर लगाया जाता है। करों के भार को वहन करने हेतु करदाता को अपने उत्पादन में वृद्धि करनी पड़ती है।

अल्प विकसित राष्ट्रों में अप्रत्यक्ष करों पर अधिक निर्भर रहा जाता है जबकि विकसित राष्ट्र प्रत्यक्ष करों को अधिक महत्व देते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि कर से प्राप्त होने वाली आय में प्रत्यक्ष करों की दर में वृद्धि द्वारा पर्याप्त वृद्धि करना सम्भव नहीं होता है क्योंकि अधिक आय एवं सम्पत्ति वाला वर्ग बहुत ही छोटा होता है।

(६) **मुद्रा प्रसार द्वारा प्राप्त बचत (घाटे का अर्थ-प्रबन्धन) (Deficit Financing)**—कर तथा बचत द्वारा पर्याप्त साधन प्राप्त न होने की दशा में अल्प विकसित राष्ट्रों की सरकारें 'घाटे की अर्थ-व्यवस्था' (Deficit Financing) द्वारा पूँजी साधनों में वृद्धि कर सकती हैं। प्राय: घाटे की अर्थ-व्यवस्था का उपयोग युद्ध के लिए आर्थिक साधन जुटाने तथा मन्दीकाल (Depression) में शासकीय व्यय में वृद्धि करके रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए किया जाता था। आधुनिक युग में इस व्यवस्था का उपयोग राष्ट्रों के आर्थिक विकास हेतु भी किया जाने लगा है। जैसा पहले संकेत किया गया है, अल्प विकसित राष्ट्रों में ऐच्छिक बचत में पर्याप्त वृद्धि करना सम्भव नहीं होता क्योंकि जनसाधारण की प्रति व्यक्ति आय अत्यन्त कम होती है तथा स्वभाव रूढ़िवादी होते हैं। दूसरी ओर पूँजी की कमी को विदेशी सहायता द्वारा पूर्ण किया जा सकता है किन्तु विदेशी पूँजी के साथ अनेक राजनीतिक तथा सामाजिक प्रतिबन्ध होते हैं, जिनके कारण उसका उपयोग अधिक समय तक नहीं किया जा सकता। ऐसी परिस्थिति में राज्य मुद्रा की मात्रा में वृद्धि करके खुले बाजार से साधनों का क्रय करता है और पूँजी के निर्माण में उपयोग करता है। इस प्रकार एक ओर, अर्थ व्यवस्था में मुद्रा के प्रदाय (Supply) में वृद्धि होती है तथा दूसरी ओर, उपभोग के लिए प्राप्त वस्तुओं के उत्पादनार्थ प्राप्त साधनों को पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन में सम्बद्ध किया जाता है। फलस्वरूप उपभोक्ता वस्तुओं की अर्थ-व्यवस्था में कमी हो जाती है। अधिक उपलब्ध साधनों को विकास सम्बन्धी कार्यों में उपयोग

किये जाने से लोगों की सामान्य आय में वृद्धि होती है और उनके द्वारा वस्तुओं की मांग अधिक की जाती है। इस प्रकार वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि होने से जनसाधारण अल्प मात्रा में उपभोग कर पाता है। परिणामस्वरूप, उनको एक विवशतापूर्ण बचत करने को बाध्य होना पड़ता है। प्रजातान्त्रिक राष्ट्र में जहाँ के अधिवासी ऐच्छिक बचत तथा अधिक कर भार वहन करने को तत्पर नहीं होते हैं वहाँ इस प्रकार विवशतापूर्ण बचत कराना जन हित एवं आर्थिक विकास हेतु अत्यावश्यक है। अधिनायकवादी व्यवस्था में भी योजना के अभिलाषी कार्यक्रमों की पूर्ति में घाटे का अर्थ प्रबन्धन किया जाता है। घाटे के अर्थ प्रबन्धन का विस्तृत अध्ययन एक पृथक अध्याय में किया गया है।

साधारण शब्दों में यह कहा जा सकता है कि विकास व्यय जो घाटे के अर्थ-प्रबन्धन द्वारा किया जाता है एवं अस्थायी रूप से उस अवधि में जो अतिरिक्त आय की पुष्टि करने के लिए उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि करने में उपयोग किया जाता है, मूल्यों में वृद्धि का कारण होता है। यदि विकास-व्यय के अधिकतर भाग के लिए सरकार उत्तरदायी हो तथा वह विकास कार्यक्रमों को बजट के साधनों को दृष्टिगत न करते हुए प्रभावशील एवं मापशील युक्तियों एवं विधियों से सचालित करती है यदि वह निजी विनियोजन को नियन्त्रित करके निजी पूंजी को अविवेकपूर्ण उत्पादन से रोक कर राष्ट्रीय विकास कार्यों में विनियोग करती है यदि वह मूल्यों की उच्चतम सीमा निश्चित करती है यदि वह आवश्यक वस्तुओं आदि के वितरण का प्रबन्ध करके मूल्य वृद्धि को रोकती है यदि वह आयात की मात्रा तथा प्रकार पर नियन्त्रण कर सकती है, यदि उसके द्वारा विकास कार्य युद्ध की आवश्यक परिस्थितियों के समान संचालित किया जाता है तभी घाटे के अर्थ प्रबन्धन का उपयोग आर्थिक विकास में सराहनीय वाञ्छनीय एवं सहायक सिद्ध होगा। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि घाटे का अर्थ प्रबन्धन अनुभवी एवं निपुण तथा कार्यकुशल हाथों में विकास पथ पर अग्रसर राष्ट्र हेतु वरदान सिद्ध होगा अन्यथा विकास की चरम सीमा पर पहुँचे राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था को छिन्न भिन्न कर सकने की क्षमता वाला अभिशाप भी हो सकता है।

बजट के साधनों की पारस्परिक तुलना—कर शुल्क जन ऋण और व्यापक दृष्टिकोण में घाटे का अर्थ प्रबन्धन बजट के साधन समझे जाते हैं। इन साधनों की पारस्परिक तुलना करने पर ज्ञात होता है कि कर एवं शुल्क को अर्थ प्रबन्धन के साधनों में सर्वश्रेष्ठ मानना चाहिए परन्तु निर्धन राष्ट्रों में जन साधारण की निर्धनता के कारण कर मुक्त सीमा तक भी बढ़ाये जाते हैं। करारोपण से एक ओर अर्थ साधन उपलब्ध होते हैं और दूसरी ओर, आर्थिक विषमताओं को कम करने में सहायता मिलती है। यह दोनों कार्य अन्य किसी अर्थ प्रबन्धन की व्यवस्था व प्रभावशीलता के साथ सम्पन्न नहीं किये जाते। जन ऋण द्वारा केवल वर्तमान में ही जन समुदाय की बचत को विकास के लिए उपयोग किया जा सकता है परन्तु जन ऋण की राशि

भार अधिकांश अन्तिम रूप से विनियोक्ताओं का ही पड़ता है और इस प्रकार आर्थिक विषमताओं को कम करने में प्रत्यक्ष रूप से कोई सहायता नहीं मिलती। घाटे के अर्थ-प्रबन्धन द्वारा मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होने से बाजार मूल्यों में वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप समस्त जनसमुदाय को अपनी आय व प्रतिफल में कम वस्तुएँ प्राप्त होती हैं अर्थात् मूल्यों की वृद्धि की सीमा तक उन्हें अनिवार्य रूप से अंशदान करना होता है। इस प्रकार घाटे का अर्थ-प्रबन्धन अप्रत्यक्ष कर का रूप धारण कर लेता है और इसका भार निर्धन व धनी दोनों ही वर्गों पर पड़ता है, परन्तु निर्धन-वर्ग एवं निश्चित आय वाले वर्ग को अधिक कठिनाई होती है। इस प्रकार घाटे के अर्थ-प्रबन्धन से अर्थ-साधन तो उपलब्ध हो जाते हैं परन्तु आर्थिक विषमता कम नहीं होती और मुद्रा-स्फीति का भय बना रहता है। जन-ऋण के अन्तर्गत सरकार निजी उप-भोग-व्यय का प्रतिस्थापन सरकारी व्यय से करती है जबकि घाटे के अर्थ-प्रबन्धन में भी इसी विधि का अनुसरण होता है परन्तु मुद्रा-स्फीति के भय के साथ। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि घाटे के अर्थ-प्रबन्धन का उपयोग सीमित मात्रा में अन्य साधनों से पर्याप्त अर्थ न प्राप्त होने पर ही किया जाना चाहिए।

(ई) **विदेशी मुद्रा की बचत**—अल्प विकसित राष्ट्रों के विकास के लिए पूँजी-गत वस्तुओं का आयात सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। पूँजीगत तथा उत्पादक वस्तुओं के अभाव में जिनको अल्प विकसित राष्ट्रों में निर्मित नहीं किया जाता आर्थिक विकास के किसी भी कार्यक्रम का सफल संचालन सम्भव नहीं। जब तक लोहा एवं इस्पात, इंजीनियरिंग, यन्त्र एवं कल भारी उत्पादन आदि उद्योगों की प्रगति नहीं की जाती औद्योगीकरण किया जाना असम्भव है। इन सभी प्रमुख आधारभूत उद्योगों के लिए आवश्यक पूँजीगत वस्तुओं के आयात का प्रबन्ध विदेशों से किया जाना अनिवार्य है। अल्प विकसित राष्ट्रों में प्रायः कच्चे माल तथा कृषि-उत्पादन का निर्यात तथा निर्मित उपभोग्य तथा अन्य वस्तुओं का आयात किया जाता है। यही अल्प-विकसित राष्ट्रों की सबसे बड़ी आर्थिक दुर्बलता होती है जिसका साम्राज्यवादी राष्ट्र निरन्तर लाभ उठाते हैं तथा अल्प-विकसित राष्ट्रों के विकास-कार्यों को विफल करने हेतु सतत् प्रयत्न-शील रहते हैं। यदि विदेशी व्यापार में अनुकूल परिस्थितियाँ हों तो प्राथमिक वस्तुओं (Primary Goods) के निर्यात-आधिक्य द्वारा पूँजी-निर्माण सम्भव है क्योंकि इससे विदेशी पूँजी की प्राप्ति होती है। यदि सरकार अपनी राजकर-नीति (Fiscal Policy) द्वारा आवश्यक नियन्त्रण रखे तो यह आधिक्य उपभोग्य-वस्तुओं के आयात पर व्यय नहीं किया जायगा परन्तु इस प्रकार के आधिक्य से पूँजी-निर्माण अनन्त अनिश्चित रहता है क्योंकि यदि प्राथमिक वस्तुओं का निर्यात लाभप्रद होता है तो लोग अपने साधनों को माध्यमिक व्यवसायों (Secondary Industries) अर्थात् उद्योगों में विनियोजित नहीं करते और अनुकूल विदेशी व्यापार की दशा में भी देश का औद्योगी-करण सम्भव नहीं होता।

विदेशी मुद्रा की प्राप्ति की विधियाँ

विकास के लिए आवश्यक विदेशी मुद्रा निम्नलिखित पाँच विधियों में प्राप्त की जा सकती है—

(१) विदेशी वस्तुओं एवं सेवाओं के आयात पर नियन्त्रण,

(२) निर्यात में वृद्धि,

(३) विदेशी निजी विनियोजन

(४) विदेशी ऋण एवं सहायता

(५) विदेशी व्यवसायों का अपहरण (Confiscation of Foreign Enterprises)।

राज्य नीति एवं विदेशी व्यापार—प्रत्येक परिस्थिति में यह आवश्यक होता है कि अल्प विकसित राष्ट्र की सरकार को तटकर नीति द्वारा विदेशी व्यापार से अर्जित विदेशी मुद्रा का नियोजित अर्थ-व्यवस्था की आवश्यकतानुसार उपयोग प्रतिबन्धित करना चाहिए। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में विदेशी व्यापार पर नियन्त्रण करना सरकार के लिए आवश्यक है। आयात के नियन्त्रणार्थ प्रशुल्क (Tariffs) कोटा निश्चित करना, अनुमति पत्र (Licence) निर्गमित (Issue) करना विदेशी मुद्रा पर नियन्त्रण रखना मुद्रा प्रवंचन करना राज्य द्वारा आयात पर एकाधिकार (Monopoly) प्राप्त करना आदि शस्त्र उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। प्रशुल्क अशत राजकीय आय में वृद्धि हेतु तथा अशत किन्हीं विशेष वस्तुओं के आयात अवरोध हेतु लगाये जाते हैं। प्रशुल्क दर प्राय उन वस्तुओं पर ऊँची होती है जिनका उत्पादन राष्ट्र में हो सकता है तथा प्रारम्भिक अवस्था में विदेशी स्पर्धा हानिकारक होती हो, परन्तु प्रशुल्क का प्रभाव बड़ी सीमा तक नष्ट हो जाता है यदि राष्ट्रीय उत्पादन अधिक मूल्य पर विदेशी वस्तुओं का विक्रय करते हैं अथवा निर्माण पर उत्पादन कर (Excise Duty) आरोपित किया जाता है। कोटा निश्चित करने के दो उद्देश्य होते हैं—प्रथम किसी विशेष वस्तु की समस्त आयात की मात्रा को सीमित करना तथा द्वितीय इस आयात की मात्रा को विभिन्न निर्यातक राष्ट्रों में वितरित करना। अनुमतिपत्र निर्गमन में शासन अपने किसी अधिकारी को आयात करने की आवश्यकताओं की छानबीन करने तथा निश्चित सीमाओं के अन्दर अनुमति पत्र निर्गमित करने हेतु नियुक्त कर देता है। इस विधि द्वारा विदेशी मुद्रा की राशनिंग योजना भी कार्यान्वित की जाती है। विदेशी मुद्रा के उपयोग पर नियन्त्रण रखने के लिए प्राय केन्द्रीय बैंक को अधिकार दिया जाता है कि समस्त विदेशी व्यवहारों का भुगतान (Payment) इसके द्वारा होना चाहिए। यदाकदा और प्राय साम्यवादी राष्ट्रों जैसे रूस में एक शासकीय अधिकारी अथवा संस्था की नियुक्ति की जाती है जो समस्त विदेशी व्यापार का स्वयं देन की आवश्यकतानुसार करने के लिए उत्तरदायी होता है। यह अधिकारी एक पूर्ण विभाग अथवा सहकारी संस्था भी हो सकती है। इस अधिकारी के अधिकार विदेशी व्यापार

के साथ-साथ स्वदेशी उत्पादन एवं विक्रय के नियन्त्रण तक विस्तृत होने चाहिए, जिससे वह राष्ट्रीय उत्पादन तथा माँग की मात्रा के आधार पर आयात की मात्रा का निर्धारण कर सके।

(१) राजकीय आयात नीतियाँ एवं विदेशी अर्थ साधन—उपर्युक्त आयात-नियन्त्रण की विधियाँ पूँजी निर्माण में निम्नलिखित रूप से सहायक होती हैं—

(अ) प्रशुल्क तथा अनुज्ञा-पत्र निर्गमन द्वारा सरकार को अधिक आय प्राप्त होती है जिसका पूँजीगत वस्तुओं के लिए उपयोग किया जा सकता है।

(आ) आयात नियंत्रण द्वारा दो प्रकार के उद्योगों का विकास सम्भव किया जाता है—नवीन उद्योग और रक्षा-सम्बन्धी तथा आधारभूत उद्योग। इन उद्योगों को संरक्षण प्राप्त होने पर इनमें विनियोजित पूँजी कम जोखिमपूर्ण होती है। सुरक्षा के कारण विनियोजक को प्रोत्साहन मिलता है तथा उद्योगों की ओर आकर्षित होता है। इसके साथ ही, संरक्षित उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के मूल्य प्रशुल्क लगाए जाने के कारण अथवा न्यून-पूर्ति के कारण अधिक होता है तथा प्रारम्भिक अवस्था में स्वदेशी उत्पादक भी समुचित विदेशी प्रतिस्पर्धा के अभाव में अपनी वस्तुओं का विक्रय अधिक मूल्य पर करते हैं। इस प्रकार इन वस्तुओं का अधिक मूल्य होने के कारण इनका उपभोग कम होता है और लोग अपने साधनों को अन्य कार्यों में लाते हैं अथवा बचत के रूप में रखते हैं। दूसरी ओर, संरक्षित उद्योगों के विकास से रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है एवं श्रमिकों तथा साहसी की आय में वृद्धि होती है। यह आय-वृद्धि अधिक उपभोग अथवा अधिक बचत का रूप ग्रहण करती है। अधिक उपभोग भी दीर्घ काल में अधिक विनियोजन का कारण बन जाता है।

(इ) जब संरक्षण पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगों को प्रदान किया जाता है तो थोड़े ही समय में पूँजीगत वस्तुएँ अधिक मात्रा में कम मूल्य पर उपलब्ध होती हैं। परिणामस्वरूप, औद्योगिक इकाइयों में वृद्धि तथा नवीन उद्योगों की स्थापना होती है। इस प्रकार जिस संचित पूँजी का विनियोजन पूँजीगत वस्तुओं की अनुपस्थिति में अभी तक सम्भव नहीं होता था वह भी क्रियाशील होकर पूँजी निर्माण का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग बन जाता है।

(ई) आयात की मात्रा सीमित करने से विदेशी व्यापार का अनुकूल शेष (Favourable Balance of Trade) हो जाता है। इस प्रकार अर्जित विदेशी मुद्रा का उपयोग पूँजीगत वस्तुओं के आयात हेतु किया जा सकता है।

(उ) आयात नियन्त्रण द्वारा अनावश्यक विलासिता तथा उपभोग की वस्तुओं के आयात को सीमित किया जाता है। इनके स्थान पर पूँजीगत वस्तुओं तथा ऐसे कच्चे माल के आयात में वृद्धि की जाती है जिनका उत्पादन देश में नहीं होता। इस प्रकार आयात के प्रकार में परिवर्तन से पूँजी-निर्माण में सहायता प्राप्त होती है।

(ऊ) विलासिता की वस्तुओं के आयात को सीमित अथवा सर्वथा अवरुद्ध

कर दिया जाता है और इस प्रकार धनिक वर्ग के हाथों की उस क्रय शक्ति को जो विलासिता की वस्तुओं पर निरर्थक अपव्यय होती है पूंजी निर्माण की ओर आकर्षित किया जा सकता है।

(२) **राजकीय निर्यात नीतियां एवं अर्थ साधन**—अब हम तटकर नीति में निर्यात की ओर विचार कर सकते हैं। आधुनिक युग में प्रत्येक देश आयात को कम करने तथा निर्यात की वृद्धि करने को प्रयत्नशील रहता है। निर्यात नियन्त्रणार्थ निर्यात कर, निर्यात अनुज्ञापत्र, कोटा निश्चयीकरण आदि विधियों का उपयोग किया जाता है। ऐसे उद्योगों को आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है जो निर्यात योग्य पदार्थों का निर्माण करते हैं। निर्यात कर राजकीय आय बढ़ाने तथा विभिन्न प्रकार की निर्यात वस्तुओं के निर्यात में भेद भाव करने के लिए लगाया जाता है। औद्योगिक कच्चे माल जिनका उपयोग राष्ट्रीय उद्योगों में होता है तथा जिनका प्रदाय (Supply) अपर्याप्त हो उनके निर्यात को प्रतिबंधित करने हेतु भी निर्यात कर लगाये जाते हैं तथा कोटा निश्चित कर दिया जाता है। ऐसी वस्तुओं का निर्यात पूर्ण निषिद्ध घोषित किया जा सकता है, जो आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से राष्ट्रीय आवश्यकता की हो। वस्तुओं के निर्यात के साथ साथ पूंजी निर्यात पर भी प्रतिबंध लगाना आवश्यक है, अन्यथा पूंजीपति आर्थिक समानता के प्रयत्नों से बचने के लिए पूँजी का विनियोग विदेशों में कर देते हैं जबकि देश में ही पूँजी की अत्यधिक आवश्यकता होती है। अधिक निर्यात द्वारा उद्योगों का विकास सम्भव होता है तथा पूँजीगत वस्तुओं को भी विदेशों से प्राप्त किया जा सकता है। उद्योगों के विकास से जनसमुदाय की आय में वृद्धि होती है तब वह अंततः बचत तथा उपभोग-वृद्धि का कारण बन जाती है। इस प्रकार अधिक निर्यात पूंजी निर्माण का मूल अंग है।

(३) **विदेशी निजी विनियोजन**—अर्द्ध विकसित राष्ट्रों में अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकताओं की पूर्ति विदेशी निजी विनियोजकों विदेशी सरकारों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के द्वारा की जाती है। विदेशी निजी पूंजी को अल्प विकसित राष्ट्रों के लिए आकर्षित करना अत्यन्त कठिन होता है। साम्राज्यवाद के अंतर्गत विदेशी विनियोजकों द्वारा जिस सरलता के साथ अपने उपनिवेशों में पूंजी का विनियोजन किया जाता है वह सरलता इन उपनिवेशों के स्वतन्त्र हो जाने पर कठिनाई में परिवर्तित हो जाती है। स्वतन्त्र राष्ट्रों में विदेशी विनियोजन को इस देश के समामेलन, कर, मौद्रिक विदेशी विनिमय नियन्त्रण आदि सम्बन्धी अधिनियम के अधीन रहना होता है। विदेशी विनियोजकों को राष्ट्रीयकरण का भी भय होता है। एशिया एवं सुदूर-पूर्व सम्बन्धी संयुक्त राष्ट्र संघ आर्थिक आयोग (ECAFE) ने अल्प विकसित राष्ट्रों में विदेशी निजी पूंजी को आकर्षित करने के लिए निम्नलिखित सुविधाओं का आयोजन किया जाना चाहिए—

(१) **राजनीतिक स्थिरता एवं विदेशी आक्रमण से मुक्ति**—इस सम्बन्ध में

किसी भी अल्प विकसित राष्ट्र की सरकार आश्वासन नहीं दे सकती है। अधिक अल्प-विकसित राष्ट्रों में राजनीतिक अस्थिरता पायी जाती है तथा सीमावर्ती झगड़े विदेशी आक्रमण का रूप ग्रहण कर सकते हैं।

(२) **जीवन एवं सम्पत्ति की सुरक्षा**—इस सम्बन्ध में अल्प-विकसित राष्ट्रों की सरकारें बीमा का पर्याप्त आयोजन कर सकती हैं। वह सरकारी बीमा निगम स्थापित कर सकती हैं अथवा विदेशी संस्थाओं के साथ अनुबन्ध करके जीवन एवं सम्पत्ति की सुरक्षा व बीमा आयोजन कर सकती हैं।

(३) **लाभोपार्जन हेतु अवसरों की उपलब्धि**—इस सम्बन्ध में सरकार विदेशी विनियोजकों को आवश्यक सूचनाएँ प्रदान कर सकती है तथा जनोपयोगी सेवाओं सामुदायिक सेवाओं आदि बाह्य मितव्ययताओं (External Economies) का आयोजन कर सकती है।

(४) **विदेशी व्यवसायों को अनिवार्य रूप से अधिकार में लेने पर उचित क्षतिपूर्ति शीघ्र ही भुगतान की जानी चाहिए**—इस सम्बन्ध में अल्प विकसित राष्ट्रों की सरकारें आश्वासन दे सकती हैं कि जब तक प्रारम्भिक एवं पूरक विनियोजन की पूर्ति न हो जाय तथा उस पर यथोचित दर से लाभोपार्जन न कर लिया गया हो, विदेशी व्यवसायों का राष्ट्रीयकरण नहीं किया जायगा। इसके अतिरिक्त विदेशी विनियोजक यह भी चाहते हैं कि इन व्यवसायों का राष्ट्रीयकरण करने के पूर्व इनसे विचार विमर्श किया जाय तथा क्षतिपूर्ति की राशि किसी स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय संस्था द्वारा की जानी चाहिए। इस प्रकार का आश्वासन कोई सरकार देना पसन्द नहीं करती है।

(५) **लाभ लाभांश तथा ब्याज आदि को विदेशों को भेजने की सुविधा**—विदेशी विनियोजन पर उपार्जित होने वाली आय को (कर चुकाने के पश्चात्) विदेशों में भुगतान करने की सुविधा का आयोजन करने के साथ-साथ अल्प विकसित राष्ट्रों की सरकारों को यह आश्वासन देना चाहिए कि इस विनियोजन के अधिकार के हस्तान्तरण पर प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए।

(६) **विदेशी तान्त्रिक एवं प्रशासन-सम्बन्धी विशेषज्ञों को रोजगार में रखने की सुविधा**—विदेशी विनियोजक अपने प्रबन्धक एवं तान्त्रिक विशेषज्ञों को उनके द्वारा वित्त प्राप्त व्यवसायों में रखना चाहते हैं जिससे एक ओर इनका कुशल संचालन किया जा सके तथा दूसरी ओर, उनके हितों की रक्षा होती रहे। इन विशेषज्ञों के Immigration के लिए पर्याप्त सुविधाओं का आयोजन किया जाना चाहिए तथा इन विशेषज्ञों को वे सभी सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए जो संयुक्त राष्ट्र एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के विशेषज्ञों को प्रदान की जाती हैं।

(७) **इस प्रकार की कर-प्रणाली का उपयोग जिससे फलस्वरूप विदेशी व्यवसायों पर अधिक दबाव न पड़े**—कर-प्रणाली में इस बात का आयोजन कि विदेशी

विनियोजकों तथा कर्मचारियों के साथ भेद भाव नहीं किया जायगा। कर के सम्बन्ध में कुछ छूटें भी विदेशी विनियोजकों को दी जा सकती हैं। विदेशी कर्मचारियों को आयकर सम्बन्धी छूटें प्रदान की जानी चाहिए। विदेशी विनियोजकों को प्रोत्साहन कर की सुविधाएँ भी प्रदान की जा सकती हैं।

(८) **दोहरे करारोपण से मुक्ति प्रदान की जानी चाहिए**—अल्प विकसित राष्ट्रों को विदेशी सरकारों के साथ दोहरे करारोपण के सम्बन्ध में समझौते कर लेने चाहिए जिससे विनियोजकों को इन राष्ट्रों से उपार्जित आय पर इन राष्ट्रों तथा अपने देश—दोनों स्थानों में से एक ही स्थान पर कर देना पड़े।

(९) **आर्थिक नियन्त्रणों में यथासम्भव कमी**—अल्प विकसित राष्ट्रों में व्यापार उद्योग अधिकोषण बीमा विदेशी विनिमय यातायात जायदाद के क्रय-विक्रय खनिज निकालने पूंजी निर्गमन प्रतिभूतियों के विक्रय लाभांश के भुगतान आदि के सम्बन्ध में सरकार विभिन्न नियन्त्रण लगाती है जिसके फलस्वरूप व्यवसायों के स्वतन्त्र संचालन में बाधा आती है और विदेशी विनियोजक अपने व्यवसायों को इच्छित सुदृढ़ता प्रदान करने तथा लाभोपार्जन करने में असमर्थ रहते हैं। प्रायः एक बार लगाये गये नियन्त्रण दीर्घ काल तक, उनकी औचित्यता पर गम्भीर विचार किये बिना लगाये रखे जाते है। अल्प विकसित राष्ट्रों में विदेशी पूंजी आकर्षित करने हेतु इन आर्थिक नियन्त्रणों में कमी करनी चाहिए तथा परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ साथ इनमें भी परिवर्तन करते रहना चाहिए। आर्थिक नियन्त्रणों को सर्वथा छोड़ा नहीं जा सकता अन्यथा राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था वांछित क्षेत्रों में विकास नहीं कर सकती है और नियन्त्रणों की अनुपस्थिति में पूंजीपतियों (देशी व विदेशी) का अर्थ-व्यवस्था में इतना अधिक प्रभुत्व हो सकता है कि आर्थिक योजनाओं की सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति करना असम्भव हो सकती है। परन्तु इस सम्बन्ध में अल्प विकसित राष्ट्र को आश्वासन दे सकते है—अनावश्यक आर्थिक एवं प्रशासनिक नियन्त्रणों को हटाने अथवा न लगाने तथा नियन्त्रणों के सम्बन्ध में देशी एवं विदेशी—दोनों प्रकार के विनियोजकों को समान व्यवहार प्रदान करने के लिए आश्वासन दिया जा सकता है।

(१०) **निजी व्यवसायों के साथ राजकीय व्यवसायों के प्रतिस्पर्धा न करने का आश्वासन**—इस प्रकार के आश्वासन से विदेशी व्यवसायों को एकाधिकारपूर्ण शोषण करने की सुविधा प्राप्त हो सकती है। इस कारण अल्प विकसित राष्ट्र इस प्रकार आश्वासन देते समय एकाधिकार पर पर्याप्त नियन्त्रण रखने के अधिकार के उपयोग के सम्बन्ध में स्वतन्त्र रहना पसन्द करते हैं।

(११) **विदेशी विनियोजकों के प्रति मित्रता की सामान्य भावना**—सद्भावना का आश्वासन सरकार द्वारा दिये जाने पर भी कभी कभी राजनीतिक क्षेत्र में ऐसी परिस्थितियाँ आ सकती हैं कि जनसाधारण में विदेशी व्यवसायों के प्रति सद्भावना का लोप हो सकता है। उदाहरणार्थ भारत में पाकिस्तान के युद्ध में ब्रिटेन द्वारा

पाकिस्तान का पक्ष लेने के कारण जनसाधारण में ब्रिटेन के भारत में स्थित हितों के प्रति मित्रतापूर्ण भावना प्रायः लोप हो चुकी है।

उपर्युक्त आश्वासनों का आयोजन कोई भी सरकार पूर्णतः नहीं कर सकती है। यदि इन सब बातों का आश्वासन दे भी दिया जाय तब भी विदेशी विनियोजकों को अपने विनियोजन के मूल्य में मुद्रा के अवमूल्यन होने तथा राष्ट्रीयकरण के फलस्वरूप होने वाली हानियों के सम्बन्ध में भय बना रहता है। मुद्रा के अवमूल्यन से होने वाली हानि के लिए बीमे का आयोजन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त विदेशी विनियोजकों को श्रमिक एवं औद्योगिक कलह का भय रहता है जिसके लिए सरकार द्वारा दिये गये आश्वासन एवं श्रम नीति में किये गये सुधार कदापि पर्याप्त नहीं हो सकते हैं। नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत विदेशी विनियोजकों का पूँजी विनियोजन करने के लिए आकर्षित करने हेतु एक विशेष उच्च अधिकार प्राप्त संगठन की स्थापना की जानी चाहिए जो एक ओर विदेशी विनियोजकों को आकर्षित करे और दूसरी ओर, इस विनियोजन द्वारा राष्ट्रीय हितों को आघात न पहुँचने दे। भारत में सन् १९६१ में एक भारतीय विनियोग केन्द्र (Indian Investment Centre) की स्थापना की गयी जिसका प्रमुख कार्य विदेशी विनियोजकों को भारत की आर्थिक परिस्थितियों, अधिनियमों तथा विदेशी विनियोजकों को उपलब्ध विनियोजन के अवसरों की जानकारी देना है। यह विभिन्न उद्योगों के सम्बन्ध में माँग, पूर्ति, लाभोपार्जन क्षमता एवं प्रगति की सम्भावनाओं से सम्बन्धित सूचनाएँ तैयार करता है। यह संस्था भारतीय एवं विदेशी संस्थाओं में सम्पर्क स्थापित करता है और संयुक्त साहस को प्रोत्साहित करती है। इस संस्था ने अपने जीवनकाल के प्रथम तीन वर्षों में ७४ संयुक्त साहसी व्यवसायों, जिनमें ६० करोड़ रुपये की पूँजी का विनियोजन है की स्थापना में सहयोग प्रदान किया।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि विदेशी निजी विनियोजन (Foreign Private Investment) प्राप्त करने हेतु अल्प विकसित राष्ट्रों को अपनी नीतियों को राष्ट्रीय हितों के अनुकूल रखना सम्भव नहीं होता है और कोई भी अल्प विकसित राष्ट्र वे सभी आश्वासन एवं सुविधाएँ प्रदान नहीं कर सकता है जिनके द्वारा विदेशी विनियोजन आकर्षित किये जा सकें। इसके साथ ही जब विदेशी विनियोजकों को देशी विनियोजकों की तुलना में अधिक सुविधाएँ एवं आश्वासन प्रदान किये जाते हैं तो देशी विनियोजकों के अधिक विनियोजन करने की भावना को ठेस पहुँचती है। इन सब कारणों को ध्यान में रखते हुए अल्प विकसित राष्ट्र सरकारी स्तर पर विदेशी सहायता एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से विदेशी सहायता लेने को अधिक महत्व देते हैं।

आधुनिक युग में निजी रूप से विदेशों से ऋण प्राप्त करने की विधि अत्यन्त कम उपयोग की जाती है। विदेशों की पूँजी विपणियों (Capital Markets) में पूँजी प्राप्त करने वाले देशों द्वारा बॉण्ड निर्गमित करके पूँजी प्राप्ति-विधि भी अब

प्राचीन समझी जाती है एव कम प्रयोग होती है। पूँजीदाता देश की सरकारें ऐसी वित्तीय संस्थाओं का सचालन करती हैं जो अल्प विकसित राष्ट्रों की सरकारों को पूँजी उपलब्ध कराती हैं। इनका सर्वोत्तम उदाहरण अमेरिका का आयात निर्यात अधिकोष (Import Export Bank of U S A) है। यह संस्था सदव अपने हितों को दृष्टिगत कर पूँजी प्रदान करती है और ऐसी योजनाओं को पूँजी देना हित कर समझती है जिनमें आयोपार्जन शीघ्र सम्भव होता है तथा विनियोजित पूँजी का शोधन उन योजनाओं मे सुगमतापूर्वक किया जा सकता है परन्तु अल्प विकसित राष्ट्रों मे आर्थिक विकास हेतु सर्वाधिक प्राथमिकता आधारभूत प्रारम्भिक सेवाओं जैसे स्वास्थ्य शिक्षा गृह व्यवस्था आदि को प्रदान की जाती है। इन आधारभूत सेवाओं के विकास से प्रत्यक्षरूपेण अल्प काल में आय अर्जित नहीं होती है।

कुछ समय से पहले विकसित राष्ट्रों की योजनाओं के साधारण अशों मे भी विदेशी पूँजी विनियोजन करने को अधिक महत्व प्राप्त हुआ है। इस प्रकार की विदेशी पूँजी के अनेक लाभ हैं। विदेशी पूँजी विनियोजन द्वारा अल्प विकसित राष्ट्रों मे विदेशी व्यावसायिक तथा औद्योगिक इकाइयों की स्थापना होती है जिससे तान्त्रिक ज्ञान का भी हस्तान्तरण पिछड़े देशों को हो जाता है। साधारण अशों पर लाभ वास्तव मे उपार्जित हो जाने के उपरान्त ही दिया जाता है। इस प्रकार पूँजी पर दिये जाने वाले लाभ का भार अर्थ व्यवस्था पर नहीं पड़ता। साथ ही इस प्रकार के विनियोजन के परिणामस्वरूप मुद्रा तथा वस्तुओं का आयात होने के कारण मुद्रा स्फीति के दबाव मे भी कमी हो जाती है।

परन्तु इसके विपरीत समता-अंश विनियोग (Equity Shares) प्राप्त करने से देश का अनवरत उत्तरदायित्व (Recurring Liability) बढ़ जाता है क्योंकि प्रत्येक वर्ष लाभाश के शोधनार्थ विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होती है जो निर्यात आधिक्य द्वारा ही उपलब्ध हो सकती है। इस प्रकार निर्यात आधिक्य का अधिकांश लाभाश शोधन मे प्रयोग कर लिया जाता है और देश की अपनी पूँजी-सचय करने की शक्ति को क्षति पहुँचती है। फिर भी आधुनिक युग मे सम्पन्न तथा अल्प विकसित राष्ट्र विदेशी पूँजी विनियोग की आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करते हैं क्योंकि राजनीतिक भय कुछ सीमा तक कम हो गया है। अब यह निश्चितरूपेण सर्वमान्य तथ्य है कि अल्प विकसित राष्ट्रों के सन्तुलित बहुमुखी आर्थिक विकास मे विदेशी पूँजी का महत्वपूर्ण स्थान है।

(४) विदेशों से ऋण एव सहायता—आधुनिक युग मे एक देश की सरकार से दूसरे देश की सरकार के लिए ऋण तथा अनुदान देने की प्रथा अधिक महत्वपूर्ण है। अमेरिकी चतुर्मुखी कार्यक्रम (American Point Four Programme) के अन्तर्गत अल्प विकसित राष्ट्रों को अमेरिका द्वारा सराहनीय आर्थिक सहायता प्रदान की गयी है। इसी प्रकार साम्राज्यवादी राष्ट्रों—विशेषकर ब्रिटेन द्वारा भी पिछड़े हुए

राष्ट्रों के आर्थिक विकास के लिए आर्थिक सहायता दी जाती है। कोलम्बो योजना के अन्तर्गत कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड आदि राष्ट्र भी दक्षिण तथा दक्षिण पूर्वी राष्ट्रों के आर्थिक विकास हेतु आर्थिक सहायता प्रदान की है।

सोवियत रूस एवं चीन द्वारा भी विभिन्न तटस्थ एवं साम्यवादी राष्ट्रों को ऋण एवं अनुदान प्रदान किए जाते हैं। उन्नत राष्ट्र जिनमें अमरीका, ब्रिटेन, पश्चिमी जर्मनी, फ्रांस, इटली, नीदरलैण्ड्स, बेल्जियम, जापान, स्वीडन और कनाडा प्रमुख हैं, विकासोन्मुख राष्ट्रों को जो सरकारी अनुदान, सरकारी दीर्घकालिक पूँजी तथा निजी दीर्घकालिक पूँजी प्रदान करते हैं, वह इन उन्नत राष्ट्रों की राष्ट्रीय आय की १% से भी कम है। सन् १९६१ में उन्नत राष्ट्रों द्वारा विकासोन्मुख राष्ट्रों को ५१ [illegible] लाख डालर की सहायता दी गयी जो सन् १९६७ में घटकर ४८ ६६० लाख डालर हो गयी। इस सहायता का लगभग ४५% सरकारी अनुदान, ४०% सरकारी दीर्घकालिक ऋण तथा शेष निजी दीर्घकालिक पूँजी थी। वर्तमान प्रवृत्तियों के अनुसार उन्नत राष्ट्र दीर्घकालिक ऋणों को अधिक महत्व देते हैं और धीरे-धीरे अनुदान में कमी होने लगी है।

विदेशी सहायता प्रदान करने वाली अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund) अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास अधिकोष (International Bank for Reconstruction and Development) अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (International Finance Corporation), अन्तर्राष्ट्रीय विकास परिषद् (International Development Association), कोलम्बो योजना आदि प्रमुख हैं। ये संस्थाएँ विदेशी सहायता प्रायः ऋण के रूप में विशिष्ट परियोजनाओं (Projects) की पूर्ति हेतु प्रदान करती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय बैंक के तत्वावधान में विभिन्न राष्ट्रों की आर्थिक योजनाओं को विदेशी सहायता प्रदान करने हेतु सदस्य-राष्ट्रों की परिषदों (Consortiums) की स्थापना की गयी है जो समय-समय पर सम्बन्धित राष्ट्र की वित्तीय आवश्यकता की जाँच करती है और सदस्य-राष्ट्र सहायता हेतु अपना अंशदान निर्धारित करते हैं।

कोमल (Soft) अथवा कठोर (Hard) ऋण

विकासोन्मुख अल्प विकसित राष्ट्र कोमल ऋणों को अधिक उपयुक्त समझते हैं क्योंकि इनका शोधन स्थानीय मुद्रा में करना होता है। दूसरी ओर कठोर ऋणों का शोधन विदेशी मुद्रा में करने के कारण इन ऋणों के शोधन में कठिनाई होती है क्योंकि अल्प विकसित राष्ट्र ऋण के द्वारा स्थापित परियोजनाओं के द्वारा अपने निर्यात-व्यापार में इतनी वृद्धि नहीं कर पाते हैं कि कठोर ऋणों का शोधन हो सके। यदि कठोर ऋण एक के बाद दूसरे क्रम से प्राप्त होते रहें तो पुराने ऋण का शोधन नवीन ऋण से कर लिया जाता है और इस प्रकार विकासोन्मुख राष्ट्रों में अपना निर्यात बढ़ाने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है। दूसरी ओर कोमल ऋणों के शोधनार्थ सरकार केन्द्रीय बैंक से स्थानीय मुद्रा प्राप्त कर सकती है। स्थानीय मुद्रा में विदेशी ऋणों का शोधन करने की इस व्यवस्था में मुद्रा प्रसार का दबाव अधिक नहीं बढ़ेगा।

यदि ऋणदाता देश शोधन में प्राप्त मुद्रा का उपयोग उन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु करता है जिनके लिए उसे स्थानीय मुद्रा व्यय करनी पड़ती है जैसे विदेशी मिशनों (Foreign Missions) पर किए जाने वाले व्यय। यदि ऋणदाता देश शोधन में प्राप्त स्थानीय मुद्रा को अतिरिक्त विकास परियोजनाओं को स्थानीय वित्त प्रदान करने के लिए करता है तो मुद्रा प्रसार का दबाव बढ़ जायगा परन्तु जब स्थानीय सरकार शोधन के लिए स्थानीय करों (Taxes) द्वारा प्राप्त करती है तो मुद्रा प्रसार के दबाव के बढ़ने का भय नहीं होता है और अन्तत कोमल ऋण अनुदान का रूप ही ग्रहण कर लेते हैं।

(५) विदेशी व्यवसायों का अपहरण—विदेशी व्यवसायों के अपहरण को अधिकतर उचित नहीं माना जाता है क्योंकि इसके फलस्वरूप विकासोन्मुख राष्ट्र में विदेशी पूँजी का प्रवाह अस्थायी रूप से बन्द हो जाता है। फिर भी इस विधि का उपयोग मिस्र, ईरान, मिस्र तथा इण्डोनेशिया में कुछ सीमा तक किया गया है। मैक्सिको में इस विधि के उपयोग से आर्थिक प्रगति को बढ़ावा मिला है। विदेशी व्यवसायों का अपहरण कोई भी राष्ट्र अपने मनमाने ढंग से कर सकता है अथवा किसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के साथ समझौता करके उचित क्षतिपूर्ति देकर किया जाता है। दूसरी विधि द्वारा विदेशी विनियोजकों को अधिक हानि नहीं उठानी पड़ती है। विदेशी व्यवसायों के अपहरण से इनके लाभ एवं ह्रास की वह राशि जो विदेशी विनियोजकों को हस्तान्तरित की जाती है अपहरण करने वाले राष्ट्र के लिए उपलब्ध होती है और इस राशि की सीमा तक विदेशी विनिमय भी विकास के लिए उपलब्ध हो जाता है परन्तु इस प्रकार का अपहरण तब ही उपयुक्त हो सकता है जब राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था में विदेशी व्यवसायों का बड़ा भाग हो और इनके अपहरण से देश को इतने साधन उपलब्ध हो सकते हों कि भविष्य में विदेशी सहायता न मिलने पर विकास की गति को बनाये रखा जा सकता है। इन व्यवसायों के अपहरण से तान्त्रिक एवं प्रबन्ध सम्बन्धी विशेषज्ञों एवं कर्मचारियों की उपलब्धि में कठिनाई होती है क्योंकि विकासोन्मुख राष्ट्रों में प्रशिक्षित कर्मचारी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं होते हैं इन दोनों बातों को ध्यान में रखते हुए अपहरण वित्त प्राप्त करने की असाधारण विधि है जिसका उपयोग अन्य विधियों के असफल होने पर ही किया जाना चाहिए।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि विकासोन्मुख राष्ट्रों में विदेशी सहायता आर्थिक प्रगति हेतु अत्यन्त आवश्यक होती है और यह राष्ट्र की सभी विधियों द्वारा विदेशी सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं परन्तु अर्थ-व्यवस्था का संचालन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि वह विदेशी सहायता की निर्भरता से शीघ्रातिशीघ्र मुक्त हो जाय क्योंकि विदेशी सहायता केवल आर्थिक विचारधाराओं से नियन्त्रित नहीं होती है और कोई भी छोटी सी राजनीतिक घटना विदेशी सहायता के प्रवाह के रोकने में सफल हो सकती है। इसका ज्वलन्त उदाहरण भारत पाक झगड़े के कारण भारत की चौथी योजना को विदेशी सहायता मिलने की कठिनाइयाँ हैं।

अध्याय ११

नियोजित अर्थ-व्यवस्था के सफल संचालन हेतु आवश्यक प्रारम्भिक अपेक्षाएँ

[Pre-Requisites of Economic Planning]

[विदेशी घटक—विश्व-शान्ति, विदेशी सहायता, विदेशी व्यापार, आन्तरिक घटक—राजनीतिक स्थिरता, पर्याप्त वित्तीय साधन, सांख्यिकीय ज्ञान, प्राथमिकता एवं लक्ष्य निर्धारण, जलवायु का निरन्तर अनुकूल होना, राष्ट्रीय चरित्र जनता का सहयोग, शासन-सम्बन्धी कार्यक्षमता, प्रगति की दर, क्षेत्र का चुनाव, नियोजन संगठन का कर्तव्य विकास एवं आर्थिक स्थिरता में समन्वय प्रत्येक योजना दीर्घकालीन योजना का चरण, निजी क्षेत्रों का विकास, आय की वृद्धि एवं रोजगार]

आधुनिक युग की भीषण जटिलताओं की दुर्भेद्य शृंखलाओं में किसी कार्य का सुगम व सुलभ सम्पादन अत्यन्त कठिन है। नियोजन तो एक विधि है। यह कार्य है जो अनेक तत्वों के सहयोग सम्मिश्रण एवं सम्मेलन के उपरान्त एकीकृत रूप में सम्मुख आ सकने में समर्थ होता है। अधिकांशतः यह देखने में आता है कि यदाकदा निश्चित लक्ष्यों की पूर्ण प्राप्ति तो दूर रही मुख्य आयोजन-कार्यक्रम का कार्यान्वित करना भी असम्भव हो जाता है। कारण यह है कि अनेक एवं विभिन्न प्रकार के तत्व जो पूर्णतया नियोजन की कार्य विधि एवं क्रियाकलापों को प्रभावित करते हैं। नियोजन की सफलता अल्प विकसित राष्ट्रों में तो और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है उतनी ही कठिन भी। प्रभावी तत्वों का अध्ययन, जो निम्नप्रकारेण किया जा सकता है नियोजन के मार्ग में आने वाली बाधाओं के निवारण में सहायक होगा।

अल्प विकसित राष्ट्रों में आर्थिक विकास के कार्यक्रमों के अन्तर्गत शीघ्र औद्योगीकरण को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है तथा कृषि को विकासोन्मुख करने हेतु पूँजीगत सिंचाई एवं शक्ति की योजनाओं को प्राथमिकता दी जाती है। इन दोनों ही कार्यक्रमों की सफलता पर ही नियोजित अर्थ-व्यवस्था की सफलता निर्भर रहती है और इन कार्यक्रमों के लिए आन्तरिक घटकों से विदेशी घटक भी अत्यन्त आवश्यक होते हैं। इस प्रकार नियोजित अर्थ-व्यवस्था के सफलतार्थ जिन घटकों की आवश्यकता होती है उन्हें हम दो भागों में बाँट सकते हैं—विदेशी घटक तथा आन्तरिक घटक।

विदेशी घटक

(१) **विश्व-शान्ति**—आज का आर्थिक संगठन, राजनीतिक व्यवस्था, सामाजिक ढाँचा शताब्दियों पूर्व का नहीं रहा जब मानव की आवश्यकताएँ स्वयं द्वारा पूर्ति योग्य मात्र थीं। आज के प्रभावशाली तत्व मात्र गृह, जाति, समाज अथवा देश तक ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण मानवता को समेटे रहते हैं। किसी भी देश के लिए वर्तमान सदी के आधुनिक विज्ञान युग में पूर्ण आत्म निर्भर रहना नितान्त असम्भव है। किसी न किसी रूप में उसे किसी न किसी विदेश का मुँह ताकना पड़ता है और यह विश्वव्यापी अकाट्य सत्य है। रूस हो या अमेरिका, फ्रांस हो या ब्रिटेन, भारत हो या जापान सभी किसी न किसी आवश्यकता की पूर्ति हेतु पारस्परिक सम्बद्ध हैं। आधुनिक काल में राज्य की प्रत्येक कार्यवाही अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रिया के अधीनस्थ होती है चाहे वह किसी भी सीमा तक हो। फिर नियोजन—वह भी अल्प विकसित राष्ट्रों में—विदेशी सहायता की अनुपस्थिति में सफल होना सर्वथा असम्भव है इसलिए पारस्परिक सम्बन्ध न बिगड़ने पाएँ इसका पूर्ण प्रयत्न किया जाना चाहिए। पूर्ण शान्ति की अवस्था में ही नियोजन का विचार आ सकता है क्योंकि युद्ध की विभीषिका आर्थिक व्यवस्थाओं को छिन्न भिन्न कर देती है। युद्ध या अशान्ति की दशा में एक देश अन्य देश में अपना विनियोजन या सहयोग न देना चाहेगा और आर्थिक विकास का चक्र रुक जायगा। पूँजी की न्यूनता, तान्त्रिक ज्ञान का अभाव आदि अनेक समस्याएँ अल्प विकसित राष्ट्रों को बाध्य करती हैं कि वे अन्य देशों से सहायता लें। अन्य देश विश्व शान्ति की अवस्था में ही अन्य देशों को सहायता या विनियोजन करने को तैयार होंगे।

(२) **विदेशी सहायता**—योजना के औद्योगिक कार्यक्रमों एवं सिंचाई तथा शक्ति सम्बन्धी बड़ी योजनाओं के संचालनार्थ विदेशी पूँजीगत सामान तथा तान्त्रिक विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है। पिछड़े हुए राष्ट्रों में कृषि प्रधानता होते हुए भी प्रायः खाद्यान्न आदि विदेशों से मँगाने की आवश्यकता होती है। विदेशों से आवश्यक यन्त्र तथा विशेषज्ञ प्राप्त करने के लिए विदेशी विनिमय की आवश्यकता होती है जो अधिक निर्यात अथवा विदेशी सहायता से ही प्राप्त हो सकता है। विकसित राष्ट्रों को निर्यात करने के लिए अल्प विकसित राष्ट्रों के पास कुछ भी नहीं होता है और वह केवल कच्चा माल ही निर्यात कर सकते हैं। कच्चे माल का निर्यात इसलिए सम्भव नहीं होता कि देश में विकसित होने वाले उद्योगों को ही कच्चे माल की अधिक आवश्यकता होती है। इस प्रकार आर्थिक नियोजन के सफल संचालन के लिए विदेशी सहायता अनिवार्य होती है। यह विदेशी सहायता मित्र राष्ट्रों तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्त संस्थाओं से प्राप्त हो सकती है। नियोजित कार्यक्रम संचालित करने के पूर्व देश को अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों एवं विदेशी वित्त-संस्थाओं की सम्पन्नता पर ध्यान देना चाहिए।

(३) **विदेशी व्यापार**—योजना के कार्यक्रमों के लिए पूँजीगत सामान बड़ी

मात्रा में किया जाता है जिससे देश का विदेशी भुगतान शेष प्रतिकूल हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में विदेशी व्यापार का विकास होना चाहिए और देश का अपना निर्यात बढ़ाने की सुविधा होनी चाहिए जिससे बढ़ते हुए पूँजीगत आयात का भुगतान किया जा सके। इसके अतिरिक्त नियोजित कार्यक्रमों के फलस्वरूप नए उद्योगों एवं क्षेत्रों में अधिक उत्पादन हो, उनके निर्यात के लिए नवीन बाजार उपलब्ध होना चाहिए तभी विकास की गति बनायी रखी जा सकती है तथा विदेशी ऋणों का भुगतान हो सकता है।

आन्तरिक घटक

(१) राजनीतिक स्थिरता—अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के अनुकूल रहने पर राष्ट्रीय परिस्थितियों का अनुकूल रहना अधिक आवश्यक है क्योंकि प्रतिकूल राष्ट्रीय परिस्थितियाँ वर्जित एवं अत्यन्त हानिकारक होती हैं। किसी जीवन में जन्मदाता-रक्त ही कीटयुक्त हो तो सुखी जीवन की कल्पना ही निरर्थक है। नियोजक नियोजन के कार्यक्रम निश्चित कर रहे हैं उनके मस्तकों पर उनको मृत्यु-सूचक दुधारी तलवार लटक रही है। क्या इस अवस्था में कितना भी दृढ़ देशभक्त एवं राजनीतिक नियोजक इन कार्यक्रमों के निर्माण में कतिपय भी रुचि लेगा अथवा वह विचारों को एकाग्र करने में समर्थ होगा और भविष्य की सोच सकेगा? निस्सन्देह उत्तर होगा—नहीं। कथन का तात्पर्य मात्र इतना है कि यदि नियोजक को प्रति क्षण अपने पदच्युत होने का भय रहे तो वह विवेकपूर्ण पर्याप्त एवं आवश्यक लक्ष्य एवं प्राथमिकताओं का निर्धारण नहीं कर पायेगा और न कोई आकर्षण ही होगा। प्रलोभन एवं प्रारम्भिक भावनाएँ भस्मसात् हो जायेंगी दूसरी ओर, राजनीतिक स्थिरता नियोजन के विचार में स्थिरता की जन्मदाता होगी। नियोजन एक सतत विधि है जो दीर्घ काल में लाभदायक होती है। इस मध्यावधि में किंचित आवश्यक समायोजन सम्मेलन, वृद्धियाँ आदि करना आवश्यक हो जाता है। वह राजनीतिक स्थिरता की अवस्था में ही सम्भव है क्योंकि अस्थिरता का तात्पर्य ही उद्देश्यों की विभिन्नता होगी और नियोजन का कार्यक्रम नये लक्ष्य नये क्रम से स्थिर प्राथमिकताएँ लिये सम्मुख आयेगा, यह भी क्रियान्वित किये जाने के समय तक पुनर्परिवर्तन के भय को लिए हुए। वह उपहास होगा उसका निर्माण नहीं।

(२) पर्याप्त वित्तीय साधन—यदि वित्तीय साधन को नियोजन के जीवन का रक्त एवं रीढ़-अस्थियाँ कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। सुनिश्चित लक्ष्य, सुनिर्धारित प्राथमिकताओं का क्रम सर्वथा निरर्थक है यदि अर्थ-साधन नहीं। अल्प विकसित राष्ट्रों में आन्तरिक बचत, विनियोजन एवं वित्तीय क्रियाशीलता सभी का अत्यन्त अभाव होता है। पूँजी निर्माण नहीं के समतुल्य होता है। अर्थ-साधनों की उपलब्धि अनिवार्य है। उद्योगों का शीघ्र विकास पूँजी के अभाव एवं कृषि-प्रधान अर्थ-व्यवस्था के कारण सम्भव नहीं होगा। कृषि भी अत्यन्त अलाभकारी उद्यम होता है। खाद्यान्नों

का इतना अभाव होता है कि निर्यात का विचार करना भी मुश्किल है, फिर भी, वित्तीय साधनों की व्यवस्था होनी चाहिए। विदेशों से सहायता की याचना की जाती है। सहायता का उपलब्ध होना ऋणी राष्ट्र की सम्भाव्य नैतिक साधनों के अनुमान नियोजन के प्रकार निवासियों की प्रवृत्ति राजनैतिक व्यवस्था का स्वरूप आदि पर निर्भर करता है अत अनुकूल वातावरण का निर्माण आवश्यक है क्योंकि वित्तीय साधनों के अभाव में सत्वर सुगम सुलभ एवं सफल नियोजन एवं आर्थिक विकास असम्भव है। आर्थिक विकास की गति अर्थ साधनों की उपलब्धि पर निर्भर है।

(३) सांख्यिकी ज्ञान—यद्यपि सांख्य पर निर्भर रहना या विश्वास करना मूर्खों का कार्य कहा जाता है किन्तु शायद ऐसा कहने वालों के युग में आज का परिस्थितियों का अन्दाज नहीं था। आज के युग में यदि सांख्य उपलब्ध न हो अथवा उसका ज्ञान न हो तो क्या कोई किसी भी तथ्य का अनुमान अथवा भविष्यत् परिणामों का गुणन कर सकने में समर्थ होगा? कदापि नहीं। लक्ष्यों को निश्चित करने में प्राथमिकताओं के निर्धारण में उपलब्ध वित्तीय साधनों के अनुमानों में सम्भाव्य अवस्थाओं के पूर्व ज्ञान विदेशों से प्राप्य सहायता आदि किसे भी क्षेत्र में सांख्य की उत्कट आवश्यकता क्या न होगी? यह अनिवार्य है कि नियोजक को देश में उपलब्ध मानवीय एवं प्राकृतिक शक्ति कृषि उत्पादन की माँग एवं प्रदाय औद्योगिक उत्पादन आदि का पूर्ण ज्ञान हो अन्यथा उसके सभी निर्णय आधारहीन होंगे जो निरर्थक होंगे। समय समय पर आयोजन द्वारा प्राप्त परिणामों का अनुमान उच्चावचन की तीव्रता कमी बनी की मात्रा तथा उसकी आवश्यकता समायोजन की सीमा आदि के लिए भी सांख्य आवश्यक है। यही नहीं सांख्य एकत्रीकरण कार्यकुशल प्रवीण एवं प्रभावशील होना चाहिए जिससे थोड़ी सी भूल से भयंकर परिणामों का सामना न करना पड़े। सांख्यिकीय ज्ञान नियोजन की रक्त प्रवाहिनी नाड़िया है।

(४) प्राथमिकता एवं लक्ष्य निर्धारण—अल्प विकसित एवं अविकसित राष्ट्रों में जैसा सर्वविदित है अगणित समस्याएँ कमियाँ एवं आवश्यकताएँ होती हैं। सभी का एक साथ एक ही अनुपात में वित्तीय साधनों के आवंटन द्वारा एक ही समय पर निवारण एवं सन्तुष्टि करना सर्वथा असम्भव है। नवीन स्वतन्त्रता की वायु में नूतन राजनीतिक चेतना सामाजिक जागरण प्राथमिकताओं के निर्धारण के समय नियोजन के सम्मुख समस्या बन जाती है। जातीय भेद भाव न्यून आय न्यून जीवन-स्तर, अतिशय बेरोजगार कृषि की प्रधानता स्वभाव में रूढ़िवादिता एवं दासता अशिक्षा अज्ञानता भोजन वस्त्र एवं गृहादि जीवन की अनिवार्यताओं का घोर अभाव एवं शोषित मानवता आदि सभी एक साथ आयोजन के सम्मुख आते हैं। ऐसी परिस्थिति में यह आवश्यक है कि लक्ष्यों का निर्धारण ऐसा हो जो अर्थ-व्यवस्था का सर्वतोमुखी विकास कर सकने में समर्थ हो। इसके साथ ही वित्तीय साधनों की कठिनाई के कारण प्रत्येक समस्या की उत्कटता एवं तीव्रता के

आधार पर इनके निवारण का क्रम—जिसे *प्राथमिकता-निर्धारण कहा जाता है*—निश्चित किया जाना चाहिए। औद्योगिक युग की विकास दौड़ में भाग लेने का राष्ट्र तभी साहस कर सकता है जब उसका आर्थिक विकास अत्यन्त सत्वर गति से सुनिश्चित लक्ष्य एवं प्राथमिकताओं का सफर होता है। प्राथमिकताओं के क्रम के अभाव में कोई विकास-कार्यक्रम कार्यान्वित होना कठिन है तो लक्ष्यों की अनुपस्थिति में विकास की गति एवं उपलब्धियों का अनुमान असम्भव है।

(५) जलवायु का निरन्तर अनुकूल होना—अल्प विकसित राष्ट्रों की कृषि-प्रधानता उनका एक प्रमुख लक्षण है। उनकी अधिकांश जनसंख्या कृषि से आय पैदा करती है। निर्यात योग्य वस्तुएँ कृषि द्वारा ही उपलब्ध होती हैं जिससे पूँजीगत वस्तुओं का आयात सम्भव हो सके। फिर औद्योगीकरण की अवस्था में कच्चे माल की पूर्ति भी कृषि पर निर्भर है, अन्यथा पुनः आयात का प्रश्न उठेगा और देश का उत्तरदायित्व बढ़ता जायगा। कृषि को प्राथमिकता दी जानी चाहिए दी जाती है, लक्ष्य भी निर्धारित किये जा सकते हैं, किन्तु प्रकृति की अनुकम्पा अनिवार्य है अन्यथा *सभी आशाओं पर तुषारापात होते विलम्ब न लगेगा। वर्षा पर कृषि का निर्भर रहना स्वाभाविक है। लक्ष्यों की प्राप्ति में प्रकृति का अनुकूल योगदान भी आवश्यक है।*

(६) राष्ट्रीय चरित्र—*योजना हेतु प्रारम्भिक अनुसंधान-कार्य करने और* उसके कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने हेतु देश में एक ऐसे समुदाय की आवश्यकता है जिसका नैतिक चरित्र दृढ़ एवं उच्च हो, जो अपने कर्तव्य की पराकाष्ठा का भान रखता हो, देश की परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल अद्भुत आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हेतु उसने अपने जीवन को ढाल लिया हो। नयी चेतना एवं नवीन जागरण का साथ दे सके तथा मनसा-वाचा कर्मणा आर्थिक विकास में अपना सहयोग दे सके क्योंकि नियोजन विद्युत शक्ति नहीं जो बटन दबाते ही सब कुछ कर सके। नैतिकता का स्थान जीवन के किस क्षेत्र में नहीं? *नियोजन जीवन से पृथक होकर कुछ भी नहीं है। वह जीवन का प्रमुख अंग है। अल्प विकसित राष्ट्रों में* प्राकृतिक अनुकम्पा के उपरान्त मानवीय भावनाओं की अनुकूलता ही अत्यन्त अनिवार्य है। नियोजन का क्रियान्वीकरण उन्हीं पर होना है उनके स्वभाव की अनुकूलता वांछनीय है।

(७) जनता का सहयोग—आज का नियोजन यदि असफल होगा तो केवल इसी कारण कि उसे जनता का पूर्ण समर्थन प्राप्त न हो सका। अल्प विकसित राष्ट्रों में विशेषतः जहाँ प्रजातान्त्रिक समाज हो जनसमुदाय का पूर्णतम सहयोग अत्यावश्यक है। जनता में नियोजन के कार्यक्रमों के प्रति अक्षय जागरूकता एवं विशेष प्रकार की श्रद्धा भावना की आवश्यकता है। इसके लिए जनता को अपनी विचारधारा *विस्तृत करनी होगी क्योंकि नियोजन का उद्देश्य अधिकतम सामाजिक हित होता है।* समान भावना की दशा में ही सतर्कता आ सकती है और तभी सहयोग एवं समर्थन

सम्भव है। प्रजातन्त्र मे जनता सर्वोच्च सत्ता है। यदि उसका समर्थन एव सहयोग न होगा तो राज्य का प्रत्येक प्रयत्न विफल होगा। नियोजनकाल सक्टकाल (Transitional Period) होता है। जनता को अतिशय कष्टो एव कठिनाइयो का सामना करना पडता है। रूढिवादी, अशिक्षित जनता यह करने को सहर्ष तत्पर नही होती। नियोजक को यह प्रयत्न करना चाहिए तथा इस प्रकार की योजनाओ का निर्माण भी होना चाहिए जिससे उन्हे उसी जनता का अधिकतम सम्भव समर्थन एवं सहयोग प्राप्त हो सके। जनता के हृदय मे परिणामो के प्रति एक विश्वास की भावना जाग्रत की जानी चाहिए।

(८) शासन सम्बन्धी कार्यक्षमता—यदि वास्तव मे देखा जाय तो यही तत्व नियोजन की सफलता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यक लक्षण है। प्रबन्ध सम्बन्धी अक्षमता समस्त ऊपर वर्णित तत्वो की प्राप्ति को निरर्थक सिद्ध कर सकती है। योजना के प्रारम्भिक निर्माण से लेकर अन्त तक यदि योजना का कभी विरोध होगा तो उसका कारण होगी—प्रबन्ध की अकुशलता। प्रबन्ध द्वारा ही उपर्युक्त तत्वो को एकत्र किया जा सकता है। फिर समस्त तत्व तो गौण है प्रमुख तो यही है कि किस प्रकार योजना को कार्यान्वित किया जाय। यह क्षमता है प्रबन्ध मे। लक्ष्यो की प्राप्ति क्षमतानुसार ही होगी यह निश्चित है क्योकि समस्त जनता योजना का कार्य सम्पादन नही करेगी, प्रत्युत उनके प्रतिनिधि अधिकारी ही इस कार्य भार को वहन करेंगे। अध्ययन, ज्ञान कुशलता एव प्रवीणता के साथ ही विवेक आता है। विवेक ही सफल नियोजन है, यह कहना अनुचित न होगा। समस्त उपलब्ध साधनो को एकत्रित करना, उनको विभिन्न मदो पर विवेकपूर्ण रीति से आवटित करना, प्रगति का निरीक्षण करना, कार्य विधि पर नियमन एव नियत्रण रखना आदि सभी कार्य प्रबन्धन की कार्यकुशलता पर आधारित है। ससार मे व्यक्तिगत स्वार्थ से बढकर कुछ नही। ऐसा पूर्ण सम्भव है कि प्रबन्ध सम्बन्धी अकिंचन शिथिलता अधिकतम सामाजिक हित के स्थान पर अधिकतम व्यक्तिगत लाभ का स्थान ले ले और नियोजन अनियोजन हो जाय। प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यक्षमता ही अन्य आवश्यक तत्वो को सम्मिलित कर सफलता की ओर अग्रसर हो सकती है।

(९) प्रगति की दर—नियोजित अर्थ व्यवस्था के कार्यक्रम निर्धारित करते समय प्रगति की दर निर्धारित करना भी आवश्यक होता है। विकास की गति जन सख्या का वृद्धि की दर देन मे उपलब्ध साधन तथा जनसमुदाय की बचत एव विनियोजन करने की क्षमता पर निर्भर रहती है। यदि पूजी तथा उत्पादन का अनुपात अधिक रखना आवश्यक हो तो पूजी प्रधान उत्पादन तान्त्रिकताओ के उपयोग को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, परन्तु जनसख्या की वृद्धि दर अधिक होने पर पूजी प्रधान विधियों के उपयोग से बेरोजगारी की समस्या गम्भीर रूप ग्रहण कर सकती है क्योकि पूँजी प्रधान विधियो मे श्रमिक का प्रतिस्थापन मशीनो द्वारा हो जाता है और

इस प्रकार आर्थिक प्रगति एवं अधिक विनियोजन होते हुए भी रोजगार के अवसरों में पर्याप्त वृद्धि नहीं होती है। ऐसी परिस्थिति में अर्थ-व्यवस्था के कुछ क्षेत्रों में पूँजी-प्रधान और कुछ क्षेत्रों में श्रम प्रधान विधियों का उपयोग करना आवश्यक होता है। श्रम प्रधान विधियों का उपयोग प्राय उपभोक्ता-वस्तुओं के उद्योगों में किया जाता है और लघु एवं ग्रामीण उद्योगों को विकसित किया जाता है परन्तु इन विधियों द्वारा पूँजी एवं उत्पादन की दर ऊँची रखना सम्भव नहीं होता है और विकास की गति मन्द रहती है। इसके अतिरिक्त पूँजी प्रधान एवं श्रम-प्रधान विधियों में समन्वय स्थापित करने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार प्रगति की दर में धीरे धीरे ही वृद्धि की जा सकती है।

(१०) क्षेत्र का चुनाव—नियोजित अर्थ व्यवस्था के विभिन्न कार्यक्रमों के लिए क्षेत्र का चुनाव करना भी आवश्यक होता है। साम्यवादी नियोजन में समस्त कार्यक्रम सरकारी क्षेत्र में सचालित किए जाते हैं परन्तु समाजवादी तथा प्रजातान्त्रिक नियोजन में विभिन्न आर्थिक क्रियाओं के क्षेत्र का चुनाव करने की आवश्यकता होती है। योजना का सचालन करने से पूर्व योजना अधिकारी को यह निर्धारित करना होगा कि विकास कार्यक्रमों में सरकारी क्षेत्र निजी क्षेत्र मिश्रित क्षेत्र तथा सहकारी क्षेत्र का क्या योगदान देना होगा ?

(११) नियोजन सगठन का कलेवर—सफल नियोजित अर्थ-व्यवस्था हेतु नियोजन की उचित सगठन-व्यवस्था की जानी चाहिए। यह सगठन इस प्रकार बनाया जाय कि योजना के प्रत्येक अंगों को पृथक-पृथक् विभागों एवं अधिकारियों को उत्तरदायी रखा जा सके। इस सगठन में अर्थशास्त्रीय एवं सास्थिकीय विशेषज्ञ के विशेषज्ञ, तान्त्रिक विशेषज्ञ एवं प्रशासनिक कार्यों के विशेषज्ञ सम्मिलित होने चाहिए। इसके अतिरिक्त विकास-सम्बन्धी नीतियों (वित्तीय, मौद्रिक, विदेशी भुगतान शेष आदि) का विशिष्ट ज्ञान रखने वाले विशेषज्ञ एवं अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों (कृषि उद्योग, यातायात सचार श्रम लघु उद्योग, सिंचाई शक्ति आदि) का व्यावहारिक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों को या तो नियोजन सगठन में स्थान दिया जाना चाहिए अथवा इनकी विशिष्ट सलाह एवं योगदान नियोजन-सगठन को प्राप्त होना चाहिए। इसके लिए नियोजन-सगठन एवं राजकीय सस्थाओं के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्टरूप से परिभाषित किया जाना चाहिए।

(१२) विकास एवं आर्थिक स्थिरता में समन्वय (Coordination Between Development and Economic Stabilisation)—सामान्यत यह मान लिया जाता है कि विकास एवं अस्थिरता (Destabilisation) एक-दूसरे के घनिष्ठ साथी होते हैं परन्तु नियोजित अर्थ-व्यवस्था की सफलता हेतु प्रारम्भ से ही आर्थिक स्थिरता (Economic Stabilisation) के विशेष प्रयत्न किए जाने चाहिए। योजना-अधिकारी

योजना के प्रयत्न से मौद्रिक एवं वित्तीय नीतियों का इस प्रकार संचालन करना चाहिए कि अधिक विनियोजन एवं आय के फलस्वरूप मूल्य स्तर में अनुचित वृद्धि न हो।

(१३) प्रत्येक योजना को दीर्घकालीन योजना चरण मानना—नियोजित अर्थ व्यवस्था के सफल संचालन का उद्देश्य अर्थ व्यवस्था में दीर्घ काल वांछित प्रगति करना होता है। परन्तु योजनाएँ ५ से ७ वर्ष के काल के लिए निर्धारित होनी चाहिए क्योंकि इतने काल के लिए उचित रूप से अनुमान लगाये जा सकते हैं। इन ५ से ७ वर्षीय योजनाओं को दीर्घकालीन योजना का अंग मानकर इनके कार्यक्रम निर्धारित किए जाने चाहिए अर्थात् जो कोई भी योजनाएँ निकट भविष्य के लिए जायें वह सुदूर भविष्य की योजनाओं के उद्देश्यों की ओर एक बढ़ता हुआ कदम होनी चाहिए। नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत संस्थनीय परिवर्तन करना आवश्यक होता है और यह संस्थनीय परिवर्तन दीर्घ काल में ही पूरे हो पाते हैं। प्रत्येक अल्पकालीन योजनाओं में इन संस्थनीय परिवर्तनों का आयोजन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि निश्चित दीर्घ काल में वांछित संस्थनीय परिवर्तन किए जा सकें।

(१४) निजी क्षेत्र के विकास कार्यक्रमों का आयोजन—नियोजन संस्था सरकारी क्षेत्र के लिए विनियोजन कार्यक्रम निर्धारित कर सकती है परन्तु निजी क्षेत्र के विनियोजन कार्यक्रमों को निर्धारित करना असम्भव होता है क्योंकि क्षेत्र उपस्थित परिस्थितियों के अनुकूल विनियोजन सम्बन्धी निर्णय करता है और यह परिस्थितियाँ सम्भव तीव्र गति से बदलती रहती हैं। ऐसी नियोजन संस्था द्वारा निर्धारित किया निजी क्षेत्र का विकास कार्यक्रम कोई अर्थ नहीं रखता है। इस प्रकार नियोजन संस्था निजी क्षेत्र के लिए विनियोजन एवं उत्पादन के सम्बन्ध में केवल अनुमान लगा सकती है परन्तु ऐसी अर्थ व्यवस्थाओं में जहाँ निजी क्षेत्र में अर्थ व्यवस्था के अधिकतर भाग आच्छादित हों कोई भी उचित योजना बिना निजी क्षेत्र के विकास एवं विनियोजन कार्यक्रमों के लिए नहीं बनायी जा सकती है। ऐसी परिस्थिति में निजी क्षेत्र का विनियोजन का प्रकार निर्धारित करके मौद्रिक वित्तीय भूमि प्रबन्धन लाइसेन्स देने आदि की नीतियों द्वारा निजी विनियोजन को वांछित क्षेत्रों में प्रवाहित करने के लिए राज्य प्रोत्साहित एवं विवश कर सकता है। निजी क्षेत्र के विकास-कार्यक्रमों को लचीला बनाना चाहिए जिससे परिस्थितियों के परिवर्तित होने के कार्यक्रमों में भी परिवर्तन किए जा सकें।

(१५) आय की वृद्धि एवं रोजगार के लिए पृथक-पृथक आयोजन—अल्प विकसित राष्ट्रों में विकास-कार्यक्रमों के संचालन के फलस्वरूप आय में तो वृद्धि परन्तु उसके अनुरूप रोजगार में वृद्धि नहीं होती है। इस कारण योजनाओं की सफलता के लिए नियोजित कार्यक्रमों में आय की वृद्धि के आयोजन एवं रोजगार की वृद्धि के विशेष आयोजन किए जाने चाहिए।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि सरकारी दृष्टि से देखने पर प्रत्येक

तत्व पारस्परिक असम्बद्ध है, परन्तु तथ्य तो यह है कि योजना का सफल होना सभी तत्वों का एकीकृत एव सम्मिलित प्रयत्न है। सभी तत्वों की उपस्थिति अनिवार्य है। एक का अभाव समस्त योजना को शिथिल बना देता है। जहाँ ये समस्त तत्व अपनी पूर्ण मात्रा के साथ सुगमता से उपलब्ध हैं वहा नियोजन की सफलता गुरुतर होने की अपेक्षा खेल-सी प्रतीत होगी।

नियोजन की प्रक्रिया एव तन्त्र तथा भारत का योजना आयोग
[Planning Procedure and Machinery and Indian Planning Commission]

[विकास योजना का निमाण—आकडे एकत्रित करना, राष्ट्रीय आय का अनुमान राष्ट्रीयआय का वितरण उत्पादन-परियोजनाओ का निर्माण, योजना मे स तुलन—व्यावसायिक सुविधा-सन्तुलन, वित्तीय एव भौतिक साधनो मे सन्तुलन, पृष्ठभूमि से सन्तुलन, वित्तीय पक्ष अवधि आकार कायक्रम निश्चय करना विज्ञप्ति, क्रियान्वित करना, मूल्याकन भारत मे याजना प्रक्रिया—विचार, नियन्त्रण आकडो पर विचार, परियोजनाओ की तयारी, विशेषज्ञो की सलाह प्रारूप स्मृतिपत्र, योजना का प्रारूप, प्रारूप की विज्ञप्ति आलोचनाओ का अध्ययन याजना का अन्तिम प्रतिवेदन वार्षिक योजनाओ की तयारी, भारतीय नियोजन-तन्त्र—योजना आयोग, आयोग के काय, आयाग का सगठन, आयोग के कक्ष, कायक्रम मूल्याकन सगठन, परियोजना समिति अनुसन्धान कार्यक्रम समिति, राष्ट्रीय योजना परिषद, वकिंग ग्रूप, सलाहकार समितियाँ आयोग का सरकार से सम्पर्क कायक्रमा का मूल्याकन, राष्ट्रीय विकास परिषद, आयोग की काय विधि के दोष]

विकास योजना एक अत्यन्त विस्तृत प्रलेख होता है जिसको तयार करने के लिए अत्यधिक परिश्रम लगाने की आवश्यकता होती है। यह प्रलेख राष्ट्र की वतमान आर्थिक स्थिति का ब्यौरा देते हुए विभिन्न विकास-कायक्रमो का गुणात्मक एव परिमाणात्मक विवरण देता है और यह भी उल्लेखित करता है कि इन कायक्रमो का सचालन, निरीक्षण एव क्रियान्वयन किस प्रकार किया जाता है। इन सब विवरणो के साथ योजना म समाज की उस स्थिति का चित्रण भी किया जाता है जो योजना के क्रियान्वयन के पश्चात उत्पन्न होगी। इस प्रकार एक विकास योजना मे अथ व्यवस्था की वतमान स्थिति के साथ भविष्य की सम्भावनाओ का चित्रण किया जाता है जिसके लिए सर्वेक्षण, अन्वेषण, दूरदर्शिता एव प्रविधिकरण (Processing) की आवश्यकता

होती है। वास्तव में विकास-योजना अर्थ-व्यवस्था की स्थिति विवरण (Balance Sheet) होती है जिसमें एक ओर उपलब्ध समस्त साधनों का परिमाणात्मक विवरण दिया जाता है और उनके विवेकपूर्ण वितरण एवं उपयोग का प्रस्ताव अंकित की जाती है। समाजवादी राष्ट्रों (USSR) में 'राष्ट्रीय आर्थिक योजना एक राजकीय प्रलेख होता है जिसमें निर्धारित समयावधि में राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के उद्देश्यों के अनुरूप प्रत्येक आर्थिक क्षेत्र (Economic Sectors) के कार्यक्रमों की सूची दी जाती है। इस राजकीय प्रलेख का ढाँचा (Structure) आर्थिक विकास के स्तर तथा भौतिक उत्पादन के सामाजिक एवं क्षेत्रीय (Sectoral) ढाँचे तथा योजना के लक्ष्यों एवं समस्याओं पर निर्भर रहता है।'[1]

विकास योजना इस प्रकार अर्थ-व्यवस्था के सम्पूर्ण क्षेत्रों से सम्बद्ध होती है। ऐसी योजना के चार मुख्य पहलू होते हैं—प्रथम उत्पादन-लक्ष्य जिनके अन्तर्गत इच्छित वस्तुओं की उत्पादन वृद्धि के आँकड़े दिये जाते हैं; द्वितीय पूँजी-बजट, जिसमें सरकारी विनियोजन-कार्यक्रमों का विवरण दिया जाता है; तृतीय मानव-विनियोजन बजट, इसमें उन सरकारी व्यय का विवरण दिया जाता है जो मानव के विकास एवं कल्याण पर व्यय करने का उद्देश्य होता है, अर्थात् शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वास्थ्य एवं सामाजिक सेवाओं का आयोजित सरकारी व्यय तथा चतुर्थ, नियन्त्रण-कार्यवाहियाँ, इसके अन्तर्गत उन प्रविधियों एवं नियन्त्रणों का विवरण दिया जाता है, जिनके द्वारा निजी व्यक्तियों, संस्थाओं एवं व्यवसायों की क्रियाओं का प्रकार निर्देशित किया जाता है जिससे इनके द्वारा योजना उद्देश्यों की पूर्ति में योगदान प्राप्त हो। इस प्रकार आर्थिक योजना लक्ष्यों का एक परिमाणात्मक विवरण होती है जिसमें लक्ष्यों की उपलब्धि के लिए पूँजी एवं मानव के उपयोग को निर्धारित करने की प्रविधि का उल्लेख भी किया जाता है। एक विकास-योजना का निर्माण कई अवस्थाओं से होकर गुजरता है। इन अवस्थाओं का अध्ययन निम्न प्रकार किया जा सकता है—

विकास-योजना का निर्माण

(१) भौतिक, वित्तीय एवं जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़ों को एकत्रित करना—यह योजना की सर्वप्रथम अवस्था है। सांख्यिकी-एकत्रीकरण योजना-आयोग द्वारा किया जा सकता है। कोई भी योजना विश्वसनीय सांख्यिकी तथा तथ्यों के आधार पर ही बनायी जा सकती है। अल्प विकसित देशों में सांख्यिकी एकत्रित करने तथा उनका विश्लेषण करने का कोई सन्तोषजनक प्रबन्ध नहीं होता। अधिकांश सांख्यिकी प्रशासन के दृष्टिकोण से एकत्रित किये जाते हैं जिनको किसी भी रूप में विश्वसनीय कहना अतिशयोक्ति होगी। योजना के उद्देश्य, प्राथमिकताएँ, लक्ष्य, अर्थ-प्रबन्धन आदि सभी को निश्चित करने के लिए सांख्यिकी की आवश्यकता होती है।

1 Economic Management Planning by Anatoli Yefimov and Alexander Anchishkin p 124

योजना आयोग द्वारा ये सूचनाएँ प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकारियों (Administrative Officers) की सहायता से एकत्रित की जाती हैं क्योंकि विशेष सांख्यिक सस्थाएं स्थापित करने तथा उनके द्वारा आवश्यक सूचना एकत्रित करने म अत्यधिक समय व्यतीत होता है। योजना आयोग अपने विशेषज्ञों द्वारा भी सांख्य एकत्रीकरण एव विश्लेषण का कार्य सम्पादित करा सकता है। प्रत्येक विशेष क्षेत्र के विशेष उद्योग के लिए पृथक पृथक समितियाँ नियुक्त की जा सकती है। उन्हे नियोजन क लिए सम्बन्धित उद्योगों से आवश्यक सूचनाएँ एकत्रित करने तथा योजना विधि म इन उद्योगों के नियोजित कार्यक्रम की व्यवस्था पर नियन्त्रण रखने का कार्य सौंपा जा सकता है।

इस प्रकार समस्त सरकारी विभागों निजी औद्योगिक सस्थाओं तथा समितियों व्यापार सस्थाओं (Trade Agencies) एव सेवा सस्थाओं (Service Agencies) से सूचना एकत्र करके योजना आयोग को इस सूचना का विश्लेषण, व्याख्या तथा आलोचनात्मक अध्ययन अपने प्राविधिक विशेषज्ञों द्वारा कराना चाहिए। ये विशेषज्ञ उस सूचना के आधार पर भविष्य के उत्पादन तथा उपभोग की प्रवृत्तियों का भी अनुमान लगाएं और इस प्रकार समस्त अनुभवों के आधार पर योजनाकाल म उपार्जित होने वाली राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया जा सकता है।

(२) *राष्ट्रीय आय का अनुमान—वित्तीय एव भौतिक साधनों के अनुमानों* को जनसख्या वृद्धि के अनुमानों से सम्बद्ध करके राष्ट्रीय आय की इच्छित वृद्धि का अनुमान लगाया जाता है। इस सम्बन्ध म एक ओर उपलब्ध वित्तीय साधनों की उपलब्धि के आधार पर राष्ट्रीय आय की योजना अवधि म वृद्धि का अनुमान लगाया जाता है और दूसरी ओर सम्भावित जनसख्या को प्रति व्यक्ति वाछित न्यूनतम आय का आयोजन करने हेतु राष्ट्रीय आय की वाछित वृद्धि का अनुमान लगाया जाता है। यदि भौतिक अथवा वित्तीय अथवा दोनों साधनों की उपलब्धि के आधार पर वाछित राष्ट्रीय आय म वृद्धि नहीं हो सकती हो तो साधनों को खोजने की आवश्यकता अकित की जाती है।

(३) *राष्ट्रीय आय का विनियोजन उपभोग तथा समाज-कल्याण हेतु वितरण*—अनुमानित राष्ट्रीय आय की राशि निश्चित करने के उपरान्त योजना आयोग द्वारा नीति सम्बन्धी प्रस्ताव तैयार करना आवश्यक है। राष्ट्र की राजनीतिक आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था के अनुसार योजना के लक्ष्यों एव उद्देश्यों को निश्चित किया जाता है। राष्ट्रीय आय को तीन तालिकाओं—विनियोग उपभोग तथा समाज कल्याण म विभाजित किया जाता है। विनियोग की राशि निश्चित करते समय राष्ट्र की आर्थिक नीतियों के आधार पर यह निश्चय किया जाना भी आवश्यक है कि इस राशि का कितना भाग निजी तथा सरकारी क्षेत्र के लिए निर्धारित किया जाय। यद्यपि उपभोग की राशि निर्धारित करते समय जनसमुदाय के वर्तमान जीवन स्तर का

आधार मानना चाहिए तथापि आर्थिक विकास की प्रगति हेतु साधनों का उपभोग के क्षेत्र से पूंजीगत विनियोजन के क्षेत्र में लाना आवश्यक होता है किन्तु यदि जन समुदाय का जीवन-स्तर अत्यन्त निम्न हो तो उनके उपभोग को अधिक कम नहीं किया जा सकता अतः विनियोजन के लिए अब आन्तरिक साधनों से पर्याप्त मात्रा में प्राप्त नहीं होगा। दूसरी ओर यह जानना भी आवश्यक होता है कि देश के संविधानानुसार जनसाधारण से कितना त्याग अपेक्षित है तथा उनकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को उन्हीं के उत्थान के लिए किस सीमा तक नियन्त्रित किया जा सकता है। तदुपरान्त समाज कल्याण हेतु कितनी राशि व्यय की जा सकती है इसका निर्धारण राष्ट्र की सामाजिक व्यवस्था पर निर्भर रहता है। इस सम्बन्ध में राष्ट्र के पिछड़े वर्गों अविकसित क्षेत्रों शिक्षा तथा स्वास्थ्य-व्यवस्था गृह स्थिति तथा श्रम-कल्याण आदि की आवश्यकताओं का आधार माना जाता है।

विनियोजन उपभोग तथा समाज-कल्याण तीनों एक-दूसरे पर अवलम्बित हैं। विनियोजन तथा उपभोग तो इतनी घनिष्ठता से सम्बद्ध हैं कि इन पर व्यय होने वाली राशि निश्चित करने के लिए दोनों का एक साथ अध्ययन करना पड़ेगा। उपभोग की तालिका बनाने के लिए योजनावधि में जीवन-स्तर में कितनी वृद्धि की जायगी इसका निश्चय करना आवश्यक है। जीवन-स्तर में सम्मिलित किये जाने वाले वर्गों के आधार पर ही यह भी निर्धारित करना आवश्यक है कि विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं की कितनी परिमाण में आवश्यकता होगी। इसके साथ ही आवश्यक एकत्रित सूचना के आधार पर यह भी ज्ञात किया जा सकेगा कि इन वस्तुओं तथा सेवाओं की पूर्ति किस सीमा तक राष्ट्रीय उत्पादन एवं आयात तथा संचय में से की जा सकती है।

(४) **उत्पादन परियोजनाओं का निर्माण**—उपभोग विनियोजन एवं समाज-कल्याण की तालिकाओं से वस्तुओं तथा सेवाओं की न्यूनता अथवा अधिकता ज्ञात करने में सहायता होगी। न्यूनाधिक्य का ज्ञान दो तत्वों का जन्म देगा—

(अ) आयात तथा निर्यात-नीति तथा

(ब) उन उद्योगों के विकास की आवश्यकता की तीव्रता जो आन्तरिक उत्पादन द्वारा उपभोग की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होंगे।

उत्पादन के साधनों को बढ़ाने के लिए उद्योगों को अध्ययनार्थ दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम, ऐसे उद्योग जिनके विकास करने के लिए अल्प-कालीन योजनाओं की आवश्यकता हो। साथ ही अर्थ प्रबन्धन हेतु आन्तरिक साधनों पर निर्भर रहा जा सके, द्वितीय ऐसे उद्योग जिनके विकास के लिए दीर्घकालीन योजनाओं तथा पूंजीगत वस्तुओं की आवश्यकता हो। आवश्यक सामग्री का देश में उत्पादन कहां तक हो सकता है इसका अध्ययन भी आवश्यक होगा। इस प्रकार दीर्घकालीन योजना में पूंजीगत वस्तुओं के उद्योग तथा बड़ी-बड़ी योजनाएं सम्मिलित की जायेंगी। पूंजीगत वस्तुओं के साथ-साथ उद्योगों की कच्चे माल तथा श्रम-सम्बन्धी आवश्यकताओं

का अध्ययन भी आवश्यक होगा और इस क्षेत्र में भी यह निश्चित करना होगा कि श्रम तथा कच्चा माल या तकनीक साधनों द्वारा पूर्ति बढ़ाकर अथवा आयात से कहाँ तक प्राप्त किये जा सकते हैं। इस प्रकार प्रत्येक उद्योग के प्रत्येक कच्चे माल के लिए तथा प्रत्येक प्रकार के श्रम की आवश्यकताओं के लिए बजट भी बनाया जा सकेगा। अल्प विकसित तथा अविकसित राष्ट्रों में कृषि का स्थान भी महत्वपूर्ण होता है। भारत जैसे राष्ट्रों में कृषि ही सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था की नियन्त्रक है। उत्पादन के अन्य क्षेत्रों का विकास भी कृषि के पर्याप्त विकास पर अवलम्बित है। कृषि के उत्थान के लिए योजना में सिंचाई के साधनों में वृद्धि, कृषि के तरीकों का यन्त्रीकरण, उत्तम खाद तथा बीज का आयोजन आदि को प्राथमिकता प्रदान की जानी चाहिए। कृषि से सम्बन्धित सूचना शासकीय कृषि विभागों तथा कृषि मन्त्रालयों आदि द्वारा एकत्रित की जा सकती है। योजना आयोग के अन्तर्गत कृषि विकास परिषद् (Development Council for Agriculture) का निर्माण किया जा सकता है। इस परिषद् में विभिन्न राज्यों के कृषि विभागों, जनता, विशेषज्ञों, अर्थशास्त्रियों तथा लोकसभा के प्रतिनिधि होने चाहिए जिससे व्यापक योजनाओं के निर्माण में सुविधा हो तथा इन योजनाओं के लिए जन सहयोग उपलब्ध हो सके।

इस प्रकार उत्पादन के क्षेत्र में विकास के लिए वृहद् सूचनाओं, तथ्यों तथा सांख्य के आधार पर तैयार किए गये सुझाव प्राप्त करने के लिए प्रत्येक क्षेत्र में विकास परिषद् (Development Council) की स्थापना अपेक्षित है। प्रत्येक उद्योग के लिए पृथक पृथक विकास परिषद् का निर्माण किया जा सकता है। इन विकास परिषदों में सम्बन्धित उद्योग में लगे हुए उद्योगपतियों केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों, विशेषकर उन प्रान्तीय सरकारों का जिनमें वह उद्योग स्थापित हो अथवा उस उद्योग की स्थापना सम्भावित हो का प्रतिनिधित्व होना चाहिए। इनमें शासकीय विशेषज्ञ लोकसभा के प्रतिनिधि तथा योजना आयोग के प्रतिनिधि सम्मिलित किए जा सकते हैं। ये विकास परिषदें अपने अपने क्षेत्र की वर्तमान स्थिति अथवा जितनी भी इकाइयाँ इस उद्योग में हों प्रत्येक का उत्पादन उत्पादन शक्ति लागत विभिन्न उपयोगों के लिए अनुकूलता उत्पादन में वृद्धि तथा कमी होने पर उन पर प्रभाव, श्रम की उपलब्धि उसके स्थायी सम्बन्ध की स्थिति तथा उसके प्रतिस्थापन एवं वृद्धि की आवश्यकता, वर्तमान बाजारों की स्थिति आदि का अध्ययन करेंगी। विकास-परिषद् में इस समस्त सूचना के आधार पर अपने क्षेत्र से सम्बन्धित प्रथम प्रस्तावित योजना का प्रारूप निश्चित करने के लिए उचित अधिकारी होना चाहिए। विकास-परिषद् यह भी अनुमान लगा सकती है कि योजनाकाल में उसके क्षेत्र की उत्पादित वस्तुओं की कितनी माँग होगी और इसके आधार पर यह निश्चित किया जा सकेगा कि

उत्पादन में कितनी वृद्धि की जाय तथा इस वृद्धि के लिए क्या-क्या कार्यवाही की जाय।

विकास-परिषदों द्वारा निर्मित प्रथम प्रस्तावित योजनाएं राष्ट्रीय योजना आयोग के पास भेजी जानी चाहिए। योजना-आयोग को इन योजनाओं का मिलान उसके विशेषज्ञों द्वारा तैयार आंकड़ों से करना चाहिए। तत्पश्चात समस्त योजनाएं योजना आयोग अपनी टिप्पणी सहित अपने उच्च अधिकारियों के पास भेजेगा।

योजना आयोग द्वारा योजना के अर्थ प्रबन्धन का भी अध्ययन किया जाता है। कभी कभी तो विकास योजनाओं के निर्माण के पूर्व ही उपलब्ध अर्थ-साधनों का अध्ययन करना होता है। अर्थ-साधनों की उपलब्धि की मात्रा एवं परिणाम के अनुसार ही योजना के कार्यक्रम निर्धारित किये जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में योजना को वित्तीय नियोजन (Financial Planning) का नाम दिया जाता है परन्तु विकास-योजना के लक्ष्य बहुधा पहले निश्चित किये जाते हैं तत्पश्चात् अर्थ-साधनों की उपलब्धि का अध्ययन करके उन्हें बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है। योजना आयोग विभिन्न विकास-परिषदों से तत्सम्बन्धित उत्पादन के क्षेत्रों की आर्थिक आवश्यकताओं का विवरण प्राप्त करता है तथा केन्द्रीय एवं प्रान्तीय वित्त मन्त्रालयों द्वारा उपलब्ध साधनों का अनुमान लगाया जाता है। इस प्रकार अनुमानित अर्थ-साधनों को भी योजना-आयोग उच्चाधिकारी के पास भेज देता है।

समाज-कल्याण की योजना बनाने के लिए एक केन्द्रीय समाज कल्याण परिषद् (Central Social Welfare Board) का निर्माण किया जा सकता है। यह बोर्ड विभिन्न कार्यों के लिए आवश्यकतानुसार समितियाँ स्थापित कर सकता है। श्रम हितकारी योजना निर्माण हेतु एक श्रम तथा श्रम हितकारी परिषद् (*Labour & Labour Welfare Board*) की स्थापना की जा सकती है, जो श्रम के पारिश्रमिक, काम करने की परिस्थितियों श्रमिकों के लिए गृह निर्माण सामाजिक बीमा आदि विषयक आवश्यक सुझाव तैयार करे। इस परिषद् में सरकार, उद्योगपति, श्रमिक संस्थाओं आदि के प्रतिनिधि होने चाहिए। इस प्रकार समाज-कल्याण की प्रारूप-योजनाएँ (Draft Plans) योजना आयोग के पास पहुँचनी चाहिए जो टिप्पणीसहित उच्च अधिकारी के पास भेज दे।

(५) योजना में सन्तुलन (Balances in the Plan)—योजना में सम्मिलित कार्यक्रमों का निर्धारण करते समय सन्तुलनों का विशेष रूप से अध्ययन किया जाता है। वास्तव में यह सन्तुलन ही योजना के अन्तर्गत सन्तुलित विकास का आधार होते हैं। यह सन्तुलन योजना के लक्ष्यों तथा उपलब्ध उत्पादन-साधनों से सम्बद्ध होते हैं। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि उत्पादन घटकों के आवंटन तथा उनसे उपलब्ध उत्पादन अथवा प्रतिफल में पूर्ण समायोजन स्थापित करना नियोजक का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य होता है। योजना में सम्मिलित कार्यक्रमों की संख्या आकार एवं प्रारूप ऐसा होना चाहिए कि उपलब्ध समस्त साधनों का उत्पादक उपयोग हो सके और

इनकी पूर्ति के उपलब्ध साधनों से अधिक की आवश्यकता न पडे। यदि उपलब्ध साधनों से अधिक की माँग योजना के कार्यक्रमों की पूर्ति के लिए की जायगी तो मुद्रा-स्फीति उदय होगी और विकास कार्यक्रमों में बहुत सी रुकावटें उत्पन्न होगी। दूसरी ओर जब साधनों का पूर्ण उपयोग होगा तो प्रगति की दर कम रहेगी।

योजना के लक्ष्यो एव उपलब्ध श्रम शक्ति में सन्तुलन रखना भी आवश्यक होता है। यदि यह लक्ष्य उपलब्ध श्रम शक्ति का पूर्णतया उपयोग नही कर सकेंगे तो बेरोजगारी फैल जायगी। अल्प विकसित राष्ट्रों में श्रम शक्ति की बहुतायत होती है और उसकी वृद्धि की दर भी अधिक होती है जिसके फलस्वरूप नियोजित अर्थ व्यवस्था के प्रारम्भिक काल में उत्पादन-कार्यक्रम इतने विस्तृत नहीं हो सकते हैं कि इस समस्त श्रम शक्ति का उपयोग हो सके। यही कारण है कि आर्थिक प्रगति और बेरोजगारी दोनो में हा एक साथ वृद्धि होती है। बेरोजगारी की समस्या गम्भीर न होने देने के लिए ही तो योजना में उत्पादक रोजगार के साथ कुछ सहायता सम्बन्धी (Relief) कार्यक्रम भी योजना में सम्मिलित किये जाते हैं। दूसरी ओर यदि उत्पादन लक्ष्य इतने ऊँचे रख जाय कि उपलब्ध श्रम शक्ति पर्याप्त न हो तो उत्पादन में बाधाए उत्पन्न हो सकती है। नाजी जर्मनी में हिटलर को द्वितीय महायुद्ध के पूर्व इस समस्या का सामना करना पड़ा था क्योंकि युद्ध सामग्री का संग्रह बड़ी मात्रा में उस समय जर्मनी में किया जा रहा था।

व्यावसायिक सुविधा-सन्तुलन

उत्पादन लक्ष्यों का उत्पादन की सहायक सुविधाओं के साथ सन्तुलित भी करना होता है। सिंचाई शक्ति सचार यातायात अधिकोषण आदि सुविधाओं के साथ उत्पादन लक्ष्यों को सन्तुलित करना अत्यन्त आवश्यक होता है। इस सन्तुलन की अनुपस्थिति मे उत्पादन-कार्यक्रमों का निर्विघ्न सचालित करना सम्भव नहीं होता है।

स्थानीयकरण सन्तुलन (Locational Balance)—उत्पादन के लक्ष्यों को निर्धारित करने के पूर्व नियोजकों को यह भी निश्चय कर लेना चाहिए कि विभिन्न उत्पादन कार्यक्रमों को किस किस क्षेत्र में सचालित किया जाना है। उत्पादन कार्यक्रमों की स्थापना ऐसे स्थानों पर होनी चाहिए जहाँ यातायात की लागत कम पड़े और आधारभूत सामग्री शक्ति एव श्रम-शक्ति आसानी से उपलब्ध हो सकती हो। स्थानीयकरण-सन्तुलन में केवल उत्पादक घटकों एव उत्पादन लागत को ही ध्यान में नही रखा जाता बल्कि विभिन्न क्षेत्रों के विकास के स्तर पर भी विचार किया जाता है क्योंकि एक बड़े राष्ट्र के लिए विकास-कार्यक्रमों द्वारा क्षत्रीय सन्तुलन के उद्देश्य की पूर्ति करनी होता है। भारत की प्रथम एव द्वितीय योजनाओं में स्थानीयकरण-सन्तुलन के आधार पर सरकारी क्षेत्र के व्यवसायों का चयन नहीं किया गया है और तृतीय एव चतुर्थ योजनाओं में राजनीतिक विचारधाराओं ने बहुत सी परियोजनाओं के स्थान चयन करने को प्रभावित किया है।

साधन किस प्रकार प्राप्त किए जायेंगे। विदेशी सहायता की सम्भावनाओं एवं आवश्यकताओं का भी निर्धारित किया जाता है। योजना के वित्तीय पक्ष का उसके भौतिक पक्ष से सम्बद्ध किया जाना है और इसके भौतिक एवं वित्तीय साधनों में सन्तुलन स्थापित किया जाता है।

(७) *योजना की अवधि*—*योजना के लक्ष्यों को समय से सम्बद्ध करना आवश्यक* होता है। इसके लिए पहले दीर्घकालीन उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का निर्धारित कर लिया जाता है और फिर यह निश्चित करना होता है कि इन दीर्घकालीन लक्ष्यों को सामान्य अवधि की कितनी योजनाओं में उपलब्ध किया जाय। योजनाओं की सामान्य अवधि प्रशासनिक सुविधाओं एवं परिस्थितियों में परिवर्तन होने वाले चक्र (Cycle) पर निर्भर रहता है। दीर्घकालीन योजना को विभिन्न वर्गों, शाखाओं और छोटी छोटी अवधियों में विभक्त कर दिया जाता है और फिर विभिन्न भौतिक एवं वित्तीय योजनाओं को इन विभिन्न वर्गों, शाखाओं अथवा क्षेत्रों से सम्बद्ध करके समायोजित एवं सन्तुलित किया जाता है। इस प्रकार सामान्य योजना को विभिन्न क्षेत्रों में विभक्त किया जाता है जैसे उद्योग, कृषि, यातायात, संचार आदि। फिर प्रत्येक क्षेत्र की योजना का प्रत्येक शाखा एवं वर्ग की योजना में विभक्त कर दिया जाता है, जैसे उद्योग क्षेत्र की योजना को विभिन्न उद्योगों की योजनाएं, जैसे लोहा, कोयला, कपड़ा आदि में विभक्त कर दिया जाता है। इसके पश्चात् प्रत्येक उप-योजना इकाइयों की योजना में विभक्त कर देते हैं। यह सभी योजनाएं एवं उप योजनाएँ दीर्घ एवं अल्प दोनों कालों के लिए निर्धारित की जाती हैं।

(८) योजना का आकार—योजना का आकार तीन बातों पर निर्भर होता है—

(अ) पिछले अनुभवों के आधार पर एकत्रित किए गए तथ्य

(आ) योजना के उद्देश्यों के आधार पर निर्धारित किए विभिन्न लक्ष्य

(इ) भविष्य में उदय होने वाली परिस्थितियाँ।

योजना के उद्देश्यों को निर्धारित, वर्तमान परिस्थिति के अध्ययन के आधार पर आधारित किया जाता है और इन उद्देश्यों की उपलब्धि के लिए किन किन भौतिक सुविधाओं एवं सामग्रियों की आवश्यकता होगी, उसके आधार पर भौतिक लक्ष्य निर्धारित होते हैं। भौतिक लक्ष्यों को निर्धारित करते समय भविष्य में उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों, जैसे जनसंख्या की वृद्धि को भी ध्यान में रखना होता है। भौतिक लक्ष्यों के आधार पर योजना के कार्यक्रमों का आकार एवं प्रकार निर्धारित होता है।

(९) योजना के कार्यक्रमों का निश्चय करना—राष्ट्रीय योजना के कार्यक्रम को अन्तिम रूप देने के लिए केवल विशेषज्ञों के विचारों पर ही निर्भर नहीं रहा जा सकता। हमें एक ऐसे राष्ट्रीय अधिकारी की व्यवस्था करनी होगी जिसके पास वर्गीय अधिकारियों (Sectional Authorities) द्वारा अपनी अपनी प्रस्तावित योजनाएँ स्वीकृति अथवा सुधार के लिए भेजी जा सकें। इस स्थिति में तीन कार्यों में भेद करना

आवश्यक है। उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्रीय आवश्यकता का अनुमान लगाना जिससे वर्गीय अधिकारियों द्वारा लगाये गये अनुमानों पर नियन्त्रण रखा जा सके तथा समस्त उद्योगों के लिए प्रस्तावित राष्ट्रीय योजना की रूपरेखा तयार करना जिससे वर्गीय अधिकारियों द्वारा निर्मित विभिन्न योजनाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके। दूसरा कार्य राष्ट्रीय प्रस्तावित योजना तथा वर्गीय योजनाओं के आधार पर वास्तविक रूप निश्चय करने का है तत्पश्चात उत्पादन की राष्ट्रीय योजना तयार की जानी चाहिए। तीसरा कार्य योजना के संचालन व निरीक्षण करने का है जिससे वर्गीय अधिकारियों के कार्य तथा उनके एक-दूसरे के सम्बन्धों में अधिकतम कायक्षमता का निश्चय हो सके। उपर्युक्त कार्यों के सम्पादन हेतु निम्नलिखित अधिकारियों की नियुक्ति होना आवश्यक है। सवप्रथम, एक केन्द्रीय योजना विभाग का निर्माण आवश्यक है जिसको योजना आयोग की संज्ञा दी जा सकती है। योजना आयोग को विभिन्न संस्थाओं में, जो योजना के कार्यक्रम का संचालन करें सूचना प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिए। योजना आयोग के पास अपने विशेषज्ञ हों जो विभिन्न विकास-परिषदों द्वारा प्रेषित योजनाओं का आलोचनात्मक अध्ययन कर सकें तथा एक राष्ट्रीय योजना की रूपरेखा तैयार कर सकें। योजना आयोग वास्तव में एक विशेषज्ञों की संस्था होती है जिसे अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने का अधिकार नहीं होता, प्रत्युत् विकास-परिषदों द्वारा प्रेषित योजनाओं पर अपने विचार व्यक्त करने तथा सुझावों के साथ अपनी योजनाओं को अन्तिम निश्चय के लिए अन्य उच्च अधिकारियों के पास भेजना होता है।

योजना कार्यक्रमों को अन्तिम रूप प्रदान करने के लिए केवल विशेषज्ञों के विचारों को ही आधार नहीं बनाया जा सकता। आर्थिक नियोजन का तात्पर्य केवल इतना ही नहीं है कि पृथक् पृथक् क्षेत्रों के लिए विशेषज्ञों द्वारा पृथक् पृथक् योजनाएँ बना ली जाएँ प्रत्युत् राष्ट्र की आर्थिक क्रियाओं को योजना के अन्तिम उद्देश्यों के अनुसार परिवर्तित करना भी आवश्यक है। प्रजातान्त्रिक समाज में विशेषज्ञों के हाथ में राष्ट्र की सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था को निहित नहीं किया जा सकता। किसी भी निश्चय के पूर्व जनसाधारण के विचारों से अवगत होना भी आवश्यक है क्योंकि योजना-आयोग को केवल एक विशेषज्ञों की संस्था का स्थान प्राप्त होता है। यह संस्था जनता के विचारों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती है।

योजना का अन्तिम रूप निश्चित करने का कार्य लोकसभा द्वारा सम्पादित किया जाना चाहिए, लेकिन लोकसभा के सम्मुख किसी भी कार्यक्रम को स्वीकृति हेतु प्रस्तुतीकरण मन्त्रिमण्डल द्वारा होना चाहिए। योजना विभाग के मन्त्री को योजना आयोग द्वारा प्रेषित योजनाओं के अध्ययनोपरान्त राष्ट्र की राजनीतिक सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति के आधार पर योजना को अन्तिम रूप देना होता है। इस सब कार्य के लिए योजना मन्त्री के सहयोग हेतु एक राष्ट्रीय नियोजन अधिकारी अथवा राष्ट्रीय

नियोजन सभा (National Planning Authority or National Planning Assembly) की व्यवस्था की जा सकती है। इस सभा में विभिन्न उद्योगों से सम्बन्धित विकास-परिषदों के क्षेत्रीय प्रतिनिधि लोकसभा के कतिपय सदस्य जिनमें सरकारी तथा विरोधी दोनों पक्षों के सदस्य हों, मन्त्रिमण्डल के सदस्य तथा योजना आयोग के कुछ विशेषज्ञ तथा सदस्य सम्मिलित किये जा सकते हैं। यह सभा योजना को अन्तिम रूप देगी तथा अन्तिम प्रारूप ही योजना मन्त्री द्वारा लोकसभा की स्वीकृति हेतु प्रस्तुत किया जाना चाहिए। लोकसभा को सर्वोच्च स्वतन्त्र संस्था होने के कारण सर्वोच्च अधिकार रहेगा यद्यपि व्यवहार में (नियोजन) सभा द्वारा किये गये अनुमोदनों को लोकसभा निःसन्देह रद्द नहीं करेगी।[1] (लिपसन)

इस अवस्था में योजना के विषय में अन्तिम निश्चय करने का कार्य अर्थात् लक्ष्य निर्धारित करने का कार्य राष्ट्रीय नियोजन सभा द्वारा किया जाना चाहिए। लक्ष्य निर्धारित करने का कार्य बहुत कुछ देश की आधारभूत नीतियों पर आधारित होता है क्योंकि लक्ष्यों के अनुसार ही अर्थ साधनों का भी बटवारा विभिन्न क्षेत्रों में किया जाता है। लक्ष्य निर्धारित करने से पूर्व प्राथमिकताओं को भी निश्चित करना आवश्यक होगा। योजना के आधारभूत उद्देश्यों के अनुसार योजना के विभिन्न कार्यक्रमों में प्राथमिकताएँ निश्चित करना आवश्यक होता है। अल्प विकसित राष्ट्रों में कृषि विकास, औद्योगिक विकास, रोजगार व्यवस्था, जीवन स्तर में वृद्धि आदि मुख्य समस्याएँ होती हैं। इन समस्याओं की तीव्रता तथा अर्थ साधनों की उपलब्धि के अनुसार प्राथमिकताएँ निश्चित की जाती हैं। इसके पश्चात प्रत्येक उत्पादन तथा समाज कल्याण के क्षेत्र में लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं। उत्पादन के लक्ष्य निश्चित करने के साथ साथ प्रत्येक का बजट भी तैयार कर लिया जाता है। विभिन्न औद्योगिक तथा कृषि के क्षेत्र की अपूर्णताओं तथा विदेशी व्यापार की स्थिति के अनुसार लक्ष्यों को निर्धारित किया गया है तत्पश्चात अर्थ साधनों की सम्भावित उपलब्धि के अनुसार लक्ष्यों को अन्तिम रूप देने के पूर्व आवश्यक समायोजन कर लेने चाहिए। कृषि प्रधान अल्प विकसित देशों में जलवायु की अनिश्चितता को दृष्टिगत करना भी आवश्यक होता है इसलिए लक्ष्यों को न तो इतना अभिलाषी रखना चाहिए कि जिनकी प्राप्ति सम्भव हो न हो सके तथा सम्पूर्ण योजना ऐसी परिस्थिति में एक अभिलाषी-कार्यक्रम मात्र प्रतीत हो जो जनता का विश्वास प्राप्त न कर सके और न ही योजना के लक्ष्य इतने कम होने चाहिए कि वास्तविक विकास इन लक्ष्यों की तुलना में बहुत अधिक हो सकता हो। इस दशा में नियोजन को व्यवस्था की संज्ञा देना भी अनुचित होगा। लक्ष्यों की

---

1 Parliament as the sovereign body would retain an over riding authority though in practice it would doubtless not ignore the recommendation submitted by the assembly
(E Lipson *A Planned Economy or Free Enterprise* p 298)

तुलना में अत्यधिक अथवा अत्यन्त न्यून सफलता दोनों ही दोषपूर्ण नियोजन के लक्षण हैं परन्तु शत-प्रतिशत उचित लक्ष्य को निश्चित करना सम्भव नहीं होता क्योंकि बहुत से घटकों, जैसे कृषि उत्पादन, आयात तथा निर्यात की दशाओं आदि पर नियोजन-अधिकारियों का कोई नियन्त्रण नहीं होता है। साथ ही, जिस सूचना तथा संख्या के आधार पर लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं वह भी शत प्रतिशत सही नहीं हो सकती है। यदि हम आर्थिक नीति सूक्ष्म तथा प्रभावशील बनाना चाहते हैं तो सांख्य की सत्यता तथा मात्रा में वृद्धि करने की आवश्यकता होगी।

योजना के लक्ष्य और कार्यक्रम इस प्रकार निर्धारित किये जायें कि उनमें आवश्यकतानुसार समय समय पर परिवर्तन किये जा सकें। प्रतिकूल परिस्थितियों की उपस्थिति में इस प्रकार परिवर्तन किये जा सकें कि योजना के कार्यक्रम की पूर्ति पर इन उपस्थितियों का कोई विशेष प्रभाव न पड़े तथा आधारभूत लक्ष्यों की प्राप्ति हो सके। सम्भावना से अधिक अनुकूल परिस्थितियों की उपस्थिति में परिवर्तन इसलिए किये जाते हैं कि इन परिवर्तित परिस्थितियों का अधिकतम हित के लिए उपयोग किया जा सके। योजना के विभिन्न बजट एक-दूसरे से इस प्रकार सम्बन्धित होते हैं कि एक बजट में परिवर्तन करने पर अन्य सम्बन्धित बजटों में समायोजन करना आवश्यक होता है। अतएव योजना के कार्यक्रमों में परिवर्तन करते समय बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है।

(१०) योजना की विज्ञप्ति—राष्ट्रीय योजना सभा द्वारा अन्तिम प्रस्ताव प्राप्त कर लेने के उपरान्त प्रस्तावित योजना लोकसभा के समक्ष स्वीकृति-हेतु प्रस्तुत की जाती है। इसके साथ ही योजना के प्रति जनता के तत्सम्बन्धी विचारों के जानने के लिए विज्ञापन भी आवश्यक होता है जिससे ऐसे विशेषज्ञ, उद्योगपति, अर्थशास्त्री, सामान्य जनता तथा सामाजिक, व्यापारिक एवं अन्य संस्थाएँ, जो प्रत्यक्ष-रूपेण योजना से सम्बद्ध न हों, उस पर अपने विचार प्रकट कर सकें। प्रजातन्त्र में जनसाधारण के विचारों को विशेष महत्व दिया जाता है और योजना की सफलता जनता के सहयोग पर ही अवलम्बित है अतः यदि आवश्यक हो तो जन-वाणी के अनुसार लोकसभा के प्रारूप में आवश्यक समायोजन कर सकती है। इस प्रकार योजना का विज्ञापन करने का कार्य योजना आयोग द्वारा किया जा सकता है जो जनता से प्राप्त आलोचनाओं को अपनी टिप्पणी सहित इन्हें राष्ट्रीय योजना सभा के पास भेज सकता है।

(११) योजना को क्रियान्वित करना—योजना को लोकसभा द्वारा स्वीकृति होने के पश्चात् उसे क्रियान्वित करने की अवस्था आती है। इस अवस्था में यदि कोई शिथिलता रह जाती है तब अच्छी से अच्छी योजना का सफल होना स्वप्नमात्र रह जाता है। वास्तव में, यह अवस्था सम्पूर्ण योजना के जीवन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा मूल अवस्था होती है अतएव शासन को इस क्षेत्र में अग्रसर होकर कार्यवाही

करना चाहिए। सचालन काय विभिन्न सरकारी विभागो शासकीय तथा अद्ध शासकीय निगमो निजी व्यापारियो तथा उद्योगपतियों सामाजिक सस्थाओ आदि द्वारा किया जाता है। प्रजातान्त्रिक नियोजन म काय क्षेत्र दो भागो म विभक्त होता है—एक निजी क्षेत्र (Private Sector) तथा दूसरा सरकारी क्षेत्र (Public Sector)। सरकारी क्षत्र का कायक्रम सरकारी विभागो तथा निगमो द्वारा सचालित होता है जबकि निजी क्षेत्र के कायक्रमो का सरकार आवश्यक सहायता प्रदान करती है एव सरकारी नियमों के अनुसार निजी क्षेत्र को काय करने का अवसर प्रदान किया जाता है। विभिन्न उद्योगो से सम्बन्धित विकास परिषदें अपने उद्योगो के कायक्रमो का सचालन करती हैं तथा आवश्यक नियन्त्रण भी रखती है। योजना आयोग के विभिन्न योजना की प्रगति का अध्ययन करके समय समय पर राष्ट्रीय योजना सभा को रिपोट भेजते है तथा साथ साथ योजना की प्रगति का प्रकाशन भी आयोग द्वारा किया जाता है। योजना आयोग निरन्तर परिस्थितियो का अध्ययन करता रहता है तथा योजना म सम्भाव्य समायोजन सम्बन्धी सिफारिशें राष्ट्रीय योजना सभा के पास भेजता रहता है। योजना मन्त्री को भी समय समय पर लोक सभा के समक्ष योजना की प्रगति के विषय म जानकारी प्रस्तुत करना आवश्यक होता है।

(१२) योजना के सचालन तथा प्रगति का मूल्याकन—योजना की अन्तिम किन्तु महत्वपूर्ण अवस्था योजना के सचालन का निरीक्षण तथा जाँच पड़ताल होना है। इस हेतु एक विशेष विभाग की स्थापना की जा सकती है जिसे आर्थिक निरीक्षण आयोग (Economic Inspection Commission) की सज्ञा दी जा सकती है। यह सस्था राष्ट्रीय योजना सभा के अधीन नही होनी चाहिए। इस योजना के सचालन की आलोचना करने की स्वतन्त्रता रहे तथा समय समय पर यह योजना म समायोजन करने के सुझाव भी दे सके। राष्ट्रीय योजना आयोग की भाति इस आर्थिक निरीक्षण आयोग को योजना म सम्मिलित विभिन्न उद्योगो तथा सवाओ से सम्बन्धित तत्वो तथा आँकड़ों की पूर्ण जानकारी से अवगत होने की आवश्यकता होगी तथा प्रत्येक वर्गीय सस्था को यह अनिवार्य होना आवश्यक होगा कि वह समस्त सम्बन्धित प्रलेख इसके पास भेजे तथा इस विभाग द्वारा नियुक्त निरीक्षको को अपनी पुस्तको का अवलोकन कराये। इस विभाग का यह काय होगा कि वह निरन्तर प्रत्येक उत्पादन की शाखा की कायक्षमता की आलोचना आर्थिक एव तान्त्रिक दोनो विचारधाराओ से करे। आर्थिक निरीक्षण विभाग का काय योजना का काय प्रारम्भ होने के साथ प्रारम्भ होगा और यह इस बात का भी निरीक्षण करेगा कि योजना का सचालन कहाँ तक प्रभावशाली है तथा यह योजना म सुधार करने के लिए अपने सुझाव योजना आयोग तथा राष्ट्रीय योजना सभा के पास भेजेगा।[1]

1 Like the National Planning Commission this department of Eco- (contd)

योजना की प्रविधि तथा प्रचालन के विषय में कोई भी सर्वमान्य नियम निर्धारित नहीं किए जा सकते। योजना के उद्देश्य राजनीतिक सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थिति राष्ट्र का आकार एवं जनसमुदाय के सामान्य चरित्र के अनुसार योजना की व्यवस्था की जानी चाहिए। भारत जैसे बड़े राष्ट्र में केन्द्रीय व्यवस्था की तुलना में क्षेत्रीय विकेन्द्रीकरण (Regional Decentralisation) अधिक सफल हो सकेगा। क्षेत्रीय संस्थाओं में पारस्परिक समन्वय होना ऐसी व्यवस्था में अत्यन्त आवश्यक होगा जिसके लिए योजना आयोग का निरन्तर क्रियाशील रहने की आवश्यकता होगी। क्षेत्रीय संस्थाओं द्वारा योजना के सम्पादन में अधिक नियन्त्रण तथा कार्य-क्षमता लायी जा सकेगी। राष्ट्र के राजनीतिक संगठन पर क्षेत्रीय व्यवस्था की सफलता निर्भर रहेगी। क्षेत्रीय संस्थाओं को यथोचित स्वतन्त्रता दी जा सकती है और उन्हें केन्द्रीय संस्थाओं द्वारा दिये गये निर्देशों के अनुसार कार्य करना अनिवार्य किया जा सकता है।

भारत में नियोजन प्रक्रिया (Planning Process in India)

भारतीय नियोजन प्रक्रिया देश के प्रजातान्त्रिक कलेवर के अनुरूप रखी गयी है। इस प्रक्रिया में प्रत्येक योजना में कुछ सुधार एवं परिवर्तन कर दिये जाते हैं जो पिछली योजनाओं के अनुभवों पर आधारित होते हैं। भारतीय नियोजन रूस के नियोजन की तरह विस्तृत नहीं है क्योंकि हमारे रूप में राज्य देश की समस्त आर्थिक क्रियाओं को नियन्त्रित नहीं करता है। मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत योजना का निर्माण कभी भी दोषरहित नहीं हो सकता है क्योंकि योजना में सम्मिलित किए गये कार्यक्रम सरकारी एवं निजी दोनों ही क्षेत्रों में संचालित किए जाते हैं। निजी क्षेत्र का बहुत बड़ा भाग संगठित नहीं होता है और इस भाग के निश्चित कार्यक्रम एवं लक्ष्य निर्धारित करना सम्भव नहीं होता है। भारतीय योजनाओं को अन्तिम अवस्था तक पहुँचने के लिए अप्रत्याशित अवस्थाओं से होकर गुजरना पड़ता है—

---

nomic Inspection would need the fullest access to the facts and figures relating to the conduct of the various industries and services included within the plan and each sectional body would *need to be under obligation to show all relevant documents to it* and to give access to its books to inspectors acting under the auspices of the department It would be the function of the department to the constantly criticising the efficiency of each branch of production both from the financial and from the technical point of view The task of the department of Economic Inspection would be taking the National Plan as its starting point *to discover how effectively the plan was being carried out and to make suggestions for its amendment which would trespass for consideration to the National Planning Commission and to the National Planning Authority itself*

(G D H Cole *Principles of Economic Planning* pp 309-310)

(१) **योजना का विचार**—योजना प्रारम्भ होने के लगभग तीन वर्ष पूर्व याजना के लक्ष्या उद्देश्या एव कार्यक्रमो पर सामान्य विचार किया जाता है। इस काय के लिए याजना आयाग अर्थ व्यवस्था की वतमान स्थिति का अध्ययन करता है और यह अनुमान भी लगाया जाता है कि चालू योजना मे अन्त तक भौतिक लक्ष्यों की उपलब्धि किस सीमा तक होगा। इन सूचनाओं के आधार पर योजना आयोग का दीर्घकालीन नियोजन कक्ष यह निर्धारित करने के लिए सुझाव तयार करता है कि राष्ट्रीय आय का कितना भाग उपभोग किया जायगा और कितना बचत करके विनियोजन के लिए उपलब्ध होगा। इस काय के लिए योजनाकाल म उपभोग का औसत सामान्य स्तर निर्धारित करना होता है। यह स्तर इस बात पर निभर रहता है कि वाछित उपभोग स्तर कितने समय म उपलब्ध करने का लक्ष्य रखा जाता है। उपभोग एव विनियाजन के स्तर पर आधारभूत आकडे तयार किए जाते हैं जिन्हे नियन्त्रण आकडे भी कहते हैं। इन नियन्त्रण आकडा मे योजनाकाल की प्रगति बचत एव विनियाजन दर सम्मिलित होती है। प्रगति बचत एव विनियोजन की दरा को आधार मानते हुए विभिन्न वस्तुओं एव सवाओं क लक्ष्यों का निर्धारण करके अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो के विनियाजन का निर्धारित किया जाता है। दीर्घकालीन याजना कक्ष विभिन्न माइक्रो एव मक्रो (Micro and Macro) याजनाआ का निर्माण करता है और फिर विभिन्न सन्तुलनो के आधार पर इनमे आवश्यक परिवतन करता है। इन सब अध्ययना के आधार पर जो तथ्य सूचनाए, लक्ष्य एव उद्देश्य उपलब्ध होते हैं उन्हे राष्ट्रीय विकास परिषद क पास विचार करने के लिए भेज दिया जाता है।

(२) **राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा नियन्त्रण आकडो पर विचार**—राष्ट्रीय विकास परिषद विशेषज्ञा द्वारा तयार किए प्रारम्भिक तथ्या एव सुझावो पर विचार करती है और इनम आवश्यकतानुसार परिवतन एव सुधार करने का निणय देती है।

(३) **केन्द्रीय एव राज्य सरकारों एव विभिन्न वर्किंग ग्रूप द्वारा विस्तृत काय क्रमो एव परियोजनाओं की तयारी**—राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा स्वीकृत नियन्त्रण आकडा के आधार पर केन्द्रीय एव राज्य मन्त्रालया का विकास परियाजनाआ के निर्माण का काय करने को कहा जाता है। इस काय के लिए विभिन्न क्षेत्रा क लिए पृथक पृथक वर्किंग ग्रूप स्थापित किए गये हैं जो अपने क्षेत्र मे सम्बन्धित वतमान स्थिति का अध्ययन और विकास क सम्बन्ध म अपने सुझाव प्रस्तुत करते हैं।

(४) **विशेषज्ञों की सलाह**—योजना आयोग विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित विशेषज्ञों के पनल (Panel) स्थापित करती है। इनम सरकार से बाहर के विशेषज्ञा को सम्मिलित किया जाता है। यह पनल अपने अपने क्षेत्र म सम्बन्धित नीति सम्बन्धी सुझाव योजना आयोग को देते हैं।

(५) **प्रारूप स्मृति पत्र**—योजना आयाग के विशेषज्ञा द्वारा अब विभिन्न केन्द्रीय मन्त्रालयो के साथ उनके द्वारा तयार की गयी परियोजनाआ एव कायक्रमों पर विचार

विमर्श किया जाता है। योजना आयोग राज्य सरकारों द्वारा बनायी गयी योजनाओं का अवलोकन करता है और राज्य सरकारों से इस सम्बन्ध में विचार-विमर्श करता है। इस प्रकार किए गये विचार विमर्श तथा विभिन्न पैनलों की सलाह के आधार पर योजना आयोग एक प्रारूप स्मृति-पत्र तयार करता है। यह पत्र योजना के आकार का निर्धारित करता है। इसमें उन सब बातों का भी प्रस्तुत किया जाता है जिनके सम्बन्ध म वृहद् नीति निर्धारण करने की आवश्यकता होती है। यह भी स्पष्ट कर दिया जाता है कि अर्थ-व्यवस्था के किन क्षेत्रों में आवश्यकतानुसार वांछित विकास सम्भव नहीं हो सकेगा। यह स्मृति पत्र केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के पास भेज दिया जाता है।

(६) **योजना का प्रारूप** (Draft Outline)—केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल प्रारूप स्मृति-पत्र पर विचार करके आधारभूत नीतियों की दिशा निर्धारित करता है और फिर इस पत्र को राष्ट्रीय विकास परिषद के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया जाता है। राष्ट्रीय विकास परिषद इस पर टीका टिप्पणी करके अपने सुझाव एवं निर्देश प्रस्तुत करती है। योजना आयोग इन सब टीका टिप्पणियों, निर्देशों एवं सुझावों के आधार पर योजना का प्रारूप तयार करता है। योजना के प्रारूप में योजना का दिशा निर्देश, प्रमुख नीतियाँ उद्देश्य, विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित कार्यक्रम एवं लक्ष्य आदि का विस्तृत विवरण प्रस्तुत रहता है।

(७) **योजना प्रारूप की विज्ञप्ति**—योजना प्रारूप विभिन्न केन्द्रीय मन्त्रालयों एवं राज्य सरकारों के पास भेज दिया जाता है। इस प्रारूप पर केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल विचार करता है और स्वीकृति हेतु राष्ट्रीय विकास परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत कर देता है। राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्वीकृति हो जाने पर योजना प्रारूप प्रकाशित कर दिया जाता है जिससे इस पर सभी वर्गों के लोग विचार विमर्श करके अपनी आलोचना एवं सुझाव प्रस्तुत कर सकें। राज्यों की विधान-सभाओं लोकसभा विभिन्न संगठनों विश्वविद्यालयों एवं व्यावसायिक संस्थाओं आदि सभी में इस प्रारूप पर विचार-विमर्श होता है।

(८) **योजना आयोग द्वारा आलोचनाओं एवं सुझावों का अध्ययन**—योजना-आयोग योजना प्रारूप पर केन्द्रीय मन्त्रालयों एवं राज्य सरकारों से विचार-विमर्श जारी रखता है और सरकार के बाहर के लोगों एवं गैर-सरकारी संस्थाओं से जो सुझाव प्राप्त होते हैं उनके आधार पर एक स्मृति-पत्र तयार करता है जिसमें योजना-प्रारूप में आवश्यक परिवर्तन एवं सुधार करने के सुझाव सम्मिलित किये जाते हैं। यह स्मृति पत्र केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल एवं राष्ट्रीय विकास परिषद के पास भेज दिया जाता है।

(९) **योजना का अंतिम प्रतिवेदन**—स्मृति-पत्र पर राष्ट्रीय विकास परिषद जो निर्देश देती है उसके आधार पर योजना-आयोग योजना का अन्तिम प्रतिवेदन तैयार करता है जिसे केन्द्रीय मन्त्रालय एवं राष्ट्रीय विकास परिषद के सम्मुख अन्तिम

स्वीकृति हेतु प्रस्तुत कर दिया जाता है। स्वीकृति हो जाने के पश्चात् अन्तिम प्रतिवेदन को प्रकाशित कर दिया जाता है और लोकसभा में प्रधानमन्त्री द्वारा प्रस्तुत कर दिया जाता है। लोकसभा की स्वीकृति हो जाने के बाद योजना क्रियान्वित होती है।

(१०) वार्षिक योजनाओं की तयारी—चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के सम्बन्ध में यह भी निश्चय किया गया है कि इस योजना को वार्षिक योजनाओं में विभक्त किया जायगा। वार्षिक योजनाओं में कार्यक्रमों का विस्तृत ब्योरा दिया जायगा। भारत की परिवर्तनशील आर्थिक परिस्थितियों (विशेषकर कृषि क्षेत्र में) वार्षिक योजनाओं का महत्व अत्यधिक है। बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल वार्षिक योजनाओं का निर्माण किया जाना है जिससे योजना के कार्यक्रमों एवं संचालन में अधिक लचीलापन बनाये रखा जा सकता है। पंचवर्षीय योजनाएं अब आधार, सामान्य संरचना, प्राथमिकता, मूल उद्देश्य एवं लक्ष्य आदि का निर्धारण करेंगी और कार्यक्रमों का विस्तृत विवरण वार्षिक योजनाओं में दिया जायगा।

भारतीय नियोजन प्रक्रिया के सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि ऊपर दी गयी विभिन्न अवस्थाओं का अनुगमन प्रत्येक योजना में परिस्थिति के अनुसार इसी क्रम एवं इसी प्रकार से नहीं किया गया है। उपर्युक्त विवरण तो केवल सामान्य व्यवस्था दर्शाता है।

भारतीय नियोजन तन्त्र (Planning Machinery in India)

भारतीय नियोजन के दो प्रमुख अंग हैं—योजना आयोग एवं राष्ट्रीय विकास परिषद। योजना आयोग विशेषज्ञों की एक संस्था है जो योजना के निर्माण एवं मूल्यांकन (evaluation) का कार्य करता है। दूसरी ओर राष्ट्रीय विकास परिषद एक राजनीतिक संस्था है जो योजना के सम्बन्ध में निर्णय एवं सुझाव देती है।

योजना आयोग—भारतीय योजना आयोग की स्थापना भारत सरकार के १५ मार्च, सन् १९५० के प्रस्ताव के द्वारा की गयी। इस प्रस्ताव में बताया गया कि भारतवासी अब इस बात के प्रति जागरूक हैं कि उनके जीवन-स्तर में सुधार करने के लिए नियोजित विकास अत्यन्त आवश्यक है। अर्थव्यवस्था पर जो द्वितीय महायुद्ध, देश का विभाजन एवं लाखों शरणार्थियों का पुनर्वास की व्यवस्था करने से जो आघात हुए हैं उनका निवारण नियोजित विकास द्वारा ही सम्भव हो सकता है। इस बात की आवश्यकता महसूस की गयी कि समस्त आर्थिक घटकों का उद्देश्यात्मक विश्लेषण तथा साधनों का सतर्कता के साथ मूल्यांकन करके विस्तृत नियोजन की व्यवस्था की जाय। इस कार्य के लिए एक ऐसी स्वतन्त्र संस्था को संगठित करने की आवश्यकता हुई जो कि प्रतिदिन के प्रशासनिक कार्यों से सम्बद्ध न हो परन्तु सरकार से निरन्तर सम्पर्क बनाए रखे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए योजना आयोग का गठन किया गया।

योजना आयोग के कार्य—योजना आयोग का सरकार की नीतियों एव

उद्देश्यों के अन्तगत देश के साधनों का कुशल शोषण करके जन-साधारण के जीवन स्तर में द्रुत गति से वृद्धि करने का काय सौंपा गया है। प्रस्ताव में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि आयोग अपनी सिफारिशें केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल को देगा और निर्णय लेने एवं उन्हें कार्यान्वित करने का काय केन्द्र एव राज्य सरकारें करेंगी। इस प्रकार योजना आयोग एक सलाहकार संस्था के रूप में स्थापित की गयी है। इसके काम निम्न प्रकार हैं—

(१) देश के भौतिक साधनों पूँजी एव मानवीय साधनों जिनमे तान्त्रिक नियोगी वग (Technical Personnel) भी सम्मिलित हैं का अनुमान लगाना तथा यह जाच करना कि इन साधनों की कमी होने पर इनकी पूर्ति कहा तक सम्भव है।

(२) देश के साधनों का सर्वाधिक प्रभावशील उपयोग करने हेतु योजना बनाना।

(३) प्राथमिकताओं के निर्धारित होने पर योजनाओं की सचालन-अवस्थाओं का निश्चय करना तथा साधनों का प्रत्येक अवस्था की पूर्ति हेतु बँटवारा करना।

(४) उन घटकों का बताना जिनके द्वारा आर्थिक विकास म रुकावट आती हो। वतमान सामाजिक एव राजनीतिक दशाओं को दृष्टिगत करते हुए योजना की सफलताथ आवश्यक परिस्थितियों का निर्धारण करना।

(५) योजना की प्रत्येक अवस्था (Stage) के समस्त पहलुओं का सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने हेतु व्यवस्था (Machinery) के प्रकार का निर्धारित करना।

(६) समय-समय पर योजनाओं की विभिन्न अवस्थाओं के सचालन में प्राप्त सफलता को आकना और इस सफलता के आधार पर नीति एव कार्यवाहियों में समायोजन करने के लिए सिफारिश करना।

(७) ऐसी आन्तरिक एव उपयोगी सिफारिशें करना, जिनसे इनको सौंपे गये कत्तव्यों की पूर्ति में सुविधा होती हो अथवा वर्तमान आर्थिक परिस्थितियों, नीतियों, कार्यवाहियों एव विकास कार्यक्रमों पर विचार करके उपयोगी सिफारिशें करना अथवा केन्द्रीय या राज्य सरकार द्वारा सौंपी गयी विशेष समस्याओं का अध्ययन करके सिफारिश करना।

योजना आयोग के उपर्युक्त समस्त कार्यों का प्रकार परामर्शदात्री (Advisory) है, परन्तु जिन मामलों में योजना आयोग का सलाह देने के लिए कहा जाता है अथवा उसे सलाह देना आवश्यक होता है वे इतने महत्वपूर्ण हैं कि इसकी सलाह का तिरस्कार करना सम्भव नहीं होता, इसलिए योजना-आयोग की अधिकतर सलाह को सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है, परन्तु इस सबका यह तात्पर्य कभी नहीं है कि योजना-आयोग को सरकार के केन्द्रीय मन्त्रालय के ऊपर का स्थान प्राप्त है। भारत मे योजना के कार्यक्रम की प्रगति को आकना भी योजना आयोग का काम है। वास्तव में प्रगति का आँकने का काय एक पृथक् संस्था द्वारा किया जाना चाहिए जो

योजना आयोग के किसी प्रकार अधीन न हो। प्रगति आकन का काय महत्वपूण है। वास्तव मे यह काय राज्य एव केन्द्रीय सरकारो द्वारा किया जाना चाहिए। कुछ सीमा तक यह काय उनके द्वारा किया जाता है परन्तु योजना आयोग अखिल भारतीय दृष्टिकोण के साथ इस काय को करने के लिए अधिक उपयोगी है। वह सलाह एव रिपोट कर सकता है कि क्या किया जा रहा है। [1]

प्रस्ताव म योजना आयोग के सामाजिक एव आर्थिक विकास स सम्बधित कतव्यो का सामान्य विवरण दिया गया था। इन कतव्यो की पूर्ति क लिए आयोग को विभिन्न अध्ययन निरन्तर करन होगे। आयोग के इन अध्ययनो का विश्लेषण निम्न प्रकार किया जा सकता है—

(१) सामग्री, पूँजी एव मानवीय साधनो का मूल्याकन, सरक्षण एव उनमे वृद्धि—*नियोजन का मूलभूत उद्देश्य है कि पुरुष एव स्त्रिया क जीवन स्तर को अधिक गुणात्मक होना चाहिए। इसक लिए शिक्षा एव प्रशिक्षण का विस्तृत व्यवस्था होनी चाहिए। योजना के विभिन्न कायक्रमो की श्रम शक्ति की आवश्यकताओ का अनुमान* समय समय पर लगाया जायगा और इनकी पूर्ति के लिए आवश्यक व्यवस्था की जायगा। प्राकृतिक साधनो का गुणात्मक एव परिमाणात्मक अध्ययन किया जायगा और उनका सवश्रेष्ठ विधियो से रक्षित रखन एव उपयोग करन के सम्बध म व्यवस्था की जायगी। वित्तीय साधनों का भी निरन्तर अध्ययन किया जायगा। मूल्य एव उपभोग-स्तर का समय समय पर अध्ययन भी योजना आयोग करेगा।

(२) साधनो का सन्तुलित उपयोग—योजना आयोग को योजनाओं द्वारा यह परामश देना होगा कि उपलब्ध साधनो का उपयोग अधिकतम प्रगति दर एव अधिकतम सामाजिक न्याय के साथ प्राप्त करने के लिए किस प्रकार सन्तुलित उपयोग किया जायगा।

(३) सामाजिक परिवतन—योजनाओ की सफलता के लिए जो सामाजिक व्यवस्था म परिवतन आवश्यक हो उनका अध्ययन किया जायगा। इस सामाजिक परिवतनो को लान क लिए जिन वधानिक एव अन्य कायवाहियो की आवश्यकता होगी, उनके सम्बन्ध म योजना आयोग द्वारा अध्ययन किया जायगा। विचारधाराओ म जिन परिवतनो को लान की आवश्यकता होगी उनका भी अध्ययन किया जायगा।

---

1 This business of appraisal is therefore of the utmost importance Naturally it is a business which the State Government and the Central Government should take up and to some extent they do it but the Planning Commisson with its All India outlook is best placed to look into it and to advise and report as to what is being done
(Prime Minister Late Jawahar Lal Nehru *Problems in the Third Plan* p 45)

(४) नीतियों पर पुनर्विचार—योजना आयोग अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के विकास के लिए जो परामर्श देगा, उसमें सम्बन्धित नीतियों जो विकास के लिए आवश्यक हों के सम्बन्ध में सुझाव प्रस्तुत करेगा। यह सुझाव वर्तमान नीतियों का अध्ययन करके तैयार किए जायेंगे।

(५) नियोजन यान्त्रिकता (Planning Technique)—योजना-आयोग प्रयोग में आने वाली नियोजन यान्त्रिकताओं का निरन्तर अध्ययन करता रहेगा और इनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन करता रहेगा।

(६) प्राथमिकताओं का निर्धारण—प्राथमिकताओं के निर्धारण के लिए योजना-आयोग गुण (Criteria) निर्धारित करेगा। विभिन्न परियोजनाओं एवं कार्यक्रमों का आर्थिक एवं वित्तीय विचारधाराओं के आधार पर आलोचनात्मक अध्ययन किया जायगा जिससे उपलब्ध साधनों पर विभिन्न परियोजनाओं के प्रतिस्पर्धी दावों में सामंजस्य स्थापित किया जा सके।

(७) जन-सहयोग—आयोग द्वारा निरन्तर अध्ययन किया जायगा कि लोगों को योजनाओं के प्रति उनके अधिकार एवं कर्तव्यों का आभास किन कार्यवाहियों द्वारा कराया जा सकता है।

(८) प्रगति का मूल्यांकन—आयोग समय-समय पर उपलब्ध प्रगति का अध्ययन करेगा और उन घटकों का विश्लेषण करेगा जो विकास में बाधक हों। इस विश्लेषण के आधार पर आयोग-नीतियों में समायोजन करने तथा प्रशासनिक सुधार करने के सुझाव प्रस्तुत करेगा।

(९) मूल्यांकन एवं अनुसंधान (Evaluation and Research)—उपलब्ध परिणामों का मूल्यांकन आयोग द्वारा किया जायगा। विभिन्न वैधानिक कार्य एवं अन्य कार्यवाहियों के आर्थिक एवं सामाजिक परिणामों का अध्ययन करने के लिए अनुसंधान संगठित किया जायगा।

आयोग का संगठन

भारतीय संविधान में योजना-आयोग जैसी संस्था का कोई उल्लेख नहीं है। भारत सरकार के सन् १९५० के प्रस्ताव के द्वारा इसकी स्थापना स्थायी रूप से की गयी और इसके सदस्यों की संख्या, योग्यताओं आदि के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया गया है। इसकी सदस्यता का आधार एवं प्रकार इसीलिए समय-समय पर बदलता रहा है। प्रधानमन्त्री प्रारम्भ से ही योजना आयोग का अध्यक्ष रहा है। इसके अतिरिक्त प्रारम्भ में पूर्णकालीन (Full Time) सदस्य थे जिनमें श्री गुलजारीलाल नन्दा उपाध्यक्ष तथा श्री वी० टी० कृष्णमाचारी, श्री सी० डी० देशमुख, श्री जी० एल० मेहता तथा श्री आर० के पाटिल सम्मिलित थे। बाद में श्री सी० डी० देशमुख वित्त मन्त्री हो गये और श्री गुलजारीलाल नन्दा योजना मन्त्री और दोनों केन्द्रीय मन्त्री होने के साथ-साथ आयोग के सदस्य बने रहे। वित्त मन्त्री को आयोग का पदेन सदस्य

(Ex officio) बना दिया गया। इसके पश्चात् समय समय पर अन्य मन्त्रियों को उनके व्यक्तित्व एवं विभाग के महत्व के आधार पर आयोग का सदस्य बनाया गया। अधिकतर परिस्थिति इस प्रकार रही कि आयोग के पूर्णकालीन सदस्या का केन्द्रीय मन्त्री नियुक्त किया गया और केन्द्रीय मन्त्री बनने के बाद वे आयोग के सदस्य बने रहे। आयोग में इस प्रकार ३ से ८ तक केन्द्रीय मन्त्री सदस्य बन रहे। सितम्बर सन् १९६७ में प्रशासनिक सुधार आयोग के सुझावों के आधार पर योजना आयोग का पुनर्गठन किया गया और मन्त्री सदस्यों को हटा लिया गया। इस सम्बन्ध में देश भर में बड़ी आलोचना हुई कि केन्द्रीय मन्त्रियों के आयोग के सदस्य होने के कारण आयोग केवल सलाहकार संस्था नहीं रह गयी है प्रत्युत वह निर्णय एवं निर्णय लेने वाली संस्था बनती जा रही है। योजना आयोग का पुनर्गठन करके प्रो० डी० आर गाडगिल को उपाध्यक्ष नियुक्त किया गया। प्रशासनिक सुधार आयोग ने योजना आयोग के सम्बन्ध में जो अन्य सिफारिशें कीं वे निम्न प्रकार हैं—

(१) योजना आयोग के उपाध्यक्ष तथा सदस्य केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल से नहीं लिए जाने चाहिए परन्तु अध्यक्ष-पद पर प्रधानमन्त्री का रहना उचित है। वह अपनी सहायता के लिए एक राज्य मन्त्री (*Minister of State*) को रख सकता है।

(२) *योजना आयोग के सदस्यों को विभिन्न क्षेत्रों का ज्ञान एवं अनुभव होना चाहिए। वे केवल विशेष विषय का ही संकीर्ण ज्ञान न रखने हों। इस प्रकार योजना आयोग केवल विशेषज्ञों की ही संस्था नहीं होनी चाहिए।*

(३) राष्ट्रीय *योजना परिषद् नियोजन सम्बन्धी सर्वोच्च संस्था के रूप में* योजनाओं के निर्माण में मूलभूत निर्देश देती रहे। उसकी तथा उसके द्वारा नियुक्त विभिन्न उपसमितियों की और अधिक नियमित बैठकें होनी चाहिए।

(४) योजना आयोग द्वारा नियुक्त बहुत सी सलाहकार समितियाँ एवं समूह द्वारा कोई विशेष उपयोगी कार्य नहीं किया जाता है। इसलिए सलाहकार समितियों की स्थापना सोच विचार कर की जानी चाहिए और उनका कार्य एवं कार्य संचालन विधि उचित रूप से पूर्व निर्धारित कर दी जानी चाहिए। जिन केन्द्रीय मन्त्रालयों में सलाहकार समितियाँ कार्य कर रही हों उनका यथासम्भव उपयोग योजना आयोग को करना चाहिए।

(५) *एक लोकसभा सदस्यीय समिति की स्थापना राजकीय व्यवसाय समिति (Committee for Public Undertakings) के समान की जानी चाहिए जो वार्षिक प्रगति प्रतिवेदन एवं योजनाओं की सम्भावनाओं के मूल्यांकन से सम्बन्धित प्रतिवेदनों का अध्ययन करे।*

(६) योजना आयोग के कार्य संचालन के लिए तीन स्तरीय अधिकारी होना चाहिए—सलाहकार, विषय विशेषज्ञ तथा विश्लेषणकर्ता। आयोग को बहुत से जाँच अधिकारियों (Investigators) की आवश्यकता नहीं है।

(७) दिल्ली मे एक प्रशिक्षण-संस्थान की स्थापना की जानी चाहिए जिसमें विकास-सम्बन्धी विभिन्न पक्षो मे दक्षता देने के लिए प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।

(८) विभिन्न विकास-परिषदो (जो प्रत्येक महत्वपूर्ण उद्योग के लिए स्थापित की हुई हैं) के साथ एक योजना समूह (Planning Group) लगा रहना चाहिए। यह समूह निजी क्षेत्र के उद्योगों से योजनाओं के निर्माण म सक्रिय सलाह एव सहयोग प्राप्त कर सकते हैं।

(९) केन्द्रीय सरकार के विभिन्न आर्थिक सलाहकार-कक्षों मे अधिक समन्वय एव सचार (Communication) के लिए एक स्टैंडिंग समिति की स्थापना की जानी चाहिए जिसमे विभिन्न मन्त्रालयों एव योजना आयोग के आर्थिक एव सांख्यिकीय कक्षा के अध्यक्ष सदस्य होने चाहिए।

(१०) राज्यो म त्रि स्तरीय योजनातन्त्र (Planning Machinery) की स्थापना की जानी चाहिए। राज्य योजना परिषद् (State Planning Board), विभागीय नियोजन सस्थाएँ तथा क्षेत्रीय एव जिला-स्तरीय नियोजन सस्थाएँ। योजना-परिषद् गैर राजनीतिक विशेषज्ञो की सस्था होनी चाहिए जिसका अध्यक्ष मुख्यमन्त्री होना चाहिए। यह परिषद् राज्य की योजना के सम्बन्ध म योजना आयोग के समान कार्य करे। विभागीय योजना-सस्थाएँ उस विभाग की विभिन्न विकास-परियोजनाओं मे समन्वय स्थापित करें तथा उनके उचित क्रियान्वयन की देखभाल करें। प्रत्येक जिले म एक पृथक पूर्ण समय (Whole Time) के लिए योजना एव विकास अधिकारी होना चाहिए तथा एक जिला योजना समिति होनी चाहिए जिसमे पचायतों, नगर-पालिकाओ के प्रतिनिधि तथा कुछ व्यावसायिक विशेषज्ञ होने चाहिए।

केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों म से कुछ को कार्यान्वित कर दिया गया और योजना आयोग का पुनगठन करके ऐसे सदस्यों की नियुक्ति की गयी जो केन्द्रीय मन्त्री नहीं हैं। प्रो० गाडगिल को उपाध्यक्ष नियुक्त करने के साथ श्री आर० वेंकटारमन, श्री बी० वेकटापियाह श्री पीताम्बर पत और डॉ० बी० डी० नागचौधरी को योजना आयोग का सदस्य नियुक्त किया। वित्तमन्त्री को पदेन सदस्य नियुक्त किया गया है।

आयोग के पूर्णकालीन सदस्यों के विभिन्न कार्य प्रारम्भ से ही नियत रहे हैं। योजना-आयोग मे कार्य-सचालन के लिए बहुत से कक्ष (Divisions) हैं और इन कक्षों को विभिन्न सदस्यों म बाँट दिया गया है। कार्य विभाजन की वर्तमान स्थिति निम्न प्रकार है—

आयोग के सगठन चित्र से ज्ञात होता है कि प्रबन्ध एव प्रशासन के दृष्टिकोण से आयोग मे बहुत से कक्ष एव खण्ड हैं।

आजकल योजना आयोग म २० कक्ष हैं जिनमें से छह साधारण कक्ष

(General Divisions) दस विषय कक्ष (Subject Divisions), दो समन्वय कक्ष (Coordination Divisions) तथा दो विशिष्ट विकास-परियोजनाओं के कक्ष हैं।

(अ) साधारण कक्ष—यह अन्तर्गत सम्मिलित होने वाले छह कक्ष योजना बनाने हेतु पृष्ठभूमि तयार करते हैं। इनके द्वारा जो कार्य सम्पन्न किये जाते हैं, उनका सम्बन्ध योजना के समस्त कार्यक्रमों से होता है। इस प्रकार ये आधारभूत साक्ष्य, जाँच एवं सूचनाएं एकत्रित करते हैं और दीर्घकालीन नीतियों के सम्बन्ध में सुझाव तयार करते हैं। *इन कक्षों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं—*

(१) आर्थिक कक्ष (Economic Division)—इस कक्ष में वित्तीय साधन, आर्थिक नीति एवं प्रगति, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं विकास, मूल्य नीति तथा अन्तर उद्योग अध्ययन सम्बन्धी पृथक खण्ड हैं।

(२) दीर्घकालीन नियोजन कक्ष (Perspective Planning Division),

(३) श्रम एवं रोजगार कक्ष (Labour and Employment Division)

(४) साख्यकी एवं सर्वेक्षण कक्ष (Statistics and Survey Division)

(५) साधन एवं वैज्ञानिक अनुसन्धान कक्ष (Resources and Scientific Research Division)। इसमें प्राकृतिक साधन एवं वैज्ञानिक शोध के पृथक पृथक खण्ड हैं।

(६) प्रबन्ध एवं प्रशासन कक्ष—प्रत्येक कक्ष का सर्वोच्च अधिकारी एक सचालक होता है जिसकी सहायता के लिए सहायक सचालक भी नियुक्त किये जाते हैं। प्रत्येक कक्ष में अनुसन्धान सर्वेक्षण की व्यवस्था भी है और इसके लिए अनुसन्धान कर्मचारियों की नियुक्ति की गयी है।

(आ) विषय कक्ष (Subject Division)—योजना में सम्मिलित होने वाले विभिन्न कार्यक्रमों की प्रमुख मदों के आधार पर कक्ष स्थापित किए गए हैं। प्रत्येक कक्ष उसमें सम्बन्धित विशिष्ट क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले समस्त कार्यक्रमों का विवरण एकत्रित करता है और उस सम्बन्ध में योजना तयार करता है। इनमें निम्नलिखित कक्ष सम्मिलित हैं—

(१) कृषि कक्ष—सहकारिता एवं सामुदायिक विकास सहित

(२) सिंचाई एवं शक्ति कक्ष,

(३) भूमि सुधार कक्ष,

(४) उद्योग एवं खनिज कक्ष जिसमें उद्योगों खनिज एवं सरकारी क्षेत्र के व्यवसायों के पृथक खण्ड हैं।

(५) ग्रामीण एवं लघु उद्योग कक्ष,

(६) यातायात एवं सचार कक्ष,

(७) शिक्षा कक्ष,

(८) स्वास्थ्य कक्ष

(९) निवास गृहनिर्माण कक्ष जिसमें नगरों के विकास-कार्य सम्मिलित हैं ,

(१०) समाज-कल्याण कक्ष जो पिछड़े वर्गों के कल्याण से सम्बद्ध है ।

विषय कक्ष अपने विषय से सम्बन्धित केन्द्रीय एवं राज्य मन्त्रालयों से निरन्तर सम्पर्क बनाये रहते हैं और उनसे आवश्यक तथ्य एकत्रित करके अपने विषय के सम्बन्ध में प्रगति का मूल्यांकन करते हैं। यह कक्ष अपने विषय के सम्बन्ध में आवश्यकतानुसार अनुसंधान का अध्ययन भी करते हैं।

(इ) समन्वय कक्ष (Coordination Division)—इससे सम्बन्धित विभागों का प्रमुख कार्य विभिन्न वर्गों द्वारा निर्धारित कार्यक्रमों में प्रशासन सम्बन्धी आवश्यकताओं को निर्धारित करना तथा विभिन्न कार्यक्रमों में समन्वय स्थापित करना है। इसमें दो विभाग हैं—कार्यक्रम प्रशासन विभाग (*Programme Administration Division*) तथा योजना समन्वय विभाग (*Plan Coordination Division*)। प्रथम विभाग विभिन्न राज्यों एवं केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों की पंचवर्षीय योजनाओं में समन्वय स्थापित करता है और योजना आयोग एवं राज्यों के अधिकारियों में विचार विमर्श का आयोजन करता है।

(ई) विशिष्ट विकास-परियोजनाओं के कक्ष—इसके अन्तर्गत वे विभाग आते हैं जो समस्त योजना के सफल संचालन के लिए अधिक महत्वपूर्ण समझे जाते हैं और जिन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। इसमें दो विभाग सम्मिलित हैं—ग्रामीण कार्यशाला विभाग (Rural Works Division) तथा जन-सहयोग विभाग (Public Cooperation Division)।

उपर्युक्त विभागों के अतिरिक्त योजना-आयोग के अन्तर्गत चार और संस्थाएं हैं—

(१) कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन (Programme Evaluation Organisation)—यह संस्था योजना के अन्तर्गत संचालित कार्यक्रमों की प्रगति का मूल्यांकन करती है और आवश्यकता पड़ने पर योजना में समायोजन करने के लिए सुझाव प्रस्तुत करती है।

(२) परियोजना समिति (The Committee on Plan Projects)—यह समिति भविष्य की योजनाओं में सम्मिलित की जाने वाली परियोजनाओं का निर्धारण करती है। राज्य सरकारों द्वारा जो नवीन परियोजनाएँ योजना आयोग के पास भेजी जाती हैं उनके सम्बन्ध में विचार विमर्श करके सुझाव तयार करती है।

(३) अनुसंधान कार्यक्रम समिति (The Research Programme Committee)—यह समिति अनुसंधान-कार्यों का आयोजन करती है।

(४) राष्ट्रीय योजना परिषद् (National Planning Council)—इस संस्था में वैज्ञानिक इंजीनियर्स अर्थशास्त्री तथा अन्य विशेषज्ञ सम्मिलित हैं। योजना-आयोग के उपाध्यक्ष इस परिषद के अध्यक्ष हैं। यह परिषद् स्वतन्त्र व्यक्तियों की संस्था है जो कार्यक्रम बनाने में सहायता एवं सुझाव देगी।

वर्किंग ग्रूप

योजना आयोग के इन विभिन्न कक्षों एवं संस्थाओं के अतिरिक्त नवीन योजना बनाने के लिए बहुत से और वर्किंग ग्रूप्स (Working Groups) की स्थापना की जाती है। लगभग प्रत्येक केन्द्रीय मन्त्रालय अपने अन्तर्गत आने वाले विभिन्न क्षेत्रों के सम्बन्ध में कार्यक्रम निर्धारित करने हेतु वर्किंग ग्रूप्स की स्थापना करता है। इन ग्रूप्स में मन्त्रालय के अधिकारियों के अतिरिक्त आयोग के सम्बन्धित कक्षों के अधिकारी, अर्थशास्त्री, तान्त्रिक विशेषज्ञ एवं उद्योगों के प्रतिनिधि अथवा विशेषज्ञ सम्मिलित किए जाते हैं। यह वर्किंग ग्रूप आयोग द्वारा नियुक्त किए जाते हैं परन्तु इनका अध्यक्ष प्रायः सम्बन्धित केन्द्रीय मन्त्रालय का सचिव होता है जिससे आयोग एवं सरकार में पूर्णरूपेण सहयोग बनाए रखना सम्भव हो। वर्किंग ग्रूपों की स्थापना प्रत्येक योजना के निर्माण के पूर्व अस्थायी रूप से की जाती है और ये ग्रूप योजना के निर्माण के सम्बन्ध में परामर्श देते हैं। भारतीय योजनाओं के निर्माण में वर्किंग ग्रूपों का अत्याधिक योगदान रहा है। इनके द्वारा योजना के निर्माण में उन लोगों का परामर्श भी प्राप्त हो जाता है जो बाद में योजना के कार्यक्रमों को क्रियान्वित करते हैं। इस व्यवस्था में योजना को क्रियान्वयन करने वालों में भागीदारी की भावना उत्पन्न होती है। इसके अतिरिक्त जो निर्णय योजना के निर्माण के लिए जाते हैं वे अधिक व्यावहारिक होते हैं। राज्य सरकारें भी विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में वर्किंग ग्रूप स्थापित करती हैं जो राज्यों की योजनाओं के निर्माण में परामर्श देते हैं।

सलाहकार-समितियाँ

वर्किंग ग्रूप के अतिरिक्त विभिन्न सलाहकार संस्थाओं की स्थापना भी की जाती है जिनको पैनल, सलाहकार समिति (Advisory Committee) अथवा परामर्श समिति (Consultative Committee) का नाम दिया जाता है। यह संस्थाएँ प्रायः स्थायी होती हैं। यह समितियाँ वर्ष में दो या तीन बार अपनी सभाएँ करती हैं और योजना की नीतियों एवं कार्यक्रमों के सम्बन्ध में परामर्श देती हैं। इनमें मुख्य अर्थशास्त्रियों का पैनल, वैज्ञानिकों का पैनल, कृषि भूमि-सुधार, आयुर्वेद, स्वास्थ्य शिक्षा तथा निवास-गृह एवं क्षेत्रीय विकास के सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् पैनल हैं। इनके अतिरिक्त बहुत-सी सलाहकार समितियाँ हैं—सिंचाई बाढ़ नियन्त्रण एवं शक्ति परियोजनाओं से सम्बन्धित समिति, जन सहयोग हेतु समन्वय समिति तथा जन सहयोग-सम्बन्धी राष्ट्रीय परामर्श समिति।

लोकसभा के सदस्यों से परामर्श करने हेतु योजना आयोग के लिए एक लोक सभा के सदस्यों की सलाहकार-समिति है। यह समिति लोक सभा के सदस्यों एवं योजना आयोग के सदस्यों में विचार विमर्श के लिए व्यवस्था करती है। योजना आयोग के कार्य में योगदान देने का कार्य अन्य सहायक संस्थाओं द्वारा किया जाता है। इन संस्थाओं में केन्द्रीय मन्त्रालय रिज़र्व बैंक आफ इण्डिया तथा केन्द्रीय सांख्यकीय संगठन

(Central Statistical Organisation) प्रमुख हैं। रिजर्व बैंक का आर्थिक विभाग अधिकोषण एवं वित्त के सम्बन्ध में योजना आयोग के लिए बहुत से अध्ययन करता है इसी प्रकार केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन नियोजन के लिए आवश्यक सामग्री एकत्रित करता है।

आयोग का सरकार के साथ सम्बन्ध

योजना आयोग और केन्द्र एवं राज्य सरकारों में सम्पर्क, सहयोग एवं समन्वय होना योजनाओं की सफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है। प्रधान मंत्री के आयोग के अध्यक्ष एवं विभिन्न मन्त्रियों के आयोग का सदस्य होने के कारण यह सहयोग एवं समन्वय इतना अधिक रहा है कि आयोग को दूसरी सरकार की उपमा दी जाने लगी थी। अब केवल वित्तमन्त्री ही आयोग के पदेन सदस्य हैं और प्रधानमन्त्री के माध्यम से समस्त मन्त्रालयों एवं आयोग में सहयोग बना रहता है। इसके अतिरिक्त जब भी आयोग किसी विशिष्ट विषय पर विचार करता हो तो प्राय इस विषय से सम्बन्धित केन्द्रीय मन्त्री को विशेष रूप से आमन्त्रित कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न मन्त्रालयों के आर्थिक सुझावों पर योजना आयोग का परामर्श भी माँग लिया जाता है।

अधिकारियों के स्तर पर आयोग और सरकार में सम्पर्क बनाये रखने के लिए दिसम्बर, सन् १९६४ तक केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल का सचिव आयोग का पदेन सचिव रहता था। मन्त्रिमण्डल के सचिव द्वारा इस प्रकार मन्त्रियों के विचारों और आयोग के विचारों में समन्वय बनाये रखना सम्भव होता था परन्तु इस व्यवस्था में सबसे बड़ा दोष यह था कि आयोग स्वतन्त्र परामर्श देने में असमर्थ रहता था और आयोग का परामर्श ही सरकार का निर्णय हो जाता था। इसलिए आयोग का एक पूर्णकाल (Full Time) सचिव होता है।

इसके अतिरिक्त योजना आयोग के अधिकारी सरकार द्वारा नियुक्त समितियों एवं परिषदों में सदस्य नियुक्त किए जाते हैं और केन्द्रीय मन्त्रालयों के अधिकारियों को आयोग द्वारा नियुक्त समितियों आदि में सदस्य नियुक्त किया जाता है। इस प्रकार आयोग एवं सरकार में घनिष्ट सम्पर्क बना रहता है।

सरकार से सम्पर्क बनाये रखने के अतिरिक्त आयोग जनता की संगठित संस्थाओं से भी सम्पर्क बनाये रखता है। भारतीय चैम्बर ऑफ कॉमर्स के संघ, अखिल भारतीय बोर्डों आदि के साथ आयोग विचार विमर्श करके आवश्यक सहयोग एवं जानकारी प्राप्त करता है।

योजना आयोग अन्य देशों के विशेषज्ञों एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के विशेषज्ञों के साथ भी सलाह करता रहता है। आयोग का सम्पर्क विश्वविद्यालयों एवं शोध संस्थाओं से भी बना हुआ है। इसके लिए प्लानिंग फोरम के माध्यम का उपयोग किया जाता है।

कार्यक्रमों का मूल्यांकन

कार्यक्रमों की प्रगति का मूल्यांकन प्रायः योजना आयोग द्वारा ही किया जाता है। योजना समन्वय कक्ष का प्रगति इकाई (Progress Unit) द्वारा योजना आयोग विभिन्न मन्त्रालयों एवं राज्य सरकारों से आवश्यक प्रगति प्रतिवेदन प्राप्त करता है। विशिष्ट परियोजनाओं का प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए दो संगठन हैं। यह दोनों ही आयोग से सम्बद्ध हैं परन्तु इन्हें अपने कार्य की काफी स्वतन्त्रता है। कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन (Programme Evaluation Organisation—P E O) की स्थापना अक्टूबर सन् १९५२ में की गयी थी और इसे सामुदायिक परियोजनाओं एवं अन्य ग्रामीण विकास की परियोजनाओं के मूल्यांकन का कार्य दिया गया। धीरे धीरे यह एक बड़ी संस्था बन गयी और मई सन् १९६२ में यह मूल्यांकन सलाहकार परिषद् (Evaluation Advisory Board) के निर्देशन में कर दी गयी। इस परिषद् में Institute of Economic Growth के संचालक खाद्य एवं कृषि मन्त्रालय का एक भूतपूर्व अधिकारी कृषि अर्थशास्त्र का एक प्रोफेसर समाजशास्त्र का एक प्रोफेसर तथा P E O के संचालक सदस्य हैं। सन् १९५४ ५५ तक P E O केवल संगठन एवं प्रबन्ध सम्बन्धी प्रश्नों पर ही अपने विचार देता था परन्तु सन् १९५४ ५५ में यह सामुदायिक विकास परियोजनाओं की उपलब्धियों एवं प्रभावों का अध्ययन भी करने लगा। सन् १९६० ६१ में इस संस्था ने सामुदायिक विकास की कमी आलोचना और उसके बाद सामुदायिक विकास परियोजना का मूल्यांकन करके उसे प्रकाशित करना बन्द कर दिया। अब यह संस्था ग्रामीण क्षेत्रों के विकास से सम्बन्धित योजना कार्यक्रमों में कुछ चुनकर उनका अध्ययन एवं मूल्यांकन करती है।

मई सन् १९५६ में आयोग की सिफारिश पर मूल्यांकन करने वाली दूसरी संस्था योजना की परियोजनाओं से सम्बन्धित समिति (Committee on Plan Projects—COPP) की स्थापना की गयी। इस संस्था में केन्द्रीय गृहमन्त्री वित्तमन्त्री तथा आयोग के उपाध्यक्ष सम्मिलित हैं। जब किसी परियोजना पर विचार किया जाता है तो सम्बन्धित राज्य के मुख्यमन्त्री तथा केन्द्रीय मन्त्री को और सम्मिलित कर लिया जाता है। यह संस्था केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों की महत्वपूर्ण परियोजनाओं की जाँच-पड़ताल (कार्यक्षेत्र का निरीक्षणसहित) विशेषज्ञ से चुनी गयी टीमों द्वारा सम्पादित करती है। इसके अतिरिक्त यह संस्था विभिन्न अध्ययनों द्वारा सिफारिश किए गये संगठन के प्रारूपों विधियों प्रणालियों तथा मितव्ययता प्राप्त करने की तात्त्विकताओं के सम्बन्ध में सुझाव देती है। इस समिति में जो सुझाव विभिन्न प्रतिवेदनों द्वारा दिये जाते हैं उनके क्रियान्वयन की देखभाल भी यह समिति करती है। C O P P विभिन्न परियोजनाओं का अध्ययन करने के लिए विशेषज्ञों की अस्थायी टीमें स्थापित करती है। इन टीमों के प्रतिवेदन को राज्य सरकारों एवं सम्बन्धित केन्द्रीय मन्त्रालयों के पास भेजा जाता है और उनकी टीका टिप्पणी के आधार पर

इसको अन्तिम रूप देकर इसे योजना आयोग द्वारा सम्बन्धित अधिकारियों के पास भेज दिया जाता है और उनसे निश्चित समयावधि पर प्रगति-सम्बन्धी प्रतिवेदन देने को कहा जाता है।

राष्ट्रीय विकास परिषद (National Development Council)

प्रधानमन्त्री एवं राज्यों के मुख्यमन्त्रियों में योजना-सम्बन्धी विचार-विमर्श के लिए ६ अगस्त सन् १९५२ को राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना की गयी। इसके कार्य निम्न प्रकार हैं—

(१) राष्ट्रीय योजना के संचालन की समय-समय पर समालोचना (Review) करना।

(२) राष्ट्रीय विकास को प्रभावित करने वाले सामाजिक एवं आर्थिक नीति-सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करना।

(३) राष्ट्रीय योजना के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की उपलब्धि के लिए कार्यवाहियों की सिफारिश करना तथा जनता का सक्रिय सहयोग एवं भागीदारी प्राप्त करना, प्रशासनिक सेवाओं की कार्य-कुशलता में सुधार करना, अल्प विकसित क्षेत्रों एवं समाज के वर्गों के पूर्ण विकास का समस्त नागरिकों के समान त्याग द्वारा आयोजन करना तथा राष्ट्रीय विकास के साधन एकत्रित करने के लिए आवश्यक कार्यवाहियों की सिफारिश करना।

राष्ट्रीय विकास परिषद अपनी सिफारिशें केन्द्र एवं राज्य सरकारों को देती है। इस परिषद में प्रधानमन्त्री, राज्यों के मुख्यमन्त्री तथा योजना आयोग के सदस्य सम्मिलित रहते हैं। इनके अतिरिक्त जिन विषयों पर विचार विमर्श किया जाना होता है उनसे सम्बन्धित केन्द्रीय मन्त्री भी सभाओं में आमन्त्रित किए जाते हैं। योजना-आयोग विभिन्न मन्त्रालयों के परामर्श से विचार विमर्श किए जाने वाले विषयों के आवश्यक प्रलेख एवं सूचनाएँ तैयार करके परिषद के सम्मुख रखता है। योजना के निर्माण में इस परिषद को अन्तिम निर्णय लेने का अधिकार है। यह नियोजन-सम्बन्धी मामलों में देश की सर्वोच्च संस्था है। इसका अध्यक्ष, प्रधानमन्त्री और सदस्य मुख्यमन्त्री होने के कारण इसके निर्णयों को अन्तिम ही समझा जाता है और केन्द्रीय मन्त्रालय इन निर्णयों में प्रायः हेर फेर नहीं करते हैं। नियोजन सम्बन्धी समस्त आधारभूत नीतियों का अन्तिम निर्धारण इसी परिषद द्वारा किया जाता है।

योजना-आयोग की कार्य विधि के दोष

भारतीय योजना आयोग यद्यपि वैधानिक रूप से एक परामर्शदात्री संस्था है परन्तु इसके द्वारा अपनायी गयी कार्य विधि एवं इसमें सम्मिलित सदस्यों की केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों के मन्त्रालयों के समान कार्य करने की विधि ने इस संस्था को वास्तव में कुछ प्रशासन-सम्बन्धी अधिकार प्रदान कर दिये हैं। योजना-आयोग में कुछ केन्द्रीय मन्त्रालयों के मन्त्रियों को सदस्यता प्राप्त होने पर यह मन्त्रालय वास्तव में

योजना आयोग की कार्यवाहियों को प्रभावित करते थे और योजना आयोग समस्त मन्त्रालयों के साथ एक विशेषज्ञ की संस्था के रूप में समान व्यवहार नहीं कर पाता था। योजना आयोग का सन् १९६७ में पुनर्गठन होने के पश्चात् यह दोष बड़ी सीमा तक दूर कर दिया गया है और अब केवल प्रधानमन्त्री एवं वित्तमन्त्री ही (केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में से) आयोग के क्रमशः अध्यक्ष एवं पदेन सदस्य हैं परन्तु अब भी यह कहा जा सकता है कि आयोग द्वारा केन्द्रीय मन्त्रालय एवं राष्ट्रीय विकास परिषद् के पास जो सिफारिशें भेजी जाती है उनको प्रधानमन्त्री एवं वित्तमन्त्री का समर्थन होने के कारण इन सिफारिशों की स्वीकृति निश्चित ही होती है। इस प्रकार योजना आयोग केवल एक परामर्शदात्री संस्था न होकर प्रशासनिक अधिकार प्राप्त संस्था बन गयी है। इस परिस्थिति के फलस्वरूप योजना आयोग तात्रिक विशेषज्ञ संस्था का काय करने से अधिक एक राजनीतिक एवं प्रशासनिक संस्था का रूप ग्रहण कर लेती है। इस सम्बन्ध में यह दलील बहुत तर्कसंगत प्रतीत होती है कि यदि आयोग को केवल एक विशेषज्ञों की परामर्शदात्री संस्था मात्र बना दिया जाय और उसे राजनीतिक प्रभुत्व से वंचित कर दिया जाय तो इसके द्वारा दी गयी सिफारिशों एवं सुझावों पर राजनीतिज्ञ कोई ध्यान नहीं देंगे और उनके क्रियान्वयन का प्रश्न ही नहीं उठेगा। फिलीपाइन्स तथा ग्रीस में योजना आयोग को राजनीतिक प्रभावों से वंचित रहने के कारण उसकी सिफारिशों आदि को महत्वहीन समझा जाता है। पाकिस्तान एवं संयुक्त अरब गणराज्य में भी इसी प्रकार की स्थिति थी जिसे दूर करने का प्रयत्न किया गया है।

इस प्रकार भारतीय नियोजन-व्यवस्था का प्रमुख गुण यह है कि इसमें नियोजन को राजनीतिक दाँत प्रदान कर दिये गये हैं।[1]

योजना आयोग के अधिकारियों में बहुत से ऐसे केन्द्रीय सरकार के अधिकारी हैं जो किन्हीं मन्त्रालयों में पद ग्रहण करने के साथ योजना-आयोग में विशेषज्ञ का काय भी करते हैं। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार के अधिकारियों एवं योजना आयोग के विशेषज्ञों को प्रायः एक वर्ग में रखा जाता है जिसके फलस्वरूप विशेषज्ञों एवं प्रशासनिक अधिकारियों में पारस्परिक स्थानान्तर होते रहते हैं। योजना-आयोग के संगठन के इस दोष के कारण प्रायः ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है कि योजना आयोग बजाय सलाह प्रदान करने के मन्त्रालयों की सलाह को रद्द करने के अवसर प्राप्त कर लेता है।

इसके अतिरिक्त योजना आयोग की सलाहकार-संस्थाओं के सम्बन्ध में कोई निश्चित नीति नहीं है। इनकी स्थापना द्रुत गति से योजना का निर्माण करने के

1 The Cardinal virtue of the Indian System is that it has put political teeth into planning
(A H Hanson *The Process of Planning* p 73)

साथ-साथ की जाती है, परन्तु योजना बनने के पश्चात् इनका उचित उपयोग नहीं किया जाता है। इन सलाहकार संस्थाओं को अपने अपने निश्चित क्षेत्र में निरन्तर कार्य करते रहना चाहिए और योजना-आयोग की योजनाओं के कार्यान्वित करने के सम्बन्ध में सलाह देते रहना चाहिए। ये संस्थाएँ नियोजन की समस्याओं का निरन्तर अध्ययन करें और भविष्य की योजनाओं पर सामूहिक विचार विमर्श करने की गतिशीलता प्रदान करें।

योजना के इतने अधिक विभाग एवं संस्थाएँ स्थापित करदी गयी हैं (जिनकी संख्या बढ़ती जा रही है) कि विभिन्न विभागों एवं संस्थाओं के कार्यों को स्पष्ट रूप से अलग अलग नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इन विभिन्न विभागों एवं संस्थाओं के कार्यों में समन्वय स्थापित करने का कार्य सुचारु रूप से नहीं किया जाता है।

योजना आयोग विभिन्न कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं के निर्धारण करने के लिए बड़ी सतर्कता से कार्य करता है और इस सम्बन्ध में विस्तृत सूचनाएँ एकत्रित की जाती हैं तथा विशेषज्ञों एवं अनुभवी व्यक्तियों की सलाह ली जाती है परन्तु इन योजनाओं के कुशल संचालन हेतु उचित शासन-व्यवस्था एवं सिद्धान्तों के सम्बन्ध में सलाह प्रदान नहीं करता है जिसके फलस्वरूप अनेकों परियोजनाओं को क्रियान्वयन के दोषों के कारण पर्याप्त सफलता प्राप्त नहीं होती है।

भारतीय नियोजन-व्यवस्था के दोष

भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात नियोजित अर्थ-व्यवस्था का संचालन एक ऐसी व्यवस्था अथवा यन्त्र के रूप में किया गया जिसके द्वारा समस्त आर्थिक सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं का निवारण अवश्य ही सम्भव हो सके। नियोजन के द्वारा इस प्रकार आर्थिक विकास के उद्देश्य की पूर्ति ही नियोजन द्वारा नहीं की जानी थी अपितु, सर्वांगीण विकास, नियोजन के फलस्वरूप प्राप्त करने का अभिलाषी लक्ष्य जनसाधारण के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। इस भावना को लेकर नियोजित व्यवस्था से उदय होने वाली कठिनाइयों एवं रुकावटों पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। यह समझ लिया गया कि जो भी समस्याएँ नियोजित अर्थ-व्यवस्था के फलस्वरूप उदय होंगी वे नियोजित व्यवस्था द्वारा स्वयं ही दूर हो सकेंगी। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में प्रारम्भ से ही देश के विभिन्न क्षेत्रों में विद्यमान परिस्थितियों का उचित अध्ययन नहीं किया गया और नियोजन को तथ्यों की सम्भावित प्राप्ति की कला (Art of the Possible Achievements) न मानकर इसे तथ्यों की निश्चित प्राप्ति का चमत्कारिक यन्त्र समझा गया। इन मान्यताओं के आधार पर भारतीय नियोजन-तन्त्र में निम्न-लिखित अपूर्णताओं को अंकित किया जा सकता है—

(१) प्राथमिकताएँ—भारतीय नियोजन में प्राथमिकताओं को निर्धारित करने की विधि दोषपूर्ण है। प्राथमिकताओं के अन्तर्गत यह निर्धारित किया जाता है

कि विभिन्न कार्यक्रमों का एक दूसरे की तुलना मे क्या महत्व है। योजना की प्राथमिकताएँ एक प्याज की गाठ के समान निर्धारित होनी हैं, जसे प्याज के छिलके उतारते चल जाय तो अन्त मे उसका सबसे महत्वपूर्ण अंग निकल आता है उसी प्रकार भारतीय योजनाओं के केन्द्रित कार्यक्रम (Hard Core) बहुत से अन्य कार्यक्रमों से घिरे रहते है। वास्तव में विकास कार्यक्रमों की प्राथमिकताएँ निर्धारित करने के साथ प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्यक्रम का वकल्पिक (Alternative) कार्यक्रम निर्धारित किया जाना चाहिए जो अनिश्चित कम सम्भावित एवं आकस्मिक परिस्थितियों के उदय होने पर कार्यान्वित किया जा सके। इस प्रकार हमारी योजना अधिक लचीली एवं व्यावहारिक बन सकती है।

(२) *सामाजिक व्यवस्था एवं परम्पराएँ*—भारतीय समाज परिवर्तनों को शीघ्रता के साथ स्वीकार नहीं कर पाता और परम्पराओं के अनुसरण को अधिक महत्व देता है। इस परिस्थिति का प्रमुख कारण भारत की वह श्रेष्ठ सभ्यता है जिसमें जीवन की प्रत्येक क्रियाओं को इस प्रकार सन्तुलित किया गया था कि समस्त समाज में साम्य स्थापित रहे। इस प्रकार की व्यवस्था में कोई एक परिवर्तन करने के लिए बहुत से परिवर्तन करना आवश्यक होता है जिन्हे समाज स्वीकार करने को तयार नहीं होता है। ऐसी परिस्थिति में समाज के सक्रिय क्षेत्रों (जो विकास की ओर कुछ सीमा तक जागरूक हो) की तात्रिकलाओं विधियों एवं परम्पराओं का विस्तार करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों मे उपस्थित परिस्थितियों के अनुकूल विकास कार्यक्रम निर्धारित किए जा सकते है और इन्हें अधिक कुशलता के साथ तथा कम समय में क्रियान्वित किया जा सकता है।

(३) नौकरशाही (Bureaucracy)—लालफीताशाही एवं नौकरशाही के फलस्वरूप भारत की योजनाओं का स्वरूप केन्द्रीय (Centralized) हो गया है जिनमें कार्यक्रमों को उच्च अधिकारियों से प्राप्त आदेशों के अनुसार क्रियान्वित किया जाता है। इस नौकरशाही वातावरण मे समान विधियों एवं प्रविधियों को अधिक महत्व दिया जाता है और सरकारी अधिकारी विभिन्न कार्यक्रमों की सफलता को आँकने में सरल तरीकों का उपयोग करना चाहते है। भारत के विभिन्न नियोजित कार्यक्रमों की सफलता का मापदण्ड उन पर किया जाने वाला मौद्रिक व्यय समझा जाता है। भारत जसे बड़े राष्ट्र में सभी क्षेत्रों में समान परिस्थितियाँ विद्यमान नहीं हैं और जब नियोजकों द्वारा इन सभी क्षेत्रों की समस्याओं का निवारण समान विधियों के कार्यक्रमों द्वारा करने का प्रयत्न किया जाता है तो इसके फलस्वरूप क्षेत्रीय नेतृत्व, अन्वेषण प्रयोग प्रारम्भिकता एवं नवीन विचारधाराओं को आघात पहुँचता है।

(४) योजनाओं के मौद्रिक पक्ष को अधिक महत्व—भारतीय नियोजित अर्थव्यवस्था में विभिन्न योजनाओं के साधनों का बजट बनाने का कार्य योजना आयोग द्वारा किया जाता है और वित्तीय नियोजन (Financial Planning) वित्त

मन्त्रालय का उत्तरदायित्व है परन्तु वार्षिक बजट योजना की वित्तीय व्यवस्था मुख्य लक्ष्य समझा जाता है। योजना-आयोग विकास-व्यय एवं साधनों के सम्बन्ध में राज्य एवं केन्द्र सरकार के मध्यस्थ के रूप में कार्य करता है और इस प्रकार वित्तीय आयोग के साथ योजना आयोग द्वारा किए जाते रहे हैं। इस व्यवस्था का प्रमुख कारण योजनाओं के मौद्रिक व्यय को अधिक महत्व देना है। योजनाओं में मौद्रिक पक्ष को अधिक महत्व देने के कारण ही हम देखते हैं कि प्रत्येक नवीन योजना के कुल व्यय को निर्धारित करने के सम्बन्ध में अत्यधिक वाद विवाद होता है और भारतीय नियोजक प्रत्येक योजना के व्यय को पिछली योजना से दुगुना करके ही अपने आपको विवेकशील समझने लगा है। इसका सम्भवतः ऐसा विचार प्रतीत होता है कि मुद्रा के प्रवाह के साथ साधन भी प्रवाहित होने लगते हैं।

वास्तव में नियोजकों को मौद्रिक साधनों के साथ-साथ भौतिक साधनों की उपलब्धि का भी अनुमान लगाना चाहिए। योजनान्तर में भौतिक साधनों के सन्तुलन का अध्ययन योजना के प्रारम्भ में ही किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि योजना के विभिन्न कार्यक्रमों के लिए जो भौतिक साधन आवश्यक हों उनकी उपलब्धि तथा इन कार्यक्रमों के सम्पादित साधनों के उचित उपयोग का ब्यौरा प्रत्येक योजना के प्रारम्भ में होना चाहिए। भारत में कृषि-क्षेत्र, लघु एवं ग्रामीण उद्योग-क्षेत्र आदि इतने असंगठित हैं कि इन क्षेत्रों की भौतिक साधनों-सम्बन्धी सूचना उपलब्ध नहीं हो सकती है। दीर्घकालीन नियोजन कक्ष (Perspective Planning Division) द्वारा जो दीर्घकालीन लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं उनके आधार पर ही विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के लक्ष्य एवं कार्यक्रम निर्धारित होते हैं। यदि किसी योजना में निर्धारित किया किया प्रगति का लक्ष्य पूरा नहीं होता तो उसके आगे योजना में प्रगति का लक्ष्य इतना बढ़ा दिया जाता है कि पिछली योजना की प्रगति की कमी पूरी हो, जिससे दीर्घकालीन नियोजन के निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति निश्चित काल में सम्भव हो सके। वास्तव में, दीर्घकालीन नियोजन के अन्तर्गत केवल भविष्य के लिए लक्ष्य निर्धारित नहीं किये जाने चाहिए अपितु भूतकालीन योजनाओं की वास्तविक प्रगति का अध्ययन करके आगामी योजना के लक्ष्यों को निर्धारित किया जाना चाहिए। भूतकालीन योजनाओं की प्रगति हमें हमारी क्षमताओं एवं साधनों का ज्ञान कराती है और इनकी अवहेलना कर देना किसी प्रकार भी उचित नहीं समझी जा सकती है।

(५) व्यष्टिगत सन्तुलन (Micro-balances)—अर्थ-व्यवस्था में विभिन्न इकाइयों की क्रियाओं में समन्वय स्थापित करके विभिन्न वस्तुओं की पूर्ति एवं माँग को सन्तुलित किया जा सकता है। स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था में यह सन्तुलन बाजार-शक्तियों (Market Mechanism) द्वारा सर्वाधिकारी (Totalitarian) अर्थ-व्यवस्था में निर्देशों द्वारा तथा परम्परागत अर्थ-व्यवस्था की इकाइयाँ परम्पराओं

द्वारा स्थापित किया जाता है। भारतीय अर्थ-व्यवस्था उपर्युक्त तीनों अर्थ-व्यवस्थाओं का सम्मिश्रण है। ऐसी अर्थ-व्यवस्था में व्यक्तिगत सन्तुलन स्थापित करना अत्यन्त कठिन होता है। भारतीय नियोजकों द्वारा इस व्यक्तिगत सन्तुलन की समस्या की ओर गम्भीर ध्यान नहीं दिया गया है। योजनाओं के आधार पर मौद्रिक कार्यवाहियों को बनाया गया है जिसके फलस्वरूप मुद्रा स्फीति के दबाव में वृद्धि होना जा रहा है और परम्परागत प्रतिबन्ध छिन्न भिन्न हो चले हैं। दूसरी ओर आर्थिक नियन्त्रणों का उपयोग भी समन्वित रूप से नहीं किया गया जिसके फलस्वरूप मूल्य-यान्त्रिकता भी उचित प्रकार से क्रियाशील नहीं हो पायी है। भारतीय नियोजन में वृहद् अर्थशास्त्रीय सन्तुलन को इतना अधिक महत्व दिया गया है कि व्यक्तिगत सन्तुलन में विघ्न पड़ गया है। यही कारण है कि हम देखते हैं कि किसी न किसी वस्तु की पूर्ति में कमी तथा मूल्यों का अनुचित वृद्धि विद्यमान रहती है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि भारतीय नियोजित व्यवस्था को सफल बनाने हेतु नियोजकों को प्रत्येक मामले पर राजनीतिक विचारधाराओं का त्याग कर तान्त्रिक तथ्यों के आधार पर अपनी सलाह देनी चाहिए तथा सरकार के सम्मुख आर्थिक मामलों के राजनीतिक निर्णय करने के दुष्परिणामों को प्रस्तुत कर देना चाहिए।

भाग २

आर्थिक प्रगति के सिद्धान्त

[Principles of Economic Growth]

आर्थिक प्रगति का अर्थ
[Meaning of Economic Growth]

[आर्थिक प्रगति का अर्थ, आर्थिक प्रगति—एक प्रक्रिया, आर्थिक प्रगति—एक दीर्घकालीन क्रिया, आर्थिक प्रगति के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय वृद्धि आर्थिक प्रगति का माप—उत्पादक सम्पत्तियों में वृद्धि राष्ट्रीय आय वृद्धि प्रति व्यक्ति आय वृद्धि, आर्थिक प्रगति की समस्या का महत्व]

आर्थिक प्रगति का अर्थ

आर्थिक प्रगति वह विधि है जिसके द्वारा मनुष्य को अपने चारों ओर के वातावरण पर अधिक नियन्त्रण प्राप्त होता है जिसके फलस्वरूप उसकी स्वतन्त्रता बढ़ती है। अविकसित अर्थ-व्यवस्थाओं में मनुष्य को प्रकृति दत्त सुविधाओं तथा कठिनाइयों के अन्तर्गत जीवन व्यतीत करना पड़ता है, परन्तु जैसे जैसे देश आर्थिक प्रगति करता है उपलब्ध प्राकृतिक सुविधाओं का शोषण किया जाता है तथा प्राकृतिक कठिनाइयों पर मानवीय नियन्त्रण को व्यापक बनाया जाता है। इस विधि के अन्तर्गत मनुष्य के उपभोग के लिए वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा में वृद्धि की जाती है। इस प्रकार एक ओर तो मनुष्य को अपने वातावरण पर नियन्त्रण प्राप्त होता है और दूसरी ओर वस्तुओं और सेवाओं के बड़े भण्डार में से उसे अपनी इच्छानुकूल चयन करने का अवसर प्राप्त होता है।

आर्थिक प्रगति का सूक्ष्म रूप से अर्थ—किसी राष्ट्र अथवा समाज की प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की वृद्धि से लिया जाता है। यह एक परिमाणात्मक (Quantitative) विचार है जिसे आंकड़ों में मुद्रा अथवा प्रतिशत के माध्यम से व्यक्त किया जाता है।

प्राय आर्थिक प्रगति (Economic Growth) एवं आर्थिक विकास (Economic Development) समानार्थी शब्द समझे जाते हैं। परन्तु आधुनिक विचार धाराओं में इन दोनों शब्दों में भेद किया जाने लगा है। आर्थिक विकास किसी आर्थिक प्रणाली की प्रकृति एवं सामर्थ्य के गुणात्मक परिवर्तनों को कहते हैं। यह एक सुधार की ऐसी प्रक्रिया होती है जिसमें ऐसे संगठनात्मक एवं बनावट (Structural) सम्बन्धी परिवर्तन आवश्यक रूप से सम्मिलित होते हैं जिनसे अर्थ-व्यवस्था के गुणा

एवं संचालन-कुशलता में सुधार होता है। आर्थिक विकास का अर्थ इस प्रकार आर्थिक प्रणाली के आधुनीकरण से लिया जाता है।

विकास साध्य आर्थिक प्रणाली का एक गुण है जिसके अन्तर्गत अर्थ-व्यवस्था में *संगठन के दृष्टिकोण से वृहद् बनावट के दृष्टिकोण से एवं जटिल एवं परिमाण के* दृष्टिकोण से अधिक संस्थाओं का होना आवश्यक होता है। इस दृष्टिकोण से आत्म निर्भर ग्रामीण अर्थ व्यवस्था जो पूर्ण विकसित होकर स्थिर हो जाती है, विकास की परिभाषा में नहीं आ सकती है। आधुनिक राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्थाएँ जो पूर्ण *विकसित अवस्था तक नहीं पहुँची हैं और जिनमें और विकास करने की सामर्थ्य है* तथा जो तान्त्रिकताओं के उच्च स्तरों एवं अधिक पूँजी का उपयोग करने की क्षमता रखती हैं, को ही आर्थिक विकास के कार्यक्षेत्र में सम्मिलित किया जाना चाहिए। आधुनिक आर्थिक प्रणालियाँ ही आर्थिक विकास के लिए उपयुक्त कही जा सकती हैं क्योंकि इनमें *और अधिक विकास के तत्वों के उपयोग करने की सामर्थ्य होती है।*

इस प्रकार आर्थिक प्रगति एवं आर्थिक विकास में सूक्ष्म अन्तर है परन्तु यह दोनों एक दूसरे से बिलकुल पृथक प्रक्रियाएँ नहीं होती हैं। आर्थिक प्रगति वास्तव में आर्थिक प्रणाली का एक प्रभाव, परिणाम अथवा उत्पाद होता है। आर्थिक विकास एक वृहद् *प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत अर्थ व्यवस्था की* बनावट, संगठन एवं संस्थानीय कलेवर में मूलभूत परिवर्तन करके उनको अधिक उच्चस्तरीय तान्त्रिकताओं एवं पूँजी का उपयोग करने योग्य बनाया जाता है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप राष्ट्रीय उत्पादन अथवा राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है और इस अन्तिम परिणाम को आर्थिक प्रगति कहते हैं। इस प्रकार आर्थिक प्रगति के लिए आर्थिक विकास का होना आवश्यक होता है। इन दो वाक्यों में कोई *मूलभूत अन्तर न होने के कारण दोनों को समानार्थी के रूप में ही उपयोग किया जाता है।*

माइर एवं बाल्डविन (Meier and Baldwin) ने आर्थिक विकास, आर्थिक प्रगति एवं आर्थिक दीर्घकालीन परिवर्तन (Secular Change) को समानार्थी शब्द बताया है और आर्थिक विकास की परिभाषा इस प्रकार दी है—'*आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी अर्थ-व्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में दीर्घकालीन वृद्धि होती है।*'[1]

इस परिभाषा के अनुसार आर्थिक विकास में तीन तत्व सम्मिलित हैं—प्रक्रिया, वास्तविक राष्ट्रीय आय एवं दीर्घ काल। प्रक्रिया का अर्थ है—कुछ घटकों का *कार्यशील होना चाहे यह स्वतः कार्यशील हों अथवा जानबूझ कर राज्य की कार्य*-वाहियों द्वारा अर्थात् नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत क्रियाशील हों। यह क्रिया-

1 Economic Development is a process whereby an economy, in real national income increased over a long period.'
(Meier and Baldwin, *Economic Development*, p 2)

शील होने वाले घटक प्रत्येक देश की परिस्थिति के अनुसार निर्धारित होते हैं। इन घटकों के दीर्घ काल तक क्रियाशील रहने पर आर्थिक विकास का प्रक्रिया सचालित होती है। इन घटकों के दीर्घ काल तक क्रियाशील रहने का परिणाम राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि होता है। इस प्रकार राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि आर्थिक विकास की प्रक्रिया का परिणाम होता है और इस परिणाम के आधार पर आर्थिक प्रगति का माप किया जाता है। राष्ट्रीय आय की वास्तविक वृद्धि करने हेतु बहुत से घटकों के योगदान की आवश्यकता होती है। इनमें से कुछ घटक वस्तुओं एवं सेवाओं की पूर्ति के क्षेत्र को प्रभावित करते हैं और अन्य उत्पादों की माँग के आकार एवं प्रकार निर्धारित करते हैं। पूर्ति को प्रभावित करने वाले घटकों में (अ) अतिरिक्त साधनों की खोज एवं वर्तमान साधनों का पूर्णतया एवं विवेकपूर्ण उपयोग (आ) पूँजी सचय एवं निर्माण (इ) जनसंख्या में वृद्धि (ई) उत्पादन में नवीन एवं सुधरी हुई तान्त्रिक ताओं का उपयोग (उ) कार्य कुशलता एवं तान्त्रिक ज्ञान में सुधार तथा (ऊ) संस्थनीय एवं सगठनात्मक सुधार। दूसरी ओर माँग को प्रभावित करने वाले घटक है—(अ) जन संख्या का आकार एवं आयु विभाजन (Age Composition) (आ) आय का वितरण (इ) रुचि एवं फैशन (ई) अन्य संस्थनीय एवं सगठनात्मक व्यवस्थाएं।

आर्थिक प्रगति एक प्रक्रिया है

अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में जो पृथक पृथक विकास समय समय पर होता है, उसे आर्थिक विकास नहीं कहा जा सकता है क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों का यह विकास एक दूसरे से सम्बद्ध नहीं है और यह विभिन्न अवस्थाओं से क्रमबद्ध होकर नहीं गुजरता है। विकास की प्रक्रिया के अन्तर्गत होने वाली विभिन्न क्रियाएं इस प्रकार सचालित होती हैं कि एक क्रिया दूसरी क्रिया को गति प्रदान करती है और इस प्रकार यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। अर्थ व्यवस्था में भी जब कुछ मूलभूत आर्थिक क्रियाओं का सचालन किया जाता है तो उनसे प्रभावित होकर दूसरी क्रियाएं गतिमान होती है और इस क्रम के जारी रहने से अर्थ व्यवस्था के सभी क्षेत्र गतिमान हो जाते हैं। अर्थ-व्यवस्था के किसी विशेष क्षेत्र अथवा इकाई की प्रगति को इस प्रकार आर्थिक विकास नहीं कहा जाता है क्योंकि इस प्रगति से अन्य क्षेत्रों की प्रगति गतिमान नहीं होती है।

आर्थिक प्रगति एक दीर्घकालीन क्रिया है

आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जो दीर्घ काल तक निरन्तर सचालित रहती है। दीर्घ काल तक सचालित न होने पर इस प्रक्रिया की समस्त अवस्थाओं का क्रियाशील होना ही सम्भव नहीं हो पायगा क्योंकि एक क्रिया दूसरी और दूसरी क्रिया तीसरी क्रिया को प्रभावित करने के लिए कुछ समय लेती है। ऐसी परिस्थिति में विकास प्रक्रिया का वांछित फल—अर्थात राष्ट्रीय उत्पादन में वास्तविक वृद्धि—की उपलब्धि दीर्घ काल में ही हो सकती है। इसी कारण आर्थिक विकास को दीर्घकालीन

परिवर्तन (Secular Change) का नाम भी दिया जाता है। यदि किसी व्यापारिक चक्र अथवा अन्य परिस्थिति के कारण अल्प काल के लिए अर्थ-व्यवस्था में उत्पादन में वृद्धि हो जाय जो बाद में निर्वाहित न की जा सके तो इसे आर्थिक विकास नहीं कहा जा सकता है। आर्थिक विकास की उपलब्धियाँ निरन्तर जारी रहनी चाहिए और उनका निर्वाह होते रहना चाहिए। यदि किसी देश में किसी आकस्मिक परिस्थिति के कारण आर्थिक गतिशीलता उत्पन्न हो जाय और फिर उस परिस्थिति के प्रभाव के समाप्त होने के पश्चात् भी इस गतिशीलता का निर्वाह किया जाता रहे तो इस प्रक्रिया को आर्थिक विकास कहा जा सकता है। इस प्रकार आर्थिक घटकों में गतिशीलता किस प्रकार प्रारम्भ होती है यह महत्वपूर्ण नहीं होता बल्कि इस गतिशीलता का क्रमबद्ध दीर्घकालीन निर्वाह होना आर्थिक विकास के लिए आवश्यक होता है।

आर्थिक प्रगति के अन्तर्गत वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होनी है

आर्थिक विकास की प्रक्रिया का उद्देश्य राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि करना होता है। देश की वस्तुओं एवं सेवाओं के अन्तिम कुल उत्पादन में वास्तविक वृद्धि होनी चाहिए। वास्तविक उत्पादन-वृद्धि का माप इसके मौद्रिक मूल्य से नहीं किया जा सकता है क्योंकि वर्ष प्रतिवर्ष मूल्य स्तर में परिवर्तन होने के कारण इसका मौद्रिक मूल्य बिना वास्तविक उत्पादन-वृद्धि के बढ़ सकता है। मूल्य में वास्तविक उत्पादन वृद्धि ज्ञात करने के लिए वस्तुओं एवं सेवाओं के मौद्रिक मूल्य को मूल्य निर्देशांक की सहायता से समायोजित करने की आवश्यकता होती है और इस समायोजन के आधार पर राष्ट्रीय आय के निर्देशांक बनाये जा सकते हैं।

राष्ट्रीय उत्पादन मिश्रित अथवा शुद्ध दो प्रकार से मापा जा सकता है। माइर एवं बाल्डविन के अनुसार हमें शुद्ध राष्ट्रीय आय की वृद्धि को देखना है।

मिश्रित राष्ट्रीय उत्पादन में यन्त्रादि एवं अन्य पूँजीगत सम्पत्तियों का उत्पादन के लिए जो क्षय होता है उसका विचार में नहीं रखा जाता है परन्तु जब इस क्षय की लागत को मिश्रित उत्पादन में से घटा दिया जाता है तो शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन ज्ञात हो जाता है। इस प्रकार शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन में अन्तिम उपभोक्ता-वस्तुओं एवं सेवाओं तथा पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन को सम्मिलित किया जाता है। जहाँ तक शुद्ध राष्ट्रीय आय की वृद्धि का सम्बन्ध है यह वृद्धि तुलनात्मक स्थिति प्रदर्शित करती है अर्थात् प्रत्येक वर्ष की शुद्ध राष्ट्रीय आय की तुलना पिछले वर्षों की शुद्ध राष्ट्रीय आय से की जाती है। यदि दीर्घ काल में शुद्ध राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती रहती है तो उसे आर्थिक विकास का द्योतक समझते हैं।

आर्थिक प्रगति को मापना

आर्थिक प्रगति अथवा विकास को मापने के तरीकों के सम्बन्ध में काफी मतभेद है। यह माप तीन प्रकार से किया जा सकता है—

(१) उत्पादक सम्पत्तियों में वृद्धि—किसी भी देश की आर्थिक सम्पन्नता का

एक महत्वपूर्ण घातक उसके अधिकार में रहने वाली उत्पादक सम्पत्तियों की मात्रा होती है। जब कोई अर्थ-व्यवस्था विकास की ओर अग्रसर होती है तो वर्तमान उत्पादक साधनों का पूर्णतम एवं कुशल उपयोग किया जाता है नवीन उत्पादक साधनों की खोज की जाती है तथा राष्ट्र की पूँजीगत एवं मानवीय सम्पत्तियों में वृद्धि की जाती है। मानवीय सम्पत्ति में वृद्धि करने का अर्थ जनसंख्या वृद्धि से नहीं है बल्कि उत्पादन में योगदान देने वाले कुशल एवं ज्ञानसम्पन्न श्रम शक्ति में वृद्धि की जाती है। परन्तु इन उत्पादक सम्पत्तियों के परिमाण का माप करना कठिन होता है क्योंकि विभिन्न पूँजीगत साधनों को किसी समान मापदण्ड में मापना सम्भव नहीं होता है। पूँजीवाद का विभिन्न राष्ट्रों में विभिन्न प्रकार से उपयोग किया जाता है। वास्तव में पूँजी में टिकाऊ एवं गैर टिकाऊ सभी विनियोजन मदों तथा सामाजिक अथवा मानवीय पूँजी, उनकी उत्पादकता के आधार पर सम्मिलित करना चाहिए। इस आधार पर किसी भी देश का पूँजी का अनुमान लगाना अत्यन्त कठिन होता है।

(२) राष्ट्रीय आय—आर्थिक विकास का तुलनात्मक माप करने के लिए शुद्ध राष्ट्रीय आय को अधिक उपयुक्त समझा जाता है। परन्तु राष्ट्रीय आय के आँकड़ों के उपयोग की निम्नलिखित परिसीमाएँ हैं—

(अ) राष्ट्रीय आय की गणना में बहुत सी मदों की मौद्रिक गणना नहीं हो पाती है जैसे जनसाधारण के स्वास्थ्य में सुधार, जनसाधारण के स्वभाव में सुधार सरकार द्वारा जनोपयोगी सेवाओं में किये गये पूँजीगत विनियोजनों का लाभ आदि। अल्प विकसित राष्ट्रों में सांख्यिकीय तथ्य कम मात्रा में उपलब्ध होते हैं तथा उपलब्ध आँकड़े विश्वसनीय भी नहीं होते हैं। इन देशों में सांख्यिकी एकत्रित करने के लिए पर्याप्त साधनों का आयोजन करना सम्भव नहीं होता है तथा इनकी सामाजिक परिस्थितियाँ सांख्यिकी के संग्रहण में बाधक होती हैं। यातायात एवं संचार की *पर्याप्त व्यवस्था न होने के कारण भी सांख्यिकी पर्याप्त मात्रा में एकत्रित नहीं की जा सकती है। इन देशों में उपभोग व्यय एवं विक्रय का ठीक ठीक लेखा नहीं रखा* जाता है। छोटे छोटे व्यवसायियों की संख्या बहुत अधिक होती है जिनके व्यवहारों का लेखा प्राप्त करना सम्भव नहीं होता है। अल्प आय वाले राष्ट्रों में विपणि व्यवस्था भी पूर्ण नहीं होती और बहुत से व्यवहार अमौद्रिक क्षेत्र में होते हैं जिनके बारे में जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकती है। इन समस्त मदों के राष्ट्रीय आय के आँकड़ों में सम्मिलित न होने के कारण इन राष्ट्रों की आय के अनुमान सदैव कम लगाये जाते हैं। दूसरी ओर विकसित राष्ट्रों में राष्ट्रीय आय के आँकड़े निर्धन राष्ट्रों की तुलना में बढ़ाकर बताये जाते हैं क्योंकि इन राष्ट्रों में सांख्यिकीय तथ्य पूर्ण एवं विस्तृत होते हैं तथा व्यापारिक उन्नति के कारण मौद्रिक क्षेत्र के अन्तर्गत समस्त व्यवहार किये जाते हैं।

(आ) राष्ट्रीय आय के आँकड़ों के आधार पर विभिन्न राष्ट्रों का आर्थिक

प्रगति की तुलना करने में वास्तविक परिणाम नहीं प्रदर्शित होते हैं। विभिन्न राष्ट्रों में आय को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया जाता है और इस परिभाषा में सम्मिलित होने वाले तत्व में भी विभिन्नता रहती है। इसके अतिरिक्त जब निर्धन एवं सम्पन्न राष्ट्रों की आय की वृद्धि की दर अथवा आय के स्तर की तुलना करना होती है तो इसके राष्ट्रीय आय के आंकड़े उपयुक्त नहीं होते हैं। इन राष्ट्रों की राष्ट्रीय आय की तुलना करने के लिए इनकी आय को किसी अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा में बदलना होता है, जैसे अमरीकी डालर में विभिन्न राष्ट्रों की आय को परिवर्तित किया जाता है। राष्ट्रीय मुद्रा में गणना की गयी राष्ट्रीय आय को जब डालर आदि अन्य मुद्रा में परिवर्तित करते हैं तो इसके लिए सरकारी विनिमय-दरों का उपयोग किया जाता है। सरकारी विनिमय-दरें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर लगे प्रतिबन्धों एवं विदेशी विनिमय-नियन्त्रण के कारण वास्तविक विनिमय-दरें नहीं होती हैं। प्राय: वास्तविक विनिमय-दर अल्प-विकसित राष्ट्रों के प्रतिकूल होती है जिसके फलस्वरूप अल्प-विकसित राष्ट्रों की विदेशी मुद्रा में परिवर्तित राष्ट्रीय आय का अनुमान कम लगाया जाता है।

(इ) अल्प-विकसित राष्ट्रों की राष्ट्रीय आय का अनुमान इसलिए भी कम लगाया जाता है कि इनके द्वारा निर्मित की गयी वस्तुएँ घरेलू उपभोग की वस्तुओं की तुलना में कम श्रमप्रधान उत्पादन-विधियों द्वारा उत्पादित होती हैं। श्रम की बाहुल्यता होने के कारण श्रम सस्ता रहता है और श्रमप्रधान उत्पादन-विधियों द्वारा उत्पादित वस्तुएँ भी सस्ती होती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सम्मिलित होने वाली वस्तुओं के मूल्यांकन पर किसी विनिमय की दरों के प्रभाव पड़ने के कारण उनका मूल्यांकन घरेलू उपभोग-वस्तुओं की तुलना में अधिक किया जाता है। अल्प-विकसित राष्ट्रों की आय का बड़ा अनुपात घरेलू उपभोग की वस्तुओं एवं सेवाओं से बनता है जिसके कारण इन राष्ट्रों की आय का कम अनुमान लगाया जाता है। इसी प्रकार उद्योग, कृषि एवं अन्य उत्पादन करने वाले क्षेत्रों को जिन सामान्य सेवाओं की आवश्यकता होती है उनका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नहीं होता है। उदाहरण के लिए, यातायात, संचार, जल एवं विद्युत् पूर्ति, निवासगृह, शिक्षा एवं स्वास्थ्य-सुविधाएँ, प्रशिक्षण एवं बीमा-सुविधाएँ आदि में मजदूरी उद्योग एवं कृषि-क्षेत्रों की मजदूरी-स्तर से निर्धारित होते हैं। अल्प-विकसित राष्ट्रों में उद्योग एवं कृषि-क्षेत्रों में मजदूरी के निम्न स्तर होने के कारण सेवाओं के क्षेत्र में भी मजदूरी-स्तर कम रहता है जिसके फलस्वरूप सेवाओं का मूल्यांकन कम किया जाता है और राष्ट्रीय अनुमान तदनुसार कम रहते हैं। इस प्रकार राष्ट्रीय आय के आँकड़ों के आधार पर निर्धन एवं सम्पन्न राष्ट्रों की आर्थिक प्रगति के स्तर की तुलना करना भ्रमात्मक हो सकता है।

(ई) राष्ट्रीय आय के आंकड़ों में आय प्राप्त करने की लागत एवं लाभ से सम्बन्धित पहलुओं पर विचार नहीं किया जाता है। राष्ट्रीय आय के आँकड़े केवल भौतिक माप प्रस्तुत करते हैं। इनके द्वारा कल्याण का प्रदर्शन नहीं होता क्योंकि

कल्याण के लिए केवल मौद्रिक आय की वृद्धि ही पर्याप्त नहीं होती है। कल्याण का अनुमान लगाने के लिए आय वृद्धि के साथ साथ यह जानना भी आवश्यक होता है कि उस आय प्राप्ति के लिए जनसाधारण को किन किन सामाजिक कठिनाइयों एवं दोषों का सामना करना पड़ा जैसे औद्योगीकरण का विस्तार होने से नगरों में भीड़ भाड़ बढ़ जाती है गन्दगी में वृद्धि होती है लोगों के चरित्र गिरने लगते हैं आदि आदि। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय आय की वृद्धि के साथ साथ उत्पादन के प्रकार में भी परिवर्तन हो सकता है। यदि उत्पादित वस्तुओं का प्रकार ऐसा हो कि जिनका उपयोग कल्याणकारी उपभोग के लिए नहीं किया जा सकता हो तो आय वृद्धि के होते हुए कल्याण सम्भव नहीं हो सकता है।

इसी प्रकार राष्ट्रीय आय में वृद्धि देश के प्राकृतिक साधनों का द्रुत गति से शोषण करके की जा सकती है परन्तु इससे अर्थ व्यवस्था की भविष्य की सम्भावनाओं को आघात पहुँचता है।

राष्ट्रीय आय की उपर्युक्त परिसीमाओं के होते हुए भी इसे आर्थिक प्रगति के माप का श्रेष्ठ साधन माना जाता है। यह कम से कम एक समाज की कुल आय की प्रवृत्ति को तो प्रदर्शित करती ही है। यद्यपि इसके द्वारा आर्थिक प्रगति के स्तर का माप शुद्धता से नहीं किया जा सकता फिर भी इसके द्वारा आर्थिक प्रगति का तुलनात्मक अध्ययन करने में सहायता अवश्य मिलती है। वाइनर के विचार में कुल राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि को प्रगति का द्योतक तब ही मान सकते हैं जब इस वृद्धि द्वारा बढ़ती हुई जनसंख्या का जीवन स्तर वर्तमान स्तर पर बनाये रखने में अथवा वर्तमान जनसंख्या के जीवन स्तर एवं आय में वृद्धि करने में सहायता मिलती हो। आर्थिक प्रगति वास्तव में बहुपक्षीय (Multi Dimensional) प्रक्रिया होती है जिसमें केवल मौद्रिक आय में ही वृद्धि नहीं होती है बल्कि सामाजिक स्वभाव, शिक्षा जन स्वास्थ्य, अधिक अवकाश में सुधार होता है तथा समस्त सामाजिक एवं आर्थिक वातावरण में इस प्रकार सुधार होता है कि जन जीवन अधिक परिपूर्ण एवं सुखदायक हो जाता है। इस प्रकार आर्थिक प्रगति बहुपक्षीय प्रक्रिया होने के कारण इसका शुद्ध माप एकपक्षीय नहीं हो सकता है। राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय प्रगति के केवल एक पक्ष—मौद्रिक आय की वृद्धि का ही माप करता है और इसलिए इसे प्रगति का सन्तोषजनक माप नहीं समझा जा सकता है। परन्तु फिर भी विभिन्न राष्ट्रों की किसी विशेष समय की उपलब्धियों का तुलनात्मक अध्ययन करने अथवा किसी राष्ट्र की विभिन्न समयों की उपलब्धियों का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए राष्ट्रीय आय को एक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी प्रमाण माना जाता है।

(३) प्रति व्यक्ति आय—कुछ अर्थशास्त्रियों का विचार है कि विभिन्न राष्ट्रों की आर्थिक प्रगति का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए राष्ट्रीय आय के स्थान पर प्रति व्यक्ति आय का उपयोग करना चाहिए क्योंकि प्रति व्यक्ति आय समाज के नागरिकों

के कल्याण एव भौतिक सम्पन्नता से अधिक अच्छा अनुमान होता है परन्तु प्रति व्यक्ति आय से विभिन्न देशों की आर्थिक प्रगति का उचित अनुमान लगाना कठिन होता है। एक देश जिसमें जनसंख्या अधिक है और उसकी वृद्धि की दर भी अधिक है, उत्पादन-वृद्धि करके यदि प्रति व्यक्ति आय वतमान स्तर पर बनाये रखता हो तो वह उस देश की तुलना मे अधिक प्रगतिशील है, जिसमे उत्पादन-वृद्धि तो अधिक नहीं हुई है परन्तु जनसंख्या कम होने तथा वृद्धि की गति मन्द होने के कारण प्रतिव्यक्ति आय म वृद्धि कर लेता है। केवल प्रति व्यक्ति आय की तुलना करने पर दूसरा देश अधिक प्रगतिशील प्रतीत होगा जबकि वास्तव म पहले देश म प्रगति की दर अधिक है।

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि आर्थिक प्रगति का मौद्रिक माप राष्ट्रीय एव प्रति व्यक्ति आय द्वारा सम्भव हो सकता है यदि गणना सम्बन्धी त्रुटियों को दूर अथवा समायोजित कर दिया जाय परन्तु यह जानने के लिए कि इस आर्थिक प्रगति में किन किन प्रोत्साहनों एव सगठनात्मक परिवर्तनों ने योगदान दिया है, यह आवश्यक होगा कि गैर आर्थिक घटकों जैसे स्वास्थ्य एव शिक्षा मे सुधार, जीवित रहने की आयु में वृद्धि, उपलब्ध सामाजिक सुविधाएँ आदि का अध्ययन भी किया जाय। आर्थिक प्रगति का सन्तोषजनक माप करने हेतु वास्तविक राष्ट्रीय आय को माप कर उसे जनसंख्या, प्रति व्यक्ति आय, तथा सामाजिक एव आर्थिक कल्याण से सम्बद्ध करके अध्ययन करना चाहिए।

आर्थिक प्रगति-सम्बन्धी समस्या का महत्व

आधुनिक काल म अल्प विकसित राष्ट्रों की विकास सम्बन्धी समस्याओं की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। अल्प विकसित राष्ट्र केवल स्वय ही अपनी समस्याओं के निवारण म तत्पर नहीं हैं अपितु विकसित राष्ट्र भी इनकी समस्याओं म अत्यधिक रुचि रखने लगे हैं और इनको आर्थिक एव तान्त्रिक सहायता प्रदान करने में तत्पर हैं। इस प्रकार अल्प विकसित राष्ट्रों की समस्याओं ने एक गम्भीर स्थिति प्रदान कर दी है। इस अवस्था के बहुत म कारण हैं। सयुक्त राज्य अमेरिका एव पश्चिम यूरोप के राष्ट्रों की प्रगति की गति इतनी तीव्र है कि इनकी प्रति व्यक्ति आय एव अल्प विकसित राष्ट्रों की प्रति व्यक्ति आय का अन्तर कम होने के स्थान पर बढ़ता जा रहा है। इस अन्तर का बढ़ना ससार मे शान्ति का बनाये रखने मे बाधक सिद्ध हो सकता है। दूसरी ओर सम्वादवाहन के साधनों की कुशलता बढ जाने के कारण आज का प्रत्येक नागरिक अपनी तुलना मे आर्थिक स्थिति को समझने लगा है और अल्प विकसित राष्ट्रों के नागरिकों म उन्नत राष्ट्रों के नागरिकों के समान जीवन स्तर बनाने के प्रति इच्छा एव जागरूकता पायी जाती है जिसके फलस्वरूप विकास की समस्या पर गम्भीरता के साथ विचार किया जाने लगा है।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त उन्नत राष्ट्रों ने समस्या के महत्व को अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए बढ़ा दिया है। साम्यवाद के विस्तार को रोकने के लिए यह

आवश्यक समझा जाता है कि अल्प विकसित राष्ट्रों को आवश्यक सहायता प्रदान करके इस योग्य बना दिया जाय कि वह अपने नागरिकों की जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। निर्धनता अशिक्षा न्यून जीवन स्तर आदि साम्यवाद के विस्तार में सहायक होते हैं और इन्हें दूर करने के लिए इन राष्ट्रों का आर्थिक विकास किया जाना चाहिए। इस राजनीतिक उद्देश्य के अतिरिक्त उन्नत राष्ट्र अल्प विकसित राष्ट्रों के विकास द्वारा अपने आर्थिक स्वार्थों की सिद्धि भी करना चाहते हैं। ऐतिहासिक तथ्यों से ज्ञात होता है कि जैसे जैसे अल्प विकसित राष्ट्रों की आय में वृद्धि होती है उनका आयात भी बढ़ता जाता है। अल्प विकसित राष्ट्रों के विकास के फलस्वरूप उन्नत राष्ट्र इनसे उन वस्तुओं का आयात कर सकते हैं जो वह मितव्ययता के साथ उत्पन्न नहीं कर सकते हैं और इस आयात के बदले में अपनी निर्मित वस्तुओं का निर्यात कर सकते हैं। उन्नत राष्ट्रों की पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था में बचत एवं विनियोजन के उपलब्ध धन की मात्रा अधिक होती है। यदि इस धन का उत्पादक उपयोग न किया जाय तो आर्थिक मन्दी एवं बेरोजगारी का प्रादुर्भाव हो जायगा और यदि इस धन का उत्पादक उपयोग किया जाय तो इस अतिरिक्त उत्पादन को बेचने के लिए बाजार की आवश्यकता होगी। अल्प विकसित राष्ट्र इस सामग्री का आयात नहीं कर सकते क्योंकि उनके पास इसके बदले निर्यात करने योग्य कोई सामग्री पर्याप्त मात्रा में नहीं होती है। ऐसी अवस्था में उन्नत राष्ट्रों को सहायतार्थ एवं ऋण के रूप में इस अतिरिक्त उत्पादित सामग्री को देना एक अनिवार्यता हो जाती है। वास्तव में उन्नत राष्ट्र अपनी अर्थ व्यवस्था को छिन्न भिन्न होने से रोकने के लिए ही बड़े पैमाने में सहायता के कार्यक्रमों का संचालन करते हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि विकास एक ऐसी अवस्था है जिसकी ओर बढ़ने के लिए अल्प विकसित राष्ट्र प्रयत्नशील है और उन्नत राष्ट्र इस अवस्था के निर्वाह के लिए अल्प विकसित राष्ट्रों को सहायता प्रदान करते हैं। यह विकास की दौड़ धीरे धीरे इतना जटिल रूप ग्रहण करती जा रही है कि अल्प विकसित राष्ट्र विकसित राष्ट्रों के समीप पहुँचने में सम्भवतः निकट भविष्य में सफल न हो सकेंगे।

सामान्यतः अल्प विकसित राष्ट्रों में प्राकृतिक साधनों का बाहुल्य होता है किन्तु उपलब्ध साधनों का भी पूर्णतम उपयोग न होने के कारण इन राष्ट्रों में उत्पादन तथा राष्ट्रीय आय अत्यन्त कम होता है। उत्पत्ति के ढंग प्राचीन तथा शिथिल होते है तथा जनसंख्या का भार अधिक होता है। प्रति व्यक्ति आय अत्यन्त न्यून एवं जीवन स्तर दयनीय होते है। उनका बचत करने की शक्ति सीमित तथा पूँजी निर्माण का स्तर अपर्याप्त होती है। जनता की विचारधारा रूढ़िवादी होती है, धर्म, अविवेक तथा अंधविश्वास द्वारा प्रतिस्थापित होता है। वर्तमान परिस्थिति में सन्तुष्ट रहने का स्वभाव स्थिर हो जाता है। परिणामतः आय की वृद्धि के जीवन स्तर में वृद्धि के स्थान पर रूढ़िवादी प्रथाओं पर व्यय व्यय किया जाता है। राष्ट्रीय आय का इतना अधिक

असमान एवं त्रुटिपूर्ण वितरण होता है कि कतिपय व्यक्तियों के हाथ में राष्ट्रीय आय का अधिकांश भाग जन्मजात अधिकार की भाँति बना रहता है। यह परिस्थिति अनेक पीढ़ियों की निर्धनता तथा दरिद्रता के कारण उपस्थित होती है।

अल्प विकसित राष्ट्रों में जनसमुदाय के जीवन-स्तर में वृद्धि करने हेतु उत्पादन में वृद्धि करना अत्यन्त आवश्यक होता है। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि अल्प विकसित राष्ट्रों में इतनी उन्नति की जाय कि जनसाधारण को उत्पादक रोजगार (Productive Employment) प्राप्त हो सके। उत्पादक रोजगार का अर्थ ऐसे रोजगार से है जिसके द्वारा राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुसार वस्तुओं तथा सेवाओं की पूर्ति में वृद्धि हो। इन राष्ट्रों के आर्थिक विकास हेतु आन्तरिक बचत में वृद्धि के साथ-साथ विदेशी पूँजी भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होनी चाहिए।

आधुनिक समाज में राष्ट्रों की पारस्परिक निर्भरता होते हुए भी अधिकतम तथा न्यूनतम—दोनों ही प्रकार के विकसित राष्ट्र हम देखते हैं। वर्तमान युग में विकसित तथा अल्प विकसित राष्ट्रों का अन्तर निरन्तर वृद्धि की ओर अग्रसर है क्योंकि विकसित राष्ट्र अपनी अपनी उन्नत अर्थ-व्यवस्था द्वारा अधिकाधिक प्रगति का आलिंगन करते जा रहे हैं जबकि दूसरी ओर, अल्प विकसित राष्ट्रों की आर्थिक स्थिति उत्तरोत्तर शोचनीय होती जाती है। अल्प विकसित राष्ट्रों में अर्थ-व्यवस्था का रूप इतना छिन्न भिन्न होता है कि उसका विकास केवल विचारपूर्ण (Deliberate) प्रयत्नों द्वारा ही सम्भव है। विकसित राष्ट्रों में अर्थ व्यवस्था का संगठन इस प्रकार का हो जाता है कि वह स्वतः ही विकासोन्मुख पथ पर चलता रहता है, जिसे स्वचालित अर्थ-व्यवस्था (Self-Sustaining Economy) की संज्ञा प्रदान की जाती है।

अल्प विकसित राष्ट्रों को एक महत्वपूर्ण सुविधा प्राप्त होती है जिसको प्राचीन विकसित राष्ट्र नहीं उठा पाते। अल्प विकसित राष्ट्र विकसित राष्ट्रों के अनुभवों का लाभ उठा सकते हैं क्योंकि प्रारम्भिक अवस्था में इन्हें भी उन्हीं समस्याओं का सामना करना होता है जिन्हें विकसित राष्ट्र सुलझा चुके हैं। विकसित राष्ट्रों द्वारा अपनाये गए आर्थिक, सामाजिक, वित्तीय तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी प्रयोगों का बिना किसी अधिक जोखिम के अविकसित राष्ट्र उपयोग कर सकते हैं किन्तु यह कार्य उतना सुगम, साधारण तथा सुविधापूर्ण नहीं होता जितना प्रतीत होता है। अल्प-विकसित राष्ट्रों की जलवायु वातावरण जनसंख्या सम्पदा, संस्कृति इतिहास आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था आदि परस्पर तथा विकसित राष्ट्रों से इतनी भिन्न होती है कि कोई भी अनुभव जब तक राष्ट्रीय परिस्थितियों के अनुसार उसमें आवश्यक समायोजन, परिवर्द्धन, परिवर्तन एवं संशोधन नहीं किए जायेंगे प्रभावशाली एवं पूर्णरूपेण उपयोगी सिद्ध न होगा।

अल्प विकसित राष्ट्रो का परिचय
[Introduction to Under developed Countries]

[अल्प विकसित राष्ट्र की परिभाषा, अल्प विकसित राष्ट्रो के लक्षण, सामान्य आर्थिक परिस्थितियाँ—प्रति व्यक्ति आय कम, कृषि म अधिक जनसख्या, रोजगार की शाचनीय स्थिति पौष्टिक भोजन की कमी आर्थिक विषमता विदेशी व्यापार मे न्यून भाव, विदेशी व्यापार का महत्व तान्त्रिक ज्ञान की कमी, यान्त्रिक शक्ति की न्यूनता आधारभूत सुविधाओ की कमी, कृषि की प्रधानता एव दयनीय स्थिति, जनसख्या-सम्बन्धी परिस्थितिया, प्राकृतिक साधनो की न्यूनता मानवीय शक्ति का पिछडापन पूँजी की न्यूनता, विदेशी व्यापार की प्रधानता]

अल्प विकास का सदर्भ किसी एक या अनक उत्पादन के घटको की न्यूनता से है। यह घटक जनसख्या सम्बन्धी परिस्थितियाँ राजनीतिक एव सामाजिक घटक जसे विदेशी शासन तानाशाही शासन अथवा सामन्तवादी शासन, आर्थिक घटक जसे पूजी, तान्त्रिक ज्ञान साहस आदि म से एक अथवा अनक की हीनता हो सकते हैं। न्यूनता अथवा दोषपूर्ण होने के कारण अर्थ-व्यवस्था का विकास नहीं हो पाता है और उस राष्ट्र को अल्प विकसित राष्ट्रो के वर्ग म स्थान प्राप्त होता है अल्प विकास की परिभाषा मूलत विकास की परिभाषा पर निभर रहती है। विकास म सम्मिलित होने वाले तत्वो मे से जब कोई एक अथवा अनक तत्व किसी अर्थ व्यवस्था म उपस्थित नही रहते तो उस अर्थ व्यवस्था को अल्प विकसित अर्थ-व्यवस्था कहते हैं। परन्तु विकास मे सम्मिलित होने वाले तत्व स्थिर नही होते। वे समय और परिस्थितियो के अनुसार बदलते रहते हैं। विज्ञान एव तान्त्रिकताओं की तीव्र गति से प्रगति होने के कारण अच्छे रहन सहन की आवश्यक सामग्रियाँ एव सुविधाएँ निरन्तर बदलती जा रही हैं जिसके परिणामस्वरूप विकास के तत्वो म भी परिवतन होता जा रहा है। वह देश जो अपने नागरिको को उच्चतम जीवन-स्तर प्रदान कर सकता है विकसित देश कहलाता है। उच्चतम जीवन-स्तर एक तुलनात्मक विचार है अर्थात अन्य देशों के नागरिको के जीवन-स्तर की तुलना म जिस देश के नागरिकों का जीवन स्तर सर्वोच्च एव सुखद हो उसी देश को विकसित देश कहा जाता है। जिस प्रकार

विकास का निर्धारण विभिन्न देशों के जीवन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करके किया जा सकता है, उसी प्रकार अल्प विकसित अवस्था का निर्धारण भी विभिन्न विकसित एवं अल्प विकसित राष्ट्रों के जीवन स्तर की तुलना करके किया जा सकता है।

अल्प विकसित राष्ट्र की परिभाषा—अल्प विकसित अवस्था वास्तव में एक तुलनात्मक अवस्था है और इसके कोई विशेष लक्षण निश्चित करना सम्भव नहीं है। आर्थिक एवं सामाजिक मान्यताओं, विकास की सीमाओं तथा अन्य राष्ट्रों में किए गये विकास की मात्रा तथा गति में परिवर्तन के प्रभाव अल्प विकसित अवस्था के लक्षणों पर पूर्णरूपेण पड़ते हैं। जीवन स्तर की न्यूनता, अनानता आधारभूत अनिवार्यताओं, उदाहरणार्थ, भोजन, वस्त्र, गृह आदि की अपर्याप्ता आदि अल्प विकास के मुख्य लक्षण हैं। भविष्य में इन लक्षणों में परिवर्तन होना अवश्यम्भावी है।

प्रोफेसर पालविया के अनुसार प्रति व्यक्ति आय का न्यून-स्तर, अज्ञानता की अधिकता तथा परिणामस्वरूप लैटिन अमेरिका, एशिया, मध्य-पूर्व अफ्रीका तथा पूर्व के समीप देशों में अधिवासियों के न्यून जीवन स्तर ने संसार की सभ्यताओं तथा मानव समाज के विचारशील वर्ग की विचारधाराओं को आकर्षित किया है। ऐसी शोचनीय दशाओं के साथ साथ उत्तरी अमेरिका तथा पश्चिमी यूरोप के उन्नत जीवन स्तर तथा अन्य सुविधाओं की उपस्थिति ने अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का एक बड़ा खतरा उपस्थित कर दिया है। विकसित क्षेत्रों में भूख की समस्या नहीं है उत्पादन वृद्धि के मार्ग पर है तथा जनसाधारण शिक्षित ही नहीं अपितु उनके ज्ञानवर्द्धन हेतु पुस्तकें उपलब्ध हैं अच्छे पुस्तकालय भी हैं और पशुओं के खाने तथा चिकित्सा का प्रबन्ध अल्प विकसित क्षेत्रों में जनसाधारण को उपलब्ध सुविधाओं की तुलना में श्रेष्ठ है। अल्प विकसित राष्ट्रों में अशिक्षा अपवाद नहीं, वरन् सामान्य लक्षण है प्रतिदिन दो समय भोजन प्राप्त होना समस्या है तथा उत्पादन तान्त्रिक सामग्री की अनुपस्थिति के कारण स्थिर तथा अनियमित है।[1]

---

1 Low level of income per capita the apalling ignorance and the resultant low standard of life of the people in Latin America Asia and Middle East Africa and Near East have attracted the attention of world assemblies as well as thinking section of mankind in general Co-existence in these countries side by side with standard of life and comfort in North America and Western European countries is being now regarded as a threat to international peace

In developed areas problem of starvation is alien, productivity is on a high road of increase and people not only have literacy but have a volume of books and series of well-equipped libraries to enrich their knowledge and animals have better food and medical-care than human beings in under-developed coun-

(contd)

प्रोफेसर सेम्युलसन (*Prof Samuelson*) के अनुसार, साधारणत एक अल्प विकसित राष्ट्र वह है जिसमे प्रति व्यक्ति आय ऐसे राष्ट्रो जैसे कनाडा संयुक्त राज्य अमेरिका ब्रिटेन फ्रान्स तथा पश्चिमी यूरोप की प्रति व्यक्ति आय की तुलना में कम हो। प्राय अल्प विकसित राष्ट्र उसे कहा जाता है जिसमे आय के स्तर में पर्याप्त सुधार करने की क्षमता हो।[1]

इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि विकास एक तुलनात्मक अवस्था का नाम है। प्रत्येक राष्ट्र वास्तव में अल्प विकसित समझा जा सकता है क्योंकि कोई भी राष्ट्र विकास की पूर्ण अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकता है। आज जो राष्ट विकसित हैं और जिनकी अर्थ व्यवस्था से तुलना करके अन्य राष्ट्र अपनी आर्थिक श्रेणी निर्धारित करते हैं वे राष्ट्र भी अल्प विकसित अवस्था से होकर गुजर चुके हैं। संसार के अधिकतर राष्ट्र इस परिभाषा के अनुसार अल्प विकसित समझे जा सकते हैं। जेकब वाइनर ने अल्प विकसित राष्ट्र उस राष्ट्र को समझा है जिसमें अधिक पूंजी अथवा अधिक श्रम अथवा अधिक उपलब्ध प्राकृतिक साधनों अथवा इन सभी का अधिक उपयोग करके अच्छे सम्भावित अवसर हो जिससे वह राष्ट्र अपनी वर्तमान जनसंख्या का एक ऊँचे जीवन स्तर अथवा यदि उस राष्ट्र में पहले से ही प्रति व्यक्ति आय का स्तर ऊँचा हो तो अधिक बड़ी जनसंख्या का कम से कम पहले के समान जीवन स्तर का पोषण कर सके।[2]

वाइनर ने इस परिभाषा में वर्तमान उपलब्ध उत्पादन के साधनों के उपयोग की सम्भावना को ही महत्व दिया है जबकि अल्प विकसित राष्ट्रों में नए साधनों की खोज करके उनका अधिक विदोहन एवं शोषण किया जाना आवश्यक होता है।

---

tries where illiteracy is the rule rather than exception two square meals a day is a problem and productivity is static or hampered by the absence of technical equipment

(Palvia *Economic Model for Development Planning* p 2)

1 An under developed nation is simply one with real per capita income that is low relative to the present day per capita incomes of such nations as Canada the United States Great Britain France and Western Europe generally Usually an under develo ped nation is one regarded as being capable of substantial im provement in its income level

(Paul A Samuelson *Economics An Introductory Analysis* p 776)

2 An under developed country is one which has good potential prospects for using more capital or more labour or more available natural resources or all of these to support its present popula tion on a higher level of living or if its per capita income level is already fairly high to support a larger population on a not lower level of living

(Jacob Viner *The Economics of Development*)

इसके अतिरिक्त इस परिभाषा में केवल आर्थिक घटकों को ही स्थान दिया गया है जबकि अल्प विकसित राष्ट्रों में सामाजिक घटकों का प्रभाव भी विकास पर पड़ता है।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा नियुक्त अल्प विकसित राष्ट्रों के आर्थिक विकास की कार्यवाहियों से सम्बद्ध एक समिति ने अपने प्रतिवेदन में अल्प विकसित राष्ट्र का परिभाषित करते हुए कहा है "हम इसमें (अल्प विकसित राष्ट्र से) उन देशों को समझते हैं जिनमें प्रति व्यक्ति आय संयुक्त राज्य अमेरिका कनाडा आस्ट्रेलिया तथा पश्चिमी यूरोप के देशों की वास्तविक प्रति व्यक्ति आय की तुलना में कम हो। इस अर्थ में 'अल्प विकसित देश' शब्द निर्धन देश वाक्य का उचित पर्यायवाची है।

अल्प विकसित देश (*Under developed country*) का निर्धन देश का पर्यायवाची कहना उचित नहीं है क्योंकि यह दोनों शब्द अलग अलग आभास प्रस्तुत करते हैं। निर्धन देश' शब्द से ऐसे देश का आभास होता है जिसमें विकास की सम्भावना के लिए जिस गतिशीलता की आवश्यकता होती है वह विद्यमान न हो। निर्धन केवल यह व्यक्त करता है कि देश के विकास के लिए साधनों का और अधिक उपलब्ध होना सम्भव नहीं है और यह देश उपलब्ध साधनों का सीमान्त उपयोग कर रहा है। निर्धन शब्द यह भी व्यक्त नहीं करता कि देश के अल्प विकसित होने के क्या कारण हैं। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व 'अल्प विकसित' शब्द के स्थान पर आर्थिक पिछड़ापन (Economic Backwardness) उपयोग किया जाता था परन्तु यह शब्द ऐसा आभास देता था कि उस राष्ट्र में विकास सर्वथा अनुपस्थित है और वहाँ की अर्थ-व्यवस्था स्थिर हो गयी है जिसमें विकास की सम्भावनाएँ नहीं है। इन दोषों के कारण ही निर्धन एवं आर्थिक पिछड़ेपन शब्दों का उपयोग अब अल्प विकसित राष्ट्र के लिए नहीं किया जाता है।

कुछ लोग 'अल्प विकसित देश' शब्द को अधिक रुचिकर न होने के कारण 'विकासशील देश' (Developing Countries) शब्द के उपयोग को अधिक उचित समझते हैं परन्तु विकासशील अथवा विकासोन्मुख शब्द उन्हीं देशों के लिए उपयोग करना उचित होगा जो विकास की ओर अग्रसर हों। अफ्रीका एवं एशिया में अब भी कुछ राष्ट्र ऐसे हैं जिनमें विकास के लिए प्रयत्न नहीं किए जा रहे हैं। ऐसे राष्ट्रों को विकासोन्मुख कहना उचित न होगा। इन सब विचारों के आधार पर यह कहना उचित है कि 'अल्प-विकसित' शब्द ही अल्प-विकसित राष्ट्रों के लिए उपयुक्त शब्द है।

यूजीन स्टेले ने अल्प विकसित राष्ट्र उस राष्ट्र को कहा है 'जिसके मुख्य लक्षण व्यापक दरिद्रता, जो दीर्घकालीन हो और किसी अस्थायी प्रतिकूल परिस्थिति के फलस्वरूप उदय नहीं हुई है तथा उत्पादन एवं सामाजिक संगठनों की अप्रचलित विधियाँ हों। इसका तात्पर्य यह है कि दरिद्रता पूर्णरूपेण प्राकृतिक साधनों की न्यूनता के कारण नहीं होती है और इसलिए इस दरिद्रता को उन विधियों का उपचार

करके जो अन्य राष्ट्रों में प्रमाणित हो चुकी है कम करना सम्भव हो सकता है।"[1]

इस परिभाषा में दीर्घकालीन निर्धनता को आधार माना गया है और साथ में यह भी कहा गया है कि इस निर्धनता का कम करना सम्भावित होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, यह कह सकते हैं कि वे राष्ट्र ही अल्प विकसित कहे जाने चाहिए जो वर्तमान में निर्धन हों और जिनका भविष्य में आर्थिक प्रगति होने की सम्भावना हो। यूजीन स्टेल ने अपनी पुस्तक The Future of Under developed Countries में सन् १९५४ में संसार के विभिन्न राष्ट्रों को उनके आर्थिक विकास की श्रेणी के आधार पर निम्न प्रकार विभक्त किया था—

(अ) अत्यधिक विकसित राष्ट्र—आस्ट्रेलिया बेल्जियम, कनाडा डेनमार्क, फ्रांस, जर्मनी, नीदरलण्डस न्यूजीलण्ड नार्वे स्वीडन स्विटजरलण्ड, ब्रिटेन संयुक्त राज्य अमेरिका।

(आ) मध्यम श्रेणी के राष्ट्र—अर्जेन्टाइना आस्ट्रिया चिली, क्यूबा चेकोस्लोवाकिया फिनलण्ड हंगरी आयरलण्ड इजराइल, इटली जापान, पोलण्ड पुर्तगाल प्यूरटोरिको, स्पेन दक्षिणी अफ्रीका रूस, यूरुग्वे वेनेज्वेला।

(इ) अल्प विकसित राष्ट्र—अफ्रीका के सभी राष्ट्र (दक्षिणी अफ्रीका संघ को छोड़कर) एशिया के सभी राष्ट्र (जापान और इजराइल को छोड़कर) तथा अल्बानिया बलगारिया ग्रीस रूमानिया यूगोस्लेविया (यूरोप में) तथा बोलीविया ब्राजील पश्चिमी द्वीप समूह कोलम्बिया, कोस्टारिका, डुमीनीकन गणतन्त्र, इक्वडार एल सालवेडर ग्वाटेमाला, हैटी, होन्डुरस मक्सीको निकारागुवे पराग्वे पीरू (दक्षिणी अमरिका में)।

उपर्युक्त वर्गीकरण के अनुसार संसार का ७०% जनसंख्या अल्प विकसित राष्ट्रों की नागरिक है जिसे संसार की कुल आय का २०% भाग प्राप्त होता है जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में संसार की कुल जनसंख्या के ६% भाग को संसार की कुल आय का ३८% भाग प्राप्त है तथा यूरोप में संसार की कुल जनसंख्या के २२% भाग को संसार की कुल आय का ३६% भाग उपलब्ध है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रतिवेदन में अल्प विकसित राष्ट्र को इस प्रकार परिभाषित किया गया—"एक अल्प विकसित अर्थ व्यवस्था की विशेषता यह है कि इसमें उपयोग न की गयी अथवा अल्प उपयोग की गयी जन शक्ति तथा अशोषित प्राकृतिक

1 A country is characterised by mass poverty which is chronic and not the result of some temporary misfortune and by obsolete methods of production and social organisation which means that the poverty is not entirely due to poor natural resources and hence could be presumably be lessened by methods already proved in other countries

(Eugene Staley *Future of Under developed Countries*)

अल्प विकसित राष्ट्रों की परिस्थितियों में इतनी अधिक विभिन्नता है कि उनके समान लक्षण निर्धारित करना बहुत कठिन होता है। इन विभिन्न परिस्थितियों में कुछ समानताएं हैं जिनके आधार पर अल्प विकसित राष्ट्रों की विशेषताओं को निम्न प्रकार वर्गीकृत कर सकते हैं—

(१) सामान्य आर्थिक परिस्थितियां
(२) कृषि की प्रधानता एवं कृषि की दयनीय स्थिति
(३) जनसंख्या सम्बन्धी परिस्थितियाँ
(४) प्राकृतिक साधनों की न्यूनता एवं उनका आंशिक उपयोग
(५) मानवीय शक्ति का अकुशल एवं पिछड़ा होना,
(६) पूंजी की न्यूनता
(७) विदेशी व्यापार की प्रधानता।

(१) सामान्य आर्थिक परिस्थितियां

सामान्य आर्थिक परिस्थितियों के अन्तर्गत वे सब परिस्थितियां सम्मिलित रहती हैं जो सामान्य रूप से सभी अल्प विकसित राष्ट्रों में विद्यमान होती हैं और जिनके द्वारा आर्थिक विकास में बाधाएं उपस्थित होती हैं। इस वर्ग में निम्नलिखित लक्षण निहित रहते हैं—

(अ) प्रति व्यक्ति आय का कम होना—अल्प विकसित राष्ट्रों में निर्धनता व्यापक रूप से फैली रहती है जिसका प्रमुख कारण कम राष्ट्रीय उत्पादन एवं आय का विषम वितरण होते हैं। इन राष्ट्रों की अधिकतर जनसंख्या इतनी निर्धन होती है कि वह अपनी अनिवार्यताओं की पूर्ति नहीं कर पाती है जिसके परिणामस्वरूप बचत एवं विनियोजन की दर भी न्यून रहती है। जो वर्ग अधिक आय का भाग पाता है उसमें भूमिधारी (Landholders) होते हैं जो अपनी बचत का विनियोजन उद्योग एवं वाणिज्य में नहीं करते हैं। विश्व बैंक द्वारा प्रकाशित विश्व बैंक एटलस के तीसरे संस्करण में १६२ राष्ट्रों की प्रति व्यक्ति आय एवं जनसंख्या का ब्यौरा दिया गया है। इस प्रकाशन के आधार पर प्रति व्यक्ति आय के अनुसार विभिन्न राष्ट्रों को चार वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। प्रति व्यक्ति सकल उत्पादन के आंकड़े सन् १९६६ का डालर वर्ष के हैं और जनसंख्या सम्बन्धी आंकड़े मध्य सन् १९६८ के हैं।

(i) **७०० डालर और उससे अधिक प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय उत्पादन वाले राष्ट्र**—इसमें संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रति व्यक्ति उत्पादन सबसे अधिक अर्थात् ३५२० डालर है। इसके बाद कुवैट (Kuwait) ३४१० वर्जिन द्वीपसमूह (संयुक्त राज्य अमेरिका) २३२०, स्वीडन २२७० स्विटजरलैण्ड २२५० कनाडा २२४० न्यूजीलैण्ड १९३० लक्जमबर्ग १९२०, आस्ट्रेलिया १८४० डेनमार्क १८३० फ्रांस १७३० नार्वे १७१० जर्मनी (गणतन्त्र संघ) १७०० बेल्जियम १६३० ब्रिटेन १६२० नीदरलैण्ड १४२० पूर्वी जर्मनी १२२०, इजराइल ११६० आस्ट्रिया ११५० इटली १०३० चेकोस्लोवाकिया

१०१०, रूस ८६०, जापान ८६०, आयरलण्ड ८५०, वनज्युला ८५०, हगरी ८००, अर्जेटाइना ७८० तथा पोलण्ड ७३० डालर प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय सकल उत्पादन वाले देश हैं।

(ii) ३०० डालर से ७०० डालर वाले राष्ट—साइप्रस ६६०, ग्रीस ६६०, रूमानिया ६५०, स्पन ६४०, बल्गारिया ६२०, फ्रेन्च सामालीलण्ड ५७०, सिंगापुर ५७०, यूरुग्व ५७० हागकाग ५६०, दक्षिणी अफ्रीका ५५०, चिली ५१०, युगास्लाविया ५१०, फ्रेंच गिनी ५००, पनामा ५००, मक्सिको ४७० जमैका ४६०, काम्टारिका ४००, पुर्तगाल ३८०, क्यूबा ३२०, ग्वाटमाला ३२०, पेरू ३२०, अलबानिया ३०० डालर प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय उत्पादन वाले राष्ट्र हैं।

(iii) कम आय वाले देश अर्थात १०० डालर से ३०० डालर वाले राष्ट्र—स्वाजीलण्ड २६०, मलयशिया २८०, कोलम्बिया २८०, टर्की २८०, इराक २७० ईरान २५०, सौदी अरेबिया २४०, ब्राजील २४०, घाना २३०, गणतन्त्र चीन २३०, अल्जीरिया २२०, आइवरी कोस्ट २२०, जोडन २२०, दक्षिणा रोडेशिया २१० मोरिशस २१०, ट्यूनीशिया २००, पराग्वे २००, सीरिया १८०, मोराको १८०, सयुक्त अरब गणराज्य १६०, फिलीपाइन्स १६०, कोरिया गणतन्त्र १५०, सीलोन १५०, थाइलण्ड १३०, कम्बोडिया १२०, सूडान १००, युगण्डा १००, इण्डोनेशिया १००, आदि डालर प्रति व्यक्ति सकल उत्पादन वाले राष्ट्र इस वर्ग में सम्मिलित हैं।

(iv) अत्यन्त न्यून आय वाले राष्ट्र अर्थात १०० डालर से कम प्रति व्यक्ति आय वाले राष्ट्र—कीनिया ६०, भारत ६०, पाकिस्तान ६०, नाइजीरिया ८०, तन्जानिया ८०, गिनी ८० अफगानिस्तान ७०, नेपाल ७० इथोपिया ६० माली ६०, बर्मा ६०, बरुन्डी ५०, सामालिया ५०, रुआन्डा ४० डालर प्रति व्यक्ति आय वाले राष्ट्र इस समूह में हैं।

उपर्युक्त आकडो से ज्ञात होता है कि ससार की ½ जनसख्या ऐसे राष्ट्रों म रहती है जिसकी प्रति व्यक्ति आय २०० से ३०० डालर तथा दूसरी ½ जनसख्या ५० डालर से १०० डालर प्रति व्यक्ति आय वाले राष्ट्रो की निवासी है। योरोप के लगभग ६०% राष्ट्र धनी एव सम्पन्न हैं और उनकी प्रति व्यक्ति आय ७०० डालर से अधिक है। ससार में ४८ देश ऐसे हैं जिनकी जनसख्या एक करोड़ से अधिक है। सबसे अधिक जनसख्या वाले पहले छह राष्ट्रों—चीन, भारत, रूस, सयुक्तराज्य अमेरिका, पाकिस्तान तथा इण्डोनेशिया—मे ससार की लगभग आधी जनसख्या निवास करती है परन्तु इन छह राष्ट्रो में से केवल दो अर्थात सयुक्त राज्य अमेरिका एव रूस मे १०० डालर से अधिक प्रति व्यक्ति आय है। सयुक्त राज्य अमेरिका में प्रति व्यक्ति आय भारत की प्रति व्यक्ति आय की चालीस गुनी है।

विश्व बक के इस अध्ययन म १५४ राष्ट्रो की पूर्ण जानकारी प्राप्त हुई जिनमे से ३२ राष्ट्रों की प्रति व्यक्ति सकल उत्पादन १०० डालर से कम, ५२ राष्ट्रो

मे प्रति व्यक्ति सकल उत्पादन १०० से ३०० डालर और २८ राष्ट्रों का प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पादन १००० डालर से अधिक था। ३०० डालर प्रति व्यक्ति आय से कम आय वाले सभी राष्ट्र अल्प अल्प विकसित वर्ग म रखे जा सकते हैं।

(आ) अधिक जनसख्या कृषि मे लगी हुई—अल्प विकसित राष्ट्र प्राय कृषि प्रधान है और इनकी ७०% से ६०% जनसख्या कृषि व्यवसाय म लगी हुई है। उदाहरणार्थ सन् १६५४ म भारत म ८१% कालम्बिया ७५%, इण्डोनेशिया म सन् १६५२ म ६६% मिस्र म सन् १६५४ मे ६५% फिलीपाइन्स म सन् १६५५ म ६६% जनसख्या कृषि व्यवसाय म लगी हुई थी जबकि विकसित राष्ट्रों अर्थात सयुक्त राज्य अमेरिका म सन् १६५५ म १२% कनाडा मे १६% ब्रिटेन में ५% इटली ४०% तथा न्यूजीलण्ड मे सन् १६५२ म १८% जनसख्या ही कृषिक्षेत्र म लगी हुई थी। अल्प विकसित राष्ट्रों म जनसख्या का आधिक्य इतना अधिक है कि उसम से कुछ को यदि कृषिक्षेत्र से हटा लिया जाय तो भी इस क्षेत्र के उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(इ) रोजगार की शोचनीय स्थिति—इन राष्ट्रों म अदृश्य बेरोजगार (Disguised Unemployment) व्यापक रूप से विद्यमान है। गैर कृषिक्षेत्रों म रोजगार के साधन बहुत कम होते हैं और कृषि वन एव मत्स्य के क्षेत्रों म बची हुई श्रमिक शक्ति को विवश होकर लगे रहना पडता है। दूसरे शब्दों म यह भी कह सकते हैं कि अल्प विकसित राष्ट्रों म निर्माण यातायात एव वाणिज्य की क्रियाओं म कम जनसख्या को रोजगार प्राप्त होता है। बर्मा म सन् १६३१ म निर्माण क्षेत्र म १३ ०% मिस्र म सन् १६४७ म १३ ७% ब्राजील म सन् १६५० म १३ ७% सीलोन म सन् १६४६ म १२ ७% और भारत म सन् १६५१ म १० ७% (निर्माण एव यातायात म) निर्माण वाली (Manufacturing) जनसख्या रोजगार प्राप्त किए हुए थी जबकि विकसित राष्ट्रों जैसे सयुक्त राज्य अमरिका म सन् १६५० म ३५ ७% ब्रिटेन म सन् १६५१ म ४५ ८% आस्ट्रेलिया म सन् १६४७ म ३५ ८% कनाडा म सन् १६५१ म ३४%, फ्रास मे १६५१ म ४१ ४% (यातायातसहित) तथा स्विटजरलण्ड म सन् १६४१ म ४४ ८% जनसख्या निर्माण क्षेत्र म लगी हुई था।

(ई) पौष्टिक भोजन की कमी—व्यापक निर्धनता के कारण अल्प विकसित राष्ट्रों के नागरिकों को अपनी आय का अधिक भाग खाद्य-पदार्थों एव अन्य अनिवार्य खाद्यों पर व्यय करना पडता है। स्वीडन इजराइल एव नार्वे म पारिवारिक व्यय का लगभग ४०% खाद्यान्न पर व्यय करना पडता है जबकि यह प्रतिशत भारत चीन एव पाकिस्तान म ६०% से भी अधिक है। अल्प विकसित राष्ट्रों म पौष्टिक भोजन भी जनसाधारण को उपलब्ध नहीं होता है। विकसित राष्ट्रों म प्रति दिन प्रति व्यक्ति ३००० से अधिक कलरी उपभोग होता है जबकि अल्प विकसित राष्ट्रों म २००० से भी कम कलरी उपभोग प्रति व्यक्ति प्रति दिन किया जाता है। ब्रिटेन आस्ट्रेलिया

तालिका सं० ४—विकासशील राष्ट्रों का विदेशी व्यापार, १९६० १९६७[1]
(अमेरिकी बिलियन डालर में)

वर्ष	निर्यात	आयात	व्यापार-शेष
१९६०	२९ ०	३२ ९	—३ ९
१९६१	२९ ३	३४ ४	—५ १
१९६२	३१ ०	३५ ५	—४'५
१९६३	३३ ८	३७ २	—३ ४
१९६४	३७ १	४१ ०	—३ ९
१९६५	३९ ३	४४ २	—४ ९
१९६६	४२ ४	४८ ३	—५ ९
१९६७	४३ ८	४९ ८	—६ ०

सम्भव नहीं होता। इन देशों में निर्यात प्रायः कच्चे माल का और आयात उपभोक्ता वस्तुओं एवं यन्त्रों का होता है। छोटे छोटे अल्प विकसित राष्ट्रों जैसे मलयेशिया, बर्मा सीलोन आदि में राष्ट्रीय उत्पादन का महत्वपूर्ण भाग निर्यात कर दिया जाता है। संसार की वर्तमान विदेशी व्यापार की प्रवृत्तियों के अनुसार कच्चा माल निर्यात करने वाले देशों के निर्यात में कमी होती जा रही है और विकसित राष्ट्रों से अल्प विकसित राष्ट्रों को ऋण प्राप्त करने की आवश्यकता पड़ने लगी है क्योंकि यह राष्ट्र उपभोग एवं विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति पर्याप्त आयात किये बिना नहीं कर सकते हैं।

(ऐ) तान्त्रिक ज्ञान की कमी—अल्प विकसित राष्ट्रों का यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण लक्षण है। म य-पूर्व में कृषि का उन्हीं विधियों का प्रयोग किया जाता है जो आज से एक सहस्र वर्ष पूर्व प्रयोग की जाती थी। तान्त्रिक ज्ञान (Technical Knowledge) की कमी की समस्या इन राष्ट्रों के विकास पथ पर एक गम्भीर बाधा है। अशिक्षा भी इन राष्ट्रों की प्रमुख सम्पत्ति है। इन राष्ट्रों का शिक्षा स्तर आर्थिक विकास में किसी प्रकार भी सहायक सिद्ध नहीं होता। तान्त्रिक प्रगति एवं कृषि की आधुनिक सामग्री व विधियों में प्रशिक्षण तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों के ज्ञान की अत्यन्त कमी होती है।

(ओ) यान्त्रिक शक्ति की न्यूनता—किसी भी राष्ट्र के विकास स्तर की परीक्षा उस राष्ट्र के जन साधारण को यान्त्रिक शक्ति (Mechanical Energy) की उपलब्धि से की जा सकती है। सन् १९३९ के अध्ययनानुसार अल्प विकसित राष्ट्रों जिनमें प्रति व्यक्ति आय १०० डालर से भी कम थी में १ २ अश्व शक्ति प्रति दिन प्रति व्यक्ति यान्त्रिक शक्ति उपलब्ध थी। भारत में यह शक्ति १ ० अश्व-शक्ति प्रति व्यक्ति प्रति दिन

1 IMF International Financial Statistics June 1968

थी। परिपक्व एवं उन्नत अर्थ व्यवस्थाओं में यह संख्या २६ ६ अश्व शक्ति प्रति दिन प्रति व्यक्ति अर्थात् अल्प विकसित राष्ट्रों की अपेक्षा २० गुनी थी। अमेरिका में यह मात्रा ३७ ६ अश्व शक्ति प्रति व्यक्ति प्रति दिन थी। यान्त्रिक शक्ति तथा औद्योगीकरण एक दूसरे से प्रत्यक्षरूपेण सम्बद्ध हैं। अल्प विकसित राष्ट्रों में यान्त्रिक शक्ति का न्यूनता उनके औद्योगीकरण का प्रमुख कारण है।

(औ) आधारभूत सुविधाओं की कमी—अल्प विकसित राष्ट्रों में आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धि विकसित राष्ट्रों की तुलना में कम होता है जिससे मानव कुशल उत्पादक नहीं बन सकता और प्राकृतिक साधनों का भी पूर्णतम उपयोग नहीं किया जा सकता। निम्नलिखित तालिका में आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धि की तुलना की गयी है।

तालिका सं० ५—आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धि[1]

	विकसित अर्थ व्यवस्थाएँ	अल्प विकसित अर्थ-व्यवस्थाएँ
(१) शक्ति का उपयोग (प्रति व्यक्ति प्रति दिन (अश्व शक्ति घण्टों में)	२६ ६	१ २
(२) यान्त्रिक माल ढोने की मात्रा (टन मील प्रति घण्टा)	१५१७ ०	५८ ०
(३) सड़क एवं रेलों की लम्बाई (प्रति १००० वर्ग मील)	४० ०	१८ ०
(४) मोटर-गाड़ियों का रजिस्ट्रेशन (प्रति १००० व्यक्तियों पर)	१११ ०	१ ०
(५) टेलीफोन का उपयोग (प्रति १००० व्यक्तियों पर)	६० ०	२ ०
(६) चिकित्सक (प्रति १००० व्यक्तियों पर)	१ ०६	० १७
(७) प्राथमिक स्कूलों के अध्यापक (प्रति १००० व्यक्तियों पर)	३ ६८	१ ३६
(८) निरक्षरता का प्रतिशत (१० वर्ष की आयु के ऊपर)	५% से नीचे	७८ ०%

आर्थिक विकास का मुख्य उद्देश्य श्रमिक तथा दलित-वर्ग के जीवन में सुधार करना है। जब तक श्रमिक तथा कृषक के जीवन में सुधार तथा आमूल परिवर्तन

1 Department of State Washington D C Point Four July (1964), pp 93-102 (Requoted from Employment and Capital Formation by V V Bhatt)

(२) कृषि की प्रधानता एवं कृषि की दयनीय स्थिति

अल्प विकसित राष्ट्रों में कृषि एक प्रधान व्यवसाय है जिसमें देश की ७०% से ६०% जनसंख्या लगी रहती है जो राष्ट्रीय उत्पादन का ४०% से ५०% भाग उत्पादन करता है। निम्नलिखित तालिका इस बात की पुष्टि करती है—

तालिका सं० ६—विभिन्न राष्ट्रों में सकल राष्ट्रीय उत्पादन के साधन[1]

देश	वर्ष	कृषि वन एवं मत्स्य व्यवसायों से उपलब्ध उत्पादन का सकल राष्ट्रीय उत्पादन से प्रतिशत	निर्माण व्यवसाय से उपलब्ध उत्पादन का सकल राष्ट्रीय उत्पादन से प्रतिशत
संयुक्त राज्य अमेरिका	१९५५	४ ३	२८ ६
कनाडा	१९५५	६ ६	२८ ६
न्यूजीलण्ड	१९५२	२३ ६	२१ २
इटली	१९५५	२३ ६	३२ ६
ब्रिटेन	१९५५	४ ६	३८ ८
ब्राजील	१९५५	३१ ५	१६ ४
भारत	१९५४	४८ ७	१६ ८
इण्डोनेशिया	१९५२	५६ ४	८ २
जापान	१९५५	२१ ८	२० ३
मिस्र (Egypt)	१९५४	३५ ८	१० ७
फिलीपाइन्स	१९५५	४२ ०	१८ ६

कृषिक्षेत्र का राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में इतना अधिक महत्व होते हुए भी यह क्षेत्र अत्यन्त शोचनीय स्थिति में रहता है। कृषिक्षेत्र में निम्नलिखित लक्षण उपस्थित रहते हैं—

(अ) कृषिक्षेत्र में पूँजी की हीनता रहती है और जो कुछ पूँजी इस क्षेत्र में विनियोजित रहती है उसका भी कुशल उपयोग नहीं हो पाता क्योंकि अल्प विकसित राष्ट्रों में कृषि योग्य भूमि अत्यन्त छोटे छोटे टुकड़ों में विभक्त है। संसार में कुल भूमि ३५ ५ बिलियन एकड़ है जिसमें से २ ६ बिलियन एकड़ अर्थात ७% भूमि कृषि योग्य है। अल्प आय वाले राष्ट्रों में जनसंख्या अधिक और प्रति व्यक्ति उपलब्ध कृषि योग्य भूमि बहुत कम है। एशिया में प्रति व्यक्ति कृषि योग्य भूमि ० ५२ एकड़ अनुमानित है जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रति व्यक्ति कृषि योग्य भूमि इसकी छः गुनी अर्थात ३ १० एकड़ है।

---

1 United Nations, Statistical Year Book on Income and Employment 1957

(आ) कृषिक्षेत्र में उपयोग की जाने वाली उत्पादन-तान्त्रिकताएँ अत्यन्त अकुशल, परम्परागत एवं सरल होती हैं और औजारों एवं यन्त्रों का उपयोग सीमित मात्रा में किया जाता है। अधिकतर कृषि-कार्य हाथ से अथवा परम्परागत औजारों से किया जाता है।

(इ) यद्यपि कृषिक्षेत्र में कुछ बड़े जमींदार भी होते हैं परन्तु आधुनिक कृषि-तान्त्रिकताओं का उपयोग यातायात की कठिनाई तथा स्थानीय बाजारों में विस्तृत माँग की अनुपस्थिति के कारण सम्भव नहीं होता है। कुछ अल्प विकसित राष्ट्रों में आधुनिक कृषि विधियों का उपयोग केवल निर्यात के लिए कृषि पदार्थ उत्पादित करने के लिए किया जाता है। यह आधुनिक कृषिक्षेत्र भी प्रायः विदेशियों के नियन्त्रण एवं अधिकार में है।

(ई) कृषकों की सम्पत्तियाँ एवं आय की तुलना में उन पर ऋण अत्यधिक होता है जिसके ब्याज आदि के शोधन में कृषकों को अपनी आय का बड़ा भाग व्यय कर देना पड़ता है। कृषिक्षेत्र में ऋणग्रस्तता अल्प विकसित राष्ट्रों में स्थायी रूप ग्रहण कर लेती है जो एक पीढ़ी से दूसरी को हस्तान्तरित होती है और जिसके कारण कृषक के पास उत्पादक पूँजी की सदैव कमी रहती है।

(उ) परम्परागत एवं अकुशल उत्पादन की तान्त्रिकताओं के उपयोग के परिणामस्वरूप कृषक का उत्पादन इतना अपर्याप्त होता है कि उसके पास बाजार में बेचने के लिए अतिरेक बहुत कम बचता है जिसके फलस्वरूप खाद्यान्नों की कमी रहती है जिसकी पूर्ति आयात द्वारा करनी पड़ती है।

(ऊ) भूमि के छोटे छोटे बिखरे हुए टुकड़े होने के कारण कृषि जनसंख्या में भूमि की माँग अत्यधिक होती है। भूमि निरन्तर छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त होती जाती है क्योंकि उत्तराधिकार अधिनियम के द्वारा पिता की मृत्यु पर सभी पुत्रों को भूमि में भाग पाने का अधिकार हो जाता है और अल्प-व्यवसायों में रोजगार की सुविधा न होने के कारण भूमि का भाग अधिकार में रखने में सभी की रुचि रहती है।

(ए) अल्प विकसित राष्ट्रों में भूमि प्रबन्धक प्रणाली (Land Tenure System) में बहुत अधिक विभिन्नता होती है। इनमें से अधिकतर प्रणालियाँ कृषि क्षेत्र की उत्पादन-कुशलता को दो प्रकार से कम करती हैं—प्रथम, इनके द्वारा भूमि के विभाजन एवं उप विभाजन को प्रोत्साहन मिलता है जिससे जोत की बहुत-सी असार्थिक इकाइयों की स्थापना होती है और द्वितीय, भूमि प्रबन्धक प्रणाली के अन्तर्गत कृषक को भूमि पर स्थायी अधिकार एवं मिलकियत प्राप्त न होने के कारण भूमि में उत्पादक सुधार करने के लिए प्रोत्साहन नहीं रहता है।

(ऐ) अल्प विकसित राष्ट्रों में प्रति एकड़ उत्पादन सम्पन्न राष्ट्रों की तुलना में बहुत कम होता है। प्रति व्यक्ति उत्पादन भी कृषिक्षेत्र में अल्प विकसित राष्ट्रों में बहुत कम होता है। सामान्यतः उत्तरी अमेरिका तथा उत्तरी-पश्चिमी योरोप में सुदूर

पूर्व एवं समीपस्थ-पूर्व में तथा लैटिन अमेरिकी राष्ट्रों की तुलना में १० से २० गुना अधिक प्रति व्यक्ति कृषि उत्पादन होता है। उत्तरी अमेरिका में कृषिक्षेत्र में प्रति व्यक्ति औसत उत्पादन लगभग २½ टन प्रति वर्ष होता है जबकि एशिया में यह औसत ½ टन अफ्रीका में ⅓ टन प्रति व्यक्ति है। इस प्रकार कृषि जनसंख्या का जीवन स्तर सम्पन्न राष्ट्रों में बहुत ऊँचा है। अल्प विकसित राष्ट्रों में कृषिक्षेत्र में न्यून उत्पादकता के मुख्य कारण भूमि का श्रमिकों से कम अनुपात, कम उपजाऊ भूमि, भूमि उपयोग के अकुशल तरीके, अकुशल श्रमिक, कम पूँजी का उपयोग, अकुशल उत्पादन-तान्त्रिकताएँ, उत्पादन की तान्त्रिकताओं का अपर्याप्त ज्ञान, कृषि उत्पादन का अकुशल संगठन आदि है। अल्प विकसित राष्ट्रों में प्रति व्यक्ति कृषि उत्पादन में वृद्धि भी औद्योगिक राष्ट्रों की तुलना में कम गति से होती है। सन् १९५७ से १९६७ के काल में प्रति व्यक्ति कृषि उत्पादन का निर्देशांक औद्योगिक राष्ट्रों में सन् १९५७ में ९७ (सन् १९५७ १९५९=१००) से बढ़कर सन् १९६७ में ११३ हो गया अर्थात् १६.५% की वृद्धि हुई। दूसरी ओर विकासशील राष्ट्रों में प्रति व्यक्ति कृषि उत्पादन निर्देशांक सन् १९५७ में ९७ से बढ़कर १०४ हो गया अर्थात् केवल ७.२% की वृद्धि हुई। भारत में यह निर्देशांक सन् १९५७ में ९७ था जो सन् १९६७ में बढ़कर १०४ अर्थात् ७.२% की वृद्धि इस काल में प्रति व्यक्ति कृषि उत्पादन में हुई। इस प्रकार विकासशील राष्ट्र कृषिप्रधान होते हुए अपने कृषि उत्पादन में विकसित औद्योगिक राष्ट्रों की तुलना में कृषि उत्पादन में जन संख्या की वृद्धि के अनुरूप वृद्धि नहीं कर पा रहे हैं।

(३) जनसंख्या-सम्बन्धी परिस्थितियाँ

अल्प विकसित राष्ट्रों में जनसंख्या सम्बन्धी विशेषताएँ निम्न प्रकार है—

(अ) जनसंख्या का अधिक घनत्व—अल्प विकसित राष्ट्रों में जनसंख्या का घनत्व सामान्यत सम्पन्न राष्ट्रों की तुलना में अधिक होता है। एशिया तथा दक्षिण पूर्व के राष्ट्रों में जनसंख्या का घनत्व सर्वाधिक है। एशिया की जनसंख्या का घनत्व अमेरिका तथा रूस की तुलना में पाँच गुना, दक्षिणी अमेरिका की तुलना में आठ गुना तथा प्रशान्त महासागर के टापुओं की तुलना में चौबीस गुना है। एशिया में संसार की लगभग ५३% जनसंख्या रहती है। कुछ ऐसे भी अल्प विकसित राष्ट्र हैं जिनमें जनसंख्या का घनत्व सम्पन्न राष्ट्रों की तुलना में कम होते हुए भी जनसंख्या की समस्या से पीड़ित है क्योंकि इनके अपनी जनसंख्या का निर्वाह करने के लिए पर्याप्त प्राकृतिक साधन नहीं है। इस प्रकार यह कहना अधिक उचित होगा कि अल्प विकसित राष्ट्रों में जनसंख्या का घनत्व प्राकृतिक साधनों की उपलब्धि के सन्दर्भ में प्राय अधिक है जिसके फलस्वरूप निम्न जीवन स्तर एवं दरिद्रता व्यापक है।

(आ) जनसंख्या वृद्धि की दर—अल्प विकसित राष्ट्रों में जनसंख्या की वृद्धि की दर में भी अत्यधिक विभिन्नता है जिसके फलस्वरूप यह कहना उचित नहीं है कि इन राष्ट्रों में जनसंख्या की वृद्धि अधिक सम्पन्न राष्ट्रों की तुलना में अधिक है परन्तु

अधिकतर निर्धन राष्ट्रों में जनसंख्या की वृद्धि की दर अधिक है। जनसंख्या की वृद्धि की दर ऊँची होने के कारण ऊँची जन्म-दर एवं ऊँची मृत्यु-दर घटती हुई जन्म दर एवं घटती हुई मृत्यु-दर तथा जन्म-दर में कमी कम परन्तु मृत्यु दर में कमी अधिक है। विकासोन्मुख राष्ट्रों में चिकित्सा एवं स्वास्थ्य की सुविधाओं में वृद्धि होने के कारण मृत्यु दर घटने लगती है जबकि जन्म दर परिवार नियोजन आदि कार्यक्रमों के फलस्वरूप बहुत समय के बाद कम होती है। विभिन्न राष्ट्रों की जनसंख्या की औसत वार्षिक वृद्धि की दर विश्व-बैंक के अनुमानों के अनुसार सन् १९६० से १९६६ के काल में निम्न प्रकार थी—

तालिका नं० ७—विभिन्न राष्ट्रों में जनसंख्या वृद्धि-दर[1]

देश	जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि की औसत %दर—१९६० से १९६६
(१) विकासशील राष्ट्र	२.५
अफ्रीका	२.४
दक्षिणी एशिया	२.३
पूर्वी एशिया	२.८
दक्षिणी योरोप	१.८
लैटिन अमेरिका	२.६
मध्य-पूर्व	२.६
(२) औद्योगिक राष्ट्र	१.२
उत्तरी अमेरिका	१.४
पश्चिमी योरोप	१.०
अन्य	१.२

इस तालिका से ज्ञात होता है कि अल्प विकसित अथवा विकासशील राष्ट्रों में जनसंख्या की वृद्धि की औसत दर औद्योगिक राष्ट्रों की तुलना में दुगने के बराबर है। जनसंख्या की तीव्र गति में वृद्धि विकास के प्रयासों में बाधक होती है क्योंकि बढ़ती हुई संख्या में वर्तमान जीवन स्तर बनाए रखना ही कठिन हो जाता है।

(ड) अल्प विकसित राष्ट्रों और विकसित राष्ट्रों की जनसंख्या में गुणात्मक भेद भी होता है। अल्प विकसित राष्ट्रों में जनसंख्या का अधिक भाग अल्प आयु समूह (Younger Age Group) में होता है और सम्भावित जीवनकाल भी सम्पन्न राष्ट्रों की तुलना में कम होता है। एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका में १५ वर्ष से कम आयु के लोग कुल जनसंख्या के ४०% थे जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका एवं ब्रिटेन में यह प्रतिशत क्रमशः २५ एवं २३ था। भारत में सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार १५ वर्ष से कम आयु के वर्ग में कुल जनसंख्या के ४१% लोग सम्मिलित

1. World Bank Annual Report 1968

थे। इसी प्रकार सम्भावित जीवनकाल संयुक्त राज्य अमेरिका में ६०.८ वर्ष (सन् १९५५) कनाडा में ६८.५ वर्ष (सन् १९५०-५२) ब्रिटेन में ७०.३ वर्ष (सन् १९५५) आस्ट्रेलिया में ६८.४ वर्ष (सन् १९४६-४८), स्वीडन में ७२.० वर्ष (सन् १९५१-५५) था जबकि एशिया, मध्य पूर्व तथा दक्षिण अमेरिका में सम्भावित जीवनकाल केवल ४० वर्ष है। भारत में सम्भावित जीवनकाल सन् १९४१-५० में ३२ वर्ष था। अल्प विकसित राष्ट्रों में अल्प आयु मृत्यु दर (Younger Age Group Mortality Rate) भी ऊँची रहती है जिसके फलस्वरूप श्रम-शक्ति का उत्पादक काल सम्पन्न राष्ट्रों की तुलना में कम रहता है और जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग अल्प आयु में मृत्यु का शिकार होने के कारण राष्ट्र के उत्पादन में पूर्ण योगदान नहीं दे पाता है। अल्प आयु में मृत्यु दर अधिक होने के कारण अल्प विकसित राष्ट्रों में परिवारों में आश्रितों (Dependents) की संख्या भी अधिक होती है क्योंकि अधिकतर बालक उत्पादन करने योग्य आयु तक नहीं पहुँच पाते हैं। परिवारों पर आश्रितों की संख्या अधिक होने के कारण उनके जनशक्ति की क्रियाशीलता कम रहती है और स्वतः रोजगार प्राप्त (self employed) का अपने व्यवसायों के लिए पर्याप्त पूँजी उपलब्ध नहीं होता है। जनसंख्या में बच्चों का अधिक अनुपात होने का परिणाम होता है— उत्पादक श्रम शक्ति का कम होना और उत्पादन करने वाली जनशक्ति का अधिक होना। उत्पादन न करने वाली जनशक्ति को उपभोग की समस्त सामग्रियाँ आवश्यक होती हैं जिसके फलस्वरूप समाज में उत्पादन कम होता है एवं उपभोग की अधिक माँग होती है जो निधनता एवं दरिद्रता को जन्म देता है।

श्रम शक्ति का कुशल उत्पादक कार्यकाल १४ वर्ष से ६० वर्ष तक समझा जाता है परन्तु अल्प विकसित राष्ट्रों में इस आयु-वर्ग में जनसंख्या कम रहती है क्योंकि अल्पआयु मृत्युदर अधिक एवं सम्भावित जीवनकाल कम होता है। इस प्रकार अल्प विकसित राष्ट्रों में कार्यकुशल श्रमिक शक्ति कम रहती है।

(४) प्राकृतिक साधनों की न्यूनता

यह कहना तो उचित नहीं है कि अल्प विकसित राष्ट्रों में प्राकृतिक साधनों की न्यूनता होती है क्योंकि प्राकृतिक साधनों की उपलब्धि एवं उपयोग देश के तान्त्रिक ज्ञान के स्तर, माँग की परिस्थितियों तथा नवीन खोजों पर निर्भर रहता है। पुनः उत्पादित न होने वाले प्रकृति साधनों (Irreproducible Natural Sources) की हानि की पूर्ति तान्त्रिकताओं में परिवर्तन करके (जैसे कोयले की कमी की पूर्ति विद्युत एवं एटोमिक शक्ति से की जा सकती है) तथा नवीन साधनों की खोज करके की जा सकती है। इस प्रकार अल्प विकसित राष्ट्र इसलिए निर्धन नहीं हैं कि उनके पास प्राकृतिक साधनों की कमी है बल्कि वह उपयोग न हुए एवं अज्ञात उपयोग किए जाने वाले साधनों का तान्त्रिकताओं तथा सामाजिक एवं आर्थिक संगठन में सुधार करके पूर्णतम उपयोग करने में असमर्थ रहे हैं। प्रकृति ने वास्तव में किसी भी राष्ट्र को

इन राष्ट्रों में निर्माणी-व्यवसायों (Manufacturing Activities) में श्रम की उत्पादकता संयुक्त राज्य अमेरिका की श्रम उत्पादकता की लगभग की २०% है अर्थात् एक निर्धन राष्ट्र में जो कार्य ४ से १० श्रमिक करते हैं, वही कार्य अमेरिका में एक श्रमिक कर सकता है।

श्रम की कम कार्य कुशलता के प्रमुख कारण पौष्टिक भोजन की अनुपलब्धि स्वास्थ्य का निम्न स्तर, अशिक्षा, प्रशिक्षण की कमी, व्यवसायिक गतिशीलता में बाधाएँ तथा शारीरिक कार्य को हीन समझना आदि है। अल्प विकसित राष्ट्रों में चिकित्सा एवं अस्पताल की सुविधाओं की पर्याप्त व्यवस्था न होने के कारण श्रमिकों के स्वास्थ्य में कार्यकुशलता बनाये रखने में सहायता नहीं मिलती है। जाति प्रथा के फलस्वरूप व्यवसायिक गतिशीलता में बाधाएँ पड़ती है जिससे एक प्रकार के व्यवसाय को छोड़कर दूसरे प्रकार के व्यवसाय में जाना सम्भव नहीं होता। इस परिस्थिति के परिणामस्वरूप श्रम की व्यवसाय चयन की स्वतन्त्रता अत्यन्त सीमित रहती है। श्रमिकों पर आय प्रोत्साहन का भी प्रभाव नहीं पड़ता है क्योंकि श्रमिक परम्परागत पुरस्कार एवं उपभोग को ही अधिक पसन्द करता है। श्रमिकों द्वारा सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक घटकों को अपने आर्थिक लाभों से अधिक महत्व प्रदान किया जाता है जिससे श्रमिकों की उपलब्धि एवं अधिक कार्य करने की इच्छा प्रभावित होती है।

(आ) आर्थिक अज्ञान—अल्प विकसित राष्ट्रों में जन समाज को यह भी ज्ञान नहीं होता है कि उनके देश में कौन कौन से प्राकृतिक साधन उपलब्ध हैं और उनको किन किन वैकल्पिक उपयोगों में लाया जा सकता है। उनको आधुनिक तान्त्रिकताओं एवं विपणि की परिस्थितियों का भी ज्ञान नहीं होता है। इन राष्ट्रों के नागरिकों को मानवीय सम्बन्धों का भी अत्यन्त सीमित ज्ञान होता है। आर्थिक विकास के लिए जितना महत्व तान्त्रिक ज्ञान एवं पूँजी निर्माण का है उतना ही महत्व बड़े व्यवसायिक संगठनों के प्रशासन इन व्यवसायों में कार्य करने वाले श्रमिकों के मानवीय सम्बन्धों तथा आर्थिक प्रगति एवं विवेक के अनुरूप आर्थिक एवं सामाजिक संस्थाओं की स्थापना का भी होता है। इस प्रकार समाज के विभिन्न वर्गों के सामाजिक सम्बन्धों का आर्थिक प्रगति पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है और इनसे सम्बन्धित अज्ञान विकास के लिए बाधक होता है।

(इ) सामाजिक ढाँचा (Social Structure)—अल्प विकसित राष्ट्रों में सामाजिक सम्बन्धों का ढाँचा पतुर्क एवं परम्परागत होता है और सामाजिक प्रतिबन्धों का प्रभुत्व रहता है। व्यक्ति के स्थान पर परिवार, वर्ग, जाति आदि को समाज की विशेष इकाई का दर्जा दिया जाता है अर्थात् सामाजिक नियम एवं प्रतिबन्ध इस प्रकार के होते है कि इन सामूहिक इकाइयों की सत्ता बनी रहे चाहे व्यक्ति की प्रारम्भिकता, स्वतन्त्रता एवं आत्म विश्वास का भले ही त्याग करना पड़े। सामाजिक संगठन में जातिहीनता रहती है जो समाज को विभिन्न वर्गों में इस प्रकार विभक्त कर देती है कि एक वर्ग से दूसरे वर्ग में व्यक्ति को जाना असम्भव हो जाता है। व्यक्ति का समाज में स्थान उसकी

योग्यता, कार्य कुशलता एवं प्रारम्भिकता के आधार पर निर्धारित नहीं होता है बल्कि उसके पूर्वजों की सामाजिक स्थिति पर आधारित रहता है। व्यक्ति का मूल्यांकन उसकी कार्य करने की योग्यता पर नहीं किया जाता है बल्कि उसकी आयु, लिंग, वर्ग, जाति एवं सम्बन्धियों के आधार पर किया जाता है। स्त्रियों को समाज में पुरुष के समान अधिकार प्राप्त नहीं होते हैं। स्त्री को पुरुष के अधीन समझा जाता है और उसका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं होता। उसे उत्पादन के घटक के रूप में पूर्ण योगदान देने के अवसर प्रदान नहीं किए जाते हैं। कुछ राष्ट्रों में तो स्त्री को पुरुष के मनोरंजन का प्रसाधन मात्र माना जाता है और उसका क्रय विक्रय अन्य विलासिता की वस्तुओं के समान किया जाता है। यह समस्त सामाजिक परिस्थितियाँ व्यापक अशिक्षा के सन्दर्भ में निरन्तर गम्भीर होती जाती हैं। उच्च शिक्षा समाज के केवल एक छोटे वर्ग का ही अधिकार समझा जाता है। शिक्षित वर्ग कार्यालयों की नौकरी को अधिक महत्व देता है और सरकारी सत्ता का दुरुपयोग करके अशिक्षित एवं पिछड़े जन-समाज का शोषण करता है। यह समस्त सामाजिक दोष आर्थिक निष्क्रियता एवं अज्ञान का स्थान में योगदान देते रहते हैं।

बहुत से अल्प विकसित राष्ट्रों में विनिमय एवं वितरण व्यवस्था के सम्बन्ध में जन-समाज अनभिज्ञ होता है और आर्थिक व्यक्तिवाद (जिसके अन्तर्गत व्यक्ति अपनी आर्थिक सम्पन्नता के लिए प्रयत्नशील रहता है) जो पश्चिमी राष्ट्रों के विकास का मूलभूत कारण था, को अल्प विकसित राष्ट्रों में हीन दृष्टि से देखा जाता है। यहाँ के समाज परम्परागत रीति रिवाजों से बंधे रहते हैं और उनका संगठन गैर-व्यक्तिवादी होता है। धर्म व्यक्तिगत विश्वास न होकर एक सम्प्रदाय के रूप में समझा जाता है। धर्म के द्वारा भौतिक कल्याण को क्षुद्र समझा जाता है और त्याग एवं शारीरिक कष्ट को अधिक कल्याणकारी समझा जाता है। इस प्रकार धर्म भी व्यक्ति के आर्थिक विकास में बाधक होता है क्योंकि यह जन-जीवन के रहन-सहन के स्तर को भी निर्धारित करता है।

(ई) साहसियों की कमी—आर्थिक अज्ञान की व्यापकता के परिणामस्वरूप अल्प विकसित राष्ट्रों में साहसियों की कमी रहती है। ऐसा साहसी-वर्ग जो उत्पादन के अन्य घटकों को एकत्रित करके आर्थिक वस्तुओं (अर्थात् वस्तुएं जिनका विक्रय किया जाता है) का उत्पादन कर सके और जो आर्थिक लाभ प्राप्त करने हेतु सक्रिय बने रहें, की अत्यन्त कमी होती है। इन राष्ट्रों में सामाजिक प्रतिष्ठा अन्य अनार्थिक तरीकों से कम परिश्रम द्वारा प्राप्त करना सम्भव होता है जिससे परिणामस्वरूप जन-समाज में अधिक धनोपार्जन के प्रति अरुचि रहती है।

ऐसा समाज जो रंगभेद एवं जातियों में विभक्त हो तथा ऐसी परम्पराएं एवं अधिनियम जिनके द्वारा जनसंख्या के बड़े भाग की क्रियाओं को प्रतिबन्धित किया जाता हो और सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों को प्रारम्भ करना कठिन होता हो

साहसी वर्ग की उन्नति में बाधक होते हैं। इसके अतिरिक्त निजी सम्पत्ति अधिकार में रखने, प्रसंविदा करने की स्वतन्त्रता तथा सरकारी प्रशासन की उचित व्यवस्था न होने पर भी साहसियों के उत्थान के लिए उपयुक्त वातावरण उत्पन्न नहीं होता है। संकुचित बाजार एवं आर्थिक अज्ञान इस प्रकार साहसियों की उन्नति में बाधक होते हैं। यही कारण है कि अल्प विकसित राष्ट्रों में साहसी के कार्य शासन को उस समय तक अपने हाथ में रखना पड़ता है जब तक साहसियों की उन्नति के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न नहीं हो जाता है।

(उ) सरकारी प्रशासन में स्वार्थी वर्ग का प्रभुत्व—अधिकतर अल्प विकसित राष्ट्रों में सरकारी प्रशासन पर धनी जमींदारों एवं पूंजीपतियों का प्रभुत्व एवं नियन्त्रण होता है जो कृषिक्षेत्र में सुधारों एवं निर्माण क्षेत्र के विस्तार का इसलिए विरोध करता है कि उनके राजनीतिक एवं आर्थिक हितों एवं अधिकारों पर कुठाराघात होने का भय रहता है। यह वर्ग सदैव यथास्थिति बनाए रखने में रुचि रखता है क्योंकि कोई भी विवेकपूर्ण परिवर्तन होने पर उन्हें अपनी स्थिति बनाए रखना कठिन हो सकता है। इस प्रकार यह वर्ग सदैव विकास में बाधाएं प्रस्तुत करता रहता है।

(६) पूंजी की न्यूनता

अल्प विकसित राष्ट्रों में वर्तमान उत्पादक पूंजी तो कम होती ही है परन्तु इसके साथ पूंजी निर्माण में वृद्धि भी अत्यन्त मन्द गति से होती है। निर्धनता की व्यापकता के कारण एक ओर तो आन्तरिक बचत इन राष्ट्रों में कम होती है और दूसरी ओर, जो भी बचत उपलब्ध होती है उसका विनियोजन भी विकास में सहायक क्रियाओं में नहीं किया जाता है। अग्रांकित तालिका में विकसित एवं अविकसित राष्ट्रों की आन्तरिक बचत विनियोजन एवं राष्ट्रीय सकल उत्पादन की वृद्धि का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

इस तालिका से ज्ञात होता है कि अफ्रीकी, एशियाई एवं लटिन अमेरिकी राष्ट्रों में राष्ट्रीय सकल उत्पादन की वृद्धि दर तथा राष्ट्रीय उत्पादन से विनियोजन एवं बचत का प्रतिशत विकसित राष्ट्रों की तुलना में कम है। विकसित राष्ट्रों की एक और विशेषता भी स्पष्ट होती है कि इनमें समस्त आन्तरिक बचत विनियोजित नहीं हो पाती है जबकि विकासकाल राष्ट्रों में आन्तरिक बचत में अन्य साधनों को मिलाकर विनियोजन की गति को बनाए रखना पड़ता है। इन तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि अल्प विकसित राष्ट्रों में पूंजी विनियोजन की वृद्धि की दर कम है और आन्तरिक बचत निर्धनता की व्यापकता के कारण बढ़ायी नहीं जा सकती है।

अल्प विकसित राष्ट्रों में प्रति व्यक्ति वास्तविक आय कम होने के कारण निर्मित वस्तुओं (Manufactured Goods) एवं जनोपयोगी सेवाओं की मांग भी कम रहती है। निर्माण उद्योग एवं जनोपयोगी सेवाओं में अधिक पूंजी विनियोजन की

तालिका सं० ८—६३ चुने हुए विकासशील एवं विकसित राष्ट्रों में विनियोजन एवं बचत[1]

(१९६०-१९६६ का औसत)

क्षेत्र	सकल राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि की औसत वार्षिक दर (%) १९६०-६६	कुल सकल विनियोजन की वृद्धि की औसत वृद्धि-दर (%) १९६०-६६	सकल राष्ट्रीय विनियोजन का सकल राष्ट्रीय उत्पादन से प्रतिशत	बचत का सकल राष्ट्रीय उत्पादन से प्रतिशत
१ विकासशील राष्ट्र	४.८	८.६	१७.४	१२.२
अफ्रीका	४.३	५.७	१०.३	१०.१
दक्षिणी एशिया	४	७.५	१३.८	११.०
पूर्वी एशिया	४.६	६.३	१३.४	१२.०
दक्षिणी यूरोप	७.७	१७.२	२२.८	२१.०
लटिन अमेरिका	४.७	३.७	१८.०	१६.८
मध्य-पूर्व	७.२	५.७	१९.३	१४.४
२ औद्योगिक राष्ट्र	५.१	६.२	२०.६	२१.४
उत्तरी अमेरिका	५.०	६.१	१७.६	१८.७
पश्चिमी यूरोप	४.४	५.२	२२.८	२३.४
अन्य	८.१	६.८	३२.७	३१.७

आवश्यकता होती है और इनकी अनुपस्थिति एवं हीनता के कारण अल्प विकसित राष्ट्रों में पूँजी की न्यूनता रहती है। इन राष्ट्रों में श्रमप्रधान उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों को प्राथमिकता दी जाती है जिनमें भारी पूँजीगत वस्तुओं की तुलना में कम पूँजी की आवश्यकता पड़ती है। आधारभूत उत्पादक वस्तुओं के उद्योग अल्प-विकसित राष्ट्रों में अनुपस्थित ही रहते हैं। इसके अतिरिक्त इन राष्ट्रों में शिक्षा प्रशिक्षण स्वास्थ्य-सुधार एवं शोध कार्य पर पूँजी का बहुत कम विनियोजन किया जाता है जिसके फलस्वरूप मौलिक वातावरण को विकास के उपयुक्त बनाने के लिए बहुत कम पूँजी विनियोजन किया जाता है।

अल्प विकसित राष्ट्रों में कुल पूँजी-विनियोजन कम होने के साथ-साथ प्रति व्यक्ति पूँजी भी विकसित राष्ट्रों की तुलना में कम होती है। सन् १९७६ में प्रति श्रमिक वास्तविक पूँजी विनियोजन एशिया तथा सुदूर पूर्व (जापान को छोड़कर) व संयुक्त राज्य अमेरिका की तुलना में केवल १०% था। प्रति व्यक्ति शक्ति एवं इस्पात-उपभोग की मात्रा से भी अल्प विकसित राष्ट्रों एवं विकसित राष्ट्रों के पूँजी-विनियोजन की तुलना की जा सकती है। अग्रांकित तालिका में अल्प विकसित एवं विकसित राष्ट्रों की प्रति व्यक्ति शक्ति एवं इस्पात उपभोग की तुलना प्रदर्शित की गयी है।

1 World Bank Annual Report, 1968

तालिका सं० ६—विभिन्न राष्ट्रों में प्रति व्यक्ति शक्ति एवं इस्पात का उपभोग १६६५

देश का नाम	प्रति व्यक्ति शक्ति का उपभोग (कोयले के वजन में किलोग्राम)	प्रति व्यक्ति इस्पात का उपभोग (किलोग्राम)
अलजीरिया	३००	२३
ब्राजील	४७	३६
फ्रांस	२६५१	३३१
भारत	१७२	१६
इटली	१७८७	२३५
जापान	१७८३	२६४
मेक्सिको	६७७	६४
मोरोक्को	१५३	१३
पाकिस्तान	६०	८
रूमानिया	२०३५	२०६
स्वीडन	४५०६	६८२
संयुक्त अरब गणराज्य	३०१	२६
ब्रिटेन	५१५१	४२४
संयुक्त राज्य अमेरिका	६७०१	६७६
रूस	‑६११	३७६
यूगोस्लाविया	११६२	१२५

जिन देशों में प्रति व्यक्ति शक्ति एवं इस्पात का उपभोग अधिक है उनमें अधिक पूंजी विनियोजन होना स्वाभाविक है क्योंकि शक्ति एवं इस्पात का उपभोग करने के लिए मूल्यवान भवन, यन्त्रों एवं सामग्रियों की आवश्यकता होती है। एशिया एवं *अफ्रीका में प्रति व्यक्ति शक्ति का उपभोग संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रति व्यक्ति* उपभोग का केवल लगभग $\frac{1}{20}$ है।

अल्प विकसित राष्ट्रों में आय के वितरण में विषमता व्याप्त होती है अर्थात कुछ लोगों की आय अत्यधिक जबकि बहुत बड़ा समुदाय अत्यन्त दरिद्र होता है। आय *का यह विषम वितरण पूंजी निर्माण में अधिक सहायक नहीं होता क्योंकि अल्प* विकसित राष्ट्रों में प्रति व्यक्ति आय सम्पन्न राष्ट्रों की तुलना में अत्यन्त कम होती है जिसके फलस्वरूप केवल अत्यधिक आय वाले वर्ग जो जनसंख्या का लगभग ३ से ५% होता है बचत करने योग्य होता है। बीच की आय वाले लोगों की वास्तविक औसत आय सम्पन्न राष्ट्रों के निम्न आय वाले वर्ग की वास्तविक आय से भी कम होती है *जिससे बचत की मात्रा अधिक होना सम्भव नहीं होता है। दूसरी ओर अत्यधिक आय* वाले वर्ग में जमींदार एवं व्यापारी आते हैं जो अपनी बचत का विनियोजन भूमि

जायदाद, सट्टा अथवा सामग्री एवं कच्चे माल के संग्रहण के लिए करता है। इनमें दीर्घ-कालीन औद्योगिक विनियोजन एवं जनोपयोगी सेवाओं में विनियोजन करने के प्रति रुचि नहीं रहती है *क्योंकि ये अधिक दर से शीघ्र लाभ, छोटे-छोटे इकाइयों को ऋण देकर,* प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। इसके अतिरिक्त प्रशिक्षित श्रमिकों की कमी, यन्त्रों एवं कारखाना-सामान की अनुपलब्धि, विनियोजकों में मुद्रा-स्फीति एवं अवमूल्यन की जोखिम से बचने के लिए तरल सम्पत्तियों को अधिकार में रखने की रुचि, सरकारी प्रशासन की अस्थिर आर्थिक नीतियाँ जिनसे आन्तरिक बाजार संकुचित हो जाता है अथवा विदेशी प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हो जाती है, भूमिपतियों का समाज एवं राज्य की राजनीति में शक्तिशाली स्थान प्राप्त होना, सामाजिक, वैधानिक एवं राजनीतिक बाधाओं द्वारा प्रारम्भिकता एवं साहस पर प्रतिबन्ध लगाना आदि विभिन्न कारण हैं जिनके परिणाम-स्वरूप अल्प-विकसित राष्ट्रों में बचत एवं पूँजी विनियोजन के लिए प्रोत्साहन प्राप्त नहीं होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका एवं ब्रिटेन में पूँजी निर्माण का बहुत बड़ा भाग व्यवसायों के लाभों के पुनर्विनियोजन से प्राप्त होता है परन्तु अल्प विकसित राष्ट्रों में लाभ पाने वाला वर्ग अत्यन्त छोटा एवं महत्त्वहीन रहता है जिससे पूँजी निर्माण की दर निम्न स्तर पर बनी रहती है। इसके साथ ही अल्प विकसित राष्ट्रों में सांस्कृतिक भवनों एवं स्मारकों के निर्माण को अधिक महत्त्व दिया जाता है जिनसे बचत का कुछ भाग विनियोजित हो जाता है और जिससे अधिक उत्पादन में कोई योगदान प्राप्त नहीं होता है।

(७) विदेशी व्यापार की प्रधानता

अल्प विकसित राष्ट्रों की अर्थ-व्यवस्था में विदेशी व्यापार को प्रधान स्थान प्राप्त होता है जिसके निम्नलिखित विभिन्न कारण हैं—

(१) अल्प विकसित अर्थ-व्यवस्था को प्रायः कुछ ही प्राथमिक वस्तुओं (Primary Products) के उत्पादन पर निर्भर रहना पड़ता है और इन वस्तुओं का अधिकतर निर्यात कर दिया जाता है। यह निर्यात-उत्पादन देश के कुल उत्पादन का बहुत बड़ा अनुपात होता है और इस निर्यात द्वारा जो आय उपार्जित होती है वह जन निजी एवं सरकारी विनियोजन द्वारा उपार्जित आय से भी अधिक होती है। यह निर्यात-आय देश की राष्ट्रीय आय का २०% से कम नहीं होता है। कुछ राष्ट्रों में तो एक अथवा दो वस्तुओं के निर्यात से देश को विदेशी विनिमय-प्राप्तियों का बहुत बड़ा भाग मिलता है जैसे वेनेजुएला में सन् १९५० में खनिज तेल के निर्यात से देश को विदेशी विनिमय-प्राप्ति का ९७% भाग प्राप्त हुआ। इस प्रकार एक या दो वस्तुओं के निर्यात पर अर्थ व्यवस्था की निर्भरता के सबसे बड़ी जोखिम यह है कि इन वस्तुओं के विदेशी बाजारों में मूल्यों के उच्चावचनों का निर्यातक-देश की अर्थ-व्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार चक्र निर्यातक देशों को हस्तान्तरित हो जाते हैं।

(२) अल्प विकसित राष्ट्रों के निर्यात-क्षेत्र में विदेशी विनियोजन का प्रभुत्व

है। यह विदेशी विनियोजन प्राय प्राथमिक उत्पादों के प्रविधिकरण (Processing) पर ही केन्द्रित है जिनके उत्पादों का निर्यात किया जाता है। विदेशी पूँजी का सार्वजनिक सेवाओं में भी विनियोजन किया गया है परन्तु यह भी निर्यात-क्षेत्र से ही सम्बद्ध है। यह विदेशी विनियोजन प्राय विदेशी फर्मों द्वारा नियन्त्रित एवं संचालित है। अल्प विकसित राष्ट्रों के खनिज एवं पौध बाग व्यवसायों (जैसे चाय) में प्राय विदेशी फर्मों का नियन्त्रण एवं अधिकार है। यह विदेशी व्यवसाय प्राय एकाधिकारिक शक्तियाँ ग्रहण कर लेते हैं और इनके हाथ में आर्थिक शक्तियों का केन्द्रीयकरण हो जाता है। विदेशी फर्मों के शक्तिशाली होने से वे देश की आर्थिक एवं राजनीतिक नीतियों को अपने हित के लिए प्रभावित करते रहते हैं और राष्ट्रीय उत्पादन का सम्पूर्ण लाभ जन समाज को उपलब्ध नहीं होता है। इसके अतिरिक्त विदेशी पूँजी के प्रवाह में परिवर्तन होने के साथ साथ देश की अर्थ-व्यवस्था में उच्चावचन होते रहते हैं जो आर्थिक विकास में बाधक होते हैं।

(३) कुछ राष्ट्रों में सरकारी आय का बहुत बड़ा भाग निर्यात-व्यापार पर लगे तटकर शुल्क से प्राप्त होता है जैसे मलाया में तटकर शुल्क की आय सरकारी आय का बहुत बड़ा भाग होता है। विदेशी व्यापार की उन्नति पर ही इस प्रकार सरकारी आय एवं विनियोजन निर्भर रहता है।

(४) अल्प विकसित राष्ट्र को अपनी बहुत सी आवश्यकताओं के लिए आयात पर निर्भर रहना पड़ता है। इन राष्ट्रों के आयात में प्राय निर्मित वस्तुएं, वस्त्र, हल्की उपभोक्ता वस्तुएँ तथा खाद्यान्न एवं खाद्य पदार्थ सम्मिलित रहते हैं। इन देशों में आयात करने की इच्छा बहुत अधिक होती है क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शन का प्रभाव अपना कार्य करता है। देश के सम्पन्न लोग विदेशियों के समान आराम एवं विलासिताओं की वस्तुएं उपभोग करने के लिए आयात के लिए तत्पर रहते हैं। इस प्रकार देश को निर्यात से उपलब्ध होने वाले विदेशी विनिमय का अधिकतर भाग विलासिता की वस्तुओं एवं खाद्य पदार्थों पर व्यय कर दिया जाता है और उत्पादक वस्तुओं का आयात में अत्यन्त सीमित स्थान प्राप्त होता है।

जो देश विकासोन्मुख हो गये हैं उनके आयात करने की इच्छा बहुत तीव्र इसलिए है कि विकास के लिए उत्पादक वस्तुओं, यन्त्रों एवं तान्त्रिक ज्ञान को बड़ी मात्रा में आयात करने की आवश्यकता रहती है। विकासोन्मुख राष्ट्रों में धीरे धीरे प्राथमिक वस्तुओं का निर्यात कम होने लगता है और उत्पादक वस्तुओं का आयात बढ़ जाता है। इस परिस्थिति के फलस्वरूप देश का व्यापार शेष प्रतिकूल हो जाता है और इस प्रतिकूल शेष की पूर्ति विदेशी सहायता द्वारा करनी पड़ती है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि अल्प विकसित राष्ट्रों में विकास द्वारा श्रमिक एवं दलित वर्ग के जीवन स्तर में सुधार लाना सम्भव हो सकता यदि देश के आर्थिक एवं सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन किए जायें और सर्वव्यापक शोषण का

भावना को आमूल उखाड़ कर फेंक दिया जाय। इस शोषण भावना के कारण ही आधुनिक युग में राजनीतिक उत्तेजना (Political Agitation) आन्तरिक असन्तोष तथा परस्पर दोषारोपण का बोलबाला है। जब तक जनसमुदाय के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन-स्तर को नहीं उठाया जायगा आधुनिक उत्पादन की विधियों का लाभ उठाया जाना असम्भव है। अल्प विकसित राष्ट्रों में विभिन्न आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं का निवारण करने के लिए नियोजित अर्थ-व्यवस्था द्वारा एक ओर देश में राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि करने तथा दूसरी ओर आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं को कम करने के लक्ष्यों की पूर्ति की जाती है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था का संचालित करने के लिए कुछ मूल आधार निर्णय करने की आवश्यकता होती है जैसे प्राथमिकताओं का निर्धारण, विकास के क्षेत्र का निर्णय आदि। इन निर्णयों के सम्बन्ध में अगले अध्यायों में विस्तृत विवरण दिये गये हैं।

आर्थिक प्रगति को प्रभावित करने वाले घटक
[Factors Influencing Economic Growth]

[आर्थिक प्रगति को प्रभावित करने वाले घटक—सांस्कृतिक एवं परम्परागत घटक, सामाजिक घटक—सामाजिक घटक एवं श्रमिकों की उत्पादकता, सामाजिक घटक एवं बचत, सामाजिक घटक एवं साहसिक क्रियाएँ, सामाजिक घटक एवं तान्त्रिकताएँ, नैतिक घटक, तान्त्रिक घटक, भूमि प्रबन्ध में सुधार, राजनीतिक घटक, सरकारी प्रबन्ध एवं नीति, प्रबन्ध के विकास की समस्या]

आर्थिक प्रगति वह विधि है जिसके द्वारा मनुष्य को अपने चारों ओर के वातावरण पर अधिक नियन्त्रण प्राप्त होता है जिसके फलस्वरूप उसकी स्वतन्त्रता बढ़ती है। ऐसी अर्थ-व्यवस्थाएँ जो अविकसित हैं उनमें मनुष्य को प्रकृति दत्त सुविधाओं तथा कठिनाइयों के अन्तर्गत जीवन व्यतीत करना पड़ता है परन्तु जैसे-जैसे देश आर्थिक प्रगति करते हैं उपलब्ध प्राकृतिक सुविधाओं का शोषण किया जाता है तथा प्राकृतिक कठिनाइयों पर मानवीय नियन्त्रण को व्यापक बनाया जाता है। इस विधि के अन्तर्गत मनुष्य के उपभोग के लिए वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा में वृद्धि की जाती है। इस प्रकार एक ओर तो मनुष्य को अपने वातावरण पर नियन्त्रण प्राप्त होता है और दूसरी ओर वस्तुओं और सेवाओं के बड़े भण्डार में से उसे अपनी इच्छानुकूल चयन करने का अवसर प्राप्त होता है।

किसी देश की आर्थिक प्रगति का मूल्यांकन उसकी राष्ट्रीय आय की वृद्धि से किया जाता है। प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय उत्पादन में जो वृद्धि होती है उसे आर्थिक प्रगति का सूचक समझा जाता है। आर्थिक प्रगति के अन्तर्गत प्रायः उपभोग तथा वितरण को मूल्यांकन करते समय अधिक महत्व नहीं दिया जाता है अर्थात् किसी भी देश में किसी विशेष वर्ष में पिछले वर्ष की तुलना में राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय में जो वृद्धि होती है वह उस देश की आर्थिक प्रगति का सूचक होता है। ऐसा हो सकता है कि किसी देश में राष्ट्रीय आय में तो वृद्धि होती जाय परन्तु जनसमुदाय का बहुत बड़ा भाग निर्धन रहे। यह परिस्थिति तभी आती है जब राष्ट्रीय आय के वितरण में विषमता हो। यह भी सम्भव है कि राष्ट्रीय उत्पादन में तो वृद्धि हो परन्तु प्रति व्यक्ति उपभोग कम होता जाय। यह तभी हो सकता है जब राष्ट्रीय उत्पादन का

वर्तमान बचत के लिए उपभोग किया जाय। उपर्युक्त दोनों परिस्थितियों में यह कहना ठीक होगा कि यह देश आर्थिक प्रगति की ओर अग्रसर है।

आर्थिक प्रगति को प्रभावित करने वाले घटक—आर्थिक प्रगति एक ऐसी विधि है जिस पर विभिन्न घटकों का प्रभाव प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। इन घटकों का प्रकार सदैव आर्थिक ही नहीं होता। वास्तव में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा नैतिक घटक आर्थिक घटकों को प्रभावित करते हैं और ये आर्थिक घटक आर्थिक प्रगति पर प्रभाव डालते हैं। आर्थिक प्रगति पर विभिन्न घटक किस प्रकार प्रभाव डालते हैं यह स्पष्ट करते समय यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि आर्थिक प्रगति के सम्बन्ध में कोई ऐसे सामान्य सिद्धान्त निर्धारित नहीं किए जा सकते जो प्रत्येक राष्ट्र पर समान रूप से लागू हो सकें। एक ही घटक किसी विशेष राष्ट्र में कुछ और प्रभाव डाल सकता है और किसी अन्य राष्ट्र में उसका प्रभाव भिन्न हो सकता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्रत्येक घटक आर्थिक प्रगति को अलग अलग इतना प्रभावित नहीं करता, जितना विद्यमान सम्बन्ध घटक निरन्तर प्रभावित करते हैं। आर्थिक प्रगति को प्रभावित करने वाले घटकों का हम निम्न प्रकार वर्गीकृत कर सकते हैं—

(१) सांस्कृतिक एवं परम्परागत घटक,
(२) सामाजिक घटक,
(३) नैतिक घटक
(४) धार्मिक घटक,
(५) भूमि-प्रबन्धन सम्बन्धी घटक
(६) राजनीतिक घटक।
(७) सरकारी प्रबन्ध एवं नीति,
(८) प्रदाय के विस्तार का घटक
(९) पूँजी-निर्माण,
(१०) व्यापारिक घटक,
(११) जनसंख्या का घटक।

(१) सांस्कृतिक एवं परम्परागत घटक—इस वर्ग के अन्तर्गत हम उन घटकों का अध्ययन कर सकते हैं जो मानव की मनोवैज्ञानिक विचारधाराओं से सम्बन्ध रखते हैं और जिनका प्रभाव आर्थिक प्रगति व प्रयासों पर पड़ता है। जीवन के प्रति जो दार्शनिक विचारधारा किसी देश व समाज में विद्यमान हो, वह उस देश की आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित करती है। कुछ धर्मों एवं जातियों में यह भावना प्रचलित पायी जाती है कि कम से कम उपभोग करना मानव का कर्त्तव्य है तथा मानव को सदैव अपनी वर्तमान परिस्थितियों से सन्तुष्ट रहकर और नवीन आर्थिक एवं सामाजिक क्रियाओं के प्रति आरम्भिकता का त्याग कर मोक्ष के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। इस प्रकार की मान्यताएँ जनसमुदाय की आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित करती हैं और उनकी वस्तुओं और सेवाओं को प्राप्त करने की इच्छाएँ कम कम रहती हैं। हिन्दुओं की अर्थ-व्यवस्था अविकसित रहने का प्रमुख कारण एक यह भी समझा जाता है कि यहाँ धार्मिक महन्तों की अधिकता और उनका प्रभाव जनसमुदाय पर अत्यधिक था एवं बौद्धों के मतानुसार त्याग को समाज में सर्वश्रेष्ठ माना जाता

है। इसके विपरीत पश्चिमी राष्ट्रों में अधिक उपभोग की प्रवृत्ति पायी जाती है। इसके फलस्वरूप वहाँ आर्थिक क्रियाओं को प्रोत्साहन मिला।

मानवीय आवश्यकताएँ विद्यमान भौतिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों तथा जनसमुदाय के स्वभाव एवं परम्परागत रीति रिवाजों से भी प्रभावित होती हैं जैसे जिस देश में समुद्र का किनारा न हो उसे जहाजों एवं नावों की आवश्यकता नहीं होती। अधिकतर लोग जीवन की अनिवार्यताओं में से कटौती करके परम्परागत उत्सवों आदि पर धन का व्यय करते हैं और इस प्रकार वह अपनी उत्पादनक्षमता को सदैव कम करते रहते हैं। पिछड़े हुए राष्ट्रों में अज्ञानता के कारण जनसमुदाय नये पौष्टिक भोजन वस्त्र आदि उपयोग नहीं करना चाहते और इन सबसे उनकी आर्थिक क्रियाएं प्रभावित होती हैं।

श्रमिकों की काय के प्रति जो प्रवृत्ति होती है, वह भी आर्थिक प्रगति को प्रभावित करती है। यह प्रवृत्ति श्रमिकों की सारी शक्ति काय करने की दशाएं धार्मिक मान्यताएं तथा सामाजिक प्रतिष्ठा पर निर्भर रहती हैं। जो जनसमुदाय अधिक घण्टों तक परिश्रम के साथ काय कर सकता हो जिसमें काय कुशल श्रमिकों को सामाजिक प्रतिष्ठा दी जाती हो जहाँ श्रमिक अपने काय के प्रति तत्पर एवं जागरूक रहते हों और श्रमिकों में अपनी कार्यक्षमता बढ़ाने की प्रवृत्ति पायी जाती हो तो ऐसा जनसमुदाय अपने श्रम से आर्थिक उत्पादन करेगा और उसे अधिक आय उपार्जित होगी। यह श्रमिक वर्ग अधिक प्रगति में तभी सहायक हो सकेगा जब वह अपनी आय के कुछ भाग को उत्पादक विनियोजन में लगाये। जब तक पूंजी निर्माण में वृद्धि नहीं होती, श्रमिक की काय कुशलता आर्थिक प्रगति में सहायक नहीं हो सकती। सामाजिक एवं धार्मिक कारणों के फलस्वरूप भी कभी कभी देश में उपलब्ध उत्पादक साधनों का उपयोग नहीं किया जाता तथा समयानुकूल जोखिम लेने के लिए तत्परता की कमी रहती है। अल्प विकसित राष्ट्रों में प्रायः शारीरिक श्रम से सम्बन्ध रखने वाले व्यवसाय को हीन माना जाता है और इसलिए जैसे जैसे शिक्षा का विस्तार होता है कार्यालयों में काय करने वालों की संख्या में वृद्धि होती जाती है। भारतवर्ष में कुछ जातियाँ कृषि क्षेत्र में हड्डी तथा गन्दगी के खाद का उपयोग करना पसन्द नहीं करतीं और इस प्रकार ये उत्पादक साधन उपयोग में नहीं लाये जाते। यह समस्त घटक देश के स्वाभाविक लोगों को प्रभावित करते हैं और इस प्रकार उत्पादक क्रियाएं भी इन्हीं मान्यताओं पर निर्धारित होती हैं जो आर्थिक प्रगति की मूल आधार होता है।

(२) सामाजिक घटक—सामाजिक घटकों के अन्तर्गत उन तत्वों को सम्मिलित किया जाता है जो समाज में प्रचलित विभिन्न मान्यताओं से सम्बन्ध रखते हैं। समाज में धन और प्रतिष्ठा का क्या सम्बन्ध है यह तत्व आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित करता है। यदि धन के द्वारा ऐसी सामग्री को एकत्रित करना सम्भव हो जिसकी सहायता

से कोई भी नागरिक अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रदर्शित कर सकता हो तो वह उस सामग्री का आर्थिक उपयोग न होते हुए भी क्रय करना पसन्द करेगा जिसके फलस्वरूप देश में विलासिता की वस्तुओं एवं प्रदर्शन की सामग्री के उद्योगों का विस्तार होगा। यदि समाज में धन के द्वारा राजनीतिक सत्ता कर्मचारियों पर सत्ता स्थिर लेने की सत्ता अपने सम्बन्धियों को लाभ पहुँचाने की सत्ता प्राप्त हो सकती हो तो धनोपार्जन करने के लिए अधिक प्रोत्साहन रहता है और लोग धनोपार्जन के लिए अधिक से अधिक प्रयास एवं उत्पादक विनियोजन करते हैं जिससे आर्थिक प्रगति को बढ़ावा मिलता है परन्तु यह मान्यता साम्यवादी समाज के लिए पूर्णतः सत्य नहीं है, क्योंकि साम्यवादी समाज में प्रत्येक व्यक्ति को उसकी उत्पादनक्षमता लागत कम करने की योग्यता तथा नये आविष्कार करने की योग्यता के आधार पर प्रतिष्ठा एवं सत्ता प्रदान की जाती है।

प्रत्येक नागरिक अपने प्रयासों का उत्पादन के क्षेत्र में पूर्णतम उपयोग करे, इस व्यवस्था के लिए उसे यह आश्वासन होना चाहिए कि वह जो भी काम करेगा उसके बदले में उसे उचित पारिश्रमिक प्राप्त होगा। उचित पारिश्रमिक उसके जीवन-स्तर से इतना सम्बद्ध नहीं होगा, जितना उसके द्वारा किए गये काम से। सोवियत रूस में साम्यवादी सरकार की स्थापना होने के पश्चात् समस्त नागरिकों को समान आय प्रदान करने का प्रयास किया गया और कार्य-कुशल एवं अच्छे श्रमिकों को वेतन के अतिरिक्त तमगे (Decorations), प्रशंसा प्रमाणपत्र आदि दिये गये परन्तु यह प्रयोग असफल रहा और श्रमिकों की कुशलता एवं प्रोत्साहन को बनाये रखने के लिए काम के अनुसार पारिश्रमिक दिये जाने के सिद्धान्त को फिर से अपनाया गया। पिछड़े हुए राष्ट्रों में जनसमुदाय में सामूहिक कल्याण की क्रियाओं का बिना मौद्रिक पारिश्रमिक के सम्पन्न करने की इच्छा पायी जाती है परन्तु जैसे-जैसे आर्थिक प्रगति की व्यापकता बढ़ती जाती है अमौद्रिक प्रोत्साहन काम करने के लिए पर्याप्त नहीं समझे जाते।

अल्प विकसित राष्ट्रों में जनसाधारण की सामाजिक विचारधाराएँ एवं स्वभाव भौतिक प्रगति में सहायक नहीं होता है। इन राष्ट्रों में व्यक्ति की आर्थिक क्रियाओं पर सामाजिक घटकों का गहन प्रभुत्व पड़ता है और विभिन्न आर्थिक क्रियाओं का नागरिकों में आवंटन उनकी योग्यताओं एवं उपलब्धियों के आधार पर नहीं किया जाता है बल्कि व्यक्ति का सामाजिक स्तर पारिवारिक सम्बन्ध एवं धन आदि को उसकी आर्थिक क्रियाओं का आधार माना जाता है। देश में उपलब्ध आर्थिक सम्पत्तियों का वितरण एवं शिक्षा तथा प्रशिक्षण की सुविधाओं की उपलब्धि भी व्यक्ति के सामाजिक स्तर पर होती है। दूसरी ओर विकसित राष्ट्रों में आर्थिक क्रियाओं सम्पत्तियों एवं अवसरों की उपलब्धि नागरिकों को उनकी व्यक्तिगत योग्यताओं एवं उपलब्धियों के आधार पर होती है। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि अल्प विकसित समाजों में व्यक्ति की आर्थिक क्रियाओं का निर्धारण जहाँ सामाजिक स्तर के आधार पर होता है वहीं विकसित

राष्ट्रों में अनुबन्ध के द्वारा व्यक्ति की आर्थिक क्रियाएं निर्धारित होती हैं। अल्प विकसित राष्ट्र में व्यक्ति आर्थिक क्रियाओं का चयन करने के लिए सामाजिक परिस्थितियों का दास होता है जबकि विकसित राष्ट्र में व्यक्ति को आर्थिक क्रियाओं का चयन अपनी योग्यतानुसार चयन करने का अधिकार होता है।

अल्प विकसित समाजों में सामाजिक संस्थाओं का निर्माण जनसाधारण के स्वभाव एवं विचारधाराओं के आधार पर होता है। परन्तु धीरे धीरे यह सामाजिक संस्थाएं इतनी शक्तिशाली हो जाती हैं कि यह जनसाधारण के विचारों एवं स्वभाव को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार जनसाधारण के विचार एवं स्वभाव तथा सामाजिक संस्थाएं एक दूसरे पर निरंतर प्रभाव डालती रहती हैं और इसके परिणामस्वरूप, सामाजिक संस्थाओं की संरचना इतनी कठोर एवं स्थिर हो जाती है कि समाज को फिर इन संस्थाओं का दास बन जाना पड़ता है। यदि यह संस्थाएं भौतिक विकास का विरोध करती हैं तो व्यक्ति विकास सम्बन्धी आर्थिक क्रियाओं में सक्रिय भाग नहीं ले सकता है और आर्थिक प्रगति में बाधाएं उपस्थित होती हैं।

सामाजिक घटक आर्थिक क्रियाओं को विभिन्न क्षेत्रों में प्रभावित करते हैं। सामाजिक घटकों से प्रभावित होने वाले विभिन्न आर्थिक क्षेत्र निम्न प्रकार हैं—

(अ) सामाजिक घटकों का श्रमिकों की उत्पादकता पर प्रभाव—देश की श्रम-शक्ति का राष्ट्रीय आय को दिया जाने वाला अनुदान श्रम शक्ति के परिमाण एवं गुण पर निर्भर रहता है। श्रम शक्ति का परिमाण देश की जनसंख्या पर निर्भर रहता है। देश की जनसंख्या जब तीव्र गति से बढ़ती है तो श्रम शक्ति में भी वृद्धि होती है यद्यपि जनसंख्या की आयु-संरचना (Age Structure) एवं सम्भावित औसत आयु भी उत्पादक श्रम की पूर्ति को प्रभावित करते हैं। जनसंख्या की वृद्धि समाज में प्रचलित धार्मिक विचारधाराओं एवं सामाजिक रीति रिवाजों से प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध होती है। सामाजिक एवं धार्मिक परम्पराओं में से अल्प आयु में विवाह, संयुक्त परिवार पद्धति, बड़े परिवार की प्रतिष्ठा, धार्मिक कार्यों के लिए पुत्रों तथा पुत्रियों का होना आवश्यक, बहुविवाह पद्धति आदि प्रत्यक्ष रूप से जनसंख्या की वृद्धि को प्रभावित करते हैं। इन परम्पराओं से परिपूर्ण समाज में जब आर्थिक विकास के प्रारम्भ के साथ जनस्वास्थ्य एवं कल्याण की कार्यवाहियों का संचालन होता है तो जनसाधारण के स्वास्थ्य में सुधार होता है और मृत्यु-दर भी कम हो जाती है। इस प्रकार अल्प विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं में सामाजिक घटक श्रम शक्ति के परिमाण में वृद्धि करने में सहायक होते हैं और इन अर्थ-व्यवस्थाओं में श्रम शक्ति का परिमाण आवश्यकता से प्रायः अधिक हो जाता है।

दूसरी ओर सामाजिक घटक श्रम शक्ति के उत्पादक गुणों को भी प्रभावित करते हैं। अल्प विकसित राष्ट्रों में श्रमिकों की उत्पादकता कम होती है क्योंकि जन-साधारण आर्थिक प्रोत्साहनों की तुलना में सामाजिक सुविधाओं और परम्परागत रीतियों को अधिक महत्व देता है। स्वास्थ्य एवं शिक्षा का निम्न स्तर श्रम शक्ति को

अधिक परिश्रमी नहीं बनने देता है। अल्प विकसित राष्ट्रों में ऊपर औद्योगिक श्रम की न्यूनता होती है क्योंकि इसके लिए श्रमिकों में अधिक परिश्रम करने की योग्यता अनुशासनप्रियता, समय का पालन करने का स्वभाव, तथा अन्य साथियों के साथ सहयोग करके काम करने की योग्यता की आवश्यकता होती है। इन राष्ट्रों में औद्योगिक श्रमिक कृषिक्षेत्र से आता है और इसमें उपयुक्त गुणों की न्यूनता तो होती ही है साथ ही, यह अपनी आय का औद्योगिक क्षेत्र के अनुशासित वातावरण में एकदम काम में असमर्थ रहता है। औद्योगिक क्षेत्र में कृषिक्षेत्र के विपरीत अपनी व्यक्तिगत इच्छानुसार काम करने की स्वतन्त्रता भी नहीं होती है और पारिवारिक वातावरण की भी हीनता पायी जाती है। यही कारण है कि अल्प विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं का विकास करने के लिए सबसे कठिन समस्या श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र के अपरिचित वातावरण में कार्य करने का प्रशिक्षण प्रदान करना होता है। वास्तव में ग्रामीण क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र में आने वाला श्रमिक ग्रामों की दयनीय आर्थिक स्थिति के दबाव के कारण नगरों में आता है परन्तु वह नगरों के अनिवार्य वातावरण में अपने आपको समायोजित नहीं कर पाता है और ज्यों ही वह कुछ धन कमा लेता है ग्रामीण क्षेत्र में वापस जाने का इच्छुक रहता है। यही कारण है कि अल्प विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं में औद्योगिक श्रमिकों में श्रमिक गमनागमन (Labour Turnover) अत्यधिक होता है जिससे श्रमिकों की उत्पादनक्षमता कम होती है।

(आ) सामाजिक घटकों का बचत पर प्रभाव—सामाजिक विचारधाराएँ उपभोग के प्रकार तथा उनके परिणामस्वरूप बचत एवं पूँजी निर्माण की मात्रा को प्रभावित करते हैं। अठारहवीं एवं उन्नीसवीं शताब्दियों में पश्चिमी योरोप के राष्ट्रों में उस समय की सामाजिक विचारधाराओं जैसे भविष्य के लिए सुख-सुविधा की व्यवस्था करना बच्चों को योग्य बनाना नवीन क्रियाओं के लिए अपने आपको तैयार करना अपने अनुभवों को विस्तृत करना आविष्कार करना परम्परागत एवं प्राचीन रीति-रिवाजों का सामना आदि ने पूँजी निर्माण एवं आर्थिक प्रगति में जितना योगदान दिया वह आर्थिक क्रान्ति के योगदान से कहीं अधिक था। अल्प-विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं में प्रति व्यक्ति आय अत्यधिक कम होती है और निर्धनता व्यापक होती है जिसके परिणामस्वरूप जनसाधारण में बचत करने की क्षमता नहीं के बराबर होती है परन्तु इस निर्धनता का कारण इन समाजों के रीति रिवाज होते हैं। धार्मिक कार्यों, विवाह एवं जन्म-सम्बन्धी उत्सवों धार्मिक त्यौहारों आदि पर निर्धन वर्ग भी अपनी क्षमता से अधिक व्यय करता है जिससे निर्धनता को निरन्तरता प्राप्त हो जाती है। दूसरी ओर, इन अर्थ-व्यवस्थाओं में बहुत छोटा वर्ग अत्यन्त धनी होता है परन्तु यह वर्ग भी अपने उपभोग का इस प्रकार का बना लेता है जिससे उत्पादक क्रियाओं में योगदान नहीं मिलता है। यह वर्ग बड़ी मात्रा में बचत कर सकता है परन्तु यह अपनी बचत का उपयोग भूमिगत जायदादों, बड़े-बड़े मकानों

मूल्यवान धातुओं एवं आभूषणों, प्रदर्शन एवं शान शौकत के प्रासादों आदि के लिए करता है क्योंकि इनके द्वारा उन्हें समाज में प्रतिष्ठा एवं आदर प्राप्त होता है। इस प्रकार सामाजिक परम्पराओं के फलस्वरूप एक ओर बचत कम रहती है और दूसरी ओर बचत का उत्पादक उपयोग भी नहीं होता है।

विकासशील राष्ट्रों में धनी वर्ग में विकसित राष्ट्रों की विलासिताओं एवं आराम की नकल करने की प्रवृत्ति भी पायी जाती है जबकि विकसित राष्ट्रों के समान यह वर्ग परिश्रम, त्याग एवं उत्पादन कार्य करने के लिए उद्यत नहीं रहता है।

(इ) **सामाजिक घटकों का साहसिक कार्यों पर प्रभाव**—पश्चिमी राष्ट्रों के आर्थिक प्रगति के इतिहास के अवलोकन से यह ज्ञान होता है कि इन राष्ट्रों के विकास में एक छोटे से उत्साही एवं परिश्रमी व्यापारी-वर्ग के नेतृत्व का अत्याधिक योगदान रहा है। साहसी वह व्यक्ति अथवा संस्था होती है जो उत्पादक व्यवसायों के लिए सभी आवश्यक उत्पादन के घटकों का सम्मिश्रण करती है और इस प्रकार वह देश के आर्थिक विकास का केन्द्र बिन्दु होता है। किसी भी देश में साहसी वर्ग के विस्तार के लिए साहसिक कार्यों (*entrepreneural activities*) को समाज में प्रतिष्ठित स्थान मिलना आवश्यक होता है क्योंकि योग्य परिश्रमी एवं अनुभवी लोग साहसी का कार्य तब ही अपने ऊपर लेने को तयार होते हैं जब उन्हें समाज में ऊंचा स्थान दिया जाता है। इसके साथ ही योग्य व्यक्तियों को साहसिक क्रियाएँ करने के लिए आवश्यक छूट एवं सुविधाएं प्राप्त होना भी आवश्यक होती है। इनकी क्रियाओं में यदि शासकीय लाइसेंसिंग एवं अन्य प्रतिबन्धात्मक कार्यवाहियाँ द्वारा बाधाएं डाली जाती हैं तो साहसी वर्ग का पर्याप्त विस्तार सम्भव नहीं होता है। किसी भी व्यक्ति को साहसी बनने के लिए उसमें अधिक जोखिम लेकर अधिक धनोपार्जन करने की तीव्र भावना का होना अनिवार्य होता है। यह भावना ही उसे साहसिक क्रियाओं की ओर प्रेरित करती है। यह भावना समाज की सामाजिक व्यवस्था एवं सामाजिक संस्थाओं की कार्यविधि पर निर्भर रहती है। साथ ही, शिक्षा की पद्धति एवं प्रकार का भी प्रभाव इस भावना पर पड़ता है। विज्ञान, इन्जीनियरिंग एवं तान्त्रिक शिक्षा द्वारा मनुष्य में भौतिक प्रगति की भावना उत्पन्न होती है और इसके लिए उसे आवश्यक ज्ञान भी प्राप्त होता है, साहसी वर्ग के उत्थान के लिए देश के अधिनियमों, प्रशासनिक व्यवस्था एवं राजनीतिक संरचना द्वारा निजी व्यवसाय को पर्याप्त स्वतन्त्रता होना भी आवश्यक होता है।

अल्प विकसित राष्ट्रों में साहसी वर्ग के विस्तार के लिए आवश्यक तत्व विद्यमान पर्याप्त मात्रा में नहीं होते हैं। परिवार, जाति, धर्म एवं अन्य सामाजिक संस्थाएँ योग्य व्यक्तियों की साहसिक क्रियाओं के करने में बाधाएं प्रस्तुत करती हैं। संयुक्त परिवार पद्धति से व्यक्तिगत प्रारम्भिकता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। जाति प्रथा के फलस्वरूप लोगों के विचारों में संकीर्णता घर कर गयी है और वे अपनी जाति एवं

वर्ग के प्रति वफादारी को सर्वाधिक महत्व देने लगते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि व्यवसायों में उत्तरदायी पदों पर परिवार एवं जाति के आधार पर नियुक्तियाँ की जाती हैं और योग्यता एवं अनुभव को उचित महत्व नहीं दिया जाता है। ऐसी परिस्थिति में योग्य नवयुवकों को नेतृत्व करने का अवसर ही नहीं प्राप्त होता है और समाज की उत्पादन क्रियाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन सम्भव नहीं होते हैं।

अल्प विकसित राष्ट्रों में साहसिक कार्यों का पर्याप्त विस्तार रूढ़िवादी विचारधाराओं के कारण भी नहीं होता है। सामाजिक रूढ़िवादिता, शिक्षा-पद्धति का रूढ़िवादी होना, नगरों के प्रति कम आकर्षण तथा व्यवसायिक उपलब्धियों को अधिक सामाजिक प्रतिष्ठा न मिलने के कारण ऐसा नवयुवक जो समाज में परिवर्तन लाना चाहता है नेतृत्व करने का अवसर नहीं प्राप्त कर पाता है। नगर एसे केन्द्र होते हैं जो परिवर्तनों को शीघ्र अति शीघ्र स्वीकार करते हैं और नवीन तान्त्रिकताओं, उपभोग, उत्पादन एवं सामाजिक संस्थाओं एवं विचारधाराओं को जन्म देते हैं एवं उनका विस्तार करते हैं। यही कारण है कि पश्चिमी राष्ट्रों में आर्थिक प्रगति की प्रविधि के अन्तर्गत औद्योगीकरण एवं नगरों की स्थापना ने एक दूसरे को निरन्तर सहायता प्रदान की और विकास की गति को बढ़ा दिया। अल्प विकसित राष्ट्रों में ग्रामों का प्रभुत्व होता है और जनसंख्या का अधिकतर भाग ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है। ग्रामीण नागरिकों का प्रमुख व्यवसाय कृषि होता है जिसमें प्रतिस्पर्धा की भावना का अभाव रहता है। इन सब कारणों से ग्रामीण क्षेत्रों में रूढ़िवादी अथवा परिवर्तन विरोधी विचारधाराओं का प्रभुत्व होता है। जब यह ग्रामीण क्षेत्रों का नागरिक उद्योगों में पहुँचता है तो अपने साथ ग्रामीण क्षेत्र की रूढ़िवादी प्रबन्ध व्यवस्था एवं रिवाजों को अपने साथ ले जाते हैं। यही कारण है कि उद्योगों के प्रबन्धकों में स्वेच्छाचारी भूपतियों एवं जमींदारों के समान व्यवहार करने की प्रवृत्ति पायी जाती है जो प्रबन्ध एवं श्रम में कलह का कारण बन जाती है। औद्योगिक क्षेत्र पर कृषि प्रबन्ध-व्यवस्था का प्रभाव होने के कारण ही औद्योगिक क्षेत्र में नवीन तान्त्रिकताओं को स्वभावतः स्वीकार नहीं किया जाता है। व्यापारिक क्रियाओं को जब समाज में हीन दृष्टि से देखा जाता है तो योग्य नवयुवक उन व्यवसायों की ओर आकर्षित हो जाता है जिनको समाज में प्रतिष्ठित स्थान होता है। इस प्रकार साहसी वर्ग का विस्तार सम्भव नहीं होता है।

अल्प विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं में आर्थिक वातावरण इस प्रकार का होता है कि विनियोजन से उपार्जित होने वाली आय का अनुमान लगाना भी सम्भव नहीं होता है। लागत से सम्मिलित होने वाले घटकों की उचित लागत का अनुमान, विपणि एवं माँग के परिमाण का उचित अनुमान, प्रतिस्पर्धा की मात्रा का अनुमान तथा उपरिव्यय सुविधाओं की पर्याप्त उपलब्धि न होने के कारण साहसिक क्रियाओं के विस्तार में रुकावटें उपस्थित होती हैं। विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं में बड़े-बड़े व्यापार-गृहों द्वारा जो विपणि-अन्वेषण किए जाते हैं वह नवीन साहसी वर्ग को सहायतार्थ उपलब्ध होते

हैं। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा व्यापारिक सगठनों एव अधिकोषण तथा वित्तीय सस्थाओं द्वारा विभिन्न सूचनाए नियमित रूप से प्रकाशित की जाती है जो साहसिक क्रियाओ म सहायक होती है। अल्प विकसित अथ व्यवस्थाओ म इस प्रकार की सहायक सूचनाए उपलब्ध न होने के कारण साहसिक क्रियाओ म जोखिम अधिक रहती है।

उपयुक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि अल्प विकसित राष्ट्रो म साहसिक क्रिया एक न्यून घटक रहती है और आर्थिक प्रगति हेतु इस घटक के विस्तार के लिए राज्य को ऐसी सामाजिक एव आर्थिक परिस्थितियाँ उत्पन्न करना आवश्यक होता है जिनमे साहसी वग विकसित हो सके। बहुत सी अर्थ-व्यवस्थाओ म राज्य स्वय साहसी का काय करके लोगो का मागदशन करता है।

(ई) **सामाजिक घटकों का तान्त्रिकताओं पर प्रभाव**—*आर्थिक प्रगति हेतु उत्पादन के क्षेत्र म नवीन तान्त्रिकताओ का उपयोग अत्यन्त आवश्यक होता है। सुधरी हुई उत्पादन-तान्त्रिकताओ का उपयोग करने के लिए अनुकूल सामाजिक वातावरण की आवश्यकता होती है जो अल्प विकसित अर्थ-व्यवस्थाओ म विद्यमान नही होता है। तान्त्रिक परिवतनों को सफल बनाने के लिए समाज म नवीन तान्त्रिकताओ के उदय होने वाले परिवतनो को स्वीकार करने की स्वाभाविक इच्छा होनी चाहिए। इसके लिए रूढ़िवादी सामाजिक विचारधाराओ का त्यागना होता है और नवीन सरचना का आयोजन आवश्यक होता है। नवीन तान्त्रिकताओ के उपयोग के लिए देश म बडे पमाने पर शोध काय होना चाहिए आविष्कार किए जाने चाहिए और फिर इन आविष्कारो का व्यापारिक उपयोग होना चाहिए। इस प्रकार नवीन तान्त्रिकताओं के विस्तार हेतु वैज्ञानिक वग एव साहसी वग दोनो के ही विस्तार की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर नवीन उत्पादन तान्त्रिकताओ का उपयोग करने हेतु अधिक पूजी की आवश्यकता होता है तथा नवीन उत्पादो का उपयोग करने की इच्छा का समाज म विद्यमान रहना भी आवश्यक होता है। इन सभी व्यवस्थाओ के लिए सामाजिक वातावरण अनुकूल होना आवश्यक होता है। नवीन तान्त्रिकताओं द्वारा समस्त आर्थिक एव सामाजिक वातावरण म मूलभूत परिवतन करके नवीन सस्थाओ एव सगठनों का निर्माण होना चाहिए। अल्प विकसित समाजो म इन परिवतनो को समाज स्वभावत स्वीकार नही करता है जिससे तान्त्रिक प्रगति की गति मन्द रहती है और आर्थिक विकास म बाधाएँ उपस्थित होती हैं।*

(उ) **नैतिक घटक**—जनसाधारण का नैतिक स्तर देश की आर्थिक प्रगति को प्रभावित करता है। वास्तव म, नैतिक स्तर से तात्पर्य यह है कि उद्योग सरकार विनान व्यापार प्रशासन शोध-काय का नेतृत्व करने वाले लोगो म अपने काय के प्रति तत्परता ईमानदारी तथा सेवा भाव होना चाहिए। इन गुणों के साथ साथ इस नेतृत्व करने वाले वग को नेतृत्व-काय पर अपना अपने परिवार तथा जाति का एकाधिकार नही समझना चाहिए। प्राय विकास की ओर अग्रसर राष्ट्रो म इस प्रकार के

एकाधिकार की स्थापना कुछ ऊँचे वर्ग के व्यक्तियों द्वारा कर ली जाती है और उनका यह प्रयत्न होता है कि नेतृत्व का भार उनके परिवार के सदस्यों के हाथों में बना रहे। निजी क्षेत्र के बड़े-बड़े व्यवसायों में नेतृत्व का भार पैतृक सम्पत्ति के रूप में पिता से पुत्र को प्राप्त होता है। सरकारी क्षेत्र में भी यह विधि इसलिए जारी रहती है कि उच्च वर्ग के लोग अपने परिवार के सदस्यों का प्रारम्भ से ही इस प्रकार का प्रशिक्षण देते हैं कि वह अच्छे अथवा बुरे तरीकों से उच्च पदों पर चुने जा सकें। उच्च पदों पर आसीन पिताओं के सभी पुत्र उनके समान योग्य हों, यह सम्भव नहीं है और इस प्रकार प्रायः अयोग्य व्यक्तियों के हाथों में नेतृत्व आ जाने से आर्थिक प्रगति की गति धीमी पड़ जाती है।

प्रगति एक गतिशील विधि है और नेताओं के एक समूह द्वारा ही प्रगति की विधि का प्रारम्भ किया जाता है, इस विधि में कुछ समयोपरान्त परिवर्तन आवश्यक होता है, अन्यथा प्रगति की गति मन्द अथवा स्थिर हो जाती है परन्तु नेताओं का वर्तमान समूह इन परिवर्तनों से सहमत नहीं होता है क्योंकि इनके द्वारा उनकी आर्थिक स्थिति एवं प्रशासनिक सत्ताओं पर कुठाराघात हो सकता है। ऐसी परिस्थितियों में नेताओं के नवीन समूह का प्रादुर्भाव होना स्वाभाविक है और फिर नवीन एवं पुराने समूहों में कलह उत्पन्न होती है। इस प्रकार कलह से आर्थिक प्रगति में बाधाएँ उपस्थित होती हैं।

आर्थिक प्रगति के साथ विभिन्न कार्यों के विशिष्टीकरण को प्रोत्साहन मिलता है, जिसके फलस्वरूप समाज के मध्यम वर्ग के समुदाय में वृद्धि होती है। इस समुदाय में वैज्ञानिक, इंजीनियर, डॉक्टर, शिक्षक आदि सभी सम्मिलित होते हैं। आर्थिक प्रगति की तीव्र गति के लिए पूँजीपतियों, विशेषज्ञों तथा श्रमिकों में समन्वय स्थापित करने की आवश्यकता होती है। इन सभी वर्गों में एक-दूसरे के व्यवसाय को अपनाने के लिए गतिशीलता होनी चाहिए अर्थात् एक इंजीनियर का पुत्र डॉक्टर अथवा उद्योगपति बन सके और उसके इस प्रकार पैतृक व्यवसाय के परिवर्तन करने पर जाति दासता, सामाजिक प्रतिबन्ध, धार्मिक मान्यताएँ आदि बाधक नहीं होनी चाहिए। आर्थिक प्रगति की गति को तीव्र रखने के लिए इस प्रकार उच्चतर गतिशीलता (Vertical Mobility) अत्यन्त आवश्यक होती है।

कुछ राष्ट्रों में आर्थिक प्रगति में व्यक्तिगत आर्थिक स्वतन्त्रता ने अत्यधिक सहायता प्रदान की है। आर्थिक स्वतन्त्रता का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना व्यवसाय करने, उत्पादन के साधनों को क्रय अथवा किराये पर लेने, अन्य व्यापारियों के साथ प्रतिस्पर्धा करने, उत्पादन के साधनों को इस प्रकार सम्मिलित करने कि कम लागत पर अधिक उत्पादन हो सके आदि [illegible] है परन्तु इस प्रकार की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता आर्थिक प्रगति में तब ही सहायक हो सकती है जब देश औद्योगिक दृष्टिकोण से विकसित हो तथा कोई भी देश का नागरिक, स्वस्थ अथवा अनिवार्य

यह अनुमान न लगा सकता हो कि भविष्य में अर्थ-व्यवस्था का क्या स्वरूप होगा। विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं में प्रत्येक उद्योगपति नवीन उत्पादन करने के लिए प्रयोग करता है और इस प्रकार उद्योगपतियों के एक बड़े समुदाय द्वारा जो निश्चय किये जाते हैं वे आर्थिक प्रगति में अधिक सहायक हो सकते हैं। दूसरी ओर अविकसित अर्थ-व्यवस्थाओं में प्रगति का मार्ग प्राय: अनुसरणमात्र होता है क्योंकि इनको विकसित राष्ट्रों के अनुभवों का अनुसरण करने के अवसर प्राप्त होते हैं। ऐसी परिस्थिति में विकसित राष्ट्रों के अनुभवों के आधार पर अर्थ-व्यवस्था के भविष्य के स्वरूप का अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसी अर्थ-व्यवस्थाओं में व्यक्तिगत आर्थिक स्वतन्त्रता तीव्र आर्थिक प्रगति में बाधक हो सकती है। अर्द्ध विकसित राष्ट्रों में सामूहिक निश्चय एवं समूहों में कार्य करने की विधि अधिक उपयोगी होती है इसीलिए सरकार एवं उसके द्वारा निर्मित विभिन्न संस्थाओं को नियोजित अर्थ-व्यवस्था के कार्यक्रम संचालित करने तथा आर्थिक निश्चय करने के अधिकार प्राप्त होने से प्रगति की गति तीव्र हो सकती है परन्तु सामूहिक कार्य करने के लिए जनसमुदाय का नैतिक स्तर ऊँचा होना चाहिए और उसे अपने नेताओं के नेतृत्व को स्वीकार करके उनके निर्देशों के अनुसार कार्य करने को तत्पर होना चाहिए। नैतिकता के आधार पर वे मिलकर कार्य करने के लिए तत्पर हों तथा उनमें पारस्परिक कलह उत्पन्न न हो।

(ऊ) **तान्त्रिक घटक**—गत दो शताब्दियों में विज्ञान की अत्यधिक उन्नति हुई तथा विज्ञान ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। विज्ञान की सराहनीय उन्नति के कारण अल्प विकसित एवं विकसित राष्ट्रों के मध्य तान्त्रिक ज्ञान का अन्तर निरन्तर वृद्धि की ओर है। जब तक अल्प विकसित राष्ट्रों के तान्त्रिक ज्ञान में पर्याप्त वृद्धि करने के लिए विशेष प्रयत्न नहीं किए जाते यह अन्तर दिन प्रतिदिन अधिकाधिक बढ़ता ही जायगा क्योंकि विकसित राष्ट्र द्रुत गति से तान्त्रिक विकास की ओर अग्रसर है। अल्प विकसित राष्ट्रों को विकसित राष्ट्रों के तान्त्रिक अनुभवों का लाभ उठाने का अवसर प्राप्त है तथा इन्हें कोई भी तान्त्रिक साहस नये सिरे से प्रारम्भ करने की आवश्यकता नहीं है परन्तु उन अनुभवों का उपयोग करने हेतु विकासोन्मुख प्रबन्ध व्यवस्था तथा तान्त्रिक विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है जो अल्प विकसित राष्ट्रों में प्रशिक्षण सुविधाओं के अभाव के कारण पर्याप्तरूपेण प्राप्य नहीं हैं। उत्पादकों को आधारभूत शिक्षा तथा तान्त्रिक प्रशिक्षण का प्रबन्ध करना अत्यन्त आवश्यक है। आधुनिक तान्त्रिक ज्ञान का उपयोग करने के लिए पर्याप्त पूँजी विनियोजन भी आवश्यक है किन्तु अल्प विकसित राष्ट्रों में पूँजी की अपर्याप्तता स्वाभाविक है।

अल्प विकसित राष्ट्रों को आधुनिक तान्त्रिक विधियों के उपयोग में सर्वप्रमुख कठिनाई उक्त विधियों के श्रम की बचत को प्रोत्साहित करना है। पश्चिमी विकसित राष्ट्रों में जनसंख्या की कोई समस्या नहीं है। श्रमिकों की न्यूनता है अतएव ये विधियाँ अत्यधिक लाभदायक एवं सफलतापूर्वक उपयोगी सिद्ध हुई हैं परन्तु अल्प विकसित

राष्ट्रों में इसके विपरीत अवस्था होती है। वहाँ बेरोजगारी सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं गम्भीर समस्या है जिसकी उपस्थिति में श्रम की बचत करने वाली उत्पादन-विधियों का उपयोग निरर्थक प्रतीत होता है। इन राष्ट्रों में उत्पादन की ऐसी विधियों की आवश्यकता है जिनमें पूँजी की आवश्यकता कम तथा श्रम की आवश्यकता अधिक हो।

तान्त्रिक ज्ञान की समस्या का निवारण केवल विदेशी सहायता द्वारा ही सम्भव है। आधुनिक युग में कोई भी राष्ट्र तान्त्रिक ज्ञान की पर्याप्तता की अनुपस्थिति में आर्थिक विकास नहीं कर सकता। अतएव राष्ट्र में तान्त्रिक ज्ञान प्रशिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की जानी चाहिए तथा प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु विदेशी प्रशिक्षणदाताओं एवं विशेषज्ञों को आमन्त्रण देने की व्यवस्था होनी चाहिए। राष्ट्र के होनहार, मेधावी एवं साहसी युवकों को विदेशों में प्रशिक्षण प्राप्ति की सुविधाएँ भी प्रदान की जानी चाहिए। इसके साथ ही, जनसमुदाय में आर्थिक विकास के प्रति जागरण तथा शिक्षा की नीति में आवश्यक समायोजन करना भी वांछनीय है। विकास के प्रारम्भिक काल में इस ओर विशेष कार्यवाही द्वारा इस समस्या को सुलझाया जा सकता है। तान्त्रिक प्रशिक्षण का प्रबन्ध इस प्रकार किया जाना चाहिए कि राष्ट्र की भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ राष्ट्र में दृढ़ तान्त्रिक आधार भी बन सके।

आधुनिक तान्त्रिकताओं का उपयोग करने के लिए पूँजी के अतिरिक्त अन्य सहायक घटकों, कुशल श्रम, कुशल प्रबन्ध एवं तान्त्रिक कुशलता की भी आवश्यकता होती है। अल्प विकसित राष्ट्रों में आधुनिक प्रसाधनों एवं यन्त्रों का जीवनकाल कम एवं मरम्मत तथा निर्वाह-व्यय अधिक होता है क्योंकि इनका संचालन नये सीखे हुए श्रमिकों द्वारा किया जाता है जो ज्ञान एवं सतर्कता में अधिक निपुण नहीं होते हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिक तान्त्रिकताएँ बड़े आकार के व्यवसायों एवं वृहद उत्पादन के लिए ही उपयुक्त होती हैं जबकि अल्प विकसित राष्ट्रों में संकीर्ण बाजारों की उपस्थिति लघुस्तरीय व्यवसायों के संचालन के लिए अधिक उपयुक्त होती है। ऐसी परिस्थिति में वृहद-स्तरीय उत्पादन विधियों को लघु-स्तरीय विधियों में विभक्त करने की आवश्यकता होती है जिनमें अधिक जटिल तान्त्रिकताओं का उपयोग कम होता है। इन परिस्थितियों में पश्चिमी राष्ट्रों में प्रचलित एवं उपलब्ध तान्त्रिकताओं में ऐसे सुधार एवं परिवर्तन करना आवश्यक होता है कि यह तान्त्रिकताएँ अल्प विकसित राष्ट्रों में उपलब्ध विभिन्न उत्पादन के घटकों के अनुपात के अनुसार उपयुक्त हों तथा देश की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप हो सकें। इस कार्य के लिए अल्प विकसित राष्ट्रों में बड़े पैमाने पर वैज्ञानिक अन्वेषण एवं शोध-कार्य की आवश्यकता होती है। आधुनिक तान्त्रिकताओं का उपयोग करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक होता है—

(अ) ऐसी तान्त्रिकताओं को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जिनका संचालन करने के लिए अल्पकालीन प्रशिक्षण पर्याप्त हो और सामान्य योग्यता-प्राप्त लोग इन्हें चालन में समर्थ हों।

(आ) ऐसी तान्त्रिकताओं का उपयोग अल्प विकसित राष्ट्रों के लिए उपयुक्त होता है जिनके सम्पूर्ण निर्माण में अधिक समय न लगता हो और जिनके द्वारा समाज को लाभ शीघ्र प्राप्त हो सकता हो।

(इ) ऐसी तान्त्रिकताएँ जिनके द्वारा कच्चा माल अथवा अन्य उत्पादन के घटकों की बचत होती है का उन तान्त्रिकताओं की तुलना में कम विरोध किया जाता है जिससे श्रम की बचत होती है।

(ई) अल्प विकसित राष्ट्रों के लिए वे तान्त्रिकताएं अधिक उपयुक्त होती हैं जिनसे देश के उत्पादन के घटकों के स्वरूप में वृद्धि होती है जैसे खनिजों में वृद्धि भूमि अथवा विद्युत शक्ति की उपलब्धि में वृद्धि आदि।

यद्यपि सिद्धान्त रूप से उपयुक्त बातों के आधार पर ही तान्त्रिकताओं के उपयोग का चयन किया जाना चाहिए परन्तु व्यवहार में नवीनतम तान्त्रिकताओं के उपयोग में बहुत सी कठिनाइयाँ आती हैं। तान्त्रिकता की प्रगति एवं विदेशी सहायता की उपलब्धि में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। अल्प विकसित राष्ट्रों को विभिन्न तान्त्रिकताओं में से सर्वाधिक उपयुक्त तान्त्रिकताओं के चयन का अवसर नहीं मिलता है क्योंकि यह जिन तान्त्रिकताओं का उपयोग करना चाहते हैं वह तब ही उन्हें उपलब्ध हो सकती है जब इन तान्त्रिकताओं को रखने वाले देश आवश्यकतानुसार तान्त्रिक ज्ञान एवं पूंजी प्रदान करने को तैयार हों। प्रायः तान्त्रिकताओं का चयन करते समय विदेशी पूंजी की उपलब्धि को आधार मानकर अल्प विकसित राष्ट्रों को उन्हीं राष्ट्रों से तान्त्रिक ज्ञान आदि लेना पड़ता है जिनके द्वारा आवश्यक विदेशी सहायता उचित शर्तों एवं आवश्यक पूंजीगत प्रसाधन उचित मूल्य पर उपलब्ध हो सकते हों।

नवीन तान्त्रिकताओं का उपयोग करते समय केवल प्रारम्भिक पूँजीगत प्रसाधनों की उपलब्धि पर ही ध्यान नहीं दिया जाता है बल्कि इन यन्त्रों एवं प्रसाधनों के संचालनार्थ कच्चे माल, मरम्मत एवं इनके पुर्जे की उपलब्धि की व्यवस्था दीर्घ काल तक बनी रहने पर भी विशेष ध्यान दिया जाता है।

प्रायः यह भी देखा जाता है कि विकसित राष्ट्र अल्प विकसित राष्ट्रों को वही तान्त्रिकताएं प्रदान करते हैं जो इन देशों के अनुपयुक्त एवं अकुशल हो जाती हैं और तान्त्रिकताएं इस प्रकार प्रदान की जाती हैं कि अल्प विकसित राष्ट्रों को दीर्घ काल तक विकसित राष्ट्रों पर इनके अन्तर्गत यन्त्रों आदि की मरम्मत, प्रतिस्थापन आदि के लिए निर्भर रहना पड़ता है। विकसित राष्ट्र अल्प विकसित राष्ट्रों के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में बड़े परिमाण में तान्त्रिक सहायता प्रदान कर देते हैं और जब अल्प विकसित राष्ट्र तान्त्रिक प्रगति की सम्क्रान्ति अवस्था (Transition Stage) में पहुँच जाता है तो तान्त्रिक सहायता को कठोर कर देते हैं। इस परिस्थिति में अल्प विकसित राष्ट्र को अत्यन्त कठोर शर्तों पर विदेशी सहायता लेनी पड़ती है

अथवा उपलब्ध तान्त्रिक प्रगति के निष्क्रिय हो जाने का भय उत्पन्न हो जाता है।

तान्त्रिक प्रगति की दौड़ में वर्तमान प्रवृत्तियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विकसित राष्ट्र अल्प विकसित राष्ट्रों से दीर्घ काल तक बहुत आगे बढ़े रहेंगे जब तक कि अल्प विकसित राष्ट्रों में मूलभूत शोध कार्य न किए जायें और यह राष्ट्र अपनी परिस्थितियों के अनुकूल नवीन तान्त्रिकता का स्वयं विकास एवं विस्तार न करें।

(५) भूमि प्रबन्ध में सुधार सम्बन्धी घटक—अल्प विकसित राष्ट्रों के आर्थिक विकास हेतु कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि करना आवश्यक होता है क्योंकि इसी के द्वारा पूँजी का आवश्यकतानुसार सचय हो सकता है। जब तक कृषि का उत्पादन इतना नहीं होता कि औद्योगिक श्रम को पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न आदि प्राप्त हो सकें, औद्योगिक विकास में निरन्तर बाधाएं आती रहती हैं। कृषि के विकास की अन्य सुविधाओं के लिए भूमि प्रबन्ध में आवश्यक परिवर्तन करना वांछनीय होता है। रासायनिक खाद, अच्छे बीज, सिंचाई की सुविधाएं, विपणि की सुविधाएं आदि के लाभ तभी प्राप्त हो सकते हैं, जब भूमि प्रबन्ध में भी सुधार किए जायें।

अल्प विकसित राष्ट्रों में प्राय अनुपस्थित जमींदार (Absentee Landlords) अधिक लगान (Rack Renting), कृषकों की असुरक्षा आदि की समस्याएं अत्यन्त गम्भीर होती हैं। यह अत्यावश्यक होता है कि कृषि करने वाले कृषक को भूमि की उपयोग-सम्बन्धी सुरक्षा तथा लगान-सम्बन्धी सुविधाएं प्राप्त हों ताकि उसे अधिक उत्पत्ति हेतु प्रोत्साहन मिले। जो वास्तव में कृषि करते हैं उन्हें अपने उत्पादन का बहुत कम भाग मिलता है और शेष सभी भाग भूमि पर अधिकार रखने वाले जमींदार को चला जाता है। वह भी उस जमींदार को जो भूमि पर कुछ भी काम नहीं करता है। कृषि मजदूर भूमि प्रबन्ध में सुधार करने की माँग करता है और चाहता है कि भूमि उसकी होनी चाहिए जो उस पर कृषि करता है। इस माँग की पूर्ति के बिना कृषि उत्पादन में वृद्धि होना अत्यन्त कठिन होता है। इसके अतिरिक्त जमींदारों के प्रति एक विरोध की भावना जनसमुदाय में जागृत रहती है क्योंकि यह अपने धन द्वारा राजनीतिक क्षेत्र में अपनी सत्ता बनाये रखने का सदैव प्रयत्न करते रहते हैं। समाजवादी दृष्टिकोण से भी जमींदारों का अस्तित्व अनुचित ही समझा जाता है। भारत जैसे राष्ट्र में जहां बहुत सी भूमि प्रबन्ध की विधियां हैं, भूमि प्रबन्ध में समानता लाकर सुधार करना अत्यन्त कठिन होता है। जमींदार वर्ग सदैव भूमि-प्रबन्ध के परिवर्तनों का विरोध करता है और ऐसी बाधाएं उत्पन्न करता है जिसमें तत्कालीन स्थिति में न्यूनातिन्यून परिवर्तन हों। राज्य और कृषक के बीच के मध्यस्थों को हटाने के लिए राष्ट्रों को अपने अर्थ साधनों को भी देखना पड़ता है क्योंकि क्षतिपूर्ति करने में राज्य के अत्यधिक साधन उपयोग में आ जाते हैं।

(६) राजनीतिक घटक—आर्थिक विकास एक निरन्तर गतिमान विधि है जिसके फल दीर्घ काल में ही प्राप्त हो सकते हैं इसलिए आर्थिक नियोजन की उत्तर-

साथ एक स्थायी सरकार की आवश्यकता होती है, जिसकी नीतियाँ समान एवं अपरिवर्तित रहें। स्थायी सरकार का तात्पर्य यह है कि सरकार की सत्ता एक ही राजनीतिक दल अथवा उसी प्रकार विचार वाले राजनीतिक दलों के हाथ में दीर्घ काल तक रहनी चाहिए। अल्प विकसित राष्ट्रों में प्रायः तथा स्थायी सरकार का बना रहना अत्यन्त कठिन होता है। आर्थिक विकास गतिमान होने से तत्कालीन व्यवस्थाओं में भारी परिवर्तन होने हैं जिसके कारण बहुत से वर्गों को हानि होती है। राष्ट्र के आर्थिक प्रतिफलों का वितरण नयी विधियों से होता है और परम्परागत रीति रिवाजों का शनैः शनैः समाप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। इन सब कारणों से सरकार की विकास की योजनाएं ही उसके विरोध का कारण बन जाती हैं और प्रायः विरोध इतना दृढ़ हो जाता है कि सरकार में परिवर्तन होना अनिवार्य हो जाता है। इसके अतिरिक्त अल्प विकसित राष्ट्रों की राजनीति में विदेशी सत्ताएं भी सक्रिय भाग लेती हैं विशेषतः उन देशों की जो विदेशी सत्ताओं के अखाड़े बन जाते हैं। उनकी पारस्परिक मुठभेड़ के कारण अल्प विकसित राष्ट्रों की सरकारें परिवर्तित होती रहती हैं। मध्य पूर्व, सुदूरपूर्व और लैटिन अमरीकी राष्ट्रों में से इस प्रकार के बहुत से उदाहरण मिल सकते हैं।

(७) सरकारी प्रबन्ध एवं नीति—अल्प विकसित राष्ट्रों और विशेषकर उन राज्यों में जहाँ दीर्घ काल तक विदेशियों ने राज्य किया, जनसाधारण का चरित्र उच्च कोटि का नहीं होता है। समस्त सरकारी प्रबन्ध इस प्रकार का होता है जो कृषि प्रधान के लिए उपयुक्त होता है। इस व्यवस्था में प्रबन्धन तथा सत्ता के केन्द्रीयकरण को विशेष महत्व प्राप्त होता है। शासकीय कार्य की गति अत्यन्त धीमी होती है और यह व्यवस्था किसी प्रकार विकास पथ विशेषतः औद्योगिक पथ पर अग्रसर राष्ट्र के हित में उपयोगी नहीं होती। इन राष्ट्रों की सरकार को विकास योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए तथा प्रारम्भिक प्रोत्साहन देने के लिए राष्ट्र की प्रत्येक आर्थिक क्रिया पर नियन्त्रण रखना होता है तथा उद्योग, कृषि तथा वाणिज्य सभी क्षेत्रों में हस्तक्षेप करना होता है। साथ ही निजी तथा राजकीय साहस में उचित सम बय भी स्थापित करना होता है। इन सब कार्यों के लिए अनेक ईमानदार शिक्षित तथा योग्य कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। उच्च अधिकारियों में योजना बनाने, उसको कार्यान्वित करने, सामंजस्य स्थापित करने तथा आवश्यक समायोजन करने में भी योग्यता होना आवश्यक होता है। आधुनिक सरकारी शासन में प्रबन्ध (Management) का विशेष स्थान होता है। शासन का उद्देश्य केवल जीवन को नियन्त्रित करना ही नहीं होता है प्रत्युत जनसमुदाय के हित का आयोजन करना शासन का कार्यप्रणाली का प्रमुख अंग होता है। इन परिस्थितियों में शासन का पुराना ढाँचा जो विदेशी सत्ता ने स्थापित किया है परिवर्तित करना अनिवार्य होता है। इस परिस्थिति में परिवर्तन करना अत्यन्त कठिन होता है क्योंकि नयी व्यवस्था के लिए शासकीय

कर्मचारियों का आवश्यक प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया जाना चाहिए। पुराने कर्मचारियों के मस्तिष्क तथा दृष्टिकोण इतने कठोर एवं सकुचित हो जाते हैं कि उनमें परिवर्तन लाना असम्भव होता है। वे अपनी रुढ़िवादी विचारधाराओं को सर्वोत्तम समझते हैं। पुराने कर्मचारियों के प्रशिक्षण के अतिरिक्त नये कर्मचारियों की नियुक्ति तथा पदोन्नति की विधियों में भी परिवर्तन करना आवश्यक होता है जिससे पक्षपात तथा भाई-भतीजावाद आदि त्रुटियों के प्रभाव को दूर किया जा सके।

यह कहना किसी प्रकार भी उचित न होगा कि अल्प-विकसित राष्ट्रों में जन-समुदाय का चरित्र उच्च कोटि का नहीं होता और इनमें ईमानदारी की कमी होती है अथवा उनमें बेईमानी बहुत अधिक की प्रवृत्ति होती है। इतिहास साक्षी है कि परम्परागत जीवन में जब आधुनिक विचारधारा का सम्मिश्रण होता है तो उस सक्रान्ति काल में राष्ट्रीय चरित्र को क्षति पहुँचती है और नवीन व्यवस्था की स्थापना होने तक सरकारी अधिकारियों में अपनी सत्ता का दुरुपयोग करने की प्रवृत्ति जाग्रत होती है। शासक तथा शासित में एक विशेष व्यक्तिगत भावना का प्रादुर्भाव होता है और यह दोनों ही पक्ष अपने व्यक्तिगत हितों को राष्ट्रीय हितों से भी अधिक महत्त्व देने लगते हैं। ऐसी परिस्थिति में राज्य को सतर्कता से कार्य करने की आवश्यकता होती है जिससे इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ दीर्घ काल तक चलती रहने के कारण स्थायित्व ग्रहण न कर लें। समय पाकर में अवश्य ही इन प्रवृत्तियों से राष्ट्र के बहुमूल्य साधनों का क्षय होता है जिसकी मात्रा में समुचित राजकीय नियन्त्रण द्वारा कमी की जा सकती है।

आधुनिक युग में राज्य आर्थिक क्रियाओं में या तो सक्रिय भाग लेता है या फिर आर्थिक क्रियाओं को अपनी नीतियों द्वारा प्रभावित करता है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में आर्थिक क्रियाओं पर अधिकाधिक नियन्त्रण राज्य के हाथ में होता है। राज्य सम्पत्ति को अधिकार में रखने, उत्पादन के साधनों का क्रय व विक्रय करने, बचत करने, विनियोजन करने, वस्तुओं के वितरण करने आय एवं सम्पत्ति की विषमताओं को कम करने आदि की समस्त क्रियाओं पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रण करता है। आयात एवं निर्यात-सम्बन्धी नीतियाँ राज्य द्वारा निर्धारित की जाती हैं, जो उत्पादक क्रियाओं के सम्बन्ध में लिए जाने वाले निर्णयों को प्रभावित करती हैं। राज्य मूल्य एवं विनिमय-दरों की स्थिरता को भी खुली छूट नहीं देता। इन सब क्रियाओं के अतिरिक्त राज्य स्वयं उत्पादन-कार्यों का सचालन करता है और आवश्यकता पड़ने पर व्यापार का सचालन भी करता है। राज्य की मौद्रिक एवं वित्तीय नीतियाँ उत्पादन, उपभोग एवं विनियोजन को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार राज्य द्वारा सचालित क्रियाओं का प्रभाव आर्थिक प्रगति के स्तर-क्रम पर पड़ता है। समाजवादी, साम्यवादी एवं अधिनायकवादी अर्थ-व्यवस्थाओं में राज्य द्वारा निर्धारित कार्यक्रमों का सचालन आर्थिक प्रगति हेतु किया जाता है। राजकीय नीतियाँ एवं मार्गदर्शन आधुनिक युग में आर्थिक प्रगति के मूलाधार समझे जाते हैं।

(८) प्रबन्ध के विकास की समस्या (Problem of Management Development)—विकासोन्मुख राष्ट्रों में राज्य का प्रमुख कर्त्तव्य होता है—देश की स्वतन्त्रता एवं आर्थिक स्थिरता के साथ तीव्र आर्थिक प्रगति करना। अधिकतर अल्प विकसित राष्ट्रों में कृषि जनसमुदाय का मुख्य जीविकोपार्जन का साधन होता है और आर्थिक प्रगति की तीव्र गति के लिए औद्योगिक विकास को अधिक महत्व दिया जाता है। औद्योगिक विकास को उचित निर्देशन हेतु देश में प्रबन्धकों के एक बड़े समूह की आवश्यकता होती है जो बड़े बड़े व्यवसायों का कुशल संचालन कर सकें। नियोजित विकास के अन्तर्गत देश में बहुत-सी बड़ी बड़ी औद्योगिक इकाइयाँ एवं कृषि फार्म स्थापित एवं संचालित किए जाते हैं। इनके कुशल संचालन हेतु सुशिक्षित एवं अनुभवी प्रबन्धकों की आवश्यकता होती है, परन्तु इस प्रबन्धक वर्ग का विकास शीघ्रता से नहीं हो पाता है जब तक कि इस सम्बन्ध में विशेष प्रयत्न न किए जाय। प्रबन्ध विकास के सम्बन्ध में अल्प विकसित राष्ट्रों में निम्नलिखित समस्याएं अनुभव की जाती हैं—

(१) विकासोन्मुख राष्ट्र में जब स्वयं स्फूर्त विकास (Take off) अवस्था की ओर अग्रसर होते हैं तो इन राष्ट्रों में दो प्रकार के समाज बन जाते हैं। एक परम्परागत समाज रहता है जो जनसमुदाय में व्यवसाय सम्बन्धी लम्बरूप गतिशीलता (Vertical Mobility) को नहीं अपनाता है और परम्परागत व्यवसायों एवं जायदाद आदि के अधिकार को अधिक महत्व देता है। दूसरी ओर ऐसे समाज का विकास भी होता है जो औद्योगिक संस्कृति (Industrial Culture) के गुणों को अपना लेता है और अपने जीवन स्तर एवं राष्ट्रीय विकास के सम्बन्ध में विवेकपूर्ण विचार रखता है। परम्परागत समाज के अनुयायी स्वयं के विकास को विवेकपूर्ण दृष्टि से नहीं देखता है और प्रबन्ध विकास की गति को धीमा करता है। दूसरी ओर औद्योगिक संस्कृति में विश्वास रखने वाला समुदाय मानवीय विकास पर महत्व देता है और उचित प्रशिक्षण एवं शिक्षा प्राप्त करता है। धीरे धीरे जब इस दूसरे समुदाय के सदस्यों को अर्थ व्यवस्था में सम्मान एवं प्रतिष्ठा मिलने लगती है तब प्रबन्ध विकास की ओर अन्य लोग आकर्षित होने लगते हैं परन्तु प्रारम्भिक अवस्था में प्रबन्ध प्रशिक्षण को समाज में बहुत कम महत्व दिया जाता है और प्रबन्ध की कला को पैतृक सम्पत्ति समझा जाता है और प्रायः यह कहा जाता है कि प्रबन्धक पैदायशी होते हैं (Managers are born)। परन्तु इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि पूर्वजों ने बड़े बड़े व्यवसायों का प्रबन्ध नहीं किया है और इन पूर्वजों ने अपने उत्तराधिकारियों को इस प्रकार अनुभव एवं प्रशिक्षण प्रदान किया है कि वह परम्परागत व्यवसायों का कुशल संचालन कर सकें।

(२) विकासोन्मुख अर्थ-व्यवस्था में राज्य द्वारा बहुत से बड़े-बड़े व्यवसाय स्थापित किए जाते हैं और निजी विनियोजकों को भी औद्योगिक क्षेत्र में नवीन बड़ी

इकाइयों में विनियोजन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इन व्यवसायों में नवीन व्यक्तियों का प्रवेश किया जाता है। दूसरी ओर उपभोक्ता-वस्तुओं के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि करने हेतु लघु उद्योगों का भी विस्तार किया जाता है। इस प्रकार लघु एवं वृहद उद्योगों की इकाइयों में तीव्रता से वृद्धि होती है जिसके अनुरूप प्रबन्धकों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि नहीं हो पाती है। ऐसी परिस्थिति में शासन अपने प्रशासनिक अधिकारियों को प्रबन्ध का काम सौंप देता है। फलस्वरूप राजनीतिक नेताओं एवं प्रशासनिक अधिकारियों में एक प्रकार का व्यावहारिक समझौता हो जाता है जिसके फलस्वरूप आधुनिक प्रबन्धकला को पर्याप्त महत्त्व नहीं दिया जाता है और प्रबन्ध-विकास हेतु उचित व्यवस्था नहीं की जाती।

(३) विकासोन्मुख अर्थ-व्यवस्था में उद्योगपति को अपने उत्पादन बेचने में कोई कठिनाई नहीं होती है क्योंकि जनसमुदाय के पास क्रय-शक्ति अधिक होने के कारण माँग पूर्ति से अधिक रहती है। मूल्यों का स्तर प्रायः बढ़ता रहता है और इस प्रकार उद्योगपति अधिक लागत पर उत्पादन करके भी पर्याप्त लाभोपार्जन कर लेता है। ऐसी परिस्थिति में उद्योगपति को अपनी लागत कम करने की आवश्यकता महसूस नहीं होती है और प्रबन्ध-विकास के लिए इसीलिए कोई ठोस प्रयास नहीं किए जाते हैं। वह सरकारी क्षेत्र के व्यवसायों पर प्रायः एकाधिकार प्राप्त कर लेता है तथा उन्हें यह कहकर कि इनका उद्देश्य लाभोपार्जन न होकर सेवा का आयोजन करना है, प्रबन्ध को कुशल बनाने के लिए व्यावहारिक प्रयत्न नहीं किए जाते हैं।

(४) विकासोन्मुख राष्ट्रों में स्वतन्त्र विकास की अवस्था में सक्रिय उग्रवादों की प्रवृत्ति (Militant) श्रम संघों का प्रादुर्भाव होता है। यह श्रम संघ औद्योगिक योजना एवं नीति-रचना में अपने प्रभाव को सुदृढ़ बनाने में सफल होते हैं और राज्य श्रम एवं प्रबन्ध के सम्बन्धों को अधिनियम द्वारा नियन्त्रित करता है। इस नियमन में भी राजनीतिक हितों का प्रमुख स्थान रहता है। इस प्रकार के नियमन से प्रबन्ध-नियन्त्रण को आघात पहुँचता है और प्रबन्ध-विकास एक जटिल समस्या बन कर रह जाता है।

प्रबन्ध विकास में उपर्युक्त समस्याओं का बड़ी सावधानी से निवारण करना चाहिए। प्रशासनिक अधिकारियों को प्रबन्ध-सम्बन्धी उत्तरदायित्व सौंपने के पूर्व उन्हें प्रबन्ध-कला का उचित प्रशिक्षण देना चाहिए। आर्थिक प्रगति की प्रारम्भिक अवस्था से ही प्रबन्ध प्रशिक्षण की संस्थाओं की स्थापना विदेशी विशेषज्ञों के सहयोग के साथ की जानी चाहिए।

पूँजी निर्माण एव आर्थिक प्रगति

[Capital Formations and Economic Development]

[पूँजी निमाण का अथ अल्प विकसित राष्टो म पू जी की अधिक आवश्यकता, उत्पादक क्रियाओ मे कम विनियोजन होने के कारण, पूँजी निर्माण एव राष्टोय आय पूँजी उपाद अनुपात अल्प विकसित राष्टो मे पूँजी निर्माण दर पूँजी निमाण की प्रविधि, बचत, बचत सम्बन्धी समस्याएँ बचत का निमाण ग्रामीण बचत, बचत की उपलब्धि बचत का विनियोजन विनियोजन के गुणात्मक लक्षण श्रमप्रधान क्रियाओ मे विनियोजन विपणि स्थिति के आधार पर विनियोजन अल्प विकसित राष्टो मे पूँजीनिमाण वद्धि के उपाय—विद्यमान क्षमता का पूण उपयोग, कुशल तान्त्रिकताएँ, श्रम शक्ति का अधिकतम उपयाग, साहसिक क्रियाओ का विस्तार, विदेशी सहायता एव व्यापार आन्तरिक बचत म वद्धि उद्देश्य बेराजगारी एव पूँजी निर्माण भारत म पूँजी निर्माण।]

आर्थिक प्रगति के लिए पू जी एक अत्यन्त महत्वपूण घटक होता है। इसके अन्तगत अथ साधनो की बचत तथा उनका उपयुक्त विनियोजन आते हैं। बचत के प्रमुख साधनो का विवरण नियोजित अथ-व्यवस्था की वित्तीय व्यवस्था के अध्याय मे दिया गया है और उस यहाँ दाहराना उचित प्रतीत नहीं हाता। विभिन्न साधनो मे जो बचत एकत्रित की जाती है उसे विनियोजन तक प्रवाहित करने के लिए देश म ऐसी सस्थाए होनी चाहिए कि वह इस बीच के मध्यस्थ काय को कर सके। व्यापारी एव उद्योगपति अपनी बचत का विनियोजन सुविधापूर्वक कर सकते हैं क्योंकि उन्हें वित्तीय विषयो का ज्ञान होता है तथा विपणि की सूचना भी यथासम्भव प्राप्त होती रहती है परन्तु बचत की क्रिया जनसमुदाय के विभिन्न वर्गों द्वारा की जाती है अन्तर केवल मात्रा का होता है। धनी वग की बचत की राशि व्यक्तिगत एव सम्पूण दोनों रूप से निधन वग की अपेक्षा अधिक होती है। निधन-वग की व्यक्तिगत बचत यद्यपि अत्यन्त न्यून होती है परन्तु इस वग को जनसख्या आधिक्य के कारण सम्पूण रूप से बचत महत्वपूण होती है। इस प्रकार उन लोगो द्वारा भी बडी मात्रा म बचत की जाती है जिनको वित्तीय विषयो का ज्ञान नहीं के समान होता है किन्तु यह बचत प्रभावशाली वित्तीय विधान सस्थाओ साधनो तथा सुविधाओ के अभाव म विनि

योजन के द्वार तक पहुँचने में असमर्थ रहती है और इस प्रकार बचत करने वालों और विनियोजन के पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित न हो सकने के कारण बचत राशि का उपयोग पूँजी निर्माण हेतु नहीं हो पाता। विकसित राष्ट्रों में वित्तीय संस्थाओं की क्रियाशीलता अत्यधिक होती है तथा विभिन्न वित्तीय संस्थाओं जैसे कृषिकोष-व्यवस्था, जीवन बीमा, विनियोजन ट्रस्ट आदि द्वारा बचत करने वालों तथा व्यवसाय और उद्योगों के मध्य सम्पर्क स्थापित कर लिया जाता है। ये वित्तीय संस्थाएँ विनियोजन-सम्बन्धी सूचनाओं का प्रसार एवं विज्ञापन करती हैं तथा मध्यस्थ के रूप में महत्त्वपूर्ण शृंखला का कार्य करती हैं विनियोजन की सरलता में वृद्धि करती हैं आकर्षक विनियोजन को (जो न्यासधारियों द्वारा बचत करने वालों के सम्मुख प्रस्तुत किये जाते हैं) बचत करने वालों की सुविधा एवं सुरक्षानुसार सुरक्षित सम्पत्ति का रूप प्रदान करती हैं। कार्यशील तथा विस्तृत वित्तीय व्यवस्था से व्यापार तथा उद्योगों के अर्थ-प्रबन्धन की लागत भी कम पड़ती है साथ ही, राष्ट्रीय बचत को औद्योगिक तथा भौगोलिक दृष्टि से अधिकतम गतिशीलता प्राप्त होती है। बचत की गतिशीलता से तात्पर्य है—न्यूनातिन्यून जोखिम तथा व्यय पर विनियोजन का एक उद्योग अथवा व्यवसाय से अन्य उद्योग अथवा व्यवसाय में अथवा एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में हस्तान्तरण सम्भव होना। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में राज्य भी एक महत्त्वपूर्ण वित्तीय संस्था का कार्य सम्पादित करता है। उदाहरणार्थ, भारत में डाक विभाग, राष्ट्रीय कोषागार, जीवन-बीमा निगम, कृषिकोष आदि विनियोजन-सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान करते हैं।

किसी व्यक्ति की किसी निश्चित अवधि की बचत दो घटकों पर निर्भर होती है—प्रथम उस निश्चित अवधि में प्राप्त आय तथा द्वितीय उस निश्चित अवधि में सेवाओं और वस्तुओं पर किया गया व्यय। जब वह अपने व्यय से अधिक आयोपार्जन करता है तभी उसकी पूँजी में वृद्धि सम्भव है। आधुनिक काल में लगभग सभी व्यक्तियों को पूँजी के संचयार्थ कतिपय सुविधाओं का त्याग करना पड़ता है। ऐसे भाग्यशाली विरले ही हैं जिनकी आय से पर्याप्त जीवन-स्तर बनाये रखने के पश्चात भी कुछ बचत हो जाती है। यही सिद्धान्त एक राष्ट्र पर भी सम्पूर्णतया आरोपित होता है। यदि हम किसी राष्ट्र की एक निश्चित काल की व्यवस्था का अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि पूँजीगत वस्तुओं का क्रय उपभोग अथवा सम्भावी उपभोग को दबा कर ही किया जाता है।

राष्ट्रीय आय में से उपभोग तथा विनियोजन का भाग विनियोजन की लागत (Cost) तथा लाभ (Benefits) का तुलनात्मक अध्ययन निश्चित करता है। विनियोजन की लागत में उन वस्तुओं के त्याग को सम्मिलित किया जाना चाहिए जो विनियोजित आय की राशि से तत्कालीन इच्छाओं की सन्तुष्टि हेतु क्रय की जा सकती थीं। दूसरी ओर विनियोजन के लाभ में उन अतिरिक्त वस्तुओं को सम्मिलित किया जाना चाहिए जो विनियोग के परिणामस्वरूप भविष्य में प्राप्त हो सकें। एक चतुर

व्यक्ति आय के विनियोजन अश को निश्चित करन के पूर्व विनियोजनार्थ किय गये त्याग तथा उसके परिणामस्वरूप प्राप्य भविष्यत् सुविधाओं का तुलनात्मक अध्ययन करता है। एक राष्ट्र के लिए भी यही विचारधारा लागू होती है। राष्ट्र के लिए विनियोग का लागत का तात्पय उन उपभोग की वस्तुओं से है जो अतिरिक्त विनियोजन न करने की दशा म उत्पादित की जा सकती हो तथा विनियोजन लाभ का अथ उन उपभोग का वस्तुओं के उत्पादन की सम्भावना से है जिनका उत्पादन अतिरिक्त विनियोजन द्वारा ही भविष्य म किया जा सकता है। आधुनिक जटिल अथ व्यवस्था के युग म बचत करने का निश्चय कुछ विशेष विचारधाराओं विशेषकर भविष्य की सुरक्षा के लिए किया जाता है तथा विनियोजन का निश्चय कुछ अन्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है। उदाहरणार्थ यदि एक व्यक्ति मोटरगाड़ी क्रयार्थ बचत करता है जिसे यह बक म जमा कर देता है बक उस बचत को ऐसे उद्योगपति को उधार दे देता है जो मोटरगाड़ी के अतिरिक्त किसी अन्य व्यवसाय म उस पूंजी का विनियोजन करता है। इस प्रकार बचत तथा विनियोजन करने के उद्देश्यों म गहन अन्तर होता है तथा इस अन्तर के निवारणार्थ वित्तीय सस्थाएं जैसे अभिकोष विनियोजन सस्थाएं, बीमा प्रमण्डल आदि मध्यस्थ का काय करती हैं।

पूंजी निर्माण का अर्थ—आन्तरिक बचत ऐच्छिक अथवा विवशतापूर्ण हो सकता है दूसरी ओर विदेशी अर्थ साधन विदेशी सहायता तथा अनुकूल विदेशी व्यापार एवं भुगतान द्वारा प्राप्त होते हैं। अल्प विकसित राष्ट्रों म अर्थ साधनों की प्राप्ति की समस्या के साथ उनके उत्पादक एवं इच्छित क्षेत्रों म विनियोजन की समस्या भी होती है। अशिक्षित जनसमुदाय म धन का एकत्रित करके रखने की इच्छा पायी जाती है। वह उसको उत्पादक उपयोग नहीं करता है। इस प्रकार अर्थ साधनों का प्राप्त करके उनके उचित विनियोजन का आयोजन करने की आवश्यकता को नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत महत्व दिया जाता है। विनियोजन का परिणाम पूंजी-निर्माण होता है किन्तु प्रत्येक विनियोजन पूंजी का निर्माण नहीं करता और न प्रत्येक विनियोजन पूंजी निर्माण कहा जा सकता है। केवल वे विनियोजन जिनकी विधि पूर्ण होने पर ऐसे पूंजीगत साधनों की वृद्धि हो जिनके द्वारा भविष्य म भौतिक साधनों की प्राप्ति हो सके, यद्यपि इनसे वर्तमान म प्रत्यक्षरूपेण किन्हीं उपभोग की इच्छाओं की पूर्ति मे सहायता नहीं होती है पूंजी निर्माण की श्रेणी म परिगणित किए जाते हैं। नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत अधिकतर विनियोजन पूंजी निर्माण हेतु किए जाते हैं और व्यापक दृष्टिकोण से योजना के अन्तर्गत समाज-सेवाओं आदि पर किए गये व्यय को भी पूंजी निर्माण सम्बन्धी विनियोजन समझना चाहिए क्योंकि इनके द्वारा श्रम जो उत्पादन का एक साधन है की काय क्षमता योग्यताओं तथा जीवनकाल म वृद्धि हो सकती है जिसके द्वारा भौतिक वस्तुओं के उत्पादन में भविष्य म वृद्धि की जा सकती है। राष्ट्र की चालू उत्पत्ति तथा आयात के उस भाग को जिसका उपभोग

नहीं होता है, पूँजी निर्माण कहा जा सकता है। पूँजीगत साधनों में कल व यन्त्र, औजार, सड़कें, भवनादि तथा उत्पादक क्रियाओं के अन्तर्गत निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं में रहने वाली वस्तुएँ तथा संग्रह सम्मिलित होते हैं।

हॉपकिन्स विश्वविद्यालय के साइमन कुजनेट्स (Simon Kuznets) ने पूँजी-निर्माण की दो परिभाषाएँ—एक व्यापक तथा द्वितीय संकुचित दी हैं। 'यदि प्रति व्यक्ति अथवा प्रति श्रमिक उत्पादन में दीर्घकालीन वृद्धि को आर्थिक विकास समझा जाय, तब पूँजी को इसका साधन कहना उचित होगा तथा पूँजी निर्माण चालू सम्पत्ति के समस्त उपयोगों को जिसके द्वारा यह वृद्धियाँ हों समझना चाहिए। अन्य शब्दों में, आन्तरिक पूँजी निर्माण में केवल देश की निर्माण-सामग्री तथा निर्माण-अवस्थाओं में रहने वाली वस्तुओं (Inventories) की वृद्धियों को ही सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए बल्कि वह व्यय जो उत्पादन के वर्तमान स्तर को बनाये रखने के लिए किए जायें उन्हें छोड़कर अन्य व्ययों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। इन बहुत सी मदों पर किए जाने वाले व्यय, जो प्रायः उपभोग में सम्मिलित किए जाते हैं, उदाहरणार्थ, शिक्षा, मनोरंजन तथा भौतिक सुविधाओं की उपलब्धि के लिए किए गये व्यय जिनके द्वारा स्वास्थ्य में वृद्धि तथा व्यक्तिगत उत्पादनक्षमता में वृद्धि होती है तथा समाज द्वारा किए गये वे समस्त व्यय जो रोजगार में लगी हुई जनसंख्या के चरित्र निर्माण के उत्थान के लिए किए जाते हों को भी पूँजी निर्माण में सम्मिलित किया जाना चाहिए।[1]

संकुचित दृष्टिकोण से 'दबाव द्वारा प्रेरित आर्थिक विकास तथा औद्योगीकरण की अवस्था में पूँजी निर्माण का अर्थ उन कल व यन्त्र तथा निर्माण की अवस्थाओं में रहने वाली वस्तुओं तक सीमित रहता है जो प्रत्यक्षरूप से औजार के रूप में प्रयोग की जाती हैं।'[2]

---

1 If a long term rise in national product per capita or per worker is taken to describe economic growth it may be desireable to define capital as means and capital formation as all uses *of current product that contribute to such rise In other words* domestic capital formation would include not only additions to construction equipment and inventions within the country but also other expenditures except those necessary to sustain output *at existing levels It would include outlays on many items now* comprised under consumption e g outlay on education recreation and material luxuries that contribute to the greater health and productivity of individuals and all expenditure by society *that serve to raise the morale of the employed population.*
(Simon Kuznets of John Hopkins University and National Bureau of Economic Research U S A.)

2 In a norrower sense under conditions of forceed economic gro- *(contd)*

संयुक्त राष्ट्र संघ के एक अध्ययन मण्डल द्वारा पूंजी को इस प्रकार परिभाषित किया गया है— पूँजी में उन वस्तुओं को सम्मिलित किया जाना चाहिए जो आर्थिक क्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं और जिनका उपयोग भविष्य में अन्य वस्तुओं के उत्पादन के लिए किया जाता है। पूंजी वास्तव में मनुष्य कृत प्रासाधन होता है जिसे मानवीय प्रयासों द्वारा बनाया जा सकता है। आन्तरिक पूंजी में दो प्रकार के प्रसाधन सम्मिलित होते हैं—

(अ) स्थिर आन्तरिक पूंजी—इसमें समस्त निर्माण, भूमि में किये जाने वाले सुधार, तथा यन्त्रों एवं अन्य उत्पादक प्रासाधनों को सम्मिलित किया जाता है।

(आ) कार्यशील पूँजी—इसमें कच्चा माल एवं अर्द्ध निर्मित वस्तुएँ* सम्मिलित की जाती हैं जो भविष्य के उत्पादन के लिए उपलब्ध होती हैं। किसी विशेष काल में उपयुक्त परिभाषा में सम्मिलित पूंजी स्कन्ध में जो वृद्धि होती है उस उस काल को पूँजी निर्माण कहा जाता है। वास्तव में पूंजी निर्माण एक प्रविधि होती है जिसके अन्तर्गत समाज में उपलब्ध वस्तुओं एवं सेवाओं का कुछ भाग किसी निश्चित काल में अन्तिम उपभोग से हटाकर उत्पादनक्षमता को बढ़ाने के लिए उपयोग कर लिया जाता है। व्यापक दृष्टिकोण से पूंजी निर्माण में चालू उत्पादन के केवल वह समस्त उपयोग जो राष्ट्रीय आय की वृद्धि में योगदान देते हैं सम्मिलित नहीं होते हैं बल्कि तान्त्रिक प्रशिक्षण, जन स्वास्थ्य, मनोरंजन, शिक्षा आदि पर किए जाने वाले व्यय जो श्रम की उत्पादनक्षमता बढ़ाते हैं और समाज का आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण करते हैं को भी पूंजी निर्माण में सम्मिलित किया जाता है।

पूंजी निर्माण की प्रक्रिया में तीन परस्पर निर्भर रहने वाली क्रियाएं सम्मिलित होती हैं—

(अ) बचत के परिमाण में वृद्धि जिससे जो साधन उपभोग पर व्यय होते हैं उनका उपयोग उत्पादक वस्तुओं के उत्पादन के लिए किया जा सके।

(आ) देश के एक कुशल वित्तीय एवं साख व्यवस्था एवं संगठन जिससे समाज की बचत वास्तविक विनियोजकों को पहुँचती रहे।

(इ) विनियोजन की क्रिया जिससे साधनों का उपयोग पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन के लिए किया जा सके।

अल्प विकसित राष्ट्रों में पूंजी की अधिक आवश्यकता—आर्थिक विकास सारा अल्प विकसित राष्ट्र जनसमुदाय के जीवन-स्तर में इतना सुधार करना चाहते हैं कि वह कुछ काल के अन्दर अन्य विकसित राष्ट्रों के जीवन स्तर के समान हो सके।

---

wth and industrialization capital formation may be viewed as limited to plant equipment and inventories that are directly serviceable as tools

(Simon Kuznets of John Hopkins University and National Bureau of Economic Research U S A)

जीवन-स्तर की वृद्धि हेतु राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय में पर्याप्त वृद्धि होनी चाहिए और इस वृद्धि के लिए पर्याप्त पूँजी का विनियोजन आवश्यक होता है। अल्प विकसित राष्ट्रों में राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने हेतु प्राय अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है क्योंकि इन राष्ट्रों में पूँजी एवं उनके द्वारा उत्पन्न होने वाली आय का अनुपात अधिक होता है, जिसके निम्नलिखित मूल कारण हैं—

(१) कम विकसित राष्ट्र उपभोक्ता-वस्तुओं का उत्पादन अधिक कार्यकुशलता से कर सकते हैं क्योंकि उनमें श्रम की बाहुल्यता होती है तथा तान्त्रिक कुशलताओं की कमी। छोटे-छोटे यन्त्रों की सहायता से उपभोक्ता-वस्तुओं का उत्पादन मितव्ययता से करना सम्भव होता है, परन्तु पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन के लिए न तो कुशल श्रम एवं विशेषज्ञ और न आवश्यक मशीन एवं यन्त्र इनके पास उपलब्ध होते हैं जिसके फलस्वरूप पूँजीगत परियोजनाओं की लागत अधिक होती है और उनके द्वारा स्थापित आय कम।

(२) अल्प विकसित राष्ट्रों में पूँजी का अपव्यय भी अधिक होता है। कुशल श्रम की न्यूनता होने के कारण जटिल यन्त्रों आदि का सचालित करने का काय अर्द्ध-कुशल श्रमिकों द्वारा कराया जाता है जिसके फलस्वरूप टूट-फूट होती है। दूसरे अनुभवहीनता के फलस्वरूप वस्तु से साधन प्रयोगों पर व्यय हो जाते हैं तथा उपलब्ध उत्पादनक्षमताओं का पूर्णतम उपयोग नहीं किया जाता है। भूमिग्रस्त साधनों, जैसे भूमि के उपजाऊपन, खनिज तथा अन्य प्रकृतिदत्त सुविधाओं का पूर्णतम उपयोग नहीं किया जाता है। इसके साथ ही, विनियोजन के कार्यक्रम निर्धारित करते समय बहुत-सी गम्भीर त्रुटियाँ भी होती हैं जिससे विनियोजन का कुछ भाग आयोपाजन किए बिना ही नष्ट हो जाता है। अधिकतर साधनों का उपयोग परम्परागत उद्योगों एवं आर्थिक क्रियाओं में किया जाता है जिसके फलस्वरूप कुछ क्षेत्रों में पूँजी की इतनी अधिकता हो जाती है कि अपव्यय होता है और अन्य क्षेत्रों में पूँजी की कमी के कारण उपलब्ध सुविधाओं का पूरा उपयोग नहीं हो पाता है। इन सभी कारणों के फलस्वरूप पिछड़े हुए राष्ट्रों में राष्ट्रीय आय की वृद्धि के लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है।

(३) अल्प विकसित राष्ट्रों में पूँजी कम उत्पादक इसलिए होती है कि इन राष्ट्रों में तान्त्रिकताओं एवं ज्ञान का विकास धीमी गति से होता है जबकि पूँजी की उत्पादकता तान्त्रिकताओं के निरन्तर सुधार पर निर्भर रहती है। यदि पूँजी के नवीन तान्त्रिकताओं में विनियोजन के साथ साथ उचित शिक्षा एवं प्रशिक्षण के लिए भी विनियोजन किया जाय तो अल्प विकसित राष्ट्रों में विकास की गति विकसित राष्ट्रों की तुलना में अधिक तीव्र हो सकती है परन्तु शिक्षा एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था अल्प काल में उचित फल प्रदान नहीं कर सकती है और जब एक अल्प-विकसित राष्ट्र में तान्त्रिकताओं के कुछ सुधार हो पाते हैं जब तक विकसित राष्ट्र की तान्त्रिकताओं में और भी सुधार हो जाते हैं। विकसित राष्ट्रों में पूँजी के विनियोजन में वृद्धि किए

बिना ही तान्त्रिकताओं के सुधार से वर्तमान पूँजी पर होने वाला उत्पादन बढ़ाना सम्भव होता है। ऐसी परिस्थिति में अल्प विकसित राष्ट्रों में पूँजी द्वारा आय में वृद्धि कम हो रहती है।

(४) पूँजी एवं आय का अनुपात अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में अलग अलग होता है। जनोपयोगी व्यवसायों (Public Utility Undertakings) में पूँजी एवं आय का अनुपात कम होता है जबकि निर्माण सम्बन्धी क्रियाओं में यह अनुपात कम होता है। इसके अतिरिक्त आर्थिक विकास के प्रारम्भिक काल में पूँजी एवं आय का अनुपात कम रहता है क्योंकि नवीन पूँजीगत परियोजनाओं से प्राप्त होने वाला लाभ तुरन्त उपलब्ध न होकर दीर्घ काल में प्राप्त होते हैं। जनोपयोगी सेवाओं के व्यवसायों द्वारा भी दीर्घ काल में केवल इन्हीं व्यवसायों की उत्पादकता नहीं बढ़ती परन्तु इनके सेवित जनसमुदाय की कार्यक्षमता में भी वृद्धि होती है। कृषि के क्षेत्र में अल्प विकसित राष्ट्रों में यन्त्रीकरण की अनुपस्थिति में पूँजी एवं आय का अनुपात उद्योगों की तुलना में अधिक होता है। अल्प विकसित राष्ट्रों में नियोजित व्यवस्था के द्वारा विकास प्रारम्भ किया जाता है और कृषि विकास जनोपयोगी सेवाओं पूँजी प्रधान परियोजनाओं तथा नवीन उद्योगों की स्थापना को विशेष महत्व प्रदान किया जाता है। इन सभी क्षेत्रों में पूँजी एवं आय का अनुपात अधिक होता है जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय प्रगति की दर बनाये रखने के लिए अधिक अर्थ साधनों को जुटाना पड़ता है।

(५) अल्प विकसित राष्ट्रों में अर्थ-साधनों की कमी होती है और श्रम शक्ति की बाहुल्यता। ऐसी परिस्थिति में पूँजीप्रधान विधियों के स्थान पर श्रमप्रधान तान्त्रिकताओं को प्राथमिकता दी जाती है। जिन परियोजनाओं में श्रम प्रधानविधियाँ उपयुक्त नहीं होती हैं उनमें ऐसी परियोजनाओं को अधिक महत्व दिया जाता है जिनमें पूँजी का उपयोग कम हो। इनको सचालित करने में चालू व्यय अधिक होता है और ह्रास अधिक होता है तथा इनका जीवनकाल भी कम होता है। इन परियोजनाओं का सचालन इसलिए किया जाता है कि इनमें प्रारम्भिक विनियोजन कम होता है और राष्ट्र में अपने न्यून पूँजी के साधनों के विकास का प्रारम्भ किया जाता है परन्तु इन प्रारम्भिक कम विनियोजन वाली परियोजनाओं में चालू व्यय एवं ह्रास अधिक होने के कारण इनसे प्राप्त होने वाली शुद्ध आय कम होती है। इस प्रकार पूँजी एवं आय का अनुपात अधिक रहता है।

उत्पादक क्रियाओं में विनियोजन कम होने के कारण—उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अल्प विकसित राष्ट्रों में नियोजित विकास के लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है और विकसित राष्ट्रों के समान विकसित होने के लिए उन्हें अधिक पूँजी का विनियोजन करना चाहिए, परन्तु अल्प विकसित राष्ट्रों में उत्पादक क्रियाओं में विनियोजन कम किया जाता है जिसके प्रमुख कारण निम्न प्रकार होते हैं—

(अ) स्वभाव—जनसमुदाय नवीन तथा अपरिचित आर्थिक क्रियाओं के महत्व एवं तीव्रता की तुलना में परिचित एवं प्राचीन चली आ रही आर्थिक क्रियाओं को प्राथमिकता देते हैं। स्वभाव का निर्माण अनेक कारणों का परिणाम है। स्वभाव का परिवर्तन इन अवस्थाओं में परिवर्तन के पश्चात् ही सम्भव है। रूढ़िवादी तथा पुरानी रीति रिवाजों द्वारा नियन्त्रित अर्थ व्यवस्था में ही लोग अपना कल्याण समझते हैं। तथ्य है शिक्षा का अभाव, पतृक स्थान, प्रोत्साहन की अनुपस्थिति।

(आ) सीमित माँग—जनसमुदाय की आय अत्यन्त अल्प होने के कारण उनकी क्रय शक्ति भी अत्यन्त न्यून होती है। माँग ही कृषक तथा ग्रामीण श्रमिक आत्म निर्भरता पर विश्वास करते हैं। अपनी आवश्यकताओं का स्थानीय अपर्याप्त उत्पादन द्वारा ही सन्तुष्ट कर लेने के कारण प्रचलित अवस्थाओं से आत्म-सन्तुष्टि की भावना की प्रबलता भी उनमें पायी जाती है। निर्धनता के कारण 'न्यून आवश्यकताएँ—न्यून जीवन' उनका ध्येय हो जाता है। इस प्रकार वस्तुओं की नवीन पूर्ति का आवश्यक माँग प्राप्त होना कठिन होता है तथा निजी साहसी माँग उत्पन्न करने की जोखिम नहीं उठाना चाहता।

(इ) श्रम की उत्पादनक्षमता का अभाव—अशिक्षा, अज्ञानता, निवास का अस्वास्थ्यकर वातावरण, गतिशीलता का अभाव, निम्न जीवन-स्तर, अपर्याप्त, अपोषक भोजन एवं अन्य अनिवार्यताएँ श्रमिक की कार्यक्षमता में ह्रास उत्पन्न करती हैं। परिणाम होता है, श्रम की सस्ती एवं सुगम उपलब्धि होने पर भी उत्पत्ति-लागत का अधिक होना।

(ई) आधारभूत सुविधाओं की कमी—यातायात, संवाद, जल की वितरण-व्यवस्था, विद्युत् शक्ति प्रदाय, अधिकोषण अथवा साख-सुविधाएँ आदि आधारभूत सुविधाओं की अनुपस्थिति के कारण साहसी का सम्भावित लाभ कम ही रहता है। लाभ की न्यूनता किसी भी उद्योग की ओर पूँजी के आकर्षण को नहीं, अपितु उसकी उदासीनता (Indifference) को जाग्रत करती है।

(उ) योग्य साहसियों की कमी—अल्प विकसित राष्ट्रों में साहस का कार्य अत्यन्त जोखिमपूर्ण होता है क्योंकि वह तथ्यों एवं आँकड़ों से सर्वथा अनभिज्ञ रहता है। केवल अनुमान मात्र पर आधारित कोई भी उद्यम अधिकांश में असफल रहना अवश्यम्भावी है। अनुभव की अनुपस्थिति नये साहसों की ओर आकर्षण उत्पन्न नहीं करती, यद्यपि अल्प विकसित राष्ट्रों में साहसी को विकसित राष्ट्रों के अनुभवों का लाभ उपलब्ध है परन्तु आधुनिक युग में साहसी को विभिन्न योग्यताओं तथा अनुभवों की आवश्यकता होती है।

(ऊ) पूँजीगत वस्तुओं की अनुपलब्धि—नवीन उद्योग की स्थापना के लिए मशीनादि पूँजीगत वस्तुओं की आवश्यकता होती है जो देश में उपलब्ध नहीं होतीं और लगभग समस्त वस्तुएँ विदेशों से आयात करनी पड़ती हैं। इन वस्तुओं का मूल्य

अधिक देना पड़ता है तथा बीमा एवं यातायात व्यय भी अत्यधिक होता है। साथ ही, इन मशीनों को चलाने के लिए निपुण श्रमिक देश में नहीं मिलते उनके हेतु भी विदेशों का मुँह जोहना होता है। यह मुद्रा जोखी अत्यधिक महँगी सिद्ध होती है। इन कारणा-वश साहसी की लागत तथा जोखिम बढ़ जाते हैं। कभी कभी तो कच्चे माल के लिए आयात पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

(ग) श्रम की उपलब्धि तथा गतिशीलता—यद्यपि जनसंख्या का घनत्व अधिक होने के कारण श्रम की उपलब्धि पर्याप्त सुगम एवं सस्ती होती है किन्तु यह श्रम उद्योगों में कार्य करना पसन्द नहीं करता क्योंकि इसे कारखाने के अस्वस्थ्यकर सघन एवं दूषित वातावरण में नियमबद्ध एवं अनुशासित परतन्त्र की भाँति कार्य करना होता है तथा उसे अपने परम्परागत एवं स्वच्छन्द निवास स्थानों का परित्याग रुचिकर नहीं होता। श्रमिक वर्ग अधिक आय के प्रलोभन पर भी अपने परिवार ग्रामीण समाज तथा अपने पैतृक एवं परम्परागत व्यवसायों से दूर नहीं होना चाहता। यदि परिस्थितियोंवश उसे उद्योगों में कार्य करने के लिए विवश होना पड़ता तब वह अपने स्वभाव के परिवर्तन हेतु समय समय पर अपने पुराने व्यवसाय तथा समाज में जाता है और इस प्रकार अल्प विकसित राष्ट्रों में औद्योगिक श्रम की महत्वपूर्ण समस्या अनुपस्थित होती है जिसके कारण श्रम की कार्यक्षमता तथा उत्पादन शक्ति कम रहती है। साहसी श्रम सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण भी विनियोजन की ओर आकर्षित नहीं होता है।

पूँजी निर्माण एवं राष्ट्रीय आय

पूँजी निर्माण का आर्थिक प्रगति की प्रक्रिया में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि पूँजी निर्माण के परिणाम पर राष्ट्रीय उत्पादन एवं आय की वृद्धि की दर निर्भर रहती है। उत्पादन के विभिन्न घटकों—प्राकृतिक साधन भूमि एवं श्रम—में मनुष्य द्वारा असीमित मात्रा में वृद्धि नहीं की जाती है। पूँजी को मनुष्यकृत उत्पादन घटक होने के कारण मानव के प्रयासों से असीमित मात्रा तक विस्तरित किया जा सकता है। भूमि एवं प्राकृतिक साधनों का परिमाण प्राय स्थिर होता है और इनमें आवश्यकतानुसार वृद्धि करना सम्भव नहीं होता है। इसी प्रकार श्रम की मात्रा अथवा पूर्ति भी समाज की जन संख्या की संरचना एवं वातावरण पर निर्भर रहती है। किसी भी निश्चित समय में किसी राष्ट्र में जब यह तीनों—भूमि प्राकृतिक साधन एवं श्रम—उत्पादन के घटक सीमित रहते हैं तो आर्थिक प्रगति के लिए पूँजी ही ऐसा साधन बचता है जिसमें वृद्धि करके राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। इस प्रकार किसी भी अर्थ-व्यवस्था की उत्पादनक्षमता में वृद्धि उसकी पूँजी निर्माण में वृद्धि करने की क्षमता पर निर्भर रहती है। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि उत्पादनक्षमता की वृद्धि अर्थ व्यवस्था की चालू आय के उस अनुपात पर निर्भर रहती है जो पूँजी निर्माण के लिए उपयोग होता है। पूँजी स्कंध के गुणा-

समय तक भी अर्थ-व्यवस्था की उत्पादनक्षमता को प्रभावित करता है। पूँजी निर्माण निम्न प्रकारेण उत्पादनक्षमता बढ़ाने में योगदान प्रदान करता है—

(अ) पूँजी निर्माण द्वारा उत्पादन की जटिल विधियों का उपयोग करना सम्भव होता है। प्रत्येक उत्पादन की समस्त प्रक्रिया एक ही केन्द्र पर न होकर विभिन्न केन्द्रों पर की जाती है और प्रत्येक केन्द्र किसी वस्तु के केवल कुछ अंगों का ही उत्पादन करता है। इस प्रकार उत्पादन में विशिष्टीकरण का प्रादुर्भाव होता है और बड़े पैमाने का उत्पादन सम्भव होता है। ऐसी परिस्थिति में उत्पादन की प्रविधि घुमाव फिरावदार होती है। इस घुमाव फिरावदार उत्पादन विधि में प्रत्येक व्यवसाय की उत्पादनक्षमता का विस्तार होना सम्भव होता है।

(आ) पूँजी सञ्चय में वृद्धि हो जाने से पूँजी का एक ओर गहन उपयोग होता है और दूसरी ओर, पूँजी का विस्तार भी होता है। इसलिए पूँजी का अधिक लाभप्रद उपयोग करने के लिए जटिल यन्त्रों एवं विधियों का उपयोग करना आवश्यक होता है जो पूँजी की बड़ी मात्रा में उपयोग करके ही सम्भव हो सकता है क्योंकि जटिल यन्त्रों आदि की मूल लागत एवं सञ्चालन-लागत दोनों ही अधिक होती है। इसके साथ पूँजी की उपलब्धि में वृद्धि होने पर पूँजी का उपयोग विभिन्न प्रकार के उत्पादनों पर किया जाना सम्भव होता है। इस प्रकार पूँजी निर्माण द्वारा समस्त अर्थव्यवस्था की गतिविधियों में तीव्रता आती है और उत्पादनक्षमता में वृद्धि होती है।

(इ) विनियोजन की वृद्धि से विकास का चक्र गतिमान होता है और राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि का क्रम प्रारम्भ हो जाता है। जब विनियोजन-दर में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है तो इसके परिणामस्वरूप एक ओर, उत्पादक एवं पूँजीगत वस्तुओं में वृद्धि होती है और दूसरी ओर जनसाधारण की क्रय शक्ति में वृद्धि होती है। उत्पादक वस्तुओं की पूर्ति में वृद्धि होने से नवीन कारखानों की स्थापना होती है और राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि होती है। दूसरी ओर जनसाधारण की क्रय शक्ति बढ़ने पर उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में वृद्धि होती है जिसके अनुरूप उत्पादन की क्रियाओं का विस्तार होता है और राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार विनियोजन की वृद्धि द्वारा विनियोजन गुणक क्रियान्वित होने लगता है और अर्थ-व्यवस्था आर्थिक प्रगति के पथ पर अग्रसर हो जाती है।

(ई) तान्त्रिक प्रगति का लाभ उठाने के लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। नवीन तान्त्रिकताओं के लिए अधिक लागत वाले यन्त्रों एवं प्रसाधनों की आवश्यकता तो होती ही है साथ ही, इन तान्त्रिकताओं के लिए जिन उपरिव्यय सुविधाओं (overhead facilities) की आवश्यकता होती है उनके लिए अधिक पूँजी-विनियोजन आवश्यक होता है। पूँजी-स्कन्ध में वृद्धि होने से नवीन तान्त्रिकताओं का वृहद स्तर पर उत्पादन हेतु उपयोग किया जाता है और फिर उपरिव्यय पूँजी को भी बढ़ाया जाता है। इस प्रकार विकास की प्रक्रिया गतिशील हो जाती है।

(उ) पूँजी स्कन्ध की उपलब्धि होने पर नवीन नगरों का विकास एवं विस्तार होता है। इन नगरों में उपरिव्यय सुविधाओं का विस्तार किया जाता है। नवीन औद्योगिक श्रमिक वर्ग का विस्तार होता है जो जीवन की सभी सुविधाओं की माँग करता है। इस प्रकार उत्पादन के नवीन व्यवसायों के विस्तार के अवसरों में वृद्धि होती है जो आर्थिक प्रगति की गति को बढ़ाते हैं।

यद्यपि पूँजी आर्थिक प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान देती है परन्तु इसके साथ में अन्य घटकों का सहयोग प्राप्त होने पर ही उत्पादनक्षमता एवं उत्पादन वृद्धि हो सकती है। विकास की प्रारम्भिक अवस्था में नवीन अभिनवों का व्यापारिक उपयोग करने हेतु अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है परन्तु एक बार पूँजीगत प्रसाधनों की व्यवस्था करने के पश्चात कम पूँजी का उपयोग करके अधिक उत्पादन प्राप्त हो सकता है। यही कारण है कि अल्प विकसित एवं विकसित राष्ट्रों में पूँजी निर्माण की दरों में अधिक अन्तर नहीं होते हुए भी विकसित राष्ट्रों में राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि की दर अधिक रहती है। पूँजी की उत्पादकता देश में उपलब्ध प्रशिक्षित श्रमिक वर्ग पर भी निर्भर रहती है। जिस समाज में मानव में पूँजी विनियोजन बड़ी मात्रा में किया जाता है वहाँ पूँजी के मूर्त विनियोजन (Tangible Investment) से उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि होती है। इस दृष्टिकोण से भी विकसित राष्ट्रों में पूँजी की उत्पादकता अधिक रहती है क्योंकि यहाँ के नागरिकों का तान्त्रिक स्तर एवं ज्ञान ऊँचा रहता है।

पूँजी उत्पाद अनुपात (Capital output Ratio)

आर्थिक प्रगति से सम्बन्धित अध्ययन में पूँजी निर्माण एवं आय वृद्धि के अनुपातिक सम्बन्ध को अत्यन्त महत्वपूर्ण समझा जाने लगा है क्योंकि इसके अध्ययन के आधार पर ही अर्थ व्यवस्था की प्रगति का ठीक ठीक अनुमान लगाना सम्भव हो सकता है। जार्ज रोजेन ने अपनी पुस्तक Industrial Change in India में पूँजी उत्पाद अनुपात को परिभाषित करते हुए कहा है— यह किसी अर्थ व्यवस्था अथवा उद्योग का किसी निश्चित काल के विनियोजन एवं उसी अर्थ व्यवस्था अथवा उद्योग के उसी काल के उत्पादन का सम्बन्ध होता है।[1] आर्थिक प्रगति के सन्दर्भ में पूँजी उत्पाद अनुपात किसी निश्चित पूँजी-वृद्धि एवं उसी निश्चित काल की उत्पादन वृद्धि के अनुपात को कहते हैं।

पूँजी उत्पाद अनुपात निम्नलिखित घटकों से प्रभावित होता है—

(अ) पूँजी उत्पाद अनुपात प्रत्यक्षरूप से वर्तमान पूँजी-स्कन्ध के उपयोग के परिमाण पर निर्भर रहता है। यही कारण कि मन्दीकाल में प्रभावशाली माँग की

---

1 The capital output ratio may be defined as the relationship of investment in a given economy or industry for a given time period to the output of that economy or industry for a similar time period (George Rosen)

कमी के कारण पूँजी का अनुकूलतम उपयोग नहीं होने से पूँजी-उत्पाद अनुपात अधिक रहता है। मशीनों के रूप में जो पूँजी उपलब्ध होती है उसका कई पालियों में उपयोग करके उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है और पूँजी का उत्पादन से अनुपात कम हो सकता है।

(आ) समस्त अर्थ-व्यवस्था का पूँजी उत्पाद अनुपात अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के पूँजी उत्पाद अनुपात पर निर्भर रहता है। जब अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के महत्व एवं आकार में परिवर्तन होता है अथवा किन्हीं व्यवसायों में पूँजी बचाने वाली अथवा पूँजीप्रधान तान्त्रिकताओं का उपयोग प्रारम्भ किया जाता है तो अर्थ-व्यवस्था का पूँजी-उत्पाद-अनुपात प्रभावित होता है। विकासशील राष्ट्रों में जब कृषि एवं हल्के उद्योगों (Light Industries) के स्थान पर पूँजीगत वस्तुओं एवं भारी उद्योगों का महत्व दिया जाता है तो पूँजी उत्पाद अनुपात में वृद्धि होती है।

(इ) अर्थ-व्यवस्था में किए जाने वाले विनियोजन के परिपक्व होने में जो समय लगता है उस पर भी पूँजी-उत्पाद अनुपात निर्भर रहता है। यदि विनियोजन ऐसी परियोजनाओं में किया जाता है जिनकी पूर्ति दीर्घ काल में होती है तो इस काल में पूँजी-उत्पादन अनुपात अधिक रहता है क्योंकि नवीन पूँजी-विनियोजन द्वारा उत्पादन में अल्प काल में वृद्धि नहीं होती है।

(ई) देश के विकास-स्तर पर भी पूँजी उत्पाद अनुपात निर्भर रहता है। विकसित राष्ट्रों में प्रायः पूँजी-उत्पाद अनुपात कम रहता है क्योंकि ऐसी परियोजनाओं में जिनमें प्रारम्भिक विनियोजन बड़ी मात्रा में किया जाता है उनकी पूर्ति विकास के प्रारम्भिक काल में हो जाती है और बाद के वर्षों में इन परियोजनाओं पर केवल रख-रखाव एवं निर्वाह-सम्बन्धी विनियोजन किए जाते हैं जबकि इनके द्वारा उत्पादन इनकी पूर्ण क्षमता के अनुसार प्राप्त हो जाता है। दूसरी ओर अल्प विकसित राष्ट्रों में प्रारम्भिक विकासकाल में परियोजनाओं में अधिक विनियोजन करना होता है और उनसे उत्पादन वर्षों के बाद होता है। ऐसी परिस्थिति में इन राष्ट्रों में पूँजी-उत्पाद-अनुपात अधिक रहता है।

(उ) मूल्य स्तर में परिवर्तन होने पर भी पूँजी-उत्पाद अनुपात प्रभावित होता है। मूल्य-स्तर में वृद्धि होने पर उत्पादन में सम्मिलित होने वाले घटकों (Inputs) की लागत बढ़ जाती है, मुद्रा-दर एवं वृद्धि-दर बढ़ जाती है, पूँजीगत सम्पत्तियों का मूल्य बढ़ जाता है और इन सबके परिणामस्वरूप पूँजी-उत्पाद अनुपात में वृद्धि होती है।

(ऊ) बाहरी मितव्ययताओं की उत्पत्ति एवं उद्योगों के उपयोग से पूँजी-उत्पाद-अनुपात कम होता है। सामाजिक उपरिव्यय पूँजी एवं सार्वजनिक सेवाओं में वृद्धि होने पर इनसे लाभान्वित होने वाले क्षेत्रों में पूँजी-उत्पाद-अनुपात कम हो जाता है। कभी-कभी किसी एक उद्योग के विस्तार से कुछ अन्य उद्योगों का कच्चा माल एवं

पूँजीगत प्रसाधन कम लागत पर उपलब्ध हो जाते हैं और इस प्रकार लाभान्वित होने वाले उद्योगों में पूँजी उत्पाद अनुपात कम हो जाता है।

(ए) अर्थ-व्यवस्था के कुछ क्षेत्रों में अत्यधिक उच्चावचान होने पर भी समस्त अर्थ-व्यवस्था का पूँजी उत्पाद अनुपात स्थिर रह सकता है क्योंकि अन्य क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तनों की प्रतिक्रिया इन उच्चावचानों के प्रभाव को नष्ट कर देती है। यही कारण है कि विकसित राष्ट्रों में ब्याज दर में वृद्धि होने तथा क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम संचालित होने पर भी पूँजी उत्पाद अनुपात स्थिर होता है क्योंकि तान्त्रिक प्रगति से श्रमिक की कुशलता में सुधार तथा बाहरी सुविधाओं में विस्तार होने से उत्पत्ति ह्रास नियम आदि का प्रभाव नष्ट हो जाता है।

(ण) वास्तव में समस्त अर्थ-व्यवस्था का पूँजी उत्पाद अनुपात देश के उद्योगों के सम्मिश्रण पर निर्भर रहता है। अल्प विकसित राष्ट्रों में उत्पादन के घटकों की पूर्ति इस प्रकार की होती है कि प्रति पूँजी की इकाई के लिए अधिक श्रम उपलब्ध होता है परन्तु श्रम की उत्पादकता कम होने के कारण पूँजी उत्पाद अनुपात फिर भी अधिक रहता है। यदि अर्थ-व्यवस्था में कम पूँजी प्रयोग करने वाले उद्योगों की प्रधानता होती है (अर्थात हल्के एवं उपभोक्ता उद्योग अधिक होते हैं) तो पूँजी उत्पाद अनुपात कम होता है। अल्प विकसित राष्ट्रों में जहाँ श्रमप्रधान उद्योगों का बाहुल्य होता है वहाँ विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं में पूँजीप्रधान उद्योगों का अर्थ-व्यवस्था में अधिक महत्व होता है जिसके परिणामस्वरूप विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं में पूँजी उत्पाद अनुपात अधिक हो सकता है यदि इस परिस्थिति को अधिक कुशल उत्पादन द्वारा बदल न दिया जाय।

अल्प विकसित राष्ट्रों में पूँजी निर्माण की दर

पूँजी निर्माण की दर विकसित राष्ट्रों में अल्प विकसित राष्ट्रों की तुलना में अधिक रहती है। इसका प्रमुख कारण अल्प विकसित राष्ट्रों में उत्पादकता एवं बचत का न्यून स्तर है। बचत की मात्रा उपभोग को स्थगित करके बनती है और उपभोग को स्थगित करने की इच्छा संचित बचत पर उपलब्ध होने वाली आय अथवा वृद्धि पर निर्भर रहती है। दूसरी ओर विनियोजन का स्तर ब्याज की दरों पर निर्भर रहता है। पूँजी की सीमान्त उत्पादकता एवं वृद्धि दर में जितना अधिक अन्तर रहता है उतना ही अधिक विनियोजन करने के लिए प्रोत्साहन होता है। विकसित राष्ट्रों में बचत की मात्रा अधिक होने तथा कुशल वित्तीय संस्थाओं द्वारा बचत का विनियोजन तक प्रवाहित होने के कारण वृद्धि की दर कम रहती है तथा तान्त्रिक सुधारों, श्रम की कुशलता, नवीन कच्चे मालों की खोज, विस्तृत बाजारों की उपलब्धि के कारण विनियोजन की सीमान्त उत्पादकता अधिक रहती है जिसके फलस्वरूप विनियोजन की दर ऊँची रहती है। दूसरी ओर अल्प विकसित राष्ट्रों में व्यापक निर्धनता के कारण बचत कम होती है और उपलब्ध बचत को विनियोजन तक प्रवाहित करने के लिए

कुशल वित्तीय संस्थाएँ कम होने के कारण ब्याज की दर अधिक रहती है। इसके अतिरिक्त इन राष्ट्रों में प्रभावशाली माँग कम होने, उत्पादन के घटकों के गतिशील न होने, अकुशल उत्पादन विधियों एवं अकुशल श्रमिक शक्ति आदि के कारण विनियोजन की सीमान्त उत्पादकता कम होती है। यह दोनों परिस्थितियाँ अल्प विकसित राष्ट्रों में विनियोजन की दर कम रखने में सहायक होती हैं।

अल्प विकसित राष्ट्रों में इस प्रकार पूँजी निर्माण का स्तर दो मूलभूत घटकों पर निर्भर रहता है—(अ) बचत का परिमाण एवं उपयुक्त वित्तीय संस्थाओं की उपस्थिति जो बचत प्राप्त करके विनियोजन तक प्रवाहित कर सकें (आ) विस्तृत होने वाले बाजार की उपस्थिति। इन राष्ट्रों में उपभोग करने की इच्छा अधिक होती है परन्तु यह इच्छा जीवन की अनिवार्यताओं तक सीमित रहती है जिसके परिणामस्वरूप जन-संख्या का अधिकतर भाग अनिवार्यताओं की वस्तुओं के उत्पादन में लगा रहता है। इन वस्तुओं के उत्पादन में पूँजी विनियोजन कम मात्रा में आवश्यक होता है और श्रम की उत्पादकता कम रहती है जिसके फलस्वरूप जनसाधारण के बहुत बड़े भाग को कम आय प्राप्त होती है जो बचत की कम मात्रा में निर्माण होने के कारण होती है। कम आय एवं कम बचत माँग के विस्तार को प्रतिबंधित करते हैं और विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की माँग कम रहने के कारण अधिक विनियोजन के लिए प्रोत्साहन नहीं रहता है। आज के कुछ विकसित राष्ट्र भी इस परिस्थिति से होकर गुजर चुके हैं परन्तु उन्हें विस्तृत विदेशी बाजारों (अपने उपनिवेशों आदि में) का लाभ उपलब्ध था जिससे वे अपनी आर्थिक प्रगति का निर्वाह कर सके परन्तु वर्तमान परिस्थितियों में अल्प विकसित राष्ट्रों को अपने निर्यात में विस्तार करना सम्भव नहीं है क्योंकि विकसित राष्ट्रों के साथ उन्हें कठोर प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है।

उपयुक्त वित्तीय संस्थाओं की कमी के कारण अल्प विकसित राष्ट्रों की उप-लब्ध न्यून बचत का भी उचित विनियोजन नहीं हो पाता है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में ब्याज की दरों में विभिन्नता पायी जाती है। ऐसे साहसी-वर्ग की भी कमी होती है जो नवीन व्यवसायों एवं उत्पादक क्रियाओं में विनियोजन कर सकें। यही कारण है कि इन राष्ट्रों में बचत के अधिकतर भाग भूमि, भूमिगत जायदाद, सट्टा, टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं, विदेशी विनिमय, विशाल भवनों, विलासिता की वस्तुओं, विदेशी भ्रमण एवं प्रदर्शनात्मक क्रियाओं में विनियोजित किया जाता है जिससे राष्ट्रीय आय की निरन्तर वृद्धि सम्भव नहीं होती है। अग्रांकित तालिका में विकसित एवं अल्प विकसित राष्ट्रों की पूँजी निर्माण की दर प्रदर्शित की गयी है।

इस तालिका से यह स्पष्ट है कि अल्प विकसित राष्ट्रों में पूँजी-निर्माण की दर विकसित राष्ट्रों की तुलना में लगभग आधी है।

तालिका सं० १०—सकल पूँजी निर्माण की दर (विभिन्न राष्ट्रों में)[1]

देश का नाम	वर्ष	सकल पूँजी निर्माण का सकल राष्ट्रीय उत्पादन से प्रतिशत
संयुक्त राज्य अमरिका	१९६७	१६%
ब्रिटेन	१९६०	१६%
कनाडा	१९६०	२३%
स्वीडन	१९६०	२२%
स्विटजरलण्ड	१९५९	२३%
बर्मा	१९६०	१७%
सीलान	१९६०	१३%
चिली	१९५९	११%
फिलीपाइन्स	१९५९	८%
भारत	१९५९	८%

पूँजी निर्माण की प्रविधि

जैसा पूंजी निर्माण की परिभाषा देते समय बताया गया है कि पूंजी निर्माण की प्रविधि के तीन अंग हैं—बचत वित्तीय संस्थाएं एवं विनियोजन। अब हम इनमें से प्रत्येक पर अल्प विकसित राष्ट्रों की परिस्थितियों के संदर्भ में अध्ययन करेंगे।

बचत

बचत पूंजी निर्माण की प्रथम अवस्था होती है। बचत वर्तमान आय एवं उपभोग का अन्तर होती है। पूंजी निर्माण की दर में वृद्धि करने के लिए बचत की दर में भी पर्याप्त वृद्धि होना आवश्यक होती है। इस प्रकार बचत एवं देश की आर्थिक प्रगति का प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है क्योंकि बचत की दर में वृद्धि होने पर विनियोजन एवं पूंजी निर्माण की दर में वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। परन्तु यह आवश्यक नहीं होता कि अर्थ-व्यवस्था की आन्तरिक बचत एवं विनियोजन दोनों बराबर रहें क्योंकि अर्थ व्यवस्था के विनियोजन में विदेशी बचत का वह भाग जो विदेशी सहायता एवं ऋण के रूप में प्राप्त होता है सम्मिलित हो जाता है। किसी भी अर्थ व्यवस्था की समस्त बचत तीन स्रोतों से मिलकर बनती है—*सरकार द्वारा की गयी बचत परिवारों की बचत तथा व्यापारिक क्षेत्र की बचत।* सरकारी बचत उस राशि को कहते हैं जो सरकार की करादि से होने वाली चालू आय एवं सरकारी चालू व्यय का अन्तर होती है। परिवारों की बचत की राशि परिवारों की शुद्ध आय (करादि देने के बाद बची हुई आय) एवं उपभोग-व्यय का अन्तर होता है। इसी प्रकार व्यापारिक क्षेत्र की बचत राशि व्यापारों के लाभ में करादि

1 Statistical Year Book 1961

एव लाभांश देने के पश्चात शेष रहती है। सरकार की बचत सार्वजनिक बचत (Public Savings) और परिवारों एव व्यापारों की बचत को निजी बचत कहते हैं। प्राय निजी बचत अर्थव्यवस्था की कुल बचत का बहुत बड़ा भाग होती है। भारत वर्ष में निजी बचत समस्त बचत की लगभग ८०% होती है।

अल्प विकसित राष्ट्रों में विकसित राष्ट्रों की तुलना में आन्तरिक बचत का स्तर कम रहता है। विश्व-बैंक के सन् १९६८ के वार्षिक प्रतिवेदन से उपलब्ध आँकड़ों से ज्ञात होता है कि सन् १९६०-६६ के काल में औद्योगिक राष्ट्रों में बचत इनके सकल राष्ट्रीय उत्पादन का औसतन २१.६% थी जबकि तीसरी दुनिया के विकासशील राष्ट्रों में बचत का प्रतिशत औसतन इसी काल में केवल १५.०% था। इन नवीनतम आँकड़ों का विस्तृत विवरण अल्प विकसित राष्ट्रों का परिचय नामक अध्याय में दिया गया है। अफ्रीकी एव एशियाई राष्ट्रों में बचत का सकल राष्ट्रीय उत्पादन से औसत प्रतिशत १०% के लगभग है जबकि पश्चिमी यूरोप में यह प्रतिशत २२.४% और उत्तरी अमेरिका में १८.७% है। इस तुलना से यह बात स्पष्ट है कि विकसित राष्ट्रों के द्रुत गति से विकसित होने का एक महत्वपूर्ण कारण वहाँ की ऊँची बचत की दर है। जापान में बचत की दर लगभग २८% है जिसका प्रमुख कारण वहाँ के नागरिकों का अधिक बचत करने का स्वभाव है। दूसरे पश्चिमी यूरोपीय राष्ट्रों में बचत की ऊँची दर का प्रमुख कारण व्यापारिक संस्थाओं का अविभाज्य लाभ का पुनर्विनियोजन है। अल्प-विकसित राष्ट्रों में निजी एव व्यापारिक बचत दोनों की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है। यदि यह अनुमान लगायें कि अल्प-विकसित राष्ट्रों में विकसित राष्ट्रों की तुलना में प्रति व्यक्ति बचत किस निम्न-स्तर पर होती है तो हमारे नतीजे अत्यन्त भयावह होंगे क्योंकि अल्प विकसित राष्ट्रों में जनसंख्या अधिक और राष्ट्रीय उत्पादन कम है और जब इस राष्ट्रीय उत्पादन का अत्यन्त न्यून प्रतिशत ही बचाया जाता है तो प्रति व्यक्ति बचत स्वभावतः अत्यन्त कम ही रहेगी। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक समिति के अनुसार एशिया में प्रति व्यक्ति वार्षिक बचत औसतन दो डालर के लगभग (सन् १९४८-५१) थी।

बचत के सम्बन्ध में अल्प विकसित राष्ट्रों में एक और विशेषता पायी जाती है कि बचत-आय के अनुपात में पिछले कुछ वर्षों में कोई विशेष वृद्धि नहीं हो रही है। सन् १९५०-५२ से १९५५-५६ के काल में अल्प विकसित राष्ट्रों में बचत के रूप में सकल राष्ट्रीय उत्पादन के प्रतिशत के रूप में इस प्रकार कमी अथवा वृद्धि हुई—जमैका १०%, बर्मा ७% भारत ५%, पनामा ४% ग्रीस ६%, चिली ४%, फिलीपाइन्स २% कोलम्बिया—१% पुर्तगाल —१% सीलोन —२%, नार्वे—१०%, तथा मोरक्को—१४%। लगभग इन सभी राष्ट्रों में पारिवारिक बचत में इस काल में कमी हुई है। इसका प्रमुख कारण प्रति व्यक्ति आय का न्यून स्तर तथा आय का वितरण मजदूरी पाने वाले वर्ग के पक्ष में होना है। इसी प्रकार इन राष्ट्रों में सार्वजनिक बचत में कमी होती रही है क्योंकि जनसंख्या की वृद्धि के कारण आर्थिक एव सामाजिक

लागत बढ़ गयी है तथा कर से प्राप्त होने वाली आय भी कम हो गयी है। परन्तु इन राष्ट्रों को विदेशी ऋण एवं अनुदान बड़ी मात्रा में मिलने के कारण इनकी विदेशी बचत में पर्याप्त वृद्धि इस काल में हुई है जिसने आंतरिक बचत की पूर्ति की है।

अल्प विकसित राष्ट्रों में बचत के सम्बन्ध में एक विशेषता यह भी है कि जो भी बचत उपलब्ध होती है उसका उपयोग उत्पादन क्रियाओं के लिए नहीं किया जाता है। राष्ट्रीय आय का बड़ा भाग पाने वाला वर्ग अपनी बचत का उपयोग भूमिगत सम्पत्तियां, निवास निर्माण, मूल्यवान् धातुओं एवं जेवरों आदि के लिए करता है। निजी व्यक्तियों द्वारा की जाने वाली इस बचत का उपयोग इन अनुत्पादक क्रियाओं के लिए नहीं किया जाता बल्कि इन राष्ट्रों की सरकारें भी आलीशान भवनों के निर्माण, विदेशों में दूतावास स्थापित करने, सेना एवं विदेशी प्रतिभूतियों के संचय, विदेशों से विलासिता एवं प्रदर्शन की वस्तुओं के आयात आदि पर बचत का बड़ा भाग व्यय कर देती हैं। इन राष्ट्रों में मूल्यवान् धातुओं, हीरे, जवाहरात एवं जेवरों आदि का संग्रह भी बड़ी मात्रा में किया जाता है जो बचत एवं पूँजी को निष्क्रिय कर देते हैं।

अल्प विकसित राष्ट्रों में बचत-सम्बन्धी समस्याएँ

बचत की मात्रा में वृद्धि करना अल्प विकसित राष्ट्रों के आर्थिक विकास का आवश्यक तत्व है और बचत की मात्रा में वृद्धि करने हेतु केवल अधिक बचत का उदय होना ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि उदित बचत को उपलब्ध करना तथा उसका उत्पादक विनियोजन किया जाना भी आवश्यक होता है। इस प्रकार बचत के सम्बन्ध में तीन समस्याएँ रहती हैं—अधिक बचत का निर्माण, बचत के अधिकतम भाग को प्राप्त करना तथा बचत को उत्पादक विनियोजन की ओर प्रवाहित करना। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि पूँजी निर्माण की विभिन्न अवस्थाएँ बचत से ही प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध होती हैं।

बचत का निर्माण

अल्प विकसित राष्ट्रों की अत्यन्त गम्भीर समस्या आन्तरिक बचत के निर्माण में वृद्धि करना होती है और इसके निवारण के लिए बचत करने की सीमाओं को विस्तृत करने की आवश्यकता होती है। बचत करने की अधिकतम सीमा उपभोग में की जाने वाली सम्भावित अधिकतम कमी तथा उत्पादन की वृद्धि की सम्भावना पर निर्भर रहती है। किसी भी समाज की उपभोग आवश्यकताएँ उस समाज के रीति रिवाजों, जनसंख्या के परिमाण एवं संरचना तथा नागरिकों के जीवन-स्तर के द्वारा निर्धारित होती हैं। अल्प विकसित राष्ट्रों में व्यापक निर्धनता के कारण उपभोग का स्तर न्यूनतम होता है जो शारीरिक निर्वाह के लिए अनिवार्य होता है। दूसरी ओर, उत्पादन में अल्प काल में अधिक वृद्धि करना सम्भव नहीं होता है क्योंकि इन राष्ट्रों में उत्पादक तांत्रिकताएँ, संगठन, श्रम की कुशलता, पूँजीगत प्रसाधन आदि हीन स्थिति में होते हैं।

दूसरी ओर बचत की न्यूनतम मात्रा बचत का वह स्तर है जो अर्थ-व्यवस्था के पूँजीगत प्रसाधनों के निर्वाह के लिए आवश्यक हो जिससे उत्पादन का वर्तमान स्तर बना रहे। यदि बचत इस न्यूनतम स्तर से कम हो जाय तो अर्थ-व्यवस्था में पूँजी का उपभोग होने लगता और वर्तमान उत्पादन कम होने लगता।

अल्प विकसित अर्थ व्यवस्थाओं में बचत के अधिकतम एवं न्यूनतम स्तर में विशेष अन्तर नहीं होता है क्योंकि उपभोग का वर्तमान स्तर न्यूनतम होता है तथा इसे और कम करना सम्भव नहीं होता तथा उत्पादन में भी तान्त्रिकताओं में मूलभूत परिवर्तन किए बिना अधिक वृद्धि नहीं की जा सकती है जो एक दीर्घकालीन व्यवस्था में सम्भव हो सकती है। जब अर्थ व्यवस्था में आर्थिक प्रगति का शुभारम्भ होता है तो एक ओर, उत्पादक विनियोजन बढ़ने के फलस्वरूप उत्पादन में वृद्धि होती है और दूसरी ओर, जन-साधारण की आय एवं क्रय-शक्ति बढ़ने से उपभोग की आवश्यकताओं में वृद्धि होती है। ऐसी परिस्थिति में बचत की सीमाओं के बढ़ाने के लिए उपभोग को अधिक नहीं बढ़ने दिया जाता है और उत्पादन में उपभोग की आवश्यकताओं से अधिक वृद्धि करने का प्रयत्न किया जाता है।

बचत की सीमाओं की वृद्धि करने के लिए उत्पादक विनियोजन इस प्रकार होना चाहिए कि पूँजीपति-वर्ग अथवा लाभ पाने वाले वर्ग का विस्तार हो क्योंकि यह वर्ग ही अपनी आय का अधिकतम भाग बराबर उत्पादक क्रियाओं में विनियोजित करने के लिए तत्पर रहता है। अर्थ-व्यवस्था के दूसरे वर्ग—किराया पाने वाला, मजदूरी पाने वाला तथा वेतन पाने वाला वर्ग अपनी आय में वृद्धि होने पर उसका बड़ा भाग उपभोग कर लेता है और विनियोजन के लिए बचत करने में अधिक रुचि नहीं रखता है। इसके विपरीत भूमिपति-वर्ग प्रदर्शनकारी एवं विलासितापूर्ण उपभोग पर अपनी बचत को व्यय कर देता है। इस प्रकार समाज में बचत एवं विनियोजन बढ़ाने के लिए यह आवश्यक होता है कि विकास के द्वारा अर्जित आय का अधिक भाग लाभ प्राप्त करने वाले वर्ग को मिले और इस वर्ग को विनियोजन क्रियाएँ संचालन करने में सरकारी प्रतिबन्धों का सामना न करना पड़ता हो। परन्तु एक समाजवादी अथवा कल्याणकारी राज्य में अतिरिक्त आय के बड़े भाग को लाभ पाने वाले वर्ग को नहीं दिया जा सकता है क्योंकि इससे समाज में आर्थिक विषमताएं बढ़ती हैं और आर्थिक सत्ताओं का केन्द्रीयकरण होता है। अल्प विकसित राष्ट्रों में निर्धन-वर्ग का जीवन-स्तर सुधारने के लिए राज्य राजकोषीय एवं अन्य नीतियों द्वारा ऐसी कार्यवाहियों को महत्व देता है जिनसे दलित-वर्गों की आय को बढ़ाया जाय और लाभ पाने वाला धनी-वर्ग अधिक धन संचय न कर सके। यह सामाजिक एवं आर्थिक न्याय सम्बन्धी कार्यवाहियाँ अर्थ-व्यवस्था की बचत को बढ़ाने में बाधक होती हैं। ऐसी परिस्थिति में सरकार को सार्वजनिक बचत बढ़ाने के लिए आवश्यक कार्यवाहियाँ करनी होती हैं जिनमें अधिक करारोपण, सार्वजनिक व्यवसायों से अधिक लाभ, तथा हीनार्थ प्रबन्धन सम्मिलित हैं।

ग्रामीण बचत

अल्प विकसित राष्ट्रों में कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र की बचत का स्तर औद्योगिक क्षेत्र की तुलना में लगभग सभी राष्ट्रों में कम होता है। कृषि-क्षेत्र में आय की विषमता, आकस्मिक लाभ तथा हानि की सम्भावना, परिकाल्पनिक (Speculating) लाभों की सम्भावना आदि सभी औद्योगिक क्षेत्र की तुलना में कम होते हैं जिसके परिणामस्वरूप कृषकों में साहस की भावना का स्तर अन्यत्र न्यून रहता है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में संयुक्त परिवार पद्धति अत्यन्त सुदृढ़ होती है जिसके परिणामस्वरूप ग्रामीण नागरिकों में बीमारी, बेकारी, वृद्धावस्था आदि के लिए बचत करने की आवश्यकता महसूस नहीं होता है। ग्रामीण नागरिकों में भाग्यपरायणता भी अधिक होती है जिससे इनमें अधिक धन एवं बचत अर्जित करने के लिए उत्साह नहीं होता है। इसके अतिरिक्त विकास के प्रारम्भ के साथ जब यातायात एवं संचार के साधनों में सुधार एवं विस्तार होता है तो ग्रामीण नागरिकों का सम्पर्क नगरों से घनिष्ठ हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप ग्रामवासियों के उपयोग के प्रकार एवं परिमाण में परिवर्तन हो जाता है और इनकी बचत करने की इच्छा को कम कर देता है। ऐसी परिस्थितियों में ग्रामीण बचत को बढ़ाने के लिए एक ओर कृषि-व्यवसाय में नवीन तान्त्रिकताओं के उपयोग से उत्पादन में वृद्धि की जानी चाहिए और दूसरी ओर ग्रामवासियों में अपनी बचत का उत्पादक उपयोग करने के लिए उत्साह जाग्रत किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त राज्य को उचित कर नीति द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाले अनावश्यक एवं अनुत्पादक विनियोजनों को रोकना चाहिए।

राज्य की कर नीति का भी बचत पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। कर द्वारा उत्पादन में वृद्धि करने के लिए तो प्रोत्साहन दिया ही जा सकता है परन्तु व्यवसायों के लाभों के पुनर्विनियोजन को भी प्रोत्साहित किया जा सकता है। विकास के प्रारम्भ में जनसाधारण की आय में जो वृद्धि होती है उसको बचत के रूप में प्राप्त करने के लिए कर का उपयोग करना आवश्यक होता है। सरकारी दबाव द्वारा एक बार इस प्रकार जब बचत बनाकर विकास विनियोजन में उपयोग करनी जाती है तो बाद में विनियोजन एवं बचत का प्रवाह बनाये रखने में अधिक कठिनाई नहीं होती है क्योंकि विकास के बढ़ने के साथ आय में वृद्धि की मात्रा बढ़ जाती है और जनसाधारण का अपना वर्तमान जीवन स्तर कम किए बिना ही बचत करना सम्भव होता है।

बचत की उपलब्धि

पूँजी निर्माण की दूसरी अवस्था निर्मित बचत को प्राप्त करना होता है। अल्प विकसित राष्ट्रों में यह समस्या और भी गम्भीर होती है क्योंकि इनमें निर्मित बचत कम होने के कारण इसका सम्पूर्ण भाग प्राप्त करके विकास विनियोजन में लगाना सम्भव हो सकता है परन्तु कुशल वित्तीय संस्थाओं की अपर्याप्तता के कारण बचत को उपलब्ध करना कठिन होता है। बचत उपलब्ध करने की उचित व्यवस्था

द्वारा बचत के अनुत्पादक उपयोग को रोका जा सकता है तथा जनसाधारण में अधिक बचत करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। जनसाधारण में बचत प्रोत्साहन करने के लिए विनियोजन की सुरक्षा, आकर्षक ब्याज की दर, तरलता, सरलता विभाज्यता, हस्तान्तरणीयता, प्रमाणीकरण, गोपनीयता एवं व्यक्तिगत सम्बन्ध की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। प्रत्येक बचत करने वाला चाहता है कि उसकी बचत का इस प्रकार उपयोग हो कि पूँजी सुरक्षित रहे, ब्याज उचित दर पर मिले, विनियोजन करने के लिए कोई विशेष कार्यवाहियाँ न करनी पड़ें, विनियोजन को सरलता से नकद में बदला जा सके तथा बचत की मात्रा गोपनीय रहे। इन समस्त सुविधाओं की व्यवस्था वित्तीय संस्थाओं के विस्तार द्वारा की जा सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकों, सहकारी संस्थाओं, बीमा कम्पनियों के कार्यालयों आदि की उचित व्यवस्था करके बचत विनियोजन हेतु उपलब्ध की जा सकती है। बचत को सुरक्षा प्रदान करने हेतु सरकारी बैंकों का विस्तार किया जाना चाहिए क्योंकि इन पर लोगों का अधिक विश्वास होता है। सरकारी बचत-संस्थाओं के कुशल संचालन द्वारा अल्प आय वाले वर्ग की लघु बचत को प्राप्त किया जा सकता है। जनसाधारण में बीमे की आवश्यकता एवं प्रतिष्ठा का प्रसारण करके भी बचत के स्तर में वृद्धि की जा सकती है।

बचत का विनियोजन हेतु उपयोग

विनियोजन पूँजी निर्माण की तीसरी अवस्था होती है। अर्थ-व्यवस्था की वित्तीय संस्थाओं का कार्य अतिरिक्त व्यय करने वाले वर्गों से साधनों को संग्रहीत करके इन्हें न्यून व्यय करने वाले वर्गों तक पहुँचाना होता है। समाज में अतिरिक्त व्यय करने वाला वर्ग किराया, मजदूरी, वेतन आदि पाने वाला वर्ग होता है जो अपनी चालू आय का बड़ा भाग बचत कर सकता है। दूसरी ओर न्यून व्यय करने वाला वर्ग व्यापारिक संस्थाओं का होता है जो फिर सदैव पूँजी एवं साधनों की खोज में रहता है और जो कुछ भी धन उसे प्राप्त होता है वह उसको विनियोजन करने के लिए तत्पर रहता है। वित्तीय संस्थाएँ बचत करने वाले वर्ग से साधनों को प्राप्त करके विनियोजन करने वाले वर्ग को पहुँचाती हैं। उन्नत व्यवसाय अर्थ-व्यवस्था में इन वित्तीय संस्थाओं में से प्रमुख बैंक, इनाम, विनियोजन-गृह, बीमा कम्पनियाँ, सहकारी संस्थाएँ, स्कन्ध विनिमय, बाजार आदि होती हैं। विकास के गतिशील होने पर वित्तीय संस्थाओं का अधिकार होने लगता है जो बचत को एक समुदाय से दूसरे समुदाय को हस्तान्तरित करती हैं। विकास के अन्तर्गत अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों का विस्तार होता है और औद्योगीकरण को विशेष प्रोत्साहन मिलता है। आर्थिक गतिविधि बढ़ने से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है और वित्तीय व्यवहारों में तीव्र गति से वृद्धि होती है। औद्योगिक विकास के फलस्वरूप बचत करने वाले वर्ग में विनियोजन के प्रति विश्वास जाग्रत होता है और यह वर्ग अपनी बचत को प्रत्यक्षरूप से अथवा मध्यस्थ द्वारा विनियोजन करने के लिए तत्पर हो जाता है। दूसरी ओर विनियोजकों में विस्तृत होने वाली अर्थ-व्यवस्था

में अधिक विनियोजन करने के लिए अधिक आकर्षण उत्पन्न होता है क्योंकि विनियोजन पर मिलने वाले लाभ की दर बढ़ जाती है। विनियोजकों की ओर से ऐसी वित्तीय संस्थाओं के विस्तार की माँग की जाती है जो अर्थव्यवस्था में वित्तीय तरलता बढ़ाने में सहायक हों। ऐसी परिस्थिति में वित्तीय संस्थाओं का विस्तार होता है सीमित दायित्व वाली कम्पनियों की स्थापना की जाती है और प्रतिभूति बाजार (Security Market) का विस्तार होता है। व्यापारिक बैंकों का विस्तार भी इन परिस्थितियों में स्वाभाविक होता है। व्यापारिक बैंकों की साख-नीति को विकास कार्यक्रमों के अनुकूल रखने के लिए केन्द्रीय बैंक के कार्य-क्षेत्र में विस्तार किया जाता है। जिन देशों में व्यापारिक बैंक उदार शर्तों पर विकास-कार्यक्रमों को साख प्रदान करने में असमर्थ रहते हैं वहाँ विकास बैंकों की स्थापना की जाती है। सरकार द्वारा भी विकास के लिए ऋण एवं अनुदान प्रदान करने के लिए विभिन्न वित्तीय संस्थाओं की स्थापना की जाती है। वित्तीय एवं विकास निगमों की स्थापना करके विकास परियोजनाओं को दीर्घकालीन साख की व्यवस्था की जाती है। इन समस्त वित्तीय संस्थाओं से आर्थिक विकास में पर्याप्त योगदान तब ही प्राप्त हो सकता है जब इनका संचालन कुशलता के साथ किया जाय। यह संस्थाएं प्राथमिकता प्राप्त विकास योजनाओं को कम लागत पर साख प्रदान करें तथा इनके द्वारा आवश्यकतानुसार पर्याप्त पूंजी प्रदान की जाय। इन संस्थाओं को वित्तीय सहायता प्रदान करने हेतु मुद्रा-प्रसार विधियों (Inflationary Methods) का उपयोग भी नहीं करना चाहिए।

विनियोजन के गुणात्मक लक्षण (Investment Criteria)

जब विनियोजन की सामान्य आवश्यकता का आयोजन करने के पश्चात् उसके विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग करने का प्रश्न आता है तो विनियोजन का वितरण करने हेतु कुछ सिद्धान्तों का पालन करना आवश्यक होता है जिनके आधार पर विभिन्न उत्पादक क्षेत्रों को पूंजी का आवंटन किया जाता है। विनियोजन के आवंटन सम्बन्धी सिद्धान्तों को ही विनियोजन के गुणात्मक लक्षण (Investment Criteria) का नाम दिया जाता है। अल्प विकसित राष्ट्रों में विनियोजन के लिए उपलब्ध साधन अत्यन्त सीमित होने एवं विनियोजन की बढ़ती हुई आवश्यकता के सन्दर्भ में विनियोजन के आवंटन की समस्या अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। विनियोजन का आवंटन करते समय उद्योग तथा कृषि, निजी तथा सरकारी क्षेत्र, पूंजीगत एवं उपभोक्ता उद्योगों, देश के विभिन्न क्षेत्रों के मध्य चयन करने की आवश्यकता पड़ता है। विनियोजन के वितरण के सम्बन्ध में निर्णय करते समय उसके फलस्वरूप प्राप्त होने वाले विकास के स्तर को दृष्टिगत रखना आवश्यक होता है। इस बात का प्रयास किया जाता है कि विनियोजन के साधनों का आवंटन इस प्रकार किया जाय कि यथासम्भव अधिकतम विकास हो सके। किसी एक प्रकार से किए गए आवंटन से अर्थव्यवस्था की वर्तमान आय में वृद्धि हो सकती है जबकि यह आवंटन किसी अन्य विशिष्ट प्रकार से किया जाय तो राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि का दीर्घ काल तक आश्वासन हो सकता है। विनियोजन

आवटन विधि केवल राष्ट्रीय उत्पादन को ही प्रभावित नहीं करती है बल्कि अर्थ-व्यवस्था की श्रम-व्यवस्था अर्थात् श्रम की पूर्ति एवं वितरण, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों, जनसंख्या की वृद्धि एवं गुण, जनसाधारण की रुचि एवं फैशन तथा तान्त्रिक प्रगति को भी प्रभावित करती है।

सामान्यतः उत्पादकता को विनियोजन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुणात्मक लक्षण माना जाता है। विनियोजन के साधनों का वितरण उन क्षेत्रों को किया जाना चाहिए जिनमें सर्वाधिक सामाजिक सीमान्त उत्पादकता प्राप्त होने की सम्भावना हो। अधिकतम उत्पादकता का अनुमान लगाते समय निम्नलिखित पथ-प्रदर्शक सिद्धान्तों को ध्यान में रखना आवश्यक होता है—

(१) उपलब्ध विनियोजन के साधनों का आवटन इस प्रकार किया जाय कि चालू उत्पादन का विनियोजन से अधिकतम अनुपात हो सके।

(२) ऐसे विनियोजन कार्यक्रमों को चुना जाय जिसके द्वारा श्रम का विनियोजन से अधिकतम अनुपात हो सके।

(३) विनियोजन के साधनों का इस प्रकार आवटन किया जाय कि निर्यात-वस्तुओं का विनियोजन से अधिकतम अनुपात हो सके।

(४) विनियोजन के साधनों का आवटन इस प्रकार किया जाय कि अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में नवीनतम तान्त्रिकताओं का अधिकतम उपयोग हो सके।

(५) विनियोजन के आवटन का प्रकार ऐसा हो कि देश में आधारभूत एवं पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगों का अधिकतम विस्तार हो सके जिससे अर्थ-व्यवस्था के वर्तमान उत्पादन के साथ उत्पादन-क्षमता में भी अधिकतम वृद्धि हो सके।

(६) विनियोजन का आवटन इस प्रकार किया जाय कि प्रति श्रमिक पूँजी-विनियोजन में अधिकतम वृद्धि हो सके तथा श्रमिकों की कुशलता, ज्ञान, गतिशीलता आदि में अधिकतम वृद्धि हो सके।

(७) विनियोजन का आवटन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों का अधिकतम सन्तुलित विकास सम्भव हो सके।

(८) विनियोजन का आवटन इस प्रकार किया जाय कि आर्थिक स्थिरता (Economic Stability) के साथ विकास किया जा सके। आर्थिक स्थिरता के लिए देश के भुगतान शेष का प्रतिकूल न होने तथा मुद्रा-स्फीति के दबाव को रोकने की व्यवस्था करना आवश्यक होती है।

(९) विकास के प्रारम्भिक काल में जब देश में व्यापक निर्धनता एवं न्यूनताओं का वातावरण हो विनियोजन का आवटन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि विकास परियोजनाओं का लाभ अल्प काल में प्राप्त हो सके।

(१०) विनियोजन का प्रकार निर्धारित करते समय इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि विकास-परियोजनाओं की संचालन-लागत अत्यधिक न हो अन्यथा

देश के द्वारा किए गए उत्पादनों की लागत अधिक होगी जिससे परिणामस्वरूप आन्तरिक एवं विदेशी व्यापार दोनों की ही पर्याप्त उन्नति नहीं हो सकेगी।

विनियोजन आवंटन सम्बन्धी उपयुक्त नीति निर्देशक सिद्धान्तों में से सभी का पालन एक ही समय में करना सम्भव नहीं होता है क्योंकि कुछ सिद्धान्त परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं।

श्रमप्रधान क्रियाओं में विनियोजन

अल्प विकसित राष्ट्रों में श्रम का आधिक्य और पूँजी की कमी होती है। ऐसी परिस्थिति में सिद्धान्तरूप में विनियोजन ऐसी विकास परियोजनाओं में किया जाना चाहिए जिनमें श्रम का अधिक और पूँजी का कम उपयोग होता हो। परन्तु श्रमप्रधान तान्त्रिकताओं का व्यापक उपयोग अर्थ-व्यवस्था में नहीं किया जा सकता है क्योंकि इनके द्वारा एक ओर आधारभूत उद्योगों की स्थापना सम्भव नहीं हो सकती है और दूसरी ओर इनकी उत्पादनक्षमता कम होने के कारण इनकी प्रति उत्पादन इकाई की सचालन लागत भी अधिक होती है। दूसरी ओर जब पूँजीप्रधान तान्त्रिकताओं का उपयोग किया जाता है तो परियोजनाओं के सम्पूर्ण होने में अधिक समय लगता है जो मुद्रा स्फीति के दबाव को प्रोत्साहित करता है। पूँजीप्रधान तान्त्रिकताओं के उपयोग में समाज में आय का अधिक विषम वितरण होता है। विकास विनियोजन द्वारा उदय होने वाली सामाजिक लागत को ध्यान में रखना आवश्यक होता है जैसे बड़े बड़े कारखानों की स्थापना से नगरों का वातावरण अस्वास्थ्यकर हो जाता है भीड़ भाड़ बढ़ जाती है औद्योगिक दुर्घटनाएं एवं कलह का प्रादुर्भाव होता है आदि आदि। इन सामाजिक दोषों का विनियोजन सम्बन्धी निर्णय करते समय उचित स्थान दिया जाना चाहिए। विनियोजन का प्रकार निर्धारित करते समय सामाजिक उपरि व्यय पूँजी की आवश्यकताओं पर भी ध्यान देना आवश्यक होता है।

विपणि स्थिति के आधार पर विनियोजन

विकास विनियोजन का प्रकार निर्धारित करते समय विपणि—आन्तरिक एवं विदेशी—की स्थिति को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। ऐसे विकासोन्मुख क्षेत्रों अथवा क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जाती है जिनमें अधिक अतिरिक्त विनियोजन किए बिना ही द्रुत गति से प्रगति हो सकती हो और इनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की माँग भी अधिक हो। इनके द्वारा वर्तमान उद्योगों को बाहरी मितव्ययताएं अधिक मात्रा में उपलब्ध होती हों तथा पूरक वस्तुओं एवं सेवाओं की माँग में वृद्धि होती हो। ऐसे विकासोन्मुख क्षेत्रों का विस्तार करने से समस्त अर्थ व्यवस्था गतिशील हो जाती है।

अल्प विकसित राष्ट्रों में ऐसी परियोजनाओं में विनियोजन को प्राथमिकता दी जाती है जिनसे आयात में कमी एवं निर्यात में वृद्धि करना सम्भव हो सके क्योंकि इनके द्वारा एक ओर भुगतान-शेष की समस्या उत्पन्न नहीं होती है और दूसरी ओर पूँजीगत प्रसाधनों का अधिक आयात करने के लिए विदेशी विनिमय उपलब्ध होता है।

अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों का सन्तुलित विकास करने के लिए गैर-कृषि-उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ कृषि उत्पादन में भी विस्तार होना चाहिए। जब गैर-कृषि क्षेत्रों का विस्तार किया जाता है तो इस क्षेत्र में रोजगार प्राप्त जन-समुदाय में कृषि-उत्पादों की मांग में वृद्धि हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में कृषि क्षेत्र का विकास आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त गैर कृषि क्षेत्र में उत्पादित वस्तुओं की पर्याप्त मांग कृषि क्षेत्र से तब ही प्राप्त हो सकती है जब कृषि क्षेत्र का पर्याप्त विकास हो। इस प्रकार विकास विनियोजन के सम्बन्ध में निर्णय करते समय कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र के सन्तुलित विकास की आवश्यकता होती है।

अल्प विकसित राष्ट्रों में पूंजी निर्माण में वृद्धि करने के उपाय

अल्प-विकसित राष्ट्रों में जनसंख्या वृद्धि की ऊंची दर होने के कारण प्रति व्यक्ति आय में सुदृढ़ प्रगति करने के लिए विनियोजन की दर में पर्याप्त वृद्धि करना आवश्यक होता है क्योंकि बढ़ती हुई जनसंख्या उत्पादन की सामान्य वृद्धि को नष्ट कर डालती है और विनियोजन में विशेष वृद्धि करने हेतु साधन उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। पूंजी निर्माण में असाधारण वृद्धि करके ही उत्पादन में अधिक वृद्धि होती है जिससे प्रति व्यक्ति आय में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है। जनसाधारण की आय में पर्याप्त वृद्धि होने पर ही बचत को बढ़ाना सम्भव हो सकता है और विनियोजन-वृद्धि को निरन्तरता प्रदान हो सकती है। बचत की मात्रा में वृद्धि उत्पादन-वृद्धि के अतिरिक्त उपभोग के स्तर को कम करके भी की जा सकती है। विकास की प्रारम्भिक अवस्था में विनियोजन की दर को बढ़ाने के लिए अर्थ-व्यवस्था में उपलब्ध साधन पर्याप्त न होने के कारण विदेशी पूंजी का उपयोग किया जाता है। अल्प विकसित राष्ट्रों में उपभोग के वर्तमान स्तर को और कम करना सम्भव नहीं होता क्योंकि यह स्तर पहले से ही अत्यन्त न्यून होता है और देश की सरकार द्वारा राजनीतिक एवं व्यवहार-सम्बन्धी विचारधाराओं के कारण इसे और कम नहीं किया जा सकता है। दूसरी ओर, पूंजी निर्माण की दर में वृद्धि करने के लिए विदेशी पूंजी का उपयोग पर्याप्त मात्रा में नहीं हो सकता है क्योंकि विदेशी पूंजी प्रायः ऋणों के रूप में मिलती है जिसकी ब्याजादि की लागत अधिक होती है और ब्याज और मूलधन का भुगतान करने के लिए विदेशी विनिमय की आवश्यकता होती है जिसका पर्याप्त अर्जन करना अल्प विकसित राष्ट्रों को अत्यन्त कठिन होता है। इसके अतिरिक्त विदेशी पूंजी की उपलब्धि निश्चित नहीं रहती और उसके साथ राजनीतिक एवं आर्थिक शर्तें लगी रहती है। ऐसी परिस्थितियों में अल्प विकसित राष्ट्रों को अपने आर्थिक पुनरुत्थान के लिए अपने ही साधनों पर प्राय निर्भर रहना पड़ता है। इन राष्ट्रों में पूंजी निर्माण की वृद्धि के लिए निम्नलिखित कार्यवाहियां की जा सकती हैं—

(१) विद्यमान उत्पादनक्षमता का सम्पूर्ण उपयोग—अर्थ व्यवस्था में विद्यमान क्षमता का पूर्णतम उपयोग करने के लिए आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था की जाना

चाहिए। अल्प विकास का सबसे प्रमुख कारण अल्प विकसित अर्थ व्यवस्थाओं में उत्पादन के विभिन्न घटकों का त्रुटिपूर्ण सम्मिश्रण होना है। वर्तमान पूँजी-स्वत्व का पूर्णतया उपयोग इसलिए नहीं हो पाता है कि इन देशों में कुशल श्रम एवं प्रबन्ध की पर्याप्त उपलब्धि नहीं होती है। इसके अतिरिक्त विपणि अपूर्णताओं (Market Inperfection) के कारण उत्पादन के उपलब्ध घटकों का पूर्णतम उपयोग करना सम्भव नहीं होता है। अल्प विकसित अर्थ व्यवस्थाओं की एक बड़ी विशेषता यह है कि इनमें पूँजी की हीनता और उपलब्ध पूँजी स्वत्व का आंशिक उपयोग दोनों एक साथ पाये जाते हैं। पूँजी उत्पादन का एक घटक होता है और इसका उत्पादक उपयोग करने के लिए अन्य सहायक उत्पादन के घटकों का पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होना आवश्यक होता है। यह बात उत्पादन के अन्य घटकों पर लागू होती है। ऐसी परिस्थिति में उत्पादन के घटकों के वर्तमान सम्मिश्रण में पर्याप्त समायोजन करके उत्पादन में वृद्धि करना सम्भव हो सकता है और इसके लिए विनियोजन में विशेष वृद्धि करने की आवश्यकता नहीं होती है।

(२) कुशल तान्त्रिकताओं का उपयोग—अर्थ व्यवस्था में सुधरी हुई तान्त्रिकताओं का विस्तृत उपयोग करके श्रम की उत्पादकता बढ़ायी जा सकती है और देश की अर्थ व्यवस्था के वास्तविक साधनों का कम उपयोग करके अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। नवीन तान्त्रिकताओं का उपयोग करने के लिए इन तान्त्रिकताओं को विदेशों से लेना आवश्यक हो सकता है और इनके उपयोग के लिए विदेशी पूँजीगत प्रसाधनों एवं तान्त्रिक ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त इन तान्त्रिकताओं के अनुकूल आर्थिक एवं सामाजिक संस्थाओं का निर्माण भी आवश्यक होता है। इस सब कार्य में विदेशी पूँजी की आवश्यकता होती है।

(३) श्रम शक्ति का अधिकतम उपयोग—अल्प विकसित एवं विकसित राष्ट्रों के श्रम की उत्पादकता के अन्तर का प्रमुख कारण विकसित राष्ट्रों के कुशल पूँजीगत प्रसाधन एवं तान्त्रिकता हैं। परन्तु अल्प विकसित राष्ट्रों की श्रम की उत्पादकता पर उनके सीमित ज्ञान एवं शिक्षा तथा अधिक परिश्रम से कार्य न करने की इच्छा भी उत्पादकता को प्रभावित करती है। श्रम की उत्पादकता बढ़ाने के लिए अल्प विकसित राष्ट्रों में समाज सेवाओं जन स्वास्थ्य शिक्षा एवं वैज्ञानिक तथा तान्त्रिक अनुसन्धान में बड़ी मात्रा में विनियोजन करने की आवश्यकता है। परन्तु कृषि लघु उद्योग। निर्माण आदि में श्रम की उत्पादकता में पर्याप्त वृद्धि हो सकती है यदि श्रम अपने कर्तव्यों के प्रति अधिक जागरूक हो और अपना कार्य अधिक परिश्रम एवं ईमानदारी से करने के लिए उद्यत हो।

(४) साहसिक क्रियाओं का विस्तार—पूँजी निर्माण की वृद्धि में साहसिक क्रियाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि साहसी ही वह शक्ति होता है जो उत्पादन के विभिन्न घटकों को एकत्रित करके उत्पादन क्रियाओं का विस्तार करता है। साहसिक

क्रियाओं का विस्तार करने के लिए कुशल वित्तीय संस्थाओं की स्थापना तथा साहसियों के प्रोत्साहन के अनुकूल आर्थिक नीति का संचालन आवश्यक होता है।

(५) **विदेशी सहायता एव विदेशी व्यापार**—आधुनिक युग में पूँजी-निर्माण की प्रविधि में विदेशी सहायता एव विदेशी व्यापार का उल्लेखनीय स्थान है। कोई भी देश पूँजी प्रसाधनों का विदेशों से आयात किए बिना उत्पादन एवं उत्पादन-क्षमता में पर्याप्त वृद्धि नहीं कर सकता है। विदेशी आयात के लिए विदेशी विनिमय की आवश्यकता होती है जिसका अर्जन अल्प काल में विदेशी सहायता से और दीर्घकाल में विदेशी व्यापार द्वारा ही सम्भव हो सकता है। ऐसी वस्तुओं का निर्यात बढ़ाकर, जिनका निर्यात न होने पर देश में उपभोग होने की सम्भावना हो, जब विदेशी विनिमय का अर्जन किया जाता है तो देश में आन्तरिक बचत की वृद्धि का साधन हो जाता है और इसके द्वारा पूँजीगत प्रसाधन एवं तान्त्रिक ज्ञान आयात करके उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो सकती है जिससे पूँजी निर्माण की क्रिया को गतिशील किया जा सकता है।

(६) **आन्तरिक बचत में वृद्धि**—इस सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं हो सकता है कि पूँजी निर्माण में वृद्धि करने का सर्वश्रेष्ठ साधन आन्तरिक बचत होता है। आन्तरिक बचत में वृद्धि करने के लिए जो कार्यवाहियाँ की जा सकती हैं, उनका विवरण बचत के अध्ययन में दिया जा चुका है। परन्तु व्यक्तिगत बचत को बढ़ाने के लिए विशेष कार्यवाहियाँ की जा सकती हैं। व्यक्तिगत बचत को बढ़ाने हेतु समाज में व्यावसायिक गतिशीलता बढ़ाने की सुविधाओं का विस्तार होना चाहिए जिससे जनसाधारण नवीन व्यवसायों को प्रारम्भ करने हेतु बचत द्वारा आवश्यक साधन एकत्रित करने का प्रयत्न करे। बचत करने की इच्छा समाज के विभिन्न वर्गों के तुलनात्मक आय-स्तर पर भी निर्भर रहती है। मनुष्य के उपभोग पर प्रदर्शन-प्रवृत्ति का विशेष प्रभाव पड़ता है अर्थात् वह अपने आस-पास के उपभोग का जो स्तर देखता है उसके अनुकूल स्तर स्वयं भी करना चाहता है। ऐसी परिस्थिति में बचत की इच्छा बढ़ाने के लिए अधिक आय पाने वाले वर्गों के उपभोग को प्रतिबन्धित करना आवश्यक होता है। इसी प्रकार तरल सम्पत्तियों के संचय से जनता की इच्छा बढ़ती है। यदि नागरिकों में वित्तीय संस्थाओं के प्रति विश्वास हो तो वह अपनी बचत को जमा करने के लिए अधिक इच्छुक होते हैं। बचत करने की इच्छा देश की राजनीतिक सुदृढ़ता एवं मूल्य-स्तर पर भी निर्भर रहती है।

(७) **अदृश्य बेरोजगारी एवं पूँजी निर्माण**—नर्क्से ने इस विचार का प्रतिपादन किया कि अल्प विकसित राष्ट्रों की अदृश्य बेरोजगार-प्राप्त श्रम-शक्ति पूँजी-निर्माण का सम्भावित साधन होती है। इनके अनुसार अदृश्य बेरोजगारी-प्राप्त श्रम में निम्नलिखित लक्षण होते हैं—

(अ) इस श्रम की सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है अर्थात् इनको यदि इनके व्यवसायों से हटा लिया जाय तो व्यवसाय के उत्पादन में कोई कमी नहीं होती है।

(आ) अदृश्य बेरोजगार श्रम में प्राय परिवार के सदस्य सम्मिलित होते हैं और मजदूरी पाने वाला श्रमिक वर्ग इसमें नहीं आता है।

(इ) इस श्रम को कोई व्यक्तिगत पहचान नहीं हो सकती है क्योंकि इसका उल्लेख बेरोजगार श्रम में नहीं किया जाता है।

(ई) यह श्रम मौसमी बेरोजगार श्रम से भिन्न होता है। मौसमी बेरोजगार श्रम जलवायु के परिवर्तन के कारण वर्ष के किसी विशेष काल में ही उदित होता है।

(उ) अदृश्य बेरोजगार उद्योगप्रधान राष्ट्रों में औद्योगिक बेरोजगार से भिन्न होता है। विकसित राष्ट्रों में औद्योगिक बेरोजगार श्रम अस्थायी रूप से अपने बेरोजगारी के काल में अन्य छोटे मोटे कार्य करता है और जैसे ही औद्योगिक वस्तुओं की माँग में वृद्धि होती है यह अपने पुराने उद्योगों को चला जाता है। दूसरी ओर अल्प विकसित राष्ट्रों में अदृश्य बेरोजगार श्रम शक्ति की बाहुल्यता के कारण स्थायी रूप से अपने पारिवारिक व्यवसायों विशेषकर कृषि में लगा रहता है।

अल्प विकसित राष्ट्रों में समस्त श्रम शक्ति का लगभग २५% भाग अदृश्य बेरोजगार होता है। नर्क्से के अनुमानानुसार दक्षिण पूर्वी योरोप में अदृश्य बेरोजगारों का परिमाण १५% से २०% और दक्षिण-पूर्वी एशिया में यह परिमाण लगभग ३०% है। नर्क्से के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों का अतिरिक्त श्रम बचत का अदृश्य सम्भावित साधन होता है। इस मान्यता को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लिया कि किसी ग्रामीण समाज में १०० श्रमिकों को रोजगार प्राप्त है जिनमें से २५ श्रमिक आवश्यकता से अधिक हैं अर्थात् १०० श्रमिकों द्वारा जितनी मात्रा उत्पादित की जाती है उतनी ही ७५ श्रमिकों द्वारा की जा सकती है। स्पष्टीकरण को सरल करने के लिए यह भी मान लेते हैं कि १०० श्रमिक जो उत्पादन करते वह समस्त उत्पादन यह १०० श्रमिक उपभोग कर लेते हैं। अब यदि २५ श्रमिकों को हटाकर किन्हीं पूँजी परियोजनाओं में लगा दिया जाय और बचे हुए ७५ श्रमिकों का उपभोग स्तर पहले के समान ही रहता है तो हटे हुए श्रमिकों द्वारा उपभोग होने वाले उत्पादन का हस्तान्तरण नवीन व्यवसायों में किया जा सकता है और हटे हुए श्रमिक इसका उपभोग नवीन व्यवसायों में कार्य करते हुए कर सकते हैं। इस प्रकार इन हटे हुए श्रमिकों द्वारा जो पूँजी प्रसाधन उत्पादित किये जायेंगे उनके द्वारा अर्थ-व्यवस्था की पूँजी में शुद्ध वृद्धि होगी। इस परिस्थिति में ग्रामीण क्षेत्र के कुल उपभोग में कमी होगी परन्तु प्रति व्यक्ति उपभोग स्तर यथावत रहेगा और विनियोजन-स्तर में उपभोग-स्तर को कम किये बिना ही वृद्धि हो सकेगी।

अतिरिक्त श्रम के पूँजी अनुदान की मात्रा ग्रामीण क्षेत्र के उपभोग-स्तर की स्थिरता पर निर्भर रहेगी। यदि ग्रामीण क्षेत्र में रह जाने वाले श्रमिक वर्ग का उपभोग स्तर बढ़ जाता है और हस्तान्तरित हुए श्रमिकों का भी उपभोग-स्तर बढ़

जाय तो बचत एवं विनियोजन की सम्भावित वृद्धि में कमी हो जायगी। दूसरी ओर, हस्तान्तरित श्रमिकों द्वारा पूँजी-परियोजनाओं में काम लेने के लिए यदि कुछ लागत पूँजीगत प्रसाधनों के ऊपर व्यय करनी पड़े तो इस लागत से भी बचत एवं विनियोजन की सम्भावित वृद्धि कम हो जायगी। इस प्रकार अदृश्य बेरोजगार श्रम द्वारा पूँजी-निर्माण हेतु अधिकतम अनुदान प्राप्त करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों के नागरिकों का कृषकों पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर लगाकर तथा कठोर सुनिश्चय द्वारा व्यय को रोकना आवश्यक होगा। हस्तान्तरित श्रमिकों को आवश्यक औजार एवं उत्पादन के साधन प्रदान करने हेतु पर्याप्त वित्तीय साधन प्राप्त करने की आवश्यकता होगी।

नर्क्स के अतिरिक्त श्रम का पूँजी निर्माण के साधन के रूप में उपयोग करने की मान्यता सिद्धान्तरूप में उचित प्रतीत होती है परन्तु इसमें निम्नलिखित व्यावहारिक परिसीमाएँ हैं—

(अ) राज्य के पास पर्याप्त वित्तीय साधन, श्रम एवं सामग्रियों के आवागमन तथा अतिरिक्त श्रम को काम प्रदान करने हेतु किए जाने वाले पूँजी-विनियोजन के लिए होने चाहिए। यदि अतिरिक्त श्रम को काम देने वाली परियोजनाओं को ग्रामीण क्षेत्रों के समीप ही स्थापित किया जाय तो आवागमन की लागत कम हो सकती है परन्तु इनकी संचालन-लागत उत्पादन के अनुपात में अधिक हो जायगी। इसके अतिरिक्त श्रमिकों को उनके परम्परागत व्यवसायों एवं निवास-स्थानों से हटाना भी कठिन होगा जब तक कि उन्हें आकर्षक मजदूरी-दर एवं अन्य सुविधाएँ प्रदान न की जायें। इन आयोजनों की व्यवस्था से नवीन विनियोजन की कुल लागत में वृद्धि हो जायगी और उत्पादन अलाभिक हो सकता है।

(आ) अल्प विकसित राष्ट्रों में नवीन परियोजनाओं के निर्माण हेतु एवं उपभोग-स्तर को बढ़ने से रोकने के लिए करारोपण करना अत्यन्त कठिन होता है क्योंकि इन राष्ट्रों का कर-प्रशासन अकुशल होता है और ग्रामीण समाज पर कर भार बढ़ने से राजनीतिक समस्याएँ उदय होती हैं। राज्य द्वारा अतिरिक्त श्रम को ग्रामीण क्षेत्रों से हटाने के प्रयासों का भी ग्रामीण समाज द्वारा सामाजिक एवं परम्परागत विचारों के आधार पर विरोध किया जाता है।

(इ) अतिरिक्त श्रम अपने जन्मस्थानों से अपनी भावात्मक विचारधाराओं के कारण बँधा रहता है और इसके कुछ भी भाग को वित्तीय एवं अन्य प्रोत्साहनों द्वारा नवीन व्यवसायों में लाना सम्भव नहीं होता है। यह भी सम्भावना है कि हस्तान्तरित होने वाले श्रम में वे लोग ही सम्मिलित हों जो अत्यन्त निर्धन हों और जिनका उपभोग-स्तर अत्यन्त न्यून हो। इस प्रकार हस्तान्तरित श्रम से ग्रामीण क्षेत्र में उपभोग की बचत न्यून मात्रा में होगी और सम्भावित बचत इसके अनुरूप होने के कारण अत्यन्त कम होगी। अतिरिक्त श्रम के हस्तान्तरण से उत्पादन में कमी होना भी सम्भव है

सकती है क्योंकि जब तक ग्रामीण जनसमूह के उपभोग स्तर में वृद्धि नहीं की जाती है वह उत्पादन के वर्तमान स्तर को बनाये रखने में असमर्थ हो सकता है।

(ई) जब अतिरिक्त श्रम को ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों में हस्तान्तरित किया जाता है तो नागरिक जीवन का प्रभाव उस पर पड़ना अवश्यम्भावी होता है और यह मान लेना उचित प्रतीत नहीं होता कि हस्तान्तरित श्रम अपने पुराने उपभोग-स्तर को ही बनाये रखेगा। इस श्रम की उपभोग करने की इच्छा अधिक होगी जो आय वृद्धि के साथ साथ बढ़ती जायगी और सम्भावित बचत को कम कर देगी।

(उ) ग्रामीण क्षेत्रों से हस्तान्तरित होने वाले श्रमिक वर्ग में उत्पादकता के गुणों का अभाव होता है। उन्हें नवीन व्यवसायों में लगाने के गहन प्रशिक्षण एवं निरीक्षण की आवश्यकता होगी और इनके द्वारा उत्पादन भी कम मात्रा में किया जायगा। हस्तान्तरित होने वाले श्रम में प्रायः ऐसे लोग सम्मिलित होंगे जिनकी उत्पादन योग्यता औसत से कम होगी और इनके द्वारा अधिक उत्पादकता की सम्भावना करना उचित नहीं होगा। इन श्रमिकों को जटिल पूँजी प्रसाधनों के उत्पादन के लिए उपयोग करना सम्भव नहीं होगा और यदि उनकी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार व्यवसायों में रोजगार प्रदान किया जाय तो अर्थ-व्यवस्था को जिन पूँजीगत प्रसाधनों की आवश्यकता होगी उनका उत्पादन सम्भव नहीं हो सकेगा और आर्थिक प्रगति की गति को तीव्रता प्रदान करना सम्भव नहीं होगा।

अदृश्य बेरोजगारों का उपयोग पूँजी निर्माण हेतु करने में उपयुक्त व्यावहारिक परिसीमाएँ होते हुए भी इस श्रम का सर्वश्रेष्ठ उपयोग करना अत्यन्त आवश्यक होता है। विकास के प्रारम्भिक काल में अर्थ-व्यवस्था के विद्यमान साधनों का ही पूर्णतम उपयोग करने की आवश्यकता होती है और अदृश्य बेरोजगार भी उत्पादन का एक घटक होता है जिसका पूर्णतम उपयोग करके विकास के लिए योगदान प्राप्त किया जा सकता है।

भारत में पूँजी निर्माण—भारत में अन्य अल्प विकसित राष्ट्रों के समान विनियोजन की वृद्धि कम रही है। भारत के नियोजनकाल के पूर्व के तीन वर्षों (अर्थात् सन् १९४८-४९, १९४९-५० तथा सन् १९५०-५१) में समस्त विनियोजन राष्ट्रीय आय का लगभग ५½% था। प्रथम योजना के प्रारम्भ में विनियोजन की दर में वृद्धि हुई और सार्वजनिक क्षेत्र के विनियोजन का समस्त विनियोजन में बढ़ता गया है। सन् १९५०-५१ वर्ष (प्रथम योजना के प्रारम्भ के पूर्व का वर्ष) में समस्त विनियोजन से सार्वजनिक विनियोजन का भाग ३३% था जो सन् १९५५-५६ में बढ़कर ४३% हो गया। प्रथम योजना के अन्त में प्रति व्यक्ति औसत विनियोजन १७ रु० प्रति व्यक्ति था जबकि यह औसत सन् १९५०-५१ में १५ रु० था।

द्वितीय योजनाकाल में सरकारी एवं निजी क्षेत्र में मिलाकर कुल विनियोजन ६,७,६० करोड़ रुपया हुआ। प्रथम दो योजनाओं के संचालन के फलस्वरूप दस वर्षों

में विनियोजन ५०० करोड़ रुपया प्रति वर्ष से बढ़कर द्वितीय योजना के अन्त तक १६०० करोड़ रुपया प्रति वर्ष हो गया। इसी काल में सार्वजनिक क्षेत्र का कुल विनियोजन में भाग २०० करोड़ रुपये से बढ़कर ८०० करोड़ रुपया प्रति वर्ष हो गया। तृतीय योजनाकाल में कुल विनियोजन ११२७० करोड़ रुपया हुआ जिसमें से ७१८० करोड़ रुपया सार्वजनिक क्षेत्र में ४१६० करोड़ रुपया निजी क्षेत्र में हुआ। इसी प्रकार सन् १९६६ ६७, १९६७ ६८ एवं सन् १९६८ ६९ वर्षों में कुल विनियोजन क्रमशः २८०१, २०६७ तथा ३१८६ करोड़ रुपया होने की सम्भावना है। इन आँकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था के १८ वर्षों में विनियोजन ५०० करोड़ रुपया प्रति वर्ष से बढ़कर सन् १९६८ ६९ की वार्षिक योजना के अन्त तक ३१८६ करोड़ रुपया प्रति वर्ष हो गया है अर्थात् विनियोजन की वार्षिक राशि में छह गुनी से भी अधिक वृद्धि हो गयी है।

भारतवर्ष में पूँजी निर्माण का परिमाण एवं दर निम्नलिखित सारिणी में स्पष्ट की गयी है—

तालिका सं० १२—भारत में पूँजी निर्माण[1]

(१९६० ६१, १९६७ ६८ से १९६९-७० तथा १९७३ ७४)

(१०० करोड़ रुपया में १९६०-६१ के मूल्यों पर)

मद	१९६०-६१	१९६७-६८	१९६८-६९	१९६९-७०	१९७३-७४
१ राष्ट्रीय आय	१३४ ५	१७५ ८	१८३ २	१९४ २	२४५ ३
२ सकल आवर्तित उत्पादन	१५२ २	१९९ २	२११ १	२२३ ५	२८१ ०
३ सकल पूँजी निर्माण	२३ ४	३२ ०	३५ ०	३८ ५	५३ ०
४ सकल पूँजी निर्माण का सकल उत्पादन से प्रतिशत	१५ ४	१६ १	१६ ५	१७ २	१८ ९
५ सकल पूँजी निर्माण का राष्ट्रीय आय से प्रतिशत	१७ ७	१८ २	१९ १	१९ ८	२१ ६

इस तालिका में १९६०-६१ एवं १९६७ ६८ के वास्तविक आँकड़े एवं अन्य वर्षों के आयोजनों का विवरण दिया गया है। सन् १९६०-६१ से सन् १९६७-६८ तक के सात वर्षों में राष्ट्रीय आय में २०% और सकल पूँजी निर्माण में ३०% की वृद्धि हुई है। चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक पूँजी-निर्माण की दर को बढ़ाकर राष्ट्रीय आय का २०% से भी अधिक करने का लक्ष्य रखा गया है।

---

1 Notes on Approach to the Fourth Plan—Sixth Paper

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एव आर्थिक प्रगति

[Foreign Trade and Economic Development]

[विदेशी व्यापार एव राष्ट्रीय आय मे सम्बन्ध विदेशी व्यापार एव अल्प विकसित राष्ट्रो की प्रगति अल्प विकसित राष्ट्रो मे विदेशी व्यापार सम्बन्धी समस्याएँ—निर्यात सम्वर्द्धन सम्बन्धी समस्याएं आयात-सम्बन्धी समस्याएं, व्यापार की शर्तें एव आर्थिक प्रगति, भारत का विदेशी व्यापार एव आर्थिक प्रगति]

अर्थ व्यवस्था म व्यापार की प्रगति से आर्थिक प्रगति भी प्रभावित होती है। व्यापार द्वारा नवीन वस्तुओ का परिचय जनसमुदाय का होता है और वह उसकी माँग करने लगता है। व्यापार के विस्तार से एक ओर बडे पमाने के उत्पादन का प्रोत्साहन मिलता है और दूसरी ओर उत्पादन क्रियाओ म विशिष्टीकरण का महत्व बढ जाता है। प्राचीन अर्थ व्यवस्थाओ म प्राय छोटी छोटी इकाइयो की आत्म निर्भरता पर अधिक जोर दिया जाता है और प्रत्येक परिवार जाति अथवा ग्राम अपनी आवश्यकता की समस्त वस्तुए स्वय पूरा किया करते थे। इस आत्म निर्भरता के वातावरण म जन समुदाय को उन्ही वस्तुओ का उपभोग एव उत्पादन करने का अवसर मिलता था जिसे वह अपने उपलब्ध साधनो से उत्पन्न कर सकते हो। कुछ ऐसा अनिवार्य वस्तुओ का भी उत्पादन करना होता था जिनम उस ग्राम या क्षेत्र म उपयुक्त सुविधाए उपलब्ध नहीं होती जिसके परिणामस्वरूप साधनो का अधिक व्यय होना है। व्यापार की प्रगति के साथ साथ इस प्रकार की आत्म निर्भरता समाप्त हो जाती है और प्रत्येक क्षेत्र अथवा देश उन्ही वस्तुओ के उत्पादन म विशिष्टीकरण प्राप्त करता है जिनके लिए उसके पास सर्वोत्तम सुविधाएँ है। प्रत्येक देश इस प्रकार कुछ चुनी हुई वस्तुओ का उत्पादन बडी मात्रा मे करता है और कुशल उत्पादन के लिए श्रम विभाजन का उपयोग किया जाता है। श्रम विभाजन से विशिष्टीकरण होता है और विशिष्टीकरण म अधिक कुशल मशीनो का आविष्कार और इन आविष्कारों से ज्ञान एव पूँजी म वृद्धि होती है और यह दोनो घटक इन रूपों से आर्थिक प्रगति म सहायक होते हैं। बडे पमाने के उत्पादन एव व्यापार की उन्नति के फलस्वरूप नवीन बाजारों की खोज करने की आवश्यकता होती है और नये बाजार स्थापित किए जाते हैं परन्तु व्यापार की उन्नति म आधुनिक युग म मानव द्वारा बहुत से प्रतिबन्ध आयात निर्यात-कर प्रशुल्क आदि के

रूप में लगाए गए हैं जिससे एक देश के दूसरे देश में तथा एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में स्वतन्त्र व्यापार नहीं हो सकता। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार द्वारा अल्प विकसित राष्ट्र केवल मशीनें व सामग्री ही विदेशों से प्राप्त नहीं करते, बल्कि तांत्रिक ज्ञान भी विदेशों से प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार व्यापार के विस्तार से आर्थिक प्रगति में सहायता होती है।

विदेशी व्यापार एवं राष्ट्रीय आय का सम्बन्ध

विदेशी व्यापार एवं राष्ट्रीय आय की संरचना एवं परिमाण का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। यह दोनों एक दूसरे के कारण एवं प्रभाव रहते हैं अर्थात् एक में कुछ परिवर्तन होने पर दूसरे में भी परिवर्तन हो जाते हैं। जब किसी एक राष्ट्र में (जिसमें राष्ट्रीय आय एवं विदेशी व्यापार में सामान्य सन्तुलन अथवा अनुपात हो) निर्यात में वृद्धि होती है और आयात यथावत रहता है तो इस देश की वस्तुओं की विदेशों में माँग बढ़ जाती है और इस देश के विनियोजन-स्तर में वृद्धि होने लगती है जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक क्रियाओं का विस्तार होता है और राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो जाती है। विदेशी व्यापार से प्राप्त होने वाली शुद्ध अर्थ साधन की राशि निर्यात एवं आयात के मूल्य के अन्तर के बराबर होती है और जब निर्यात आयात से अधिक होता है तो यह आधिक्य की राशि विनियोजन का अंग होती है। इस प्रकार किसी अर्थ-व्यवस्था का कुल विनियोजन किसी निश्चित काल में आन्तरिक विनियोजन में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधिक्य को जोड़कर ज्ञात किया जाता है। अर्थ-व्यवस्था की वास्तविक बचत (Realized Savings) आन्तरिक एवं विदेशी विनियोजन के बराबर होती है। जब अर्थ-व्यवस्था में विदेशी भुगतान शेष में अतिरेक होता है तो अतिरिक्त विनियोजन होना स्वाभाविक होता है और अर्थ-व्यवस्था का विस्तार होता है। दूसरी ओर भुगतान शेष की हीनता होने पर बचत का आधिक्य होता है और अर्थ-व्यवस्था में संकुचन का वातावरण विद्यमान होता है। निर्यात आधिक्य के फलस्वरूप जब अतिरिक्त विनियोजन होता है तो यह अतिरिक्त विनियोजन जन साधारण की आय एवं व्यय दोनों में वृद्धि कर देता है। इस आन्तरिक आय में वृद्धि होने से अधिक निर्यात-आयात की इच्छा सुदृढ़ होती है और निर्यात-अतिरेक से उदय होने वाले आर्थिक विस्तार में आयात वृद्धि की सीमा तक कमी हो जाती है।

दूसरी ओर राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि विदेशी व्यापार को प्रभावित करती है। आर्थिक प्रगति द्वारा अर्थ-व्यवस्था की उत्पादनक्षमता में वृद्धि होती है। इसके साथ, आर्थिक प्रगति के अन्तर्गत जो अतिरिक्त विनियोजन किया जाता है उससे आय में वृद्धि होती है जो आयात-वृद्धि को प्रोत्साहित करती है। इस प्रकार अतिरिक्त विनियोजन द्वारा आयात एवं निर्यात में अनुकूल अथवा प्रतिकूल वृद्धि हो सकती है। ऐसे राष्ट्र जिनमें बचत की दर अधिक हो, पूँजी की उत्पादकता का अनुपात अधिक तथा विदेशी व्यापार में शेष अनुकूल होकर उत्पादनक्षमता में अधिक दर से वृद्धि करने

मे समय होते हैं। दूसरी ओर अल्प विकसित राष्ट्रो म जहाँ बचत की दर कम और विदेशी व्यापार का प्रतिकूल शेष होता है विदेशी व्यापार द्वारा उत्पादनक्षमता म सीमित वृद्धि होती है। इन राष्ट्रों म यदि नवीन विनियोजन आयात-वृद्धि के बराबर होता है और आन्तरिक विनियोजन का प्रकार ऐसा होता है कि इसमे उदय होने वाली मौद्रिक आय उत्पादनक्षमता की वृद्धि के अनुरूप होती है तो आर्थिक प्रगति का व्यापार शेष पर प्रतिकूल प्रभाव नही पडता है परन्तु जब विनियोजन इस सीमा से अधिक होता है तो निर्यात म आयात के अनुरूप वृद्धि होना सम्भव नही होता है और व्यापार शेष पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है।

विदेशी व्यापार का अल्प विकसित राष्ट्रो के विकास से सम्बन्ध

लगभग समस्त विकसित राष्ट्रो का आर्थिक प्रगति का इतिहास इस बात का साक्षी है कि विदेशी व्यापार का विस्तार आर्थिक प्रगति म सहायक होता है। रूस को छोड़कर सभी विकसित राष्ट्रो म विदेशी व्यापार एव राष्ट्रीय आय म एक साथ वृद्धि होती रही है। रूस की सरकारी नीति एव साधनो की बाहुल्यता के कारण विदेशी व्यापार को अपना पूरा योगदान देने का अवसर प्रदान नही किया गया। अल्प विकसित राष्ट्रो म विदेशी व्यापार पूजी निर्माण की दर म वृद्धि करने म सहायक होता है। इन राष्ट्रो म प्रति व्यक्ति आय एव उपभोग न्यून स्तर पर होने के कारण पूजी निर्माण हेतु उपभोग स्तर को और कम करना सम्भव नही होता है। ऐसी परिस्थिति मे निधनता युक्त उत्पादन न्यून बचत एव विनियोजन एव आर्थिक पिछडेपन के दूषित चक्र को तोडने के लिए विदेशी पूँजी एव सहायता की आवश्यकता होती है। यदि यह विदेशी पूजी एव सहायता पर्याप्त मात्रा म उपलब्ध न हो तो निर्यात आय मे वृद्धि करना अनिवार्य होता है। निर्यात आय म वृद्धि करके ही अल्प विकसित राष्ट्र पूजी प्रसाधन एव तान्त्रिक ज्ञान विदेशो से आयात कर सकते हैं जिनके उपयोग द्वारा ही आर्थिक प्रगति एव आन्तरिक पूजी निर्माण को बढावा मिल सकता है। विदेशी व्यापार के विस्तार से अल्प विकसित राष्ट्रो के उत्पादो की प्रभावशाली माँग मे वृद्धि होती है और इन राष्ट्रो को ससार के बडे बाजारो म प्रवेश मिलता है।

अल्प विकसित राष्ट्रो को अपने निर्यात सवर्द्धन हेतु एक या दो विद्यमान उद्योगो का ही विस्तार करना होता है क्योकि इन राष्ट्रो म नवीन अभिनवो का उपयोग एव नवीन वस्तुओं का उत्पादन करना विकास की प्रारम्भिक अवस्था म सम्भव नही होता है। एक या दो उद्योगो के उत्पादो का निर्यात बडी मात्रा म करके जो विदेशी विनिमय अर्जित किया जाता है, उसके द्वारा दूसरे उद्योगो के विकास एव विस्तार के लिए आवश्यक पूजीगत प्रसाधन आयात किये जा सकते हैं। इस प्रकार निर्यातप्रधान (Export Oriented) उद्योगो के विकास एव विस्तार से अन्य उद्योगो के विकास एव विस्तार के लिए साधन एव प्रोत्साहन उपलब्ध होता है और यह निर्यात प्रधान उद्योग विकास प्रेरक केन्द्र बन जाते हैं जिनसे समस्त अर्थ-व्यवस्था गतिमान हो

जाती है। निर्यातप्रधान उद्योगों के विस्तार के लिए उपरिव्यय सुविधाओं (Overhead Facilities) की व्यवस्था की जाती है। उनका लाभ नवीन उद्योगों को भी प्राप्त होता है और नवीन व्यवसायों की स्थापना के लिए प्रोत्साहन प्राप्त होता है। उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटेन में निर्यातप्रधान उद्योगों का विस्तार इसलिए हो सका कि इनके उत्पादों की विदेशों में माँग बढ़ गयी थी और विदेशों से कच्चा माल एवं खाद्य-पदार्थों का आयात करना सम्भव हो सका। ब्रिटेन का इस विकास प्रक्रिया का लाभ उन राष्ट्रों को भी प्राप्त हुआ जिनके साथ ब्रिटेन के व्यापार का विस्तार हुआ। इन देशों में ब्रिटेन की वस्तुओं के प्रवेश ने आर्थिक प्रगति को प्रोत्साहित किया और ब्रिटेन द्वारा इनसे जो बड़ी मात्रा में कच्चा माल आदि आयात किये गये उसी से ब्रिटिश पूँजी इन देशों में प्रवाहित हुई और विकास की प्रक्रिया गतिमान हो सकी। इन देशों में कनाडा, अर्जेण्टाइना (पूर्व) न्यूजीलैण्ड तथा आस्ट्रेलिया थे। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी में विदेशी व्यापार ने आर्थिक प्रगति का विस्तार विभिन्न राष्ट्रों में किया परन्तु दूसरी ओर भारत, चीन तथा उष्ण कटिबन्धीय अफ्रीकी राष्ट्रों एवं मध्य अमरीकी राष्ट्रों के विकास में विदेशी व्यापार पर्याप्त योगदान न दे सका। इन देशों में एक ओर विकसित निर्यात-क्षेत्र था और उसके साथ ही, परम्परागत पिछड़ा हुआ आन्तरिक उत्पादन था। विदेशी व्यापार का लाभ केवल निर्यात क्षेत्र को ही प्राप्त हुआ क्योंकि वह प्रायः विदेशियों के हाथ में था और आन्तरिक क्षेत्र यथावत अविकसित अवस्था में बना रहा। यदि भारत, चीन, मध्य अमेरिकी एवं उष्ण कटिबन्धीय राष्ट्रों में राष्ट्रीय सरकारें होतीं और आर्थिक एवं सामाजिक वातावरण विकास के अनुकूल होता तो वहाँ की सरकारें निर्यात से उपलब्ध होने वाले साधनों का उपयोग समस्त अर्थ-व्यवस्था के विकास के लिए कर सकती थीं और इन देशों में विकास का आरम्भ लगभग १०० वर्ष पूर्व हो गया होता।

विदेशी व्यापार द्वारा अल्प-विकसित राष्ट्रों के नागरिक विकसित राष्ट्रों के नागरिकों के सम्पर्क में आते हैं जिससे अल्प विकसित राष्ट्रों में जीवन स्तर में सुधार, कुशल संगठन व्यवस्था तथा शिक्षा के स्तर में वृद्धि का प्रसार होता है। इन सुधारों से सामाजिक एवं मानवीय पूँजी का निर्माण होता है जो आर्थिक प्रगति के लिए विनियोजन एवं उत्पादन-वृद्धि के समान ही महत्वपूर्ण होते हैं परन्तु यह लाभ भी देश के राजनीतिक एवं आर्थिक तथा सामाजिक वातावरण पर निर्भर रहता है। विदेशी व्यापार से मिलने वाले प्रारम्भिक लाभों के वितरण के प्रकार पर आर्थिक प्रगति का गतिमान होना निर्भर होता है। यह लाभ यदि विदेशी विनियोजकों को प्राप्त होता तो आर्थिक प्रगति में यह सहायक नहीं हो सकता है। यदि यह लाभ निर्यातप्रधान उद्योगों में कार्य करने वाले बड़े मजदूर-वर्ग एवं देश के साहसियों को प्राप्त होता है तो विदेशी व्यापार का विस्तार आर्थिक प्रगति का आधार बन जाता है।

अल्प विकसित राष्ट्रों में विदेशी व्यापार-सम्बन्धी समस्याएँ

अभी तक के अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया है कि विदेशी व्यापार आर्थिक प्रगति

के लिए महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करता है। आधुनिक युग में इसीलिए अल्प विकसित राष्ट्रों में विदेशी व्यापार का विस्तार करने के लिए भरसक प्रयत्न किये जाते हैं। विदेशी व्यापार का विस्तार करने के सम्बन्ध में इन राष्ट्रों को जिन समस्याओं को वहन करना पड़ता है उनकी विवेचना निम्न प्रकारेण की जा सकती है।

निर्यात सवंर्द्धन सम्बन्धी समस्याएँ

निर्यात आय एवं आन्तरिक विनियोजन में घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण प्रत्येक विकासशील राष्ट्र को अपने निर्यात बढ़ाना अनिवार्य हो गया है। इन राष्ट्रों में कुल निर्यात आय का बहुत थोड़ा सा भाग ही पूँजी निर्माण के लिए उपलब्ध होता है क्योंकि चालू निर्यात आय का बड़ा भाग नियमित आयात (निर्वाह आयात) एवं विदेशी ऋणों के मूलधन एवं ब्याज के शोधनार्थ उपयोग हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में इन देशों में पूँजी निर्माण में वृद्धि करने के लिए निर्यात में पर्याप्त वृद्धि करना आवश्यक होता है परन्तु निर्यात सवंर्द्धन में उपस्थित होने वाली समस्याएं निम्न प्रकार हैं—

(अ) अल्प विकसित राष्ट्रों में आय की वृद्धि के साथ मशीनों औजारों पूँजीगत प्रसाधनों विलासिता की वस्तुओं एवं अन्य निर्मित वस्तुओं की माँग बढ़ती जाती है और इनका आयात विकसित राष्ट्रों से बड़ी मात्रा में करना पड़ता है परन्तु विकसित राष्ट्रों में आय की वृद्धि के साथ साथ खाद्य-पदार्थ एवं कच्चे माल की माँग में आय वृद्धि के अनुपात में नहीं होती है। खाद्य पदार्थ एवं कच्चे माल अल्प विकसित राष्ट्रों को निर्यात होते हैं। इस प्रकार विकास के व्यापक वातावरण में अल्प विकसित राष्ट्रों के आयात में तीव्र गति से वृद्धि होती है परन्तु निर्यात में उसके अनुरूप वृद्धि नहीं हो पाती है।

(आ) अल्प विकसित राष्ट्रों के विदेशी व्यापार पर विकसित अर्थ व्यवस्थाओं की आय में होने वाले चक्रीय परिवर्तनों का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है क्योंकि अल्प विकसित राष्ट्रों के निर्यातों का केन्द्रीयकरण कुछ ही विकसित राष्ट्रों में होता है और इनके निर्यात में प्रायः प्राथमिक उत्पाद ही सम्मिलित होते हैं। जिस देश में आर्थिक प्रगति का जितना ऊँचा स्तर होता है उतना ही अधिक उसके निर्यात में विभिन्नता पायी जाती है। अल्प विकसित राष्ट्रों में निर्यात का राष्ट्रीय आय से अनुपात भी अधिक होता है। इन परिस्थितियों में इनका निर्यात प्राप्त करने वाले देश में प्राथमिक वस्तुओं की माँग में जब कोई चक्रीय परिवर्तन होते हैं तो उसका प्रतिकूल प्रभाव निर्यात करने वाले अल्प विकसित राष्ट्रों पर पड़ता है। इस प्रकार अल्प विकसित राष्ट्रों के निर्यात में उच्चावचन होना स्वाभाविक होता है जो आर्थिक प्रगति के लिए घातक होते हैं।

(इ) विकसित एवं अल्प विकसित राष्ट्रों में जो औद्योगिक उत्पादन के प्रकार में परिवर्तन हो रहा है उसके द्वारा भी अल्प विकसित राष्ट्रों के निर्यात पर प्रतिकूल

प्रभाव पड़ता है। विकसित राष्ट्रों में हल्के एवं रसायनिक उद्योगों का स्थान इंजीनियरिंग एवं साधन-जन्य भारी उद्योगों को दिया जा रहा है जिससे इन राष्ट्रों में प्राथमिक कच्चे माल के आयात की आवश्यकता कम पड़ती जा रही है। दूसरी ओर, विकासशील राष्ट्रों में तीव्र औद्योगीकरण को अत्यधिक महत्व प्रदान किया जाने लगा है जिसके फलस्वरूप द्वितीयक उद्योगों (Secondary Industries) का विस्तार हुआ है। यह उद्योग उन कच्चे मालों का उपयोग करने लगे हैं जो निर्यात के लिए उपलब्ध होते थे। इस प्रकार इन राष्ट्रों में उपभोक्ता-वस्तुओं एवं हल्की औद्योगिक वस्तुओं के आयात का स्वदेशी उत्पादन से प्रतिस्थापन करने को अधिकतम सर्वाधिक प्राथमिकता प्राप्त है। इसका परिणाम यह होता है कि विकासशील राष्ट्रों के पास निर्यात में भेजी जाने वाली वस्तुओं की पर्याप्त पूर्ति नहीं है और निर्यात-संवर्द्धन के द्वारा अधिक विदेशी विनिमय अर्जित करना कठिन हो गया है जिसके परिणामस्वरूप आवश्यक आयात को भी कम करना पड़ता है जो विकास की गति को मन्द कर देता है।

(ई) विकासशील राष्ट्रों के प्राथमिक वस्तुओं एवं कच्चे माल के निर्यात में कमी हो जाने पर अन्य वस्तुओं के निर्यात को बढ़ाने के प्रयास किए जाते हैं। इन वस्तुओं में हल्की इंजीनियरिंग वस्तुएँ, टिकाऊ उपभोक्ता-वस्तुएँ एवं अन्य हल्के निर्मित उत्पाद होते हैं। इनके निर्यात करने के लिए इन राष्ट्रों को विकसित राष्ट्रों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी होती है और कम मूल्य पर इन वस्तुओं का निर्यात करने की क्षमता रखते हुए भी यह राष्ट्र इनके निर्यात में वृद्धि करने में असमर्थ रहते हैं। इस परिस्थिति का प्रमुख कारण यह है कि अधिकांश के निर्धन राष्ट्र नकद मूल्य देकर आयात करने में समर्थ न होने के कारण विदेशी सहायता एवं साख द्वारा अपने आयात की व्यवस्था करते हैं। विकसित राष्ट्र बड़ी मात्रा में विदेशी सहायता प्रदान करके अपनी वस्तुएँ निर्यात करने में सफल होते हैं जबकि विकासशील राष्ट्र दीर्घकालीन साख प्रदान करने में असमर्थ होने के कारण अपनी वस्तुओं के निर्यात को बढ़ाने में सफल नहीं होते हैं।

(उ) अल्प विकसित राष्ट्रों की अर्थ-व्यवस्थाएँ सुसंगठित न होने तथा साधनों के प्रबल न होने के कारण निर्यात द्वारा उपलब्ध विदेशी आय का उत्पादक विनियोजन करने में समर्थ नहीं होते हैं। अर्जित विदेशी विनिमय का पूँजीगत उद्योगों में विनियोजन करने के लिए विदेशों से भारी पूँजीगत प्रसाधनों एवं तान्त्रिक ज्ञान के आयात की आवश्यकता होती है। इन प्रसाधनों के आयात में राष्ट्र की आयात-नीति एवं विदेशी विनिमय नियन्त्रण की समस्याएँ बाधाएँ उपस्थित करती हैं।

आयात-सम्बन्धी समस्याएँ

आर्थिक प्रगति के लिए पूँजीगत एवं उपभोक्ता-वस्तुओं का बड़ी मात्रा में आयात करना आवश्यक होता है। पूँजीगत वस्तुओं की आवश्यकता नवीन विनियोजन कार्यक्रमों के लिए तथा उपभोक्ता-वस्तुओं की आवश्यकता आय-वृद्धि के फलस्वरूप माँग में होने वाली वृद्धि के कारण होती है। आयात में सम्मिलित होने वाली वस्तुएँ तेल के

आकार, आन्तरिक साधनों की उपलब्धि विकास के स्तर तथा आय वितरण के प्रकार पर निर्भर रहती है। यदि आर्थिक प्रगति के प्रारम्भ के साथ साथ श्रमिकों की मजदूरी की कुल राशि में वृद्धि होती है और जनसंख्या भी तीव्र गति से बढ़ती है तो खाद्य पदार्थों के आयात की आवश्यकता हो जाती है। दूसरी ओर यदि आर्थिक प्रगति के फलस्वरूप उच्च आय वाले वर्ग की मौद्रिक आय में वृद्धि होती है तो अच्छी उपभोक्ता वस्तुओं का आयात अथवा उत्पादन बढ़ाया जाता है। जब आर्थिक प्रगति के परिणामस्वरूप साहसी वर्ग के लाभ में वृद्धि होती है तो विनियोजन वस्तुओं के आयात में वृद्धि नवीन व्यवसायों की स्थापना हेतु की जाती है। अल्प विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं में विकास के प्रारम्भ होने के साथ साथ आयात में निम्न कारणों से वृद्धि होती है—

(अ) अल्प विकसित राष्ट्रों में विकास के प्रारम्भ के साथ साथ आयात में वृद्धि दो प्रकार से होती है। प्रथम विकास के अन्तर्गत स्थापित होने वाली विनियोजन परियोजनाओं के लिए पूंजीगत प्रसाधनों, कच्चा माल एवं तान्त्रिक ज्ञान के आयात की बढ़ाने की आवश्यकता होती है। द्वितीय—विनियोजन के विस्तार के फलस्वरूप समाज की मौद्रिक आय में वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप अधिक उपभोक्ता वस्तुओं की माँग उदय होती है जिसकी पूर्ति करने के लिए अधिक आयात की आवश्यकता होती है। उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में वृद्धि करारोपण के परिमाण पर निर्भर रहती है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था उपभोग को नियन्त्रित करके उपभोक्ता वस्तुओं की माँग को अधिक नहीं बढ़ने दिया जाता है और आयात वृद्धि केवल विनियोजन वस्तुओं की ही की जाती है।

(आ) अल्प विकसित राष्ट्रों में उत्पादन के कुछ घटकों का बाहुल्य (विशेषकर श्रम का) और कुछ अन्य घटकों जैसे पूंजी की कमी पायी जाती है। पूंजी की मात्रा में वृद्धि करके अर्थ-व्यवस्था के उपयोग न लाये गये उत्पादन के घटकों का उपयोग करके उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि की जाती है। जब तक उत्पादन के समस्त घटकों का पूर्णतम उपयोग नहीं हो जाता यह विधि जारी रहती है। इस विधि को जारी रखने के लिए विनियोजन वस्तुओं का आयात आवश्यक होता है। इसी कारण उपयोग में न लिये गये साधनों का जब तक पूर्ण उपयोग नहीं होने लगता आयात में वृद्धि होती रहती है।

(इ) अल्प विकसित राष्ट्रों में सरकार द्वारा आर्थिक प्रगति की प्रक्रिया प्रारम्भ करने हेतु अधिक रुचि ली जाती है और वह विकास को तीव्र गति प्रदान करने के लिए मुद्रा प्रसार से प्रेरित विनियोजन के बड़ी मात्रा में उपयोग करने को प्रोत्साहित करती है। मुद्रा प्रसार से प्रेरित विनियोजन-वृद्धि के फलस्वरूप समाज की मौद्रिक आय में तीव्र गति से वृद्धि होती है जिसका देश की भुगतान शेष की स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जब समाज की वास्तविक आय की तुलना में मौद्रिक आय में अधिक वृद्धि होती है तो माँग का दबाव आन्तरिक एवं विदेशी साधनों पर बढ़ जाता है।

आन्तरिक मूल्य-स्तर विदेशी बाजारों के मूल्य-स्तर से अधिक ऊँचा होने के कारण आयात करने की इच्छा अत्यधिक हो जाती है। यदि मुद्रा-स्फीति के फलस्वरूप धनी वर्ग की आय में वृद्धि होती है तो वह विलासिता की वस्तुओं के आयात की माँग करता है। यदि विलासिता की वस्तुओं के आयात को प्रतिबन्धित कर दिया जाता है तो इनकी स्थानापन्न स्वदेशी वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाया जाता है जिससे निर्यात-वस्तुओं के उत्पादन के लिए साधनों की कमी हो जाती है।

अल्प विकसित राष्ट्रों में जनसंख्या की वृद्धि की दर अधिक होने के कारण बेरोजगारी, उत्पादकता की कमी, प्रति व्यक्ति आय की कमी, बचत की दर की कमी आदि कठिन परिस्थितियाँ विद्यमान होती हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या को खाद्य-पदार्थ एवं अन्य आवश्यक उपभोक्ता वस्तुएँ प्रदान करने के लिए अधिक आयात करने की आवश्यकता होती है।

व्यापार की शर्तें एवं आर्थिक प्रगति

किसी देश की निर्यात-आय केवल निर्यात की मात्रा के आयात की मात्रा से आधिक्य पर ही निर्भर नहीं होती है। इस आय पर निर्यात की जाने वाली वस्तुओं का विदेशी बाजारों में मिलने वाला मूल्य तथा आयात के मूल्यों का भी प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार व्यापार की शर्तों पर विदेशी व्यापार से मिलने वाला आर्थिक प्रगति के लिए योगदान निर्भर रहता है। व्यापार-शर्तों के अनुकूल होने पर निर्यात से अधिक विदेशी विनिमय मिलता है और आयात के बदले कम विदेशी विनिमय का भुगतान करना पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप देश की क्रय शक्ति विदेशी बाजारों में बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त क्रय शक्ति का उपयोग विकास-सामग्री का आयात अधिक मात्रा में करने के लिए किया जा सकता है। इसके विपरीत जब व्यापार की शर्तें प्रतिकूल हों तो निर्यात की मात्रा में वृद्धि होते रहने और आयात में इस निर्यात-वृद्धि की तुलना में कम वृद्धि होते हुए भी देश को विदेशी व्यापार से बहुत कम अथवा बिल्कुल लाभ आर्थिक प्रगति हेतु प्राप्त नहीं होता है। निर्यात-वस्तुओं के मूल्य अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में कम होने पर देश की क्रय-शक्ति कम हो जाती है और निर्यात-आय को पूर्ववत् बनाये रखने के लिए अधिक वस्तुओं के निर्यात की आवश्यकता होती है। निर्यात-मूल्यों में कमी होने के साथ यदि देश में विकास के परिणामस्वरूप उत्पादकता में वृद्धि हो जाती है तो इस प्रतिकूल व्यापार-शर्त का विकास पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता है। निर्यात-वस्तुओं के मूल्य विदेशी बाजारों में कम हो जाने से इनके निर्यात का परिमाण कम होने लगता है विशेषकर ऐसी परिस्थिति में जब देश में मुद्रा-स्फीति का दबाव हो और आन्तरिक मूल्य-स्तर ऊँचा हो। निर्यातकों को ऐसी परिस्थिति में अपनी वस्तुओं को आन्तरिक बाजार में बेचने से ही लाभ प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त निर्यात-वस्तुओं के मूल्य कम होने पर इनसे सम्बन्धित उद्योगों में विनियोजन-रोजगार एवं उत्पादन कम होने लगता है और आर्थिक प्रगति को ठेस पहुँचती है।

दूसरी ओर, जब प्रतिकूल व्यापारिक शर्तों के फलस्वरूप आयात क मूल्या म वृद्धि हो जाती है तो विनियोजन प्रसाधना के आयात की लागत अधिक हो जाती है और आयात प्रतिस्थापन सम्बन्धी उद्योगा एव निर्यात वस्तुओ क विस्तार के कायक्रम म क्षति पहुँचती है और आर्थिक प्रगति की गति मन्द हो जाती है।

विभिन अल्प विकसित देशो के विदेशी व्यापार का अध्ययन विभिन्न अथ शास्त्रियो द्वारा किया गया है और इन अध्ययनो से यह नतीजा निकाला गया है कि सामान्यत दीघ काल म व्यापार की शर्तें अल्प विकसित राष्ट्रो के प्रतिकूल रहती है। व्यापार की शर्तों को प्रभावित करन म विभिन्न घटक होते है जिनके सामूहिक प्रभाव से व्यापार की शर्तों म परिवतन होत रहत है। इन घटको म आय से होन वाले परिवतन आय एव निर्यात की वस्तुओ की माग का लोच फसलो व उच्चावचान श्रमिको क बड बडे भगडे तथा अन्य आकस्मिक परिस्थितिया व्यापार की शर्तों को प्रभावित करता है। जिस देश क आयात की माग अधिक लोचदार होती है और उसक निर्यात की माँग कम लोचदार होती है उस देश के लिए व्यापार का अनुकूल शर्तें उपल न होती है क्योकि यह देश अपन आयात म आवश्यकतानुसार कमी अथवा वृद्धि कर सकता है जबकि अ य देशो म इस देश के निर्याता को कम या अधिक करना सम्भव नहा होता। यह परिस्थिति प्राय उद्योगप्रधान राष्ट्रो की होती है। निर्यात-वस्तुओ की माँग की लोच कम होन के साथ यदि इनकी पूर्ति कम लोचदार होता है तो इनक मूल्य माग बढन क साथ बढ़त जाते हैं। अल्प विकसित राष्ट्रो क निर्यात का माँग विकसित राष्ट्रो म अधिक लोचदार होती है जबकि विकसित राष्ट्रों के निर्यात की माग अल्प विकसित राष्ट्रो म कम लोचदार होती है और यही कारण है कि अल्प विकसित राष्ट्रो को प्रतिकूल व्यापार शर्तों का सामना करना पडता है। पू जीगत प्रसाधनो का माग विकासशील राष्ट्रो म अधिक होती है जबकि इनकी पूर्ति विकसित राष्ट्रो म लगभग बेलोचदार होती है जिसके परिणामस्वरूप विकासशील राष्ट्रो को पू जीगत प्रसाधनो का अत्यधिक मूल्य देना पडता है। व्यापार की शर्तें किसी भी देश की अपन साधनो का वकल्पिक उपयोगो म हस्तान्तरण की क्षमता पर भी निभर रहती है। साधनो क हस्तान्तरण का सुविधा साधनो के प्रकार साहसिया की योग्यता एव कुशलता श्रम का गतिशीलता आदि पर निभर रहती है। जो देश व्यापार की शर्तों के परिवतन क अनुरूप अपने उत्पादन म भी परिवतन करन म समथ होता है वह अनुकूल व्यापार शर्तों का लाभ उठा सकता है। साधनो के हस्तान्तरण की क्षमता स्वभावत विकसित अथ-व्यवस्थाओं को ही उपलब्ध होती है।

भारत का विदेशी व्यापार एव आर्थिक प्रगति

भारत म प्रथम योजना के प्रथम वष म विदेशी व्यापार राष्ट्रीय आय का १६% था जो सन् १९५३ ५४ म घटकर ९% हो गया परन्तु इसके पश्चात इस प्रतिशत म निरन्तर वृद्धि होती रही और सन् १९५८ ५९ स कुछ कमी का प्रारम्भ

की गतिमान होने से राशन में खाद्यान्न एवं विदेशी व्यापार का सर्वाधिक योगदान रहा है। खाद्यान्न की समस्या भी विदेशी व्यापार से सम्बद्ध है क्योंकि खाद्यान्नों की कमी को पूरा करने के लिए विदेशों से इनका आयात बड़ी मात्रा में करना पड़ा है। सन् १९६० से १९६६ के सात वर्षों के काल में भारत ने ४०८ लाख टन खाद्यान्न का १७०६.८ करोड़ रुपये की लागत पर आयात किया। वास्तव में आयात प्रतिस्थापन नीति के अन्तर्गत आधारभूत आयातों के प्रतिस्थापन की व्यवस्था की जानी चाहिए थी। यदि खाद्यान्नों के उत्पादन एवं संग्रह की व्यवस्था को आयात प्रतिस्थापन-नीति का आवश्यक अंग मान लिया गया होता तो भारतीय विदेशी व्यापार-शेष इतना प्रतिकूल नहीं हो पाता। शीघ्र औद्योगीकरण के अभिलाषा-कार्यक्रमों की आवश्यकता से अधिक महत्व देने के कारण एवं उद्योगों की स्थापना पर बहुत-सा जयसाधन एवं विदेशी विनिमय उपयोग किया गया जिसका कुछ समय तक स्थगित रखने से तो अर्थ व्यवस्था की विशेष हानि नहीं होती है। यदि नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत निरन्तर समन्वित कृषिविकास नीति को क्रियान्वित किया गया होता और कृषि के उपयोग में आने वाले प्रसाधनों के आन्तरिक उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि की गयी होती तो हमारा विदेशी व्यापार आर्थिक प्रगति में पर्याप्त योगदान देने में समर्थ हो सकता है। हमारे आयात इस परिस्थिति में आवश्यक उपभोक्ता-वस्तुओं तक बड़ी मात्रा में सीमित रहे और हमारी आयात नीति को प्रगतिप्रधान (Growth Oriented) नहीं कहा जा सकता है। खाद्यान्नों, कच्चे माल के संग्रह एवं उत्पादन के सम्बन्ध में जो आयोजन चौथी योजना में किये गये इनको हमारी योजनाओं में बहुत पहले स्थान मिलना चाहिए था।

दूसरी ओर, हमारी निर्यात-नीति भी प्रगति में विशेष रूप से सहायक नहीं हो सकी क्योंकि योजनाकाल के १५ वर्षों के बाद भी परम्परागत निर्यातों पर ही निर्भर हैं। चाय और जूट के निर्यात से हम सबसे अधिक विदेशी विनिमय अर्जित होता रहा है परन्तु जूट में पाकिस्तान और चाय में सीलोन एवं अन्य राष्ट्रों के प्रतिस्पर्धी होने के कारण इन वस्तुओं के निर्यात में कमी होती रही है। दूसरी ओर आन्तरिक बाजार में मुद्रा प्रसार से प्रेरित बहुत स्तर पर किये जाने वाले विकास विनियोजन के फलस्वरूप उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्य-स्तर में लगातार वृद्धि होने के कारण भारतीय निर्यातक निर्यातों की ओर आकर्षित नहीं होते हैं क्योंकि इन वस्तुओं को विदेशी बाजारों में बेचने से अधिक लाभ नहीं प्राप्त होता है। हम नियोजित विकास के अन्तर्गत देश में निर्यात वस्तुओं के उद्योगों का विकास एवं विस्तार करने में अधिक सफल नहीं हुए और हमारे पास निर्यात के लिए वस्तुओं का अतिरिक्त या पर्याप्त मात्रा में न होने से निर्यात बढ़ाने में असमर्थ रहे हैं। निर्यात की मदों में विभिन्नता एवं विदेशी बाजारों की विभिन्नता की ओर भी हमने कुछ ही वर्षों से ध्यान देना प्रारम्भ किया है। यही सब कारण हैं कि हमारे निर्यात में प्रगति के अनुरूप वृद्धि नहीं हो सकी है और हमारी निर्भरता विदेशी सहायता पर निरन्तर बढ़ती गयी है।

भारतीय रुपये के अवमूल्यन के पश्चात् से हमने अपने निर्यात-व्यापार पर विशेष ध्यान दिया और चौथी योजना के अन्तर्गत ७% प्रति वर्ष निर्यात में वृद्धि करने के लक्ष्य को रखा गया है। इसके लिए निर्यात मदों में इन्जीनियरिंग वस्तुओं टिकाऊ उपभोक्ताओं-वस्तुओं मशीनों यातायात एवं संचार के साधनों आदि को सम्मिलित करने के प्रयत्न किये गये तथा विकासशील अर्थात् एशियाई एवं अन्य उपयोगी राष्ट्रों को साख के आधार पर निर्यात करने की भी व्यवस्था की गयी। यदि वर्तमान कारखानों का कुशल संचालन दीर्घकालीन मान्यताओं तक किया गया तो हम अपने विशिष्ट व्यापार द्वारा ही अपने विकास को स्वचालित करने में उद्यत हो सकेंगे।

अध्याय १८

जनसंख्या एवं आर्थिक प्रगति

[Population and Economic Development]

[अल्प विकसित राष्ट्रों में जनसंख्या, प्रतिकूल जनसंख्या वितरण, जनसंख्या वृद्धि एवं आर्थिक प्रगति, जनसंख्या की संरचना एवं आर्थिक प्रगति, बढ़ती हुई जनसंख्या एवं बेरोजगारी, जनसंख्या का विस्फोट, जनसंख्या संक्रान्ति सिद्धान्त, जनसंख्या-सम्बन्धी आर्थिक प्रगति मण्डल, भारत में जनसंख्या वृद्धि एवं आर्थिक प्रगति]

श्रम उत्पादन का एक ऐसा घटक है जिसका उपयोग न करने पर भी उसकी निर्वाह लागत में कोई विशेष अन्तर नहीं आता है। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि श्रम उपयोग एवं उत्पादन दोनों का घटक होने के कारण उत्पादक उपयोग न होने पर भी उपयोग का घटक बना रहता है। श्रम उपयोग का एक स्थायी घटक होता है जबकि वह उत्पादन में तब ही उपयोगी होता है जब उसको उत्पादक रोजगार में लगाया जाय। श्रम को उत्पादक रोजगार में लगाकर उत्पादन को बढ़ाना तब ही सम्भव हो सकता है जब श्रम का उत्पादक उपयोग करने के लिए उत्पादन के अन्य सहायक घटक—पूँजी, तान्त्रिक ज्ञान, प्राकृतिक साधन आदि उपलब्ध हों तथा श्रम का व्यवस्थित एवं संगठित रूप में उपयोग किया जाय।

किसी देश की आर्थिक प्रगति पर श्रम शक्ति का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। श्रम शक्ति का परिमाण रूप की जनसंख्या में होने वाले परिवर्तनों पर निर्भर रहता है। जनसंख्या के परिमाण में होने वाले परिवर्तनों में अर्थ-व्यवस्था पर दो प्रमुख प्रभाव पड़ते हैं—एक ओर बढ़ी हुई जनसंख्या के उपभोग की आवश्यकताओं की आवश्यकता और दूसरी ओर जनसंख्या वृद्धि द्वारा उपलब्ध अतिरिक्त श्रम द्वारा उत्पादन में होने वाली वृद्धि। यदि उत्पादन की अतिरिक्त वृद्धि अतिरिक्त उपयोग से अधिक होती है तो अर्थ-व्यवस्था में विकास पूँजी का निर्माण होता है और इसकी विपरीत स्थिति में समाज को अपनी संचित पूँजी का उपयोग बढ़ी हुई जनसंख्या का निर्वाह के लिए करना पड़ता है। इस प्रकार अतिरिक्त जनसंख्या द्वारा अतिरिक्त उपयोग किया जाना तो निश्चित होता है परन्तु इस अतिरिक्त जनसंख्या द्वारा अतिरिक्त उत्पादन पर्याप्त मात्रा में करना सन्देहजनक हो सकता है। जब किसी राष्ट्र में उत्पादन के अन्य घटकों की तुलना में श्रम का बाहुल्य होता है तो ऐसे देश में जन

संख्या-वृद्धि द्वारा अतिरिक्त उत्पादन तो नहीं हो पाता परन्तु उसकी आवश्यकताओं में वृद्धि हो जाती है जिससे देश की आन्तरिक बचत विनियोजन पूँजी निर्माण एवं आर्थिक प्रगति सभी का स्तर कम हो जाता है।

अल्प विकसित राष्ट्रों में जनसंख्या

अल्प विकसित राष्ट्रों में जनसंख्या की वृद्धि आर्थिक प्रगति में बाधाएँ उपस्थित करती है क्योंकि एक ओर संसार की जनसंख्या का वितरण अल्प विकसित राष्ट्रों के प्रतिकूल है और दूसरी ओर बढ़ती हुई जनसंख्या का उत्पादक उपयोग करने के लिए इन राष्ट्रों में उत्पादन सहायक घटक उपलब्ध नहीं होते हैं।

उत्पादन के अन्य घटकों में भूमि एवं प्राकृतिक साधन प्रायः सभी राष्ट्रों में स्थिर होते हैं और इनके उपयोग एवं शोषण में ही ह्रास करना सम्भव होता है। इन साधनों की पूर्ति में वृद्धि करना सम्भव नहीं होता है। उत्पादन का एक और जरूरी महत्वपूर्ण घटक पूँजी होता है जिसकी पूर्ति में कमी-वृद्धि करना सम्भव होता है क्योंकि यह मनुष्य-कृत साधन होता है। यदि पूँजी के परिमाण में वृद्धि करना सम्भव हो तब तो बढ़ती हुई श्रम शक्ति का उत्पादक उपयोग किया जा सकता है और प्राकृतिक साधनों एवं भूमि द्वारा जो विकास-सीमाएँ बाँध दी जाती हैं उनका विस्तार किया जा सकता है। इस प्रकार जनसंख्या की वृद्धि के साथ-साथ पूँजी-निर्माण में वृद्धि की जा सके तो बढ़ती हुई जनसंख्या आर्थिक विकास के लिए वरदान सिद्ध हो सकती है परन्तु अल्प विकसित राष्ट्रों में जनसंख्या की वृद्धि से पूँजी निर्माण में बाधाएँ उपस्थित होती हैं।

जनसंख्या वितरण अल्प विकसित राष्ट्रों के लिए प्रतिकूल—संसार की जनसंख्या का वितरण निम्न प्रकारेण अल्प विकसित राष्ट्रों के प्रतिकूल है—

(अ) संसार की जनसंख्या का अधिकतर भाग अल्प-विकसित क्षेत्रों में केन्द्रित है। विश्व बैंक द्वारा संगृहीत आँकड़ों के अनुसार सन् १९६८ वर्ष के मध्य संसार की कुल जनसंख्या ३३६ करोड़ थी जिसमें ८४ करोड़ जनसंख्या विकसित राष्ट्रों में थी और शेष २५२ करोड़ अल्प विकसित राष्ट्रों की निवासी थी। इस प्रकार संसार की कुल जनसंख्या का लगभग ७५% भाग अल्प विकसित राष्ट्रों में केन्द्रित था। अल्प विकसित राष्ट्रों में जनसंख्या का घनत्व भी अधिक है। सन् १९५९ वर्ष में संसार की जनसंख्या का औसत घनत्व १८ प्रति वर्ग किलोमीटर था। अल्प-विकसित राष्ट्रों में यह औसत ३०० से अधिक था। जापान स्विट्ज़रलैण्ड एवं इटली ऐसे विकसित राष्ट्र हैं जिनमें संख्या का घनत्व अधिक है। संयुक्त राज्य अमेरिका कनाडा एवं रूस जैसे विकसित राष्ट्रों में जनसंख्या का घनत्व कम है। ब्राजील गोल्ड कोस्ट और बर्मा को छोड़कर सभी अल्प विकसित राष्ट्र घनी जनसंख्या वाले हैं। अल्प विकसित राष्ट्रों में भूमि-श्रम का अनुपात कम एवं पूँजी की न्यूनता के कारण जनसंख्या का दबाव अधिक है।

(आ) अल्प विकसित राष्ट्रो की जनसख्या की सरचना इस प्रकार की है कि जनसख्या का बडा अनुपात उत्पादन वृद्धि म सहायक नही होता है। इन राष्ट्रो म १५ से ६० वष की आयु वग का कुल जनसख्या से अनुपात कम होता है। इस आयु वग द्वारा उत्पादन म सर्वाधिक योगदान किया जाता है। इसके अतिरिक्त जो दो आयु वग होते हैं अर्थात् १५ वर्ष स कम और ६० वष स अधिक उपभोग तो सामान्य परिमाण म करते हैं परन्तु उत्पादन करने म असमथ होते हैं। दूसरी ओर विकसित राष्ट्रो म उत्पादक आयु वग का अनुपात अधिक होता है जिससे इस वग पर आश्रितो का भार कम होता है और परिवारो की बचत अधिक रहती है।

(इ) ससार की जनसख्या म तीव्र गति स वृद्धि हो रही है परन्तु इस वृद्धि का बडा भाग अल्प विकसित राष्ट्रो म केन्द्रित रहता है। यह सम्भावना की जाती है कि निकट भविष्य म प्रवृत्ति जारी रहगी और जनसख्या क घनत्व म विकसित एव अल्प विकसित राष्ट्रो म अन्तर बढता जायगा। विश्व बक द्वारा प्रकाशित सूचनाओ के अनुसार विभिन्न महाद्वीपो म जनसख्या की वृद्धि की दर निम्नलिखित सारिणी म दर्शाया गया है—

तालिका स० १३—जनसख्या की वार्षिक वृद्धि दर[1]

(१९६० स १९६६ काल का औसत)

क्षेत्र	वार्षिक औसत वृद्धि दर
अफ्रीका	२ ३
दक्षिणी एशिया	२ २
पूर्वी एशिया	२ ६
दक्षिणी योरोप	१ ४
लटिन अमेरिका	२ ९
मध्य पूर्व	२ ०
विकासशील राष्ट्र	२ ३
औद्योगिक राष्ट्र	१ २
उत्तरी अमरिका	१ ७
पश्चिमी योरोप	० ८
अन्य औद्योगिक राष्ट्र (आस्ट्रलिया, जापान न्यूजीलण्ड एव दक्षिणी अफ्रीका)	१ ४

इस तालिका से स्पष्ट है कि अल्प विकसित एव विकासशील राष्ट्रो म जनसख्या की वृद्धि की दर विकसित राष्ट्रो की तुलना म दुगनी से भी अधिक है।

जनसख्या वृद्धि एव आर्थिक प्रगति

जनसख्या की वृद्धि आर्थिक प्रगति म उसी समय सहायक हो सकती है जब

1 World Bank Annual Report 1968

इस अतिरिक्त जनसंख्या द्वारा जो अतिरिक्त उत्पादन किया जाता है, वह इसके द्वारा किए गये अतिरिक्त उपभोग से अधिक हो। इस प्रकार अतिरिक्त जनसंख्या के उत्पादक उपयोग द्वारा ही आर्थिक प्रगति में सहायता प्राप्त हो सकती है। अतिरिक्त जनसंख्या का उत्पादक उपयोग देश में उपलब्ध प्रति श्रमिक उत्पादक प्रसाधनों तांत्रिकताओं की कुशलता, जनसंख्या की गुणात्मक संरचना तथा श्रमिक वर्ग के परिमाण पर निर्भर रहता है। अल्प विकसित राष्ट्रों में प्रति व्यक्ति पूँजीगत प्रसाधनों के न्यूनतम श्रम का कम उत्पादकता का कारण एवं प्रभाव दोनों होती है। पुन उत्पादित साधनों की अपर्याप्तता के कारण श्रम की उत्पादकता एवं प्रति व्यक्ति आयोपार्जन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। प्रति श्रमिक कम आयोपार्जन होने पर बचत एवं विनियोजन के लिए कम साधन उपलब्ध होते हैं जिससे श्रमिकों को पर्याप्त परिमाण में पूँजीगत प्रसाधन उपलब्ध नहीं होते हैं। पूँजीगत प्रसाधनों की कमी एवं शिक्षा तथा प्रशिक्षण का निम्न स्तर होने के कारण तांत्रिकताओं का विस्तार एवं विकास धीमी गति से होता है। दूसरी ओर, व्यापक निर्धनता के परिणामस्वरूप श्रमिकों में स्वास्थ्य का निम्न स्तर, गतिशीलता की कमी तथा तांत्रिक कुशलता की हीनता रहती है जिससे श्रमिकों की कुशलता एवं उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

श्रम शक्ति का परिमाण जनसंख्या की संरचना एवं रीति रिवाजों पर निर्भर रहता है। १५ से ६० वर्ष की आयु वर्ग का अनुपात जनसंख्या में जितना अधिक होता है उतना ही अधिक परिमाण में श्रम की उपलब्धि होती है क्योंकि इस आयु-वर्ग के लोग ही उत्पादन कार्य के योग्य रहते हैं परन्तु समाज के रीति रिवाजों का प्रभाव भी श्रम शक्ति की पूर्ति पर पड़ता है। जिन समाजों में स्त्रियों को श्रम-शक्ति में सम्मिलित होने की पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं होती है उनमें १५ से ६० वर्ष के आयु वर्ग का कुछ भाग उत्पादक क्रियाओं में भाग नहीं ले पाता है जैसे भारत में १५ से ६४ वर्ष की जनसंख्या कुल जनसंख्या की ५८.६% थी जबकि कुल उपलब्ध श्रम शक्ति कुल जनसंख्या का केवल ४०% था। इस प्रकार १८.६% जनसंख्या केवल रीति रिवाजों के कारण उत्पादक क्रियाओं में अपना योगदान देने में असमर्थ थी।

जिन देशों में जनसंख्या की वृद्धि दर मृत्यु एवं जन्म दर ऊँची रहने के कारण स्थिर रहती है उनमें सक्रिय जन शक्ति का कुल जनसंख्या से अनुपात उन राष्ट्रों की तुलना में कम होता है जहाँ जन्म एवं मृत्यु-दर कम होने के कारण जनसंख्या की वृद्धि की दर स्थिर होती है। अल्प विकसित राष्ट्रों में प्राय जन्म एवं मृत्यु दर ऊँची रहती है और जब इनमें विकास का प्रारम्भ होता है मृत्यु-दर घटना प्रारम्भ हो जाती है और जन्म दर में शीघ्र कोई परिवर्तन नहीं होता है। ऐसी परिस्थिति में जनसंख्या की वृद्धि दर बढ़ जाती है परन्तु इस वृद्धि के फलस्वरूप सक्रिय जन शक्ति का अनुपात कम ही रहता है क्योंकि मृत्यु-दर कम होने का सबसे अधिक प्रभाव शिशु जन्म दर पर पड़ता है जो बहुत कम हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप जनसंख्या में १५ वर्ष से कम आयु

वर्ग में अधिक वृद्धि होती है। जिस देश में सक्रिय जन शक्ति अधिक होती है उसमें उत्पादकों का उपभोक्ताओं के अनुकूल अनुपात होता है। अल्प विकसित राष्ट्रों में यह अनुपात प्रतिकूल होने के कारण उत्पादक जन-शक्ति के छोटे समूह पर आश्रितों का भार अधिक होता है और उत्पादक वर्ग को अपनी आय में विनियोजन हेतु बचत करना सम्भव नहीं होता है। इस प्रकार दो राष्ट्रों की कुल जनसंख्या एवं श्रम उत्पादकता समान होते हुए भी वह राष्ट्र अपनी आय का अधिक प्रतिशत भाग बचत करने में समर्थ होगा जिसकी जनसंख्या में सक्रिय जन शक्ति का अनुपात अधिक होगा।

जनसंख्या की संरचना का आर्थिक प्रगति पर प्रभाव

अल्प विकसित राष्ट्रों की जनसंख्या में कम आयु-वर्ग का अनुपात अधिक होता है क्योंकि इन राष्ट्रों में जीवित रहने की सम्भावना (Life Expectancy) कम होती है एवं नवयुवक वर्ग में मृत्यु दर अधिक रहती है और दूसरी ओर जन्म दर ऊँची होने के कारण कम आयु-वर्ग में वृद्धि होती रहती है। जिस देश में कम आयु वर्ग का अनुपात अधिक होता है उस राष्ट्र में जनसंख्या की वृद्धि के साथ साथ खाद्यान्नों का उपभोग बढ़ता जाता है क्योंकि इस राष्ट्र को अपनी आय का बड़ा भाग खाद्य पदार्थों पर व्यय करना पड़ता है। ऐसे राष्ट्रों में विकास का प्रारम्भ होते ही खाद्यान्न की समस्या गम्भीर रूप ग्रहण कर लेती है। भारत भी इसी स्थिति से होकर गुजर रहा है। दूसरी ओर विकसित राष्ट्रों में जन्म दर कम एवं जीवन सम्भावना अधिक होने के कारण अधिक आयु वर्ग का अनुपात अधिक होता है जिसके परिणामस्वरूप ऐसे देश अपनी आय का कम भाग खाद्यान्नों पर व्यय करते हैं। कम आयु वर्ग का अधिक अनुपात रखने वाले राष्ट्रों में इसीलिए जनसंख्या का अधिक भाग कृषि-व्यवसाय में लगा रहता है और कृषि व्यवसाय में आय उपार्जनक्षमता कम होने के कारण इस राष्ट्र को अपनी बढ़ती हुई जनसंख्या का निर्वाह करना सम्भव नहीं होता है। दूसरी ओर अधिक आयु वर्ग का अधिक अनुपात रखने वाले राष्ट्रों में कृषि एवं खाद्यान्नों के उत्पादन में अधिक जनसंख्या के खपाने की आवश्यकता नहीं होती है और निर्माणी उद्योगों का विस्तार सम्भव होता है जिनके द्वारा अधिक आयोपार्जन करके बढ़ती हुई जनसंख्या का निर्वाह किया जा सकता है।

अल्प विकसित राष्ट्रों को अपनी बढ़ती हुई जनसंख्या के कल्याण एवं जीवन निर्वाह के लिए सामाजिक उपरिव्यय पूँजी—गृह निर्माण, जन स्वास्थ्य, शिक्षा, कल्याण आदि—का आयोजन करने के लिए विनियोजन योग्य साधनों का बड़ा भाग व्यय करना पड़ता है। कम आयु वर्ग की संख्या वर्ष प्रति वर्ष बढ़ते रहने पर इन सुविधाओं की व्यवस्था करने पर व्यय भी बढ़ता जाता है। इस प्रकार इन राष्ट्रों को प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं के संचालन के लिए पर्याप्त विनियोजन साधन उपलब्ध नहीं हो पाते हैं।

बढ़ती हुई जनसंख्या एवं बेरोजगारी

अल्प विकसित राष्ट्रों में बढ़ती हुई जनसंख्या बेरोजगारी एवं अर्द्ध बेरोज

गारी की समस्याओं को जन्म देती है। विकसित राष्ट्रों में बेरोजगारी की समस्या प्रभावशाली माँग की न्यूनता के कारण उदय होती है जबकि अल्प विकसित राष्ट्रों में बेरोजगारी का कारण श्रम के लिए आवश्यक सहायक एवं पूरक उत्पादन साधन की न्यून पूर्ति होती है। अल्प विकसित राष्ट्रों में प्रभावशाली माँग अधिक होने पर भी श्रम का उत्पादक उपयोग पूँजी एवं अन्य उत्पादक घटकों की कमी के कारण नहीं हो पाता है। इन राष्ट्रों में विकास का प्रारम्भ होने ही बड़े बेरोजगार जन समुदाय को समस्या सामने आती है। विकास के प्रारम्भ करने से पहले से जो बेरोजगार हैं उनमें से कुछ को रोजगार मिल जाता है परन्तु जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि होने के कारण अतिरिक्त रोजगार के अवसरों की तुलना में कहीं अधिक नये बेरोजगार उदय हो जाते हैं। इस प्रकार विनियोजन की दर में वृद्धि होने के साथ बेरोजगारी भी बढ़ती जाती है। ऐसी परिस्थिति में श्रम के अनुपात में पूँजी की कमी बनी रहती है। जब तक विदेशों से पूँजी प्राप्त न की जाय, इस समस्या का निवारण सम्भव नहीं होता है।

विकसित राष्ट्रों में जनसंख्या घटने के कारण जब भूमि श्रम अनुपात कम हो जाता है तो अतिरिक्त श्रम अन्य उत्पादक क्रियाओं को हस्तान्तरित हो जाता है। इस प्रकार भूमि की कमी की पूर्ति पूँजी द्वारा करके बढ़ती हुई जनसंख्या को उत्पादक क्रियाओं में लगाना सम्भव होता है। दूसरी ओर, अल्प विकसित राष्ट्रों में जनसंख्या की वृद्धि के फलस्वरूप कृषि क्षेत्र में उदय होने वाली अतिरिक्त श्रम-शक्ति को अन्य व्यवसायों में पूँजी की न्यूनता के कारण रोजगार प्रदान करना सम्भव नहीं होता है। इस प्रकार इन राष्ट्रों में विकास प्रयासों को बेरोजगारी की गम्भीर समस्या का सामना करना पड़ता है।

जनसंख्या विस्फोट (Population Explosion)

जनसंख्या सम्बन्धी उपलब्ध आँकड़ों एवं तथ्यों से यह ज्ञात होता है कि संसार की जनसंख्या की वृद्धि निरन्तर तीव्र गति से बढ़ती जा रही है। लगभग सन् ६५० में संसार की जनसंख्या ४१ ? करोड़ थी और इसका दुगना होने में १००० वर्षों की लम्बी अवधि की आवश्यकता पड़ी अर्थात सन् १६५० में संसार की जनसंख्या ८२ ५ करोड़ हो गयी। इसके पश्चात जनसंख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई और लगभग २०० वर्षों में यह दुगनी हो गयी। सन् १८५० में संसार की जनसंख्या १६६ करोड़ हो गयी। जनसंख्या की वृद्धि की गति और तीव्र हो गयी और १२० वर्षों में यह फिर दुगुनी हो गयी अर्थात वर्तमान में संसार की जनसंख्या ३३० करोड़ हो गया है और यह अनुमान लगाया जाता है कि वृद्धि की यही दर जारी रहने पर सन् २००० में संसार की जनसंख्या ६०० करोड़ के लगभग हो जायगी। जनसंख्या की यह विस्फोटक वृद्धि आर्थिक विकास का ही परिणाम है। अल्प विकसित राष्ट्रों में विकास का प्रारम्भ होने पर जनसंख्या में तीन अवस्थाओं के अन्तर्गत परिवर्तन होते हैं।

जनसंख्या संक्रान्ति सिद्धान्त

यह अवस्थाएं जनसंख्या संक्रान्ति सिद्धान्त (Theory of Demographic Transition) के अन्तर्गत निर्धारित की गयी है। यह अवस्थाएं निम्न प्रकारेण हैं—

प्रथम अवस्था

जब किसी अल्प विकसित राष्ट्र में विकास का प्रारम्भ किया जाता है तो उस समय उस राष्ट्र में जन्म एवं मृत्यु दर ऊँची होती है और जनसंख्यावृद्धि दर बहुत ऊंची नहीं होती है। इस अवस्था में अर्थव्यवस्था कृषिप्रधान होती है। समाज में चिकित्सा एवं स्वास्थ्य की सुविधाएं कम होती हैं और सामाजिक परम्पराओं द्वारा अधिक बच्चों वाले परिवारों को प्रतिष्ठा दी जाती है। जनसाधारण अधिक बच्चों को अपनी वृद्धावस्था का बीमा मानता है। बच्चों में मृत्यु दर अधिक होती है।

द्वितीय अवस्था

जब अर्थव्यवस्था में विकास का प्रवेश होता है तो स्वास्थ्य, चिकित्सा, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा आदि की सुविधाओं में तेजी से वृद्धि होती है। लोगों के जीवन स्तर एवं पौष्टिक भोजन में सुधार होता है। इन समस्त सुविधाओं के फलस्वरूप मृत्यु-दर कम होने लगती है परन्तु जन्म दर स्थिर रहती है एवं सम्भावित जीवनकाल बढ़ जाता है। इस अवस्था को जनसंख्या विस्फोटकाल (Population Explosion Period) कहते हैं। इस अवस्था में मृत्यु दर कम होने, जन्म दर स्थिर रहने और औसत जीवनकाल बढ़ जाने से जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि होती है। राष्ट्रीय आय में वृद्धि होते हुए भी प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि नहीं होता है। तभी परिस्थिति में सामाजिक मान्यताओं एवं विचारधाराओं में परिवर्तन होता है। परिवार नियोजन के कार्यक्रमों का सचालन होता है परन्तु इन सबका जनसंख्या वृद्धि पर अल्प काल में कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है।

तृतीय अवस्था

विकास की पूर्व अवस्था के संक्रान्तिकाल की समाप्ति पर जब राष्ट्र विकसित हो जाता है तो जन्म दर में कमी होने लगती है और घटते घटते मृत्यु दर के बराबर हो जाती है। यह दोनों दरें न्यूनतम स्तर पर स्थिर हो जाती हैं और यह स्थिति कुछ समय तक बनी रहती है। जन्म की दर में कमी होने का कारण सामाजिक मान्यताओं में परिवर्तन, व्यक्तिवादी आर्थिक जीवन का विस्तार, परिवार नियोजन की सफलता, आर्थिक समानता आदि होते हैं।

संसार की जनसंख्या के विस्फोट का प्रमुख कारण इस प्रकार अल्प विकसित राष्ट्रों का संक्रान्तिकाल है और यदि ऐसे राष्ट्र अधिकतर तीसरी अवस्था में प्रविष्ट हो जाते हैं तो जनसंख्या की वृद्धि की गति में कमी आना स्वाभाविक होगा।

जनसंख्या सम्बन्धी परिवर्तनों के आधार पर आर्थिक प्रगति का मॉडल (Economic Demographic Model)

संसार में प्रत्येक १५ वर्षों में दस करोड़ व्यक्तियों से जनसंख्या बढ़ जाती है।

जनसंख्या की वृद्धि की वर्तमान दर प्रथम शताब्दी एवं सन् १९५० के मध्य के भारत की वृद्धि की दर की तीन गुनी है। यद्यपि जनसंख्या की वृद्धि की दर इतनी ऊँची है फिर भी जनसाधारण के अधिकतर भाग का जीवन-स्तर मानव-इतिहास में सबसे ऊँचा है। इसके अतिरिक्त आर्थिक प्रगति की सम्भावनाएँ जनसंख्या-वृद्धि की सम्भावनाओं से कहीं अधिक हैं। कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र में उपयोग आने वाली नवीन आविष्कारों से उत्पादन में इतनी अधिक वृद्धि सम्भव हो सकती है कि सम्भावित बढ़ी हुई जनसंख्या का निर्वाह करना कठिन होगा परन्तु उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि करने हेतु संसार के विभिन्न राष्ट्रों में अनुकूल सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों की आवश्यकता है।

आधुनिक युग में जनसंख्या के केवल जीवन-निर्वाह की समस्या को अधिक महत्व नहीं दिया जाता है बल्कि जनसाधारण के जीवन-स्तर में अधिक से अधिक आर्थिक विकास द्वारा सुधार करने की समस्या को अधिक महत्व दिया जाता है। अल्प विकसित राष्ट्रों में प्रति व्यक्ति आय के वर्तमान स्तर को बनाए रखने के लिए कुल विनियोजन का ६५% भाग व्यय करना पड़ता है जबकि विकसित राष्ट्रों में यह प्रतिशत केवल २५% है। यदि अल्प विकसित राष्ट्रों की जनसंख्या वृद्धि की दर को कम कर दिया जाय तो इन प्रतिशतों के अन्तर को कम करना सम्भव हो सकता है। जनसाधारण के जीवन-स्तर में तीव्र गति से विकास किया जा सकता है।

जन्म-दर में यदि २५ वर्षों में ५०% की कमी कर दी जाय तो यह कमी आर्थिक प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान कर सकती है। इस सम्बन्ध में A. J. Coale और E. Hoover द्वारा जो विकास मॉडल प्रस्तुत किया गया, उसको सर्वप्रथम भारत पर लागू किया था और फिर इसको अन्य राष्ट्रों पर भी लागू किया गया। इन सभी अध्ययनों से स्पष्ट हो गया है कि जन्म की कमी द्वारा आर्थिक प्रगति की दर को बढ़ाना सम्भव हो सकता है। जन्म-दर में कमी करने से आर्थिक प्रगति को निम्न तीन प्रकार से लाभ प्राप्त होता है—

(अ) २५ वर्षों के काल में जन्म-दर में ५०% की कमी कर देने से जनसंख्या की वृद्धि निम्न प्रकार होना सम्भावित होती है—

इस तालिका में आंकड़ों का अनुमान इस आधार पर लगाया गया है कि २५ वर्ष के बाद जन्म-दर ५०% कम होकर स्थिर हो जाती है और मृत्यु-दर में निरन्तर सुधार होता है। इन आंकड़ों से ज्ञात होता है कि २५ वर्षों में जन्म-दर आधी कर देने से जनसंख्या की मात्रा में जन्म दर कम न करने की तुलना में महत्वपूर्ण कमी रहती है। यह कमी ३० वर्ष और उसके पश्चात् अधिक प्रभावशाली होती है। ५० वर्ष पश्चात् जन्म-दर कम करने के फलस्वरूप जन्म-दर कम करने की स्थिति की तुलना में जनसंख्या लगभग आधी रहती है। इस प्रकार जनसंख्या की वृद्धि कम होने पर राष्ट्रीय आय का वितरण कम लोगों में किया जाता है जिससे प्रति व्यक्ति आय

तालिका सं० १४—अल्प विकसित राष्ट्रों में जनसंख्या में सम्भावित वृद्धि[1]

वर्ष	जन्म दर में २५ वर्षों में ५०% की कमी करने पर जनसंख्या	जन्म दर में कोई कमी न करने पर जनसंख्या
प्रारम्भ में	१०००	१०००
१० वर्ष बाद	१३२८	१३७७
२० वर्ष बाद	१६८७	१९३१
३० वर्ष बाद	२०५३	२७५७
४० वर्ष बाद	२४८८	३९७५
५० वर्ष बाद	२९५०	५७३६
६० वर्ष बाद	३४२०	८२९७

एवं जीवन स्तर में सुधार होता है। जनसंख्या की कम वृद्धि होने से अर्थव्यवस्था की उत्पादनक्षमता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। उत्पादन के घटकों—पूँजी निर्माण, श्रम शक्ति की मात्रा एवं गुण, तान्त्रिकता एवं प्राकृतिक साधनों के परिमाण पर *कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं होता है। श्रम शक्ति के परिमाण में भी अल्प काल* अर्थात् लगभग १५ वर्षों तक कोई कमी नहीं आती है। इस प्रकार राष्ट्रीय आय के कम जनों में बँटने से प्रति व्यक्ति में आय में जो वृद्धि होती है उससे जन साधारण की *बचत करने की क्षमता में भी वृद्धि होती है।*

(आ) जन्म दर *कम होने से उत्पादक श्रमिक वर्ग की आश्रितों की संख्या में* कमी हो जाती है। यह अनुमान लगाया गया है कि जन्म दर २५ वर्षों में आधी करने से १४ वर्ष से कम आयु वर्ग का कुल जनसंख्या से प्रतिशत ५० वर्षों में ४३.४ से घटकर ३०.५ रह जाता है। इसी प्रकार ६४ वर्षों से अधिक आयु वर्ग का प्रतिशत ५० वर्षों में ३.२ से बढ़कर ६.१% हो जाता है *अर्थात् कुल आश्रितों का प्रतिशत* ४८.६ से घटकर ५० वर्षों में ३६.६ रह जाता है। इसके साथ ही सक्रिय जन शक्ति का प्रतिशत ५० वर्षों में ५१.४ से बढ़कर ६३.४ हो जाता है। जनसंख्या की संरचना में इन परिवर्तनों से प्रभाव होता है—अर्थव्यवस्था में उत्पादक उपभोक्ता का अनुकूल अनुपात। *उत्पादक जनसंख्या पर आश्रितों का भार कम हो जाने से उनकी बचत* करने की क्षमता बढ़ जाती है। यह बचत या तो ऐच्छिक हो सकती है अथवा सरकार *द्वारा कर द्वारा प्राप्त की जा सकती है।*

इस परिस्थिति के विपरीत जन्म-दर में कमी न करने पर आश्रितता (१४ वर्ष से *कम और ६४ वर्ष से अधिक आयु वालों) का कुल जनसंख्या से प्रतिशत* ४५.६ से बढ़कर ५० वर्षों में ४९.४ हो जाता है *अर्थात्* उत्पादक उपभोक्ता अनुपात पहले की तुलना में प्रतिकूल हो जाता है।

1 George Zaidan Population Growth and Economic Development—Finance and Development March 1969

(इ) जन्म-दर कम करने से श्रम-शक्ति के परिमाण में १५ वर्षों तक तो कोई कमी नहीं आयगी क्योंकि नवजात शिशु १५ वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात् ही श्रम शक्ति में सम्मिलित होते हैं परन्तु १५ वर्ष पश्चात् श्रम शक्ति कम रहेगा। यदि राष्ट्र का अतिरेक रहा हो तो श्रम शक्ति की कम वृद्धि से अर्थ-व्यवस्था को कोई हानि नहीं होगी। इसके साथ ही जन्म-दर कम हो जाने पर श्रमिक वर्ग को अच्छा भोजन, शिक्षा, एवं स्वास्थ्य-सुविधाएँ प्राप्त हो सकेंगी जिससे उसकी उत्पादकता में वृद्धि होना स्वाभाविक होगा।

यह अनुमान लगाया गया है कि जन्म-दर में २५ वर्षों में ५०% की कमी करने पर एक राष्ट्र के जीवन-स्तर में ३० वर्षों की अवधि में दूसरे ऐसे राष्ट्र की तुलना में जिसमें जन्म-दर कम नहीं की गयी है ४०% अधिक सुधार होगा और ६० वर्ष की अवधि में जन्म-दर कम करने वाले राष्ट्रों में, दूसरे राष्ट्रों की तुलना में, जीवन-स्तर दुगुना हो जायगा। इस विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि अल्प-विकसित राष्ट्रों की आर्थिक प्रगति की गति को तीव्र करने के लिए जन्म-दर में कमी करना अनिवार्य है।

भारत की जनसंख्या-वृद्धि एवं आर्थिक प्रगति

भारत की जनसंख्या में सन् १९४१-५१ के दशक में १.२६% प्रति वर्ष वृद्धि हुई। यह प्रतिशत सन् १९५१-६१ के दशक में बढ़कर १.९७% प्रति वर्ष हो गया। सन् १९६१-६५ वर्षों के काल में जनसंख्या की वृद्धि की दर बढ़कर २.४% प्रति वर्ष हो गयी। *यह अनुमान लगाया गया है कि जनसंख्या-वृद्धि का वार्षिक प्रतिशत सन् १९६६-७० काल में २.५ रहेगा और चौथी योजनाकाल सन् १९६९-७४ में भी वृद्धि* की दर २.५% के आस-पास ही रहने का अनुमान है। सन् १९७४ के बाद जनसंख्या वृद्धि की दर में कमी होने का अनुमान लगाया गया है और यह सन् १९८०-८१ तक १.७% प्रति वर्ष हो जायगा। जनसंख्या-वृद्धि का प्रतिशत कम होने के अनुमान में यह मान लिया गया है कि सन् १९८०-८१ तक जन्म-दर ३९ प्रति हजार (सन् १९६८) से घटकर २६ प्रति हजार रह जायगा और मृत्यु १४ प्रति हजार से घटकर ९ प्रति हजार रह जायगी। जन्म-दर की कमी के लिए परिवार नियोजन के साधनों का निरन्तर विस्तार किया जायगा। *यदि जनसंख्या की वृद्धि की दर को सन् १९८०-८१ के पश्चात्* के २० वर्षों में १.२% तक कम किया जा सका तो भारत की जनसंख्या सन् २००० तक ८३ करोड़ हो जायगी। जन्म-दर को कम न करने से सन् २००० तक भारत की जनसंख्या १२० करोड़ तक हो सकती है।

यदि प्रगति का माप प्रति व्यक्ति आय-वृद्धि के आधार पर किया जाय तो हमें ज्ञात होगा कि भारत अभी तक योजनाओं के अन्तर्गत अधिक प्रगति नहीं कर सका है। सन् १९५०-५१ से सन् १९६७-६८ वर्ष के काल में प्रति व्यक्ति आय में निम्न प्रकार वृद्धि हुई है—

तालिका स० १५—भारत मे प्रति व्यक्ति आय की प्रगति[1]

वर्ष	प्रति व्यक्ति आय १६५० ६१ के मूल्यो पर	प्रति व्यक्ति का निर्देशाक १६६० ६१ = १००
१६५० ५१	२६६ ०	८७ ७
१६५५ ५६	२६१ ०	६४ ६
१६६० ६१	३०६ ७	१०० ०
१६६१ ६२	३१० ७	१०१ ३
१६६२ ६३	३०८ ८	१०० ७
१६६३ ६४	३१६ २	१०४ १
१६६४ ६५	३३३ ६	१०८ ८
१६६५ ६६	३०७	१०० २
१६६६ ६७	३०२ ४	६८ ६
१६६७ ६८	३२१ २	१०४ ८

सन् १६५० ५१ से १६६७ ६८ के काल मे प्रति व्यक्ति आय मे २१% की वृद्धि हुई है जबकि हमारी राष्ट्रीय आय मे इस काल मे ७१% की वृद्धि हुई है। जनसख्या की तीव्र गति से वृद्धि होने के कारण हमारी राष्ट्रीय आय मे पर्याप्त वृद्धि होते हुए भी प्रति व्यक्ति आय मे विशेष वृद्धि नही हुई है। १७ वर्षों के नियोजित विकास के फलस्वरूप प्रति व्यक्ति आय मे १ २% की साधारण वार्षिक वृद्धि हुई है। यदि हम इस काल की प्रति व्यक्ति आय की चक्रवृद्धि वृद्धि (Compound Rate of Growth) की गणना करें तो वह लगभग १०१% ही जायगी।

ससार के लगभग सभी विकसित राष्ट्रो को सक्रान्तिकाल मे जनसख्या की वृद्धि की समस्या का सामना करना पडा है। पश्चिमी योरोप सयुक्त राज्य अमरिका जापान आस्ट्रेलिया मे आर्थिक विकास के फलस्वरूप प्रारम्भिक अवस्थाओ मे जनसख्या मे वृद्धि हुई परन्तु यह देश प्रति व्यक्ति आय की कम स्तर एव जन्म तथा मृत्यु दर की ऊँची दर की स्थिति से निकलकर ऊँची प्रति व्यक्ति आय तथा कम जन्म एव मृत्यु दर के सन्तुलन की स्थिति तक पहुँचने मे सफल हुए हैं। इन देशों ने नवीन तान्त्रिकताओं एव अधिक पूँजी निर्माण का उपयोग करके उत्पादन को निरन्तर बढाया और कम जन्म एव मृत्यु दर पर अधिक प्रति व्यक्ति आय का सन्तुलन स्थापित किया है। भारत भी इसी ओर प्रयत्नशील है और परिवार नियोजन के विस्तार एव चिकित्सा एव स्वास्थ्य की सुविधाओं को बढाकर जन्म एव मृत्यु-दर को कम करने का प्रयास जारी है। वर्तमान मे भारत उस स्थिति से गुजर रहा है अर्थात् देश मे मृत्यु दर तो कम हो गयी और जन्म-दर मे अभी विशेष कमी नहीं हुई है। अन्य अल्प विकसित

1 *Reserve Bank of India Bulletin June 1969*

राष्ट्रों के समान भारत की जनसंख्या की संरचना विकास के लिए अनुकूल नहीं है क्योंकि उत्पादक उपभोक्ता का अनुपात अनुकूल नहीं है और उत्पादक-वर्ग पर आश्रितों का भार अत्यधिक है। जैसे-जैसे जन्म दर म कमी होती जायगी, इस स्थिति म सुधार होता जायगा। यह सुधार सन् १९८० ८१ के पश्चात से स्पष्ट दीखने लगेगा यदि जन्म एव मृत्यु-दर म अनुमानों के अनुसार कमी होती है।

आर्थिक प्रगति के सिद्धान्त—1
[Theories of Economic Growth—1]

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के आर्थिक प्रगति के सिद्धान्त
(*Classical Theories of Economic Growth*)

[प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के आर्थिक प्रगति के सिद्धान्त—एडम स्मिथ का प्रगति का सिद्धान्त—मुक्त साहस एवं प्रतिस्पर्धा, श्रम विभाजन, विकास प्रक्रिया, मजदूरी का निर्धारण, लाभ निर्धारण, लगान का निर्धारण, ब्याज, विकास का क्रम—रिकार्डो का आर्थिक प्रगति का सिद्धान्त, अर्थ-व्यवस्था का संगठन, जनसंख्या में वृद्धि, पूँजी संचयन की प्रक्रिया, स्थिर अवस्था का उदय होना, प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्तों के दोष—मार्क्स का आर्थिक प्रगति का सिद्धान्त—इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या, उत्पादन की विधि एवं उसके प्रभाव, अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त, पूँजीवाद का पतन, चक्रीय उच्चावचन, मार्क्स के विकास सम्बन्धी विचारों का मूल्यांकन]

अल्प विकसित राष्ट्रों में आर्थिक परिस्थितियों का ऐसा दूषित चक्र क्रियाशील रहता है जो राष्ट्रीय उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि करने में बाधक होता है। इस दूषित चक्र के अंग होते हैं—उत्पादकता का निम्न स्तर, प्रति व्यक्ति आय का निम्न स्तर, बचत एवं पूँजी निर्माण की न्यून दर, तान्त्रिक आविष्कारों की अनुपस्थिति, जनसाधारण का आर्थिक पिछड़ापन आदि। इस दूषित चक्र में सम्मिलित विभिन्न घटक एक दूसरे के कारण एवं प्रभाव होते हैं। इस चक्र को तोड़े बिना अर्थ-व्यवस्था का आर्थिक विकास सम्भव नहीं होता है। इस दूषित चक्र के तोड़ने एवं विकास के घटकों को सक्रिय होने की प्रविधि का आर्थिक सिद्धान्तों के अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है। आर्थिक प्रगति के सिद्धान्तों का आधार संसार के विभिन्न राष्ट्रों का आर्थिक इतिहास है। विभिन्न विकसित राष्ट्रों की प्रगति की प्रविधि का अध्ययन अर्थशास्त्रियों द्वारा किया गया है और फिर इस अध्ययन को सिद्धान्त का रूप दिया गया है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक इतिहास के अध्ययन एवं बदलती हुई आर्थिक परिस्थितियों के आधार पर कुछ मौलिक विचार सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत किये हैं। आर्थिक प्रगति के सिद्धान्तों द्वारा हमें यह स्पष्टीकरण प्राप्त होता है कि संसार के कुछ राष्ट्र अधिक

सम्पन्न और कुछ निधन क्यों बने हुए हैं तथा विकसित राष्ट्रों की विकास की प्रक्रिया में किन घटकों का किस प्रकार एवं कितना योगदान रहा है।

राजनीतिक अर्थशास्त्र प्रारम्भ में समाज अथवा राष्ट्र के धनार्जन एवं धन के विभिन्न क्रियाओं में उपयोगों से सम्बन्ध रखता था। आर्थिक विकास की समस्या एवं पूँजीवाद के विकास की ओर सर्वप्रथम ध्यान प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का गया। इन प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों में एडम स्मिथ, रिकार्डो एवं माल्थस प्रमुख थे। बाद में कार्ल मार्क्स ने अपना पूँजीवाद का पतन का सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसका आधार भी प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के द्वारा निर्धारित पृष्ठभूमि ही था। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा अपने सिद्धान्त उस समय प्रतिपादित किये गये जब इंगलैण्ड ने संसार में अपना औद्योगिक प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। इन अर्थशास्त्रियों ने अपने सिद्धान्तों में उन घटकों का स्पष्टीकरण किया जिनके द्वारा इंगलैण्ड में द्रुत गति से प्रगति हुई थी। इसके बाद शुम्पीटर, कीन्स एवं हान्सन के बाद के अर्थशास्त्रियों ने बदलती हुई परिस्थितियों के आधार पर प्रगति के सिद्धान्त प्रतिपादित किये।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के आर्थिक प्रगति के सिद्धान्त

एडम स्मिथ का आर्थिक विकास का सिद्धान्त

एडम स्मिथ को प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों में प्रमुख अर्थशास्त्री माना जाता है और इनके द्वारा रचित पुस्तक, 'An Enquiry into the Nature and Causes of the Wealth of Nations' अर्थशास्त्र की सबसे प्रसिद्ध पुस्तक मानी जाती है। एडम स्मिथ ने आर्थिक विकास की प्रक्रिया का वर्णन अपनी इस पुस्तक में किया है परन्तु यह विश्लेषण क्रमबद्ध न होने के कारण असामयिक सा प्रतीत होता है। इस पुस्तक में निरन्तर उन समस्त सरकारी एवं निजी कार्यवाहियों का बुरा बताया गया है जिनके द्वारा मुक्त एवं सूक्ष्म प्रतिस्पर्धा में बाधाएँ उपस्थित होती हैं। एडम स्मिथ के प्रगति के सिद्धान्त की प्रमुख विचारधाराएँ निम्न प्रकार वर्णित की जा सकती हैं—

(१) **मुक्त साहस एवं प्रतिस्पर्धा**—एडम स्मिथ के विचार से आर्थिक विकास के लिए मुक्त साहस एवं मुक्त प्रतिस्पर्धा अत्यन्त आवश्यक है। उनके विचार में प्रकृति ने भौतिक पदार्थों को इस प्रकार व्यवस्थित किया है कि उस के (प्रकृति) द्वारा निर्धारित न्यायपूर्ण वैधानिक पद्धति ही विकास करने का सर्वोत्तम साधन है। प्रकृति द्वारा निर्धारित न्यायपूर्ण वैधानिक पद्धति का अर्थ एडम स्मिथ द्वारा न्याय व्यवस्था से लिया गया है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने हितों का, अन्य सदस्यों के दबाव से मुक्त रहकर अनुसरण करने के अधिकार की सुरक्षा प्राप्त होती है परन्तु यह अधिकार समाज के अन्य प्रत्येक सदस्य को ऐसे ही अधिकार के संरक्षण से सीमाबद्ध होता है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को अपने हितों का सम्पन्न बनाकर आर्थिक क्रियाएँ करने का अधिकार होना चाहिए और इस अधिकार पर किसी प्रकार के प्रतिबन्ध नहीं होने चाहिए।

परन्तु इस अधिकार की सीमाएं स्वतः ही अन्य प्रत्येक व्यक्ति के इसी प्रकार के अधिकार से निर्धारित होना रहेगी। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने हितों की पूर्ति के लिए अन्य व्यक्तियों के साथ प्रतिस्पर्धा करने के लिए स्वतन्त्र होना चाहिए और वह अपने हितों की पूर्ति इस स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा के आधार पर ही कर सकेगा। एडम स्मिथ ने इस व्यवस्था को प्राकृतिक स्वतन्त्रता का नाम दिया और विचार प्रकट किया कि यदि इस प्राकृतिक स्वतन्त्रता पर कुछ प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं तो राष्ट्रीय प्रगति में कमी आ जायगी। अर्थ-व्यवस्था को 'अदृश्य हाथों' द्वारा यदि संचालित होने के लिए मुक्त छोड़ दिया जाय तो समन्वित एवं लाभकारी आर्थिक व्यवस्था की स्थापना हो सकती है। *अदृश्य हाथों से स्मिथ का तात्पर्य मुक्त प्रतिस्पर्धा से उदय हुई शक्तियों से है जो अर्थ-व्यवस्था में आवश्यक* समायोजन स्थापित करती रहती हैं।

(२) श्रम विभाजन—*आर्थिक प्रगति को प्रभावित करने वाले घटकों में* एडम स्मिथ ने श्रम विभाजन को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उनके विचार में श्रम विभाजन द्वारा श्रम की उत्पादनक्षमता में वृद्धि होती है। श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण द्वारा श्रमिकों की निपुणता में वृद्धि होती है वस्तुओं के उत्पादन में लगने वाले समय में कमी होती है तथा अच्छी मशीनों एवं प्रसाधनों का आविष्कार होता है। इस प्रकार श्रमिकों की कार्यकुशलता वर्तमान प्रसाधनों से कार्य करने पर इसलिए बढ़ जाती है कि वह अधिक निपुण हो जाते हैं और आविष्कार द्वारा नवीन यन्त्र एवं प्रसाधन भी उनकी कुशलता के बढ़ाने में योगदान देते हैं। यह दोनों ही प्रभाव श्रम विभाजन के फलस्वरूप उदय होते हैं।

परन्तु श्रम विभाजन द्वारा उत्पादकता बढ़ाने की प्रक्रिया की तीन परिसीमाएं हैं—

(अ) श्रम विभाजन का प्रारम्भ मानव की एक वस्तु के बदले में दूसरी वस्तु *प्राप्त करने की प्राकृतिक इच्छा से होता है। स्मिथ के विचार में विनिमय निजी हित* का प्रभाव एवं परिणाम होता है और विनिमय के फलस्वरूप श्रम विभाजन का विस्तार होता है।

(आ) श्रम विभाजन के प्रारम्भ अथवा विस्तार के लिए पूंजी संचयन होना आवश्यक है। पूंजी संचयन के लिए बचत का होना आवश्यक होता है और बचत अथवा पूंजी मितव्ययता से बढ़ती है तथा फिजूलखर्ची एवं दुराचरण से घटती है। पूंजी की प्रत्येक वृद्धि अथवा कमी से उद्योगों की मात्रा में वृद्धि अथवा कमी होती है जिससे उत्पादक श्रम देने के श्रम एवं भूमि के वार्षिक उत्पादों के विनिमय-मूल्य तथा नागरिकों के धन एवं आय पर प्रभाव पड़ता है।

(इ) *श्रम विभाजन की प्रक्रिया की तीसरी सीमा बाजारों का आकार होती* है। यदि बाजार संकुचित हो और उत्पादकों को अपने उत्पादन के अतिरेक (Sur

plus) के विनिमय के अवसर सीमित हों तो कोई भी व्यक्ति एक ही प्रकार के रोज-गार में लगा रहकर अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पादन नहीं करेगा। इस प्रकार बाजार संकुचित होने पर श्रम-विभाजन का लाभ प्राप्त न हो सकेगा। इस सम्बन्ध में विदेशी व्यापार के विस्तार से विशेष लाभ होता है। एडम स्मिथ ने विदेशी व्यापार के विस्तार को आर्थिक विकास के लिए लाभकारी स्पष्ट बताया है।

(३) **विकास प्रक्रिया**—एडम स्मिथ के अनुसार विकास की प्रक्रिया संचयी होती है। प्रारम्भ में विपणि की पर्याप्त सम्भावनाएँ एवं पूँजी-संचयन की व्यवस्था होने से श्रम विभाजन सम्भव होता है जिससे उत्पादकता के स्तर में वृद्धि होती है। उत्पादकता की वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि एवं जनसंख्या में वृद्धि होती है। जनसंख्या की वृद्धि से विपणि में माँग का विस्तार होता है और आय की वृद्धि से बचत में वृद्धि होती है। श्रम के विशिष्टीकरण एवं विपणि के विस्तार से उत्पादन-कला में सुधार करने की योग्यता एवं प्रोत्साहन में वृद्धि होती है। इन कारणों से और अधिक विशिष्टीकरण एवं उत्पादकता में वृद्धि होती है। आर्थिक विकास की यह प्रक्रिया धीरे धीरे चलती है और अर्थव्यवस्था के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में फैल जाती है। एक क्षेत्र का विकास दूसरे क्षेत्रों के विकास को प्रभावित करता है और अन्ततः अर्थ-व्यवस्था के समस्त क्षेत्र विकसित हो जाते हैं।

विकास की इस प्रक्रिया में बाहरी मितव्ययताओं के महत्त्व की ओर भी एडम स्मिथ ने प्रकाश डाला है। बाहरी मितव्ययताओं (जिसमें यातायात, संचार आदि सम्मिलित होते हैं) से अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्र के व्यवसायों की लागत कम हो जाती है जिससे यह मितव्ययताएँ उपलब्ध होती हैं। एक क्षेत्र की लागत कम होने से उन अन्य क्षेत्रों को भी लाभ प्राप्त होता है जो पहले वाले क्षेत्र द्वारा उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं का उपयोग करते हैं। इस प्रकार विकास की प्रक्रिया का चक्र प्रारम्भ हो जाता है।

(४) **मजदूरी निर्धारण**—स्मिथ के अनुसार मजदूरी का निर्धारण श्रमिकों एवं पूँजीपतियों की सौदा करने की क्षमता पर निर्भर करता है। जब पूँजी-संचयन तीव्र गति से हो रहा हो तो पूँजीपतियों को कर्मचारी एवं श्रमिक प्राप्त करने के लिए तीव्र प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है जिससे मजदूरी की दरें बढ़ जाती हैं परन्तु श्रम की माँग में यदि निरन्तर वृद्धि होती रहे तो जनसंख्या में वृद्धि होती है और श्रमिकों की पूर्ति बढ़ने लगती है। यदि जनसंख्या की वृद्धि से श्रमिकों की पूर्ति आवश्यकता से अधिक हो जायगी तो मजदूरी की दरें कम हो जायगी जिससे जनसंख्या की वृद्धि कम होने लगेगी और यह दर माँग के अनुरूप समायोजित हो जायगी। इस प्रकार एडम स्मिथ के अनुसार मजदूरी स्थिर परिस्थितियों में श्रमिकों के जीवन-निर्वाह के स्तर तक कम हो जाती है और पूँजी-संचयन में तीव्र गति से वृद्धि होने पर यह मजदूरी-दर इस जीवन-निर्वाह स्तर से ऊँची उठ जाती है। मजदूरी-दर की वृद्धि पूँजी-संचयन की दर एवं जनसंख्या की वृद्धि की दर पर निर्भर रहती है।

(५) लाभ निर्धारण—स्मिथ के अनुसार पूँजी सचय म वृद्धि होने से एक आर मजदूरी म वृद्धि और दूसरी आर लाभ म कमी होती है। जब बहुत से धनी व्यापारी किसी एक व्यापार म अपनी पूजी का विनियोजन कर देते हैं तो उनकी पारस्परिक प्रतिस्पर्धा बढ़ जाती है जिससे लाभ कम हो जाता है। इसी प्रकार जब सभी व्यापारों म पूजी में वृद्धि होती है तो इससे उदय हुई प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप उन सभी म लाभ कम हो जाता है।

स्मिथ क अनुसार लाभ एव मजदूरी विकास की प्रक्रिया म उस समय तक घटते चले रहते है जब तक कि जनसख्या म आवश्यकतानुसार पर्याप्त वृद्धि नहीं है और पूजी स्टाक बहुत अधिक हो जाता है। ऐसी स्थिति म अर्थ व्यवस्था को उसकी भूमि एव जलवायु तथा उसकी स्थिति क अनुसार विभिन्न देशों से स्थापित सम्बन्धों का सम्पूर्ण लाभ प्राप्त हो जाता है। इस अवस्था म पहुँचकर पूजी सचयन की दर कम होने लगती है और मजदूरी की दरें भी कम हो जाती हैं। अब अर्थ व्यवस्था स्थिर अवस्था म पहुँच जाती है जहाँ पूजी सचयन एव आर्थिक विकास की प्रक्रिया दोनों ही रुक जाते हैं।

(६) लगान का निर्धारण—स्मिथ क विचार म लगान भूमि पर एकाधिकार का प्रतिफल होता है। आर्थिक प्रगति के साथ लगान म सामान्य वृद्धि होने के सम्बन्ध म स्मिथ ने कोई ठोस दलील प्रस्तुत नहीं की है।

(७) ब्याज—स्मिथ के विचार म पूजी सचयन की प्रक्रिया म ब्याज की कम दर सहायता प्रदान करती है। ब्याज की दर कम होने पर साहूकार ऋण प्रदान करने की क्रिया को प्रवर्तन करने का प्रयत्न करते हैं जिससे वह अधिक ऋण देकर अधिक ब्याज कमा सकें और अपने रहन सहन क अनुकूल जीवन-स्तर का निर्वाह कर सकें। ब्याज की दर और अधिक कम होने पर साहूकारों को ऋण प्रदान करने से पर्याप्त आय प्राप्त नहीं होता है और वे स्वय व्यवसायों को सचालन करने के लिए पूजी विनियोजन करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। इस परिस्थिति म आर्थिक विकास की गति म वृद्धि होती है।

स्मिथ के विचार म परिश्रमी राष्ट्र कम ब्याज दर एव अधिक व्यापार क आधार पर उन्नति कर सकता है। जब किसी राष्ट्र म पूजी सचयन इतना अधिक हो जाता है कि वह देश अपनी भूमि एव जलवायु का सम्पूर्ण लाभ उठाना प्रारम्भ कर देता है और प्रत्येक व्यापार के पास पर्याप्त पूजी का स्टाक हो जाता है तो ब्याज की दर कम होकर इतनी हो जाती है कि उसम केवल जोखिम के पारिश्रमिक की ही पूर्ति होती है। ऐसी परिस्थिति म अतिरिक्त विनियोग लाभप्रद नहीं रहता है और अर्थ व्यवस्था स्थिर अवस्था म प्रवेश कर जाती है जिससे आगे और अधिक विकास सम्भव नहीं होता है।

(८) विकास का क्रम—स्मिथ के अनुसार विकास की प्रक्रिया में सर्वप्रथम कृषि का विकास होता है। कृषि के बाद निर्माणी क्रियाओं एवं अन्त में वाणिज्य का विकास होता है। कृषि विकास आर्थिक प्रगति की प्रक्रिया के क्रियाशील होने के लिए अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि कृषि उत्पादन द्वारा ही अतिरिक्त जनसंख्या का भरण-पोषण हो सकता है और यह अतिरिक्त जनसंख्या विभिन्न बढ़ती हुई आर्थिक क्रियाओं में काम करने के लिए आवश्यक होती है। स्मिथ के विचार में विकास के प्रारम्भिक काल में कृषि क्षेत्र में उत्पादन-प्रविधियों की वर्तमान स्थिति में जारी रखकर कृषि औजारों, बीज, खाद एवं सिंचाई की सुविधाओं में वृद्धि करनी चाहिए जिससे कृषि उत्पादन में वृद्धि की जा सके। इसके साथ छोटे पैमाने के उद्योगों का विस्तार किया जाना चाहिए जिससे अतिरिक्त श्रमिकों को रोजगार की व्यवस्था की जा सके। इस प्रकार जब आय में वृद्धि होने लगे तो उसे वे विद्यमान एवं सम्भावित साधनों का अधिक पूँजी-विनियोजन एवं नवीन तान्त्रिकताओं के लिए उपयोग करके उत्पादन में और वृद्धि की जा सकती है।

यद्यपि स्मिथ ने अपने विचार आर्थिक विकास के सिद्धान्त के रूप में प्रकट नहीं किए परन्तु उनके विचारों का प्रभाव बाद के आर्थिक विकास के सिद्धान्तों पर पड़ता रहा है। पूँजी संचयन का महत्व, स्थिर अर्थ-व्यवस्था का विचार तथा विकास प्रक्रिया में सरकारी हस्तक्षेप के तिरस्कार को बाद के प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने भी मान्यता प्रदान की।

रिकार्डो का आर्थिक विकास का सिद्धान्त

रिकार्डो ने एडम स्मिथ द्वारा प्रतिपादित आर्थिक प्रगति के सिद्धान्त को और परिशुद्ध एवं विस्तृत करके अधिक व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया है। परन्तु स्मिथ के समान रिकार्डो भी अपने विचारों को स्पष्ट एवं क्रमबद्ध ढंग से व्यक्त नहीं कर पाता है। उसके विकास-सम्बन्धी विचार उसकी पुस्तक 'The Principles of Political Economy and Taxation (1816)' में जगह-जगह पर अव्यवस्थित रूप से व्यक्त किए गये हैं। उसके द्वारा प्रतिपादित विकास प्रक्रिया की पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिए उसके उन पत्रों का प्रयोग करना होता है जो उसने अपने समय के अन्य अर्थशास्त्रियों को लिखे थे। रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित विकास प्रक्रिया की प्रमुख बातें निम्न प्रकार हैं—

अर्थ-व्यवस्था का संगठन

रिकार्डो के विचार में अर्थ व्यवस्था में तीन प्रकार के काम करने वालों के वर्ग समूह होते हैं—पूँजीपति-वर्ग, श्रमिक-वर्ग तथा भूमिपति-वर्ग। इनमें से पूँजीपति वह लोग होते हैं जो वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन को निर्देशित करते हैं और इनका अर्थ-व्यवस्था में आधारभूत स्थान होता है। उत्पादन करने के लिए यह भूमिपतियों से लगान पर भूमि लेते हैं और श्रमिकों को उत्पादन के औजार-प्रसाधन आदि प्रदान

करते हैं। यह मजदूरी के रूप मे श्रमिकों को खाद्य पदार्थ वस्त्र एव अन्य वस्तुएँ प्रदान करते हैं जो श्रमिक उत्पादनकाल में उनका उपभोग करते हैं। पूंजीपति एक ओर साधनों का विभिन्न उत्पादनों पर कुशलतापूर्वक आवटन करता है और दूसरी ओर अपने लाभ का पुनर्विनियोजन करके पूंजी सचयन में वृद्धि करता है जिससे आर्थिक विकास की प्रक्रिया सक्रिय होती है। पूंजीपति अपनी पूंजी को अधिकतम लाभोपार्जन करने वाली उत्पादन क्रियाओं में लगाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है और पूंजी को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र (Sector) में उन क्षेत्रों की लाभोपार्जन क्षमता के आधार पर हस्तान्तरित एव आहूत करता है। इस क्रिया से कृषि एव उद्योग के क्षेत्रों की उत्पादन की समस्त शाखाओं में किसी विशेष समय में लाभ समान हो जाता है—लाभ में अन्तर केवल विभिन्न शाखाओं की जोखिम एव अनिश्चितता के कारण ही रह जाता है। इस प्रकार पूंजीपति उत्पादन के साधनों के कुशल वितरण का कार्य भी करता है।

दूसरी ओर श्रम, सख्या में सबसे अधिक होते हुए भी पूर्णरूपेण पूंजीपति पर निर्भर रहता है क्योंकि उसके उत्पादन करने के लिए आवश्यक औजार एव अन्य प्रसाधन उपलब्ध नहीं होते हैं। श्रम को भृति पूंजीपति द्वारा उनके जीवन निर्वाह के लिए दी जाती है। पूंजीपति द्वारा निर्धारित मजदूरी फण्ड को श्रमिकों की सख्या से विभाजित करने पर मजदूरी दर निर्धारित होती है। श्रमिकों की सख्या की गणना उनकी उत्पादन योग्यता के आधार पर की जाती है। श्रमिकों की सख्या उनकी मजदूरी से उपलब्ध होने वाली अनिवार्यताओं एव सुविधाओं पर निर्भर रहती है। रिकार्डो के विचार में परम्पराओं एव स्वभाव के अनुसार निर्धारित की गयी स्वाभाविक अथवा प्राकृतिक वास्तविक मजदूरी वह होती है जिससे श्रमिकों की वर्तमान सख्या तो बनी रहती है परन्तु उसमें कोई वृद्धि अथवा कमी नहीं होती है। इस वास्तविक मजदूरी में वृद्धि होने पर श्रमिकों की जनसख्या बढने लगती है और कम हो जाने पर इनकी सख्या कम हो जाती है। यह वास्तविक मजदूरी समयानुसार एव विभिन्न देशों में भिन्न होती है।

जनसख्या में वृद्धि

रिकार्डो के विचार में जब नये नये क्षेत्रों में विकास आरम्भ होता है तो प्राकृतिक भृति में वृद्धि होने लगती है क्योंकि पूंजी की वृद्धि के अनुरूप श्रमिकों की सख्या में वृद्धि होना सम्भव नहीं होता है। विकास के प्रारम्भ में उपजाऊ भूमि का अधिक उपयोग होने के कारण श्रमिकों की उत्पादनक्षमता अधिक होती है और पूंजी सचयन की गति भी श्रमिकों की वृद्धि की तुलना में तीव्र रहती है। जैसे जैसे आर्थिक विकास आगे बढ़ता है एव जनसख्या बढ़ती है अधिक भूमि का उपयोग होना प्रारम्भ हो जाता है और कम उपजाऊ भूमि पर भी उत्पादन होने लगता है। उपजाऊ भूमि के लिए प्रतिस्पर्धा होती है जिसके फलस्वरूप उपज का कुछ भाग उपजाऊ भूमि के भूमिपति

को लगान के रूप में दिया जाने लगता है। कृषि-पदार्थों की माँग बढ़ने पर कम उपजाऊ भूमि पर अधिक उपज लेने के लिए पूँजी एवं श्रम की अधिक इकाइयों का उपयोग होता है। इस परिस्थिति में उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है। उत्पत्ति ह्रास नियम के लागू होने के कारण कृषि-उत्पादकों में उपजाऊ भूमि के लिए प्रतिस्पर्धा होती है और लगान उदय होता है। लगान के उदय होने से उत्पादन के एक घटक भूमि की लागत बढ़ जाती है जिससे श्रम की प्राकृतिक वास्तविक मजदूरी में भी वृद्धि होने लगती है क्योंकि भूमिपति अपना बढ़ता हुआ लगान उपज में से निकाल कर शेष श्रमिकों एवं पूँजीपतियों में आपस में बाँटने को दे देता है। इस शेष में से श्रम अपनी बढ़ी हुई भृति प्राप्त करता है जिससे लाभ कम हो जाता है।

रिकार्डो के विचार से श्रम-शक्ति में सदैव पूँजी की वृद्धि के अनुपात में वृद्धि होती है। पूँजी में निरन्तर वृद्धि होने पर श्रम की माँग में वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप जनसंख्या वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है। भृति की बाजार दर श्रम की माँग एवं पूर्ति के आधार पर निर्धारित होती है। श्रम की माँग में वृद्धि अर्थ-व्यवस्था के पूँजी-स्टाक में वृद्धि होने के अनुपात में होती है। दूसरे शब्दों में, श्रम की माँग पूँजी की वृद्धि के अनुपात में बढ़ती है। जब श्रम की पूर्ति श्रम की माँग की तुलना में कम होती है तो भृति की प्राकृतिक दर भी बढ़ जाती है। ऐसी परिस्थिति में पूँजी की तुलना में जनसंख्या कम दर से बढ़ती है। प्राकृतिक भृति-दर में वृद्धि होने से पूँजी पर ब्याज एवं लाभ की दर कम हो जाती है। पूँजी पर ब्याज एवं लाभ-दर कम होने से पूँजी-संचयन की दर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और आर्थिक विकास की गति कम हो जाती है।

पूँजी-संचयन की प्रक्रिया

रिकार्डो के विचार में पूँजी राष्ट्रीय धन का वह भाग होता है जो उत्पादक क्रियाओं में विनियोजित किया जाता है। वह संयंत्र, कच्चा माल, औजार, खाद्य पदार्थ आदि के रूप में हो सकती है। पूँजी-संचयन की प्रक्रिया में दो घटक मुख्य रूप से कार्य करते हैं। प्रथम, बचत करने की क्षमता और द्वितीय बचत करने की इच्छा। बचत करने की क्षमता देश के नागरिकों की उस अतिरिक्त आय पर निर्भर रहती है, जो वह अपना जीवन निर्वाह करने के पश्चात् अतिरेक के रूप में बचाता है। इस अतिरेक को रिकार्डो ने शुद्ध आय (Net Revenue) का नाम दिया है। इस अतिरेक का कुछ भाग पूँजीपतियों एवं भूमिपतियों के द्वारा अपने आराम आदि के लिए उपभोग हो जाता है। जब लाभ की दर अधिक होती है तो पूँजी एवं भूमिपतियों में संचय करने की इच्छा होती है और जब लाभ की दर कम होती है तो वे अपने उपभोग को नियन्त्रित करते हैं। पूँजी संचय करने की इच्छा ब्याज की दर से भी प्रभावित होती है। ब्याज की दर कम होने पर पूँजी-संचयन की इच्छा कम होने लगती है।

रिकार्डो के अनुसार, ब्याज और लगान में घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिन देशों में लगान की दर अधिक होती है वहाँ ब्याज की दर कम रहती है जिससे फलस्वरूप पूँजी संचयन भी कम होता है। यह परिस्थिति ऐसे देशों में पायी जाती है जिनमें भूमि कम उपजाऊ हो और खाद्यान्न का आयात नहीं किया जाता हो। दूसरी ओर, उपजाऊ भूमि वाले देशों में लगान की दर कम होती है और पूँजी पर ब्याज एवं लाभ की दर सामान्य अथवा अधिक रहती है जिससे पूँजी निर्माण एवं आर्थिक विकास सम्भव होता है।

रिकार्डो के विचार में मुक्त व्यापार (Free Trade) द्वारा संसार में उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि की जा सकती है और उत्पादन के साधनों का अधिक उपयोग किया जा सकता है। उसके विचार में कर आय को ऐसे लोगों में बाँटने में सहायक करते हैं जो उपयोग के इच्छुक होते हैं। कर से मौद्रिक गति में वृद्धि होती है और पूँजीपति के लाभ में कमी होती है। कर से विनियोजन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

रिकार्डो की इस विचारधारा कि लगान बढ़ने से भृति बढ़ती है और लाभ कम होता है को एक आर्थिक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए कि श्रम एवं पूँजी की सबसे कम उत्पादक इकाई प्रति एकड़ ४ क्विंटल गेहूँ उत्पादित करती जिसका मौद्रिक मूल्य ८० रु० प्रति क्विंटल की दर से ३२० रु० होता है। विकास की प्रगति होने से इस श्रम एवं पूँजी की इस न्यूनतम उत्पादक इकाई से ३.८ क्विंटल गेहूँ उत्पादित होता है (क्योंकि उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है और कम उपजाऊ भूमि का उपयोग होता है) जिससे अनाज के मौद्रिक मूल्य में वृद्धि हो जाती है। यदि यह मूल्य ९० रु० प्रति क्विंटल हो जाता है तो ४ क्विंटल उत्पादन करने वाले को अब ३६० रु० मिलेगा। इस राशि में से उसे (४ - ३.८) ०.२ क्विंटल लगान के रूप में भूपति को देना पड़ेगा जिसका मौद्रिक मूल्य १८ रु० होगा। इस प्रकार उत्पादक के पास ३४२ रु० बचेगा जिसमें भृति एवं लाभ का भुगतान होना है। यदि जीवन निर्वाह, मजदूरी एवं पूँजी की सम्मिलित इकाई की लागत १ क्विंटल के बराबर हो तो मजदूरी के रूप में (१ × ९०) ९० रु० देना पड़ेगा और उसका लाभ २.८ क्विंटल गेहूँ अथवा २५२ रु० होगा। विकास के पूर्व इस कृषक को अपनी उपज का मूल्य (४×८०) ३२० रु० प्राप्त होता जिसमें से कोई लगान उसे नहीं देना पड़ता और भृति एवं पूँजी के लिए १ क्विंटल गेहूँ अर्थात् (१ × ८०) ८० रु० देना पड़ता। इस परिस्थिति में उसका लाभ २८० रु० होता। इस प्रकार विकास के साथ लगान शून्य से बढ़कर १८ रु० हो गया। मजदूरी ८० रु० से बढ़कर ९० रु० हो गयी परन्तु लाभ २८० रु० से घट कर २५२ रु० रह गया। इस उदाहरण में रिकार्डो का यह विचार स्पष्ट होता है कि उसके विचार में किस प्रकार विकास के बढ़ने के साथ लगान में वृद्धि, भृति में वृद्धि एवं लाभ में कमी होती है। निर्माणी क्षेत्र में भी यही परिस्थिति होती है क्योंकि उत्पत्ति समता नियम लागू होने पर निर्माणी

वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि नहीं होती। पूंजी संचयन के पश्चात् निर्माणी उत्पादक (Manufacturers) को कुल प्राप्ति पहले के बराबर मिलती है परन्तु इस प्राप्ति में से मजदूरी अधिक देनी पड़ती है जिससे उनके पास लाभ के रूप में कम राशि बचती है।

स्थिर अवस्था का उदय होना

रिकार्डो के विचार में पूंजी निर्माण की प्रक्रिया निरन्तर जारी रहती है जब तक कि लाभ की दर न्यूनतम दर से अधिक रहती है और जनसंख्या की वृद्धि उस समय तक जारी रहती है जब तक कि श्रमिकों को वास्तविक भृति परम्परागत न्यूनतम जीवन निर्वाह भृति (Customary Minimum) से अधिक मिलती है। पूंजी निर्माण की प्रक्रिया से वास्तविक एवं मौद्रिक दोनों ही भृतियों में वृद्धि होती है परन्तु वास्तविक भृति की वृद्धि अस्थायी होती है क्योंकि इस वृद्धि से प्रोत्साहन पाकर जनसंख्या की द्रुत गति से वृद्धि होने लगती है जिसके फलस्वरूप वास्तविक भृति दीर्घ काल में परम्परागत न्यूनतम स्तर तक आ जाती है परन्तु मौद्रिक भृति में वृद्धि जारी रहती है क्योंकि बढ़ती हुई जनसंख्या को खाद्यान्न उपलब्ध कराने के लिए कम उपजाऊ भूमि का उपयोग होता है जिस पर उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने के कारण कृषि उत्पादों की लागत अधिक आती है और खाद्यान्नों के मूल्यों में वृद्धि हो जाती है। खाद्यान्न श्रमिकों के बजट का प्रमुख अंग होते हैं और इनके मूल्य बढ़ने से श्रमिकों की जीवन-निर्वाह की मौद्रिक लागत बढ़ जाती है जिससे श्रमिकों की मौद्रिक भृति में वृद्धि होना स्वाभाविक होता है। मौद्रिक भृति की वृद्धि से कृषि एवं निर्माणी-व्यवसायों में लाभ की दर कम हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप पूंजी संचयन की दर में कमी आ जाती है। पूंजी संचय की दर कम होने से विकास की गति एवं राष्ट्रीय उत्पादन कम होने लगता है। इस प्रकार लाभ की दर में निरन्तर कमी होने से यह उस स्तर पर आ जाती है जब अतिरिक्त पूंजी-संचयन में निहित जोखिम एवं त्याग के लिए पर्याप्त प्रतिफल प्राप्त नहीं होता है। ऐसी स्थिति में अतिरिक्त पूंजी संचयन बन्द हो जाता है और अर्थव्यवस्था स्थिरता की अवस्था में प्रविष्ट हो जाती है। इस स्थिर अवस्था में—(अ) अतिरिक्त पूंजी संचयन नहीं होता, (आ) जनसंख्या में वृद्धि नहीं होती, (इ) लगान की दर ऊँची होती है, (ई) वास्तविक मजदूरी-दर न्यूनतम स्तर पर होती है (उ) लाभ की दर लगभग शून्य होती है, (ऊ) मौद्रिक भृति दर अधिक होती है (ए) आर्थिक प्रगति की दर शून्य हो जाती है। रिकार्डो ने अर्थ-व्यवस्था की इस स्थिर अवस्था को निराशाजनक नहीं माना है। उसके विचार में यह अवस्था विकास और पतन की व्यवस्था होती है।

रिकार्डो द्वारा आर्थिक प्रगति की प्रक्रिया की प्रणाली के मूल तत्त्वों को अधिकतर प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने उचित समझा है। रिकार्डो के सिद्धान्त में विकास सम्बन्धी कुछ आधारभूत बातों का स्पष्ट विश्लेषण किया गया है जैसे विकास होने पर

विभिन्न वर्गों के आय के भाग का निर्धारण कैसे होना है अर्थ व्यवस्था गतिशील रहती है और उसमे निरन्तर परिवर्तन होते हैं जब तक कि वह स्थिर अवस्था म प्रविष्ट नहा होता है विकास के आधारभूत तत्वों—पूँजी सचयन जनसंख्या लाभ मजदूरी एव लगान क पारस्परिक सम्बन्ध आदि।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्तों के दोष

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के आर्थिक विकास के सिद्धान्त अस तोषजनक समझे जाते हैं और इनके द्वारा प्रस्तुत प्रक्रिया का प्रयोग अब नहा किया जाता है। इस परिस्थिति के निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं—

(१) प्राचीन अर्थशास्त्रियों के विकास सिद्धान्तों के दो मूलभूत आधार हैं—(अ) उत्पत्ति ह्रास नियम (आ) माल्थस का जनसंख्या का सिद्धान्त। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने इन दोनों नियमों का आर्थिक विकास क साथ लागू होना अनिवार्य समझा है और इन नियमों के लागू होन स आर्थिक विकास की सीमाए बाधने का प्रयत्न किया है। विभिन्न देशों के आर्थिक विकास के इतिहास से यह सिद्ध होता है कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की इन नियमों के लागू होने की मान्यता त्रुटिपूर्ण है।

(२) पश्चिमी राष्ट्रों म जनसंख्या के परिवर्तनों ने यह सिद्ध कर दिया है कि माल्थस की जनसंख्या का सिद्धान्त लागू होना आवश्यक नहीं है। यदि माल्थस के सिद्धान्त का प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विकास सिद्धान्तों से निकाल दिया जाए तो भृति के जीवननिर्वाह स्तर क आस पास रहने की प्रवृत्ति गलत सिद्ध हो जाती है और फिर आय के वितरण के विचार भी त्रुटिपूर्ण हो जाते हैं।

(३) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने तान्त्रिक प्रगति के महत्त्व का ठीक अनुमान नहीं लगाया है। तान्त्रिक सुधारों द्वारा उत्पत्ति ह्रास नियम क प्रभाव को समाप्त किया जा सकता है जिसके परिणामस्वरूप बढ़ते हुए लगान एव घटते हुए लाभ की विचारधारा गलत सिद्ध हो सकती है और विकास क इन सिद्धान्तों के आधारभूत तत्व ही महत्वहीन हो जाते हैं।

(४) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का यह विचार कि अर्थ व्यवस्था स्वत ऐसी स्थिति म पहुँच जाती है जहाँ आर्थिक विकास रुक जाता है और स्थिर अवस्था का प्रारम्भ हो जाता है या जनसंख्या सम्बन्धी माल्थस के सिद्धान्त और उत्पत्ति ह्रास नियम पर ही आधारित है। जब इन दो नियमों का लागू होना सन्देहजनक है तो स्थिर अवस्था की विचारधारा भी त्रुटिपूर्ण है।

(५) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का यह विचार कि दीर्घ काल म अर्थ-व्यवस्था का साम्य पूर्ण रोजगार पर स्थापित होता है अब व्यावहारिक नहीं समझा जाता है। वर्तमान विचारधारा क अनुसार पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करना और उसका निर्वाह एक अत्यन्त जटिल प्रक्रिया है और वह इतना सरल नहा है जैसा प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों न समझा है।

(६) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास की प्रक्रिया का विश्लेषण पूर्ण प्रतिस्पर्धा के अन्तर्गत किया है परन्तु व्यावहारिक जीवन में पूर्ण प्रतियोगिता किसी भी समाज अथवा देश में विद्यमान नहीं है।

(७) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने अपनी विकास प्रक्रिया का प्रतिपादित करते समय यह मान लिया है कि विकास-सम्बन्धी आधारभूत तत्व—संस्थाएँ, इच्छाएँ एवं मान्यताएँ—अर्थ-व्यवस्था में पहले से विद्यमान रहती हैं। व्यावहारिक जीवन में यह तत्व अर्थ-व्यवस्था की पर्याप्त मात्रा में नहीं पाए जाते हैं और इन्हें उत्पन्न करने के लिए विशिष्ट कार्यवाहियों की आवश्यकता होती है। इन तत्वों का उत्पन्न करने के सम्बन्ध में विकास सिद्धान्तों में आवश्यक सुधार करना अनिवार्य है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विकास सिद्धान्तों में उपर्युक्त कमियाँ होते हुए इन्हें सर्वथा व्यर्थ नहीं समझा जा सकता है। इनके द्वारा गतिशील यौगिक विकास के सिद्धान्त (Dynamic Aggregative Theory of Development) प्रस्तुत किए गए हैं। इनके अनुसार, पूँजी-निर्माण आर्थिक विकास का मूलाधार है। यद्यपि इनके द्वारा पूँजी-सचयन की प्रक्रिया को अत्यन्त सरल बतलाया गया है जो वास्तव में सत्य नहीं है फिर भी इन सिद्धान्तों में पूँजी-सचयन प्रक्रिया से सम्बन्धित विभिन्न तत्वों का प्रशंसनीय विश्लेषण किया गया है।

मार्क्स का आर्थिक प्रगति का सिद्धान्त
(Marxian Analysis of Economic Growth)

कार्ल मार्क्स उन प्रभावशाली विचारकों में से एक है जिन्होंने स्वयं जो कुछ लिखा उससे कहीं अधिक उनके विचारों पर दूसरे विचारकों द्वारा लिखा गया है। मार्क्स को पूँजीवाद के पतन एवं साम्यवाद के उदय का द्रष्टा कहा जाता है। वह केवल एक अर्थशास्त्री ही नहीं था बल्कि उसने समाजशास्त्र, राजनीति-सिद्धान्त, इतिहास एवं दर्शन सभी के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किए हैं। मार्क्स ने इन समस्त विषयों से सम्बन्धित अपने विचार सम्मिलित रूप से अपनी पुस्तक Das Capital में दिये। यहाँ पर हम मार्क्स के उन्हीं विचारों का विश्लेषण करेंगे जो आर्थिक विकास प्रक्रिया से सम्बद्ध हैं। इन विचारों का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं—

(१) इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या—मार्क्स ने मानव जीवन के विकास के कारणों का सर्वथा नवीन आधार एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उसने सामाजिक विकास के आध्यात्मिक (Metaphysics) अथवा मनोवैज्ञानिक (Psychological) कारणों एवं स्पष्टीकरणों का खण्डन करके यह विचार प्रस्तुत किया कि मानव की चेतना से उसके अस्तित्व का निर्धारण नहीं होता है बल्कि उसके सामाजिक अस्तित्व से उसकी चेतना का निर्धारण होता है— It is not the consciousness of men that determines their existence but on the contrary, their social existence determines their consciousness.' मार्क्स के विचार में

मनुष्य को समाज में जो स्थान मिलता है वह उसकी इच्छाओं एवं योग्यताओं के आधार पर निर्धारित नहीं होता बल्कि उसको जो समाज में स्थान दिया जाता है उसके आधार पर उसकी इच्छाएं एवं योग्यताएं नियन्त्रित होती है। उसके अनुसार इतिहास की समस्त घटनाओं का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से आधार आर्थिक कारण होते है। संसार की समस्त राजनीतिक क्रियाएं एवं घटनाएं जैसे युद्ध आन्दोलन उपद्रव आदि आर्थिक कारणों से उत्पन्न होते हैं। किसी भी देश की नैतिक धार्मिक राजनीतिक एवं सामाजिक विचारधारा का आर्थिक कारणों (विशेषकर उत्पादन विधि) से निर्धारण होता है। इस प्रकार मार्क्स द्वारा आर्थिक कारणों को समाज का सर्वोपरि तत्व माना गया है जो अन्य सभी तत्वों को नियन्त्रित करता है।

(२) उत्पादन की विधि एवं उसके प्रभाव—मार्क्स के अनुसार उत्पादन विधि मानवीय व्यवहारों का आधार होता है। प्रत्येक प्रकार की उत्पादन विधि के अन्तर्गत उसी के उपयुक्त उत्पादन सम्बन्ध भी स्थापित होते हैं। वैधानिक शब्दावली में इन उत्पादन सम्बन्धों को जायदाद सम्बन्ध या सम्पत्ति कह सकते है। उत्पादन-सम्बन्धों द्वारा समाज का वर्ग संरचना (Class Structure) का प्रकार निर्धारित होता है। मार्क्स के अनुसार यह वर्ग संरचना सभी समाजों (केवल समाजवाद के अन्तर्गत स्थापित वर्ग हीन समाज को छोड़कर) में दो वर्गों से बनता है—प्रबल एवं निर्देशन देने वाला वर्ग और मजदूर वर्ग जो पीड़ित वर्ग होता है।

उत्पादन की विधि एवं उत्पादन सम्बन्धों द्वारा विचारों एवं संस्थाओं की अधिसंरचना (Super Structure) का स्थापना होती है। उत्पादन-सम्बन्धों के सामूहिक स्वरूप के आधार पर समाज की आर्थिक संरचना बनती है जो वैधानिक एवं राजनीतिक अधिसंरचना की आधारशिला होता है। इस आर्थिक संरचना के अनुरूप सामाजिक चेतना का स्वरूप निश्चित होता है। जीवन निर्वाह के भौतिक साधनों की उत्पादन विधि द्वारा समाज की सामाजिक राजनीतिक एवं बौद्धिक प्रक्रियाओं का निर्धारण होता है। मार्क्स के विचार में समस्त सामाजिक परिवर्तनों एवं राजनीतिक क्रान्तियों का अंतिम कारण उत्पादन विधि एवं विनिमय में परिवर्तन होना होता है।

किसी भी समाज का विकास उत्पादन की भौतिक शक्तियों में परिवर्तन होने से होता है। किसी सामाजिक व्यवस्था के प्रारम्भिक काल में उत्पादन की भौतिक शक्तियाँ उत्पादन सम्बन्धों तथा विचारों एवं संस्थाओं की अधिसंरचना (Super Structure) के अनुरूप होते हैं परन्तु भौतिक शक्तियों का विकास तीव्र गति से होता है और इसके अनुरूप उत्पादन सम्बन्धों एवं सांस्कृतिक-संरचना में परिवर्तन इतनी जल्दी नहीं हो पाता है। इस परिस्थिति के परिणामस्वरूप उत्पादन शक्तियों एवं उत्पादन सम्बन्धों में संघर्ष होता है। वर्तमान जायदाद सम्बन्ध (Property Relations) उत्पादन-शक्तियों की बेड़ी बन जाते हैं अर्थात जायदाद-सम्बन्ध अब उत्पादन शक्तियों के विकास में बाधक होते हैं। इस परिस्थिति में सामाजिक क्रान्ति प्रारम्भ होती है।

जैसे जैसे उत्पादन सम्बन्ध परिपक्व एवं कठोर होते जाते हैं और उत्पादन की शक्तियों का विकास होता जाता है, प्रबल एवं पीड़ित-वर्ग में संघर्ष गम्भीर एवं गहन होता जाता है। इस संघर्ष के फलस्वरूप वर्तमान जायदाद-सम्बन्धों में कुछ सुधार होता है और पीड़ित वर्ग को लाभ होता है। यह वर्ग राजनीतिक नियन्त्रण प्राप्त करने का प्रयत्न करता है और इसमें उत्पादन शक्तियों से सम्बद्ध होने के कारण इसे सफलता भी प्राप्त होती है। जायदाद के नवीन सम्बन्धों के फलस्वरूप नवीन उत्पादन शक्तियों का विस्तार होता है तथा नवीन उत्पादन सम्बन्धों की स्थापना होती है। उत्पादन सम्बन्धों के परिवर्तन से विचारों एवं संस्थाओं की समस्त अधिसंरचना द्रुत गति से बदल जाती है। मार्क्स के अनुसार समस्त इतिहास में इस चक्र का अनुसरण होता रहा है।

(३) **अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त**—मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त पूँजीवाद के अन्तर्गत होने वाली आर्थिक विकास की प्रक्रिया का आधार है। मार्क्स के अनुसार, पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था में जनसंख्या दो वर्गों में विभक्त रहती है—पूँजीपति जो उत्पादन के समस्त साधनों (प्रसाधन एवं प्राकृतिक साधन) पर अधिकार रखता है तथा श्रमिक वर्ग जो अपनी श्रम शक्ति को बेचकर अपना जीवन निर्वाह करता है। श्रम शक्ति को पूँजीपति बाजार में खरीदकर उत्पादन प्रक्रिया में उपयोग करता है। इस श्रम शक्ति में सबसे असाधारण गुण यह होता है कि वह अपने मूल्य (अर्थात् मजदूरी जो वह प्राप्त करता है) से अधिक उत्पादन करता है। इस प्रकार अर्थ-व्यवस्था में *श्रम एवं उत्पादन के अन्य प्रसाधनों की सहायता से जो उत्पादन होता है, वह श्रम के* जीवन निर्वाह के मूल्य तथा उत्पादन में उपयोग किए गये अन्य प्रसाधनों एवं कच्चे माल के मूल्य से अधिक होता है। इस आधिक्य को मार्क्स ने 'अतिरिक्त मूल्य' का नाम दिया है। यह अतिरेक में पूँजीपति को शुद्ध लाभ, ब्याज एवं लगान के रूप में जाता है। श्रम के मूल्य का निर्धारण किसी विशेष वस्तु के उत्पादन में लगने वाले समय के आधार पर निर्धारित होता है और यह मूल्य अन्ततः श्रमिकों के जीवन निर्वाह के साधनों के मूल्य के बराबर होता है। श्रम का मूल्य अर्थात् भृति जीवननिर्वाह स्तर पर रहने का मुख्य कारण अर्थ व्यवस्था में उपलब्ध बेरोजगार श्रम की उपस्थिति होना है जिसे मार्क्स ने औद्योगिक रक्षित सेना (Industrial Reserve Army) का नाम दिया है। यह बेरोजगार श्रम रोजगार प्राप्त श्रम के साथ प्रतिस्पर्धा करता है जिससे वास्तविक भृति जीवननिर्वाह स्तर तक गिर जाती है।

मार्क्स द्वारा इस बात की जोरदार पुष्टि की गयी है कि अतिरिक्त मूल्य (Surplus Value) केवल श्रम द्वारा ही उत्पादित होता है। अच्छी मशीनें एवं अन्य उत्पादन के प्रसाधन अतिरिक्त मूल्य इसलिए उत्पन्न नहीं कर सकते कि वे मानवीय सहायता के बिना कोई उत्पादन नहीं कर सकते हैं। उत्पादन में उपयोग आने वाले कच्चे माल पूर्व के श्रम के उत्पाद होते हैं तथा पूँजीगत प्रसाधन उत्पाद में अपना ही मूल्य हस्ता

न्तरित करते है। इस प्रकार कच्चे माल एवं पूंजीगत प्रसाधनों द्वारा कोई अतिरिक्त मूल्य उत्पादित नहीं किया जाता है।

पूंजीपति निरन्तर अपने अतिरिक्त मूल्य को बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील रहता है और इसके लिए वह श्रम के कार्य के घण्टे बढ़ाकर भृति को जीवननिर्वाह स्तर से भी कम करके *तथा तान्त्रिकताओं में सुधार करके श्रम की उत्पादकता बढ़ाकर श्रम का* और अधिक शोषण करता है। तान्त्रिक सुधारों से वर्तमान श्रम शक्ति का कुल उत्पादन बढ़ जाता है जिससे कुल उत्पादन एवं निर्वाह स्तर का अन्तर और बढ़ जाता है। तान्त्रिक सुधार द्वारा श्रम की उत्पादकता बढ़ाकर अतिरिक्त मूल्य बढ़ाना का पूंजीपति अधिक उपयुक्त समझता है *क्योंकि श्रम के घण्टे बढ़ाने एवं मजदूरी कम करने की* क्रिया का उपयोग कुछ सीमा तक ही किया जा सकता है। प्रत्येक पूंजीपति इस बात के लिए प्रयत्नशील रहता है कि तान्त्रिक सुधार जल्दी करके अपनी लागत अन्य पूंजीपतियों की तुलना में पहले कम करे जिससे *वह वर्तमान मूल्य स्तर का लाभ कुछ समय तक उठा सके क्योंकि धीरे धीरे सभी पूंजीपति उन तान्त्रिक सुधारों को अपना* कर अपनी अपनी लागत कम कर लेंगे और इनकी आपसी प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप मूल्य-स्तर गिर कर नया सन्तुलन स्थापित कर लेगा जिसके परिणामस्वरूप लाभ की दर फिर *सामान्य स्तर पर आ जायगी। इसके अतिरिक्त प्रत्येक पूंजीपति अपने कुल* लाभ को बढ़ाने के लिए वर्तमान उत्पादन-तान्त्रिकताओं की सहायता से ही बड़े पैमाने पर उत्पादन करता है जिसके लिए उसे अतिरिक्त कच्चे माल, यन्त्र एवं अन्य प्रसाधनों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार प्रत्येक पूंजीपति अपने अतिरिक्त मूल्य को बढ़ाने *के लिए अधिक से अधिक पूंजी संचयन करता है जिससे वह नवीन तान्त्रिकताओं* का उपयोग कर सके अथवा वर्तमान तान्त्रिकताओं के आधार पर ही उत्पादन का विस्तार कर सके।

(४) पूंजीवाद का पतन—*मार्क्स के विचार में पूंजीवादी उत्पादन के नियम* द्वारा ही पूंजीपतियों का विनाश होता है। इस विनाश में पूंजी का केन्द्रीयकरण सबसे अधिक योगदान देता है। अधिक पूंजी संचय एवं निरन्तर तान्त्रिक सुधार की क्रियाओं के फलस्वरूप पूंजीपतियों में विनाशकारी प्रतिस्पर्धा हो जाती है और बड़े पूंजीपति द्वारा छोटे पूंजीपतियों का विनाश किया जाता है। *एक ओर यह छोटे* पूंजीपति अपने व्यवसायों से हाथ धो बैठते हैं और दूसरी ओर मशीनों के आधिकाधिक उपयोग से श्रम शक्ति भी बेरोजगार होने लगती है। इस परिस्थिति के परिणामस्वरूप बड़ी बड़ी एकाधिकारिक पूंजीपति संस्थाओं की स्थापना होती है और इसके साथ बढ़ *जनसमाज का शोषण दासत्व निरादर दरिद्रता आदि बढ़ते जाते है। श्रमिक वर्ग भी* संगठित एवं अनुशासित पूंजीवादी उत्पादन विधि के परिणामस्वरूप हो जाता है। पूंजी का एकाधिकार अब उत्पादन की विधि की बेड़ियाँ (Fetters) बन जाता है। अन्तत उत्पादन के साधनों के केन्द्रीयकरण तथा श्रम के समाजीकरण का संघर्ष इस

स्थिति में पहुँच जाता है कि पूँजीवादी जामे (Integument) का विस्फोट हो जाता है और पूँजीवादी व्यवस्था का पतन हो जाता है।

इस प्रकार पूँजीवाद एक अस्थिर व्यवस्था है जिसका विस्फोट अपनी ही प्रतिक्रिया एवं सिद्धान्तों के फलस्वरूप होता है। इसके अन्तर्गत श्रमिकों का अधिक तीव्र गति से बेकार किया जाता है जबकि उन्हें अतिरिक्त रोजगार प्रदान करने की तुलना में गति कम होती है। श्रम बचाने के आविष्कार एक के बाद एक बड़ी द्रुत गति से होते हैं जिनके परिणामस्वरूप औद्योगिक रक्षित सेना (बेरोजगार श्रम) में वृद्धि होती जाती है। बेरोजगार श्रम में जनसंख्या की वृद्धि के फलस्वरूप भी वृद्धि होती है क्योंकि मार्क्स के अनुसार मजदूरों की जीवननिर्वाह दर भी जनसंख्या-वृद्धि के लिए प्रोत्साहन प्रदान करती है।

(५) चक्रीय उच्चावचन (Cyclical Fluctuations)—मार्क्स के विचार में चक्रीय उच्चावचन पूँजीवादी विकास का अनिवार्य लक्षण होते हैं। उसके विचारों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उन्होंने इन चक्रीय उच्चावचनों के तीन कारण बताये हैं—

(१) गिरती हुई लाभ-दर—यद्यपि मार्क्स द्वारा दीर्घ काल में लाभ के गिरने तथा आर्थिक संकट के सम्बन्ध को स्पष्ट नहीं किया गया है परन्तु उनके विचार में लाभ की दर में कमी, दीर्घ काल तक उत्पादन के अन्य घटकों की तुलना में पूँजी में वृद्धि होना होता है। जब नवीन उत्पादन-तान्त्रिकताओं का उपयोग निरन्तर बढ़ता रहता है तो उत्पादन में सम्मिलित होने वाले तत्त्वों में पूँजी का अंश बढ़ता जाता है जिससे पूँजी पर लाभ की दर घटने लगती है।

लाभ की दर में कम होने का दूसरा कारण भृति में वृद्धि होना होता है। अल्प काल में पूँजी-संचयन द्वारा बेरोजगार लोगों को रोजगार में ले लिया जाता है और पूर्ण रोजगार की अवस्था तक पहुँचने के समय भृति की जीवननिर्वाह-दर बनी रहती है परन्तु इस परिस्थिति के बाद भी पूँजी-संचयन जारी रहने पर भृति की दर बढ़ने लगती है और लाभ की दर कम हो जाती है।

लाभ की दर गिरने से पूँजी-संचयन की क्रिया में गिरावट आती है जिससे आर्थिक संकट उदय होता है। इसके अतिरिक्त जब लाभ की दर गिरने लगती है तो पूँजीपति इस दर को गिरने से रोकने के लिए परिकाल्पनिक उपक्रमों (Speculative Ventures) की ओर अधिक ध्यान देता है। यह व्यवसाय ठोस आर्थिक सिद्धान्तों पर आधारित न होने के कारण आर्थिक संकट उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था में एक बार संकट प्रारम्भ होने पर लोग तरलता की ओर आकर्षित होते हैं जिससे मुद्रा द्वारा विनिमय के माध्यम के रूप में किए जाने वाले कार्य छिन्न-भिन्न होने लगते हैं और साख-व्यवस्था ठप्प हो जाती है। श्रमिक बेरोजगार होने लगते हैं, मजदूरी को घटाकर इतना कर दिया जाता है कि श्रमिक अपना पेट भी नहीं भर पाते

हैं। छोटे पूँजीपतियों की पूँजी को बड़े शक्तिशाली पूँजीपति शोषण कर लेते हैं। इन सब परिस्थितियों के फलस्वरूप लाभ की दर में फिर सुधार होता है और पूँजी विनियोजन फिर से बढ़ने लगता है।

(२) *अति उत्पादन*—पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक उच्चावचानों का दूसरा कारण अति उत्पादन (Over production) होता है। प्रत्येक पूँजीपति अपने उत्पादन सम्बन्धी निर्णयों को विपणि की अत्यन्त कम जानकारी के आधार पर करता है। उसे अपने प्रतिस्पर्धियों द्वारा की जाने वाली उत्पादन क्रियाओं को कोई ज्ञान नहीं होता है। *इस परिस्थिति का परिणाम होता है—अर्थ व्यवस्था के कुछ क्षेत्रों में अति* उत्पादन और कुछ में न्यून उत्पादन। अति उत्पादन वाले क्षेत्र अपने उत्पादन को लाभप्रद मूल्यों पर बेचने में असमर्थ रहते हैं जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक संकट का प्रारम्भ होता है।

(३) *न्यून उपभोग* (Under consumption)—मार्क्स प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों से *बिलकुल सहमत नहीं है कि प्रत्येक पूर्ति अपनी माँग स्वयं बना लेती है। पूँजीपति* वर्ग अपने उपभोग को निरन्तर प्रतिबन्धित इसलिए करता है कि वह अधिक पूँजी सचयन द्वारा अपना अतिरिक्त मूल्य निरन्तर बढ़ा सके। पूँजीपतियों के पूँजी सचयन को बढ़ाने के निरन्तर प्रयत्नों के फलस्वरूप विनाशकारी प्रतिस्पर्धा उदय होता है जिसके परिणामस्वरूप बड़े पूँजीपति छोटे पूँजीपतियों को समाप्त कर देते हैं और छोटे *पूँजीपतियों को बेरोजगार कर देते हैं। इसके साथ ही निरन्तर तान्त्रिक सुधार* के प्रयत्नों जो पूँजीपति द्वारा अपना लाभ बढ़ाने के लिए किये जाते हैं के फलस्वरूप श्रमिकों की मजदूरी कम की जाती है तथा बहुत से श्रमिक बेरोजगार हो जाते हैं। इस प्रकार पूँजीपतियों बेरोजगार पूँजीपतियों तथा रोजगार प्राप्त एवं बेरोजगार श्रमिकों सभी के उपभोग में पर्याप्त वृद्धि नहीं होती है जिससे बढ़ते हुए उत्पादन की *खपत नहीं हो पाता है और अति उत्पादन की अवस्था उत्पन्न हो जाता है जो आर्थिक* संकट एवं उच्चावचानों को जन्म देती है।

मार्क्स के विकास-सम्बन्धी विचारों का मूल्यांकन

यद्यपि मार्क्स ने विकास के सम्बन्ध में एक नवीन मार्ग प्रस्तुत किया गया परन्तु *बहुत सी बातों में उसने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की मान्यताओं को ही आधार माना* है। उसके *विचार में, पूँजीवाद की संरचना इस प्रकार की होती है कि वह संरचना* ही उसके पतन का कारण बन जाती है। पूँजीवाद के पतन के साथ समाजवाद का उदय होना मार्क्स के विचार में बिलकुल स्वाभाविक है परन्तु मार्क्स के विकास सम्बन्धी विचारों की आलोचना निम्नलिखित आधारों पर की जाती है—

(१) *अति*—मार्क्स ने पूँजीवाद के भविष्य के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये *वे काफी समय बीत जाने पर भी सत्य सिद्ध नहीं हुए हैं। पूँजीवादी अर्थ व्यवस्थाएँ* निरन्तर विकास करती जा रही हैं और वह अवस्थाएं प्राय किसी देश में उत्पन्न नहीं

उसके अनुसार पूँजी सचयन इसलिए कम नहीं होता कि कुल प्रभावशाली माँग म कमी हो जाती है बल्कि कुल उत्पादन के विभाजन म परिवतन हो जान स पूँजीपति का कम लाभ मिलता है जिसक परिणामस्वरूप उसके पास विनियोजन योग्य धन की कमी रहती है। मावस का यह विचार प्रतिष्ठित अयशास्त्रियो की स्थिर अवस्था का विचारधारा से मिलता-जुलता है परन्तु यापार चक्र का सिद्धान्त कुल उत्पादन की गिरावट का विचार किय बिना सम्पूण नहीं समझा जा सकता है। मावस का उत्पादन त्रुटियो क फलस्वरूप उदय होन वाला अति उत्पादन एव अल्प उत्पादन का विचार गतिशील विचार समझा जाता ह। इसक द्वारा विशिष्ट प्रकार क यापार-चक्र उदय होन हैं।

मावस का अल्प उपभाग (Under consumption) का विचार भी अस्पष्ट है क्योंकि पूँजीपति यदि पूँजी का सचय करता है तो वह उस बचत का पूँजीगत वस्तुओ म विनियोजित कर दता है जिसक फलस्वरूप अथ यवस्था म अल्प-उपभाग की समस्या उदय नहीं होनी चाहिए। मावस यह सिद्ध करन म असमथ रहा है कि लाभ का दर एव विनियोजन किस प्रकार उपभोग पर निभर रहत हैं।

मावस क विकास के सिद्धान्तो म उपयु क्त कमियाँ होत हुए यह मानन से कोई इन्कार नहीं करता कि मावस द्वारा विकास प्रक्रिया क सम्बध म महत्वपूर्ण विचारो एव सिद्धान्तो का योगदान दिया गया है।

आर्थिक प्रगति के सिद्धान्त—२

[Theories of Economic Growth—2]

[शुम्पीटर का आर्थिक प्रगति का सिद्धान्त—अनियन्त्रित उत्पादन एवं प्रगति, साहसी विकास का केन्द्र, विकास विनियोजन एवं बैंक साख, विकास प्रक्रिया में उपभोक्ता का प्रभुत्व, नवप्रवर्तन के मुक्त आर्थिक प्रक्रिया, साहसिक क्रियाएँ एवं विकास में गिरावट, शुम्पीटर के विकास सिद्धान्त का मूल्यांकन, विकास-सम्बन्धी आधुनिक विचारधाराएँ, हैरॉड का विकास-मॉडल, मान्यताएँ, हैरॉड का विकास समीकरण, डोमर का मॉडल, मान्यताएँ, डोमर का समीकरण, हैरॉड डोमर के मॉडलों का सारांश, हैरॉड डोमर मॉडलों के विश्लेषण की तुलना, हैरॉड डोमर के मॉडलों का अल्प-विकसित राष्ट्रों में उपयोग, हैरॉड डोमर मॉडल की आलोचना]

शुम्पीटर का आर्थिक प्रगति का सिद्धान्त

जोसेफ शुम्पीटर का अध्ययन करने के साथ हम बीसवीं शताब्दी के अर्थशास्त्रियों पर आ जाते हैं। शुम्पीटर का आर्थिक विकास का सिद्धान्त उनकी पुस्तक *Theory of Economic Development* में सन् १९११ में जर्मन भाषा में प्रकाशित हुआ। शुम्पीटर इसके बाद भी पूँजीवादी विकास का विश्लेषण करता रहा और सन् १९३९ में उसकी पुस्तक, *Business Cycles* प्रकाशित हुई जिसमें उसने विकास के सम्बन्ध में पूर्ण विचार प्रस्तुत किए।

यद्यपि शुम्पीटर के आर्थिक विकास-सम्बन्धी विचारों पर मार्क्स के विचारों का प्रभाव काफी पड़ा, परन्तु वह साम्यवाद से घृणा करता था। शुम्पीटर की मार्क्स की आर्थिक क्रियाओं से सम्बद्ध गतिशील विचारों के साथ सहानुभूति अवश्य थी परन्तु वह मार्क्स द्वारा किए गए आर्थिक क्रियाओं के विश्लेषण से सहमत नहीं था। वह समूहवाद (Collectivism) को पसन्द नहीं करता था और मार्क्स के आदर्शों के विरुद्ध था परन्तु वह पूँजीवाद की सराहना करते हुए भी प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों एवं मार्क्स के इन विचारों से सहमत था कि पूँजीवाद अन्ततः स्थिर अवस्था को प्राप्त होता है और उसका पतन हो जाता है। उसके विचार में पूँजीवाद का पतन उसकी असफलताओं के कारण नहीं वरन् उसकी सफलताओं के फलस्वरूप होता है।

पूँजीवाद जब अपनी सफलता की चरम सीमा पर पहुँच जाता है तो ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जो पूँजीवाद की सम्पन्नता के अनुकूल नहीं होती हैं। शुम्पीटर के आर्थिक विकास सम्बन्धी विचारों के मुख्य तत्वों का विश्लेषण निम्न प्रकार किया जा सकता है—

(१) आर्थिक विकास असमन्वित उच्चावचनों के अन्तर्गत होता है—शुम्पीटर के विचार में राष्ट्रीय उत्पादन में महत्वपूर्ण वृद्धि उच्चावचनों के अन्तर्गत बिल्कुल नवीन क्षेत्रों में होने वाले विनियोजन द्वारा होता है। आर्थिक प्रगति के साथ सम्पन्नता एवं मन्दीकाल प्राय एक के बाद दूसरे उदय होते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में रेल एवं सड़कों के अभूतपूर्व विकास एवं बीसवीं शताब्दी के विद्युत् शक्ति एवं स्वतः सचालित होने वाले यन्त्रों के विस्तार से आर्थिक क्रियाओं में विस्फोट हुआ और आर्थिक प्रगति तीव्र गति से हुई। शुम्पीटर के विचार में पूँजीवादी राष्ट्रों के इस प्रकार के विकास का अत्यधिक महत्व है।

(२) साहसी विकास का केन्द्रबिन्दु होता है—शुम्पीटर के विकास प्रक्रिया के विश्लेषण में साहसी को केन्द्रबिन्दु माना गया है। साहसी उत्पादनों के विभिन्न घटकों के नवीन सम्मिश्रणों का उपयोग करता है और नवप्रवर्तनों (Innovation) का शोषण अथवा व्यापारिक उपयोग करने के लिए नवीन फर्मों की स्थापना करता है। शुम्पीटर के विचार में साहसी कोई प्रबन्धक आविष्कारक अथवा पूँजीपति नहीं होता। प्रबन्धक वह व्यक्ति होता है जो उत्पादन का वर्तमान तकनीकियों के अन्तर्गत निर्देशन करता है जबकि साहसी बिल्कुल नवीन तकनीकी का उपयोग प्रारम्भ करता है। दूसरी ओर आविष्कारक नवीन तकनीकों का आविष्कार करता है परन्तु उनका आर्थिक उपयोग साहसी द्वारा ही किया जाता है। साहसी स्वयं आविष्कारक हो सकता है परन्तु उसका आविष्कारक होना अनिवार्य नहीं है। इसी प्रकार पूँजीपति अपना धन लगाकर लाभ हानि की जोखिम उठाता है जबकि साहसी धन के उपयोग को निर्देशित करता है। साहसी पूँजीपति हो सकता है परन्तु साहसी होने के लिए पूँजीपति होना आवश्यक नहीं होता है। इस प्रकार साहसी वह व्यक्ति होता है जो नवप्रवर्तनों का आर्थिक उपयोग करने हेतु नवीन व्यापारिक संस्थाओं की स्थापना करता और उत्पादन के समस्त घटकों की व्यवस्था करता है। शुम्पीटर द्वारा आर्थिक विकास की प्रक्रिया में अनियमित उच्चावचनों एवं अनिश्चितताओं को अधिक महत्व देने के कारण साहसी का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उच्चावचनों एवं अनिश्चितताओं के अन्तर्गत विनियोजन सम्बन्धी निर्णय विवेकपूर्ण गणनाओं द्वारा नहीं हो सकते जिसके फलस्वरूप जोखिम का परिमाण अत्यधिक होता है। इस जोखिम का वहन शुम्पीटर द्वारा परिभाषित साहसी वर्ग ही कर सकता है न कि साधारण व्यापारी पूँजीपति अथवा प्रबन्धक।

शुम्पीटर का साहसी विशिष्ट योग्यता प्राप्त एवं उत्साही व्यक्ति होता है जो लाभप्रद अवसरों की खोज करके उनका शोषण करता है। शुम्पीटर के अनुसार, यह साहसी जोखिमपूर्ण व्यवसायों की स्थापना अपना लाभ बढ़ाकर अपने जीवन-स्तर का सुधारने के लिए ही नहीं करता है बल्कि उस अपने प्रतिस्पर्धियों पर विजय प्राप्त करने, वंश की सम्पत्ति बढ़ाने तथा नवीन निर्माण करने की तीव्र इच्छा होती है और इन इच्छाओं की पूर्ति के लिए नवप्रवर्तनों का आर्थिक उपयोग अधिक जोखिम होने हुए भी करता है। शुम्पीटर के अनुसार यह नवप्रवर्तन पाँच प्रकार के हो सकते हैं— (अ) किसी नवीन वस्तु का उत्पादन (आ) उत्पादन की नवीन तकनीक का उपयोग, (इ) नए बाजारों की उपलब्धि (ई) कच्चे माल के नवीन स्रोतों की उपलब्धि, (उ) उद्योगों के संगठन में मूलभूत परिवर्तन।

(३) विकास विनियोजन बैंक साख से प्राप्त होता है—शुम्पीटर के विचार में साहसी अपनी परियोजनाओं के लिए धन, अपने उपभोग को कम करके अपनी आय में से बचत करके प्राप्त नहीं करता है बल्कि वह विनियोजन हेतु आवश्यक धन बैंक-साख द्वारा प्राप्त करता है अर्थात् वह विनियोजन के लिए बैंक से ऋण प्राप्त करता है। शुम्पीटर का यह विचार प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के इस विचार से बिल्कुल भिन्न है कि विनियोजन के लिए पूँजीपति को अपना उपभोग कम करके बचत करना आवश्यक होता है। साहसी द्वारा जब बैंक से ऋण लेकर नवप्रवर्तनों का व्यापारिक उपयोग पूर्ण रोजगार की स्थिति में किया जाता है तो उत्पादन के घटकों के मूल्यों में वृद्धि हो जाती है। यदि यह घटक पहले उपयोग वस्तुओं के उत्पादन में उपयोग होते हों और साहसियों की आर्थिक गतिविधि के कारण उपभोक्ता उद्योगों से उत्पादन घटक विनियोजन-वस्तुओं के उद्योग में लाए जाते हों तो उपभोक्ता उद्योगों में उत्पादन कम हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप अर्थ-व्यवस्था को उपभोग के लिए कम वस्तुएँ एवं सेवाएँ उपलब्ध होती हैं और विवशतापूर्ण बचत (Forced Savings) की जाती है। इस प्रकार यह विवशतापूर्ण बचत शुम्पीटर के विचार में पूँजी निर्माण का महत्वपूर्ण साधन है। शुम्पीटर के विचार में साख प्रसार से उत्पन्न होने वाले पूँजी-निर्माण से मूल्य स्तर में जब तक इतनी वृद्धि होती है कि साहसियों को उत्पादन के साधन प्राप्त करने में कठिनाई हो, साहसी-गण अपनी परियोजनाओं को पूरा कर लेते हैं और बैंकों के ऋण का शोधन करने लगते हैं क्योंकि उन्हें अपनी परियोजनाओं से लाभ प्राप्त होना प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार मुद्रा स्फीति के दोष शुम्पीटर ग्रहण नहीं कर पाते हैं परन्तु इस समस्त प्रक्रिया से वास्तविक विनियोजन में असाधारण वृद्धि होती है।

(४) विकास प्रक्रिया में उपभोक्ता के प्रभुत्व का कम महत्व होता है—शुम्पीटर के विचार में उपभोक्ताओं की उपभोग रुचि में परिवर्तन उत्पादकों द्वारा उत्पादन में परिवर्तन करने के फलस्वरूप होते हैं। उपभोक्ताओं द्वारा कभी-कभी अपनी प्राथमिकताओं को व्यक्त किया जाता है और उसके अनुसार उत्पादन में परि-

चलन में लिए जाते हैं परन्तु इस प्रकार के परिवर्तन परिमाण में बहुत कम होते हैं और इनका आर्थिक विकास की प्रक्रिया में कोई विशेष महत्व नहीं होता है। शुम्पीटर के अनुसार साहसी की क्रियाओं का पूरा चक्र इस बात पर आधारित है कि नवीन साहसी अथवा उत्पादक उत्पादन प्रारम्भ करता है और उपभोक्ता उसे स्वीकार कर लेता है। यदि उपभोक्ताओं की इच्छाओं द्वारा उत्पादन का प्रकार निर्धारित होता हो तो केवल वर्तमान उत्पादन के उत्पादन में वृद्धि सम्भव होगी और नवप्रवर्तनों का आर्थिक उपयोग नहीं हो सकेगा।

(५) नवप्रवर्तन बड़े समूह अथवा बड़े झुण्ड के रूप में उदय होते हैं—कुछ साहसियों द्वारा नवीन उत्पादन का उत्पादन कर साख द्वारा जब प्रारम्भ कर दिया जाता है और जब उन्हें अपनी परियोजनाओं से लाभ प्राप्त होने लगता है तो अन्य साहसी भी नवप्रवर्तनों का आर्थिक उपयोग करने लगते हैं और इस प्रकार नवप्रवर्तनों का झुण्ड का झुण्ड क्रियाशील हो जाता है जिससे आर्थिक प्रगति असाधारण गति से होती है।

(६) शुम्पीटर द्वारा प्रतिपादित आर्थिक प्रक्रिया—शुम्पीटर द्वारा आर्थिक प्रक्रिया का प्रारम्भ ऐसी अवस्था से किया गया है जिसमें अर्थ व्यवस्था में पूर्ण प्रतिस्पर्धा के अन्तर्गत स्थिर अवस्था है अर्थात् न तो विनियोजन में वृद्धि हो रही है और न ही जनसंख्या बढ़ रही है। साथ ही पूर्ण रोजगार की अवस्था विद्यमान है परन्तु उत्पादन के घटकों के नवीन सम्मिश्रण के अवसर उपलब्ध हैं जिनका साहसी शोषण करता है और आवश्यक क्रय साधन बैंक-साख द्वारा प्राप्त करता है। साहसी की इस क्रिया से आर्थिक विकास का गोलाकार प्रवाह (Circular Flow) प्रारम्भ हो जाता है। कुछ साहसियों द्वारा इस प्रकार नवीन व्यवसाय प्रारम्भ कर दिये जाने से साहसियों के झुण्ड के झुण्ड साहसिक क्रियाएँ प्रारम्भ कर देते हैं। आर्थिक क्रियाओं में गतिशीलता आ जाने से मूल्य एवं मौद्रिक आय में वृद्धि होती है। साहसी द्वारा नवीन प्रकार के व्यवसायों में विनियोजन करने से उत्पादन घटक उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों से विनियोजन वस्तुओं के उद्योगों में हस्तान्तरित हो जाते हैं क्योंकि बैंक साख में वृद्धि होने से मूल्यों में वृद्धि होती है और जनसाधारण अपनी क्रय शक्ति से कम उपभोक्ता वस्तुएँ क्रय कर पाता है। इस प्रकार विवशतापूर्ण बचत उत्पन्न होती है।

इस परिस्थिति के पश्चात् आर्थिक प्रगति में द्वितीय लहर प्रारम्भ होती है जिसमें पुरानी फर्में अपने उत्पादन में वृद्धि करती हैं क्योंकि अब उपभोग व्यय आय में वृद्धि के साथ बढ़ने लगता है। व्यापारी वर्ग मूल्य में निरन्तर वृद्धि की सम्भावना करता है जिसके फलस्वरूप परिकाल्पनिक व्यापार (Speculative Business) में वृद्धि होती है। अब बैंक केवल नवप्रवर्तन सम्बन्धी आर्थिक क्रियाओं के लिए ऋण प्रदान नहीं करते वरन् वर्तमान विधियों के अन्तर्गत उत्पादन बढ़ाने के लिए भी ऋण देने लगते हैं। इस प्रकार विनियोजन में और वृद्धि हो जाती है।

जब आविष्कार्य आर्थिक परियोजनाएँ पूर्ण हो जाती हैं तो 'सृजनात्मक विनाश' (Creative Destruction) प्रारम्भ होता है। पुरानी फर्में अपने पुराने उत्पादों को नवीन वस्तुओं एवं नवीन फर्मों की प्रतिस्पर्धा में बाजार में बेचने में असमर्थ हो जाती हैं। इस परिस्थिति में पुरानी फर्में दिवालिया हो जाती हैं और उनमें से कुछ नवीन उत्पादों को अपना लेती हैं। इस प्रकार अर्थव्यवस्था में यह दुखद समायोजन स्थापित होता है।

(७) साहसिक क्रियाओं एवं विकास में गिरावट—जब साहसियों द्वारा संचालित परियोजनाएँ सम्पूर्ण हो जाती हैं और उनसे लाभ प्राप्त होने लगता है तो बैंकों के ऋण का शोधन किया जाता है जिससे मुद्रा संकुचन (Deflation) की परिस्थितियों का प्रादुर्भाव होता है क्योंकि नवीन उत्पादों एवं नवीन परिस्थितियों में उत्पादित पुरानी वस्तुओं के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि होने के कारण अर्थ-व्यवस्था में असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसमें साहसियों का लागत एवं लाभ का सन्तोषजनक अनुमान लगाना सम्भव नहीं होता है। ऋणों के शोधन द्वारा जमा राशियाँ कम हो जाती हैं और मुद्रा की पूर्ति घटने लगती है। बाजार में वस्तुओं की पूर्ति अधिक और उनका क्रय करने के लिए मुद्रा की पूर्ति कम रहती है जिससे मूल्यों में असाधारण गिरावट आ जाती है। कुल लाभ कम हो जाता है और व्यापारिक फर्में बन्द होने लगती हैं। निराशा की भावना का विस्तार होता है और साहसिक क्रियाएँ एवं नवप्रवर्तन तेजी से घटने लगते हैं और मन्दीकाल का प्रारम्भ हो जाता है। इस परिस्थिति में फिर नवीन समायोजन होते हैं और कुछ समय पश्चात् ही पुनःप्राप्ति (Recovery) का वातावरण उदय होने लगता है।

शुम्पीटर यह मानता है कि सैद्धान्तिक रूप से यह सम्भव माना जा सकता है कि इस मन्दी के पश्चात् अर्थ-व्यवस्था में स्वतः पुनःप्राप्ति न हो परन्तु सामान्यतः ऐसा नहीं होता है और कुछ ही समय में मन्दीकाल की परिस्थितियों में नवीन सन्तुलन एवं पूर्ण रोजगार फिर स्थापित हो जाता है। कमजोर व्यवसायों के बन्द हो जाने के बाद जब नवीन सन्तुलन स्थापित हो जाता है तो नवप्रवर्तन की नयी लहर प्रारम्भ हो जाती है और व्यापार फिर से दोहराने लगता है।

शुम्पीटर मार्क्स एवं रिकार्डो के इन विचारों से सहमत नहीं है कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया में आय के वितरण का संघर्ष उदय होना आवश्यक नहीं है क्योंकि विकास के साथ सभी वर्गों की आय में वृद्धि होती है जिसमें श्रम को सबसे अधिक लाभ प्राप्त होता है क्योंकि नवप्रवर्तनों के द्वारा पूँजीवादी व्यवस्था में उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है। शुम्पीटर का यह भी विचार है कि उसके द्वारा निर्धारित विकास प्रक्रिया का प्रारम्भ स्थिर अवस्था एवं सन्तुलन के आस पास होना आवश्यक नहीं है। अन्य किसी परिस्थिति में भी शुम्पीटर द्वारा निर्धारित विकास प्रक्रिया प्रारम्भ होने में प्रक्रिया के लक्षणों में कोई विशेष अन्तर नहीं आता है।

शुम्पीटर के विकास प्रक्रिया-सम्बन्धी विचारों का मूल्यांकन

शुम्पीटर द्वारा प्रतिपादित पूँजीवादी विकास की प्रक्रिया को प्राचीन अर्थशास्त्रियों एवं मार्क्स द्वारा प्रतिपादित प्रक्रियाओं पर एक सुधार कहा जा सकता है। शुम्पीटर के विचार पूँजीवादी राष्ट्रों के अठारहवीं एवं उन्नीसवीं शताब्दी के आर्थिक विकास के इतिहास पर आधारित हैं। शुम्पीटर के विचारों की आलोचना निम्नलिखित आधारों पर की जाती है—

(अ) शुम्पीटर ने साहसिक नवप्रवर्तन को पूँजीवादी विकास का केन्द्रबिन्दु बनाया है। यह विचार अठारहवीं एवं उन्नीसवीं शताब्दी के पूँजीवादी विकास पर ठीक उतरते हैं क्योंकि इन शताब्दियों में अधिकतर नवप्रवर्तन क्रियाएँ या तो आविष्कारकों द्वारा की जाती थीं अथवा साहसी द्वारा आविष्कारों को क्रय करके की जाती थी परन्तु वर्तमान काल में आविष्कार एवं नवप्रवर्तन क्रियाएँ प्रायः बड़ी बड़ी सम्मिलित संस्थाओं (Corporate Bodies) द्वारा अपने सामान्य कार्यक्रमों के अन्तर्गत की जाती हैं। इन क्रियाओं में साहसी अथवा आविष्कारक के नाम को कोई महत्व नहीं दिया जाता है। इस प्रकार आधुनिक युग में पूँजीवादी साहसिक क्रियाओं का स्वरूप शुम्पीटर द्वारा दी गयी साहसिक क्रियाओं के स्वरूप से सर्वथा भिन्न है। सम्मिलित संस्थाओं द्वारा संचालित बड़े व्यापारों में नवप्रवर्तन बहुत से व्यक्तियों द्वारा सामूहिक रूप में किया जाता है और इन व्यक्तियों में भी परिवर्तन होता रहता है। वर्तमान काल में साहसिक क्रियाएँ सामान्य व्यावसायिक क्रियाओं का ही एक भाग समझी जाती हैं। इसके अतिरिक्त पिछली दो शताब्दियों के नवप्रवर्तनों, जैसे स्टीम इंजिन, विद्युत मोटर आदि ने अर्थ व्यवस्थाओं में उथल पुथल कर दी थी। वह आधुनिक आविष्कारों द्वारा नहीं होता है क्योंकि अर्थ व्यवस्थाएँ इतनी जटिल (Complex) अवस्थाओं में पहुँच गयी हैं कि नये आविष्कारों द्वारा इनमें कोई मूलभूत परिवर्तन सम्भव नहीं होता है। बड़े व्यवसायों को वर्तमान काल में यह सम्भव है कि वे बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार अपने आपको समायोजित कर सकें। इस प्रकार नवप्रवर्तन द्वारा शुम्पीटर ने जिस आकस्मिक प्रस्फुरण (Shock Treatment) का विचार किया है, वह आज के युग में सम्भव नहीं है। वास्तव में शुम्पीटर ने भी अपने विकास सिद्धान्त में यह बात स्पष्ट की है कि पूँजीवादी विकास के चरम सीमा पर पहुँच जाने पर ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिसमें साहसिक क्रियाएँ अप्रचलित हो जाती हैं और विकास में गिरावट आ जाती है।

(आ) शुम्पीटर ने अपने विकास सिद्धान्त में नवप्रवर्तनों के लिए वित्तीय साधन बैंक साख द्वारा प्राप्त करने की मान्यता प्रतिपादित की है परन्तु विभिन्न पूँजीवादी राष्ट्रों के आर्थिक विकास के ऐतिहासिक अवलोकन से प्रतीत होता है कि बैंकों द्वारा केवल अल्पकालीन ऋण प्रदान किए जाते हैं और नवप्रवर्तन के पूँजीगत प्रसाधनों के लिए वित्त संचित कोषों एवं प्रतिभूतियों का निर्गमन करके प्राप्त किया जाता है।

केवल जर्मनी के औद्योगीकरण में बैंकों द्वारा पूँजी वित्त प्रदान किया गया था। वास्तव में शुम्पीटर ने मुद्रा प्रसार द्वारा विकास वित्त प्राप्ति की आवश्यकता में अधिक महत्व प्रदान किया गया है जो व्यावहारिक परिस्थितियों में पूर्ण रोजगार प्राप्त अवस्था में सम्भव नहीं होता है।

(ड) शुम्पीटर ने साहसी को आर्थिक मामलों में अनन्त इकाई रूप परिस्थितियों के अनुसार समायोजन करने वाला व्यक्ति समझा है जो सभी समस्याओं का निवारण करने की क्षमता रखता है परन्तु शुम्पीटर के विचार में वह साहसी राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में दुर्बल एवं अनिपुण होता है। वह राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप अपनी क्रियाओं में समायोजन करने के योग्य नहीं होता है। इसके अनुसार, बुर्जुआ वर्ग प्रजातन्त्रीय ढंग से शासन भी नहीं कर सकता है। पूँजीवादी विकास के अन्तर्गत विवेक का विस्तार होता है और जनसाधारण के विवेक में सुधार होने से असन्तुष्ट बुद्धिजीवी-वर्ग श्रमिक वर्ग का नेतृत्व करता है जिससे समाजवाद का मार्ग प्रशस्त होता है। इस प्रकार शुम्पीटर के विचार में पूँजीवादी विकास की अन्ततः मृत्यु होना अवश्यम्भावी है और समाजवाद का प्रादुर्भाव होना एक अनिवार्य तथ्य है परन्तु शुम्पीटर अपने इस विचार की पुष्टि करने में असमर्थ रहा है। उसने स्पष्ट स्वीकार किया है कि समाजवाद के उदय होने के सूक्ष्म तरीके के सम्बन्ध में हम कुछ भी नहीं जानते सिवाय इसके कि धीरे धीरे बढ़ती हुई नौकरशाही से लेकर अचानक राजनीतिक क्रान्ति द्वारा समाजवाद के उदय होने की बहुत अधिक सम्भावनाएँ हैं। यद्यपि शुम्पीटर यह स्पष्ट रूप से सिद्ध करने में असमर्थ रहा है कि पूँजीवाद का अन्त समाजवाद को उदित कर देगा फिर भी, यह बात सत्य है कि पूँजीवाद में निरन्तर परिवर्तन होते रहना अत्यन्त स्वाभाविक है।

(ढ) शुम्पीटर का यह विचार कि नवप्रवर्तन का झुंड का झुंड (Swarm like) एक साथ उदय होता है व्यावहारिक प्रतीत नहीं होता है। विकास की प्रारम्भिक अवस्था में नवप्रवर्तनों का बड़ी मात्रा में उदय होना आविष्कारों एवं तान्त्रिक सुधारों पर निर्भर रहता है। इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट नहीं है कि एक नवप्रवर्तन की सफलता से अन्य नवप्रवर्तनों के विकास पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है।

(ण) शुम्पीटर के अनुसार अठारहवीं एवं उन्नीसवीं शताब्दी के विकास का श्रेय केवल नवप्रवर्तन को ही है परन्तु यह विचार ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा करता है। इन दो शताब्दियों के औद्योगिक विकास में नवप्रवर्तन के अतिरिक्त अन्य बहुत से आर्थिक एवं सामाजिक घटकों का योगदान भी रहा है।

(त) शुम्पीटर ने इस बात का स्पष्टीकरण नहीं किया है कि नवप्रवर्तन की क्रिया व्यापार चक्र के प्रारम्भ में ही क्यों उभर उठती है। व्यापार-चक्र ३ से ६, अथवा ५० से ६० वर्ष का होता है। शुम्पीटर के मतानुसार, नवप्रवर्तन की क्रिया का विस्तार व्यापार चक्र के इन कालों के प्रारम्भ में होता है। शुम्पीटर ने इसके कारणों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा है।

विकास-सम्बन्धी आधुनिक विचारधाराएँ

द्वितीय महायुद्ध के बाद से आर्थिक विकास की ओर लगभग समस्त राष्ट्रों के अर्थशास्त्रियों द्वारा अधिक ध्यान दिया जाने लगा है और अब यह सर्वमान्य तथ्य हो गया है कि मानव एवं भौतिक साधनों का पूर्णतम उपयोग करने हेतु आर्थिक प्रगति अनिवार्य है। इस विचार को सुदृढ़ बनाने में कीन्स का सामान्य सिद्धान्त विशेष रूप से सहायक हुआ है। कीन्स द्वारा माँग, रोजगार एवं आय से सम्बन्धित सामूहिक समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित किया गया और कीन्स की विचारधाराओं के आधार पर आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने विकास माडल तैयार किए हैं। कीन्स के विश्लेषण का आधार स्थिर सन्तुलन (Static Equilibrium) है और उन्होंने श्रम की पूर्ति, पूँजीगत प्रसाधन, तान्त्रिकताओं का स्तर, प्रतिस्पर्धा का परिमाण एवं उपभोग स्तर को स्थिर मानकर उत्पादन, रोजगार, बचत एवं विनियोजन से सम्बन्धित समस्याओं का विश्लेषण किया है। कीन्स द्वारा अर्थव्यवस्था की जो संरचना प्रतिपादित की गयी है वह अल्पकालीन असन्तुलनों को दूर करने से सम्बन्धित है।

यद्यपि कीन्स के विश्लेषण का स्वरूप स्थिर है परन्तु इसके द्वारा गतिशील समस्याओं के विश्लेषण के लिए आवश्यक आर्थिक औजार उपलब्ध हुए हैं। कीन्स की गुणक एवं गतिवर्द्धक (Multiplier and Accelerator) विचारधाराओं को आधुनिक विकास माडल का मूलाधार समझा जाता है। इन माडलों में कीन्स के विचार कि अद्ध रोजगार सन्तुलन के अन्तर्गत बचत एवं विनियोजन के बराबर रहने की सम्भावना होती है का उपयोग बचत एवं विनियोजन से आय पर पड़ने वाले प्रभावों का अनुमान लगाने के लिए किया गया है। कीन्स द्वारा बचत को माँग घटाने वाला घटक समझा गया है जबकि आधुनिक अर्थशास्त्रियों द्वारा बचत को पूँजीगत साधनों एवं विनियोजन वृद्धि का साधन भी समझा जाता है।

कीन्स के बाद के अर्थशास्त्रियों द्वारा दीर्घकालीन उत्पादन एवं रोजगार-वृद्धि के सिद्धान्त उसी आधार पर बनाये गये हैं जो कीन्स द्वारा अल्पकालीन उत्पादन एवं रोजगार वृद्धि के लिए अपनाये गये थे। आर्थिक विकास के आधुनिक मॉडलों में दो महत्वपूर्ण बातों का विश्लेषण किया गया है—(१) मुद्रा-स्फीति अथवा विस्फीति के बिना पूर्ण रोजगार आय में द्रुत प्रगति प्राप्त करने के लिए किन किन तत्वों की आवश्यकता होती है (२) क्या आय की प्रगति की दर इतनी अधिक हो सकती है कि दीर्घकालीन स्थिरता अथवा दीर्घकालीन मुद्रा-स्फीति को प्रतिबन्धित किया जा सकता है।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्तों में स्थिर परिस्थितियों की उपस्थिति को आधार माना गया है और व्यक्तिगत आर्थिक क्रियाओं के विश्लेषण द्वारा आर्थिक प्रगति की प्रक्रिया का स्वरूप निर्धारित किया गया है परन्तु आर्थिक परिस्थितियाँ सदैव परिवर्तनशील होती हैं और इनका अध्ययन करने के लिए इनकी गतिशीलता को ध्यान में रखना अनिवार्य है। इसी कारण आधुनिक युग में गतिशील आर्थिक

सिद्धान्तों को अधिक मान्यता दी जाती है। ऐसे आर्थिक सिद्धान्त, जो आर्थिक परिवर्तनों का स्पष्टीकरण करते हुए इन परिवर्तनों के प्रभावों, इनके उदय होने के कारणों तथा इन परिवर्तनों की प्रविधि एवं उनसे प्रभावित होने वाली अन्य गतिविधियों का अध्ययन करते हैं, गतिशील अर्थशास्त्र (Dynamic Economics) कहलाते हैं। गतिशील अर्थशास्त्र के अन्तर्गत ऐसे परिवर्तन जो एक बार होकर समाप्त हो जाते हैं, का अध्ययन महत्वपूर्ण नहीं होता है। जब एक परिवर्तन से विभिन्न अन्य परिवर्तन होते हैं और यह अनिरन्तर क्रम चलता ही रहता है तो वह गतिशील अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री होती है। इसी कारण गतिशील अर्थशास्त्र में उत्पादन की दर से सम्बन्ध नहीं होता है बल्कि उत्पादन की दर में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है।

हैरोड का विकास-मॉडल

हैरोड ने गतिशील अर्थशास्त्र का सन् १९३९ में एक नया मार्ग दिया जब उनका लेख 'An Essay in Dynamic Theory' का प्रकाशन जिल्द में 'Economic Journal' में हुआ। हैरोड ने इसी विषय पर लन्दन विश्वविद्यालय में सन् १९४७ में एक भाषण माला भी दी जो सन् १९४८ में 'Towards A Dynamic Theory' के शीर्षक से प्रकाशित हुई। इन भाषणों में तीसरे भाषण का शीर्षक 'Fundamental Dynamic Theorems' था। इसी भाषण में हैरोड के विकास-मॉडल का प्रारम्भ किया गया है। हैरोड के विकास-मॉडल में हैरोड द्वारा निम्न मान्यताएँ दी गयी हैं—

मान्यताएँ

(१) हैरोड ने यह माना है कि आय खर्च करने वाले अपनी आय का निश्चित अनुपात बचाते हैं और शेष निश्चित अनुपात खर्च करते हैं। इस प्रकार किसी निश्चित काल की बचत उस काल की आय से स्थिर सम्बन्ध रखती है। हैरोड यह भी मानता है कि जब कोई व्यक्ति बचाने का निश्चय करता है तो वह अपने निर्णयानुसार आय का निश्चित अनुपात अपने रहन-सहन में हेर-फेर करके भी बचाता है अर्थात् आय खर्च करने वालों की वास्तविक एवं इच्छित (intended) बचत बराबर होती है।

(२) उत्पादक भी अपनी बढ़ी हुई आय का निश्चित अनुपात विनियोजित करता है। उत्पादक भी वास्तविक निश्चय करने से पहले बढ़ी हुई आय के निश्चित अनुपात को विनियोजित करने का इरादा करता है। उसका विनियोजन का इरादा तुरन्त पहले वाले काल की आय की तुलना में वर्तमान काल की आय की वृद्धि पर निर्धारित होता है अर्थात् उत्पादक विनियोजन का निश्चय करने एवं वास्तविक विनियोजन करने की क्रिया आय की वृद्धि के साथ-साथ ही करता चलता है और इस कार्य में किसी समय का अन्तर नहीं होता है।

(३) हैरोड की यह भी मान्यता है कि उत्पादक सन्तुलन की स्थिति में होते हैं। उत्पादक अथवा विनियोजक तब ही सन्तुलन की स्थिति में हो सकते हैं जब

आर्थिक घटनाएं उनके अनुमानानुसार घटित होती हैं अर्थात उनके द्वारा इच्छित किए गए विनियोजन जब वास्तविक विनियोजन के बिल्कुल बराबर होते हैं तो विनियोजक सन्तुलन की स्थिति में होते हैं।

(४) किसी समाज का कुल पूंजी का स्टाक उस समाज के कुल उत्पादन का निश्चित अनुपात होता है और जब उत्पादन अथवा आय में वृद्धि होती है तो पूंजी स्टाक में भी वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार जितना अधिक उत्पादन होगा उतनी ही अधिक पूंजी की आवश्यकता होगी और जितना तीव्र गति से उत्पादन में वृद्धि होगा, उसी के अनुसार विनियोजन अथवा पूंजी की मांग में भी वृद्धि होगी। संक्षेप में विनियोजन दर उत्पादन वृद्धि की दर पर निर्भर रहती है।

(५) हैरोड अपने विकास मॉडल का प्रारम्भ ऐसी अवस्था से करता है जब पूर्ण रोजगार स्तर पर आय प्राप्त की जाती है।

(६) अर्थ व्यवस्था पर विदेशी व्यापार का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(७) अर्थ व्यवस्था में देश की सरकार द्वारा कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाता है।

हैरोड के मॉडल में पूंजी सचयन को सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक समझा गया है क्योंकि विनियोजन जहां एक ओर आय में वृद्धि करता है वहीं उत्पादनक्षमता में भी वृद्धि करता है। यदि पूंजी सचयन होने पर वास्तविक आय में परिवर्तन नहीं होता है तो यह परिस्थिति इस बात का द्योतक होता है कि नवीन पूंजी का या तो उत्पादक उपयोग नहीं किया गया या नयी पूंजी द्वारा पुरानी पूंजी का प्रतिस्थापन कर दिया गया है अथवा नयी पूंजी को श्रम के प्रतिस्थापन करने के लिए उपयोग कर लिया गया है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि पूंजी सचयन द्वारा उत्पादन क्षमता में वृद्धि होने पर ही आय में वृद्धि होती है। यदि पूंजी सचयन एवं उत्पादन क्षमता में वृद्धि होने पर भी आय में वृद्धि न हो तो पूंजी एवं श्रम दोनों का ही कुछ भाग बेरोजगार रहेगा।

हैरोड के अनुसार वास्तविक बचत वास्तविक विनियोजन के बराबर होती है और यह दोनों आय का निश्चित अनुपात होते हैं। जब आय में वृद्धि होती है तब ही बचत एवं विनियोजन में वृद्धि हो सकती है। साहसी उसी समय अपने विनियोजन से सन्तुष्ट रहता है जब उसे विनियोजन वृद्धि के अनुरूप आय वृद्धि प्राप्त होती है। यदि आय में वृद्धि की दर अधिक ऊंची होती हैं तो साहसी को अपने वर्तमान विनियोजन इच्छित विनियोजन से कम प्रतीत होते हैं और इसके विपरीत जब आय में वृद्धि की दर कम होता है तो विनियोजन अपने वर्तमान वास्तविक विनियोजन की आवश्यकता से अधिक समझता है। इन दोनों परिस्थितियों के बीच की स्थिति अर्थात जब आय की वृद्धि की दर इतनी होती है कि साहसी अपने वर्तमान विनियोजन से ही सन्तुष्ट रहता है तो इस आय वृद्धि की दर को इच्छित प्रगति की दर

(Warranted Rate of Growth) कहते हैं। विनियोजन आय का निश्चित अनुपात होने के कारण आय की प्रत्येक वृद्धि में विनियोजन एवं आय दोनों ही आगे काल में अधिक हो जाते हैं। यदि विनियोजक इस अधिक विनियोजन को वांछनीय मान लेंगे तो आय में और अधिक गति से वृद्धि होगी। इस प्रकार आय की वृद्धि एवं तदानुसार विनियोजन में वृद्धि की क्रिया चलती रहेगी और विनियोजन एवं आय एक-दूसरे के अनुरूप होने के लिए प्रयत्नशील रहेंगे।

दूसरी ओर यदि आय में गिरावट आ जाय तो विनियोजन भी कम हो जाता है और जब विनियोजक इस कम विनियोजन से सन्तुष्ट हो जाते हैं तो आय में और कमी आ जाती है। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि आय विनियोजन तथा व्यवहार के स्थिर सम्बन्ध होने पर उत्पादन में वृद्धि होने में विनियोजन में वृद्धि होना आवश्यक होगा क्योंकि विनियोजन की मांग में वृद्धि हो जायगी तथा उत्पादन में कमी होने पर विनियोजन की मांग कम हो जाती है जिसमें आय में और कमी हो जायगी।

हैरोड का विकास-समीकरण

उपर्युक्त व्यवस्था को हैरोड द्वारा निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया गया है—

$$GC=S$$

G = आय अथवा उत्पादन की वृद्धि की वास्तविक दर जो किसी निश्चित काल की कुल आय अथवा उत्पादन के उस काल के उत्पादन अथवा आय-वृद्धि के अनुपात में व्यक्त की जाती है अर्थात $G=\frac{\Delta Y}{Y}=\frac{\text{आय में वृद्धि}}{\text{कुल आय}}$

C = पूँजी में वृद्धि जो निश्चित काल में नवीन पूँजीगत वस्तुओं एवं अर्द्ध निर्मित वस्तुओं और स्टाक के रूप में संचित हुई है। यह पूँजी की वृद्धि आय की वृद्धि के अनुपात में व्यक्त की जाती है अर्थात $C=\frac{I}{\Delta Y}$ अथवा $\frac{\text{विनियोजन वृद्धि}}{\text{आय की वृद्धि}}$

S = आय का वह भाग जो बचाया जाता है। इसे आय के अनुपात में व्यक्त किया जाता है $S=\frac{S}{Y}=\frac{\text{बचत}}{\text{आय}}$ विभिन्न चिन्हों का मूल्यांकन जानने के पश्चात नवीन समीकरण इस प्रकार भी लिखा जा सकता है—

$$\frac{\Delta Y}{Y}\times\frac{I}{\Delta Y}=\frac{S}{Y}$$

$$=\frac{I}{Y}=\frac{S}{Y}$$

इस समीकरण से इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि बचत एवं विनियोजन का कुल आय से समान अनुपात होता है और बचत एवं विनियोजन बराबर रहते हैं।

हैरॉड के विकास माडल का दूसरा समीकरण निम्न प्रकार है—

$$GwC_r = S$$

Gw का अर्थ इच्छित प्रगति की दर (Warranted Rate of Growth) से लिया जाता है। यह आय की प्रगति की वह दर है जो साहसियों को सन्तुष्ट रखता है तथा बचे हुए पूँजी स्टॉक का पूर्ण उपयोग करती है। इस आय-वृद्धि की दर के लिए जो वास्तविक विनियोजन किया जाता है, उसे आगत कालों में भी बनाए रखने के लिए साहसी इच्छुक रहता है।

C_r से अर्थ आवश्यक पूँजी अथवा पूँजी गुणांक (Capital Coefficient) से लिया जाता है। पूँजी गुणांक उस पूँजी का स्टॉक है जो उस उत्पादन की प्रति इकाई के लिए आवश्यक होती है जो आय वृद्धि की इच्छित दर को निर्वाह कर सकती है। विकास की इच्छित दर की परिस्थिति में अनैच्छिक बेरोजगार हो सकता है परन्तु साहसी अपने विनियोजन सम्बन्धी निर्णयों से सन्तुष्ट रहेंगे।

जब आय वृद्धि की वास्तविक दर अर्थात G इच्छित दर (Warranted Rate) अर्थात Gw से अधिक होगी तो वास्तविक पूँजी की वृद्धि आवश्यक पूँजी अर्थात C_r से कम होगी अर्थात प्रसाधन एवं संग्रह वर्तमान उत्पादन क्रियाओं का निर्वाह करने के लिए पर्याप्त नहीं होंगे। इस परिस्थिति के परिणामस्वरूप पूँजीगत प्रसाधनों की माँग में वृद्धि होगी जिससे आय की वृद्धि दर G में और अधिक वृद्धि होगी और फिर अधिक पूँजी अर्थात C की आवश्यकता होगी। इस प्रकार अर्थ-व्यवस्था में निरन्तर विस्तार होता रहेगा। दूसरी ओर जब आय वृद्धि की वास्तविक दर इच्छित दर से कम होगी तो वास्तविक पूँजी सचय आवश्यक पूँजी सचय से अधिक होगा और इसके फलस्वरूप पूँजीगत सामग्री की माँग कम हो जायगी जिसके परिणामस्वरूप आय की वास्तविक वृद्धि दर G में गिरावट आ जायगी और यह गिरावट फिर वास्तविक पूँजी सचयन को और कम कर देगी। इस प्रकार यह आय एवं पूँजी सचयन की गिरावट का चक्र चलता रहेगा।

अर्थ-व्यवस्था के विस्तार एवं सकुचन के यह चक्र अनिश्चित सीमाओं तक परिचालित नहीं रह सकते हैं। विस्तार की अधिकतम सीमा श्रम, प्राकृतिक साधनों, पूँजीगत प्रसाधनों तथा तकनीकी ज्ञान की उपलब्धि पर निर्भर रहेगी। यह सीमा सम्भावित प्रगति की अधिकतम सीमा होगी जो पूर्ण रोजगार की उपस्थिति में श्रम शक्ति की वृद्धि तथा तकनीकी प्रगति के अनुगमन प्राप्त हो सकेगा। समय में परिवर्तन होने पर उत्पादन के घटकों एवं तकनीकी प्रगति होने के कारण प्रगति की अधिकतम सीमा बदल सकती है। हैरॉड ने श्रम तथा प्राकृतिक साधनों की उपलब्धि एवं तकनीकी सुधारों के आधार पर निर्धारित होने वाली अधिकतम प्रगति-स्तर को प्रगति की स्वाभाविक अथवा प्राकृतिक दर (G_n = Natural Rate of Growth) कहा है। प्रगति की स्वाभाविक दर होने पर अनैच्छिक बेरोजगार नहीं होता है।

हैराड के विचार में अवसाद के कुछ वर्षों बाद वास्तविक उत्पादन वृद्धि-दर G इच्छित प्रगति-दर से Gr से दीर्घ काल तक अधिक रह सकती है परन्तु यह स्थिति अनिश्चित काल तक जारी नहीं रह सकती है। वास्तविक प्रगति-दर का विस्तार प्राकृतिक प्रगति दर तक ही हो सकता है। प्राकृतिक प्रगति दर पर पहुँच कर श्रम एवं प्राकृतिक साधनों की सीमित उपलब्धि और अधिक प्रगति को रोक देगी परन्तु अर्थ-व्यवस्था इस अधिकतम प्रगति की सीमा पर पहुँच कर स्थिर नहीं रह सकती है। उसका विस्तृत अथवा संकुचित होना अनिवार्य होता है। जब वास्तविक प्रगति-दर G प्राकृतिक प्रगति दर Gr के बराबर हो जाती है तो इच्छित प्रगति-दर Gw भी वास्तविक प्रगति दर G के बराबर हो जाती है। जब वास्तविक प्रगति दर G को अधिकतम स्तर पर बनाए रखना सम्भव नहीं होता और श्रम एवं प्राकृतिक साधनों की सीमित उपलब्धि होने के कारण इसे बढ़ाना सम्भव भी नहीं होता है तो G में गिरावट प्रारम्भ हो जाती है अर्थात् वास्तविक प्रगति-दर G इच्छित प्रगति दर Gw से कम हो जाती है और फिर अवनति की प्रवृत्ति का प्रारम्भ हो जाता है। यह अवनति का वातावरण भी अनिश्चित काल तक जारी नहीं रह सकता है। अवसाद की इस स्थिति में कार्यशील पूँजी (Circulating Capital) में कमी हो जायगी परन्तु स्थायी पूँजी (Fixed Capital) में कमी नहीं आ सकेगी क्योंकि इसकी माँग शून्य से नीचे नहीं गिर सकती है। स्थायी पूँजी का स्थिर स्तर बना रहने तथा साहसियों को वास्तविक प्राकृतिक साधनों का ज्ञान प्राप्त होने से साहसियों में विश्वास की भावना उत्पन्न होगी जिससे फिर प्रगति होने लगेगी।

इस प्रकार पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था में उच्चावचन होना स्वाभाविक है क्योंकि उसमें निहित लक्षण इन उच्चावचनों को संरक्षण प्रदान करते हैं। पूँजीवाद के अन्तर्गत आय में दृढ़ प्रगति (Steady Rise) सम्भव नहीं हो सकता है क्योंकि यदि अर्थ-व्यवस्था इच्छित प्रगति की रेखा के आस-पास ही चक्कर लगायेगी तो केवल सन्तोषप्रद ही प्रगति हो सकेगी परन्तु पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था में केन्द्र से दूर ले जाने वाली शक्तियाँ (Centrifugal Forces) काम करती हैं जो अर्थ-व्यवस्था को इच्छित विकास की रेखा-दर तक ले जाती हैं। इस स्पष्टीकरण से यह सिद्ध होता है पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्थाओं की प्रगति में चक्रीय उच्चावचन होना अत्यन्त स्वाभाविक है। पूँजीवादी विकास की प्रक्रिया इस प्रकार प्रगति की अधिकतम सीमा एवं अवसाद की अधिकतम सीमाओं में चक्कर लगाती रहती है। प्रगति की अधिकतम सीमा श्रम एवं अन्य उत्पादन के साधनों की सीमित उपलब्धि से निर्धारित होती है और अवसाद की अधिकतम सीमा उपभोग कार्य के Break Even Point (उत्पादन की वह मात्रा जो न्यूनतम उपभोग के लिए आवश्यक होती है) स्थायी विनियोजन के शून्य से कम होने की असम्भावना विनियोजन के प्रतिस्थापन तथा स्वतन्त्र विनियोजन (Autonomous investment) द्वारा निर्धारित होती है।

डोमर का मॉडल

हैरोड और डोमर के विकास माडल लगभग समान हैं। उनके द्वारा जो परिणाम निकाले गए हैं व एक समान होते हुए भी उन परिणामों तक पहुँचने के लिए, जो मार्ग अपनाए गए उनसे कुछ भिन्न हैं। यद्यपि यह भिन्नता भी अधिक गहन नहीं है। डोमर ने भी प्रगति की प्रक्रिया में पूंजी निर्माण को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। विनियोजन गतिहीन अर्थव्यवस्था को गतिमान करता है। विनियोजन के द्विपक्षीय कार्य होते हैं। एक ओर विनियोजन आय उत्पादित करता है जिससे उत्पादित वस्तुओं की माँग का निर्माण होता है और दूसरी ओर विनियोजन के द्वारा अर्थव्यवस्था के पूंजी-स्कन्ध में वृद्धि होती है जिससे उत्पादनक्षमता में वृद्धि होती है। इस प्रकार उत्पादन की प्रक्रिया के दो पक्ष हैं—प्रथम मौद्रिक पक्ष है जिसका सम्बन्ध वस्तुओं की माँग से होता है। दूसरा पक्ष वस्तुओं से सम्बद्ध है अर्थात् पूर्ति पक्ष को प्रभावित करता है। डोमर ने इन दोनों पक्षों को अपने विकास माडल में स्थान दिया है। डोमर का विकास माडल इस प्रश्न का प्रतिउत्तर प्रदान करता है कि विनियोजन वृद्धि की दर कितनी होनी चाहिए जिससे उसमें बढ़ने वाली आय उत्पादन क्षमता की वृद्धि के बराबर रखी जा सके जिससे पूर्ण रोजगार का निर्वाह हो सके। विनियोजन अर्थ-व्यवस्था की उत्पादनक्षमता एवं आय दोनों में वृद्धि करता है और उसकी उपयुक्त वृद्धि दर द्वारा ही अर्थ-व्यवस्था का पूर्ण रोजगार पर सन्तुलित किया जा सकता है। डोमर के विकास माडल की मान्यताएं (Assumptions) भी हैरोड के माडल के समान हैं अर्थात्—

मान्यताएँ

(१) प्रारम्भ में पूर्ण रोजगार आय की उपलब्धि हो गयी है।

(२) सरकारी हस्तक्षेप एवं विदेशी व्यापार नहीं हैं।

(३) समायोजन के लिए समयान्तर की आवश्यकता नहीं होती है।

(४) औसत एवं सीमान्त बचतक्षमता बराबर हैं।

(५) बचत करने की क्षमता एवं पूंजी उत्पादन अनुपात स्थिर हैं।

उपर्युक्त समस्त मान्यताओं के अनुसार आर्थिक परिस्थितियों का विद्यमान रहना अनिवार्य नहीं है। माडल का सरल विश्लेषण करने हेतु इनमें से कुछ मान्यताओं को स्वीकार किया गया है। जब मॉडल का जटिल विश्लेषण किया जाना हो तो इनमें कुछ मान्यताओं को ढीला किया जा सकता है।

डोमर के अनुसार आय वृद्धि की समस्या का निवारण उत्पादनक्षमता एवं वास्तविक उत्पादन में निरन्तर ऊंचे स्तर पर सन्तुलन स्थापित करके किया जा सकता है। विनियोजन द्वारा एक ओर उत्पादनक्षमता में वृद्धि होती है और दूसरी ओर आय में वृद्धि। उत्पादनक्षमता का अधिकतम उपयोग तब ही सम्भव होता है जब उत्पादित वस्तुओं के लिए पर्याप्त माँग हो और यह पर्याप्त माँग समाज के कुल व्यय अर्थात् उपभोग स्तर पर निर्भर रहती है। यदि समस्त माँग इतनी नहीं होगी कि अधिक

उत्पादनक्षमता द्वारा उत्पादित वस्तुओं की खपत कर सकें तो निर्मित उत्पादनक्षमता का या तो बिल्कुल उपयोग नहीं होगा अथवा उसका उपयोग पूर्णतम नहीं होगा। इस प्रकार आय वृद्धि को जारी रखने के लिए यह आवश्यक होगा कि उत्पादनक्षमता एवं वास्तविक उत्पादन बराबर रहें जो पर्याप्त माँग के परिणामस्वरूप ही सम्भव हो सकते हैं।

विनियोजन बचत पर निर्भर रहता है और बचत उपभोग अथवा माँग में कटौती करती है। इस प्रकार बचत आय-वृद्धि में सहायक एवं बाधक दोनों ही होती है। यदि बचत का उपयुक्त उपयोग होता है तो उसके द्वारा आय में वृद्धि होती है और अर्थ-व्यवस्था गतिमान हो जाती है। जो अर्थ-व्यवस्था बचत का सम्पूर्ण उपयोग कर लेती है और अतिरिक्त विनियोजन द्वारा निर्मित अतिरिक्त उत्पादनक्षमता का पूर्णतम उपयोग हो जाता है तो वह आय-वृद्धि की प्रक्रिया का लाभ उठा सकती है।

डोमर का समीकरण

डोमर द्वारा बचत एवं विनियोजन के प्रभावों को व्यक्त करने के लिए समीकरण का उपयोग किया गया है। इस समीकरण में जिन चिह्नों का उपयोग किया गया है उनका अर्थ निम्न प्रकार है—

I = विनियोजन की राशि

σ = निश्चित विनियोजन पर निर्मित होने वाली उत्पादनक्षमता जो पूँजी-उत्पादन (Capital Output Ratio) में व्यक्त की जाती है।

ΔI = विनियोजन में वृद्धि

ΔY = आय में वृद्धि

a = बचत की इच्छा (Propensity to Save) अथवा बचत का आय से अनुपात

उपर्युक्त चिह्नों का उपयोग करके विनियोजन में परिवर्तन होने पर आय में होने वाले परिवर्तनों का सम्बन्ध निम्न समीकरण में व्यक्त किया जा सकता है—

$$\Delta Y = \Delta I \times \frac{1}{a} \qquad \text{———} \quad (1)$$

यह समीकरण यह बताता है कि आय-वृद्धि विनियोजन-वृद्धि को गुणक (Multiplier) से गुणा करके प्राप्त हो सकती है।

यदि प्रारम्भिक काल में पूर्ण रोजगार सन्तुलन हो और आय-वृद्धि के साथ साथ पूर्ण-रोजगार बनाये रखना हो तो वस्तुओं की माँग पूर्ति के बराबर रखना आवश्यक होगा। उत्पादनक्षमता की वृद्धि, पूर्ति की वृद्धि और आय की वृद्धि माँग की वृद्धि के द्योतक होते हैं और पूर्ण-रोजगार सन्तुलन बनाये रखने के लिए इन दोनों वृद्धियों को बराबर रखना आवश्यक होता है। इस तथ्य को निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया जाता है।

$$\triangle I \times \frac{I}{a} = I\sigma \text{————} (2)$$

अभी हमने देखा कि (समीकरण I में) कि $\triangle I \times \frac{I}{a}$ बराबर होता है $\triangle y$ आय की वृद्धि के।

I विनियोजन की राशि का चिह्न है और σ पूंजी एवं उत्पाद का अनुपात। इन दोनों का गुणा $I\sigma$ बराबर होगा उत्पादनक्षमता की कुल वृद्धि के जो पूर्ति की वृद्धि व्यक्त करता है। समीकरण 2 स्थिर प्रगति प्रदर्शित करता है। समीकरण को सरल करने के लिए दोनों पक्षों को a से गुणा और दोनों पक्षों को I से भाग कर दें तो निम्न समीकरण प्राप्त होता है—

$$\frac{\triangle I}{I} = a\sigma \text{————} (3)$$

(समीकरण २ के दोनो पक्षों को a से गुणा करने पर $\triangle I \times \frac{I}{I} \times a = I\sigma a$ अर्थात् $\triangle I = I\sigma a$ प्राप्त होता है और जब इसे I से भाग करते हैं तो $\frac{\triangle I}{I} = a\sigma$ प्राप्त होता है।)

$\frac{\triangle I}{I}$ *का अर्थ विनियोजन वृद्धि का कुल विनियोजन के अनुपात में है अर्थात्* यह विनियोजन की सापेक्ष (Relative) वार्षिक प्रगति दर है। दूसरी ओर $a\sigma$ का अर्थ है—बचत की इच्छा अथवा बचत का आय से अनुपात गुणित पूंजी उत्पाद अनुपात।

इस प्रकार समीकरण 3 से यह सिद्ध होता है कि दृढ़ प्रगति (Stable Growth) के लिए विनियोजन की प्रगति की वार्षिक सापेक्ष दर (अर्थात् चक्रवृद्धि दर) बचत इच्छा (Propensity to Save) के अनुपात एवं विनियोजन की औसत उत्पादकता (पूंजी उत्पाद-अनुपात) के गुणनफल के बराबर होनी चाहिए।

डोमर ने अपने माडल को आंकिक उदाहरण द्वारा भी स्पष्ट किया है। विभिन्न आंकड़े निम्न प्रकार मान लिए गये—

σ अथवा उत्पादनक्षमता=२५% प्रति वर्ष अर्थात् पूंजी उत्पाद अनुपात १०० २५ या ४ १ है।

a अथवा बचत इच्छा-अनुपात (Propensity to Save)=१२% अर्थात् ३/२५ है। y अथवा वार्षिक आय=१५० बिलियन है।

पूर्ण रोजगार व्यवस्था बनाये रखने के लिए आय का १२% भाग विनियोजन करना आवश्यक होगा अर्थात् १५०×३/२५=१८ बिलियन विनियोजन। विनियोजन में १८ बिलियन की वृद्धि होने पर उत्पादनक्षमता में १८×१/४=४½ बिलियन की वृद्धि होगी। विकास की गति को दृढ़ता (Stability) प्रदान करने के लिए

बढ़ी हुई उत्पादनक्षमता का पूर्णतम उपयोग आवश्यक होगा अर्थात १८ बिलियन के विनियोजन द्वारा ४½ बिलियन की आय में वृद्धि होगी जो कुल आय की $\frac{४\frac{१}{२} \text{ बिलियन}}{१५० \text{ बिलियन}}$ अथवा ३% के बराबर होगी।

उपर्युक्त आँकड़ों को यदि समीकरण 3 में लगाया जाय तो—

$$\frac{\Delta I}{I} = \frac{१८}{\text{कुल आय } १५० \times \text{पूँजी उत्पाद अनुपात} = ४} = \frac{१८}{६००}$$

$a\sigma = \frac{१}{३} \times$ [illegible]

अर्थात $= \frac{१८}{६००} = \frac{३}{१००}$ या $\frac{३}{१००} = ३\%$

इस आर्थिक स्पष्टीकरण से यह सिद्ध हो जाता है कि आय की वृद्धि-दर उत्पादनक्षमता की वृद्धि की दर के बराबर होती है।

डोमर के इस विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि *आर्थिक विकास की अस्थिरता* पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्थाओं में स्वाभाविक होती है। यदि किसी वर्ष में विनियोजन इस प्रकार का हो कि आय में उत्पादनक्षमता की तुलना में अधिक वृद्धि हो जाय तो उत्पादक प्रसाधनों की कमी रहेगी और विनियोजन को बढ़ाना पड़ेगा जिससे आय में और वृद्धि हो जायगी। इस प्रकार यह असन्तुलन आय-वृद्धि की ओर गतिशील रहेगा। दूसरी ओर यदि आय की वृद्धि-दर उत्पादनक्षमता की वृद्धि-दर से कम होगी तो उत्पादक प्रसाधन पूर्णरूपेण उपयोग नहीं होंगे और विनियोजन कम होने लगेगा जिससे आय में और कमी आ जायगी और इस प्रकार आय की कमी का चक्र प्रारम्भ हो जायगा।

हैरोड एवं डोमर के मॉडलों का सारांश

हैरोड और डोमर के मॉडलों में बहुत अधिक समानता है। इनके विश्लेषण की मुख्य मुख्य बातें निम्न प्रकार हैं—

(१) सुदृढ़ प्रगति का केन्द्रबिन्दु विनियोजन होता है क्योंकि विनियोजन की द्विपक्षीय क्रिया होती है। एक ओर, विनियोजन द्वारा आय में वृद्धि होती है और दूसरी ओर, अर्थ-व्यवस्था की उत्पादनक्षमता में वृद्धि।

(२) अधिक उत्पादनक्षमता के फलस्वरूप, अधिक उत्पादन अथवा अधिक बेरोजगार हो सकता है। यह दोनों बातें आय के परिवर्तनों पर निर्भर रहती हैं। यदि आय में होने वाली वृद्धि उत्पादनक्षमता की वृद्धि से अधिक होती है तो उत्पादन में वृद्धि होती है और उत्पादनक्षमता आय-वृद्धि के अनुरूप होती रहती है। इसके विपरीत उत्पादनक्षमता की वृद्धि की तुलना में आय-वृद्धि कम होती है तो उत्पादनक्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं होता है और बेरोजगार उदय होता है।

(३) दीर्घ काल में पूर्ण रोजगार निर्वाह करने के लिए आय में इतनी वृद्धि होती रहना चाहिए कि पूर्ण रोजगार स्थिति में होने वाली बचत एवं पूँजी स्कन्ध की पूर्ण खपत हो सके।

डोमर ने प्रगति की यह सन्तुलित दर उस बिन्दु पर अंकित की है जहाँ

विनियोजन की प्रगति की चक्रवृद्धि दर बचत इच्छा अनुपात एवं पूँजी उत्पाद के अनुपात के गुणनफल के बराबर होनी है। डोमर के अनुसार पूर्ण रोजगार का निर्वाह करने के लिए आय में चक्रवृद्धि दर से वृद्धि होनी चाहिए।

(४) अर्थ-व्यवस्था में जब वास्तविक प्रगति की दर इस मूल प्रगति अथवा इच्छित प्रगति दर (Warranted Rate of Growth) से अधिक होती है तो अर्थ-व्यवस्था का विस्तार होता है। इसके विपरीत परिस्थिति में अर्थ-व्यवस्था में संकुचन होता है।

(५) व्यापार-चक्र मूल विकास पथ से विचलन के रूप में समझे गये हैं। यह विचलन स्वयं ही सीमित होते हैं। प्रगति की ओर विस्तृत होने वाले विचलन (Deviation) की अधिकतम सीमा पूर्ण रोजगार स्थिति (जिसमें अर्थ-व्यवस्था में उत्पादक साधनों का पूर्णतम उपयोग होता है) होती है। दूसरी ओर अवनति की ओर विस्तृत होने वाले विचलन की सीमा स्वयं ही विनियोजन एवं उपभोग पर निर्भर रहती है।

हैरोड डोमर के विश्लेषण की तुलना

हैरोड डोमर के विश्लेषण में एकरूपता होते हुए कुछ विभिन्नताएँ भी हैं जिनको निम्न प्रकार वर्गीकृत कर सकते हैं—

(१) हैरोड और डोमर दोनों ने आय की वह सन्तुलित प्रगति दर मानी है जो $a\,\delta$ के बराबर हो परन्तु यह समानता किस प्रकार उदय हो सकती है इसका कारण दोनों अर्थशास्त्रियों ने भिन्न बताया है। हैरोड के अनुसार, पहले आय में वृद्धि होती है और फिर उसके अनुरूप किसी निश्चित दर से विनियोजन समायोजित हो जाता है। दूसरी ओर डोमर के अनुसार विनियोजन पहले बढ़ता है और इसके फलस्वरूप आय में जो वृद्धि होती है वह विनियोजन की σ (पूँजी उत्पाद अनुपात) गुनी (δ tines) होती है। इस प्रकार हैरोड एवं डोमर द्वारा विनियोजन एवं आय में जो सम्बन्ध स्थापित किया गया है वह एक दूसरे के विपरीत है।

(२) हैरोड ने अपने विश्लेषण में उत्पादन वृद्धि की प्रक्रिया में उत्पादकों के मनोविज्ञान को महत्वपूर्ण बनाया है और उनकी सन्तुष्टि से विनियोजन निर्णयों को नियन्त्रित किया है जबकि डोमर ने विनियोजन के परिवर्तनों को तकनीकी परिस्थितियों से सम्बद्ध किया है और पूँजी उत्पाद अनुपात को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। यद्यपि उत्पादकों के मनोविज्ञान एवं तकनीकी परिस्थितियों में अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध होता है फिर भी दोनों मॉडलों के भाग में यह अन्तर माना जा सकता है।

(३) डोमर ने अपने विश्लेषण में सन्तुलित विकास को ही स्पष्ट किया है और इस प्रश्न का उत्तर दिया है कि पूँजीवादी विकसित अर्थ-व्यवस्था में अतिरिक्त विनियोजन से जो उत्पादनक्षमता में वृद्धि होती है उसका पूर्ण उपयोग करने के लिए आय एवं उत्पादन में कितनी वृद्धि होनी चाहिए। दूसरी ओर हैरोड ने विकास की दो दरों की व्यवस्था की है—इच्छित दर एवं स्वाभाविक दर। इच्छित दर साहसी

हैराल्ड डामर की यह मान्यता कि देश की सरकार द्वारा आर्थिक गतिविधियों में बिल्कुल हस्तक्षेप नहीं किया जाता तथा देश विदेशी व्यापार से अलग रहता है, की उपस्थिति भी व्यावहारिक नहीं है। अल्प विकसित राष्ट्रों में सरकार अपने कार्यकलाप को कदापि शान्ति एवं सुरक्षा तक ही सीमित नहीं रख सकती है। साहसी वर्ग की कमी की पूर्ति करने के लिए सरकार को मार्गदर्शक साहसी का काम करना पड़ता है और बहुत सा आर्थिक क्रियाओं को सरकार स्वयं सचालित करती है और बहुत सी क्रियाएँ उसके द्वारा नियन्त्रित रहती हैं। जहाँ तक विदेशी व्यापार का सम्बन्ध है अल्प विकसित राष्ट्रों के आर्थिक विकास में विदेशी व्यापार का बहुत बड़ा योगदान होता है। विदेशी *व्यापार एवं विदेशी सहायता इन देशों की आर्थिक प्रगति का मूलाधार है।*

हैरॉड डामर के माडलों का प्रारम्भ पूर्ण रोजगार आय (Full Employment Income) से होता है जो स्थिति अल्प विकसित क्षेत्रों में विकास के प्रारम्भ में किसी भी प्रकार उदय नहीं होती है। इन देशों में अनैच्छिक बेरोजगार की भी प्रश्न नहीं होता है। इनकी बेरोजगारी की समस्या में अदृश्य बेरोजगारी (Disguised Unemployment) का प्रभुत्व होता है। इन देशों में सम्पूर्ण बचत का विनियोजन करके और उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग करने पर भी पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करना सम्भव नहीं होता है क्योंकि श्रम शक्ति में पूँजी की वृद्धि की तुलना में अत्यधिक *तीव्रता से वृद्धि होती है।*

हैरॉड डामर मॉडल की आलोचना

हैरॉड डामर के गतिशील विकास मॉडल की बहुत से अर्थशास्त्रियों द्वारा तीव्र आलोचना की गयी है। इन आलोचनाओं को निम्न प्रकार वर्गीकृत कर सकते हैं—

(१) इन मॉडलों में उत्पादन प्रक्रिया में सम्मिलित होने वाले तत्वों को स्थिर मान लिया गया है और उत्पादन के एक घटक को दूसरे घटक से स्थानापन्न करने की कोई स्थान नहीं दिया गया है। दीर्घ काल में इस प्रकार का स्थानापन्न निरन्तर किया जाता है। तकनीकी एवं संगठनात्मक सुधारों के फलस्वरूप उत्पादन के तत्वों के परिमाण में सदैव परिवर्तन होता रहता है। दीर्घकालीन प्रगति या प्रक्रिया में इन परिवर्तनों का होना अत्यन्त स्वाभाविक है।

(२) *व्यवहार में पूँजी उत्पाद अनुपात एवं गतिवर्द्धक (Accelerator) भी* स्थिर नहीं होते हैं। वास्तव में यह ज्ञात करना कि पूँजी का उत्पादन में कितना योगदान होता है सम्भव नहीं होता है। पूँजीवादी अर्थ व्यवस्थाओं की प्रगति में तान्त्रिक अनुसन्धान, प्रशासन एवं शिक्षा में किये जाने वाले विनियोजन का योगदान पूँजी से कहीं अधिक रहा है।

(३) विकास मॉडलों में अस्थिरता की सम्भावनाओं को बढ़ा चढ़ा कर बताया गया है। वास्तव में सन्तुलन के मार्ग से थोड़ा सा विचलन होने पर अर्थ व्यवस्था का किसी भी दिशा में अग्रसर हो जाना आवश्यक नहीं है। आर्थिक उच्चावचनों के

वास्तविक कारण साहसियों का व्यवहार तथा विनियोजन निर्णयों एवं पूँजीगत व्यय का समयान्तर (lag) होते हैं।

(४) हैरोड द्वारा जो श्रम-व्यवस्था का अधिकतम विस्तार की सीमा निर्धारित की है वह भी व्यावहारिक नहीं है क्योंकि श्रम एवं प्राकृतिक साधनों की पूर्ति स्थिर मानते हुए उनके उपयोग के तरीकों में हेर-फेर करके उत्पादन के स्तर को बढ़ाना सम्भव हो सकता है। इसके साथ संगठनात्मक एवं तकनीकी परिवर्तनों द्वारा भी श्रम एवं पूँजी की उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।

(५) इन मॉडलों में मूल्य-परिवर्तनों के आर्थिक प्रगति पर पड़ने वाले प्रभावों पर कोई विचार नहीं किया गया है। मूल्यों में थोड़ा सा परिवर्तन होने पर साहसी के व्यवहारों, विनियोजन निर्णयों एवं उत्पादन के प्रकार प्रभावित होते हैं।

हैरोड डोमर के मॉडलों में उपयुक्त कमियाँ होते हुए भी यह आय, विनियोजन एवं बचत के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने के लिए उपयोगी है। इनके द्वारा निर्धन राष्ट्रों में मुद्रा-स्फीति के उदय एवं विस्तार होने के भय का भी अध्ययन किया जा सकता है। हैरोड-डोमर का विश्लेषण किसी भी देश की विकास समस्याओं के अध्ययन करने में सहायक हो सकता है परन्तु इनका विशेष उपयोग ऐसे राष्ट्रों की विकास-समस्याओं के अध्ययन के लिए है जिनमें पर्याप्त विकास हो चुका है और इस विकास का भविष्य में निर्वाह करने की समस्या है।

———

आर्थिक प्रगति की अवस्थाएँ एव भारत

[Stages of Economic Growth With Special Reference to India]

[विकास की अवस्थाएँ—परम्परागत समाज, स्वय स्फूर्त के पूर्व की अवस्था, स्वय स्फूर्त विकास की अवस्था, स्वय स्फूर्त की शर्तें विनियोजन दर, महत्वपूर्ण निर्माणी क्षेत्र, राजनीतिक एव सामाजिक सरचना भारत में स्वय स्फूर्त अवस्था परिपक्वता की ओर अग्रसर, अत्याधिक उपभोग की अवस्था, उपभोग के परे]

आर्थिक प्रगति को मापने की विभिन्न विधियों में अवस्था प्रणाली (Stage Approach) को कुछ अर्थशास्त्रियों ने महत्वपूर्ण बताया है। इस प्रणाली में आर्थिक प्रगति की प्रक्रिया के अन्तर्गत होने वाले अनुक्रमात्मक (Sequential) परिवर्तनों को विभिन्न अवस्थाओं में विभक्त करने का प्रयत्न किया जाता है। विभिन्न देशों के आर्थिक विकास के इतिहास का अध्ययन करके विकास के ऐतिहासिक काल को विकास प्रक्रिया के विश्लेषणात्मक कालों में परिवर्तित किया जाता है। यदि यह विश्लेषण सम्पूर्ण हो तो इसके द्वारा विभिन्न राष्ट्रों के विकास-स्तर का तुलनात्मक माप करना सम्भव हो सकता है परन्तु आर्थिक प्रक्रिया का सामान्य विश्लेषण सम्भव नहीं हो सकता क्योंकि आर्थिक प्रगति की प्रक्रिया प्रत्येक देश में विद्यमान विभिन्न परिस्थितियों पर निर्भर रहती है और यह परिस्थितियाँ विभिन्न राष्ट्रों में समान नहीं होती हैं परन्तु प्रो० रास्टोव ने आर्थिक प्रगति की प्रक्रिया को छह अवस्थाओं में विभक्त किया है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक राष्ट्र इन सभी अवस्थाओं से समानरूप से गुजरकर प्रगति करे और यह भी आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक विकासशील राष्ट्र को इन विभिन्न अवस्थाओं में एक समान ही समस्याओं का सामना करना पड़े। विकास की इन विभिन्न अवस्थाओं में कोई देश कितने समय तक रहता है यह समय भी विभिन्न राष्ट्रों में समान होना आवश्यक नहीं है। इस प्रकार प्रगति की यह विभिन्न अवस्थाएँ आर्थिक प्रगति की प्रक्रिया की रूपरेखा मात्र प्रदर्शित करती हैं। इनके द्वारा निश्चित एव सर्वमान्य परिस्थितियाँ निर्धारित नहीं की जा सकती हैं। प्रो० रास्टोव द्वारा प्रतिपादित विकास की विभिन्न अवस्थाओं का विवरण निम्न प्रकार है—

विकास की अवस्थाएँ

(१) परम्परागत समाज (Traditional Society)—परम्परागत समाज के प्रमुख आर्थिक लक्षण सीमित उत्पादन क्रिया होती है। इस समाज में निरन्तर आर्थिक

आयात का विस्तार हुआ। इस प्रकार विदेशी व्यापार के विस्तार के फलस्वरूप अल्प विकसित राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से मशीनें एवं औद्योगिक कच्चा माल प्राप्त कर सकते थे। इन सब घटकों से प्रोत्साहित होकर आधुनिक औद्योगिक क्रियाओं का विस्तार होना प्रारम्भ हुआ।

औद्योगीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा देने के लिए तीन गैर औद्योगिक क्षेत्रों में मूल परिवर्तन होना आवश्यक होते हैं—

(अ) सामाजिक उपरिव्यय पूंजी विशेषकर यातायात की सुविधाओं में विस्तार होना चाहिए जिससे एक ओर राष्ट्रीय बाजार का निर्माण हो सके और देश के उपलब्ध प्राकृतिक साधनों का उत्पादक शोषण किया जा सके तथा दूसरी ओर सरकार प्रभावशाली ढंग से प्रशासन कर सके। कुशल सरकारी प्रशासन एवं सुरक्षा के वातावरण में ही औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन प्राप्त होता है।

(आ) कृषि के क्षेत्र में तान्त्रिक क्रान्ति होनी चाहिए क्योंकि स्वयं स्फूर्त विकास के पूर्व की अवस्था में जनसंख्या में सामान्य वृद्धि और नगरों की जनसंख्या में अनुपात से अधिक वृद्धि होती है। इस प्रकार गैर कृषि क्षेत्रों में कार्य करने वाले श्रमिक वर्ग की संख्या में भी वृद्धि हो जाती है और कृषि क्षेत्र को इनके लिए खाद्यान्न एवं विकासोन्मुख उद्योगों को अधिक मात्रा में कच्चा माल प्रदान करना होता है। यह दोनों कार्य कृषिक्षेत्र तब ही कर सकता है जब कृषि की उत्पादकता में तीव्र गति से वृद्धि की जाय।

(इ) देश के आयात में पर्याप्त वृद्धि होना चाहिए। आयात की पर्याप्त वित्त व्यवस्था करने हेतु देश के प्राकृतिक साधनों से अधिक कुशल उत्पादन प्राप्त करना तथा उसका कुशल विपणन करना आवश्यक होता है। उत्पादन की कुशल बनाने हेतु यथासम्भव पूंजीगत प्रसाधनों का आयात भी किया जाना चाहिए। अल्प विकसित राष्ट्रों को इस प्रकार अपने विदेशी विनिमय के साधनों को बढ़ाना आवश्यक होता है। अधिक विदेशी विनिमय अर्जित कर देश अपने ऐसे औद्योगिक कच्चे माल एवं अन्य प्रसाधनों को, जो देश में उत्पादित नहीं होते हैं की पूर्ति आवश्यकतानुसार कर सकता है।

आवश्यक तान्त्रिक विकास को सचालित करने के लिए परम्परागत समाज के गैर आर्थिक क्षेत्रों में भी कुछ मूलभूत परिवर्तन करने होते हैं। गैर आर्थिक क्षेत्रों में निम्नलिखित व्यवस्थाएं आवश्यक होती हैं—

(अ) कृषि समुदाय में नवीन तान्त्रिकताओं का उपयोग करने की इच्छा होनी चाहिए तथा वह विस्तृत विपणियों में बढ़ती हुई मांग के अनुरूप उत्पादन में वृद्धि करने के लिए प्रयत्नशील होने चाहिए। अल्प विकसित राष्ट्रों में कृषकों में इस प्रकार की गतिशील विचारधारा प्रायः नहीं पायी जाती है और इसकी अनुपस्थिति ही आर्थिक प्रगति में रुकावटें उपस्थित करती रहती है।

(आ) नवीन औद्योगिक व्यवसायी-वर्ग का विद्यमान होना तथा उसको व्यवसायों

के सचालन की स्वतन्त्रता होना विकास के लिए आवश्यक होता है। परम्परागत समाज म नवीन व्यवसायों एव उद्योगो की स्थापना एव विकास कर ही स्वय-स्फूर्त विकास के पूर्व की अवस्था उत्पन्न की जा सकती है। इस नवीन साहसी-वग का नवीन व्यवसायों की स्थापना एव सचालन की वधानिक एव सामाजिक स्वतन्त्रता भी होना आवश्यक होती है। यदि यह नवीन साहसी वग दुबल होता है तो परम्परागत साहसी वग द्वारा दबा दिया जाता है और विकास अगले चरणों म नहीं पहुँच पाता है।

(द) एक ऐसी कुशल राष्ट्रीय सरकार का होना भी आवश्यक होता है जो देश म शान्तिपूर्ण वातावरण उत्पन्न कर जिसम नवीनीकरण की कायवाहियों का प्रोत्साहन मिल सक। राष्ट्रीय सरकार को स्वय ही सामाजिक उपरिव्यय पूँजी (बाहरी सुविधाओं) की सुविधाओं क विस्तार का उत्तरदायित्व अपन ऊपर लेना चाहिए तथा उपयुक्त व्यापार नीति एव नवीन औद्योगिक एव कृषि सम्बन्धी तान्त्रिकताओं क विस्तार की व्यवस्था करनी चाहिए।

(ई) परम्परागत समाज क जन-समुदाय म यह जानकारी अथवा ज्ञान प्रविष्ट होना चाहिए कि उत्पादकता बढाने की नवीन विधियाँ भी हो सकती हैं उन्हें और उनक बच्चों को दीर्घायु होना सम्भव हो सकता है, उपभोग में नवीनताएँ हो सकती हैं तथा कल्याण और ऊँचा जीवन-स्तर हो सकता है। यह जानकारियाँ परम्परागत समाज म गतिशीलता को जन्म देता है और समाज की माग एव पूर्ति तथा सामाजिक आवश्यकताओं की सरचना मे मूलभूत परिवतन हो जाते हैं। यह जानकारियाँ विकसित देशों क नागरिकों से सम्पक स्थापित होने से उत्पन्न होती हैं और जब परम्परागत समाज के नागरिकों में विकसित देशों के नागरिकों क समान जीवन की सुविधाओं को प्राप्त करने की लालसा जाग्रत होती है तो विकास के लिए आवश्यक गतिशील विचारधारा उदय होती है।

(उ) परम्परागत समाज का परिवर्तित करने मे विकसित देशों क नकारात्मक व्यवहार ने भी सहायता प्रदान की है। जब विकसित राष्ट्रों द्वारा अपनी इच्छाओं को अल्प विकसित देशो पर सैनिक दबाव द्वारा लादना शुरू किया जाता है तो अल्प विकसित समाजों क नागरिकों म प्रतिक्रिया की भावना जाग्रत होती है जो राष्ट्रीयता की भावनाओं को विस्तृत एव सुदृढ कर देती है। अल्प विकसित राष्ट्रों क नेताओं को जब यह आभास होता है कि ससार में औद्योगिक राष्ट्रों के हाथ मे ही प्रभावशाली सत्ता होती है तो यह नेता अपन अल्प विकसित समाज को भी विकास की ओर अग्रसर करने हेतु प्रयत्नशील हो जाते हैं। वास्तव म, ससार के परम्परागत समाजों के आधुनिकीकरण का श्रेय इन समाजों पर विदेशियों के आक्रमण को भी दिया जाना चाहिए।

विभिन्न विकसित राष्ट्रों द्वारा जो परम्परागत समाजों पर अठारहवीं एव उन्नीसवीं शताब्दियों में साम्राज्य स्थापित किए गए और साम्राज्यवादी प्रशासन किया

गया, उससे परम्परागत समाजों का एक ओर विकसित समाजों के नागरिक से सम्पर्क स्थापित हुआ और दूसरी ओर प्रतिक्रियावादी राष्ट्रीयता उदय हुई। इन दोनों ही परिस्थितियों ने परम्परागत समाजों के आधुनिकीकरण में योगदान दिया है परन्तु प्रायः अल्प विकसित राष्ट्रों को राजनीतिक स्वतन्त्रता मिल जाने के पश्चात वहां के नेताओं द्वारा अपनी-अपनी सत्ताओं को बनाने के प्रयत्न किए जाते हैं जिसके फल-स्वरूप घरेलू युद्ध (Civil War) अथवा घरेलू तनाव (Internal Tension) उदय होने है और देश के आधुनिकीकरण की समस्या बहुत समय तक यथावत बनी रहती है। जब ऐसे नेता लोग सत्ताओं को अपने हाथ में लेने में समर्थ होते हैं जो राष्ट्रीयता को सुदृढ़ बनाने हेतु आधुनिकीकरण को प्रोत्साहित करते हैं तब परम्परागत समाज स्वयं स्फूर्त विकास की ओर अग्रसर हो जाता है।

रास्टोव द्वारा निर्धारित विकास की इस द्वितीय अवस्था—स्वयं-स्फूर्त विकास के पूर्व की अवस्था—से भारतीय अर्थ व्यवस्था आगे बढ़ गयी है। स्वयं स्फूर्त विकास के पूर्व की अवस्था में प्रविष्ट होने में भारत को विदेशी सहायता से विशेष योगदान प्राप्त हुआ है। प्रथम योजना में विदेशी सहायता सरकारी व्यय की १०% थी जो बढ़कर द्वितीय एवं तृतीय योजनाओं में क्रमशः २४% तथा ३०% हो गया है। विदेशी सहायता से भारतीय अर्थ व्यवस्था के आधार (Base) सुदृढ़ बनाना सम्भव हो सका है और भारत स्वयं स्फूर्त अवस्था में प्रविष्ट हो गया है।

विदेशी सहायता के अतिरिक्त देश की आन्तरिक बचत को उत्पादक क्रियाओं के लिए अधिक उपयोग करके अर्थ व्यवस्था का विकास करना सम्भव होता है। भारत में सन् १९५१-६३ के काल में राष्ट्रीय आय की बचत ५.५% से बढ़कर ७.४% हो गयी है और राष्ट्रीय आय में ५४% की वृद्धि हुई है। इस प्रकार बचत की वृद्धि की तुलना में राष्ट्रीय आय में अत्यधिक तीव्र गति से वृद्धि हुई है।

भारत में नियोजित विकास के फलस्वरूप औद्योगिक आधार (Base) को भी सुदृढ़ बनाया गया है। औद्योगिक विकास को प्रत्येक योजना में अधिकाधिक प्राथमिकता प्रदान की गयी है। प्रथम योजना में औद्योगिक एवं खनिज विकास पर कुल सरकारी व्यय का ४% भाग आयोजित किया गया था जो आगे की योजनाओं में बढ़ाकर लगभग २०% कर दिया गया। उद्योगों के बढ़ते हुए महत्व के कारण कृषि क्षेत्र से श्रम शक्ति औद्योगिक क्षेत्र में भी आने लगी है। सन् १९४९-६३ के काल में कृषिक्षेत्र में लगी हुई श्रम शक्ति का कुल श्रम शक्ति से प्रतिशत ६५.२% से घटकर ६३.५% रह गया है। दूसरी ओर देश में हरी क्रान्ति (Green Revolution) की जड़ें भी सुदृढ़ होती जा रही हैं। कृषिक्षेत्र की उत्पादकता एवं उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि होती जा रही है। यह समस्त परिस्थितियाँ यह बात सिद्ध करती है कि भारत रास्टोव द्वारा निर्धारित विकास की द्वितीय अवस्था से आगे बढ़ गया है।

(३) स्वयं स्फूर्त विकास की अवस्था (The Take off Stage)— स्वयं-स्फूर्त

अवस्था उस मध्य काल को कहते हैं जिसमें विनियोजन-दर में इस प्रकार वृद्धि होती है कि प्रति व्यक्ति वास्तविक उत्पादन में वृद्धि हो जाती है और यह प्रारम्भिक वृद्धि अपने साथ उत्पादन-तान्त्रिकताओं एवं आय के प्रवाह के प्रयोग में मूलभूत परिवर्तन लाती है जो नवीन विनियोजन को शाश्वत बनाते हैं और जिसके अन्तर्गत प्रति व्यक्ति उत्पादन की वृद्धि की प्रवृत्ति भी शाश्वत हो जाती है।"[1] इस परिभाषा के अनुसार स्वयं-स्फूर्त अवस्था के लिए उत्पादन तान्त्रिकताओं में मूलभूत परिवर्तन एवं प्रगति का शाश्वत होना आवश्यक तत्व माने हैं। उत्पादन-तान्त्रिकताओं के आधुनिकीकरण के लिए यह आवश्यक होता है कि समाज में साहसियों का ऐसा समूह विद्यमान हो जिसमें नवीन तान्त्रिकताओं का विस्तृत उपयोग करने की इच्छा एवं अधिकार हो। दूसरी ओर, प्रगति को शाश्वतता प्रदान करने के लिए नेतृत्व करने वाले इस साहसी वर्ग के अधिकारों का विस्तार होना चाहिए और समाज को इनके द्वारा किए गए प्रारम्भिक परिवर्तनों को स्वीकार करके उनका विस्तृत उपयोग करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। आय एवं वित्त के प्रवाह में मूलभूत परिवर्तन होने पर ही विनियोजन एवं उत्पादन-वृद्धि की निरन्तरता का आयोजन सम्भव हो सकता है। जब आय का प्रवाह उन वर्गों के पक्ष में होता है जो बढ़ी हुई आय का उत्पादक विनियोजन में उपयोग करते हैं तो प्रगति को शाश्वतता प्राप्त हो सकती है। आय के प्रवाह में यह मूलभूत परिवर्तन लाने के लिए आय के प्रवाह की व्यवस्था पर नवीन जन-समूहों अथवा संस्थाओं का नियन्त्रण होना आवश्यक होता है। इस प्रकार स्वयं-स्फूर्त अवस्था के लिए एक ओर समाज को नवीन उत्पादन तान्त्रिकताओं को स्वीकार करने के लिए तत्पर रहना चाहिए और दूसरी ओर तान्त्रिक परिवर्तनों के अनुरूप राजनीतिक सामाजिक एवं संस्थागत परिवर्तन भी होने चाहिए जिससे विनियोजन की प्रारम्भिक वृद्धि को शाश्वतता प्रदान की जा सके तथा नवीन आविष्कारों को निरन्तर स्वीकार एवं उपयोग किया जाता रहे।

स्वयं-स्फूर्ति की शर्तें

स्वयं-स्फूर्त अवस्था के लिए निम्नलिखित परस्पर सम्बन्ध रखने वाली शर्तों की पूर्ति होनी चाहिए—

(अ) उत्पादक विनियोजन-दर जो राष्ट्रीय आय की ५% अथवा इससे कम हो, को बढ़ाकर १०% या इससे अधिक करना।

---

1. The take off is defined as the interval during which the rate of investment increases in such a way that real output per-capita rises and this initial increase carries with it, radical changes in production techniques and the disposition of income flows which perpetuates the new scale of investment and perpetuates thereby the rising trend in per capita output.
(W W Rostow *The Process of Economic Growth* p 274)

(आ) किसी एक या अधिक महत्वपूर्ण निर्माणी क्षेत्र का द्रुति गति से विकास।

(इ) एक ऐसे राजनैतिक, सामाजिक एवं संस्थनीय ढांचे का विद्यमान अथवा विकसित होना जो आधुनिक क्षेत्र के विस्तार की प्रवृत्ति स्वयं स्फूर्त से उदय होने वाला बाहरी मितव्ययताओं का शोषण करता हो तथा प्रगति को एक निरन्तर चलने वाली व्यवस्था का लक्षण प्रदान करता हो।

विनियोजन दर

स्वयं स्फूर्त विकास अवस्था के लिए विनियोजन दर में पर्याप्त वृद्धि होना अनिवार्य है। रोस्टोव ने विनियोजन की दर का राष्ट्रीय आय के १०% तक बढ़ना की व्यवस्था कुछ मान्यताओं पर आधारित की है। यह व्यवस्था विनियोजन की मात्रा एवं उत्पादकता दोनों पर ही निर्भर रहती है। रोस्टोव ने एक उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट किया है कि विनियोजन उत्पादकता एवं मात्रा स्वयं स्फूर्त को किस प्रकार प्रभावित करता है। एक ऐसी अर्थव्यवस्था का चित्र दिया गया जिसमें पूंजी उत्पाद अनुपात विकास की प्रारम्भिक अवस्था में ३ ५ १ है तथा जिसमें जनसंख्या में १ से १ ५% की वार्षिक वृद्धि होती है। ऐसी अर्थव्यवस्था में प्रति व्यक्ति आय के वर्तमान स्तर को बनाए रखने के लिए शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन का ५ से ५ २५% तक विनियोजन किया जाना आवश्यक होगा। इन परिस्थितियों की उपस्थिति में यदि प्रति व्यक्ति आय में २% प्रति वर्ष की वृद्धि का लक्ष्य वांछनीय समझा जाय तो शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन का लगभग १० ५% से १२ ५% तक विनियोजन करने की आवश्यकता होगी। इस प्रकार एक गतिहीन अथवा स्थिर अर्थव्यवस्था का निरन्तर प्रति व्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन वृद्धि की अर्थव्यवस्था में बदलने के लिए जबकि जनसंख्या में भी वृद्धि हो रही है विनियोजन दर को राष्ट्रीय आय को ५% से बढ़ाकर १०% करना आवश्यक होगा।

महत्वपूर्ण निर्माणी क्षेत्र

स्वयं स्फूर्त विकास अवस्था औद्योगिक विकास की प्रथम अवस्था को समझा जाता है जबकि औद्योगिक प्रगति का अर्थव्यवस्था में सुदृढ़ प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार औद्योगिक विकास की दूसरी अवस्था को जब औद्योगीकरण विस्तृत हो जाता है और औद्योगिक विकास की उपलब्धियाँ आँकड़ों में भी विद्यमान होने लगती है स्वयं स्फूर्त विकास अवस्था (Take off Stage) में सम्मिलित नहीं किया गया है। वास्तव में Take off उस अवस्था को कहना चाहिए जब औद्योगिक विकास के लिए सुदृढ़ वातावरण एवं परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाय। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि जब विनियोजन अन्य क्षेत्रों से हटकर औद्योगिक क्षेत्र की ओर आकर्षित होने लग तो Take off का प्रारम्भ माना जाता है। वास्तविक औद्योगिक प्रगति की परिपक्वता की नींव (Foundation) Take off अवस्था में होती है। इस प्रारम्भिक औद्योगिक विकास अवस्था में उत्पादन आर्थिक क्रियाएँ एक ऐसे विशिष्ट स्तर पर पहुँच जाता है

जिसके परिणामस्वरूप, अर्थ व्यवस्था की सरचना में विस्तृत एवं प्रगामी (Progressive) परिवर्तन होते रहते हैं। सक्षेप मे, Take off उस प्रारम्भिक अवस्था को कहना चाहिए जब औद्योगिक प्रगति के लिए उपयुक्त केवल परिमाणात्मक ही नहीं बल्कि गुणात्मक परिवर्तन भी हो जाते हैं।

औद्योगिक प्रगति की प्रारम्भिक अवस्था में अर्थ-व्यवस्था के कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों में विभिन्न दरों से प्रगति होती है। इस प्रगति का प्रमुख कारण जनसंख्या, उपभोक्ताओं की आय रुचि आदि में होने वाले परिवर्तनों के परिणामस्वरूप माँग में परिवर्तन होना होता है। माग के परिवर्तनों के अतिरिक्त पूर्ति के घटकों में होने वाले परिवर्तनों एवं प्रभावशाली नायकों का प्रभाव भी इस प्रगति पर पडता है। रोस्टोव ने अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों (Sectors) को तीन वर्गों में विभक्त किया है—

(अ) प्राथमिक प्रगति क्षेत्र (Primary Growth Sectors)—इस वर्ग में उन क्षेत्रों को सम्मिलित किया जाता है जिनमें नवनिर्माणों (Innovations) के प्रयोग की सम्भावना हो अथवा जिनमें अशोषित साधनों का लाभप्रद उपयोग कर प्रगति की तीव्र गति प्राप्त की जा सकती है और इस प्रक्रिया में अर्थ व्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में विस्तारक शक्तियों को गतिशीलता प्राप्त होती है। वास्तव में प्राथमिक प्रगति-क्षेत्र आर्थिक प्रगति का मूलाधार होते हैं क्योंकि इनसे प्रगति का नवीन मार्ग प्रशस्त होता है और दूसरी ओर, यह अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के विस्तार में सहायक होते हैं।

(आ) सहायक प्रगति क्षेत्र (Supplementary Growth Rates)—इस वर्ग में उन क्षेत्रों को सम्मिलित करते हैं जिनमें प्राथमिक प्रगति क्षेत्रों में प्रगति होने के कारण अथवा प्राथमिक क्षेत्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तीव्र गति से प्रगति होती है। उदाहरणार्थ रेल एवं सड़क यातायात के विस्तार के लिए लोहा, कोयला, एवं इञ्जीनियरिंग उद्योगों का विकास होता है।

(इ) व्युत्पन्न प्रगति क्षेत्र (Derived Growth Sectors)—इस वर्ग में वे क्षेत्र आते हैं जिनमें प्रगति कुल वास्तविक आय, जनसंख्या, औद्योगिक उत्पादन अथवा अन्य सभी प्रगतिशील क्षेत्रों की प्रगति के अनुरूप होती है। उदाहरणार्थ, खाद्यान्नों के उत्पादन में जनसंख्या के अनुरूप निवासगृह निर्माण में परिवारों की बनावट के अनुरूप प्रगति होती है।

विभिन्न अर्थ-व्यवस्थाओं के आर्थिक प्रगति के इतिहास से ज्ञात होता है कि प्रगति की निरन्तरता प्राथमिक क्षेत्र के कुछ व्यवसायों के विकास पर निर्भर रही है क्योंकि इनके विस्तार से बाह्य मितव्ययताओं (External Economies) एवं अन्य विकास के सहायक तथ्यों का उदय होता है। Take off अवस्था के प्रारम्भ होने के पश्चात् या शीर्घ कालीन आर्थिक प्रगति हेतु समाज में इतना पूँजी निर्माण होना आवश्यक होता है कि उत्पादक सम्पत्तियों का सामान्य अवक्षयण (Depreciation) एवं निवास, गृह-निर्माण एवं आवश्यक सेवाओं तथा उपरिव्यय पूँजी (Overhead Capital) के आयोजन के

अतिरिक्त अत्याधिक उत्पादक प्राथमिक क्षेत्रों का विस्तार भी होता रहे। प्राथमिक क्षेत्रों के विस्तार द्वारा उत्पादन क्रिया में सम्मिश्रित होने वाले तत्वों में परिवर्तन किया जा सकता है और अर्थ व्यवस्था के पूँजी उत्पाद अनुपात को कम रखा जा सकता है।

यहाँ पर यह समझ लेना आवश्यक है कि प्राथमिक क्षेत्र में सम्मिलित होने वाले उद्योग एवं व्यवसाय प्रत्येक राष्ट्र में समान नहीं होते हैं। यह विद्यमान परिस्थितियों एवं समय पर निर्भर रहते हैं। उदाहरणार्थ ब्रिटेन में सूती वस्त्र उद्योग ने प्राथमिक क्षेत्र का कार्य किया क्योंकि अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक ब्रिटेन में एक ओर Take off के पूर्व की अवस्था का पूर्णरूपेण विकास हो चुका था और दूसरी ओर, सूती वस्त्र उद्योग देश की आवश्यकताओं से अधिक बड़ा होने के कारण निर्यात-व्यापार के विस्तार में सहायक हुआ। निर्यात व्यापार के विस्तार से अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर अनुकूल प्रभाव पड़ा जिससे विकास को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। ब्रिटेन के सूती वस्त्र उद्योग के विस्तार से नगरों का विकास हुआ, कोयला लोहा और मशीनों की मांगें बढ़ीं, कार्यशील पूँजी तथा सस्ते यातायात के साधनों की माँग में वृद्धि हुई। इस प्रकार सूती वस्त्र उद्योग के विस्तार के फलस्वरूप ब्रिटेन के सभी औद्योगिक क्षेत्रों का विकास हुआ।

दूसरी ओर, भारत, चीन और मैक्सिको के सूती वस्त्र उद्योग के विकास से सूती वस्त्र के आयात का प्रतिस्थापन करना ही सम्भव हो सका और इस उद्योग का विस्तार Take off की पूर्व की अवस्था उत्पन्न करने में ही सहायक हो सका।

रूस, जर्मनी, संयुक्त राज्य अमेरिका, स्वीडन, जापान एवं अन्य राष्ट्रों में रेल एवं सड़क यातायात के विकास द्वारा Take off अवस्था का प्रारम्भ हुआ। रेल सड़क यातायात के विस्तार से Take off काल की आर्थिक प्रगति पर तीन प्रभाव पड़ते हैं—प्रथम इसके द्वारा आन्तरिक लागत कम हो जाती है और नवीन क्षेत्र एवं उत्पादक व्यापारिक बाजारों का लाभ प्राप्त करने लगते हैं। द्वितीय यातायात के द्वारा निर्यात क्षेत्रों का विस्तार एवं विकास होता है और आन्तरिक विकास के लिए पूँजी प्राप्त होती है। सन् १८५० में अमेरिकी रेल सड़क यातायात के विकास तथा सन् १९१४ के पूर्व रूस एवं कनाडा के रेल यातायात के विकास से पूँजी निर्माण में सहायता मिली थी। तृतीय, प्रभाव जो Take off में अत्यन्त सहायक होता है यह है कि रेलों के विकास से आधुनिक कोयला, लोहा एवं इन्जीनियरिंग उद्योगों का विस्तार होता है। जब किसी समाज में Take off के लिए आवश्यक संस्थनीय सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का विकास हो जाता है तो रेलों के विकास एवं विस्तार से उपर्युक्त तीनों प्रभाव सक्रिय हो जाते हैं और अर्थ-व्यवस्था Take off अवस्था से स्वचालित विकास अवस्था में प्रविष्ट हो जाती है परन्तु जिन अर्थ-व्यवस्थाओं में Take off की आवश्यक परिस्थितियाँ विद्यमान नहीं होतीं हैं वहाँ रेलों का विकास Take off को उत्पन्न करने में सफल नहीं हुआ है, जैसे भारत, चीन, सन् १८९५ के पूर्व का कनाडा, सन् १९१४ से पूर्व का अर्जेन्टाइना आदि।

भारत में नियोजित अर्थ व्यवस्था का प्रारम्भ सन् १९५१-५२ में हुआ और प्रथम पंचवर्षीय योजना में आशा से अधिक आर्थिक प्रगति हुई। योजना के प्रथम तीन वर्षों में राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय में वर्ष प्रति वर्ष द्रुत गति से वृद्धि हुई। सन् १९५४-५५ में भी यह वृद्धि जारी रही परन्तु इसकी गति कुछ कम हो गयी। प्रथम योजनाकाल में राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में निम्न प्रकार वृद्धि हुई—

तालिका सं० १६—राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय (प्रथम योजनाकाल में)

वर्ष	राष्ट्रीय आय १९४८-४९ के मूल्यों पर (करोड़ रुपया)	गत वर्ष से प्रतिशत परिवर्तन	प्रति व्यक्ति आय १९४८-४९ के मूल्यों पर (रुपया)	गत वर्ष से प्रतिशत परिवर्तन
१९५०-५१	८८.५	—	२४७.५	—
१९५१-५२	९१.०	२.८	२५०.३	१.१
१९५२-५३	९४.६	४.०	२५५.७	२.२
१९५३-५४	१००.३	६.०	२६६.२	४.१
१९५४-५५	१०२.८	२.५	२६७.८	०.६
१९५५-५६	१०४.८	१.९	२६७.८	०.०

उपर्युक्त समस्त तथ्यों के आधार यह माना जा सकता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था सन् १९५४-५५ वर्ष में स्वयंस्फूर्त विकास अवस्था में प्रविष्ट हो गयी थी परन्तु इस अवस्था में प्रविष्ट होने के पश्चात् अर्थ-व्यवस्था में मन्दगामिता प्रगति नहीं हुई और सन् १९५५-६१ के काल में राष्ट्रीय आय में २.४% की प्रति वर्ष वृद्धि हुई। इसी काल में प्रति रोजगार प्राप्त श्रमिक वास्तविक राष्ट्रीय सकल उत्पादन में १२% की कमी हुई। सन् १९५४-५५ के पश्चात् प्रगति की मन्द गति का प्रमुख कारण मुद्रा-प्रसार की प्रवृत्ति था। द्वितीय योजना के प्रारम्भ से ही देश में मुद्रा-स्फीति का दबाव निरन्तर बढ़ता गया। वर्तमान प्रगति की प्रवृत्ति के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि भारत सातवीं योजना के अन्त तक अर्थात् सन् १९८५-८६ तक स्वयंस्फूर्त की अवस्था से निकलकर स्वचालित अवस्था (Sustained Growth Stage) में प्रविष्ट हो जायगा।

(४) परिपक्वता की ओर अग्रसर (The Drive to Maturity)—जब आधुनिक प्राविधिकताओं का उपयोग किसी देश में अधिकतर साधनों के शोषण के लिए किया जाता है तो उसे परिपक्वता की ओर एक कदम समझा जा सकता है। इस अवस्था में स्वयंस्फूर्त अवस्था के अन्तर्गत आधुनिक प्राविधिकताओं के उपयोग के क्षेत्र को केवल कुछ ही आर्थिक क्रियाओं तक सीमित नहीं रखा जाता बल्कि इसका विस्तार अन्य उत्पादन-क्रियाओं पर भी किया जाता है। जब कोई समाज प्राविधिक परिपक्वता की ओर बढ़ता है तो कृषि में लगी हुई जनसंख्या तथा ग्रामीण जनसंख्या में कमी हो जाती है और नागरिक जनसंख्या में अर्द्धकुशल एवं कारखानों में कार्य करने वालों

(White Collar Workers) की संख्या में वृद्धि होती है। इस प्रकार एक नवीन श्रमिक वर्ग का प्रादुर्भाव होता है जो औद्योगिक सभ्यता के अन्तर्गत उपभोग में सुधार करने की लालसा रखता है और वह धीरे धीरे संगठित होकर सरकार को सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए विवश करता है। परिपक्वता की ओर बढ़ने पर नेतृत्व में भी परिवर्तन होता है। परिपक्वता की स्थिति में नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों में अधिक दूरदर्शिता तथा अधिक सत्ता की भावना होती है।

परिपक्वता की अवस्था में नवीन महत्वपूर्ण क्षेत्रों (Leading Sectors) का विकास हो सकता है जो स्वयं-स्फूर्त के महत्वपूर्ण क्षेत्रों का प्रतिस्थापन कर देते हैं क्योंकि इन पुराने महत्वपूर्ण क्षेत्रों के विस्तार की गति मन्द हो जाती है। परिपक्वता की अवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्रों का निर्धारण तान्त्रिकताओं के स्तर के अतिरिक्त साधनों की उपलब्धि एवं सरकारी नीतियों के आधार पर होता है।

आधुनिक युग में तान्त्रिकताएँ इतनी गतिशील एवं परिवर्तनशील होती हैं कि दिन प्रति दिन नए आविष्कारों के फलस्वरूप किसी भी देश का यह कहना कि इसके समस्त क्षेत्रों में नवीनतम तान्त्रिकताओं का उपयोग किया जा रहा है सम्भव नहीं होता। जब हम किसी देश को किसी निश्चित समय में परिपक्वता की अवस्था में कहते हैं तो हमारा तात्पर्य यह होता है कि उस समय की नवीनतम तान्त्रिकताओं का उपयोग उस देश के अधिकतर भागों एवं क्षेत्रों में किया जाता है। परिपक्वता की अवस्था के बाद अधिक उपभोग की अवस्था आती है परन्तु प्रत्येक राष्ट्र परिपक्वता के पश्चात् अधिक उपभोग अवस्था में प्रविष्ट नहीं हो पाता है क्योंकि जो राष्ट्र परिपक्वता में प्रविष्ट होने के पश्चात् बदलती हुई नवीनतम तान्त्रिकताओं का सतर्कता के साथ सभी क्षेत्रों में द्रुत गति से उपयोग नहीं करता है वह परिपक्वता की स्थिति से पीछे हट सकता है और अधिक उपभोग की अवस्था उसे बहुत समय तक प्राप्त करना सम्भव नहीं हो सकती है।

कुछ देशों में ऐसी परिस्थिति भी आती है कि अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रों में नवीनतम तान्त्रिकताओं को स्वीकार कर लिया जाता है परन्तु कुछ अन्य क्षेत्र परम्परागत तान्त्रिकताओं का उपयोग करते रहते हैं। इस परिस्थिति में यह आवश्यक होता है कि इन दोनों तान्त्रिकताओं में समन्वय स्थापित किया जाय।

जैसे जैसे कोई राष्ट्र तान्त्रिक परिपक्वता की ओर अग्रसर होता है उस राष्ट्र की श्रम शक्ति के गुण एवं संरचना में भी परिवर्तन होने लगता है। ग्रामीण जीवन एवं कृषि पर निर्भर रहने वाली जनसंख्या का अनुपात कम हो जाता है और नगरों की जनसंख्या एवं अर्द्ध कुशल (Semi Skilled) तथा बाबूगीरी का काम करने वाली जनसंख्या का अनुपात बढ़ जाता है। इसके साथ ही राजनीतिक विचारधाराओं में भी परिवर्तन होता है और सरकार को सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा के लिए

अधिक सुविधाओं का आयोजन करना होता है। उद्योगों के नेतृत्व में भी परिवर्तन हो जाता है जबकि स्वयं-स्फूर्त अवस्था में ऐसे लोग नेतृत्व सँभालते हैं जो अपने ही क्षेत्र में उत्पादन का विस्तार करने के लिए रचनात्मक कार्य करते हैं। दूसरी ओर, तान्त्रिक परिपक्वता में बड़े-बड़े व्यवसायों की स्थापना एवं संचालन को अधिक महत्व दिया जाता है जिसके फलस्वरूप वेतनभोगी प्रबन्धकों का महत्व बढ़ने लगता है और नवीन क्षेत्रों का प्रादुर्भाव होता है।

श्रम-शक्ति एवं औद्योगिक प्रबन्ध के विचारों व उद्देश्यों में यह मूलभूत परिवर्तन हो जाने पर समाज के विचारों एवं भावनाओं में भी परिवर्तन होने लगता है जो विद्वत् वर्ग (Intellectuals) एवं राजनीतिज्ञों द्वारा व्यक्त किए जाते हैं। समाज में अब औद्योगिक विस्तार को सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य नहीं माना जाता और औद्योगीकरण से उत्पन्न होने वाले सामाजिक दोषों की ओर ध्यान आकृष्ट होता है। समाज अब उन वस्तुओं और सेवाओं के विस्तार को उचित नहीं समझता जो उनके लिए पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। ऐसी परिस्थिति में जटिल यन्त्रों एवं प्रसाधनों का उपभोगी उपयोग करने की समस्या उदय होती है। पश्चिमी यूरोप और संयुक्त राज्य अमरिका में इस प्रकार की विचारधारा का प्रादुर्भाव सन् १९१४ के पूर्व की परिपक्वता की अवस्था में हुआ था। जापान में यह परिस्थिति सन् १९८० में और रूस में सन् १९५० में उदय हुई थी।

परिपक्वता की अवस्था स्वचालित प्रगति (Self Sustained Growth) के दीर्घ काल के बाद उदय होती है। परिपक्वता की अवस्था प्रारम्भ होने पर अर्थ-व्यवस्था में आधारभूत उद्योगों द्वारा उपलब्ध यन्त्रों एवं प्रसाधनों का उपयोग अन्य उद्योगों में होने लगता है। इस अवस्था में अपनी साहसिक एवं तान्त्रिक कुशलताएँ उन वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन करने के साथ ही जाती हैं जिनका उत्पादन करना वह चयन करती है। रास्टोव के अनुसार, स्वयं-स्फूर्त अवस्था के प्रारम्भ होने के लगभग ६० वर्ष बाद परिपक्वता की अवस्था का प्रारम्भ होता है। दूसरी ओर स्वयं-स्फूर्त को स्वचालित प्रगति की अवस्था में परिवर्तित होने में लगभग २० वर्ष लगते हैं। इस प्रकार ४० वर्ष के स्वचालित विकास के पश्चात् परिपक्वता की अवस्था का प्रारम्भ होता है। इन अनुमानों के आधार पर हमारी अर्थ-व्यवस्था नेहरूवीं पंचवर्षीय योजना अर्थात् सन् २०१६ में परिपक्वता की स्थिति में पहुँच सकेगी परन्तु यह अनुमान उसी समय सही बैठेगा जब नवीनतम तान्त्रिकताओं का उपयोग प्राकृतिक साधनों के विस्तृत शोषण हेतु किया जा सके तथा स्वयं-स्फूर्त अवस्था के सम्पूर्ण होने में लगने वाले समय एवं सरकारी नीतियाँ इसके अनुकूल हों।

(५) **अत्यधिक उपभोग की अवस्था (Age of High Mass Consumption)**—तान्त्रिक क्षेत्र में परिपक्व अर्थ-व्यवस्था में आधुनिक तान्त्रिकताओं का विस्तार उस सीमा तक पहुँच जाता है कि तान्त्रिकताओं का विस्तार ही आर्थिक क्रियाओं का

मौलिक उद्देश्य नहीं समझा जाता। ऐसी परिस्थिति में अर्थव्यवस्था को तीन में किसी भी एक अवस्था की ओर मोड़ लेना होता है—

(अ) अधिक सुरक्षा कल्याण श्रम शक्ति को अधिक अवकाश आदि का आयोजन करना।

(आ) निजी उपभोग में वृद्धि करना जिसके द्वारा पृथक पृथक परिवारों को निवासगृहों तथा टिकाऊ उपभोग वस्तुओं और सेवाओं का बड़े पैमाने पर आयोजन किया जाता है।

(इ) संसार में परिपक्व राष्ट्र को अधिक शक्तियाँ प्राप्त करना।

अत्याधिक उपभोग अवस्था में अर्थ-व्यवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्र टिकाऊ उपभोक्ता-वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन बड़े पैमाने पर करने लगते हैं। प्रति व्यक्ति आय उस सीमा तक बढ़ जाती है कि अधिकतर जनसमुदाय आधारभूत उपभोग भोजन निवास-गृह एवं वस्त्र के अतिरिक्त आराम एवं विलासिताओं की वस्तुओं का उपभोग करने के लिए समर्थ होता है। इस अवस्था में श्रम शक्ति की संरचना में भी परिवर्तन हो जाता है और कार्यालयों में कार्य करने वाले लोगों की संख्या में तीव्र गति से वृद्धि हो जाती है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में सन् १९२० के पश्चात् निजी उपभोग में वृद्धि करने का आयोजन किया गया। सन् १९१४ तक ब्रिटेन एवं पश्चिमी योरोप के राष्ट्रों में अधिक सामाजिक सुरक्षा के लिए अर्थ-व्यवस्था का संचालन किया गया। इसके विपरीत जर्मनी ने अपनी तांत्रिक परिपक्वता का उपयोग संसार के अन्य राष्ट्रों पर अपना प्रभुत्व जमाने के लिए किया।

(६) उपभोग के परे (Beyond Consumption)—पश्चिमी योरोप तथा कुछ सीमा तक जापान जब अत्याधिक उपभोग की अवस्था में प्रविष्ट हो रहे थे उस समय कुछ धनी राष्ट्रों में विशेषकर संयुक्त राज्य अमेरिका में जन्म दर में वृद्धि होना प्रारम्भ हुई और यह जन्मदर वृद्धि द्वितीय महायुद्ध के पश्चात निरन्तर बनी रही अर्थात् अत्याधिक उपभोग की अवस्था के पश्चात जनसाधारण में अधिक सन्तान और बड़े परिवार की प्रवृत्ति जागृत होती प्रतीत होती है। इस ओर मानव की रुचि बढ़ने के कारणों का भली भाँति समझना सम्भव नहीं है। इस प्रवृत्ति का प्रभाव अमेरिका की आर्थिक प्रगति की प्रविधि पर क्या पड़ेगा इसका अनुमान लगाना अत्यन्त कठिन है क्योंकि अमेरिका जैसे विकसित राष्ट्रों में भविष्य के विकास की गति का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है।

जनसंख्या की वृद्धि के फलस्वरूप समाज के साधनों को बढ़ाने की आवश्यकता होगी तथा समाज की उपरिव्यय पूँजी (Social Overhead Capital) का विस्तार करना भी आवश्यक होगा। अमेरिकियों ने जन्मदर वृद्धि का निश्चय करके कुछ समय के लिए बहुतायत अथवा अधिकता की समस्या को स्थगित कर दिया है क्योंकि उपरोक्त

साधनों का पूर्णतम उपयोग करना बढ़ती हुई जनसंख्या के सन्दर्भ में विशेष समस्या उपस्थित नहीं करेगा परन्तु अमेरिका की यह प्रवृत्ति सभी विकसित राष्ट्रों पर लागू हो, यह आवश्यक नहीं है। विकसित समाजों का ऐसी स्थिति में, जहाँ भोजन निवास, वस्त्र टिकाऊ उपभोग-वस्तुओं एवं अन्य सेवाओं की उपलब्धि पर्याप्त मात्रा में हो जाती है पहुँच कर कुछ क्रान्तिकारी निर्णय अवश्य करने पड़ते हैं जिससे विकास की चरम सीमा तक पहुँचकर उन्हें नीचे न गिरना पड़े।

उपर्युक्त विकास की गति की विभिन्न अवस्थाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि विकास और तान्त्रिक ज्ञान में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रगति का क्रम तभी जारी रह सकता है जब तान्त्रिक ज्ञान में भी आवश्यकतानुसार पर्याप्त वृद्धि होती रहे। प्रोफेसर रास्टोव द्वारा निर्धारित विकास की अवस्थाएँ प्रत्येक राष्ट्र पर इसी क्रम से लागू हों, यह अनिवार्य नहीं है। विकास की अवस्थाएँ प्रत्येक देश की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक राजनीतिक आदि परिस्थितियों पर निर्भर रहती हैं।

भारतीय अर्थ-व्यवस्था वर्तमान काल में स्वयंस्फूर्त अवस्था से गुजर रही है और यह सम्भावना है कि वर्तमान प्रगति की दर के आधार पर स्वयंस्फूर्त अवस्था सातवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक पूर्ण हो जायगी अर्थात् भारतीय अर्थ-व्यवस्था स्वचालित विकास-अवस्था में लगभग सन् १९९१ में प्रविष्ट हो सकेगी।

घाटे का अर्थ प्रबन्धन एवं विकास
[Defecit Financing and Development]

[घाटे के अर्थ प्रबन्धन की तान्त्रिकता परिभाषा, उपयोग घाटे का अर्थ प्रबन्धन एवं आर्थिक प्रगति घाटे के अर्थ प्रबन्धन का मूल्य स्तर पर प्रभाव, घाटे के अर्थ प्रबन्धन की सीमाएँ मुद्रा-स्फीति एवं आर्थिक प्रगति भारत में घाटे का अर्थ प्रबन्धन—प्रथम योजना द्वितीय योजना तृतीय योजना वार्षिक योजनाएँ चतुर्थ योजना]

घाटे के अर्थ प्रबन्धन का अर्थ

घाटे के अर्थ प्रबन्धन को समय समय पर अलग अलग अर्थ में समझा जाता रहा है। कुछ समय पूर्व तक बजट का घाटे का बजट आगम खाते के घाटे के आधार पर समझा जाता है अर्थात जिस बजट में आगम प्राप्तियाँ आगम व्यय से कम होती थी तो उसे घाटे का बजट समझते थे। जन ऋण को इस प्रकार बजट की प्राप्तियों में सम्मिलित नहीं किया जाता था परन्तु जब जन ऋण द्वारा बजट के घाटे की पूर्ति करने का आयोजन किया जाता था तो इस व्यवस्था को घाटे का अर्थ प्रबन्धन कहते थे। आधुनिक काल में इस व्यवस्था में परिवर्तन हो गया है। अब जन ऋण को *सरकार के पूंजी स्रोत की प्राप्ति में सम्मिलित किया जाता है और फिर आगम एवं* पूंजी दोनों खातों की प्राप्तियाँ बजट में आयोजित व्यय से कम होती हैं तो इस अन्तर को बजट का घाटा कहते है और इसकी पूर्ति के लिए जो साधन प्राप्त करने के लिए कार्यवाहियाँ की जाती हैं उन्हें घाटे का अर्थ प्रबन्धन कहते हैं। इस प्रकार घाटे का अर्थ प्रबन्धन में अर्थ उन तरीकों से है जिनके द्वारा बजट के अन्तर की पूर्ति के लिए वित्त प्राप्त किए जाते हैं।

घाटे के अर्थ प्रबन्धन की तान्त्रिकता

घाटे के अर्थ प्रबन्धन की व्यवस्था को कीन्स द्वारा प्रसिद्ध किया गया। सन् १६३० की बड़ी मन्दी के साथ कीनिसियन अर्थशास्त्र (Keynesian Economics) का प्रादुर्भाव हुआ और कीन्स ने जानबूझ कर बजट में घाटा रखने की व्यवस्था को मन्दी काल में रोजगार एवं उत्पादन बढ़ाने का महत्वपूर्ण एवं उचित साधन बताया। कीन्स के विचारों के फलस्वरूप घाटे का अर्थ प्रबन्धन पुनःप्राप्ति (Recovery) का महत्वपूर्ण साधन समझा जाने लगा। कीन्स का यह विचार निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित था—

(१) एक विकसित औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था पूर्ण-रोजगार की स्थिति में कल्पित नहीं हो सकती है। किसी भी समय समाज में विद्यमान आय के वितरण तथा स्वभाव के अन्तर्गत निजी क्षेत्र का विनियोजन सम्बन्धीय आय एवं रोजगार का निर्धारण करने के लिए अपर्याप्त हो सकता है।

(२) कमी को दूर करने की परम्परागत विधियाँ—मजदूरी एवं ब्याज की दरों में कमी अधिक प्रभावशाली नहीं होती है। मजदूरी एक ओर, लागत का तत्व होता है और दूसरी ओर मजदूरों की प्रभावशाली माँग को निर्धारित करता है क्योंकि मजदूरी द्वारा उनकी क्रय एवं उपभोग शक्ति घटती बढ़ती है। मजदूरी की दरों में कमी करने से यदि लागत कम हो जाती है तो भी प्रभावशाली माँग में पर्याप्त वृद्धि नहीं हो सकती है क्योंकि मजदूरी की दरें कम करने से मजदूरों की क्रय एवं उपभोग शक्ति भी कम हो जाती है। इसी प्रकार ब्याज की दरों के परिवर्तनों के अनुरूप विनियोजन में भी परिवर्तन नहीं होता है।

(३) उपर्युक्त परिस्थितियों में यदि सरकार घाटे के अर्थ-प्रबन्धन द्वारा अर्थ-व्यवस्था में निश्चित मात्रा में विनियोजन करती है तो आय में वृद्धि होगी जो प्रारम्भिक विनियोजन के गुणक का कार्य करेगी अर्थात् विनियोजन की प्रारम्भिक वृद्धि के फलस्वरूप उपभोग में वृद्धि होगी और विनियोजन एवं उपभोग की इस क्रमानुसार (Successive) वृद्धि राष्ट्रीय आय में विनियोजन-वृद्धि की तुलना में कहीं अधिक वृद्धि कर सकेगी। साधारण शब्दों में इस विचार को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है कि जब सरकार द्वारा विनियोजन निश्चित मात्रा में किया जाता है तो इस विनियोजन के फलस्वरूप, उत्पादन, रोजगार एवं आय सभी में वृद्धि होती है। जिन लोगों की आय में वृद्धि होती है, वे इस वृद्धि का कुछ भाग विनियोजन पर और कुछ अतिरिक्त उपभोग पर व्यय करते हैं जिससे अर्थ-व्यवस्था में उपभोग में वृद्धि होती है। उपभोग में वृद्धि होने के फलस्वरूप उन उत्पादकों की आय में वृद्धि होती है जिनकी वस्तुओं की माँग बढ़ी है और फिर दूसरा उत्पादकों का वर्ग अपनी अतिरिक्त आय को उपभोग एवं विनियोजन पर व्यय कर देता है जिससे अर्थ-व्यवस्था के कुछ अन्य उत्पादकों जिनकी वस्तुओं की माँग आय वृद्धि के कारण बढ़ गयी है की आय में वृद्धि होती है। इस प्रकार यह विधि क्रमानुसार चलती रहती है जिसका अन्तिम परिणाम यह होता है कि प्रारम्भ में जितना विनियोजन सरकार द्वारा घाटे के अर्थ-प्रबन्धन से किया गया था उसकी तुलना में कहीं अधिक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। इस समस्त प्रक्रिया को गुणक प्रभाव (Multiplier Effect) कहा जाता है।

गुणक प्रभाव की यह विचारधारा ही घाटे के अर्थ-प्रबन्धन का मूलाधार है क्योंकि इसके संचालन के फलस्वरूप घाटे के अर्थ-प्रबन्धन द्वारा अर्थ-व्यवस्था का विस्तार करना सम्भव हो सकता है परन्तु गुणक प्रभाव की निम्नलिखित सीमाएँ हैं—

(१) सरकार द्वारा किए गए नवीन विनियोजन का क्रम चलते रहना चाहिए अन्यथा एक बार किये विनियोजन का गुणक प्रभाव जब समाप्त हो जायगा तो राष्ट्रीय आय कम होने लगेगी।

(२) आय की प्राप्ति एवं उसके व्यय करने में कुछ समय का अन्तर रहता है। इसी प्रकार व्यय की गयी राशि आय के रूप में उत्पन्न होने में भी कुछ समय लगता है। इस समय के अन्तर में अर्थ-व्यवस्था की स्थिति यथावत बनी रहेगी अथवा और खराब भी हो सकती है।

(३) प्राप्त अतिरिक्त आय का सम्पूर्ण भाग व्यय नहीं किया जा सकता है। लोग कुछ भाग अपने पास बचत के रूप में रख सकते हैं और कुछ पुराने ऋणों के शोधनार्थ उपयोग हो सकता है। यह उपयोग अतिरिक्त आय के गुणक प्रभाव को शिथिल कर सकती है।

(४) सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Consume) में चक्रीय परिवर्तन हो सकते हैं जिससे गुणक प्रभाव में अस्थिरता आ सकती है।

इन सब परिसीमाओं के होते हुए भी यह मान्यता पुष्ट हो गयी है कि घाटे के अर्थ प्रबन्धन द्वारा वित्त व्यवस्था करके जो व्यय किए जाते हैं उनसे अर्थ-व्यवस्था का अधिक विस्तार होता है अपेक्षाकृत उन कार्यक्रमों को जिनके लिए करारोपण द्वारा वित्त एकत्रित किया जाता है। इसी कारण आधुनिक काल में घाटे के अर्थ प्रबन्धन को व्यवस्था को बजट सम्बन्धी मुख्य नीति समझा जाता है।

घाटे के अर्थ प्रबन्धन की परिभाषा

घाटे के अर्थ प्रबन्धन का अर्थ विभिन्न राष्ट्रों में अलग अलग समझा जाता है, इसलिए इसकी सर्वमान्य परिभाषा देना सम्भव नहीं है। पश्चिमी राष्ट्रों में जब पूर्व विचार द्वारा सरकारी व्यय को सरकारी आय से अधिक रखा जाता है और इस प्रकार उदय हुई आय की हीनता की पूर्ति जिसे एस ऋण द्वारा की जाती है जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय व्यय में वृद्धि होती हो तो इस व्यवस्था को घाटे का अर्थ प्रबन्धन कहते हैं। विकसित राष्ट्रों में आय की हीनता की पूर्ति बैंकों द्वारा अधिक साख निर्माण करा कर कर दी जाती है। बैंकों से सरकार द्वारा इस प्रकार जो साख प्राप्त की जाती है उसके फलस्वरूप या तो बैंकों में जमा धन जिसका बैंक उपयोग न कर रहा था गतिमान हो जाता है अथवा सरकारी प्रतिभूतियों को क्रय करने वाली बैंक जनता से अधिक जमा प्राप्त करती हैं। इन दोनों ही परिस्थितियों में राष्ट्र के कुल व्यय में वृद्धि हो जाती है।

अल्प विकसित राष्ट्रों में, जहाँ जनसाधारण में अधिकोषण-सुविधाओं को स्वभावतः विस्तृत रूप से स्वीकार एवं उपयोग नहीं किया जाता है और जहाँ अधिकतर व्यवहार मुद्रा द्वारा किए जाते हैं घाटे के अर्थ प्रबन्धन के लिए प्राय सरकार को केन्द्रीय बैंक से ऋण लेना होता है। सरकार यह ऋण लेने के लिए केन्द्रीय बैंक को

अपनी प्रतिभूतियाँ दे देती है जिनको सचिति में रखकर केन्द्रीय बैंक नयी कागजी मुद्रा निर्गमित करके सरकार को देती है। सरकार इस मुद्रा का उपयोग करके अपने व्ययों का भुगतान करती है और बजट की हीनता की पूर्ति कर लेती है। इस प्रकार अल्प विकसित राष्ट्रों में घाटे के अर्थ प्रबन्धन द्वारा देश की मुद्रा की पूर्ति में विस्तार होता है।

भारतवर्ष में घाटे के अर्थ प्रबन्धन का अर्थ मुद्रा प्रसार से लिया जाता है। सरकारी व्यय का वह भाग, जो सरकार द्वारा जनता एवं बैंकों से ऋण लेकर पूरा किया जाता है घाटे के अर्थ प्रबन्धन में सम्मिलित नहीं किया जाता है। हमारे देश में इस प्रकार घाटे के अर्थ प्रबन्धन में तीन कार्यवाहियों को सम्मिलित किया जाता है—

(अ) केन्द्रीय बैंक अर्थात् रिजर्व बैंक से सरकार द्वारा ऋण लेना,

(आ) सरकार द्वारा रिजर्व बैंक में जमा नगद राशि का आहरण करना तथा

(इ) सरकार द्वारा रिजर्व बैंक के अतिरिक्त नवीन कागजी मुद्रा को जारी करना।

पहली और दूसरी कार्यवाहियों में केन्द्रीय बैंक सरकारी प्रतिभूति के विरुद्ध नवीन मुद्रा जारी करती है और तीसरी क्रिया में सरकार जन विश्वास के आधार पर नवीन कागजी मुद्रा जारी करती है जैसे भारत में एक रुपये का नोट सरकार द्वारा जारी किया जाता है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम घाटे के अर्थ प्रबन्धन में सम्मिलित होने वाले तथ्यों का विश्लेषण निम्न प्रकार कर सकते हैं—

(१) सरकारी व्यय को (आगम एवं पूँजीगत दोनों) सरकारी आय से जानबूझ कर अधिक रखना और घाटे का बजट बनाना।

(२) बजट में आय की व्यय पर जो हीनता हो, उसकी सरकार द्वारा बैंकों से ऋण लेकर, केन्द्रीय बैंक से ऋण लेकर, जमा-नगद का आहरण करके तथा नवीन मुद्रा जारी करके पूर्ति की जाना।

(३) केन्द्रीय बैंक को सरकारी प्रतिभूतियों के विरुद्ध नवीन मुद्रा निर्गमित करने का अधिकार देना।

(४) समस्त राष्ट्रीय व्यय में वृद्धि करके अर्थ-व्यवस्था का विस्तार करना।

(५) साख एवं/अथवा मुद्रा का प्रसार होना।

इन तथ्यों को आधार मानते हुए हम घाटे के अर्थ प्रबन्धन को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं— 'घाटे का अर्थ प्रबन्धन उस व्यवस्था को कहते हैं जिसके अन्तर्गत पूर्व विचार द्वारा सरकारी व्यय को सरकारी आय से अधिक रखा जाता है और इस प्रकार उदय हुई आय की हीनता की पूर्ति सरकार व्यापारिक बैंकों से ऋण लेकर, केन्द्रीय बैंक से ऋण लेकर केन्द्रीय बैंक में अपने जमा नगद का आहरण कर तथा नवीन मुद्रा जारी कर करती है।

घाटे के अर्थ प्रबन्धन का उपयोग

घाटे के अर्थ प्रबन्धन का उपयोग विभिन्न राष्ट्रों में विभिन्न कठिन परिस्थितियों का निवारण करने हेतु किया गया है। सामान्यत इस व्यवस्था का उपयोग मन्दीकाल युद्ध तथा आर्थिक विकास की प्रक्रियाओं में किया जाता है। मन्दीकाल में जब मौद्रिक नीति द्वारा सुधार नहीं हो पाता है अर्थात जब ब्याज की दर में कमी कर देने पर भी व्यक्तिगत विनियोजकों को आर्थिक क्रियाओं में अतिरिक्त विनियोजन करने के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन प्रदान करने में सफलता नहीं होती तो सरकारी व्यय कार्यक्रम द्वारा अर्थ व्यवस्था के कुल व्यय में वृद्धि की जाती है जिससे राष्ट्रीय आय का स्तर बनाये रखने एवं उपभोग तथा विनियोजन का निर्वाह करने में सहायता मिलती है क्योंकि कुल व्यय में वृद्धि होने से प्रभावशाली माँग में वृद्धि होती है जो समस्त उत्पादक क्रियाओं की सक्रियता का मूलाधार होता है।

युद्धकाल में सरकार के व्यय में अत्यधिक वृद्धि होती है क्योंकि सरकार को युद्ध के लिए अधिक वस्तुओं एवं सेवाओं की आवश्यकता होती है। प्रारम्भिक अवस्था में सरकार बजट के अन्य साधनों—कर शुल्क एवं ऋण से वित्त प्राप्त करने का प्रयत्न करता है परन्तु जब इन साधनों से पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं होते हैं तो घाटे के अर्थ प्रबन्धन द्वारा वित्तीय साधन प्राप्त किये जाते हैं। युद्धकाल में साधनों को उपभोग-वस्तुओं से हटाकर युद्ध वस्तुओं की ओर ले जाना अनिवार्य होता है जिसके फलस्वरूप विवशतापूर्ण बचत अथवा मुद्रा स्फीति का उदय होना स्वाभाविक होता है। युद्ध के प्रारम्भिक काल में सरकार की वस्तुओं एवं सेवाओं की बढ़ती हुई माँग की पूर्ति उपयोग न किये साधनों का उपयोग करके तथा निजी विनियोजन के लिए उपलब्ध साधनों में कटौती कर की जाती है परन्तु जब इन साधनों का पूर्णतम उपयोग हो जाता है और फिर भी घाटे के अर्थ प्रबन्धन द्वारा अतिरिक्त साधन प्राप्त किये जाते हैं तो मुद्रा की पूर्ति एवं तदानुसार लोगों की मौद्रिक आय में वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप मूल्य-स्तर में निरन्तर वृद्धि होती जाती है और सरकार को युद्ध के अतिरिक्त मुद्रा स्फीति को नियन्त्रित रखने की कठिन समस्या का भी सामना करना पड़ता है।

घाटे का अर्थ प्रबन्धन एवं आर्थिक विकास

अल्प विकसित राष्ट्रों में जनसाधारण की आय अत्यन्त कम होती है जिसके फलस्वरूप वे अपनी अनिवार्यताओं की पूर्ति नहीं कर पाते हैं। ऐसे समाज में जब लोगों की आय में वृद्धि आती है तो इस वृद्धि का अधिकतर भाग और कभी-कभी सम्पूर्ण मात्र उपभोग पर व्यय कर लिया जाता है। इस स्थिति को अर्थशास्त्र में अधिक उपभोगक्षमता (High Propensity to Consume) कहते हैं। इस प्रकार अल्प विकसित राष्ट्रों में राष्ट्रीय आवश्यकताओं की तुलना में ऐच्छिक बचत बहुत कम रहती है। ऐच्छिक बचत कम होने के कारण उत्पादन आय बचत एवं अन्तत बचत सभी का स्तर कम रहता है। निर्धन राष्ट्रों में इस दूषित चक्र को तोड़ने के लिए

सरकार को आर्थिक विकास की प्रक्रिया का प्रारम्भ पर्याप्त मात्रा में सरकारी विनियोजन कर करना पड़ता है। बड़े पैमाने पर सरकारी विनियोजन सरकार के सामान्य वित्तीय साधनों से नहीं किया जा सकता है। इसलिए घाटे के अर्थ-प्रबन्धन की व्यवस्था का उपयोग करने की आवश्यकता होती है।

अल्प-विकसित राष्ट्रों में घाटे के अर्थ प्रबन्धन का स्वरूप अधिकोषों तथा जनता से ऋण का नहीं होता क्योंकि इन दोनों मदें वित्तीय ऋण के अन्तर्गत सम्मिलित की जाती है और इन्हें पूँजीगत प्राप्ति मानकर बजट के साधनों में सम्मिलित कर दिया जाता है। इन अल्प विकसित राष्ट्रों में घाटे के अर्थ-प्रबन्धन में नवीन मुद्रा का निर्गमन अवश्यम्भावी रहता है और यह केन्द्रीय बैंक द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों के विरुद्ध किया जाय और बाद में सरकार द्वारा व्यय किया जाय। इस व्यवस्था द्वारा जो साधन उपलब्ध होते हैं उन्हें सरकार द्वारा अर्थ-व्यवस्था में विनियोजित किया जाता है और विनियोजन एवं उपभोक्ता-वस्तुओं के वास्तविक उत्पादन में समय का अन्तर रहता है अर्थात् विनियोजन प्रारम्भ में उत्पादक वस्तुओं के क्षेत्रों में होता है और इनसे सम्बन्धित परियोजनाओं का निर्माण अवस्था में कुछ वर्षों का समय लग जाता है। जब यह परियोजनाएँ उत्पादक वस्तुओं का उत्पादन करना प्रारम्भ कर देती हैं तब इनकी सहायता से उपभोक्ता-वस्तुओं के क्षेत्रों का विस्तार किया जाता है। इस प्रक्रिया में भी कुछ वर्षों का समय लगता है। इस प्रकार विनियोजन करने के समय एवं इसके द्वारा उपभोक्ता वस्तुओं के वास्तविक उत्पादन के समय में कुछ वर्षों का अन्तर रहता है। इस मध्यकाल में उपभोक्ता-वस्तुओं की माँग एवं पूर्ति में असन्तुलन बढ़ जाता है क्योंकि नवीन विनियोजन द्वारा जनसाधारण की आय में वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप उपभोक्ता-वस्तुओं की माँग में वृद्धि हो जाती है। दूसरी ओर इस मध्यकाल में उपभोक्ता-वस्तुओं की पूर्ति में वृद्धि नहीं होती है। माँग एवं पूर्ति के इस असन्तुलन को यदि सरकारी नियन्त्रणों एवं प्रतिबन्धों द्वारा समायोजित नहीं किया जाता है तो घाटे के अर्थ-प्रबन्धन द्वारा मुद्रा-स्फीति के दबाव का सृजन हो जाता है।

घाटे का अर्थ प्रबन्धन एवं मुद्रा-स्फीति

अल्प विकसित राष्ट्रों में घाटे के अर्थ प्रबन्धन का तुरन्त प्रभाव स्फीतिक होता है क्योंकि इन राष्ट्रों के बेकार पड़े साधनों के उपयोग द्वारा वास्तविक उत्पादन बढ़ाना कठिन होता है। अल्प-विकसित अर्थ-व्यवस्थाएँ प्राय लचीली नहीं होतीं और नवीन उत्पादन क्रियाओं को स्वीकार करने में अधिक समय लेती हैं। फलस्वरूप घाटे के अर्थ-प्रबन्धन द्वारा जो मौद्रिक माँग में वृद्धि होती है उसके अनुरूप उत्पादन में वृद्धि नहीं हो पाती है क्योंकि अर्थ-व्यवस्था में उत्पादक घटकों—पूँजीगत साधन, साहस, तकनीकी ज्ञान, आर्थिक संगठन, विपणि तथा व्यवस्था, आर्थिक एवं सामाजिक सुविधाओं आदि की कमी होती है। इस प्रकार प्रभावशाली माँग के अनुरूप वस्तुओं की पूर्ति बढ़ना नहीं

हो पाती है। पूर्ति में लोच कम रहती है और प्रभावशाली माँग के बढ़ते रहने पर भी जब पूर्ति तदनुसार नहीं बढ़ती है तो मूल्यों में वृद्धि होना स्वाभाविक होता है।

अल्प-विकसित राष्ट्रों में पूर्ति की लोच अर्थ-व्यवस्था के सभी क्षेत्रों में समान नहीं होती है। कृषि-क्षेत्र में जो राष्ट्रीय आय का ५०% से भी अधिक भाग जुटाता है, पूर्ति की लोच उद्योगों की तुलना में बहुत कम रहती है। यद्यपि पूर्ति की लोच अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में पृथक्-पृथक् होती है, फिर भी, राष्ट्रीय कुल व्यय में वृद्धि हो जाने पर केवल उन्हीं क्षेत्रों के मूल्यों पर ही प्रभाव नहीं पड़ता जिनमें पूर्ति की लोच कम रहती है अर्थात् राष्ट्रीय कुल व्यय में घाटे के अर्थ-प्रबन्धन द्वारा जो वृद्धि होती है, उसके प्रभाव से अर्थ-व्यवस्था के सामान्य मूल्य-स्तर में वृद्धि हो जाती है। सामान्य मूल्य-स्तर में वृद्धि के निम्नलिखित प्रमुख कारण होते हैं—

घाटे के प्रबन्धन का मूल्य-स्तर पर प्रभाव

(१) घाटे के अर्थ-प्रबन्धन द्वारा जो कुल व्यय में वृद्धि होती है, उस वृद्धि का अधिकतर भाग उन क्षेत्रों में केन्द्रित हो जाता है जिनमें पूर्ति की लोच कम होती है जिसके फलस्वरूप पूर्ति की कम लोच रखने वाले क्षेत्रों में आय का स्तर ऊँचा हो जाता है और आय के वितरण का वर्तमान स्वरूप बदल जाता है। ऐसी परिस्थिति में अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्र, जिनमें पूर्ति लोचदार होती है, भी मूल्य-स्तर को स्थिर नहीं रहने देते हैं क्योंकि उन्हें भी बेलोचदार क्षेत्रों से वस्तुएँ एवं सेवाएँ प्राप्त करनी होती हैं। इस प्रकार अर्थ-व्यवस्था के सामान्य मूल्य-स्तर में वृद्धि होती है।

(२) अल्प-विकसित राष्ट्रों में उपभोगक्षमता अधिक होने के कारण आय की वृद्धि के साथ-साथ खाद्य-पदार्थों की माँग में अधिक वृद्धि हो जाती है परन्तु कृषि-क्षेत्र की पूर्ति अल्पकाल में बेलोचदार होती है। इस परिस्थिति में खाद्य-पदार्थों के मूल्यों में तीव्र गति से वृद्धि हो जाती है और वृद्धि कृषि-क्षेत्र में लगी जनसंख्या की आय एवं खाद्य-पदार्थों के उपभोग में वृद्धि कर देती है। इस प्रकार गैर-कृषि क्षेत्रों में खाद्य-पदार्थों की पूर्ति में कमी हो जाती है। कृषक की आय बढ़ने के कारण वह गैर-कृषि उत्पादों का उपभोग भी अधिक मात्रा में करने लगता है। इस स्थिति में एक ओर गैर-कृषि-क्षेत्र को खाद्य-पदार्थों के लिए अधिक मूल्य देना हो पड़ता है और दूसरी ओर गैर-कृषि उत्पादों की पूर्ति का कम भाग उपलब्ध होता है। अन्ततः गैर-कृषि-क्षेत्रों को इस परिस्थिति का सामना करने के लिए अपने मूल्य-स्तर में वृद्धि करना अनिवार्य हो जाता है।

(३) अल्प-विकसित राष्ट्रों में आय में वृद्धि करने की सीमान्त-क्षमता भी अधिक होती है और आय की वृद्धि के साथ आयात में वृद्धि हो जाती है। आयात की वृद्धि की गति इतनी तीव्र रहती है कि निर्यात-वृद्धि तदनुरूप होना सम्भव नहीं होता है। इस प्रकार भुगतान-शेष प्रतिकूल होने लगता है। जब आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिये जाते हैं तो बढ़ी हुई आय का दबाव आन्तरिक उपभोग वस्तुओं की पूर्ति पर पड़ता है

बन्द हुए क्षेत्रों में पूर्ति में माँग की शीघ्र वृद्धि नहीं होता है जिससे उस क्षेत्र के उत्पादों का मूल्य बढ़ जाता है। एक क्षेत्र की मूल्य वृद्धि दूसरे क्षेत्रों का मूल्य वृद्धि को प्रभावित करता है। इस प्रकार अल्प विकसित राष्ट्रों में घाटे के अर्थ प्रबन्धन से मुद्रा स्फीति उदय होने की प्रवृत्ति होती है।

घाटे के अर्थ प्रबन्धन की सीमाएँ

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि अल्प विकसित राष्ट्रों में घाटे के अर्थ प्रबन्धन द्वारा मुद्रा स्फीति अधिक होने की सम्भावना रहती है और पूर्ण रोजगार की स्थिति में पहुँचकर अथवा रोजगार में महत्वपूर्ण वृद्धि होने के पूर्व ही मुद्रा स्फीति का परिमाण भयानक रूप ग्रहण कर सकता है। अल्प विकसित राष्ट्रों में इसलिए नियोजित विकास हेतु घाटे के प्रबन्धन का सीमित उपयोग करना चाहिए और यह सीमाएँ निम्न तत्वों पर आधारित की जा सकती हैं—

(१) घाटे के अर्थ प्रबन्धन का प्रभाव इस बात पर निर्भर रहता है कि अतिरिक्त क्रय-शक्ति प्राप्त करने वाले लोगों में इसकी क्या प्रतिक्रिया होती है। वे लोग अतिरिक्त क्रय शक्ति तरल साधनों अर्थात् मुद्रा आदि के रूप में संगृहीत कर अपने पास रखने के इच्छुक हो सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में मुद्रा स्फीति होने का भय उस सीमा तक नहीं होगा जितनी मुद्रा संगृहीत कर रखी जाती है। यदि वे लोग अतिरिक्त क्रय शक्ति को आधारभूत उपभोक्ता वस्तुओं पर व्यय करेंगे तो घाटे का अर्थ प्रबन्धन मुद्रा स्फीति का कारण बन जायगा। अतिरिक्त क्रय शक्ति प्राप्त करने वालों में यदि विनियोजन करने की प्रवृत्ति होगी तो मुद्रा स्फीति का दबाव कम रहेगा। इन लोगों की इन प्रवृत्तियों में सरकार राजकोषीय एवं मौद्रिक नीतियों द्वारा कुछ हेर फेर अवश्य कर सकती है।

(२) जब अर्थ व्यवस्था में सरकारी क्षेत्र का महत्व अधिक हो तो बढ़ते हुए उत्पादन को स्थिर मूल्यों पर रखने के लिए यह आवश्यक होगा कि मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि की जाय अन्यथा वस्तुओं के मूल्यों में पूर्ति बढ़ने के कारण कमी आ सकती है।

(३) आर्थिक प्रगति के साथ साथ जो आय रोजगार उत्पादन एवं अन्य सभी आर्थिक क्रियाओं में तीव्र गति से वृद्धि होती है और समाज को अपने दिन प्रति दिन व्यवहारों में अधिक राशि नगद अपने पास रखनी पड़ती है। मुद्रा की इस बढ़ी हुई माँग की पूर्ति के घाटे का अर्थ प्रबन्धन किया जा सकता है।

(४) जब अर्थ व्यवस्था में उपयोग न हुए उत्पादन के साधन बड़ी मात्रा में उपलब्ध हों तो घाटे के अर्थ प्रबन्धन द्वारा क्रय-शक्ति में की वृद्धि होगी उससे इन साधनों का उपयोग उत्पादक क्रियाओं में होने लगेगा और बढ़ी हुई मुद्रा का यह बना हुआ उत्पादन आच्छादित कर लेगा जिससे मूल्यों में वृद्धि नहीं होगी परन्तु यह परिस्थिति दो बातों पर निर्भर रहेगी—प्रथम अर्थ व्यवस्था में उत्पादन के सभी साधनों—पूँजी, तान्त्रिक ज्ञान पूँजीगत एवं उत्पादक वस्तुएँ आदि सभी उपलब्ध होना चाहिए

और द्वितीय, उपयोग हुए साधनों का पर्याप्त मात्रा में वस्तुओं के उत्पादन के लिए उपभोग किया जाना चाहिए।

(५) घाटे के अर्थ प्रबन्धन द्वारा मुद्रा-स्फीति उदय नहीं होती है, यदि इसकी राशि के बराबर ही देश का प्रतिकूल भुगतान शेष हो क्योंकि बढ़ी हुई क्रय शक्ति को आच्छादित करने के लिए आयात की गयी वस्तुएं उपलब्ध हो जाती हैं। प्रतिकूल भुगतान शेष की पूर्ति विदेशी सहायता द्वारा अथवा देश के पास विदेशी मुद्रा एवं स्वर्ण के संचय से की जा सकती है।

(६) विकास का प्रकार तथा स्तर, जिस हेतु इस व्यवस्था का प्रयोग किया जाता है। यदि मुद्रा प्रसार द्वारा प्राप्त साधनों का विनियोजन ऐसी परियोजनाओं में किया जाता है जिनकी पूर्ति में अधिक समय लगता हो और जिनके द्वारा पूँजीगत एवं उत्पादक वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन किया जाता हो तो मूल्यों में अधिक वृद्धि होने की सम्भावना होती है और नियोजन अधिकारी को कठोर राजकोषीय (Fiscal) एवं मौद्रिक (Monetary) नीतियों का संचालन करना आवश्यक होगा। विकास की प्रारम्भिक अवस्था में नियोजन अधिकारी को इसीलिए योजनाओं में अल्प काल में पूर्ण होने वाली परियोजनाओं को पर्याप्त स्थान देना चाहिए।

(७) विकास-व्यय द्वारा आय में होने वाली वृद्धि की मात्रा का अनुमान लगाना चाहिए कि वह अतिरिक्त आय किस वर्ग के पास जायगी तथा वह वर्ग इस अतिरिक्त आय का किस प्रकार उपयोग करेगा। यदि योजना में कृषि विकास को प्राथमिकता दी गयी हो तो ग्रामीण क्षेत्र में अतिरिक्त आय का अधिकांश कृषक एवं कृषि श्रमिक के हाथ में जायगा। इसके साथ ही यह भी अनुमान लगाना आवश्यक है कि अतिरिक्त आय पाने वाले वर्ग से अतिरिक्त आय का कितना भाग सरकार द्वारा कर तथा ऋण के रूप में वापस लिया जा सकेगा तथा उसका कितना भाग उपभोक्ता-वस्तुओं पर व्यय किए जाने की सम्भावना है तथा किस प्रकार की उपभोक्ता-वस्तुओं की माँग में वृद्धि होगी और इन वस्तुओं की पूर्ति किस सीमा तक वर्तमान तथा सम्भावित उत्पादन तथा वितरण द्वारा सम्भव है। इस प्रकार माँग तथा मूल्यों में वृद्धि का आयात निर्यात के प्रकार तथा मात्रा पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसका भी अनुमान लगाया जाना चाहिए। इन सभी अनुमानों के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकेगा कि उपभोक्ता-वस्तुओं के मूल्यों में कितनी वृद्धि होगी तथा इस वृद्धि से किस वर्ग को अधिक कठिनाई पड़ेगी। राज्य इन कठिनाइयों के निवारण का आयोजन कर सकता है।

(८) विकास के कार्यक्रमों पर किए गए विनियोजन की प्रभावशीलता की सीमा का अध्ययन भी आवश्यक है। प्रजातान्त्रिक नियोजन में अत्यन्त कठोर कार्यवाहियों को स्थान नहीं होता और इस कारणवश साधनों का महत्वपूर्ण भाग अपव्यय हो जाता है। विनियोजन का प्रकार तथा उसके द्वारा उपभोक्ता-वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि की सीमा तथा अवधि द्वारा यह निर्धारित किया जा सकता है कि मूल्यों का

सामान्य स्तर ग्रहण करने में कितना समय लगेगा तथा क्या क्या कार्य करना आवश्यक होगा।

(९) राज्य-द्वारा मूल्यों की वृद्धि पर नियन्त्रण रखने तथा आवश्यक वस्तुओं के वितरण सम्बन्धी कार्यवाहियाँ किस सीमा तक की जा सकती हैं तथा कहाँ तक सफल हो सकेंगी इसका भी अनुमान लगाना आवश्यक है। इसमें आर्थिक तत्वों के अतिरिक्त सामाजिक तथा राजनीतिक तत्वों को दृष्टिगत करना अनिवार्य होगा। जन-समुदाय के सामान्य चरित्र तथा राज्य के कर्मचारियों की कार्यशीलता प्रबन्धन शक्ति तथा ईमानदारी पर राज्य की मूल्य नियन्त्रण तथा वितरण की कार्यवाहियों की सफलता निर्भर रहती है। सरकारी पक्ष को जनता का कितना सहयोग प्राप्त है तथा उपभोग में कटौती होने पर जनता में किस सीमा तक विरोध होगा इस पर ध्यान देना भी आवश्यक है। यदि सरकार की नीतियाँ प्रभावशाली नहीं हुईं तो विकास-सम्बन्धी मुद्रा प्रसार द्वारा मुद्रा स्फीति भयानक रूप धारण कर सकती है।

(१०) राजकीय तथा निजी क्षेत्रों में कर्मचारियों तथा श्रमिकों के पारिश्रमिक को मुद्रा में निश्चित करने के ढंग तथा पारिश्रमिक को सीमित रखने की सम्भावना का भी अनुमान लगाना आवश्यक होता है। यदि पारिश्रमिक दर उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्यों पर आधारित होती है तब यह नियन्त्रण रखना कठिन होगा। दूसरी ओर यदि पारिश्रमिक को मूल्यों के अनुसार नहीं बढ़ाया जायगा तो श्रमिक की कार्यशीलता तथा उत्पादनक्षमता को क्षति पहुँचेगा। इन दोनों सीमाओं के मध्य में पारिश्रमिक निर्धारित किया जाना चाहिए। पारिश्रमिक दर राष्ट्र की श्रमिक संस्थाओं के संगठन तथा उनकी प्रवृत्तियों और सरकार द्वारा उनकी कार्यवाहियों पर नियन्त्रण रखने की क्षमता से भी प्रभावित होगा।

(११) वर्तमान मूल्य-स्तर तथा प्रचलित मुद्रा की मात्रा के आधार पर भी यह निश्चय किया जा सकता है कि घाटे के अर्थ प्रबन्धन का किस सीमा तक उपयोग सम्भाव्य है। यदि अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य स्तर की तुलना में राष्ट्रीय मूल्य स्तर कम हो तब मूल्य में सामान्य वृद्धि से मुद्रा स्फीति का कोई भय नहीं होगा और मुद्रा का अर्थ व्यवस्था की आवश्यकताओं के अनुसार प्रसार किया जा सकता है। विकास-व्यय द्वारा अर्थ-व्यवस्था में वस्तुओं के उत्पादन तथा पूर्ति में वृद्धि के साथ साथ मुद्रा का प्रसार होना भी आवश्यक होगा।

उपर्युक्त घटकों की आधारशिला पर ही विकास सम्बन्धी मुद्रा प्रसार की सीमाओं का निर्माण होना चाहिए। उपर्युक्त घटकों के प्रतिकूल होने की दशा में मुद्रा प्रसार मुद्रा स्फीति का रूप धारण कर सकता है इसलिए मुद्रा का प्रसार केवल उसी सीमा तक करना चाहिए जहाँ तक मुद्रा स्फीति का भय उपस्थित न हो। वस्तुओं के मूल्यों में कुछ सीमा तक वृद्धि कोई भयसूचक नहीं बल्कि मुद्रा स्फीति की अवस्था उसी समय कही जानी चाहिए जब मूल्यों में वृद्धि और अधिक मूल्य वृद्धिकारक हो। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने पर पूँजी निर्माण के स्थान पर पूँजी का उपभोग होना प्रारम्भ

हो जाता है तथा किसी भी प्रकार से आर्थिक विकास सम्भव नहीं होता। "जब घाट का अर्थ प्रबन्धन मुद्रा स्फीति की अवस्था का रूप ग्रहण कर ले, उस समय इसके द्वारा न तो पूँजी का निर्माण होता है और न आर्थिक विकास ही होता है। घाटे का अर्थ प्रबन्धन अपने आप में न अच्छा है और न बुरा और न ही घाटे के अर्थ प्रबन्धन में मुद्रा स्फीति स्वभावतः निहित है।"[1]

साधारण शब्दों में यह कहा जा सकता है कि विकास-व्यय जो घाटे के अर्थ प्रबन्धन द्वारा किया जाता है एवं अस्थायी रूप से उस अवधि में जो अतिरिक्त आय की पुष्टि करने के लिए उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि करने में प्रयोग किया जाता है मूल्यों में वृद्धि का कारण होता है। यदि विकास व्यय के अधिकतर भाग के लिए सरकार उत्तरदायी हो तथा वह विकास-कार्यक्रमों का बजट के मामलों की दृष्टिगत न करते हुए प्रभावशील एवं मायशील युक्तियों एवं विधियों से सचालित करती है, यदि वह निजी विनियोजन का नियन्त्रित करके निजी पूँजी का अविवेकपूर्ण उत्पादन से रोक कर राष्ट्रीय विकास-कार्यों में विनियोग करती है, यदि वह मूल्यों की उच्चतम सीमा निश्चित करती है, यदि वह आवश्यक वस्तुओं आदि के वितरण का प्रबन्ध करके मूल्य वृद्धि को रोकती है, यदि वह आयात की मात्रा तथा प्रकार पर नियन्त्रण कर सकती है, यदि उसके द्वारा विकास-कार्य युद्ध की आवश्यक परिस्थितियों के समान सचालित किया जाता है, तभी घाटे के अर्थ प्रबन्धन का उपयोग आर्थिक विकास में सराहनीय वांछनीय एवं सहायक सिद्ध होगा। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि घाटे का अर्थ-प्रबन्धन अनुभवी एवं निपुण तथा कार्यकुशल हाथों में विकास-पथ पर अग्रसर राष्ट्र हेतु वरदान सिद्ध होगा जो यथा विकास की चरम सीमा पर पहुँचे राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था का दिन दिन कर सकने की क्षमता वाला अभिशाप भी हो सकता है।

मुद्रा-स्फीति एवं आर्थिक प्रगति

अब हमारे सामने प्रश्न आता है कि घाटे के अर्थ प्रबन्धन की व्यवस्था का उपयोग अल्प विकसित राष्ट्रों में क्या उचित है? यह तो अब तक के विस्तृत विवरण से स्पष्ट हो गया है कि घाटे के अर्थ प्रबन्धन द्वारा मुद्रा-स्फीति का उदय होता ही है। यदि हम मुद्रा-स्फीति को आर्थिक विकास के लिए उचित मान लें तो घाटे के अर्थ प्रबन्धन का औचित्य स्वयं सिद्ध हो जायगा। मुद्रा-स्फीति का आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है इस सम्बन्ध में विचार एवं अनुभवों में बहुत मतभेद है। जब

1 When deficit financing degenerates inflationary finance it ceases to promote either capital formation or economic development By itself deficit financing is neither good nor bad nor is inflation inherent in deficit finance (Dr V K R V Rao *Eastern Economist Pamphlet Deficit Financing Capital Formation and Price Behaviour in An Under developed Economy*, p 16)

अन्य साधनों से अर्थ साधन विकास हेतु पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न हो सकते हों तो अल्प विकसित राष्ट्र के सम्मुख दो ही रास्ते रह जाते हैं—विकास की गति को मन्द रखना अथवा घाटे के अर्थ प्रबन्धन द्वारा अर्थ साधनों में वृद्धि करना और मुद्रा स्फीति का सामना करना। प्रायः दूसरी विधि का ही उपयोग किया जाता है अर्थात् मुद्रा प्रसार द्वारा पूंजी निर्माण एवं विकास की गति को तीव्र किया जाता है। इसलिए सामान्य विधियों से साधन उपलब्ध न होने के कारण अल्प विकसित राष्ट्रों में विकास के लिए मुद्रा स्फीति आवश्यक समझी जाती है। मुद्रा स्फीति द्वारा मूल्यों में वृद्धि होती है जिससे साधनों की बचत न करने वालों से बचत करने वालों को हस्तान्तरित होने में सुविधा होती है और कुल पूंजी संचय में वृद्धि होती है। यदि सरकार विनियोजक हो तो मुद्रा स्फीति सम्भावित साधनों (Potential Resources) के उपयोग में सहायक होती है और आर्थिक विकास की गति को बढ़ाती है। यदि पूंजीगत साधनों की किसी प्रकार व्यवस्था करके बेरोजगारों को उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों में रोजगार में लगा दिया जाय और उनके पारिश्रमिक का शोधन करने के लिए नवीन मुद्रा निर्गमित की जाय तो यह श्रमिक अपनी आय में जो बचत करेंगे उसका उपयोग श्रमिकों के उस वर्ग को पारिश्रमिक के रूप में उपयोग हो सकता है जो पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए रोजगार में लगाया जाय। इस परिस्थिति में घाटे का अर्थ प्रबन्धन मुद्रा स्फीति के उदय एवं विनाश दोनों का ही कारण बन सकता है और मुद्रा स्फीति केवल एक अल्पकालीन घटना बनकर रह सकती है। जब मुद्रा स्फीति का उपयोग उत्पादक पूंजी को बढ़ाने के लिए किया जाता है और इस बढ़ी हुई पूंजी का कुशलता एवं विवेक के साथ उपयोग होता है तो अन्ततः वस्तुओं एवं सेवाओं की पूर्ति में मुद्रा की वृद्धि के अनुरूप वृद्धि हो जाती है।

विकासशील अर्थ व्यवस्था में मुद्रा की आवश्यकता एवं मांग बढ़ जाती है क्योंकि आर्थिक विकास के साथ-साथ व्यवहारों की मात्रा एवं आकार में वृद्धि और अर्थ व्यवस्था के अमौद्रिक क्षेत्र भी मुद्रा के माध्यम से व्यवहार करना प्रारम्भ करते लगते हैं। मुद्रा की इस बढ़ी हुई मांग की पूर्ति करना विकास की पुष्टि करने के लिए आवश्यक होती है और इस सीमा तक किया गया मुद्रा प्रसार सर्वथा वांछनीय होता है। इसके अतिरिक्त मूल्य वृद्धि द्वारा विपणि में न आने वाले साधनों को विपणि में लाने में प्रोत्साहन मिलता है जिससे उत्पादन में वृद्धि होती है और विकास की गति तीव्र होती है।

उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि मुद्रा स्फीति गतिहीन (Stagnant) अर्थ व्यवस्थाओं के आर्थिक विकास में सहायक होती है परन्तु यह योगदान दो बातों पर निर्भर होता है—

(१) मुद्रा स्फीति द्वारा हस्तान्तरित होने वाले साधनों का परिमाण—यह बात तो स्पष्ट है कि मुद्रा स्फीति द्वारा वास्तविक बचत में पर्याप्त वृद्धि हो सकती

है। प्राय अर्थ-व्यवस्था में श्रमिक वर्ग बचत नहीं करने वाला और लाभ (Profit) प्राप्त करने वाला अर्थात् साहसी-वर्ग बचत करने वाला होता है। जब श्रमिक वर्ग को साहसी-वर्ग की तुलना में राष्ट्रीय आय का अधिक भाग प्राप्त होता है तो बचत की दर में निश्चित वृद्धि करने हेतु कम मूल्य-वृद्धि की आवश्यकता होती है क्योंकि साधनों का हस्तान्तरण श्रमिकों के बड़े समुदाय से होता है। थोड़ी-सी मूल्य-वृद्धि का प्रभाव समाज के बड़े भाग पर पड़ने के कारण साहसी-वर्ग को उसका लाभ पर्याप्त मात्रा में मिलता है और इस प्रकार बचत एवं विनियोजन में वृद्धि होती है परन्तु अल्प विकसित राष्ट्रों में मजदूरी का राष्ट्रीय आय में भाग, लाभ की तुलना में, कम होता है जिसके कारण बचत की दर में वृद्धि करने के लिए मुद्रा प्रसार द्वारा अधिक मूल्य-वृद्धि की आवश्यकता होती है। इस प्रकार अल्प विकसित राष्ट्रों में मुद्रा-स्फीति द्वारा विनियोजन-वृद्धि समाज के लिए अधिक हानिकारक हो सकती है।

मुद्रा स्फीति द्वारा ऐच्छिक बचत करने की प्रवृत्ति को भी आघात पहुँचता है क्योंकि मुद्रा के रूप में बचत करना लाभदायक नहीं होता है। मुद्रा स्फीति के फलस्वरूप, मुद्रा के वास्तविक मूल्य में निरन्तर कमी होती जाती है और यही कारण है कि जनसाधारण अपनी बचत को मुद्रा के रूप में न रखकर टिकाऊ एवं मूल्यवान वस्तुओं में रखने लगते हैं। मुद्रा के मूल्य में कमी होते रहने के कारण लोगों में लापरवाही के साथ व्यय करने की प्रवृत्ति प्रबल होने लगती है। मुद्रा का मूल्य कम होने से निश्चित आय प्राप्त करने वालों की वास्तविक आय भी कम हो जाती है जिसके फलस्वरूप, उनकी ऐच्छिक बचत करने की क्षमता भी कम हो जाती है। इस प्रकार एक ओर, मुद्रा-स्फीति द्वारा ऐच्छिक बचत में कमी और दूसरी ओर साहसी-वर्ग की बचत में कुछ वृद्धि होती है जिसका शुद्ध परिणाम राष्ट्र की कुल बचत में कोई विशेष वृद्धि नहीं होती है। मुद्रा स्फीति इस प्रकार केवल विनियोजन की सिन्चित को सामान्य जनता से साहसी वर्ग को हस्तान्तरित कर देती है जिससे धन और आय का केन्द्रीयकरण और अधिक हो जाता है।

कुछ अल्प विकसित राष्ट्रों के अनुभवों से यह भी ज्ञात होता है कि मुद्रा-स्फीति द्वारा जो साहसी-वर्ग की आय में वृद्धि होती है उस अनुपात में उनके विनियोजन में वृद्धि नहीं होती है क्योंकि यह साहसी-वर्ग अतिरिक्त आय का कुछ भाग उपभोग पर व्यय कर लेता है तथा कुछ भाग अपने पास मूल्यवान वस्तुओं आदि का संग्रह करने पर व्यय कर लेता है। इस प्रकार बढ़ी हुई आय का केवल थोड़ा भाग ही विनियोजन के लिए उपलब्ध होता है। ऐसी परिस्थिति में मुद्रा-स्फीति सामाजिक शोषण का कारण बन जाती है क्योंकि निश्चित आय वाला वर्ग अपनी वास्तविक आय एवं उपभोग कम कर साधनों का साहसी-वर्ग को हस्तान्तरित करता है जो पहले से ही सम्पन्न होता है और इस बढ़ी हुई सम्पन्नता का उपयोग विलासपूर्ण जीवन के लिए उपभोग हो जाता है परन्तु जिन अर्थ-व्यवस्थाओं में सरकारी क्षेत्र का आकार बड़ा

हो वहाँ मुद्रा स्फीति द्वारा साधनों का हस्तान्तरण सरकारी क्षेत्र को होता है जो इन अतिरिक्त साधनों का उपयोग विनियोजन बढ़ाने हेतु कर सकता है।

मुद्रा स्फीति का निरन्तर उपयोग पूँजी को विदेशों में हस्तान्तरित करने को प्रोत्साहित करता है क्योंकि मुद्रा का आन्तरिक वास्तविक मूल्य सरकारी विनिमय दरों (Official Exchange Rates) के आधार पर उसके विदेशी वास्तविक मूल्य से कम होता जाता है। इस प्रकार मुद्रा स्फीति का उपयोग बहुत सावधानी एवं सीमित मात्रा में करने से ही आर्थिक विकास में सहायता मिल सकती है।

(२) मुद्रा स्फीति का विनियोजन पर प्रभाव—यह बात भी विवादास्पद है कि मुद्रा स्फीति द्वारा उत्पादक विनियोजन को प्रोत्साहन मिलता है। मुद्रा स्फीति द्वारा उपलब्ध साधनों का उपयोग सरकार तो अपने पूर्व निर्धारित कार्यक्रमों पर कर सकती है परन्तु निजी क्षेत्र के विनियोजन पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। मुद्रा स्फीति के फलस्वरूप साधनों के उपयोग करने की तुलना में साधनों को संग्रहीत रखने में अधिक लाभ प्राप्त होता है क्योंकि मूल्य स्तर में निरन्तर वृद्धि होती जाती है और संग्रहीत साधनों का बिना उपयोग किए ही मूल्य बढ़ जाता है। इसी कारण लोग अपने साधनों को नगरों में निर्माण करने, जायदाद खरीदने, मूल्यवान धातुओं को रखने तथा विदेशी सम्पत्तियों को खरीदने में उपयोग करते हैं। जिन राष्ट्रों में साहसी वर्ग द्वारा होता है वहाँ सट्टे की प्रवृत्ति प्रबल हो जाती है और वास्तविक उत्पादन क्रियाओं को आघात पहुँचता है।

दूसरी ओर, मुद्रा स्फीति द्वारा आन्तरिक बाजारों में उपभोग वस्तुओं के मूल्य निरन्तर बढ़ते रहते हैं जिससे साहसियों को आन्तरिक बाजारों में आसानी से लाभ प्राप्त हो जाता है। इसके दो कुप्रभाव होते हैं—प्रथम निर्यात के लिए उत्पादन नहीं किया जाता है और निर्यात में आयात की वृद्धि के अनुरूप वृद्धि नहीं होती है जिसके फलस्वरूप प्रतिकूल व्यापारिक शेष बढ़ता जाता है। दूसरा कुप्रभाव व्यापारिक ईमानदारी पर पड़ता है। निम्न स्तर की वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है, मध्यस्थों की संख्या बढ़ जाती है, कार्य कुशलता कम हो जाती है और सट्टे की प्रवृत्ति प्रबल हो जाती है। साहसी वर्ग जोखिमपूर्ण उत्पादन क्रियाओं को संचालित नहीं करता और निर्माण में हेर-फेर कर लाभोपार्जन करना चाहता है। इस प्रकार उत्पादक क्रियाओं को आघात पहुँचता है। इस प्रकार मुद्रा स्फीति का पूँजी निर्माण के लिए उपयोग बहुत सावधानी से करने की आवश्यकता होती है। सरकार का अर्थ व्यवस्था पर जितना नियन्त्रण एवं अधिकार है या हो सकता है, मुद्रा स्फीति द्वारा विकास वित्त प्राप्त करने की सीमाएँ निर्धारित करता है।

भारत में घाटे का अर्थ प्रबन्धन

प्रथम योजना—भारत में घाटे के अर्थ प्रबन्धन का उपयोग नियोजित अर्थ व्यवस्था के प्रारम्भ से ही किया गया है। इस योजना में २६० करोड़ रुपए के घाटे के

गया जो सरकारी क्षेत्र के कुल आयोजित व्यय का २५% थी परन्तु घाटे के अर्थ प्रबन्धन की वास्तविक राशि ९५४ करोड रुपया हुई जो योजना के सरकारी क्षेत्र के व्यय का २० ४% थी। यह प्रतिशत प्रथम योजना म केवल १७% था। द्वितीय योजना म नगरो के क्षेत्र म भारी उद्योगो की स्थापना का आयोजन किया गया जिसके फलस्वरूप अतिरिक्त आय वर्कों के पास जमा के रूप म आयी और वस्तुओं म तदानुसार वृद्धि हुई। घाटे के अर्थ प्रबन्धन के कारण मुद्रा की पूर्ति माँग से अधिक हो गयी और मूल्य-स्तर निरन्तर बढता गया। प्रथम योजना म मुद्रा प्रसार का आच्छादित उपयोग न किए गये साधनों का उपयोग कर उत्पादन म वृद्धि करना सम्भव हुआ परन्तु द्वितीय योजना म उत्पादन के नवीन साधन एकत्रित एवं निर्माण करने की आवश्यकता हुई जिसका प्रभाव मूल्यो पर पडा। द्वितीय योजनाकाल म मुद्रा-पूर्ति एवं मूल्यो की वृद्धि निम्न प्रकार रहा—

तालिका स० २१—द्वितीय योजना से घाटे का अर्थ प्रबन्धन

वर्ष	घाटे का अर्थ प्रबन्धन (करोड रुपया म)	जनता के पास मुद्रा की पूर्ति	घाटे के अर्थ प्रबन्धन का मुद्रा पूर्ति म प्रतिशत	रहन सहन की लागत का निर्देशांक १९४९ = १००	खाद्य पदार्थों का मूल्य निर्देशांक १९५२ ५३ = १००	थोक मूल्यों का निर्देशांक १९५२ ५३ = १००
१९५६ ५७	२५३ ०	२ ३४२	१० ८	१०७	१०५ ५	१०५ ३
१९५७ ५८	४९७ ०	२ ४१३	२० ६	११५	१०६ ८	१०८ ४
१९५८ ५९	१४० ०	२ ५२६	५ ५	११८	११५ २	११२ ९
१९५९ ६०	१२० ०	२ ७१०	४ १	१२२	११९ ०	११७ १
१९६० ६१	—८९ ०	२ ८६९	—	१२४	१२० ०	१२४ ९

द्वितीय योजनाकाल के प्रारम्भ म घाटे का अर्थ प्रबन्धन बडी मात्रा म किया गया और सन् १९५७ ५८ म घाटे के अर्थ प्रबन्धन की राशि कुल मुद्रा-पूर्ति की २० ६% हो गया। भारतीय नियोजित अर्थ व्यवस्था के इतिहास म सन् १९५७ ५८ *वर्ष म घाटे का अर्थ प्रबन्धन सबसे अधिक किया गया। इसका नतीजा मूल्यों म वृद्धि* के रूप म सामने आने लगा और मूल्यो की निरन्तर वृद्धि एवं बढना हुई बेरोजगारी का स्वरूप नियोजकों द्वारा योजना के सरकारी क्षेत्र के व्यय का कम किया गया और घाटे के अर्थ प्रबन्धन को भी कम किया गया है। मूल्य स्तर फिर बढने रहने के कारण सन् १९६० ६१ म घाटे के अर्थ प्रबन्धन की राशि ऋणात्मक हो गया। द्वितीय योजनाकाल म रहन सहन की लागत के निर्देशांक मे २१ २% और थोक मूल्य निर्देशांक म ३५% की वृद्धि हुई। मुद्रा प्रसार के दबाव के बढने का कारण कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन म सम्भावना से *कम वृद्धि होना उचित मूल्य नीति का न होना गैर विकास* व्यय म अधिक वृद्धि होना तथा प्रतिकूल जलवायु थे।

तृतीय योजना—द्वितीय योजना की मूल्य वृद्धि को देखते हुए तृतीय योजना में घाटे के अर्थ प्रबन्धन के सीमित उपयोग का प्रस्ताव किया गया। इसी कारण इस योजनाकाल में केवल ५५० करोड़ रुपये के घाटे के अर्थ प्रबन्धन का आयोजन किया गया परन्तु वास्तविक राशि ११५० करोड़ रुपया हुई अर्थात् घाटे के अर्थ प्रबन्धन की आयोजित राशि की लगभग दुगुनी राशि से घाटे का अर्थ प्रबन्धन तृतीय योजना में किया गया। इतनी अधिक राशि में घाटे का अर्थ प्रबन्धन करने के कारण मुद्रा-स्फीति का दबाव अर्थ-व्यवस्था पर और अधिक बढ़ गया जैसा निम्न आँकड़ों से ज्ञात होता है—

तालिका सं० २२—तृतीय योजना में घाटे का अर्थ प्रबन्धन

वर्ष	घाटे का अर्थ प्रबन्धन (करोड़ रुपयों में)	जनता के पास मुद्रा की पूर्ति (करोड़ रु० में)	रहन सहन की लागत का निर्देशांक १९४९=१००	खाद्य-पदार्थों का मूल्य-निर्देशांक १९५२-५३=१००	थोक मूल्य निर्देशांक १९५२-५३=१००	मुद्रा-स्फीति से घाटे के अर्थ प्रबन्धन का प्रतिशत
१९६१-६२	१८४०	३ ०४६	१२७	१२० १	१२५ १	६०
१९६२-६३	१८८ ०	३३ १००	१२१	१२६ १	१२७ ६	५५
१९६३-६४	२११ ०	३ ७५२	१२७	१३६ ८	१३५ ३	५७
१९६४ ६५	१८० ०	४,०८०	१५७	१५६ ९	१५२ ७	४७
१९६५ ६६	२८५ ०	४,५३०	७६६	१६८ ८	१६५ १	८८

तृतीय योजनाकाल में घाटे का अर्थ प्रबन्धन बाहरी हुई इकाइयों—सन् १९६२ के चीन के एवं सन् १९६५ के पाकिस्तान आक्रमण—के दौरान किया गया और इस उपाय से प्राप्त वित्तीय साधनों का उपयोग युद्ध के व्यय की पूर्ति के लिए किया गया जिससे मुद्रा स्फीति का दबाव निरन्तर बढ़ता गया। रहन-सहन की लागत के निर्देशांक में ३६ ३% की वृद्धि हुई और खाद्य-पदार्थों का मूल्य निर्देशांक ४० ७% से बढ़ गया। योजनाकाल के पाँच वर्षों में थोक मूल्य निर्देशांक में ३२% की वृद्धि हुई।

वार्षिक योजना में घाटे का अर्थ-प्रबन्धन

सन् १९६६ ६७ की वार्षिक योजना के अन्तर्गत घाटे का अर्थ प्रबन्धन १८६ करोड़ रुपये का किया गया जिसके फलस्वरूप खाद्य-पदार्थों एवं थोक मूल्यों के निर्देशांकों में सन् १९६५ ६६ की तुलना में क्रमशः १९% एवं १६% की वृद्धि हुई। सन् १९६७ ६८ की वार्षिक योजना के अन्तर्गत २७७ करोड़ रुपये का घाटे का अर्थ प्रबन्धन किया गया जिससे मूल्यों में और वृद्धि हुई। इस वर्ष में थोक मूल्यों के निर्देशांक में ११% की वृद्धि हुई और खाद्य-पदार्थों के मूल्य निर्देशांक में १८% की वृद्धि हुई। इस प्रकार मूल्य-स्तर में तृतीय योजना के पाँच वर्षों तथा उसके बाद की दो वार्षिक योजनाओं में मूल्य-स्तर में निरन्तर वृद्धि होती रही।

सन् १९६८ ६९ की वार्षिक योजना में ३०७ करोड़ रुपये के घाटे के अर्थ

प्रबन्धन का आयोजन किया गया जो योजना के सरकारी क्षेत्र के आयोजित व्यय २३३७ करोड़ रुपये का १३% है। इस वर्ष में थोक मूल्यों के निर्देशांक में १ १% की कमी हुई है जिसका प्रमुख कारण खाद्य पदार्थों के मूल्य निर्देशांक में ४ ५% की कमी है। सन् १९६७ ६८ एवं सन् १९६८ ६९ में कृषिक्षेत्र में विशेष प्रगति होने के कारण खाद्य पदार्थों की पूर्ति में वृद्धि हुई है जिसके फलस्वरूप मूल्यों में कमी होना प्रारम्भ हुई।

चतुर्थ योजना—चतुर्थ योजना में ८५० करोड़ रुपये के घाटे के अर्थ प्रबन्धन का आयोजन किया गया जो योजना के सरकारी क्षेत्र के व्यय का ६% से भी कम है। *यदि कृषि क्षेत्र के उत्पादन की प्रगति योजनाकाल में बनी रहा तथा मानसून प्रतिकूल* नहीं हुआ तो इस राशि के घाटे के अर्थ प्रबन्धन से मूल्यों में विशेष वृद्धि न होने का अनुमान है। खाद्यान्न एवं अन्य कच्चे मालों का जो बफर स्टाक केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित किया जा रहा है उससे भी मूल्यों की वृद्धि को नियन्त्रित रखना सम्भव होगा।

अध्याय २३

मौद्रिक नीति एव आर्थिक प्रगति भारतीय बैंको के राष्ट्रीयकरण सहित

[Monetary Policy and Economic Development With Special Reference to Bank Nationalisation in India]

[मौद्रिक नीति के उद्देश्य—मूल्य स्तर मे स्थिरता, मुद्रा के अघ की निम्नतरता विनिमय स्थिरता, आर्थिक स्थिरता, आर्थिक प्रगति—आर्थिक प्रगति हेतु मौद्रिक कार्यवाहियां, मौद्रिक नीति द्वारा मुद्रा-स्फीति पर नियन्त्रण, साख नियन्त्रण की विधियाँ—बैंक-दर से हेर फेर, खुले बाजार की क्रियाएँ, अधिक अनिवार्य सचिति, भारत मे मौद्रिक नीति—परिवतनीय नकद सचिति अनुपात, खुले बाजार की क्रियाएँ चयनात्मक साख नियन्त्रण, बैंक दर शुद्ध तरलता अनुपात, व्यापारिक बैंकों पर सामाजिक नियन्त्रण, भारतीय बैंकों का राष्ट्रीयकरण—राष्ट्रीयकरण क उद्देश्य—राष्ट्रीय बचत मे वृद्धि, सावजनिक क्षेत्र को साधन, साख का अधिक उत्पादक उपयोग, वाछित क्षेत्रों के लिए साख, सावजनिक आय मे वृद्धि, सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति—बैंक राष्ट्रीयकरण मे उदय हुई समस्याएँ क्रियात्मक एव सगठनात्मक साधनों का प्रवाह, प्रतिस्पर्धा, बडी उत्पादक इकाइयों को साख, जमा करने वालो का हित, अन्य साख सस्थाओं के साथ समन्वय]

मौद्रिक नीति द्वारा मुद्रा साख एव मुद्रा के अन्य प्रतिस्थापना के प्रवाह को नियन्त्रित किया जाता है जिससे किसी अथ व्यवस्था की इन तरल सम्पत्तियों की समस्त माग एव पूर्ति को प्रभावित किया जा सके। मुद्रा की यान्त्रिकता पर सचालित अथ व्यवस्था म मुद्रा की पूर्ति के नियन्त्रण से साधनों की विभिन्न क्रियाओ पर होने वाले आवटन पर अत्यन्त प्रभाव पडता है। किसी भी अथ व्यवस्था की विनियोजन का गति विधि एव प्रकार को मुद्रा एव साख नियन्त्रण द्वारा प्रभावित किया जा सकता है। अथ व्यवस्था के वास्तविक साधनों का उपयोग तीन प्रकार स किया जाता है—निजी उपभोग, सरकारी चालू व्यय एव निजी तथा सरकारी विनियोजन। मौद्रिक नीति द्वारा देश के साधनों के इन तीनों स्रोतों म होने वाले प्रवाह को नियन्त्रित किया जाता

है। विकासोन्मुख राष्ट्रों में मौद्रिक नीति निजी उपभोग को कम करके साधनों को विनियोजन में प्रवाहित करने के लिए उपयोग की जाती है। मौद्रिक नीति के अन्तर्गत ब्याज दर में हेर फेर साख का सकुचन अथवा विस्तार कर स्तर में वृद्धि अथवा कमी कर निजी अथवा सरकारी उपभोग को कम या अधिक किया जाता है जिसमें साधनों को विनियोजन एवं पूंजी निर्माण हेतु अधिक अथवा कम परिमाण में उपलब्ध कराया जा सके। पूंजी निर्माण आर्थिक प्रगति का प्रमुख अंग होता है और आर्थिक प्रगति की दर पूंजी निर्माण की दर से प्रत्यक्षरूप से सम्बद्ध होती है और पूंजी निर्माण की दर विनियोजन के लिए उपलब्ध साधनों पर निर्भर रहती है। विनियोजन हेतु अधिक साधन उपलब्ध कराने के लिए उपभोग व्यय को नियन्त्रित करना आवश्यक होता है जो मौद्रिक नीति द्वारा सम्भव होता है। विनियोजन के परिमाण के अतिरिक्त मौद्रिक नीति द्वारा विनियोजन के प्रकार को भी नियन्त्रित किया जाता है। आर्थिक प्रगति की तीव्र गति एवं स्थायित्व के लिए वाछित क्षेत्रों में विनियोजन बढ़ाने के लिए मौद्रिक नीति के अन्तर्गत इन क्षेत्रों को साख आदि की सुविधाएं प्रदान की जाती है। इस प्रकार मौद्रिक नीति द्वारा यद्यपि अर्थ व्यवस्था के विद्यमान साधनों में किसी समय में वृद्धि करना तो सम्भव नहीं होता परन्तु उपलब्ध साधनों का वांछित उपयोग करना सम्भव हो सकता है। यही कारण है कि मौद्रिक नीति नियोजित आर्थिक प्रगति का आधारभूत यन्त्र माना जाता है।

मौद्रिक नीति के उद्देश्य

नियोजित अर्थ-व्यवस्था में उपभोग एवं विनियोजन पर नियन्त्रण राजकोषीय नीति द्वारा प्राप्त किया जाता है क्योंकि राजकोषीय नीति द्वारा जनसाधारण की क्रय शक्ति एवं वित्तीय साधनों पर प्रत्यक्ष नियन्त्रण प्राप्त किया जा सकता है। एक ओर कर एवं शुल्क साधारणतया समाज के विभिन्न वर्गों की क्रय शक्ति को नियन्त्रित करते हैं और दूसरी ओर विनियोजन के साधन उपलब्ध कराते हैं परन्तु राजकोषीय नीति की प्रभावशीलता मौद्रिक नीति पर निर्भर रहती है। अर्थ-व्यवस्था में आर्थिक क्रियाओं की वृद्धि के साथ मौद्रिक अधिकारी को साख के परिमाण में पर्याप्त वृद्धि करना होती है जिसमें बढ़ते हुए व्यवहारों के लिए मुद्रा की कमी न महसूस हो। साख-यन्त्र द्वारा मुद्रा स्फीति की प्रवृत्तियों को भी रोका अथवा नियन्त्रित किया जाता है। मौद्रिक नीति के विभिन्न उद्देश्यों को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—

(१) **मूल्य स्तर में स्थिरता**—प्राचीन अर्थशास्त्रियों के विचारों के अनुसार केन्द्रीय बैंक का प्रमुख कार्य मुद्रा बाजार के नियन्त्रित करना था और इस नियन्त्रण के लिए ब्याज दर का उपयोग किया जाता था। केन्द्रीय बैंक उद्योग एवं कृषि को प्रत्यक्ष रूप से ऋण प्रदान नहीं करता था। वह मुद्रा की लागत (ब्याज) एवं पूर्ति को नियन्त्रित करता था जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन की लागत एवं मूल्य नियन्त्रित होते थे। इस प्रकार मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य मूल्यों को स्थिर रखना होता था।

होता है और उसकी पूर्ति में परिवर्तन करने में आय एवं व्यय में परिवर्तन करना सम्भव नहीं हो सकता है क्योंकि अर्थ-व्यवस्था के वास्तविक साधनों का परिमाण मुद्रा की पूर्ति के परिवर्तनों से प्रभावित नहीं होता और न ही प्रभावशाली माँग में परिवर्तन होता है। वास्तव में अन्तिम वस्तुओं एवं सेवाओं पर होने वाला व्यय मुद्रा की पूर्ति को निर्धारित करता है अर्थात् जब कुल प्रभावशाली माँग में परिवर्तन होने पर उत्पादन मजदूरी तथा मूल्यों में परिवर्तन होता है तो इन परिवर्तनों के कारण मुद्रा के परिमाण में परिवर्तन होता है।

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि आर्थिक प्रगति के निर्वाह के लिए मुद्रा एवं साख का उपयुक्त प्रसार आवश्यक होता है परन्तु मौद्रिक कार्यवाहियों से आर्थिक प्रगति एवं विस्तार की प्रक्रिया को प्रारम्भ एवं गतिमान किया जा सकता है। इस बात के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद है। वास्तव में मुद्रा एवं साख की पूर्ति में परिवर्तन करके आर्थिक विस्तार तब ही सम्भव हो सकता है जब अर्थ-व्यवस्था में ऐसे वास्तविक साधन विद्यमान हों जिनका अभी उपयोग न किया जा रहा हो अर्थात् मुद्रा एवं साख का विस्तार इन उपयोग न हुए साधनों को उत्पादक उपयोग में लाने का एक साधन हो सकता है। इतना ही नहीं मुद्रा एवं साख नियन्त्रणों द्वारा देश के विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग होने वाले वास्तविक साधनों को अवांछित क्षेत्रों से हटाकर वांछित क्षेत्रों की ओर प्रवाहित किया जा सकता है। अल्प विकसित राष्ट्रों में विकास का प्रारम्भ करने के लिए पहले उत्पादक साधनों का विकास करना होता है और जब उत्पादक साधनों की उपलब्धि में वृद्धि हो जाती है तो साख नियन्त्रण द्वारा इन साधनों का विकास के लिए वांछित क्षेत्रों की ओर प्रवाहित किया जा सकता है। इस प्रकार विकास की प्रक्रिया में वास्तविक भौतिक साधनों का स्थान प्रथम होता है और इन साधनों के उपयुक्त उपभोग के लिए साख योजना की आवश्यकता होती है।

अल्प विकसित राष्ट्रों में विकास की प्रक्रिया के अन्तर्गत मुद्रा स्फीति का उदित होना अत्यन्त स्वाभाविक होता है। जब मुद्रा एवं साख प्रसार द्वारा विनियोजन को बढ़ाया जाता है तो विनियोजन की यह वृद्धि एक ओर निजी आय एवं उपभोग में वृद्धि कर देती है और दूसरी ओर तान्त्रिकता के अनुकूल होने से जो को कमी एवं पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन को नवीन विनियोजन में अधिक महत्त्व देने के कारण उपभोक्ता व वस्तुओं की पूर्ति में माँग के अनुरूप वृद्धि नहीं होती है जिसके परिणाम स्वरूप मुद्रा स्फीति का दूषित चक्र प्रारम्भ हो सकता है परन्तु इस दूषित चक्र को नियन्त्रित किया जा सकता है यदि मौद्रिक नीति का उपयोग केवल विकास की गति बढ़ाने के लिए ही न किया जाय बल्कि विकास उद्देश्य के साथ मौद्रिक नीति द्वारा आर्थिक स्थिरता को भी बनाये रखने के प्रयत्न जारी रखे जाय। विनियोजन में वृद्धि करने के लिए मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि करना आवश्यक होता है परन्तु मुद्रा की वृद्धि का कुछ भाग साख के विस्तार के लिए उपयोग हो जाता है क्योंकि जब इस बढ़ी हुई

मुद्रा एवं विनियोजन के फलस्वरूप, उदय हुई अतिरिक्त आय का कुछ भाग बैंकों में जमा कर दिया जाता है तो इस जमा द्वारा बैंक साख का विस्तार कर देते हैं। इस प्रकार मुद्रा की वृद्धि के साथ-साथ साख का भी विस्तार होता है जो मुद्रा-स्फीति के दबाव के बढ़ने का मूल कारण हो जाता है। यदि बैंक-साख का नियन्त्रित कर दिया जाय तो मुद्रा स्फीति के दबाव का बढ़ना रोका जा सकता है। बैंक-साख को नियन्त्रित करने का तात्पर्य यह नहीं है कि बैंकों के साख विस्तार के अधिकार को ही समाप्त कर दिया जाय। विनियोजन की वृद्धि की गति का निर्वाह करने के लिए बैंक-साख का विस्तार भी आवश्यक होता है। ऐसी परिस्थिति में बैंक-साख-नियन्त्रण का प्रमुख उद्देश्य साख का एक विनियोजनों के लिए उपयोग करना होता है जिनसे दीर्घकालीन विकास सम्भव हो सके। इस कार्य के लिए केन्द्रीय बैंक की सेवाओं का उपयोग किया जाता है जो समय-समय पर बैंकों को साख वितरण के सम्बन्ध में निर्देश जारी कर यह निर्धारित करता है कि किन-किन क्षेत्रों को साख अतिरिक्त सुविधाओं अथवा कठोर शर्तों पर प्रदान की जाय। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि मौद्रिक नीति के विकास सम्बन्धी उद्देश्यों के दो अंग हैं—प्रथम, आर्थिक प्रगति की गति को बढ़ाना तथा द्वितीय आर्थिक स्थिरता का प्रबन्धन करना। प्रथम उद्देश्य की पूर्ति के लिए मुद्रा एवं साख का प्रसार किया जाता है और द्वितीय उद्देश्य के लिए साख के प्रसार एवं उपयोग का नियन्त्रित किया जाता है। दूसरे शब्दों में, यह भी कह सकते हैं कि आर्थिक प्रगति हेतु मौद्रिक नीति द्वारा साख एवं मुद्रा का नियन्त्रित विस्तार किया जाता है। आर्थिक प्रगति का प्रवर्तन करने हेतु मौद्रिक अधिकारी को निम्नलिखित कार्यवाहियाँ करना चाहिए—

(१) आर्थिक प्रगति हेतु मौद्रिक कार्यवाहियाँ—मौद्रिक अधिकारी को आर्थिक प्रगति की प्रक्रिया के गति के अनुरूप मुद्रा की पूर्ति में पर्याप्त वृद्धि करनी चाहिए। प्रगति के साथ साथ मुद्रा की माँग में वृद्धि होना स्वाभाविक होता है। अल्प विकसित राष्ट्रों में जब विकास का प्रारम्भ किया जाता है तो ऐसे क्षेत्रों में जहाँ अभी तक मुद्रा का उपयोग नहीं होता था (विशेषकर ग्रामीण इकाइयों में) अब मुद्रा का उपयोग होने लगता है जिससे मुद्रा की माँग में वृद्धि हो जाती है। प्रगति की प्रक्रिया के गतिमान होने पर राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है जिससे अर्थ-व्यवस्था में सामान्य व्यवहारों के लिए अधिक मुद्रा की आवश्यकता होती है। जैसे-जैसे विकास आगे बढ़ता है और माल की विविधता का विस्तार होता है मुद्रा की और माँग में वृद्धि होती जाती है। आर्थिक प्रगति के अन्तर्गत अर्थ व्यवस्था में वित्तीय संस्थाओं का भी विस्तार होता है क्योंकि बचत करने वालों से विनियोजन करने वालों तक साधनों को प्रवाहित करने की क्रिया में तीव्र गति से वृद्धि हो जाती है। इन संस्थाओं का तरल साधनों की आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए मौद्रिक अधिकारी को मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि करना आवश्यक होता है।

(२) आर्थिक प्रगति की प्रक्रिया को गतिमान करने के लिए मौद्रिक अधिकारी साधनों के गुणात्मक एवं परिमाणात्मक उपयोग का निर्देशन करता है। साख को उन समूहों की ओर प्रवाहित करना होता है जिनके आत्मिक व्यय से देश के वास्तविक उत्पादन में वृद्धि सम्भव हो सकती है तथा वित्तीय सम्पत्तियों को उन समूहों की ओर प्रवाहित करना होता है जिनका आत्मिक व्यय अधिक वास्तविक साधनों की उत्पादकता बढ़ाने हेतु आवश्यक होती हैं अर्थात् मौद्रिक क्रियाओं द्वारा उपभोक्ता वर्ग से तरल साधनों को वित्तीय सम्पत्तियों (जैसे बान्ड ऋणपत्र आदि) के विरुद्ध प्राप्त किया जाता है और इन तरल साधनों का व्यय व्यवस्था के विनियोजक वर्ग को उपलब्ध कराया जाता है जिसमे उत्पादक क्रियाओं में वृद्धि सम्भव हो सके।

(३) आन्तरिक बचत बढ़ाने हेतु मौद्रिक अधिकारी को ऐसी संस्थाओं की स्थापना करनी पड़ती है जो जनसाधारण में आय का अतिरेक प्राप्त करें तथा इसे उत्पादक क्रियाओं को सचालित करने वाले समूहों की ओर प्रवाहित कर सकें। मौद्रिक अधिकारी को बचत जमा करने की सुविधाओं में भी वृद्धि करना होती है।

(४) मौद्रिक अधिकारी मुद्रा बाजार की अपूर्णताओं को दूर करता है तथा मुद्रा बाजार का नियमन करता है। मुद्रा बाजार में कुशल मौद्रिक एवं साख संस्थाओं की स्थापना एवं विस्तार किया जाता है।

(५) कृषिक्षेत्र की उत्पादकता बढ़ाने हेतु कृषि साख व्यवस्था में मौद्रिक अधिकारी को सुधार करना चाहिए।

(६) मौद्रिक अधिकारी को उद्योगों के लिए दीर्घकालीन साख की व्यवस्था करना चाहिए। इसके लिए औद्योगिक वित्त संस्थाओं की स्थापना एवं विस्तार होना चाहिए। केन्द्रीय बैंक औद्योगिक वित्त हेतु एक प्रथम विभाग सचालित करके औद्योगिक वित्त का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले सकता है।

मौद्रिक नीति एवं मुद्रा स्फीति पर नियन्त्रण

अल्प विकसित राष्ट्रों में विनियोजन के परिमाण में वृद्धि करने हेतु मौद्रिक नीति के अन्तर्गत मुद्रा का प्रसार किया जाता है। विकास के अभिनायी कार्यक्रमों के अन्तर्गत जब विनियोजन साधनों की वास्तविक उपलब्धि से अधिक किया जाता है (अर्थात् उपभोग के क्षेत्र में उपयोग में आने वाले साधनों के कुछ भाग को विनियोजन के क्षेत्र में ले लिया जाता है) तो मूल्य-स्तर में प्रारम्भिक वृद्धि होती है। मूल्यों की इस प्रारम्भिक वृद्धि का दूसरा कारण अर्थ-व्यवस्था में कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र का असन्तुलित विकास भी होता है। यह मुद्रा स्फीति की प्रथम अवस्था होती है जो अपने आप में अधिक हानिप्रद नहीं होती परन्तु जब मूल्य वृद्धि की यह प्रवृत्ति जारी रहती है और मुद्रा एवं साख की वृद्धि द्वारा इसे पुष्टि मिलती रहती है तो इस मुद्रा स्फीति की द्वितीय अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में एक मूल्य वृद्धि दूसरी मूल्य वृद्धि को प्रोत्साहित करती है और मूल्य वृद्धि का दूषित चक्र प्रारम्भ हो जाता है। द्वितीय

अवस्था के प्रारम्भ होने पर मौद्रिक नीति का कार्य प्रारम्भ होता है और मुद्रा-स्फीति को नियन्त्रित करने के लिए बहुत सी मौद्रिक कार्यवाहियाँ की जाती हैं। मौद्रिक नीति के द्वारा बैंकों के साख विस्तार की क्षमता को नियन्त्रित किया जाता है जिससे अर्थ-व्यवस्था में विनियोग का स्तर कम हो जाता है। मुद्रा-स्फीति की इस द्वितीय अवस्था का मूल कारण साख-विस्तार माना है और क्योंकि मौद्रिक कार्यवाहियों द्वारा साख को नियन्त्रित करना सम्भव होता है, मौद्रिक नीति को मुद्रा-स्फीति के नियन्त्रण का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है।

अल्प विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं में मुद्रा की पूर्ति एवं मूल्य-स्तर में अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध होता है क्योंकि इन अर्थ-व्यवस्थाओं में लोगों का मुद्रा पर [illegible] विश्वास कम होता है और वह अपनी बचत मुद्रा के रूप में रखना पसन्द नहीं करते हैं। अल्प विकसित राष्ट्रों में लोगों का जीवन-स्तर निम्न श्रेणी का होता है और उनकी उपभोग इच्छा अति तीव्र होती है। ऐसी परिस्थिति में मुद्रा की पूर्ति की वृद्धि का अधिकतर भाग बाजार के व्यवहारों के लिए उपलब्ध होता है जिसके परिणाम-स्वरूप मूल्यों की वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है। इन राष्ट्रों में विकास के साथ लोगों की क्रय-शक्ति में वृद्धि होने से माँग में वृद्धि होती है परन्तु वस्तुओं एवं सेवाओं में शीघ्र वृद्धि करना सम्भव नहीं होता क्योंकि उत्पादन के क्षेत्र में बहुत सी रुकावटें होती हैं। इस प्रकार कम आय वाले देशों में मुद्रा एवं साख के विस्तार की प्रतिक्रिया मूल्य-स्तर पर प्रत्यक्ष होती है। इन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर हम यह कह सकते हैं कि अल्प विकसित राष्ट्रों में साख-नियन्त्रण द्वारा मुद्रा-स्फीति के दबाव को नियन्त्रित करना सम्भव हो सकता है।

जब सरकार द्वारा विनियोजन में वृद्धि करने हेतु केन्द्रीय बैंक से ऋण लिया जाता है तो इसका प्रभाव साख एवं मूल्य-स्तर दोनों पर पड़ता है। सरकार इस ऋण को जब व्यय करती है तो बाजार में माँग बढ़ने के कारण मूल्य-स्तर में वृद्धि हो जाती है। दूसरी ओर सरकारी विनियोजन-वृद्धि से निजी क्षेत्र में भी अधिक विनियोजन करने के लिए प्रोत्साहन मिलता है और निजी क्षेत्र अपनी विनियोजन-वृद्धि के लिए व्यापारिक बैंकों से साख प्राप्त करता है। इस प्रकार सरकारी क्षेत्र एवं निजी क्षेत्र दोनों के द्वारा विनियोजन हेतु वास्तविक साधनों को पर्याप्त परिमाण में प्राप्त करने हेतु प्रतिस्पर्धा होती है जिसके परिणामस्वरूप मूल्य-स्तर में वृद्धि होती है। सरकारी व्यय में वृद्धि होने से उदय हुई अतिरिक्त व्यक्तिगत आय का कुछ भाग बैंकों को जमा के रूप में प्राप्त होता है जिससे बैंक-साख में विस्तार करते हैं। जब तक निजी क्षेत्र को बैंकों से साख प्राप्त होती रहती है निजी क्षेत्र विनियोजन-वृद्धि करता रहता है और मूल्य-वृद्धि का चक्र जारी रहता है। केन्द्रीय बैंक द्वारा सरकार को जितनी अधिक साख प्रदान की जाती है उसका उतना अधिक प्रभाव मूल्य-वृद्धि पर पड़ता है और इस मूल्य-वृद्धि को रोकने के लिए मौद्रिक अधिकारी को निजी क्षेत्र को दिये जाने वाली बैंकों की साख को उतना ही अधिक नियन्त्रित करने की आवश्यकता होती है।

मौद्रिक नीति की इस प्रकार की प्रमुख क्रिया साख नियन्त्रण होती है। साख नियन्त्रण हेतु निम्नलिखित कार्यवाहियाँ की जाती हैं—

साख नियन्त्रण की विधियाँ

(१) बैंक दर में हेर फेर—केन्द्रीय बैंक बैंक दर में हेर फेर कर साख की लागत को घटा बढ़ा सकता है। साख का संकुचन करने हेतु बैंक दर को बढ़ा दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप बैंक भी अपनी ब्याज दर बढ़ा देते हैं और अर्थव्यवस्था में साख महँगी हो जाती है परन्तु अल्प विकसित राष्ट्रों में बैंक दर द्वारा साख नियन्त्रण अधिक प्रभावशाली नहीं होता है। इन राष्ट्रों में बैंक अपने अतिरिक्त तरल साधनों को अल्पकालीन सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोजित कर देते हैं और बैंक दर बढ़ने पर केन्द्रीय बैंक से तरल साधन प्राप्त करने के स्थान पर इन सरकारी प्रतिभूतियों को बेच देते हैं और तरल साधन प्राप्त कर साख का स्तर बनाये रखते हैं। इसके अतिरिक्त अल्प विकसित राष्ट्रों में बैंकों द्वारा उपभोग हेतु साख प्रदान नहीं की जाती है। बैंक दर में वृद्धि होने पर साख की उपलब्धि कम हो जाने से उपभोग व्यय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। उपभोग के लिए प्राय असंगठित मुद्रा बाजार से साख ली जाती है जिसकी ब्याज दरों पर बैंक दर का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अल्प विकसित राष्ट्रों में बैंकों के पास आवश्यकता से अधिक तरल साधन रहते हैं और बैंक दर के परिवर्तनों से इनकी तरलता पर तुरन्त कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इस प्रकार बैंक दर अल्पकालीन साख पर कोई प्रभाव नहीं डाल पाता है। इन्हीं कारणों से बैंक दर को साख नियन्त्रण की प्रभावशाली विधि नहीं मानते हैं।

(२) खुले बाजार की क्रियाएं—खुले बाजार की क्रियाओं के अन्तर्गत साख नियन्त्रण हेतु केन्द्रीय बैंक प्रतिभूतियों का क्रय एवं विक्रय करता है। प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय तब ही प्रभावशाली हो सकता है जब अर्थव्यवस्था में विस्तृत एवं सुसंगठित प्रतिभूति बाजार हों। इसके अतिरिक्त खुले बाजार की क्रियाओं की सफलता के लिए व्यापारिक बैंकों को निश्चित नकद संचय रखना आवश्यक हो तथा बैंक तरल साधनों व बिलों आदि को केन्द्रीय बैंक से पुनः भुनाकर प्राप्त न करते हों। अल्प विकसित राष्ट्रों में प्राय संगठित प्रतिभूति बाजार नहीं होते हैं। दूसरी ओर, व्यापारिक बैंक भी स्थिर नकद संचिति अनुपात नहीं रखते हैं। व्यापारिक बैंक प्राय अपना भाग अधिक तरल साधन नकद सोना एवं विदेशी विनिमय के रूप में रखते हैं जिसके परिणामस्वरूप केन्द्रीय बैंक खुले बाजार की क्रियाओं से इनके तरल साधनों एवं साख-निर्माण की शक्ति को नियन्त्रित करने में असमर्थ रहता है।

(३) अधिक अनिवार्य संचिति—व्यापारिक बैंकों को अपनी जमा राशि के निश्चित अनुपात में अनिवार्य रूप से संचिति रखने का आयोजन किया जाता है। साख पर नियन्त्रण करने हेतु इस संचय का अनुपात बढ़ा दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप व्यापारिक बैंकों में अतिरिक्त तरल साधनों में कमी हो जाती है और

साख निर्माण करने की क्षमता भी संकुचित होती है परन्तु अल्प विकसित राष्ट्रों में व्यापारिक बैंकों के पास अतिरिक्त तरल साधनों का परिमाण अत्यधिक होता है और अनिवार्य तरल संचिति रखने के बाद भी उनके पास साख निर्माण के लिए पर्याप्त साधन उपलब्ध रहते हैं। यदि अनिवार्य संचिति का अनुपात बहुत ऊँचा कर दिया जाता है तो व्यापारिक बैंक अल्पकालीन सरकारी प्रतिभूतियों का विक्रय कर साख निर्माण हेतु तरल साधन प्राप्त कर लेते हैं। विशेषकर ऐसी परिस्थितियों में जब केन्द्रीय बैंक अनिवार्य नकद संचिति के उपयोग की प्रतिभूतियों के मूल्यों को स्थिर रखने के लिए अनुमति प्रदान कर देता है। इन सब कमियों के होते हुए भी अनिवार्य संचिति पद्धति साख नियन्त्रण के लिए अधिक प्रभावशाली होती है।

(४) चयनात्मक साख नियन्त्रण—साख नियन्त्रण की उपर्युक्त विधियों की कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए चयनात्मक साख नियन्त्रण को विकासोन्मुख राष्ट्रों में अधिक महत्व दिया जाता है। इन राष्ट्रों में सबसे बड़ी आवश्यकता होती है—अर्थ-व्यवस्था के उत्पादक क्षेत्रों का विस्तार और इन क्षेत्रों के विस्तार के लिए पर्याप्त साख उपलब्ध होना आवश्यक होता है परन्तु इन राष्ट्रों में उपलब्ध साख का उपयोग परिकाल्पनिक व्यवहारों (Speculative Transactions), आवश्यक वस्तुओं का अधि-संग्रह (Hoarding), भवननिर्माण क्रियाओं तथा व्यापार हेतु करने की प्रवृत्ति पायी जाती है जिसके परिणामस्वरूप एक ओर, वास्तविक उत्पादन-क्रियाओं के लिए पर्याप्त साख उपलब्ध नहीं होती है और दूसरी ओर अर्थ-व्यवस्था में मूल्य स्तर में वृद्धि हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में चयनात्मक साख नियन्त्रण द्वारा उत्पादक क्रियाओं एवं परिकाल्पनिक क्रियाओं को साख प्रदान करने के सम्बन्ध में भेद कर दिया जाता है और साख उचित अथवा सुविधाजनक शर्तों पर वांछित उत्पादक क्षेत्रों को प्रदान की जाती है। केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों को निर्देश देता है कि किन उत्पादक क्षेत्रों को सुविधाजनक शर्तों (कम ब्याज दर, भुगतान की सहूलियत आदि) पर साख प्रदान की जाय तथा किन क्षेत्रों को साख अधिक ब्याज पर अथवा दण्डात्मक ब्याज पर और किनको साख बिल्कुल प्रदान न की जाय। जब बैंक प्रतिबन्धित क्षेत्रों को साख प्रदान करते हैं तो उन्हें केन्द्रीय बैंक को दण्ड के रूप में ब्याज का कुछ प्रतिशत भुगतान करना पड़ता है। चयनात्मक साख नियन्त्रण के अन्तर्गत बैंकों द्वारा जन-उपभोग की वस्तुओं के संग्रह के विरुद्ध पेशगी देने पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है क्योंकि अल्प विकसित राष्ट्रों में इन वस्तुओं के मूल्यों द्वारा अर्थ-व्यवस्था का सामान्य मूल्य-स्तर नियन्त्रित होता है।

भारत में मौद्रिक नीति

भारत में मौद्रिक नीति की विभिन्न विधियों का उपयोग विकास एवं आर्थिक स्थिरता—दोनों ही उद्देश्यों की पूर्ति में योगदान देने के लिए किया गया है। साख-नियन्त्रण की विभिन्न विधियों का विवरण निम्न प्रकार है—

(१) परिवर्तनीय नकद संचिति अनुपात—सन् १९६०-६१ में इस विधि को अधिक प्रभावशाली माना गया। सितम्बर सन् १९६२ में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम एवं बैंकिंग कम्पनी अधिनियम में संशोधन करके अनिवार्य नकद संचिति एवं तरलता संचिति के पृथक् पृथक् अनुपात निर्धारित कर दिये गये जिससे बैंक अधिक नकद संचिति के प्रभाव को अपने तरल साधनों से नष्ट न कर सकें। अब बैंकों को अपने समस्त दायित्वों का ३% से १५% तक नकद संचिति (माँग एवं सावधिक दायित्वों का भेद समाप्त कर दिया गया) रखने का आयोजन किया गया। इसके अतिरिक्त बैंकों को अपने समस्त दायित्वों का २५% के बराबर तरल साधन—नकद सोना सरकारी प्रतिभूतियाँ आदि—के रूप में रखना अनिवार्य कर दिया गया। इस प्रकार बैंकों को अब अपने कुल दायित्वों का कम से कम २८% के बराबर तरल साधन रखना अनिवार्य कर दिया गया जो रिजर्व बैंक आवश्यकता पड़ने पर ४०% तक बढ़ा सकता था।

(२) खुले बाजार की क्रियाएँ—खुले बाजार की क्रियाओं द्वारा साख पर नियन्त्रण तब ही सम्भव हो सकता है जब देश में सरकारी प्रतिभूतियों के लिए विस्तृत एवं सक्रिय बाजार हो। ऊँचा तरलता अनुपात निर्धारित करने से बैंकों द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों के व्यवहार सीमित मात्रा में किये जा सकते थे। दूसरी ओर, जीवन बीमा निगम द्वारा जीवन बीमा फण्ड के साधनों का उपयोग प्रतिभूतियों के क्रय के लिए किया जाता है जिसके कारण सरकारी प्रतिभूतियों का निरन्तर क्रय विक्रय सम्भव नहीं होता। इन्हीं कारणों से देश में सक्रिय प्रतिभूति बाजार विद्यमान नहीं है और खुले बाजार की क्रियाएँ अधिक प्रभावशाली नहीं हो पाती हैं।

(३) चयनात्मक साख नियन्त्रण—भारत में इस विधि का उपयोग लगभग एक दशक से प्रायः कृषि-पदार्थों के विरुद्ध प्रदान किये जाने वाले साख को नियन्त्रित करने के लिए किया जा रहा है। रिजर्व बैंक समय समय पर बैंकों को निर्देश जारी करता है जिसमें पेशगियों के विरुद्ध जमानत की सीमा को घटाया बढ़ाया जाता है अथवा विभिन्न वस्तुओं के विरुद्ध अधिकतम पेशगी की सीमा (Margin) निर्धारित की जाती है। जमानत की सीमा बढ़ाने का तात्पर्य यह है कि जिस संग्रह के विरुद्ध बैंक पेशगी देता है, उसके मूल्य का कितना प्रतिशत जमानत के रूप में कम कर के पेशगी दी जा सकती है। दूसरी ओर पेशगी की अधिकतम सीमा उन्हीं महीनों में पिछले वर्षों किसी वस्तु के संग्रह के विरुद्ध बैंक द्वारा दी गयी पेशगी की राशि के प्रतिशत के रूप में निर्धारित की जाती है। इस साख नियन्त्रण का उपयोग अनाज, जूट, तिलहन, वनस्पति तेल, खाद्यान्न, दाल, चावल, धान आदि के विरुद्ध दी जाने वाली पेशगियों के लिए किया गया है।

(४) बैंक दर—भारतवर्ष में साख नियन्त्रण के लिए बैंक दर का सर्वाधिक उपयोग किया गया है। मई सन् १९५७ से चली आ रही ४% बैंक दर को फरवरी,

सन् १९६५ में बढ़ाकर ६% किया गया जो मार्च सन् १९६८ तक जारी रही। मार्च, सन् १९६८ में बैंक-दर को घटाकर ५% कर दिया गया परन्तु अक्टूबर, सन् १९६० से सितम्बर सन् १९६४ तक रिजर्व बैंक द्वारा प्रत्येक सूचित बैंक को रखे जाने वाली अनिवार्य नकद संचिति के आधार पर कोटा निर्धारित किया गया। निर्धारित कोटा की राशि के बराबर व्यापारिक बैंक रिजर्व बैंक से बैंक-दर पर ऋण ले सकते थी परन्तु इस कोटा से अधिक राशि के लिए व्यापारिक बैंकों को बैंक-दर के अतिरिक्त दण्डात्मक ब्याज देना पड़ता था। इस दण्डात्मक ब्याज की दरें विभिन्न स्तरों (Slabs) के आधार पर निर्धारित की गयी थी। प्रारम्भ में अनिवार्य नकद संचिति की राशि का ५०% कोटा था पर ५० से १००% तक बैंक-दर के अतिरिक्त १% दण्डात्मक ब्याज-दर पर और १००% से अधिक पर बैंक-दर के अतिरिक्त २% दण्डात्मक ब्याज-दर पर रिजर्व बैंक द्वारा बैंकों को ऋण दिया जाता था। दण्डात्मक ब्याज-दरों तथा कोटा के स्तरों (Slabs) में समय-समय पर परिवर्तन किये गये।

(५) शुद्ध तरलता अनुपात (Net Liquidity Ratio)—सितम्बर, सन् १९६४ में कोटा एवं स्लैब-पद्धति को समाप्त कर दिया गया और उसके स्थान पर विभेदात्मक ब्याज-दर पद्धति का प्रारम्भ किया गया जिसके अन्तर्गत ब्याज की दर में सम्बद्ध बैंक की शुद्ध तरलता की स्थिति के अनुसार परिवर्तन होता था। बैंक की समस्त नकद जमा रिजर्व बैंक एवं अन्य बैंकों में चालू खाते में तथा स्वीकृत प्रतिभूतियों में बैंक के कुल विनियोजन की राशि में से बैंक द्वारा रिजर्व बैंक, स्टेट बैंक एवं औद्योगिक विकास बैंक से लिए गये ऋणों को घटाकर जो राशि आती थी उसे शुद्ध तरलता-अनुपात का नाम दिया गया। साख-नियन्त्रण के लिए न्यूनतम तरलता-अनुपात माँग एवं सावधि दायित्वों का २८% रखा गया। जब किसी बैंक का तरलता-अनुपात उसके दायित्वों के २८% के बराबर आता था तो उस बैंक को बैंक-दर पर रिजर्व बैंक ऋण प्रदान करता था। शुद्ध तरलता अनुपात में न्यूनतम प्रतिशत में कमी होने पर समस्त ऋण पर ब्याज की दर बढ़ा दी जाती थी। न्यूनतम तरलता-अनुपात में प्रत्येक प्रतिशत की कमी होने पर सम्पूर्ण ऋण की राशि पर ½% ब्याज-दर बढ़ा दी जाती थी। (सन् १९६५ सितम्बर में यह वृद्धि १% कर दी गयी) फरवरी सन् १९६५ में शुद्ध तरलता-अनुपात ३०% निर्धारित किया गया और बैंकों द्वारा लिये जाने वाले ब्याज-दर की अधिकतम सीमा १०% निर्धारित तथा बैंक-दर ५% से बढ़ाकर ६% कर दी गयी।

अक्टूबर सन् १९६६ में शुद्ध तरलता-अनुपात-पद्धति में महत्वपूर्ण सुधार किए गये। शुद्ध तरलता-अनुपात ३०% ही रहने दिया गया परन्तु बैंकों को मन्दी के मौसम के अन्त में शुद्ध तरलता अनुपात के १०% के बराबर अतिरिक्त ऋण बैंक-दर पर देने की व्यवस्था कर दी गयी। इस अतिरिक्त सीमा के भी बाद यदि कोई ऋण बैंकों द्वारा रिजर्व बैंक से लेना पड़ता तो उस पर १०% ब्याज की दर निर्धारित की गयी।

इस प्रकार अब केवल अतिरिक्त ऋण की राशि पर ही १०% की दर से ब्याज देना पड़ता था परन्तु यह अतिरिक्त ऋण केवल आकस्मिक परिस्थितियों के लिए ही लिया जा सकता था।

मई सन् १९६८ में बैंक-दर ६% से घटाकर ५% कर दी गयी जिससे उद्योग एवं निर्यात के लिये कम लागत पर पर्याप्त मात्रा में साख उपलब्ध हो सके और औद्योगिक क्षेत्र में पुनर्प्राप्ति (Recovery) सम्भव हो सके। जनवरी सन् १९६८ में रिजर्व बैंक निर्यात लघु उद्योग एवं कृषि क्षेत्र को बैंकों द्वारा दिये गये ऋणों के सम्बन्ध में ४½% की रियायती दर पर ब्याज बैंकों से लेने लगा। मार्च सन् १९६८ में बैंकों द्वारा चार्ज की जाने वाली अधिकतम ब्याज दर भी १०% से घटाकर ९.५% कर दी गयी। रिजर्व बैंक द्वारा यह भी आश्वासन दिया गया कि यह उपयुक्त एवं योग्य मामलों में व्यक्तिगत बैंकों की विशिष्ट परिस्थितियों में, जब किसी विशेष क्षेत्र से इस बैंक पर ऋणों की माँग का अधिक दबाव हो, बैंक दर पर ऋण दे सकता है।

भारत की मौद्रिक नीति में बैंक की दर को थोड़ा ऊँचा रखकर एवं निर्धारित सीमाओं से अधिक ऋण पर कठोर दर निर्धारित कर साख को नियन्त्रित करने के प्रयत्न किए गये हैं। ब्याज दर का उपयोग चयनात्मक ढंग से किया गया है जिससे वांछित क्षेत्रों को उचित लागत पर ऋण प्राप्त हो सकें तथा ब्याज की कठोर दरों से समस्त अर्थव्यवस्था प्रभावित न हो। बैंक दर तथा कोटा एवं स्लैब (Quota Cum Slab) पद्धति का उपयोग रिजर्व बैंक द्वारा मुद्रा स्फीति को नियन्त्रित करने के लिए किया गया है। मँहगी मुद्रा (Dear Money) की नीति से मूल्य-स्तर को नियन्त्रित करने में कुछ सीमा तक सफलता भी प्राप्त हुई है परन्तु मँहगी मुद्रा की नीति एवं कठोर साख नियन्त्रण के फलस्वरूप साख की माँग में पर्याप्त वृद्धि सम्भव नहीं हो सकी है। रिजर्व बैंक द्वारा प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों को ही ऋण प्रदान करने के निर्देशों के फलस्वरूप व्यापारिक बैंकों के पास साधन उपलब्ध होते हुए भी गैर प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों जैसे शक्कर एवं वस्त्र उद्योग में साख की कमी महसूस की गयी। भारतीय मौद्रिक नीति ने अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में केवल सीमान्त सहायता ही प्रदान की है। मौद्रिक नीति की सफलता राजकोषीय नीति की प्रभावशीलता पर निर्भर रहती है। भारत में राजकोषीय नीति उत्पादनप्रधान (Production Oriented) न होने के कारण मौद्रिक नीति को भी अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई।

व्यापारिक बैंकों पर सामाजिक नियन्त्रण

व्यापारिक बैंकों की साख-व्यवस्था पर रिजर्व-बैंक का कठोर नियन्त्रण होने हुए भी निरन्तर यह महसूस किया जाता रहा कि बैंक-साख का अधिक लाभ केवल बड़े बड़े व्यवसायों को ही मिलता है जिससे देश में एकाधिकारिक मनोवृत्तियाँ सुदृढ़ होती जा रही हैं। जाँच द्वारा यह भी ज्ञात हुआ कि बैंक-साख वांछित क्षेत्रों में प्रवाहित

आर्थिक जीवन को ही प्रभावित नहीं करेगा अपितु इसके द्वारा नवीन सामाजिक एवं राजनीतिक शक्तियों के उदय होने की भी सम्भावना है जो देश के आर्थिक विकास को नवीन मोड़ दे सकेंगी। विकासोन्मुख राष्ट्रों में आर्थिक प्रगति की प्रक्रिया को स्थिर एवं रूढ़िवादी नहीं रखा जा सकता है। इस प्रक्रिया को गतिशील बनाये रखने के लिए समाज में केवल आर्थिक परिवर्तन ही आवश्यक नहीं होते अपितु गैर आर्थिक (Non Economic) आवश्यकताओं की भी पूर्ति करना आवश्यक होता है। विकासोन्मुख राष्ट्रों में आर्थिक विकास हेतु निम्नलिखित गैर आर्थिक तत्वों का विद्यमान होना आवश्यक होता है—

(१) विकास कार्यक्रमों का प्रकार ऐसा हो जिनसे जनसाधारण में राष्ट्रीय उत्साह एवं जागरूकता उदय होती हो।

(२) देश की अस्थिरतर राजनीतिक शक्तियों में इस कार्यक्रम द्वारा सन्तुलन स्थापित होता हो।

(३) स्वार्थनिहित व्यक्तियों एवं संस्थाओं के दबाव को रोकने के लिए राजकीय संरचना एवं सामाजिक शक्तियाँ अति शक्तिशाली हों।

(४) देश की सामाजिक एवं राजनीतिक संरचना इस प्रकार की हो कि समाज के विभिन्न वर्गों पर विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु नैतिक एवं राजनीतिक दबाव डाल सकें।

संक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कि आर्थिक विकास हेतु उपयुक्त सामाजिक एवं राजनीतिक संरचना की आवश्यकता होती है और इस संरचना की स्थापना हेतु बहुत-सी आर्थिक एवं गैर आर्थिक क्रियाएँ करना आवश्यक होता है। इन क्रियाओं को दीर्घ काल तक गतिशील कर ही उपयुक्त सामाजिक राजनीतिक संरचना की स्थापना सम्भव होती है। भारत में बैंक राष्ट्रीयकरण को भी इसी प्रकार की एक आर्थिक क्रिया है जिसके द्वारा देश के विकास के कार्यक्रमों हेतु सामाजिक एवं राजनीतिक संरचना में आवश्यक परिवर्तन करना सम्भव हो सकेगा। बैंकों का राष्ट्रीयकरण इस प्रकार की विभिन्न क्रियाओं की शृंखला की एक कड़ी है और ऐसी ही अन्य क्रियाओं की सम्भावना भविष्य में की जा सकती है।

१९ जुलाई सन् १९६९ को भारत सरकार द्वारा एक अध्यादेश द्वारा १४ बड़ी अनुसूचित व्यापारिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण की घोषणा की गयी। इन बैंकों में वही बैंक सम्मिलित की गयी जिनमें जून, सन् १९६९ के अन्तिम शुक्रवार को कुल जमा ५० करोड़ रुपये से कम नहीं थी। २५ जुलाई सन् १९६९ को इस अध्यादेश के स्थान पर लोकसभा में बैंकिंग कम्पनी (परिग्रहण एवं उपक्रम-हस्तान्तरण) बिल प्रस्तुत किया गया जो लोकसभा द्वारा ४ अगस्त सन् १९६९ और राज्यसभा द्वारा ८ अगस्त, सन् १९६९ को पास किया गया तथा राष्ट्रपति द्वारा इस बिल पर ९ अगस्त सन् १९६९ को अनुमति प्रदान की गयी। राष्ट्रीयकृत बैंकों में निम्नलिखित १४ अनुसूचित व्यापारिक बैंक सम्मिलित हैं—

(१) सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया (२) पंजाब नेशनल बैंक, (३) बैंक ऑफ इण्डिया, (४) बैंक ऑफ बड़ौदा (५) यूनाइटेड कॉमर्शियल बैंक (६) यूनाइटेड बैंक ऑफ इण्डिया, (७) इलाहाबाद बैंक (८) केनरा बैंक (९) इण्डियन बैंक, (१०) देना बैंक, (११) यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया (१२) सिण्डीकेट बैंक (१३) बैंक ऑफ महाराष्ट्र (१४) इण्डियन ओवरसीज बैंक।

बैंकों के राष्ट्रीयकरण के उद्देश्य

विकासोन्मुख राष्ट्रों में बैंकों का आर्थिक प्रगति की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान होता है क्योंकि यह एक ओर राष्ट्र की बचत को एकत्रित करते हैं और दूसरी ओर, साख का आवंटन करते हैं। बचत को एकत्रित करना एवं साख का आवंटन दोनों ही ऐसी क्रियाएँ हैं जिनका यदि उपयुक्त संचालन न किया जाय तो आर्थिक प्रगति की गति मन्द हो सकती है एवं अर्थ-व्यवस्था में असन्तुलित विकास हो सकता है। इतना ही नहीं, बैंक-साख का राष्ट्रीय उद्देश्यों एवं नीतियों के अनुकूल आवंटन न किया जाय तो देश में सामाजिक एवं आर्थिक विषमता बढ़ सकती है और देश की राजनीति पर पूँजीपति-वर्ग का दबाव गहन हो सकता है। किसी भी अर्थ-व्यवस्था में एकाधिकारों की स्थापना का प्रमुख कारण बैंक-साख होता है। ऐसी परिस्थिति में बैंक-साख को नियन्त्रित करना आवश्यक होता है। भारत में बैंक राष्ट्रीयकरण के उद्देश्यों का वर्गीकरण निम्न प्रकार कर सकते हैं—

(१) **राष्ट्रीय बचत में वृद्धि**—देश की अर्थ-व्यवस्था को आत्म-स्फूर्त बनाने के लिए देश को आर्थिक विकास हेतु विदेशी सहायता की निर्भरता समाप्त करने की आवश्यकता है और यह निर्भरता आन्तरिक बचत में पर्याप्त वृद्धि कर ही समाप्त करना सम्भव हो सकता है। बचत में वृद्धि करने के लिए एक ओर, जनसाधारण को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता होती है और दूसरी ओर, इस बचत को एकत्रित करने के लिए ऐसी बैंकिंग संस्थाओं की स्थापना की आवश्यकता होती है जिन पर जन साधारण विश्वास कर सकें। भारतवर्ष में ग्रामीण क्षेत्र में बचत निर्माण एवं बचत एकत्रित करने की अत्यधिक सम्भावनाएँ हैं और इन सम्भावनाओं का विदोहन करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों तक बैंकिंग संस्थाओं को पहुँचाना अत्यन्त आवश्यक है। निजी क्षेत्र द्वारा संचालित बैंक अपनी शाखाएँ ऐसे स्थानों पर ही खोलती हैं जहाँ पर व्यावसायिक लाभ की अधिक सम्भावना हो जबकि प्रारम्भ में बैंक शाखाओं को उपयुक्त स्थानों पर हानि पर भी चलाना देश के विकास के लिए आवश्यक होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा सम्भव हो सकेगी। भारत के सम्पूर्ण बैंकिंग व्यवसाय द्वारा सकल राष्ट्रीय उत्पादन का लगभग १५% भाग बैंकों द्वारा प्रति वर्ष जमा के रूप में एकत्रित किया जाता है जबकि स्विटजरलैण्ड में यह प्रतिशत ९२, जापान में ८२, थाईलैण्ड में २२ तथा संयुक्त अरब गणराज्य में १६ हैं। तीन पंचवर्षीय योजनाकाल में (सन् १९५१ से सन् १९६६) बैंक जमा में औसत से १०·०१% प्रति वर्ष की वृद्धि

हुई है। इन आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि भारत में बैंक जमा में वृद्धि करने की पर्याप्त सम्भावना है। राष्ट्रीयकृत १४ बैंकों द्वारा अनुसूचित बैंकों की कुल जमा का ७२% भाग प्राप्त होता है और यह बैंक जनसाधारण की बचत को और अधिक एकत्रित करने में सफल हो सकते हैं। यदि स्टेट बैंक की जमा की राशि को १४ राष्ट्रीयकृत बैंकों की जमा में सम्मिलित करलें तो समस्त राष्ट्रीयकृत बैंकों की जमा अनुसूचित बैंकों की जमा का ८४% हो जाती है। इन आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि जनसाधारण में इन बैंकों के प्रति विश्वास है और यह विश्वास इनके राष्ट्रीयकरण के बाद बढ़ने की सम्भावना है। ऐसी परिस्थिति में राष्ट्रीयकृत बैंक जनसाधारण की बचत और अधिक एकत्रित करने में समर्थ हो सकते हैं।

(२) सार्वजनिक क्षेत्र को पर्याप्त साधन उपलब्ध होना—१८ जुलाई सन् १९६९ को १४ राष्ट्रीयकृत बैंकों एवं स्टेट बैंक तथा उसकी सहायक संस्थाओं के पास कुल जमा राशि ४५६० करोड़ रुपया थी जो समस्त भारतीय अनुसूचित व्यापारिक बैंकों की कुल जमा ४६२५ करोड़ रुपये का लगभग ९८% थी। यदि विदेशी बैंकों की जमा को अनुसूचित बैंकों की जमा में सम्मिलित कर लिया जाय तो राष्ट्रीयकृत बैंकों की जमा का प्रतिशत ८४ १ आता है। दूसरी ओर समस्त राष्ट्रीयकृत बैंकों (स्टेट बैंक एवं उसकी सहायक संस्थाओं सहित) के द्वारा प्रदान की गयी कुल साख सन् १९६७ के अन्त में २२३० करोड़ रुपया थी जो समस्त भारतीय अनुसूचित बैंकों की साख २८६२ करोड़ रु० की लगभग ९०% और समस्त अनुसूचित बैंकों (विदेशी बैंकों सहित) की साख का लगभग ८०% थी। बैंक जमा एवं साख के इन तथ्यों से ज्ञात होता है कि १४ बैंकों के राष्ट्रीयकरण से बैंकिंग उद्योग का लगभग सम्पूर्ण राष्ट्रीयकरण हो गया है। इन बैंकों के राष्ट्रीयकरण से पूर्व बैंकिंग व्यवसाय का केवल २७% भाग स्टेट बैंक द्वारा नियन्त्रित होता है परन्तु इन बैंकों के राष्ट्रीयकरण से राष्ट्रीयकृत क्षेत्र द्वारा बैंकिंग व्यापार का ८४% भाग नियन्त्रित होगा। १४ बड़े बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात ५१ छोटे अनुसूचित बैंक निजी क्षेत्र में बचती हैं जो बैंकिंग व्यवसाय का केवल ७% भाग नियन्त्रित करती हैं।

इस प्रकार १४ बैंकों के राष्ट्रीयकरण से सार्वजनिक क्षेत्र को लगभग ५,००० करोड़ रुपये की जमा पर नियन्त्रण प्राप्त हो जायगा जिसमें से लगभग ६०% साधनों का उपयोग साख निर्माण हेतु किया जा सकेगा। इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र को ३००० करोड़ रुपये की साख का नियन्त्रण करने का अधिकार प्राप्त हो जायगा जिसका उपयुक्त भाग सार्वजनिक क्षेत्र के विकास कार्यक्रमों एवं व्यवसायों के लिए वित्तीय साधन प्रदान करने हेतु उपयोग किया जा सकेगा।

प्रस्तावित चतुर्थ योजना में आन्तरिक बचत की दर जो सन् १९६८ ६९ में ९% थी को बढ़ाकर योजना के अन्त तक राष्ट्रीय आय की १२ ६% करने का लक्ष्य रखा गया है। बचत के बढ़ने से बैंकों की जमा एवं साख में वृद्धि होना स्वाभाविक

होगा। बैंक साधनों की इस वृद्धि में से निजी सार्वजनिक क्षेत्र अधिक भाग प्राप्त कर सकेगा।

(३) **साधनों का अधिक उत्पादक कार्यक्रमों के लिए उपयोग**—बैंकों द्वारा प्रदान की जाने वाली साख का बहुत बड़ा भाग व्यापार को दिया जाता रहा है। *व्यापार को प्राप्त होने वाली साख व्यापारिक बैंकों की कुल साख का लगभग २०%* भाग होता है। व्यापार को प्राप्त होने वाली साख का उपयोग परिकल्पना (Speculation) अधिग्रह (Hoarding) एवं मूल्य-स्तर को बढ़ाने के लिए किया गया है। बड़े बैंकों के राष्ट्रीयकरण से उपलब्ध साख का उपयोग अधिक उत्पादक क्रियाओं के लिए करना सम्भव हो सकेगा। अभी तक बैंकों की साख नीति में सुरक्षा को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता रहा है और उन व्यक्तियों एवं संस्थाओं को ही साख प्रदान की जाती रही है जो साख के विरुद्ध पर्याप्त जमानत देने में समर्थ होते हैं। ऐसी परिस्थिति में साख बड़े व्यवसायियों, धनी वर्ग एवं उद्योगपतियों को ही प्राप्त होती है चाहे उनका उद्देश्य अधिकतम उत्पादन हो अथवा नहीं। बैंकों को साधनों का वितरण करते समय ग्राहकों का चयन करने का अधिकार होता है जिसके परिणामस्वरूप वे देश की भूमि, श्रम एवं पूँजी के उपयोग को नियन्त्रित करते हैं। जब निजी क्षेत्र द्वारा संचालित बैंक योजना आयोग द्वारा निर्धारित उत्पादक क्रियाओं को पर्याप्त साख प्रदान नहीं करते तो देश के उत्पादक साधनों का उपयोग प्राथमिकताओं के अनुसार सम्भव नहीं हो पाता है। यद्यपि रिजर्व बैंक द्वारा व्यापारिक बैंकों की साख-नीति नियन्त्रित करने के प्रयत्न निरन्तर किए जाते रहे हैं परन्तु इन नियन्त्रणों का पालन बैंकों द्वारा सच्ची भावना से नहीं किया गया और साधनों का उपयोग उन उत्पादक क्रियाओं के लिए होता रहा है। बैंकों के राष्ट्रीयकरण से साधनों को अधिकतम उत्पादक क्षेत्रों में प्रवाहित करना सम्भव हो सकेगा।

(४) **वांछित क्षेत्रों के लिए साख का उपयोग**—भारत की तीन पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत जो विकास हुआ है उससे अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में असन्तुलन उत्पन्न हो गया है। सबसे बड़ा असन्तुलन यह है कि योजनाओं का लाभ दलित एवं निर्धन वर्ग को सबसे कम मिला है। छोटे व्यवसायी, छोटे उद्योगपति एवं छोटे कृषकों की आर्थिक स्थिति में पर्याप्त सुधार सम्भव नहीं हो सका है। दूसरी ओर बड़े-बड़े व्यवसायियों एवं उद्योगपतियों को अधिकतम लाभ उपार्जन के अवसर प्राप्त हुए हैं। इस असन्तुलन में बैंक साख के त्रुटिपूर्ण प्रवाह ने यथाधिक योगदान दिया है। व्यापारिक बैंकों द्वारा कृषि क्षेत्र की साख की आवश्यकताओं की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। हरी क्रान्ति (Green Revolution) के अन्तर्गत कृषि का संचालन व्यापारिक स्तर पर होने लगा है जिसके निर्वाह के लिए साख की अत्यधिक आवश्यकता है। दूसरी ओर, लघु निर्यातकर्ताओं को भी बैंकों द्वारा साख पर्याप्त मात्राएँ में प्रदान नहीं की गयी है। देश की आर्थिक प्रगति में निर्यात का महत्त्व बढ़ता

जा रहा है और निर्यातक्षेत्र को पर्याप्त साख उपलब्ध होना आवश्यक है। बैंकों के राष्ट्रीयकरण द्वारा कृषिक्षेत्र लघु उद्योगक्षेत्र एवं निर्यात के क्षेत्र को पर्याप्त साख प्रदान करना सम्भव हो सकेगा।

अनुसूचित बैंकों द्वारा प्रदान की गयी कुल साख का २ २% भाग सन् १९५१ में कृषिक्षेत्र को दिया जाता था जो सन् १९६७ (३१ मार्च) में घटकर २ १% हो गया। दूसरी ओर औद्योगिक क्षेत्र को प्रदान की गयी साख कुल साख की ३३ ५% से बढ़कर सन् १९६७ (३१ मार्च) में ६४ ३% हो गया। यद्यपि अनुसूचित बैंकों द्वारा प्रदान की जाने वाली साख ५८४ ५ करोड़ रुपया (सन् १९५१ में) से बढ़कर २ ७१७ करोड़ रुपया (सन् १९६७ में) हो गयी अर्थात् इस काल में साख की राशि में चार गुना से भी अधिक वृद्धि हो गयी परन्तु कृषिक्षेत्र को मिलनेवाली साख में पर्याप्त वृद्धि नहीं हुई। कृषिक्षेत्र को सन् १९५१ में १२ ३६ करोड़ की साख बैंकों से प्राप्त हुई थी जो सन् १९६७ में बढ़कर ५६ ७५ करोड़ रुपया हो गयी परन्तु सन् १९५१ में बैंकों ने पौध वाले व्यवसायों को कोई साख नहीं प्रदान की थी जबकि सन् १९६७ में ४७ १२ करोड़ रुपया पौध के व्यवसायों को दिया गया है। इस प्रकार वास्तविक कृषिक्षेत्र को मिलने वाली साख सन् १९५१ में १२ ३६ करोड़ रुपये से घटकर सन् १९६७ में केवल ९ ६३ करोड़ रुपया रह गया। कृषिक्षेत्र को विभिन्न साधनों से मिलने वाली साख का प्रतिशत निम्न प्रकार था—

तालिका सं० २३—भारत में कृषि-साख में विभिन्न संस्थाओं का अंश

साख प्रदान करने वाली संस्थाएं एवं व्यक्ति	प्रतिशत अंश
कृषि एवं व्यवसायी साहूकार	६२ ०
सहकारी संस्थाएं एवं सरकार	१९ ४
दलाल एवं व्यापारी	७ ३
सम्बन्धियों से	६ ४
व्यापारिक बैंक	० ४
अन्य साधन	८ ५

इस तालिका से ज्ञात होता है कि व्यापारिक बैंकों द्वारा समस्त उपलब्ध कृषि-साख का केवल ० ४% प्रदान किया गया जो अत्यन्त शोचनीय स्थिति कही जा सकती है। ३१ मार्च सन् १९६७ को अनुसूचित बैंकों द्वारा प्रदान की गयी साख में से २ १% साख कृषिक्षेत्र (जिसमें पौध वाली फसलें सम्मिलित हैं) को प्राप्त हुई जो सन् १९५१ में २ २% सन् १९५६ में २% सन् १९६१ में ३ १% सन् १९६४ में २ ८% सन् १९६६ में २ ४% की तुलना में किसी प्रकार सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती है। कृषिक्षेत्र में देश की ७० से अधिक जनसंख्या रोजगार प्राप्त करती है और बैंकों द्वारा इस व्यवसाय के प्रति उदासीनता को किसी प्रकार भी उचित नहीं कहा जा सकता है।

कृषि के समान लघु उद्योगों को भी अनुसूचित व्यापारिक बैंकों से साख पर्याप्त मात्रा में प्रदान नहीं की गयी। निम्नलिखित आँकड़ों से यह तथ्य स्पष्ट होता है—

तालिका सं० २४—भारत में लघु उद्योगों को प्राप्त बैंक-साख का प्रतिशत

तिथि के अन्त में		समस्त उद्योगों को प्रदान की जाने वाली साख में प्रतिशत	समस्त बैंक-साख में प्रतिशत
दिसम्बर	१९६०	५.१	२.१
दिसम्बर	१९६१	५.०	२.६
दिसम्बर	१९६२	८.८	४.४
दिसम्बर	१९६३	४.८	२.६
मार्च	१९६५	५.६	५
मार्च	१९६६	८.२	२.६
मार्च	१९६७	१०.२	६.६

इस तालिका से ज्ञात होता है कि लघु उद्योगों को बैंकों से प्राप्त होने वाली साख समस्त उद्योगों को प्राप्त होने वाली साख की लगभग १/१० भाग है। बैंकों की समस्त साख में भी लघु उद्योगों का भाग अत्यन्त कम है यद्यपि सन् १९६५ से इसमें वृद्धि होती रही है परन्तु इस वृद्धि का प्रमुख कारण स्टेट बैंक द्वारा संचालित बहुत-सी साख-योजनाएँ हैं जिनके अन्तर्गत लघु उद्योगों को साख प्रदान की गयी है। इस प्रकार अनुसूचित व्यापारिक बैंकों (स्टेट बैंक को छोड़कर) द्वारा लघु उद्योगों को प्रदान की गयी साख केवल नाममात्र की ही थी। सन् १९५१ से १९६७ तक के काल में बैंकों द्वारा प्रदान की जाने वाली साख की विशेषता यह रही है कि उद्योगों, विशेषकर बृहद् उद्योगों को मिलने वाली साख में अत्यधिक वृद्धि हुई है। उद्योगों को मिलने वाली साख सन् १९५१ में १६६.१८ करोड़ रुपया थी जो सन् १९६७ में १३०१.६९ करोड़ रुपया हो गयी अर्थात् लगभग नौ गुनी वृद्धि हुई। दूसरी ओर, वाणिज्य को मिलने वाली साख का प्रतिशत सन् १९५१ में ४०.४ से घटकर सन् १९६७ में १६.४% हो गया। मार्च, सन् १९६७ में उद्योगों को मिलने वाली साख सन् १७४१.६६ करोड़ रुपये में से केवल १३८.५६ करोड़ रुपये ही लघु उद्योगों को प्राप्त हुआ।

इस समस्त विवरण से यह स्पष्ट है कि बैंक-साख का लाभ बड़े उद्योगपतियों को सर्वाधिक प्राप्त हुआ और अल्प साधन वाले व्यवसायियों, उद्योगपतियों एवं कृषकों की निरन्तर अवहेलना होती रही। बैंकों के राष्ट्रीयकरण द्वारा यह सम्भव हो सकेगा कि बैंक-साख का लाभ छोटे वर्ग के लोगों को प्राप्त हो सके। बैंकों की साख नीति अब शोधनक्षमता एवं लाभ पर आधारित न होकर साख-उपयोगिता, उत्पादकता एवं आर्थिक समानता पर आधारित हो जायगी जिससे अल्प साधनों के लोगों को बैंक-साख का लाभ मिल सकेगा और साख का उपयोग अधिक उत्पादक हो सकेगा। बैंक-

साख की उपलब्धि निर्यात व्यापार के लिए भी हो सकेगी जिससे देश की विदेशी विनिमय की स्थिति में सुधार सम्भव हो सकेगा। व्यापारिक बैंक निर्यात हेतु साख की सीमा निर्धारित कर देते थे और निर्यात करने वाली फर्म के लिए बैंक साख एवं उसकी समता पूँजी (Equity Capital) के अनुपात पर विशेष ध्यान देते थे। व्यापारिक बैंक निर्यात के लिए प्रदान की जाने वाली साख के विरुद्ध शत प्रतिशत प्रतिभूति माँगते थे जिसके कारण हमारे निर्यात की लागत में अकस्मिक व्यय अधिक हुआ करता था। बैंकों के राष्ट्रीयकरण से निर्यात के लिए पर्याप्त मात्रा में साख सरल शर्तों पर उपलब्ध हो सकेगा और विदेशी विनिमय का दुरुपयोग प्रतिबन्धित किया जा सकेगा।

(५) सार्वजनिक आय में वृद्धि—१४ बड़े बैंकों के राष्ट्रीयकरण से सरकार की चालू आय में भी वृद्धि हो सकती है। राष्ट्रीयकृत बैंकों के अधिकृत कोष (Owned Funds) सन् १९६८ के अन्त में ६५ ६६ करोड़ रुपया थे परन्तु इन बैंकों में मे केवल एक बैंक की छोड़कर शेष के अंशों का बाजार मूल्य इनके अंशों के अंकित मूल्य से अधिक है। इस कारण राष्ट्रीयकृत बैंकों को दिये जाने वाली क्षतिपूर्ति इनके अधिकृत कोषों से अधिक हो रहेगा। ६६ करोड़ रुपये के अधिकृत कोषों में से लगभग ६४% कोष एवं इन बैंकों के लाभ का ७०% भाग केवल पाँच बैंकों के अधिकार में था अर्थात कुछ ही बड़े पूँजीपति इन बैंकों के लाभ का बहुत बड़ा भाग प्राप्त करते थे। राष्ट्रीयकरण के बाद इन बैंकों का लाभ जो सन् १९६९ वर्ष में लगभग ८ करोड़ रु० होने की सम्भावना है सरकार को प्राप्त होगा। यदि बैंकों को अधिक उदारता के साथ भी क्षतिपूर्ति प्रदान की जायगी तो पूर्ति की राशि लगभग १०० करोड़ रुपया आयगी और यदि यह क्षतिपूर्ति १० वर्षीय बॉण्डों में प्रदान की गयी तो प्रत्येक वर्ष लगभग ५ ८ करोड़ रुपया बॉण्डों पर ब्याज देना पड़ेगा। इस प्रकार राष्ट्रीयकृत बैंकों के लाभ में से २½ से ३ करोड़ रुपया प्रति वर्ष सरकार को आय हो सकेगा। यह आय उपलब्ध साधनों का अधिक उत्पादक एवं प्रभावशाली उपयोग करने से भविष्य के वर्षों में और भी बढ़ सकेगा।

(६) सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति—बैंकों के राष्ट्रीयकरण से आर्थिक विषमता के कारणों को समाप्त करने में सहायता मिलेगी। एक ओर एकाधिकार की स्थापना को रोका जा सकेगा और दूसरी ओर छोटे व्यवसायियों उद्योगपतियों एवं सामान्य लोगों को पर्याप्त साख प्रदान कर उनकी आय में वृद्धि करना सम्भव हो सकेगा। इसके अतिरिक्त रिश्वत चोरबाजारी तथा अवैधानिक एवं जनहित विरोधी कार्य वाहियों से कमाये गये धन को बैंकों के विभिन्न खातों एवं सेफ वाल्टों (Safe Vaults) के माध्यम से छिपाना कठिन हो जायगा। कर और विनिमय आय कर की चोरी को रोकना भी सम्भव हो सकेगा। सट्टे व्यापार के व्यवहारों को भी रोकना सम्भव हो सकेगा।

बैंक राष्ट्रीयकरण के उपयुक्त उद्देश्यों की पूर्ति स्वाभाविक एवं सरल नहीं

होगी। सरकारी क्षेत्र की लालफीताशाही एव प्रारम्भिकता की हीनता राष्ट्रीयकृत बकों के सुचारु सचालन में बाधाएँ उपस्थित करेंगी। बक राष्ट्रीयकरण से निम्नलिखित प्रमुख समस्याएँ उदय होंगी जिनका निवारण देश की आर्थिक प्रगति एव जन कल्याण के लिए आवश्यक होगा—

(१) सक्रियात्मक एव सगठनात्मक समस्याएँ (Operational and Organisational Problems)—बकों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात एक ओर बको का इस प्रकार पुनर्गठन करना आवश्यक है कि राष्ट्रीयकरण के उद्देश्यों की पूर्ति हो सके और दूसरी ओर, उनका सचालन इस प्रकार किया जाना आवश्यक है कि उनकी व्यावसायिक कुशलता बनी रहे। राष्ट्रीयकृत बकों का सगठन इस प्रकार किया जाना है कि वे कृषि-क्षेत्र के लिए साख-सुविधाएँ प्रदान करने म समर्थ हों। इसके लिए बकिंग का ग्रामीण जनजीवन म प्रसिद्ध करने की आवश्यकता है जिसमे ग्रामीण जनता में बक की सेवाओं के उपयोग करने की स्वभावतया प्रवृत्ति उदय हो सके। इस कार्य के लिए तीन शर्तों की पूर्ति करना आवश्यक है—प्रथम ग्रामीण जनता म बकों के प्रति पूर्ण विश्वास जागृत होना चाहिए। उनम यह भावना जागृत करने की आवश्यकता है कि बक म बचत जमा करने से उनकी बचत सुरक्षित रहेगी और उससे उनको आय भी प्राप्त होगी। दूसरी शर्त ग्रामीणों के खातों के विवरण को गुप्त रखने की है क्योंकि साधारण ग्रामीण नागरिक अपने धन-सचय का ब्यौरा गुप्त रखने को अत्यधिक महत्व देता है। तीसरी शर्त बैंक-खाते को सचालित करने की विधि इतनी सरल होनी चाहिए कि अशिक्षित ग्रामीण उसमें आसानी से रुपया जमा कर सकता हो एव बिना देरी के निकाल सकता हो। बैंक-व्यवसाय का अभी तक का विकास नागरिक क्षेत्रों के पक्ष में रहा है। भारत के ५० बडे नगरों म व्यापारिक बकों की ३१% शाखाएँ स्थित हैं जिनमें कुल जमा का ६८% एव कुल पेशगियों का ६२% भाग निर्गमित होता है। यह भी अनुमान लगाया गया है कि अर्द्ध-नागरिक क्षेत्रों में जो व्यापारिक बैंकों की शाखाएँ खोली गयी हैं, उनका प्रमुख उद्देश्य जमा प्राप्त करना रहा है जबकि बैंक-साख का अधिकतर भाग बडे नगरों को ही प्राप्त होता रहा है। बैंकिंग सुविधाओं के समान वितरण का आयोजन कर राष्ट्रीयकरण के उद्देश्यों की पूर्ति सम्भव हो सकती है जिसके लिए बैंकों की शाखाएँ छोटे-छोटे नगरों एव ग्रामों में खोलने की आवश्यकता होगी। शाखाओं को खोलने की अभी तक की नीति नवीन शाखाओं से प्राप्त होने वाला सम्भावित लाभ रहा है परन्तु अब इन शाखाओं को जनसाधारण की सुविधा हेतु खोलना होगा जिसके परिणामस्वरूप बहुत-सी शाखाएँ हानि से सचालित करनी होंगी। छोटे नगरों एव ग्रामों मे शाखाओं का उद्देश्य अब केवल जमा एकत्रित करना ही नहीं होना चाहिए बल्कि वहा के लघु उत्पादकों को पर्याप्त साख प्रदान कर उत्पादक क्रियाओं का विस्तार करना होना चाहिए। बक का सुचारु सचालन स्थानीय उत्पादक साधनों एव योग्यताओं का उत्पादक उपयोग करने में पर्याप्त योगदान द सकता है।

बैंकों की इस गति विधि से आर्थिक सत्ताओं एवं सम्पन्नता का विकेन्द्रीयकरण भी सम्भव हो सकेगा।

बैंकों की अभिवृत्तियों में भी परिवर्तन करने की आवश्यकता होगी क्योंकि अब उनकी क्रियाएं केवल व्यावसायिक न होकर विकासप्रधान होनी चाहिए। राष्ट्रीयकृत बैंकों की सफलता बड़ी सीमा तक प्रबन्धकों की अभिवृत्तियों एवं व्यक्तिगत सम्बन्धों पर निर्भर रहेगी।

राष्ट्रीयकृत बैंकों के संचालन के सम्बन्ध में सबसे बड़ा भय लालफीताशाही का है। सार्वजनिक क्षेत्र के व्यवसायों को लालफीताशाही के कारण सफलतापूर्वक संचालित करना असम्भव होता है। बैंकों के कुशल संचालन के लिए उनकी पुरानी परम्पराओं एवं नियमों को कुछ समय तक जारी रखना आवश्यक होगा। साख के वितरण में आमूल परिवर्तन करने की आवश्यकता है परन्तु यह परिवर्तन इस प्रकार किए जाने चाहिए कि बैंकों की संचालन कुशलता पर आघात न पहुँचे। सार्वजनिक व्यवसायों में उपरिव्यय लागत दिन पर दिन बढ़ती जाती है। पहले से राष्ट्रीयकृत स्टेट बैंक से उपरिव्यय लागत व्यापारिक बैंकों की तुलना में अधिक रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में खोली जाने वाली शाखाओं से हानि होने के कारण उपरिव्यय लागत में वृद्धि होना स्वाभाविक होगा। दूसरी ओर राष्ट्रीयकृत बैंकों के कर्मचारियों के वेतन आदि के स्तर समान नहीं हैं और इनमें समानता लाने के लिए उपरिव्यय लागत में वृद्धि करना आवश्यक होगा। इस प्रकार बढ़ती हुई उपरिव्यय लागत को रोकने की समस्या राष्ट्रीयकृत बैंकों के सम्मुख गम्भीर रूप ग्रहण कर सकती है।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रीयकृत बैंकों के संचालन में राजनीतिक हस्तक्षेप का भय सर्वथा निराधार नहीं है। भारत में सहकारी संस्थाओं की असफलता का प्रमुख कारण राजनीतिक हस्तक्षेप रहा है। यदि राष्ट्रीयकृत बैंकों की नीति एवं कार्यक्रमों पर राजनीतिज्ञों का दबाव रहा तो बैंकों का कुशल संचालन सम्भव न हो सकेगा। अभी तक की व्यापारिक बैंकों की व्यवस्था में शाखा प्रबन्धक को साख के सम्बन्ध में पूर्ण उत्तरदायित्व वहन करना पड़ता है। यदि साख वितरण की व्यवस्था में स्थानीय राजनीतिज्ञ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालने में समर्थ होंगे तो वही भाग की वही स्थिति हो सकती है जो सरकार द्वारा प्रदान किए जाने वाले औद्योगिक ऋणों की होती है।

(२) साधनों का निजी वित्त संस्थाओं अथवा विदेशी बैंकों की ओर प्रवाहित होना—यदि राष्ट्रीयकृत बैंक किसी भी समय विशेषकर राष्ट्रीयकरण की प्रारम्भिक अवस्था में जनता का पूर्ण विश्वास प्राप्त करने में असमर्थ होंगी तो बचत का बड़ा भाग विदेशी बैंकों एवं छोटे बैंकों जिनका राष्ट्रीयकरण नहीं किया गया है की ओर प्रवाहित हो सकता है। यह परिस्थिति राष्ट्रीयकृत बैंकों के एक बार बद गति से चालन के बाद भी उत्पन्न हो सकती है और इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीयकरण के उद्देश्यों की

पूर्ति सुगमता से नहीं हो सकेगी। ऐसी परिस्थिति में सरकार को बचे हुए बैंकों का राष्ट्रीयकरण करने के लिए तैयार रहना आवश्यक होगा।

(३) राष्ट्रीयकृत बैंकों में प्रतिस्पर्धा—बैंकिंग एक सघन व्यक्तिगत सेवा है और प्रबन्ध को जमा करने वालों एवं साख प्राप्त करने वालों के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करना होता है। बैंकिंग व्यवसाय में पारस्परिक सद्विश्वास एवं सहनशीलता की सर्वाधिक आवश्यकता होती है। सार्वजनिक व्यवसायों में इस प्रकार का वातावरण प्रायः विद्यमान नहीं होता है क्योंकि इन व्यवसायों के कर्मचारियों के वेतन एवं पारिश्रमिक कठोर नियमों के अधीन रहते हैं और इनके कार्य निष्पादन के आधार पर इन्हें पारिश्रमिक नहीं दिया जाता है। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक व्यवसायों को प्रतिस्पर्धा का भय न होने के कारण इनमें व्यावसायिक वातावरण नहीं रहता है। राष्ट्रीयकृत बैंकों के कुशल संचालन के लिए इनकी सत्ता पृथक्-पृथक् अस्तित्व बनाये रखना आवश्यक होगा तथा इन्हें पारस्परिक स्पर्धा करने का पूर्ण अवसर मिलना चाहिए। प्रतिस्पर्धा का आन्दोलन तब ही हो सकता है जब बैंकों को संचालन के सम्बन्ध में पूरी छूट दी जायगी। यदि इस प्रकार की व्यवस्था नहीं की गयी तो राष्ट्रीयकृत बैंकों का संचालन जीवन बीमा निगम के समान हो जायगा जहाँ प्रतिस्पर्धा की अनुपस्थिति के कारण जीवन बीमा पॉलिसी रखने वालों को बाद की सेवाओं की उचित व्यवस्था की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता है।

(४) बड़ी उत्पादक इकाइयों को साख की कमी—बैंकों की साख का कृषि, लघु उद्योग एवं लघु निर्यातकों को प्रदान करने की नीति से बड़ी औद्योगिक इकाइयों, जो सुसंगठित हैं और देश की उत्पादक क्रियाओं में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं, को पर्याप्त बैंक-साख उपलब्ध होना कठिन हो जायगा जिसके परिणामस्वरूप इनके उत्पादन के प्रयासों को क्षति पहुँचना स्वाभाविक होगा। दूसरी ओर लघु व्यवसायी, उद्योगपति एवं कृषक अपनी उत्पादन क्रियाओं को संगठित रूप से नहीं संचालित कर पाते हैं और उनको प्रदान की गयी साख का अधिकतम उत्पादक उपयोग सम्भव हो सकेगा। यह आवश्यक तथ्य नहीं समझा जा सकता है क्योंकि इनकी असफलता का एकमात्र कारण साख की कम उपलब्धि ही नहीं है। ऐसी परिस्थिति में देश के समस्त उत्पादन-प्रयासों में अन्ततः क्षति पहुँच सकती है। लघु उद्योगपति व्यवसायी एवं कृषक बैंक साख का अधिकतम उत्पादक उपयोग कर सकें, इसके लिए इन्हें साख के साथ अन्य आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करना आवश्यक होगा अर्थात् सरकार को साख-व्यवस्था के साथ अन्य सुविधाओं को समन्वित करना आवश्यक होगा। यह समन्वय सामान्यतः सफलतापूर्वक संचालित नहीं हो पाता है। प्रस्तावित चतुर्थ योजना में निजी क्षेत्र में १०,००० करोड़ रुपया विनियोजित करने की आशा की गयी है। बैंक-साख की कठिन उपलब्धि के कारण संगठित निजी क्षेत्र इस लक्ष्य की प्राप्ति में पर्याप्त योगदान नहीं दे सकेगा।

(५) जमा करने वालों का हित—बैंकों में राष्ट्रीयकरण से सरकार के ऊपर यह उत्तरदायित्व आ गया है कि राष्ट्रीयकृत बैंकों का संचालन जमा करने वाले समुदाय के हितों को ध्यान में रखकर करें। जमा करने वालों के हितों की सुरक्षा के लिए बैंकों का संचालन व्यापारिक सिद्धान्तों के आधार पर करना आवश्यक होगा। व्यापारिक सिद्धान्तों के साथ जन हित का समन्वय किया जाना चाहिए। यदि जन हित को व्यापारिक सिद्धान्तों को छोड़कर महत्व प्रदान किया गया तो साख ऐसे व्यक्तियों एवं संस्थाओं के हाथों में पहुँच जायगी जिनकी साख शोधनक्षमता सन्देहजनक होगी और बैंकों को अशोध्य ऋण के कारण बड़ी हानि उठानी होगी जो जमा करने वालों के हितों के विपरीत होगा और जिससे जनसाधारण का बैंकों में विश्वास घट जायगा। इस प्रकार साख शोधनक्षमता को बैंक साख का आधार बनाये रखना इसलिए आवश्यक होगा कि बैंकों के प्रति जमा करने वालों में पूर्ण विश्वास बना रहे। राष्ट्रीयकृत बैंकों को अपनी साख नीति में जन हित विकास एवं साख-शोधनक्षमता तीनों का ही सामंजस्य करना होगा। यदि इन तीनों का सामंजस्य नहीं किया गया तो बैंकों का लाभप्रद संचालन भी सम्भव न हो सकेगा।

(६) बैंकों एवं अन्य साख के साधनों में समन्वय—राष्ट्रीयकृत बैंकों की साख नीति में कृषि-क्षेत्र की साख की आवश्यकताओं को सर्वाधिक महत्व दिया जाना है। कृषि-क्षेत्र को अल्प एवं मध्य समय के लिए ही साख की आवश्यकता नहीं होती बल्कि दीर्घकालीन साख की भी आवश्यकता बड़े प्रसाधनों जैसे ट्रैक्टर आदि के लिए पड़ती है। व्यापारिक बैंक केवल अल्प एवं मध्यकालीन साख प्रदान कर सकता है और इस साख का उपयुक्त उपयोग तब ही हो सकता है जब दीर्घकालीन साख की भी व्यवस्था कृषि-क्षेत्र के लिए कर दी जाती है और इन दोनों प्रकार की साख में समन्वय बनाये रखा जाता है। कृषि-क्षेत्र को साख सहकारी संस्थाओं, भूमि बन्धक बैंकों तथा साहूकारों द्वारा भी प्रदान की जाती है। कृषि को उपलब्ध होने वाली संस्थानीय साख में समन्वय स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक होगा और इसके लिए किसी ऐसी केन्द्रीय संस्था की स्थापना आवश्यक होगी जो सहकारी संस्थाओं, भूमि बन्धक बैंकों एवं व्यापारिक बैंकों द्वारा प्रदान की जाने वाली साख को समन्वित कर सके। इस संस्था की अनुपस्थिति में कृषि से सम्बन्धित विभिन्न कार्यों को प्रदान की जाने वाली साख में परस्पर व्यापकता (Overlapping) होने का भय निराधार नहीं है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि १४ बड़ी बैंकों के राष्ट्रीयकरण का प्रमुख उद्देश्य बैंक साख व्यवस्था को नवीन मोड़ देना है जिससे देश की मौद्रिक नीति विकासप्रधान हो सकेगी और देश में उपलब्ध साख के बहुत बड़े भाग का आवंटन राष्ट्रीय हितों के अनुकूल हो सकेगा। बैंकों के राष्ट्रीयकरण से मौद्रिक नीति की प्रभावशीलता में वृद्धि होगी जो राजकोषीय एवं अन्य विकास-नीतियों को पुष्ट करने में सहायक होगी। बैंकों का राष्ट्रीयकरण कोई ऐसी क्रिया नहीं है जो हमारे देश के

अल्प विकसित देशों की अर्थ-व्यवस्था के प्रतिकूल की है। अधिकतर विकसित राष्ट्रों में वणिग व्यवसाय का अधिकतर भाग सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा संचालित है, जैसा निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है—

तालिका सं० ७५—विभिन्न उद्योगप्रधान राष्ट्रों में वणिग व्यवसाय का सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में वर्गीकरण

देश का नाम	निजी क्षेत्र द्वारा नियंत्रित वणिग व्यवसाय का प्रतिशत	सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा नियंत्रित वणिग व्यवसाय का प्रतिशत
संयुक्त राज्य अमरीका	९० ९५	[illegible]
यूनाइटेड किंगडम	८५ ९०	१० १५
स्वीडन	३५ ८०	२० २५
नार्वे	६५ ३०	[illegible]
जर्मनी	३० ७५	६५ ३०
फ्रान्स	८० ७१	७५ ८०
इटली	१० ००	९० ००

इस तालिका से ज्ञात होता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका एवं यूनाइटेड किंगडम में निजी वित्तीय संस्थाएँ वणिग व्यवसाय का नियंत्रित करती हैं। स्केन्डिनेवियन देशों में वणिग व्यवसाय मध्य स्थिति में है अर्थात् निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र दोनों ही वणिग व्यवसाय संचालित करते हैं परन्तु यूरोप के देशों में सरकारी क्षेत्र द्वारा संचालित वणिग संस्थाओं का महत्व अधिक है।

फ्रान्स में सार्वजनिक क्षेत्र में समस्त वणिग व्यवहारों का लगभग ७५% से ८०% भाग संचालित होता है। फ्रान्स में राष्ट्रीयकृत बैंकों के अतिरिक्त अनेक सरकारी एवं अर्द्ध सरकारी वित्तीय संस्थाएँ हैं जो गृह निर्माण, कृषि एवं मध्यकालीन साख प्रदान करती हैं। इस देश में बैंकों का वर्गीकरण—जमा-बैंक, विनियोजन बैंक तथा दीर्घकालीन एवं मध्यकालीन साख-बैंकों में किया गया है। केवल जमा-बैंकों का ही राष्ट्रीयकरण किया गया जिसमें भी क्षेत्रीय एवं स्थानीय बैंकों को निजी क्षेत्र में छोड़ दिया गया है। फ्रान्स में सन् १९४१ में बैंकों पर सामाजिक नियंत्रण किया गया और सन् १९४६ में कुछ बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। राष्ट्रीयकृत बैंकों के अंशधारियों को बॉन्डों में शोधन किया गया था। राष्ट्रीयकृत बैंकों के व्यावसायिक गुणों एवं प्रशासनिक स्वतन्त्रता को बनाये रखा गया है। यहाँ एक बैंक आयोग की स्थापना की गयी है जो समस्त बैंकों (निजी क्षेत्र के सहित) का पर्यवेक्षण, नियमन एवं अन्वेषण करता है।

भारत में भी फ्रान्स की अर्थ-व्यवस्था का कुछ सीमा तक पालन किया गया है। सन् १९६८ में बैंकों पर सामाजिक नियन्त्रणों को लागू करने के बाद फ्रान्स के समान कुछ बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है। राष्ट्रीयकृत बैंकों के पृथक

अस्तित्व को बनाए रखा गया है। इन बैंकों के अंशधारियों को क्षति-पूर्ति केन्द्रीय सरकार के प्रामीजरी नोट अथवा स्टाक प्रमाणपत्रों में दी जानी है। अंशधारी क्षति पूर्ति या तो १० वर्षीय ४३/४% अथवा ३० वर्षीय ५१/४% प्रामीजरी नोट अथवा स्टाक प्रमाणपत्र में ले सकते हैं। क्षति-पूर्ति का निर्धारण पारस्परिक समझौते से अथवा समझौता न होने पर एक ट्रिब्यूनल द्वारा किया जायगा। इस ट्रिब्यूनल का अध्यक्ष हाईकोर्ट अथवा सुप्रीम कोर्ट का न्यायाधीश होगा और इसमें दो सदस्य होंगे जिनमें एक बैंकिंग व्यवसाय का अनुभवी व्यक्ति और दूसरा चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट होगा। आशा यह की जाती है कि राष्ट्रीयकृत बैंकिंग व्यवसाय का प्रबन्ध एवं संचालन भी पहले के बैंकिंग व्यवसाय के समान ही चलाया जायगा।

भाग ३

विदेशों में आर्थिक नियोजन

[Planning Abroad]

विदेशों में आर्थिक नियोजन—1
[Planning Abroad—1]

[१—(अ) रूस की पंचवर्षीय योजनाएँ—(१) प्रथम पंचवर्षीय योजना, (२) द्वितीय पंचवर्षीय योजना, (३) तृतीय पंचवर्षीय योजना, (४) चतुर्थ पंचवर्षीय योजना, (५) पाँचवी पंचवर्षीय योजना, (६) छठी पंचवर्षीय योजना, (७) सातवी सातवर्षीय योजना, (८) आठवी पंचवर्षीय योजना १९६६ से १९७०, २—(आ) सोवियत नियोजित अर्थव्यवस्था का संगठन रूसी अर्थव्यवस्था की नवीन प्रवृत्तियाँ रूसी प्रबन्ध में सुधार]

१—(अ) रूस की पंचवर्षीय योजनाएं

रूस में आर्थिक नियोजन सर्वप्रथम प्रारम्भ किया गया और इसलिए रूस को आर्थिक नियोजन का जन्मदाता कहना अतिशयोक्ति न होगी। रूस में आयोजित अर्थव्यवस्था रूस की प्रथम पंचवर्षीय योजना (सन् १९२८-३२) के साथ प्रारम्भ हुई। सन् १९१७ की बोलशेविक क्रान्ति (Bolshevik Revolution) के फलस्वरूप जार (Czar) की सत्ता समाप्त हो गयी और साम्यवादियों के हाथों में राज्य सत्ता आ गयी। सन् १९१७ से १९२० तक अपनी नौका को दृढ़ करने के लिए साम्यवादियों ने केवल देश के विरोधी पक्षों को ही नहीं दबाया अपितु विदेशी पूंजीवादी देशों के हस्तक्षेप का भी मुकाबला किया। सन् १९२१ में साम्यवादी सरकार ने नवीन आर्थिक नीति (New Economic Policy) की घोषणा की।

गोयलरो-योजना (Goelro Plan)—रूस में व्यावहारिक योजना का प्रारम्भ लेनिन (Lenin) द्वारा किया गया। उसके विचार में रूस में समाजवाद स्थापित करने हेतु देश की अर्थव्यवस्था को विद्युतकरण के आधार पर पुनर्संगठित करना आवश्यक था। लेनिन की मान्यता थी कि साम्यवाद सोवियत शक्ति तथा सम्पूर्ण देश के विद्युतकरण का योग (Soviet Plus Electricity Equals Communism) है। विद्युतकरण के कार्य को सम्पन्न करने हेतु एक राजकीय विद्युतकरण आयोग (State Commission for Electrification) अथवा गोयलरो (Goelro) की स्थापना मार्च सन् १९२० में हुई और इसके द्वारा निर्मित योजना को दिसम्बर सन् १९२० में स्वीकृति प्राप्त हुई। फरवरी सन् १९२१ में इसे गोस्प्लान (Gosplan) में मिला दिया गया। विद्युतकरण की योजना के अनुसार १० से १५ वर्षों में सारे देश में

विद्युत शक्ति पहुँचानी थी। इसके अन्तर्गत ३० नवीन बिजलीघर बना कर विद्युत्-उत्पादन की क्षमता का १७५ लाख किलोवाट बनाना था जिससे देश का उत्पादन सन् १९१३ की तुलना में दुगुना किया जा सके। इस योजना ने सन् १९३० तक अपने उद्देश्यों की लगभग पूर्ति कर ली।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (सन् १९२८-१९३२)—*गास्प्लान* (Gosplan) को रूस की प्रथम पंचवर्षीय योजना बनाने का कार्यभार सन् १९२६ में सौंपा गया। गोस्प्लान ने प्रथम योजना का निर्माण सन् १९२८ तक कर लिया जिसको सन् १९२८ के अक्टूबर माह से लागू कर दिया गया।

प्रथम योजना का सामान्य उद्देश्य रूस में एक साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना करना था जिससे उत्पादन के साधनों का अधिकतम विकास हो और वास्तविक रूप में श्रमिकों की दशा में सुधार किया जा सके। नवीन आर्थिक नीति का पुनर्गठन और समाज के औद्योगीकरण पर देश की अर्थ व्यवस्था का पुनर्निर्माण करने का लक्ष्य अपनाया गया। साथ ही, पूँजीवाद का समूल नाश करने के लिए भी ठोस कदम उठाये गये। योजना में राजनीतिक एवं सैनिक उद्देश्यों को विशेष स्थान दिया गया। वास्तव में योजना के द्वारा सैनिक शक्ति के विस्तार के लिए प्रयत्न किये गये, यहाँ तक कि प्रथम योजना को रूस की दूसरी क्रान्ति कहा जा सकता है। प्रथम क्रान्ति में लेनिन ने राज्य-सत्ता प्राप्त कर नवीन रूस का निर्माण किया और दूसरी क्रान्ति में स्टालिन ने देश के औद्योगिक तथा सैनिक ढाँचे को पूर्ण रूप से बदल कर नवीन साम्यवादी राज्य-सत्ता को स्थायी बनाया।

प्रथम योजना में कृषि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कदम उठाये गये। यह पूर्णतया मान लिया गया कि देश की अर्थ-व्यवस्था में कृषि को उद्योगों के बाद स्थान दिया जाय तथा कृषि विकास का उद्देश्य सब प्रकार के औद्योगीकरण की गति को तीव्र करना होना चाहिए। स्टालिन ने घोषणा की कि रूस के पास उपनिवेश, लाभ तथा ऋण नहीं हैं और यह पूँजीवादी देश रूस का देश भी नहीं। ऐसी परिस्थिति में रूस को घरेलू साधनों से पूँजी जुटाने हेतु कृषकों पर कर लगाना आवश्यक होगा। प्रथम योजना में कृषि सम्बन्धी दो मुख्य कार्यक्रम थे—सामुदायिक कृषि का विकास तथा समृद्धशाली कृषक तथा कुलक वर्ग का समूल नाश। कृषि के क्षेत्र में पूँजीवादी प्रवृत्तियों को समाप्त करने हेतु यह दोनों कार्यक्रम अत्यन्त आवश्यक थे। खेतों को बड़ी इकाइयों में परिवर्तित करने से किसानों का राजनीतिक शिक्षा संगठित रूप से प्रदान करना सुगम था। इसके अतिरिक्त बड़े-बड़े फार्मों के उत्पादन पर राज्य का पूर्ण संचालन तथा नियन्त्रण रखना सम्भव था। सामुदायिक कृषि के साथ उत्पादन के मशीनीकरण से राज्य को अनेक लाभ प्राप्त हुए। किसानों का विरोध कम खेत जोतना और सरकार के हाथ में अनाज बेचना सामूहिक कृषि प्रथा से सम्भव न था। राज्य मशीन ऋण, बीज खाद आदि के रूप में जो सुविधाएँ देता था उनके दायित्व का

भुगतान करने के लिए किसानों को अपना अनाज निश्चित मूल्य पर राज्य के द्वारा बेचने के लिए बाध्य होना पड़ता था। मार्च सन् १९३० तक सामुदायिक खेती की वृद्धि किसानों के विरोध के बावजूद भी निरन्तर होती रही। अधिकारियों द्वारा सम्पूर्ण जिले को सामुदायिक कृषि का क्षेत्र घोषित कर दिया जाता था और सभी किसान सामुदायिक फार्म अथवा कालखोज (Kol Khoz) के सदस्य मान लिए जाते थे। इसका विरोध करने वालों को समाजवाद का शत्रु तथा देशद्रोही समझा जाता था। कुलक वर्ग को जो सम्पन्न किसान वर्ग था तथा शिक्षित एवं कृषि-कुशल उत्पादक होने के साथ व्यक्तिगत उत्पादन प्रणाली का खुला पोषक था सामुदायिक कृषि में सम्मिलित होने के लिए जब किसी प्रकार आकर्षित नहीं किया जा सका तब घोर दमन की हिंसक नीति का अनुसरण किया गया जिससे रूस की शक्ति का आधार लाल सेना में जिसमें अधिकतर अफसर कुलक-वर्ग के थे असन्तोष फैलने लगा। मार्च सन् १९३० में स्थिति अधिक बिगड़ने पर स्टालिन ने घोषणा की कि जहाँ कौलखोज के आवश्यक साधन न हों, वहाँ पुरानी पद्धति ही रहने दी जाए। इस घोषणा के पश्चात् जहाँ मार्च सन् १९३० में ५५% कृषक-परिवार सम्मिलित थे मई सन् १९३० में घटकर २४.१% रह गये, परन्तु सन् १९३० की अच्छी फसल ने सामुदायिक कृषि पर योजनाकर्ताओं तथा जनता का विश्वास जमा दिया और सन् १९३५ में ९१.५% कृषक परिवार कालखोज की सदस्यता में लाये गये।

पूँजी निर्माण—प्रथम योजनाकाल में पूँजी विनियोग (Capital Investment) का निम्नलिखित रूप रहा—

तालिका सं० २६—रूस में पूँजी विनियोग (प्रथम योजनाकाल)

विनियत रूबल में

	सन् १९२३-२४ से १९२७-२८	सन् १९२८-२९ से १९३२-३३
कुल विनियोग	२६.५	६४.६
उद्योग	४.४	१९.४
विद्युतीकरण (केवल केन्द्रीय विद्युत गृह)	.८	३.१
यातायात (पूँजीगत मरम्मत सहित)	२.७	१०.०
कृषि	१५.०	२३.२

उपर्युक्त आँकड़ों से ज्ञात होता है कि योजनाकाल के पिछले पाँच वर्षों की तुलना में योजनाकाल के पाँच वर्षों में पूँजी विनियोग ढाई गुना हुआ। योजना के आवश्यक साधन संचय करने में राष्ट्रीय आय का ३०.५% भाग पूँजी निर्माण के लिए बचाया गया। इतनी अधिक पूँजी की राशि बचाना केवल समाजवादी अर्थव्यवस्था में ही सम्भव था।

उद्योग—प्रथम योजना में प्रति वर्ष २०% उत्पादन-वृद्धि का लक्ष्य रखा गया जबकि वास्तविक उत्पादन की वृद्धि २४ ४% रही। इतनी अधिक उत्पादन-वृद्धि ने समस्त संसार को चकित कर दिया। इस उत्पादन के पाँच कारण बताये गये—

(१) नवीन विकास होने से यान्त्रिक कुशलता का स्तर रूस में बहुत अधिक था। विज्ञान की नवीनतम खोजों के आधार पर उसमें उत्पादन के लक्ष्य को पूरा करने का निश्चय किया गया था।

(२) सन् १९१३ के पश्चात् उत्पादन इतना अधिक गिर गया था कि थोड़ी-सी वृद्धि से उत्पादन प्रतिशत ऊँचा उठ जाता था।

(३) प्रबल केन्द्रीय नियन्त्रण के अन्तर्गत रूस के उद्योगों में उत्पादन की मात्रा योजना द्वारा निर्धारित की जाती है और यह मात्रा उतनी ही होती है जितना क्रय शक्ति उपभोक्ताओं के हाथों में दी जाती है। इस प्रकार उद्योगों पर माग के उतार-चढ़ाव का भय नहीं पड़ता है।

(४) रूस में वस्तुओं के प्रमापीकरण को विशेष महत्त्व दिया गया और उत्पादन के साधनों को कम प्रकार की अधिक वस्तुएँ उत्पादित करने के लिए विनियोजित किया गया, जबकि अन्य उन्नतशील राष्ट्रों में वस्तुओं के प्रकार बढ़ाने में साधनों का व्यय होता है।

(५) मुद्रा और साख पर पूर्ण नियन्त्रण होने से राज्य इच्छानुसार वस्तुओं के उत्पादन को निश्चित सीमाओं में नियन्त्रित रखता है।

रूसी योजनाओं के लक्ष्य इतने गतिशील होते हैं कि प्रायः उनका प्रति वर्ष घटाया बढ़ाया जाता है। योजनाकाल में कोयले के उत्पादन में २१२ १% तथा पट्रोल में १८१ ५% की वृद्धि हुई। विद्युत एवं मशीन तथा लोहा एवं इस्पात उद्योगों पर विशेष ध्यान दिया गया। लगभग ३० भट्टियाँ (Blast Furnaces) स्थापित की गयी जिनमें प्रत्येक की उत्पादनक्षमता २ लाख टन प्रति वर्ष थी। इसी प्रकार इंजिन, रेल के डिब्बे और जहाज-निर्माण तथा कृषि औजार के उद्योगों की अत्यधिक उन्नति हुई।

श्रम—श्रमक्षेत्र में प्रथम योजना में आशा से अधिक सफलता प्राप्त हुई। शीघ्र औद्योगिक विकास के कारण सन् १९३० तक बेकारी की समस्या समाप्त हो गयी और श्रम की कमी का युग प्रारम्भ हो गया। सन् १९२८ में राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में लगे हुए श्रमिक एवं कर्मचारियों की संख्या १,१५ ३९ ००० थी जो सन् १९३४ में बढ़कर २,३६,८१,२०० हो गयी[1]। सन् १९३० के बाद से श्रमिकों की इतनी माँग बढ़ी कि शीघ्र काम करने से इन्कार करना एक अपराध बन गया। योजनाकाल में

1 Voznesensky *The Economy of U S S R During World War II* p 7

निरन्तर औद्योगिक प्रशिक्षण के अवसर प्रदान करने के प्रत्येक उपाय किये गये। श्रमिकों की कमी पूर्ति करने हेतु स्त्रियों को बड़ी संख्या में घर के बाहर कामों में आकर्षित किया गया। कारीगरों की कुशलता तथा परिश्रम में उन्नति करने के लिए समाजवादी प्रतिस्पर्धा (Socialist Competition) का सिद्धान्त अपनाया गया जिससे प्रत्येक कारीगर में अधिकतम उत्पादन करने की इच्छा जाग्रत हुई। इसके लिए अनेक प्रकार के आर्थिक एवं दूसरे प्रलोभन दिये गये। वेतन की दर में वृद्धि से भी अधिक प्रभावशील प्रतिष्ठा व राजकीय सम्मान सिद्ध हुआ जिसे सार्वजनिक रूप से बड़े धूम धाम से प्रदान किया जाता था। इन सबके साथ मजदूरों पर प्रतिबन्ध तथा मजदूर सभों का अनुशासन बड़ी कठोरता से किया गया।

व्यापार—वस्तु विनिमय एवं उपभोग की सर्वथा नवीन व्यवस्था अपनायी गयी। योजना की पूँजी की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उपभोग पर नियन्त्रण कर दिया गया। इसके अन्तर्गत राज्य ने संचालित रूप से निजी खाद्य वस्तुओं का बँटवारा तथा जनता के उपभोग का संचालन अपने हाथों में ले लिया। नागरिक उपभोग की सीमाएँ प्रत्येक व्यक्ति के कार्य के महत्त्व तथा मात्रा पर आधारित की जाने लगीं। अधिकतम प्रयास करने वाले को उपभोग सामग्री अधिक दी जाने लगी। उपभोग की सामग्री का मूल्य निर्धारण इस प्रकार होता था कि जनता की माँग उन्हीं वस्तुओं के प्रयोग तक सीमित रहे जो देश सुविधापूर्वक बना सकता है। इस प्रकार मूल्य निर्धारण का एक लक्ष्य यह भी था कि जनता के हाथों से अधिक से अधिक आय राज्य के पास आ जाय। वस्तुतः यह तरीका रूस की विशाल पूँजी निर्माण का एक मुख्य कारण था।

योजना में यातायात के साधनों के सुधार का विशेष ध्यान नहीं दिया गया। साम्यवादी पार्टी के सत्रहवें अधिवेशन सन् १९५२ में अविकसित यातायात को प्रथम योजना की सबसे बड़ी दुर्बलता बताया गया। मजदूरों की कम उत्पादनक्षमता और वस्तुओं की ऊँची लागत का हल प्रथम योजना में नहीं मिला। वेतन प्रणाली की त्रुटियाँ और अनुभवी इन्जीनियरों तथा कारीगरों की कमी इसका मुख्य कारण था, परन्तु प्रथम योजना ने रूस की कृषिप्रधान अर्थ व्यवस्था को उद्योगप्रधान अर्थ व्यवस्था में परिवर्तित कर दिया। योजना के अन्त में राष्ट्रीय आय का ५७ ५% उद्योगों यातायात तथा निर्माण से और २२ ९% कृषि से प्राप्त हुआ।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (सन् १९३३-१९३७)—सन् १९३३ के पश्चात जर्मनी में हिटलर का प्रभाव बढ़ने लगा। हिटलर के भाषणों और उसकी पुस्तक, 'मेरा संघर्ष' (Mein Kempf) से स्पष्ट हो गया था कि जर्मनी वर्सेलीज की सन्धि (Treaty of Versailles) का विरोध करेगा और क्षति पूर्ति (Reparation) की शर्तों के अनुसार हर्जाना नहीं देगा। इसके अतिरिक्त हिटलर यूरोप के उन सभी हिस्सों पर अधिकार करेगा जो जर्मनी से वर्सेलीज सन्धि के अन्तर्गत छीन लिए गये थे। इन सबसे

दूसरे महायुद्ध की आशंका का संकेत स्पष्टतः होने लगा। यही कारण था कि रूस की दूसरी पंचवर्षीय योजना में युद्ध-सामग्री का उत्पादन और सैनिक आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान दिया गया। दूसरे महायुद्ध में रूस की विजय का एक कारण दूसरी योजना का सैनिक उत्पादन था।

उद्योग—द्वितीय योजना में औसत उत्पादन के आदर्श का कुछ त्याग किया गया क्योंकि इस योजना के अपूर्ण निर्माण-कार्यों पर अधिक पूँजी लगाने की आवश्यकता थी। वस्तु-उत्पादन का प्रमापीकरण इस योजना के औद्योगिक स्वरूप की विशेषता थी। यह निश्चित किया गया कि प्रमापीकरण से अधिकतम साधन तथा श्रम की बचत की जा सकेगी। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु केवल चार प्रकार के ट्रैक्टर बनाये गये जबकि संयुक्त राज्य अमरिका में ८० प्रकार के ट्रैक्टर बनाये जाते थे। इसी प्रकार सन् १९३८ में २९०० प्रकार के स्क्रू बनाये लिये जाते थे जिन्हें घटाकर १८३ प्रकार का कर दिया गया। इसी योजना में देश की यान्त्रिक कुशलता का बड़े पैमाने पर विस्तार करने का प्रयत्न किया गया क्योंकि इसके द्वारा ही बड़े पैमाने के नवीनतम मशीनों का उत्पादन एवं उपभोग सम्भव हो सकता था। इस योजना में ३,९६,९०० विशेषज्ञों का प्रशिक्षण दिया गया। इंजीनियरों की संख्या में ७.७ गुनी वैज्ञानिक कार्यकर्त्ताओं की ७.१ गुनी तथा कृषि-विशेषज्ञों की ५ गुनी वृद्धि हुई।

श्रमिक कुशलता और प्रति व्यक्ति उत्पादन की वृद्धि के लिए दो कदम उठाये गये—प्रथम, स्टालिन के प्रसिद्ध नारे 'सब निर्णय कर्मचारी करें' (Personnel Decide Everything) को अपनाया गया। इससे दो लाभ हुए—प्रथम, कारखानों में राजनीतिक हस्तक्षेप कम हो गया और द्वितीय कर्मचारियों में कारखाने के प्रति अपनेपन की भावना जाग्रत हो गयी है। दूसरा कदम स्टाखनोव आन्दोलन (Stakhanov Movement) से प्रारम्भ हुआ। स्टाखनोव डानवेस की खान में कार्य करने वाला मजदूर था। उसने प्रात द्वारा इसने एक पारी (Shift) में ७ टन कोयले खोदने के स्थान पर १०२ टन कोयला खोद लिया। एक मास के अन्तर्गत ही इस नयी प्रणाली से एक पारी में २२७ टन कोयला खोदा गया। शीघ्र ही इसका अनुसरण सभी उत्पादनक्षेत्र में होने लगा और इस आन्दोलन के फलस्वरूप उत्पादन में ३००% की वृद्धि हुई।

इस योजना में प्रथम बार उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन की वृद्धि को कुछ महत्त्व दिया गया (परन्तु भारी उद्योगों के महत्त्व को कम नहीं किया गया)। उपभोग की सामग्री के प्रकार (Variety) बहुत कम कर दिये गये, परन्तु उनकी उत्पादन मात्रा बढ़ा दी गयी। राजनीतिक शुद्धि (Political Purge) के कारण देश में जन-असन्तोष या विक्षोभ शान्त करने हेतु यह छूट दी गयी।

कृषि—द्वितीय योजना में कृषि-क्षेत्र के नवीन सोवियत स्वरूप को और दृढ़ बनाने का प्रयत्न किया गया। सामूहिक कृषि की प्रगति ने किसानों का सहयोग

बिगाड़ दिया था। सहानुभूति, कृषि संगठन में एकरूपता तथा समान नियन्त्रण लाने हेतु फरवरी सन् १९३५ में कृषि-आरटेल के आदर्श नियम (Model Rules of Agricultural Artel) बनाये गये। इसके अन्तर्गत कृषि पद्धति भूमि उत्पादन का बँटवारा प्रबन्ध सदस्यता कोष तथा श्रमिक अनुशासन आदि सभी अंगों के लिए नियम बनाये गये जिनके आधार पर देश की सामुदायिक कृषि को संगठित किया जा सके। इन नियमों से किसानों में आलस्य तथा गैर जिम्मेदारी अरुचि के साथ काम करना आदि त्रुटियों को दूर करने में बड़ी सहायता मिली। अनाज वसूली के सिद्धान्तों में भी सुधार किये गये। इसको प्रति एकड़ उत्पादन का पूर्व निश्चित अंश बना दिया गया जिससे किसानों को अधिक उत्पादन करने में कोई रुकावट नहीं रही। कुलक वर्गों के उन्मूलन की कार्यवाहियाँ चलती रहीं। व्यक्तिगत किसानों से सामुदायिक खेती के किसानों की तुलना में अधिक कर लिया जाता था। सरकार को देने के पश्चात् किसान के पास जो अनाज बचता था, उसे खुले बाजार में बेचा जा सकता था। इसमें राशनिंग और अन्न वितरण की समस्या सरल हो गयी। सन् १९३३ में स्टालिन के विख्यात नारे का जन्म हुआ— समस्त सामुदायिक किसानों को समृद्ध बनाओ।" स्टालिन का यह विचार था कि पहले किसान दूसरों की मेहनत से बेईमानी से तथा पड़ोसियों का शोषण कर समृद्ध बनने का प्रयत्न करते थे जिससे वे पूँजीवादी अथवा कुलक बन सकें। नयी सोवियत प्रणाली में किसान केवल ईमानदारी और परिश्रम के साथ अपना कार्य करता है अतः सामुदायिक खेती के किसान को समृद्धशाली बनने का पूर्ण अधिकार है। इस नवीन प्रणाली के अन्तर्गत किसान को व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में पशु रखने का अधिकार मिला तथा एक छोटा खेत भी व्यक्तिगत रूप में दिया गया जिस पर किसान अपनी आवश्यकता की वस्तु उत्पन्न कर सके।

तृतीय पंचवर्षीय योजना (सन् १९३८-१९४२)—यह योजना उस समय बनायी गयी जब द्वितीय महायुद्ध की सम्भावनाएँ अत्यधिक थीं और रूसी नियोजकों ने इस योजना में देश की रक्षा की आवश्यक सामग्री के उत्पादन एवं संग्रह को विशेष महत्त्व दिया। इस योजना के निम्न चार महत्त्वपूर्ण तत्व थे—

(१) *यातायात*—३,००० मील लम्बी नवीन रेलवे लाइन डालने (जबकि द्वितीय योजना में केवल २,५०० मील लम्बी लाइन डाली गयी थी) ५,००० मील लम्बी लाइन को दोहरा करना तथा १,२०० मील लम्बी लाइन का विद्युतीकरण करने का आयोजन किया गया। जल एवं सड़क यातायात के विकास का भी आयोजन किया गया।

(२) अलौह (Alloy) धातुओं के शोधन के उद्योगों जैसे एल्यूमिनियम (Aluminium), जस्ता (Zinc) सीसा (Lead), निकल (Nickel) आदि के विकास को विशेष महत्व दिया गया।

(३) इस्पात तथा मशीन निर्माण उद्योगों का और अधिक विकास तथा

(४) रसायन उद्योगों के विकास को विशेष महत्व दिया गया और यह नारा बुलन्द किया गया कि 'तृतीय योजना को रसायन योजना बनाओ।'

प्रथम दो योजनाओं ने रूस की संयोजित अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ़ बना दिया, अतः मालाताव ने तृतीय योजना के उद्देश्यों का जिक्र करते हुए कहा कि यह योजना समाजवाद को साम्यवाद में बदल देगी। सन् १६३६ के मूल्यों पर आधारित अनुमानों के अनुसार इस योजना पर १६२ मिलियड (१ मिलियड = हज़ार मिलियन) रूबल का व्यय पूँजी के क्षेत्र में रखा गया। इसमें १११.६ मिलियड रूबल उद्योगों पर व्यय होने वाला था। औद्योगिक उत्पादन में १२.४% प्रति वर्ष वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया। भारी उद्योगों की प्राथमिकता पूर्ववत् बनी रही। समाजवादी प्रतिस्पर्धा उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रसारित हो गयी। इसके अतिरिक्त राज्य की ओर से आकर्षक आर्थिक पारितोषिक देने की नीति अपनायी गयी। किसी कारखाने में आशा से अधिक उत्पादन होने पर उस कारखाने से सम्बन्धित राजनीतिक नेताओं, प्रबन्धक तथा मजदूर सभी को उदार अंश लाभ के रूप में आर्थिक पारितोषिक दिये जाते थे। नेताओं की प्रेरणा, प्रबन्धकों का कौशल एवं मजदूरों का परिश्रम वस्तानिकों से सहायता पाकर श्रम उत्पादन में लगभग ६५% की वृद्धि का कारण बने। औद्योगिक उत्पादन में ८८.५ मिलियड रूबल की वृद्धि हुई।

तृतीय योजना में कारखानों की आर्थिक आत्मनिर्भरता पर बहुत जोर दिया गया। मैट्रिक मूल्यांकन व्यवस्थित लेखा और लाभपूर्ण उत्पादन की मदद से यह उद्देश्य निर्दिष्ट किया गया कि प्रत्येक कारखाना आर्थिक आवश्यकताओं को बिना राजकीय सहायता के पूरा कर ले। इससे राज्य पर आर्थिक दबाव तथा कारखानों के प्रबन्ध में लापरवाही—दोनों पर नियन्त्रण हो गया। उत्पादन-लागत एवं राज्य द्वारा निर्धारित मूल्य के अन्तर से होने वाली हानि को राज्य पूरा करता था।

तृतीय योजना लगभग ३½ वर्षों तक चली, परन्तु इतने ही समय में सोवियत उद्योगों में भारी उन्नति हुई। औद्योगिक उत्पादन में प्रति वर्ष १३% वृद्धि हुई। बड़े उद्योगों का विशेष विकास हुआ। देश के पूर्वी भाग में ३ वर्षों में विशेष औद्योगीकरण हुआ। यूराल, वोल्गा क्षेत्र साइबेरिया, मध्य एशिया और कजकस्तान का औद्योगिक उत्पादन ३ वर्ष में लगभग ५०% बढ़ गया। दक्षिण-पूर्वी प्रदेशों में विज्ञान की सहायता से अपूर्व अन्न उत्पादन किया गया। सामुदायिक कृषि अपना लगभग पूर्ण रूपेण प्रभाव जमा चुकी थी। पूँजीनिर्माण-कार्य (Capital Construction Programme) में १३० मिलियड रूबल का काम हुआ। इसका ⅓ भाग देश के पूर्वी भाग को विकसित करने पर व्यय किया गया। इसके अन्तर्गत लगभग ३००० राजकीय मिल-कारखाने, बिजलीघर तथा दूसरे उद्योगों ने उत्पादन प्रारम्भ किया। पूर्वी क्षेत्रों के विकास का महत्व संकट के आने के पूर्व ही समझ लिया गया और इसलिए रूस द्वितीय महायुद्ध में विजयी हो सका। हिटलर के आक्रमण के पश्चात् केवल १ वर्ष

में लगभग १,३०० बड़े कारखाने बढ़ती हुई जर्मन सेनाओं के सामने से उखाड़ कर १,००० मील पूर्व में पुनर्स्थापित किए गये।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (सन् १९४६ १९५०)—इस योजना के मुख्य उद्देश्य थे—

(१) *युद्धकालीन विध्वंस का पुनर्निर्माण*

(२) सन् १९३९ ४० का उत्पादन स्तर कृषि एवं उद्योगों के क्षेत्र में प्राप्त करना

(३) उत्पादन स्तर को सन् १९३९ ४० से भी यथासम्भव अधिक बढ़ाना

(४) भारी उद्योगों एवं रेल यातायात के विकास की प्राथमिकता बनाये रखना

(५) *जनता के कल्याण हेतु कृषि एवं उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों का विस्तार एवं विकास*

(६) पूंजी का शीघ्र संचय तथा

(७) श्रम की उत्पादनक्षमता में वृद्धि।

योजना के पाँच वर्षों में पूंजी का विनियोग २५० बिलियन डालर निर्धारित किया गया जो राष्ट्रीय आय का लगभग ३०% था।

इस योजना के विभिन्न लक्ष्य निम्न थे—

(१) इस्पात के *उत्पादन में सन् १९४० के स्तर से ५०% वृद्धि सन् १९५०* तक प्राप्त करना। ४५ इस्पात भट्टियाँ (Blast Furnaces) १६५ खुली भट्टियाँ (Open Heath Furnaces) १५ कनवटर (Converter) और ९० बिजली की भट्टियाँ बनायी जाती थीं। इन सबका उत्पादन १६ मिलियन टन इस्पात से भी अधिक था।

(२) महायुद्ध के पूर्व के स्तर से कोयले के उत्पादन में योजना के अन्त *तक ५०% वृद्धि करना। दक्षिण पूर्व में कोयले की नयी खानों का पता लगाया* गया। सन् १९४६ ५० *तक १८३ मिलियन टन कोयला पैदा करने वाली खानें* उत्पादन करने लगीं।

(३) पैट्रोल के उत्पादन को सन् १९४६ तक महायुद्ध के पूर्व के स्तर तक लाना तथा सन् १९५० में इससे अधिक उत्पादन करना।

(४) विद्युत उत्पादन में सन् १९४० के स्तर से ७०% अधिक उत्पादन का *लक्ष्य रखा गया।*

(५) *मशीन निर्माण उद्योगों की उत्पादनक्षमता सन् १९४० के स्तर से दुगुनी* करनी थी।

(६) रसायन उद्योग में उत्पादन स्तर को सन् १९४० की तुलना में दुगुना करना था।

(७) राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति तथा विध्वंस हुए यातायात का पुन निर्माण तथा उसका विस्तार करना।

(८) कृषि-उत्पादन में सन् १९४० के स्तर से २७% वृद्धि का लक्ष्य था।

(९) वस्त्र एवं अन्य छोटे उद्योगों के उत्पादन को सन् १९४० के स्तर पर लाकर उसे आगे बढ़ाने का लक्ष्य था।

योजना के लक्ष्यों की पूर्ति अनुमान से अधिक हुई और योजना की पूर्ति में ५ वर्ष के स्थान में ४ वर्ष एवं ३ मास ही लगे। लक्ष्यों की पूर्ति निम्न प्रकार रही—

तालिका सं० ७३—चतुर्थ योजना में लक्ष्यों की पूर्ति[1]

	सन् १९४०	सन् १९५० योजना का लक्ष्य	सन् १९५० वास्तविक पूर्ति
(१) सन् १९२६ २७ के मूल्यों पर राष्ट्रीय आय	१००	१२८	१६४
(२) मजदूर एवं कर्मचारी	१००	—	१२६
(३) औद्योगिक उत्पादन	१००	१४८	१७३
(४) रेल-यातायात	१००	१२८	१४६
(५) विद्युत-शक्ति	१००	१७०	१८९

पांचवीं पंचवर्षीय योजना (सन् १९५० १९५५)—रूसी अर्थशास्त्री प्रयत्नशील थे कि देश में विकास की गति इतनी अधिक रखी जाय कि १० या १५ वर्षों में वह उन्नति उतनी हो जाय जितनी विश्व-युद्ध न होने पर सम्भव हो सकती थी। पंचम पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक उत्पादन में ७०% वृद्धि करने का लक्ष्य था जबकि वास्तविक उत्पादन-वृद्धि ८५% हुई थी। पूँजी के साधनों में ५ वर्षों में ८०% वृद्धि का लक्ष्य था जबकि विशेष प्रयत्नों द्वारा यह वृद्धि ९१% हुई थी। उपभोग की सामग्री के उत्पादन में ६५% वृद्धि का लक्ष्य था और वास्तविक वृद्धि ७६% हुई थी। विशेष ध्यान देने की बात यह थी कि युद्ध के पश्चात् उत्पादन तथा उपभोग की सामग्री के उत्पादन की वृद्धि समानता की ओर बढ़ रही थी। उत्पादन की वृद्धि की गति पूँजीवादी देशों के विकास की तुलना में लगभग ५०% अधिक थी। सन् १९५०-५५ के मध्य संयुक्त राज्य अमेरिका के विकास की गति की तुलना में रूस की प्रगति दुगुनी थी।

पंचम योजना में पूँजी विनियोग की मात्रा ६८६.८ मिलियर्ड रुबल थी। यह विनियोग प्रथम योजना का १० गुने से भी अधिक था। यह योजना [illegible] ४ वर्ष और ४ माह में पूरी कर ली गयी थी। योजना की सफलता निम्न प्रकार रही[2]—

1 Strumilin *Plonring in the Sonet Union* p 52
2 Strumilin *Planning to the Sonet Union* p 54

तालिका सं० २८—पाँचवीं योजना के लक्ष्यों की पूर्ति

	सन् १९५०	योजना का लक्ष्य	वास्तविक पूंजी
(१) राष्ट्रीय आय	१००	१६०	१६८
(२) रोजगार	१००	११५	१२०
(३) औद्योगिक उत्पादन	१००	१७०	१८५
(४) भारी उद्योग	१००	१८०	१९१
(५) अन्य उद्योग	१००	१६५	१७६
(६) विद्युत	१००	१८०	१८७

इन्जीनियरिंग उद्योग में १२०% वृद्धि हुई। तेल का उत्पादन ८०%, कच्चा लोहा ७४% और कोयले का उत्पादन ५०% बढ़ा। स्टालिन की मृत्यु के पश्चात् कृषि का विकास तथा उपभोग के उद्योगों का महत्व राज्य-शक्ति के झगड़ा का केन्द्र बन गये और सन् १९५३ तक कृषि उत्पादन में नाममात्र की वृद्धि हुई परन्तु इसके पश्चात् कृषि का पूरा ध्यान दिया गया और इसके उत्पादन में १००% की वृद्धि हुई।

छठी पंचवर्षीय योजना (सन् १९५६-१९६०)—फरवरी सन् १९५६ में कम्युनिस्ट पार्टी के अधिवेशन में रूसी शासन में बहुत से महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये तथा आर्थिक ढाँचे को पुनसंगठित करने का निश्चय किया गया। इसके साथ ही छठी पंचवर्षीय योजना के प्रारूप को स्वीकार किया गया। इस योजना के लक्ष्य अव्यावहारिक थे और उनमें कई बार परिवर्तन किये गये। योजना का अन्तिम लक्ष्य जन-समुदाय के जीवन-स्तर में पर्याप्त वृद्धि करना था जो अर्थ-व्यवस्था का सर्वतोमुखी विकास करके प्राप्त करना था। औद्योगिक उत्पादन में ६५% वृद्धि करने का लक्ष्य था। उत्पादक उद्योगों के उत्पादन में ७०% तथा उपभोक्ता सामग्री के उत्पादन में ६०% वृद्धि का निश्चय किया गया। निकिता ख्रुश्चेव ने रूसी इतिहास में प्रथम बार उपभोक्ता सामग्री के उत्पादन पर अत्यधिक जोर दिया। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में कहा कि रूस के पास बहुत शक्तिशाली भारी उद्योग स्थापित हो चुके हैं और अब यह सम्भव है कि उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाया जाय। इस योजना के लक्ष्य निम्न प्रकार थे—

(१) इस्पात के सन् १९५५ के उत्पादन ४५ मिलियन टन को बढ़ाकर ६८ मिलियन टन करने का लक्ष्य था, जो महायुद्ध के पूर्व के स्तर से ३.७ गुना अधिक था।

(२) कोयले के उत्पादन में सन् १९५५ के स्तर से ५२% वृद्धि तेल के उत्पादन को दुगुना तथा गैस के उत्पादन को चौगुना करने का निश्चय किया गया।

(३) विद्युत शक्ति के सन् १९५५ के उत्पादन १७०,००० मिलियन K W H को बढ़ाकर सन् १९६० तक ३,२०,००० मिलियन K W H करने का लक्ष्य रखा गया।

(४) इन्जीनियरिंग तथा धातु उद्योगों में अत्यधिक वृद्धि करना था।

(५) उद्जन शक्ति (Atomic Power) का उत्पादन २ से २½ मिलियन K W H करना था तथा I उद्जन-शक्ति से चलने वाले इंजिन जिनमें बर्फ तोड़ने का यन्त्र लगा हो, का निर्माण करना था। इसके साथ ही, उद्जन शक्ति का उपयोग कृषि, औषधि तथा अन्य वैज्ञानिक एवं शोध कार्य के लिए होना था।

(६) उपभोक्ता सामग्री के अन्तर्गत सूती वस्त्र उत्पादन में २०% ऊनी वस्त्र उत्पादन में ५०% तथा रेशमी वस्त्र उत्पादन में १००% वृद्धि करनी थी। रेडियो तथा टलीविजन सेट के उत्पादन में १५०% से भी अधिक वृद्धि का लक्ष्य था।

(७) खाद्य सामग्री के उत्पादन में महत्वपूर्ण वृद्धि करने का लक्ष्य था। मांस के उत्पादन में ७८%, मछली के उत्पादन में ५७% शक्कर के उत्पादन को दुगुना, अन्य फसलों के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि करने का लक्ष्य था।

(८) पूँजी निर्माण व्यय योजनाकाल में ६,६० ००० मिलियन रूबल रखा गया, जो प्रथम योजना के विनियोजन का १८ गुना था।

छठी योजना का अन्तिम लक्ष्य जीवन स्तर में महत्वपूर्ण वृद्धि करना था। राष्ट्रीय आय में ६०% वृद्धि, औद्योगिक एवं अन्य श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी में ३०% वृद्धि तथा सामुदायिक खेतों के किसानों की औसत रोकड़ आय में ४०% वृद्धि करने का लक्ष्य था। छठी योजना के अन्तर्गत विभिन्न मदों में वार्षिक वृद्धि निम्न प्रकार हुई—

तालिका सं० २६—सोवियत अर्थ-व्यवस्था की वार्षिक उन्नति-दर

	छठी योजना की वृद्धि का वार्षिक प्रतिशत
(१) राष्ट्रीय आय	१००
(२) औद्योगिक उत्पादन	१०५
(३) उत्पादन के साधनों का उत्पादन	११०
(४) उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन	१०७
(५) कृषि उत्पादन	११०
(६) श्रम उत्पादकता	
(अ) उद्योग	८४
(ब) निर्माण	८७
(स) कोलखोज	१४२
(७) फुटकर व्यापार	८४
(८) रेल यातायात	७३

सातवीं पंचवर्षीय योजना (सन् १९५९ १९६५)—रूस की छठी पंचवर्षीय योजना पूरे पाँच वर्ष नहीं चली और सन् १९५९ में सातवीं योजना की घोषणा कर दी गयी। कम्युनिस्ट पार्टी के २१वें अधिवेशन में इस योजना को स्वीकार किया गया और इस बात पर जोर दिया गया कि रूसी उत्पादन उद्योग एवं कृषि दोनों ही क्षेत्रों में इतना बढ़ाया जाय कि रूसी नागरिक सुविधापूर्वक जीवन बिता सकें। वास्तव में

यह योजना १५ वर्षीय साम्यवादी निर्माण का एक भाग है। योजना के मुख्य उद्देश्य ये थे—अर्थ व्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में विकास जिसमें भारी उद्योगों को प्राथमिकता दी जाती थी तथा देश के सम्भावी अर्थ साधनों में पर्याप्त वृद्धि जिससे जनता के जीवन में निरन्तर सुधार होता रहे। योजना के मुख्य लक्ष्य निम्न प्रकार हैं—

(१) राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था का द्रुत गति से सन्तुलित विकास।

(२) राष्ट्रीय आवश्यकता की पूर्ति हेतु लोहे एवं अलौह धातुओं के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि।

(३) रसायन उद्योग का शीघ्र विकास।

(४) ईंधन के क्षेत्र में सस्ते ईंधन जैसे तेल एवं गैस के निकालने एवं उत्पादन की प्राथमिकता।

(५) बड़े पैमाने के विद्युत् शक्ति के सफल स्टेशन बनाकर राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था की समस्त शाखाओं में विद्युत् शक्ति का विकास।

(६) रेलों का तान्त्रिक पुनर्निर्माण जिससे डीजल विद्युत् शक्ति तथा डीजल द्वारा चलाया जा सके।

(७) कृषि के सभी क्षेत्रों में और विकास जिससे देश की खाद्यान्न एवं कृषि के कच्चे माल की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।

(८) गृह निर्माण का शीघ्र विकास जिससे मजदूर वर्ग के मकानों की कमी दूर की जा सके।

(९) सात वर्षों में देश के प्रचुर प्राकृतिक साधनों की खोज एवं विकास। सम्पूर्ण उत्पादन शक्ति का बटवारा करने का प्रयत्न किया जायगा जिससे प्रत्येक क्षेत्र विकसित हो और उद्योग कच्चा माल ईंधन बाजार के अधिकाधिक निकट पहुँचाये जायें। पूर्वी क्षेत्र के विकास को विशेष स्थान दिया जाय।

पूँजी निर्माण एवं विनियोजन—सन् १९५९-६५ के दौरान में राज्य द्वारा लगायी गयी कुल पूँजी सन् १९४० से १९७० मिलियर्ड रूबल होगी। यह विनियोजन लगभग उतना ही होगा जितना सन् १९१७ से सन् १९५८ के मध्य विनियोजन किया गया था। विनियोजन सम्बन्धी यह सिद्धान्त निश्चित किए गए कि जहाँ पर नवीन प्राकृतिक साधनों का पता लगे वहीं नवीन कारखानों की स्थापना की जाय। इस वर्ग में तेल गैस, विद्युत् खनिज पदार्थ आदि सम्मिलित किए गये। निर्माण उद्योगों में नवीन कारखानों पर पूँजी न लगाकर वर्तमान कारखानों के आधुनिकीकरण व पुनर्गठन को अधिक लाभप्रद समझा गया। सन् १९५९-६५ के मध्य कुल पूँजी विनियोजन में ८०% की वृद्धि होगी। लगभग १०० मिलियर्ड रूबल लोहे एवं इस्पात उद्योगों में विनियोजित किए जायेंगे। तेल एवं गैस उद्योग के विकास में लिए १७०-१७३ मिलियर्ड रूबल और विद्युत् उत्पादन पर १२५-१२९ मिलियर्ड रूबल व्यय होगा। हल्के एवं खाद्य उद्योग में निकट सात वर्षों में दुगुनी प्रगति की जायगी।

मकान-निर्माण के लिए २७५-२८० मिलियन की राशि तय की गयी। कृषि के क्षेत्र में राज्य ने १५० मिलियन रूबल लगाने की व्यवस्था की है। इसके अतिरिक्त सामुदायिक फार्मों की भूमि तथा पशु उत्पादन से उत्पन्न पूँजी कृषि-विकास में लगायी जायगी। यह अनुमान था कि इन साधनों से कृषि-क्षेत्र पर ३४५ मिलियन रूबल व्यय किया जायगा। इस प्रकार कृषि के विकास के लिए समस्त राशि ५०० मिलियन रूबल निर्धारित की गयी।

कृषि—सातवीं योजना इस बात का प्रयत्न करेगी कि कृषि की उन्नति और समाजवादी उत्पादन में और अधिक घनिष्टता उत्पन्न की जा सके। इसका आशय यह होगा कि राजकीय फार्म और सामूहिक फार्म की समाजवादी सम्पत्ति होने के नाते एकरूपता की ओर अग्रसर होंगी। इस कार्य को सम्पन्न करने हेतु सामुदायिक फार्म पद्धति की उन्नति, उत्पादक स्तर में वृद्धि, अविभाजनीय कोष का विकास व नवीन सामाजिक प्रथाएँ, सामूहिक फार्मों में पारस्परिक सहयोग द्वारा औद्योगिक उत्पादन करना तथा विभिन्न प्रकार के कृषि-उत्पादन का सहयोग, स्कूल एवं अस्पताल बनवाना आदि कार्यवाहियाँ की जायगी। नवीन नीति का आशय यह प्रतीत होता है कि भविष्य में कोलखाज और सोवखोज के मिलान का निश्चय किया गया है। राजकीय फार्मों का स्थान समाजवादी कृषि में और ऊँचा कर दिया गया है। वह उत्तम आदर्श प्रबन्ध, कम लागत पर उत्पादन और श्रम तथा साधनों में बचत का प्रतीक बन कर सामने आयेंगे। इनके प्रबन्ध-शासन में श्रम का प्रत्यक्ष सहयोग और भी बढ़ा दिया जायगा। प्रत्येक क्षेत्र में जलवायु तथा भूमि को देखते हुए उत्पादन में विशिष्टीकरण किया जायगा जिससे राजकीय फार्म अधिक लाभप्रद बनाये जा सकें। इस योजना के कृषि-सम्बन्धी लक्ष्य इस प्रकार हैं—

(१) अन्न के उत्पादन में १६०-१८० मिलियन टन की वृद्धि।

(२) रासायनिक खाद का उत्पादन सन् १९५८ के स्तर १०.६ मिलियन टन से बढ़कर सन् १९६५ तक ३१ मिलियन टन हो जायगा।

(३) औद्योगिक फसलों के उत्पादन में इस प्रकार वृद्धि के लक्ष्य हैं—कपास ५.७ से ६.१ मिलियन टन अथवा सन् १९५७ से ३५ से ४५% तक की वृद्धि, चुकन्दर ७० से ७८ मिलियन टन, तिलहन का उत्पादन ५.५ मिलियन टन हो जायगा अर्थात् ७०% वृद्धि होगी।

(४) आलू का उत्पादन सन् १९५७ के उत्पादन ८८ मिलियन टन से बढ़कर १४७ मिलियन टन हो जायगा।

(५) जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सब्जी के उत्पादन में वृद्धि।

(६) फल आदि का उत्पादन दुगुने करने का लक्ष्य है।

(७) मांस का उत्पादन दुगुना, दूध का उत्पादन १.७ से १.८ गुना ऊन का उत्पादन ५,४८ ००० टन अथवा १.७ गुना तथा अण्डों का उत्पादन ३३ ००० मिलियन टन अथवा १.७ गुना हो जायगा।

कृषि के कुल उत्पादन में सन् १९५८ के उत्पादन की तुलना में सन् १९६५ में १ ७ गुना होगा। पशु (Cattle) २०%, गाय ६०% तथा भेड़ लगभग ५०% बढ़ जायेंगी।

कृषि-कार्यक्रमों को सफल बनाने हेतु सात वर्षों में १० लाख ट्रैक्टर और ४ लाख हारवेस्टर और बहुत बड़ी मात्रा में कृषि के अन्य यन्त्र बनाने का लक्ष्य है। योजनाकाल में समस्त सामूहिक फार्मों में बिजली पहुँच जायगी जिससे बिजली का प्रयोग ३००% बढ़ जायगा। यह भी सम्भावना की जाती है कि सात वर्षों में सामूहिक फार्म में श्रमिकों की उत्पादनक्षमता दुगुनी कर दी जायगी और राजकीय फार्मों में ६०% से ६५% तक बढ़ जायगी।

उद्योग—सातवीं योजना में औद्योगिक विकास-सम्बन्धी सिद्धान्तों में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं किया गया। भारी उद्योगों को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया गया है। रासायनिक उद्योगों को योजना में विशेष महत्त्व प्राप्त है क्योंकि इनके द्वारा प्राकृतिक साधनों की कमी को पूरा किया जा सकता है। समस्त औद्योगिक उत्पादन में सात वर्षों में ८०% वृद्धि करने का लक्ष्य है जिसमें उत्पादन के साधनों का उत्पादन ८५% से ८८% और उपभोग की सामग्री के उत्पादन में ६२% से ६५% वृद्धि होगी। औसत वार्षिक उत्पादन का मूल्य लगभग १३५ मिलियर्ड रूबल होगा जबकि पिछले सात वर्षों में यह उत्पादन ९० मिलियर्ड रूबल प्रति वर्ष था। योजना के विभिन्न लक्ष्य निम्न प्रकार हैं—

(१) सन् १९६५ में ६५ से ७० मिलियन टन पिण्ड लोह तथा ८६ से ९१ मिलियन टन तक इस्पात उत्पन्न करने का लक्ष्य जो सन् १९५९ के उत्पादन से क्रमशः ६२% से ७७% एवं ५६% से ९२% अधिक होगा।

(२) अलौह धातुओं में एल्यूमिनियम का उत्पादन २ ८ गुना, गाये हुए ताँबे का उत्पादन १ ९ गुना तथा निकिल, मैंगनीज आदि के उत्पादन में काफी वृद्धि होगी।

(३) रसायन उद्योग के उत्पादन में तीन गुनी वृद्धि होगी।

(४) सन् १९६५ तक २३० से २४० मिलियन टन तेल निकाला जायगा जो सन् १९५८ के स्तर का लगभग दुगुना होगा। गैस का उत्पादन पाँच गुना तथा कोयले का उत्पादन ५९६ ६०९ मिलियन टन अर्थात् सन् १९५८ से २०% से २३% वृद्धि होगी। इस प्रकार बिजली के उत्पादन में २ से २ २ गुनी वृद्धि होगी।

(५) मशीन निर्माण एवं धातु सम्बन्धी उद्योगों में लगभग दुगुना उत्पादन करने का लक्ष्य है।

(६) उपभोक्ता सामग्री के अन्तर्गत हल्के उद्योगों का उत्पादन सात वर्षों में डेढ़ गुना हो जायगा। सूती वस्त्र का उत्पादन सन् १९५८ के उत्पादन—५ ८०० मिलीमीटर्स से बढ़कर ७ ७०० ८ ००० मिलीमीटर्स हो जायगा अर्थात् बढ़कर १३३% से १८८% हो जायगा। ऊनी वस्त्र का उत्पादन ३०० मिलीमीटर्स से ५०० मिलीमीटर्स

हो जायगा, अर्थात् बढ़कर १६७% हो जायगा। रेशमी वस्त्र का उत्पादन ८४४ मिलियन मीटर से बढ़कर १४८५ मि० मी० हो जायगा, अर्थात् १८०% की वृद्धि होगी। इसी प्रकार चमड़े के जूते का उत्पादन १४५% बढ़ जायगा।

(७) खाद्य-सामग्री के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि करने का लक्ष्य है। मांस का सन् १९५८ का उत्पादन ३८७० हजार टन से बढ़कर सन् १९६५ में ६१३० हजार टन अर्थात् २१७% की वृद्धि; मक्खन का उत्पादन ६३७ हजार टन से बढ़कर १,००६ हजार टन अर्थात् १६०% की वृद्धि; दानेदार (Granulated) शक्कर का उत्पादन ६०१७ हजार टन से बढ़कर ९३४८६ हजार टन अर्थात् २०२% की वृद्धि का लक्ष्य है।

(८) घरेलू उपयोग की मशीनों एवं औजारों के उत्पादन को दुगुना करने का लक्ष्य है।

(९) औद्योगिक श्रमिक के उत्पादन में ४५% से ५०% की वृद्धि होने का अनुमान है।

इस प्रकार औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि होने से रूसी अर्थ व्यवस्था वस्त्र-उत्पादन, चमड़े के जूते तथा खाद्य-सामग्री के उत्पादन में मुकाबले के अधिक विकसित पूँजीवादी राष्ट्रों से आगे बढ़ जायगी।

यातायात एवं संचार—सातवीं योजना का एक महत्त्वपूर्ण निर्देश रेल एवं वायु-यातायात भी है। माल ढोने की क्षमता में रेल-यातायात ३९% से ४३% तक वृद्धि करेगा। रेलों में बिजली एवं डीजल शक्ति का अधिक उपयोग किया जायगा। सन् १९५८ में ७४% मालगाड़ियां कोयले से चलने वाले इंजिन प्रयोग करती थीं जबकि सन् १९६५ में ८५% से ८७% मालगाड़ियां बिजली और डीजल इंजिन से चलेंगी। नवविकसित पूर्वी औद्योगिक क्षेत्रों—कजकस्तान, कूजनेत्स बेसिन तथा साइबेरिया में ट्रान्स साइबेरियन रेलवे के अतिरिक्त दक्षिणी साइबेरिया और मध्य साइबेरिया तक विशाल रेल-लाइन का निर्माण होगा। रेल-यातायात में आधुनिकीकरण से माल ढोने की लागत में २२% की कमी होगी।

सात वर्षों में समुद्री जहाज द्वारा ढोए जाने वाले माल की मात्रा दुगुनी हो जायगी। नदी-यातायात का विकास साइबेरिया के क्षेत्रों में किया जायगा। मोटर-गाड़ियों द्वारा ढोये जाने वाले माल की मात्रा में १.६ गुनी वृद्धि होगी तथा मोटर से सफर करने वाली सवारियों की संख्या तीन गुनी हो जायगी। वायुयानों की सवारी की संख्या ५०० प्रतिशत बढ़ जायगी। तेल के वाहन के रूप में पाइप-लाइन का जाल समूचे देश में बिछा दिया जायगा जिससे तेल-वाहन में किसी प्रकार के यातायात की आवश्यकता नहीं रहेगी। पाइप द्वारा तेल ले जाने में ४५०% की वृद्धि का आयोजन है।

जन-कल्याण—सातवीं योजनाकाल में राष्ट्रीय आय ६२% से ६५% तक

बढ़ेगी जिससे राष्ट्र की उपभोगक्षमता में ६०% से ६३% की उन्नति होगी। इस प्रकार यह कहना अनुचित न होगा कि वर्तमान योजना में जीवन स्तर को ऊँचा उठाने हेतु उपभोग के विस्तार का विशेष प्रयोजन है। मजदूर एवं कर्मचारियों की संख्या में १२० लाख व्यक्तियों की वृद्धि होगी। सन् १९६५ तक इनका कुल संख्या ६६५ लाख हो जायगी। मूल्यों में कमी तथा वेतन, पेन्शन व सहायता में वृद्धि होने से मजदूर कर्मचारियों की वास्तविक आय ४०% बढ़ जायगी। उद्योगों को छोड़कर सामूहिक फार्मों के किसानों की आय भी ४०% बढ़ जायगी। निम्न तथा मध्यम-वर्ग के मजदूर कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि कर उच्च वर्ग से विषमता को कम कर दिया जायगा। इसके लिए न्यूनतम वेतन २७० ३५० रूबल प्रति मास से बढ़ाकर ५०० ६०० रूबल प्रति मास तक कर दिया जायगा। औद्योगिक स्वास्थ्य तथा कारखानों में मशीनों से रक्षा में प्रगति, मजदूर कर्मचारियों को विशेष सुविधाएँ नर्सरी तथा किण्डरगार्टन स्कूल निःशुल्क शिक्षा इलाज सामाजिक बीमा बड़े परिवार की माताओं को अनुदान पेन्शन वृद्ध लोगों के लिए विश्राम भवन इत्यादि पर राजकीय व्यय २१५ मिलियड रूबल (सन् १९५८) से बढ़ाकर ३६० मिलियड रूबल कर दिया जायगा। कम्युनिस्ट पार्टी के २०वें अधिवेशन के अनुसार ५ दिन प्रति सप्ताह में ६ से ७ घण्टे का कार्य काल माना गया है। कारखाना का काम करने वाले कर्मचारियों का कार्यकाल ६ घण्टे कर दिया जायगा।

सातवीं योजना के अन्तर्गत प्रगति—सातवीं सात वर्षीय योजना के अन्तर्गत रूस में शक्ति इन्जीनियरिंग एवं औजार निर्माण उद्योगों की तीव्र गति से प्रगति हुई है। इनके विकास द्वारा अर्थ व्यवस्था के तान्त्रिक स्तर एवं श्रम शक्ति की उत्पादकता में वृद्धि हुई है। सन् १९५९ ६५ काल में १५० से १६० प्रतिशत की वृद्धि औजार निर्माण १८० से २१० प्रतिशत की वृद्धि टर्बाइनों के निर्माण तथा १००% की वृद्धि इन्जीनियरिंग उद्योगों के उत्पादन में हुई। इन्जीनियरिंग उद्योग के विस्तार के साथ केवल मशीनों के उत्पादन में ही वृद्धि नहीं की गयी बल्कि मशीनों के गुणात्मक तत्वों एवं कार्यक्षमता को भी सुधारने का प्रयत्न किया गया है। अब किसी इन्जीनियरिंग कारखानों की कुशलता का मूल्यांकन उसके द्वारा उत्पादित मशीनों की संख्या से नहीं किया जाता है बल्कि उसके उत्पादन के गुणात्मक तत्वों के आधार पर किया जाने लगा है। सन् १९५९ ६५ काल में शक्ति उद्योग के विकास के लिए जो पूँजी विनियोजन आवंटित किया गया था उसका सबसे अधिक उपयोग बड़े थर्मल स्टेशनों के निर्माण के लिए किया गया है। थर्मल स्टेशन सस्ते कोयले से संचालित हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त जलविद्युत शक्ति के स्टेशनों का निर्माण भी उपयुक्त स्थानों पर किया गया है। इस काल में शक्ति उद्योग के उत्पादन की वृद्धि औद्योगिक उत्पादन से कहीं अधिक हुई। सन् १९५९ ६५ काल में औद्योगिक उत्पादन से १५०% की और शक्ति उत्पादन में लगभग २००% की वृद्धि हुई। शक्ति उत्पादन

१७० २ हजार मिलियन किलोवाट/घंटा से बढ़कर ५०७ हजार मिलियन किलोवाट हो गया।

इस योजना में रूस की ईंधन-पूर्ति की स्थिति में मूलभूत सुधार हुआ। तेल एवं गैस उद्योगों का तीव्रगति से विस्तार किया गया क्योंकि इन्हें कोयले की तुलना में ताप देने का अच्छा एवं सस्ता साधन समझा गया।

सन् १९६५ वर्ष में रूस की राष्ट्रीय आय २०० हजार मिलियन रूबल से भी अधिक थी तथा प्रति व्यक्ति आय ९०० रूबल थी। नियोजित अर्थ-व्यवस्था द्वारा रूस का आश्चर्यजनक विकास इस राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय की तुलना में सन् १९१३ की राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय (५ ६ हजार मिलियन रूबल एवं ४० रूबल) करके स्पष्ट हो जाता है।

सन् १९५९ ६५ सात वर्षीय योजना के अन्तर्गत लोहा इस्पात एवं अलौह धातुशोधन उद्योगों के विद्यमान व्यवसायों का भी विस्तार किया गया। इनके विस्तार द्वारा पिण्ड लोह इस्पात एवं रोल्ड स्टॉक (Rolled Stock) के उत्पादन में कम लागत पर वृद्धि करना सम्भव हो सका। रसायन उद्योग का भी इस काल में पर्याप्त विकास किया गया। सन् १९५९ ६५ काल में खनिज खाद की उत्पादनक्षमता में प्रति वर्ष २४ मिलियन टन की वृद्धि हुई तथा रासायनिक रेशों (Synthetic Fibres) की उत्पादन में प्रति वर्ष ३१३ हजार टन की वृद्धि हुई। इस काल में रसायन उत्पादों का सकल उत्पादन १५०% से बढ़ा। खनिज-खाद का उत्पादन सन् १९५८ में १२ ४ मिलियन टन से सन् १९६५ में ३१ ३ मिलियन टन हो गया। आधारभूत रसायन उत्पादों का उत्पादन लगभग तिगुना हो गया।

कृषि के क्षेत्र में सन् १९५९ ६३ के पंचवर्षीय काल में उत्पादन में कमी रही जिसका कारण भौतिक प्रोत्साहन के सिद्धान्त की अवहेलना खनिज खादों का पर्याप्त उपयोग न किया जाना, भूमि-सुधार एवं सिंचाई की ओर उपयुक्त ध्यान न दिया जाना तथा कृषि औजारों एवं यन्त्रों का अपर्याप्त उत्पादन थे। इस काल में मौसम भी प्रतिकूल रहने के कारण कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि नहीं हुई। सन् १९६४ में कृषिक्षेत्र में सुधार हुआ और सन् १९६४ एवं सन् १९६५ काल में सकल कृषि उत्पादन में १५% की वृद्धि हुई। सकल कृषि उत्पादन सन् १९६५ वर्ष में सन् १९५० की तुलना में ८२% अधिक था।

रूस की सातवीं योजना में उपभोक्ता-वस्तुओं तथा प्रविधिकरण (Processing) उद्योगों के उत्पादन में भी पर्याप्त वृद्धि हुई। हल्के उद्योगों के उत्पादन में सन् १९५१-६४ काल में १८०% की वृद्धि हुई तथा प्रविधिकरण किए गये खाद्य-पदार्थों के उत्पादन में २००% की वृद्धि हुई।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (सन् १९६६ १९७०)—रूस की कम्युनिस्ट पार्टी ने फरवरी सन् १९६६ में इस पंचवर्षीय योजना का निर्माण जिसके द्वारा आर्थिक प्रगति

नवीन शिखरों तक पहुँचने म समथ हो जायगा। इस योजना म ३ १० ००० मिलियन रूबेल का पू जी विनियोजन किया जायगा। इस विनियोजन का लगभग आधा भाग उद्योगा सचार एव यातायात के विकास के लिए उपयोग होगा। योजना के अन्तगत राष्ट्रीय आय मे ३८ से ४१% की ओर प्रति व्यक्ति आय मे ३०% की वृद्धि का लक्ष्य रखा गया।

श्रम उत्पादकता—इस योजना म नवीन ताित्रिकताओ एव अभिनवो के उत्पादन मे प्रत्येक क्षेत्र म विस्तृत उपयोग करने की व्यवस्था की गयी है। नवीन तात्रिकताओं के उपयोग से उद्योगों म श्रमिको की उत्पादकता म ६% प्रति वष तथा कृषिक्षत्र म ७ २% प्रतिशत वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया है। इस योजना के पाँच वर्षों म समस्त अथ व्यवस्था म श्रम उत्पादकता म ३% की वृद्धि करन का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

कृषि—आठवी योजना के पाँच वर्षों म कृषि उत्पादन म २५% की वृद्धि करने का लक्ष्य है जबकि यह वृद्धि सन् १९६१ ६५ म केवल ११% थी। कृषि उत्पादन में प्रति वष ५% वृद्धि की एक विशेषता यह होगी कि हल्के एव खाद्य पदार्थों के उद्योगा को अधिक कच्चा माल प्रदान करके इनका विस्तार किया जायगा। खाद्य-पदार्थों के उत्पादन मे इस प्रकार विशेष वृद्धि का आयोजन किया गया है। मांस दुग्ध-पदार्थ, साग भाजी तथा फल) के उत्पादन म अधिक वृद्धि की जायगी जिससे पौष्टिक भोजन की पूर्ति म पर्याप्त सुधार हो सके। पशु पालन के विकास की भी व्यवस्था भा इस योजना से की गया है।

उद्योग—आठवी योजना के पाच वर्षों (सन् १९६६ ७०) मे औद्योगिक उत्पादन म ५०% की वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया है। इस योजना म हल्के एव उपभोक्ता उद्योगा तथा भारी उद्योगा के असन्तुलन को ठीक करने की व्यवस्था की गयी है और हल्के एव उपभोक्ता उद्योगा का पर्याप्त विकास एव विस्तार करने का लक्ष्य रखा गया है। रूस के उद्योगा को दो विभागा म विभक्त किया गया—विभाग १ म भारी उद्योग और विभाग २ म हल्के एव उपभोक्ता उद्योग सम्मिलित हैं। सन् १९६६ ७० काल मे विभाग १ के उद्योगों के उत्पादन म ४९ से ५२% तक की वृद्धि और विभाग २ के उद्योगा म ४३ से ४६% की वृद्धि करने का लक्ष्य है। इस प्रकार उपभोक्ता उद्योगा के उत्पादन म पर्याप्त वृद्धि करन का लक्ष्य योजना म रखा गया है जिसके फलस्वरूप इस योजना के अन्त तक भारी एव उपभोक्ता उद्योगा के पारस्परिक अनुपात मे आगे दी गयी तालिकानुसार सुधार होन का अनुमान है।

तालिका से यह स्पष्ट है कि आठवी योजना के अन्तगत हल्के एव उपभोक्ता उद्योगो का पर्याप्त विकास कर औद्योगिक सरचना म भी परिवतन किया जायगा। इस योजना म कृषि एव औद्योगिक क्षेत्र के असन्तुलन म भी सुधार करने की व्यवस्था की गयी है। कृषिक्षेत्र के विकास की ओर इसीलिए विशेष ध्यान दिया

तालिका सं० ३०—भारी एवं उपभोक्ता-उद्योगों का समी अर्थ-व्यवस्थाओं में अनुपात

	१९५६-५८	१९६१-६४	१९६६-७०
विभाग १ (भारी उद्योग)	११.३%	६.६%	८.७%
विभाग २ (हल्के एवं उपभोक्ता उद्योग)	८.४%	६.३%	७.७%
विभाग २ का विभाग १ में प्रतिशत अनुपात	७४%	६६%	८९%

गया है और इस क्षेत्र की प्रगति की दर को औद्योगिक क्षेत्र की प्रगति की दर के समान करने के लिए प्रयत्न किये जाते हैं। इसी कारण सन् १९६६-७० काल में कृषि-क्षेत्र में ४१००० मिलियन रूबल के विनियोजन की व्यवस्था की गयी है जो सन् १९६१-६४ काल के दुगने के बराबर है। इसके अतिरिक्त लगभग १०,००० मिलियन रूबल सामूहिक फार्मों द्वारा अपने साधनों से विनियोजित किया जायगा।

इन्जीनियरिंग उद्योग को औद्योगिक विकास-कार्यक्रमों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है और इसका विकास १० से ११% प्रति वर्ष की दर से होगा। औजार निर्माण, रेडियो इलक्ट्रौनिक तथा रसायन-प्रसाधनों के उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया है। इन्जीनियरिंग उद्योगों के उत्पादन का कुल औद्योगिक उत्पादन में अंश सन् १९६५ में २६% से बढ़कर सन् १९७० में २८% से २९% होने का अनुमान है। इन्जीनियरिंग उद्योगों के विकास के लिए लोहा इस्पात, अलौह धातु एवं रसायन उद्योगों का भी विस्तार किया जायगा। लोहा एवं इस्पात के उपयोग में रासायनिक उत्पादों का उपयोग करके मितव्ययता की जायगी। रासायनिक खाद का उत्पादन लगभग दुगना हो जायगा तथा रासायनिक पदार्थों से बनने वाली उपभोक्ता-वस्तुओं के उत्पादन में १५०% से २००% की वृद्धि का लक्ष्य रखा गया है।

शक्ति—योजना में विद्युत् उत्पादन में औद्योगिक उत्पादन से भी अधिक दर से प्रगति करने का लक्ष्य है। अर्थ-व्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में विद्युत शक्ति का अधिक उपयोग किया जायगा। इन्जीनियरिंग एवं रसायन उद्योगों के विकास के कारण भी विद्युत् शक्ति के उपयोग में वृद्धि होगी। योजना के पाँच वर्षों में विद्युत् शक्ति के उत्पादन में ७०% की वृद्धि का लक्ष्य है। कृषि-क्षेत्र में बिजली का विस्तृत उपयोग किया जायगा। इस क्षेत्र में बिजली के उपयोग में २००% की वृद्धि होगी। इस क्षेत्र में बिजली का उपयोग लगभग ६० से ६५ हजार मिलियन किलोवाट घंटे हो जाने का अनुमान है।

ईंधन—सन् १९६६-७० काल में ईंधन उद्योग का भी विस्तार किया जायगा ईंधन के उपयोग में मितव्ययता करने का भी आयोजन किया जायगा। बिजली-उत्पादन

मे ८ से १०% ईंधन का उपयोग किया जायगा। गैस के उत्पादन में ७४% से ८६% तथा तेल के उत्पादन में ४०% से ४५% तक की वृद्धि की जायगी। कोयले के उत्पादन में लगभग १५% की वृद्धि होगी। ईंधन के उत्पादन में लक्षित वृद्धि हो जाने पर अर्थव्यवस्था में ईंधन की न्यूनता समाप्त हो जायगी।

रूस में लगभग २०० हजार से भी अधिक औद्योगिक व्यवसाय कार्य कर रहे हैं। ४० हजार सामूहिक फार्म तथा १० हजार ग्रामकीय फार्म हैं। इसके अतिरिक्त ११ हजार अनुबन्ध करने वाली संस्थाएं हैं जो पूंजीगत निर्माण कार्य सम्पन्न करती हैं। सन् १९६५ वर्ष में कृषि में उपयोग आने वाली भूमि ५२३ मिलियन एकड़ थी। सन् १९६५ वर्ष में रूस में २७ मिलियन मजदूरों एवं वेतन पाने वाले लोग थे जबकि इनकी संख्या सन् १९१४ में केवल चार मिलियन था।

(आ) रूस में नियोजन का संगठन

सोवियत संघ की स्थापना के पश्चात् अर्थ व्यवस्था पर राजकीय नियन्त्रण प्राप्त करने हेतु एक उच्चतम आर्थिक समिति वेसेन्खा (Supreme Economic Vesenkha) की स्थापना की गयी। इसके कार्य क्षेत्र में साम्यवादी उद्देश्यों के लिए आर्थिक मामलों का अध्ययन तथा अर्थ व्यवस्था तैयार करना सम्मिलित किये गये। सन् १९२१ में नवीन आर्थिक नीति की घोषणा की गयी और योजनाबद्ध आर्थिक विकास हेतु एक राजकीय योजना आयोग जिसका नाम गोसप्लान (Gosplan) था की स्थापना की गयी। अर्थशास्त्री विशेषज्ञ, इन्जीनियर तथा कुछ राज्य कर्मचारी इसके सदस्य थे। इसका मुख्य कार्य आर्थिक पुनर्गठन तथा नीति के विषय पर राज्य के लिए प्रारूप तैयार करना विशेष समस्याओं पर सलाह देना और विस्तृत योजना के लिए आँकड़े एकत्रित करना था। धीरे धीरे इस संस्था के अधिकार बढ़ा दिये गये। सन् १९४१ के विधान ने इसका अधिकार क्षेत्र इस प्रकार निश्चित किया—

(१) दीर्घ अवधि तथा वार्षिक तिमाही तथा मासिक राष्ट्रीय आर्थिक योजनाओं को तैयार करना।

(२) अन्य संस्थाओं द्वारा तैयार की गयी योजनाओं का सारांश राज्य को देना। इन संस्थाओं में राजकीय विभाग तथा प्रजातन्त्र (Republics) राज्य प्रमुख थे।

(३) राज्य द्वारा स्वीकृत योजना की सफल पूर्ति हेतु नियन्त्रण।

(४) समाजवादी अर्थ-व्यवस्था की विशेष समस्या का अध्ययन।

(५) समाजवादी लेखा (Socialist Accounting) का निर्देशन।

गोसप्लान के पश्चात् महत्व के अनुसार राज्यों की योजना समितियाँ और क्षेत्रीय योजना समितियाँ होती हैं। इनके अतिरिक्त नगरों में नगर योजना संस्थाएँ तथा ग्रामीण क्षेत्रों के लिए जिला योजना संस्थाएं होती हैं। इन सब संस्थाओं के सहयोग द्वारा गोसप्लान देश के प्रत्येक क्षेत्र की आवश्यकताओं एवं योजना की प्रगति

आदि के बारे में सूचना प्राप्त करता रहता है। जनवरी सन् १९०८ में केन्द्रीय योजना-व्यवस्था को पुनर्गठित किया गया। गोसप्लान के सबसे महत्त्वपूर्ण काम (उद्योगों के बीच साधनों का बँटवारा करने का कार्य) एक नवीन संस्था को दिया गया जिसका नाम गासनब था। इसी समय एक तीसरी संस्था की स्थापना की गयी जिसका नाम गास्टेक था। इसका कार्य आधुनिक यांत्रिक तथा कुशल प्रणालियों का रूसी उद्योग व्यवस्था से मेल करना था। यह आशा था कि यह समिति आधुनिकीकरण में प्राप्त शिथिलता को दूर कर सकेगी, परन्तु गास्टेक सफलतापूर्वक काम न कर सका और इसे सन् १९५१ में भंग कर दिया गया। इस प्रकार गोसप्लान का काम उत्पादन एवं सामाजिक जीवन तथा दूसरे अंगों की योजना तैयार करने तक सीमित हो गया।

प्रारम्भ में रूसी योजनाओं को कार्यान्वित करने का दायित्व राज्य के विभिन्न मन्त्रालयों पर था। इनके उद्देश्य तथा विचारों में भिन्नता आने लगी और इसलिए केन्द्रीय योजना आयोग—गोसप्लान को योजना बनाने और उसे लागू करने, दोनों ही काम दे दिये गये। रूसी योजनाएँ परिवर्तनीय नहीं मानीं। रूस में वार्षिक, तिमाही एवं मासिक योजनाओं तथा लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है फिर परिस्थिति एवं प्रगति के अनुसार इनमें हेर-फेर करना न तो असफलता मानी जाती है और न इसमें लाभ-हानि का भय रहता है।

उद्योगों का संगठन एवं प्रबन्ध—आधुनिक सोवियत समाज एक पिरामिड के समान है जिसका आधार है—किसान-वर्ग। कृषक-वर्ग आधार होने के कारण सबसे नीचे का स्थान प्राप्त किये हुए है। इसके ऊपर का वर्ग मजदूर-वर्ग है। इसके बाद कर्मचारी-वर्ग, राज्य के उच्चतम पदाधिकारी-वर्ग, साम्यवादी दल के अधिकारी और सबसे ऊँचे की चोटी पर एक छोटा सा चुना हुआ गुट जिसके नेता में सम्पूर्ण राजसत्ता निहित है। इस प्रकार समाज बहुत से वर्गों में विभक्त है जिनमें उनकी ऊँच-नीच का निर्धारण उनकी शक्ति एवं प्रभुता के अनुसार होता है। प्रत्येक व्यक्ति को एक न्यूनतम जीवन-स्तर के योग्य धनोपार्जन करने के लिए बाध्य किया जाता है। राज्य यह अवश्य ध्यान रखता है कि इसके लिए उनको अवसर प्राप्त होते रहें। राजकीय नियन्त्रण का जाल इतना कठोर एवं विस्तृत है कि जनता का आर्थिक तथा नागरिक अस्तित्व पूरी तरह बँधा रहता है। साम्यवादी दल तथा राज्य की आँखें सर्वदृष्टा हैं और उनके हाथों की पहुँच सर्वव्यापी है। समस्त निर्णय पार्टी द्वारा किए जाते हैं और उनके उचित पालन के लिए कठोर नियन्त्रण-व्यवस्था का उपयोग होता है। कठोर नियन्त्रण द्वारा ही चोटी पर बैठे हुए नेता समस्त समाज के सदस्यों का नियन्त्रण एवं संचालन कर सकते हैं।

रूसी मजदूर एवं कृषक के लिए उसका कार्य क्षेत्र जीविकोपार्जन का साधन मात्र ही नहीं है प्रत्युत सम्पूर्ण सामाजिक जीवन है। उत्पादन-केन्द्र के भीतर और बाहर की सभी आर्थिक एवं सामाजिक क्रियाओं का निर्देशन विशेष आयोजित उद्देश्य

के अनुसार राज्य करता है। यह उद्देश्य है—मजदूर और कृषक को वोल्शेविक विचार धारा से अवगत करना तथा बाल्शेविक कार्यक्रम को पूरा करने हेतु प्रेरित करना। इस प्रकार उत्पादन क्षेत्र अत्यन्त प्रभावशाली समाजवाद के स्कूल हैं जहाँ समाजवादी विधान का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। सोवियत उत्पादन व्यवस्था के मुख्य अंग हैं—राजकीय एवं सहकारी व्यवसाय। समाजवादी दल और राज्य सदैव यह प्रयत्न करते रहते हैं कि समस्त अर्थ-व्यवस्था को राजकीय उत्पादन क्षेत्र में सम्मिलित कर लिया जाय। उनके विचार में इस प्रकार ही देश में समाजवाद की स्थापना हो सकती है। सहकारी क्षेत्र एक अस्थायी व्यवस्था की तरह सहन किया जाता है।

प्रारम्भ में कारखानों की व्यवस्था के दो रूप थे—आन्तरिक प्रबन्ध और बाहरी प्रबन्ध। कारखानों के आन्तरिक प्रबन्ध सुचारुरूप से संचालित करने हेतु कारखानों को पृथक् पृथक् विभागों में विभक्त किया जाता था। इन विभागों के अध्यक्ष अपने अपने क्षेत्र में निर्णय करने और आज्ञा देने में पूर्ण स्वतन्त्र थे। संचालक एक प्रकार से इन अध्यक्षों के बीच सम्पर्क स्थापित करने का साधनमात्र था परन्तु इस प्रकार की प्रबन्ध व्यवस्था अधिक सफल नहीं हुई। बाह्य प्रबन्ध के अन्तर्गत प्रत्येक कारखाने को केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकार के विभिन्न मन्त्रालयों आयोग विभाग आदि से आज्ञा लेनी पड़ती थी। इस प्रबन्ध में बहुत अधिक दोष थे। कारखाना संचालक के अधिकार और कर्त्तव्यों का निर्धारण होना अत्यन्त कठिन था।

सन् १९३४ में स्टालिन ने प्रबन्ध सुधार की ओर ठोस कदम उठाये। एक व्यक्ति को प्रबन्ध लागू करने हेतु पृथक् पृथक् विभागों के अध्यक्षों के अधिकारों में कटौती कर दी गयी। स्वतन्त्र निर्णय और आज्ञा देने का अधिकार उनसे सर्वथा ले लिया गया। अब वे केवल अपने विभाग में आवश्यक परिवर्तनों और दूसरे कार्यों के लिए संचालकों के पास अपनी सलाह ही भेज सकते थे। समस्त आज्ञाएँ संचालक के नाम पर ही निकलती थी। सन् १९३४ में कम्युनिस्ट पार्टी के १७वें अधिवेशन में यह भी निश्चय किया गया कि उत्पादन का क्षेत्रीय संचालन किया जाय। इसके द्वारा एक क्षेत्र में एक ही वस्तु के उत्पादन में लगे हुए जितने भी कारखाने हों उनको केन्द्रीय औद्योगिक प्रबन्ध समिति के पूर्ण संचालन में दे दिया गया। इसमें प्रबन्धक को अब योजना आयोग और राज्य में पृथक्-पृथक् विभागों से सम्पर्क न रखकर केवल ग्लावक (Glavk) केन्द्रीय औद्योगिक प्रबन्ध-समिति से आज्ञा लेनी होती थी। कारखाना के उत्पादन लक्ष्य की पूर्ति की देखभाल कारखाना की पूँजी की आवश्यकताओं का अनुदान और व्यय की सीमा तैयार करना उत्पादन प्रणाली मशीन और मजदूरों का चुनाव तथा दूसरी आन्तरिक प्रबन्ध की बातों का निर्णय करना आदि ग्लावक के कार्य थे।

सोवियत कारखाना संगठन दो विशेष धाराओं से प्रभावित होकर बना है—अधिक उत्पादन का सतत् प्रयत्न तथा कारखाने द्वारा साम्यवादी सिद्धान्तों का शिक्षा तथा प्रसार का प्रयत्न। उत्पादन और सिद्धान्त शिक्षा के सफल मिश्रण के लिए यह

आवश्यक हो गया कि तान्त्रिक विशेषज्ञ और राजनीतिज्ञ में सन्तुलन स्थापित किया जाय। इसी कारण कारखाना-संगठन में प्रबन्धक के अतिरिक्त इन दो प्रभावों का समावेश किया गया है। प्रत्येक कारखाने में एक साम्यवादी दल-समिति होती है जिसका अस्तित्व संचालक से स्वतन्त्र होता है। इस समिति की नियुक्ति साम्यवादी दल का केन्द्र करता है तथा इसका उत्तरदायित्व केवल साम्यवादी दल के प्रति होता है। योजना के लक्ष्य की पूर्ति और श्रम उत्पादन बढ़ाने का यह समिति विशेष प्रयत्न करती है। कारखाना प्रबन्ध के अधिकारियों पर दृष्टि रखने का कार्य भी यह समिति करता है।

राज्य द्वारा नियुक्त संचालक तथा साम्यवादी दल समिति के पश्चात् कारखाना प्रशासन का तीसरा संगठन श्रमिक संघ समिति (Fabzavkom) है। इसके द्वारा योजना-लक्ष्य की पूर्ति अथवा उससे अधिक उत्पादन, श्रमिक-अनुशासन को सुचारु बनाना तथा समाजवादी प्रतिस्पर्धा का संचालन तथा सामूहिक समझौते की तैयारी, श्रमिक उत्पादन-शक्ति बढ़ाने के प्रयत्न तथा [illegible] शिक्षण-केन्द्रों का संगठन, कर्मचारियों के स्वास्थ्य-कार्य, सांस्कृतिक तथा खेल-कूद के आयोजन का संचालन तथा उच्च श्रमिक संघ अधिकारियों द्वारा प्रदत्त आदेशों का पालन इसके मुख्य कार्य हैं। साम्यवादी दल समिति एवं श्रमिक संघ समिति के कार्यक्षेत्र इतने विस्तृत हैं कि संचालक का सारा काम यह दोनों समितियाँ ही कर सकती हैं।

कृषि-क्षेत्र का संगठन एवं प्रबन्ध—रूसी क्रान्ति के पश्चात् कृषि-क्षेत्र का पुनर्संगठन करना आवश्यक समझा गया। यह भी आवश्यक समझा गया कि किसानों को बड़े-बड़े समूहों में विभक्त किया जाय। सहकारिता के तीन प्रकार रूस में इस सम्बन्ध में अपनाये गये। प्रथम तोज़ (Toz) अथवा संयुक्त कृषि के लिए साझेदारी संगठन था। इसमें कृषक भूमि पर काम करने हेतु साथ में मिल जाते थे। प्रत्येक सदस्य का अपनी भूमि पर स्वामित्व बना होता था। इसके साथ पशु अथवा औज़ार भी अपने-अपने रखते थे। बाद में अपनी भूमि पर स्वामित्व समाप्त कर दी जाती थी। द्वितीय प्रकार आरटेल (Artel) का था जिसमें प्रत्येक सदस्य के पास अपना घर और भूमि का छोटा-सा भाग निजी सम्पत्ति के रूप में रहता था। अधिकतर उत्पादन के साधनों का स्वामी कालखोज (Kolkhoz) अथवा आर्टेल (Artel) होता है। सामूहिक रूप से खेतों पर काम होता है। बाद में सामुदायिक उत्पादन की आय सदस्यों में बाँट दी जाती है। इस प्रकार प्रत्येक सदस्य को दोहरी आय होती है—सामुदायिक क्षेत्र से तथा निजी भूमि तथा पशु से। तृतीय प्रकार कम्यून (Commune) कहलाता है। इस प्रणाली में सदस्य सामुदायिक रूप से केवल काम ही नहीं करते परन्तु वे सामुदायिक रूप से रहते भी हैं। उत्पादन के साधन और उपभोग सम्पत्ति कम्यून की होती है। सदस्य सामुदायिक मकानों में रहते हैं, सामुदायिक रूप से एक साथ भोजन बनता है और उनके बच्चों का पालन-पोषण समुदाय करता है। इन तीनों प्रकारों

प्राप्या म से रूसी कृषि-सगठन के लिए आरटल (Artel) के सिद्धान्तों पर आधारित फाम चुन गये हैं। आधुनिक रूसी कृषि सगठन के तीन मुख्य अग हैं—सामुदायिक फाम-कालखोज या आरटेल राजकीय फाम या सावखोज तथा मशीन ट्रैक्टर स्टेशन।

कोलखोज (Kolkhoz)—कोलखोज के सिद्धान्तों के अन्तर्गत समस्त भूमि सोवियत राज्य की समझी जाती है। आरटेल का उस पर स्थायी अधिकार होता है। भूमि बेची या खरीदी नहीं जा सकती। सदस्यों की भूमि को मिलाकर एक विशाल फाम म परिवर्तित कर दिया जाता है। सदस्यों को उनके रहन के स्थान के समीप निजी भूमि दी जाती है जो ½ एकड़ से २½ एकड़ तक हो सकती है। इसकी मात्रा सदस्य की राज्य-सेवा पर निर्भर रहती है। जिन उत्पादन के साधनों से कालखोज पर काय होता है वे सामुदायिक स्वामित्व म रहते हैं और सदस्य के परिवार का निवास स्थान पशु पक्षी तथा औजार जिनका वह निजी प्रयोग करता है व्यक्तिगत स्वामित्व म रहते हैं।

कालखोज म १६ वष के युवक युवतियाँ को सदस्य बनाया जा सकता है। प्रत्येक नय सदस्य की सावजनिक सभा म स्वीकृति लेनी पडती है। किसी सदस्य का निष्कासन भी सावजनिक सभा म ही किया जाता है।

कालखोज के उत्पादन म स सवप्रथम राज्य से प्राप्त सुविधाओं का भुगतान किया जाता है। इसके पश्चात १०% से १८% भाग अगले वष के बीज एव चारे के रूप के लिए रखा जाता है। अधिक स अधिक उत्पादन का २% भाग वृद्ध व पगु सनिकों के परिवारों तथा बच्चों के पालन-गृहों के लिए सचय किया जाता है। उत्पादन का एक तिहाई भाग राज्य अथवा बाजार म बेचने के लिए रखा जाता है और शेष काय के आधार पर सदस्यों म बाट दिया जाता है। कालखोज के समस्त वार्षिक आय का कम स कम १०% और अधिक से अधिक २०% एक अविभाजनीय कोष म जमा किया जाता है। यह कालखोज की पूजी म वृद्धि का साधन है।

फाम का काय सदस्यों द्वारा अपने श्रम स किया जाता है। अतिरिक्त वतनिक श्रम विशेष परिस्थितियों म ही लगाया जाता है। सदस्यों को उत्पादन ब्रिगेड (Production Brigade) म बाँट दिया जाता है। ब्रिगेड को ७ से १४ व्यक्तियों के दलों (Zones or Link) म बाँट देते हैं। सभा पर नियुक्त ब्रिगेड कम से कम एक फसल तक काय करते हैं जिससे काय की जिम्मेदारी उन पर डाली जा सके। प्रत्येक ब्रिगेड को आवश्यक औजार पशु तथा अन्य वस्तुए दी जाती हैं। यदि कोई ब्रिगेड औसत से अधिक उत्पादन कर लेता है तो सामान्य सदस्यों को उपार्जित काय दिवस का १०% विशेष योग्य सदस्य को १५% परिश्रमी एव कमठ सदस्य को तथा २०% ब्रिगेडियर को अतिरिक्त भत्ता दिया जाता है। आय का आधार सदस्य के द्वारा उपार्जित काय दिवस की सख्या होती है। काय दिवस एक काल्पनिक माप होता है जो भिन्न भिन्न कार्यों के लिए ब्रिगेडियर निश्चित करता है।

कोलखोज का प्रबन्ध—कोलखोज का प्रबन्ध प्रजातान्त्रिक होता है। प्राय प्रत्येक पदाधिकारी का चुनाव होता है। १६ वर्ष के ऊपर के सभी सदस्यों की सार्वजनिक सभा में एक सभापति, प्रबन्ध-समिति, अंकेक्षण समिति, वार्षिक आय-व्यय का अनुमान, वार्षिक उत्पादन-लक्ष्यों का निर्धारण, कृषि-बैंक से ऋण, राज्य तथा मशीन ट्रैक्टर स्टेशन से समझौता आदि सभी कार्यों पर विचार तथा निर्णय होता है। प्रबन्ध-समिति के सभापति पर सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था का उत्तरदायित्व रहता है, परन्तु सभापति की स्वतन्त्रता के साथ बाधा नहीं डाल दिया जाता है। गाँव की सोवियत, जिला सोवियत, मशीन ट्रैक्टर स्टेशन तथा कोलखोज-समिति कोलखोज के कार्यों में सलाह के नाम पर नियन्त्रण करते हैं। कोलखोज समिति उसके नियमों द्वारा जिन्हें विस्तृत अधिकार होते हैं कोलखोज के कार्यों की देखभाल करती है। इसके अतिरिक्त कोलखोज के साम्यवादी नेता कोलखोज की सार्वजनिक सभा तथा प्रबन्ध-समिति के कार्यों की आलोचना करते रहते हैं तथा इन्हें सलाह देने का अधिकार भी रहता है। इस प्रकार कोलखोज के प्रजातान्त्रिक प्रबन्ध पर राज्य एवं साम्यवादी दल का नियन्त्रण रहता है।

सोवखोज—राजकीय कृषि फार्म गुण एवं विशेषताओं में राजकीय कारखानों के समान ही है। इनका प्रबन्ध औद्योगिक कारखानों के समान ही होता है। एक कारखाने के समान इनके प्रबन्धक राज्य द्वारा नियुक्त किये जाते हैं और इनका उत्तरदायित्व भी राज्य के प्रति रहता है। किसी एक प्रकार के उत्पादन या कृषि-कार्य में सोवखोज ध्यान देता है। एक क्षेत्र में एक ही प्रकार के उत्पादन करने वाले सोवखोज एक ट्रस्ट में बाँधे जाते हैं। अधिकांश ट्रस्ट सोवखोज मन्त्रालय के केन्द्रीय बोर्ड (Central Board of Ministry of Sovkhoz) अथवा ग्लावक् के अधीन कार्य करते हैं। विशेष वस्तुओं का उत्पादन करने वाले सोवखोज अन्य मन्त्रालयों से भी सम्बन्धित होते हैं। आर्थिक प्रबन्ध, हिसाब और लागत लेखा के लिए प्रशिक्षित एकाउन्टेन्ट तथा डाइरेक्टर को सोवखोज का मुख्य अधिकारी समझा जाता है। सोवखोज में भी कारखानों के समान कम्युनिस्ट पार्टी तथा श्रमिक संघ अपना पृथक् अस्तित्व रखते हैं।

मशीन ट्रैक्टर स्टेशन या मट्स—मट्स राजकीय संस्थाएँ हैं। इनका मुख्य कार्य सामुदायिक फार्मों को सहायता देना है। मशीन ट्रैक्टर के अतिरिक्त यह सिंचाई, सड़क निर्माण, तालाबों का निर्माण, चरागाह की उन्नति तथा नयी भूमि को खेती योग्य बनाने आदि का भी प्रबन्ध करते हैं। मट्स का प्रबन्ध लगभग सोवखोज से मिलता है। कृषि मन्त्रालय का मट्स केन्द्रीय बोर्ड (Glavok) सभी मट्सों में सन्तुलन कोलखोज से सम्बन्ध तथा राजकीय नीति निर्धारण करता है। १ मट्स ५ या ६ कोलखोज से सहायता लेता है। मट्स तथा कोलखोज के प्रतिनिधियों की एक समिति घनिष्ट पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कार्य करती है। प्रत्येक मट्स में

एक सचालक, तीन सह सचालक और एक एकाउटेण्ट होता है। सह सचालको म राजनीतिक कार्यकर्ता, कृषि, वनानिक और इन्जीनियर मकेनिक नियुक्त होते हैं।

श्रमिक सघ—श्रमिक सघो का जन्म पुरान रूसी शासन में हुआ। प्रथम श्रमिक सघ कीव (Keev) म सन् १६०३ म स्थापित हुआ। वास्तव म श्रमिक सघो का प्रारम्भ सन् १६०५ के आन्दोलन से माना जाता है। श्रमिक सघो के दो विशेष काय हैं—

(१) मजदूरो को कठोर अनुशासन म रखना तथा
(२) उनको मिलने वाली सामाजिक सुरक्षा का प्रबन्ध।

सन् १६४६ म श्रमिक सघ विधान का निर्माण कम्युनिस्ट पार्टी ने किया। सन् १६५७ म इनको सरकारी मान्यता प्राप्त हुई। इसके अनुसार श्रमिक सघ के मुख्य काय निम्न हैं—

(१) श्रमिक तथा अन्य कमचारियो म समाजवादी प्रतिस्पर्धा के सिद्धान्त का विस्तार,
(२) श्रम उत्पादन को अधिकतम प्रोत्साहन देना
(३) योजना के लक्ष्यो की पूर्ति तथा लक्ष्य से अधिक उत्पादन
(४) उत्पादन के गुण म उन्नति
(५) वेतन निर्धारण म सहयोग
(६) कारखाने के साथ सामुदायिक समझौता करना
(७) आर्थिक साधनो का अधिकतम उपयोग,
(८) उत्पादन की लागत म कमी
(९) *सामाजिक बीमा तथा जन कल्याण के काय प्रबन्ध*
(१०) सदस्यो की शिक्षा प्रशिक्षण तथा समाजवादी सिद्धान्तो की जानकारी
(११) स्त्रियो को औद्योगिक और सामाजिक जीवन म आकर्षित करना तथा
(१२) *मजदूरो के प्रतिनिधि के रूप म उनकी समस्याओ का अध्ययन करना* और सुझाव देना।

सोवियत श्रमिक सघ का आधार एक उद्योग होता है। उस उद्योग म काय करने वाले सभी व्यक्ति (मजदूर कमचारी अधिकारी तथा सचालक) इस सघ के सदस्य होते है। प्रजातान्त्रिक केन्द्रीयकरण से इनका सचालन होता है। फक्टरी समिति से लेकर केन्द्रीय समिति तक प्रत्येक पदाधिकारी का चुनाव होता है। सदस्य अपनी मासिक आय का १% शुल्क के रूप म देते हैं। श्रमिक सघ के सदस्यो को काय मिलने म प्राथमिकता मिलती है। सामुदायिक समझौते के अनुसार सघ के सदस्यो को प्रथम अवसर देने के लिए बाध्य किया जाता है।

श्रमिक सघ के आधार पर तीन सगठन होते हैं—उद्योगो म फक्टरी-समिति ऑफिस तथा अन्य सस्थाओ म स्थानीय समिति तथा कारखानों की दुकानो म कम-

चारियों के लिए कर्मचारी समिति। इनमें से प्रत्येक समिति एक नेता, एक सामाजिक बीमा एजेन्ट तथा एक मजदूर निरीक्षक चुनती है। सोवियत आर्थिक श्रमिक संघ कांग्रेस देश भर के संघों की उच्चतम संस्था है। इस संस्था का कार्य चलाने हेतु एक केन्द्रीय समिति चुनी जाती है। दैनिक कार्य के लिए यह समिति एक प्रेसीडेन्ट, एक सेक्रेटरी तथा चेयरमैन चुनती है।

रूसी अर्थ-व्यवस्था की नवीन प्रवृत्तियाँ

रूस में Khozraschot शब्द का उपयोग बड़े उत्साह के साथ नियोजकों एवं अर्थशास्त्रियों द्वारा किया जाता है। इस शब्द का अर्थ अर्थ-व्यवस्था की संचालना में होने वाले परिवर्तनों से लिया जाता है। इसके अन्तर्गत रूसी व्यवसायों में कार्य प्रोत्साहन के व्यापार आधारों पर लाभोपार्जन क्षमता से लिया जाता है। Khozraschot अभियान के अन्तर्गत रूसी अर्थ-व्यवस्था की प्रबन्ध व्यवस्था एवं नियोजन प्रणाली में मूलभूत सुधार किए जा रहे हैं।

रूसी प्रबन्ध में सुधार

इनके द्वारा रूसी अर्थ-व्यवस्था की समस्त उत्पादक इकाइयों में कुशलता एवं उत्पादकता के सभी स्तरों पर सुधार करने का प्रयत्न किया जा रहा है। नियोजित अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत भौतिक प्रोत्साहन (Material Incentus) अधिक पारिश्रमिक एवं आर्थिक प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित कर प्रबन्ध-सम्बन्धी सुधारों का क्रियान्वित किया गया है। व्यवसायों का अब अपने संचालन के सम्बन्ध में अधिक स्वतन्त्रता एव प्राथमिकता प्रदान की जाती है और उत्पादन के परिमाण के साथ उत्पादन के गुणों को भी व्यवसाय की सफलता के मूल्यांकन के लिए उपयोग किया जाता है। व्यवसायों के संचालन एव प्रबन्ध के सम्बन्ध में निम्नलिखित परिवर्तन किए जा रहे हैं—

(अ) व्यवसायों के काम का मूल्यांकन अब केवल उनके परिमाण के आधार पर नहीं किया जाता है बल्कि उत्पादों के गुणात्मक तत्त्वों को भी ध्यान में रखा जाता है। किसी व्यवसाय की सफलता अब उत्पादों की बिक्री, प्राप्त लाभ तथा वस्तुओं के गुणों पर निर्भर रहती है।

(आ) विभिन्न व्यवसायों के मध्य का उत्पादन एवं क्रय-विक्रय-सम्बन्ध हो, उनका निर्धारण अब उच्च स्तर से नहीं किया जाता है। इन व्यवसायों को पारस्परिक अनुबन्ध करने का अधिकार दिया गया है।

(इ) आर्थिक प्रोत्साहनों के महत्त्व को बढ़ा दिया गया है। श्रमिकों की मजदूरी उनके व्यक्तिगत श्रम के नतीजों तथा सम्पूर्ण कारखाने के उत्पादन पर निर्भर रहती है।

(ई) समाजवादी व्यवसायों (Socialist Enterprise) की आर्थिक क्रियाओं का मूल्यांकन में लाभ के महत्त्व को बढ़ा दिया गया है। इन व्यवसायों की प्राप्ति

एवं विकास का अब लक्ष्य इनकी कुशलता में वृद्धि, तान्त्रिक प्रगति एवं अभिनवों का उपयोग करना तथा इनकी लाभोपार्जनक्षमता बढ़ाना है वह व्यवसाय अब अधिक सफल समझा जाता है जो कि अच्छे गुणों की वस्तुओं का उत्पादन कम लागत दर पर सकता है। यह भूतकालीन परम्पराओं के विपरीत व्यवस्था है क्योंकि प्रबन्ध सम्बन्धी सुधारों के पूर्व व्यवसायों की सफलता उनके भौतिक लक्ष्यों एवं उनकी पूर्ति पर निर्भर रहती थी और उत्पादों के गुणों को महत्त्व नहीं दिया जाता था।

(उ) व्यवसायों के कर देने के पश्चात बचे लाभों को तीन भागों में बाँटा जाता है—कर्मचारियों को प्रोत्साहन एवं बोनस सामाजिक सुविधाओं एवं हितों के विस्तार तथा व्यवसाय का विकेन्द्रीकरण एवं विकास।

प्रबन्ध सम्बन्धी इन सुधारों द्वारा व्यवसायों में बुरुक्षापन की प्रवृत्तियों (Bureaucratic Practices) को समाप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है। साहसिक एवं व्यक्तिगत प्रारम्भिकता को सभी समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत अधिक महत्व दिया जाने लगा है।

नियोजन प्रणाली में सुधार

रूसी नियोजन प्रणाली निर्देशन द्वारा नियोजन एवं केन्द्रित नियोजन का नमूना माना जाता रहा है परन्तु इस प्रवृत्ति में अब कुछ मूलभूत सुधार किए गए हैं। अब समस्त आर्थिक निर्णय सर्वोच्च अधिकारियों द्वारा नहीं किए जाते हैं और समाजवादी व्यवसायों को अधिक आर्थिक स्वतन्त्रता एवं प्रारम्भिकता प्रदान की गयी है। इस व्यवस्था से केन्द्रीय नियोजन अधिकारियों को नियोजन से सम्बन्धित समस्त तथ्य एवं विवरण तयार करने की आवश्यकता नहीं होती है जिसके परिणामस्वरूप केन्द्रीय राज्य नियोजन एवं आर्थिक प्रगति के मूलभूत घटकों पर अपना ध्यान केन्द्रित रखता है तथा नियोजन तान्त्रिकताओं के प्रतिपादन का कार्य करता है।

रूसी नियोजन की नवीन प्रवृत्ति के अन्तर्गत वर्तमान साधनों एवं सम्पत्तियों से अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने का उद्देश्य रखा गया है। देश की समस्त उत्पादन क्रियाओं में तान्त्रिक एवं वैज्ञानिक प्रगति शीघ्रता से करने तथा अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के असन्तुलन को दूर करना भी नियोजन के वर्तमान परिवर्तनों का लक्ष्य है।

नियोजन के क्षेत्र में आर्थिक शुद्धता एवं सूक्ष्मता को अब अधिक महत्व दिया जाने लगा है। इसी कारण तथ्यों के संग्रहण एव सारिणीयन के लिए इलेक्ट्रानिक कम्प्यूटरों के उपयोग का विस्तार किया गया है।

सोवियत नियोजन के अन्तर्गत उद्योग एवं कृषि हेतु तथा उपभोग उद्योगों एवं भारी उद्योगों तथा क्षेत्रीय असन्तुलनों को समाप्त करने का प्रयत्न भी जारी है।

अध्याय २५

विदेशों में आर्थिक नियोजन—२

[Planning Abroad—2]

[(१) चीन में आर्थिक नियोजन (२) नाजी जर्मनी में आर्थिक नियोजन (३) ब्रिटेन में आर्थिक नियोजन (४) संयुक्त राज्य अमेरिका में आर्थिक नियोजन (५) इन्डोनेशिया में आर्थिक नियोजन, (६) सीलोन में आर्थिक नियोजन (७) बर्मा में आर्थिक नियोजन, (८) फिलीपाईन्स में आर्थिक नियोजन (९) पाकिस्तान में आर्थिक नियोजन, (१०) संयुक्त अरब गणराज्य में आर्थिक नियोजन]

चीन में आर्थिक नियोजन

चीन की क्रान्ति सन् १९४८ में सम्पन्न हुई और साम्यवादी राज्य स्थापित किया गया। इस समय देश की वित्तीय एवं आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय थी। सन् १९३१ से १९३६ के औसत कृषि-उत्पादन में लगभग २०% उत्पादन कम हो गया था और गृह युद्ध के कारण इस्पात उत्पन्न करने की क्षमता का ९०% भाग नष्ट हो गया था। यातायात के साधनों का भी बड़ी सीमा तक विनाश किया गया था। KMT सरकार ने घाटे की अर्थ-व्यवस्था का अधिकतम प्रयोग किया और मुद्रा-स्फीति का दबाव अत्यधिक हो गया था। मूल्यों में लगभग १०% की वृद्धि प्रतिदिन हो रही थी। ऐसी परिस्थितियों का सामना करने हेतु सन् १९४९ में आर्थिक पुनर्वास (Economic Rehabilitation) का कार्यक्रम बनाया गया जिसमें आर्थिक विनाश के बढ़ते हुए चरण रुक गये। सन् १९५२ तक आर्थिक स्थिति में काफी सुधार हुए और कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई। मई सन् १९४९ में देश भर के लिए समान मुद्रा का चलन किया गया जिसने धीरे धीरे जनता का विश्वास प्राप्त कर लिया। समस्त देश के लिए मार्च सन् १९५० में प्रथम बार राष्ट्रीय बजट बनाया गया। जून सन् १९५० में भूमि सुधार विधान बनाया गया और दो वर्षों में भूमि-सुधार पूरे कर लिए गये। तीन वर्षों में कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन, रेल एवं यातायात के साधनों जल-संचय (Water Conservation) में इतना विनियोजन किया गया जो पिछले २२ वर्षों में मिलाकर भी नहीं किया गया था। सन् १९४९-५२ तक चीनी अर्थ-व्यवस्था में निम्न पाँच क्षेत्र थे—

(१) राजकीय क्षेत्र, जिसमें भारी उद्योग, यातायात, वितरण एवं वित्त सम्मिलित थे।

(२) सहकारी क्षेत्र जिसमें कृषि-उत्पादन सहकारी समितियाँ विपणन एवं सप्लाई समितियाँ आदि सम्मिलित थी।

(३) पूँजीपति अधिकार क्षेत्र जिसमें वे हल्के उद्योग, जो अभी निजी पूँजीपतियों के अधिकार में थे सम्मिलित थे।

(४) निजी अधिकार क्षेत्र जिसमें दस्तकार, व्यक्तिगत किसान तथा स्वयं अपना कार्य करने वालों के व्यवसाय सम्मिलित थे।

(५) राज्य एवं पूँजीवादी क्षेत्र में वे व्यवसाय सम्मिलित थे जो राज्य एवं पूँजीपतियों द्वारा सामूहिक रूप से चलाये जाते थे।

सन् १९५३ में चीन में आर्थिक नियोजन को प्रारम्भ किया गया और चीन की प्रथम पंचवर्षीय योजना का निर्माण किया गया। चीन में सर्वोच्च राजनीतिक अधिकारी नेशनल पीपुल्स कांग्रेस है और यह कांग्रेस सभी बड़े बड़े निर्णय करती है। इसके नीचे स्टेट काउंसिल होती है जो भारत के केन्द्रीय मन्त्रियों के कैबिनेट के समान है। इस काउंसिल का उप प्रधान देश के आर्थिक नियोजन का सर्वोच्च अधिकारी होता है। योजना सम्बन्धी समस्त कार्यक्रम स्टेट प्लानिंग कमीशन द्वारा किये जाते हैं और यह कमीशन स्टेट काउंसिल के उप प्रधान के अधीन होता है। रूस के समान चीन में भी दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन योजनाएं बनायी जाती हैं। दीर्घकालीन योजना बनाने का कार्य स्टेट प्लानिंग कमीशन करता है और अल्पकालीन योजनाएं राजकीय आर्थिक कमीशन द्वारा बनायी जाती हैं। प्रत्येक प्रान्त में एक प्रान्तीय योजना कमीशन होता है जो प्रान्त के योजना सम्बन्धी कार्यक्रम की देख भाल करता है। प्रान्तीय कमीशन के नीचे काउण्टी स्तर पर योजना तथा सांख्य विभाग होते हैं। योजना का विवरण आधारभूत इकाइयों द्वारा तैयार किया जाता है। सहकारी तथा राजकीय क्षेत्र के व्यवसाय आधारभूत इकाइयाँ कहलाते हैं और वे अपने लिए योजना बना सकते हैं। पूँजीवादी क्षेत्र के व्यवसायों के सम्बन्ध में आधारभूत इकाई प्रत्येक व्यवसाय के स्थान पर प्रशासनिक क्षेत्र माना जाता है। इस प्रकार पूँजीवादी व्यवसाय अपनी योजना अपने आप नहीं बना सकते हैं। उनके लिए योजनाएं प्रशासन द्वारा बनायी जाती है।

स्टेट प्लानिंग कमीशन केन्द्रीय सरकार के विभिन्न मन्त्रालयों से सलाह करके समस्त राष्ट्र के लिए नियन्त्रण लक्ष्य (Control Figures) तैयार करता है और इन लक्ष्यों के लिए स्टेट काउंसिल से स्वीकृति प्राप्त कर लेता है। इन नियन्त्रण लक्ष्यों को नीचे की संस्थाओं को दे दिया जाता है। नीचे की संस्थाएं अपनी अपनी प्रस्तावित योजनाएं बनाती है जो स्टेट काउंसिल के पास भेज दिये जाते हैं। इन प्रस्तावित योजनाओं की एक प्रतिलिपि स्टेट प्लानिंग कमीशन को भी भेज दी जाती है जो उनके

आधार पर राष्ट्रीय योजनाएँ बनाता है। इस योजना की स्टेट काउन्सिल की स्वीकृति मिलने के पश्चात्, उसे नेशनल पीपुल्स कांग्रेस में स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है। कांग्रेस की स्वीकृति के पश्चात योजना को वैधानिक मान्यता प्राप्त हो जाती है और फिर उसे नीचे की संस्थाओं के पास क्रियान्वित करने हेतु भेज दिया जाता है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (सन् १९५३-१९५८)—यद्यपि यह माना जाता है कि चीन की प्रथम पंचवर्षीय योजना सन् १९५३ में प्रारम्भ हो गयी थी परन्तु वास्तव में यह योजना अन्तिम रूप से जुलाई सन् १९५५ में स्वीकृत हुई। चीनी साम्यवादियों का दीर्घकालीन उद्देश्य देश में समाजवादी औद्योगीकरण, कृषि एवं दस्तकारी के क्षेत्रों में समाजवादी सिद्धान्तों का अनुसरण तथा निजी व्यवसायों का समाजीकरण करना है। प्रथम पंचवर्षीय योजना इन उद्देश्यों के प्रति प्रथम प्रयास था। प्रथम पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य निम्न थे—

(१) समाजवादी औद्योगीकरण की नींव डालना।

(२) कृषि एवं दस्तकारी में समाजवादी परिवर्तनों की नींव डालना।

(३) निजी उद्योगों एवं वाणिज्य में समाजीकरण की नींव डालना।

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निम्न कार्यक्रमों पर योजना में विशेष जोर दिया गया—

(१) शक्ति, कोयला, लोहा, इस्पात, अलौह धातु, आधारभूत रसायन, मशीन-निर्माण उद्योगों की स्थापना तथा विस्तार जिसमें धातु काटने वाली बड़ी मशीनें एवं औजार, शक्ति उत्पन्न करने, धातुशोधन तथा खान खोदने-सम्बन्धी सामग्री, मोटर-गाड़ियाँ, ट्रैक्टर तथा हवाई जहाजों का निर्माण किया जा सके।

(२) वस्त्र उद्योग, हल्के उद्योग तथा अन्य छोटे तथा मध्यम श्रेणी के व्यवसायों का जो कृषि के लिए सामग्री दें, पर्याप्त विकास जिसमें जनता की मांगों की आवश्यकतानुसार पूर्ति की जा सके।

(३) वर्तमान औद्योगिक व्यवसायों का उपयुक्त एवं पूर्णतम उपयोग तथा उनकी उत्पादनक्षमता में वृद्धि।

(४) कृषि में धीरे-धीरे सहकारिता का उपयोग। इसके लिए कृषि की उत्पादन सहकारी समितियों की स्थापना तथा जल के संचय (Water Conservancy) का प्रबन्ध तथा विशेष फार्म उत्पादन की वृद्धि का प्रबन्ध करना।

(५) यातायात, डाक व तार आदि का अर्थ-व्यवस्था के विस्तार के अनुसार विकास। रेल निर्माण को सर्वोच्च महत्व दिया गया।

(६) व्यक्तिगत दस्तकारी को धीरे धीरे सहकारी समितियों में संगठित करना।

(७) पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था की तुलना में समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के प्रभुत्व को दृढ़ एवं विस्तृत करना।

(८) राजकीय आय तथा व्यय म सन्तुलन करके नगरों एव ग्रामों म वस्तु-विनिमय म वृद्धि करने तथा वस्तुओं के वितरण को बढ़ाकर बाजार म स्थिरता उत्पन्न करना।

(९) सास्कृतिक शक्षणिक तथा वज्ञानिक अन्वेषण का विकास तथा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण हेतु *लोगो का प्रशिक्षण देना।*

(१०) कठोर मितव्ययता अपनाना अपव्यय को दूर करना तथा राष्ट्रीय निर्माण हेतु पूंजी सचय म वृद्धि।

(११) उत्पादन तथा श्रमिक की उत्पादकता की वृद्धि के आधार पर श्रमिको के भौतिक तथा सास्कृतिक जीवन स्तर म वृद्धि।

(१२) चीन की विभिन्न राष्ट्रीयताओं (Nationalitie) म पारस्परिक आर्थिक एव सास्कृतिक सहयोग तथा सहायता को सुदृढ बनाना।

विनियोजन—प्रथम पचवर्षीय योजना म राज्य को ७६,६४० मिलियन यौन का विनियोजन करना था। इसम से ७४ १२० मिलियन यौन राज्य को अपने बजट स देय था तथा २ ५१० मिलियन यौन विभिन्न आर्थिक विभागो केन्द्रीय अधिकारियो तथा प्रातीय एव नगरपालिकाओं के प्रशासना द्वारा जुटाना था। यह विनियोजन विभिन्न मदो पर निम्न प्रकार होना था—

तालिका स० ३१—चीन की प्रथम योजना म विनियोजन

मद	मिलियन यौन	योग स प्रतिशत
(१) औद्योगिक विभाग	३१ ३२०	४० ९
(२) कृषि एव जल सचय तथा वन विभाग	६ १००	८ ०
(३) यातायात डाक व तार विभाग	८ ९९०	११ ७
(४) व्यापार अधिकोषण सग्रह विभाग	२ १६०	२ ८
(५) सास्कृतिक शक्षणिक तथा जन स्वास्थ्य विभाग	१४ ३७०	१८ ६
(६) नगरो की जन सेवाए	२ १२०	२ ८
(७) आर्थिक विभागो की चालू पूजी	६ ९००	९ ०
(८) आर्थिक विभागो की सामग्री की मरम्मत आदि	३ ६००	४ ७
(९) अन्य आर्थिक मदें	१,१८०	१ ५
योग—	७६ ६४०	१००%

उपर्युक्त समस्त विनियोजन राशि ७६ ६४० मिलियन यौन म से ४२ ७४० मिलियन यौन, अर्थात ५५ ८% पूजीगत विनियोजन होगा। पूजीगत विनियोजन विभिन्न मदो पर निम्न प्रकार होना था—

तालिका सं० ३२—चीन की प्रथम योजना में पूँजीगत विनियोजन

विभाग	मिलियन यौन	भाग में प्रतिशत
(१) औद्योगिक विभाग	२४,८५०	५८ २
(२) कृषि, जल संचय तथा वन विभाग	३,२६०	७ ६
(३) यातायात डाक व तार विभाग	८,२१०	१९ २
(४) व्यापार अधिकोषण, संग्रह विभाग	१ २८०	३ ०
(५) सांस्कृतिक, शैक्षणिक तथा जन स्वास्थ्य विभाग	२ ०८०	४ ९
(६) नगरों की जन-सेवाएं (Public Utilities)	१ ६००	३ ७
(७) अन्य मदें	६६०	१ ५
योग—	४२,७४०	१००%

प्रथम योजना में पूँजीगत विनियोजन सबसे अधिक उद्योगों पर होना था। २४,८५० मिलियन यौन की राशि के अतिरिक्त १,८७० मिलियन यौन का पूँजीगत विनियोजन उद्योग मंत्रालय के अतिरिक्त अन्य मंत्रालयों को उद्योगों पर विनियोजन करना था। इस प्रकार उद्योगों में पूँजीगत विनियोजन की राशि २६,७२० मिलियन यौन थी। इसमें निजी तथा राजकीय एवं निजी औद्योगिक व्यवसायों का विनियोजन सम्मिलित नहीं था। विनियोजन की इस राशि का ८८.८% भाग ऐसे उद्योगों में विनियोजित होना था जिनमें उत्पादन वस्तुएँ उत्पन्न होती थीं तथा शेष उपभोक्ता-वस्तुएँ उत्पन्न करने वाले उद्योगों में विनियोजन होना था।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में तीन इस्पात के बड़े-बड़े कारखाने अनशान (Anshan) वूहान (Wuhan) तथा पाओटाव (Paotow) स्थापित करने का लक्ष्य था। देश भर की बोयी जाने वाली भूमि १,६७३,००१,००० मौ (Mou) करने का लक्ष्य अर्थात सन् १९५२ की भूमि से १४६,३४०,००० मौ (Mou) तक। राजकीय फार्मों की संख्या ३,०३८ तक बढ़ाने का लक्ष्य था तथा सिंचित भूमि में ७२ मिलियन मौ की वृद्धि होनी थी। इसी प्रकार यातायात के क्षेत्र में रेल से ढोये जाने वाले माल का वजन २४१,५००,००० टन होना था तथा माल ढोये जाने वाली दूरी १२०,६०० मिलियन टन किलोमीटर्स हो जानी थी। मोटर-लारी द्वारा ढोये जाने वाला माल ६७,४६२,००० टन हो जाना था तथा आन्तरिक जहाजरानी से ३६,८६४,००० टन माल ढोये जाने का लक्ष्य था। ४,०८४ किलोमीटर्स की नयी रेलवे लाइनें डालने का भी लक्ष्य था। श्रम-उत्पादन में सन् १९५७ तक ६४% वृद्धि राजकीय उद्योगों में होनी थी तथा श्रमिकों की मजदूरी में ३३% वृद्धि करने का लक्ष्य था।

उत्पादन लक्ष्य—योजना के उत्पादन लक्ष्य निम्न प्रकार थे—

तालिका सं० ३३—चीन की प्रथम योजना के प्रथम उत्पादन लक्ष्य

मद	सन् १९५२ का उत्पादन	सन् १९५७ का लक्ष्य	वृद्धि का प्रतिशत (१९५२=१००)
(१) खाद्यान्न की फसलें (मिलियन कटीज)	४,२७ ८३०	३ ८५ ६२०	११७ ६
(२) कपास "	२ ६१०	४ २७०	१२५ ८
(३) गन्ना	१४ २५०	२६ ३५०	१८५ १
(४) बना हुआ तम्बाकू	४४०	७८०	१७६ ६
(५) विद्युत्शक्ति (मिलियन KWH)	७,२६०	१५ ९००	२१९ ०
(६) पिण्ड लोह (हजार टन)	६६ ५२८	१ १२ ९८५	१७८ ०
(७) क्रूड तेल	४३६	२,०१२	४६२ ०
(८) इस्पात	१ ३५०	४ १२०	०६ ०
(९) इस्पात की वस्तुएँ (हजार टन)	१ ११०	३ ०४८	२७४ ०
(१०) धातु काटने की मशीन व औजार (टन)	१६ २६८	२९ २९२	१८० ०
(११) रेल इंजन (संख्या)	२०	२००	१००० ०
(१२) सीमेंट (हजार टन)	२ ८६०	६ ०००	२१० ०
(१३) सूती वस्त्रादि (हजार बोल्ट)	१ ११ ६२८	१ ६३ ७२१	१४७ ०
(१४) शक्कर (हजार टन)	२४९	६८६	२७६ ०
(१५) मशीन का बना कागज	३७२	६५५	१७६ ०

अर्थ साधन—चीन की प्रथम योजना के लिए अर्थ साधन अधिकतर घरेलू साधनों से ही जुटाये गये थे। रूस से (सन् १९५४ में) ५२० मिलियन रूबल का ऋण चीन को प्राप्त हुआ था जिसे पूँजीगत विनियोजन में व्यय किया गया। विदेशी पूँजी कम्पनियों की समाप्ति तथा जमींदारों एवं घरेलू पूँजीपतियों से विकास के लिए बड़ी राशियाँ प्राप्त हुईं। इसके अतिरिक्त राजकीय व्यवसायों का लाभ, राजकीय व्यापार निगम का लाभ तथा औद्योगिक एवं व्यापारिक करों द्वारा अर्थ साधन प्राप्त किये गये। यह बात विवादपूर्ण है कि चीन में योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए घाटे की अर्थ व्यवस्था का उपयोग किया गया अथवा नहीं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना की प्रगति—योजना में पूँजीगत विनियोजन राशि (अनुमानित) ४२ ७४० मिलियन यौन के स्थान पर ४८ ७७० मिलियन यौन हुआ। ५०० एबव नॉर्म (Above Norm) नवीन तथा पुनर्निर्मित औद्योगिक योजनाओं की पूर्ति की गयी। लगभग ४ ८०० किलोमीटर लम्बी नवीन तथा पुनर्निर्मित रेलवे लाइनों का काम पूरा होने का अनुमान था। औद्योगिक उत्पादन लक्ष्य मात्रा से ४१% अधिक हुआ। अन्न का उत्पादन ३७० ००० मिलियन कटीज तथा कपास का ३२८०० ००० टन हुआ। सन् १९५६ की तुलना में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या में सन् १९५७ तक ९ ७% की वृद्धि हुई तथा माध्यमिक

शिक्षा पाने वाले विद्यार्थी १५% बढ़ गए। सन् १९५६ के स्तर की तुलना में अस्पताल में पलंग ११.७% बढ़े। सन् १९५७ के अन्त तक कृषि एवं दस्तकारी के क्षेत्र में देश भर में सहकारिता का विस्तार हो गया। लगभग सभी पूँजीवादी औद्योगिक व्यवसाय राज्य एवं निजी क्षेत्र के अधीन आ गए। श्रमिकों की मजदूरी में औसतन ३३.५% की वृद्धि हुई। राजकीय उद्योगों में श्रमिकों के उत्पादन में ७०.४% की वृद्धि हुई।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना—चीन की द्वितीय योजना द्वारा उन्हीं उद्देश्यों के प्रति आगे बढ़ना था जो प्रथम योजना में निर्धारित किए गए थे। द्वितीय योजना के निम्नलिखित पाँच उद्देश्य निर्धारित किए गए—

(१) औद्योगिक निर्माण जिसमें भारी उद्योगों के महत्त्व को जारी रखना तथा राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था में तात्त्विक पुनर्निर्माण एवं समाजवादी औद्योगीकरण की दृढ़ता के लिए कार्यवाही करना।

(२) समाजवादी परिवर्तन के अन्तर्गत सामूहिक अधिकार (Collective Ownership) तथा समस्त जनसमुदाय के अधिकार की वृद्धि का विस्तार करना।

(३) कृषि उद्योग तथा दस्तकारी के उत्पादन में वृद्धि तथा इसके अनुरूप यातायात एवं वाणिज्य का पूँजीगत निर्माण के आधार पर समाजवादी परिवर्तनों के द्वारा विकास करना।

(४) समाजवादी अर्थ-व्यवस्था एवं संस्कृति के विकास के लिए वैज्ञानिक अन्वेषण को सुदृढ़ बनाना तथा लोगों को निर्माण-कार्य में प्रशिक्षण प्रदान करने का अधिकतम प्रयत्न करना।

(५) राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए शक्ति बढ़ाना तथा जनसमुदाय के भौतिक एवं सांस्कृतिक जीवन में अधिक कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन के आधार पर वृद्धि।

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निम्न कार्यवाहियाँ की जानी थीं—

(१) सन् १९५७ की तुलना में कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन के समस्त मूल्य (Total Value) में ७५% वृद्धि।

(२) औद्योगिक उत्पादन की समस्त मूल्य राशि प्रथम योजना के लक्षित मूल्य-राशि की दुगुनी हो। कृषि उत्पादन की मूल्य राशि को सन् १९५७ की लक्षित मूल्य-राशि से ३५% अधिक करना।

(३) द्वितीय योजना में भी पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन-वृद्धि की दर उपभोक्ता-वस्तुओं की उत्पादन-वृद्धि की दर से अधिक होगी।

(४) सन् १९५७ की तुलना में सन् १९६२ तक राष्ट्रीय आय में ५०% वृद्धि करना सम्भव होगा। राष्ट्रीय आय के वितरण के सम्बन्ध में उपभोग तथा संचय में उचित अनुपात रखा जायगा। प्रथम योजना की तुलना में संचय की दर कुछ अधिक होगी जिससे जनसमुदाय के जीविकोपार्जन में धीरे धीरे सुधार किया जा सके और समाजवादी निर्माण की गति तीव्र हो सके।

(५) यथासम्भव राष्ट्रीय सुरक्षा तथा प्रशासन सम्बन्धी व्यय को कम किया जाय और आर्थिक निर्माण तथा सांस्कृतिक विकास के व्यय को बढ़ाया जाय जिससे समाजवादी निर्माण द्रुत गति से सम्भव हो सके।

(६) राजकीय एवं पूजीगत निर्माण म विनियोजन की जाने वाली राशि राज्य द्वारा होने वाले समस्त व्यय का ४०% किया जा सकेगा। यह अनुपात प्रथम योजना म ३५% था। कृषि एव उद्योगो के शीघ्र विकास के लिए पूँजी निर्माण सम्बन्धी समस्त विनियोजन का ६०% भाग उद्योगो पर विनियोजित किया जा सकेगा जबकि यह प्रतिशत प्रथम योजना म ५८ २% था। कृषि आदि पर पूजी निर्माण-सम्बन्धी विनियोजन समस्त विनियोजन का १०% होगा जबकि प्रथम योजना म यह केवल ७ ६% था।

उत्पादन लक्ष्य

तालिका स० ३४—चीन की द्वितीय योजना के उत्पादन लक्ष्य

मद	इकाई	लक्ष्य सन् १९५७ का	लक्ष्य सन् १९६१ का
(१) अनाज	(दस करोड कटीज)	३,६३१ ८	५,०००
(२) कपास	(दस हजार)	३ २७० ०	४ ८००
(३) सोयाबीन	(दस करोड कटीज)	२२४ ४	२५०
(४) बिजली	(KWH)	१५९ ०	४०० ४३०
(५) कोयला	(दस हजार टन)	११ २९८ ५	१ ९०० २ १००
(६) क्रूड तेल	( )	२०१ २	५०० ६००
(७) इस्पात	( )	४१२ ०	१ ०५० १ २००
(८) एल्यूमिनियम के इगट	( )	२ ०	१० १२
(९) रासायनिक खाद	( )	५७ ८	५०० ३२०
(१०) धातुशोधन सामग्री	( )	० ८	३ ४
(११) शक्ति उत्पादन सामग्री	(दस हजार KWT)	१६ ४	१४० १५०
(१२) धातु काटने के औजार एव मशीनें	(इकाई)	१ ३	६ ६ ५
(१३) सीमेन्ट	(टन)	६००० ०	१ २५० १ ४५०
(१४) सूती धागा	(गाँठें)	५००० ०	८०० ९००
(१५) सूती वस्त्र	(बोल्ट)	१५,३७२ १	२३ ५०० २६ ०००
(१६) नमक	(टन)	७५५ ४	१ ००० १ १००
(१७) शक्कर (हाथ द्वारा बनी सहित)	(दस हजार टन)	११० ०	२४० २५०
(१८) मशीन का बना कागज	(दस हजार टन)	६५ ५	१५० १५०

विकसित देश की यातायात सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु द्वितीय योजना म ८०० से ९०० किलोमीटर लम्बी नवीन रेलवे लाइनें डालने तथा १ ५०० से १,८०० किलोमीटर लम्बी ट्रक (Trunk) सड़कें बनाने का आयोजन किया गया।

उसी काल की तुलना में १½ गुना था। पट्रोलियम का उत्पादन सन् १६५८ के प्रथम छमाही में सन् १६५७ में उसी काल की तुलना में ५२% अधिक था।

चीन की सन् १६५६ वर्ष की योजना—इस योजना में समस्त पूंजीगत विनियोजन जो राजकीय बजट से होना था, २७,००० मिलियन यौन निश्चित किया गया जो सन् १६५८ की तुलना में २६% अधिक था। कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन में ४०% वृद्धि करने का लक्ष्य था। कृषि उत्पादन १,२२,००० मिलियन यौन तथा औद्योगिक एवं दस्तकारी उत्पादन १,६५,००० मिलियन यौन होने का अनुमान था। इस्पात का उत्पादन ११ मिलियन टन से बढ़कर १८ मिलियन टन, कोयले का उत्पादन सन् १६५८ के उत्पादन की तुलना में ४०% अधिक होगा। अनाज जिसमें गेहूँ चावल तथा आलू सम्मिलित हैं के उत्पादन में ४०% वृद्धि करना अर्थात् ५२५ मिलियन टन करना। कपास के उत्पादन को सन् १६५८ के स्तर से ४०% बढ़ाकर ४ मिलियन टन करने का लक्ष्य था। रेल के इंजिन तथा रेलवे वैगन के उत्पादन में ५०% से भी अधिक वृद्धि करने का अनुमान था। ५,५०० किलोमीटर लम्बी नवीन रेलवे लाइनें डालने का भी आयोजन किया गया। गन्ने के उत्पादन में ४०% वृद्धि धान के तेल में ४०% वृद्धि शक्कर में ४०% जूट तथा हैम्प के उत्पादन में ४०% वृद्धि करने का आयोजन था।

सन् १६५६ में औद्योगिक एवं कृषि उत्पादन का कुल उत्पादन राशि ४०% बढ़ जायगी अर्थात् सन् १६५८ में जो २,०४,००० मिलियन यौन था वह २,८७,००० मिलियन यौन हो जायगा। इस उत्पादन का मूल्य राशि में से १,६५,००० मिलियन यौन उद्योगों तथा १,२२,००० मिलियन यौन कृषि का उत्पादन होगा। सन् १६५६ में पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन में ४६% तथा उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में ३४% वृद्धि होने का अनुमान था। दैनिक जीवन के प्रयोग की वस्तुओं में बड़ी ही वृद्धि हुई। कृषि उत्पादन में वृद्धि करने हेतु अधिक सिंचाई के साधन सिंचाई की मशीनें, ट्रैक्टर्स अनाज एवं कृषि सम्बन्धी अन्य यन्त्र, रबर के टायरों वाली दो पहिया की ठेलागाड़ी, रासायनिक खाद तथा कृषि के घातक कीटाणुओं को मारने वाली औषधि प्रदान करने का आयोजन किया गया था।

सन् १६५६ के अन्त से देश में कृषि उत्पादन में कमी होना प्रारम्भ हो गयी क्योंकि वर्षा कम होने तूफान आने तथा अन्य प्राकृतिक घटनाओं के फलस्वरूप लगभग आधी कृषि भूमि पर खेती ठीक प्रकार से नहीं की जा सकी। कुछ क्षेत्रों में अकाल की अवस्था उत्पन्न हो गयी और चीन ने विदेशों से बड़ी मात्रा में खाद्यान्नों का आयात किया। चीन में अन्य कृषि उत्पादन में भी कमी रही और लक्ष्यों की पूर्ति नहीं की जा सकी। कृषि उत्पादन के वास्तविक आँकड़े अभी तक प्रकाशित नहीं किए गए।

सन् १६५६ में इस्पात का उत्पादन १३.३५ मिलियन टन (लक्ष्य १८ मिलियन टन) और कोयले का उत्पादन ३४८ मिलियन टन हुआ। औद्योगिक उत्पादन के

१,६५,००० मिलियन यौन के विपरीत वास्तविक उत्पादन १,६३,००० मिलियन यौन हुआ। औद्योगिक क्षेत्र में सन् १९६० में लक्ष्य के अनुसार ही वृद्धि होने का अनुमान है। सन् १९६० में औद्योगिक उत्पादन का लक्षित मूल्य २,१०,००० मिलियन यौन के विपरीत वास्तविक उत्पादन १,६५,००० मिलियन यौन हुआ। इस्पात का उत्पादन १८.४ मिलियन टन के लक्ष्य के विपरीत १८.४५ मिलियन टन, कोयले का उत्पादन ४२५ मिलियन टन के लक्ष्य के विपरीत ४५० मिलियन टन, बिजली का उत्पादन ५८,००० मिलियन किलोवाट लक्ष्य के विपरीत ५५,३०० मिलियन किलोवाट हुआ। चीन के औद्योगिक उत्पादन के सन् १९६१ के आंकड़े अभी तक उपलब्ध नहीं हैं।

चीनी जन-कम्यून (Communes)—सन् १९५८ के मध्य में चीन सरकार ने एक नवीन क्रान्ति को जन्म दिया जिसके अन्तर्गत ६५ करोड़ चीनियों को कम्यून में संगठित करके आश्चर्यजनक आर्थिक सफलताएँ प्राप्त करने का आयोजन किया गया। कम्यून द्वारा १० वर्षों में ही चीनी समाजवाद को साम्यवाद में परिवर्तित करने का लक्ष्य रखा गया। चीन में लगभग २६,००० जन-कम्यून हैं जिनमें चीन के लगभग ९०% कृषक सम्मिलित हैं। सन् १९५९ के अन्त तक समस्त चीन को कम्यून पर आधारित करने का लक्ष्य था।

एक कम्यून में ४,००० से १०,००० तक परिवार सम्मिलित होते हैं। कम्यून का कार्य-संचालन एक प्रशासनिक काउंसिल (Administrative Council) द्वारा किया जाता है। यह काउन्सिल कृषि, उद्योग, शिक्षा आदि सभी का प्रबन्ध एवं संचालन करती है। प्रत्येक कम्यून के अपना सामूहिक फार्म, कारखाने, स्कूल, दुकानें आदि होती हैं जिनका नियन्त्रण एवं संचालन काउन्सिल के हाथ में होता है। कम्यून के अन्दर रहने वाले प्रत्येक वयस्क को एक विशेष कार्य करने को दिया जाता है। स्त्रियाँ भी घर से बाहर कार्य करती हैं। स्त्रियों को घर के कार्यों से बचाने के लिए सामूहिक रसोइयाँ चलायी जाती हैं जिनमें कम्यून के प्रत्येक निवासी को निःशुल्क खाना दिया जाता है। बच्चों की देखभाल करने हेतु सामूहिक नर्सरी तथा शिशु-पाठशाला (Kinder Garten) चलाये जाते हैं जिनमें स्त्रियाँ अपने कार्य पर जाने के पूर्व बच्चों को छोड़ सकती हैं। बच्चों को इन्हीं नर्सरी तथा शिशु-पाठशाला (Kinder Garten) में सामूहिक रूप से शिक्षा प्रदान की जाती है। वृद्ध एवं बीमारों की देखभाल करने के लिए आदर के घर (Homes of Respect for Aged) सामुदायिक अधिकारियों द्वारा चलाये जाते हैं।

जन कम्यून अपने-अपने क्षेत्रों में विभिन्न आर्थिक क्रियाओं का संचालन एवं नियन्त्रण करते हैं। इनके द्वारा केवल कृषि का ही संचालन नहीं होता है अपितु कृषि के सहायक उद्योगों का विकास भी इनके द्वारा किया जाता है। नगरों के बड़े-बड़े कम्यून विभिन्न प्रकार के उद्योगों, जैसे वस्त्र, शक्कर, कागज, खाद, रसायन आदि

उद्योगों का विकास एव सचालन भी करते हैं। कम्यून के अन्तगत उच्चतम श्रम विभाजन सम्भव हो सका है एव उत्पादन की नवीनतम विधियों का उपयोग भी किया गया है। ग्रामीण क्षेत्रों म उत्पादन क्रियाओं को अत्यधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है तथा उत्पादन म अधिकतम वृद्धि करने हेतु निरन्तर कठोर कार्यवाहियाँ की जा रहीं हैं।

पश्चिमी देशा म कम्यून का अत्यधिक आलोचना की गयी है। विकास की इस विधि का एक अविवेकपूर्ण विधि बतलाया गया है जिसका सचालन अद्ध सनिक सगठन द्वारा किया जाना है और जिसम सगठित दासता (Mass Slavery) का विस्तार हुआ है। कम्यून क अन्तगत एक व्यक्ति का व्यक्ति न मानकर उत्पादन म काम आन वाली भौतिक इकाई मान लिया जाता है जा सरकार क मजदूर क रूप म काय करता है। वह समस्त सम्पत्ति त्याग क साथ साथ अपना घर एव परिवार भी खो बठता है। इस आलोचना क प्रत्युत्तर म चीनी अधिकारियों न बताया कि कम्यून क अन्तगत चीना कृषक केवल बेरोजगार एव भूखे रहन की स्वतन्त्रता को खोता है। इनके द्वारा पूजीवादी परिवार विधि को समाप्त करन का आयोजन है क्योकि इसम पारिवारिक सम्बन्ध धन पर आधारित होन हैं। चीनी अधिकारियों का कथन है कि पश्चिमी राष्ट्रों न जिस दासता (Slavery) का नाम दे दिया है, कदाचित वह अनुशासन (Decipline) से काय करने तक ही सीमित है। इन दोनो विचारधाराओं से तथ्य ज्ञात करना सम्भव नहीं है क्योकि उपलब्ध सूचनाए इतनी पर्याप्त नही होती हैं कि कुछ भी निश्चित रूप से कहा जा सके परन्तु अभी हाल के अकाल एव खाद्यान्नो की कमी से कम्यून की सफलताओं के सम्बन्ध म कुछ सन्देह होना स्वाभाविक है। यह अनुमान भी लगाया जाना अस्वाभाविक न होगा कि कम्यून सगठन ने कृषकों म अधिक उत्पादन करन की प्रवृत्ति का ठेस पहुँचायी है जिसन खाद्यान्नों की कमी को इतनी गम्भीर समस्या बना दिया है।

चीन और भारत की नियोजित अर्थ व्यवस्था की तुलना—चीन क नियोजन क इतिहास के इस सक्षिप्त विवरण क साथ इसका भारतीय नियोजित विकास से सक्षिप्त म तुलना करना उचित ही होगा। तुलना के दृष्टिकोण से ऐसे काल का अध्ययन करना उचित होगा जिसके लिए दोनो ही राष्ट्रों क आँकड़े उपलब्ध हो। सन् १९५३ से सन् १९५६ तक चीनी राष्ट्रीय आय ४३% अर्थात् औसतन ९ ५% प्रति वर्ष बढी। इसी काल म प्रथम योजना के अन्तगत भारत म राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर ३ ६% प्रति वर्ष थी। इस प्रकार भारत के विकास की गति चीन की तुलना म एक तिहाई रही। भारत की द्वितीय एव तृतीय योजनाओ म भी राष्ट्रीय आय की वृद्धि की दर इतनी अधिक नहीं है जबकि चीन की द्वितीय योजना म राष्ट्रीय आय की वृद्धि की दर ९ ५% प्रति वर्ष से कही अधिक होन की सम्भावना है। विभिन्न मदों के पृथक पृथक अध्ययन करन स भी यह ज्ञात होगा कि भारत का उत्पादन चीन की

तुलना में बहुत कम है। चीन का इस्पात का उत्पादन सन् १६५८ में ११ मिलियन टन था जबकि भारत में तृतीय योजना के अन्त तक (सन् १६६५-६६) इस्पात का उत्पादन ६.६ मिलियन टन होने का लक्ष्य है। इसी प्रकार चीन का कोयले का उत्पादन सन् १६५८ में २७० मिलियन टन था जबकि भारत में सन् १६६१ तक ९० मिलियन टन कोयले के उत्पादन का लक्ष्य था। इस प्रकार की स्थिति अन्य उद्योगों के उत्पादन के सम्बन्ध में भी है। इस प्रकार चीन की विकास की गति भारत की तुलना में निस्सन्देह अधिक तीव्र है।

नाजी जर्मनी में आर्थिक नियोजन

जर्मनी में नाजी दल जनवरी सन् १६३२ में सत्तारूढ़ हुआ और द्वितीय महायुद्ध के अन्त तक सत्ता इस दल के हाथ में रही। सन् १६३२ में Herr Hitler द्वारा Chancellor का पद ग्रहण करने के पश्चात नाजी शासन का प्रारम्भ हुआ। नाजी शासन के अन्तर्गत उत्पादन के साधनों पर निजी अधिकार तथा निजी साहस दोनों को ही चालू रखा गया, परन्तु इन पर पूर्ण सरकारी नियन्त्रण का आयोजन किया गया। सरकार द्वारा भी कुछ उद्योग चलाये जाते थे परन्तु अधिकांश व्यवसाय निजी क्षेत्र के अधिकार में ही थे परन्तु सरकार को यह अधिकार था कि वह किसी समय आवश्यकता पड़ने पर निजी सम्पत्ति एवं धन को अधिकार में ले सकती थी। नागरिक अपने धन का उपयोग अपनी इच्छानुसार नहीं कर सकते थे। राज्य उनको धन व्यय करने के तरीके निर्देशित करता था। यद्यपि लिखित रूप से निजी व्यवसायियों को अपने व्यवसाय अपनी इच्छानुसार चलाने का अधिकार था परन्तु वास्तव में व्यापार एवं उद्योगों के संचालन में सरकारी हस्तक्षेप अधिक था। सरकार किसी भी व्यक्ति पर कोई व्यापार करने पर प्रतिबन्ध लगा सकती थी। इसके अतिरिक्त वस्तु-भी वस्तुओं के मूल्य एवं वितरण भी सरकार द्वारा नियन्त्रित किए जाते थे। सरकार को श्रमिकों का पारिश्रमिक तथा व्यवसायियों का लाभ निर्धारित करने का भी अधिकार था। इस प्रकार राष्ट्रीय समाजवाद के अन्तर्गत सरकार को प्रत्येक क्षेत्र पर विस्तृत शक्तियां प्राप्त थीं।

प्रथम चारवर्षीय योजना—सन् १६३३ में जब नाजी दल ने सत्ता सँभाली थी, उस समय तो जर्मनी में बेरोजगार एवं मन्दी की समस्या अत्यन्त गम्भीर थी। नाजी सरकार को रोजगार में वृद्धि करना अत्यन्त आवश्यक था। इस समस्या का निवारण करने हेतु १ मई सन् १६३३ को प्रथम चारवर्षीय योजना की घोषणा की गयी। यह एक विस्तृत योजना थी जिसमें समस्त अर्थ-व्यवस्था की कार्य-प्रणाली निर्धारित की गयी। इस योजना का मुख्य उद्देश्य बेरोजगारों को किसी लागत पर रोजगार प्रदान करना था। नाजी सरकार का लक्ष्य रोजगार प्राप्त लोगों की संख्या बढ़ाना था चाहे उनको मजदूरी कितनी भी कम न दी जाय। जो लोग सहायता-कार्य (Relief Work) अथवा श्रमिक कम्प (Labour Camp) में काय करते थे उनको केवल

जीवन निर्वाह के लिए ही पारिश्रमिक दिया जाता था। रोजगार के अवसर बढाने के लिए निर्माण कार्यों का अधिक महत्व दिया गया। अनुपयोगी भूमि की उपयोगी बनाने हेतु खाइया तथा नालियों का निर्माण किया गया नवीन इमारतों का निर्माण नाजी सरकार के कार्यालय के लिए किया गया, रहने के लिए घरो का निर्माण किया गया, कृषि मजदूरो के लिए क्वाटर्स बनाये गये सडक यातायात के लिए नवीन सडका का निर्माण किया गया। एक बहुत बडा कारखाना पीपुल्स कार बनाने के लिए स्थापित किया गया। इसके अतिरिक्त रोजगार के अवसर बढ़ाने हेतु भवन निर्माण के लिए आर्थिक सहायता औद्योगिक सामग्री म नवीनीकरण करने की छूट काय का अधिक श्रमिको म फलाना, कृषको के बेरोजगारो का रोजगार देन पर आर्थिक सहायता उन मालिको को कर देय म छूट जो अधिक श्रमिको को रोजगार प्रदान करें श्रमिको का पदच्युत करन पर प्रतिबन्ध पुराने श्रमिको को रोजगार देना एक ही परिवार म विभिन्न रोजगारो से आयोपार्जन करन पर प्रतिबन्ध नवीन विवाहित दम्पत्तियो को बोनस यदि पत्नी अपने पुराने रोजगार को न करने के लिए अनुमति दे। अनिवार्य सैनिक सेवा तथा हथियारबन्दी आदि के कार्यक्रम चालू किय जायें।

इन सब कार्यक्रमो के फलस्वरूप दो वर्षों म रोजगार प्राप्त लोगो की सख्या ११ ५ मिलियन से १६ ५ मिलियन हो गया तथा बेरोजगारो की सख्या ६ मिलियन से घट कर २ मिलियन रह गयी। सन् १६३६ के अन्त तक बेरोजगार की समस्या सर्वथा समाप्त हो गयी और योजना सफलतापूर्वक समाप्त हुई।

द्वितीय चारवर्षीय योजना—वर्सेल्स (Versailles) की सन्धि के अनुसार यद्यपि जर्मनी का अशस्त्रीकरण कर दिया गया था परन्तु सन्धि म अन्य पक्षो ने अपनी सैनिक शक्ति को कम नहीं किया और अशस्त्रीकरण का सम्मेलन भी कोई ठोस काम वाही इस सम्बन्ध म न कर सका। सन् १६३५ म हिटलर ने जर्मनी को लीग आफ नेशन्स से अलग कर दिया और जर्मनी की सैनिक शक्ति बढाना प्रारम्भ कर दिया। सितम्बर सन् १६३६ म हिटलर ने जर्मनी की द्वितीय चारवर्षीय योजना की घोषणा की। इस योजना का मुख्य लक्ष्य जर्मनी को सैनिक दृष्टिकोण से शक्तिशाली राष्ट्र बनाना था तथा आर्थिक मामलो म आत्म निर्भर करना था। पुनर्शस्त्रीकरण तथा आत्म निर्भरता इस योजना के दो मुख्य उद्देश्य थे। जर्मनी की सेना को आधुनिक शस्त्रो से लैस करना था जिससे वह भूमि समुद्र तथा वायु सभी प्रकार के युद्ध के योग्य बन सके। आर्थिक बायकाट की कठिनाइयो से बचने के लिए खाद्यान्नो एव कच्चे माल म आत्म निर्भरता पर जोर दिया गया था। जनसमुदाय का देश के आत्म निर्भर करने हेतु कठोर परिश्रम करने को कहा गया तथा उनसे उपभोग की मात्रा को कम करने को भी कहा गया जिससे युद्ध सम्बन्धी उद्योगों म अधिक साधनो का उपयोग किया जा सके। योजना के प्रशासन का काय हरमन गोयरिंग (Herman Goering) को दिया गया। इसको विस्तृत अधिकार दिये गये तथा अर्थ व्यवस्था के समस्त महत्वपूर्ण स्थानो पर

सेना के अधिकारियों को नियुक्त किया गया। उद्योगपतियों तथा व्यापारियों को सेना में पद दिये गये जिससे वे योजना के संचालन में सहायता कर सकें। इस प्रकार समस्त राष्ट्र को आगामी युद्ध के लिए तैयार किया गया।

द्वितीय योजना के मुख्य लक्ष्य निम्न प्रकार थे—

(१) कच्चे माल के उत्पादन में वृद्धि

(२) कच्चे माल का योजनाबद्ध वितरण जिससे आधारभूत एवं युद्ध की सामग्री से सम्बन्धित उद्योगों को पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल मिल सके

(३) कृषि उत्पादन विशेषकर खाद्यान्नों का उत्पादन

(४) श्रम का वितरण युद्ध-सम्बन्धी उद्योगों की आवश्यकतानुसार करना

(५) मजदूरी और मूल्यों का स्थिर रखना,

(६) विदेशी मुद्रा पर नियन्त्रण रखना।

द्वितीय योजना के कार्यक्रमों के संचालन के फलस्वरूप सन् १९३६ तक बेरोजगार सर्वथा समाप्त हो गये और श्रमिकों की कमी गम्भीर रूप धारण करने लगी। श्रमिकों की पूर्ति हेतु स्त्रियों को बाहर कार्य करने के लिए लाया गया। अवकाश-प्राप्त (पेंशनर) कर्मचारियों को फिर काम पर बुलाया गया। प्रशिक्षणता (Apprenticeship) के समय में कमी कर दी गयी तथा विश्वविद्यालय के कोर्सों में कमी कर दी गयी। इसके अतिरिक्त विदेशों से भी हजारों श्रमिक लाये गये।

जर्मनी की दो योजनाओं के फलस्वरूप कृषि एवं उद्योगों के उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। सन् १९२८ के उत्पादन को १०० के बराबर मानकर सन् १९३२ का निर्माण-सम्बन्धी उद्योगों का उत्पादन ५८ था जो सन् १९३८ में १२६ हो गया। इस प्रकार कृषि उत्पादन सन् १९३२ में १०६ था जो बढ़कर सन् १९३८ में ११५ हो गया। जर्मनी में योजना-काल के संचालन हेतु कोई पृथक् संस्था नहीं नियुक्त की गयी और न प्रत्येक वर्ष की प्रगति का ब्यौरा एवं प्रकाशित ही किया गया। जन सहयोग को योजना के कार्यों में कोई स्थान नहीं दिया गया। नाजी-योजना का उद्देश्य विकास के स्थान पर शस्त्र सशस्त्रीकरण था जिससे संसार पर विजय प्राप्त कर ली जाय।

ब्रिटेन में आर्थिक नियोजन

ब्रिटेन में आर्थिक नियोजन का जन्म आर्थिक कठिनाइयों के कारण हुआ था। इसकी आधारशिला किन्हीं गम्भीर सिद्धान्तों पर आधारित नहीं है। आर्थिक नियोजन का उपयोग ब्रिटेन में प्रयोगात्मक है। ब्रिटेन में आर्थिक नियोजन का प्रारम्भ द्वितीय महायुद्ध में हुआ जबकि मिली जुली सरकार (Coalition) ने युद्ध का सामना करने हेतु अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में नियोजित अर्थ-व्यवस्था का संचालन किया। युद्धकाल में समस्त संसार में साधनों की अत्यन्त कमी थी और इस कमी का सामना करने हेतु राशनिंग साधनों का सरकारी नीति के अनुसार वितरण, आदेश एवं परमिट जारी करने आदि के रूप में सरकार ने अर्थ-व्यवस्था को नियोजित किया

जिसमे उपलब्ध साधनो का उपयोग युद्ध म विजय प्राप्त करने हेतु चलाये जाने वाले कार्यक्रमो पर किया जा सके। युद्ध के पश्चात् मन्दी एव बेरोजगारी के भय पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया और उस समय की मिली जुली सरकार (Coalition) ने अपना रोजगार-नीति के सम्बन्ध म एक श्वेत पत्र (White Paper) जारी किया जिसम बताया गया कि मन्दी से अर्थ व्यवस्था को बचाने हेतु युद्धकालीन नियन्त्रण युद्ध के पश्चात भी लागू रहग और बेरोजगार के दबाव को रोकने के लिए सरकारी व्यय म वृद्धि की जायगी। सन् १९४५ म युद्ध समाप्त होने पर मन्दी एव बेरोजगारी की समस्याओं का प्रादुर्भाव होने के बजाय मुद्रा स्फीति बढ़ते हुए मूल्य तथा वस्तुओं एव साधनो की कमी आदि समस्याए सामने आयी। सन् १९४६ एव सन् १९४७ म मुद्रा स्फीति वस्तुओं एव साधनो की सामान्य कमी सग्रह म कमी आदि समस्याए अत्यन्त तीव्र बन गयी। इन अपूर्णताओं के निवारण हेतु लेबर सरकार ने आर्थिक नियोजन की शरण ली। आर्थिक नियोजन द्वारा देश के उपलब्ध साधनो का वितरण समस्त राष्ट्र के अधिकतम हित के लिए किया जाना था। साधनो की उत्पत्ति एव उनकी आवश्यकता के अन्तर को कम आवश्यक कार्यक्रमो म साधनो का उपयोग न कर दूर किया जाना था। साधनो के उपयोग को निर्माण तान्त्रिकता पर नियन्त्रण कर दूर किया जाना था। साधनो के उपयोग को विपणि तान्त्रिकता (Market Mechanism) के अधीन नही छोड़ा जाना था अन्यथा अनावश्यक कार्यक्रमों की पूर्ति म साधनो के उपयोग का अवसर मिल सकता था। इस प्रकार लेबर सरकार ने आर्थिक नियोजन को युद्धोपरान्त अपूर्णताओं का सामना करने के लिए उपयोग करने का निश्चय किया। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन के धन साधन पूजीगत सामग्री तथा अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति जिसको युद्ध म क्षति हुई थी, उसकी पूर्ति करने हेतु भी आर्थिक नियोजन को अपनाया गया। सद्धान्तिक दृष्टिकोण से भी लेबर सरकार को देश म समाजवाद स्थापित करने हेतु आर्थिक नियोजन की शरण लेना स्वाभाविक था। सन् १९४६ एव सन् १९४७ म कुछ उद्योगों एव सेवाओं के राष्ट्रीयकरण ने आर्थिक नियोजन के सचालन को सुलभ बना दिया।

ब्रिटेन म आर्थिक नियोजन का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय साधनो का राष्ट्र की आवश्यकतानुसार उपयोग करना था। इसके अतिरिक्त पूर्ण रोजगार कल्याणकारी राज्य (Welfare State) का निर्माण तथा राष्ट्रीय आय का और अधिक समान वितरण नियोजन के सहायक उद्देश्य थे। ब्रिटेन म आर्थिक नियोजन के विस्तृत रूप को नही अपनाया गया। वास्तव म यह एक रूप म आंशिक नियोजन कहा जायगा। इसके अन्तर्गत ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था के कुछ ही क्षेत्रो के लिए आयोजन किए गये। विभिन्न उत्पादन के क्षेत्रो के लिए विस्तृत लक्ष्य भी निर्धारित नही किए गये। केवल कुछ वृहत् उद्योगो के लिए ही उत्पादन लक्ष्य निर्धारित किए गये। नियोजको को इन लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कोई विशेष कार्य नही करने थे। इनकी पूर्ति निजी साहसियों को

करती थी जिन्हें सरकार द्वारा सुविधाएं एवं प्रलोभन प्रदान किए गये। सरकार निजी साहसियों को सलाह भी देती थी। सरकार ने उत्पादकों को कोई आदेश नहीं देने थ, फिर भी कहीं-कहीं सरकार ने उत्पादकों एव श्रमिकों का आदेश जारी किए जिसने आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति होती रहे। ब्रिटेन में योजनाएं दीर्घ काल के लिए निर्धारित नहीं की गयीं। ये एक वर्ष या उससे भी कम काल के लिए बनायी गयीं। इन योजनाओं में अल्पकालीन समस्याओं के निवारण का आयोजन किया गया।

उपयुक्त विवरण के आधार पर यह कहना अनुचित न होगा कि ब्रिटेन के आर्थिक नियोजन को वास्तविक नियोजन नहीं कहा जा सकता, वह तो केवल एक ढांचा मात्र था। ब्रिटेन के आर्थिक नियोजन के तीन मुख्य तत्व थे—

(१) एक ऐसी संस्था का निर्माण जिसके पास विस्तृत सांख्य एवं सूचनाएं हों जिससे राष्ट्र के भौतिक एवं वित्तीय साधनों का अनुमान लगाया जा सके और उपलब्ध साधनों के आधार पर अर्थ-व्यवस्था के वृहत् क्षेत्रों में लक्ष्य निर्धारित किए जाय।

(२) विभिन्न कच्चे माल, वित्त, श्रम आदि के लिए आर्थिक अनुमान पत्रक (Economic Budgets) तयार करना जिसमें उपलब्ध साधनों में तथा नियोजन के लक्ष्यों में सम्बन्ध स्थापित किया जा सके।

(३) उन प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष विधियों का निर्धारण जिनसे राष्ट्र अर्थ-व्यवस्था का इच्छित दिशाओं में प्रवाहित करने हेतु प्रभावित कर सके परन्तु उत्पादकों के दिन प्रतिदिन के कार्यों में सरकार को हस्तक्षेप नहीं करना था।

नियोजन-सम्बन्धी निर्णयों का सर्वोच्च अधिकार मन्त्रिमण्डल (Cabinet) को था। कैबीनट की सहायतार्थ दो महत्वपूर्ण समितियां बनायी गयीं—आर्थिक नीति समिति तथा उत्पादन समिति। आर्थिक नीति समिति के अध्यक्ष स्वयं प्रधानमन्त्री थे और यह समिति आर्थिक नीतियां निर्धारित करती थी। उत्पादन समिति के अध्यक्ष चान्सलर ऑफ एक्सचेकर (Chancellor of Exchequer) थे और यह समिति विनियोजन के कायक्रम निर्धारित करती थी। आर्थिक मामलों पर विभिन्न मन्त्रालयों को सलाह देने हेतु केन्द्रीय सांख्य कार्यालय तथा आर्थिक सचिवालय (Economic Secretariat) दो सरकारी सेवाएं थीं। इनके अतिरिक्त आर्थिक नियोजन का कार्यालय, जो मुख्य नियोजन अधिकारी के अधीन था, नियोजन-सम्बन्धी मामलों पर केवल सलाह देने का काय करता था। यह अधिकारी राष्ट्रीय हित के आर्थिक मामलों पर विचार कर नवीन कार्यक्रमों पर सलाह देता था। इसके अतिरिक्त एक प्रतिनिधि-संस्था आर्थिक नियोजन परिषद् थी, जिसमें सरकार श्रम तथा उद्योगों के प्रतिनिधि थे। यह संस्था नियोजन-सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करती थी। सरकारी विभाग तथा अन्तर्विभागीय समितियां भी नियोजन-व्यवस्था का मुख्य भाग थीं। ये उत्पादन तथा विनियोजन सम्बन्धी कार्यक्रम बनाकर उच्च अधिकारियों एवं संस्थाओं के पास भेजती थीं।

राष्ट्रीय योजना (सन् १९६४ ६५ से सन् १९६९ ७०)

ब्रिटेन की वर्तमान लेबर सरकार ने १६ सितम्बर सन् १९६५ को एक श्वेत पत्र (White Paper) प्रकाशित किया जिसमें ब्रिटेन राष्ट्रीय योजना के विभिन्न कार्यक्रमों एवं उद्देश्यों को अंकित किया गया। इस योजना में सन् १९६४ से सन् १९७० तक के ब्रिटेन के आर्थिक विकास के विभिन्न पहलुओं का विवरण सम्मिलित किया गया है। इस योजना का निर्माण राष्ट्रीय आर्थिक विकास परिषद् (National Economic Development Council) द्वारा किया गया। इसमें परिषद् सरकार राष्ट्रीयकृत उद्योगों श्रम संघों तथा नियोक्ताओं (Employers) के प्रतिनिधि शामिल हैं। इस योजना द्वारा सरकार ने पहली बार अपनी नीति को स्पष्ट किया है और अपने उत्तरदायित्वों को भी स्वीकार किया है।

यह योजना दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में प्रगति का आधार तथा अर्थ व्यवस्था के समस्त क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाली समस्याओं एवं उनके निवारण का विवरण दिया हुआ है। दूसरे भाग में एक औद्योगिक जाँच के नतीजों के आधार पर औद्योगिक क्षेत्र के ५० वर्गों (Sections) का विकास की सम्भावनाओं का विवरण दिया गया है।

उद्देश्य

(१) ब्रिटेन को सम्पन्न बनाने हेतु प्रतिकूल भुगतान शेष को दूर करना अत्यन्त आवश्यक समझा गया है। योजना द्वारा केवल इस प्रतिकूल शेष को ही दूर करना है अपितु विदेशों के ऋण का भी शोधन करना है।

(२) पिछले ऋणों का शोधन करने के साथ अर्थ व्यवस्था का इस प्रकार सचालित किया जाना है कि भविष्य में ब्रिटेन इस ऋणग्रस्तता में फिर से फँस सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उत्पादन में वृद्धि लागत में कमी तथा विदेशों में अधिक विक्रय करना आवश्यक है।

लक्ष्य एवं कार्यक्रम

(१) राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि—सन् १९७० तक राष्ट्रीय उत्पादन को वर्तमान उत्पादन के एक चौथाई से बढ़ाना है, अर्थात् वर्तमान राष्ट्रीय उत्पादन ३२ ८४७ मिलियन पौंड को बढ़ाकर ४१ ०५७ मिलियन पौंड करना है। योजना के पाँच वर्षों में इस प्रकार राष्ट्रीय उत्पादन में २५% की वृद्धि करना है। इस काल में उत्पादन की प्रगति की वार्षिक औसत दर ३ ८ प्रतिशत रखना था और सन् १९७० के पहले यह दर ४% तक कर देना है।

(२) भुगतान-शेष—सन् १९६४ वर्ष में ब्रिटेन का व्यापारिक प्रतिकूल शेष ५३४ मिलियन पौंड था और कुल मिलाकर प्रतिकूल भुगतान शेष ७५० मिलियन पौंड था। योजना के अन्तर्गत इस प्रतिकूल शेष को सन् १९६६ तक समाप्त करना है और सन् १९७० तक इसे २५० मिलियन पौंड के अनुकूल शेष में परिवर्तित करना है।

इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु देश के निर्यात में ५½% की प्रति वर्ष वृद्धि तथा आयात में औसत से प्रति वर्ष ४% तक की वृद्धि करने का आयोजन किया गया है। ब्रिटेन के निर्यात में पिछले दस वर्षों में औसत से २% वार्षिक वृद्धि हुई है और विश्व की निर्मित वस्तुओं के कुल व्यापार में ब्रिटेन का भाग २०% से घटकर १८% रह गया है। निर्यात बढ़ाने हेतु योजनाकाल में निर्यात के शीघ्र यातायात, नवीन निर्माण-संस्थाओं की स्थापना, लघु एवं मध्यम श्रेणी के उत्पादकों को निर्यात करने हेतु सहायता, निर्यात के लिए सरल एवं सस्ती साख एवं बीमा-व्यवस्था, निर्यात सम्वर्द्धन तथा व्यापारिक मिशनों पर सरकारी व्यय आदि का आयोजन किया गया है।

योजना में विदेशों में होने वाले सरकारी व्यय को कम करने का आयोजन भी किया गया है। इसके लिए सरकार अपने विदेशी सैनिक व्यय को कम करेगी तथा निर्धन देशों को दी जाने वाली आर्थिक सहायता की प्रति वर्ष वृद्धि को कम करने का आयोजन किया गया है। इसके साथ ही विदेशों में विनियोजित होने वाली निजी पूँजी को भी कम करने हेतु प्रतिबन्ध लगाने का आयोजन योजना में किया गया है। कम्पनी-कर निर्धारण में भी ऐसे परिवर्तन किए गए हैं कि ब्रिटिश उद्योगों में विनियोजन करने को अधिक प्रोत्साहन प्राप्त हो।

(३) श्रम—औद्योगिक उत्पादन में पाँच वर्षों में २५% वृद्धि करने हेतु ८ लाख अतिरिक्त श्रमिकों की आवश्यकता होगी, जिनमें से चार लाख श्रमिक जन-संख्या की सामान्य वृद्धि के फलस्वरूप उपलब्ध हो जायेंगे। लगभग दो लाख श्रमिकों की पूर्ति अधिक बेरोजगार वाले क्षेत्रों में अधिक रोजगार तथा विवाहित स्त्रियों तथा वृद्धों को रोजगार प्रदान कर की जायगी। शेष दो लाख श्रमिकों की पूर्ति उत्पादकता में वृद्धि कर की जायगी। कुशल श्रमिकों की पूर्ति हेतु प्रशिक्षण बोर्ड एवं केन्द्रों की स्थापना सरकार द्वारा की जायगी। विकास-कार्यक्रमों के फलस्वरूप कृषि, खनिज एवं आन्तरिक यातायात में ४ लाख श्रमिकों का और हवाई जहाज निर्माण, वस्त्र एवं सूत उद्योग में २ लाख श्रमिकों का कम उपयोग होगा। अन्य उद्योगों में १५ लाख अतिरिक्त श्रम की आवश्यकता होने का अनुमान है। इस प्रकार श्रमिकों को पुराने व्यवसायों से नवीन व्यवसायों में जाना होगा। इस असुविधा का निवारण करने हेतु सरकार ने बेरोजगार श्रमिकों को क्षतिपूर्ति, बेरोजगारी बीमा का लाभ, स्थानान्तरण पर अधिक भत्ते आदि का आयोजन किया है।

(४) विनियोजन—योजनाकाल में औसत से प्रति वर्ष ५.५ प्रतिशत स्थायी विनियोजन की वृद्धि का आयोजन किया गया है। निर्माणी (Manufacturing) उद्योगों में ८% प्रति वर्ष, निर्माण उद्योग (Construction Industries) में योजना काल में दुगुना विनियोजन करने का लक्ष्य है। इसी प्रकार सड़क-यातायात में ६.०% प्रति वर्ष तथा जन-सेवाओं में ६.६% प्रति वर्ष विनियोजन में वृद्धि का आयोजन किया गया है।

राष्ट्रीयकृत उद्योगो के विनियोजन-कार्यक्रम औद्योगिक सर्वेक्षण द्वारा निर्धारित किए गये हैं परन्तु निजी क्षेत्र म सयत्रादि म विनियोजन उद्योगपतियो की अधिक विक्रय की सम्भावनाओ पर निर्भर रहेगा। इस सम्बन्ध म आर्थिक विकास-समितियो (Economic Development Committees known as Little Neddies) द्वारा योजना का निर्माण करते हुए जो विवरण तयार किए गये हैं वे निजी उद्योग पतियो को विनियोजन कार्यक्रम निर्धारित करने म सहायक होगे। राष्ट्रीयकृत उद्योगो के विनियोजन म निम्न प्रकार वृद्धि होने का अनुमान है—

विद्युत बोर्डों (Electricity Board) का विनियोजन १३० मिलियन पौंड (सन् १९६४ म) से बढ़कर सन् १९६६ म ७४० मिलियन पौंड हो जायगा और उसके बाद शेष दो वर्षो म कुछ कम हो जायगा। जनरल पोस्ट आफिस का विनियोजन १९८ मिलियन पौंड (सन् १९६४ मे) से बढ़कर सन् १९७० म ३३९ मिलियन पौंड हो जायगा। कोयला उद्योग रेल उद्योग म विनियोजन म कुछ कमी होगी और गस उद्योग म प्रथम वर्ष म वृद्धि होगी तत्पश्चात इसका स्तर स्थिर रहेगा। योजना के अन्त तक यन्त्रादि म होने वाले विनियोजन का कुल विनियोजन से प्रतिशत ४८ से बढ़कर ५१ हो जायगा। नवीन भवन एव कार्यालयो के विनियोजन के भाग म कोई विशेष परिवर्तन नहीं होगा और मोटरगाड़ी दुकानों तथा हवाई जहाज निर्माण के विनियोजन के भाग म कमी हो जायगी।

(५) क्षेत्रीय नियोजन (Regional Planning)—योजनाकाल म सरकार द्वारा क्षेत्रीय नीति इस प्रकार सचालित की जायगी कि औद्योगिक विकास रोजगार निवास गृह एव जन सेवाओ का देश के समस्त भागो म उचित वितरण हो सके। इस कार्य के लिए सरकार द्वारा स्काटलैण्ड वेल्स तथा अन्य इगलिश क्षेत्रो म प्रभावशाली नियोजन-तन्त्र (Planning Mechinery) की स्थापना की जायगी मध्य स्काटलैण्ड तथा उत्तर-पूर्वी इगलैण्ड के क्षेत्रीय विकास के कार्यक्रम सचालित किये जायेंगे तथा विकसित जिलो (Development Districts) म वित्तीय प्रतिबन्धो से छूट दी जायगी।

(६) उत्पादकता (Productivity)—सन् १९६०-६४ तक के काल म उत्पादकता की वृद्धि की आर्थिक औसत दर २¾% रही है जिसे योजनाकाल म बढ़ाकर औसतन ३.४% तक प्रति वर्ष बढ़ाने का लक्ष्य है।

(७) व्यक्तिगत व्यय (Personal Spending)—योजनाकाल के अन्तिम वर्ष तक राष्ट्रीय उत्पादन ८ ००० मिलियन की वार्षिक वृद्धि हो जाने का अनुमान है। इस अतिरिक्त उत्पादन म से ५०० मिलियन पौण्ड भुगतान शेष म सुधार करने हेतु उपयोग किया जायगा। कारखानो के सयत्रादि के विस्तार पर १५०० मिलियन डालर का अतिरिक्त उत्पादन उपयोग होगा। इस प्रकार अतिरिक्त उत्पादन ८०० मिलियन पौण्ड म से ६००० मिलियन पौण्ड व्यक्तिगत सरकारी एव स्थानीय सस्थाओ

द्वारा अधिक व्यय के लिए उपयोग होगा। लगभग ४५०० मिलियन पौण्ड व्यक्तिगत अतिरिक्त व्यय के लिए उपयोग होने का अनुमान है। व्यक्तिगत व्यय निम्न प्रकार वृद्धि होने का लक्ष्य है

तालिका सं० ३६—ब्रिटेन की राष्ट्रीय योजना में व्यक्तिगत व्यय

	सन् १९६४ का व्यय	सन् १९७० में अनुमित व्यय (मिलियन पौण्ड)
(१) भोजन	५,५५७	६,०२२
(२) पेय पदार्थ	१,२१७	१,६१५
(३) निवास-गृह	२,२४६	३,१६०
(४) ईंधन एवं प्रकाश	६८८	१,२२४
(५) मोटर आदि	१,२२५	२,४६६
(६) रसायन एवं विद्युत की वस्तुएं	५१५	६३०
(७) वस्त्र	१,६१६	२,[illegible]९६
(८) संचार	१७६	२८१
(९) मनोरंजन एवं अन्य सेवाएं	८ [illegible]	३,०२६
(१०) विदेशों में व्यय	३८२	४८४

इस प्रकार कुल व्यक्तिगत व्यय में योजनावधि के अन्त तक २०% की वृद्धि होने का लक्ष्य है।

(८) निवास-गृह—योजना का लक्ष्य सन् १९७० तक प्रति वर्ष ५,००,००० निवास-गृह निर्मित करना है। सन् १९६४ वर्ष में ३,८३,००० निवास-गृहों का निर्माण पूर्ण किया गया था।

(९) स्वास्थ्य एवं समाज-सेवाएं—स्वास्थ्य एवं समाज-सेवाओं पर सन् १९६४-६५ में १,२३८ मिलियन पौण्ड व्यय किये गये जो सन् १९६९-७० में बढ़कर १,७२६ मिलियन पौण्ड हो जायगा। बढ़ती हुई जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए पुराने अस्पतालों का नवीनीकरण तथा नये अस्पतालों की स्थापना की जायगी जिनमें ८० से ९० हजार अतिरिक्त कर्मचारियों की आवश्यकता होगी। योजनावधि में स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या बढ़कर ८,५०,००० होने का अनुमान है। अतिरिक्त शिक्षा की व्यवस्था करने तथा वर्तमान कक्षाओं में छात्र संख्या कम करने के लिए १,९२,००० शिक्षकों को भर्ती किया जायगा। विश्वविद्यालयों एवं कालेजों में अधिक विद्यार्थियों के प्रवेश की व्यवस्था की जायगी।

(१०) औद्योगिक उत्पादन—विभिन्न उद्योगों के वार्षिक उत्पादन-वृद्धि की दर में आगे दी हुई तालिकानुसार वृद्धि करने का लक्ष्य है।

योजना के विवरण से स्पष्ट है कि ब्रिटेन की लेबर सरकार द्वारा देश को आर्थिक संकट से निकालने के लिए तत्परता के साथ कार्यवाही की जा रही है। यदि निजी क्षेत्र ने सरकार के साथ उचित सहयोग किया तो योजना-लक्ष्य प्राप्त करना

तालिका सं० ३७—ब्रिटेन की योजना में औद्योगिक उत्पादन के लक्ष्य

	उत्पादन की वृद्धि की वार्षिक औसत दर	
	१९६० से १९६४	१९६४ से १९७० (लक्ष्य)
(१) निर्माणी (Manufacturing)	३ १	४ ८
(२) खनिज आदि	० ४	—० ९
(३) निर्माण (Construction)	५ ०	८ १
(४) गैस विद्युत एवं जल	८ ६	७ ३
(५) समस्त उद्योग	३ ३	४ ४
(६) कृषि वन एवं मछली पकड़ना	३ ०	३ २
(७) यातायात एवं संचार	२ ९	४ ०
(८) वितरण एवं व्यापार	२ ८	२ ८
(९) बीमा अधिकोषण एवं वित्त	३ ६	४ २
(१०) अन्य सेवाएँ	२ ७	२ ६
(११) समस्त राष्ट्रीय उत्पादन	३ ४	३ ८

कठिन नहीं होगा। योजना की सफलता हेतु सबर सरकार का सहायक रहना भी अनिवार्य है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में आर्थिक नियोजन

जिस प्रकार रूस की अर्थ व्यवस्था को नियोजित अर्थ व्यवस्था का आदर्श रूप समझा जाता है बिल्कुल उसी प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका को पूँजीवाद का आदर्श स्वरूप कहा जा सकता है। संयुक्त राज्य की अर्थ व्यवस्था को अनियोजित अर्थ व्यवस्था कहना किसी प्रकार उचित नहीं है क्योंकि इस अर्थ व्यवस्था में स्वतन्त्र साहस को विशेष स्थान प्राप्त है परन्तु नियोजन के कुछ तत्वों को अवश्य ही संयुक्त राज्य अमेरिका में अपनाया गया है। सन् १९३० में ही अमेरिका की सरकार ने भी इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया था कि राज्य का उत्तरदायित्व है कि वह राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था में स्थिरता तथा विकास का प्रबन्ध करे। इस सिद्धान्त को कार्यरूप देने हेतु राज्य को स्वतन्त्र साहस के लिए आर्थिक नीतियों के विस्तृत सिद्धान्त निर्धारित करना आवश्यक था। इसीलिए प्रेसीडेन्ट रूजवेल्ट ने नवम्बर सन् १९३२ में सत्ता सम्भालने के पश्चात् मन्दी का निवारण करने हेतु New Deal के नाम से कुछ कार्यक्रम निर्धारित किये। New Deal के अन्तर्गत तीन प्रकार के कार्यक्रम निर्धारित किए गये—

(अ) सहायता सम्बन्धी कार्यक्रम (Relief Programmes),

(आ) पुनर्निर्माण सम्बन्धी कार्यक्रम (Recovery Programmes)

(इ) सुधार सम्बन्धी कार्यक्रम (Reform Programmes)।

प्रेसीडेन्ट रूजवेल्ट ने निम्नलिखित कार्यवाहियाँ कीं—

(१) मन्दी के कारण बैंकों के फेल होने को रोकने हेतु अस्थायी रूप से समस्त बैंकों को बन्द रखने के आदेश दिए गये।

(२) स्वर्ण-निर्यातियों पर कठोर नियन्त्रण रखने हेतु प्रतिभूतियों के क्रय एवं विक्रय-सम्बन्धी नियम निर्धारित कर दिए गये।

(३) व्यावहारिक दृष्टिकोण से स्वर्णमान को अस्थायी रूप से त्याग दिया गया और कागजी मुद्रामान को चालू किया। यह कार्यवाही नियन्त्रित मुद्रा-स्फीति को अर्थ-व्यवस्था में स्थान देने के लिए की गयी जिससे मूल्य-स्तर में वृद्धि हो सके।

(४) मई, सन् १९३३ में 'Federal Emergency Relief Administration' की स्थापना की गयी। यह संस्था बेरोजगारों को खाना, वस्त्र तथा रहने के स्थान के रूप में सहायता देती थी। इसके अतिरिक्त सरकारी क्षेत्र में बहुत से काम चालू किए गये जिनमें अस्थायी रूप से रोजगार प्रदान किया जा सके।

(५) कृषि के विकास हेतु सरकार द्वारा पर्याप्त ऋण तथा आर्थिक सहायता प्रदान करने का आयोजन किया गया और कृषि में उपयोग आने वाली भूमि में होने वाली कमी पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

(६) National Industrial Recovery Act पास किया गया जिससे सरकारी औद्योगिक कार्यक्रमों का विस्तार किया जा सके तथा निजी उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जा सके। उद्योगों का विकास करके १२ मिलियन लोगों को रोजगार के अवसर प्रदान करना था।

(७) Social Security Act, १९३५ के अन्तर्गत फेडरल सरकार वृद्ध लोगों की सहायतार्थ आर्थिक सहायता देती थी। वृद्धि एवं अवकाश-प्राप्त श्रमिकों में वार्षिक वृद्धि की योजना भी संचालित की गयी तथा बेरोजगारी में बीमा का भी आयोजन किया गया।

इन समस्त कार्यवाहियों के फलस्वरूप अर्थ-व्यवस्था में पर्याप्त सुधार हुए, परन्तु सन् १९३७ में एक बार फिर मन्दी का वातावरण उत्पन्न हुआ। इस मन्दी का सामना करने हेतु New Deal की संस्थाओं को फिर कार्यशील बनाया गया। इसी समय द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया जिससे वस्तुओं और सेवाओं की माँग में वृद्धि होने से मूल्य बढ़ने प्रारम्भ हो गये। द्वितीय महायुद्ध में विजय प्राप्त करने हेतु अमरीकी शासन ने जो नियोजित कार्यवाहियाँ कीं, उनके मुख्य उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

(१) १३ जनवरी सन् १९४२ को एक युद्ध उत्पादन बोर्ड (War Production Board) की स्थापना की गयी जिसे सैनिक एवं असैनिक उत्पादन-सम्बन्धी समस्त अधिकार दिए गये। बाद में यह संस्था अत्यन्त शक्तिशाली हो गयी और उत्पादन की प्राथमिकताओं के साथ उत्पादन के विभिन्न दुर्लभ (Scarce) साधनों एवं घटकों के बँटवारे का निश्चय करने लगी।

(२) उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्य नियन्त्रण करने हेतु मूल्य प्रशासन के कार्यालय (Office of the Price Administration) की स्थापना की गयी। इसको उपभोक्ता-वस्तुओं के क्रय को नियन्त्रित करने का भी अधिकार था।

(३) राष्ट्रीय युद्ध श्रम बोर्ड की स्थापना की गयी। इस बोर्ड को युद्धकाल में श्रमिकों एवं प्रबन्धकों के झगड़ों में पंच फ़ैसला (Arbitrate) करने का भी अधिकार था।

(४) विदेशों से युद्ध सामग्री प्राप्त करने तथा शत्रु देशों को युद्ध सामग्री न भेजने के लिए आर्थिक कल्याण परिषद् (Board of Economic Welfare) की स्थापना की गयी।

युद्धकालीन इस व्यवस्था से यह स्पष्ट है कि अमरीकी अर्थव्यवस्था ने नियोजित अर्थ व्यवस्था का रूप ग्रहण कर लिया। युद्धोपरान्त भी अमरीकी प्रशासन ने नियोजित व्यवस्था को जारी रखा। युद्धोपरान्त बेरोजगार तथा मुद्रा स्फीति दोनों समस्याओं की समान सम्भावना थी। युद्ध समाप्त होने पर मुद्रा स्फीति का दबाव बढ़ने लगा और मूल्य प्रशासन कार्यालय ने उपभोक्ता वस्तुओं के नियमन के लिए कार्यवाहियाँ कीं।

सन् १९४६ का रोजगार एक्ट (Employment Act 1946)—इस एक्ट को आर्थिक नियोजन का एक स्वरूप बताया जाता है। रोजगार एक्ट के अन्तर्गत फेडरल सरकार का उत्तरदायित्व था कि अधिकारी रोजगार, उत्पादन तथा क्रय शक्ति का आयोजन करे। एक्ट में एक विशेष वैधानिक अधिकारी नियुक्त करने का आयोजन था। प्रसीडेण्ट को एक आर्थिक सलाहकारों की काउंसिल (Council of Economic Advisors) जिसमें तीन आर्थिक विशेषज्ञ हों को नियुक्त करने का अधिकार था। प्रसीडेण्ट इस काउंसिल की सहायता से प्रत्येक वर्ष जनवरी में अथवा जितनी बार प्रसीडेण्ट चाहे वर्तमान आर्थिक स्थिति को दर्शाने वाली एक आर्थिक रिपोर्ट अमरीकी काँग्रेस के सम्मुख प्रस्तुत करे और अर्थ व्यवस्था में सुधार करने हेतु आवश्यक सिफारिशें करे। अमरीकी काँग्रेस की दोनों सभाएं (Houses) एक Standing Joint Committee नियुक्त करते थे जो प्रसीडेण्ट द्वारा प्रस्तुत आर्थिक रिपोर्ट एवं सिफारिशों का अध्ययन कर अपने विचार अमरीकी काँग्रेस के सम्मुख प्रस्तुत करती थी। तत्पश्चात् अमरीकी काँग्रेस अपने निश्चय घोषित कर सकती थी और उस सम्बन्ध में विधान बना सकती थी। प्रसीडेण्ट की Council of Economic Advisors को अपनी आर्थिक रिपोर्ट तैयार करने हेतु उद्योग, कृषि, श्रम, राज्य एवं स्थानीय सरकारों तथा अन्य संस्थाओं एवं व्यक्तियों से विचार विनिमय करने का अधिकार था। एक्ट के अनुसार प्रसीडेण्ट की आर्थिक रिपोर्ट में आर्थिक कार्यक्रमों का विवरण जिसमें रोजगार, उत्पादन एवं क्रय शक्ति के लक्ष्य तथा एक्ट में निर्धारित नीति को कार्यान्वित करने हेतु कार्यक्रम देना आवश्यक था। सन् १९४६ का रोजगार एक्ट अब एक शक्तिशाली संस्था बन गया है जिसके द्वारा अमरीकी अर्थ व्यवस्था में स्थिरता लाना सम्भव हो सका है। इसके द्वारा अमरीकी अर्थ व्यवस्था के प्रमुख दोष मन्दी एवं तेजी (Recession and Booms) को दूर करना सम्भव हो सका है।

इण्डोनेशिया में आर्थिक नियोजन

इण्डोनेशिया देश ३००० Islands से मिलकर बना है जो ४००० मील के क्षेत्र में फैले हुए हैं। यह एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ चावल, रबर, शक्कर, नारियल तथा खनिज तेल का बहुत उत्पादन होता है। चावल के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं का अधिकतर निर्यात कर दिया जाता है। निर्माण-सम्बन्धी बड़े उद्योग अपेक्षाकृत कम हैं और दस्तकारी उद्योगों का इण्डोनेशिया की अर्थव्यवस्था में अधिक महत्व है।

इण्डोनेशिया की पंचवर्षीय योजना—सन् १९५५ तक इण्डोनेशिया में आर्थिक विकास के लिए कोई समन्वित योजना नहीं कार्यान्वित की गयी। सन् १९५५ से पूर्व इण्डोनेशिया सरकार ने आर्थिक विकास हेतु कभी कभी परियोजनाएँ (Projects) एवं विकास-कार्यक्रमों को पृथक् पृथक् रूप से संचालित किया। सन् १९५५ में के अन्त में *राजकीय नियोजन ब्यूरो (State Planning Bureau)* द्वारा एक पंचवर्षीय योजना बनायी गयी जिसका कार्यकाल सन् १९५६ से सन् १९६० तक निर्धारित किया गया। इसका पूर्णरूपेण कार्यान्वित करने के लिए सरकार ने इसे विधान के रूप में घोषित किया। योजना के कार्यक्रमों का सरकार द्वारा कार्यान्वित करना था। सरकार की आर्थिक नीति थी कि उत्पादन के साधनों को यथासम्भव पूँजीपतियों के हाथ में रहने दिया जाए।

योजना के अन्तर्गत सरकार को १२.५ बिलियन रुपिहा (Rupiahs) सरकारी व्यवसायों एवं परियोजनाओं के विकास एवं विस्तार हेतु तथा निजी क्षेत्र में पूँजी एवं श्रम के विनियोजन को प्रोत्साहित करने हेतु व्यय करना था। इसके अतिरिक्त योजना-काल में निजी साहसियों को १० बिलियन रुपिहा की पूँजी सम्पूर्ण प्राप्त करने का अधिकार था। साथ ही ग्रामीण समुदाय को पारस्परिक सहायता से योजना-काल में ७.५ बिलियन रुपिहा का विनियोजन करने का लक्ष्य था। इन सब विनियोजनों द्वारा राष्ट्रीय प्रति व्यक्ति आय एवं उत्पादन में वृद्धि करनी थी।

योजना में सिंचाई एवं शक्ति की परियोजनाओं को अधिक प्राथमिकता दी गयी और दूसरा स्थान उद्योग एवं खनिज को दिया गया। इनमें से प्रत्येक मद पर सरकार द्वारा ३.५५ मिलियन रुपिहा विनियोजन करना था। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि सरकारी विनियोजन की समस्त राशि अर्थात् १२.५०० मिलियन रुपिहा का ५०% भाग शक्ति एवं सिंचाई तथा उद्योग एवं खनिज पर विनियोजित होना था। इन दो मदों को अधिक प्राथमिकता देने का कारण यह था कि इण्डोनेशी अर्थव्यवस्था इन दो क्षेत्रों में अत्यन्त पिछड़ी हुई थी। सिंचाई एवं शक्ति के साधनों में वृद्धि करने हेतु बहुत सी बहुउद्देशीय परियोजनाओं को इस योजना में सम्मिलित किया गया। सिंचाई के साधनों को इतना बढ़ाने का लक्ष्य था कि चावल का उत्पादन ७,१२६,३२६ टन (सन् १९५५) से बढ़कर सन् १९६० में ८२ लाख टन हो जाय। शक्ति के साधनों का बढ़ाने का लक्ष्य ८८० KW घण्टे (सन् १९५५ में) से बढ़कर

१ ३००० मिलियन KW घण्टे हो जाय। औद्योगिक कार्यक्रमों को इस प्रकार निर्धारित किया गया कि वर्तमान उद्योगों का विकास करने के लिए विदेशी मुद्रा की बचत हो सके तथा लोहा इस्पात रसायन आदि के उद्योग को सरकारी क्षेत्र में स्थापित किया जा सके। सरकारी क्षेत्र में सुमात्रा का आशान कम्पलक्स (Ashan Complex) संयुक्त लोहा इस्पात परियोजना (Joint Iron and Steel Projects), रसायन एवं खाद परियोजना तथा रेयन (Rayon) उद्योग की स्थापना की जानी थी। सरकारी क्षेत्र के कारखानों में ?.३ मिलियन रुपिहा का विनियोजन किया जाना था। आशान कम्पलक्स में शक्ति उत्पादन करने का एक प्लान्ट, ऐल्यूमिनियम का कारखाना, सुपर फास्फेट खाद का कारखाना, सीमेंट का कारखाना, इन कारखानों से सम्बन्धित यातायात तथा हारबर (Harbour) की सुविधाएँ तथा एक सुरंग एवं कागज का कारखाना भी सम्मिलित थे। खाद एवं रसायन परियोजना में कास्टिक सोडा, असेनिक एसिड गंधक का तेजाब अमोनिया यूरिया (Urea) खाद तथा सुपर फास्फेट के कारखाने भी सम्मिलित थे। रेयन उद्योग के विस्तार हेतु पालेम्बांग (दक्षिणी सुमात्रा) में ७०० मिलियन रुपिहा की लागत से एक रेयन के कारखाने की स्थापना करनी थी।

खनिज के क्षेत्र में ७८७ मिलियन रुपिहा का आयोजन वर्तमान राष्ट्रीय खनिज व्यवसायों में सुधार करने के लिए किया गया। देश के अन्य क्षेत्रों में उपस्थित खनिज के सम्बन्ध में अधिक सूचना एकत्रित करने का आयोजन किया गया। तत्कालीन तेल, कोयला, टिन, बॉक्साइट आदि खनिज उद्योगों के विकास का भी प्रबन्ध खनिज कार्यक्रमों में लिया गया।

योजना के विभिन्न कार्यक्रमों के संचालन के लिए अर्थ का प्रबन्ध मुख्य रूप से आन्तरिक साधनों से किया जाना था। सरकार का यह विश्वास था कि योजना के लिए आवश्यक वित्त देश के साधनों से प्राप्त हो सकेगा और विदेशी सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इण्डोनेशिया के नियोजन ब्यूरो ने चार पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा सन् १९७५ तक राष्ट्रीय आय में ६५% तथा प्रति व्यक्ति आय में ४०% वृद्धि करने का अनुमान लगाया। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्त तक राष्ट्रीय आय में १५% तथा प्रति व्यक्ति आय में ८% वृद्धि होने का लक्ष्य रखा गया।

योजना के प्रथम चार वर्षों में राष्ट्रीय आय में लगभग ९% की वृद्धि और प्रति व्यक्ति आय में लगभग २०% की कमी हुई। सरकारी विभागों में पर्याप्त समन्वय न होने के कारण इण्डोनेशिया की प्रथम योजना के अधिकतर लक्ष्यों की पूर्ति न हो सकी। युद्ध व्यवसायों में आवश्यकता से अधिक विनियोजन किया गया जबकि युद्ध के लिए आवश्यक धन नहीं प्राप्त हो सका। स्टेट प्लानिंग ब्यूरो (State Planning Bureau) एवं अन्य सरकारी विभागों के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट रूप से निर्धारित न करने के कारण योजना सफल नहीं हुई। इस ब्यूरो के निश्चय मानने को

अन्य सरकारी मन्त्रालय बाध्य नहीं थे। प्लानिंग बोर्ड, जिसके सम्मुख ब्यूरो को योजना की प्रगति का विवरण रखना था, की सभा बुलायी ही नहीं गयी।

इन समस्त परिस्थितियों के फलस्वरूप इन्डोनेशिया की वर्तमान सरकार ने सन् १९५९ के मध्य में निश्चय किया कि 'निर्देशित अर्थ-व्यवस्था' (Guided Economy) का सचालन किया जाय और एक राष्ट्रीय योजना-परिषद् (National Planning Council) की स्थापना की गयी। इस परिषद् ने एक नयी आठवर्षीय (१९६१-६८) योजना का निर्माण किया। इस योजना की सफलता विभिन्न परियोजनाओं के समन्वय तथा कुशल व्यय प्रशासन पर निर्भर रहेगी।

सीलोन में आर्थिक नियोजन

सीलोन चाय, रबर एवं नारियल के निर्यात के लिए प्रसिद्ध है परन्तु इस देश की बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण इसे खाद्यान्नों का आयात करना पड़ता है। खाद्यान्नों का आयात देश के आर्थिक विकास में बाधक बन गया है क्योंकि विदेशी मुद्रा का अधिकांश भाग विकास-सामग्री के स्थान पर खाद्यान्नों के आयात पर व्यय हो जाता है। सीलोन ने पिछले १२ वर्षों में अपनी दो-छह वर्षीय योजनाओं से देश के आर्थिक साधनों में वृद्धि करने का प्रयास किया है।

प्रथम छह वर्षीय योजना (सन् १९४७-४८ से १९५२-५३)—इस योजना में १,२४६ मिलियन रुपया व्यय किया गया जो निम्न प्रकार है—

तालिका नं० ३८—सीलोन की प्रथम योजना का व्यय

मद	व्यय (मिलियन रुपया)	जोड़ का प्रतिशत
(१) यातायात एवं सचार	३०२·८	२४·२
(२) ईंधन एवं शक्ति	७८·२	६·०
(३) सामाजिक पूँजी	२५१·५	२०·२
(४) कृषि, मछली उद्योग तथा वन	५१८·८	४१·६
(५) उद्योग	६५·८	५·३
(६) अन्य	३४·१	२·७
	१,२४६·४	१००%

इस प्रकार लगभग ५०% आधारभूत सेवाओं जैसे यातायात एवं सचार, ईंधन एवं शक्ति, शिक्षा, स्वास्थ्य, निवास-गृह आदि पर व्यय हुआ। ४१·६% कृषि एवं मछली-पालन तथा वन-सम्पत्ति आदि उद्योगों के विकास पर व्यय हुआ।

इस योजना के अन्तर्गत ४०,००० हेक्टर (Hectors) भूमि का सुधार धान की खेती के लिए किया गया जो योजना के लक्ष्य से १२,००० हेक्टर कम थी। कोरिया के युद्ध के कारण देश से अधिक निर्यात किया गया और निर्यात करने से सरकार को आय प्राप्त हुई, इसीलिए योजना का दो तिहाई विकास-व्यय सरकार की चालू आय से ही किया गया। प्रथम योजना में प्रति व्यक्ति आय सन् १९४८ के मूल्यों के

आधार पर १३१ रुपये (सन् १६४८ म) म बन्कर मन १६५१ म १६४ रुपय हो गया, परन्तु मन १६५३ म यह आय घटकर १४८ रुपये हो गयी।

द्वितीय छहवर्षीय योजना (मन् १६५४ ५५ से सन् १६५६ ६०)—द्वितीय याजना कालम्बो योजना तथा अन्तर्राष्ट्रीय निर्माण एव विकास बक के विकास-काय क्रमा स समन्वित की हुई था। इस याजना का व्यय २५२६ मिलियन रुपया निर्धारित किया गया जिसका वितरण निम्न प्रकार किया गया—

तालिका स० ३६—सीलान की द्वितीय याजना का व्यय

मद	व्यय (मिलियन रुपया)	याग म प्रतिशत
(१) यातायात एव सचार	८५० ०	३३ १
(२) सामाजिक पूँजी	४०२ ७	१५ ६
(३) कृषि मछली उद्याग तथा वन	६७७ ६	६ ८
(४) ग्रामीण विकास	८७ ६	३ ३
(५) उद्योग	१११ ८	४ ४
(६) अय	८६ ५	४०
(७) रक्षा (Defence)	६४ ६	३ ८
	२ ५२८ ८	१००%

याजना क समस्त व्यय का राशि म स लगभग आधा भाग नवीन परियोजनाओं पर व्यय हाना था तथा शेष तत्कालीन चालू याजनाओं को पूरा करन हतु रखा गया था। याजना का उद्देश्य उत्पादनशीलता म द्रुत गति से वृद्धि करना था। यह वृद्धि की गति जनसख्या की वृद्धि का गति मे अधिक होनी थी। आधारभूत आर्थिक सेवाओं म पर्याप्त वृद्धि का आयाजन किया गया तथा इसस कुछ नवीन याजनाओं को चालू करना था। कृषि क क्षेत्र म सबसे अधिक प्राथमिकता धान उत्पादन हेतु सिंचाई तथा पुनर्वास को दी गयी। ग्राम विस्तार याजनाओं द्वारा १ ४० ००० परिवारों को नवीन सिंचित भूमि पर पुनर्वासित करन का आयोजन था। ४८ ००० हेक्टर भूमि को सिंचित करन का भी आयोजन था। रबर एव नारियल की पुन पौध (Replanting) लगाने का भी अधिक प्राथमिकता दी गयी थी।

सरकार की नीति क अनुसार उद्योगों का विकास निजी क्षेत्र म होना था, इसलिए योजना म औद्योगिक विकास हेतु कम राशि निर्धारित की गयी। याजना म ३५ मिलियन रुपया सरकार के निजी उद्योगों म Participation करने हतु आयोजित किया गया।

योजना का अर्थ-व्यवस्था के सम्बन्ध म कोई निश्चित कार्यक्रम निर्धारित नहीं किये गये। विकास व्यय का आयोजन प्रत्येक वर्ष की परिवर्तित आर्थिक स्थिति क अनुसार बजट म किया जाना था। सीलोन की सरकारी आय का अधिकांश भाग निर्यात कर से प्राप्त हाता है और निर्यात कर का प्राप्ति मूल्यों म परिवर्तन करने के

कारण सदैव अनिश्चित होती है। यद्यपि सीलोन ने विदेशों से तान्त्रिक एवं वित्तीय सहायता प्राप्त की, परन्तु योजना के संचालन हेतु सीलोन सरकार अपने ही साधनों पर अधिक निर्भर थी।

बर्मा में आर्थिक नियोजन

बर्मा में प्राकृतिक साधनों की बहुतायत है। वन एवं खनिज सम्पत्ति तथा जल विद्युत शक्ति के साधन बड़ी मात्रा में मौजूद हैं जिनका अभी तक शोषण नहीं किया गया है। द्वितीय महायुद्ध में जापान द्वारा आक्रमण के कारण बर्मा की अर्थ-व्यवस्था को अत्यधिक क्षति पहुँची। द्वितीय महायुद्ध के बाद बर्मा पर फिर ब्रिटेन ने अधिकार कर लिया और राजनीतिक संघर्ष प्रारम्भ हो गया। भारत के साथ बर्मा को भी स्वतन्त्रता प्राप्त हुई और महायुद्ध एवं आन्तरिक अशान्ति के कारण हुए आर्थिक विध्वंस को पुनर्निर्माण हेतु विकास कार्यक्रमों का कार्यान्वित किया गया।

आठवर्षीय विकास-योजना—परन्तु उत्पादन को युद्ध के पूर्व के स्तर पर लाने हेतु बर्मा सरकार के आर्थिक एवं तान्त्रिक सलाहकारों ने आठवर्षीय आर्थिक विकास-कार्यक्रम बनाया। बर्मा के राजनीतिक नेता रूस की नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत हुए आर्थिक विकास से बहुत प्रभावित हुए और बर्मा के सन् १९४८ के संविधान में पूर्णरूपेण नियोजित अर्थ-व्यवस्था का आयोजन किया गया। आठवर्षीय विकास-योजना अक्टूबर, सन् १९५१ में प्रारम्भ होनी थी परन्तु योजना को कार्यान्वित करने हेतु पर्याप्त तैयारियाँ न होने के कारण योजना का प्रारम्भ एक वर्ष बाद अक्टूबर, सन् १९५२ में हो सका। इस योजना के अन्तर्गत राष्ट्रीय सकल उत्पादन, जो सन् १९५१-५२ में, ३,६०० मिलियन क्यात (Kyat) था को बढ़ाकर सन् १९५९-६० तक ७,००० मिलियन क्यात् करने का लक्ष्य था। प्रति व्यक्ति आय सन् १९५१-५२ के स्तर २०१ क्यात् से बढ़कर सन् १९५९-६० तक ३०८ क्यात् (सन् १९५१-५२ के मूल्यों पर) होने का अनुमान था, अर्थात् प्रति व्यक्ति आय में योजनाकाल में ६०% की वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया। इसी प्रकार प्रति व्यक्ति उपभोग भी १८६ क्यात से बढ़कर २८४ क्यात् होने का अनुमान था, अर्थात् ५४% की वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया था।

योजना में ७,५०० मिलियन क्यात् का विनियोजन आठ वर्षों में किया जाना था। इस राशि में ३,४७० मिलियन क्यात् निजी साहस तथा ४,०३० मिलियन क्यात् सरकार द्वारा विनियोजन किया जाना था। योजना की विदेशी आवश्यकताओं का अनुमान ७,५०० मिलियन क्यात् था। ७,५०० मिलियन क्यात् के विनियोजन में से ५,५०० मिलियन क्यात् उत्पादक पूँजी, २,००० मिलियन क्यात् सामाजिक पूँजी (अर्थात् निवास गृह, स्कूल चिकित्सा की सुविधाएँ आदि) के लिए निर्धारित किया गया था। योजना का निर्माण करते समय दो मान्यताओं को आधार बनाया गया था। प्रथम थी चावल का मूल्य योजनाकाल में ४५ पौण्ड प्रति टन से कम नहीं होगा और

बर्मा चावल का निर्यात कर योजना के लिए पर्याप्त विदेशी मुद्रा उपार्जित कर सकेगा, परन्तु चावल के मूल्य में गिरावट हो गयी और योजना के कार्यक्रमों के लिए विदेशी मुद्रा की कमी पड़ी। विदेशी मुद्रा की कमी की पूर्ति करने हेतु बर्मा को भारत तथा अन्तर्राष्ट्रीय बैंक से ऋण प्राप्त करने पड़े। योजना की दूसरी मान्यता यह थी कि बर्मा सरकार विद्रोहियों के अधिकार में रहने वाले क्षेत्रों पर अधिकार प्राप्त कर सकेगी और विद्रोहियों को सन्तुष्ट कर सकेगी परन्तु योजनाकाल में विद्रोहियों की गतिविधि और तीव्र हो गयी और बर्मा सरकार को अपनी आगम आय का लगभग ४०% रक्षा पर व्यय करना पड़ा। रक्षा व्यय बढ़ने के कारण विकास व्यय को कम करना आवश्यक हो गया। योजना में सन् १९५९-६० तक धान उगाये जाने वाले क्षेत्र में युद्ध के पूर्व की तुलना में ४% की वृद्धि करनी थी परन्तु विद्रोहियों के अधिकार में बड़ा क्षेत्र रहने के कारण इस लक्ष्य की पूर्ति करना सम्भव नहीं हो सका है। इसके अतिरिक्त तान्त्रिक विशेषज्ञों की कमी के कारण सिंचाई की सुविधाओं में भी पर्याप्त वृद्धि नहीं की जा सकी।

उद्योगों के क्षेत्र में योजना में निम्न उद्देश्य निर्धारित किये गये थे—

(१) बढ़ती हुई जनसंख्या को अधिक से अधिक रोजगार के अवसर उत्पन्न किये जाय।

(२) औद्योगिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए विदेशों पर निर्भर न रहा जाय।

(३) बर्मा की राष्ट्रीय सुरक्षा को सुदृढ़ बनाया जाय। औद्योगिक कार्यक्रमों में आधारभूत उद्योगों को सर्वाधिक प्राथमिकता दी गयी। इसके पश्चात् उन उद्योगों को स्थान दिया गया जो इन आधारभूत उद्योगों की निर्मित वस्तुओं का उपयोग करते हों। सन् १९५३ की विदेशी मुद्रा की कठिनाइयों के कारण इन साधनों में विकास-कार्यक्रमों में काट छाँट की गयी। दूसरी ओर प्रशिक्षित कर्मचारियों की कमी के कारण औद्योगिक क्षेत्र में लक्ष्य के अनुसार विकास नहीं किया जा सका और बर्मा की सरकार को औद्योगिक नवीन इकाइयों को निजी क्षेत्र में स्थापित करने की अनुमति देनी पड़ी। सन् १९५५ में रूसी नेताओं से औद्योगिक विकास हेतु आर्थिक सहायता का आश्वासन मिलने पर औद्योगिक कार्यक्रमों में कुछ वृद्धि भी की गयी फिर भी औद्योगिक विकास की गति लक्ष्य के अनुसार न रह सकी और आधारभूत उद्योग जैसे लोहा एवं इस्पात आदि की स्थापना भी सुदृढ़ न हो सकी। यातायात एवं संचार के लिए १७५ मिलियन क्याट् का आयोजन किया गया था। इस राशि में से आधा भाग सड़क यातायात तथा शेष आन्तरिक जल यातायात के विकास के लिए निर्धारित किया गया था। रेल-यातायात के क्षेत्र में लगभग १०० रेलवे स्टेशनों को फिर चालू करने तथा रोलिंग स्टाक के संग्रह का प्रबन्ध किया गया था परन्तु विद्रोहियों की कार्यवाहियों के कारण इस क्षेत्र में लक्ष्य के अनुसार विकास नहीं हो सका।

आठवर्षीय योजना की प्रगति—योजना का वास्तविक क्रियान्वन-काल सन् १९५३-५४ से सन् १९५८-५९ रहा और इस काल में सकल पूँजी निर्माण सकल आन्तरिक उत्पादन (GDP) का १८.९% हुआ जबकि लक्ष्य २१.२% रखा गया था। शुद्ध स्थायी पूँजी निर्माण इस काल में १२.१% (GDP का) हुआ जबकि लक्ष्य १५.१% था। पूँजी निर्माण के स्तर में कमी रहने तथा पूँजी-उत्पाद में वृद्धि होने के कारण सकल राष्ट्रीय उत्पादन सन् १९५९-६० में केवल युद्ध के पूर्व के स्तर तक ही पहुँच पाया। सकल राष्ट्रीय उत्पादन एवं प्रति-व्यक्ति उत्पादन में योजना के लक्ष्य की तुलना में क्रमशः १६% तथा २०% की कमी रहीं। इसी प्रकार प्रति व्यक्ति उपभोग भी लक्ष्य से १८% कम रहा। इन सबका कारण जनसंख्या की वृद्धि एवं विदेशी सहायता की पर्याप्त उपलब्धि न होना था।

लक्ष्यों की पूर्ति में कमी रहने का प्रमुख कारण चावल के उत्पादन में अधिक अभिलाषी अनुमान तथा इसके निर्यात से उपलब्ध होने वाले विदेशी विनिमय का अधिक अनुमान लगाना था। योजना का निर्माण करते समय चावल के निर्यात में मूल्य का अधिक अनुमान लगाया गया था जबकि चावल का वास्तविक निर्यात मूल्य सन् १९५२-५३ से सन् १९५८-५९ काल में आधा रह गया। योजना में मूल्य में धीरे-धीरे योजनाकाल में केवल १४% की कमी का अनुमान लगाया गया था। संसार के बाजारों में चावल के मूल्य कम होने के कारण बर्मा के विदेशी विनिमय के अर्जन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा और विदेशी विनिमय संचय जनवरी सन् १९५३ में १०२९ मिलियन क्यात से सन् १९५५ फरवरी, में घटकर ६२८ मिलियन क्यात रह गया। ऐसी परिस्थिति में बर्मा की सरकार ने विदेशी विनिमय के व्यवहारों पर कठोर नियन्त्रण किया और आयात के लिए जारी किये लाइसेंसों की राशि को आधा कर दिया गया। मार्च, सन् १९५५ में यह निश्चय कर लिया गया कि केवल उन्हीं परियोजनाओं को क्रियान्वित किया जाय जिन पर कार्य प्रारम्भ हो गया था और शेष परियोजनाओं को स्थगित कर दिया गया।

प्रथम चारवर्षीय योजना—आठ वर्षीय योजना में सन् १९५६-५७ से सन् १९५९-६० काल के सम्बन्ध में मूलभूत परिवर्तन किया गया है और इन चार वर्षों के लिए सरकारी विनियोजन का कार्यक्रम बनाया गया जिसका नाम प्रथम चार वर्षीय योजना दिया गया। इस योजना में उन कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी गयी जिनसे भुगतान शेष की स्थिति में सुधार हो सके, पूँजी उत्पाद कम किया जा सके तथा उपरिव्यय सुविधाओं एवं मितव्ययताओं (External Economics) की बड़े पैमाने पर व्यवस्था की जा सके।

योजना में १५५६ मिलियन क्यात के अर्थसाधन की उपलब्धि का अनुमान लगाया गया था जबकि वास्तविक उपलब्धि २०२१ मिलियन क्यात हुई जिसमें ६०७ मिलियन क्यात की विदेशी सहायता सम्मिलित थी। योजना में २५११ मिलियन

क्यात् की पूंजी व्यय करने की व्यवस्था की गयी थी जबकि वास्तविक पूंजीगत व्यय १९९४ मिलियन क्यात किया गया।

योजना के कृषि उत्पादन के क्षेत्र के लक्ष्यों की पूर्ति नहीं की जा सकी। तम्बाकू के उत्पादन में लक्ष्यों से अधिक वृद्धि हुई। खनिज क्षेत्र के लक्ष्यों में कुछ की पूर्ति की जा सकी। विदेशी विनिमय के संचय में योजनाकाल में केवल २१ मिलियन क्यात की वृद्धि हुई जबकि योजना का लक्ष्य १७२ मिलियन क्यात की पूर्ति करना था।

द्वितीय चारवर्षीय योजना (सन् १९६१-६२ से सन् १९६४-६५)—इस योजना के संचालन की स्वीकृति बर्मा सरकार द्वारा अगस्त सन् १९६१ में की गयी। इसके मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार थे—

(अ) प्रति व्यक्ति उत्पादन अथवा आय में ३.६% की वृद्धि

(आ) अल्प विकसित क्षेत्रों की प्रगति की दर में वृद्धि करना

(इ) प्रमुख कृषि उत्पादों, जैसे तिलहन, गन्ना, कपास एवं गेहूं में आत्म निर्भरता प्राप्त करना

(ई) चावल, बीन, दालें तथा वर्जीनिया तम्बाकू आदि का अधिक निर्यात करना

(उ) चुने हुए आयात किए जाने वाले औद्योगिक उत्पादों में आत्म निर्भरता प्राप्त करना

(ऊ) अर्थ व्यवस्था में निजी क्षेत्र को सुदृढ़ बनाना

(ए) अर्थ व्यवस्था एवं उपरिव्यय सुविधाओं (यातायात, संचार आदि) को सुदृढ़ करना।

इस योजना में सरकारी क्षेत्र में विनियोजन तालिका सं० ४० के अनुसार किया गया।

इस तालिका से ज्ञात होता है कि प्रथम एवं द्वितीय दोनों ही योजनाओं में यातायात एवं संचार के विकास में सर्वाधिक राशि आवण्टित की गयी था। द्वितीय योजना में समाज सेवाओं एवं निर्माण क्रियाओं के विस्तार को अधिक महत्व प्रदान किया गया। प्रथम योजना की तुलना में द्वितीय योजना की उद्योग एवं कृषि दोनों की विनियोजन राशि में पर्याप्त वृद्धि की गयी। दूसरी ओर शक्ति पर विनियोजन होने वाली राशि में कमी कर दी गयी। इसका प्रमुख कारण बलूचुआग जलविद्युत परियोजना का प्रथम योजना में सम्पूर्ण हो जाना था। यातायात के क्षेत्र में बड़े बड़े सड़क मार्गों के निर्माण, रेलों के आधुनिकीकरण तथा आन्तरिक जल यातायात का आयोजन किया गया। उद्योगों के क्षेत्र में सामरिक महत्व के औद्योगिक उत्पादनों में आत्म निर्भरता प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया था।

उत्पादन लक्ष्य—योजना के कार्यक्रमों के विनियोजनों के फलस्वरूप सन् १९६५-६६ के लिए विभिन्न उद्योगों के लिए उत्पादन लक्ष्य निर्धारित किए गए। यह

तालिका स० ४०—बर्मा की प्रथम एवं द्वितीय योजनाओं में सरकारी क्षेत्र के विनियोजन का आवंटन

मद	प्रथम चारवर्षीय योजना १९५२-५३ से १९५५-५६		द्वितीय चारवर्षीय योजना १९६१-६२ से १९६४-६५	
	विनियोजन की राशि (मिलियन क्यात्)	कुल विनियोजन से प्रतिशत	विनियोजन की राशि (मिलियन क्यात्)	कुल विनियोजन से प्रतिशत
कृषि एवं सिंचाई	२११.८	१०.९	३१६.७	१२.०
वन	२८.७	१.३	६७.८	२.६
खनिज	८.६	०.४	३८.७	१.५
उद्योग	१८७.९	९.७	२७९.८	१०.६
शक्ति	२०२.१	१०.५	२०२.८	७.८
यातायात एवं संचार	४९६.५	२५.७	७७२.४	२९.४
समाज सेवाएँ	१९५.६	१०.१	४९७.२	१८.९
कानून एवं प्रशासन	३८७.५	२०.०	३०२.०	११.५
अन्य	१२२.६	६.३	१४९.६	५.७
	१९२८.३	१००.०	२६२८.९	१००.०

लक्ष्य इस बात पर आधारित थे कि योजनाकाल में सरकारी क्षेत्र के विनियोजन के अतिरिक्त लगभग ४४० करोड़ रुपये का विनियोजन प्रति वर्ष निजी विनियोजन में भी होगा। खाद्य-पदार्थों का उत्पादन ४८०.९ मिलियन क्यात, तम्बाकू १३१.५ मिलियन क्यात्, वस्त्र ७०२.३ मिलियन क्यात्, रसायन-पदार्थ ३८३.० मिलियन क्यात्, खनिज तेल २४९ मिलियन क्यात, आधारभूत धातु १.३ मिलियन क्यात्, धातुओं की निर्मित वस्तुएँ १११.९ मिलियन क्यात, यातायात प्रसाधन ५५.५ मिलियन क्यात, लकड़ी और बांस की बनी वस्तुएँ १००.९ मिलियन क्यात् मूल्य का उत्पादन-लक्ष्य रखा गया था।

व्यय-साधन—योजना के अन्तर्गत विभिन्न साधनों से व्यय-साधन तालिका सं० ४१ के अनुसार प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया।

सरकारी क्षेत्र की कुल विनियोजन की आयोजित राशि में २६२८.६ मिलियन क्यात् की तुलना में व्यय साधनों की उपलब्धि का अनुमान केवल १८४६ मिलियन क्यात था अर्थात साधनों की उपलब्धि में ७८२ मिलियन क्यात् की कमी थी।

बर्मा की द्वितीय योजना का सम्पूर्ण क्रियान्वयन नहीं किया जा सका। सन १९६१-६२ में ६०० मिलियन क्यात् का विनियोजन सरकारी एवं निजी क्षेत्र में हुआ जबकि लक्ष्य १००५ मिलियन क्यात् था। सन १९६२ में यू नू की सरकार का पतन हो जाने एवं ने विन की सैनिक सरकार सत्तारूढ़ होने पर योजना के बहुत से कार्यक्रमों को स्थगित कर दिया गया।

तालिका सं० ४१—बर्मा की द्वितीय योजना के अर्थ-साधनों का अनुमान

(मिलियन क्यात)

१	मन्त्रालयों एवं विभागों से चालू अतिरेक	—५
२	परिषदों एवं निगमों से चालू अतिरेक	६६८
३	परिषदों एवं निगमों की पूंजीगत प्राप्तियाँ	४०
४	अन्य आन्तरिक प्राप्तियां	३२८
५	विदेशी ऋण एवं अन्य प्राप्तियाँ	
	चीन से	१७६
	ICA	१८७
	IBRD	६६
	क्षति-पूर्ति (Reparations)	३८०
६	विदेशी ऋणों का सेवा व्यय	—२४
	योग	१८४६

फिलीपाइन्स में आर्थिक नियोजन

फिलीपाइन्स पांचवर्षीय सामाजिक एवं आर्थिक कार्यक्रम (सन १९६३ से सन १९६७) का निर्माण देश की परम्परागत समस्याओं के निवारण करने हेतु किया गया। ये समस्याएं—उत्पादन एवं आय का निम्न स्तर बेरोजगार सरकार द्वारा कर की कम वसूली तथा औद्योगिक प्रगति हेतु आधार उत्पादन सुविधाओं की कमी थी। योजना के प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार हैं—

(१) जनसाधारण का सरकार में विश्वास पुनः स्थापित करना। इसके लिए चरित्र का पुनरोद्धार करने की आवश्यकता महसूस की गया।

(२) उत्पादन में इतनी वृद्धि करना कि देश आवश्यक वस्तुओं जैसे चावल अनाज मछली तथा मांस में आत्म निर्भर हो जाय।

(३) रोजगार के अवसरों में वृद्धि तथा जनसाधारण की क्रय शक्ति में सुधार।

(४) आवश्यक जन सेवाओं जैसे स्वास्थ्य शिक्षा आदि में सुधार एवं विस्तार।

(५) आधारभूत उद्योगों की स्थापना तथा वर्तमान उद्योगों के विस्तार को प्रोत्साहन।

विनियोजन

पाँच वर्ष के योजनाकाल में विभिन्न कार्यक्रमों पर १२.६ बिलियन पेसो के विनियोजन का आयोजन किया गया है। यह पूंजी करारोपण, व्यक्तियों एवं व्यापारियों की आय विभिन्न संस्थाओं के धन विकास बैंक तथा जनसाधारण की बचत से प्राप्त की जानी है। विदेशी पूंजी—अधिक निर्यात जापान से प्राप्त होने वाले क्षति पूर्ति भुगतान विदेशों से ऋण तथा विदेशियों द्वारा किए गए निजी विनियोजन से प्राप्त होगी।

कृषि-विकास

इसके अन्तर्गत कृषि उत्पादन, पशुओं, मछली तथा वन उत्पादों में वृद्धि करने के कार्यक्रम सम्मिलित किए गये हैं। उत्पादन की वृद्धि हेतु निम्न कार्यक्रम योजना में सम्मिलित किए गये हैं—

(१) अनाज एवं चावल के मूल्य—पोषण (Price Support) कार्यक्रम के लिए ५० मिलियन पसों का आयोजन किया गया है।

(२) पुराने नारियल के पौधों के पुनरुद्धार तथा नवीन पौधों के लगाने का आयोजन किया गया है। नारियल की बीमारियों की रोक तथा उसके व्यापारिक उत्पादन की व्यवस्था योजना में की गयी है।

( ) अबाका (abaca) उत्पादकों की सहायतार्थ ४ मिलियन पसों का आयोजन है।

(४) कपास के उत्पादन को प्रोत्साहित करने हेतु १० पसों प्रति पौंड नकद अनुदान का आयोजन है।

(५) अन्य फसलों, जैसे रबर, तम्बाकू आदि के विकास का भी आयोजन किया गया है। मछलियों के पकड़ने के उद्योग के विस्तार करने हेतु योजना में तालाबों में ताजा पानी भर कर अच्छी नस्ल की मछलियों में वृद्धि करने, फिशरी विधान (Fishery Laws) का अधिक प्रभावशाली संचालन, मछली पकड़ने वालों में शिक्षा का विस्तार तथा आयन्तर मछली के विकास का आयोजन किया गया है।

औद्योगिक विकास

योजना में इस्पात धातु, रसायन, कागज, ग्लास सीमेंट एवं अन्य अधातु उद्योगों को आधारभूत स्थान दिया गया है। इसके साथ जहाज निर्माण, धातु उत्पादन वस्त्र, खाद्य पदार्थों का निर्माण, लकड़ी के सामान तथा लघु एवं गृह उद्योगों के विकास का भी आयोजन है। निर्माणी उद्योगों के विकास हेतु सरकार द्वारा निम्न कार्यवाहियाँ की जानी हैं—

(१) आधारभूत उद्योगों के यन्त्रादि एवं अन्य सामग्री के आयात पर कर में सीमित छूट दी जायगी।

(२) विदेशी विनिमयन को आकर्षित किया जायगा।

(३) उद्योगपतियों को विदेशों से ऋण लेने में सहायता प्रदान की जायगी।

(४) देश से निर्यात होने वाली वस्तुओं का लागत की विधियों में सुधार करने हेतु प्राप्त उद्योगपतियों के प्रस्तावों को तुरन्त स्वीकृति देने का आयोजन किया गया है।

योजना में उद्योगों का समस्त देश में फैलाने का भी आयोजन किया गया है।

समाज-सेवाएँ

योजना में ७३ ३२० अतिरिक्त प्रारम्भिक कक्षाएँ खोलने का आयोजन है। प्रयोगशालाओं के अधिक औजार एवं सामग्री प्राप्त करने का भी आयोजन किया गया

है। १३५ ग्रामीण स्वास्थ्य केन्द्र खोलने की व्यवस्था की गयी है। क्षेत्रीय, प्रान्तीय तथा द्वीप अस्पताल खोलने का आयोजन भी है। मलेरिया उन्मूलन के कार्यक्रम भी संचालित किये जायेंगे और डॉक्टरी शिक्षा में सुधार करने की व्यवस्था है। ३७५० कम लागत वाले निवास गृह एवं अस्पताल भी स्थापित किये जायेंगे।

पाकिस्तान में आर्थिक नियोजन

पाकिस्तान के राजनीतिक नेता स्वतन्त्रता के पश्चात् लम्बे समय तक पारस्परिक दलबन्दी तथा सत्ता प्राप्त करने के प्रयासों में व्यस्त रहे और अर्थ-व्यवस्था के विकास हेतु कोई ठोस कार्यवाहियाँ नहीं की जा सकीं। जनसाधारण में यहाँ की बदलता हुई सरकारें विश्वास उत्पन्न न कर सकीं जिससे नियोजन कार्यक्रम के लिए जनसाधारण को त्याग करने के लिए प्रोत्साहन न दिया जा सका। पाकिस्तानी शासक अपनी राजनीतिक सत्ता पर दृढ़ न होने के कारण कोई दृढ़ आर्थिक नीति निर्धारित न कर सके। इन सब कारणों के फलस्वरूप पाकिस्तान की प्रथम पंचवर्षीय योजना स्वतन्त्रता के ८ वर्षों के पश्चात १ जुलाई, सन् १९५५ में प्रारम्भ करने का निश्चय किया गया परन्तु राजनीतिक अस्थिरता के कारण इस योजना को सरकार की स्वीकृति सन् १९५७ तक भी नहीं मिल पायी। इस योजना का समस्त व्यय १०८०० मिलियन रुपया निर्धारित किया गया। इसे देर से कार्यान्वित करने के कारण योजना का व्यय लगभग २४% कम रहा। योजनाकाल में खाद्यान्नों के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि न होने के कारण खाद्यान्नों की समस्या अत्यन्त गम्भीर हो गयी और लगभग ७०० करोड़ रुपये के खाद्यान्नों का आयात किया गया जबकि योजना में केवल ४०० करोड़ रुपये के खाद्यान्न आयात करने का आयोजन था। खाद्यान्नों के अधिक आयात के कारण अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्रों विशेषकर उद्योगों के क्षेत्र को विदेशी विनिमय की कमी पड़ी और बहुत से ऐसे उद्योग जो योजना प्रारम्भ होने से पहले स्थापित किये गये थे अपनी क्षमता के अनुसार कार्य न कर सके। इन उद्योगों को आयात किया हुआ कच्चा माल एवं पुर्जे आदि पर्याप्त मात्रा में प्राप्त न हो सका। विकास से सम्बन्ध न रखने वाले व्यय में अनुमान से अधिक वृद्धि हुई। विदेशी मुद्रा का अर्जन अनुमानानुसार न किया जा सका। मूल्यों एवं जनसंख्या में वहाँ अधिक वृद्धि हुई। इन सब कारणों के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में (स्थिर मूल्यों के आधार पर) वृद्धि होने के स्थान पर कुछ कमी हो गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना—पाकिस्तान की द्वितीय पंचवर्षीय योजना का संचालन दृढ़ कठोर एवं तानाशाही प्रशासन के अन्तर्गत हुआ। पाकिस्तान के इस नवीन प्रशासन को नियोजन में पर्याप्त रुचि थी और इसीलिए द्वितीय योजना के कार्यक्रमों को विस्तृत रूप देने का प्रयास किया गया। योजना आयोग के अध्यक्ष ने बताया कि पाकिस्तान की योजनाओं में विभिन्न वादों के सिद्धान्तों को विशेष मान्यता नहीं दी गयी है न तो केवल पूँजीवादी और न केवल समाजवादी अर्थ-व्यवस्था को

योजनाओं में अपनाया गया है। पाकिस्तान की योजनाओं के सिद्धान्तों को उनके द्वारा प्राप्त होने वाले फलों के आधार पर निर्धारित किया गया है। वास्तव में, योजनाओं के सिद्धान्तों का मूल उद्देश्य यह रखा गया कि अर्थ-व्यवस्था की प्रगति जनसंख्या की वृद्धि की गति से तीव्र हो तथा विकास का प्रकार ऐसा हो कि नवीनतम एवं स्वय-स्फूर्त अर्थ व्यवस्था का प्रादुर्भाव हो सके। यह योजना १ जुलाई सन १९६० से प्रारम्भ हुई।

पाकिस्तान की द्वितीय पंचवर्षीय योजना के तीन मुख्य उद्देश्य हैं—

(१) देश का निम्न कृषि उत्पादन तथा जनसंख्या का पर्याप्त भोजन उपलब्ध कराने की अयोग्यता को दूर करने के लिए सम्भव प्रयत्न किए जायें जिससे कृषि के क्षेत्र की गतिहीनता को दूर किया जा सके।

(२) औद्योगिक विकास की गति को निजी साहसियों के सभी व्यावसायिक साधनों द्वारा प्रोत्साहित कर तीव्र किया जाय तथा अर्थ-व्यवस्था को व्यय के प्रतिबन्धों से मुक्त किया जाय।

(३) सभी स्तरों पर शिक्षा का विस्तार किया जाय जिससे पर्याप्त मात्रा में योग्य नियामी वर्ग (Personnel) प्राप्त हो सके।

द्वितीय योजना का समस्त व्यय १९,००० मिलियन रुपया निर्धारित किया गया। यह व्यय विभिन्न क्षेत्रों में निम्न प्रकार वितरित किया गया—

(मिलियन रुपयों में)

सरकारी क्षेत्र का व्यय	९,७५०
अर्द्ध-सरकारी क्षेत्र का व्यय	३,२५०
निजी क्षेत्र का व्यय	६,०००
योग	१९,०००

इस व्यय की राशि का विभिन्न मदों पर निम्न प्रकार आवंटित किया गया—

तालिका सं० ६०—पाकिस्तान की द्वितीय योजना का व्यय

(मिलियन रुपयों में)

मद	सरकारी क्षेत्र	अर्द्ध-सरकारी क्षेत्र: सरकार से अनुदान	अर्द्ध-सरकारी क्षेत्र: अपने साधनों से निजी विनियोजन एवं ऋण	निजी क्षेत्र	योग
कृषि	१,६६०	—	—	८८०	२५४०
जल एवं शक्ति	३,१४०	—	१६०	६०	३,३६०
उद्योग	१२५	१,०४५	५००	२,३८०	४,०५०
ईंधन एवं खनिज	१२५	१३५	—	५७०	८३०
यातायात एवं संचार	१,६६०	११०	४२०	५२०	२,७१०

गृह एव पुनर्वास (Housing and Settlement)	८९५	४२०	३९०	१,१३५	२ ८४०
शिक्षा एव प्रशिक्षण	८९०	—	—	१००	९९०
स्वास्थ्य	३५०	—	—	५०	४००
जन शक्ति एव समाज सेवाए	९५	—	—	१५	११०
ग्रामीण सहायता	४८०	—	—	—	४८०
योग	६ ७५०	१ ७५०	१,५००	६ ०००	१६,०००

पाकिस्तान की अर्थ व्यवस्था की छिन भिन्न दशा मे १६ ००० मिलियन रुपय के साधन जुटाना अत्यन्त कठिन था। यह अनुमान लगाया गया कि ११ ००० मिलियन रुपया घरेलू साधना तथा ८ ००० मिलियन रुपया विदेशी साधना से प्राप्त होगा। द्वितीय योजनाकाल म राष्ट्रीय आय म २०% तथा प्रति व्यक्ति आय म १०% वृद्धि होने का अनुमान है। योजना के कायक्रमा म सबसे अधिक प्राथमिकता कृषि उत्पादन को दी गयी। खाद्यान्न की कमी को दूर करने के लिए कृषि को प्राथमिकता दिया जाना स्वाभाविक है। योजनाकाल म कृषि उत्पादन म लगभग १४% वृद्धि होने का अनुमान है। औद्योगिक क्षेत्र म वृहत तथा मध्यम श्रेणी के उद्योगो के उत्पादन म ६०% तथा गृह एव लघु उद्योगा के उत्पादन म २५% वृद्धि होने का अनुमान है। उद्योगो की वतमान उत्पादनक्षमता के पूणतम उपयोग तथा नवीनीकरण हेतु बडी मात्रा मे अतिरिक्त विनियोजन का आयोजन किया गया। आर्थिक दृष्टिकोण से जहाँ सम्भव हो आधारभूत उद्योगा को प्रोत्साहन दिया जायगा। छोटे उद्योगा को योजना म विशेष महत्व दिया गया है क्योकि इनके द्वारा कम पूँजी के विनियोजन से अधिक *रोजगार के अवसर दिए जा सकते है। ऐसे वृहत उद्योगा को प्रोत्साहन दिया जायगा* जिसमे कृषि अथवा छोटे उद्योगों के विकास म सहायता मिलती हो।

द्वितीय योजना की उपलब्धिया

द्वितीय योजना के अ तगत पाकिस्तान के सकल राष्ट्रीय उत्पादन म स्थिर मूल्यो के आधार पर ५ ५% प्रति वष की दर तथा प्रति व्यक्ति आय म २ ८% प्रति वष की वृद्धि हुई। कृषि उत्पादन म ३ ४% प्रति वष की वृद्धि हुई कृषि-उत्पादन के मूल्यो को वास्तविक रखने तथा खाद, कीटाणुनाशक रसायन आदि का अधिक आयात करने के कारण कृषि का विकास सम्भव हो सका। सिचाई की सुविधाओ म भी वृद्धि की गयी। द्वितीय योजना के अन्तगत विभिन्न क्षेत्रों का विकास पृष्ठ ५२० पर दी गयी ऊपर की तालिकानुसार हुआ।

विनियोजन एव बचत

द्वितीय योजनाकाल म ३२१५० मिलियन पाकिस्तानी रुपये का विनियोजन स्थायी सम्पत्तिया और स्कन्ध सग्रह पर किया गया। इस योजनाकाल म विनियोजन व्यय म २१% प्रति वष की वृद्धि हुई। विनियोजन के बढ हुए व्यय को अर्थ-साधन

क्षेत्र	प्रगति का प्रतिशत
निर्माण (Construction)	१६५.१
निर्माणी एवं खनिज (Manufacturing and Mining)	६१.४
यातायात एवं व्यापार	३६.४
अन्य सेवाएँ	२६.४
कृषि	१८.०
कुल सकल राष्ट्रीय उत्पादन	३०.४

अधिक आन्तरिक बचत एवं विदेशी साधनों से उपलब्ध किया गया। आन्तरिक बचत सकल राष्ट्रीय उत्पादन का सन् १९५९-६० में ६.४% थी जो सन् १९६४-६५ में १०.४% हो गया। योजनाकाल में किये जाने वाले कुल विनियोजन का ४२% भाग सरकारी क्षेत्र में विनियोजित किया गया जबकि यह प्रतिशत प्रथम योजना में ६०% था। द्वितीय योजना में सरकारी क्षेत्र के भाग में कमी रहने का प्रमुख कारण परियोजनाओं को दिये जाने वाले ऋण एवं सहायता की राशि अनुमान से कम रही। निम्नलिखित तालिका में द्वितीय योजना की वित्तीय व्यवस्था का विवरण दिया गया है—

तालिका सं० ४३—पाकिस्तान की द्वितीय योजना में अर्थ-साधनों की प्राप्ति

(पाकिस्तानी मिलियन रुपये में)

मद	योजना का लक्ष्य	अनुमानित प्राप्ति	लक्ष्य से प्रतिशत विचलन
(१) आन्तरिक साधन			
आगम अतिरेक	३,६३०	३९९४	+८.८
शुद्ध पूँजीगत प्राप्तियाँ	१६००	१९९५	+२४.७
अधिकोषण-संस्थाओं से ऋण	—	१३५	—
योग	५,२३०	७१२४	+३६.२
(२) विदेशी साधन			
वस्तुओं के रूप में प्राप्त सहायता	३५००	३९१०	+११.७
PL ४८० के अन्तर्गत प्राप्त साधन	६००	११९४	+९९.०
परियोजना सहायता एवं ऋण	५२५०	२५४२	—५१.६
योग	९३५०	६८२६	—२७.०
महायोग	१४५८०	१३९५०	—४.३

आन्तरिक साधनों से अनुमान से अधिक राशि उपलब्ध होने का प्रमुख कारण कर प्रशासन-व्यवस्था को कुशल बनाना था। योजनाकाल में विकास विनियोजन के लिए केन्द्रीय बैंक से ११३४ मिलियन रुपये का ऋण भी लिया गया जो हीनार्थ प्रबन्धन के समान ही था। योजना के कुल व्यय का १०% से भी कम भाग हीनार्थ प्रबन्धन द्वारा प्राप्त किया गया। द्वितीय योजना के कुल सरकारी व्यय का लगभग ५०% भाग विदेशी सहायता से प्राप्त हुआ।

योजना म निजी क्षेत्र द्वारा भी विकास विनियोजन बडी मात्रा म किया गया परन्तु यह विनियोजन अनुमानित विनियोजन का लगभग ¾ रहा।

विदेशी भुगतान शेष—योजनाकाल म पाकिस्तान की विदेशी भुगतान की स्थिति म सुधार हुआ। विदेशी विनिमय का अर्जन अनुमान से अधिक तथा आयात एव अदृश्य मदो के भुगतान को कम करना पडा। विदेशी विनिमय की आय म वृद्धि निर्यात वृद्धि के कारण सम्भव हुई। निर्यात म ७% प्रति वर्ष की वृद्धि हुई जबकि अनुमान केवल ३% की वार्षिक वृद्धि का लगाया गया था। कपास के निर्यात म विशेष वृद्धि हुई। कपास के निर्यात का लक्ष्य ११०० मिलियन रुपये था जबकि वास्तविक निर्यात १ ५३३ मिलियन रुपये का किया गया। मछली चावल एव अदृश्य मदो के निर्यात म भी पर्याप्त वृद्धि हुई। इस निर्यात वृद्धि का मुख्य कारण कृषि उत्पादन म वृद्धि तथा निर्यात सम्बद्ध न कार्यवाहियाँ थी। निर्यात की जाने वाली अधिकतर वस्तुओ पर बोनस स्कीम (जिसके अन्तर्गत रुपये का आंशिक अवमूल्यन हो जाता है) के लागू होने से निर्यात वृद्धि सम्भव हो सकी। दूसरी ओर अधिक कर एव उत्पादन कर लगाकर निर्यात योग्य वस्तुओ के आन्तरिक उपभोग को कम किया गया।

योजनाकाल म विकास वस्तुओ और सेवाओ के आयात म वृद्धि हुई। विकास-सम्बन्धी आयात का अंश सन् १९६० ६१ म कुल आयात का ५७% था जो सन् १९६४ ६५ म बढकर ६४% हो गया। समस्त योजनाकाल म आयात को अधिक स्वतन्त्र किया गया और उपभोक्ता आयात को उत्पादन एव आयात कर द्वारा रोकने का प्रयत्न किया गया।

पाकिस्तान की तृतीय पचवर्षीय योजना

पाकिस्तान की तृतीय पचवर्षीय योजना १ जुलाई सन् १९६६ को प्रारम्भ हुई। इस योजना म ५२ ००० मिलियन रुपये की लागत के विकास कार्यक्रम सम्मिलित किये गये। इस राशि म से ३० ००० मिलियन रुपया सरकारी क्षेत्र म और २२ ००० मिलियन निजी क्षेत्र म व्यय किया जाना है। योजना के कुल व्यय म से २७ ००० मिलियन रुपया पूर्वी पाकिस्तान म और २५ ००० मिलियन रुपया पश्चिमी पाकिस्तान म विकास परियोजनाओ पर व्यय किया जाना है।

तृतीय योजना उस दीर्घकालीन योजना का प्रथम चरण है जिसके अन्तर्गत २० वर्ष म (सन् १९६६ ८५) राष्ट्रीय आय को तीन गुना करने का लक्ष्य है। इन बीस वर्षों म औसत वार्षिक प्रगति दर ७ २% रखने का लक्ष्य है। इस दीर्घकालीन योजना के अन्य लक्ष्य पूर्ण रोजगार व्यवस्था पूर्वी एव पश्चिमी पाकिस्तान की आर्थिक विषमताओ को पूर्णत समाप्त करना तथा पाकिस्तान की विदेशी सहायता पर निर्भरता को कम करना है। तृतीय योजना के अन्तर्गत इन दीर्घकालीन लक्ष्यो की पूर्ति की ओर अर्थ व्यवस्था को अग्रसर किया जाता है। इस योजना म विभिन्न क्षेत्रो मे व्यय वितरण आगे दी हुई तालिकानुसार किया गया है—

उत्पादन से अनुपात सन् १९५९ ६० में ५% था जो सन् १९६४ ६५ में ६ ३% हो गया है।

विदेशी व्यापार एवं भुगतान शेष—पाकिस्तान के कुल आयात एवं भुगतान तृतीय योजनाकाल में ३५ ५०० मिलियन रुपया अनुमानित है जबकि कुल निर्यात एवं अन्य प्राप्तियाँ २०,००० मिलियन रुपया अनुमानित हैं। इस प्रकार विदेशी भुगतान शेष में १५ ५०० मिलियन रुपये की हीनता का अनुमान लगाया गया है। निर्यात में लगभग ९ ५% की वार्षिक वृद्धि होने का अनुमान है जबकि यह वृद्धि द्वितीय योजना में केवल ७% प्रति वर्ष थी। *अदृश्य आय अर्जन भी सन् १९६४ ६५* में ५३० मिलियन रुपये से बढ़कर ६९० मिलियन रुपये होने का अनुमान लगाया गया है। दूसरी ओर ३५ ५०० मिलियन रुपये के कुल आयात में से ६३% भाग अर्थात् २२ ५०० मिलियन रुपया विकास आयात (पूँजीगत वस्तुएं एवं पूँजीगत वस्तुओं के निर्माण हेतु कच्चा माल) किया जाना है।

तृतीय योजना के अन्तर्गत प्रगति—तृतीय योजना के प्रारम्भ में ही पाकिस्तानी अर्थव्यवस्था कठिन परिस्थितियों से होकर गुजर रही है और योजना में निर्धारित अनुमानों से आर्थिक प्रगति कम रही है। योजना के प्रथम वर्ष सन् १९६६ ६७ में सकल राष्ट्रीय उत्पादन में ५% की वृद्धि हुई जो सन् १९६७ ६८ में ७ ५% हो गयी परन्तु सन् १९६८ ६९ में सकल राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि केवल ४ २% रही। दूसरी ओर प्रति व्यक्ति आय में सन् १९६६ ६७ में २ २%, सन् १९६७ ६८ में ४ ७% तथा सन् १९६८ ६९ में केवल २ ३% की वृद्धि हुई। इन तथ्यों से यह ज्ञात होता है कि सन् १९६७ ६८ वर्ष में पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था में प्रगति लगभग अनुमान के अनुसार हुई परन्तु सन् १९६८ ६९ में प्रगति की इस बनी हुई दर का निर्वाह नहीं किया जा सका। पाकिस्तानी अर्थव्यवस्था की प्रगति के सम्बन्ध में मुख्य आँकड़े तालिका स० ४४ में दिये गये हैं।

इस तालिका के आँकड़ों से यह ज्ञात होता है कि कृषि उत्पादन में सन् १९६८ ६९ वर्ष में केवल ३% वृद्धि हुई है। पश्चिमी पाकिस्तान खाद्यान्नों में लगभग आत्म निर्भर हो गया है और कुछ खाद्यान्न निर्यात करने की स्थिति में हो गया था। दूसरी ओर पूर्वी पाकिस्तान में खाद्यान्नों के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि नहीं हुई है। औद्योगिक उत्पादन में सन् १९६८ ६९ में ७ ४% की वृद्धि हुई जबकि यह वृद्धि सन् १९६७ ६८ में ७ ८% थी। *जूट की वस्तुओं, ऊनी धागा, कागज, सिगरेट, सीमेंट* तथा रसायन के उत्पादन में वृद्धि हुई है।

निजी क्षेत्र का विनियोजन भी योजना में निर्धारित संख्या से कम रहने का अनुमान है। तृतीय योजना में ८३० करोड़ रुपये का विनियोजन निजी क्षेत्र द्वारा उद्योगों में किया जाना था जबकि ३१ मार्च सन् १९६८ तक केवल ५३३ ८ करोड़ रुपये (अर्थात् लक्षित विनियोजन का ६६ ७%) के लिए स्वीकृतियाँ प्रदान की गयी

तालिका सं० ४५—पाकिस्तानी अर्थ-व्यवस्था की प्रगति के सूचक

	१९५९-६०	१९६६-६७	१९६७-६८	१९६८-६९
प्रति व्यक्ति आय (रुपयों में)	३१८	३८१	३९९	४०८
सकल राष्ट्रीय उत्पादन (सन् १९५९-६० के घटकों की लागत पर (करोड़ रुपयों में)	३१४४	४५१३	४८/४	५१०८
कृषि उत्पादन का निर्देशांक	१००	१२३	१४०	१८६
निर्माणी एवं खनिज उत्पादन निर्देशांक	१००	२३५	२६१	२७८
आयात (करोड़ रुपयों में)	२४६	५१९	८६५	६६० (जुलाई से मार्च)
निर्यात (करोड़ रुपयों में)	१८४	२८७	३०७	२४६ (जुलाई से मार्च)
थोक मूल्य निर्देशांक (१९५९-६०=१००)	१००	१३८	१२९	१२६ (जुलाई से मार्च)

थी। योजना के अन्त तक उद्योगों में लक्ष्य के अनुरूप विनियोजन होने की इस प्रकार सम्भावना कम है।

पाकिस्तान के निर्यात अब भी जूट और कपास पर निर्भर रहते हैं। योजना के लक्ष्यों के अनुसार निर्यात का वार्षिक औसत लगभग ४०० करोड़ रुपया है जबकि वास्तविक निर्यात इस राशि से बहुत कम है। दूसरी ओर, आयात का वार्षिक औसत योजना के लक्ष्यों के अनुसार ७१० करोड़ रुपया है जबकि वास्तविक निर्यात सन् १९६७-६८ में केवल ५१६ करोड़ रुपया है। इस प्रकार देश का आयात एवं निर्यात दोनों ही योजना के लक्ष्यों से कम हैं।

पाकिस्तान के नियोजन विशेषज्ञों के अनुसार तृतीय योजना के पूँजी विनियोजन, औद्योगिक उत्पादन की प्रगति दर तथा मूल्यों के स्तर-सम्बन्धी लक्ष्यों की पूर्ति होना सम्भव नहीं हो सकेगा। योजनाकाल में औद्योगिक विनियोजन में १२% से १५% की वृद्धि होने का अनुमान था जबकि पिछले चार वर्षों में औद्योगिक विनियोजन में लगभग ७% की वृद्धि हुई है। योजना के विकास व्यय ५२०० करोड़ रुपये में भी १६% से २०% की कमी रहने का अनुमान है। यदि बढ़ते हुए मूल्य स्तर को भी ध्यान में रखा जाय तो योजना के आयोजित व्यय में भौतिक दृष्टिकोण से ३०% की कमी रहेगी। अर्थ साधनों की कमी के कारण सरकारी क्षेत्र के विकास कार्यक्रमों को आघात पहुँचा है। विकास-व्यय में इतनी अधिक कमी होने का कारण खाद्यान्नों एवं कपास आयात का बड़ी मात्रा में आवंटित किया जाना है।

संयुक्त अरब गणराज्य में आर्थिक नियोजन

अरब गणराज्य की स्थापना मिस्र एवं सीरिया को मिलाकर सन् १९५८ में

हुई। इन दोनो देशो के मिलने के पूर्व ही मिस्र ने अपनी पचवर्षीय योजनाओ का सचालन किया था। मिस्र एव सीरिया के एकीकरण से आर्थिक विकास की समस्याएँ और भी गम्भीर हो गयी क्योकि मिस्र औद्योगिक दृष्टिकोण से विकसित क्षेत्र था और सीरिया प्रमुखत कृषिप्रधान देश था। मिस्र म जनसख्या रहने योग्य क्षेत्रो म अत्यन्त घना है जबकि सीरिया म जनसख्या का घनत्व एशिया और अफ्रीका म सबसे कम था। इन दोनो क्षेत्रो के आर्थिक विकास हेतु एक समन्वित योजना बनाने का कार्य सन् १९५८ के अन्त से प्रारम्भ हुआ। गणराज्य के अध्यक्ष ने सम्बन्धित अधिकारियो को समस्त राष्ट्र के आर्थिक एव सामाजिक विकास हेतु एक समन्वित योजना बनाने के आदेश सन् १९५८ के अन्त म दिए। सीरिया प्रदेश म साख्यकीय सगठन अत्यन्त शिथिल थे जिसके कारण इस समन्वित योजना के बनाने म एक वर्ष म भी अधिक लगा। यह योजना मार्च अप्रैल सन् १९६० मे तयार हुई और सीरिया एव मिस्र दोनो ने ही क्षेत्रो के आर्थिक एव सामाजिक विकास की सभा म इसे स्वीकृति दी। तत्पश्चात् यह योजना गणराज्य की लोकसभा मे प्रस्तुत की गयी और लोकसभा म स्वीकृति प्राप्त होने के पश्चात १ जुलाई सन् १९६० को चालू की गयी।

भारत के समान ही अरब गणराज्य की योजना का उद्देश्य अर्थ-व्यवस्था का विकास करना तथा समाजवादी सस्कारो एव प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तो पर आधारित एक विषमताहीन (Egalitarian) समाज की स्थापना करना आर्थिक विषमताओ का समाप्त करना समस्त नागरिको को समान अवसर प्रदान करना तथा ग्रामीण एव नागरिक बेरोजगारो को रोजगार प्रदान करना आदि उद्देश्यो की पूर्ति करना है। पचवर्षीय योजना द्वारा दस वर्षों म राष्ट्रीय आय को दुगुना करने राष्ट्रीय उत्पादन को अधिक महत्व देने, राष्ट्रीय उपभोग बचत एव विनियोजन को बढ़ाने तथा रोजगार के अवसरो म वृद्धि करने का लक्ष्य है। *इस योजना का समस्त व्यय २ ००४ मिलियन मिस्री* पौण्ड है जिसम म १६६७ मिलियन पौण्ड मिस्र प्रदेश के विकास के लिए तथा ३०७ मिलियन पौण्ड सीरिया प्रदेश के विकास के लिए निर्धारित किया गया। नाना क्षेत्रो की विनियोजन राशि अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो म आवटित की गयी जिनम सिचाई कृषि उद्योग यातायात सचार सग्रह गृह निर्माण जनोपयोगी सेवाएँ सम्मिलित थी। विनियोजन का विभिन्न क्षेत्रो म वितरण इस प्रकार किया जाना निश्चय किया गया कि अधिकतम सफलता प्राप्त हो सके। योजना के विनियोजन कार्यक्रम निर्धारित करते समय सीरिया प्रदेश के कृषि उत्पादन म वृद्धि की समस्या तथा मिस्र की भूमि समस्याओ को भी ध्यान म रखा गया। देश की बढ़ती हुई जन सख्या से उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर योजना बनाने समय विचार किया गया था।

दक्षिणी भाग (मिस्र प्रदेश) की योजना म विभिन्न मदों के विनियोजन उत्पादन आय एव रोजगार के लक्ष्य अगले पृष्ठ की तालिका स० ४६ म दिए हुए हैं।

इसके विनियोजन के वितरण से यह स्पष्ट है कि योजना म सबसे अधिक

महत्व विद्युत एवं उद्योगों के विकास को दिया गया और कृषि सिंचाई एवं उच्च बाँध (High Dam—Sadd—El—Aali) को दूसरा स्थान प्राप्त है। राष्ट्रीय उत्पादन को २५२५ मिलियन मिस्री पौण्ड (सन् १९५९ में) से बढ़ाकर ३६०१ मिलियन मिस्री पौण्ड करने का लक्ष्य है अर्थात् योजनाकाल में ४२.६% के उत्पादन में वृद्धि होने का अनुमान है। राष्ट्रीय आय सन् १९५९ वर्ष में १२८२ मिलियन मिस्री पौण्ड से बढ़कर १,७९५ मिलियन मिस्री पौण्ड हो जायगी अर्थात् राष्ट्रीय आय में योजनाकाल में ४०% की वृद्धि होगी। योजनाकाल में उपभोग-व्यय ८३८ मिलियन मिस्री पौण्ड से बढ़कर १०८८ मिस्री पौण्ड हो जायगा अर्थात् २४% की वृद्धि होगी। उद्योगों में कार्य

तालिका नं० ४६—संयुक्त अरब गणराज्य की पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य
(१ जुलाई से ३० जून सन् १९६५ तक)

क्षेत्र	विनियोग (मिलियन मिस्री पौण्ड)	उत्पादन में वृद्धि (मिलियन मिस्री पौण्ड)	आय में वृद्धि (मिलियन मिस्री पौण्ड)	रोजगार में वृद्धि (हजार व्यक्तियों में)
(१) कृषि, सिंचाई, पानी का निकास एवं उच्च बाँध	३८२	१६२	११२	५५५
(२) विद्युत उद्योग एवं निर्माण	५७८.७	७२३	२०६	२०४
(३) यातायात, संचार तथा स्वेज नहर	२७१.८	२६	२०	३
(४) निवास-गृह एवं अन्य उपयोगिताएँ	२२३.४	५५	१६	६
(५) सेवाएँ	१११.०	१८३	१०२	२५१
(६) संग्रह में वृद्धि	१२०	—	—	—
योग	१६६६.२	१०३६	५१३	१०२६

करने के श्रम में ३०% की कृषि क्षेत्र के श्रम में १६% तथा सेवाओं के क्षेत्र में श्रम में १५% की वृद्धि होगी। इस प्रकार समस्त क्षेत्रों में रोजगार में २८% की वृद्धि होने का अनुमान है। योजनाकाल में मजदूरी एवं वेतन पर होने वाले व्यय में ३३% वृद्धि का लक्ष्य है। इस प्रकार श्रम की १८% वृद्धि पर वेतन एवं मजदूरी में ३३% की वृद्धि होगी जिससे यह स्पष्ट है कि मजदूरी एवं वेतन के स्तर में योजनाकाल में वृद्धि होगी।

औद्योगिक विकास के कार्यक्रमों में सबसे अधिक महत्व विद्युत्-शक्ति के विकास को दिया गया है। सन् १९५९ में विद्युत उत्पादनक्षमता २.१ बिलियन K.W.H. थी जो सन् १९६५ तक बढ़कर ६.४ बिलियन K.W.H. होने का अनुमान था। विद्युत शक्ति की वृद्धि का ७५% भाग औद्योगिक क्षेत्र में उपभोग होना था। विद्युत् विकास के कार्यक्रमों की लागत १३६.४ मिलियन मिस्री पौण्ड थी। खनिज तेल

का उत्पादन ३ ४ मिलियन टन से बढ़ाकर ८ मिलियन टन करने का लक्ष्य रखा गया। योजना म तल खनिज साधन धागा कातना एव बुनना, आधारभूत धातु उद्योग, इन्जीनियरिंग खाद्य पेय पदार्थ एव तम्बाकू उद्योग रसायन एव औपधि तथा निर्माण उद्योगो के विकास कायक्रम सम्मिलित किए गये। योजना के अन्तगत कपास के उत्पादन म २ ७ मिलियन कन्टार (Kantars) गहू मे १ ६ मिलियन अरदेब (Ardeb) सोरघम म २ ३ मिलियन अरदेब चावल म ० ४ मिलियन दरीबा (Danba) तथा गन्ने के उत्पादन म ३ १ मिलियन कन्टार की वृद्धि करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

शिक्षा के क्षेत्र के विकास के लिए याजना म ३० मिलियन मिस्री पौन्ड का आयोजन किया गया। याजना क अन्त तक अनिवाय शिक्षा का प्रतिशत ७७ से बढ़कर ८७ हो जायगा। माध्यमिक तान्त्रिक शिक्षा का योजना म विशेष ध्यान दिया गया है और तान्त्रिक शिक्षा क स्कूलो की सख्या १०४ स बढ़कर ११५ हो जायगा और इन स्कूलो म लगभग ८१ ००० विद्यार्थियो का शिक्षा प्रदान किये जाने का लक्ष्य था। स्वास्थ्य के क्षेत्र म याजना म ४५ नवीन अस्पताल ४०० शिशु कल्याण केन्द्र स्थापित करन का आयोजन किया गया है।

योजना के अन्तगत प्रगति—सयुक्त अरब गणराज्य की प्रथम पचवर्षीय याजना क अन्तगत विभिन्न क्षेत्रो म महत्वपूर्ण प्रगति हुई। देश के सकल आन्तरिक उत्पादन म (GDP) स्थिर मूल्यो के आधार पर ३७% की वृद्धि हुई और प्रगति की चक्रवृद्धि दर ६ ५% प्रति वष रही। याजना क पहले के पाच वर्षो म सन् १९५५ ५६ स सन् १९५९ ६० के काल म सकल आन्तरिक उत्पादन म २६ ३% की वृद्धि हुई था। इसी प्रकार प्रति व्यक्ति आय म ५ ५% प्रति वष की वृद्धि हुई। इस काल स जनसख्या म वृद्धि २ ८% प्रति वष हुइ। जनसख्या की वृद्धि के सन्दभ म प्रति व्यक्ति का वृद्धि महत्वपूर्ण समझी जा सकती है। योजनाकाल म रोजगार की स्थिति म भी सुधार हुआ और सन् १९५९ ६० म ६ मिलियन स बढकर सन् १९६४ ६५ म ७ ३ मिलियन हो गया।

योजना क अन्तगत आस्वान के ऊचे बाँध का पहला भाग पूरा हो गया जिसक परिणामस्वरूप सन् १९६४ वष म बाढ स होन वाल विनाश को रोका जा सका और कृषि उत्पादन को पहुँचन वाली क्षति को रोका जा सका। यह अनुमान लगाया गया कि इस ऊच्च बाँध के फलस्वरूप देश के सकल आन्तरिक उत्पादन (GDP) की वृद्धि का लगभग १५% भाग प्राप्त होगा।

माग—प्रथम योजना के अन्तगत चालू मूल्यों क आधार पर माँग म ५५% की वृद्धि हुई। माँग क तीन अगो—विनियोजन-व्यय सरकारी उपभोग एव निजी क्षेत्र के उपभोग म क्रमश ११३% ८९% तथा ५७% की वृद्धि योजनाकाल म हुइ। योजनाकाल म स्थायी पूजी निर्माण १५१५ मिलियन इजिप्शियन पौन्ड (चालू मूल्यों

पर) हुआ। योजनाकाल (सन् १९६०-६१ से १९६४-६५) में कुल उत्पादन ८२८६ मिलियन इ० पौण्ड हुआ जो योजना के पूर्व के पाँच वर्षों (सन् १९५५-५६ से सन् १९५९-६०) के उत्पादन ५७४३ मिलियन इ० पौण्ड से ४४% अधिक था परन्तु योजनाकाल के पाँच वर्षों में कुल माँग ९०१४ मिलियन इ० पौण्ड थी और इस प्रकार ७२८ मिलियन इ० पौण्ड की अतिरिक्त माँग थी। इसमें ४१८ मिलियन इ० पौण्ड की सम्पूर्ति मूल्यों में वृद्धि होने से हुई तथा ३१० मिलियन इ० पौण्ड की पूर्ति चालू खाते में हीनार्थ प्रबन्धन कर की गयी।

मूल्य एवं मजदूरी—योजनाकाल के पाँच वर्षों में रहन-सहन की लागत में १०% की वृद्धि हुई और थोक मूल्य ८% से बढ़े। मूल्यों में अधिक वृद्धि न होने का कारण सरकार द्वारा मुद्रा-स्फीति को रोकने वाली कर-कार्यवाहियों का क्रियान्वन था। योजना के पाँच वर्षों की अवधि में औसत नकद मजदूरी में २१% की वृद्धि तथा मजदूरों की उत्पादकता में १२% की वृद्धि हुई। कृषि-क्षेत्र में नकद मजदूरी में ४७% की वृद्धि हुई और श्रमिकों की उत्पादकता केवल ५% बढ़ी। उत्पादकता में कम और मजदूरी में अधिक वृद्धि होने के कारण व्यवसायों में लाभ की दर कम हो गयी जिससे व्यवसायियों के प्रोत्साहन पर विपरीत प्रभाव पड़ा।

भुगतान-शेष—योजना के प्रथम चार वर्षों में चालू खाते के अन्तर्गत हीनता का अनुमान लगाया गया था और इस हीनार्थ को पाँचवें वर्ष में कम करने का अनुमान लगाया गया था परन्तु चालू खाते में हीनता निरन्तर बढ़ती गयी जिसका प्रमुख कारण आयात में अनुमान से अधिक वृद्धि होना था। जनसंख्या के बढ़ने के कारण उपभोक्ता वस्तुओं के आयात में भी वृद्धि हुई। सन् १९५९-६० में कुल आयात ६८८.७ मिलियन अमेरिकी डालर से सन् १९६४-६५ में बढ़कर ९२१.८ मिलियन डालर हो गया। उपभोक्ता-वस्तुओं का आयात इस काल में १९७ मिलियन डालर से बढ़कर २८९.७ मिलियन डालर हो गया। योजनाकाल में कुल आयात में ४२% की वृद्धि हुई जबकि निर्यात ५८५.३ मिलियन डालर (सन् १९५९-६०) से बढ़कर ६१० मिलियन डालर हो गया अर्थात् निर्यात में केवल १२% की ही वृद्धि हुई। इस प्रकार विदेशी व्यापार का प्रतिकूल शेष १०३.४ मिलियन डालर (सन् १९५९-६०) से बढ़कर ३११.८ मिलियन डालर हो गया। प्रतिकूल शेष में इतनी अधिक वृद्धि होने का प्रमुख कारण यह था कि अर्थ-व्यवस्था में किए गए विनियोजन द्वारा आयात प्रतिस्थापन-योजना के अन्त तक अनुमानित परिमाण नहीं किया जा सका। जनसंख्या में अनुमान से अधिक वृद्धि होने के कारण भी खाद्यान्नों का बड़ी मात्रा में आयात करने से विदेशी व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। औद्योगिक क्षेत्र में कुछ मान्यताएँ एवं अनुमान भी त्रुटिपूर्ण रहे। कुछ उद्योगों की स्थापना से निर्मित उपभोक्ता वस्तुओं के आयात का प्रतिस्थापन करने का लक्ष्य रखा था परन्तु इन उद्योगों का कच्चा माल एवं कल-पुर्जों का इतना आयात करना पड़ा कि आयात प्रतिस्थापन का लाभ केवल नाममात्र का रहा।

चालू खाते की हीनता की पूर्ति के लिए विदेशों से दीर्घकालीन एव मध्यम कालीन (Medium Term) पूँजी बडी मात्रा म प्राप्त की गयी। कुछ पूँजी सयुक्त राज्य अमेरिका से PL ४८० के अन्तगत प्राप्त हुई।

सयुक्त अरब गणराज्य की प्रथम योजना से अन्य देशा के लिए यह निर्देश प्राप्त हाता है कि याजना की सफलता हेतु देश की समस्त मांग को उत्पादनक्षमता की सीमा तक नियन्त्रित रखना चाहिए उचित मूल्य नीति द्वारा मुद्रा स्फीति के दवाव पर नियन्त्रण रखना चाहिए जिससे सभी क्षेत्रा म प्रोत्साहन बना रहे मजदूरी के स्तर को अधिक बढने से रोकना चाहिए क्योकि इसके द्वारा व्यवसायी वग का लाभ होता है और उत्पादक प्रोत्साहन को आघात पहुँचता है, विनियोजन का प्रकार एव नीति निर्धारित करत समय इससे भुगतान शेष पर पडने वाले प्रभाव का विस्तृत अध्ययन करना चाहिए।

———

भाग ४

भारत में आर्थिक नियोजन

[Planning in India]

भारत मे नियोजन का इतिहास
[History of Planning in India]

[राष्ट्रीय योजना समिति—उद्योग, कृषि, बम्बई-योजना—उद्देश्य मान्यताएं उद्योग कृषि यातायात के साधन, शिक्षा, अर्थ प्रबन्धन सामाजिक व्यवस्था, योजना के दोष जन-योजना—उद्देश्य कृषि, औद्योगिक विकास यातायात, अर्थ प्रबन्धन, आलोचना, विश्वेश्वरया योजना—उद्देश्य एवं कार्यक्रम, गांधीवादी योजना—मूल सिद्धान्त उद्देश्य, कृषि ग्रामीण उद्योग, आधारभूत उद्योग, अर्थ प्रबन्धन आलोचना कालम्बो-योजना—उद्देश्य एवं कार्यक्रम]

राष्ट्रीय योजना समिति

भारत म नियोजन की आवश्यकता की ओर सवप्रथम सन् १६३४ म प्रसिद्ध इन्जीनियर तथा राजनीतिज्ञ, सर विश्वेश्वरया द्वारा सकेत किया गया। उन्होंने अपनी पुस्तक Planned Economy for India म यह बताया कि भारत का पुनर्निर्माण योजनाबद्ध कायक्रम द्वारा किया जाना आवश्यक है। इस पुस्तक म बताया गया है कि राष्ट्र के सर्वोपरि आर्थिक विकास हेतु आर्थिक नियोजन आवश्यक है। भारतीय आर्थिक सभा (Indian Economic Conference) ने अपनी सन् १६३४ ३५ की वार्षिक सभा म इस पुस्तक म दिये गये सुझावों पर विचार किया। इस पुस्तक म एक दसवर्षीय योजना का कायक्रम बताया गया था जिसके द्वारा राष्ट्रीय आय तथा समस्त उद्योगो के उत्पादन को अल्प समय म दुगुना करने का आयोजन किया गया था। विस्तृत शिक्षा तथा औद्योगीकरण जिसम भारी उद्योगों को विशेष महत्व दिया जाय, सांख्य तथा आवश्यक सूचना का एकीकरण व्यवसायों म सन्तुलन स्थापित करना, ग्राम्यीकरण की प्रवृत्तियों को रोकना आदि कायक्रम इसमें सम्मिलित किये गये थे। यद्यपि यह योजना समुचित समय पर प्रस्तुत की गयी परन्तु आर्थिक कठिनाई सांख्य की अपर्याप्तता विदेशी जन असहयोग आदि कारणों से इसे कार्यान्वित नहीं किया गया। इसके लगभग चार वर्ष पश्चात २ तथा ३ अक्टूबर सन् १६३८ को अखिल भारतीय कांग्रेस के अध्यक्ष श्री सुभाषचन्द्र बोस ने दिल्ली म प्रान्तीय उद्योग-मन्त्रियों का एक सम्मेलन बुलाया। सम्मेलन ने निश्चय किया कि निधनता, बरोजगारी

राष्ट्रीय सुरक्षा तथा आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए औद्योगीकरण अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्मेलन में ऐसी राष्ट्रीय योजना पर जोर दिया गया जिसमें वृहत्, आधारभूत लघु तथा कुटीर उद्योगों का समन्वित विकास आवश्यक समझा जाय। इस सम्मेलन के सुझावों को कार्यान्वित करने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस द्वारा राष्ट्रीय योजना समिति (National Planning Committee) की स्थापना स्व० श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में की गयी। यह देश में सर्वप्रथम कार्यवाही थी जिसके द्वारा राष्ट्र की महत्वपूर्ण आर्थिक समस्याओं का अध्ययन तथा उनके हल के लिए समन्वित योजनाओं का निर्माण करने का प्रयत्न किया गया। इस समिति का मुख्य उद्देश्य राष्ट्र के विभिन्न आर्थिक पहलुओं का अध्ययन कर एक ऐसी व्यवस्था अथवा योजना निश्चित करना था जिसके द्वारा ऐसे समाज का निर्माण किया जाय कि जनसमुदाय को विचार व्यक्त करने तथा अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने के समान अवसर प्राप्त हों तथा उचित समय पर पर्याप्त न्यूनतम जीवन-स्तर का आश्वासन दिया जा सके।

इस समिति ने देश के विभिन्न आर्थिक पहलुओं का अध्ययन करने तथा विकास-योजनाएँ प्रस्तुत करने के लिए २६ उप-समितियाँ नियुक्त कीं जिनका प्रतिवेदन (Report) समय-समय पर प्रकाशित किया गया। समिति के विचार में नियोजन का संचालन उचित राष्ट्रीय अधिकारी की अनुपस्थिति में नहीं किया जा सकता था। इस अधिकारी को प्रभावशाली योजना बनाने तथा संचालित करने के लिए राष्ट्र के समस्त साधनों पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त होना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु एक राष्ट्रीय सरकार जिसमें विदेशी सत्ता को कोई हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं हो का निर्माण करना आवश्यक समझा गया। मई, सन् १९४० में समिति के अध्यक्ष ने घोषणा की कि समिति एक स्वतन्त्र सरकार स्थापित करना चाहती है जिसमें व्यक्ति तथा समुदाय के मूलभूत अधिकारों—राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक—को सुरक्षित रखा जायगा और नागरिकों के तदनुसार कर्त्तव्य भी निश्चित किये जायेंगे।

राष्ट्रीय योजना समिति की स्थापना के कुछ समयोपरान्त ही कांग्रेस मन्त्रि-मण्डल ने त्याग पत्र दे दिया। इसी समय द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया। परिणाम-स्वरूप इस समिति का कार्य केवल सुझावों तक सीमित रह गया। महायुद्धोपरान्त राष्ट्र की आर्थिक समस्याओं में भी परिवर्तन हो गये और नवीन समस्याओं का प्रादुर्भाव हुआ। इसी बीच सरकार, उद्योगपतियों तथा राजनीतिक दलों ने अपनी-अपनी योजना का निर्माण कर उनका प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार राष्ट्रीय योजना समिति के सुझावों को कार्यान्वित करने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ।

बम्बई-योजना

सन् १९४४ में भारत के आठ प्रमुख उद्योगपतियों ने एक सूत्रबद्ध योजना प्रकाशित की। यह भारत के आर्थिक इतिहास की महत्वपूर्ण घटना थी। इसके पूर्व

योजना के सम्बन्ध में विचार तो बहुत हुए थे परन्तु कोई योजनाबद्ध कार्यक्रम प्रस्तुत नहीं किया गया था। इन आठ उद्योगपतियों में सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, श्री जे० आर० डी० टाटा, श्री जी० डी० बिड़ला, सर आर्देशिर दलाल, सर श्रीराम, सेठ कस्तूर भाई लाल भाई, श्री ए० डी० श्राफ तथा डा० जान मथाई सम्मिलित थे। यह एक १५ वर्षीय योजना थी और नियोजकों ने इसका नाम 'A Plan of Economic Development for India' दिया परन्तु यह बम्बई योजना के नाम से प्रसिद्ध है। योजना का कार्यक्रम पंचवर्षीय तीन अवस्थाओं में पूर्ण करना था तथा इसका समस्त अनुमानित व्यय १०,००० करोड़ रु० था।

उद्देश्य—योजना का उद्देश्य तत्कालीन प्रति व्यक्ति आय को १५ वर्षों में दुगुना करना था। यह भी अनुमान लगाया गया कि जनसंख्या की वृद्धि को दृष्टि में रखते हुए प्रति व्यक्ति आय को दुगुना करने के लिए राष्ट्रीय आय को तिगुना करना आवश्यक होगा। योजना में न्यूनतम जीवन स्तर के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया। न्यूनतम जीवन स्तर में निम्नलिखित सुविधाएं सम्मिलित की गयीं—

सन्तुलित भोजन के क्षेत्र में निम्नलिखित वस्तुएं सम्भावित होनी चाहिए—

प्रति व्यक्ति प्रति दिन

पदार्थ	औंस
अन्न	१६
दालें	३
शक्कर	२
शाक सब्जी	६
फल	२
तेल घी आदि	१.५
दूध	८
अथवा अंडे मछली तथा मांस	२.३

भोजन के इन समस्त पदार्थों द्वारा २,६०० कैलोरी प्रतिदिन प्रति व्यक्ति को प्राप्त होगा। इस प्रकार के सन्तुलित भोजन के लिए प्रति व्यक्ति ६५ रु० प्रति वर्ष का अनुमान लगाया गया और २,१०० करोड़ रु० समस्त जनसंख्या को सन्तुलित भोजन प्रदान करने के लिए व्यय का भी अनुमान लगाया गया।

(अ) वस्त्र आवश्यकता के विषय में राष्ट्रीय योजना समिति के अनुमानों के अनुसार प्रति व्यक्ति को ३० गज कपड़े की न्यूनतम आवश्यकता होगी और सन् १९४१ की जनगणना के आधार पर १,१६,७०० लाख गज कपड़े की आवश्यकता होगी जिसकी लागत लगभग २५५ करोड़ रु० होगी।

(आ) गृह की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रति व्यक्ति १०० वर्ग फीट के गृहों के निर्माण का लक्ष्य रखा गया। यह अनुमान लगाया गया कि इस प्रकार के गृह

पाँच व्यक्तियों के निवास हेतु पर्याप्त होंगे तथा ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति भवन की लागत लगभग ४०० रु० होगी।

(इ) योजना में स्वास्थ्य तथा चिकित्सा-सम्बन्धी पर्याप्त सुविधाओं के लिए कार्यक्रम को दो भागों में विभाजित किया गया। अवरोधक-कार्यक्रमों (Preventive Measures) में सफाई, जल की उपलब्धि, टीका लगाना, छूत के रोगों को रोकने के लिए प्रयत्न, प्रसूति तथा शिशु-कल्याण आदि सम्मिलित किए गये। आरोग्यकर (Curative) कार्यक्रमों में चिकित्सा-सम्बन्धी सुविधाओं में पर्याप्त वृद्धि करने का आयोजन किया गया। योजना में प्रत्येक ग्राम में एक चिकित्सालय तथा नगरों में अस्पताल तथा प्रसूति-गृहों और क्षय रोग, कैन्सर तथा कुष्ठ रोग आदि की चिकित्सार्थ विशेष संस्थाओं का सुझाव रखा गया।

(ई) बम्बई-योजना में प्राथमिक शिक्षा को विशेष महत्व दिया गया। प्राथमिक शिक्षा पर ८८ करोड़ रुपया आवर्तक (Recurring) तथा ८६ करोड़ रुपया अनावर्तक व्यय का अनुमान लगाया गया।

इस प्रकार न्यूनतम जीवन-स्तर में उपर्युक्त पाँच आधारभूत सुविधाओं को सम्मिलित किया गया और इस न्यूनतम स्तर की लागत २६०० करोड़ रुपया अनुमानित की गयी।

योजना में राष्ट्रीय आय को १५ वर्षों में तीन गुना करने का लक्ष्य रखा गया। यह वृद्धि निम्न प्रकार होने का अनुमान लगाया गया—

तालिका स० ४७—राष्ट्रीय आय में वृद्धि (बम्बई-योजनाकाल में)

	शुद्ध आय १९३१-३२ (करोड़ रु० में)	शुद्ध आय १५ वर्ष पश्चात अनुमानित (करोड़ रु०)	वृद्धि का प्रतिशत
उद्योग	३७४	२२४०	५००
कृषि	११६६	२६ ०	१३०
सेवाएँ	४८४	१४५०	२००
अवर्गीकृत मदें	१७६	२४०	३६
योग	२२८०	६६००	लगभग २१६ ५

मान्यताएं—योजना के कार्यक्रमों को निम्नलिखित मान्यताओं के आधार पर निर्धारित किया गया।

वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया तथा (६) इसके साथ ही वैधानिक कृषि पर बल दिया गया। कृषि-उत्पादन के लक्ष्यों को स्वेच्छा से कम रखा गया था तथा योजना के प्रारम्भिक काल में कृषि उत्पादन के निर्यात को कोई स्थान नहीं दिया गया था।

यातायात के साधन—कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि के फलस्वरूप,

राष्ट्र म आन्तरिक व्यापार मे वृद्धि होगी, एतदथ यातायात एव सम्वाद-परिवहन के साधनों म पर्याप्त वृद्धि करना आवश्यक होगा। इस विचार से योजना म भारत की ४१ ००० मील लम्बी रेलवे लाइना को बढाकर ६२ ००० मील तक बढाने का और ३ लाख मील लम्बी सडका को बढाकर १५ वर्षों म दुगुना करने का आयोजन किया गया था। बन्दरगाहो के सुधार तथा नवीन बन्दरगाहो के निर्माण एव विकास की भी व्यवस्था योजना मे की गयी थी।

शिक्षा—योजना म शिक्षा के विकास हेतु विस्तृत कायक्रम सम्मिलित किया गया। योजना म २० करोड अशिक्षित प्रौढ़ो को शिक्षित करने का लक्ष्य था। ६ से ११ वष की आयु के लडके तथा लडकियों के लिए अनिवाय शिक्षा का आयोजन किया गया था। योजना म उच्च शिक्षा अथात विश्वविद्यालयीन शिक्षा तान्त्रिक तथा वज्ञानिक प्रशिक्षण तथा शोधकाय हेतु २० करोड रु० आवतक व्यय का अनुमान किया गया था।

अथ प्रबन्धन—योजना का सम्पूण व्यय १० ००० करोड रु० अनुमानित किया गया था जिसका आवटन निम्न प्रकारेण किया गया था—

तालिका स० ४८—बम्बई योजना का व्यय

मद	व्यय की जाने वाली राशि (करोड रुपयो म)
उद्योग	४ ४८०
कृषि	१ २४०
यातायात	९४०
शिक्षा	४९०
स्वास्थ्य	४५०
गृह व्यवस्था	२ २००
विविध	२००
	१० ०००

वाह्य तथा आन्तरिक साधनों से तालिका स ४९ के अनुसार राशियाँ एकत्र करने का अनुमान था।

बम्बई योजना के निर्माणकर्त्ताओ के मत म वस्तुओ तथा सेवाओ की वृद्धि अधिक महत्वपूण थी और अथ साधनो को सवथा अथ-व्यवस्था की आवश्यकताओ के अधीन रखना उचित था। अथ-साधनों की उपलब्धि के आधार पर आर्थिक विकास की योजनाओ का निमाण नहीं किया गया था प्रत्युत राष्ट्र की आर्थिक आवश्यकताओ के अनुसार कायक्रम निश्चित कर उनकी पूर्ति हेतु आवश्यक अथ-साधनों की खोज की गयी थी। इसी कारण मुद्रा प्रसार को अथ प्रबन्धन म महत्वपूण स्थान दिया गया था। नियोजकों का विश्वास था कि मुद्रा प्रसार के परिणामस्वरूप राष्ट्र की उत्पा-

तालिका सं० ४९—बम्बई योजना के अर्थ-साधन

बाह्य साधन	करोड़ रुपये
भूमिगत (Hoarded) धन	३००
पौण्ड पावना (Sterling Securities)	१,०००
व्यापार-शेष (Balance of Trade)	६००
विदेशी ऋण (Foreign Loan)	७००
	योग २,६००
आन्तरिक साधन	
बचत	४,०००
मुद्रा प्रसार	३,४००
	योग ७,४००
	महायोग १०,०००

उत्पादन-शक्ति में वृद्धि होगी तथा अन्ततः मुद्रा-प्रसार स्वयमेव अपना शमन कर सकेगा। नियोजन-अधिकारी का अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर पूर्ण नियन्त्रण होगा और मूल्यों पर नियन्त्रण रखने के कारण अर्थ-व्यवस्था के योजनाबद्ध विकास में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होगी।

सामाजिक व्यवस्था—बम्बई-योजना के निर्माणकर्ताओं ने अपनी द्वितीय पुस्तिका (Brochure) में इस सम्बन्ध में विचार प्रकट किये। बम्बई-योजना के लेखकों के विचार में आधुनिक युग में पूँजीवाद में राजकीय हस्तक्षेप के कारण उसके स्वरूप में परिवर्तन हो गया है। दूसरी ओर, समाजवाद में भी कुछ पूँजीवादी विचारधाराओं को मान्यता मिलने लगी है। इस कारण भारत में पूँजीवादी तथा समाजवादी अर्थ व्यवस्था के न्यायपूर्ण सम्मिश्रण का सुझाव रखा गया था। योजना में इसीलिए व्यक्तिगत साहस को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया तथा सार्वजनिक हित तथा राज्य या राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था पर नियन्त्रण रखने का आयोजन किया गया। इस प्रकार समाजवादी नियोजन तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में समन्वय स्थापित करने का प्रबन्ध किया गया। नियोजकों के विचार में नियोजन तथा लोकतन्त्रीय समाज—दोनों एक साथ सचालित किये जा सकते हैं।

राज्य द्वारा नियोजित अर्थ-व्यवस्था में हस्तक्षेप करने की मान्यता दी गयी तथा राज्य पर आर्थिक कार्यवाहियों में समन्वय स्थापित करना, मुद्रा-व्यवस्था, राजस्व तथा आर्थिक दृष्टिकोण से निर्बल-वर्ग की सुरक्षा का भार डाला गया था। इसके अतिरिक्त राज्य को कुछ उद्योगों तथा व्यवसायों पर अधिकार, नियन्त्रण तथा प्रबन्ध करना भी आवश्यक बताया गया। राज्य केवल ऐसे ही उद्योगों पर अधिकार प्राप्त करे जिनमें सरकारी धन का विनियोजन होता हो। योजना में युद्धकालीन नियन्त्रणों

जो चालू रखने की सिफारिश की गयी परन्तु इनका प्रबन्धन व्यवस्थित तथा समन्वित रूप से करने पर जोर दिया गया।

योजना के दोष

(१) **पूँजीवादी प्रकार**—यद्यपि योजना में निजी तथा सरकारी क्षेत्र के *सामंजस्य का आयोजन किया गया था* परन्तु *निजी क्षेत्र को आवश्यकता से अधिक* महत्व दिया गया था। सार्वजनिक हित तथा समान वितरण के दृष्टिकोण से भारत जैसे अर्द्ध विकसित राष्ट्र में सरकारी क्षेत्र निरन्तर बढ़ाकर ही अधिकतम उत्पादन के लक्ष्य की पूर्ति की जा सकती है। योजना द्वारा १५ वर्षों में एक ऐसे समाज की स्थापना करना, जिसमें निजी क्षेत्र का अर्थ-व्यवस्था के अधिकांश भाग पर अधिकार प्राप्त हो, उचित नहीं कहा जा सकता है।

(२) **कृषि को कम महत्व**—योजना में औद्योगिक उत्पादन का विशेष महत्व दिया गया है। औद्योगिक उत्पादन में ५००% वृद्धि की तुलना में कृषि उत्पादन में १३०% की वृद्धि के लक्ष्य अत्यन्त कम प्रतीत होते हैं। नियोजकों के विचार में सन्तुलित अर्थ-व्यवस्था का निर्माण आवश्यक था इसलिए उन्होंने राष्ट्रीय आय में कृषि तथा उद्योग—दोनों के भाग को समान करने का आयोजन किया। नियोजकों के अनुमानानुसार, कृषि तथा उद्योगों से प्राप्त होने वाली शुद्ध आय क्रमशः १,१६६ करोड़ रु० तथा ३७४ करोड़ रु० था परन्तु औद्योगिक उत्पादन में ५००% वृद्धि करने के लिए कृषि का समानान्तर विकास करना आवश्यक था क्योंकि कृषि द्वारा उद्योगों को कच्चा माल उपलब्ध होता है। योजना में कृषि उत्पादन के निर्यात का आयोजन नहीं नहीं किया गया। औद्योगिक विकास के लिए विदेशी पूँजीगत वस्तुओं की बड़ी मात्रा में *आवश्यकता होती है जिसको क्रय करने के लिए कृषि उत्पादन के निर्यात द्वारा* अर्जित विदेशी विनिमय का उपयोग किया जा सकता था। इसके साथ कृषक उद्योगों को एक ओर कच्चा माल देता है और दूसरी ओर उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का उपयोग भी करता है। औद्योगिक उत्पादन का उपभोग करने के लिए कृषक की आय में वृद्धि होना आवश्यक होता है। कृषि के विकास द्वारा ही कृषक की आय की भी वृद्धि सम्भव है। इस प्रकार औद्योगिक तथा कृषि विकास में इतना अन्तर रखना यथोचित प्रतीत नहीं होता।

(३) **अर्थ-साधनों का भ्रमपूर्ण अनुमान**—योजना के अर्थ-साधनों में पौण्ड पावना से १,००० करोड़ रु० प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया। यद्यपि पौण्ड पावना इस राशि से भी अधिक अर्जित हो गया था परन्तु इसका योजना की आवश्यकतानुसार ब्रिटेन द्वारा शोधन हेतु कोई आश्वासन नहीं था। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् पुनर्निर्माण के कार्यक्रमों की आवश्यकताओं के कारण ब्रिटेन पौण्ड-पावना का शोधन काफी समय तक करने में असमर्थ था। योजना में ३,४०० करोड़ रु० मुद्रा प्रसार द्वारा प्राप्त करने का आयोजन था। इस प्रकार की व्यवस्था मुद्रा-स्फीति

के दोषों से किसी प्रकार मुक्त नहीं कही जा सकती है। योजना में मूल्यों की स्थिरता के लिए किसी विशेष नीति का निश्चय नहीं किया गया। इसी प्रकार ७०० करोड़ रु० की जो राशि विदेशी सहायता द्वारा प्राप्त होने का अनुमान था, वह भी भविष्य में उपस्थित होने वाली आर्थिक तथा राजनीतिक घटनाओं पर निर्भर थी। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् सभी देशों के पुनर्निर्माण कार्य में व्यस्त होने की सम्भावना थी और इन देशों द्वारा इतनी बड़ी मात्रा में विदेशी सहायता प्रदान किया जाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था। दूसरी ओर, विदेशी सहायता की उपलब्धि भारत में नवीन स्थापित राष्ट्रीय सरकार की नीतियों पर भी निर्भर होती। व्यापारिक निर्यात द्वारा ६०० करोड़ रुपए की राशि प्राप्त होना भी निश्चित प्रतीत नहीं होता क्योंकि आर्थिक विकास की मध्यावधि में अधिक निर्यात-वृद्धि की सम्भावना नहीं होती।

(४) गृह उद्योगों का विकास—गृह उद्योगों के विकास के सम्बन्ध में योजना में निश्चित कार्यक्रमों का आयोजन नहीं किया गया। योजना में वृहद् उद्योगों के विकास को विशेष महत्व दिया गया तथा गृह उद्योगों के विकास को केवल दो उद्देश्यों के कारण ही सम्मिलित किया गया था—प्रथम, पूँजी की आवश्यकताओं को कम रखना तथा द्वितीय रोजगार के अवसर प्रदान करना। इससे यह प्रतीत होता है कि नियोजकों ने लघु तथा गृह उद्योगों को विकास के प्रारम्भिक काल में विकास की कठिनाइयों तथा असुविधाओं को दूर रखने के लिए अस्थायी स्थान दिया जबकि इन उद्योगों का अर्थ-व्यवस्था में स्थायी स्थान मिलना चाहिए था क्योंकि इनके द्वारा उत्पादन के साधनों के विकेन्द्रीयकरण तथा आय के समान वितरण को प्रोत्साहन मिलता है।

(५) यातायात—योजना में भारतीय जहाजी यातायात तथा जहाजरानी-निर्माण उद्योग के विकास हेतु पर्याप्त आयोजन नहीं किए गये। वायु-यातायात को भी योजना में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया गया था।

(६) अन्य—इस योजना के समस्त अनुमान तथा गणनाएँ महायुद्ध के पूर्व के मूल्यों पर किए गये थे जबकि यह स्पष्ट था कि योजना का कार्यान्वित किया जाना महायुद्धोपरान्त ही सम्भव था। महायुद्ध के आर्थिक तथा राजनीतिक प्रभावों को दृष्टिगत करते हुए योजना के अनुमानों में आवश्यक समायोजन किए जाने चाहिए थे। योजना में पुनर्वास की आवश्यकताओं के लिए कोई आयोजन नहीं किया गया तथा सामाजिक सुरक्षा की योजनाएँ जो नियोजन का मूलाधार होनी चाहिए, को भी योजना में कोई स्थान प्राप्त नहीं था।

जन-योजना (The People's Plan)

जन-योजना भारतीय श्रम संघ (Indian Federation of Labour) की युद्धोपरान्त पुनर्निर्माण समिति (Post war Reconstruction Committee) द्वारा निर्मित की गयी थी। इस समिति के प्रमुख श्री एम० एन० राय थे, अतः इस योजना

को साम्यवादी योजना भी कहते हैं। इस योजना में साम्यवादी सिद्धान्तों के लक्षणों का समन्वय किया गया था और नियोजकों ने योजना के कार्यक्रमों को श्रमिकों के दृष्टिकोण से बनाने का प्रयत्न किया था। इस योजना के तीन प्रमुख सिद्धान्त हैं—

(१) लाभ हेतु (Profit Motive) पर आधारित अर्थव्यवस्था समाज के हितों के विरुद्ध होती है

(२) लाभ हेतु व्यवस्था पर राज्य को कठोर नियन्त्रण रखना चाहिए तथा

(३) उत्पादन उपभोग के लिए होना चाहिए न कि विनिमय के लिए।

जन योजना सन् १९४४ में निर्मित तथा प्रकाशित की गयी और इसके कार्यक्रमों को रैडिकल डमोक्रेटिक पार्टी की सहमति प्राप्त हुई। इस योजना के निर्माणकर्त्ताओं के विचार में भारत की मूलभूत समस्या निर्धनता थी जिसे अधिक उत्पादन तथा समान वितरण द्वारा ही दूर किया जा सकता था। राष्ट्र की समस्त आर्थिक कठिनाइयों का कारण पूँजीवाद बताया गया। पूँजीवाद में उत्पादन जनसमुदाय की क्रय शक्ति पर निर्भर रहता है क्योंकि उतनी ही वस्तुएं उत्पादित की जाती हैं जितनी लाभ सहित विक्रय की जा सकती हैं। विक्रय योग्य वस्तुओं की मात्रा भारत की जनता की निर्धनता के कारण सीमित रहती थी। इस प्रकार पूँजीवाद में धन का अधिकतम उत्पादन नहीं किया जा सकता है तथा पूँजीवादी व्यवस्था में धन का समान वितरण भी सम्भव नहीं हो सकता है। पूँजीवाद में जनसमुदाय के जीवन स्तर में वृद्धि उसी सीमा तक हो सकती है जहाँ तक क्रय शक्ति के वितरण का आयोजन किया गया हो। क्रय शक्ति का वितरण पारिश्रमिक तथा कच्चे माल के क्रय के माध्यम द्वारा किया जाता है। ये दोनों तत्व उत्पादन पर निर्भर रहते हैं। इस प्रकार यह पूँजीवाद का एक दोषपूर्ण चक्र होता है। पूँजीवाद के दोषों के निवारणार्थ इस योजना में यांत्रिक उत्पादन पर जोर दिया गया था जिसका उद्देश्य जनसमुदाय की क्रय शक्ति में वृद्धि करना था। प्रभावशील माँग उत्पन्न करने का उद्देश्य न होकर मानवीय आवश्यकताओं का अनुमान लगाकर तदनुसार उत्पादन करने का उद्देश्य था।

उद्देश्य—योजना का मूल उद्देश्य दस वर्ष की अवधि में जनता की तत्कालीन आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उत्पादन में वृद्धि तथा उत्पादित वस्तुओं का समान वितरण किया जाना था। योजना में इसी लिए उत्पादन के सभी क्षेत्रों का विकास करने का आयोजन किया गया था। नियोजकों के विचार में जनसमुदाय की क्रय शक्ति में वृद्धि करने के लिए कृषि का विकास अधिक महत्वपूर्ण था क्योंकि भारत की ७०% जनसंख्या कृषि-व्यवसाय से जीविकोपार्जन करती थी। कृषि को लाभप्रद व्यवसाय बनाने को नियोजकों ने सर्वोच्च प्राथमिकता दी। इनके विचार में कृषि के विकास द्वारा ही श्रमिकों में अर्द्ध रोजगारी तथा बेरोजगारी को दूर किया जा सकता था। भारतीय जनसंख्या की निर्धनता का निवारण

करने के लिए कृषि विकास को ही योजना का आधार बताया गया, दूसरी ओर औद्योगिक विकास हेतु इस प्रकार से आयोजन किये गये कि उसके द्वारा जनसमुदाय की उपभोग-सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। निजी क्षेत्र में संचालित उद्योगों पर राज्य के नियन्त्रण को आवश्यक बताया गया। योजना का इस प्रकार मुख्य उद्देश्य दस वर्षों में जनसंख्या की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करना था। "इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए राष्ट्र के वर्तमान धन के उत्पादन में वृद्धि करना आवश्यक होगा। नियोजित व्यवसाय का उद्देश्य राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को पर्याप्त पौष्टिक भोजन पर्याप्त वस्त्र, अच्छे निवास-स्थान रोग तथा अज्ञान से स्वतन्त्रता प्रदान कराने के लिए उत्पादन में वृद्धि करना होना चाहिए।"[1]

कृषि—योजना में कृषि को सर्वाधिक महत्व दिया गया है और कृषि-उत्पादन में वृद्धि करने के लिए प्राचीन भूमि प्रबन्धन (Land Tenure) में आवश्यक परिवर्तन जमींदारी अधिकारों की समाप्ति तथा भूमि के राष्ट्रीयकरण को आवश्यक बताया गया। राज्य तथा कृषक में प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करना तथा मध्यस्थों को समाप्त करना कृषि विकास का मुख्य कार्यक्रम था। योजना में भूमिधरों (Landlords), जमींदारों तथा अन्य लगान प्राप्त करने वालों को १७२५ करोड़ रु० मुआवजा देने का आयोजन किया गया था। यह क्षतिपूर्ति ३% स्वतः शोधन होने वाले ८० वर्षीय बॉण्डों का निर्गमन करके किया जाना था। योजना में ग्रामीण ऋण को अनिवार्यतः घटाने की सिफारिश की गयी। इन ऋणों को राज्य को ले लेना था और इसके लिए राज्य को लगभग ७५० करोड़ रु० का उत्तरदायित्व लेना था।

इसके अतिरिक्त योजना में कृषि के उपभोग में आने वाली भूमि में दस वर्षों में १० करोड़ एकड़ की वृद्धि करने का आयोजन भी किया गया था। गहरी (Intensive) कृषि के लिए सिंचाई के साधनों में ४००% की वृद्धि करने तथा अच्छे बीज और खाद का भी आयोजन किया गया था। इसमें सामूहिक तथा राजकीय कृषि को स्थान दिया गया। प्रत्येक ८ या १० हजार एकड़ कृषि-योग्य भूमि के मध्य में एक राजकीय फार्म स्थापित करने की सिफारिश की गयी। इस फार्म में आधुनिक यन्त्रों का उपयोग किया जाना था तथा ये फार्म इन यन्त्रों को आसपास के कृषकों को किराये पर दें, इसका भी आयोजन था। प्रत्येक फार्म पर विशेषज्ञ तथा योग्य व्यक्तियों को रखे जाने तथा शोधनकार्य-संस्था की स्थापना करने की भी सिफारिश थी।

---

1 In order to satisfy these needs it will be necessary to expand the present production of wealth of country To achieve this expansion of production with the object of ensuring to every body in the country adequate nutritive food sufficient clothing a decent shelter and freedom from disease and ignorance should be the purpose of the planned economy (*People's Plan* published by M N Roy p 6)

इन राजकीय फार्मों पर कृषकों को प्रशिक्षण प्रदान करने का भी प्रबन्ध किया जा सकता था। सामूहिक कृषि के लिए जनसमुदाय पर किसी दबाव तथा वैधानिक वाञ्छनीयता को उचित नहीं बताया गया। कृषकों को सामूहिक कृषि के लाभ समझाकर ही सामूहिक फार्मों की स्थापना की जानी थी। कृषि विकास के लिए २६५० करोड रु० का व्यय निर्धारित किया गया।

औद्योगिक विकास—योजना म उपभोक्ता उद्योगों को विशेष महत्व प्रदान किया गया। नियोजकों के विचार म जनसमुदाय की आवश्यक वस्तुओं की माँग का पूर्ति करना अत्यन्त आवश्यक था तथा नियोजित व्यवस्था म इसकी पूर्ति सर्वप्रथम होनी चाहिए थी। वस्त्र चमड़ा शक्कर कागज रसायन, तम्बाकू फर्नीचर आदि उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों के विकास के लिए ३,००० करोड रु० का आयोजन किया गया। आधारभूत उद्योगों म विद्युत शक्ति खनिज तथा धातुशोधन लोहा तथा इस्पात भारी रसायन मशीन तथा मशीनों के औजार सीमेंट रेल के इंजिन तथा डिब्बे आदि उद्योग सम्मिलित किए गये। इन उद्योगों के विकास पर २ ६०० करोड रुपया व्यय का अनुमान था। योजनाकाल म स्थापित किए जाने वाले नवीन उद्योगों म राज्य को अर्थ लगाना था तथा इन पर राज्य का नियन्त्रण तथा अधिकार होना था। निजी क्षेत्र के उद्योगों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाना था परन्तु इनके कार्य क्षेत्र पर राज्य द्वारा नियन्त्रण करना आवश्यक बताया गया। राज्य को वस्तुओं का मूल्य निर्धारण करना था तथा लाभ की दर अधिक से अधिक ३% रखनी थी। योजना म गृह तथा लघु उद्योगों के विकास का विशेष महत्व नहीं दिया गया। श्रमिक की उत्पादन शक्ति म वृद्धि करने के लिए मशीनों के उपयोग का अधिक महत्व दिया गया था और इसी कारण लघु उद्योगों को अधिक महत्व नहीं दिया गया था और इनके विकास के लिए योजना म आयोजन भी नहीं किया गया।

यातायात—योजना म रेलवे सडक तथा जल यातायात के विकास का विशेष महत्व दिया गया। यातायात के साधनों म तीव्रता से वृद्धि करने का आयोजन किया गया जिससे वस्तुओं का यातायात ग्रामों तथा नगरों के मध्य सुविधापूर्वक किया जा सके। दस वर्षों म रेल यातायात म २४ ००० मील तथा सडक यातायात म ४५० ००० मील की वृद्धि करने का आयोजन किया गया। जहाजी यातायात के विकास के लिए १५५ करोड रुपया निर्धारित किया गया।

अर्थ प्रबन्धन—इस योजना म दस वर्षों म कुल १५ ००० करोड रु० व्यय होने का अनुमान था जिसका विवरण तालिका स० ५० के अनुसार किया गया था।

उपर्युक्त १५ ००० करोड रु० की राशि का प्रबन्ध तालिका स० ५१ के अनुसार किया जाना था।

नियोजकों के विचार म अर्थ प्रबन्धन म कोई विशेष कठिनाई उपस्थित होने का कोई कारण नहीं था क्योंकि राष्ट्रीय नियोजन अधिकारी को जनता के संचित

तालिका सं० ५०—जन-योजना का व्यय

मद	व्यय (करोड़ रुपयों में)
कृषि	२,९५०
उद्योग	५,६००
गृह निर्माण	३,१५०
यातायात	१,५००
शिक्षा	१,०४०
स्वास्थ्य	७६०
	योग १५,०००

तालिका सं० ५१—जन-योजना का अर्थ प्रबन्धन

आय का माध्यम	आय (करोड़ रुपयों में)
पौण्ड-पावना	४५०
कृषि-आय	१०,८१६
औद्योगिक आय	२,८३४
प्रगतिशील अर्थ-व्यवस्था (सम्पत्ति-कर, उत्तराधिकार-कर, मृत्यु-कर आदि)	८१०
भूमि का राष्ट्रीयकरण	९०
	योग १५,०००

अतिरिक्त धन को विनियोजन के लिए प्राप्त करने का अधिकार होगा। इसके निष्कर्ष में योजना के कार्यक्रमों के फलस्वरूप, भारत का जनसमुदाय वर्तमान जीवन-स्तर की तुलना में चार गुने अच्छे जीवन-स्तर का लाभ प्राप्त कर सकेगा।

आलोचना—योजना में कृषि-विकास को विशेष महत्व दिया गया है परन्तु कृषि विकास हेतु औद्योगीकरण भी आवश्यक होता है क्योंकि कृषि में आधुनिक मशीनों तथा यन्त्रों के उपयोग से उत्पन्न अतिरिक्त श्रम को रोजगार देना भी आवश्यक है। भारत में कृषि-भूमि पर जनसंख्या का दबाव अत्यधिक है और कृषि-विकास के लिए इस अतिरिक्त श्रम को अन्य व्यवसायों में रोजगार का आयोजन करना आवश्यक है। दूसरी ओर, कृषि के लिए मशीनों तथा यन्त्रों की उपलब्धि के लिए राष्ट्र में आधारभूत उद्योगों की स्थापना करना आवश्यक होता है। योजना में आधारभूत उद्योगों की अपेक्षा उपभोग्य-उद्योगों को प्राथमिकता दी गयी। उपभोग्य-वस्तु उद्योगों के विकास के लिए भी उत्पादक मशीनों तथा पूँजीगत वस्तुओं की आवश्यकता होती है जिनको बड़ी मात्रा में आयात करना न तो न्यायोचित होता है और न सम्भव ही। किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास का आधार आधुनिक युग में उत्पादक तथा पूँजीगत वस्तुओं के उद्योग होते हैं और इन्हें ही सर्वोच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिए।

योजना के कृषि विकास तथा उपभोक्ता उद्योगो के विकास क लिए भी पहले आधार भूत तथा पूँजीगत वस्तुओ के उद्योगो की बडी मात्रा म स्थापना का आयोजन किया जाना चाहिए।

योजना म एक ओर कृषि म यन्त्रों के प्रयोग को महत्व दिया गया तथा दूसरी ओर, गृह एव लघु उद्योगो क विकास को कोई स्थान नही दिया गया। इस प्रकार बेरोजगारी के बढ़ने की सम्भावना पर कोई विचार नही किया गया और न रोजगार क अवसरो म पर्याप्त वृद्धि का ही आयोजन किया गया है।

योजना म १० ८१६ करोड रुपया पुनर्विनियोजन हेतु कृषि से प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया है। कृषि क पुनर्गठन तथा यन्त्रो क उपयोग क कारण पूजीगत व्यय की राशि अत्यधिक होगी और इसके पश्चात् भी कृषि से इतनी बडी राशि प्राप्त करने की आशा करना उचित प्रतीत नही होता।

विश्वेश्वरय्या योजना (Vishveswaraya s Plan)

यह योजना सन् १९४६ म अखिल भारतीय निर्माणक सगठन (All India *Manufacturers Association*) द्वारा भारत का युद्धोपरान्त पुनर्निर्माण करने के लिए प्रकाशित की गयी। इसके मुख्य उद्देश्य जनसमुदाय के जीवन स्तर म वृद्धि करना तथा देश की आर्थिक कुशलता को उस सीमा तक विकसित करना था कि सामान्य नागरिक को अपनी जीविकोपार्जन योग्य रोजगार प्राप्त हो सके। इस योजना म प्रत्येक नागरिक का राजनीतिक कर्त्तव्य—जन प्रतिनिधि सरकार की स्थापना करना आर्थिक कर्त्तव्य—आय तथा उत्पादन म पर्याप्त वृद्धि करने के लिए कार्यक्षमता म वृद्धि करना तथा सामाजिक कर्त्तव्य—राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र म यथोचित जीवन स्तर आराम मनोरजन आदि का प्रबन्ध करना बताये गये थे।

उद्देश्य—इस योजना म सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए बढ़ती हुई जनसख्या पर अप्राकृतिक तरीको से रोक लगाना जनसमुदाय के हितार्थ अधिक शिक्षा का आयोजन करना कृषि क क्षेत्र से अतिरिक्त जनसख्या को हटाकर उनके लिए अन्य व्यवसायो म रोजगार का आयोजन करना ग्रामीण क्षेत्र म प्रतिनिधि सरकार (Village Self government) की स्थापना करना आदि का आयोजन किया गया था।

इस योजना म एक राष्ट्रीय पुनर्निर्माण मण्डल (National Reconstructive Board) की स्थापना की सिफारिश की गयी थी। इस मण्डल म ६ जनता के प्रतिनिधि तथा ३ शासकीय अधिकारी रखने की सिफारिश की गयी था। इस मण्डल को विभिन्न क्षेत्रों का अध्ययन तथा उनका विश्लेषण करता था।

इस मण्डल को प्रत्येक क्षेत्र के लिए समितियाँ आदि नियुक्त करने तथा उनम काय करने क लिए कर्मचारियो का चयन करने आदि का अधिकार था। इसका मुख्य

उद्देश्य लोगों को और विशेषकर जननेताओं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना था कि वे उत्तरदायी स्थानों पर कार्य कर सकें।

योजना में एक राष्ट्रीय आर्थिक संस्था की स्थापना की भी सिफारिश की गयी। यह संस्था पंचवर्षीय योजना का संचालन करती है। प्रथम पाँच वर्षों में १,००० करोड़ रु० से कम राशि का विनियोजन नहीं होना था। इस संस्था को उद्योगपतियों को पिछड़े हुए उद्योगों के विकास के लिए सहायता करना था। कृषि तथा उद्योग के उत्पादन में १००% वृद्धि ७ से १० वर्षों में करने का लक्ष्य रखा गया जिससे राष्ट्रीय आय २,५०० करोड़ रु० से बढ़कर ५,००० करोड़ रु० हो जाय। औद्योगिक क्षेत्र के उत्पादन को ४०० करोड़ रु० से बढ़ाकर २,००० करोड़ रु० करने का लक्ष्य था। योजना में यन्त्र-निर्माण नवीन उद्योगों की स्थापना शक्ति-उत्पादन के यन्त्रों का निर्माण तथा युद्ध-सामग्री के उद्योगों को भी विकसित करने की सिफारिश की गयी थी। उद्योगों के पश्चात् योजना में कृषि को प्राथमिकता दी गयी थी। योजना में एक पृथक् कृषि विभाग जो एक मन्त्री के अधीन हो, की स्थापना करने की सिफारिश थी।

इसका समस्त व्यय निम्न प्रकार विभाजित किया गया—

तालिका सं० ४२—विश्वेश्वरैया-योजना का व्यय

(करोड़ रु० में)

मद	व्यय
उद्योग	८९०
कृषि	२००
यातायात	११०
शिक्षा	४०
स्वास्थ्य	४०
गृह निर्माण	१९०
अन्य	३०
योग	१,४००

इस प्रकार योजना में तीन संस्थाओं की स्थापना की सिफारिश की गयी जिनको पारस्परिक सहयोग तथा सामजस्य के साथ योजना को संचालित करना था। पुनर्निर्माण आयोग को एक नये प्रगतिशील संविधान के निर्माण का काम करना था। आर्थिक परिषद (Economic Council) को राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र में आर्थिक विकास की देखभाल करना था तथा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण हेतु प्रयत्न करने थे।

गाँधीवादी योजना

मूल सिद्धान्त—गाँधीवादी योजना गाँधीजी की आर्थिक विचारधाराओं पर आधारित थी श्रीमन्नारायण द्वारा सन् १९४४ में निर्मित तथा प्रकाशित की गयी।

गाँधीजी ने भारत की आर्थिक समस्याओ तथा उनकी अवस्था के सम्बन्ध म जो भाषण तथा लेख समय समय पर दिये तथा लिखे उनको समन्वित करके एक योजना का रूप दिया गया और इस योजना को ही गाँधीवादी योजना कहा जाता है। वास्तव म, गाँधीजी द्वारा स्वय किसी योजना का निर्माण नही किया गया। गाँधीवादी अर्थ व्यवस्था के सिद्धान्त अन्य सभी मान्य अर्थशास्त्रियो की विचारधाराओ तथा सिद्धान्तो से भिन्न हैं। गाँधीवादी अर्थ व्यवस्था के चार मुख्य अग हैं—

(१) सादगी (Simplicity)
(२) अहिंसा (Non violence)
(३) श्रम का महत्व (Sanctity of Labour)
(४) मानवीय मूल्य (*Human Value*)।

सादगी द्वारा जीवन की कभी तृप्त न होने वाली इच्छाओ पर आत्म प्रतिरोध (Self Restraint) लगाया जा सकता है और मनुष्य की निरन्तर बढ़ने वाली भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए योजना के समस्त साधनो का व्यय करने की आवश्यकता नही होती एव आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था का इस प्रकार सगठित किया जा सकता है कि जनसमुदाय के सामाजिक तथा नैतिक आदर्शों की पूर्ति हो सके। भारत का रहन सहन भौतिक सम्पन्नता पर ही आधारित नही है इसमे आत्मा के उत्थान तथा चरित्र निर्माण को भौतिक सम्पन्नता म अधिक महत्व दिया जाता है। *गाँधीवादी योजना म इस प्रकार की व्यवस्था के निर्माण का लक्ष्य था जिसम* आर्थिक सम्पन्नता के साथ नैतिक उन्नति भी हो सके।

गाँधीजी के विचार म पूजीवाद मानव जीवन का विभिन्न प्रकार से शोषण करता है। पूजीवादी अर्थ व्यवस्था म मशीन से उत्पादन होता है श्रमिक वर्ग का शोषण होता है तथा पूँजीपति श्रमिक वर्ग के शोषण द्वारा ही पूजी का सचय करता है। इस प्रकार पूँजीपतियो द्वारा पूजी एकत्रित करने के लिए गाँधीजी के विचार म हिंसक साधनो का उपयोग होता है। इसके साथ ही, पूजीपति अपनी सचित पूँजी की सुरक्षा के लिए भी हिंसक साधनो को अपनाता है। अर्थ व्यवस्था से इस हिंसा को दूर करने के लिए पूजीवाद की समाप्ति आवश्यक है। उत्पादन तथा वितरण का विकेन्द्रीयकरण तथा इसके द्वारा प्रजातान्त्रिक समाज का निर्माण किया जाना चाहिए।

श्रम को अर्थ व्यवस्था म उचित महत्व देने के लिए समस्त मानव-समाज को लाभप्रद *कार्य म लगाना गाँधीवादी योजना का मुख्य उद्देश्य है। समाज के साधनो* तथा अवसरों का समान वितरण होना भी आवश्यक बताया गया है। गाँधीजी आर्थिक क्रियाओ को सदाचार तथा मानवीय सम्मान से पृथक नहीं समझते थे। उनका विचार था कि आर्थिक क्रियाओ को हम केवल साधन समझना चाहिए जिनके द्वारा मानव कल्याण के उद्देश्यो की पूर्ति होनी है। समाज की आर्थिक क्रियाओ का इस

प्रकार संगठित किया जाना चाहिए कि मानव में मानवता का अंश न्यून अथवा समाप्त न हो जाय।

गांधीजी के विचार में औद्योगीकरण भौतिक सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयत्न मात्र है, जिससे मानवीय सम्मान तथा चरित्र का ह्रास होता है, इसलिए उन्होंने स्वयं ग्राम इकाइयों के विकास एवं उत्थान को अधिक महत्व बताया। गांधीवादी अर्थ व्यवस्था में यंत्र को विशेष स्थान नहीं दिया जाता। चरखा एवं कुटीर उद्योगों के विकास को विशेष महत्व दिया गया है।

उद्देश्य—गांधीवादी योजना एक दसवर्षीय योजना थी जिसका अनुमानित व्यय ३ ५०० करोड़ रुपए था। यह योजना भौतिक एवं सांस्कृतिक उत्थान के स्तर की पूर्ति के लिए बनायी गयी थी। इसका मुख्य उद्देश्य ११ वर्षों में जनसमुदाय के भौतिक तथा सांस्कृतिक जीवन में उन्नति करना था। योजना में मुख्यतः देश के . . . ग्रामों में नवीन जीवन संचार करना था और इसलिए वैज्ञानिक कृषि तथा गृह उद्योगों के विकास को विशेष महत्त्व दिया गया। योजना का मुख्य लक्ष्य जनसमुदाय के जीवन-स्तर को निर्धारित न्यूनतम सीमा तक लाना था। न्यूनतम जीवन-स्तर में निम्नलिखित सुविधाएँ सम्मिलित की गयी थीं—

(१) नियमित भोजन जिससे २६०० कैलोरी प्रति दिन प्रति व्यक्ति का प्रबंध हो तथा जिसकी लागत ५० रु० प्रति मास (युद्ध के पूर्व मूल्यों के आधार पर) ग्रामीण क्षेत्रों में हो।

(२) प्रत्येक व्यक्ति को ३० गज वस्त्र वार्षिक प्राप्त हो जिसकी लागत ३ आना प्रति गज से ४ रु० वार्षिक हो।

(३) घरेलू औषधि एवं अन्य सामान्य व्ययों पर ८ रु० प्रति वर्ष व्यक्ति का प्रबंध हो।

इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का न्यूनतम वार्षिक व्यय ७२ रु० माना गया और योजना के अनुमानों के आधार पर उस समय की प्रति व्यक्ति आय का जो १८ रु० थी, ४ गुना बढ़ाने की आवश्यकता बतायी गयी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए योजना में कृषि तथा गृह उद्योगों का वैज्ञानिक स्तर पर विकास करने का आयोजन किया गया।

कृषि—खाद्यान्नों में राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता तथा अधिकतम क्षेत्रीय आत्मनिर्भरता के उद्देश्यों की पूर्ति के आधार पर कृषि विकास की योजना निर्मित की गयी थी। इसके लिए जमींदारी तथा रैय्यतवारी को हटाकर ग्रामवादी बन्दोबस्त (Village Settlement) का आयोजन किया गया। ग्रामवादी भूमि प्रबन्धन में सम्पूर्ण ग्राम-समाज सामूहिक रूप से ग्राम की भूमि का लगान राज्य को देने का उत्तरदायी था। ग्राम पंचायत ग्रामीणों में भूमि का वितरण करे तथा उनसे लगान वसूल करे। लगान उत्पादित अन्न के रूप में लिया जाय, जिसकी मात्रा उत्पादित फसल की है

अथवा ⅞ भाग हो। सरकार धीरे धीरे भूमि का मुआवजा देकर उस पर अधिकार प्राप्त कर ले। *यह भी सुझाव दिया गया था कि उत्तराधिकार में प्राप्त हुई भूमि की* ५०% पूंजीगत लागत उत्तराधिकार-कर के रूप में ली जा सकती है। योजना में भूमि के ऐच्छिक एकीकरण सहकारी कृषि आदि को भी स्थान दिया गया।

ग्रामीण ऋण की समाप्ति के लिए विशेष न्यायालयों की स्थापना का सुझाव था। ये न्यायालय ग्रामीण ऋणों की छानबीन करें तथा अनुचित ऋणों की राशि को कम कर दें और दस वर्ष से पुराने ऋणों को रद्द कर दें। ऋणदाताओं को सरकार २० वर्षीय बाण्ड प्रदान करे तथा इन बाण्डों का भुगतान कृषक से किश्तों में प्राप्त *किया जाय। कृषक को साख सम्बन्धी अन्य सुविधाएँ* भी प्रदान की जाएँ। निजी रूप में रुपया उधार देने के व्यवसाय को प्रतिबन्धित कर दिया जाय। योजना में सिंचाई की सुविधाओं को दुगुना करने के लिए १७५ करोड़ रुपये अनावर्तक तथा ५ करोड़ रुपये आवर्तक व्यय का आयोजन किया गया। योजना में ४५० करोड़ रुपये भूमि-सुधार भूमि को कृषि योग्य बनाने भूमि कटाव को रोकने आदि पर व्यय किए जाने का आयोजन किया गया था। कृषि विकास के विभिन्न कार्यक्रमों पर १२१५ करोड़ रुपये का व्यय किए जाने का प्रबन्ध किया गया था।

ग्रामीण उद्योग—ग्रामीण समाज को आत्मनिर्भरता के स्तर पर लाने के लिए गृह उद्योगों के पुनर्स्थापन तथा विकास का आयोजन किया गया था। कातना तथा बुनना कृषि के सहायक उद्यम समझे गये एवं प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं की आवश्यकतानुसार वस्त्रोत्पादन करना आवश्यक बताया गया। अन्य गृह उद्योगों जैसे कागज बनाना तेल निकालना धान कूटना साबुन बनाना दियासलाई बनाना गुड़ बनाना तथा अन्य उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों के विकास का भी आयोजन किया गया। गृह उद्योगों के विकास हेतु राज्य को शिल्पी की निम्नप्रकारेण सहायता करना आवश्यक था—

(१) सहकारी समितियों को कम ब्याज पर साख प्रदान करना
(२) कुटीर उद्योगों को आर्थिक सहायता प्रदान करना
(३) गृह उद्योगों को वृहद् उद्योगों से संरक्षण प्रदान करना
(४) कच्चे माल के क्रय तथा निर्मित माल के विक्रयार्थ सहकारी समितियों की स्थापना करना
(५) तान्त्रिक प्रशिक्षण की सुविधा प्रदान करना।

आधारभूत उद्योग (Basic Industries)—योजना में अग्रलिखित वृहद् उद्योगों के विकास का आयोजन किया गया—

(१) रक्षा सम्बन्धी उद्योग
(२) जलविद्युत शक्ति उद्योग
(३) खानें खोदना धातुशोधन तथा वन उद्योग

(४) मशीन तथा मशीनों के औजार बनाने के उद्योग,

(५) वृहद् इञ्जीनियरिंग उद्योग तथा

(६) बड़े रसायन उद्योग।

वृहद् उद्योगों को इस प्रकार नियमित रूप से सञ्चालित किया जाय कि ये गृह उद्योगों से प्रतिस्पर्धा करने के स्थान पर गृह उद्योगों के विकास में सहायक हों। इन आधारभूत उद्योगों का राज्य द्वारा सञ्चालित किया जाय। सरकार द्वारा अधिकार तथा नियन्त्रण प्राप्त करने के समय तक ये उद्योग अनाक साहसियों (Private Entrepreneurs) द्वारा सञ्चालित रहें परन्तु राज्य इनके द्वारा निर्मित वस्तुओं के मूल्य साहसी का लाभ तथा श्रम-व्यवस्था पर नियन्त्रण रखे। वृहद् उद्योगों का विकेन्द्रीयकरण आर्थिक सामाजिक तथा सनिक आवश्यकताओं के आधार पर किया जाय।

अर्थ व्यवस्था—इस योजना का समस्त आवर्तक व्यय २०० करोड़ रुपये तथा अनावर्तक व्यय ३,५०० करोड़ रुपये निश्चित किया गया। इसका विभिन्न मदों पर वितरण इस प्रकार था—

तालिका स० ४३—गांधीवादी योजना का व्यय

व्यय (करोड़ रुपयों में)

मद	अनावर्तक	आवर्तक
कृषि	१,१७५	४०
ग्रामीण उद्योग	३५०	—
आधारभूत तथा वृहद् उद्योग	१,०००	—
यातायात	४००	१५
जन-स्वास्थ्य	२६०	४५
शिक्षा	२९५	१००
अन्वेषण	२०	—
	योग ३,५००	२००

कृषि पर व्यय होने वाली निर्धारित राशि द्वारा कृषि का विकास इतना होने की सम्भावना थी कि कृषि आय दस वर्षों में दुगुनी हो जाय। यह भी अनुमान लगाया गया कि ग्रामीण उद्योगों के विकास के लिए प्रति ग्राम १,००० रु० की आवश्यकता होगी और यह राशि राज्य द्वारा ग्राम-पचायतों अथवा सहकारी समितियों को दीर्घकालीन ऋण के रूप में प्रदान की जानी थी जो २० वर्षों में देय होनी थी। यह भी अनुमान था कि लगभग ५०० करोड़ रु० राज्य द्वारा निजी साहसियों तथा निगमों द्वारा सञ्चालित आधारभूत उद्योगों को क्रय करने पर व्यय होगा तथा शेष ५०० करोड़ रु० आधारभूत तथा रक्षा-सम्बन्धी उद्योगों के विकास पर व्यय किया जायगा। रेल-यातायात में २५% वृद्धि तथा ग्रामीण क्षेत्रों में २,००,००० मील पक्की अतिरिक्त सड़कें बनाने का लक्ष्य रखा गया। भारतीय तथा विदेशी जहाजी कम्पनियों को भी

व्यय करने का आयोजन किया गया। ग्रामीण चिकित्सालयों तथा नगरो म प्रत्येक १०,००० व्यक्तियों पर एक *अस्पताल स्थापित करने का लक्ष्य रखा गया था।* शिक्षा के व्यय को पाँच भागो म विभाजित किया गया—बेसिक शिक्षा माध्यमिक शिक्षा, प्रौढ शिक्षा विश्वविद्यालयीन शिक्षा तथा प्रशिक्षण।

योजना की निर्धारित अनावर्तक राशि का तीन साधनो—आन्तरिक ऋण तथा बचत मुद्रा प्रसार तथा अतिरिक्त कर द्वारा प्राप्त करने का लक्ष्य था। आवश्यक व्यय की राशि को राजकीय उद्योगो तथा जनसेवाओ की आय द्वारा प्राप्त किया जाना था। विभिन्न साधनो से *निम्न प्रकार अथ प्राप्त होने का अनुमान था*—

तालिका स० ५४—गाधीवादी योजना के अर्थ-साधन

साधन	आय (करोड रु० म)
आन्तरिक ऋण	२ ०००
मुद्रा प्रसार	१ ०००
कर	५००
योग	३ ५००

आलोचना—इस योजना के दो पक्ष हैं—ग्रामीण तथा नागरिक। इन दोनों ही क्षेत्रों का विकास विभिन्न आधारो पर करने का आयोजन किया गया। ग्रामीण क्षेत्र म परम्परागत जीवन को बनाये रखने का सुझाव था परन्तु कुछ आधुनिक सुविधाओ मे वृद्धि करने का भी आयोजन किया गया। दूसरी ओर नागरिक क्षेत्र म *राज्य द्वारा सचालित वृहद् तथा आधारभूत उद्योगो के विकास का आयोजन था।* नगर निवासियो के जीवन का तदनुसार आधुनिक विकास होना भी अनिवार्य था। इस प्रकार आधुनिक नागरिक जीवन तथा परम्परागत ग्रामीण जीवन म सामजस्य स्थापित करना एक कठिन समस्या का रूप ग्रहण कर सकती थी जिसके हल के लिए योजना म प्रकाश नहीं डाला गया।

योजना म व्यक्तिगत आधारभूत स्वतन्त्रताओ को अक्षुण्ण बनाये रखने को विशेष महत्व दिया गया इसीलिए कठोर आर्थिक प्रबन्धों तथा नियन्त्रणो को योजना में स्थान नहीं दिया गया। आर्थिक समानता के लक्ष्य की पूर्ति हेतु आर्थिक नियन्त्रणो को नही प्रत्युत आत्म प्रतिरोध एव सामान्य चरित्र निर्माण ही समुचित समझे गये थे।

ग्रामीण क्षेत्र म आत्मनिर्भरता के स्तर पर पहुँचने के लिए ग्रामीण सर्वतो मुखी उन्नति की *आवश्यकता थी और इस कार्य के लिए प्रति मास ५ ००० रुपये* की राशि पर्याप्त नही हो सकती थी। योजना म श्रम के पारिश्रमिक की नीति पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। ग्रामों म निजी व्यवसायों के विकास के साथ राज्य द्वारा न्यून तम पारिश्रमिक निश्चित करना आवश्यक था जिससे ग्रामीण शिल्पियो तथा श्रमिकों का छोटे छोटे पू जीपतियो द्वारा शोषण किये जाने की सम्भावना न रहे।

अर्थ-साधनों में मुद्रा-प्रसार को विशेष स्थान दिया गया था। मुद्रा-प्रसार, आर्थिक नियन्त्रणों की अनुपस्थिति में मुद्रा स्फीति का घातक रूप धारण कर सकती थी। दूसरी ओर, योजना के केवल आन्तरिक अर्थ साधनों पर ही अवलम्बित रहा गया था। विदेशियों द्वारा संचालित उद्योगों को क्रय करने पूँजीगत वस्तुओं का विदेशों से आयात करने आदि के लिए जो विदेशी पूँजी की आवश्यकता होगी, उस हेतु कोई विशेष आयोजन नहीं किया गया।

इस योजना की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें भारत द्वारा अपनी योजना के माध्यम से एशिया के तथा अन्य पिछड़े हुए राष्ट्रों का पथ-प्रदर्शन करने का लक्ष्य भी रखा गया था। सिंदरी उर्वरक कारखाना तथा इस्पात उद्योग, जल विद्युत तथा कृषि से प्राप्त अनुभवों से अन्य राष्ट्रों को अवगत कराया जाना था। एशिया के अन्य राष्ट्रों के युवकों को तान्त्रिक संस्थाओं में प्रशिक्षण-सुविधाएँ प्रदान करने का भी आयोजन था। विभिन्न पिछड़े राष्ट्रों के मध्य संयुक्त रूप से पाश्चात्य राष्ट्रों के तान्त्रिक विशेषज्ञ नियुक्त किये जाने की भी सिफारिश की गयी थी।

कोलम्बो योजना और भारत (Colombo Plan and India)

महायुद्धोपरान्त अनेक राष्ट्रों को राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई और इन राष्ट्रों की आर्थिक समस्याओं की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। दक्षिणी तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया के जनसमुदाय का जीवन स्तर अत्यन्त शोचनीय था और यह अनुभव किया गया कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पारस्परिक सहायता से नियोजित आर्थिक विकास सम्भव है। इसी पृष्ठभूमि में जनवरी, सन् १९५० में ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल के विदेश मन्त्रियों की सभा में यह सिफारिश की गयी कि दक्षिण-पूर्वी एशिया के जन समुदाय के जीवन-स्तर में सुधार किये जाएँ तथा उनके हितार्थ प्रयत्न किये जायें जिससे ये क्षेत्र अपने वृहद् सम्भावी साधनों द्वारा संसार की सम्पन्नता में अपना योगदान दे सकें। इस सभा ने एक सलाहकार-समिति (Consultative Committee) की स्थापना की जिसको उपयुक्त क्षेत्रों की समस्याओं का अध्ययन करने तथा उनकी ओर विश्व का ध्यान आकर्षित करने का कार्य सौंपा गया। इस समिति की प्रथम बैठक सिडनी (आस्ट्रेलिया) में हुई और यह निश्चित किया गया कि राष्ट्र-मण्डल के राष्ट्रों को अपने क्षेत्रों के विकास हेतु एक छः-वर्षीय विकास-योजना का निर्माण करना चाहिए जो जुलाई सन् १९५१ से प्रारम्भ हो। योजना में आर्थिक विकास के कार्यक्रम के साथ-साथ तान्त्रिक सहयोग की योजनाएँ भी सम्मिलित की गयीं। प्रारम्भ में योजना में आस्ट्रेलिया, कनाडा, श्रीलंका, भारत, न्यूजीलैण्ड, पाकिस्तान, ब्रिटेन, मलाया, सिंगापुर, उत्तरी बोर्नियो, ब्रूनी (Brunei) तथा साराबाक सम्मिलित थे। सन् १९५१ में संयुक्त राज्य अमेरिका ने भी योजना में सहयोग देना स्वीकार किया। तत्पश्चात् बर्मा, कम्बोडिया, हिन्दचीन, जापान, लाओस, नेपाल, फिलिपाइन, स्याम तथा वियतनाम भी सम्मिलित हो गये। इस प्रकार दक्षिण-पूर्वी एशिया के सभी देश

इसमे सम्मिलित हो गये। ब्रिटेन कनाडा आस्ट्रेलिया न्यूजीलण्ड सयुक्त राज्य अमेरिका तथा जापान सहायक देश (Donors) हैं। इस समय कोलम्बो योजना म २४ सदस्य हैं। इनम से १८ देश दक्षिणी एव दक्षिण पूर्वी एशिया तथा छह देश इस क्षेत्र के बाहर के है। इस क्षेत्र के सदस्य देश अफगानिस्तान भूटान बर्मा कम्बोडिया, सालान भारत इण्डोनेशिया ईरान दक्षिणी कोरिया लाओस मलेशिया मालद्वीप द्वीपसमूह नेपाल पाकिस्तान फिलिपाइन्स सिंगापुर थाईलैण्ड तथा दक्षिणी वियतनाम है। छह सहायक देशा (Donor Countries) म कोई परिवतन नही हुआ है।

उद्देश्य—कोलम्बो योजना का मुख्य उद्देश्य दक्षिणी एव दक्षिण-पूर्वी एशिया क राष्ट्रो के आर्थिक विकास द्वारा इन देशो के अधिवासियो के जीवन स्तर म सुधार करना है। आर्थिक विकास क कायक्रम सहकारी भावना के आधार पर बनाए जाते हैं और खाद्यान्नो क उत्पादन को विशेष महत्व दिया जाता है। योजना के अन्तगत दो प्रकार की सहायता प्रदान की जाती है—पू जी की सहायता तथा तान्त्रिक सहायता। योजना की सलाहकार समिति इसक कायक्रमो की प्रगति का मूल्याकन करती है और पू जी क आयोजन पर विचार विमश करती है। तान्त्रिक सहायता म समन्वय स्थापित करन के लिए तान्त्रिक सहायता परिषद की स्थापना की गयी है।

सहायता—कोलम्बो योजना क अन्तगत सहायता अनुदान एक देश का सरकार द्वारा दूसरे देश की सरकार को ऋण एव साख क रूप म तथा तान्त्रिक सहायता क रूप म दी जाती है। अधिकतर सहायता म यह प्रतिबन्ध होता है। इसका उपयोग सहायता देने वाले देश से प्रसाधन आदि क्रय करने पर व्यय किया जाय। पू जी की सहायता के अन्तगत जो वित्त प्रदान किया जाता है। उसका उपयोग विकास परियोजनाओ क लिए आवश्यक यन्त्र एव उपभोक्ता वस्तुओ जसे गेहू आदि का आयात करन के लिए किया जाता है। इन आयात की गयी वस्तुओ का विक्रय करने से सहायता प्राप्त करन वाल देश को जो स्थानीय मुद्रा प्राप्त होती है उसका उपयोग विकास कायक्रमो के लिए किया जाता है। तान्त्रिक सहायता क अन्तगत इस क्षेत्र क दशों को विशपज्ञ भेज जाते हैं जो प्रशिक्षण शोध काय एव विकास म सहायता प्रदान करते हैं। इसक अतिरिक्त सहायता देन वाले देशो के विश्वविद्यालयो एव प्रशिक्षण सस्थानों एव औद्योगिक व्यवसायो म इस क्षेत्र क विद्यार्थियो को प्रशिक्षण की सुविधाए प्रदान की जाती है।

सन् १९६६ क मध्य तक सहायक देशो (Donor Countries) न कुल मिला कर १४६२० करोड रुपये की सहायता प्रदान की। इसम से १२६०० करोड रुपया सयुक्त राज्य अमरिका न तथा ८५५ करोड रुपया ब्रिटेन न प्रदान किया। समस्त सदस्य देशो द्वारा सन् १९६७ के मध्य तक तान्त्रिक सहायता पर ६७७ करोड रुपया व्यय किया गया। इसम से १३७ करोड रुपया प्रशिक्षण पर ३३० करोड रुपया विशपज्ञो की सेवाओं पर तथा लगभग २३८ करोड रुपया प्रसाधनो पर व्यय किया गया।

यद्यपि सहायता प्रदान करन वाल राष्ट्रो के आय स्तर म काफी वृद्धि हो गयी

परन्तु सन् १९६१ के बाद से कोलम्बो-योजना के अन्तर्गत विदेशी सहायता के परिमाण में पर्याप्त वृद्धि नहीं हुई है। वास्तव में सहायता के परिमाण में सुधार नर में मूल्य-स्तर में वृद्धि होने तथा ब्याज एवं पुराने ऋणों की वापसी के कारण कमी हो गयी है। वर्तमान सहायता का बड़ा भाग विकासोन्मुख राष्ट्रों द्वारा ब्याज के भुगतान एवं पुराने ऋणों की किश्तों के भुगतानार्थ व्यय हो जाता है।

कोलम्बो योजना और भारत

कोलम्बो-योजना के प्रारम्भ से ३१ दिसम्बर सन् १९६७ तक भारत ने २८२० विशेषज्ञों को तकनीकी सहयोग योजना (Technical Co-operation Scheme) के अन्तर्गत प्रशिक्षण की सुविधाएँ प्रदान की हैं। आणु-शक्ति, टेक्सटाइल इंजीनियरिंग, टिम्बर रिसर्च, गन्ना तथा शक्कर-तान्त्रिकता (Sugar Technology) कृषि-अनुसन्धान में सुधार आदि के विशेषज्ञों की सुविधाएँ भी भारत द्वारा प्रदान की गयीं।

दूसरी ओर, भारत ने जनवरी सन् १९६७ के अन्त तक ४३४ विदेशी विशेषज्ञों की सेवाएँ लीं तथा ४६६५ भारतीयों को कोलम्बो-योजना के सदस्य देशों में स्वास्थ्य एवं चिकित्सा (Medical) सम्बन्धी शिक्षा, खाद्यान्न एवं कृषि, उद्योग एवं व्यापार, शक्ति एवं ईंधन, इंजीनियरिंग, यातायात एवं संचार, सामान्य अभियान्त्रिकी तथा सर्वेक्षण के क्षेत्र में प्रशिक्षण की सुविधाएँ प्राप्त हुईं।

कोलम्बो योजना के अन्तर्गत भारत को आर्थिक विकास हेतु २६३८ करोड़ रुपया की सहायता आस्ट्रेलिया से ३१६.४८ करोड़ रुपया कनाडा से तथा ६.०६ करोड़ रुपया न्यूजीलैण्ड से तथा २०४ करोड़ रुपये की सहायता ब्रिटेन से ३१ दिसम्बर सन् १९६७ तक प्राप्त हुई।

प्रथम पचवर्षीय योजना
[First Five Year Plan]

[प्रथम योजना के प्रारम्भ म अथ व्यवस्था का स्वरूप, भारत मे नियोजन का प्रकार, प्रजातान्त्रिक नियोजन की सफलता योजना के उद्देश्य एव प्राथमिकताए योजना का व्यय अथ प्रबन्धन, हीनार्थ प्रबन्धन योजना के लक्ष्य एव प्रगति—कृषि सामुदायिक विकास योजनाएँ औद्योगिक प्रगति, यातायात एव स चार, समाज सेवाएँ उपभोग एव विनियोजन, ग्रामीण विकास की योजना योजना की असफलताएँ]

प्रथम योजना के प्रारम्भ मे अथ व्यवस्था का स्वरूप

यह स्पष्ट है कि अल्प विकसित राष्ट्रो म नियोजन की आवश्यकता अत्यधिक होती है। उत्पादन के साधनो का विवेकपूर्ण उपयोग करने तथा उनम वृद्धि करने के लिए योजनाबद्ध एव समन्वित प्रयासो की आवश्यकता होती है। विभिन्न कार्यवाहियों मे पारस्परिक सामजस्य के अभाव मे राष्ट का चतुमुखी आर्थिक विकास सम्भव नहीं होता। केवल नियोजित अथ व्यवस्था द्वारा ही राष्ट्र के समस्त साधनो तथा आवश्यकताओ को दृष्टिगत करके विकास की ओर अग्रसर होना सम्भव है। राष्ट्र की दीघ तथा अल्पकालीन समस्याओ के आधार पर प्रयासो को निश्चित करके पूव निश्चित लक्ष्यो की प्राप्ति हो सकती है। सन् १६४७ म भारत मे राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के उपरान्त देश की आर्थिक समस्याओ का निवारण करने की दिशा म विचार किया गया। राष्ट्रीय सरकार को अपनी आर्थिक नीतियो को निश्चित करने के पूव निम्न लिखित अथ व्यवस्था के तत्कालीन स्वरूप के तत्वो पर ध्यान विशेषरूपेण केन्द्रित करना आवश्यक था—

(१) ब्रिटिश राज्य मे देश की अथ व्यवस्था—अग्रेजी सरकार द्वारा भारत की अथ व्यवस्था को इस प्रकार सगठित किया गया था कि इससे ब्रिटेन के व्यापार को अधिकतम लाभ प्राप्त हो। भारत का एक कृषिप्रधान, विशेषकर कच्चा माल उत्पादक देश बना दिया गया था तथा कृषि की भी एक अविकसित व्यवसाय की स्थिति हो गयी थी। जजर एव छिन्न भिन्न राष्ट्रो म खाद्यान्नो की न्यूनता की पूर्ति हेतु भी

कोई ठोस प्रयत्न नहीं किए गए थे। ब्रिटिश शासनकाल में भारतीय अर्थ-व्यवस्था के मुख्य लक्षण निम्न प्रकार थे—

(अ) आय का अत्यधिक असमान वितरण।

(आ) आय का अधिकांश विलास की वस्तुओं तथा बहुमूल्य धातुओं, जैसे सोना व चाँदी एकत्रित करने के लिए उपयोग किया जाता था। धनी-वर्ग जिसकी आय अत्यधिक थी अपनी बचत उत्पादन क्रियाओं में विनियोजित करने के स्थान पर विलासिता की विदेशी सामग्री तथा अन्य सम्पत्तियों आदि पर व्यय करता था। इस प्रकार राष्ट्रीय बचत राष्ट्रीय आर्थिक विकास हेतु उपयोग में नहीं लायी जाती थी।

(इ) इंगलैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् भारत को ब्रिटेन द्वारा निर्मित वस्तुओं का विक्रय-स्थल मात्र बना दिया गया और भारत से कच्चे माल तथा खाद्यान्नों का निर्यात किया जाने लगा। इस प्रकार भारत को ब्रिटेन की कृषिप्रधान पृष्ठभूमि में परिवर्तित कर दिया गया था। भारत के उद्योग इस प्रकार सर्वथा नष्ट हो गये।

(ई) भारतीय कृषि का भी विकास की ओर अग्रसर नहीं किया गया। भारतीय कृषक को पूँजी की न्यूनता, अच्छे उपकरणों का अभाव, भूमि-सम्बन्धी बेकार विधान, अधिक लगान, भूमि पर जनसंख्या का निरन्तर बढ़ता हुआ भार, कृषि की मानसून पर निर्भरता और सिंचाई के साधनों की अत्यन्त कमी, भूमि का छोटे-छोटे अलाभकारी टुकड़ों में विभाजन आदि कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। कृषक की आय तथा उत्पादन दोनों इतने कम हो गये थे कि उसके द्वारा कृषि पर निर्भर रहने वाली जनसंख्या का भरण-पोषण भी कठिन था। कृषकों के लिए कोई सुविधाएँ प्राप्त न होने के कारण उत्पादन में निरन्तर कमी होती जा रही थी।

(उ) ब्रिटिश शासन ने भारतीय सभ्यता को क्षति पहुँचाने में कोई कमी नहीं रखी। जनसमुदाय के जीवन-स्तर में वृद्धि करने के लिए उचित शिक्षा, गृह-निर्माण, दलित तथा पिछड़ी जातियों का विकास, श्रम हितकारी योजनाओं आदि की ओर कोई कार्यवाही नहीं की गयी। जनसमुदाय में परिश्रम और विशेषकर शारीरिक परिश्रम के प्रति घृणा उत्पन्न कर दी गयी। शिक्षा द्वारा कार्यालयों के लिए बाबू उत्पन्न किए गये तथा वैधानिक एवं तान्त्रिक प्रशिक्षण की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

इस प्रकार भारतीय आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था में ऐसे परिवर्तन कर दिए गये कि ब्रिटेन के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन को उच्चतम सीमा तक पहुँचाने में पूरक का काम करें। इस समस्त व्यवस्था में परिवर्तन तथा सुधार करने के लिए सम्पूर्ण भारत को एक इकाई मानकर योजनाबद्ध कार्यक्रम का सञ्चालन करना आवश्यक था।

(२) विभाजन का प्रभाव—स्वतन्त्रता-प्राप्ति के साथ देश का विभाजन भी हो गया जिससे भारत की आर्थिक समस्याएँ और भी गम्भीर हो गयीं। भारत का १२ ७० ००० वर्गमील क्षेत्र तथा ३३ ७ करोड़ जनसंख्या और पाकिस्तान को

३,६१ ००० वगमील क्षेत्र तथा ८ करोड जनसख्या प्राप्त हुई। इस प्रकार भारत को २७६ व्यक्ति प्रति वगमील तथा पाकिस्तान को २२२ व्यक्ति प्रति वगमील के हिसाब से प्राप्त हुए थे। इसके अतिरिक्त पाकिस्तान की कृषि योग्य भूमि अधिक उपजाऊ थी जिसके ४५% भाग म सिचाई क साधन उपलब्ध थे। इसके विपरीत भारत म कृषि योग्य भूमि को केवल २४ ५ भाग म ही सिंचाई के साधन उपलब्ध थे। उसके फल स्वरूप भारत को खाद्यान्न तथा कच्चे माल की न्यूनता की कठिनाई का सामना करना पडा।

विभाजन के पश्चात् औद्योगिक क्षेत्र म भारत क सम्मुख और भी अधिक कठिनाइयाँ आयीं। अधिकतर वृहद् उद्योग भारत को मिले परन्तु कच्चे माल के उत्पादन के क्षेत्र पाकिस्तान म चल गये। सन् १९४५ की सूचनाओं के आधार पर अविभाजित भारत की ९० ४% औद्योगिक इकाइयाँ जिनम समस्त कर्मचारियों का ९३ ५% भाग काम करता था भारत को मिले। जूट ऊन कागज आदि कच्चे माल की प्राप्ति म बडी कठिनाइयाँ हुई जबकि खेल का सामान चीड फाड का सामान, रोजिन आदि उद्योगो का कच्चा माल भारत म उत्पादित होता था। इनके उद्योग पाकिस्तान का मिले। सूती वस्त्र उद्योग की ३९४ मिलो म से ३८० भारत म आयी परन्तु ४०% कपास उत्पादन करने वाला क्षेत्र पाकिस्तान म चला गया।

विदेशी व्यापार क क्षेत्र म विभाजन के फलस्वरूप भारत के निर्यात म कमी और आयात म वृद्धि हो गयी क्योकि खाद्यान्नो तथा मसाला आदि का अधिक आयात किया जाने लगा जबकि निर्यात योग्य वस्तुओ जसे जूट निर्मित वस्तुएं कपडा कच्चा माल आदि का उत्पादन कम हो जाने के कारण इनका निर्यात कम हो गया।

विभाजन क फलस्वरूप पाकिस्तान से बडी मात्रा म विस्थापित भारत आये। इन विस्थापितो को आवश्यक सुविधाए प्रदान करने तथा उनके पुनर्वास का आयोजन करना भारत सरकार को अत्यावश्यक हो गया था। इस प्रकार विभाजन द्वारा भारत की अर्थव्यवस्था को बडी क्षति पहुँची और इस क्षति की पूर्ति करने क लिए योजना बद्ध प्रयास की आवश्यकता स्वाभाविक थी।

(३) स्वतन्त्रता के पश्चात जनता की भावनाएं—सन् १९४७ तक भारत की समस्त मानवीय शक्तियाँ स्वतन्त्रता प्राप्ति म लगी हुई थीं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात जनसमुदाय म नवीन सुखमय जीवन की आशा ने तीव्रता ग्रहण कर ली। इस समय नवीन राष्ट्रीय भावना उत्पन्न हुई जिसने प्रत्येक नागरिक को राष्ट्र क पुन निर्माण तथा सुखमय जीवन बनाने के कार्यक्रमो म सहयोग देने क लिए प्रेरित किया। जनसाधारण को राष्ट्रीय सरकार स आशा थी कि वह देश का पुनर्गठन इस प्रकार करेगी कि उनकी आर्थिक तथा सामाजिक सम्पन्नता का स्वप्न पूर्ण हो जायगा। इन विचारधाराओ की पृष्ठभूमि म भारतीय सविधान म नीति निर्देशक सिद्धान्त (Directive Principles of State Policy) द्वारा देश की भावी आर्थिक तथा सामाजिक

जीवन की व्यवस्था निश्चित की गयी। इन आधारभूत सिद्धान्तों द्वारा निम्न सुविधाओं का आयोजन किया गया—

(अ) जीवन स्तर तथा भोजन में वृद्धि,

(आ) जनसाधारण के काम करने, शिक्षा प्राप्त करने तथा सामाजिक बीमा (Social Insurance) के अधिकार की मान्यता

(इ) महत्वपूर्ण भौतिक साधनों के अधिकार तथा नियन्त्रण में परिवर्तन जिससे सामान्य हित हो,

(ई) समस्त श्रमिकों का परिपूर्ण जीवन (Fuller Life) का सम्पूर्ण अधिकार (Universal Right),

(उ) कृषि तथा पशु अर्थ-व्यवस्था का नवीनीकरण तथा गृह उद्योगों की उन्नति।

राष्ट्रीय सरकार को इन आयोजनों की पूर्ति हेतु योजनाबद्ध कार्यक्रम की व्यवस्था करना आवश्यक था इसीलिए मार्च सन् १९५० में योजना आयोग की स्थापना की गयी जिसने अपने कार्यक्रमों को तीन मुख्य भागों में विभाजित किया—

(अ) द्वितीय महायुद्ध तथा विभाजनोपरान्त की समस्याओं का निवारण तथा अनियमित व्यवस्था का निरस्तीकरण,

(आ) दीर्घकालीन आर्थिक सन्तुलन का निवारण,

(इ) राजकीय नीतियों के आधारभूत सिद्धान्तों द्वारा निश्चित आयोजनों की पूर्ति हेतु आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था का पुनर्निर्माण।

(४) द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् मूल्यों में वृद्धि—द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् देश में मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि हो गयी थी। थोक मूल्यों में ४½ गुनी वृद्धि हो गयी थी। इस प्रकार श्रमिकों के रहन-सहन के लागत सूचक अंक (Cost of Living Index) में देश के विभिन्न औद्योगिक केन्द्रों में ३ से ४ गुनी वृद्धि हुई। मुद्रा-स्फीति के दबाव को कम करने के लिए योजनाबद्ध अर्थ-व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक था।

इस प्रकार बढ़ते हुए मूल्यों, कच्चे माल की कमी, उपभोक्ता-वस्तुओं विशेषत खाद्यान्नों की कमी, विस्थापितों के पुनर्वास की समस्याओं का निवारण करने के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना के कार्यक्रम निश्चित किये गये। उपर्युक्त अल्पकालीन समस्याओं के अतिरिक्त कुछ दीर्घकालीन समस्याओं के हल को भी दृष्टिगत करना आवश्यक था। इन समस्याओं का योजना आयोग ने इस प्रकार विश्लेषण किया—

(१) बढ़ती हुई जनसंख्या जिसकी वृद्धि की गति सन् १९२१-३१ तक ११% थी और सन् १९४१-५१ के मध्य १४.२% हो गयी थी।

(२) इसी काल में व्यावसायिक ढांचे में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था। सन् १९११ में लगभग ७१% जनसंख्या और सन् १९४८ में (राष्ट्रीय आय समिति के अनुमानानुसार) ६८.२% जनसंख्या कृषि में लगी हुई थी। इसमें से भी

व्यक्तियों को बड़ी मात्रा को वर्ष के अल्प समय में काम मिलता था। कृषि पर से जन-संख्या के भार को कम करने तथा अन्य क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने की आवश्यकता थी।

(३) सन् १६११ में ब्रिटिश भारत में प्रति व्यक्ति बोया जाने वाला क्षेत्र ० ८८ एकड़ था, जो सन् १६४१ ४२ में ० ७२ एकड़ रह गया। विभाजन के पश्चात् सन् १६४८ में प्रति व्यक्ति बोये जाने वाला क्षेत्र केवल ० ७१ एकड़ ही था। कृषि उत्पत्ति की न्यूनता का निवारण करने के लिए कृषि के क्षेत्र को बढ़ाने की अत्यधिक आवश्यकता थी।

(४) औद्योगिक क्षेत्र में सन् १६२२ में सरक्षण की नीति का अनुसरण करने के फलस्वरूप कुछ उद्योगों का शीघ्र विकास हुआ उदाहरणार्थ लोहा और इस्पात, सीमेंट तथा शक्कर। द्वितीय महायुद्ध में औद्योगिक क्षेत्र का और भी विकास हुआ। इतना होते हुए भी सगठित औद्योगिक क्षेत्र में केवल २४ लाख श्रमिक ही काम करते थे। औद्योगिक क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में वृद्धि करके ही कृषि क्षेत्र के अतिरिक्त श्रम को लाभप्रद रोजगार दिया जा सकता था तथा जनसाधारण के जीवन स्तर में वृद्धि सम्भव थी।

(५) राष्ट्रीय आय के तुलनात्मक साक्ष्य उपलब्ध नहीं थे। सन् १६४८ ४६ के अनुमानानुसार प्रति व्यक्ति आय २५५ रु० थी। मूल्यों की वृद्धि को दृष्टिगत करते हुए इस आय का वास्तविक मूल्य गत वर्षों के अनुमानों से किसी प्रकार अधिक नहीं कहा जा सकता था। उत्पादन तथा उपभोग का न्यून स्तर दीर्घकालीन रहने के कारण बचत की मात्रा अत्यन्त न्यून थी।[1]

उपर्युक्त दीर्घकालीन प्रवृत्तियों से स्पष्ट है कि देश में निर्धनता तथा बेरोजगारी भूख और बीमारी का साम्राज्य था और इसका निवारण नियोजित व्यवस्था द्वारा ही सम्भव था। विकास की गति प्रदान करने हेतु देश के साधनों का पूर्णतम तथा कार्यशील उपयोग किया जाना आवश्यक था।

भारत मे नियोजन का प्रकार

भारत में नियोजन को एक नवीन रूप प्रदान किया गया है। नियोजन का कार्यक्रम तथा उसका क्रियान्वित करने की विधि प्रत्येक राष्ट्र की मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक आर्थिक सामाजिक सास्कृतिक तथा प्रबन्ध सम्बन्धी परिस्थितियों के आधार पर ही निश्चित की जाती है। जिस प्रकार भयानक परिस्थितियों जैसे युद्धादि में राष्ट्र के समस्त साधनों मानवीय तथा भौतिक को एकमात्र उद्देश्य की प्राप्ति में ही लगा दिया जाता है, तथा राष्ट्रीय नीति के प्रति समस्त राष्ट्र में एकता का भाव उत्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार शांति के वातावरण में एकता की भावना द्वारा नियोजन को

1 *The First Five Year Plan—Draft Outline* p 14

सफल बनाने में सहायता मिलती है। साधारण जनता में नियोजन के रचनात्मक उद्देश्यों के प्रति तत्परता उत्पन्न करना अत्यन्त आवश्यक होता है क्योंकि इसके द्वारा ही साधनों का उपयोग अधिकतम हित के लिए किया जा सकता है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना समस्त भारत को एक इकाई मानकर, भारतीय अर्थ-व्यवस्था का योजनाबद्ध विकास करने का प्रथम प्रयास था। योजना आयोग को सरकारी नीतियों के आधारभूत सिद्धान्तों तथा तत्कालीन आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर योजना का प्रकार निश्चित करना था। भारतीय नियोजन द्वारा राष्ट्र के भौतिक साधनों का विकास करने का ही प्रयास नहीं किया गया है प्रत्युत मानवीय जीवन का बहुमुखी विकास करना उसका मुख्य उद्देश्य है। नियोजन द्वारा ऐसे समाज की स्थापना करने का प्रयास किया गया जिसमें योजना के आधारभूत उद्देश्यों की पूर्ति सफलतापूर्वक हो सके। नियोजन का सर्वसाधारण समन्वित तथा प्रभावशील प्रयासों की आवश्यकता होती है। भारतीय संविधान द्वारा राज्य का उत्तरदायित्व है कि विकास-सम्बन्धी क्रियाओं का संचालन करे और इसलिए इन प्रयासों में राज्य का महत्वपूर्ण भाग लेना आवश्यक था। राज्य को इस प्रकार राष्ट्र के समस्त साधनों को संविधान द्वारा निर्धारित प्रजातान्त्रिक विधियों से योजना को क्रियान्वित करने हेतु उपयोग में लाना था।

प्रजातान्त्रिक राष्ट्र में सरकार की योजना निर्माण योजनानुकूल नीतियाँ निर्धारित करने तथा इनके प्रभावशील संचालन तथा क्रियान्वित करने की योग्यता जनता की सहायता तथा सहयोग पर निर्भर रहती है। साम्यवादी राष्ट्रों में नियोजन एक समस्त अधिकार प्राप्त केन्द्रीय अधिकारी के हाथ में होता है। ऐसी परिस्थिति में नियोजन के कार्यक्रम का संचालन तथा लक्ष्यों की प्राप्ति शीघ्रता एवं सुगमता से हो जाती है परन्तु इस प्रकार की समस्त अधिकारपूर्ण व्यवस्था में कतिपय आधारभूत तत्वों का जो मानव-जीवन के महत्वपूर्ण अंग होते हैं क्षति पहुँचती है तथा जन-साधारण को कठिनाइयों तथा आपत्तियों का सामना करना पड़ता है। यद्यपि समस्त अधिकारपूर्ण (Totalitarian) व्यवस्था तथा प्रजातान्त्रिक नियोजन दोनों में जन समुदाय को समानरूपेण त्याग करना पड़ता है परन्तु प्रजातान्त्रिक विधि में यह त्याग नियोजन के उद्देश्यों को विवेकपूर्ण रीति से स्वीकृत करके अथवा ऐच्छिक होता है। इस प्रकार प्रजातान्त्रिक विधियाँ अधिक जटिल हैं तथा इनमें राज्य और जनता का उत्तरदायित्व अत्यधिक होता है परन्तु प्रजातान्त्रिक विधियों द्वारा विकास-पथ पर अग्रसर होने की प्रवृत्ति जाग्रत हो जाती है तथा इस हेतु किसी प्रकार के दबाव का उपयोग नहीं किया जाता।

भारतीय संविधान में व्यक्तिगत आधारभूत स्वतन्त्रता तथा उत्पादन के साधनों का अधिकार में रखने तथा उन्हें बेचने आदि की स्वतन्त्रता सामाजिक सुरक्षा तथा जनसाधारण के पालन का रक्षण आदि के आयोजन हैं। इन मूलभूत तत्वों के

आधार पर भारत में प्रजातान्त्रिक नियोजन को ही स्थान दिया गया है। मानवीय इतिहास म प्रजातान्त्रिक नियोजन इतन वृहद आकार म किसी देश म कार्यान्वित नहीं किया गया है। यह एक नवीन प्रयोग है जिसकी सफलता अथवा असफलता विश्व के अनक राष्ट्रो का मागदशन करेगी। भारत म नियोजन की सफलता इस पुरान विचार कि नियोजन तथा प्रजातन्त्र का सामजस्य असम्भव है, का निरस्त कर देगी तथा समस्त विश्व का यह मान लना पडेगा कि नियोजन का बिना किसी हिंसक क्रान्ति तथा दबाव क एव जनसाधारण की आधारभूत स्वतन्त्रता का प्रतिबधित किय बिना ही सफल बनाया जा सकता है।

प्रजातान्त्रिक नियोजन की सफलता

प्रजातान्त्रिक नियोजन की सफलताथ उच्चाधिकारियो का योग्य होना ही पर्याप्त नही अपितु उचित यवस्था का भा आवश्यकता होती है। केन्द्रीय नियोजन सस्था असफल रहेगी सफलता हतु प्रत्यक स्तर पर तथा अथ यवस्था क प्रत्यक क्षत्र क प्रत्येक स्तर पर नियोजन अधिकारियो की आवश्यकता होती है। इसका अथ यह नही है कि स्थानीय क्षेत्रीय एव राष्ट्रीय सगठन होने चाहिए तथा प्रत्येक उद्योग मे पृथक नियोजन अधिकारी होना चाहिए।

इस प्रजातान्त्रिक नियोजन के पूणरूपेण क्रियान्वित करन मे समय लगना अनिवाय है, इसका कठिन होना अनिवाय है इसम अनक त्रुटियाँ होना तथा सहयोग की असफलताओ का समन्वय भी होना है।

प्रजातान्त्रिक प्रकार के नियोजन का सचालन तब तक सम्भव नही होता जब तक बुद्धिमानो की सख्या अधिक तथा पारस्परिक सहयोग की शक्ति अत्यधिक विकसित न हो। रूसियो को अपनी प्रारम्भिक योजनाओं म तान्त्रिक तथा शासन दोनो ही क्षत्रो म योग्य तथा प्रशिक्षित कमचारियो की वास्तविक न्यूनता की कठिनाई का सामना करना पडा।[1]

---

1 The achievement of this kind of Planning requires not only the right set of men at the top but also the right machinery It cannot be achieved merely be establishing a Central Planning Organisation It necessarily involves the existence of machinery for Planning at every level and in every compartment of the economy at each level It means that these must be regional and local as well as national organisations for Planning that each industry must have its own Planning Machinery

Inevitably this Democratic Planning will take time to bring into full operation and is bound to be difficult and to involve many mistakes and failures in co operation

(Contd)

प्रो० टी० एन० रामास्वामी ने प्रथम पंचवर्षीय योजना के ड्राफ्ट पर आलोचना करते हुए लिखा है ' प्रजातान्त्रिक नियोजन में यह मान लिया जाता है कि बुद्धिमत्तापूर्ण (Enlightened) लोकतन्त्र विद्यमान है, जिसमें जनसाधारण को केवल इतना ही ज्ञान नहीं कि प्रतिदिन के जीवन में नियोजन का क्या महत्त्व है, प्रत्युत यह भी ज्ञान होता है कि समस्त जनसमुदाय के जीवन-स्तर में उन्नति करने के लिए नियोजित व्यवस्था की आवश्यकता होती है जो अत्यन्त जटिल तथा सन्तुलित हो तथा जो प्रत्येक खेत तथा कारखाने पर छायी हुई हो और जिसके द्वारा प्रत्येक नागरिक में सहयोग भावना जाग्रत की जाती हो। जनसाधारण में नियोजित अर्थ व्यवस्था के प्रति जागरूकता होने पर ही प्रजातान्त्रिक नियोजन सफल हो सकता है।'[1]

इस प्रकार प्रजातान्त्रिक नियोजन के सफलतार्थ जनसाधारण में योजना के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना अत्यन्त आवश्यक होता है। योजना आयोग ने उपर्युक्त समस्त कठिनाइयों को दृष्टिगत करते हुए भी प्रजातान्त्रिक नियोजन को ही महत्व दिया क्योंकि भारत के परम्परागत जीवन में यही एकमात्र सफल विधि थी जिसके द्वारा आर्थिक विकास सम्भव था।

उपर्युक्त विचारों के आधार पर प्रजातान्त्रिक नियोजन के सफलतापूर्वक आवश्यक तत्वों का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है—

(१) कुशल केन्द्रीय नियोजन संगठन की स्थापना करना प्रजातान्त्रिक नियोजन की सफलता के लिए आवश्यक है। इस नियोजन-संगठन को एक ओर, राज्य से सत्ता प्राप्त हो और दूसरी ओर, जन-सहयोग प्राप्त होना चाहिए। राष्ट्रीय राजनैतिक ढाँचा इस प्रकार का हो कि सत्तारूढ़ दल राष्ट्रीय नियोजन-संगठन की आवश्यकतानुसार

'Planning of the democratic type is not possible except where the supply of intelligence is large and capacity for association highly developed. The Russians' greatest difficulty in their earliest plans was the shortage of trained and competent people on both the technical and administrative side.

(Prof Cole *Economics* pp 284 286 287)

1 'Democratic Planning assumes the existence of an enlightened democracy where people are not only alive to the importance of Planning for their everyday life but also the erection of a highly complicated and delicately balanced planning machinery which will pervade every farm and factory infusing the spirit of co-operation on the part of each citizen in the difficult and strenuous crusade for higher standards of life for the entire community. It is only the existence of spirit of Planning among the bulk of people that can render a Democratic Planning successful.

T N Ramaswamy, *Economic Analysis of the Draft Plan*, p 10)

अधिकार दे सकें और विरोधी दल इतने शक्तिशाली न हो कि नियोजन के कार्यक्रमों म बाधाए खडी कर सकें।

(२) कुशल केन्द्रीय नियोजन सगठन के साथ-साथ प्रजातान्त्रिक नियोजन म कुशल क्षेत्रीय एवं स्थानीय अधिकारियो की भी आवश्यकता होती है जिनम प्रारम्भिकता (Initiative) का भाव हो और जो जन सहयोग प्राप्त कर सकें।

(३) प्रजातन्त्र म जनसाधारण को राजनीतिक आर्थिक नतिक एव न्याय सम्बन्धी स्वतन्त्रताएँ दी जाती हैं। जनसमुदाय म बुद्धिमान लोगो का अभाव नही होना चाहिए। वह योजना सम्बन्धी नीतियो को समझ सकें, योजना के कायक्रमो के प्रति अपने कर्तव्यों को निभा सकें योजना की विनाशकारी आलोचना न करें तथा अपनी स्वतन्त्रताओ का दुरुपयोग न करें। इसके अतिरिक्त प्रजातान्त्रिक नियोजन म सत्ताओ के विकेन्द्रीयकरण का आयोजन किया जाता है। जनसाधारण म इतनी योग्यता होना आवश्यक है कि वे इन सत्ताओ का दुरुपयोग न कर सकें।

(४) राष्ट्रीय चरित्र के स्तर के ऊचा होने की आवश्यकता प्रजातान्त्रिक नियोजन की सफलता के लिए होती है। सरकारी कर्मचारियो एव क्षेत्रीय तथा स्थानीय नेताओ के हाथ म नियोजन का सचालन करना होता है। इन लोगो की ईमानदारी कार्यक्षमता सेवा भावना कर्त्तव्यपरायणता आदि पर ही योजना के विभिन्न कार्यक्रमो की सफलता निर्भर होती है।

भारत म बहुत से अथशास्त्रियो का यह विचार था कि भारत का शीघ्र विकास केवल साम्यवादी नियोजन द्वारा सम्भव हो सकता था परन्तु भारत की आर्थिक एव सामाजिक व्यवस्था म कुछ ऐसे मौलिक तत्व निहित हैं कि साम्यवादी नियोजन भारत के लिए उपयुक्त नही हो हो सकता था। निम्नलिखित तत्वो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि साम्यवादी नियोजन भारत के लिए उपयुक्त नही हो सकता है—

(१) साम्यवादी नियोजन का सचालन साम्यवादी सरकार द्वारा ही किया जा सकता है। भारत म सत्तारूढ दल अर्थात भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस साम्यवादी सिद्धान्तों से पूणत सहमत नही है। इस दल का विचार है कि आर्थिक विकास हेतु कठोर साम्यवादी विधियो का उपयोग करना आवश्यक नहीं है। इस दल का विश्वास है कि प्रजातान्त्रिक विधियो द्वारा भी विकास की गति को तीव्र रखा जा सकता है।

(२) भारतीय समाज के ऐतिहासिक अवलोकन से प्रतीत होता है कि भारत म सदव व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओ को विशेष महत्व दिया गया है। जनसाधारण स्वभावत आर्थिक सम्पन्नता की तुलना म व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को अधिक महत्त्व देता है। ऐसी परिस्थिति म साम्यवादी अथव्यवस्था के कठोर केन्द्रीयकरण को अपनाना भारत म सम्भव नही होगा।

(३) भारत के सामाजिक एव राजनीतिक जीवन पर ब्रिटेन का प्रभुत्व १०० वर्षों से भी अधिक समय तक रहा है। अग्रेज स्वभावत प्रजातान्त्रिक विधियों म

विश्वास रखते हैं और ब्रिटेन में जनसाधारण को प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत इतनी अधिक सुविधाएँ प्राप्त हुई हैं कि कठोर साम्यवादी नियमन की व्यवस्था की ओर भारतीय जनसमुदाय कम आकर्षित हुआ। भारतीय नेताओं पर अंग्रेजी सभ्यता का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है और ब्रिटेन की विकास विधियों का बहुत अधिक अनुसरण हमारे देश में किया गया है।

(४) भारतवासियों के जीवन में धर्म को विशेष स्थान प्राप्त है। प्रत्येक स्तर पर धार्मिक विचारधाराओं की छाप लगी रहती है। साम्यवाद के अन्तर्गत धर्म को जीवन का एक अत्यन्त कम महत्व रखने वाला तत्व समझा जाता है। भारतवासी इसी कारण साम्यवाद की ओर कम आकर्षित होता है। साम्यवाद में भौतिकवाद का बोलबाला होता है और जिस देश में जनसाधारण के मस्तिष्क को भौतिकवाद आच्छादित कर लेता है, उन्हीं राष्ट्रों में साम्यवाद पनपता रहता है। भारत में आध्यात्मवाद को भौतिकवाद के ऊपर प्राथमिकता प्राप्त होने के कारण साम्यवादी नियोजन को स्थान नहीं दिया जा सकता था।

(५) भारत को आर्थिक विकास हेतु विदेशी सहायता की बहुत अधिक आवश्यकता थी, जिसकी पूर्ति कोई एक देश नहीं कर सकता था। भारत में साम्यवादी अर्थ-व्यवस्था के संचालन का अर्थ होता है कि विदेशी सहायता केवल साम्यवादी राष्ट्रों से ही मिल सकती थी। अमेरिका तथा अन्य पश्चिमी राष्ट्रों से सहायता प्राप्त करने हेतु राष्ट्र में प्रजातन्त्र की स्थापना करना आवश्यक था। प्रजातान्त्रिक नियोजन के लिए भारत को साम्यवादी एवं प्रजातान्त्रिक दोनों ही देशों से सहायता प्राप्त हो रही है।

प्रथम योजना के उद्देश्य

"भारत में नियोजन का मुख्य उद्देश्य जनसमुदाय के जीवन-स्तर में वृद्धि करना तथा अधिक परिवर्तनशील एवं सम्पन्न जीवन के अवसर प्रदान करना है इसलिए नियोजन का ध्येय राष्ट्र के भौतिक एवं मानवीय साधनों का प्रभावशील उपयोग करना, वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन में वृद्धि करना तथा आय, धन एवं अवसर की असमानता को कम करना है अतः हमारा कार्यक्रम द्विमुखी होना चाहिए जिससे उत्पादन में तुरन्त वृद्धि हो तथा असमानता में कमी हो.........यद्यपि प्रारम्भिक अवस्था में हमारे प्रयासों का झुकाव अधिक उत्पादन की ओर होना चाहिए क्योंकि इसकी अनुपस्थिति में कोई उन्नति सम्भव नहीं होती है फिर भी हमारे नियोजन द्वारा प्रारम्भिक अवस्था में वर्तमान सामाजिक तथा आर्थिक ढाँचे के अन्तर्गत ही आर्थिक क्रियाओं को प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए। इसलिए समाज के समस्त सदस्यों को पूर्ण रोजगार, शिक्षा, रोग तथा अन्य अयोग्यताओं से सुरक्षा तथा पर्याप्त आय का आयोजन करने के लिए इस प्रारूप का पुनर्गठित करना होगा।"[1]

---

1 *First Five Year Plan*, p 1

उपयुक्त विवरण के आधार पर योजना के उद्देश्यो को दो समूहों मे वर्गीकृत किया जा सकता है—

(१) मानवीय तथा भौतिक साधनों का अधिकतम कायशील उपयोग जिससे वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन मे अधिकतम वृद्धि सम्भव हो सके तथा

(२) आय धन तथा अवसर की असमानता को कम करना।

भारत म प्रति व्यक्ति आय अत्यन्त कम होने के कारण जनसाधारण के जीवन-स्तर म सन्तोषजनक सुधार करना सम्भव नही था। प्रति व्यक्ति वार्षिक आय के दुगुना होन पर ही जीवन स्तर म अपेक्षित उन्नति की जा सकती थी। न्यून बचत, न्यून उपभोग अविकसित साधन तथा वृद्धियोन्मुख जनसख्या की उपस्थिति मे ५ वर्ष मे प्रति व्यक्ति आय को दुगुना करना असम्भव था इसलिए प्रथम पचवर्षीय योजना को विकास का प्रारम्भ ही समझना चाहिए। इस प्रकार की कई योजनाओं द्वारा सन् १९७८ तक प्रति व्यक्ति आय को दुगुना किए जाने का अनुमान लगाया गया। प्रथम पचवर्षीय योजना द्वारा निम्नाकित विशिष्ट समस्याओ के निवारण होन की सम्भावना था—

(१) तीन अत्यन्त गम्भीर समस्याओ— खाद्यान्न का न्यूनता, औद्योगिक कच्चे माल (कपास पटसन तिलहन तथा गन्ना) का अभाव तथा मुद्रा स्फीति के कारण हुई मूल्य वृद्धि का निवारण होने की सम्भावना थी। द्वितीय महायुद्ध एव विभाजन द्वारा उद्भूत इन समस्याओ का निवारण अत्यावश्यक था।

(२) कुछ आधारभूत साधनो के विकास का प्रारम्भ करना जिससे भविष्य म राष्ट्रीय आय तथा जीवन स्तर म शीघ्र वृद्धि सम्भव हो सके।

(३) बेरोजगारी को कम करना भी योजना का उद्देश्य कुछ समयोपरान्त मान लिया गया।

योजना की प्राथमिकताएँ

योजना म कृषि को सवप्रथम प्राथमिकता प्रदान की गयी। तत्कालीन खाद्यान्नों की कमी की पूर्ति कृषि के उत्पादन, विशेषकर खाद्यान्न तथा कच्च माल म आत्म निभरता प्राप्त करने तथा तत्कालीन जीवन स्तर को युद्ध के पूर्व के स्तर तक न जाने के लिए कृषि का प्राथमिकता दिया जाना स्वाभाविक था। योजना के समस्त व्यय का ३२ २% भाग कृषि विकास हेतु निर्धारित किया गया। कृषि के विकास के लिए सिंचाई तथा शक्ति के साधनो म पर्याप्त वृद्धि करन की कई नदी घाटी-परियोजनाएँ योजना म सम्मिलित की गयी। कृषि के स्थायी विकास हेतु औद्योगिक विकास भी अत्यन्त आवश्यक था। औद्योगिक विकास द्वारा ही कृषि के नवीनतम औद्योगिक उपकरण एव रासायनिक खाद आदि उपलब्ध हो सकते थे। साथ ही कृषि क्षेत्र के अतिरिक्त श्रम को लाभप्रद रोजगार दिया जा सकता था। इसके अतिरिक्त विकास म सुदृढ़ता लाने के लिए भी औद्योगीकरण आवश्यक होता है क्योंकि आय की वृद्धि से कृषि-वस्तुओं की अपेक्षा औद्योगिक वस्तुओं की माँग अधिक होती है।

भारत में पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगों का अत्यन्त अभाव था, अतएव यह निश्चय किया गया कि राजकीय क्षेत्र में उद्योगों पर व्यय होने वाली राशि का ८०% भाग पूँजीगत तथा उत्पादक वस्तुओं के उद्योगों में विनियोजित किया जाय।

योजना का व्यय

योजना की प्रजातान्त्रिक प्रवृत्ति के अनुसार तथा सरकार के बाहर के अर्थशास्त्रियों, व्यापारियों तथा जनसाधारण के विचार एवं आलोचना प्राप्त करने हेतु प्रथम पंचवर्षीय योजना सर्वप्रथम जुलाई, सन् १९५१ में ड्राफ्ट के रूप में प्रकाशित की गयी। यह ड्राफ्ट योजना दो भागों में विभक्त थी। प्रथम भाग में अनिवार्य कार्यक्रमों को सम्मिलित किया गया था और इस भाग पर १,४९३ करोड़ रु० व्यय होने का अनुमान था। द्वितीय भाग में वे कार्यक्रम सम्मिलित किए गये थे जिनका क्रियान्वीकरण विदेशी सहायता के मिलने पर किया जाना था। इस भाग पर ३०० करोड़ रु० व्यय होना था परन्तु योजना को अन्तिम रूप देते समय दोनों भागों को मिश्रित करके एकत्रित रूप में समस्त कार्यक्रम प्रस्तुत किए गए। इस प्रकार योजना का समस्त व्यय २,०६९ करोड़ रु० निर्धारित किया गया। कालान्तर में योजना के कुछ कार्यक्रमों में वृद्धि की गयी तथा कुछ में समायोजन किए गये। इसके साथ रोजगार के अवसरों में वृद्धि हेतु भी आयोजन किए गये। इन समायोजनों के कारण योजना के व्यय की राशि २,३५६ करोड़ रु० कर दी गयी।[1] विभिन्न मदों पर इस राशि का वितरण निम्न प्रकार किया गया था—

तालिका सं० ५५—प्रथम पंचवर्षीय योजना का अनुमानित व्यय

मद	अनुमानित व्यय (करोड़ रु० में)	योग से प्रतिशत
कृषि एवं सामुदायिक विकास	२६१	१७.५
सिंचाई एवं शक्ति	५६१	२७.१
यातायात एवं संचार	४९७	२४.०
उद्योग एवं खनिज	१७३	८.४
समाज-सेवाएँ	३४०	१६.४
पुनर्वास	८५	४.१
अन्य	५२	२.५
	योग २०६९	१००%

आवश्यक समायोजन के पश्चात् २,३५६ करोड़ रु० के व्यय का वितरण निम्न तालिकानुसार किया गया था।

1 *India 1959* p 203

तालिका स० ५६—प्रथम पचवर्षीय योजना का सशोधित व्यय

मद	अनुमानित व्यय (करोड रु०मे)	योग से प्रतिशत
कृषि एव सामुदायिक विकास	३५७	१५ १
सिंचाई एव शक्ति	६६१	२८ १
उद्योग एव खनिज	१७६	७ ६
यातायात एव सचार	५५७	२३ ६
समाज सेवाएँ	३९७	१६ ८
पुनर्वास	१३६	३ ८
अन्य	६९	५ ०
	योग २ ३५६	१०० ०

योजना का वास्तविक व्यय विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत निम्न प्रकार हुआ—

तालिका स० ५७—योजना का वास्तविक व्यय

मद	अनुमानित व्यय (करोड रु० मे)	योग से प्रतिशत
कृषि एव सामुदायिक विकास	२९१	१४ ८
सिंचाई एव शक्ति	५७०	२९ १
उद्योग एव खनिज	११७	६ ०
यातायात एव सचार	५२३	२३ ७
समाज-सेवाएं एव अन्य	४५९	२३ ४
	योग १ ९६०	१०० ०

अर्थ प्रबन्धन

अर्थ साधना की समस्या के निवारण पर ही योजना का सचालन तथा उसकी सफलता निर्भर रहती है। योजना म राजकीय क्षेत्र के कार्यक्रमो म केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो तथा उनके अधिकार की औद्योगिक इकाइयो के विकास-कार्यक्रम सम्मिलित किये गये थे। अलोक क्षेत्र के अन्तर्गत अर्थ व्यवस्था का शेष समस्त भाग रखा गया था। नगरपालिका निगम स्थानीय सस्थाओ सहकारी सस्थाओं तथा लघु व्यवसायों का निजी क्षेत्र म सम्मिलित किया गया था। यद्यपि समस्त अर्थ-व्यवस्था का विकास की ओर अग्रसर करने तथा विकास-कार्यक्रमो म समन्वय स्थापित करने का उत्तर दायित्व राज्य का ही था परन्तु निजी प्रयासो एव साहस को भी विकास-कार्यक्रमों म महत्वपूर्ण योगदान देना था। राज्य का सरकारी क्षेत्र के लिए आवश्यक अर्थ प्रबन्धन करना तथा उसे सरकारी क्षेत्र म विनियोजन करना दोनो ही कार्य करने थे। अर्थ साधनो का तीन मुख्य समूहो म आगे दी हुई तालिकानुसार विभाजित किया जा सकता है।

सन् १९५० ५१ म राजकीय बचत की राशि १४५ करोड रु० थी और इसी को आधार मानकर योजनाकाल म इस साधन से प्राप्त राशि का अनुमान ७३५ करोड रु० लगाया जा सकता था परन्तु सन् १९५० ५१ का पूर्णत आधार नहीं

चालू आय से बचत (Savings from Current Revenue) | पूँजीगत प्राप्तियाँ (Capital Receipts) | योजना-सम्बन्धी केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारों को प्रदत्त सहायता

उपर्युक्त विभिन्न साधनों से निम्न प्रकार धन प्राप्त होने का अनुमान था—

तालिका सं० ५८—प्रथम योजना के अर्थ-साधन

(करोड़ रु० में)
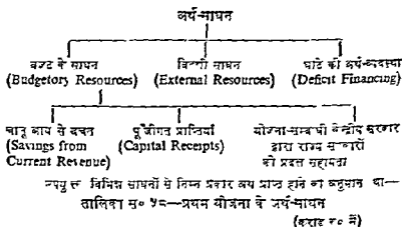
	केन्द्र	राज्य	योग
विकास-कार्यक्रमों पर योजना का व्यय	१२४१	८२८	२०६९
१ बजट के साधन			
(अ) चालू आय से बचत	३३०	४०८	७३८
(आ) पूँजीगत प्राप्तियां (संचय से निकाली गयी राशि के अतिरिक्त)	३९६	१२४	५२०
(इ) योजना-सम्बन्धी केन्द्रीय सहायता	—२२९	—२२९	—
योग बजट-साधनों से प्राप्ति	४९७	७६१	१२५८
२ विदेशी साधन जो प्राप्त हो चुके थे	१५६	—	१५६
कुल योग	६५३	७६१	१४१४
न्यूनता (Gap)	५८८	६७	६५५
महायोग	१२४१	८२८	२०६९

माना जा सकता था क्योंकि इस वर्ष कुछ असाधारण प्राप्तियां हुई थीं। इस वर्ष निर्यात-कर तथा आय-कर के अवशिष्ट से प्राप्तियां असाधारण थीं। इसके अतिरिक्त सुरक्षा सम्बन्धी व्यय में भी वृद्धि करना आवश्यक था क्योंकि सुरक्षा-सेवाओं में बड़े पैमाने पर प्रतिस्थापन करना आवश्यक था। इन्हीं कारणों से योजनाकाल में राजकीय बचत से प्राप्य साधनों का अनुमान ७३८ करोड़ रुपया ही लगाया गया। दूसरी ओर, केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों की पूँजीगत प्राप्तियों में महत्त्वपूर्ण सुधार होने का अनुमान था। सन् १९५०-५१ में ऋण, लघु बचत, जमा निधि आदि सम्बन्धी साधनों से ८७ करोड़ रु० प्राप्त हुआ जिसमें से १६ करोड़ रुपया राजकीय व्यापार (State Trading) से असाधारण प्राप्ति थी। योजनाकाल में इन साधनों से ५२० करोड़

रु० प्राप्त होने का अनुमान था। इस प्रकार प्रति वर्ष ४३ करोड़ रु० अधिक राशि प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया। सन् १९५०-५१ में केन्द्रीय सरकार को कुछ अतिरिक्त लाभ-कर, आय कर तथा अन्य जमा आदि का शोधन करना पड़ा। परिणाम-स्वरूप इस शीर्षक के अन्तर्गत सन् १९५०-५१ में शुद्ध प्राप्ति कम रही। साथ ही, जनता से प्राप्त ऋण में महत्वपूर्ण वृद्धि होने का अनुमान था।

योजना आयोग ने अर्थ साधनों की न्यूनता का अनुमान ६५५ करोड़ रु० लगाया था। इस न्यूनता में से २९० करोड़ रुपये पौण्ड-पावना की अनुमानित प्राप्ति के विरुद्ध हीनार्थ प्रबन्धन द्वारा आयोजित किये जाने का अनुमान लगाया गया। राशि उतना ही रखी गयी जितनी योजनावधि में पौण्ड पावने से प्राप्त होने की आशा था, जिसमें मुद्रा स्फीति के दबावों का विस्तार न हो सके। इस प्रकार ३६५ करोड़ रु० की कमी का अनुमान लगाया गया था परन्तु बाद में योजना का समस्त व्यय राशि में लगभग २८७ करोड़ रु० की वृद्धि हुई तथा इस राशि के लिए भी प्रबन्ध करना आवश्यक था। इस प्रकार समस्त न्यूनता की राशि ६५२ करोड़ रु० हो गयी थी। इस न्यूनता की पूर्ति हेतु आन्तरिक साधनों में वृद्धि हेतु निम्नांकित विधियों को अपनाने का निश्चय किया गया—

(अ) स्थानीय कार्यों की पूर्ति में वृद्धि एवं सामुदायिक विकास कार्यक्रमों द्वारा मानवीय शक्ति का पूर्णतम उपयोग किया जाना तथा वर्तमान श्रम की उत्पादन शक्ति में वृद्धि करना।

(आ) विकास के मौद्रिक व्यय को कम करने के लिए पारिश्रमिक, वेतन की को अंशतः बचत प्रमाण-पत्र आदि के रूप में दिया जाना।

(इ) वित्तीय व्यवस्था में संगठन सम्बन्धी ऐसे परिवर्तन किये जाना जिससे शासकीय अधिकारियों को अर्थ साधनों के उचित विनियोग एवं उपयोग का अधिकार हो।

(ई) कर क्षेत्र का विस्तार किया जाना तथा शासन में आवश्यक सुधार करके कर बचाने पर रोक लगायी जाना।

(उ) लघु बचत को आकर्षक बनाना।

(ऊ) अनिवार्य बीमा तथा प्राविधिक निधि (Provident Fund) का विस्तार किया जाना।

ऐसा विश्वास था कि उपर्युक्त कार्यवाहियों द्वारा अर्थ-साधनों में वृद्धि के साथ-साथ, भविष्य के विकास के लिए अतिरिक्त अर्थ संचय की विधि का प्रारम्भ हो सकेगा और भविष्य की योजनाओं में अधिकतम आन्तरिक आत्म निर्भरता प्राप्त हो सकेगा।

पाँच वर्ष के वास्तविक अनुमानानुसार योजना के विकास-कार्यक्रमों पर १९६० करोड़ रु० व्यय हुआ। यह राशि विभिन्न साधनों से निम्न प्रकार प्राप्त हुई—

तालिका सं० ५६—प्रथम योजना में अर्थ साधनों से प्राप्ति

आय का साधन	करोड़ रुपयों में
(अ) बजट के साधन	
(१) सरकारी चालू आय से बचत (रेलों के अनुदान सहित)	७५२
(२) जनता से ऋण	२०५
(३) लघु बचत तथा अन्य ऋण	३०४
(४) अन्य पूँजीगत प्राप्तियाँ	९१
	१३५२
(आ) विदेशी सहायता	१८८
(इ) हीनार्थ प्रबन्धन द्वारा प्राप्त साधन	४२०
योग	१९६०

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि योजना की समस्त अनुमानित निर्धारित राशि २,३५६ करोड़ रु० का ८३.२% भाग ही व्यय हुआ। इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट है कि सरकारी चालू आय से बचत तथा रेलों से अनुदान में प्राप्त राशि में अनुमान से अधिक धन प्राप्त हुआ। इन दोनों साधनों से ५६८ करोड़ रु० प्राप्त होने का अनुमान था जबकि वास्तविक प्राप्ति ७५२ करोड़ रु० थी। इसी प्रकार जनता से ऋण तथा अल्प बचत से भी अनुमान से अधिक धन प्राप्त हुआ। अन्य पूँजीगत प्राप्तियों जैसे निधि, जमा आदि के अन्तर्गत १३५ करोड़ रु० प्राप्त होने का अनुमान था जबकि केवल ९१ करोड़ रु० ही प्राप्त हो सका। हीनार्थ प्रबन्धन की राशि २९० करोड़ रु० निश्चित की गयी थी परन्तु अन्य साधनों की प्राप्ति अधिक नहीं बढ़ायी जा सकी। परिणामस्वरूप इस कमी की पूर्ति के लिए हीनार्थ प्रबन्धन की राशि ४२० करोड़ रु० हुई। इस प्रकार यह कहना अनुचित न होगा कि अर्थ साधन सम्बन्धी योजना-आयोग के अनुमान बड़ी मात्रा में ठीक ही थे, परन्तु योजना को क्रियान्वित करते समय योजना के समस्त व्यय की राशि में कमी रही। कृषि एवं सामुदायिक विकास योजनाओं तथा उद्योग और खनिज के अन्तर्गत कुछ कार्यक्रमों को पूरा नहीं किया जा सका तथा इनमें निर्धारित राशि से कम व्यय हुआ।

हीनार्थ प्रबन्धन (Deficit Financing)

हीनार्थ प्रबन्धन का तात्पर्य उस व्यवस्था से है जिसमें राष्ट्रीय बजट में आगम एवं पूँजी खातों में आय कम और व्यय अधिक बताया जाता है अर्थात् जब राज्य बजट के साधनों से प्राप्त पूँजी एवं आगम आय से अधिक व्यय करने के लिए बजट बनाया जाता है उस व्यवस्था को हीनार्थ प्रबन्धन कहते हैं। सरकार को करों, राजकीय व्यवसायों, जनता से ऋण, जमा तथा निधि एवं अन्य प्राप्तियों से होने वाली आय से जब सरकार अधिक व्यय करने का बजट बनाती है तो इस कमी का सरकार

अपने संचित शेषों (Accumulated Balances) में से अंश निकालकर अथवा देश के केन्द्रीय बैंक से ऋण लेकर पूरा करता है। वैधानिक संचित कोषों से रुपया निकालने पर अथवा केन्द्रीय बैंक से रुपया उधार लेने के लिए सरकार अपनी प्रतिभूतियाँ (Securities) बैंक को दे देती है और इन प्रतिभूतियों के बदले बैंक से मुद्रा प्राप्त कर लेती है। इस प्रकार की प्रतिभूतियों के विरुद्ध जो मुद्रा वृद्धि की जाती है उसे मुद्रा प्रसार कहते हैं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में हीनार्थ प्रबन्धन एवं मुद्रा प्रसार द्वारा अर्थ साधन प्राप्त करने का आयोजन किया गया था क्योंकि राष्ट्र के बजट के साधन एवं विदेशी साधन योजना के लिए आवश्यक अर्थ साधन प्रदान नहीं कर सकते थे। योजना में हीनार्थ प्रबन्धन की अधिकतम सीमा २९० करोड़ रु० रखी गयी थी क्योंकि योजना काल में इतनी राशि से पौण्ड पावना प्राप्त (Release) होने की सम्भावना थी। २९० करोड़ रु० का पौण्ड पावना प्राप्त होने से इतनी राशि का आयात करके राष्ट्रीय बाजारों में वस्तुओं की अपूर्णता को रोका जा सकता था। साथ ही बढ़ी हुई मुद्रा के विरुद्ध ये वस्तुएँ प्रस्तुत हो सकती थीं और इस प्रकार मुद्रा प्रसारजनित वस्तुओं की मूल्य वृद्धि का कोई विशेष भय नहीं रहता। इसी आधार पर योजनाकाल में हीनार्थ प्रबन्धन की अधिकतम सीमा २९० करोड़ रुपया रखी गयी थी।

घाटे के बजट द्वारा घाटे की राशि के बराबर जनसमुदाय की क्रय शक्ति में वृद्धि हो जाती है परन्तु भारत में क्रय शक्ति की वृद्धि का अधिकांश भाग ग्रामीण क्षेत्रों को चला जाता है क्योंकि यहाँ जनसाधारण अपनी आय का अधिकांश खाद्यान्न क्रय पर व्यय करता है। जनसमुदाय की क्रय शक्ति में वृद्धि होने पर कृषि उत्पत्ति की माँग एवं तदनुसार मूल्यों में वृद्धि हो जाती है और इस प्रकार इस अतिरिक्त क्रय शक्ति का बड़ा भाग ग्रामीण क्षेत्र अर्थात् कृषि को चला जाता है। पौण्ड पावना की प्राप्ति का उपयोग अधिकतर पूँजीगत वस्तुओं के आयात के लिए किया जाना था जबकि उपभोक्ता वस्तुओं की माँग बढ़ने की सम्भावना थी। इस प्रकार २९० करोड़ रु० की सीमा होने हुए भी मूल्यों में वृद्धि होने की अधिक सम्भावना थी, इसीलिए सरकार द्वारा मुद्रा-स्फीति के भार को कम करने के लिए सौत्रिक नियंत्रण *आवश्यक उपयोग की वस्तुओं के मूल्य एवं वितरण नियन्त्रण आदि कार्यवाहियों* का उपयोग किया जाना भी आवश्यक था परन्तु इस प्रकार के प्रतिबन्ध जनसाधारण को कभी रुचिकर नहीं होते हैं तथा नियोजन के प्रति दुर्भावना उत्पन्न होने की आशंका की जा सकती है।

मूल्यों में वृद्धि होने पर जनसमुदाय के उपभोग को सीमित करना पड़ता है। उपभोक्ता-वस्तुओं की पूर्ति में वृद्धि नहीं होती तथा जनसमुदाय की क्रय शक्ति में वृद्धि हो जाती है और इस प्रकार जनसाधारण को अपने उपभोग को सीमित करना पड़ता है। इस प्रकार मुद्रा प्रसार द्वारा विवशतापूर्ण बचत होती है। यद्यपि जन

समुदाय अपने उपभोग को कम नहीं करना चाहता, परन्तु बढ़ते हुए मूल्य उन्हें उपभोग कम करने के लिए विवश कर देते हैं। इस प्रकार उपभोग में कमी होने से राज्य-साधनों का उपभोग विनियोजन में कर सकता है, परन्तु आवश्यक वस्तुओं के उपभोग में कमी होने से जनसाधारण के जीवन-स्तर में और भी कमी हो सकती है इसलिए इन आवश्यक वस्तुओं, जैसे खाद्यान्न, वस्त्र, शक्कर, गुड़ आदि के मूल्यों एवं वितरण पर आवश्यक नियन्त्रण रखकर ही हीनार्थ प्रबन्धन का उपयोग किया जा सकता है।

मुद्रा-स्फीति के भय से हीनार्थ प्रबन्धन की सीमा को कम रखना विकास के क्षेत्र में एक गम्भीर बाधा बन सकती है, परन्तु फिर भी घाटे की अर्थ-व्यवस्था (हीनार्थ प्रबन्धन) का तभी उपयोग होना चाहिए जब अर्थ प्राप्ति के अन्य साधनों से पर्याप्त अर्थ न प्राप्त हो सकता हो। भारत में अनिवार्य बचत एवं एकत्रित किए हुए अर्थ एवं बहुमूल्य धातु को गतिशील बना कर देश के आर्थिक साधनों में वृद्धि की जा सकती है, परन्तु इन दोनों के लिए कठोर कार्यवाहियों की आवश्यकता होती है जो सरकार तथा नियोजन के प्रति दुर्भावनाओं का कारण बन जाती है।

योजनाकाल में मूल्यों में कमी रही और योजना के अन्त में प्रारम्भ की तुलना में मूल्यों में १३% की कमी का अनुमान था। केवल योजना के अन्तिम वर्ष के कुछ महीनों में मूल्यों में वृद्धि हुई। यद्यपि योजनाकाल में ४२० करोड़ रु० का हीनार्थ-प्रबन्धन हुआ, तथापि मूल्यों में कमी का होना कुछ आश्चर्यजनक प्रतीत हो सकता है। हीनार्थ प्रबन्धन का मूल्यों पर इसलिए प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि आकस्मिक अनुकूल परिस्थितियों एवं जलवायु (Monsoon) के कारण कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई। औद्योगिक उत्पादन में भी योजनाकाल में सन्तोषजनक वृद्धि हुई। उत्पादन-वृद्धि द्वारा मुद्रा प्रसार का भार निरस्त कर दिया गया तथा उपभोक्ता-वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि नहीं हुई। इस प्रकार योजना के प्रारम्भ में हीनार्थ प्रबन्धनजनित मुद्रा स्फीति का जो भय था, वह सर्वथा निर्मूल हो रहा। यद्यपि योजनाकाल में घाटे की अर्थ-व्यवस्था निश्चित अधिकतम सीमा २९० करोड़ से भी अधिक हुई तथापि मूल्यों में इसके कारण वृद्धि नहीं हुई।

योजना के लक्ष्य एवं प्रगति

कृषि—प्रथम पंचवर्षीय योजना में सर्वप्रथम स्थान कृषि को प्रदान किया गया था। इसी कारण योजना को मुख्यरूपेण एक ग्रामीण विकास का कार्यक्रम कहा जा सकता है। राजकीय क्षेत्र में व्यय होने वाली राशि का अधिकतम भाग कृषि एवं कृषक की उन्नति हेतु विशेष महत्त्व रखता है। समाज-सेवाओं के अन्तर्गत निर्धारित राशि में ग्रामीण समाज के हित को विशेष स्थान दिया था और इस व्यय का उद्देश्य भी कृषकों की कार्यक्षमता में वृद्धि करना तथा उनका उत्थान करना था। राजकीय क्षेत्र में समस्त व्यय का लगभग एक तिहाई भाग (३२.२%) अर्थात् ७४८ करोड़ रु०

कृषि सामुदायिक विकास, सिंचाई एवं बाढ़ नियन्त्रण पर व्यय होना था। सिंचाई की बहुमुखी योजनाओं के कार्यक्रम दीर्घकालीन थे और इन पर योजनाकाल में २६६ करोड़ रु० व्यय होने का अनुमान था।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि को प्राथमिकता देने का मुख्य उद्देश्य कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि करना था। सन् १९५५ ५६ तक खाद्यान्नों में १४% कपास में ४२% पटसन में ६३% गन्ना में १२% और तिलहन में ८०% वृद्धि करने का लक्ष्य था। इस प्रकार उत्पादन में निरन्तर तथा स्थायीरूपेण वृद्धि द्वारा ही कृषि विकास सम्भव था और कृषि विकास द्वारा २ ४६ करोड़ जनता के गतिहीन आर्थिक एवं सामाजिक जीवन को गतिमान कर विकासोन्मुख किया जाना सम्भव था।

योजना के विनियोजन कार्यक्रम का अधिकतर भाग सिंचाई एवं बहुमुखी योजनाओं पर व्यय होना था। २१६ करोड़ रुपया उन विशाल सिंचाई एवं शक्ति की योजनाओं पर जिनका निर्माण चल रहा था और ४० करोड़ रुपया नवीन योजनाओं पर व्यय किया जाना था। कृषि एवं सामुदायिक विकास शीर्षक के अन्तर्गत ७६ करोड़ रु० छोटी छोटी सिंचाई योजनाओं जिनका निर्माण निजी क्षेत्र द्वारा किया जाना था को आर्थिक सहायता के रूप में देने के लिए निर्धारित किया गया था। उपर्युक्त समस्त योजनाओं के फलस्वरूप २ करोड़ एकड़ सिंचित भूमि में वृद्धि अर्थात् सन् १९५० ५१ की सिंचित भूमि में ४०% वृद्धि होने की सम्भावना थी। इसी प्रकार शक्ति के साधनों में ६०% अर्थात् १३ लाख किलोवाट वृद्धि करने का लक्ष्य था।

भूमि सुधार तथा भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए ३५ करोड़ रुपये का आयोजन था। इस व्यय द्वारा ७४ लाख एकड़ फसल बोये जाने वाले क्षेत्र में वृद्धि करना था। इसके लिए पड़ती भूमि का उपभोग करना ३४ लाख एकड़ भूमि पर यान्त्रिक कृषि करना ३० लाख एकड़ भूमि का वन आदि द्वारा सुधारने का आयोजन था।

इसके अतिरिक्त कृषि एवं ग्रामीण हित के कार्यक्रम के अन्तर्गत ६० करोड़ रुपया सामुदायिक विकास योजनाओं के हेतु तथा अन्य लघु राशियाँ कृषि के अन्य क्षेत्रों जैसे खाद और बीज वितरण एवं भूमि सुरक्षा सम्बन्धी योजनाओं आदि के लिए निर्धारित की गयी थी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं के लिए ६० करोड़ रुपया निर्धारित किया गया था, किन्तु वास्तविक व्यय केवल ४७ करोड़ रुपया हुआ। योजना में १,२०० राष्ट्रीय विस्तार सेवा मण्डलों की स्थापना करने का लक्ष्य था जिसमें से ७०० मण्डलों जिनमें ७० ००० ग्राम तथा ४ करोड़ जन सख्या होगी इन पर सामुदायिक विकास मण्डलों की स्थापना के विकास का लक्ष्य रखा गया था। वास्तव में केवल ४०० सामुदायिक विकास मण्डलों की स्थापना हुई तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा मण्डलों की संख्या ८०० थी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि उत्पादन के लक्ष्य एवं उनकी प्राप्ति निम्न तालिका से दर्शित है—

तालिका सं० ६०—प्रथम योजना में कृषि के लक्ष्य एवं उनकी प्राप्ति

मद	उत्पादन १९५०-५१	लक्ष्य १९५५-५६	वास्तविक उत्पादन १९५५-५६	उत्पादन की वृद्धि का प्रतिशत
खाद्यान्न (लाख टन)	५०८	६२६	६६६	२२०
कपास (लाख गाँठ)	२८८	४२३	३६४	३७०
जूट (लाख गाँठ)	३३१	५३९	४२३	२७३
गन्ना (लाख टन)	५७१	६३०	६०	६०
तिलहन (लाख टन)	५१६	५५७	५७०	११८
तम्बाकू (लाख टन)	२६१	—	२०२	१६०
चाय (लाख टन)	२७४	—	२८५	४०
आलू (हजार टन)	१,६६०	—	१,८५६	१२०
सिंचित भूमि (लाख एकड़)	५१०	७०७	६५०	२७६
विद्युत शक्ति उत्पादन (लाख कि०वा०)	२३	३६	३४	४८०

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि कृषि के क्षेत्र में उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई। जूट और गन्ना के अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुओं का उत्पादन निश्चित लक्ष्य सीमा से कुछ ही कम रहा। तिलहन और खाद्यान्न का उत्पादन योजना के लक्ष्यों से भी अधिक रहा। योजनाकाल के पांच वर्षों की विशेषता यह थी कि इन वर्षों में अनुकूल मानसून रहने के कारण योजना के कार्यक्रमों को सफल बनाने में प्राकृतिक दृष्टि से कम बाधा उपस्थित हुई।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में सभी प्रकार की सहकारी समितियों—कृषि, बहु-उद्देशीय, साख, क्रय विक्रय, उद्योग आदि के संगठन को स्थान दिया गया जिससे फल-स्वरूप, प्रतिस्पर्धा सम्बन्धी आर्थिक एवं अन्य कठिनाइयों को दूर किया जा सके। पंचायतों के संगठन द्वारा ग्रामीण निवासियों को ग्राम समुदाय के सामूहिक हित का उत्तरदायित्व सौंपा गया। योजना में कृषि की अन्य समस्याओं अर्थात् मूल्य-निर्धारण खाद्यान्न वितरण पर नियन्त्रण खान पान के स्वभाव में परिवर्तन तथा भूमि प्रबन्ध में सुधार आदि को भी स्थान दिया गया। जमींदारी पद्धति को समाप्त करने का निश्चय किया गया जिससे कृषक को भूमि से प्राप्त फल का पूर्णतम उपयोग करने का अवसर प्राप्त हो सके।

इसी प्रकार कृषि में बीजों एवं अन्य पशुओं की आवश्यकता को मान्यता दी गयी तथा पशुओं के विकास हेतु योजना में २२ करोड़ रु० का आयोजन किया गया था। इस व्यय द्वारा पशुओं की नस्ल में सुधार करने चारे में वृद्धि करने आदि के आयोजन किये गये। योजनाकाल में खाद्यान्न का निर्देशांक सन् १९५०-५१ में ९०.४ (सन् १९४९-५०=१००) से बढ़कर ११५.३ सन् १९५५-५६ में हो गया अर्थात्

कृषि उत्पादन म लगभग २७% की वृद्धि हुई। कृषि उत्पादन का निर्देशांक ६५ ६ से बढकर ११६ ८ हो गया अर्थात् १६% की उत्पादन म वृद्धि हुई।

औद्योगिक प्रगति

प्रथम पचवर्षीय योजना म औद्योगिक विकास के कायक्रम मिश्रित अथ व्यवस्था पर आधारित थे। सम्पूर्ण औद्योगिक विकास क कायक्रमो को लोक एव अलोक क्षेत्र म विभाजित किया गया। लोक क्षेत्र के औद्योगिक कायक्रमो म राज्य तथा केन्द्रीय सरकार की विकास योजनाए सम्मिलित की गयी तथा अलोक क्षेत्र म व्यक्तिगत औद्योगिक क्रियाए सम्मिलित की गयी। योजना म ७६२ करोड रुपया औद्योगिक विकास हेतु निर्धारित किया गया। इनम से १७६ करोड रुपया शासकीय औद्योगिक योजनाओ तथा शेष ६१३ करोड रु० व्यक्तिगत सगठित एव शासन द्वारा स्वीकृत उद्योगो पर व्यय करने का लक्ष्य था। अनियमित छोटे छोटे कारखानो तथा गृह उद्योगो के आँकडे उपलब्ध न होन क कारण उनम विनियोजित होने वाली राशि का ठीक ठीक अनुमान सम्भव नही था इसीलिए लघु एव गृह उद्योगो म निजी रूप स विनियोजित होने वाली राशि को निजी क्षेत्र की विनियोजन राशि म सम्मिलित नही किया गया था। योजना म केवल उन्ही सगठित उद्योगो को सम्मिलित किया गया था जिनका विकास करना तथा शासकीय प्रोत्साहन प्रदान करना वाछनीय था।

लोक क्षेत्र म औद्योगिक विकास पर व्यय होने वाली राशि १७६ करोड रु० म से लगभग ८४ करोड रु० ऐसे शासकीय औद्योगिक कायक्रमो पर व्यय होना था, जिनका काय प्रथम पचवर्षीय योजना क पूव ही प्रारम्भ हो गया था अथवा जो निकट भविष्य म पूर्ण होने वाले थे। उदाहरणाथ सिन्दरी का रासायनिक खाद का कारखाना, चितरजन का रेलवे इजिन बनाने का कारखाना बगलौर का यन्त्र उपकरण बनाने का कारखाना आदि। लगभग १० करोड रु० राज्य सरकारो क अधीन उपक्रमो पर व्यय किया जाना था। इस क्षेत्र के अन्तगत ऐसे उद्योगो को ही सम्मिलित किया गया जो पूजीगत एव आधारभूत वस्तुओ का उत्पादन करते हैं। शासकीय क्षेत्र म औद्योगिक विकास के नवीन कायक्रमो की सवप्रमुख योजना लोहा तथा इस्पात का कारखाना स्थापित करना था जिनकी उत्पादन शक्ति ८ लाख टन लोहा तथा ५½ लाख टन इस्पात होनी थी। यह अनुमान लगाया गया कि इस कारखाने पर ८० करोड रु० विनियोजित किया जायगा जिसम से केवल ३० करोड रु० प्रथम योजना काल म व्यय करने का अनुमान था। १ करोड रु० खनिज विकास तथा ६० करोड रु० ग्रामीण एव लघु उद्योगो पर विनियोजित करने का लक्ष्य था।

योजना-आयोग ने ४२ उद्योगों का विस्तार करने का विस्तृत कायक्रम बनाया तथा इन उद्योगों का विकास अलोक क्षेत्रों को सौंपा गया। इन उद्योगो म यान्त्रिक इजीनियरिंग वैद्युतिक इजीनियरिंग धातु उद्योग रासायनिक पदाथ उद्योग तरल ईधन खाद्य उद्योग आदि सम्मिलित थे। अलोक क्षेत्र म विनियोजित होने वाली ६१३ करोड

प्रथम पचवर्षीय योजना म औद्योगिक उत्पादन के लक्ष्यों की पूर्ति निम्न प्रकार हुई—

तालिका स० ६२—प्रथम योजना मे औद्योगिक उन्पादन के लक्ष्य एव पूर्ति[1]

वस्तु	१९५० ५१ म उत्पादन	१९५५ ५६ हेतु योजना लक्ष्य	१९५५ ५६ म वास्तविक उत्पादन	वृद्धि का प्रतिशत
इस्पात के ढेले (लाख टन)	१४ ७	१६ ७	१७ ४	१८ ०
पिड लोहा (Pig Iron) (लाख टन)	१६ ०	२८ ७	१८ ०	१३ ७
सीमट (लाख टन)	२७ ०	४८ ०	४७ ०	७० ८
अमोनियम सल्फेट (हजार टन)	४७ ०	४५६ ०	४०० ०	७५६ ५
रेलवे इ जिन (इकाई)	३ ०	१७३ ०	१७९ ०	५ ८६७ ०
जूट निमित वस्तुए (हजार टन)	८३७ ०	१ २१६ ०	१ ०७१ ०	२८ ०
मिल निर्मित वस्त्र (१० लाख गज)	३ ७२० ०	४,७०० ०	५ १०२ ०	३७ २
साइकिल (हजार)	९९ ०	५३० ०	५१३ ०	४१८ ०

यातायात एव स चार

योजना के इस शीषक के अन्तगत ४९७ करोड रु० की राशि व्यय हेतु निर्धारित की गयी थी जो बाद मे बढकर ५५७ करोड रु० कर दी गयी परन्तु वास्तविक व्यय कवल ५२३ करोड रुपया हुआ। लगभग ३४० मील लम्बी टूटी-फूटी रेलवे लाइनो (जो युद्धकाल म ब द कर दी गयी थी) को सुधारा गया, ३८० मील लम्बी नवीन लाइना का निर्माण हुआ तथा ४६ मील की लघु पथ (Narrow Gauge) की लाइनो को मध्यम-पथ (Meter Gauge) म परिवर्तित किया गया। राष्ट्रीय माग (National Highways) १२ ३ हजार मील (सन् १९५०-५१ से बढ़कर १२ ९ हजार मील हो गये। इसी प्रकार प्रान्तीय माग (कच्चे तथा पक्के) २४८ ५ हजार मील से बढ़कर ३१६ ७ हजार मील हो गय। योजना म जलयान उद्योग के लिए १५ करोड रु० तक की आर्थिक सहायता का आयोजन था। तटीय एव विदेशी समुद्री यातायात की सुविधाओ का योजनाकाल म ६ लाख ग्रौस रजिस्टड टनेज (Gross Registered Tonnage) तक वृद्धि करने का लक्ष्य था। सन् १९५५ ५६ म वास्तविक सुविधाए ४ ८ लाख ग्रौस रजिस्टड टनज थी। योजना म आकाशवाणी क क्षेत्र को तीन गुना करने का लक्ष्य था। तार एव टेलीफोन सुविधाओ को बड़े-बड़े नगरों म

1 इस तालिका क आँकडे माट्रिक टन म दिये गय हैं।

बढ़ाया गया तथा ग्रामीण क्षेत्र में नये डाक घर खोलने का आयोजन किया गया।

समाज-सेवाएँ

३४० करोड़ रुपये की निर्धारित राशि को इस मद में बढ़ाकर ३६० करोड़ रुपया कर दिया गया, परन्तु वास्तविक व्यय केवल ३८५ करोड़ रु० हुआ। सन् १९५०-५१ में प्राथमिक पाठशालाओं की संख्या २०९·७ हजार थी जो सन् १९५५-५६ में २८०·० हजार हो गयी। इसी प्रकार प्राथमिक शालाओं में छात्रों की संख्या १८६·४ लाख से बढ़कर २४८·२ लाख हो गयी जबकि योजना का लक्ष्य २८८·० लाख था। ६ वर्ष से ११ वर्ष के बच्चों में शालाओं में जाने वाले सन् १९५०-५१ में ४१·२% थे, जो सन् १९५५-५६ में ५१·१% हो गये जबकि योजना का लक्ष्य ६०% था। योजनावधि में तान्त्रिक प्रशिक्षण की सुविधाओं में पर्याप्त वृद्धि हुई और इंजीनियरिंग तथा तान्त्रिक प्रशिक्षण की संस्थाओं के स्नातकों की संख्या २,२०० से बढ़कर ३,७०० हो गयी।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में ११६ हजार चिकित्सालय-शय्याएँ (Hospital Beds) सन् १९५५-५६ में बढ़कर १२६ हजार हो गयीं तथा चिकित्सालयों की संख्या ८,६०० से बढ़कर ९,८०६ हो गयी।

राष्ट्रीय आय—प्रथम योजना का लक्ष्य योजनाकाल के अन्त तक राष्ट्रीय आय में १२% वृद्धि करना था, अर्थात् सन् १९५०-५१ की राष्ट्रीय आय ८,८५० करोड़ रुपये (सन् १९४८-४९ के मूल्यों के आधार पर) को बढ़ाकर १०,००० करोड़ रु० करने का लक्ष्य था। योजनाकाल में राष्ट्रीय आय में १८·४% की वृद्धि हुई। दूसरे शब्दों में अर्थ-व्यवस्था का विकास नियोजित अनुमानों की तुलना में १½ गुना अधिक हुआ। यद्यपि योजनाकाल में राष्ट्रीय आय की वृद्धि सन्तोषजनक थी परन्तु वृद्धि की दर स्थिर नहीं थी। सन् १९५२-५३ तथा सन् १९५३-५४ में राष्ट्रीय आय में अधिक वृद्धि हुई जिसका मुख्य कारण अनुकूल जलवायु (Monsoon) कहा जा सकता है। अन्त के दो वर्षों, अर्थात् सन् १९५४-५५ तथा सन् १९५५-५६ में राष्ट्रीय आय की वृद्धि अत्यल्प थी। योजनाकाल में प्रति व्यक्ति आय में १०·५% की वृद्धि हुई।

उपभोग एवं विनियोजन

योजनाकाल में राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की गति तीव्र नहीं की जा सकती है क्योंकि राष्ट्र के साधन सीमित थे तथा राष्ट्रीय आय का एक बड़ा भाग, अर्थात् ८०% उपभोग की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए छोड़ दिया गया था जिससे जनता के जीवन-स्तर में पर्याप्त वृद्धि हो सके। सन् १९५०-५१ में ८,८५० करोड़ रु० की राष्ट्रीय आय में से लगभग ५२३ करोड़ रु० पूँजी-निर्माण में तथा शेष ८,३२७ करोड़ रु० निजी तथा सरकारी उपभोग पर व्यय किया गया। सन् १९५५-५६ में ९,११० करोड़ रु० उपभोग के लिए तथा ८८० करोड़ रु० की पूँजी-संचय के लिए उपलब्ध होने का अनुमान था। दूसरे शब्दों में योजनाकाल में

समस्त उपभाग म ८% का वृद्धि हुई, परन्तु निजी उपभोग की वृद्धि की दर इससे कम हा हागी क्योंकि योजनावधि म सरकारी विकास-व्यय दुगुना हा गया था।

अतिरिक्त राष्ट्रीय आय का लगभग २०% भाग पूजी सचय के लिए उपभोग होने की सम्भावना था तथा लगभग २०% ही निजी उपभाग हेतु प्राप्त न होने का अनुमान था। इस प्रकार निजी उपभोग म वृद्धि की दर ६% से अधिक नही हो सकती है। इसके अतिरिक्त यदि योजनाकाल म जनसख्या म भी वृद्धि का प्रतिशत भी यहा मान लिया जाय तो उपभाग तथा सामान्य जीवन-स्तर म कोई विशेष प्रगति नही हुई। फिर भी खाद्यान्नों का उपभोग प्रति व्यक्ति प्रति दिन सन् १९५०-५१ म १३ ६ औंस था जो सन् १९५५-५६ म बढकर १४८ औंस हो गया। इसी प्रकार कपडे का उपभोग भी ६ ७ गज प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष से बढकर १६ ४ गज सन् १९५५-५६ म हो गया। औद्योगिक वस्तुओ के उत्पादन के उपभोग म भी पर्याप्त वृद्धि हुई।

योजना म राष्ट्रीय आय के ५% विनियोजन का बढाकर ७% का लक्ष्य था। पाँच वर्षों म ३ ५०० स ३ ६०० करोड रु० तक विनियोजन करने का लक्ष्य निश्चित किया गया था। सरकारी क्षेत्र म योजनाकाल म लगभग १ ५६० करोड रु० तथा निजी क्षेत्र म १ ८०० करोड रु० का विनियोजन हुआ। इस प्रकार योजना के समस्त विनियोजन की राशि ३ ३६० करोड रु० थी। समस्त विनियोजन म शासकीय एव निजी क्षेत्र का अनुपात ८ ९ था।

योजना के प्रथम दो वर्षों म विकास व्यय कम रहा और तीसरे वर्ष से बढना प्रारम्भ हुआ और अन्तिम दो वर्षों म यह व्यय सर्वाधिक था। यह समस्त योजना व्यय का ⅗ भाग था। इसी प्रकार शासकीय क्षेत्र के विनियोजन का ५०% से भी अधिक भाग योजना के अन्तिम दो वर्षों म हुआ।

प्रथम योजना ग्रामीण विकास की योजना

प्राय अर्थशास्त्रियों का विचार है कि प्रथम पचवर्षीय योजना एक ग्रामीण विकास की योजना थी और इस योजना मे कृषि विकास को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया था। योजना के कुल सरकारी क्षेत्र के व्यय २ ३५६ करोड रु० म से २४१ करोड रु० कृषि कार्यक्रमों पर ९० करोड रु० राष्ट्रीय विस्तार एव सामुदायिक विकास पर १६ करोड रु० ग्राम पचायतो एव स्थानीय विकास पर ३८४ करोड रु० सिचाई पर और १७ करोड रु० बाढ नियन्त्रण आदि पर व्यय होना था। इस प्रकार योजना के कुल सरकारी व्यय का लगभग ⅓ अर्थात् ७४८ करोड रु० ग्रामीण विकास के लिए प्रत्यक्ष रूप से निर्धारित किया गया था।

यदि हम प्रथम योजना के वास्तविक व्यय का ग्रामीण एव नागरिक क्षेत्र म विभाजन करें तो हमे ज्ञात होगा कि उपर्युक्त विचारधारा आधाररहित है। प्रथम योजनाकाल म २९१ करोड रु० कृषि एव सामुदायिक विकास पर ३१० करोड रु०

सिंचाई पर तथा ४३ करोड़ रु० ग्रामीण एवं लघु उद्योगों के विकास पर व्यय हुआ। इन दोनों मदों को हम पूर्णतः ग्रामीण विकास से सम्बन्धित मान सकते हैं। योजना २६० करोड़ रु० शक्ति के विकास पर व्यय हुआ और योजना के अन्तर्गत ३,५०८ ग्रामों और छोटे नगरों का विद्युतीकरण किया गया। द्वितीय योजना के अनुमानों के अनुसार एक ग्राम का विद्युतीकरण करने पर ६० से ७० हजार रु० व्यय होता है। इस अनुमान को आधार मानकर हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि ग्रामीण विद्युतीकरण पर लगभग ११ करोड़ रु० प्रथम योजना में व्यय किया गया होगा। योजना में यातायात एवं संचार पर ५२८ करोड़ रु० तथा समाज-सेवाओं पर ४७६ करोड़ रु० व्यय किया गया। इन दोनों व्ययों को हम किसी आधार की अनुपस्थिति में इन ग्रामीण एवं नागरिक जनता के अनुपात (८२ : १८) में बाँट सकते हैं और इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र में यातायात एवं संचार पर ४२६ करोड़ रु० तथा समाज-सेवाओं पर ३३९ करोड़ रु० व्यय अनुमानित किया जा सकता है। बड़े उद्योगों एवं खनिज पर व्यय की गयी राशि सम्पूर्णतः नगरों के विकास से ही सम्बन्ध रखती है। इस प्रकार योजना के कुल सरकारी क्षेत्र के व्यय में १,४५४ करोड़ रु० ग्रामीण क्षेत्र पर और ४९६ करोड़ रु० नागरिक क्षेत्र पर व्यय किया गया। यदि हम निजी क्षेत्र के व्यय ६,८०० करोड़ रु० को ग्रामीण एवं नागरिक क्षेत्रों में सरकारी क्षेत्र के व्यय के अनुपात में बाँट लें तो निजी क्षेत्र में व्यय की जाने वाली राशि में से १,८४४ करोड़ रु० ग्रामीण क्षेत्र पर और ४९८ करोड़ रु० नागरिक क्षेत्र पर व्यय होने का अनुमान लगाया जा सकता है। इस प्रकार प्रथम योजना में २,८०८ करोड़ रु० ५४.८९ करोड़ ग्रामीण जनसंख्या के विकास के लिए और ९५२ करोड़ रु० ७.३८ करोड़ नागरिक जनसंख्या के विकास पर व्यय किया गया। इन आँकड़ों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि प्रथम योजना में ग्रामीण क्षेत्र में प्रति व्यक्ति विकास-व्यय ७२.३० रु० और नगरों में प्रति व्यक्ति विकास-व्यय १२७.२६ रु० हुआ। इस विवरण से यह स्पष्ट है कि प्रथम योजना में नगरों की जनसंख्या की आर्थिक उन्नति को विशेष महत्व दिया गया और यह कहना कि प्रथम योजना ग्रामीण विकास की योजना थी, निरर्थक सिद्ध होता है।

यद्यपि योजना में नागरिक क्षेत्र में प्रति व्यक्ति विकास-व्यय अधिक था, परन्तु औद्योगिक विकास के पर्याप्त आयोजन नहीं किए गये। योजना के वास्तविक व्यय १९६० करोड़ रु० का ३१% भाग कृषि एवं सिंचाई पर व्यय किया गया जबकि उद्योगों पर केवल ६% भाग ही व्यय हुआ। इस प्रकार योजना में औद्योगिक विकास का पर्याप्त आयोजन नहीं किया गया और औद्योगिक विकास का उत्तरदायित्व निजी क्षेत्र पर छोड़ दिया गया, परन्तु निजी क्षेत्र को औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक सुविधाओं एवं साधनों का आयोजन नहीं किया गया। योजना में ऐसी सिंचाई एवं शक्ति को अधिक महत्व दिया गया जिनकी पूर्ति दीर्घकाल में होती थी और जिन

पर पूजीगत विनियाजन अत्यधिक था। य परियाजनाए याजनाकाल म पूरी न हान क कारण विकास का गति का तीव्र रखन म अधिक योगदान न द सकीं।

याजना की असफलताएँ

प्रथम पचवर्षीय याजना द्वारा कृपि एव औद्योगिक उत्पादन क स्तर म महत्व पूर्ण वृद्धि हुई। इसक साथ हा राष्ट्र की आर्थिक तथा समाजिक व्यवस्था म भा परिवतन हुए। जनसाधारण म भी राष्ट्र क विकास क प्रति रुचि उत्पन्न हा गया तथा याजना क प्रति जागरुकता म भी पर्याप्त वृद्धि हुई। याजना द्वारा विभिन्न क्षेत्रा का न्यूनता म भी पर्याप्त सुधार हो गया और अथ साधना म गतिशीलता भा उत्पन्न हा गया। सामान्यत योजना को एक सफल कायक्रम कहन म काई त्रुटि नहीं हागा परन्तु कुछ अथशास्त्रियो क विचार म याजना का निम्नलिखित दृष्टि बिन्दुआ स अस फल कहा जा सकता है—

(१) प्रथम पचवर्षीय याजना एमे वातावरण म बनाया गयी था जिसम उप भाक्ता वस्तुआ और विशपकर खाद्यान्नो की अत्यन्त कमी था तथा अर्थव्यवस्था पर युद्ध एव विभाजन क पश्चात की कठिनाइया का दबाव अत्यधिक था। इन कठिनाइया का समापन करना राष्ट क विकास के लिए अनिवाय था। इन्हीं कारणा स प्रथम पचवर्षीय योजना मुख्यत पुनर्निर्माण एव पुनवास (Rehabilitation) का कायक्रम था जिसम तत्कालीन न्यूनता को पूर्ति का पर्याप्त विनियाजन एव सगठन सम्बन्धी प्रयासा द्वारा आयाजन किया गया था। याजना क लक्ष्य इसी कारण स कम रख गय थ। राष्ट्राय आय म योजनाकाल म १३% वृद्धि हान का अनुमान था जबकि वास्तविक वृद्धि लगभग १८% हुई। खाद्यान्न तिलहन रुलव इजिन मिल का बना कपड़ा आदि म उत्पादन लक्ष्य से अधिक हुआ। अन्य क्षेत्रा म भी उत्पादन म पर्याप्त वृद्धि हुई जो लक्ष्य क लगभग बराबर हा था। उत्पादन तथा आय म सम्भावना स अधिक वृद्धि का एकमात्र कारण याजना का विनियाजन कायक्रम एव सगठन सम्बन्धा परिवतन हा नहा थ इस वृद्धि का कुछ भाग साहस के क्षत्र क बढ जान तथा याजनाकाल म अनुकूल मानसून की उपस्थिति क कारण हुआ था। इन दाना तथ्या का दृष्टिगत करत हुए राष्ट्राय आय की वृद्धि (याजना के कायक्रमा क परिणामस्वरूप) १०% या १२% ही समझनी चाहिए। दूसरा आर अथव्यवस्था म जो विकास याजनाकाल म हुआ वह दीघकालीन नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इस उन्नति का काफा भाग आकस्मिक घटनाआ क घटित हान अथवा घटित न हान पर निभर है।

(२) याजना बनात समय प्रत्यक क्षत्र म अपूर्णता का वातावरण था और इसी वातावरण का प्रधान लक्षण मानकर याजना क कायक्रम एव लक्ष्य निधारित किए गए। योजना म एस आयाजन नहीं किए गय जिनक द्वारा आकस्मिक अनुकूल आर्थिक परिस्थितिया का पूर्णतम उपयाग किया जा सक। उत्पादन का अतिरिक्त वृद्धि को आर्थिक विकास क कायक्रमों के लिए उपयाग म लाना आवश्यक हाना है अन्यथा

उत्पादन की वृद्धि का उपयोग उपभोग में अथवा अपव्यय में हो जाता है। इस प्रकार अनुमान से अधिक उत्पादन-वृद्धि का उपयोग नियोजित विनियोजन (Planned Investment) तथा व्यवस्था द्वारा आर्थिक विकास के साधनों में परिवर्तित नहीं हुआ। आकस्मिक उत्पन्न घटकों ने जो विकास के अवसर प्रदान किये उनका पूर्णतम उपयोग नहीं किया गया। अर्थ-व्यवस्था का ढाँचा इस प्रकार का होना चाहिए था जिससे अनुकूल परिस्थितियों का स्वतः विकास में उपयोग हो जाता अर्थात अतिरिक्त उत्पादन का अधिकतम भाग पूँजी निर्माण की ओर आकर्षित हो जाता।

(३) योजना बनाते समय योजना आयोग ने प्रथम बेरोजगारी की समस्या पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया, यद्यपि अदृश्य बेरोजगारी एवं अल्प बेरोजगारी के दबाव को कम करने के लिए आयोजन किया गया था परन्तु बाद में बेरोजगारी का निवारण करने के लिए १०० करोड़ रु० का आयोजन किया गया। योजनाकाल की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ-साथ बेरोजगारी में भी वृद्धि हुई। विनियोजन की वृद्धि के साथ-साथ रोजगार के अवसरों में पर्याप्त वृद्धि नहीं हुई। योजना आयोग के अनुमानानुसार द्वितीय पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में ५३ लाख व्यक्ति बेरोजगार थे। यह अनुमान है कि योजनाकाल में भी जनसंख्या में १.२५% प्रति वर्ष वृद्धि हुई और लगभग इतनी ही वृद्धि श्रम-शक्ति में भी होने का अनुमान लगाया जा सकता है। इस प्रकार योजनाकाल में लगभग ६० लाख व्यक्तियों की वृद्धि हुई होगी जबकि योजना के अन्त में ५० लाख व्यक्ति बेरोजगार होने का अनुमान है। यदि यह मान लिया जाय कि प्रथम योजना के प्रारम्भ में प्रथम बेरोजगारी की समस्या नहीं के समतुल्य थी तो योजनाकाल में रोजगार के अवसरों में १४ लाख की वृद्धि हुई होगी। इन अनुमानों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि श्रम में वृद्धि की मात्रा के लगभग आधे के समतुल्य ही प्रथम पंचवर्षीय योजना में रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई। इस प्रकार बेरोजगारी की समस्या का निवारण प्रथम पंचवर्षीय योजना द्वारा न हो सका।

(४) उद्योगों के विकास हेतु योजनाओं में अत्यन्त अल्प राशि निर्धारित की गयी थी। उद्योगों की दीर्घ-कालीन आवश्यकता को ही अधिक महत्व दिया गया था। औद्योगिक क्षेत्र की अन्य समस्याओं जैसे सन्तुलित औद्योगिक विकास, उत्पादन क्षमता का पूर्णतम उपयोग, सम्पत्ति के विकेन्द्रीकरण की समस्याओं आदि पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। योजनाकाल में भी बहुत से उद्योग अपनी उत्पादन-क्षमता के केवल ६०% भाग का ही उपयोग करते रहे।

(५) सार्वजनिक क्षेत्र को अर्थ-साधन प्रदान करने के बाद भी प्राप्त साधनों को व्यय करने में भी कठिनाई हुई, इसलिए हम देखते हैं कि सार्वजनिक क्षेत्र की समस्त निर्धारित राशि २३५६ करोड़ रु० में से केवल १९६० करोड़ रु० ही वास्तविक व्यय हुआ। योजना के संचालन का भार ऐसे सरकारी शासन को सौंपा गया जो

ब्रिटिश काल म शासन हेतु उपयुक्त था। विकास के कायक्रमो का सचालन ऐसे ढाँचे द्वारा किये जाने म पर्याप्त सफलता प्राप्त नही हो सकती थी। व्यवस्था म आवश्यक परिवतन नही हो सके जिससे इस व्यवस्था द्वारा प्रबन्धन एव साहस-सम्बन्धी कार्यों को भी सफलतापूवक सचालित किया जा सके।

उपयुक्त असफलताओ को कोई गम्भीर महत्व नही दिया जा सकता है क्योकि इन असफलताओ की तुलना म योजना की सफलता अत्यधिक सराहनीय है। योजना की सवप्रमुख सफलता यह है कि योजना द्वारा विकास का प्रारम्भ हो गया था तथा भविष्य म आने वाली योजनाओ के लिए एक माग निर्मित हो गया था।

———

अध्याय २८

द्वितीय पंचवर्षीय योजना
[Second Five Year Plan]

[प्रारम्भिक उद्देश्य, योजना का व्यय एव प्राथमिकताएँ, अर्थ-प्रबन्ध, योजना के लक्ष्य, कार्यक्रम एव प्रगति, कृषि एव सामुदायिक विकास, सिंचाई एव शक्ति, औद्योगिक एव खनिज विकास-कार्यक्रम ग्रामीण एव लघु उद्योग, यातायात एव संचार, समाज-सेवाएँ; निवास गृह-व्यवस्था, उपभोग राष्ट्रीय एव प्रति व्यक्ति आय, द्वितीय योजना की असफलताएँ]

प्रारम्भिक

प्रथम पंचवर्षीय योजनाकाल की समाप्ति के पूर्व ही द्वितीय योजना की नीतियों एव कार्यक्रमों पर विचार किया जाने लगा था। प्रथम योजना द्वारा देश की अर्थ-व्यवस्था में यत्र-तत्र समायोजन करके उत्पादन में वृद्धि एव विषमताओं को कम करने के लक्ष्यों की पूर्ति करने का उद्देश्य निर्धारित किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप भविष्य की योजनाओं को दृढ़ पृष्ठभूमि प्राप्त हो सके तथा इनकी व्यवस्था निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर की जा सके। द्वितीय योजना के कार्यक्रम निर्धारित करने के पूर्व यह निश्चय करना अत्यन्त आवश्यक था कि देश में किस प्रकार की अर्थ-व्यवस्था का निर्माण किया जाय। इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया और राष्ट्र की सांस्कृतिक एव परम्परागत प्रवृत्तियों को दृष्टिगत करते हुए यह निश्चय किया गया कि समाजवाद का कठोर स्वरूप भारत के लिए उपयुक्त नहीं होगा। इसी पृष्ठभूमि में 'समाजवादी प्रकार के समाज' (Socialistic Pattern of Society) की विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ।

उद्देश्य

प्रथम पंचवर्षीय योजना की सफलताओं की पृष्ठभूमि पर द्वितीय पंचवर्षीय योजना बनायी गयी। इस योजना का कार्यक्रम १ अप्रैल सन् १९५६ को प्रारम्भ हुआ। प्रथम पंचवर्षीय योजना द्वारा जो विकास हुआ उसे दृढ़ बनाने एव उसकी गति में तीव्रता लाने के लिए द्वितीय योजना के कार्यक्रम निश्चित किए गये। द्वितीय योजना के प्रारम्भ होने पर योजना-आयोग ने बताया कि प्रथम योजना द्वारा जो प्रगति की नींव सफलतापूर्वक डाली गयी है उसी शिला पर अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों का विकास तीव्रता के साथ द्वितीय योजना द्वारा किया जायगा। प्रथम योजना

में जिस विकास की विधि का प्रारम्भ किया है, उस विधि की अगली अवस्थाओं की प्राप्ति द्वितीय योजना द्वारा हो सकेगी। द्वितीय योजना के मुख्य उद्देश्य निम्न थे—

(१) देश में जीवन स्तर को उन्नत करने के लिए राष्ट्रीय आय में पर्याप्त वृद्धि,

(२) द्रुत गति से औद्योगीकरण करना जिसमें आधारभूत एवं मूल उद्योगों पर विशेष जोर दिया गया

(३) रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना तथा

(४) आय एवं सम्पत्ति की असमानता को कम करना तथा आर्थिक क्षमता का अधिक समान वितरण करना।

उपर्युक्त समस्त उद्देश्य एक दूसरे से सम्बन्धित हैं क्योंकि राष्ट्रीय आय में वृद्धि एवं जीवन स्तर का उत्थान तब तक नहीं हो सकता जब तक उत्पादन एवं विनियोजन में पर्याप्त वृद्धि न हो। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सामाजिक एवं आर्थिक आधार का निर्माण, खानों का विदोहन एवं विकास, इस्पात, कोयला, यन्त्र निर्माण, भारी रसायन आदि आधारभूत उद्योगों का विकास अत्यन्त आवश्यक है। इन सभी क्षेत्रों में एक साथ विकास करने के लिए उपलब्ध जन शक्ति एवं प्राकृतिक साधनों का अधिकतम एवं लाभप्रद उपयोग होना चाहिए। भारत जैसे राष्ट्र में जहाँ जन शक्ति का आधिक्य है रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना एक महत्वपूर्ण उद्देश्य होना स्वाभाविक है। दूसरी ओर आर्थिक विकास के साथ कुछ आधारभूत सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति भी होनी चाहिए। इस प्रकार आर्थिक विकास के साथ सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं को लोकतन्त्रीय विधियों द्वारा कम करना आवश्यक है। आर्थिक उद्देश्यों को सामाजिक उद्देश्यों से पृथक नहीं किया जा सकता है क्योंकि आर्थिक क्रियाएँ सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति का साधन होती हैं।

राष्ट्रीय आय——द्वितीय पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में २५% वृद्धि करने का आयोजन किया गया, अर्थात् आय में प्रति वर्ष ५% वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया था। यह वृद्धि की दर प्रथम पंचवर्षीय योजना से लगभग दुगुना है। प्रति व्यक्ति आय भी २८१ रु० (सन् १९५५/५६) से बढ़कर ३३० रु० (सन् १९६०/६१) होने का अनुमान है। इस प्रकार द्वितीय योजनाकाल में प्रति व्यक्ति आय में १८% वृद्धि होने की सम्भावना था जबकि प्रथम योजना में यह वृद्धि १०% थी। समस्त राष्ट्रीय उत्पादन १०,८०० करोड़ रु० (प्रचलित मूल्यों पर) से बढ़कर १३,४८० करोड़ रु० योजना के अन्त तक होने का अनुमान था। इस राष्ट्रीय उत्पादन के लक्ष्य में ६,१७० करोड़ रु० कृषि से २,९१० करोड़ रु० औद्योगिक क्षेत्र से तथा ४,४०० करोड़ रु० व्यापार तथा अन्य तृतीय प्रकार (*Tertiary*) के व्यवसायों से उत्पत्ति होने की सम्भावना थी।

औद्योगीकरण—शीघ्र औद्योगीकरण के लिए द्वितीय योजना में विनियोजन

के प्रकार में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने का लक्ष्य था। उद्योगों पर व्यय होने वाली राशि ८९१ करोड़ रु० निर्धारित की गयी थी, जो प्रथम योजना की राशि १९६ करोड़ रु० से लगभग पाँच गुनी थी। प्रथम योजना के समस्त व्यय का ७% भाग उद्योगों पर व्यय होना था जबकि द्वितीय योजना में यह १९% रखा गया। दूसरी ओर प्रथम योजना की ३ % राशि कृषि एवं सिंचाई के लिए निर्धारित की गयी थी जबकि द्वितीय योजना में इस मद पर योजना के समस्त व्यय की २१% (१२३ करोड़ रु०) राशि व्यय की जानी थी। इस प्रकार द्वितीय योजना में उद्योगों के विकास को अधिक महत्व दिया गया था। रहन सहन का निम्नस्तर, बेरोजगारी एवं अर्द्ध-बेरोजगारी तथा अधिकतम एवं न्यूनतम व्यक्तिगत आय में अधिक अन्तर अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था का परिचय देते हैं और अर्थ-व्यवस्था की कृषि पर निर्भरता की ओर संकेत करते हैं। ऐसी अर्थ-व्यवस्था का विकास करने के लिए शीघ्र औद्योगीकरण की आवश्यकता होती है। शीघ्र औद्योगीकरण के लिए रूप में आधारभूत एवं यन्त्र-निर्माण उद्योगों के विस्तार एवं विकास की आवश्यकता होती है अतः पूँजीगत वस्तुओं एवं मशीन निर्माण उद्योगों के विकास योजना का मुख्य उद्देश्य रखा गया।

रोजगार—योजना में ८० लाख व्यक्तियों को कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों तथा २० लाख को कृषि में रोजगार प्राप्त कराने का आयोजन किया गया। योजना के कार्यक्रमों एवं विनियोजन के फलस्वरूप खनिज कारखानों, निर्माण, व्यापार, यातायात एवं सेवाओं में श्रमिकों की अधिक आवश्यकता होगी तथा नवीन श्रमिकों को कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों में रोजगार के अवसर प्रदान किए जा सकते थे। इसके साथ ही कृषि तथा ग्रामीण एवं लघु उद्योगों में अर्द्ध-रोजगार का निवारण किया जा सकेगा। इस प्रकार देश के व्यावसायिक ढाँचे में कुछ सुधार होने की सम्भावना थी। योजनाकाल में प्राथमिक व्यावसायिक क्षेत्र से माध्यमिक तथा तृतीय व्यावसायिक क्षेत्रों में श्रम को ले जाना आवश्यक होगा। योजना में सिंचाई, भूमि-सुरक्षा, पशुओं में सुधार तथा कृषि सुधार हेतु पर्याप्त कार्यक्रम थे। इसके साथ, ग्रामीण तथा लघु उद्योगों के विकास का आयोजन भी किया गया था। इन सब आयोजनों से ग्रामीण क्षेत्र के अर्द्ध-रोजगार का बहुत बड़ी सीमा तक निवारण सम्भव होगा। योजना में लगभग उतने ही रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने का आयोजन किया गया था जितना योजनाकाल में नवीन श्रमिक शक्ति में वृद्धि का अनुमान था। इस प्रकार प्रथम योजना के अवशिष्ट बेरोजगारों जिनकी संख्या ५६ लाख अनुमानित थी, को रोजगार के अवसर प्रदान नहीं किये जा सके। योजना में निर्माण-कार्यक्रम को विस्तृत करने का आयोजन था और निर्माण-सम्बन्धी कार्यक्रमों में रोजगार के अवसरों को आवश्यकतानुसार परिवर्तित किया जा सकते थे। निर्माण कार्यक्रमों से रोजगार के अवसर अस्थायी होते हैं इसलिए इस बात का प्रबन्ध करने का प्रयत्न किया जाना था कि निर्माण-कार्य से पृथक हुए श्रमिकों को अन्य निर्माण-कार्य में रोजगार प्रदान किया जा सके।

रोजगार के अवसरों में पर्याप्त वृद्धि करने को अधिक प्राथमिकता दी गयी थी किन्तु रोजगार में वृद्धि करने के लिए एक ओर, औजार एवं उत्पादक सामग्री में और दूसरी ओर उपभोक्ता-वस्तुओं में पर्याप्त वृद्धि होना चाहिए। यदि आर्थिक विकास हेतु उत्पादक एवं पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन को आवश्यक समझा जाय तो देश की जन शक्ति का लाभप्रद उपयोग करने के लिए उपभोक्ता वस्तुओं, जैसे खाद्यान्न वस्त्र शक्कर निवास गृह आदि के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि होना आवश्यक होता है। जब बेरोजगारों को लाभप्रद रोजगार दिया जाता है तो एक ओर उन्हें यंत्र मशीनें एवं अन्य उत्पादक वस्तुएं चाहिए जिन पर वह काम करें तथा दूसरी ओर उनकी जो आय हो उससे वह जो उपभोक्ता वस्तुओं का क्रय करना चाहें उसकी पूर्ति होनी चाहिए। इस प्रकार उत्पादनक्षमता में वृद्धि करना रोजगार का मुख्य अंग हो जाता है। इसी कारण बेरोजगारी की समस्या उन्हीं राष्ट्रों में निश्चित रूप धारण कर लेती है जिनमें उत्पादनक्षमता कम होती है। यद्यपि भारत जैसे देश में, जहां जन शक्ति का बाहुल्य है अधिक श्रम का उपयोग करने वाली उत्पादन विधियों को प्राथमिकता मिलनी चाहिए, फिर भी कुछ क्षेत्रों में श्रम की बचत करने वाले उत्पादन के तरीकों का उपयोग करने से ही रोजगार के अवसर बढ़ाये जा सकते हैं।

विषमताओं में कमी—योजना में आय तथा धन के असमान वितरण को कम करने के लिए कई प्रकार के कार्यक्रम निश्चित किये गये। योजना आयोग द्वारा कर देने के पश्चात व्यक्तिगत शुद्ध आय की अधिकतम सीमा को निश्चित करना आवश्यक बताया गया। आय कर में अधिक आय के स्तरों पर वृद्धि जायदाद कर में वृद्धि धन पर वार्षिक कर अधिक आय पर व्यय के आधार पर करारोपण आदि द्वारा आर्थिक असमानता कम करने की सिफारिश की गयी। भूमि सुधार में अधिकतर भूमि की सीमा जो एक व्यक्ति एवं परिवार रख सकता है निश्चित करने पर जोर दिया गया तथा लघु एवं ग्रामीण उद्योगों के विकास द्वारा कम आयोपार्जन करने वाले कृषकों की आय में वृद्धि करने का आयोजन किया गया।

सम्पत्ति के वितरण में असमानता कम करने के लिए एक विकेन्द्रित समाज (Decentralized Society) की स्थापना का आयोजन किया गया। आय के प्रतिफलस्वरूप प्राप्त पारिश्रमिक की असमानता लोगों की योग्यता शिक्षा प्रशिक्षण तथा कार्यक्षमता के कारण उद्भूत होती है। शिक्षा प्रशिक्षण आदि समस्त धनोपार्जक शक्तियाँ धन द्वारा प्राप्त की जाती हैं, इसलिए शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा को योग्यता क्षमता एवं रुचि के अनुसार देने का सुझाव दिया गया। शिक्षा के क्षेत्र में व्यय करने की क्षमता को विशेष महत्व नहीं मिलना चाहिए। इस प्रकार समस्त जनसमुदाय को समान अवसर प्रदान करने का आयोजन करने के प्रयास किये गये।

आर्थिक विषमता को कम करने के लिए सहकारी उत्पादन का विकास महाजनों का विस्थापन, निष्क्रिय लगान प्राप्त करने वालों का उन्मूलन व्यक्तिगत एकाधि-

विकास पर नियन्त्रण एव राजकीय क्षेत्र का विस्तार आदि अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन थे। इन सभी बातों के लिए द्वितीय योजना में विशेष प्रबन्ध किया गया। साथ ही, प्रादेशिक विषमता का अन्त करने के लिए सन्तुलित विकास की ओर अधिक ध्यान दिया गया।

उपर्युक्त उद्देश्यों के आधार पर ही योजनाकाल की आर्थिक नीतियां निर्धारित की जाती थी। आर्थिक नीति द्वारा केवल अर्थ-साधनों की प्राप्ति ही नहीं की जाती, अपितु उपभोग एव विनियोजन का इस प्रकार भी निश्चित किया जाता है, ताकि योजना की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। योजना में केवल विकास-कार्यक्रमों की सूची ही नहीं होती है बल्कि यह भी निर्धारित किया जाता है कि इन कार्यक्रमों को किस प्रकार कार्यान्वित किया जायगा। योजना के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु दो तरीकों का उपयोग किया जा सकता है। प्रथम ढग की आर्थिक क्रियाओं को राजकर (Fiscal) एव मौद्रिक (Monetary) नीतियों द्वारा पूर्णत नियन्त्रित कर दिया जाता है। द्वितीय विधि मे आयात निर्यात नियन्त्रण, उद्योग एव व्यवसायों का अनुज्ञा-पत्र निगमन मूल्य-नियन्त्रण तथा उत्पादन की मात्रा निर्धारित करना आदि द्वारा अर्थ व्यवस्था के वाञ्छनीय क्षेत्रों को नियन्त्रित कर दिया जाता है। राजकर एव मौद्रिक नियन्त्रणों द्वारा एक ऐसी विस्तृत योजना को जिसमें विनियोजन में अधिकतम वृद्धि करने तथा प्राथमिकताओं के अनुसार विकास करने का आयोजन हो क्रियान्वित नहीं किया जा सकता है इसलिए दूसरी विधि को ही योजना-आयोग ने अधिक महत्व दिया है। यद्यपि योजना आयोग ने आवश्यक वस्तुओं के मूल्य नियन्त्रण एव राशनिंग का यथासम्भव उपयोग न करने के सम्बन्ध में प्रयास करने का आश्वासन दिया है परन्तु पूर्ति में पर्याप्त वृद्धि न होने एव विनियोजन के साधनों का उपयोग के लिए उपभोग होने से रोकने के लिए आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों एव वितरण पर नियन्त्रण लगाये जा सकते थे। सरकार को मूल्यों के उच्चावचन को रोकने के लिए बफर स्टाक का आयोजन करना था। इसके साथ ही व्यापारिक फसलों के मूल्यों में समायोजन का प्रयास भी करना था जिससे खाद्यान्नों के उत्पादन पर गम्भीर प्रभाव न पड़े। औद्योगिक क्षेत्र में औद्योगिक वित्त निगम तथा औद्योगिक साख एव विनियोजन निगम (Industrial Finance Corporation and Industrial Credit and Investment Corporation) व्यक्तिगत क्षेत्र की आवश्यकताओं की पूर्ति करें तथा राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम (National Industrial Development Corporation) राजकीय उद्योगों का प्रवर्तन एव विकास करना। राजकीय वित्त निगम (State Finance Corporation) एव केन्द्रीय लघु उद्योग निगम छोटे-छोटे व्यवसायों को सहायता प्रदान करें।

उपर्युक्त उद्देश्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि द्वितीय योजना में प्रथम योजना के उद्देश्यों की तुलना में कुछ आधारभूत अन्तर है। प्रथम योजना द्वारा

समग्र अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में न्यूनता थी अतएव उत्पादन में वृद्धि को विशेष महत्व दिया गया था। यद्यपि विषमताओं को कम करने के लिए भी कुछ ठोस कदम उठाये गये किन्तु वे अपर्याप्त थे। द्वितीय योजना में उत्पादन में सर्वांगीण वृद्धि के साथ साथ औद्योगीकरण और विशेषतः आधारभूत उद्योगों के विकास को भी आवश्यक समझा गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना द्वारा कृषि उत्पादन में काफी वृद्धि हो गयी थी और अब औद्योगीकरण की ओर कदम उठाये जा सकते थे। औद्योगीकरण साधन एवं लक्ष्य दोनों ही था। औद्योगीकरण द्वारा ही बेरोजगारी की समस्या का निवारण किया जा सकता है। इस प्रकार रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने के लिए औद्योगीकरण एक साधन था। दूसरी ओर, देश की अर्थ-व्यवस्था को दृढ़ बनाने के लिए आधारभूत उद्योगों का विकास एवं विस्तार अति आवश्यक था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना रोजगार की समस्या के निवारण को प्राथमिकता देती है जबकि प्रथम योजना में इस ओर ठोस कदम नहीं उठाये गये थे। प्रथम योजना में व्यावसायिक ढांचे में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ परन्तु द्वितीय योजना में औद्योगिक विकास द्वारा व्यावसायिक ढांचे में परिवर्तन होने की अत्यधिक सम्भावना थी। द्वितीय योजना द्वारा एक नये समाज—समाजवादी प्रकार के समाज का निर्माण करना था।

योजना का व्यय एवं प्राथमिकताएँ

योजना के लक्ष्य निश्चित करने के लिए सामान्य वित्तीय विचारधाराओं को आधार नहीं माना गया प्रत्युत प्रथम भौतिक लक्ष्यों को निश्चित कर दिया गया तत्पश्चात् इन लक्ष्यों के लिए साधन एकत्रित करने की विधियों पर विचार किया गया। प्रायः योजना के उपलब्ध अर्थ तथा योजना द्वारा वांछनीय वित्तीय फलों के आँकड़े तैयार कर ही योजना के भौतिक कार्यक्रम निश्चित किये जाते हैं दूसरे शब्दों में हम इसे वित्तीय नियोजन (Financial Planning) भी कह सकते हैं। जब योजना के कार्यक्रम वित्त की उपलब्धि पर निर्भर हों तो उसे वित्तीय नियोजन कहा जा सकता है। द्वितीय योजना में इसकी विपरीत रीति को अपनाया गया अर्थात् योजना के भौतिक लक्ष्य निश्चित करने के पश्चात उनकी पूर्ति के लिए अर्थ साधन की प्राप्ति के माध्यमों पर विचार किया गया। इस प्रकार योजना बनाने में देश की आवश्यकताओं तथा जनसाधारण की इच्छाओं के अनुसार भौतिक लक्ष्य निश्चित कर लिए जाते हैं परन्तु कभी कभी ऐसे कार्यक्रमों की पूर्ति के लिए योजनाकाल के मध्य में आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और इस मध्यकाल में योजना के कार्यक्रमों में कोई परिवर्तन करने से समस्त योजना के छिन्न भिन्न होने का भय रहता है। द्वितीय योजना के तृतीय एवं चतुर्थ वर्ष में आर्थिक कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं। हमारे विदेशी मुद्रा के साधन अत्यन्त कम हो गये तथा हीनार्थ प्रबन्धन अनुमान से अधिक करना पड़ा जिससे मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि हुई परन्तु नियोजक सम्भवतः इन कठिनाइयों का योजना के पूर्व ही अनुमान कर चुके थे इसलिए योजना के कार्यक्रमों को लचीला

रखा गया था। योजना के तृतीय वर्ष में इसीलिए योजना के वित्तीय साधनों का ४,८०० करोड़ रु० से घटाकर ४,५०० करोड़ रु० कर दिया गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना की कुल लागत ७,२०० करोड़ रु० थी जिसमें से ४,८०० करोड़ रु० सार्वजनिक क्षेत्र में तथा २,४०० करोड़ रु० व्यक्तिगत क्षेत्र में व्यय होना था। ४,८०० करोड़ रु० की राशि में से २,५५९ करोड़ रु० केन्द्रीय सरकार द्वारा तथा २,२४१ करोड़ रु० राज्य सरकारों द्वारा व्यय किया जाना था। विभिन्न मदों पर व्यय एवं विनियोजन की राशियाँ निम्न प्रकार वितरित की गयीं—

तालिका सं० ६२—द्वितीय योजना में विभिन्न मदों पर विनियोजन एवं चालू व्यय

(करोड़ रुपयों में)

मद	विनियोजन की राशि	चालू व्यय की राशि	योग
(१) कृषि एवं सामुदायिक विकास	३३८	२३०	५६८
(अ) कृषि	१८१	१६०	३४१
(ब) राष्ट्रीय विस्तार एवं सामुदायिक विकास	१५७	७०	२२७
(२) सिंचाई एवं शक्ति	८६३	५०	९१३
(अ) सिंचाई एवं बाढ़ नियन्त्रण	४५६	३०	४८६
(ब) शक्ति	४०७	२०	४२७
(३) बृहद् उद्योग एवं खनिज	७९०	१००	८९०
(अ) बृहद् एवं मध्य-वर्ग के उद्योग	६७०	२०	६९०
(ब) ग्रामीण एवं लघु उद्योग	१२०	८०	२००
(४) यातायात एवं सम्वादवाहन	१,३३५	५०	१,३८५
(५) समाज-सेवाएँ	४५५	४९०	९४५
(६) अन्य	१९	८०	९९
योग	३,८००	१०००	४८००

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सरकारी क्षेत्र के विनियोजन की राशि में वृद्धि के साथ-साथ व्यक्तिगत क्षेत्र के विनियोजन की राशि में भी वृद्धि कर दी गयी। योजना के उत्पादन एवं विकास के लक्ष्य निश्चित करते समय निजी क्षेत्र के विनियोजन के प्रभावों का भी दृष्टिगत किया गया। गत पाँच वर्षों की विनियोजन प्रवृत्तियों पर द्वितीय पंचवर्षीय योजनाकाल में होने वाले ज्ञात विनियोजन के आधार पर निजी

क्षेत्र में विनियोग होने वाली राशि का अनुमान २४०० करोड़ रु० था। यह विनियोजन विभिन्न मदों पर इस प्रकार विभक्त होने का अनुमान था—

तालिका सं० ६४—द्वितीय योजना में निजी क्षेत्र के अन्तर्गत विभिन्न मदों पर विनियोजन

मद	(विनियोजन (करोड़ रु०)
(१) संगठित उद्योग एवं खनिज	५७५
(२) पौध वाले व्यवसाय विद्युत शक्ति एवं रेल के अतिरिक्त अन्य यातायात	१२५
(३) निर्माण	१०००
(४) कृषि तथा ग्रामीण एवं लघु उद्योग	३००
(५) संग्रह (Stocks)	४००
योग	२४००

प्रथम पंचवर्षीय योजना में व्यक्तिगत एवं शासकीय क्षेत्र के विनियोजन का अनुमान ३३६० करोड़ रुपया था जिसमें व्यक्तिगत एवं शासकीय क्षेत्र का अनुपात ८ : ८ था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में समस्त विनियोजन की राशि ६२०० करोड़ रु० अनुमानित थी जिसमें शासकीय एवं व्यक्तिगत क्षेत्र का अनुपात ६१ : ३९ होने का अनुमान था। इससे स्पष्ट है कि शासकीय क्षेत्र निरन्तर विस्तार की ओर अग्रसर था। द्वितीय योजना में प्रथम योजना की तुलना में विनियोजन की राशि शासकीय क्षेत्र में २½ गुनी तथा निजी क्षेत्र में ३३⅓% अधिक थी।

अर्थ प्रबन्धन

द्वितीय योजना के अर्थ साधनों के अध्ययन से स्पष्ट है कि योजना-आयोग ने भौतिक लक्ष्यों को अधिक महत्व दिया था और वित्तीय साधनों का विस्तार करने के प्रयास पर जोर दिया गया था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के प्रथम वर्ष में राष्ट्रीय आय का ७.३% भाग आन्तरिक बचत था जिसे द्वितीय पंचवर्षीय योजनाकाल में बढ़ाकर १०.७% करने का लक्ष्य था। इस हेतु दो बातों पर विचार किया गया था—प्रथम बचत को बढ़ाने के लिए उपभोग को किस सीमा तक कम करना उचित होगा तथा दूसरे वर्तमान आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था में कौन-कौन सी बचत-वृद्धि की विधियाँ अपनायी जायेंगी अर्थात् प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में कर एवं अन्य आर्थिक नीतियों को उपयुक्त दोनों बातों को आधार मान कर ही निर्धारित किया जाना चाहिए। आन्तरिक साधनों के अतिरिक्त औद्योगीकरण के कार्यक्रम को क्रियान्वित करने के लिए विदेशी मुद्रा की भी अधिक आवश्यकता थी। विदेशी साधनों की उपलब्धि के लिए एक ओर, आयात में मितव्ययता और दूसरी ओर निर्यात में वृद्धि करने की आवश्यकता थी। शासकीय क्षेत्र में अर्थ प्रबन्धन की व्यवस्था निम्न प्रकार करने का लक्ष्य था—

तालिका न० ६५—द्वितीय योजना का अर्थ-प्रबन्धन

आय का माध्यम	आय (करोड़ रु० में)	
(१) चालू आय का आधिक्य		
(अ) वर्तमान कर की दरों से	३५०	
(ब) अतिरिक्त करों से	४५०	८००
(२) जनता से ऋण		
(अ) बाजार से ऋण	७००	
(ब) लघु बचत	५००	१,२००
(३) बजट के अन्य साधन		
(अ) विकास-कार्यक्रमों में रेलों का अनुदान	१५०	
(ब) प्राविधिक निधि (Provident Fund) एवं अन्य जमा	२५०	४००
(४) विदेशी सहायता		८००
(५) घाटे की अर्थ व्यवस्था (Deficit Financing)		१,२००
(६) अपूर्णता—जो आन्तरिक साधनों की वृद्धि द्वारा पूर्ण की जायगी		४००
	योग	४,८००

उपर्युक्त आँकड़ों से ज्ञात होता है कि बजट के साधनों से योजना के समस्त व्यय का ५०% भाग प्राप्त होना था। २५% हीनार्थ प्रबन्धन द्वारा तथा $16\frac{2}{3}\%$ भाग विदेशी सहायता द्वारा प्राप्त होना था। इस प्रकार ४,४०० करोड़ रुपये के लिए साधन उपलब्ध होने थे और ४०० करोड़ रुपये की अपूर्णता थी। इस कमी को पूरा करने के लिए आन्तरिक साधनों की वृद्धि करने की आवश्यकता थी। बजट के साधनों में ही ४५० करोड़ रुपये के अतिरिक्त करों का आयोजन था और कथित न्यूनता की पूर्ति हेतु ४०० करोड़ रु० के अतिरिक्त कर और लगाये जाते तो जनता पर अत्यधिक कर भार हो जाता। विभिन्न साधनों से प्राप्त होने वाली राशि का आयोजनात्मक अध्ययन करना आवश्यक है।

कर—भारत में विकास-सम्बन्धी नियोजन की सफलतार्थ राष्ट्रीय आय तथा बचत के अनुपात में वृद्धि करना आवश्यक है जिससे राष्ट्रीय आय के पर्याप्त भाग को निरन्तर विनियोजन के लिए उपयोग किया जा सके। इसीलिए भारत में कर के ढाँचे को इस प्रकार व्यवस्थित करना आवश्यक है जिससे औद्योगिक एवं कृषि-क्षेत्र में अधिकतम बचत हो सके। द्वितीय योजना में कर-व्यवस्था में समायोजन करने की आवश्यकता समझी गयी। विकास-व्यय में वृद्धि होने से सभी वर्गों के लोगों की आय में वृद्धि हो

जाती है इसीलिए अप्रत्यक्ष करों को विशेष महत्व दिया गया था तथा प्रत्यक्ष करो म कुछ समायोजन करना आवश्यक समझा गया था।

द्वितीय पचवर्षीय योजना म २ ४०० करोड रु० बजट के साधनो से प्राप्त होने का अनुमान था। इसम से ३५० करोड रु० वर्तमान दरों के आधार पर चालू आय से बचत होने की सम्भावना थी। सन् १९५५ ५६ की कर की दरो के आधार पर केन्द्रीय राज्य सरकारो की पचवर्षीय आय ५ ००० करोड रु० अनुमानित की गयी। इसम से विकास के अतिरिक्त अन्य व्यय जसे सुरक्षा एव शासन-सम्बन्धी व्यय तथा विकास की मदो का निर्वाह (Maintenance) सम्बन्धी व्यय की राशि ४६५० करोड रु० अनुमानित की गयी। इस प्रकार ३५० करोड रु० वर्तमान आय के साधनो से योजना के विकास कार्यक्रमो के लिए उपलब्ध होने का अनुमान लगाया गया परन्तु विकास के अतिरिक्त अन्य मदो पर किये जाने वाले शासकीय व्यय पर कठोर नियन्त्रण रखने की आवश्यकता थी क्योकि उनमे वृद्धि होने पर विकास कार्यक्रमो के लिए पर्याप्त राशि उपलब्ध नही हो सकती थी। दूसरी ओर ४५० करोड रु० अतिरिक्त करो द्वारा प्राप्त होने का अनुमान था। इस राशि का अनुमान कर पर्यवेक्षण आयोग (Taxation Enquiry Commission) की सिफारिशो के आधार पर किया गया था। इस राशि का अद्ध भाग राज्य सरकारो तथा शेष अद्ध भाग केन्द्रीय सरकार द्वारा एकत्रित किया जाना था। इसके अतिरिक्त ४०० करोड रु० की न्यूनता की पूर्ति करने के लिए भी कर के साधनो का उपयोग किया जाना था। इस प्रकार द्वितीय योजना म कर के साधनो से १,२०० करोड रु० प्राप्त करने का लक्ष्य था। प्रथम पचवर्षीय योजना म कर के साधन से ७५२ करोड रु० (रेलो के अनुदान सहित) प्राप्त हुआ। प्रथम योजना के अन्तिम वर्ष सन् १९५५ ५६ म राष्ट्रीय आय का केवल ७% कर के रूप म प्राप्त किया गया। कर के साधनो से द्वितीय योजना मे १ २०० करोड रुपया प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय आय का लगभग २% या ३% अधिक कर के रूप म प्राप्त करने की आवश्यकता थी। द्वितीय योजना म हीनार्थ प्रबन्धन को अर्थ का महत्वपूर्ण साधन माना गया था। मुद्रा प्रसार द्वारा मूल्यो म वृद्धि होना स्वाभाविक था। इस प्रकार मुद्रा की क्रय शक्ति म कमी हो जाने के कारण जनसाधारण को अपनी अतिरिक्त आय का अधिकांश भाग तत्कालीन जीवन स्तर का निर्वाह करने के लिए व्यय करना पडता और वह कर के रूप में मौद्रिक दृष्टिकोण से भले ही इतना अधिक कर वहन कर लेता परन्तु सरकार द्वारा प्राप्त इस मुद्रा की क्रय शक्ति उतनी नही होती जितनी अनुमानित थी। इस प्रकार यद्यपि मौद्रिक दृष्टिकोण से १ २०० करोड रु० कर द्वारा प्राप्त कर भी लिया जाता तो भी इस राशि की वास्तविक क्रय शक्ति कम ही होती।

जनता से ऋण—जनता से ऋण के रूप म १ २०० करोड रु० प्राप्त होने का लक्ष्य था। उसम ७०० करोड रु० बाजार से ऋण जीवन बीमा कम्पनियो की निधि तथा सामाजिक सुरक्षा के चन्दे आदि से तथा ५०० करोड रु० लघु बचत से

एकत्रित किए जाने थे। द्वितीय योजनाकाल में ४३० करोड़ रु० के ऋणों का भुगतान देय होना था और इसका शोधन भी ऋण की प्राप्तियों से करने के लिए १,२३० करोड़ रु० ऋण के रूप में प्राप्त होने चाहिए थे। प्रथम पंचवर्षीय योजना में ऋण से ११५ करोड़ रु० ऋण के रूप में प्राप्त होने की सम्भावना थी जबकि वास्तव में २०५ करोड़ रु० प्राप्त हुआ। सार्वजनिक ऋण की माँग योजना के अन्तिम दो वर्षों में अधिक हो गयी थी। इन बाद के वर्षों में लगभग ६५ करोड़ रु० प्रति वर्ष ऋण के रूप में प्राप्त हुआ। द्वितीय योजनाकाल में १,१३० करोड़ रु० की राशि प्राप्त करने के लिए प्रति वर्ष २२६ करोड़ रु० के ऋणों की बिक्री होनी चाहिए थी, अर्थात् प्रथम योजना के अन्तिम वर्षों के ऋण के विक्रय की दर से १००% की वृद्धि होनी चाहिए थी। सार्वजनिक विनियोग हेतु इतनी अधिक राशि ऋण के रूप में प्राप्त करना सुगम न था। योजना में सामाजिक सुरक्षा के विस्तार का आयोजन किया गया क्योंकि इसके माध्यम से एक ओर कर्मचारियों को सुरक्षा प्रदान की जा सकती थी तथा दूसरी ओर, यह बचत का महत्वपूर्ण साधन थी। द्वितीय योजना के विकास-व्यय के कारण जनसमुदाय की मौद्रिक एवं वास्तविक आय में वृद्धि होने की सम्भावना थी। व्यक्तिगत उपभोग पर नियन्त्रण लगाकर ऋण की राशि को पूरा किया जा सकता था।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में लगभग ४७ करोड़ रुपया प्रति वर्ष अल्प बचत से प्राप्त हुआ। द्वितीय योजना में इस राशि को दुगुना करने का लक्ष्य था। सामान्य आय की वृद्धि का अधिकतर भाग उपभोग पर ही व्यय हो जाता था क्योंकि हीनार्थ-प्रबन्धन के परिणामस्वरूप मूल्य-वृद्धि अवश्यम्भावी थी। मुद्रा की क्रय-शक्ति कम होने पर ब्याज के रूप में निश्चित दर से प्राप्त होने वाली राशि का भी वास्तविक मूल्य कम हो जाता है तथा इस प्रकार जब बचत करने वालों को अपनी बचत पर वास्तविक आय कम होती है तो वह अधिक बचत की ओर आकर्षित नहीं होते।

बजट के अन्य साधन—योजना-आयोग के अनुमानानुसार रेलों से १५० करोड़ रु० विकास के कार्यक्रमों के लिए प्राप्त हो सकता था। यह राशि प्रथम योजना में ११५ करोड़ रु० थी। रेलों को अपना अनुपात बढ़ाने के लिए अपनी वार्षिक आय में ७ करोड़ रु० की वृद्धि करनी थी। अन्य बजट के साधनों से २५० करोड़ रु० प्राप्त करने का लक्ष्य था जिसमें से लगभग १५० करोड़ रु० प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकारों की प्राविडेण्ट निधि (*Provident Fund*) की राशि से तथा १०० करोड़ रु० केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों द्वारा दिये गये ऋणों के भुगतान में तथा अन्य पूँजीगत प्राप्तियों के रूप में प्राप्त होने का अनुमान था।

विदेशी सहायता—योजना में ८०० करोड़ रु० की विदेशी सहायता प्राप्त होने का अनुमान था। प्रथम योजना में २९६ करोड़ रु० की विदेशी सहायता प्राप्त करना था जिसमें से केवल १८८ करोड़ रुपया ही उपयोग किया गया। इस प्रकार १०८ करोड़ रुपये की राशि प्रथम योजना में विदेशी सहायता के रूप में प्राप्त हुई।

द्वितीय योजना में शेष ६२२ करोड़ रु० की विदेशी सहायता का आयोजन करना था। प्रथम योजना की तुलना में यह अनुमान अभिलाषी प्रतीत होते थे।

हीनार्थ प्रबन्धन—प्रथम पंचवर्षीय योजना में हीनार्थ प्रबन्धन द्वारा योजना के समस्त व्यय की राशि का लगभग 1/5 भाग अर्थात् ४२० करोड़ रु० प्राप्त किया गया। द्वितीय योजना में इस साधन को विशेष महत्व प्रदान किया गया तथा इसके द्वारा १ २०० करोड़ रु० प्राप्त करने का अनुमान था। इसके अतिरिक्त योजना के अर्थ साधनों की ४०० करोड़ रु० की अपूर्णता की जितनी पूर्ति कर आदि साधनों से न हो सकती थी, उतनी मात्रा में हीनार्थ प्रबन्धन में वृद्धि करनी था। अन्य साधनों की न्यूनता का भार भी इस व्यवस्था पर पड़ना था। इस प्रकार द्वितीय योजना में हीनार्थ प्रबन्धन १ २०० करोड़ रु० से भी अधिक होने की सम्भावना था। द्वितीय योजना में इस अर्थ साधन को सर्वाधिक महत्व दिया गया था जबकि कर पर्यवेक्षण आयोग (Taxation Enquiry Commission) ने कर व्यवस्था को विकास कार्यक्रमों का प्रमुख अर्थ साधन समझने का अनुमोदन किया था।

योजना आयोग के अनुमानानुसार १ २०० करोड़ रु० के हीनार्थ प्रबन्धन में २०० करोड़ रु० का पौण्ड पावना मुक्त होने की सम्भावना था तथा १ ००० करोड़ रु० से मुद्रा प्रसार की सम्भावना थी। मुद्रा प्रसार के फलस्वरूप, अधिकोषों द्वारा साख में भी वृद्धि की सम्भावना की जा सकती थी किन्तु साख की वृद्धि अधिक नहीं होनी थी क्योंकि भारतीय जनता अधिकोष पत्रों की तुलना में मुद्रा संचयन पसन्द करती है। यदि चालू मुद्रा (Currency in Circulation) तथा जमा मुद्रा (Deposit Currency) के अनुपात में कोई अन्तर न हो तो यह अनुमान लगाया जा सकता था कि मुद्रा की पूर्ति में योजनाकाल में ६६% की वृद्धि होगी जबकि राष्ट्रीय आय तथा उत्पादन में २५% वृद्धि का लक्ष्य था। इस प्रकार केवल ४१% मुद्रा-वृद्धि के लिए आधार नहीं होने की सम्भावना थी परन्तु इसमें से भी कुछ राशि कम की जा सकती थी क्योंकि आय की वृद्धि के साथ जनसंख्या की मुद्राधारण शक्ति अधिक बढ़ जाती है। इस प्रकार हीनार्थ प्रबन्धन द्वारा १ २०० करोड़ रु० प्राप्त करने से मुद्रा-स्फीति का भय इतना गम्भीर नहीं था परन्तु मुद्रा-स्फीति के भय को सर्वथा निराधार नहीं कहा जा सकता था। विकास कार्यक्रमों की सफलता के कम या अधिक जोखिम लेना अनुचित नहीं था फिर भी मुद्रा स्फीति से बचाव के लिए आवश्यक वस्तुओं जैसे खाद्यान्न एवं वस्त्र के मूल्यों एवं वितरण पर अंकुश रखना आवश्यक था। मुद्रा-स्फीति का सबसे महत्वपूर्ण बचाव खाद्यान्नों के संचय पर शासकीय नियन्त्रण था। भारतीय अर्थ व्यवस्था में खाद्यान्न एवं वस्त्र महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं और जब तक इन वस्तुओं के मूल्यों की वृद्धि पर यथोचित सीमा रखी जाती है तब तक जनसाधारण के रहन सहन की लागत में अधिक वृद्धि नहीं होनी है।

द्वितीय योजना के प्रारम्भ से ही विदेशी विनिमय की कठिनाई प्रतीत होने

कृपि उत्पादन से प्रत्यक्षरूपण सम्बद्ध कायक्रम, केद्रित कायक्रम (Core Projects) तथा ऐम कायक्रम, जा पूण होन क समीप हों को सम्मिलित किया गया। नेप सभी कायक्रम भाग ब म सम्मिलित किये गय जिनका कार्यान्वित करना साधना की उपलब्धि पर निभर रहगा। भाग अ क कायक्रमा का क्रियान्वित करन क लिए मी कर एव ऋण द्वारा अतिरिक्त अय साधना का उपलब्ध होना आवश्यक था। विभिन्न मदा पर दोहराया गयी व्यय राशियाँ निम्न प्रकार हैं—

तालिका स० ६६—द्वितीय योजना का दोहराया गया व्यय-अनुमान[1]

मद	दोहराया गया वितरण (करोड रु०) (योजना क समस्त व्यय ४८०० करोड रु० म कुछ योजनाओं का लागत की वृद्धि क अनुसार समायोजन करन क लिए)	समस्त व्यय से प्रतिशत मौलिक	समस्त व्यय से प्रतिशत दोहराया गया	योजना का भाग अ (करोड रु०)	भाग अ क समस्त व्यय से प्रतिशत
कृपि एव सामुदायिक विकास	५६८	११ ८	११ ८	५१०	११ ३
सिचाई एव शक्ति	८६०	१७ ६	१७ ६	८२०	१८ २
ग्रामीण एव लघु उद्योग	२००	४ २	४ २	१६०	३ ६
उद्योग एव खनिज	८८०	१४४	१८ ४	७९०	१७ ५
यातायात एव सचार	१,३४५	२८ ६	२८ ०	१,३४०	२९ ८
समाज-सेवाए	८६४	१९ ७	१८ ०	८१०	१८ ०
अन्य	८४	२ ०	१ ७	७०	१ ६
योग	४८००	१०० ०	१०० ०	४५००	१०० ०

योजना क अ भाग क समस्त व्यय ४५०० करोड रु० म २,५१२ करोड रु० केन्द्र एव १,९८८ करोड रु० राज्य सरकारों द्वारा व्यय किया जाना था।

योजना का वास्तविक व्यय ४,६०० करोड रु० लोकक्षेत्र म हुआ जिसम से ३,६५० करोड रु० विनियोजन एव ९५० करोड रु० था। मलाक क्षेत्र म योजना

1 *India 1960* p 205

काल में ३,१०० करोड़ रु० का विनियोजन किया गया। लोक एवं अलोकक्षेत्र का वास्तविक व्यय एवं विनियोजन विभिन्न मदों पर निम्न प्रकार हुआ—

तालिका स० ६७—द्वितीय योजना का वास्तविक व्यय एवं विनियोजन

(करोड़ रु० में)

विकास मद	लोकक्षेत्र का व्यय	व्यय के योग से प्रतिशत	लोक क्षेत्र का विनियोजन	अलोक-क्षेत्र का विनियोजन	समस्त विनियोजन	समस्त विनियोजन के योग में प्रतिशत
(१) कृषि एवं सामुदायिक विकास	५३०	११	२१०	६२५	८३५	१२
(२) वृहद् एवं मध्यम श्रेणी की सिंचाई-योजनाएँ	४२०	९	४२०	मद न० (१) में सम्मिलित	४२०	६
(३) शक्ति	४४५	१०	४४५	४०	४८५	७
(४) ग्रामीण एवं लघु उद्योग	१७५	४	९०	१७५	२६५	४
(५) उद्योग एवं खनिज	९००	२०	८७०	६७५	१,५४५	२३
(६) यातायात एवं सचार	१३००	२८	१२७५	१२५	१,४१०	२१
(७) समाज-सेवाएँ	८३०	१८	३४०	९५०	१,२९०	१९
(८) कच्चे एवं अर्द्ध-निर्मित माल का सग्रह (Inventories)	—	—	—	५००	५००	८
योग	४,६००	१००	३६५०	३१००	६,७५०	१००

वास्तविक व्यय एवं विनियोजन के आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में उद्योग एवं खनिज विकास पर सबसे अधिक विनियोजन किया गया। अलोकक्षेत्र ने लक्ष्य से अधिक योजनाकाल में विनियोजन किया परन्तु लोकक्षेत्र में ३८०० करोड़ रु० के विनियोजन के लक्ष्य के स्थान पर ३६५० करोड़ रु० का ही विनियोजन किया गया। वास्तविक व्यय की राशि की तुलना लक्षित व्यय से करने पर ज्ञात होता है कि समाज-सेवाओं पर होने वाला वास्तविक व्यय लक्षित राशि का लगभग ८८% था। इसी प्रकार अन्य सभी मदों पर भी वास्तविक व्यय लक्षित व्यय से कम रहा परन्तु खनिज एवं वृहद् उद्योगों का वास्तविक व्यय लक्षित व्यय से अधिक रहा। इस तुलना से यह स्पष्ट है कि योजना में औद्योगिक विकास

को अधिक महत्व दिया गया और इसी कारण अन्य क्षेत्रों को थोड़े थोड़े व्यय को त्यागना पड़ा।

द्वितीय योजना के सार्वजनिक व्यय का अर्थ प्रबन्धन निम्न प्रकार किया गया—

तालिका सं० ६८—द्वितीय योजना के अर्थ-साधनों की उपलब्धि

(करोड़ रुपयों में)

माध्यम	प्राप्ति
(१) वर्तमान कर के आधार पर प्राप्त आय	(—) ५०
(२) वर्तमान आधारों पर रेलों का अनुदान	१५०
(३) अन्य शासकीय व्यवसायों से वर्तमान आधारों पर अधिशेष	—
(४) जनता से ऋण	७८०
(५) लघु बचत	४००
(६) प्राविधिक निधि सम्पन्नता कर इस्पात समानीकरण (Equalisation) निधि एवं अन्य पूँजीगत प्राप्तियाँ	२३०
(७) अतिरिक्त कर तथा शासकीय व्यवसायों से अतिरिक्त आय प्राप्त करने की कार्यवाहियाँ	१०५२
(८) विदेशी सहायता	१०६०
(९) हीनार्थ प्रबन्धन	६४८
योग	४६००

योजना में अर्थ साधनों के वास्तविक आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि योजनाकाल में सरकार का चालू व्यय अनुमान से अधिक बढ़ गया जिसके फलस्वरूप इस मद से ३५० करोड़ रु० का आधिक्य प्राप्त होने के स्थान पर ५० करोड़ रु० की न्यूनता रही, परन्तु अतिरिक्त करों और सरकारी क्षेत्र के व्यवसायों से प्राप्त होने वाली आय अनुमान से कहीं अधिक रही। जनता से प्राप्त होने वाला ऋण भी अनुमान से अधिक रहा, परन्तु लघु बचत की राशि ५०० करोड़ रु० की अनुमानित राशि के स्थान पर ४०० करोड़ रु० ही रही। हीनार्थ प्रबन्धन की राशि अनुमान से कम रही। इस प्रकार योजना के अर्थ प्रबन्धन में १,१५२ करोड़ रु० अर्थात् कुल व्यय का २५% बजट की चालू आय से १,५१० करोड़ रु० अर्थात् ३३% सरकार की पूँजीगत प्राप्तियों से, १,०६० करोड़ रु० अर्थात् २४% विदेशी सहायता और शेष ६४८ रु०, अर्थात् २०% अर्थ साधन हीनार्थ प्रबन्धन से प्राप्त किये गये।

योजना के लक्ष्य कार्यक्रम एवं प्रगति

कृषि एवं सामुदायिक विकास—प्रथम पंचवर्षीय योजना में अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए कृषि विकास को सर्वाधिक प्राथमिकता दी गयी। प्रथम योजना के प्रारम्भ में कृषि क्षेत्र में अपूर्णता का वातावरण था तथा खाद्यान्नों की न्यूनता की

समस्या अत्यन्त गम्भीर थी, इसीलिए प्रथम योजना के कृषि कार्यक्रमों का लक्ष्य बढ़ती हुई जनसंख्या को पर्याप्त खाद्यान्न उपलब्ध कराना था। द्वितीय योजना में कृषि-कार्यक्रमों के लक्ष्य बहुमुखी थे। प्रथम, बढ़ती हुई जनसंख्या को खाद्यान्न उपलब्ध करना, द्वितीय विकास की ओर अग्रसर औद्योगिक व्यवस्था की कच्चे माल की आवश्यकताओं की पूर्ति करना तथा तृतीय कृषि उत्पत्ति के निर्यात में वृद्धि करना। इस प्रकार द्वितीय योजना में औद्योगिक एवं कृषि विकास में घनिष्ट पारस्परिक निर्भरता होना स्वाभाविक था। ग्राम निवासियों के सम्मुख द्वितीय योजना द्वारा कृषि उत्पादन को १० वर्ष में दुगुना करने का उद्देश्य रखा गया था।

तत्कालीन उपभोग के स्तर के आधार पर सन् १९६०-६१ में ७०५ लाख टन खाद्यान्नों की आवश्यकता का अनुमान था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक प्रति दिन प्रति वयस्क उपभोग बढ़कर १८.३ औंस होने की सम्भावना थी और इस प्रकार योजना के अन्त तक खाद्यान्नों की आवश्यकता बढ़कर ७५० लाख टन होने का अनुमान था।

द्वितीय योजनावधि में खाद्यान्नों के उत्पादन में १०० लाख टन की वृद्धि का लक्ष्य था। प्रति दिन प्रति वयस्क २,२०० कैलोरीज का उपभोग सन् १९६०-६१ तक बढ़कर २,४५० कैलोरीज होने का अनुमान था जबकि योजना के विशेषज्ञों ने न्यूनतम सीमा ३,००० कैलोरीज रखी है।

योजना आयोग ने कृषि नियोजन के ४ आवश्यक तत्व निर्धारित किये हैं जिनके आधार पर कृषि कार्यक्रमों को निश्चित किया गया था। यह निम्न प्रकार हैं—

(१) भूमि के उपयोग की योजना,

(२) दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन लक्ष्यों को निर्धारित करना,

(३) विकास कार्यक्रमों एवं सरकारी सहायता का उत्पादन के लक्ष्यों से तथा भूमि के उपयोग से सम्बन्ध स्थापित करना तथा

(४) उचित मूल्य-नीति।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में खाद्य समस्या के निवारणार्थ ठोस कार्यवाहियाँ की गयी थीं। योजना में भूमि-सुधार के कार्यक्रमों का अन्तिम उद्देश्य सहकारी ग्रामीण व्यवस्था (Co-operative Village Management) की स्थापना करना था। सहकारी ग्रामीण व्यवस्था के तीन मुख्य लक्षण हैं—

(१) कृषक का भूमि पर अधिकार होना।

(२) कृषि कार्यों की इकाई एवं प्रबन्ध की इकाई में भेद रखना। इन दो लक्षणों के अनुसार यह सम्भव हो सकेगा कि सम्पूर्ण ग्राम को प्रबन्ध की दृष्टि से एक इकाई मान लिया जाय तथा कृषक के अधिकार में रहने वाली भूमि को कृषि-कार्यों की इकाई माना जायगा। इस प्रकार कृषि के विभिन्न कार्यों में जैसे अच्छे बीज का उपयोग, सामान्य क्रय विक्रय, जल का उपयोग, स्थानीय निर्माण कार्य आदि में सहकारिता का उपयोग हो सकेगा।

(३) सहकारी ग्रामीण व्यवस्था की स्थापना के पश्चात् भूमि को अधिकार में रखने वाले एवं भूमिहीन कृषकों का अन्तर कम हो जायगा तथा ग्रामीण समुदाय के समस्त साधनों का जो कृषि व्यापार एवं ग्रामीण उद्योगों में उपलब्ध होंगे, उपयोग, अधिकतम उत्पादन एवं रोजगार के अवसर सहकारी क्रियाओं द्वारा बढ़ाने के लिए किया जा सकेगा। इस प्रकार एक समन्वित आर्थिक एवं सामाजिक ग्रामीण व्यवस्था का निर्माण हो सकेगा। इसमें कृषि उत्पादन ग्रामीण उद्योग विपणि-व्यवस्था ग्रामीण व्यापार आदि का संगठन सहकारिता के आधार पर हो सकता है।

द्वितीय पचवर्षीय योजना में सहकारी ग्रामीण व्यवस्था की स्थापना तक के मध्य काल में भूमि का तीन प्रकार से प्रबन्ध करने की व्यवस्था की गयी थी। प्रथम, व्यक्तिगत कृषक जो अपनी भूमि पर खेती करेंगे। द्वितीय कृषकों के समूह अपनी भूमि को एकत्रित कर अपने हित एवं इच्छा से सहकारिता के आधार पर कृषि-कार्य करेंगे। तृतीय कुछ भूमि सम्पूर्ण ग्रामीण समुदाय के सामान्य अधिकार में होगी। इस प्रकार ग्रामों की भूमि व्यवस्था के तीन क्षेत्र व्यक्तिगत सहकारी एवं सामुदायिक हो जायेंगे परन्तु इस समस्त व्यवस्था का अन्तिम उद्देश्य सहकारी क्षेत्र का विस्तार कर ग्राम की समस्त भूमि का प्रबन्ध ग्रामीण समुदाय के सहकारी उत्तरदायित्व में करना होगा।

द्वितीय योजना में कृषि उत्पादन के लक्ष्यों के अनुसार खाद्यान्नों में १०० लाख टन कपास में १३ लाख गाँठ तिलहन में १५ लाख टन, जूट में १० लाख गाँठ एवं गन्ने के उत्पादन में १३ लाख टन गुड़ की वृद्धि का अनुमान था। प्रथम पचवर्षीय योजना में लगभग ६५ लाख टन खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि हुई परन्तु द्वितीय योजना में कृषि पर व्यय होने वाली राशि प्रथम योजना की अपेक्षा ९०% अधिक थी फिर भी खाद्यान्नों के उत्पादन की वृद्धि का लक्ष्य केवल १०० लाख टन ही रह गया। द्वितीय योजनाकाल में विकास-व्यय की राशि भी अधिक रखी गयी थी और इसके परिणामस्वरूप, जनसमुदाय की आय एवं खाद्यान्नों के उपभोग में वृद्धि होना स्वाभाविक ही था। दूसरी ओर औद्योगीकरण के विस्तृत कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए कच्चे माल की उत्पत्ति में पर्याप्त वृद्धि होना भी आवश्यक था। इसके साथ ही कृषि उत्पादन का यथासम्भव निर्यात कर विदेशी मुद्रा का अर्जन करने की आवश्यकता भी द्वितीय योजना में अनुभव की गयी थी। इन सभी विचारों के आधार पर द्वितीय योजना के प्रारम्भ होने के साथ कृषि उत्पादन के लक्ष्यों को आवश्यकतानुसार बढ़ा दिया गया। योजना के प्रारम्भिक एवं दोहराये गये लक्ष्य तथा वास्तविक प्रगति तालिका ६६ के अनुसार हुई।

इन आँकड़ों से यह ज्ञात होता है कि द्वितीय योजना में कृषि उत्पादन के लक्ष्यों की पूर्ति नहीं की जा सकी। गन्ने के उत्पादन को छोड़कर अन्य सभी कृषि-उत्पादनों का उत्पादन-लक्ष्य के अनुसार नहीं किया जा सका। गन्ने का उत्पादन

तालिका सं० ६६—द्वितीय योजना में कृषि-उत्पादन के लक्ष्य एवं प्राप्ति[1]

मद	द्वितीय योजना के मौलिक लक्ष्य	द्वितीय योजना के दोहराये गये लक्ष्य	१९६०-६१ में वास्तविक उत्पादन	द्वितीय योजना में वृद्धि का प्रतिशत (१९५५-५६ के उत्पादन पर)	दोहराये हुए लक्ष्य एवं वास्तविक उत्पादन का प्रतिशत
खाद्यान्न (लाख टन)	७६२	८१८	८०६.७	२०	९८.५
कपास (लाख गाँठ)	५५	६५	५१.२	३४	८२.०
जूट (लाख गाँठ)	५०	५५	४०.१	—४	८०.७
गन्ना (लाख टन)	७१०	७८०	१०४.१	३८	१३३.६
तिलहन (लाख टन)	७०	७८	६५.२	१६	८४.५
समस्त कृषि-उत्पादन निर्देशांक (१९५५-५६ में निर्देशांक ११६.८१/१)	—	—	१३९.३	१६.६	—

लक्ष्य से लगभग ३५% अधिक रहा। यदि हम लक्ष्यों की पूर्ति की तुलना प्रथम योजना से करें तो हमें ज्ञात होता कि प्रथम योजना में कृषि-क्षेत्र में २९१ करोड़ रु० के व्यय पर कृषि उत्पादन निर्देशांक में १९% की वृद्धि हुई जबकि द्वितीय योजना में ५३० करोड़ रु० (जो प्रथम योजना का लगभग दुगुना है) के विनियोजन पर यह वृद्धि केवल १६.६% हुई। इस तुलना से यह स्पष्ट है कि द्वितीय योजना में कृषि-क्षेत्र पर किए गए व्यय से उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि नहीं हुई। उत्पादन की कम वृद्धि का प्रमुख कारण मानसून का प्रतिकूल रहना था। इसके अतिरिक्त योजना के कृषि कार्यक्रम में समय-समय पर उलट फेर की गयी और उनके कार्यान्वित करने में शिथिलता रही। योजनाकाल में खाद्यान्नों की उपलब्धि कमी रही है और बड़ी मात्रा में खाद्यान्नों का आयात विदेशों से किया गया। खाद्यान्नों का आयात सन् १९५६ में १४.४० लाख टन से बढ़कर सन् १९६० में ५०.५६ लाख टन हो गया। सन् १९६१ में खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि हुई और इनका आयात घटकर ३४.१५ लाख टन हो गया। द्वितीय योजनाकाल में सामुदायिक विकास के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हुई। ३१ मार्च सन् १९६० को ३११० विकास-खण्ड स्टेज १ व २ में थे जिनके द्वारा ३.६८ लाख गाँवों में २०.४ करोड़ जनसंख्या को सेवाएँ प्रदान की गयीं। समस्त देश को ५,२२४ विकास-खण्डों में बाँटा गया है और शेष २,११४ विकास खण्ड तृतीय योजना में स्थापित किये जाने थे। द्वितीय योजनाकाल में सामुदायिक विकास-कार्यक्रम पर १८८ करोड़ रु० व्यय किया गया।

१ आँकड़े मीट्रिक टन में दिये गये हैं।

सिंचाई एवं शक्ति—प्रथम पंचवर्षीय योजना में दीर्घकालीन योजना के अन्तर्गत १५ से २० वर्ष में भारत में शासकीय योजनाओं से सिंचित क्षेत्र को दुगुना करने का लक्ष्य था। सन् १९५१ में सिंचाई के सभी प्रकार के साधनों से ५१५ लाख एकड़ पर सिंचाई की जाती थी। प्रथम योजना में १९७ लाख एकड़ भूमि में और सिंचाई के साधन उपलब्ध करने का लक्ष्य था जबकि वास्तव में सिंचित भूमि में ४७ लाख एकड़ की वृद्धि हुई तथा ३३ लाख एकड़ के उपलब्ध सिंचाई के साधनों का उपयोग नहीं किया गया। द्वितीय योजनाकाल में २१० लाख एकड़ भूमि में अतिरिक्त सिंचाई सुविधाएं प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया परन्तु सिंचित भूमि में योजनाकाल में केवल १३९ लाख एकड़ भूमि की वृद्धि हुई तथा योजना के अन्त में ३५ लाख एकड़ भूमि के लिए सिंचाई-सुविधाओं का उपयोग नहीं किया गया। इस प्रकार योजनाकाल में केवल १७३ लाख एकड़ भूमि के लिए अतिरिक्त सिंचाई की सुविधाओं का निर्माण किया जा सका जबकि लक्ष्य २१० लाख एकड़ भूमि के लिए सिंचाई सुविधाओं का रखा गया। सिंचाई सुविधा के लक्ष्य के अनुसार वृद्धि न होने के प्रमुख कारण ये हैं कि राज्य सिंचाई योजनाएँ बनाते समय अत्यन्त अभिलाषी दृष्टिकोण से लक्ष्य निर्धारित करता है जबकि निर्माण कार्य में बहुत सी कठिनाइयाँ आती हैं जो सिंचाई परियोजनाओं को निर्धारित समय के अन्दर पूरी करने में बाधाएं उपस्थित करती हैं। योजनाकाल में सामग्री के मूल्य एवं भृति की दरों में वृद्धि हुई और सीमेंट इस्पात औजार और मशीनें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न हो सकीं जिसके फलस्वरूप सिंचाई सुविधाओं के लक्ष्यों की पूर्ति नहीं की जा सकी। विभिन्न राज्य सरकारों को उपलब्ध सिंचाई सुविधाओं का उपयोग कराने के लिए निरन्तर प्रयास करना चाहिए।

द्वितीय योजना के शक्ति के विकास कार्यक्रमों द्वारा निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति होनी थी—

(अ) वर्तमान शक्ति की इकाइयों की सामान्य माँग की पूर्ति,

(आ) शक्ति की उपलब्धि के क्षेत्र में यथोचित विस्तार तथा

(इ) द्वितीय योजना में स्थापित औद्योगिक इकाइयों की शक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति।

यह अनुमान लगाया गया था कि अतिरिक्त शक्ति की आवश्यकता मध्यम तथा लघु उद्योगों के विकास एवं व्यापारिक तथा घरेलू उपभोग में वृद्धि के कारण १४ लाख किलोवाट होगा। द्वितीय योजना में औद्योगिक विकास के कारण १३ लाख किलोवाट अतिरिक्त शक्ति की आवश्यकता होने का अनुमान था। जल विद्युत शक्ति की पूर्ति में परिवर्तन होने के कारण तथा अन्य विचारधाराओं के आधार पर ३५ लाख किलोवाट उत्पादनक्षमता के अतिरिक्त शक्ति के साधनों का निर्माण करना आवश्यक था। इस प्रकार शक्ति की उत्पादनक्षमता को ३४ लाख किलोवाट से बढ़ाकर ६९ लाख किलोवाट सन् १९६०-६१ तक करने का लक्ष्य था। ३५ लाख किलोवाट अतिरिक्त

शक्ति के साधन २६ लाख किलोवाट राजकीय क्षेत्र में, ४ लाख किलोवाट प्रमण्डलों द्वारा तथा ३ लाख किलोवाट स्वत शक्ति उत्पादन करने वाली औद्योगिक इकाइयों द्वारा निर्मित किए जाने थे। द्वितीय योजना में १६० करोड़ रु० उन योजनाओं पर जिनका प्रारम्भ प्रथम योजना में हुआ था २८५ करोड़ रु० ऐसी नवीन योजनाओं पर, जो द्वितीय योजना में पूर्ण हो जानी थीं तथा २२ करोड़ रु० उन योजनाओं पर, जिनका लाभ तृतीय योजनावधि में प्राप्त होगा व्यय किया जाना था। द्वितीय योजनावधि में १०,००० तथा उससे अधिक जनसंख्या वाले सभी नगरों में विद्युत उपलब्ध करने का लक्ष्य था।

द्वितीय योजना में शक्ति के साधनों की वृद्धि के लक्ष्य की पूर्ति नहीं की जा सकी और योजना के अन्त में ३५ लाख किलोवाट के लक्ष्य के विपरीत केवल २२ लाख किलोवाट की ही शक्ति के साधनों में वृद्धि की जा सकी। २२ लाख किलोवाट की वृद्धि में से १८ लाख किलोवाट की वृद्धि सरकारी जनोपयोगी व्यवसायों (Public Utility Undertaking) द्वारा १ लाख किलोवाट की कम्पनियों द्वारा संचालित व्यवसायों द्वारा और ३ लाख किलोवाट की वृद्धि स्वयं अपनी शक्ति उत्पन्न करने वाले औद्योगिक व्यवसायों की गयी। योजना के अन्त में १०,००० से अधिक जनसंख्या वाले सभी नगरों का विद्युतीकरण नहीं किया जा सका। सन् १९६०-६१ में १०,००० से अधिक जनसंख्या वाले कुल १,४४१ नगरों में से केवल १,२५७ नगरों का विद्युतीकरण किया जा सका।

औद्योगिक एवं खनिज विकास-कार्यक्रम--द्वितीय योजना में तीन इस्पात के कारखानों जिनमें प्रत्येक की उत्पादनक्षमता १० लाख टन इस्पात दण्ड (Ingots) थी के निर्माण का आयोजन किया गया। रूरकेला में स्थापित होने वाले कारखानों पर द्वितीय योजनाकाल में १२८ करोड़ रु० भिलाई (मध्य प्रदेश) के कारखाने पर ११५ करोड़ रु० तथा दुर्गापुर (पश्चिम बंगाल) के कारखाने पर ११५ करोड़ रु० विनियोजन का लक्ष्य था।

रूरकेला तथा भिलाई के कारखाने के लिए कच्चा लोहा प्राप्त करने के लिए धल्ली (Dhalli) तथा राजहारा (Rajhata) की खानों का विकास करना आवश्यक था। दुर्गापुर के कारखाने के लिए गुआ (Gua) की खानों का निजी साहस के साथ साधन किया जाना था। दुर्गापुर कारखाने के लिए एक कोयला धोने की फैक्टरी (Coal Washery) के निर्माण करने का आयोजन था तथा भिलाई एवं रूरकेला के बुकारो (Bukaro) में एक कोयला धोने की फैक्टरी स्थापित की जानी थी। प्रत्येक कारखाने की धमन भट्टी की प्रतिदिन की उत्पादनक्षमता १,००० टन लोहा पिंड (Pig Iron) होगी। मैसूर के लोह तथा इस्पात के कारखाने के उत्पादन को बढ़ाकर सन् १९६०-६१ तक १ लाख टन करने का लक्ष्य था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ५० करोड़ रु० उपर्युक्त तीन कारखानों एवं ६ करोड़ रु० मैसूर के लोहा

तथा इस्पात के कारखान के लिए निर्धारित किया गया था। चितरजन लोकोमोटिव कारखाने की उत्पादनक्षमता १२० से बढाकर ३०० इंजिन करने का लक्ष्य था। इस कारखाने म भारी इस्पात की फाउण्ड्री बनाने का लक्ष्य था जिससे रेलो के बडे बडे औजारो को यहाँ ढाला जा सके। राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम ने भी १५ करोड रु० का आवटन भारी फाउन्ड्री के निर्माणार्थ किया था जिसमे आवश्यक भारी मशीनें तथा विद्युत का सामान आदि बनाने की सुविधा प्राप्त हो सके। बिजली की भारी मशीनें एव सामग्री बनाने के लिए भोपाल मे एक कारखाना एसोसियेटेड इलेक्ट्रिकल इण्डस्ट्रीज लिमिटेड यूनाइटेड किंगडम की सलाह से २५ करोड रु० की लागत पर निर्मित किया जाना था। द्वितीय योजना म इस पर २० करोड रु० विनियोजित होना था। हिन्दुस्तान मशीन टूल्स का विस्तार करने के लिए २ करोड के उत्पादन पर १० करोड रु० विनियोजित करना था।

दक्षिण म कोयले की कमी को दूर करने के लिए नवेली (Neiveli) म बहुमुखी दक्षिणी अर्काट की लिगनाइट (Lignite) की योजना का विकास करने के लिए ५२ करोड रु० का आयोजन किया गया था। इस योजना की कुल लागत ६८ ५ करोड रु० होगी और ३५ लाख टन प्रति वर्ष लिगनाइट निकाला जायगा।

द्वितीय योजना म सिन्द्री के खाद के कारखाने के अतिरिक्त दो नवीन कारखाने —एक नगल (पजाब) तथा दूसरा रूरकेला म खोलने का आयोजन था जो क्रमश ७० ००० एव ८० ००० स्थायी नाइट्रोजन के बराबर खाद उत्पन्न करेंगे। योजना काल म हिन्दुस्तान शिपयार्ड तथा डी० डी० टी० के वर्तमान कारखाने का विस्तार किया जाना था तथा ट्रावनकोर कोचीन म एक नया डी० डी० टी० का कारखाना खोला जाना था। इन्टीग्रल कोच फैक्टरी, पराम्बूर का कारखाना द्वितीय योजनाकाल मे पूर्ण हो जाना था।

व्यक्तिगत क्षेत्र के औद्योगिक कार्यक्रम म लोहा तथा इस्पात उद्योग पर ११५ करोड रु० विनियोजित करने का लक्ष्य था। सीमेट तथा वृहद एव मध्यम इजीनियरिंग उद्योगों के विकास-कार्यक्रम भी निजी क्षेत्र म सम्मिलित किए गये थे। औद्योगिक मशीनें जैसे सूती वस्त्र उद्योग शक्कर कागज एव सीमेट उद्योग की मशीनो के निर्माण हेतु १० करोड रु० के विनियोजन का अनुमान था। उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन म भी पर्याप्त वृद्धि करने के लिए निजी क्षेत्र म कार्यक्रम निश्चित किए गये थे।

आधारभूत उद्योगो की प्रगति औद्योगिक विकास का मुख्य सूचक होती है। द्वितीय योजना म इस ओर ठोस कदम उठाये गये तथा लोहा एव इस्पात मशीन निर्माण तथा अन्य आधारभूत उद्योगों के विकास से देश की अर्थ-व्यवस्था म सुदृढ़ता शीघ्र प्राप्त हो सकती थी। वास्तव म योजनाकाल म पूजीगत एव उत्पादक वस्तुओं के उद्योग म विनियोजित होने वाली राशि अभी तक के इस क्षेत्र के विनियोजन से

निर्देशाक म लक्ष्य के अनुसार ही वृद्धि हुई। लक्ष्य के अनुसार औद्योगिक उत्पादन म वृद्धि न होने के तीन प्रमुख कारण थे—(१) योजनाकाल मे विदेशी विनिमय की कठिनाई के फलस्वरूप, कुछ औद्योगिक परियोजनाओं को अगली योजना के लिए स्थगित कर दिया गया और कुछ म पर्याप्त प्रगति नही हो सकी। (२) योजनाकाल म मूल्यो म वृद्धि होने के कारण औद्योगिक परियोजनाओ की लागत बढ गया जिसके फलस्वरूप उनम विनियोजित होने वाली राशि अनुमान से अधिक रही परन्तु उत्पादन पर्याप्त मात्रा म प्राप्त करने के लिए समुचित प्रगति नही हो सकी। (३) द्वितीय योजना म पूजीगत एव उत्पादक वस्तुओ के उद्योगो के विस्तार को अधिक महत्व दिया गया था और इन उद्योगो के निर्माण म समय और पूजी अधिक लगती है जबकि उत्पादन पूर्ण क्षमता पर शीघ्र नही प्रारम्भ किया जा सकता है। इसी कारण द्वितीय योजना म १ ५४५ करोड रु० के विनियोजन पर औद्योगिक उत्पादन म ४०% की सामान्य वृद्धि हुई जबकि प्रथम योजना म ३२७ करोड रु० के विनियोजन पर सामान्य औद्योगिक निर्देशाक म ३९% की वृद्धि हुई। इन आँकडो से यह ज्ञात होता है कि द्वितीय योजना म औद्योगिक विनियोजन द्वारा उत्पादन म पर्याप्त वृद्धि नही हुई। प्रथम योजनाकाल म ३२७ करोड रु० के विनियोजन पर सगठित औद्योगिक एव खनिज क्षेत्र स प्राप्त होने वाली राष्ट्रीय आय म २६० करोड रु० (६२० करोड रु० सन् १९५० ५१ मे और ८८० करोड रु० सन् १९५५ ५६ म) की वृद्धि हुई जबकि द्वितीय योजना म १ ५४५ करोड रु० के विनियोजन पर ६०० करोड रु० की औद्योगिक एव खनिज क्षेत्र स प्राप्त होने वाली राष्ट्रीय आय म वृद्धि हुई। इस प्रकार प्रथम योजना मे इस क्षेत्र का अतिरिक्त विनियोजन तथा औद्योगिक उत्पादन का अनुपात १ ८ था जो द्वितीय योजना म घटकर १ ४ हो गया। इस प्रकार द्वितीय योजनाकाल म औद्योगिक उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि न हो सकी।

खनिज विकास

द्वितीय योजनाकाल म खनिज विकास को भी महत्व दिया गया और खनिज तेल की खोज के लिए पर्याप्त आयोजन किए गये। द्वितीय योजना के प्रारम्भ म देश की खनिज तेल की ७० लाख टन की आवश्यकता म से ६६ लाख टन विदेशों से आयात किया जाता था। केवल असम म डिगबोई के चारो तरफ तेल की एक खान थी। फरवरी सन् १९५९ म आइल इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड की स्थापना की गयी जो सस्था के खनिज तेल और कच्चे तेल की खोज एव उत्पादन करने के लिए स्थापित की गयी थी। नाहरकटिया और मोरान म तेल के कुएँ पाये गये हैं। इनमे लगभग २५ लाख टन कच्चा तेल प्राप्त होने की सम्भावना है। पजाब मे ज्वालामुखी और होशियारपुर क्षेत्रो म असम म सिबसागर के पास गुजरात में, बडोदा कम्बे एव अकलेश्वर क्षेत्रो म तथा उत्तर प्रदेश म उमयानी म तेल पाया गया है। कुछ क्षेत्रो म तल निकालना प्रारम्भ भी हो गया है। अक्टूबर सन् १९५६ म एक तेल एव प्राकृतिक

तेल एवं प्राकृतिक गैस कमीशन की स्थापना भी की गयी है जो विदेशी विशेषज्ञों के साथ मिलकर तेल की खोज करता है। द्वितीय योजनाकाल में कोयले के उत्पादन में भी पर्याप्त वृद्धि की गयी और समस्त खनिजों के उत्पादन का मूल्य ९४.८० करोड़ रु० (सन् १९५१ में) से बढ़कर सन् १९६१ में १३६.८० करोड़ रु० हो गया।

लघु एवं ग्रामीण उद्योगों के विकास-कार्यक्रम

द्वितीय योजना में ग्रामीण एवं लघु उद्योगों के विकास के लिए व्यक्तिगत पूँजी के अतिरिक्त २०० करोड़ रु० का आयोजन किया गया जो बाद में कम कर १६० करोड़ रु० कर दिया गया। इन उद्योगों में सरकारी क्षेत्र में वास्तव में १३१ करोड़ रु० व्यय हुआ। इस व्यय में से ६० करोड़ रु० की राशि का विनियोजन किया गया। दूसरी ओर निजी क्षेत्र में ग्रामीण एवं लघु उद्योगों के विकास के लिए १३५ करोड़ रु० का विनियोजन किया गया। इस प्रकार द्वितीय योजनाकाल में लघु एवं ग्रामीण उद्योगों पर २६७ करोड़ रु० का विनियोजन हुआ। द्वितीय योजनाकाल में लघु एवं ग्रामीण औद्योगिक क्षेत्र में विभिन्न क्षेत्रों में निम्नलिखित राशियाँ सरकारी क्षेत्र में व्यय की गयीं।

तालिका सं० ७१—द्वितीय योजनाकाल में लघु एवं ग्रामीण उद्योगों पर सरकारी क्षेत्र में व्यय होने वाली अनुमानित राशि

(करोड़ रु० में)

उद्योग का नाम	राशि
(१) हाथ-करघा उद्योग	२९.७
(२) हाथ-करघा उद्योग क्षेत्र में शक्ति से चलने वाले करघे	२.०
(३) खादी एवं ग्रामीण उद्योग	८२.४
(४) रेशम उद्योग	३.१
(५) नारियल का रेशा उद्योग (Coir Industries)	२.०
(६) दस्तकारी उद्योग	४.८
(७) लघु उद्योग	५५.४
(८) औद्योगिक संस्थान	११.६
योग	१८०.००

उपर्युक्त तालिका में यद्यपि अनुमानित व्यय १८० करोड़ रु० बताया गया है परन्तु वास्तविक व्यय की राशि १३५ करोड़ रु० ही है। द्वितीय योजनाकाल में लघु उद्योगों के उत्पादन में १४० करोड़ रु० की वृद्धि हुई, अर्थात् इस क्षेत्र से प्राप्त होने वाली राष्ट्रीय आय सन् १९५५-५६ में ६३० करोड़ रु० से बढ़कर सन् १९६०-६१ में १,११० करोड़ रु० हो गयी।

यातायात एवं संचार

शीघ्र औद्योगीकरण के लिए कार्यकुशल यातायात एवं संचार की व्यवस्था

अति आवश्यक होती है। द्वितीय योजना म इसलिए इस मद के लिए प्रारम्भ म १ ३८५ करोड रु० का आयोजन किया गया था जो बाद म लटाकर १ ३४० करोड रु० कर दिया गया। यह राशि योजना के समस्त व्यय की लगभग ३०% थी। योजना म इस मद पर सरकारी क्षेत्र म १ ३०० करोड रु० व्यय किया गया जिसम स १,२७५ करोड रु० विनियोजन की राशि था। निजी क्षत्र म इस मद पर १३५ करोड रु० का विनियोजन किया गया। योजनाकाल म रेलो क विकास को विशेष महत्व दिया गया। उनक विकासाथ १ १२१ ५ करोड रु० का आयोजन किया गया। योजनाकाल म यात्रियो की सख्या १५% की वृद्धि करन का लक्ष्य रखा गया जबकि वास्तविक वृद्धि २४% हुई। वस्तुओ के यातायात को ११ ५३ करोड टन से बढाकर १६ २० करोड टन करन का लक्ष्य था जबकि सन् १९६० ६१ म केवल १५ ७६ करोड टन वस्तुए रेलों द्वारा भेजी गयी। इसक अतिरिक्त योजनाकाल म १,२०० मील लम्बी नवीन रेलवे लाइन डालन का लक्ष्य था जबकि ४०८ मील लम्बी बडी और ३८२ मील लम्बी छोटी नवीन रेलवे लाइनें यातायात के लिए खोली गयी। योजना क अन्त म १ ६०० मील बडी तथा २५१ मील लम्बी छोटी लाइनों का निर्माण जारी था। द्वितीय योजनाकाल म २ १९२ इ जिन ७ ५१५ सवारीगाडी के कोच तथा ९७ ९९४ वगन रेलो द्वारा खरीदे गय।

द्वितीय योजनाकाल मे २४६ करोड रु० का आयोजन सडकों के विकास के लिए किया गया था। इसक अतिरिक्त केन्द्रीय सडक निधि से २५ करोड रु० का आयोजन सडक विकास क लिए किया गया। योजनाकाल म ६०० मील टूटा फूटा सडको को जोडन ६० बडे पुल बनान और १ ३०० मील लम्बी विद्यमान सडको के सुधार करन का आयोजन था। योजनाकाल म २२,००० मील लम्बी चौरस सडको *(Surfaced Roads)* की वृद्धि हुई और लगभग ५२ ००० मील लम्बी अप सडकों (Unsurfaced Roads) की वृद्धि हुई। ६४० मील लम्बी टूटा-फूटी सडको को जोडा गया। ४० बडे पुलो का निर्माण किया गया तथा ३ ५०० मील लम्बी वतमान सडको की मरम्मत की गयी।

समुद्री यातायात क क्षेत्र म ३ लाख ग्रास रजिस्टर्ड टनेज की वृद्धि करन का लक्ष्य रखा गया जिससे तृतीय योजना के अन्त तक ग्रॉस रजिस्टर्ड टनेज ९ लाख हो जाय। योजना म जलयान यातायात क विकास क लिए ४५ करोड रु० का आयोजन किया गया। द्वितीय योजना क अन्त म ९ ०५ लाख ग्रास रजिस्टर्ड टनेज भारत म था जिसम १७५ जहाज सम्मिलित थे। योजनाकाल म कलकत्ता बम्बई, मद्रास कोचीन, काँदला बन्दरगाहो का विकास किया गया।

योजनाकाल म हवाई यातायात म पर्याप्त वृद्धि हुई और हवाई जहाज द्वारा सफर करन वाले यात्रियों की सख्या ६ ७३ लाख से बढकर १० ८३ लाख हो गयी

तथा हवाई जहाजों द्वारा किया जाने वाला सफर ८३० १६ लाख किलोमीटर से बढ़कर ५२६ ४७ लाख किलोमीटर हो गया।

संचार

द्वितीय योजनाकाल में ६३ करोड़ ७० लाख रु० डाक व तार विभाग के लिए निर्धारित किया गया। योजनाकाल में १ लाख ८० हजार नये टेलीफोन लगाने, १,४०० नये तार के दफ्तर खोलने और २०,००० नये डाकखाने स्थापित करने का लक्ष्य रखा गया। योजनाकाल में २१,८७० नये डाकखाने, १,३२९ तार के दफ्तर तथा २ लाख २ हजार नये टेलीफोन लगाये गये। इस प्रकार योजनाकाल में इस क्षेत्र में लक्ष्यों से अधिक प्रगति हुई।

द्वितीय योजना में आकाशवाणी प्रसारण के क्षेत्र में वृद्धि करने हेतु देश के ऐसे भागों में रेडियो स्टेशन खोले गये जिनमें अभी तक यह सुविधा उपलब्ध नहीं थी। सन् १९६१ के अन्त तक देश में २६ रेडियो-स्टेशन थे।

समाज-सेवाएँ

द्वितीय योजना में शिक्षा के विस्तार एवं विकास के लिए ३०७ करोड़ रुपये का आयोजन किया गया था जबकि वास्तविक व्यय २०४ करोड़ रुपया हुआ। योजना में ६ से ११ वर्ष के बच्चों की स्कूल जाने वाली प्रतिशत को ५२ ९ से बढ़ाकर ६२ ७ करने का लक्ष्य था जबकि सन् १९६० ६१ में इस वर्ग में ६१ १% बच्चे स्कूल जाते हैं। इस प्रकार ११ से १४ तथा १४ से १७ वर्ष के बच्चों के वर्ग में स्कूल जाने वाले बच्चों का प्रतिशत क्रमशः १६ ५ से बढ़ाकर २२ ५ तथा ७ ८ से बढ़ाकर ११ ७ करने का लक्ष्य रखा गया। सन् १९६०-६१ के अन्त में ११ से १४ वर्ष के बच्चों के वर्ग में २२ ८ तथा १४ से १७ वर्ष के वर्ग में ११ ५ प्रतिशत बच्चे स्कूल जाते थे। देश में विश्वविद्यालयों की संख्या ३२ से बढ़ाकर ३८ करने का लक्ष्य था जबकि सन् १९६० ६१ में देश में ४६ विश्वविद्यालय थे। योजनाकाल में डिग्री देने वाली इंजीनियरिंग एवं तान्त्रिक शिक्षा की संस्थाओं की संख्या ७१ से बढ़कर १११ हो गयी और डिप्लोमा देने वाली इंजीनियरिंग एवं तान्त्रिक शिक्षा की संस्थाओं की संख्या १०६ से बढ़कर २०६ हो गयी।

द्वितीय योजना के स्वास्थ्य के कार्यक्रमों का उद्देश्य स्वास्थ्य सेवाओं में वृद्धि, इन सेवाओं को समस्त जनसमुदाय तक पहुँचाना तथा राष्ट्रीय-स्वास्थ्य के स्तर में उन्नति करना था। योजनाकाल में ३,००० प्राथमिक स्वास्थ्य-केन्द्र स्थापित करने का लक्ष्य था जबकि वास्तव में २,६१४ केन्द्र खोले गये। योजनाकाल में मेडीकल कॉलेजों की विद्यार्थियों को प्रवेश देने की क्षमता ,६६० से ७ ६०० हो गयी। मलेरिया निरोधक कार्यक्रम को योजना में विशेष स्थान दिया गया और राष्ट्रीय मलेरिया इन्स्टीट्यूट कर्मचारियों के प्रशिक्षण तथा शोध कार्य के लिए उत्तरदायी है। देश की समस्त जन-संख्या मलेरिया निरोधक कार्यवाहियों से आच्छादित करने के लिए ३६१ मलेरिया-

केन्द्र खोले गये हैं। योजना में परिवार नियोजन कार्यक्रमों को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था और इस कार्यक्रम में क्रमबद्ध विकास हेतु एक केन्द्रीय परिवार नियोजन केन्द्र की स्थापना सितम्बर सन् १९५६ में की गयी। द्वितीय योजनाकाल में १,५०० परिवार नियोजन केन्द्रों की स्थापना की गयी जिनमें से १,०७९ ग्रामीण क्षेत्र में और ४२१ नगरों में खोले गये।

गृह-व्यवस्था

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में १२० करोड़ रुपया निवास-गृहों के निर्माण हेतु निर्धारित किया गया था। प्रथम योजनाकाल की दो निवास गृह की योजनाओं—सहायता प्राप्त औद्योगिक निवास-गृह योजना तथा कम आय के वर्ग की निवास गृह योजना—के अतिरिक्त छह नवीन योजनाएं द्वितीय योजना में प्रारम्भ की गयी। इन योजनाओं के नाम इस प्रकार हैं—(१) पौध वाले उद्योगों के श्रमिकों की निवास-गृह की योजना (२) गन्दी बस्तियों को हटाने की योजना (३) ग्रामीण निवास गृह-योजना (४) मध्यम वर्ग की आय वालों के लिए निवास गृह की योजना (५) राज्य सरकार के कर्मचारियों को किराये पर निवास गृह की योजना तथा (६) भूमि क्रय एवं विकास योजना। इन सभी निवास-गृहों की योजनाओं को सरकार ने ८४ करोड़ रुपया और जीवन बीमा निगम से १७.२ करोड़ रुपया प्रदान किया। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों ने अपनी अपनी निवास गृह की योजनाओं का भी सचालन किया। इस प्रकार द्वितीय योजना में २५० करोड़ रु० सरकारी क्षेत्र में निवास-गृहों के निर्माण पर व्यय किया गया और ५ लाख निवास-गृह निर्माण किए गये। इसके अतिरिक्त निजी क्षेत्र में लगभग १,००० करोड़ रु० निवास गृह एवं अन्य प्रकार के निर्माण पर व्यय किया गया।

उपभोग

द्वितीय योजनाकाल में जनसमुदाय के उपभोग के प्रकार एवं व्यय में मूलभूत परिवर्तन हुए। राष्ट्रीय सम्पिल सर्वे के दसवें चक्र (Tenth Round—December 1955 to May 1956) तथा पन्द्रहवें चक्र (Fifteenth Round—July, 1959 to June 1960) के अनुसार उपभोग के प्रकार के सम्बन्ध में तालिका स० ७२ के अनुसार तथ्य ज्ञात होते हैं।

उपयुक्त आंकड़ों से ज्ञात होता है कि द्वितीय योजनाकाल में ग्रामीण क्षेत्र के प्रति व्यक्ति औसत उपभोग-व्यय में ग्रामीण क्षेत्र में १५% एवं नागरिक क्षेत्र में ९% की वृद्धि हुई जिसके फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्र की जनसंख्या के जीवन-स्तर में अधिक सुधार होने का आभास होता है परन्तु खाद्य-सामग्री पर होने वाले व्यय का कुल उपभोग व्यय से प्रतिशत दोनों ही क्षेत्रों में बढ़ गया, जिसका तात्पर्य यह होता है कि योजनाकाल में खाद्य-सामग्री अर्थात अनिवार्य वस्तुओं के मूल्यों में अधिक वृद्धि हुई। दूसरी ओर वस्त्रों पर होने वाला व्यय दोनों ही क्षेत्रों में कम हो गया। यह कमी

तालिका न० ७२—ग्रामीण एवं नागरिक क्षेत्रों में उपभोग

	दिसम्बर सन् १९५५ से मई सन् १९५६		जुलाई सन् १९५९ से जून सन् १९६०	
	ग्रामों में	नगरों में	ग्रामों में	नगरों में
(१) औसत प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय (रुपये)	२१ ८	२० ३	२४ ३	२४ ६
(२) खाद्य-सामग्री पर होने वाले व्यय का कुल उपभोग-व्यय में प्रतिशत	६७ २	५८ २	६६ २	६१·४
(३) वस्त्रों पर होने वाले व्यय का प्रतिशत	१० ०	७ ३	८ ०	६ २
(४) ईंधन एवं प्रकाश पर होने वाले व्यय का प्रतिशत	६ ८	६ ५	५ ६	६ १
(५) किराया पर होने वाले व्यय का प्रतिशत	० २	४ ०	२४ ६	२६ १
(६) अन्य व्यय का प्रतिशत	१५ ८	२४ ०		

खाद्य सामग्री पर व्यय घट जाने के कारण भी कुछ सीमा तक होगी। अनिवार्यताओं के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं और सेवाओं पर होने वाले व्यय के प्रतिशत में दिसम्बर सन् १९५५ से मई सन् १९५६ के काल में ग्रामीण एवं नगरों के क्षेत्र में अधिक अन्तर था जो जुलाई सन् १९५९ से जून सन् १९६० में बहुत कम हो गया। इस अन्तर के कम होने से यह ज्ञात होता है कि ग्रामीण क्षेत्र में जीवन-स्तर में सुधार हुआ है।

उपयुक्त दसवें एवं पन्द्रहवें राष्ट्रीय सम्पिल सर्वे के अनुसार ही ग्रामीण एवं नागरिक क्षेत्र में विभिन्न उपभोग-व्यय के वर्गों के अनुसार परिवारों का प्रतिशत आगे दी हुई तालिका के अनुसार था।

तालिका न० ७३ का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि द्वितीय योजनाकाल में ग्रामीण क्षेत्र में १३ रु० तक प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग वाले परिवारों का प्रतिशत ४१ ४ से घटकर २६ ४ रह गया। नागरिक क्षेत्र में १३ रु० प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग वाले परिवारों का प्रतिशत २० १ से घटकर १४ १ हो गया। इन प्रतिशतों में कमी होने से ज्ञात होता है कि कम उपभोग व्यय वाले परिवारों की संख्या में कमी हुई और १३ रु० से अधिक प्रति व्यक्ति प्रति मास उपभोग-व्यय करने वाले परिवारों की संख्या में वृद्धि हुई। ग्रामीण क्षेत्रों में दिसम्बर सन् १९५५ से मई सन् १९५६ के काल में ७१ २% परिवारों में प्रति व्यक्ति व्यय २१ रु० प्रति मास से कम था जबकि नागरिक क्षेत्र में यह प्रतिशत केवल ४६ ७ था। जुलाई सन् १९५९ से जून सन् १९६० तक के काल में यह प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र में ६२ ६ और नागरिक क्षेत्र में ४२ ६ हो गया। इन प्रतिशतों से ज्ञात होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में द्वितीय योजनाकाल के जीवन-स्तर

तालिका स० ७३—प्रति व्यक्ति उपभोग-व्यय के अनुसार परिवारो का प्रतिशत वितरण

प्रति व्यक्ति प्रति मास उपभोग व्यय (रुपया मे)	दिसम्बर, सन् १९५५ से मई १९५६ तक का सर्वे		जुलाई १९५९ स जून १९६० तक का सर्वे	
	ग्रामो म	नगरो म	ग्रामो म	नगरो म
०— ८	१४ २	३ ८	६ ५	२ २
८—११	१६ ७	१० २	१२ ५	७ १
११—१३	१० ५	७ १	१० ४	५ ८
१३—१५	९ ४	६ ०	१० २	६ ७
१५—१८	११ ७	१० ४	१४ ५	११ २
१८—२१	८ ७	९ २	१० ८	१० ६
२१—२४	७ ९	६ ३	७ ९	७ ५
२४—२८	५ ५	९ १	७ ३	८ १
२८—३४	५ ७	८ ४	८ ६	१० ४
३४—४३	४ ८	९ ५	५ ६	१० ०
४३—५५	२ ९	८ ३	२ ७	८ ०
५५ और उससे अधिक	२ ६	११ ७	३ ०	१० ४

म सुधार तो अवश्य हुआ परन्तु लगभग दो तिहाई परिवारो म प्रति व्यक्ति प्रति दिन उपभोग व्यय ७० पसे से कम था अर्थात ग्रामीण क्षत्र के दो तिहाई परिवार अपनी अनिवार्यताओं की पूर्ति करने म असमर्थ थे।

राष्ट्रीय एव प्रति व्यक्ति आय

द्वितीय योजनाकाल म राष्ट्रीय एव प्रति व्यक्ति आय म निम्न प्रकार वृद्धि हुई—

तालिका स० ७४—द्वितीय योजना मे राष्ट्रीय एव प्रति व्यक्ति आय म वृद्धि

वर्ष	राष्ट्रीय आय प्रचलित मूल्यो पर	राष्ट्रीय आय १९४८ ४९ के मूल्यो पर	प्रति व्यक्ति आय प्रचलित मूल्यो पर	प्रति व्यक्ति आय १९४८ ४९ के मूल्यों पर
	(करोड रुपयो म)	(करोड रुपयों म)	(रुपया म)	(रुपया म)
१९५५ ५६	९ ९८०	१० ४८०	२५५ ०	२६७ ०
१९५६ ५७	११ ३१०	११ १००	२८३ ३	२७५ ६
१९५७ ५८	११ ३९०	१० ८९०	२७९ ६	२६७ २
१९५८ ५९	१२ ६००	११ ६५०	०३ ०	२८० १
१९५९ ६०	१२,९५०	११ ८६०	३०४ ८	२७९ २
१९६० ६१	१४ १४०	१२ ७३०	३२४ ७	२९३ २

उपर्युक्त आँकडो स ज्ञात होता है कि द्वितीय योजनाकाल म लक्ष्य के अनुसार राष्ट्रीय आय म वृद्धि नही हुई और यह वृद्धि २५% की वृद्धि के लक्ष्य के विपरीत

केवल २१% की ही वृद्धि हुई। योजना के प्रथम वर्ष सन् १९५६-५७ में (सन् १९४८-४९ के मूल्यों के अनुसार) सन् १९५५-५६ के स्तर पर राष्ट्रीय आय में ६% की वृद्धि हुई, जो एक वर्ष के लक्ष्य (५% की वृद्धि) से अधिक थी। सन् १९५७-५८ में सन् १९५५-५६ की तुलना में राष्ट्रीय आय में ४% की वृद्धि हुई अर्थात् इस वर्ष के अन्त तक योजना के दो वर्ष पूरे हो गये थे और लक्ष्य के अनुसार राष्ट्रीय आय में १०% वृद्धि हो जानी चाहिए जबकि वास्तव में केवल ४% की ही वृद्धि हुई। वास्तव में, सन् १९५७-५८ में सन् १९५६-५७ के स्तर से राष्ट्रीय आय कम हो गयी। इस कमी का मुख्य कारण मानसून का प्रतिकूल रहना था जिसके कारण कृषि उत्पादन में इस वर्ष कमी रही। सन् १९५८-५९ में सन् १९५५-५६ के राष्ट्रीय आय-स्तर में ११% की वृद्धि हुई जबकि लक्ष्य के अनुसार यह वृद्धि १५% हो जानी चाहिए थी। सन् १९५९-६० में राष्ट्रीय आय में सन् १९५५-५६ के स्तर से २०% की वृद्धि के लक्ष्य के विपरीत वृद्धि केवल १ % की हुई परन्तु सन् १९६०-६१ में वृद्धि का यह प्रतिशत बढ़कर २१% हो गया। इस प्रकार सन् १९५६-५७, सन् १९५८-५९ तथा सन् १९६०-६१ में राष्ट्रीय आय में वृद्धि लक्ष्य से अधिक हुई जबकि अन्य वर्षों में विशेषकर सन् १९५७-५८ में लक्ष्य के अनुसार वृद्धि नहीं हो सकी।

योजनाकाल में प्रति व्यक्ति आय में (सन् १९४८-४९ के मूल्यों के आधार पर) लगभग ११% की वृद्धि हुई।

द्वितीय योजना की असफलताएँ

द्वितीय योजनाकाल देश के विकास की दृष्टि से अधिक अनुकूल नहीं था तथा प्रकृति ने अर्थ-व्यवस्था के पर्याप्त विकास में बहुत-सी कठिनाइयाँ उपस्थित कीं। योजना के क्षेत्रों की असफलताओं का निम्न प्रकार से अंकन किया जा सकता है—

(१) **विदेशी विनिमय की कठिनाई**—योजना के प्रारम्भ से ही विदेशी विनिमय की कठिनाई प्रतीत होने लगी थी। द्वितीय योजना के लक्ष्य निर्धारित करते हुए यह अनुमान लगाया गया था कि ५ वर्षों में कुल आयात ४,३४० करोड़ रु० होगा और निर्यात २,९५४ करोड़ रु० होगा परन्तु वास्तव में निर्यात ३,०५९ करोड़ रु० और आयात ५,३९० करोड़ रु० हुआ जिसके फलस्वरूप २,३३१ करोड़ रु० का प्रतिकूल व्यापारिक शेष रहा एवं जिसकी पूर्ति ८९४.१ करोड़ रु० विदेशी सरकारी ऋणों से, ५५ करोड़ रु० अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से, ५९९ करोड़ रु० रिजर्व बैंक से विदेशी विनिमय निकाल कर, २१९ करोड़ रु० अन्य पूँजीगत प्राप्तियों आदि द्वारा लाया गया। योजनाकाल में पूँजीगत वस्तुओं मशीनों आदि का आयात बड़ी मात्रा में किया गया जिसके कारण आयात अनुमान से अधिक रहा। विदेशी विनिमय की कठिनाइयों के कारण ही केन्द्रीय योजनाओं (Core Projects) की पूर्ति को प्राथमिकता दी गयी और योजना के कार्यक्रमों को दो भागों—'अ' तथा 'ब' में बाँटा गया।

व माग को अधिकतर योजनाओं को तृतीय योजना के लिए स जाया गया। इस प्रकार द्वितीय योजना म निर्धारित सभी कायक्रमों का पूर्ति नहीं की जा सकी।

(२) **उद्योगों का अधिक महत्व**—द्वितीय योजना म औद्योगीकरण को अधिक प्राथमिकता प्रदान की गयी थी परन्तु योजना के द्वितीय व तृतीय वर्षों म देश में खाद्यान्नों की अत्यन्त कमी रही। इन वर्षों म मानसून प्रतिकूल रहने के कारण कृषि उत्पादन अनुमानों के अनुसार नहीं हुआ जिसके फलस्वरूप खाद्यान्नों के मूल्यों एवं आयात म वृद्धि हुई।

(३) **मूल्यों मे वृद्धि**—*द्वितीय योजनाकाल म लगभग सभी वस्तुओं के मूल्यों* मे वृद्धि हुई और यह वृद्धि ३०% स ५५% के बीच म रही। मूल्यों की इतनी वृद्धि ने विकास की गति को मन्द कर दिया और जनसाधारण को विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। रहन सहन की लागत बढ़ने के साथ साथ योजना के कायक्रमों की लागत भी बढ़ गयी और योजना का व्यय आर्थिक दृष्टिकोण से लगभग लक्ष्य के *अनुसार होने हुए भी कायक्रमों की पूर्ति लक्ष्यों के अनुकूल नहीं रही।*

(४) **राष्ट्रीय आय**—द्वितीय योजनाकाल म राष्ट्रीय आय के लक्ष्य के अनुसार *वृद्धि नहीं हुई और २५% की वृद्धि के लक्ष्य के विपरीत केवल २१% की ही* वृद्धि हुई। राष्ट्रीय आय म विभिन्न साधनों के अश म भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। यद्यपि योजना म औद्योगिक क्षेत्र म पर्याप्त विनियोजन किया गया परन्तु औद्योगिक एव खनिज क्षेत्र राष्ट्रीय आय का सन् १९५५ ५६ म १८ ५% जुटाता था जो सन् १९६० ६१ म घटकर १८ ४% हो गया। दूसरी ओर कृषि क्षेत्र से प्राप्त होने वाला अश सन् १९५५ ५६ मे ४५ ३% स बढ़कर सन् १९६० ६१ म ४८ ७% हो गया। इन आँकड़ों से यह सिद्ध होता है कि द्वितीय योजना म अर्थ व्यवस्था के औद्योगिक *आधार म अ य क्षेत्रों की तुलना म अधिक परिवर्तन नहीं हुआ।*

(५) **निजी क्षेत्र का महत्व**—द्वितीय योजनाकाल म सरकारी क्षेत्र म विनियोजन लक्ष्य (३ ८०० करोड़ रु०) स कम रहा जबकि निजी क्षेत्र का विनियोजन २ ४०० करोड़ रु० के लक्ष्य के विपरीत ३ १०० करोड़ रु० का हुआ अर्थात् निजी क्षेत्र का महत्व अर्थ-व्यवस्था म कुल सामान्य बढ़ गया। द्वितीय योजना म ६ ७५० करोड़ रु० के विनियोजन पर ४ १६० करोड़ रु० की (चालू मूल्य पर) राष्ट्रीय आय म वृद्धि हुई अर्थात् नवीन विनियोजन का पूजी एव उत्पादन का अनुपात १ ६ रहा जबकि प्रथम योजना म यह अनुपात १ १ ३ था। इस प्रकार द्वितीय योजना म उत्पादन म विनियोजन के अनुकूल वृद्धि नहीं हुई।

(६) **रोजगार**—द्वितीय योजना म रोजगार की स्थिति और भी अधिक गम्भीर हो गया और एक ओर श्रम शक्ति म अनुमान से अधिक वृद्धि हुई और दूसरी ओर रोजगार के अवसर लक्ष्य के अनुसार उत्पन्न नहीं किए जा सके। इसके फलस्वरूप यह अनुमान लगाया गया कि योजना के अन्त म लगभग ९० लाख व्यक्ति बेरोजगार थे।

(७) नागरिक क्षेत्र के विकास को अधिक महत्व—आर्थिक विषमताओं से सम्बन्धित अध्याय में दी गयी तालिका के आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि द्वितीय योजना में नागरिक क्षेत्र के विकास को और भी अधिक महत्व दिया गया और ग्रामीण क्षेत्र में प्रति व्यक्ति विकास-व्यय नागरिक क्षेत्र की तुलना में लगभग एक तिहाई था। ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता की व्यापकता नियोजित अर्थ-व्यवस्था के प्रारम्भ से ही अधिक थी और योजना के व्यय के प्रकार ने ग्रामीण एवं नागरिक क्षेत्रों के जीवन स्तर के अन्तर को बढ़ाने में सहायता प्रदान की है।

द्वितीय योजना की प्रगति के विभिन्न तत्वों से स्पष्ट है कि देश की अर्थ-व्यवस्था में विकास की प्रवृत्ति को सुदृढ़ता प्राप्त हुई क्योंकि बहुत सी ऐसी परियोजनाएँ विशेषतः औद्योगिक एवं खनिज क्षेत्र में प्रारम्भ की गयीं, जिनके द्वारा देश की अर्थ-व्यवस्था के ढाँचे में दीर्घ काल में मूलभूत परिवर्तन करना असम्भव होगा, परन्तु योजना में लक्ष्यों के अनुसार मानसून की प्रतिकूलता, विदेशी विनिमय की कठिनाई तथा प्रशासनिक शिथिलता के कारण उत्पादन में वृद्धि न हो सकी। जनसाधारण को उपभोक्ता वस्तुओं की पर्याप्त उपलब्धि नहीं हुई और निर्धनता की व्यापकता में भी कमी नहीं हुई।

तृतीय पंचवर्षीय योजना
[Third Five Year Plan]

[उद्देश्य व्यय विनियोजन एवं प्राथमिकताएँ, अर्थ-साधन, विदेशी विनिमय की आवश्यकता एवं साधन योजना के कार्यक्रम, लक्ष्य एवं प्रगति—कृषि एवं सामुदायिक विकास, सिंचाई एवं शक्ति, उद्योग एवं खनिज ग्रामीण एवं लघु उद्योग, वृहद उद्योग खनिज विकास यातायात एवं संचार, शिक्षा स्वास्थ्य, सन्तुलित क्षेत्रीय विकास, राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय तृतीय योजना की असफलताएँ]

देश को द्वितीय महायुद्ध एवं विभाजन से जो क्षति पहुँची थी प्रथम योजना में उसकी पूर्ति करने तथा आर्थिक व्यवस्था की आधारशिला सुदृढ़ करने के प्रयास किये गये एवं संविधान में प्रदत्त नीति निर्देशक-तत्वों के अनुसार सामाजिक और आर्थिक नीतियों का भी निर्धारण हुआ। सामुदायिक विकास योजना तथा भूमि सुधार प्रथम योजना के विशेष कार्यक्रम थे।

द्वितीय योजना में प्रथम योजना की ही नीतियों को अक्षुण्ण रखते हुए उत्पादन वृद्धि विकास कार्यों में अधिक विनियोजन तथा जनसमुदाय को अधिक रोजगार अवसर प्रदान करने के प्रयत्न किये गये। इस योजना में आर्थिक उन्नति की गति को तीव्र करने पर आधारभूत उद्योगों की स्थापना पर रोजगार अवसरों की वृद्धि करने पर आय व धन की विषमता को कम करने पर तथा आर्थिक शक्ति का कतिपय हाथों में केन्द्रित होने से रोकने पर जोर दिया गया। प्रथम योजना में राष्ट्रीय आय में ३½% प्रति वर्ष तथा द्वितीय योजना में ४% प्रति वर्ष वृद्धि हुई। द्वितीय योजना द्वारा भारतीय अर्थ व्यवस्था को औद्योगिक आधार प्रदान किया गया है। इस प्रकार द्वितीय योजना में विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा स्वयं स्फूर्त विकास अवस्था के पूर्व की परिस्थितियों का निर्माण हुआ।

स्वयं स्फूर्त विकास अवस्था तक पहुँचने के लिए भारत जैसे राष्ट्र में एक ओर, कृषि उत्पादन में इतनी वृद्धि होनी चाहिए तथा होती रहनी चाहिए कि वृद्धिमान जनसंख्या के लिए पर्याप्त हो तथा दूसरी ओर विदेशी विनिमय का इतना संचय होना चाहिए कि विकास की गति को बनाये रखा जा सके। विदेशी विनिमय का संचय निर्यात की वृद्धि द्वारा किया जा सकता है। इसके साथ ही सामाजिक पूँजी का भी

पर्याप्त मात्रा में निर्माण होना चाहिए। किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिए जिस प्रकार पूँजी का निर्माण आवश्यक होता है उससे कहीं अधिक सामाजिक पूँजी में वृद्धि होना आवश्यक है। जनसमुदाय का स्वयं की शक्तियों, राष्ट्र द्वारा निश्चित किये गये सामाजिक उद्देश्यों, शासकीय सत्ता ग्रहण करने वाले व्यापार एवं व्यवसाय चलाने वाले तथा आर्थिक एवं सामाजिक संस्थाओं का सचालन करने वाले अधिकारियों का देश की भावी समस्याओं के निवारण करने की क्षमता पर जो विश्वास एवं सद्भावना होती है उसे सामाजिक पूँजी कहा जाता है। देश के भौतिक विकास के साथ-साथ जनसमुदाय में परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार जागरूकता होनी चाहिए। जब तक सामाजिक उत्थान की ओर पर्याप्त प्रगति नहीं होती, तब तक आर्थिक विकास को किसी भी दशा को स्वयं-स्फूर्त विकास व्यवस्था कहना अनुचित होगा। राष्ट्रीय चरित्र, राष्ट्रीय भावना एवं नियोजन के प्रति जागरूकता की उत्पत्ति से आर्थिक विकास को सुदृढ़ बनाया जा सकता है।

द्वितीय योजना द्वारा उपयुक्त परिस्थितियों को उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है, जिससे स्वयं-स्फूर्त अवस्था की प्राप्ति हेतु आवश्यक वातावरण एवं परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकें। तृतीय पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था को स्वयं स्फूर्त अवस्था तक पहुँचाना था। सत्य तो यह है कि स्वयं स्फूर्त अवस्था की प्राप्ति हेतु बचत एवं विनियोजन में इतनी वृद्धि करना आवश्यक होता है कि राष्ट्रीय आय में निरन्तर तीव्र गति से वृद्धि होती रहे। इस अवस्था की प्राप्ति हेतु राष्ट्र में विनियोजन विशाल स्तर पर होना चाहिए तथा विशाल स्तर के विनियोजन-कार्यक्रमों के संचालनार्थ पूँजीगत वस्तुओं एवं सामग्री की उत्पादन-क्षमता में पर्याप्त वृद्धि होनी चाहिए। तृतीय योजना में विनियोजन के कार्यक्रम एवं प्रकार निश्चित करते समय इस बात को दृष्टिगत किया गया था।

स्वयं स्फूर्त अवस्था तभी प्राप्त हो सकती है जब उद्योगों एवं कृषि का सन्तुलित विकास किया जाय। आय एवं रोजगार की वृद्धि हेतु औद्योगीकरण के साथ कृषि को प्राथमिकता प्रदान की जाय। दूसरी ओर, औद्योगिक विकास तभी सम्भव हो सकता है जब कृषि का विकास करके कृषि उत्पादन-क्षमता में प्रगतिशील वृद्धि की जाय। तृतीय पंचवर्षीय योजना में इसलिए देश की पूँजीगत सामग्री एवं खाद्य तथा कच्चे माल के उत्पादन में वृद्धि करने पर जोर दिया गया था। भारत जैसे राष्ट्र में जहाँ जन शक्ति का पूर्ण उपयोग न होता हो, रोजगार अवसरों की पर्याप्त वृद्धि द्वारा ही विकास को सफल बनाया जा सकता है। तृतीय योजना में इसीलिए रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने पर विशेष जोर दिया गया था।

तृतीय योजना के उद्देश्य

तृतीय योजना के कार्यक्रम निम्नांकित मुख्य उद्देश्यों पर आधारित थे—

(१) तृतीय पंचवर्षीय योजनाकाल में राष्ट्रीय आय में ५% से अधिक वार्षिक

वृद्धि करना तथा इस प्रकार विनियोजन करना कि राष्ट्रीय आय की वृद्धि की दर का क्रम आगामी योजना में भी चालू रहे।

(२) अनाज के उत्पादन में आत्म निर्भरता प्राप्त करना तथा कृषि उत्पादन में इतनी वृद्धि करना कि देश के उद्योगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ साथ इनका आवश्यकतानुसार निर्यात भी किया जा सके।

(३) इस्पात रसायन उद्योग शक्ति ईंधन आदि आधारभूत उद्योगों का विस्तार एवं मशीन निर्माण करने वाले कारखानों की स्थापना करना जिससे दस वर्ष के अन्दर देश के औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक यन्त्र आदि की आवश्यकता देश के ही साधनों से की जा सके।

(४) देश की श्रम शक्ति का यथासम्भव पूर्णतम उपयोग करना तथा रोजगार के अवसरों में पर्याप्त वृद्धि करना।

(५) अवसर की उचित समानता की स्थापना करना तथा धन एवं आय की विषमताओं में कमी करना तथा आर्थिक शक्ति का अधिक न्यायोचित वितरण करना।

(१) राष्ट्रीय आय में ५% प्रतिशत की वृद्धि—तृतीय योजनाकाल में राष्ट्रीय आय १३ ००० करोड़ रु० (सन् १९६० ६१ में सन् १९४८ ४९ के मूल्यों के आधार पर) में बढ़कर १७ ००० करोड़ रु० सन् १९६५ ६६ तक होने का अनुमान था। सन् १९६० ६१ के मूल्यों के आधार पर सन् १९६० ६१ की अनुमानित राष्ट्रीय आय *१४ ५०० करोड़ रु० से बढ़कर सन् १९६५ ६६ तक १९ ००० करोड़ रु० होने* का अनुमान लगाया गया था। यह भी अनुमान लगाया गया कि चौथी योजना के अन्त तक राष्ट्रीय आय २५ ००० करोड़ रु० और पाँचवीं योजना के अन्त तक ३३ ००० से ३४ ००० करोड़ रु० हो जायगी। जनसंख्या की वृद्धि को दृष्टिगत रखते हुए प्रति व्यक्ति आय सन् १९६० ६१ में ३३० रु० (सन् १९६० ६१ के मूल्यों पर) अनुमानित थी जो तृतीय योजना के अन्त तक बढ़कर ३८५ रु० होने का अनुमान था। इस प्रकार तृतीय योजनाकाल में राष्ट्रीय आय में लगभग % और प्रति व्यक्ति आय में लगभग १७% की वृद्धि होने का अनुमान था। राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय में अनुमानित वृद्धि करने हेतु तृतीय योजना में १० ४०० करोड़ रु० का विनियोजन करने का लक्ष्य रखा गया। विनियोजन की राशि को राष्ट्रीय आय के ११% स्तर से बढ़ाकर १४% से १५% तथा घरेलू बचत को राष्ट्रीय आय के ८ ५% से बढ़ाकर ११ ५% करने का लक्ष्य रखा गया। यदि तृतीय योजना के इन लक्ष्यों की तुलना हम प्रथम एवं द्वितीय योजना के दस वर्षों के विकास से करें तो हम पाते होगा कि इन दस वर्षों में सन् १९६० ६१ के मूल्यों के स्तर पर राष्ट्रीय आय की वृद्धि ४२% तथा प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि २१% हुई है।

इन दस वर्षों की विनियोजन राशि १० ११० करोड़ रु० थी और इस काल में राष्ट्रीय आय (सन् १९५० ५१) में ६ ५३० करोड़ रु० (सन् १९६० ६१

के मूल्यों पर) से बढ़कर सन् १९६०-६१ में १४,१४० करोड़ रु० होने का अनुमान था, अर्थात् इस काल में १०,११० करोड़ रु० के विनियोजन पर ४,६१० करोड़ रु० की राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई थी। तृतीय योजना में १०,४०० करोड़ रु० के विनियोजन पर ४ ५०० करोड़ रु० की राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने का लक्ष्य था। दूसरे शब्दों में, इन आकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सन् १९५०-५१ से सन् १९६०-६१ तक अर्थ व्यवस्था को जो प्राप्ति दस वर्षों में हुई थी, लगभग उतनी ही प्राप्ति तृतीय योजना के पाँच वर्षों में प्राप्त करने का लक्ष्य था। उपर्युक्त आकड़ों से यह भी ज्ञात होता है कि तृतीय योजना में विनियोजन की उत्पादकता में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होना था।

(२) कृषि-उत्पादन में आत्म निर्भरता—द्वितीय योजना के अनुभवों से यह ज्ञात हुआ कि कृषि-उत्पादन की कमी से आर्थिक नियोजन की समस्त कार्यवाहियों में रुकावट आती है। द्वितीय योजना की खाद्यान्न की कमी ने यह आवश्यक कर दिया कि तृतीय योजना में कृषि के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त की जाय और इसीलिए इस उद्देश्य का उद्देश्यों की सूची में द्वितीय स्थान दिया गया। कृषि एवं सामुदायिक विकास के लिए तृतीय योजना में १०६८ करोड़ रु० का आयोजन किया गया, जो द्वितीय योजना के इस मद के व्यय ५३० करोड़ रु० से दुगुना था। द्वितीय योजना के समस्त व्यय का ११% कृषि एवं सामुदायिक विकास पर व्यय किया गया जबकि तृतीय योजना के व्यय का १४% इस मद पर व्यय करने का लक्ष्य रखा गया। इसके अतिरिक्त ६५० करोड़ रु० बड़ी एवं मध्यम श्रेणी सिंचाई-परियोजनाओं पर व्यय का लक्ष्य था। इस प्रकार तृतीय योजना में कृषि विकास पर १७१८ करोड़ रु० जो समस्त व्यय का २३% था व्यय होना था। द्वितीय योजना में समस्त व्यय का $\frac{1}{5}$ भाग कृषि विकास पर व्यय हुआ जबकि तृतीय योजना में समस्त व्यय का लगभग $\frac{1}{4}$ भाग इस मद पर व्यय किए जाने का लक्ष्य रखा गया।

भारत में कृषि-व्यवस्था देश की राष्ट्रीय आय का लगभग आधा भाग उत्पादित करती है। इस क्षेत्र का पर्याप्त विकास न होने पर प्रति व्यक्ति की आय में भी पर्याप्त वृद्धि नहीं हो सकती है। तृतीय योजना में खाद्यान्नों के उत्पादन में ३१% की वृद्धि करने का लक्ष्य था। समस्त कृषि उत्पादन में तृतीय योजनाकाल में ३०% की वृद्धि होने का अनुमान था जबकि पिछली दो योजनाओं के दस वर्षों में कृषि उत्पादन में केवल ४१% की वृद्धि हुई। तृतीय योजना के कृषि उत्पादन के लक्ष्य निर्धारित करते समय कच्चे माल की आवश्यकताओं को भी दृष्टिगत किया गया।

(३) आधारभूत उद्योगों का विस्तार—तृतीय योजना में द्वितीय योजना के समान योजना के समस्त सरकारी व्यय का २०% भाग उद्योगों एवं खनिज विकास पर व्यय करने का आयोजन था। इस आधार पर कहा जा सकता है कि तृतीय योजना में सरकारी क्षेत्र के अन्तर्गत औद्योगिक विकास को प्राथमिकता की आवश्यकता से

अधिक महत्व नहीं दिया गया। तृतीय योजना में औद्योगिक एवं खनिज विकास पर १,५२० करोड़ रुपया व्यय होना था जो द्वितीय योजना के व्यय ६०० करोड़ रु० का १½ गुना था। इसके अतिरिक्त १,०२० करोड़ रुपया निजी क्षेत्र में उद्योगों पर विनियोजित किया जाना था। इस प्रकार उद्योगों एवं खनिज पर विनियोजित होने वाली राशि २,५७० करोड़ रु० थी जो योजना के समस्त विनियोजन की २४% थी।

दूसरी ओर कृषि एवं सिंचाई पर सरकारी एवं निजी क्षेत्र में विनियोजित होने वाली राशि क्रमशः १,२१० तथा ८०० करोड़ रु० थी जो समस्त विनियोजन की २०% थी। तृतीय योजना में ४२८ करोड़ रु० जो समस्त विनियोजन का ४% था ग्रामीण एवं लघु उद्योगों के विकास पर विनियोजित होना था। इस प्रकार तृतीय योजना में औद्योगिक एवं खनिज विकास पर योजना के समस्त विनियोजन का २८% भाग विनियोजन होना था जबकि कृषि एवं सिंचाई के विकास के लिए केवल २०% राशि ही विनियोजित होनी थी। इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट है कि तृतीय योजना द्वितीय योजना के समान उद्योग प्रधान थी। तृतीय योजना के औद्योगिक विकास के कार्यक्रमों द्वारा अगले १५ वर्षों में शीघ्र औद्योगीकरण की नींव डाली जानी थी जिससे राष्ट्रीय आय एवं रोजगार में अनुमानित वृद्धि हो सके। इसीलिए तृतीय योजना में पूँजीगत उत्पादक वस्तुओं एवं मशीन निर्माण उद्योगों की स्थापना एवं विस्तार को महत्व दिया गया। इसके अतिरिक्त औद्योगिक विकास द्वारा उत्पादित निर्मित कच्चे माल की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी तृतीय योजना में औद्योगिक कार्यक्रम सम्मिलित किए गये।

(४) रोजगार के अवसरों में वृद्धि—द्वितीय योजना के समान ही तृतीय योजना में भी योजनाकाल में बढ़ी हुई श्रम शक्ति को रोजगार प्रदान करने का आयोजन किया गया। भारत में श्रम शक्ति की तीव्र वृद्धि के कारण अर्थव्यवस्था के विकास के साथ बेरोजगारी भी बढ़ती जा रही थी। अभी तक भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास श्रम शक्ति की वृद्धि के अनुकूल नहीं हो सका था। यह अनुमान लगाया गया कि द्वितीय योजना के अन्त में ९० लाख व्यक्ति बेरोजगार रहेंगे और १५० से १८० लाख व्यक्ति आंशिक रोजगार प्राप्त रहेंगे। तृतीय योजनाकाल में सन् १९६१ की जनगणना के प्रारम्भिक अनुमानों के अनुसार १७० लाख व्यक्तियों की वृद्धि श्रम शक्ति में हुई। तृतीय योजना में केवल १४० लाख व्यक्तियों को रोजगार के अवसर प्रदान करने का आयोजन किया जा सका और शेष ३० लाख व्यक्तियों को रोजगार प्रदान करने के लिए प्रयत्न किए जाने थे। यदि तृतीय योजना में अनुमानित मात्रा में रोजगार के अवसरों में वृद्धि हो भी जाती तब भी योजना के अन्त में १२० लाख व्यक्ति बेरोजगार रहते और हमारी योजनाओं के अन्तिम लक्ष्य पूर्ण रोजगार की प्राप्ति शीघ्र काल तक न हो सकती थी।

(५) अवसर की समानता एवं धन तथा आय के वितरण की विषमताओं

में कमी—अवसर की समानता उत्पन्न करने के लिए काम करने के योग्य एवं इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को रोजगार के अवसर प्रदान करना आवश्यक होता है। इसी कारण भारत की तृतीय योजना में रोजगार के अवसरों की वृद्धि को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। अर्थ-व्यवस्था के विकास की गति रोजगार के अवसरों की आवश्यकता के अनुकूल करने के लिए देश में कई औद्योगिक आधार स्थापित करना तथा शिक्षा एवं समाज सेवाओं का विकास करना अत्यन्त आवश्यक था। तृतीय योजना में इसी कारण आधारभूत उद्योगों के विस्तार एव शिक्षा तथा समाज-सेवाओं के विकास एवं विस्तार का आयोजन किया गया। ६ से ११ वर्ष के बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का आयोजन किया गया। शिक्षा के सभी स्तरों पर विज्ञान एवं तान्त्रिक प्रशिक्षण की संस्थाओं के विस्तार, छात्रवृत्ति का आयोजन आदि द्वारा शिक्षा के अवसरों में समानता उत्पन्न करने का प्रयत्न था। तृतीय योजना में घने आबाद ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत-सी ग्रामीण कार्यशालाएं (Rural Works) का आयोजन किया गया जिसमें आर्थिक रोजगार-प्राप्त जनसंख्या को पूर्ण रोजगार प्राप्त हो सके। तृतीय योजना में स्वास्थ्य, सफाई, जल तथा निवास-गृह का भी आयोजन किया गया जिससे गरीब-वर्ग के लोग इन सुविधाओं का लाभ उठाकर अपने जीवन-स्तर को उन्नत कर सकें। इसके अतिरिक्त अनुसूचित जातियों एवं पिछड़ी जातियों के कल्याण के लिए भी कार्यक्रम तृतीय योजना में सम्मिलित थे। औद्योगिक श्रमिकों को सामाजिक बीमा द्वारा जीवन-स्तर में वृद्धि करने के अवसर प्रदान किए जाते थे।

भारत की योजनाओं में धन और आय की वृद्धि के साथ-साथ इस बात का भी आयोजन किया गया है कि आर्थिक शक्तियों का केन्द्रीयकरण न होने पावे। तृतीय योजना में सरकारी क्षेत्र में संगठित एवं भारी उद्योगों में विस्तार करना, मध्यम एवं लघु श्रेणी के उद्योगों, सहकारिता के आधार पर संगठित उद्योगों एवं नवीन व्यवसायों द्वारा संचालित उद्योगों के विकास के अधिक अवसर प्रदान करना तथा उचित कर नीति, वित्तीय नीति का प्रभावशाली संचालन कर आर्थिक सत्ताओं के केन्द्रीयकरण को रोके जाने का आयोजन किया गया।

तृतीय योजना का व्यय, विनियोजन एवं प्राथमिकताएँ

भारत की जनसंख्या की वृद्धि, जनसाधारण की सुविधाओं की उपलब्धि के सम्बन्ध में होने वाली सम्भावनाओं तथा अगली दो या तीन योजनाओं में देश की स्वयं-स्फूर्त विकास-अवस्था तक पहुँचाने की आवश्यकता के आधार पर तृतीय योजना के भौतिक कार्यक्रम निर्धारित किये गये। योजना में सम्मिलित सरकारी क्षेत्र के कार्यक्रमों की कुल लागत ८,००० करोड़ रु० से भी अधिक अनुमानित थी। निजी क्षेत्र के कार्यक्रमों का समस्त व्यय ८,१०० करोड़ रु० अनुमानित था। तत्कालीन अनुमानों के अनुसार, तृतीय योजनाकाल में ७,५०० करोड़ रु० के साधन उपलब्ध होने थे। योजनाकाल में उपलब्ध अवसरों का उचित उपयोग करने के लिए योजना के कार्यक्रम साधनों के वर्तमान अनुमानों पर पूर्णतः आधारित नहीं रखे गये। यह अनुमान लगाया

गया कि जस-जसे योजना की उत्पादक परियोजनाएं सचालित होने लगेंगी अथ साधना की उपलब्धि की सम्भावनाएँ भी बढ़ जायगी। इसी कारण ७५०० करोड रु० के अथ साधना के लिए ८,००० करोड रु० के कार्यक्रम निर्धारित किये गये। गये ५०० करोड रु० योजना के सचालनकाल में परिस्थिति के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त करने का अनुमान था। तृतीय योजना का प्रस्तावित व्यय एवं वास्तविक व्यय तालिका न० ७५ में दिया गया है।

इस तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि तृतीय योजना में सरकारी क्षेत्र के व्यय का सबसे अधिक भाग संगठित उद्योग एवं खनिज विकास के लिए निर्धारित किया गया। वास्तव में योजना का २०.८% व्यय छोटे बड़े उद्योग एवं खनिज के लिए निर्धारित किया गया। इसके अतिरिक्त शक्ति की निर्धारित राशि से भी औद्योगिक विकास को ही अधिक सहायता मिलना थी। इस प्रकार लगभग ३% व्यय औद्योगिक विकास के लिए निर्धारित किया गया। दूसरी ओर तृतीय योजना में कृषि विकास एवं सिंचाई पर योजना के व्यय का २३% भाग व्यय किया जाना था। यदि हम यह मान लें कि शक्ति के साधनों के बढ़ने से ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली पहुँच जायगी और ऐसे उद्योगों का विकास होगा जिनमें कृषि विकास में सहायता मिलेगी तो भी यह बात सर्वथा न्यायोचित होगी कि अतिरिक्त शक्ति के साधनों का अधिक लाभ औद्योगिक क्षेत्र को प्राप्त होगा। इस आधार पर यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि तृतीय योजना भी उद्योगप्रधान थी।

तृतीय योजना का सरकारी क्षेत्र का वास्तविक व्यय आयोजित व्यय से १४% अधिक रहा। यदि तृतीय योजनाकाल के मूल्य स्तर की वृद्धि को ध्यान में रखा जाय

तालिका स० ७५—तृतीय योजना का सरकारी क्षेत्र का आयोजित एवं वास्तविक व्यय वितरण

(करोड़ रुपये में)

मद	प्रस्तावित व्यय	समस्त व्यय से प्रतिशत	वास्तविक व्यय	समस्त वास्तविक व्यय से प्रतिशत	वास्तविक व्यय का प्रस्तावित व्यय से प्रतिशत
कृषि एवं अन्य सहायक क्षेत्र	१०६८	१४.२	१०८९.०	१२.६	१०२
सिंचाई एवं बाढ़ नियन्त्रण	६५०	८.७	६६३.७	७.७	१०२
शक्ति	१०१२	१३.५	१२५२.३	१४.६	१२४
उद्योग एवं खनिज	१५२०	२०.३	१७२६.३	२०.१	११४
ग्रामीण एवं लघु उद्योग	२६४	३.५	२४०.८	२.८	१२९
यातायात एवं संचार	१४८६	१९.८	२१११.७	२४.६	१४२
समाज सेवाएँ एवं विविध	१५००	२०.०	१४६३.४	१७.६	९६.८
योग	७५००	१००.०	८५७३.२	१००.०	११४

तो आयोजित व्यय से वास्तविक व्यय अधिक होते हुए भी योजना की भौतिक उपलब्धियाँ लक्ष्यों से कम ही रहने का अनुमान लगाया जा सकता है। थोक मूल्य निर्देशांक के सन्दर्भ में यदि योजना के वास्तविक व्यय का अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि भौतिक आधार पर योजना का वास्तविक व्यय आयोजित व्यय से काफी कम रहा है। निम्नलिखित तालिका में दिये गये तथ्यों से यह बात स्पष्ट होती है।

तालिका सं० ७६—तृतीय योजना का वास्तविक व्यय
मूल्य निर्देशांक के सन्दर्भ में

वर्ष	योजना का वास्तविक व्यय (करोड़ रुपया)	थोक मूल्य निर्देशांक (१९५२-५३ =१००)	१९६०-६१ में मूल्य निर्देशांक के आधार पर योजना का वास्तविक व्यय (१९६०-६१ का निर्देशांक=१२४.९) (करोड़ रुपया)
१९६१-६२	११२८	१२५.१	११२६
१९६२-६३	१३८६	१२७.९	१२६८
१९६३-६४	१७०९	१३५.३	१५७८
१९६४-६५	१९८२	१५२.७	१६२४
१९६५-६६	२३७२	१६५.१	१७८८
योग	८५७७	—	७३८४

जैसा पहले बताया जा चुका है कि तृतीय योजना में ८,००० करोड़ रु० की लागत के कार्यक्रम सम्मिलित किए थे जबकि वास्तविक व्यय आयोजन काल में ७,५०० करोड़ रु० का किया गया था। उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि ८,००० करोड़ रु० के लागत के कार्यक्रमों पर भौतिक दृष्टिकोण से वास्तविक व्यय केवल ७,२८४ करोड़ रु० हुआ अर्थात् आयोजित लागत की ८६% लागत ही लगायी गयी और १४% वास्तविक लागत कम व्यय करने के कारण बहुत से कार्यक्रमों के लक्ष्यों की पूर्ति सम्भव नहीं हो सकी। इन आँकड़ों की गणना में यह मान लिया गया है कि योजना के कार्यक्रमों की लागत सन् १९६०-६१ के मूल्यों पर आधारित थी। यह भी मान लिया जाय कि नियोजकों ने इन कार्यक्रमों की लागत निर्धारित मूल्यों की सम्भावित वृद्धि को ध्यान में रखा होगा तो भी योजना का वास्तविक भौतिक व्यय आयोजित एवं वास्तविक मौद्रिक व्यय से कम ही रहेगा क्योंकि मूल्यों में अनुमान से कहीं अधिक वृद्धि तृतीय योजनाकाल में हुई।

योजना के आयोजित व्यय की तुलना में वास्तविक मौद्रिक व्यय १,०३३ करोड़ रु० अधिक हुआ। इस आधिक्य का अधिकतर भाग यातायात एवं संचार को प्राप्त हुआ। शक्ति उद्योग में आयोजित व्यय से कहीं अधिक राशि व्यय की गयी। दूसरी ओर वास्तविक ने व्यय के बढ़ का कोई विशेष लाभ कृषि, एवं सिंचाई को उपलब्ध नहीं

हुआ अर्थात कृषिक्षेत्र के विकास-कार्यक्रमो का पूर्णरूपेण सचालन नही हो सका और इन पर होने वाला वास्तविक भौतिक व्यय आयोजित व्यय से भी कम रहा। ग्रामीण एव लघु उद्योगो पर आयोजित व्यय से कम राशि व्यय की गयी। इस प्रकार यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि ग्रामीण जीवन स्तर को सुधारने वाले कार्यक्रमो का सचालन पूर्णरूपेण तृतीय योजना म नही किया गया। समाज-सेवाओ पर होने वाले व्यय से विभिन्न मदो पर व्यय निम्न प्रकार किया गया—

तालिका म० ७७—तृतीय योजना म समाज-सेवा म सम्मिलित विभिन्न मदो का आयोजित एव वास्तविक व्यय

(करोड रु० म)

मद	आयोजित राशि	वास्तविक राशि
शिक्षा	४१८	५८८ ७
वैज्ञानिक शोध	१४०	७१ ४
स्वास्थ्य	२१०	२२५ ६
परिवार नियोजन	२७	२४ ६
जल पूर्ति एव सफाई	१०५	१०५ ७
गृह निर्माण आदि	२०२	१२७ ५
पिछडी जातियो का कल्याण	११४	६६ १
समाज कल्याण	२८	१६ ४
अन्य कार्यक्रम	२६६	२३० ८
योग	१५००	१४९३ ४

शिक्षा को छोडकर समाज सेवाओ म सम्मिलित अन्य सभी मदो म आयोजित व्यय से कम राशि खच की गयी है।

तृतीय योजना के व्यय की प्रगति का यदि अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि योजना के प्रथम से पाँचवें वष तक का वास्तविक व्यय कुल व्यय का क्रमश १३ २ १५० १६ ६, २५० तथा २८ ६ प्रतिशत था अर्थात अन्य योजनाओ के समान इस योजना म भी विकास व्यय बाद के वर्षों म अधिक रहा। प्रथम वष अर्थात सन् १९६०-६१ के विकास व्यय की तुलना म अन्तिम वष अर्थात सन् १९६५ ६६ म व्यय दुगने स भी अधिक रहा। व्यय के इस असमान वितरण का एक कारण मूल्य-स्तर म निरन्तर वृद्धि होना भी रहा है। इसके अतिरिक्त बहुत-सी परियोजनाओं का कार्य योजना के प्रारम्भिक काल म नही किया जा सका था।

विनियोजन—तृतीय योजना के सरकारी क्षेत्र के समस्त व्यय ७ ५०० करोड रु० म से ६ ३०० करोड रु० विनियोजन तथा शेष १ २०० करोड रु० चालू व्यय होने का अनुमान था। निजी क्षेत्र म ४ १०० करोड रु० का विनियोजन होने का

अनुमान था। इन विनियोजन राशियों का विभिन्न मदों पर वितरण इस प्रकार था—

तालिका सं० ७८—द्वितीय एवं तृतीय योजना में विनियोजन

(करोड़ रुपयों में)

मद	द्वितीय योजना सरकारी क्षेत्र	निजी क्षेत्र	योग	योग में प्रतिशत	तृतीय योजना सरकारी क्षेत्र	निजी क्षेत्र	योग	योग का प्रतिशत
कृषि एवं सामुदायिक विकास	२१०	६२५	८३५	१२	६६०	८००	१,४६०	१४
बड़ी एवं मध्यम श्रेणी की सिंचाई-योजनाएं	४२०	—	४२०	६	६५०	—	६५०	६
शक्ति	४४५	४०	४८५	७	१०१२	५०	१,०६२	१०
ग्रामीण एवं लघु उद्योग	९०	१७५	२६५	४	१५०	२७५	४२५	४
संगठित उद्योग एवं खनिज	८७०	६७५	१,५४५	२३	१,५२०	१,०५०	२,५७०	२४
यातायात एवं संचार	१,२७५	१३५	१,४१०	२१	१,४८६	२५०	१,७३६	१७
समाज-सेवाएं एवं विविध	३४०	९५०	१,२९०	१९	६२२	१,०७५	१,६९७	१६
उत्पादन में बाधा न आने हेतु संचित कच्चा एवं अर्द्ध-निर्मित माल	—	५००	५००	८	२००	६००	८००	८
योग	३,६५०	३,१००	६,७५०	१००	६,३००	४,१००	१०,४००	१००

१०,४०० करोड़ रु० के विनियोजन में २,०३० करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होने का अनुमान था। द्वितीय योजना के अन्तिम वर्ष का विनियोजन स्तर, १,६०० करोड़ रु० तृतीय योजना के अन्त तक बढ़कर २,६०० करोड़ रु० हो जाने का अनुमान था। तृतीय योजना में द्वितीय योजना की तुलना में विनियोजन-स्तर में लगभग ५४% की वृद्धि होनी थी। सरकारी क्षेत्र के विनियोजन में ७०% की तथा निजी क्षेत्र के विनियोजन में ३२% की वृद्धि होने का अनुमान था।

द्वितीय योजनाकाल में हुए विनियोजन की तुलना तृतीय योजना के विनियोजन के अनुमानों के साथ करने से ज्ञात होता है कि इन दोनों योजनाओं में विनियोजन का प्रकार लगभग समान था। तृतीय योजना में कृषि एवं सामुदायिक विकास पर समस्त विनियोजन का १४% निर्धारित किया गया है जबकि यह प्रतिशत द्वितीय योजना में १२% था। शक्ति का विनियोजन, जो द्वितीय योजना में समस्त विनियोजन का ७% था को बढ़ाकर तृतीय योजना में १०% कर दिया गया। इसी प्रकार

उद्योग एवं खनिज के विनियोजन प्रतिशत २३% को बढ़ाकर २५% कर दिया गया। सिंचाई लघु एवं ग्रामीण उद्योग तथा कच्चे एवं अर्द्ध निर्मित माल के विनियोजन-प्रतिशत द्वितीय योजना के समान ही थे। द्वितीय योजना में यातायात एवं सचार तथा समाज सेवाओं पर विनियोजन का क्रमश २१% एवं १६% विनियोजित किया गया जबकि यह प्रतिशत तृतीय योजना में घटाकर १७% एवं १६% कर दिया गया। विनियोजन के प्रकार से हमें ज्ञात होता है कि तृतीय योजना में औद्योगिक विकास को सबसे अधिक प्राथमिकता दी गयी। समस्त विनियोजन का २६% भाग प्रत्यक्ष रूप से औद्योगिक विकास के लिए निर्धारित किया गया जबकि कृषि विकास के लिए (सिंचाई सहित) केवल २०% भाग ही निर्धारित किया गया परन्तु इस तथ्य के साथ-साथ यह भी स्पष्ट है कि तृतीय योजना में द्वितीय योजना की तुलना में कृषि-विकास को अधिक महत्व दिया गया। कृषि क्षेत्र के विनियोजन (सिंचाई सहित) को १८% से बढ़ाकर २०% कर दिया गया। औद्योगिक क्षेत्र के विनियोजन में भी केवल २% ही की वृद्धि की गयी।

सरकारी क्षेत्र के विनियोजन की राशि ६ ०० करोड़ रु० में २०० करोड़ रु० निजी क्षेत्र में कृषि उद्योग गृह निर्माण आदि के चुने हुए विनियोजन का सहायतार्थ उपलब्ध होगा। इस प्रकार तृतीय योजना में सरकारी क्षेत्र का वास्तविक विनियोजन (६ ३०० — २००) ६ १०० करोड़ रु० और निजी क्षेत्र का विनियोजन (४ १०० + २००) ४ ३०० करोड़ रु० होगा। सरकारी एवं निजी क्षेत्र के विनियोजन के अनुपात का यदि हम अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि प्रथम योजना में सरकारी एवं निजी क्षेत्र के विनियोजन का अनुपात लगभग ४६ ५४ (१ ५६० करोड़ रु० सरकारी क्षेत्र में और १ ८०० करोड़ रु० निजी क्षेत्र में) द्वितीय योजना में यह अनुपात ५४ ४६ (३ ६५० करोड़ रु० सरकारी क्षेत्र में और ३ १०० करोड़ रु० निजी क्षेत्र में) तथा तृतीय पचवर्षीय योजना में यह अनुपात ६१ ३९ है (६ ३०० करोड़ रु० सरकारी क्षेत्र में और ४ १०० करोड़ रु० निजी क्षेत्र में)। यदि सरकारी क्षेत्र से सहायतार्थ निजी क्षेत्र में हस्तान्तरित होने वाली राशि २०० करोड़ रु० को निजी क्षेत्र में सम्मिलित कर लिया जाय तो यह अनुपात ५९ ४१ आता है। इन आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि योजनाकाल के नवीन विनियोजन में सरकारी क्षेत्र का महत्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है और निजी क्षेत्र को सरकारी क्षेत्र की तुलना में कुछ कम विस्तार के अवसर उपलब्ध हैं। यह परिस्थिति हमारी योजनाओं के अन्तिम लक्ष्य समाजवादी समाज की स्थापना के अनुकूल ही है।

प्रथम पचवर्षीय योजना में सरकारी क्षेत्र का विनियोजन २०० करोड़ रु० प्रति वर्ष था जो प्रथम योजना के अन्त तक ४५० करोड़ रु० प्रति वर्ष हो गया। सन् १९५६ ५७ में सरकारी क्षेत्र का विनियोजन लगभग ५०० करोड़ रु० था जो द्वितीय योजना के अन्त तक ८०० करोड़ रु० प्रति वर्ष हो गया। तृतीय योजना के

अन्त तक सरकारी विनियोजन की राशि १,५०० करोड़ रु० प्रति वर्ष होने की सम्भावना थी। इस प्रकार योजनाकाल के १५ वर्षों में सरकारी क्षेत्र की विनियोजन-राशि सात गुनी से भी अधिक हो जाती। दूसरी ओर, निजी क्षेत्र के अन्तर्गत वृहद् एवं मध्यम श्रेणी के उद्योगों एवं खनिज पर वार्षिक विनियोजन प्रथम योजना में ४५ करोड़ रु० था, जो द्वितीय योजना के अन्त तक लगभग १४५ करोड़ रु० हो गया। तृतीय योजना के अन्त में निजी क्षेत्र के अन्तर्गत वृहद् एवं मध्यम श्रेणी के उद्योगों में विनियोजित होने वाली राशि का वार्षिक औसत २०० करोड़ रु० से भी अधिक होने का अनुमान था।

तृतीय योजनाकाल में वास्तविक विनियोजन ११[illegible]० करोड़ रुपये होने का अनुमान है जो आयोजित विनियोजन राशि से ६.३% अधिक है। सरकारी क्षेत्र का वास्तविक विनियोजन ७१८० करोड़ रु० और निजी क्षेत्र में ४१८० करोड़ रु० हुआ। इस प्रकार सरकारी क्षेत्र के विनियोजन की राशि आयोजित विनियोजन-राशि से १३% अधिक रही परन्तु तृतीय योजना में विनियोजन-लागत-निर्देशांक ११४ (१९६०=१००) था। अर्थात् सन् १९६० के विनियोजन-लागत-स्तर के आधार पर वास्तविक विनियोजन केवल ६८६२ करोड़ रु० आता है जो आयोजित विनियोजन १०,४०० करोड़ रु० का केवल ६५% है।

तृतीय योजना के अर्थ-साधन

जैसा हमें ज्ञात है कि तृतीय योजना में सम्मिलित सरकारी क्षेत्र के कार्यक्रमों की अनुमानित लागत ८००० करोड़ रु० है परन्तु सम्भव प्रयत्न करने पर भी कुछ परियोजनाओं पर अनुमानित राशि से कम व्यय हो पायगा और इन परियोजनाओं के शेष कार्यक्रमों को चौथी योजना में पूरा किया जायगा। इन परियोजनाओं पर सम्पूर्ण अनुमानित राशि योजनाकाल में न व्यय होने की सम्भावना पिछली योजनाओं के अनुभवों पर आधारित थे। परियोजनाओं पर सम्भावित व्यय न होने के कई कारण हो सकते हैं जिनमें से दो अधिक महत्वपूर्ण हैं—प्रथम प्रशासन एवं संगठन-सम्बन्धी कठिनाइयाँ तथा द्वितीय पर्याप्त विदेशी मुद्रा एवं आवश्यक प्रौद्योगिक व्यक्तियों का समय पर उपलब्ध न होना। इन्हीं कारणों से योजना में सरकारी क्षेत्र का व्यय ७,५०० करोड़ रु० निर्धारित किया गया जिसमें से ६,३०० करोड़ रु० विनियोजित किया जायगा और शेष १,२०० करोड़ रु० समाज-सेवाओं एवं अन्य विकास-कार्यक्रमों पर चालू व्यय होना था।

तृतीय योजना में समस्त साधनों से प्राप्त होने वाली कुल राशि को अधिक महत्व दिया गया और पृथक्-पृथक् साधनों से अनुमानित राशियाँ प्राप्त करने पर अधिक जोर नहीं दिया गया। चालू आय की राशि अर्थ-व्यवस्था की विकास की गति-विधि पर निर्भर रहती है। योजना-कार्यक्रमों के कार्यान्वित होने पर जैसे जैसे नवीन आय लोगों के हाथों में जाती है चालू आय में भी वृद्धि हो जाती है। चालू आय के

सम्बन्ध में इसी प्रकार ठीक ठीक अनुमान लगाना सम्भव नहीं होता है। इसी प्रकार विकास सम्बन्धी एवं अन्य चालू व्ययों में भी अर्थ व्यवस्था के साथ साथ परिवर्तन होते रहते हैं और इनका भी ठीक ठीक अनुमान लगाना सम्भव नहीं होता है। राजकीय व्यवसायों एवं नवीन प्रारम्भ हुई परियोजनाओं से होने वाली बचत के अनुमान भी ठीक ठीक लगाना कठिन होता है। वास्तव में, अर्थ साधनों की विभिन्न मदें एक दूसरे पर निर्भर रहती हैं। यदि पर्याप्त मात्रा में और ठीक समय पर विदेशी सहायता प्राप्त हो जाय तो घरेलू साधनों से भी अधिक अर्थ प्राप्त होता है।

तृतीय योजनाकाल में आयोजित व्यय ७,५०० करोड़ रु० से १,०७७ करोड़ अधिक व्यय करना केन्द्र एवं राज्य सरकारों के सामूहिक प्रयासों द्वारा सम्भव हो सका। विभिन्न मदों से अर्थ साधन तालिका सं० ७९ के अनुसार प्राप्त हुए—

तालिका सं० ७९—तृतीय योजना के अर्थ साधन

(करोड़ रु० में)

क्रम संख्या मद	मौलिक आयोजन	कुल आयोजित राशि का प्रतिशत	उपलब्ध वास्तविक राशि	कुल वास्तविक राशि का प्रतिशत	वास्तविक राशि से आयोजित राशि का प्रतिशत
(अ) आन्तरिक बजट के साधन	४७५०	६३ ३	५,०२१	५८ ५	९५
(१) चालू आय का अतिरेक	५५०	७ ३	—४१६	—४ ६	—
(२) सरकारी व्यवसायों का अतिरेक	५५०	७ ३	४३५	५ ७	७९
(क) रेलों का अनुदान	१००	—	६२	—	—
(ख) अन्य सरकारी व्यवसायों का अनुदान	४५०	—	३७३	—	—
(३) अतिरिक्त कर तथा सरकारी व्यवसायों की अतिरिक्त आय	१७१०	२२ ८	२८६२	३३ ६	१६६
(४) जनता से ऋण (शुद्ध)	८००	१० ७	८२३	९ ६	१०३
(५) लघु बचत	६००	८ ०	५६५	६ ६	९४
(६) वार्षिकी जमा, अनिवार्य बचत इनामी बॉण्ड स्वर्ण बॉण्ड	—	—	११७	१ ४	—
(७) स्टेट प्राविडेंट निधि	२६५	३ ५	३३६	३ ९	१२७
(८) इस्पात समानीकरण फण्ड	१०५	१ ४	३४	० ४	३४
(९) विविध पूंजीगत प्राप्तियां (शुद्ध)	१७०	२ ३	२१८	२ ३	१४०

(ब) विदेशी सहायता	२२००	२९४	२,६२३	२८३	११०
(क) PL ४८० के अतिरिक्त	—	—	१,५३६	—	—
(ग) PL ४८० के अन्तर्गत	२२००	—	१०८७	—	—
(स) हीनार्थ प्रबन्धन	५५०	७२	१,१३३	५१७	२०६
(द) अ+ब+स (योग)	७५००	१००	८५७७	१००	११४

(१) चालू आय से बचत—तृतीय योजनाकाल में केन्द्र एवं राज्यों की चालू आयों का अनुमान ६,२५० करोड़ रु० लगाया गया। यह अनुमान सन् १९६०-६१ के संशोधित बजट अनुमान की राशि १,८०० करोड़ रु० तथा सन् १९६१-६२ बजट-अनुमान १,९५० करोड़ रु० पर आधारित थी। इसी प्रकार योजनाकाल में चालू व्यय का अनुमान ५,३०० करोड़ रु० था। इन्हीं अनुमानों के आधार पर चालू आय की बचत ५५० करोड़ रु० सम्भावित थी। द्वितीय योजना में इस मद से कोई बचत नहीं हुई और ५० करोड़ रु० अन्य साधनों से चालू व्यय के लिए जुटाना पड़ा। द्वितीय योजना के इन आँकड़ों की तुलना में तृतीय योजना की अनुमानित चालू आय की बचत अत्यधिक प्रतीत होती है।

चालू आय की बचत तृतीय योजनाकाल में इतनी अधिक अनुमानित करने का आधार द्वितीय योजनाकाल के अन्तिम दो वर्षों में कर से अधिक आय का प्राप्त होना था। कर से अधिक प्राप्ति के दो मुख्य कारण थे—अतिरिक्त कर एवं आर्थिक क्रियाओं का विस्तार। यह आशा की गयी कि द्वितीय योजनाकाल में लगाये गये अतिरिक्त करों की आय सामान्यतः तृतीय योजनाकाल में बनी रहेगी और आर्थिक क्रियाओं का निरन्तर विस्तार होता रहेगा। चालू आय की बचत के अनुमानों में अतिरिक्त करों से होने वाला आय को सम्मिलित नहीं किया गया। तृतीय योजनाकाल में १,७१० करोड़ रु० अतिरिक्त करों से प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया। अतिरिक्त करों के लगाने पर पहले से लगे हुए करों की प्राप्तियाँ पहले समान ही रहेंगी ऐसा अनुमान लगाना कुछ ठीक प्रतीत नहीं होता था परन्तु यदि तृतीय योजनाकाल में आर्थिक क्रियाओं का विस्तार अनुमानानुसार होता तो करों से प्राप्तियाँ भी अनुमान के अनुसार प्राप्त हो सकती थीं। द्वितीय योजना में चालू एवं अतिरिक्त करों से प्राप्त होने वाली बचत १,००२ करोड़ रु० थी जबकि तृतीय योजना में इन साधनों से २,२६० करोड़ रु० प्राप्त होने का अनुमान था जो द्वितीय योजना की तुलना में दुगुने से भी अधिक थी। करों से प्राप्त होने वाली बचत इतनी अधिक अनुमानित करना इस लिए भी न्यायसंगत प्रतीत नहीं होती थी कि तृतीय योजनाकाल में राष्ट्रीय आय की वृद्धि का अनुमान केवल ३०% था और विनियोजन की राशि द्वितीय योजना की विनियोजन राशि की तुलना में ५२% ही अधिक थी। चालू आय की वृद्धि के साथ साथ जब विकास से सम्बन्ध न रखने वाले सरकारी व्यय में अनुमान से अधिक वृद्धि हो जाती है तो चालू आय की बचत अनुमानानुसार नहीं हो सकती है।

तृतीय योजना के अन्य साधनों की वास्तविक उपलब्धि के आँकड़ों से ज्ञात होता है कि योजना के समस्त उपलब्ध साधनों का ५८% भाग आन्तरिक साधनों से प्राप्त हुआ जबकि मौलिक योजना में इन साधनों से योजना के मौलिक व्यय ७ ५०० करोड़ रु० का ६३% भाग प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया था। मौलिक अनुमानों के अनुसार बजट के साधनों से ४,७५० करोड़ रु० प्राप्त करने का अनुमान था जबकि इन साधनों की प्राप्ति ५ ०२१ करोड़ रु० है। दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि योजनाकाल में गैर योजना व्यय में अत्यधिक वृद्धि हुई और चालू राजस्व का आधिक्य जो ५५० करोड़ रु० अनुमानित था के विपरीत इस साधन में ४१६ करोड़ रु० की हीनता रही जिसका तात्पर्य यह हुआ कि गैर-योजनाव्यय में सम्भावना से ६६६ करोड़ रु० की अधिक वृद्धि हुई।

(२) **अतिरिक्त कर**—*योजनाकाल में अतिरिक्त कर द्वारा प्रारम्भिक अनुमानों* से भी अधिक राशि प्राप्त होने का अनुमान है। इस साधन से १,७१० करोड़ रु० *प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया था जबकि वर्तमान अनुमानानुसार वास्तविक* प्राप्ति २ ८६२ करोड़ रु० है। योजना के प्रथम वर्ष में अतिरिक्त करों द्वारा १०७ करोड़ रु० प्राप्त हुआ जो योजना के अन्तिम वर्ष में बढ़कर क्रमश १ ०८४ करोड़ रु० हो गया।

(३) **रेलों से अनुदान**—द्वितीय योजनाकाल में रेल व्यवसाय से विकास के *लिए प्राप्त होने वाले अनुदान की राशि १५० करोड़ रु० है। इस राशि में द्वितीय* योजनाकाल की किराये भाड़े में वृद्धि करने से प्राप्त होने वाली अतिरिक्त राशियाँ सम्मिलित हैं। तृतीय योजनाकाल में किराये भाड़े में होने वाले समायोजन की अतिरिक्त राशि अनुदान में सम्मिलित नहीं की गयी इसीलिए रेलों से प्राप्त होने वाले अनुदान की राशि केवल १०० करोड़ रु० ही अनुमानित थी। यद्यपि सन् १९५५ ५६ से रेल व्यवसाय की शुद्ध आय निरन्तर बढ़ती जा रही है। सन् १९५६ ५७ में रेलों की शुद्ध आय ८८ करोड़ रु० सन् १९६० ६१ में ८८ करोड़ रु० हो गया, परन्तु रेलों का अनुदान वर्ष प्रति वर्ष घटता जा रहा है। सन् १९५६ ५७ में रेलों के अनुदान की राशि लगभग २० करोड़ रु० थी जो सन् १९६१ ६२ में केवल ८ ६४ *करोड़ रु० रह गयी। इस प्रकार रेलों के अनुदान की घटती हुई प्रवृत्ति के आधार* पर रेलों के अनुदान की राशि १०० करोड़ रु० अधिक प्रतीत होती थी।

योजना के प्रथम तीन वर्षों में विकास-कार्यक्रमों के लिए रेलों का अनुदान अनुमान से अधिक रहा, परन्तु अन्तिम दो वर्षों में यह अनुदान ऋणात्मक हो गया जिसका प्रमुख कारण संकटकालीन अवस्था में रेल यातायात के सुधार पर अधिक व्यय किया जाना था।

(४) **अन्य सरकारी व्यवसायों से आधिक्य**—तृतीय योजना में अन्य सरकारी *व्यवसायों जिनमें केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों दोनों के ही व्यवसाय सम्मिलित हैं* से

४५० करोड़ रु० प्राप्त होने का अनुमान था। यह राशि इन व्यवसायों की आय से इनके समस्त व्यय, आवश्यकताओं ब्याज एवं लाभांश का भुगतान करने के पश्चात् अनुमानित की गयी परन्तु इस राशि में वार्षिक ह्रास (Depreciation) की आयोजित राशियाँ एवं अन्य सचित निधियों में जमा होने वाली वार्षिक राशियाँ सम्मिलित थीं। इन मदों को इस राशि में इसलिए सम्मिलित कर लिया गया कि इनके द्वारा सरकारी व्यवसायों के विस्तार-आवश्यकताओं को क्रियान्वित किया जायगा। ४५० करोड़ रु० की इस राशि में से ३०० करोड़ रु० केन्द्र सरकार द्वारा संचालित व्यवसायों से और शेष राज्य-सरकारों के व्यवसायों से प्राप्त होने का अनुमान था। वास्तव में, ह्रास की राशि का इस आधिक्य में सम्मिलित करना न्यायोचित प्रतीत नहीं होता है। ह्रास या क्षय होने वाली सम्पत्ति के प्रतिस्थापना के लिए आयोजित किया जाता है और इसे विस्तार के लिए उपलब्ध राशियों में सम्मिलित करना वहीखाते के नियमों के अनुकूल नहीं है। वास्तव में सरकारी व्यवसायों के विस्तार-आवश्यकताओं के लिए विस्तार-सचित (Development Fund) का निर्माण किया जाना चाहिए था, अन्यथा इन व्यवसायों के आधिक्य अनुमानित करते समय केवल शुद्ध लाभ को ही विचार में रखना चाहिए था। यदि आधिक्य में शुद्ध लाभ को ही सम्मिलित किया जाता तो सरकारी व्यवसायों से प्राप्त होने वाले आधिक्य की राशि ४५० करोड़ रु० से कहीं कम रहती। सरकारी क्षेत्र के अधिकतर व्यवसाय अभी शिशु-अवस्था में हैं और इनमें बहुत से व्यवसाय दीर्घ काल तक कोई लाभ अर्जित नहीं कर सकेंगे। रेलों को छोड़कर अन्य सरकारी व्यवसायों में वर्तमान शुद्ध लाभ की दर ३ प्रतिशत से अधिक नहीं है। ऐसी परिस्थिति में इस साधन से इतनी बड़ी राशि प्राप्त होना कठिन प्रतीत होती थी।

इस साधन से प्राप्त होने वाली राशि लगभग अनुमान से कम ही रही है परन्तु केन्द्रीय सरकार के व्यवसायों का आधिक्य अनुमानित राशि से अधिक रहा है जबकि राज्य-सरकारों के व्यवसायों का आधिक्य अनुमान से कम रहा है। यह बात उल्लेखनीय है कि विभिन्न परियोजनाओं की उत्पादनक्षमता का पर्याप्त उपयोग होने के साथ सरकारी व्यवसायों के आधिक्य में वृद्धि होती रही। यह आधिक्य सन् १९६१-६२ में २९ करोड़ रु० से बढ़कर सन् १९६६-६७ में १०७ करोड़ रु० हो गया।

(५) जनता से ऋण—द्वितीय योजनाकाल में ७८० करोड़ रु० जनता से ऋण के रूप में प्राप्त हुआ। तृतीय योजना में इस मद में ८०० करोड़ रु० प्राप्त होने की सम्भावना की गयी। इस राशि में इनामी बाण्ड से प्राप्त होने वाली शुद्ध राशियाँ सम्मिलित थीं। द्वितीय योजना में इस मद से प्राप्त होने वाली राशि में PL 480 के अन्तर्गत जमा हुई राशि में से स्टेट बैंक द्वारा क्रय की गयी सरकारी प्रतिभूतियों की राशि सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त रिजर्व बैंक द्वारा क्रय की गयी सरकारी प्रतिभूतियों की बड़ी राशि जनता के ऋण में सम्मिलित की हुई है। द्वितीय

योजना म इस प्रकार जनता द्वारा जुटाये गये ऋण की शुद्ध राशि ३०० करोड रु० से भी कम है। तृतीय योजना म PL 480 के फण्ड सयुक्त राज्य अमरिका के अधिकारियों के नाम म रिजव बक म जमा रहेंगे और इनके द्वारा विशेष प्रकार की प्रतिभूतिया जो इसी उद्देश्य से जारी की जायेंगी क्रय होगी। इन प्रतिभूतियो की राशि का तृतीय योजना म विदेशी सहायता की मद म सम्मिलित किया गया। दूसरी ओर रिजव बक द्वारा ऋण कायक्रमो म दी गयी सहायता को हीनार्थ प्रब धन म सम्मिलित कर लिया गया। तृतीय योजना म इस मद के अनुमानों म जीवन बीमा निगम द्वारा बडी मात्रा म खरीदी हुई सरकारी प्रतिभूतिया तथा अन्य विनियोजको द्वारा क्रय की जाने वाली प्रतिभूतियों की राशिया सम्मिलित थी। यह भी अनुमान लगाया गया था कि व्यापारिक बको द्वारा भी कुछ ऋण जुटाया जायगा। राज्यो की ऋण राशि म बिजली बोर्डों तथा अन्य सरकारी व्यवसायो द्वारा प्राप्त किये गय ऋणो की राशिया का भी सम्मिलित कर लिया गया परन्तु इन अनुमानो म सहकारी क्षेत्र की ऋण की आवश्यकताओं को सम्मिलित नही किया गया यद्यपि योजनाकाल म सहकारी क्षेत्र के विस्तार का समुचित आयोजन किया गया। सहकारी क्षेत्र को बाजार से पर्याप्त ऋण मिलने के पश्चात जनता से इतना अधिक ऋण प्राप्त होना कठिन होगा। दूसरी ओर निजी क्षेत्र के कायक्रमों को सचालित करने के लिए बाजार से ऋण प्राप्त होना आवश्यक था। इस प्रकार ऋण की प्राप्ति के लिए निजी क्षेत्र एव सरकार म होने वाली प्रतिस्पर्धा को रोकने हेतु निजी क्षेत्र को बकों द्वारा दी जाने वाली साख का नियन्त्रित करना आवश्यक था।

योजनाकाल मे जन-ऋण से अनुमान से भी अधिक राशि प्राप्त हुई है। जन-ऋण से प्राप्त होने वाली राशि म वष प्रति वष वृद्धि होती रही है। योजना के प्रथम वष (सन् १९६१ ६२) मे १३३ करोड रुपया जन ऋण से प्राप्त हुआ जो सन् १९६४ ६५ म बढकर २४३ करोड रु० हो गया है। अधिक जन ऋण प्राप्त होने के प्रमुख कारण मौद्रिक आय म वृद्धि तथा सकटकालीन अवस्था की मनोवैज्ञानिक भावनाएँ है।

(६) लघु बचत—द्वितीय योजनाकाल म लघु बचत से ५०० करोड रु० प्राप्त होने का अनुमान था जबकि इससे केवल ४०० करोड रु० प्राप्त हुए। तृतीय योजना म इस मद से प्राप्त होने वाली राशि का अनुमान ६०० करोड रु० निर्धारित किया गया। देश म लघु बचत के साधन विस्तृत हैं। ग्रामीण क्षेत्रों म लघु बचत प्राप्त करने के लिए भरसक प्रयत्न किए जाने चाहिए। तृतीय योजनाकाल म ग्रामीण क्षेत्रो म सहकारी सस्थाओ का अत्यधिक विस्तार होना था और ग्रामीण क्षेत्र की बचत का बहुत बडा भाग सहकारी क्षेत्र को अश उपलब्ध कराने म उपयोग हो जाना था। ऐसी परिस्थिति म ग्रामीण क्षेत्रों से अधिक लघु बचत प्राप्त करना सुलभ नही होता। ग्रामीण क्षेत्रों म धन गाडकर रखने अथवा बचत को जेवर आदि म परिवर्तित करने की प्रवृत्तियों म परिवर्तन कर लघु बचत की राशि को पर्याप्त

मात्रा में बढ़ाया जा सकता है। इन बाधाओं को दूर करने की समस्या का उचित समाधान कर संगठित प्रयास करने की आवश्यकता थी।

लघु बचत से प्राप्त होने वाली राशि भी अनुमानित राशि की ६४% है। लघु बचत की राशि में इनामी बाण्ड, स्वर्ण बाण्ड, आय-कर वार्षिक वृत्ति जमा (Annuity Deposit) तथा अनिवार्य बचत से प्राप्त राशियाँ भी सम्मिलित कर लें तो लघु बचत से प्राप्त होने वाली राशि अनुमान से अधिक हो जाती है।

(७) **प्राविधिक निधि, इस्पात समानीकरण फण्ड तथा अन्य पूँजीगत प्राप्तियों का योग**—द्वितीय योजना में प्राविधिक निधि में १३० करोड़ रु० की शुद्ध वृद्धि हुई। तृतीय योजनाकाल में इसमें २६५ करोड़ रु० की वृद्धि होने की सम्भावना थी। *प्राविधिक निधि की वृद्धि की राशि का अधिक अनुमान इसलिए लगाया गया कि* केन्द्रीय सरकार एवं राज्य सरकार के कर्मचारियों के कुछ वर्गों के वेतन-क्रम में वृद्धि हो गयी और केन्द्रीय विभागों में प्राविधिक निधि को अनिवार्य रूप से लागू कर दिया गया। इस्पात समानीकरण फण्ड से १०५ करोड़ रु० प्राप्त होने का अनुमान था। अन्य पूँजीगत प्राप्तियों में सम्पन्नता-कर, फण्ड एवं जमा आदि को सम्मिलित करके इस मद से १७० करोड़ रु० प्राप्त होने की सम्भावना थी जबकि द्वितीय योजना में इस मद से केवल २२ करोड़ रु० ही प्राप्त हुआ। पूँजीगत प्राप्तियों की मुख्य मदें सम्पन्नता-कर (Betterment Levies), स्थानीय संस्थाओं, कृषक एवं जनता को दिये गये ऋणों की वापसी, चालू आय से फण्ड में हस्तान्तरण, विभिन्न जमा, फण्ड एवं प्राप्तियाँ आदि थीं। दूसरी ओर पूँजीगत व्यय की मुख्य मदें जमींदारों एवं इस्तमरारियों को दिया जाने वाला मुआवजा, कृषकों को दिये जाने वाले ऋण, स्टेट ट्रेडिंग में हुई हानि आदि थीं। इन मदों से १३० करोड़ रु० प्राप्त होने का अनुमान *तीन बातों पर आधारित था—प्रथम, पिछले वर्षों की प्रवृत्तियों के अध्ययन, द्वितीय,* योजना से सम्बन्ध न रखने वाले पूँजीगत भुगतानों को न्यूनतम रखा जा सकेगा तथा तृतीय, दीर्घकाल से अवशिष्ट ऋणों आदि की वापसी के लिए शीघ्र प्रयत्न किए जायेंगे।

तृतीय योजनाकाल में उपर्युक्त मदों से (इस्पात समानीकरण फण्ड को छोड़कर) प्राप्त होने वाली वास्तविक राशि योजना के प्रारम्भिक अनुमानों से अधिक है।

(८) **विदेशी सहायता**—तृतीय योजनाकाल में ३२०० करोड़ रु० की विदेशी सहायता प्राप्त होने का अनुमान था जिसमें से तृतीय योजना के अर्थ-साधनों में केवल २२०० करोड़ रु० ही सम्मिलित किया गया था। ३२०० करोड़ रु० की विदेशी सहायता में से ४५० से ५०० करोड़ रु० तक की विदेशी सहायता तृतीय योजना में वाजिब होने वाले विदेशी ऋणों के भुगतान के लिए उपयोग हो जानी थी। इसके अतिरिक्त लगभग ३०० करोड़ रु० की विदेशी सहायता निजी क्षेत्र को विदेशियों द्वारा लगायी गयी पूँजी अथवा विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम तथा संयुक्त राज्य

अमेरिका के निर्यात आयात बैंक से प्राप्त होने वाले ऋणों के रूप में चली जाती थी। इसके साथ ही २०० करोड़ रु० की राशि में से कुछ राशि अमेरिका के अधिकारियों द्वारा PL 480 के अन्तर्गत रोक की राशि (Retention Money) के रूप में रखी जाती थी और शेष PL 480 के अन्तर्गत बफर स्टॉक में वृद्धि करने के लिए उपयोग होनी थी। इस प्रकार लगभग १,००० करोड़ रु० की विदेशी सहायता विकास कार्यक्रमों के लिए उपलब्ध न हो सकने का अनुमान था। इसी कारण अनुमानित विदेशी सहायता की राशि ३,२०० करोड़ रु० में से केवल २,२०० करोड़ रु० को योजना के अर्थ साधनों में सम्मिलित किया गया।

विदेशी सहायता से विकास-कार्यक्रमों को उपलब्ध होने वाली राशि योजना के प्रथम वर्ष में २६२ करोड़ रु० थी जो योजना के अन्तिम वर्ष में बढ़कर ६८६ करोड़ रु० हो गयी परन्तु पाकिस्तानी आक्रमण के फलस्वरूप योजना के अन्तिम वर्ष के लिए उपलब्ध होने वाली राशि में रुकावटें पड़ गयी थी और Aid India Club के सदस्यों ने अस्थायी रूप में सहायता को रोकने का निश्चय किया था। यह सहायता समय पर न मिलने के कारण योजना के अन्तिम वर्ष में इसका पूर्ण उपयोग होना सम्भव न हो सका। विदेशी सहायता के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण एक पृथक् अध्याय में दिया गया है।

हीनार्थ प्रबन्धन

तृतीय पंचवर्षीय योजना में हीनार्थ प्रबन्धन की राशि को अत्यन्त सीमित रखा गया। द्वितीय योजनाकाल में मूल्यों में लगभग २५% से ३०% की वृद्धि हुई। इतना अधिक मूल्यों में वृद्धि होने पर हीनार्थ प्रबन्धन की राशि तृतीय योजना में अधिक रखना अर्थ-व्यवस्था को अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हो सकता था। दूसरी ओर द्वितीय योजनाकाल में हीनार्थ प्रबन्धन की राशि १,२०० करोड़ रु० निर्धारित की गयी जबकि वास्तविक राशि ९४८ करोड़ रु० रही। इतना अधिक हीनार्थ प्रबन्धन राशि रखने का कारण द्वितीय योजना में उपलब्ध विदेशी मुद्रा का संचय था। इस संचय का उपयोग कर देश को आयात करने की सुविधाएं उपलब्ध थी जिनसे हीनार्थ प्रबन्धन के कुप्रभावों को दूर किया जा सकता था और मूल्यों को अधिक बढ़ने से रोका जा सकता था। तृतीय योजना में यह विदेशी विनिमय के संचय अत्यन्त कम रह गये क्योंकि इस संचय में से लगभग ५६८ करोड़ रु० का उपभोग द्वितीय योजनाकाल में हो चुका था। इन परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए तृतीय योजना में हीनार्थ प्रबन्धन की राशि केवल ५५० करोड़ रु० निर्धारित की गयी। हीनार्थ प्रबन्धन के सम्बन्ध में दो महत्वपूर्ण प्रश्न हमारे सम्मुख थे जिनका सन्तोषपूर्ण उत्तर प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक था। प्रथम प्रश्न यह था कि कितनी बचत राशि की हीनार्थ प्रबन्धन से योजना के अर्थ-साधनों की आवश्यकतानुसार पूर्ति हो सकती थी अथवा नहीं। हीनार्थ प्रबन्धन मुद्रा एवं साख दोनों के ही प्रसार से होता है। यदि

योजनाकाल में मुद्रा एवं साख के प्रसार पर नियन्त्रण रखा जाता है तो जनसाधारण की मौद्रिक आय पर प्रभाव पड़ता है और जनसाधारण अधिक कर भार वहन करने में असमर्थ रहता है। ऐसी परिस्थिति में अतिरिक्त कर की इतनी बड़ी राशि १,७१० करोड़ रु० की उपलब्धि अत्यन्त कठिन हो सकती थी। योजना के उत्पादनों की प्राप्तियों में कमी होने पर हीनार्थ प्रबन्धन की राशि का बढ़ाना अत्यन्त आवश्यक हो सकता था।

हीनार्थ प्रबन्धन के सम्बन्ध में दूसरा प्रश्न यह है कि इसकी निर्धारित राशि से योजनाकाल में मूल्यों की वृद्धि पर क्या प्रभाव पड़ेगा। द्वितीय योजना में ९४८ करोड़ रु० का हीनार्थ प्रबन्धन किया गया जिसमें से लगभग ५९८ करोड़ रु० के संचित विदेशी विनिमय का उपयोग किया गया और इस प्रकार द्वितीय योजनाकाल में केवल ३५० करोड़ रु० की ही मुद्रा एवं साख प्रसार का वस्तुओं की उत्पत्ति का आधार प्राप्त करने की आवश्यकता थी परन्तु ५९८ करोड़ रुपए की संचित राशि का उपयोग अधिकतर पूँजीगत वस्तुओं के आयात के लिए किया गया और देश में उपभोक्ता-वस्तुओं के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि नहीं की गयी। इसी कारण से द्वितीय योजनाकाल के मूल्यों में २५% से ३०% की वृद्धि हुई। तृतीय योजनाकाल में ५५० करोड़ रु० के हीनार्थ प्रबन्धन का आयोजन किया गया। योजनाकाल में संचित विदेशी विनिमय का कोई उपयोग नहीं किया जा सकता था क्योंकि यह संचय अब न्यूनतम स्तर पर पहुँच गया। इस प्रकार ५५० करोड़ रु० के हीनार्थ प्रबन्धन का सम्पूर्ण भार अर्थ-व्यवस्था पर पड़ना था। तृतीय योजना के विनियोजन के प्रारूप से यह स्पष्ट है कि योजना में पूँजीगत एवं उत्पादक वस्तुओं के उत्पादन को अधिक महत्त्व दिया गया परन्तु योजना के उद्देश्यों में खाद्यान्नों एवं कृषि उत्पादन की वृद्धि को विशेष महत्त्व प्राप्त था। यदि इस उद्देश्य की पूर्ति सफलतापूर्वक हो जाती तो अर्थ-व्यवस्था हीनार्थ-प्रबन्धन के इस भार को वहन करने में सफल हो सकती थी। जन-साधारण की आय का बड़ा भाग भारत में खाद्यान्नों पर व्यय होता है और खाद्यान्नों में पर्याप्त वृद्धि होने पर उपभोक्ताओं की बढ़ी हुई माँग की पूर्ति सम्भव हो सकती थी। यद्यपि तृतीय योजना में राष्ट्रीय उत्पादन की लक्षित वृद्धि तथा विनियोजन की मात्रा को दृष्टिगत करते हुए ५५० करोड़ रु० की हीनार्थ प्रबन्धन की राशि अधिक एवं हानिकारक प्रतीत नहीं होती थी परन्तु उपभोक्ता-वस्तुओं की पर्याप्त वृद्धि एवं उपलब्धि की अनुपस्थिति में हीनार्थ-प्रबन्धन मूल्यों की हानिकारक वृद्धि का कारण बन सकता था। हीनार्थ-प्रबन्धन की राशि में भी अनुमानित राशि की तुलना में अधिक रहा है। योजना के प्रथम वर्ष में हीनार्थ प्रबन्धन की राशि १८४ करोड़ रु० थी जो सन् १९६५-६६ में बढ़कर ८६७ करोड़ रु० हो गयी। योजना के अर्थ-प्रबन्धन की राशि अनुमानित राशि से इतना अधिक रहने के प्रमुख कारण विदेशी सहायता का समय पर प्राप्त न होना, पाकिस्तानी आक्रमण के फलस्वरूप सुरक्षा में वृद्धि होना,

योजना का समस्त व्यय आयोजित व्यय से अधिक होना, सन् १९६५ ६६ वर्ष मे मानसून का प्रतिकूल होना आदि थे। हीनार्थ प्रबन्धन की राशि अनुमान से अधिक रहने के कारण योजनाकाल मे मूल्य वृद्धि लगभग ३२% हुई जो अनुमानित वृद्धि से कही अधिक थी।

तृतीय योजना मे विदेशी विनिमय की आवश्यकता एव साधन

तृतीय योजना के १० ४०० करोड रु० के विनियोजन मे जो विभिन्न कार्यक्रम सम्मिलित थे उनमे लगभग २०३० करोड रु० की विदेशी आयात की आवश्यकता होने का अनुमान था। सरकारी एव निजी क्षेत्र के विभिन्न विनियोजन की मदो मे विदेशी विनिमय की आवश्यकता निम्न प्रकार अनुमानित थी—

तालिका म० ८०—तृतीय योजना के कार्यक्रमो की विदेशी विनिमय की आवश्यकताएँ[1]

(करोड रुपया मे)

मदें	समस्त विनियोजन	विदेशी विनिमय की आवश्यता
सरकारी क्षेत्र		
कृषि एव सामुदायिक विकास	६१०	३०
बडी एव मध्यम श्रेणी की सिचाई योजनाए	६५०	५०
शक्ति	१ ०१२	३२०
ग्रामीण एव लघु उद्योग	१००	२०
वृहद् एव मध्यम श्रेणी के उद्योग एव खनिज (खनिज तेल सहित)	१ ४७०	६६०
यातायात एव सचार	१ ४८६	३२०
समाज सेवाए एव अन्य	५७२	६०
उत्पादन कार्य मे रुकावट न आने के लिए कच्चा एव अर्द्ध निर्मित माल	२००	—
सरकारी क्षेत्र का योग	६ १००	१ ५२०
निजी क्षेत्र		
वृहद् एव मध्यम श्रेणी के उद्योग, खनिज एव यातायात	१,३५०	४९५
ग्रामीण एव लघु उद्योग	३२५	१५
अन्य	२ ६२५	—
निजी क्षेत्र का योग	४,३००	५१०
महायोग	१० ४००	२ ०३०

1 *Third Five Year Plan* p 110

योजना की परियोजनाओं की २,०३० करोड़ रु० की विदेशी विनिमय की आवश्यकता के अतिरिक्त अर्थ-व्यवस्था की कच्चे माल, प्रतिस्थापना-मशीनें तथा अन्य पूरक औजारों की सामान्य आवश्यकता की पूर्ति के लिए ३,६५० करोड़ रु० की आवश्यकता का अनुमान था। विदेशी विनिमय की इस आवश्यकता की पूर्ति निम्न प्रकार करने का आयोजन था—

तालिका सं० ८१—तृतीय योजना की विदेशी विनिमय की आवश्यकताओं का प्रबन्धन[1]

(करोड़ रुपयों में)

मद	द्वितीय योजनाकाल	तृतीय योजनाकाल
(अ) प्राप्तियां		
निर्यात	३,०५२	३,७००
अदृश्य व्यवहार (शुद्ध)	४२०	—
पूँजीगत व्यवहार (सरकारी ऋण एवं निजी विदेशी विनियोजन को छोड़ कर)	—१७२	—५५०
विदेशी सहायता	९२३	२,६००[2]
विदेशी विनिमय के संचय का उपभोग	६०८	—
प्राप्तियों का योग	४,८२६	५,७५०
(आ) भुगतान		
योजना की परियोजनाओं के लिए मशीनों आदि का आयात	—	१,९००
पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाने के लिए अर्द्ध-निर्मित माल आदि	४,८२६	२००
निर्वाह-सम्बन्धी आयात (Maintenance Imports)	—	३,६५०
भुगतान का योग	४,८२६	५,७५०

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि योजनाकाल की विदेशी विनिमय की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निर्यात को बढ़ाने का भरसक प्रयत्न करना अत्यन्त आवश्यक था। सन् १९६०-६१ में निर्यात की मात्रा ६४२ करोड़ रु० थी अर्थात्

1 *Third Five Year Plan* p 112

२ इस राशि में PL 480 के अन्तर्गत ६०० करोड़ रु० की विदेशी सहायता सम्मिलित नहीं है।

तृतीय योजना म निर्यात का वार्षिक औसत ७४० करोड़ रु० बनाये रखना आवश्यक था परन्तु योजनाकाल म देश के निर्यात म अनुमानानुसार वृद्धि नही हो सकी और दूसरी ओर आयात अनुमान से अधिक रहा जिससे फलस्वरूप योजना के पूर्ण काल म विदेशी विनिमय की कठिनाई महसूस की गयी। चीन एव पाकिस्तानी आक्रमण के फलस्वरूप देश की विदेशी विनिमय की आवश्यकता म अत्यधिक वृद्धि हुई और विकास-कार्यक्रमों को पर्याप्त विदेशी विनिमय उपलब्ध न हो सका।

तृतीय योजना के पाँच वर्षों म कुल निर्यात ३,७६१ करोड़ रु० का हुआ अर्थात् वार्षिक औसत ७५२ करोड़ रु० रहा जो अनुमानित राशि से अधिक था। सन् १९६५ ६६ म निर्यात ८०६ करोड़ रु० का हुआ जो सन् १९६० ६१ के निर्यात की तुलना म २६% अधिक था। दूसरी ओर तृतीय योजनाकाल म कुल आयात ६,२०४ करोड़ रु० का हुआ जो अनुमानित आयात की राशि से ९% अधिक था। सन् १९६० ६१ म देश का आयात १ १२२ करोड़ रु० था जो सन् १९६५ ६६ म बढ़कर १ ४०६ करोड़ रु० हो गया अर्थात योजनाकाल म आयात म लगभग २६% की वृद्धि हुई।

तृतीय योजना के कार्यक्रम, लक्ष्य एव प्रगति—कृषि एव सामुदायिक विकास

तृतीय योजना म सम्मिलित कृषि सिंचाई एव सामुदायिक विकास के कार्यक्रमों के लिए १ ७१८ करोड़ रु० का व्यय निर्धारित किया गया। इन कार्यक्रमो द्वारा कृषि उत्पादन की वृद्धि की दर को अगले पाँच वर्षों म दुगुना करने का लक्ष्य रखा गया। योजनाकाल म खाद्यान्नो म ३०% और अन्य फसलों म ३१% वृद्धि करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इस मद की निर्धारित समस्त राशि म से १ २८१ ०० करोड़ रु० कृषि उत्पादन के कार्यक्रमों पर व्यय होना था। इस राशि के अतिरिक्त यह भी सम्भावना की जाती थी कि कृषि-कार्यक्रमों के लिए सहकारी संस्थाओं से उपलब्ध होने वाली साख म भी पर्याप्त वृद्धि हो जायगी। अल्पकालीन ऋण द्वितीय योजना के अन्तिम वर्ष म २०० करोड़ रु० से बढ़कर तृतीय योजना के अन्त तक ५३० करोड़ रु० होने का अनुमान था। इसी प्रकार दीर्घकालीन ऋण ३४ करोड़ रु० से बढ़कर तृतीय योजना के अन्त म १५० करोड़ रु० होने का अनुमान था। कृषि उत्पादन की वृद्धि के लिए योजना म निम्नलिखित तान्त्रिक कार्यक्रम सम्मिलित किये गये—

(१) सिंचाई—तृतीय योजनाकाल म बड़ी मध्यम एव लघु श्रेणी की सिंचाई योजनाओं द्वारा २५६ लाख एकड़ भूमि (सकल) म अतिरिक्त सिंचाई सुविधाए उपलब्ध होने का अनुमान था। इस प्रकार तृतीय योजना के अन्त तक सिंचित भूमि ९०० लाख एकड़ हो जानी थी।

(२) भूमि-सुरक्षा शुष्क खेती तथा भूमि को कृषि योग्य बनाना—योजनाकाल म ११० लाख एकड़ भूमि म भूमि सुरक्षा के कार्यक्रम सचालित होने थे २२० लाख

एकड़ भूमि पर पुनः खेती की तात्कालिकताओं का आयोजन था तथा १८ लाख एकड़ भूमि को कृषि योग्य बनाया जाना था।

(३) खाद एवं रासायनिक खाद की उपलब्धि—नाइट्रोजन (N) खाद के उपयोग में पाँच गुनी वृद्धि हो जाती थी और इसका उपभोग १० लाख टन हो जाता था। फासफेटिक खाद (P_2O_5) का उपयोग ६ गुना अर्थात् ३०,००० टन से बढ़कर ४ लाख टन हो जाता था। इसी प्रकार पोटासिक (K_2O) खाद का उपयोग बढ़कर २ लाख टन हो जाने का अनुमान था। हरी खाद का उपयोग ११८ लाख एकड़ भूमि पर से बढ़कर ८१० लाख एकड़ भूमि में होने का लक्ष्य था।

(४) अच्छे बीज की प्रगति उपज एवं वितरण—तृतीय योजनाकाल में १४८० लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि में अच्छे बीज का उपयोग होने का अनुमान था। द्वितीय योजना में प्रथम विकास खण्ड में एक बीज का फार्म खोलने का आयोजन किया गया था। द्वितीय योजना के अन्त तक लगभग ४,००० बीज के फार्म की स्थापना होने का अनुमान था। तृतीय योजना के प्रारम्भ के वर्षों में ८०० बीज के अतिरिक्त फार्म स्थापित करने का आयोजन किया गया।

(५) पौधे की सुरक्षा (Plant Protection)—द्वितीय योजनाकाल में पौधों की सुरक्षा के कार्यक्रम लगभग १६० लाख एकड़ भूमि पर सचालित किये गये। तृतीय योजना में इन कार्यक्रमों को लगभग ५०० लाख एकड़ भूमि पर लागू किया जाने का लक्ष्य था।

(६) अच्छे हल, कृषि औजार एवं वैज्ञानिक कृषि विधियों का उपयोग—प्रथम एवं द्वितीय योजना में अच्छे औजारों एवं वैज्ञानिक विधियों के उपयोग के लिए कार्यवाहियाँ की गयीं, उनकी गति अत्यधिक मन्द रही। तृतीय योजना में इस ओर विशेष ध्यान दिया गया। कृषि औजारों के निर्माण के लिए आवश्यक लोहा एवं इस्पात राज्यों के कृषि विभागों द्वारा उपलब्ध कराया जाता था।

विशेषज्ञों द्वारा चुने हुए अच्छे कृषि औजारों को राज्य सरकारों का किसानों तक पहुँचाने तथा उनके उत्पादन एवं मरम्मत का प्रबन्ध करना था। द्वितीय योजनाकाल में चार अच्छे कृषि-औजारों की जाँच एवं प्रशिक्षण के केन्द्र खोले गये थे। तृतीय योजना में प्रत्येक राज्य में इस प्रकार के केन्द्र खोलने का आयोजन किया गया जिससे किसानों को अच्छे औजारों के उपयोग का प्रशिक्षण एवं सलाह दी जा सके। यह केन्द्र अच्छे कृषि औजारों का निर्माण कर सकेंगे। कृषि-कर्मशाला २५ विस्तार प्रशिक्षण केन्द्रों (Extension Training Centres) पर खोल दी गयी थीं। तृतीय योजना में अनन्य विस्तार प्रशिक्षण-केन्द्रों पर कृषि-कर्मशाला खोली जानी थी, जिनमें ग्रामीण स्तर के कार्यकर्ताओं, मकैनिक तथा किसानों को प्रशिक्षण दिया जाना था।

(७) जिला स्तर पर गहरी कृषि के कार्यक्रम—फोर्ड फाउन्डेशन की कृषि-उत्पादन टीम की सिफारिशों के अनुसार, विशेष चुने हुए जिलों में गहरी खेती की

समस्त सुविधाएँ प्रदान कर कृषि उत्पादन को अनुमानित स्तर तक बनाने का प्रयत्न किया जाना था। इन जिलों के अनुभवों का उपयोग धीरे धीरे अन्य जिलों में भी किया जाना था।

कृषिक्षेत्र के उत्पादन लक्ष्य—तृतीय योजना में कृषिक्षेत्र के उत्पादन लक्ष्य एवं प्रगति निम्न प्रकार रहीं।

आगे की तालिका से ज्ञात होता है कि तृतीय योजना में कृषि उत्पादन में लक्ष्य के अनुसार वृद्धि नहीं हुई। योजना के प्रथम चार वर्षों में कृषि कार्यक्रमों की तालिका एवं प्रशासनिक कठिनाइयों के निवारण का समुचित प्रबन्ध किया गया परन्तु जलवायु के अनुकूल न रहने के कारण उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि नहीं हो सकी। सन् १९६१ ६२ वर्ष में सितम्बर अक्टूबर में अधिक वर्षा होने के कारण खरीफ की फसलों तथा कपास के उत्पादन को क्षति पहुँची। दिसम्बर सन् १९६१ तथा जनवरी में कठोर शीत लहर के फलस्वरूप चना और दालों के उत्पादन को क्षति पहुँची। सन् १९६२ ६३ में चावल की खेती को शुष्क मौसम के कारण और गेहूँ के उत्पादन को जाड़ों में वर्षा न होने के कारण हानि पहुँची। सन् १९६३ ६४ में वर्षा कम होने के कारण कृषि उत्पादन में वृद्धि अनुमानानुसार नहीं हो सकी। सन् १९६४ ६५ में भारतीय अर्थ-व्यवस्था में सबसे अधिक कृषि उत्पादन किया गया परन्तु सन् १९६५ ६६ में मानसून की प्रतिकूलता के कारण कृषि उत्पादन में कमी हो गयी। कृषि उत्पादन के निर्देशांक में योजनाकाल में सन् १९६१ ६२ में लगभग २% की वृद्धि हुई परन्तु सन् १९६२ ६३ एवं सन् १९६३ ६४ में यह निर्देशांक मानसून की प्रतिकूलता के कारण कम हो गया। इन वर्षों को कृषि उत्पादन निर्देशांकों में सन् १९६० ६१ की तुलना में क्रमशः २% एवं १% की कमी हुई। सन् १९६४ ६५ वर्ष में कृषि उत्पादन में आश्चर्यजनक वृद्धि वर्षा के अनुकूल रहने के कारण हुई परन्तु यह वृद्धि सन् १९६५ ६६ में बनी नहीं रह सकी और इस वर्ष में कृषि उत्पादन निर्देशांक में सन् १९६० ६१ की तुलना में लगभग ७% की कमी हुई। इन परिस्थितियों के परिणामस्वरूप तृतीय योजना के कृषि उत्पादन के लक्ष्यों की पूर्ति सन् १९६४ ६५ को आधार मानने पर केवल ७५% तक हो सकी। परन्तु सन् १९६५ ६६ वर्ष को असामान्य वर्ष माना गया और इसी योजना की उपलब्धियों का मूल्यांकन सन् १९६४ ६५ के उत्पादन के आधार पर किया जाता है।

सामुदायिक विकास—द्वितीय योजना में सामुदायिक विकास कार्यक्रम ३ १०० विकास खण्डों में जिनमें लगभग ३ ७० ००० ग्राम सम्मिलित हैं सचालित किया गया। इनमें से लगभग ८८० विकास खण्ड ५ वर्ष समाप्त कर सामुदायिक विकास की दूसरी अवस्था में प्रविष्ट कर गये थे। अक्टूबर सन् १९६३ तक सामुदायिक विकास-कार्यक्रम देश के समस्त ग्रामीण क्षेत्रों पर आच्छादित हो जाने का लक्ष्य था।

तालिका सं० ८२—तृतीय योजना के उत्पादन लक्ष्यों की उपलब्धि

मद		१९६१-६२	१९६२-६३	१९६३-६४	१९६४-६५	१९६५-६६	१९६५-६६ का लक्ष्य	१९६५-६६ के लक्ष्य एवं उपलब्धि का प्रतिशत
खाद्यान्न	(लाख टन)	८१० ४	७८४ ५	८०२ ४	८८९ ९	७२० ३	१०१ ९	७० ९
गन्ना	(गुड़ लाख टन)	१०२ ५	९७ १	१०६ ०	१२३ २	११८ ०	१०२ ०	११५ ७
कपास	(लाख गाँठ)	४५ ६	५३ १	५४ ९	५७ ०	४८ ०	७० ७	६८ ३
जूट	(लाख गाँठ)	६४ ०	५४ ५	६१ ८	६० २	४५ ०	६२ ०	६७ ६
खाद्यान्नों का उत्पादन निर्देशांक	(१००=१९४९ ५०)	१४० ३	१३३ ६	१३६ ५	१५० २	१२० ९	१७१	७० ७
कृषि उत्पादन का निर्देशांक	(१००=१९४९ ५०)	१४४ ८	१३९ १	१४३ १	१५८ ५	१३२ ७	१७६	७५ ४
नाइट्रोजियस खाद	(N के हजार टन)	१४४ ०	१७८ ०	२१९ ०	२३७ ०	२३२ ०	८१२ ०	२६ २
सिंचाई सुविधाओं का उपयोग	(लाख एकड़ सकल)	९०	१०१	११०	१२१	१३५	२२८	६० ०
शक्ति	(क्षमता लाख KW)	६२ १	६९ ३	७६ ४	८५ ६	१०२	१२६ ९	८० ४
औद्योगिक उत्पादन का निर्देशांक	(कलेण्डर वर्ष १९५६=१००)	१३८ ३	१५० ५	१६२ ७	१८० ८	१८७ ७	२४२	७७ ५
विक्रय के लिए पिण्ड लोहे	(लाख टन)	१० २	११ ०	११ ६	१० ०	१२ ०	१५ ०	८० ०
इस्पात के ढेले	(लाख टन)	४३	५४	५९	६१	६५ ०	९३ ०	७० ०
मशीनों के औजार	(करोड़ रुपये)	९ ३	१२ ६	२० १	२५ ८	२२ ६	३० ०	७५ ३
मोटर गाड़ियाँ	(हजार में)	५४ ५	५३ ९	५६ ४	६७ १	७५ ६	१०० ०	७२ ६

[कृपया आगे के पृष्ठ पर देखें।

मद		१९६१ ६२	१९६२ ६३	१९६३ ६४	१९६४ ६५	१९६५ ६६	१९६५ ६६ का लक्ष्य	१९६५ ६६ के लक्ष्य एव उपलब्धि का%
शक्ति से चलने वाले पम्प	(हजार मे)	१२९	१३१ १	१५४ ५	१९१ ०	२४४	१५० ०	१६२ ६
सीमेंट	(लाख टन)	८० ३	४३ ३	९४ ३	९९ ९	१०५ ८	१३२	८० २
विकेन्द्रित क्षेत्र मे वस्त्र उत्पादन	(लाख मीटर)	२४२९०	२५०२०	२९२६०	३०६९०	३१२४०	३१८५०	९८ १
मिल का बना कपडा	(लाख मीटर)	४६६०	४५०००	४५०२०	४६७५०	४४०१०	५३०००	८३ ०
शक्कर	(लाख टन)	२७ १	२१ ५	२५ ७	३२ ६	३५ १	३५ ६	९८ ३
रेलों द्वारा माल की ढुलाई	(लाख टन)	१६०५	१७८०	१९११	१९४०	२०३०	२४८९	८१ ६
सडकों पर व्यापारिक गाडियाँ	(हजार म)	२४४	२६६	२८०	३१२	३३२	३६५	९१ ०
जहाज	(लाख GRT)	९ १	१०६	१२ ९	१४ ०	१५ ४	१० ४	६७ ५
स्कूलों म अतिरिक्त छात्र	लाख (७ से १७ वष क)	५००	५३९	५८९	६३०	६७७	६३९ ८	१०६
तान्त्रिक शिक्षा								
डिग्री कोस म प्रवेश की क्षमता	(हजार सख्या)	१५ ९	१७ १	२१ ०	२३ ८	२४ ७	१९ १	१२९ ०
डिप्लोमा कोस म प्रवेश की क्षमता	(हजार सख्या)	२७ ७	३० ८	३९ ७	४६ २	४८ ०	३७ ४	१२८ ३
अस्पतालों म शय्याए	(हजार म)	१९३	२०२	२१२	२२९	२४०	२४०	१०० ०
कोयला	(लाख टन)	५५२	६३८	६६३	६४४	६७७	९००	७५ २
कच्चा लोहा	(लाख टन)	१३०	१३५	१४८	१५२	२४५ ०	३०५	८० ३

तृतीय योजना में २९४ करोड़ रु० सामुदायिक विकास एवं २८ करोड़ रु० पंचायतों के लिए निर्धारित किया गया।

सामुदायिक विकास-कार्यक्रमों में कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि करने का आयोजन किया गया। राज्यों की योजनाएँ जिलों एवं खण्डों की योजनाओं के आधार पर बनायी गयीं। ग्रामीण क्षेत्रों के स्थानीय साधनों एवं कृषकों के प्रयासों को प्रभावशाली बनाने के लिए ग्रामीण उत्पादन योजनाएँ निम्न बातों के आधार पर निर्धारित की गयीं—

(१) सिंचाई की उपलब्ध सुविधाओं का पूर्णतम उपयोग, सामुदायिक सिंचाई के साधनों की मरम्मत आदि लाभ प्राप्त करने वाले कृषकों द्वारा किया जाना एवं उपलब्ध जल का मितव्ययता के साथ उपयोग।

(२) एक से अधिक फसल उगाने वाले क्षेत्र में वृद्धि।

(३) अच्छे बीज का ग्रामों में उत्पादन एवं वितरण।

(४) खाद की उपलब्धि।

(५) हरी एवं गड्ढे के खाद के कार्यक्रम।

(६) अच्छी कृषि उत्पादन विधियों का प्रसार।

(७) नवीन छोटी श्रेणी की सिंचाई-योजनाओं का सामुदायिक एवं व्यक्तिगत स्तर पर स्थापन एवं संचालन।

(८) अच्छे कृषि-औजारों के प्रयोग के कार्यक्रम।

(९) साग-सब्जी एवं फलों के उत्पादन में वृद्धि।

(१०) मुर्गी-पालन, मछली एवं [illegible] के उत्पादन के विकास-कार्यक्रम।

(११) पशु-पालन—अच्छे सांडों का ग्रामों में रखना।

(१२) ग्रामों में ईंधन के पेड़ों एवं चरागाहों के विकास-कार्यक्रम।

सामुदायिक विकास के साथ समस्त देश में पंचायत राज्य का संचालन करने का प्रबंध किया जाना था। पंचायतों के प्रभावशाली संचालन हेतु जिले के प्रशासन में विवेकपूर्ण परिवर्तन भी किए जाने थे।

प्रथम एवं द्वितीय योजना के अनुभवों से ज्ञात हुआ कि कृषि एवं पशु-पालन-सम्बन्धी सामुदायिक विकास के कार्यक्रमों का लाभ अधिकतर ऐसे किसानों को मिला जिनके पास अधिक भूमि थी। छोटे कृषकों एवं कृषि-मजदूरों को सामुदायिक विकास-योजनाओं के अन्तर्गत उपलब्ध सुविधाओं का लाभ बहुत ही सीमित मात्रा में मिल पाया। तृतीय योजना में खण्ड अधिकारियों का कर्तव्य रखा गया कि विभिन्न भूमि-सुधार-सम्बन्धी विधानों के कार्यान्वित करने में सहयोग दें, ग्रामीण क्षेत्रों में सहायक रोजगार के अवसर बनाएँ, ग्रामीण उद्योगों एवं दस्तकारों की उत्पादकता बढ़ायें, श्रमिक सहकारिताएँ संगठित करें तथा अपने क्षेत्र की उपलब्ध जन-शक्ति का पूर्णतम उपयोग करें। ग्रामीण [illegible] द्वारा लगभग २५ लाख व्यक्तियों को रोजगार के

अवसर प्रदान करने का आयोजन किया गया। इन वकशापो को पहले अधिक जनसख्या वाले ग्रामीण क्षेत्रो म सचालित किया जाना था। तृतीय योजना मे ९२ करोड रु० खादी अम्बर खादी एव ग्रामीण उद्योगो के विकास के लिए निर्धारित किया गया। लघु उद्योग एव इण्डस्ट्रियल एस्टेट (Industrial Estates) को ग्रामीण क्षेत्रो मे स्थापित किया जाना था। ५ ००० से अधिक जनसख्या वाले सभी ग्रामो एव नगरो म से तथा २ ००० से ५ ००० तक की जनसख्या वाले ५०% ग्रामो म बिजली पहुँचाने का आयोजन किया गया। इन सब सुविधाओ का उपयुक्त उपयोग कृषि मजदूर की आर्थिक दशा म सुधार होने की सम्भावना थी।

सिंचाई एव शक्ति

तृतीय योजना की सिंचाई परियोजनाओ का उद्देश्य उपलब्ध सुविधाओं से अधिकतम लाभ प्राप्त करना तथा इन सुविधाओ द्वारा उत्पादित हानियो, जसे अतिरिक्त पानी के एकत्रित होन (Water Logging) से भूमि बेकार होना आदि को रोकना था। योजना म इसलिए तीन प्रकार की परियोजनाओं को अधिक महत्व दिया गया—

(१) द्वितीय योजना की विभिन्न परियोजनाओ को पूरा करना तथा खेतो तक सिंचाई की नालियाँ बनाना।

(२) अतिरिक्त जल के एकत्रित होने को रोकने तथा पानी की निकासी के लिए नालियाँ बनाने की परियोजनाए।

(३) मध्यम श्रेणी की सिंचाई परियोजनाए—तृतीय योजना के सिंचाई के आयोजन ६६१ करोड रु० म से ४३६ करोड रु० द्वितीय योजना म प्रारम्भ की हुई योजनाओं को पूरा करने पर १६४ करोड रु० नवीन सिंचाई योजनाओ तथा ६१ करोड रु० बाढ नियन्त्रण पर व्यय किया जाना था। योजनाकाल म बडी एवं मध्यम सिंचाई परियोजनाओ द्वारा १२८ लाख एकड भूमि की सिंचाई के लिए अतिरिक्त सुविधाए उपलब्ध होने का अनुमान था जिसम से ११५ लाख एकड भूमि की सिंचाई की जानी थी। इसी प्रकार लघु सिंचाई योजनाओ म १२८ लाख एकड भूमि के लिए सिंचाई सुविधाए उपलब्ध होनी थी जिसम से ८५ लाख एकड भूमि पर सिंचाई की जानी थी। इस प्रकार तृतीय योजनाकाल म २०० लाख एकड भूमि की अतिरिक्त सिंचाई की जानी थी और सिंचित भूमि ७०० लाख एकड से बढकर ६०० लाख एकड होने की सम्भावना थी। तृतीय योजना म ६५ नवीन मध्यम श्रेणी की सिंचाई परियोजनाए प्रारम्भ की जानी थीं। पजाब म ब्यास नदी पर इडस वाटर सन्धि सन् १६६० के अन्तगत स्टोरेज परियोजना तथा बहुउद्देश्यीय परियोजनाओं के सिंचाई कायक्रम सम्मिलित किये गये। तृतीय योजना की सिंचाई एव शक्ति की परियोजनाओं के लिए १८,१०० तान्त्रिक व्यक्तियो (Technical Personnel) की आवश्यकता का अनुमान था।

द्वितीय योजना के अन्त म १११ ० लाख एकड (शुद्ध) अतिरिक्त भूमि के

लिए सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध हुई जबकि इन सुविधाओं का उपयोग केवल ८३० लाख एकड़ भूमि पर ही किया गया, अर्थात केवल ७५% सुविधाओं का प्रयोग किया गया। सन् १९६१-६२ में १२२० लाख एकड़ (सकल) भूमि के लिए सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध हुई जिसमें से ९०० लाख एकड़ भूमि पर इनका उपयोग किया गया। सन् १९६२-६३ और सन् १९६३-६४ में क्रमशः १३३० और १४३० लाख एकड़ भूमि के लिए सिंचाई-सुविधाएं उपलब्ध हुई हैं और सन् १९६२-६३ में १०१ लाख एकड़ और सन् १९६३-६४ में ११० लाख एकड़ भूमि पर सुविधाएं का उपयोग होने का अनुमान है। योजना के अन्त तक १५० लाख एकड़ भूमि के लिए सुविधाएं उपलब्ध हो सकीं और १३५ लाख एकड़ भूमि में इनका उपयोग हुआ। जनवरी, सन् १९६३ में संकटकालीन अवस्था के कारण यह निश्चय किया गया कि मध्यम श्रेणी की योजनाओं को प्राथमिकता दी जाय, जिससे सिंचाई-सुविधाएं शीघ्र उपलब्ध हो सकें। योजना में सम्मिलित ५६ बड़ी सिंचाई-परियोजनाओं में से १९ पर कार्य की गति को धीमा कर दिया गया।

तृतीय योजना में शक्ति के साधनों का निर्माण, उनकी प्रति किलोवाट पूंजीगत लागत, विदेशी मुद्रा की आवश्यकताओं, उत्पादित शक्ति की प्रति किलोवाट घन्टा की लागत, निर्माण में लगने वाला समय आदि के आधार पर निर्धारित किया गया। योजना में एक न्यूक्लियर शक्ति के स्टेशन का निर्माण तारापुर (बम्बई) में करने का आयोजन किया गया। इसमें दो रिएक्टर (Reactors) होंगे जिनमें से प्रत्येक १५० M W शक्ति उत्पादित करेगा। तृतीय योजना में १०३९ करोड़ रु० का आयोजन शक्ति के विकास के लिए सरकारी क्षेत्र में किया गया और ५० करोड़ रु० के विनियोजन का निजी क्षेत्र में आयोजन किया गया। इस राशि में से ६६१ करोड़ रु० जल विद्युत तथा थर्मल (Thermal) शक्ति उत्पादन की परियोजनाओं पर ५१ करोड़ रु० न्यूक्लियर शक्ति (Atomic Power) तथा ३२७ करोड़ रु० बिजली पहुँचाने एवं वितरण की योजनाओं पर व्यय होना था। योजना में एक और न्यूक्लियर शक्ति का स्टेशन (सम्भवतः राजस्थान में) स्थापित करने का आयोजन था। शक्ति की परियोजनाओं के लिए ३२० करोड़ रु० की विदेशी मुद्रा की आवश्यकता का अनुमान था।

तृतीय योजना में ग्रामीण क्षेत्रों के विद्युतीकरण पर विशेष जोर दिया गया है। १०५ करोड़ रु० का आयोजन ग्रामीण विद्युतीकरण के लिए किया गया। देश के ५,००० से अधिक जनसंख्या वाले समस्त ग्रामों एवं नगरों में बिजली पहुँचाने का लक्ष्य था। योजनाकाल में २,००० से ५ ००० तक की जनसंख्या वाले ५०% ग्रामों में बिजली पहुँचाने का अनुमान था। तृतीय योजना के अन्त तक लगभग ४३,००० नगरों एवं ग्रामों में बिजली पहुँच जाने का अनुमान था और लगभग ५,१८,१०७ ऐसे ग्रामों में जिनकी जनसंख्या २,००० से ५ ००० है बिजली पहुँचाना शेष रह जायगा।

तृतीय योजनाकाल में शक्ति उत्पन्न करने की क्षमता का ८६ लाख किलोवाट

से बढाकर १२७ लाख किलोवाट करने का लक्ष्य था परन्तु सन् १९६१ में वास्तविक शक्ति उत्पादनक्षमता ५५ ८ लाख किलोवाट हुई जिसके फलस्वरूप तृतीय योजना का लक्ष्य भी घटा कर १२५ लाख किलोवाट कर दिया गया है। सन् १९६१ ६२ म उत्पादन क्षमता ६२ १ लाख किलोवाट हो गयी और सन् १९६२ ६० तथा सन् १९६३ ६४ म क्रमश उत्पादनक्षमता ६६ ३ लाख और ७६ ४ लाख किलोवाट हो गयी। सन् १९६५ ६६ म उत्पादनक्षमता बढ़कर १०२ लाख किलोवाट हो गयी। तृतीय योजना काल म ३०५९१ कस्बा और ग्रामा का विद्युतीकरण किया गया और सन् १९६५ ६६ म ऐसे कस्बा एव ग्रामों की सख्या बढ़कर ५४८०० हो गयी। सन् १९६१ ६२ म ३,४२३ सन् १९६२ ६३ म ४ ३४७ और सन् १९६३ ६४ म ८ २६७ नगरों व ग्रामा का विद्युतीकरण किया गया। योजनाकाल म ग्रामों के विद्युतीकरण म विशेष जोर दिया गया और योजना के प्रथम तीन वर्षों म १२ ९०६ ग्रामों का विद्युतीकरण किया गया। शक्ति पर सन् १९६१-६२ सन् १९६२ ६३ तथा १९६३ ६४ म क्रमश १३६ करोड रु० १८३ करोड रु० और २२६ करोड रु० व्यय किया गया। सन् १९६४ ६५ म ३१४ करोड रु० व्यय का आयोजन किया गया।

उद्योग एव खनिज

ग्रामीण एव लघु उद्योग—तृतीय योजना म ग्रामीण एव लघु उद्योगा के विकास के लिए २६४ करोड रु० का आयोजन किया गया जबकि द्वितीय योजना म इस मद पर १८० करोड रु० व्यय हुआ। इस राशि म से १४१ करोड रु० राज्यों की परियोजनाओ पर और १२३ करोड रु० केन्द्र सरकार द्वारा सचालित परियोजनाओ एव कायक्रमो पर व्यय किया जाना था। विभिन्न उद्योगा के लिए निर्धारित राशियाँ तालिका स० ८३ के अनुसार हैं।

तालिकानुसार राशिया के अतिरिक्त इन उद्योगा के विकास हेतु सामुदायिक विकास कायक्रमो म २० करोड रु० का आयोजन किया गया। पुनर्वास (Rehabilitation) समाज कल्याण एव पिछडी जातिया के कल्याण के कायक्रमा म भी इन उद्योगो के विकास के लिए आयोजन किया गया। निजी क्षेत्र म इन उद्योगों पर २७५ करोड रु० विनियोजित होने का अनुमान था। इस प्रकार लगभग ६०० करोड रु० इन उद्योगा के विकास के लिए आयोजित किया गया था।

तृतीय योजना म ग्रामीण एव लघु उद्योगों के विकास कायक्रमा द्वारा ८० लाख व्यक्तियों को आशिक अथवा अधिक समय तक रोजगार प्राप्त होना था और ९० लाख व्यक्तिया को पूरे समय के लिए रोजगार मिलना था। खादी व उत्पादन-कायक्रमा द्वारा प्राय आशिक रोजगार हाथ करघा शक्ति से चलने वाले करघे ग्रामीण उद्योग रेशम उद्योग तथा नारियल की छाल के उद्योगा द्वारा आशिक रोजगार प्राप्त व्यक्तिया को अधिक समय तक रोजगार तथा लघु उद्योगो औद्योगिक एस्टेट एव हस्त कला उद्योगों के कायक्रमों द्वारा प्राय पूरे समय के लिए रोजगार उपलब्ध होना था।

बृहद् उद्योग—तृतीय योजना में औद्योगिक कार्यक्रमों पर विनियोजित होने वाली समस्त राशि २,९९३ करोड़ रु० थी (इस राशि में पोत उद्योगों को दी जाने वाली सहायता) हिन्दुस्तान शिपयार्ड को दिया जाने वाला निर्माण अनुदान आदि सम्मिलित नहीं थे) जिसमें से १ ८०८ करोड़ रु० सरकारी क्षेत्र में तथा १,१८५ करोड़ रु० निजी क्षेत्र में विनियोजन किया जाना था। सरकारी क्षेत्र के कार्यक्रमों के लिए ८६० करोड़ रु० तथा निजी क्षेत्र के कार्यक्रमों के लिए ४७८ करोड़ रु० की विदेशी मुद्रा की आवश्यकता का अनुमान था।

इसके अतिरिक्त निजी क्षेत्र में १५० करोड़ रु० प्रतिस्थापन (Replacement) पर व्यय होना था जिसमें ५० करोड़ रु० की विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होनी थी। सरकारी क्षेत्र में ४७८ करोड़ रु० खनिज विकास तथा १ ३३० करोड़ रु० औद्योगिक विकास पर विनियोजित होना था। इसी प्रकार निजी क्षेत्र में ६० करोड़ रु० खनिज विकास पर और १ १२५ करोड़ रु० औद्योगिक विकास पर विनियोजित होना था। विनियोजन की समस्त राशि औद्योगिक एवं खनिज विकास के लिए २ ५७० करोड़ रु० निर्धारित की गयी थी क्योंकि उस समय साधनों की अधिक उपलब्धि सम्भावित नहीं था परन्तु यह अनुमान लगाया गया कि विभिन्न औद्योगिक कार्यक्रमों को लक्ष्य के अनुसार पूरा करना सम्भव न हो सकेगा और उन्हें चौथी योजना में ले जाया जायगा। ऐसी परिस्थितियों में विभिन्न परियोजनाओं की राशि ठीक ठीक निर्धारित करना सम्भव नहीं था।

सरकारी क्षेत्र की परियोजनाएँ

तृतीय योजनाकाल में द्वितीय योजना में प्रारम्भ हुई सरकारी क्षेत्र की औद्योगिक परियोजनाओं को पूरा किया जाना था। रूरकेला भिलाई तथा दुर्गापुर के इस्पात के कारखानों को पूरा किया जाना था और इनकी उत्पादन क्षमता तृतीय योजना के अन्त तक ४० लाख टन इस्पात के ढेले तथा ७ लाख टन पिण्ड लोहे (बिक्री के लिए) हो जाने का अनुमान था। रूरकेला के खाद के कारखाने को पूरा कर उसकी उत्पादनक्षमता १ २० ००० टन नाईट्रोजन हो जानी थी रांची के भारी मशीनों के कारखाने तथा ढालने आदि (Foundry Forge Shop) के कारखाने पूरे हो जाने थे और इनकी उत्पादनक्षमता क्रमश ४५ ००० टन तैयार मशीनें तथा ६४ ००० टन ढला हुआ सामान रखी गयी। इनके अतिरिक्त जो कारखाने पूरे किए जाने थे व इस प्रकार थे—

(१) भोपाल का भारी बिजली के सामान का कारखाना।

(२) दुर्गापुर का खनिज निकालने की मशीन निर्माण का कारखाना।

(३) सनतनगर (आन्ध्र प्रदेश) ऋषीकेश (उत्तर प्रदेश) मुनार (केरल) तथा गिण्डी (मद्रास) के औषधियों के कारखाने।

(४) कार्बन (Organic) मध्यम विधियों में उपयोग होने वाले सामान का कारखाना।

(६) गुजरात में तेल शोधन का कारखाना ३० करोड़ रु० की लागत पर खोला जाना था।

(१०) भारी निर्माण (Structural) के सामान तथा प्लेट आदि के कारखाने की स्थापना वर्धा (महाराष्ट्र) में १५ करोड़ रु० की लागत पर होनी थी।

(११) गोरखपुर में खाद के कारखाने की स्थापना १८ करोड़ रु० की लागत पर की जानी थी जिसकी उत्पादनक्षमता ८० ००० टन नाइट्रोजन के बराबर होगी।

(१२) होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) में सिक्यारिटी (Security) कागज के कारखाने की स्थापना ५½ करोड़ रु० की लागत पर होनी थी और इसकी उत्पादनक्षमता १ ५०० टन सिक्योरिटी कागज होगी।

(१३) बुकारो में २०० करोड़ रु० की लागत पर इस्पात का कारखाना खोलने की योजना थी। इसकी उत्पादनक्षमता १० लाख टन इस्पात के ढेले तथा ३ ५० ००० टन लौह पिण्ड के लिए होगा।

(१४) दुर्गापुर में धातु मिश्रण तथा औजारों के इस्पात का कारखाना ५० करोड़ रु० की लागत पर स्थापित होना था जिसकी उत्पादनक्षमता ४८ ००० टन तैयार माल होगा।

(१५) कोचीन में दूसरा समुद्री जहाज बनाने का कारखाना २० करोड़ रु० की लागत पर स्थापित किया जाना था।

(१६) भारी दबाव के बायलर बनाने का कारखाना त्रिचिरापल्ली (मद्रास) में १५ से २० करोड़ रु० की लागत पर स्थापित किया जाना था।

इन नवीन कारखानों की स्थापना के अतिरिक्त राँची के भारी मशीनों तथा ढलाई के कारखाने, दुर्गापुर के खनिज मशीन के कारखाने, दुर्गापुर, भिलाई तथा रूरकेला के इस्पात के कारखाने, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स के कारखाने, रूपनारायणपुर (पश्चिमी बंगाल) के हिन्दुस्तान केबिल्स के कारखाने, भोपाल के भारी बिजली के सामान के कारखाने, नेपानगर (मध्य प्रदेश) के अखबारी कागज के कारखाने, विशाखापटनम के हिन्दुस्तान शिपयार्ड आदि का विस्तार तृतीय योजना में किया जाना था।

उपर्युक्त समस्त नवीन एवं विस्तार की औद्योगिक परियोजनाएं केन्द्रीय सरकार द्वारा संचालित होनी थीं। इनके अतिरिक्त राज्यों द्वारा भी बहुत से छोटे-छोटे कारखाने स्थापित किए जाने थे अथवा चालू कारखानों का विस्तार किया जाना था। तृतीय योजना में औद्योगिक उत्पादन में लगभग ७०% की वृद्धि होने का अनुमान था।

तृतीय योजनाकाल में औद्योगिक उत्पादन में स्थिरता के साथ वृद्धि हुई परन्तु योजना के अंतिम वर्ष सन् १९६५ ६६ में आयात प्रतिबन्धन के फलस्वरूप कच्चा माल आदि पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न होने के कारण उत्पादन वृद्धि की दर कम हो गया। सन् १९६० वर्ष को आधार मानकर औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि सन् १९६१ ६२ में ८ २% सन् १९६२ ६३ में ९ ६% सन् १९६३ ६४ में ९ २% तथा सन् १९६४ ६५

में ८.३% की वृद्धि हुई परन्तु सन् १९६५-६६ में औद्योगिक उत्पादन में ४.३% की ही वृद्धि हो सकी। इस वर्ष में वस्त्र उद्योग, खाद्य-पदार्थों के उद्योगों धातु एवं मशीन निर्माण उद्योगों के उत्पादन में कम वृद्धि हुई। सन् १९६५ वर्ष में पाकिस्तानी आक्रमण के फलस्वरूप औद्योगिक विकास में विघ्न पड़ा क्योंकि एक ओर, साधनों को युद्ध की कार्यवाहियों पर लगाना पड़ा और दूसरी ओर विदेशी सहायता की उपलब्धि भी कम हुई। मानसून के प्रतिकूल रहने के कारण उद्योगों के लिए कृषि-क्षेत्र से पर्याप्त कच्चा माल भी उपलब्ध न हो सका। तृतीय योजनाकाल में औद्योगिक उत्पादन में ४०.६% की वृद्धि हुई। सन् १९६० में औद्योगिक उत्पादन का निर्देशांक १०० था जो सन् १९६५ में बढ़कर १५०.६ हो गया।

खनिज विकास

तृतीय योजना के औद्योगिक विस्तार के कार्यक्रमों को सुचारू रूप से सचालित करने के लिए खनिज खोज एवं खनिज विकास के विस्तृत कार्यक्रम अत्यन्त आवश्यक थे। देश के खनिज साधनों की खोज के मुख्य उद्देश्य निम्न थे—

(१) उन खनिज एवं धातुओं के उपयोगी भण्डारों की खोज कर स्थान निश्चय करना जिनके लिए वर्तमान में देश पूर्णतः अथवा अंशतः विदेशों पर निर्भर रहता है।

(२) अर्थ-व्यवस्था की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कच्चा लोहा, बॉक्साइट, जिप्सम, कोयला, चूने का पत्थर आदि के अतिरिक्त भण्डारों का पता लगाना।

(३) निर्यात के लिए कच्चे लोहे के भण्डारों का पता लगाना तथा नयी खानें स्थापित करना।

तृतीय योजना में खनिज-विकास के लिए ४३८ करोड़ रु० सरकारी क्षेत्र में तथा ६० करोड़ रु० निजी क्षेत्र में व्यय होना था।

तृतीय योजना में तांबा के उत्पादन का लक्ष्य २० हजार टन, कोयले का ९७० लाख टन, कच्चे लोहे का ३२० लाख टन और खनिज तेल का ६८.६ लाख टन रखा गया। सन् १९६५-६६ वर्ष का कोयले का वास्तविक उत्पादन ७०.७ लाख टन हुआ। कच्चे लोहे का उत्पादन सन् १९६५-६६ वर्ष में २४५ लाख टन हुआ। योजना में तेल शोधक कार्यक्रमों द्वारा शोधन की क्षमता का विस्तार किया गया है और बम्बई के तटीय शोधन कारखानों की क्षमता ४१ लाख टन से बढ़ायी गयी है। खनिज-विकास के कार्यक्रमों की लागत योजना के प्रारम्भ के अनुमानों से अधिक होने के कारण खनिज विकास पर ४३८ करोड़ रु० के समित व्यय के स्थान पर ५२६ करोड़ रु० व्यय होने का अनुमान है। अशोधित खनिज तेल (Crude Oil) का उत्पादन सन् १९६५-६६ में ३५ लाख टन हो गया जबकि सन् १९६०-६१ में इसका उत्पादन केवल ४.४६ लाख टन ही था। खनिज उत्पादन का निर्देशांक (सन् १९६०=१००) सन् १९६५ में १२१.७ था अर्थात् तृतीय योजनाकाल में खनिज उत्पादन में २१.७% की वृद्धि हुई।

यातायात एव सचार

जुलाई सन् १९५९ म यातायात नीति एव समन्वय-समिति (नियोगी-समिति) की स्थापना की गयी। इस समिति को यातायात की दीर्घकालीन नीति के सम्बन्ध म सलाह देनी थी और इस नीति के अन्तगत ही सहायता के विभिन्न साधनो का अगले ५ से १० वष म महत्त्व निश्चित किया जाना था। इस समिति न फरवरी सन् १९६१ म अपनी प्रारम्भिक रिपोट योजना-आयोग को पेश की जिसम रेल एव सडक यातायात के समन्वय के सम्बन्ध म विस्तृत विवरण एव आँकडे दिय गय। समिति की अन्तिम रिपोट आने पर तृतीय योजना के निर्धारित यातायात के कायक्रम पर पुन विचार किया जाना था।

तृतीय योजनाकाल म यातायात एव सचार शीषक म सम्मिलित विभिन्न मदों पर व्यय निम्न प्रकार हुआ—

तालिका स० ८४—तृतीय योजना म यातायात एव सचार की विभिन्न मदो पर होन वाला वास्तविक व्यय

क्रम सख्या	मद	व्यय (करोड रुपयों म)
(१)	रलें	१ ३२५
(२)	सडकें	४४०
(३)	*सडक यातायात*	२७
(४)	बन्दरगाह	९३
(५)	जहाजरानी (Shipping)	४०
(६)	आन्तरिक जल यातायात	४
(७)	विद्युत गृह (Light House)	४
(८)	फरक्का बरज	२
(९)	नागरिक हवाई यातायात	४९
(१०)	भ्रमण (Tourism)	५
(११)	सचार	११७
(१२)	*आकाशवाणी प्रसारण*	८
	योग	२ ११२

रेल यातायात—यातायात एव सचार के विकास व्यय की राशि म से लगभग ६०% भाग रेल-यातायात के विकास एव विस्तार पर व्यय किया गया। रेल मार्गों की लम्बाई सन् १९६० ६१ म ५६ २४७ किलोमीटर था जो सन् १९६५ ६६ म बढ़कर ५८३९९ किलोमीटर होगयी अर्थात् तृतीय योजनाकाल म २ १५२ किलोमीटर नए रेलवे मार्गों का निर्माण योजना म किया गया। योजना म रेलवाहन यातायात म लगभग ५९% की वृद्धि की सम्भावना थी परन्तु यह वृद्धि केवल ३१% ही हो सकी। सन् १९६० ६१ म रेलवाहन-यातायात १ ५६० लाख टन था जो सन् १९६५ ६६ म बढ़कर २०३० लाख टन हो गया। यात्री-यातायात म योजनाकाल म १५% का

वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया था जबकि वास्तविक वृद्धि १३% हुई। सन् १९६०-६१ में रेलयात्री यातायात १५,९४० लाख यात्री था जो सन् १९६५-६६ में बढ़कर २०,८२० लाख यात्री हो गया।

सड़क-यातायात—तृतीय योजना में सड़क यातायात के कार्यक्रमों में सड़क-यातायात की २० वर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य को दृष्टिगत रखा गया, अर्थात् अविकसित एवं कृषिक्षेत्र का कोई ग्राम पक्की सड़क से ४ मील से दूर नहीं रहे तथा किसी भी अन्य प्रकार की सड़क से १½ मील से अधिक दूर न रहे। तृतीय योजना में सड़क-विकास-कार्यक्रमों की लागत ३२४ करोड़ रु० थी जिसमें से २४४ करोड़ रु० राज्यों के कार्यक्रमों तथा ८० करोड़ रु० केन्द्रीय सरकार के कार्यक्रमों की लागत अनुमानित थी। राज्य-सरकारों के नवीन सड़कों के विकास-कार्यक्रम तीन विचारधाराओं पर निर्धारित किए जाने थे—

(१) पहुँच के बाहर (Inaccessible) क्षेत्रों में सड़कों का आयोजन करना,

(२) विभिन्न क्षेत्रों की परियोजनाओं जैसे सिंचाई, शक्ति तथा उद्योग की परियोजनाओं की पूर्ति करने के लिए सड़कें निर्माण करना

(३) राज्यों के पुनर्गठन के कारण नवीन सड़कों का आयोजन करना।

तृतीय योजनाकाल में राज्यों द्वारा बनायी जाने वाली सड़कों का ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगाया गया, फिर भी, यह सम्भावना की गयी कि इस काल में ४०,२०० किलोमीटर लम्बी पक्की सड़कें (Surfaced Roads) बन सकेंगी। केन्द्रीय सड़क-विकास के कार्यक्रमों में वर्तमान राष्ट्रीय मार्गों के सुधारने के लिए विशेष आयोजन किया गया। सीमित साधनों के कारण केवल एक नवीन सड़क उत्तरी सलमारा से ब्रह्मपुत्र ब्रिज (Brahamputra Bridge) तक १०० मील लम्बी बनायी जानी थी। सन् १९६५-६६ तक व्यापारिक गाड़ियों की संख्या २२५,००० (सन् १९६०-६१) से बढ़कर ३,६५,००० हो जानी थी अर्थात ६२% की वृद्धि होनी थी परन्तु सन् १९६५-६६ में व्यापारिक गाड़ियों की वास्तविक संख्या २,३३,००० रही। पक्की सड़कों की लम्बाई २,३६,००० किलोमीटर सन् १९६०-६१में से बढ़कर २,८३,००० किलोमीटर सन् १९६५-६६ में हो गयी अर्थात् योजनाकाल में ५१,००० किलोमीटर लम्बी नवीन पक्की सड़कों का निर्माण किया गया जो लक्ष्य से कहीं अधिक थी। सड़कों द्वारा ढोये जाने वाले माल की मात्रा सन् १९६०-६१ में १३० हजार लाख टन किलोमीटर से बढ़कर सन् १९६५-६६ में ३४० हजार लाख टन किलोमीटर हो गयी अर्थात् माल यातायात की सुविधाएँ योजनाकाल में दुगुनी हो गयी। इसी प्रकार यात्री यातायात सन् १९६०-६१ में ५७० हजार लाख यात्री किलोमीटर से बढ़कर सन् १९६५-६६ में ८२० हजार लाख यात्री किलोमीटर हो गया।

जहाजी यातायात—द्वितीय योजना के अन्त में ८.१ लाख G. R. T. की भारत की जहाजी यातायात की क्षमता थी। इस समय तक भारतीय जहाज दो ब

समुद्री व्यापार का ८% से ९% भाग लाते एव ले जाते थे। तृतीय याजना म ५५ करोड रु० का आयोजन जहाजो के लिए किया गया। इसके अतिरिक्त ४ करोड रु० जहाज विकास फण्ड (Shipping Development Fund) से प्राप्त होने का अनुमान था। जहाजी कम्पनिया द्वारा अपने साधनो से ७ करोड रु० जुटाना था। योजना काल म ५७ जहाज जिनकी क्षमता ३७५ ००० G R T होनी थी खरीदे जाने थे। इसम से १,९४००० G R T द्वारा पुराने जहाजो का प्रतिस्थापन किया जाना था तथा शेष से १ ८१ ००० G R T से देश की वतमान टनेज (Tonnage) मे वृद्धि होनी थी। इससे वतमान टनेज बढ़कर ११ लाख G R T हो जाने का अनुमान था। राष्ट्रीय जहाजी बोर्ड ने सन् १९६५ ६६ तक देश के जहाजी यातायात का लक्ष्य १४ २ लाख G R T करने की सिफारिश की थी परन्तु वास्तविक उपलब्धि १५ ४ लाख G R T रही।

हवाई यातायात—तृतीय योजना म २५ ५ करोड रु० का आयोजन हवाई यातायात के लिए किया गया। इसके अतिरिक्त १४ ५ करोड रु० एयर इण्डिया इण्टरनेशनल द्वारा नवीन जहाजों की खरीद आदि तथा १५ करोड रु० का आयोजन इण्डियन एयरलाइन्स कारपोरेशन द्वारा जहाजो की खरीद प्रतिस्थापन तथा कर्मचारियो के लिए क्वाटस बनाने के लिए किया गया।

सचार—डाक व तार विभाग के कायक्रमो की लागत तृतीय पचवर्षीय योजना मे ७७ ६ करोड रु० थी। इस राशि म से ३५ करोड रु० टेलीफोन-सेवाओ की परियोजनाओ पर, ६ करोड रु० स्थानीय टेलीफोन तथा ८ ६ करोड रु० ट्रक टेलीफोन पर व्यय किया जाना था। इसके अतिरिक्त ८ ६ करोड रु० ट्रक केबिल पर और २ करोड रु० तार-सेवाओ पर व्यय किया जाना था। तृतीय योजना म सन् १९६० ६१ की टेलीफोन की सख्या ४ ६३ ००० म २ ०० ००० टेलीफोन की वृद्धि करने तथा ५०,००० लाइनों को स्वत सचालित करने का लक्ष्य रखा गया। इसके अतिरिक्त १० स्वत सचालित नवीन ट्रक एक्सचेन्ज (Exchanges) बहुत से मनुष्य द्वारा चलाये जाने वाले एक्सचेन्ज तथा २ ००० जनता द्वारा टेलीफोन करने के दफ्तर खोलने का आयोजन था।

योजनाकाल म ४ १६ ००० नवीन टेलीफोन लगाये गये।

तृतीय योजना म सन् १९६० ६१ के ६ ६०० तार के दफ्तरो म २ ००० तार के दफ्तरो की वृद्धि करने का आयोजन किया गया। इसी प्रकार सन् १९६० ६१ की डाकखानों की सख्या ७७ ००० को बढाकर ९४ ००० करने का लक्ष्य था। तृतीय योजना म १ ४ करोड रु० का आयोजन टेलीप्रिंटर बनाने का कारखाना स्थापित करने के लिए निर्धारित किया गया। इटली के सहयोग से हिन्दुस्तान टेलीप्रिन्टस लिमिटेड की स्थापना दिसम्बर सन् १९६० म की गयी जिसकी अधिकृत पूजी ३ करोड रु० है।

तृतीय योजनाकाल मे टेलीफोन तार के दफ्तरों, तथा डाकखानों की संख्या में क्रमश ३,६५,००० , १६००, २०, ००० की वृद्धि हुई।

तृतीय योजना मे ११ करोड रु० का आयोजन आकाशवाणी प्रसारण के लिए किया गया है। आकाशवाणी प्रसारण के विस्तार की परियोजना द्वितीय योजना में बनायी गयी थी, जो तृतीय योजनाकाल म पूरी होनी थी। इस परियोजना के अन्तगत ३४ मीडियम वेव (Medium Wave) तथा २ शार्ट वेव (Short Wave) के ट्रान्समीटर्स स्थापित किए जाने थे। इस योजना की पूर्ति के फलस्वरूप, मीडियम वेव की आन्तरिक सेवाओं द्वारा देश के समस्त क्षेत्र का ६१% तथा जनसंख्या का ७४% आच्छादित हो जाने का अनुमान था।

तृतीय योजनाकाल में आकाशवाणी-प्रसारण स्टेशनों की संख्या सन् १९६०-६१ में ३० से बढ़कर ४२ हो गयी। लाइसेन्स प्राप्त रेडियो की संख्या २१,४३,००० से बढ़कर ५३,६१,००० हो गयी।

शिक्षा

तृतीय योजनाकाल में स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या ४४६० लाख (सन् १९६०,६१) से बढ़कर ६३६५ लाख अर्थात् ६ से १७ वर्ष के बच्चों की समस्त संख्या का ५०.१% स्कूल जाने लगने का लक्ष्य था। ६ से ११ वर्ष के बच्चों में ७६.४%, ११ से १४ वर्ष के बच्चों में २८.६, १४ से १७ वर्ष के बच्चों में १५.६% स्कूल जाने लगने का लक्ष्य था। योजना में प्राइमरी शिक्षा के स्कूलों में ७३,०००, मिडिल स्कूलों में १८,१०० तथा हाई स्कूलों में ५,२०० की वृद्धि होने का लक्ष्य था।

विश्वविद्यालीय शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या ९,००,००० (सन् १९६० ६१ मे) से बढ़कर तृतीय योजना मे १३,००,००० हो जाने का लक्ष्य था। सन् १९६०-६१ की विश्वविद्यालयों की संख्या ४९ से तृतीय योजना म ५८ हो जाने का अनुमान था। इसी प्रकार कॉलेजों की संख्या १,०५० से बढ़कर १,४०० हो जानी थी। तृतीय योजना में सामान्य शिक्षा के लिए ४१८ करोड रु० का आयोजन था जिसमें से १० करोड सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए सम्मिलित था। इस राशि में से २०९ करोड रु० प्राथमिक शिक्षा, ८८ करोड रु० माध्यमिक शिक्षा, ८२ करोड रु० विश्वविद्यालीय शिक्षा, ६ करोड रु० सामाजिक शिक्षा १२ करोड रु० शारीरिक शिक्षा (Physical Education) तथा युवक-कल्याण तथा ११ करोड रु० अन्य कार्यक्रमों के लिए आयोजित था।

तृतीय योजना मे १४२ करोड रु० तान्त्रिक शिक्षा के लिए निर्धारित किया गया। योजनाकाल में डिग्री तथा डिप्लोमा कोर्स में प्रवेश पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या क्रमश १३,८६० (सन् १९६०-६१) से बढ़कर १९,१४० तथा २५,८७० (सन् १९६० ६१) से बढ़कर ३७,३६० हो जायगी। तृतीय योजना में १७ नवीन इन्जीनियरिंग कॉलेज, जिनमें ७ क्षेत्रीय कॉलेज सम्मिलित थे, स्थापित करने का आयोजन

किया गया। इसके अतिरिक्त ६७ पोलीटेक्नीक स्थापित किए जाने का आयोजन किया गया जिनमें से प्रत्येक में १८० विद्यार्थियों के प्रशिक्षण का प्रबंध होना था।

तृतीय योजना के अंतिम वर्ष में ६ १७ वर्ष के स्कूल जाने वाले विद्यार्थियों की संख्या ६७५ लाख हो गयी। ६ से ११ वर्ष के आयु वर्ग के कुल बच्चों के ७८ ५% (सन् १९६० ६१ में ६२ ४%) ११ से १४ वर्ष के आयु वर्ग में ३२ २% (सन् १९६० ६१ में २२ ५%) तथा १४ से १७ वर्ष के आयु वर्ग में १७ ८% (सन् १९६० ६१ में १० ६%) सन् १९६५ ६६ में स्कूल जाने लगे। विश्वविद्यालयों की संख्या बढ़कर ६२ और महाविद्यालयों की संख्या १ १२२ हो गयी। तांत्रिक प्रशिक्षण के क्षेत्र में डिग्री स्तर पर पास होने वाले विद्यार्थियों की संख्या ५ ७०३ से बढ़कर १० २८२ और डिप्लोमा स्तर पर पास होने वाले विद्यार्थियों की संख्या ७ ९६६ से बढ़कर १७ ९९९ हो गयी।

स्वास्थ्य—तृतीय योजना में स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रमों का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सा की सुविधाओं को बढ़ाना था। इसके अतिरिक्त अधिकतर ग्रामों में अच्छे पीने के पानी का प्रबंध करने का आयोजन किया गया था। मलेरिया को दूर करने का कार्यक्रम तृतीय योजना में पूर्ण हो जाने का अनुमान था और चेचक हैजा, क्षय रोग, कुष्ठ आदि रोगों को दूर करने के लिए प्रयास किए जाने थे। नगरों में गन्दे पानी को बहा कर ले जाने के कार्यक्रम बड़े पैमाने पर संचालित किए जाने थे। तृतीय योजना में ३४२ करोड रु० का आयोजन स्वास्थ्य कार्यक्रमों के लिए किया गया। इसमें से १०५ ३ करोड रु० ग्रामों एवं नगरों में जल की व्यवस्था एवं सिंचाई के लिए, ६१ ७ करोड रु० प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र अस्पताल तथा दवाखाना के लिए ७० ५ करोड रु० छूत के रोगों के नियन्त्रण हेतु ५६ ३ करोड रु० मेडीकल शिक्षा एवं प्रशिक्षण के लिए ६ ८ करोड रु० औषधि की दवा होम्यापैथिक तथा प्राकृतिक चिकित्सा के लिए ११ २ करोड रु० अन्य परियोजनाओं के लिए तथा २७ ० करोड रु० परिवार नियोजन के लिए आयोजित किया गया।

तृतीय योजना में अस्पताल एवं दवाखानों की संख्या १२ ६०० (सन् १९६० ६१) से बढ़कर १२ ६०० अस्पताल के पलगों की संख्या १ ८५ ६०० (सन् १९६० ६१) से बढ़कर २,४० १०० प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या २ ८०० से बढ़कर ५ ०००, मेडीकल कॉलेजों की संख्या ५७ से बढ़कर ७५ तथा मेडीकल कालेज में प्रवेश पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या ५ ८०० से ८ ००० हो जाने का लक्ष्य था। इसी प्रकार प्रसूति एवं शिशु स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या ४५०० से बढ़कर १० ००० तक होने का लक्ष्य था।

तृतीय योजनाकाल के अन्तिम वर्ष सन् १९६५ ६६ में अस्पतालों एवं चिकित्सालयों की संख्या १४ ६ हजार, अस्पतालों में शय्याओं की संख्या २ ४० ००० प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या ४ ६२१, परिवार नियोजन केन्द्रों की संख्या ११ ४७४

हो गयी। सन् १९६५-६६ में मडीकल कॉलिजों में प्रवेश पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या १०,५२० हो गयी। स्वास्थ्य के क्षेत्र में इस प्रकार अधिकतर लक्ष्यों की पूर्ति हो सकी और सम्भावना से अधिक प्रगति हुई।

सन्तुलित क्षेत्रीय विकास

देश के विभिन्न क्षेत्रों में सन्तुलित विकास करने हेतु आर्थिक विकास के लाभ कम विकसित क्षेत्रों को पहुँचाना तथा उद्योगों का विस्तृत फैलाव करना भारत की नियोजित अर्थ-व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य है। अर्थ-व्यवस्था के विस्तार एवं तीव्र विकास द्वारा राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय विकास में उचित सन्तुलन उत्पन्न करना सम्भव होता है परन्तु विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में साधनों के सीमित होने के कारण आर्थिक विकास के कार्यक्रमों को ऐसे केन्द्रों पर स्थापित किया जाता है जहाँ विनियोजन के अनुकूल फल प्राप्त होते हैं। जैसे-जैसे विकास की गति बढ़ती जाती है अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में विनियोजन होने लगता है और विकास के लाभ विस्तृत क्षेत्रों को प्राप्त होने लगते हैं। तृतीय योजना में विकास की तीव्र गति के साथ-साथ देश के विभिन्न भागों को विस्तृत विकास के अवसर भी उपलब्ध कराने का आयोजन था। राज्यों के कार्यक्रमों के विस्तृत उद्देश्य कृषि उत्पादन में वृद्धि करना, ग्रामीण क्षेत्रों में आय एवं रोजगार में वृद्धि करना, प्रारम्भिक शिक्षा, जल की पूर्ति एवं सफाई का प्रबन्ध करना, स्वास्थ्य-सेवाओं में वृद्धि करना आदि थे। इन कार्यक्रमों से कम विकसित क्षेत्रों में जीवन-स्तर में वृद्धि होनी थी। इस प्रकार राज्यों की योजनाओं में उत्पादन एवं रोजगार में वृद्धि तथा निर्बल-वर्गों के कल्याण का आयोजन किया गया। राज्यों की योजनाओं के व्यय का प्रकार एवं कार्यक्रम इस आधार पर निर्धारित किए गए कि विभिन्न राज्यों के विकास की विषमता में कमी की जा सके। कृषि के विकास का विस्तार, सिंचाई का विस्तार, ग्रामीण एवं लघु उद्योगों का विकास, शक्ति का विस्तार, सड़क एवं सड़क-यातायात का विकास, ६ से ११ वर्ष के बच्चों की सर्वव्यापी शिक्षा, माध्यमिक, तान्त्रिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के अवसरों में वृद्धि, रहन-सहन की दशाओं में सुधार एवं जल-सप्लाई पिछड़ी एवं अनुसूचित जातियों के कल्याण कार्यक्रम आदि के द्वारा देश भर में तीव्र विकास होने के साथ कम-विकसित क्षेत्रों का विकास भी होगा। तृतीय योजना में सम्मिलित आधारभूत उद्योगों को तान्त्रिक एवं आर्थिक विचारधाराओं के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित किया जाना था। निर्यात योग्य सामान बनाने वाले उद्योगों की नवीन इकाइयाँ ऐसे स्थानों पर स्थापित की जानी थीं जहाँ से विदेशी बाजारों में प्रतिस्पर्धा करना सम्भव हो सके। इनके अतिरिक्त अन्य समस्त औद्योगिक इकाइयों के स्थान विभिन्न क्षेत्रों की औद्योगिक विकास की आवश्यकताओं को दृष्टिगत करके निर्धारित किए गये। साथ इस बात का प्रयत्न किया जाना था कि उन क्षेत्रों में, जहाँ उद्योगों का केन्द्रीयकरण है नवीन उद्योगों का केन्द्रीयकरण न किया जाय यद्यपि इन क्षेत्रों के वर्तमान उद्योगों के

विस्तार को न राकन का आयोजन था। निजी क्षेत्र के उद्योगों की स्थापना के सम्बन्ध म लाइसेन्स कम विकसित क्षेत्रों की आवश्यकताओं को दृष्टिगत करके जारी किए जाने थे। एसे क्षेत्र म जिनम शक्ति जल सप्लाई यातायात आदि पर्याप्त मात्रा म उपलब्ध नहीं थे तृतीय योजना म इन सुविधाओं का प्रबन्ध किया जाना था। पिछड़े हुए क्षेत्रों म औद्योगिक विकास क्षेत्र स्थापित करने का सुझाव तृतीय योजना म सम्मिलित किया गया। पिछड़े हुए क्षेत्रों म चुने हुए भागों म शक्ति जल यातायात एवं संचार का प्रबन्ध किया जाना था और कारखाने बनाने के स्थानों का विकास कर व्यवसायियों को बेचे अथवा पट्टे पर दिये जाने थे।

बड़ी बड़ी परियोजनाओं जैसे नवीन सिंचाई योजनाओं स्थापना के कारखाने तथा बड़ी-बड़ी औद्योगिक इकाइयों की स्थापना से सम्बन्धित क्षेत्र के चतुर्मुखी विकास म सहायता मिलती है। इसी कारण सरकारी क्षेत्र के बड़े बड़े कारखानों की स्थापना के स्थान के निर्णय विभिन्न क्षेत्रों के विकास की आवश्यकताओं को दृष्टिगत कर किए जाने थे। शक्ति के साधनों एवं ग्रामीण क्षेत्रों के विद्युतीकरण से भी क्षत्रीय विकास म सहायता मिलती थी। इसी प्रकार यातायात एवं संचार के साधनों म वृद्धि होने से पिछड़े हुए क्षेत्र विकास कार्यक्रम म सक्रिय भाग ले सकते थे। शिक्षा एवं प्रशिक्षण के विस्तृत प्रबन्ध हो जाने से देश के विभिन्न पिछड़े क्षेत्रों का शीघ्र विकास सम्भव हो सकता था। प्रशिक्षित श्रमिकों म अधिक गतिशीलता होने के कारण इन्हे अधिक घन आबाद क्षेत्रों से हटा कर दूसरे स्थानों म रोजगार दिलाने से भी क्षेत्रीय सन्तुलित विकास सम्भव हो सकता था।

विभिन्न क्षेत्रों के विकास की गति का ठीक अनुमान लगाना कठिन होता है। विभिन्न राज्यों की आय एवं विभिन्न क्षेत्रों की आय का अनुमान लगा कर इनके विकास का तुलनात्मक अध्ययन सम्भव होता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रों की समस्याओं का अध्ययन कर जाँच करना भी आवश्यक होता है। केन्द्रीय सरकार की विभिन्न संस्थाओं द्वारा देश के विभिन्न क्षेत्रों की आर्थिक एवं तान्त्रिक जाँच का प्रबन्ध किया गया।

आगे की तालिका तालिका से ज्ञात होता है कि तृतीय योजनाकाल म राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय म वृद्धि की गति म वर्ष प्रति वर्ष परिवर्तन होते रहे। सन १९६४ ६५ वर्ष म योजना की सबसे *अधिक राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय* (सन् १९६० ६१ के मूल्यों पर) रहने के पश्चात योजना के अंतिम वर्ष म यह वृद्धि जारी नहीं रखी जा सकी। सन् १९६४ ६५ म आकस्मिक अनुकूल परिस्थितियों के अनुसार अधिक उत्पादन हुआ और १९६५ ६६ की आकस्मिक प्रतिकूल परिस्थितियों (पाकिस्तानी आक्रमण एवं प्रतिकूल मानसून) के कारण राष्ट्रीय उत्पादन म गिरावट हुई। सन १९६० ६१ के मूल्यों के आधार वर्ष सन् १९६१ ६२ म राष्ट्रीय आय म १ % की वृद्धि हुई, सन १९६२ ६३ वर्ष म सन् १९६१ ६२ की तुलना म राष्ट्रीय आय म लगभग % की वृद्धि हुई।

उपलब्ध नही है। योजनाकाल मे राष्ट्रीय एव प्रति व्यक्ति आय मे अनुमान से बहुत कम वृद्धि हो सकी है। योजना मे कुल विनियोजन ११,३७० करोड रु० होने का अनुमान है। यदि सन १९६४ ६५ वर्ष को भी आधार मान लें क्योकि इस वर्ष मे असामान्य परिस्थितियाँ नही थी तो योजनाकाल मे अतिरिक्त राष्ट्रीय उत्पादन ७ २७८ करोड रु० (सन १९६१ ६२ मे ७५५ करोड रु०, सन् १९६२ ६३ मे ८२८ करोड रु०, सन १९६३ ६४ मे २ २२८ करोड रु०, सन १९६४ ६५ में २ ६६१ रु० तथा सन १९६५ ६६ मे ५०६ करोड रु०—वर्तमान मूल्यो के आधार पर) उत्पादित हुई। इस प्रकार योजनाकाल मे पूजी उत्पाद अनुपात १ ६३ रहा जबकि प्रथम एव द्वितीय योजनाओं मे यह अनुपात १ १ ३ तथा १ ६ था। इन आँकडो से यह ज्ञान होता है कि विकास विनियोजन की उत्पादकता मे तृतीय योजना मे कोई वृद्धि नही हुई है।

(२) कृषि-उत्पादन मे अनुमानानुसार वृद्धि न होना—योजनाकाल मे कृषि उत्पादन मे सन् १९६४ ६५ मे सन् १९६० ६१ की तुलना मे ११ ५% अधिक वृद्धि थी परन्तु सन् १९६५ ६६ का कृषि उत्पादन सन् १९६० ६१ के उत्पादन से ७% कम था। योजना मे कृषि उत्पादन मे २४% की वृद्धि का लक्ष्य था जिसकी पूर्ति सम्भव नही हो सका। खाद्यान्नो के उत्पादन की स्थिति भी इसी प्रकार रही और सन् १९६५ ६६ का खाद्यान्नो का उत्पादन सन् १९६० ६१ की तुलना मे १४% कम रहा। सन् १९६० ६१ मे कृषिक्षेत्र द्वारा ६ ५७१ करोड रु० की आय उपार्जन की गयी थी जो राष्ट्रीय उत्पादन का ४६ ४% था। सन् १९६४ ६५ एव सन १९६५ ६६ मे कृषिक्षेत्र की आय क्रमश ७ २२६ करोड रु० एव ६ १०८ करोड रु० थी जो राष्ट्रीय आय की क्रमश ४५ ४% तथा ४० ७% थी। इस प्रकार कृषिक्षेत्र का राष्ट्रीय आय मे अश कम होता जा रहा है जिससे यह परिणाम निकाल सकते हैं कि कृषिक्षेत्र का विकास अन्य क्षेत्रो के समान नही हो पाया है।

विकास की गति को तीव्र करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि कृषि क्षेत्र के समस्त दोषो को दूर करने के लिए ठोस प्रभावशाली कार्यवाहियाँ की जाय। कृषि उत्पादन मे अनुमानानुसार वृद्धि न होने के बहुत से कारण हैं जैसे मानसून की प्रतिकूलता अच्छे बीज एव खाद का उपयोग न होना वनो के काटे जाने के कारण भूमि कटाव होना तथा हरी खाद की कमी कृषकों द्वारा अनार्थिक इकाइयो पर उत्पादन करना नीति एव कार्यक्रम निर्धारण करने वालो को कृषि समस्याओ की पूर्ण जानकारी न होना नीति निर्धारण करने तथा उसके कार्यान्वित करने मे अधिक समय का अन्तर नीतियो को गहराई के साथ कार्यान्वित नही करना उचित मूल्य प्राप्त होने के आश्वासन की कमी, अकुशल एव अपव्ययपूर्ण उत्पादन विधियो का उपयोग आदि। कृषिक्षेत्र के इन सभी दोषो का उन्मूलन करने हेतु एक ओर कृषक के ज्ञान विस्तार करने की प्रवृत्ति एव ग्रामीण जीवन स्तर मे सुधार करने की आवश्यकता है तो दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्र मे शिक्षा का प्रसार किया जाना चाहिए। शिक्षा के गुणो एवं तत्वो का अधिक

लगभग ३६ ३% की वृद्धि हुई है। दिसम्बर सन १९६२ के बाद से मूल्यों म अधिक वृद्धि हुई और केन्द्रीय एव राज्य सरकारो को मूल्या म वृद्धि क कारण कमचारियो के मँहगाई भत्त म वृद्धि करने के लिए विवश होना पडा। इस प्रकार योजनाकाल म मूल्यो की वृद्धि पर प्रभावशाली नियन्त्रण रखना सम्भव नही हो सका है।

(६) **निधनता की व्यापकता**—राष्ट्रीय सम्पिल सर्वे फरवरी, सन १९६३ और जनवरी सन १९६४ के अनुसार ग्रामीण एव नागरिक क्षेत्रो म प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय निम्न प्रकार था—

तालिका स० ८६—प्रति व्यक्ति आसत उपभाग व्यय (राष्ट्रीय सैम्पिल सर्वे के १८ वें चक्र के अनुसार फरवरी सन् १९६३ स जनवरी सन् १९६४)

क्रम सख्या	मद	प्रति व्यक्ति उपभोग-व्यय ३० दिन म (रुपये म)		
		ग्रामीण क्षेत्र	नागरिक क्षेत्र	बडे नगर। (बम्बई कलकत्ता दिल्ली एव मद्रास) म
(१)	खाद्य पदार्थ	१५ ६७	१९ ६५	२८ ५२
(२)	वस्त्र	१ ८२	२ ०८	२ ५८
(३)	ईधन एव प्रकाश	१ ४८	२ ०८	३ १०
(४)	किराया	० ०५	१ ३६	४ ०४
(५)	कर	० ०४	० १९	० ३०
(६)	अन्य गैर खाद्य पदार्थ मदें	३ २५	७ ६०	१३ ६९
	कुल उपभोग व्यय	२२ ३१	३२ ९६	५२ ०३

इस तालिका से ज्ञात होता है कि ग्रामीण क्षेत्रो म रहने वाली जनसख्या जो देश की जनसख्या की ७०% है केवल ७२ पसे प्रति दिन प्रति व्यक्ति उपभोग करती है। नागरिक क्षेत्र म भी प्रति दिन प्रति व्यक्ति उपयोग एक रु० से कुछ अधिक है। यद्यपि प्रति व्यक्ति *उपभोग व्यय म तृतीय योजना म मौद्रिक मान क आधार पर कुछ* सुधार हुआ है परन्तु अब भी उपभोग व्यय उचित निर्वाह क लिए पर्याप्त नही है। राष्ट्रीय सम्पिल सर्वे के १७वें चक्र क अनुसार ग्रामीण क्षेत्र म प्रति व्यक्ति प्रति दिन उपभोग व्यय ५० पसे था जो अब बढ़कर ७२ पसे हो *गया है परन्तु इस काल म (सन्* १९६१ ६२ से सन १९६३ ६४ क मध्य) थोक मूल्या म लगभग ८% की वृद्धि हुई है। इस प्रकार वास्तविक उपभोग-व्यय केवल ६८ पसे प्रति दिन ही आता है। इन तथ्यो से स्पष्ट है कि निर्धनता *की व्यापकता म तृतीय योजना म भी कोई विशेष* परिवतन नही हुआ है।

(७) **रोजगार के अवसरों मे कम वृद्धि**—तृतीय योजना म १७० लाख जनो की श्रमिक शक्ति म वृद्धि हुई जबकि द्वितीय योजना से ७० लाख बेरोजगार व्यक्ति

तृतीय योजना का आय थे। तृतीय योजना म १४५ लाख अतिरिक्त रोजगार के अवसर उत्पन्न होने का अनुमान है। इस प्रकार तृतीय योजना के अन्त म लगभग एक करोड व्यक्ति बेरोजगार थे। इस प्रकार तृतीय योजना के इतन बड विकास-विनियोजन-कार्यक्रम के होते हुए बेरोजगारी का समस्या और भी गम्भीर हो गयी।

तृतीय योजना की उपर्युक्त असफलताओं का हमे पथ प्रदर्शक के रूप में उपयोग करना चाहिए और चौथी योजना म कृषि एव ग्रामीण विकास को अधिक महत्व प्रदान किया जाना चाहिए। इसके साथ ही नवीन विनियोजन की उत्पादकता एव उसके रोजगार के अवसरों म वृद्धि को दृष्टिगत करते हुए लक्ष्यों एव कार्यक्रमों को निर्धारित करना चाहिए।

चतुथ योजना का स्थगन
[Postponement of Fourth Plan]

[चतुथ याजना क स्थगन का निश्चय स्थगन के कारण—प्रतिकूल मानसून तथा कृषिक्षत्र म अनिश्चितता औद्योगिक क्षेत्र मे सकुचन, अवमूल्यन अवमूल्यन क सिद्धात अवमूल्यन की मान्यताएँ अवमूल्यन आर निर्यात अवमूल्यन एव विदेशी सहायता अवमूल्यन एव विदशी व्यापार—विदशी व्यापार, याजना-आयाग का पुनगठन, सन् १६६६ का चुनाव, एकाधिकारा पर रोक आन्तरिक बचत ।]

चतुथ योजना के स्थगन का निश्चय

चतुथ योजना क निर्माण के प्रारम्भ से ही कुछ अथशास्त्रियो एव राजनीतिज्ञो न योजना क स्थगन का सुभाव प्रस्तुत किया । इनका विचार था कि दो तीन वष का योजना अवकाश कर दिया जाय जिससे तीन योजनाओ म जो विकास एव विस्तार हुआ है उसको सुदृढ एव स्थायी बनाया जा सक तथा चतुर्थ योजना को अनिश्चित एव अस्थिर पृष्ठभूमि से बचाया जा सक । केन्द्रीय सरकार एव योजना आयाग द्वारा याजना अवकाश के सुभाव पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया और विस्तृत चतुथ योजना क निर्माण का कुछ स्थगित कर सन् १६६६ ६७ वष की याजना का प्रकाशन एव सचालन किया गया । विस्तृत चतुथ याजना क निर्माण के लिए साधनो की गम्भीर कठिनाइ महसूस की गयी और ६ जून सन् १६६६ का रुपये का अवमूल्यन कर दिया गया जिसस चतुथ योजना को अधिक निर्यात एव विदेशी सहायता द्वारा विदेशी विनिमय पर्याप्त मात्रा म उपलब्ध हो सक । सन् १६६६ ६७ वष की याजना को चतुथ योजना क प्रथम वष क कायक्रम क रूप म सचालित किया गया ।

चतुथ योजना क विस्तृत कायक्रम एव लक्ष्य प्रस्तावित प्रारूप क रूप म प्रकाशित किए गए परन्तु इन प्रस्तावित कायक्रमो का अन्तिम रूप नहीं दिया जा सका क्योकि अथ व्यवस्था म अनिश्चित स्थिति एव अस्थिर कठिनाइयाँ बराबर बनी रहीं । इन अनिश्चित परिस्थितियो क अन्तगत सन् १६६७ ६८ वष की याजना को अन्तिम रूप दिया गया और इसका निर्माण एव सचालन भी प्रस्तावित चतुथ याजना क सन्दभ म ही किया गया ।

देश के आम चुनाव समाप्त होने के पश्चात् देश की राजनीतिक परिस्थितियाँ बदल गयी और अधिकतर प्रदेशों में राजनीतिक अस्थिरता का वातावरण उत्पन्न हो गया। इसी बीच योजना के आयोग का पुनर्गठन किया गया तथा नवीन सदस्य नियुक्त किये गये। प्रा० डी० आर० गाडगिल योजना आयोग के नये उपाध्यक्ष नियुक्त किये गये। पुनर्गठित योजना आयोग ने विद्यमान आर्थिक परिस्थितियों का अध्ययन कर यह सुझाव दिया कि चतुर्थ योजना का प्रारम्भ १ अप्रैल सन् १९६९ से किया जाय और सन् १९६६ ६७, सन् १९६७ ६८ तथा सन् १९६८ ६९ की योजनाओं को केवल वार्षिक योजनाएँ ही समझा जाय जो तृतीय योजना और चतुर्थ योजना की कड़ी का काम करेंगी।

१० नवम्बर सन् १९६७ को प्रो० डी० आर० गाडगिल ने चतुर्थ योजना के स्थगन की घोषणा करते हुए कहा 'पचवर्षीय योजना की निर्माण सम्बन्धी कठिनाइयों में से एक कठिनाई हमारी आर्थिक स्थिति का कुछ अनिश्चितता है। यह अनिश्चित आर्थिक स्थिति का प्रभाव सन् १९६८ वर्ष में भी कुछ समय तक जारी रह सकता है। सन् १९६८ वर्ष में हम ज्ञात हो सकेगा कि हम किस सीमा तक आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ (Stabilise) करने हैं तथा अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में हम किस सीमा तक विकास कर सके हैं। हमने विचार किया कि सन् १९६८ ६९ में हमें चतुर्थ योजना के लिए सुदृढ़ आधार मिल सकेगा जिससे हम भविष्य के पाँच वर्षों के लिए अर्थ-व्यवस्था की प्रगति एवं वास्तविक विकास-सम्बन्धी प्रयासों का ठीक पूर्व अनुमान लगा सकेंगे।'[1]

पचवर्षीय योजना में वृहद् उद्देश्यों पथ प्रदर्शक निर्देशों एवं नीतियों का समावेश रहेगा जबकि विस्तृत कार्यक्रम वार्षिक योजनाओं में सम्मिलित किये जायेंगे। वार्षिक योजनाएँ वास्तव में विकास-कार्यक्रमों के संचालन सम्बन्धी प्रलेख होगी और इनके अग्रलिखित उद्देश्य होंगे—

(१) पचवर्षीय योजना में निर्देशित नीतियों एवं लक्ष्यों के अनुरूप विकास प्रयासों को बनाये रखना।

(२) पिछले वर्ष के भौतिक साधनों, वित्तीय साधनों तथा अन्य उपलब्धियों के आधार पर चालू वर्ष के लिए कार्यक्रम निर्धारित करना।

(३) विकास प्रयासों की मात्रा तथा प्राथमिकताओं में तुरन्त की गम्भीर आर्थिक समस्याओं को दृष्टिगत कर समायोजन करना।

इस प्रकार वार्षिक योजनाओं को अब स्थायी स्थान दे दिया गया है और विस्तृत विकास-कार्यक्रमों का समावेश इन वार्षिक योजनाओं में ही किया जायगा।

चतुर्थ योजना के स्थगन पर काफी वाद विवाद हुआ है और कुछ विशेषज्ञों ने

1 Yojna Dec 10 1967

इस निर्णय की कड़ी आलोचना भी की है। स्थगन के पक्ष एवं विपक्ष में जो विचार व्यक्त किये गये हैं उनका समावेश नीचे किया जा रहा है।

चतुर्थ योजना के स्थगन के कारण

(१) **प्रतिकूल मानसून तथा कृषि क्षेत्र में अनिश्चितता**—चतुर्थ योजना के स्थगन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण लगातार दो वर्ष (सन् १९६५ ६६ तथा सन् १९६६ ६७) तक देश भर में वर्षा की न्यूनता के फलस्वरूप कृषि उत्पादन में कमी होना बताया जाता है। कृषि उत्पादन का निर्देशांक सन् १९६४ ६५ में योजनाकाल की उच्चतम सीमा पर पहुंच गया था अर्थात् १८८ ५ सन् (सन् १९४९ ५०=१००) हो गया था परन्तु अगले दो वर्षों में प्रतिकूल जलवायु के फलस्वरूप यह निर्देशांक सन् १९६५ ६६ में १३२ ७ और सन १९६६ ६७ में १३२ ४ तक गिर गया। इस कठिन परिस्थिति के फलस्वरूप देश के आर्थिक साधनों का उपयोग खाद्यान्नों के आयात पर करना पड़ा। दूसरी ओर औद्योगिक क्षेत्र में आवश्यक कच्चा माल भी कृषि क्षेत्र से पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न हो सका और इस प्रकार देश की अर्थ व्यवस्था में शिथिलता उत्पन्न हो गयी थी। इन अनिश्चित परिस्थितियों के अन्तर्गत अगले पाँच वर्षों के विकास प्रयासों एवं कार्यक्रमों को ठीक से निर्धारित करना असम्भव अथवा अनुचित होने के कारण चतुर्थ योजना को तीन वर्षों तक स्थगित कर दिया गया। यहाँ पर यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि प्राकृतिक दशाओं के बारे में क्या निश्चितता सम्भव हो सकती है ? सन् १९६९ ७ में योजना प्रारम्भ करने के पश्चात भी किसी भी वर्ष में इसी प्रकार की कठिन परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं और उस समय क्या योजना को फिर स्थगित किया जायगा ? जब वार्षिक योजनाओं का स्थायी रूप दे दिया गया है तो पूरी चतुर्थ योजना के स्थगन के स्थान पर विद्यमान परिस्थितियों के अनुरूप वार्षिक योजनाओं में समायोजन करना ही अधिक उचित कहा जा सकता है। जो आर्थिक सम्पन्नता अथवा सुदृढ़ता हम सन् १९६८ ६९ में प्राप्त कर लेंगे क्या वह भविष्य के पाँच वर्षों में बनायी रखी जा सकेगी ? इस प्रश्न का उत्तर अनिश्चित ही हो सकता है।

परन्तु योजना आयोग के उपाध्यक्ष ने इस अनिश्चितता को दूर करना योजनाओं की सफलता के लिए आवश्यक बताया है। नियोजित व्यवस्था को जारी रखने तथा नियोजित प्रगति को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए सरकार में यह क्षमता होनी चाहिए कि वह कठिन परिस्थितियों में भी अर्थ व्यवस्था में सुदृढ़ता बनाये रख तथा अर्थ व्यवस्था का निर्देशन एवं नियमन योजना के उद्देश्यों के अनुकूल कर सके। इस क्षमता को प्राप्त करने के लिए खाद्यान्नों एवं अन्य कृषि उत्पादों का अधिसंग्रह (Buffer Stock) सरकार को इतनी मात्रा में रखना चाहिए कि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी आर्थिक सुदृढ़ता बनायी रखी जा सके। खाद्यान्नों का अधिसंग्रह सन् १९६८ ६९ वर्ष के अन्त तक इतना होने की सम्भावना है कि प्रतिकूल वर्षों में कोई विशेष कठि

नाई उत्पन्न नहीं होने दी जायगी। इस प्रकार पंचवर्षीय योजना एक सुदृढ़ आधार पर प्रारम्भ की जा सकती।

(२) औद्योगिक क्षेत्र में सकुचन (Recession in the Industrial Sector)—पिछले लगभग २० वर्षों में भारतीय उद्योगों की प्रगति मुद्रा प्रसार के वातावरण में हुई है जिसके अन्तर्गत विक्रेताओं का बाजार में अधिक दबाव रहा है और बढ़ती हुई माँग के सन्दर्भ में उत्पादकों ने वस्तुओं की लागत एवं गुण पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। सन् १९६५-६६ वर्ष के मध्य में भारत के उत्पादकों को बाजार में ग्राहकों के दबाव का अनुभव होने लगा जो उत्पादकों के लिए एक गम्भीर समस्या के रूप में प्रकट हुआ। समस्या की गम्भीरता इसलिए और भी अधिक महसूस हुई कि इसका प्रभाव विभिन्न उद्योगों पर विभिन्न प्रकार से पड़ा तथा अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में मुद्रा प्रसार का दबाव बना रहने के कारण माँग में कमी नहीं हुई। इस प्रकार यह सकुचन आंशिक ही था और इसने समस्त अर्थव्यवस्था पर समान प्रभाव नहीं पड़ा।

औद्योगिक सकुचन का इन्जीनियरिंग उद्योगों पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा जिनमें प्रमुख इस्पात-ढलाई कारखानों के निर्माण के लिए सामान बनाने वाले उद्योग, ढले हुए इस्पात के पाइप (Cast Iron Spun Pipes), खनिज एवं कोयले की मशीनें बनाने वाले उद्योग, मशीनों के औजार बनाने वाले उद्योग, मोटर-गाड़ियाँ तथा रेलवे के डिब्बे (Wagon) बनाने वाले उद्योग हैं। इनके अतिरिक्त परम्परागत उद्योगों अर्थात् वस्त्र, जूट तथा बागान उद्योगों में भी सकुचन का प्रभाव पड़ा।

सन् १९६० के बाद के प्रथम तीन वर्षों में औद्योगिक उत्पादन में ८% प्रति वर्ष की वृद्धि हुई परन्तु इसके बाद से यह वृद्धि की दर निरन्तर गिरती चली जा रही है। सन् १९६४ वर्ष में यह वृद्धि ५.६% सन् १९६६ में २.६% तथा सन् १९६७ के प्रथम नौ महीनों में १.८% रही है। खाद्य पदार्थ बनाने वाले उद्योगों, वस्त्र उद्योगों तथा इन्जीनियरिंग उद्योगों के उत्पादन में सबसे अधिक कमी हुई। अन्य उद्योगों में उत्पादन की वृद्धि की गति धीमी हो गयी परन्तु पेट्रोलियम-उत्पाद तथा विद्युतमशीन निर्माण उद्योगों के उत्पादन में वृद्धि की दर और कम हो गयी। उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों के उत्पादन में सन् १९६६ में १% की वृद्धि हुई और सन् १९६७ में उत्पादन में ६.५% की कमी हुई। इसी प्रकार पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगों में पहले उत्पादन की वृद्धि की गति मन्द हुई, और फिर उत्पादन में कमी होने लगी। दूसरी ओर मध्यस्तरीय वस्तुएँ (Intermediate goods) उत्पादन करने वाले उद्योगों में सन् १९६६ वर्ष में १२% की उत्पादन में वृद्धि हुई।

भारतीय चैम्बर ऑफ कामर्स के संघ (FICCI) द्वारा किये गये सर्वेक्षण के अनुसार, ४०० उद्योगों में से १०२ उद्योगों में सन् १९६५ तथा सन् १९६६ वर्ष में उनकी उत्पादनक्षमता के उपयोग की मात्रा घट गयी। सन् १९६६ वर्ष में

वाष्पत्र (Boilers) उद्योग में ६६%, कृषियन्त्र निर्माण उद्योग में ७६% वायुयन्त्र निर्माण उद्योग में ४६% मशीन औजार उद्योग में २८%, इस्पात ढलाई उद्योग में ५३% बिजली के पंखे निर्माण उद्योग में १४%, रेलवे वैगन उद्योग में ४६% तथा भारी निर्माण सम्बन्धी सामान बनाने के उद्योग में ३५% उत्पादनक्षमता का उपयोग नहीं किया गया।

सूती वस्त्र, जूट तथा खाद्य पदार्थ उद्योगों में उत्पादन की कमी का कारण सन् १९६६ तथा सन् १९६७ वर्ष में कृषिक्षेत्र में उत्पन्न होने वाले कच्चे माल का कम उपलब्धि तथा इनके अधिक मूल्य थे। औद्योगिक कच्चे मालों के औसत मूल्य सन् १९६५ ६६ में १६% तथा सन् १९६६ ६७ में २१% बढ़ गये।

दूसरी ओर इन्जीनियरिंग एवं रसायन उद्योगों में विदेशी विनिमय की कठिनाई के फलस्वरूप आयात किया हुआ कच्चा माल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न हो सका। सन् १९६६ वर्ष में कच्चे माल तथा पुर्जों आदि के आयात में छूट दे दी गयी परन्तु इसका लाभ कुछ समय पश्चात ही सम्बन्धित उद्योगों को प्राप्त हो सका।

प्रतिकूल मानसून एवं खराब फसल के फलस्वरूप, ग्रामीण जनता में सामान्य रूप में और नगरों की जनता के कुछ वर्गों की क्रय शक्ति कम हो गयी जिससे निर्मित वस्तुओं की माँग में कमी हुई। खाद्यान्नों एवं अन्य अनिवार्य वस्तुओं के मूल्य बढ़ने के कारण जनसाधारण को अपनी क्रय शक्ति का बड़ा भाग अनिवार्यताओं पर व्यय करना पड़ा और निर्मित वस्तुओं को क्रय करने के लिए बहुत कम क्रय शक्ति जन साधारण के पास बच सकी। खाद्यान्नों एवं अन्य कृषि उत्पादों के मूल्यों में तीव्र गति से वृद्धि होने के फलस्वरूप क्रय शक्ति का हस्तान्तरण नगरों की जनसंख्या से ग्रामीण जनता को हो गया। ग्रामीण जनता अपनी क्रय शक्ति का बहुत कम भाग स्वभावतः निर्मित वस्तुओं पर व्यय करती है। इस प्रकार औद्योगिक उत्पादों की माँग में कमी हुई।

सन १९६५ वर्ष की आर्थिक कठिनाइयों के कारण सरकार द्वारा बहुत से आर्थिक नियन्त्रण—साख सकुचन तथा विदेशी विनिमय प्रतिबन्ध से सम्बन्धित कार्यवाहियाँ की गयीं। इसी समय पाकिस्तान द्वारा आक्रमण करने के कारण राजनीतिक अस्थिरता का वातावरण भी उत्पन्न हुआ। इन सभी कारणों के फलस्वरूप सरकारी व्यय में कटौती की गयी जिसका प्रभाव उद्योगों पर पड़ा।

वस्तुओं के उत्पादन में कमी होने से यातायात की सेवाओं की माँग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा तथा यातायात से सम्बन्धित उद्योगों के उत्पादों की माँग में कमी हुई।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि औद्योगिक सकुचन के फलस्वरूप सन् १९६५ ६६ तथा सन् १९६६ ६७ वर्षों में औद्योगिक क्षेत्र में अस्थिर परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी थीं। इन परिस्थितियों के प्रभावों से अर्थव्यवस्था को मुक्ति दिलाने के

लिए जो विभिन्न कार्यवाहियाँ सरकार द्वारा की गयीं उनका फल एक-दो वर्ष में प्राप्त हो सकता है। इसी कारण चतुर्थ योजना का प्रारम्भ १ अप्रैल, सन् १९६९ से करने का निश्चय किया गया है। इस समय औद्योगिक क्षेत्र में सामान्य स्थिति स्थापित होने की सम्भावना है।

(२) अवमूल्यन—जैसा हम विदित है कि भारतीय रुपये का अवमूल्यन ६ जून, सन् १९६६ को ३६.५% से कर दिया गया। अवमूल्यन के पश्चात् भारतीय रुपये के मान हुए स्वर्ण-तत्व १८६६२१ ग्राम का घटाकर ११८४८९ ग्राम कर दिया गया। दूसरे शब्दों में डालर एवं अन्य विदेशी मुद्राओं के रुपया मूल्य में ५७.५% की वृद्धि हो गयी। अवमूल्यन के पश्चात एक डालर का मूल्य ४.७६ रु० से बढ़कर ७.५० रु० हो गया। अवमूल्यन के पहले एक भारतीय रु० २१ [illegible] के बराबर होता था परन्तु अवमूल्यन के पश्चात १३ [illegible] पैंस के बराबर रह गया।

अवमूल्यन का सिद्धान्त—इसके पहले कि हम भारतीय रुपये के अवमूल्यन के कारणों एवं प्रभावों पर प्रकाश डालें यह जान लेना अत्यन्त उपयुक्त होगा कि अवमूल्यन का सिद्धान्त क्या है? इस सिद्धान्त को समझने के लिए हम दो देशों की अर्थ व्यवस्था को लेते हैं अर्थात अ देश तथा ब देश[1] जिनमें मूल्य स्थिर हैं जिनकी विनिमय-दर स्थिर है तथा जिनके विदेशी व्यापार सन्तुलित हैं अर्थात् अ देश के आयात ब देश के निर्यात के बराबर हैं। इन परिस्थितियों के अन्तर्गत इन दोनों देशों में आन्तरिक मूल्य-स्तर में समान अनुपात में वृद्धि होती है। मूल्य-वृद्धि का इन दोनों देशों के व्यापार एवं विनिमय दर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और वह यथावत् बना रहेगा।

परन्तु समस्त देशों में आन्तरिक मूल्यों में समानुपात में वृद्धि नहीं होती है और ऊपर की आदर्श स्थिति बनाये रखना सम्भव नहीं होता है। मान लीजिए अ देशों में मूल्यों में तीव्र वृद्धि होती है जबकि ब देशों में मूल्य स्थिर रहते हैं अथवा उनमें तुलना में कम वृद्धि होती है। विनिमय पूर्ववत् रहने के कारण इस परिस्थिति में ब देशों की वस्तुएँ अ देश में पहले से सस्ती पड़ेंगी और अ देश की वस्तुएँ ब देशों में पहले से मँहगी हो जायेंगी क्योंकि ब देश की मुद्रा के बदले में जो अ देश की मुद्रा मिलेगी, वह पूर्ववत् ही रहेगी जबकि अ देश की मुद्रा की क्रय शक्ति अ देश के आन्तरिक बाजार में कम हो जायगी। इस परिस्थिति का फल यह होगा कि अ देश के आयात में वृद्धि और निर्यात में कमी होने लगेगी और अ देश का व्यापारिक प्रतिकूल शेष हो जायगा।

अधिक आयात का शोधन करने के लिए अ देश को अपने स्वर्ण-संचय अथवा विदेशी विनिमय-संचय का उपयोग करना होगा। जब यह संचय क्षीण होने लगेंगे तो व्यापार को सन्तुलित करने के लिए अ देश को अपनी मुद्रा का अवमूल्यन करना पड़ेगा।

---

१ ब देश में संसार के शेष बचे हुए देश सम्मिलित हैं।

अ देश की मुद्रा का मूल्य ब देशों की मुद्रा के सन्दर्भ में अवमूल्यन के पश्चात् कम हो जायगा और अ देश में आयात की गयी वस्तुओं का मूल्य अ देश की मुद्रा में अधिक हो जायगा तथा अ देश के निर्यात के मूल्य ब देशों की मुद्रा में कम हो जायेंगे। इस परिस्थिति के परिणामस्वरूप अ देश का आयात घट जायगा तथा निर्यात बढ़ने लगेगा जिससे विदेशी व्यापार सन्तुलित हो सकता है।

अवमूल्यन की मान्यताएँ

मुद्रा अवमूल्यन द्वारा विदेशी व्यापार को सन्तुलित करने की उद्देश्य पूर्ति निम्नलिखित मान्यताओं पर निर्भर रहती है

(अ) अ देश तथा ब देशों में आयात व निर्यात पर प्रतिबन्ध नहीं होने चाहिए परन्तु यह परिस्थिति वर्तमान वातावरण में व्यावहारिक दृष्टिकोण से असम्भव है।

(ब) आयात व निर्यात की मात्रा में मूल्य के परिवर्तनों के अनुपात में कमी या वृद्धि होनी चाहिए अर्थात् आयात व निर्यात मूल्य के सन्दर्भ में लोचदार होने चाहिए परन्तु एक विकासशील देश में आयात लोचदार नहीं हो सकते क्योंकि विकास-कार्यक्रमों के लिए पूंजीगत एवं अन्य सामग्रियों का पर्याप्त आयात आवश्यक होता है। निर्यात भी पूर्णरूप से लोचदार नहीं होते हैं क्योंकि देश के आन्तरिक बाजार में मूल्यों का स्तर ऊँचा होता है और निर्यात करने में कोई विशेष लाभ की सम्भावना नहीं रहती है।

(स) मुद्रा अवमूल्यन करने वाले देश में निर्यात योग्य वस्तुओं का आधिक्य होना चाहिए अन्यथा निर्यात में वृद्धि करना सम्भव नहीं हो सकेगा।

भारतीय मुद्रा के अवमूल्यन का प्रमुख कारण देश के मूल्य-स्तर में पिछले १५ वर्षों में ८०% की वृद्धि था। द्वितीय योजनाकाल में थोक मूल्य निर्देशांक में २८% की वृद्धि हुई थी और सन् १९६० ६१ वर्ष में यह निर्देशांक १२४ ९ (१९५२ ५३=१००) था। सन् १९६१ ६२ तथा सन् १९६२ ६३ वर्षों में मूल्यों में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई परन्तु सन् १९६३ ६४ वर्ष में मूल्यों में निरन्तर तीव्र गति से वृद्धि होती रही। सन् १९६५ ६६ वर्ष में थोक मूल्य निर्देशांक १६५ १ हो गया और ४ जून सन् १९६६ को यह निर्देशांक १८४ २ था। इस प्रकार निरन्तर बढ़ते हुए मूल्यों के फलस्वरूप भारत का निर्यात कम होने लगा। अन्य देशों में इसी काल में मूल्यों में वृद्धि इतनी तीव्र गति से नहीं हुई। इसी काल में जापान में ५%, अमरिका में ६% जर्मनी में १०% तथा ब्रिटेन में २०% मूल्यों में वृद्धि हुई। हमारा निर्यात ६०१ करोड़ रु० सन् १९५० ५१ में था जो बढ़कर ८१० करोड़ रु० सन् १९६५ ६६ में हो गया अर्थात् ३५% की वृद्धि हुई जबकि हमारा आयात ६५० करोड़ रु० से बढ़कर इसी काल में १३९२ करोड़ रु० हो गया अर्थात् ११४% की वृद्धि हुई। इस प्रकार हमारा विदेशी व्यापार का शेष निरन्तर प्रतिकूल बना रहा और सन् १९५० ५१ में

५० करोड़ रु० से बढ़कर ५८६ करोड़ रु० सन् १९६५-६६ में हो गया। इस प्रतिकूल व्यापार-शेष के फलस्वरूप हमारा विदेशी विनिमय का संचय जो सन् १९५०-५१ में १०२६ करोड़ रु० था घटकर सन् १९६५-६६ में २९९.३ करोड़ रु० रह गया।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष द्वारा प्रकाशित आंकड़ों के अनुसार सन् १९५० से सन् १९६५ तक के काल में संसार के लगभग सभी प्रमुख निर्यातकर्ता देशों के निर्यात-मूल्य में वृद्धि हुई है। यह तथ्य निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है

तालिका नं० ८७—प्रमुख निर्यातकर्ता-देशों के निर्यात मूल्य में वृद्धि
(१९५०-६५)

देश	निर्यात मूल्य के निर्देशांक में सन् १९५० की तुलना में सन् १९६५ की वृद्धि का प्रतिशत
ब्रिटेन	४१.६
संयुक्त राज्य अमरीका	२७.७
कनाडा	२३.८
फ्रान्स	२१.४
भारतवर्ष	१४.३
जापान	—२.०
मलयेशिया	—१३.८
आस्ट्रेलिया	—२४.८
पाकिस्तान	—१३.३
सीलोन	—८.७

जहाँ तक हमारे निर्यात-व्यापार (विशेषकर परम्परागत निर्यात) का सम्बन्ध है, हमारे प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी पाकिस्तान, सीलोन और जापान हैं। इन तीनों देशों में १५ वर्ष के काल में निर्यात-मूल्यों में कमी हुई है। अपनी वस्तुओं को इन देशों की तुलना में सस्ता बेचने के लिए हमें रुपये का अवमूल्यन करना आवश्यक था परन्तु निर्यात मूल्य के निर्देशांक को ही अवमूल्यन का आधार नहीं समझा जा सकता है। विभिन्न निर्यात वस्तुओं के मूल्यों में विभिन्न प्रकार से परिवर्तन होते हैं और प्रत्येक निर्यात वस्तु के सम्बन्ध में पृथक् विनिमय-दर निर्धारित नहीं की जा सकती है। ऐसी परिस्थिति में आयात-शुल्क एवं निर्यात अनुदान द्वारा मुद्रा के मूल्य का विदेशी व्यापार के सन्दर्भ में समय समय पर समायोजन करना उचित एवं सस्ता समझा जाता है।

अवमूल्यन और निर्यात—संसार के समस्त निर्यात में हमारा भाग सन् १९५१-५२ में लगभग २% था जो सन् १९६५-६६ में घटकर ०.९% रह गया। सन् १९५१-५२ में हमारे निर्यात हमारे आयात के ७५.६% भाग का भुगतान करने हेतु पर्याप्त थे जो सन् १९६५-६६ में घटकर केवल ५९.६% आयात का ही भुगतान करने के लिए पर्याप्त रह गये। सन् १९५१-५२ में हमारे निर्यात हमारी राष्ट्रीय आय के ७.४% थे जो सन् १९६५-६६ में घटकर केवल ४% रह गए। जब

निर्यात संवर्द्धन सम्बन्धी समस्त सरकारी कार्यवाहियों द्वारा सम्भावित नतीजे नहीं प्राप्त हुए तो अवमूल्यन की अन्तिम एवं जोखिमपूर्ण कार्यवाही का सहारा लिया गया। इस प्रकार अवमूल्यन का प्रमुख उद्देश्य निर्यात संवर्द्धन करना था जिससे प्रतिकूल व्यापारिक गैप को दूर किया जा सके परन्तु हमारे निर्यात मूल्य के सन्दर्भ में लचीले (Price Elastic) नहीं हैं। हमारे ६०% निर्यात परम्परागत वस्तुओं जैसे चाय, सूती वस्त्र, जूट, काफी, तम्बाकू आदि से बनते हैं। इन परम्परागत वस्तुओं के निर्यात को बढ़ाना कठिन होता है क्योंकि एक ओर इनकी माँग देश के अन्दर ही अधिक है और निर्यात आधिक्य बढ़ाना सम्भव नहीं होता। दूसरी ओर इनमें अधिकतर वस्तुओं में कोटा-पद्धति (Quota System) के अन्तर्गत निर्यात होता है। इसके साथ हमारी वस्तुओं की क्वालिटी भी संसार के बाजारों में अधिक अच्छी नहीं मानी जाती है जिससे मूल्य कम होने पर भी हमारी वस्तुएं विदेशी बाजारों में अधिक मात्रा में नहीं बेची जा सकती हैं। परम्परागत वस्तुओं में हमारे प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी सीलोन, पाकिस्तान, जापान तथा हांगकांग हैं। इन प्रतिद्वन्द्वियों द्वारा भी अपने निर्यात बढ़ाने हेतु आवश्यक कार्यवाहियाँ की गयी हैं जिससे हम अवमूल्यन का पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं हो सका है।

जहाँ तक गैर परम्परागत वस्तुओं जैसे टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएँ, मशीन औजार आदि के निर्यात का सम्बन्ध है, इनके निर्यात योग्य निर्माण करने के लिए हम विदेशी पूँजीगत वस्तुओं एवं कच्चे माल की आवश्यकता होती है और यह आयात अवमूल्यन के पश्चात् ५७.६% महंगा हो गया है जिससे इन वस्तुओं की उत्पादन लागत भी बढ़ गयी है।

अवमूल्यन के फलस्वरूप हम, जहाँ अपने निर्यातों के बदले में ३६.५% कम विदेशी मुद्रा प्राप्त होगी इसके साथ ही, हम अपने आयात के लिए ५७.५% अधिक रु० का भुगतान करना होगा। हम अपने आयात को कम करने की स्थिति में नहीं हैं क्योंकि विकास कार्यक्रमों के निर्वाह के लिए आयात बड़ी मात्रा में करना अनिवार्य है। अवमूल्यन के फलस्वरूप आयात की एक इकाई के बदले में हम एक निर्यात की इकाई के स्थान पर १.३६५ निर्यात इकाई भुगतान करना पड़ रहा है। यदि हमारा आयात हमारी राष्ट्रीय आय का ६% मान लिया जाय तो हम अपनी राष्ट्रीय आय का लगभग २.४% भाग अधिक भुगतान के रूप में देना पड़ रहा है।

अवमूल्यन एवं विदेशी सहायता

अवमूल्यन के फलस्वरूप हमारे विदेशी ऋण २७३४ करोड़ रु० से बढ़कर ४१०३ करोड़ रु० हो गये। इस प्रकार हम अपने विदेशी ऋणों के भुगतान के लिए १३६९ करोड़ रु० अधिक भुगतान करना पड़ेगा। इतना ही नहीं हम अपने ऋणों के ब्याज आदि के भुगतान के लिए भी १½ गुनी अधिक राशि प्रति वर्ष भुगतान करनी

कल पुर्जों आदि का पर्याप्त आयात न होता था परन्तु अवमूल्यन के पश्चात आयात म छूट होने के पश्चात भी उद्योग कुछ सीमा तक ही इसका लाभ उठा सके हैं और इस प्रकार उद्योगों द्वारा निर्यात योग्य उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि नहीं की गयी है। अवमूल्यन के पश्चात प्राप्त हुई विदेशी सहायता के बहुत से भाग का उपयोग इसीलिए नहीं किया जा सका।

तृतीय योजना की समाप्ति पर अर्थ-व्यवस्था की दयनीय अवस्था को देखते हुए चतुर्थ योजना के पाँच वर्षों के कार्यक्रम निर्धारित करना सम्भव न हो सका और केवल सन् १९६६ ६७ वर्ष के लिए योजना कार्यक्रम निर्धारित किए गये। इस वार्षिक योजना को चतुर्थ योजना का ही अग बताया गया। अवमूल्यन द्वारा अर्थ व्यवस्था म और अधिक अनिश्चितता कर देने के कारण अप्रैल सन १९६७ म फिर केवल वार्षिक योजना का निर्माण किया गया।

अगस्त, सन १९६७ म योजना आयोग ने प्रस्तावित चतुर्थ योजना का प्रकाशन किया जिसम सन १९६६ ६७ से सन १९७० ७१ तक के विकास कार्यक्रम सम्मिलित थे परन्तु देश की अर्थ व्यवस्था म असामान्य अनिश्चितता बनी रही और अवमूल्यन से प्राप्त होने वाले लाभ केवल अनुमान मात्र ही बने रहे।

अवमूल्यन एव विदेशी व्यापार

तृतीय योजनाकाल म हमारे निर्यात म लगभग २३% की वृद्धि हुई और योजना के पाँच वर्षों म कुल मिलाकर ३ ८१२ करोड रु० का निर्यात किया गया। प्रस्तावित चतुर्थ योजना म निर्यात म ४१ २% की वृद्धि होने का अनुमान लगाया गया अर्थात योजना के पाँच वर्षों म कुल निर्यात ५ १०० करोड रु० (अवमूल्यन के पूर्व के रुपय म) करने का अनुमान लगाया गया जो अवमूल्यन के बाद के रुपय म ८०३० करोड रु० के बराबर होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि चतुर्थ योजनाकाल म निर्यात म ११% की वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया जबकि सन १९६६ ६७ के निर्यात की वास्तविक उपलब्धियों को देखते हुए इस लक्ष्य की प्राप्ति असम्भव ही प्रतीत हुई। विदेशी व्यापार की इस गम्भीर परिस्थिति तथा औद्योगिक उत्पादन म पर्याप्त वृद्धि न होने के कारण ही यह निर्णय लिया गया कि चतुर्थ योजना को स्थगित कर दिया जाय।

प्रस्तावित योजना म योजनाकाल म १२ ०४६ करोड रु० का आयात अनुमानित किया गया जिसम से ८ १६० करोड रु० का आयात निर्वाह-सम्बन्धी आयात अनुमानित था। इस प्रकार चतुर्थ योजना के पाँच वर्षों म ४ ०१६ (१२ ०४६ आयात —८०३० निर्यात) का प्रतिकूल शेष उत्पन्न होने का अनुमान लगाया गया जिसके लिए विदेशी सहायता की व्यवस्था करना आवश्यक थी। इसके अतिरिक्त २ २८४ करोड रु० पिछले विदेशी ऋण एव वृद्धि के शोधनार्थ आवश्यकता पड़ने का अनुमान लगाया गया। इस प्रकार ६ ०० करोड रु० की विदेशी सहायता का आयोजन किया जाना था अर्थात योजना के प्रत्येक वर्ष में औसतन लगभग १३०० करोड रु० का

विदेशी सहायता प्राप्त होने की व्यवस्था की जाती थी परन्तु सन् १९६६ ६७ वर्ष में ८९९ करोड़ रु० की विदेशी सहायता प्राप्त होने का अनुमान है और सन् १९६७ ६८ के बजट में १००२ करोड़ रु० की व्यवस्था का अनुमान लगाया गया। इस प्रकार विदेशी सहायता की पर्याप्त मात्रा में उपलब्धि न होने के कारण भी चतुर्थ योजना के कार्यक्रमों पर पुनर्विचार करना आवश्यक हो गया।

(४) **विदेशी व्यापार**—पिछले दो वर्षों के दौरान सन् १९६६ ६७ तथा सन् १९६७ ६८ में हमारे विदेशी व्यापार में सम्मानित प्रगति नहीं हुई है। हमारा निर्यात सन् १९६५-६६ वर्ष में १९६ २ करोड़ डॉलर था जो सन् १९६६ ६७ वर्ष में घटकर १९५ २ करोड़ डॉलर रह गया। सन् १९६७ ६८ वर्ष में भी निर्यात में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई। अप्रैल से अगस्त तक के काल में सन् १९६५-६६ में ६६ ८ करोड़ डॉलर का निर्यात किया गया था सन् १९६६ ६७ में ६१ ३ करोड़ डॉलर तथा सन् १९६७ ६८ में ६१ ५ करोड़ डॉलर रह गया। दूसरी ओर, हमारे आयात जो सन् १९६५-६६ वर्ष में २८५ ३ करोड़ डॉलर था, सन् १९६६ ६७ वर्ष में २६६ ० करोड़ डॉलर रह गया। सन् १९६७ ६८ वर्ष के प्रथम पाँच महीनों में हमारे आयात में कुछ वृद्धि हुई। आयात में कमी का प्रमुख कारण अवमूल्यन के फलस्वरूप आयात की गयी वस्तुओं के मूल्यों में ५७ ५% की वृद्धि होना था।

हमारे निर्यात में चाय और जूट का महत्वपूर्ण स्थान है और इनका प्रमुख बाजार ब्रिटेन है। ब्रिटेन की मुद्रा पौण्ड स्टर्लिंग का १४.५ से अवमूल्यन कर दिया गया है जिसके फलस्वरूप स्टर्लिंग क्षेत्र को किए गये निर्यात से हमारे निर्यातकर्ताओं को रुपयों में कम मूल्य प्राप्त होगा जिससे भारतीय निर्यातकर्ताओं में निर्यात के प्रति उत्साह कम हो जाना स्वाभाविक है। दूसरी ओर हमारे पड़ोसी राष्ट्र सीलोन ने अपनी मुद्रा का २०% अवमूल्यन कर दिया है जिसके फलस्वरूप हमारे चाय के निर्यात को आघात पहुँचेगा। भारत में अवमूल्यन के पश्चात् चाय पर जो निर्यात शुल्क लगाया गया है, उससे चाय उद्योग को अवमूल्यन का पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं हुआ है और अब सीलोन के साथ प्रतिस्पर्धा करना और भी कठिन हो जायगा।

(५) **योजना-आयोग का पुनर्गठन**—सितम्बर सन् १९६७ में योजना-आयोग का पुनर्गठन किया गया और प्रो० डी० आर० गाडगिल ने उपाध्यक्ष का पद सँभाला। योजना आयोग का पुनर्गठन प्रशासनिक सुधार आयोग (Administrative Reforms Commission) की सिफारिशों के आधार पर किया गया। इस आयोग ने अपने अन्तरिम प्रतिवेदन में सिफारिश की कि योजना आयोग अपने निर्णय करने के लिए सरकारी दबाव से अधिक स्वतन्त्र होना चाहिए परन्तु इसकी सिफारिशों पर मन्त्रियों की एक उपसमिति द्वारा निर्णय किए जा सकते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रशासनिक सुधार आयोग ने निम्नलिखित सिफारिशें कीं

(१) योजना आयोग के उपाध्यक्ष तथा सदस्य केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में नहीं

लिए जाने चाहिए परन्तु अध्यक्ष पद पर प्रधानमन्त्री का रहना उचित है। वह अपनी सहायता के लिए एक राज्य मन्त्री (Minister of State) को रख सकता है।

(२) योजना आयोग के सदस्यों को विभिन्न क्षेत्रों का ज्ञान एवं अनुभव होना चाहिए। वे केवल किसी विशेष विषय का ही संकीर्ण ज्ञान न रखते हों। इस प्रकार *योजना आयोग केवल विशेषज्ञों की ही संस्था नहीं होनी चाहिए।*

(३) राष्ट्रीय योजना परिषद् नियोजन सम्बन्धी सर्वोच्च संस्था के रूप में योजनाओं के निर्माण में मूलभूत निर्देश देती रहे। उसकी तथा उसके द्वारा नियुक्त विभिन्न उपसमितियों की और अधिक नियमित बैठकें होनी चाहिए।

(४) योजना आयोग द्वारा नियुक्त बहुत सी सलाहकार समितियाँ एवं समूह द्वारा कोई विशेष उपयोगी कार्य नहीं किया जाता है। इसलिए सलाहकार समितियों की स्थापना सोच विचार कर की जानी चाहिए और उनका कार्य एवं कार्य संचालन विधि उचित रूप से पूर्व निर्धारित कर दी जानी चाहिए। जिन केन्द्रीय मन्त्रालयों में सलाहकार समितियाँ कार्य कर रही हों उनका यथासम्भव उपयोग योजना आयोग को करना चाहिए।

(५) एक लोकसभा सदस्यीय समिति की स्थापना राजकीय व्यवसाय समिति *(Committee for Public Undertakings) के समान की जानी चाहिए जो वार्षिक* प्रगति प्रतिवेदन एवं योजनाओं की सफलताओं व मूल्यांकन से सम्बन्धित प्रतिवेदनों का अध्ययन करे।

(६) योजना आयोग के कार्य संचालन के लिए तीन स्तरीय अधिकारी होना चाहिए—सलाहकार, विषय विशेषज्ञ तथा विश्लेषणकर्ता। आयोग को बहुत से जाँच अधिकारियों (Investigators) की आवश्यकता नहीं है।

(७) दिल्ली में एक प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की जानी चाहिए जिसमें विकास सम्बन्धी विभिन्न पक्षों में दक्षता देने के लिए प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।

(८) विभिन्न विकास-परिषदों (जो प्रत्येक महत्वपूर्ण उद्योग के लिए स्थापित की गयी हैं) के साथ एक योजना समूह (Planning Group) लगा रहना चाहिए। यह समूह निजी क्षेत्र के उद्योगों से योजनाओं के निर्माण में सक्रिय सलाह एवं सहयोग प्राप्त कर सकते हैं।

(९) केन्द्रीय सरकार के विभिन्न आर्थिक सलाहकार-केन्द्रों में अधिक समन्वय एवं संचार (Communication) के लिए एक स्टैंडिंग समिति की स्थापना की जानी चाहिए जिसमें विभिन्न मन्त्रालयों एवं योजना आयोग के आर्थिक एवं सांख्यिकीय केन्द्रों के अध्यक्ष सदस्य होने चाहिए।

(१०) राज्यों में त्रि-स्तरीय योजनातन्त्र (Planning Machinery) की स्थापना की जानी चाहिए—राज्य योजना परिषद् (State Planning Board) विभागीय नियोजन संस्थाएँ तथा क्षेत्रीय एवं जिला स्तरीय नियोजन संस्थाएँ। योजना-परिषद्

पर राजनीतिक विशेषज्ञों की संस्था होनी चाहिए जिसका अध्यक्ष मुख्यमन्त्री होना चाहिए। यह परिषद् राज्य की योजना के सम्बन्ध में योजना आयोग के समान कार्य करे। विभागीय योजना-संस्थाएँ इस विभाग की विभिन्न विकास-परियोजनाओं में समन्वय स्थापित करें तथा इनके उचित क्रियान्वयन की देखभाल करें। प्रत्येक जिले में एक पृथक् पूर्ण समय के लिए (Whole time) योजना एवं विकास अधिकारी होना चाहिए तथा एक जिला योजना समिति होनी चाहिए जिसमें पंचायतों, नगरपालिकाओं के प्रतिनिधि तथा कुछ व्यावसायिक विशेषज्ञ होने चाहिए।

केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों में से कुछ को कार्यान्वित कर दिया गया और योजना आयोग का पुनर्गठन कर ऐसे सदस्यों की नियुक्ति की गयी जो केन्द्रीय मन्त्री नहीं हैं। प्रा० गाडगिल को उपाध्यक्ष नियुक्त करने के साथ श्री वेंकटारमन, श्री बी० वेंकटाचिनार, श्री पीताम्बर पन्त और डॉ० बी० डी० नाग चौधरी को योजना आयोग का सदस्य नियुक्त किया। वित्तमन्त्री का Ex-officio सदस्य नियुक्त किया गया है। इस प्रकार योजना आयोग के पदाधिकारियों में परिवर्तन होने से आयोग का अर्ध-स्वायत्तता की वास्तविक स्थिति स्वीकार करने में कोई हिचकिचाहट नहीं हुई। योजना आयोग की विचारधारा में अर्थ-व्यवस्था की सामान्य स्थिति होने पर ही नवीन योजना के कार्यक्रम निर्धारित करना उचित था। यह कहना भी अनुचित न होगा कि यदि योजना आयोग का पुनर्गठन न किया जाता है तो चतुर्थ योजना के स्थगन को योजनाओं की असफलता मान कर इस स्थगन को स्वीकार नहीं किया जाता।

(६) सन् १९६६ का चुनाव—चतुर्थ योजना का प्रारम्भ उसी वित्तीय वर्ष में होना था जिसमें आम चुनाव होना था। योजना का निर्माण चुनाव के प्रारम्भ से पहले ही होना था। इस तथ्य का ध्यान में रखते हुए मतदाताओं के सम्मुख एक बड़ी योजना प्रस्तुत करना आवश्यक था और इसीलिए अर्थ-साधनों को बढ़ाकर प्रदर्शित किया गया। दूसरी ओर, चुनाव के सन्दर्भ में अधिक करारोपण करना भी सम्भव नहीं था। चुनाव के प्रभावों से चतुर्थ योजना को कुछ करने का एक कारण यह था कि चतुर्थ योजना को तीन वर्ष के लिए स्थगित कर दिया जाय।

(७) एकाधिकारों पर रोक—एकाधिकारों पर नियन्त्रण करने तथा आर्थिक शक्तियों के केन्द्रीयकरण को रोकने के लिए अधिनियम बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसी प्रकार औद्योगिक लाइसेंसिंग की नीति में मूलभूत परिवर्तन किये गये हैं जिससे इसके द्वारा केवल बड़े उद्योगपतियों को ही नवीन उद्योगों की स्थापना एवं उद्योगों के विस्तार के लिए प्रोत्साहन न मिले। इस नीति से आयात तथा विदेशी सहयोग से स्थापित होने वाले उद्योगों दोनों पर प्रभाव पड़ेगा। इसी प्रकार अधिकोषों पर सामाजिक नियन्त्रण का अधिनियम भी लागू किया जाता है जिससे इनके द्वारा आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन न प्राप्त हो सके और लघु उद्योगपति एवं

व्यवसायी पर्याप्त मात्रा में साख उपलब्ध कर सकें। केन्द्रीय वित्त मन्त्रालय रिजर्व बैंक तथा योजना आयोग समन्वित रूप में विनियोग एवं साख के क्षेत्र में एकरूप नीति का पालन करेंगे जिससे औद्योगिक विनियोजन एवं उत्पादन बिना कठोर नियमन अथवा भौतिक नियन्त्रण के ही उद्देश्यों के अनुकूल किया जा सके। अर्थ-व्यवस्था पर इन सभी कार्यवाहियों के अनुकूल प्रभाव सन् १९६८ के मध्य से पड़ने की सम्भावना है और इन प्रभावों के सन्दर्भ में चतुर्थ योजना के कार्यक्रम निर्धारित करना अधिक व्यावहारिक होगा।

(८) आन्तरिक बचत—तीन योजनाओं के अनुभवों से यह स्पष्ट हो गया है कि हमारी भविष्य की योजनाओं को विदेशी सहायता पर कम से कम निर्भर रहना आवश्यक है। विदेशी सहायता की निर्भरता से मुक्त होने के लिए हम अपनी आन्तरिक बचत एवं निर्यात में वृद्धि करना अनिवार्य है। आन्तरिक बचत की दर पिछले दो वर्षों में गिरने का अनुमान लगाया गया है। इस बचत दर को बढ़ाने के लिए जनोपयोगी सेवा सम्बन्धी व्यवसायों एवं राजकीय व्यवसायों के लाभों को बढ़ाना आवश्यक है। अभी तक यह दोनों प्रकार के व्यवसाय विकास के लिए बहुत कम आधिक्य उपलब्ध करते हैं। राष्ट्रीय विकास परिषद् का ध्यान इसीलिए सिंचाई एवं विद्युत की दरों को बढ़ाने की ओर आकर्षित किया गया है। इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय विकास परिषद् ने निजलिंगप्पा समिति की सिंचाई-परियोजनाओं के लाभों पर की गयी सिफारिशों को तथा राज्य विद्युतमण्डलों की कार्य प्रणाली पर वेंकटारमन समिति की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया है। इसी प्रकार बड़े बड़े सरकारी व्यवसायों की विस्तृत जाँच कर उनके लाभों को बढ़ाने के लिए कार्यक्रम संचालित करने हेतु भी कार्यवाहियाँ की जानी हैं। इस प्रकार इन कार्यवाहियों से उदय होने वाले लाभ स्थगित चतुर्थ योजना के प्रारम्भ से ही प्राप्त हो सकते हैं।

लघु उद्योगों की बचत को बढ़ाने के लिए उन्हें अपने अधिकारों को अपने ही व्यवसायों में ही विनियोजित करने हेतु प्रोत्साहन देना आवश्यक है। करों द्वारा भी आन्तरिक बचत को बढ़ाना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में कृषि आयकर पर विशेष ध्यान दिया जाना है। सभी राज्यों को कृषि आयकर समान रूप से लगाने के लिये इसे सामान्य आयकर के अन्तर्गत ही सम्मिलित किया जाना चाहिए।

उपर्युक्त समस्त कार्यवाहियाँ या तो विचाराधीन हैं अथवा उनका क्रियान्वयन प्रारम्भ कर दिया गया है। इनके क्रियान्वयन की गति एवं प्रभावशीलता को आधार मानकर चतुर्थ योजना के कार्यक्रम निर्धारित करना अधिक उचित समझा गया है। इन कार्यवाहियों के प्रभाव सन् १९६८ वर्ष के अन्त तक समुचित रूप से पड़ने लगेंगे।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि चतुर्थ योजना के स्थगन के लिए कुछ ठोस कारण इस समय विद्यमान थे और उनको अस्थायी समझकर उनके प्रभावों से अर्थ-व्यवस्था को मुक्त कर ही चतुर्थ योजना के प्रारम्भ करने का निश्चय किया गया

है। प्रो० गाडगिल ने स्पष्ट कर दिया है कि योजना के स्थान को योजना अवकाश (Plan Holiday) हरगिज नहीं समझना चाहिए क्योंकि अर्थ-व्यवस्था में विकास-विनियोजन यथावत चलता रहा परन्तु जो परिस्थितियाँ इस समय अर्थ-व्यवस्था पर आधारित हैं वह फिर उदय नहीं होंगी। इस बात को निश्चितता के साथ नहीं कहा जा सकता है। इस प्रकार की कठिन परिस्थितियाँ चतुर्थ योजना अथवा उसके आगे की योजनाओं में उदय हो सकती हैं। यह अभी देखना बाकी है कि नवीन योजना में इन अनिश्चित एवं कठिन परिस्थितियों का उदय होने से रोकने के लिए क्या-क्या ठोस कार्यक्रम सम्मिलित किये जाते हैं और वे कहाँ तक सफल रहेंगे। यह वास्तविक तथ्य है कि अर्थ-व्यवस्था की गतिविधि का ठीक ठीक अनुमान लगाना सम्भव नहीं। वास्तव में योजना-कार्यक्रम में इतना लचीलापन होना चाहिए कि उन्हें परिस्थितियों के अनुरूप समायोजित किया जा सके। हमारी योजनाओं की यह सबसे बड़ी कमी है और इसी कारण अनुमान से भिन्न परिस्थितियाँ उदय होने पर हमारी योजनाओं का संचालन कठिन हो जाता है।

यद्यपि हम इन मध्य के तीन वर्षों को योजना-अवकाशकाल नहीं मानते परन्तु इन तीन वर्षों के विनियोजन-कार्यक्रमों को दीर्घकालीन उद्देश्यों का पथ प्रदर्शन उपलब्ध नहीं है। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना के कुछ मूलभूत लक्ष्य होते हैं जिनकी प्राप्ति की ओर वर्ष प्रति वर्ष आगे बढ़ा जाता है। जब हम इन तीन वर्षों को चतुर्थ योजना से पृथक कर लेते हैं तो यह दीर्घकालीन लक्ष्य हमारा मार्ग दर्शन नहीं करते हैं और हमारे कार्यक्रमों का उद्देश्य वर्तमान अस्थायी कठिनाइयों को दूर करना मात्र रह जाता है। इस प्रकार नियोजित विकास की कड़ी टूटने का भय उत्पन्न हो जाता है। हम भले ही इन तीन वर्षों के काल को योजना-अवकाश का नाम देकर न पुकारें परन्तु यह तीन वर्ष नियोजित विकास की कड़ी को जोड़ने वाला एक पृथक अंग (Patch) मात्र अवश्य है।

तीन एक वर्षीय योजनाएँ—१९६६-६७ से १९६८-६९
[Three Annual Plans—1966 67 to 1968 69]

[सन् १९६६ ६७ की योजना—व्यय अर्थ साधन लक्ष्य एवं उपलब्धियाँ—कृषि सिंचाई शक्ति उद्योग एवं खनिज, यातायात एवं संचार राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय एवं मूल्य-स्तर, सन् १९६७ ६८ की वार्षिक योजना—व्यय एवं प्राथमिकताएँ, अर्थ साधन लक्ष्य एवं कार्यक्रम—कृषि उद्योग राष्ट्रीय आय मूल्य स्तर एवं पूँजी निर्माण—सन् १९६८ ६९ की वार्षिक योजना, व्यय अर्थ साधन उत्पादन के लक्ष्य एवं उपलब्धियाँ]

मौलिक कार्यक्रम के अनुसार चौथी पंचवर्षीय योजना का प्रारम्भ तृतीय योजना के तुरन्त बाद अर्थात् १ अप्रैल सन १९६६ से होना था और तृतीय योजना के अनुभवों के आधार पर सितम्बर सन् १९६४ में चतुर्थ पंचवर्षीय योजना की एक रूप रेखा तैयार की गयी तथा एक स्मृतिपत्र के रूप में केन्द्रीय सरकार के समक्ष प्रस्तुत की गयी। इस स्मृतिपत्र में सम्मिलित कार्यक्रमों एवं रूपरेखा पर अन्तिम निर्णय करने के पूर्व देश की राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में आकस्मिक परिवर्तन हुए जिससे इन कार्यक्रमों को दोहराना आवश्यक समझा गया। पाकिस्तानी आक्रमण के फलस्वरूप, अर्थ व्यवस्था को पहुँचने वाली क्षति विदेशी सहायता की उपलब्धि का संशयजनक होना तथा चीन और पाकिस्तान से आक्रमण की निरन्तर सम्भावनाओं ने तत्कालीन प्रधानमन्त्री स्वर्गीय श्री लालबहादुर शास्त्री को योजना की रूपरेखा में परिवर्तन करने के लिए बाध्य किया।

इस प्रकार चौथी योजना की रूपरेखा पर पुनर्विचार किया गया और यह निश्चय किया गया कि योजना के कार्यक्रम निश्चित समय पर प्रारम्भ करने हेतु केवल सन् १९६६ ६७ वर्ष की योजना को अन्तिम रूप दिया गया और शेष चार वर्षों के कार्यक्रम साधनों की उपलब्धि एवं उपस्थित परिस्थितियों के आधार पर बाद में अन्तिम रूप से निर्धारित किए जाय। बाद में चौथी योजना का प्रस्तावित प्रविवेदन प्रकाशित किया गया परन्तु इन प्रस्तावित कार्यक्रमों को अन्तिम रूप नहीं दिया जा सका क्योंकि अर्थ व्यवस्था में अनिश्चित स्थिति एवं अस्थिर कठिनाइयाँ बराबर बनी रहीं। इन अनिश्चित परिस्थितियों में सन् १९६७ ६८ वर्ष की योजना को अन्तिम रूप दिया गया और इसका निर्माण एवं संचालन भी प्रस्तावित चतुर्थ योजना के सन्दर्भ

पर निर्मित की गयी है। योजना-आयोग द्वारा अनुमान लगाया गया कि सन् १९६६ ६७ वर्ष में अर्थ साधन लगभग २०८० करोड़ रु० के उपलब्ध होंगे और इस राशि को आधार मानकर योजना के कार्यक्रमों में आवश्यक कटौती कर दी गयी। तृतीय योजना के अन्तिम वर्ष सन् १९६५ ६६ में योजना व्यय २ ३७२ करोड़ रु० हुआ जबकि सन् १९६६ ६७ वर्ष के लिए केवल २०८० करोड़ रु० का व्यय निर्धारित किया गया। इसका प्रमुख कारण साधनों की न्यून उपलब्धि था। योजना की विभिन्न मदों पर आयोजित एवं वास्तविक व्यय निम्न प्रकार था—

तालिका सं० ८९—सन् १९६६ ६७ वर्ष की योजना का व्यय

(करोड़ रुपये में)

मद	निर्धारित व्यय	कुल व्यय में प्रतिशत	सम्भावित वास्तविक व्यय	कुल सम्भावित व्यय में प्रतिशत
(१) कृषि कार्यक्रम	२६७ ७६	१२ ९	२६८ ८९	१२ १
(२) सामुदायिक विकास एवं सहकारिता	६४ ७९	३	७७ ६६	३ ५
(३) सिंचाई एवं बाढ़ नियन्त्रण	१२४ ३२	६ ०	१४३ ७६	६ ६
(४) शक्ति	३४० ३८	१६ ४	३९९ २७	१८ ०
(५) संगठित उद्योग एवं खनिज विकास	४७७ ७३	२३ ०	५४२ ८४	२४ ५
(६) लघु एवं ग्रामीण उद्योग	४७ ०४	२ ३	४५ ३३	२ ०
(७) यातायात एवं संचार	४२८ ८३	२० ६	४३१ ८७	१९ ५
(८) समाज सेवाएं	३०० ८८	१४ ५	२७७ ५९	१२ ५
(९) विविध	२० २१	१ २	३३ ३१	१ ०
योग	२०८१ ५४	१०० ००	२ २२० ५१	१०० ०

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि सन् १९६६ ६७ की योजना में कृषि कार्यक्रमों की प्राथमिकता को बढ़ाने के उद्देश्य से इस मद पर होने वाले व्यय के प्रतिशत में सन् १९६५ ६६ की तुलना में २ ८ की वृद्धि कर दी गयी। दूसरी ओर संगठित उद्योगों एवं खनिज विकास के व्यय का कुल व्यय से प्रतिशत १९ ८% से बढ़कर २३% हो गया अर्थात इस प्रतिशत में ३ २% की वृद्धि हुई है। इस तुलना से यह स्पष्ट है कि व्यय के आधार पर औद्योगिक विकास को कृषि की तुलना में अब भी अधिक प्राथमिकता दी गयी।

सन् १९६६ ६७ वर्ष की योजना में समाज-सेवाओं के कार्यक्रमों पर होने वाले व्यय में अत्यधिक कमी कर दी गयी। ऐसा प्रतीत होता है कि साधनों की न्यूनता का भार यातायात एवं संचार तथा समाज सेवा की मदों को वहन करना पड़ा।

विभिन्न मदों पर आयोजित व्यय का अधिकतर भाग संचालित परियोजनाओं की पूर्ति के लिए आयोजित किया गया। नवीन परियोजनाओं में केवल ऐसी योजनाएँ सम्मिलित की गयी हैं जिनका प्रारम्भिक काम सम्पन्न हो चुका है और जिनके लिए आवश्यक विदेशी विनिमय का आयोजन किया जा चुका था। योजना में विस्तार-कार्यक्रमों की तुलना में चालू परियोजनाओं के कुशल संचालन एवं गुणात्मक सुधारों को अधिक महत्व दिया गया था। रहन सहन के जीवन-स्तर में सुधार करने हेतु जीवन की आधारभूत सामग्रियों की पूर्ति को वढ़ाने का आयोजन किया गया था परन्तु सुविधाओं एवं विलासिताओं की वस्तुओं एवं सामग्रियों की व्यवस्था का योजना के शेष वर्षों के लिए स्थगित किया गया था। जनसंख्या की वृद्धि को कम करने हेतु परिवार नियोजन को योजना में विशेष स्थान दिया गया था।

योजना का सम्भावित वास्तविक व्यय आयोजित व्यय से ६% अधिक रहा। शक्ति एवं संगठित उद्योगों तथा खनिज विकास का आयोजित व्यय से अधिक राशि उपलब्ध हुई और इनका भाग व्यय की हुई राशि से भी अधिक रहा।

अर्थ-साधन

सन् १९६६-६७ वर्ष की योजना के कार्यक्रम सम्भावित अर्थ-साधनों की उपलब्धि पर आधारित हैं। केन्द्रीय सरकार के अर्थ-साधनों का अनुमान सन् १९६६-६७ के बजट अनुमानों और राज्य सरकार के अर्थ-साधनों का अनुमान राज्य सरकारों से विचार विमर्श कर किया गया। तालिका सं० ९० के अनुसार विभिन्न साधनों से अर्थ प्राप्त होने का अनुमान है।

तालिका सं० ९०—सन् १९६६-६७ वर्ष की योजना के अर्थ-साधन

(करोड़ रुपये में)

मद	प्राप्त होने वाली अनुमानित राशि	योग से प्रतिशत	सम्भावित वास्तविक राशि	कुल अर्थ-साधनों से प्रतिशत
(१) चालू आय का शेष (अतिरिक्त कर छोड़ कर)	२०३	९७	४२	१६
(२) रेलों का अनुदान	३४	१७	—१	—
(३) सन् १९६५-६६ के उत्पाद मूल्य के आधार पर सरकारी व्यवसायों से आधिक्य	२१८	१०४	१४४	६५
(४) अतिरिक्त कर (सरकारी व्यवसायों की अतिरिक्त आय के साथ)	४२२	२०३	१५९	७२
(५) जनता से ऋण	२०९	१००	२०४	९२
(६) लघु बचत	१३५	६०	१२५	५६
(७) स्वर्ण बॉण्ड, इनामी बॉण्ड वार्षिक जमा आदि	३६	१७	२४	११

(८) निधिमुक्त ऋण (Unfunded debt)	८८	४ २	८५	३ ८
(९) विविध पूंजीगत प्राप्तियाँ	१०९	५ २	१९८	९ ०
(१०) अतिरिक्त साधन जो राज्य सरकारों द्वारा एकत्रित किये जायेंगे	३४	१ ७	—	—
बजट के साधनों से कुल प्राप्ति (१ से १० तक का योग)	१ ४८८	७१ ०	९८१	४४ ३
(११) विदेशी सहायता	५८१	२८ ०	९००	४० ५
(१२) हीनार्थ प्रबन्धन (Deficit financing)	१२	१ ०	३४०	१५ २
योग	२ ०८१	१०० ०	२ २२१	१०० ००

इस तालिका से ज्ञात होता है कि सन् १९६६ ६७ वर्ष की योजना के आयोजित व्यय का ७१% भाग आन्तरिक साधनों से प्राप्त होने का अनुमान था जबकि आन्तरिक साधनों से व्यय साधनों की प्राप्ति कुल वास्तविक व्यय की केवल ४४ ३% ही रही। आन्तरिक साधनों में चालू आय का अतिरेक सरकारी उपक्रमों का आधिक्य तथा अतिरिक्त कर से सम्भावित राशि की तुलना में बहुत कम राशि प्राप्त हुई। चालू आय का अतिरेक प्राय अनुमान से कम ही रहता है क्योंकि गैर योजना व्ययों में अनुमान से अधिक वृद्धि हो जाती है। इस वर्ष में सरकारी कर्मचारियों के महगाई भत्ते में वृद्धि करने के कारण गैर योजना व्यय अधिक रहा। सरकारी व्यवसायों से कम आधिक्य प्राप्त होने का मुख्य कारण कम उत्पादन, कम विक्रय एव अधिक उत्पादन लागत थे।

आन्तरिक साधनों की कमी का एक महत्वपूर्ण कारण मानसून की प्रतिकूलता भी था जिसके परिणामस्वरूप इस वर्ष में कृषि उत्पादन कम रहा। देश को इसीलिए अपने विकास-कार्यक्रमों के लिए विदेशी सहायता पर निर्भर रहना पडा। इस योजना में हीनार्थ प्रबन्धन की राशि नाममात्र की रखी गयी थी परन्तु आन्तरिक साधनों के अनुमानानुसार उपलब्ध न होने के कारण हीनार्थ प्रबन्धन को बडे परिमाण में उपयोग करना पडा।

सन् १९६६ ६७ वर्ष के लक्ष्य एव उपलब्धियाँ

कृषि

योजना के कृषि-कार्यक्रम में ऐसी परियोजनाओं को सर्वाधिक महत्व दिया गया है जिनके द्वारा खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि करना सम्भव हो सके। कृषि एव सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के लिए योजना में ३३३ करोड रु० का आयोजन है। इसके अतिरिक्त सन् १९६५ ६६ वर्ष में सचालित कार्यक्रमों के निर्वाह पर व्यय की जाने वाली ६७ करोड रु० की राशि (योजना से सम्बन्ध न रखने वाला समझ कर) विकास के लिए चालू व्यय के रूप में उपलब्ध होने का अनुमान था। कुल निर्धारित राशि में से २६८ करोड रु० कृषि कार्यक्रमों और शेष सामुदायिक विकास आदि के

लिए आयोजित था। कृषि कार्यक्रमों में कृषि उत्पादन पर ८५ करोड़ रु०, लघु सिंचाई पर ८८ करोड़ रु०, भूमि-सुरक्षा पर २६ करोड़ रु०, १६ करोड़ रु० पशु-पालन पर व्यय किया जाना था।

योजना में सम्मिलित कृषि-कार्यक्रमों की विशेषता यह थी कि केन्द्रीय सरकार को इन कार्यक्रमों में अधिक सक्रिय भाग लेना था और केन्द्र सरकार द्वारा किये जाने वाला आयोजित व्यय को सन् १९६५-६६ की तुलना में सन् १९६६-६७ में अधिक रखा गया।

तालिका सं० ६१—सन् १९६६-६७ वर्ष की योजना के कृषि-उत्पादन के लक्ष्य एवं उपलब्धियाँ

मद	उत्पादन-लक्ष्य	वास्तविक उत्पादन	वास्तविक उपलब्धि का लक्ष्य से प्रतिशत
खाद्यान्न (लाख टन)	९७०	७४२ ०	७६ ५
तिलहन (लाख टन)	९८ ९	८२ ३	८३ २
गन्ना (गुड़ में लाख टन)	१२६ ९	९५ ०	७४ ९
कपास (लाख गाँठ)	६३ ०	४९ ७	७८ ९
जूट (लाख गाँठ)	६९ २	५२ ६	७७ ४
नाइट्रोजिनस खाद का उपभोग (हजार टन)	७०० ०	८४० ०	१२० ०
कृषि उत्पादन का निर्देशांक (१९४९-५०=१००)	—	१३२ ०	—
खाद्यान्नों का निर्देशांक	—	१२३ ८	—

इस तालिका से ज्ञात होता है कि सन् १९६६-६७ वर्ष की योजना के कृषि-उत्पादन के लक्ष्यों की पूर्ति नहीं हो सकी जिसका प्रमुख कारण इस वर्ष में वर्षा की कमी थी। इस योजनाकाल में कृषि उत्पादन में लगभग ५% की कमी सन् १९६५-६६ की तुलना में हुई। खाद्यान्नों के उत्पादन में सन् १९६५-६६ की तुलना में २ ४% की वृद्धि हुई।

सिंचाई

योजना के सिंचाई-कार्यक्रमों में सर्वाधिक प्राथमिकता उन परियोजनाओं को दी गयी है जिन पर कार्य चल रहा था तथा जिनका निर्माण-कार्य अन्तिम अवस्था में था। पूर्ण हुई परियोजनाओं से उपलब्ध सिंचाई-सुविधाओं के प्रभावशाली उपयोग को भी महत्व प्रदान किया गया था। ऐसी परियोजनाओं, जिन पर अभी कम काम हुआ था, पर पुनः विचार किया गया जिससे अन्य आवश्यक परियोजनाओं को अधिक साधन उपलब्ध हो सकें। योजना में निर्धारित १२४ २८ करोड़ रु० का अधिकतर भाग चालू परियोजनाओं को पूर्ण करने के लिए ही निर्धारित किया गया। १०४ करोड़

रु० की राशि म टेनूघाट बांध (Tenughat Dam) और फरक्का बरेज (Farakka Barrage) पर होन वाले निर्माण व्यय की राशि सम्मिलित नही है। टेनूघाट बांध पर ३ करोड रु० केन्द्र सरकार के उद्योग एव खनिज विकास मन्त्रालय द्वारा और फरक्का बांध पर १२ ५ करोड रु० केन्द्र सरकार के यातायात एव सचार मन्त्रालय द्वारा व्यय किया जाना था। योजना की बडी एव मध्यम श्रेणी की परियोजनाओं द्वारा २८ लाख एकड अतिरिक्त भूमि को सिंचाई सुविधाएँ सन १९६६ ६७ वष म उपलब्ध होनी थी जिसम से २० लाख एकड भूमि पर इन सुविधाओं का उपयोग किए जाने का अनुमान था। सन १९६६ ६७ वष म ३९ लाख एकड अतिरिक्त भूमि म सिंचाई की गयी जो लक्ष्य से लगभग दुगुनी थी।

शक्ति

शक्ति के लिए सन् १९६६ ६७ वष के लिए ३४० करोड रु० का आयोजन किया गया है जबकि सन १९६५ ६६ वष म इस मद पर ३८३ करोड रु० व्यय होने का अनुमान था। ३४० करोड रु० की राशि म से २१६ करोड रु० शक्ति के उत्पादन ८० करोड रु० शक्ति के सचारण एव वितरण तथा ४४ करोड रु० ग्रामीण विद्युतीकरण क लिए आयोजित था। सन १९६५ ६६ वष के अन्त म देश भर म १०२० लाख किलोवाट शक्ति की उत्पादनक्षमता थी। सन १९६६ ६७ वष म २० लाख किलोवाट अतिरिक्त शक्ति उपाजन की क्षमता बढाने का लक्ष्य है। चालू परियोजनाओं की पूर्ति को सर्वाधिक प्राथमिकता प्रदान की गयी थी। अन्तरराज्य (Inter state) लाइनें डालने का भी आयोजन योजना मे किया गया है। सन् १९६६ ६७ वष म लगभग ६४ ००० पम्प (Pumps) एव ट्यूबवल का विद्युतीकरण किये जान का लक्ष्य था। सन १९६६ ६७ वष म १२ लाख किलोवाट शक्ति उत्पादनक्षमता म वृद्धि हुई।

उद्योग एव खनिज

सन् १९६६ ६७ वष की योजना म उद्योग एव खनिज विकास के लिए ४७८ करोड रु० का आयोजन किया गया था जबकि सन १९६५ ६६ म इस मद पर ४५५ करोड रु० व्यय होन का अनुमान था। ४७८ करोड रु० की राशि म से ४४६ करोड रु० केन्द्र सरकार द्वारा, २८ करोड रु० राज्य सरकारो तथा शेष राशि यूनियन-क्षेत्रो द्वारा विनियोजित किया जाना था। केन्द्रीय सरकार की आयोजित राशि म से ३५० करोड रु० इस्पात उद्योग भारी इन्जीनियरिंग तथा मशीन निर्माण उद्योगो खनिज विकास एव अलौह धातुओं खनिज तल की खोज एव शोधन तथा रासायनिक खाद उद्योग म विनियोजित किया जाना था। औद्योगिक वित्तीय सस्थाओ की सहायताथ ५२ करोड रु० का आयोजन किया गया। राज्य सरकारो द्वारा औद्योगिक विकास निगमो की कायवाहियों को विस्तृत किया जाना था तथा विकास करन का आयोजन भी राज्य सरकारों द्वारा किया गया।

योजना में इस्पात, अल्यूमिनियम, रासायनिक खाद, सीमेंट, कास्टिक सोडा, कागज तथा मशीनों के औजार उद्योगों की उत्पादनक्षमता बढ़ाने और शेष उद्योगों में सन् १९६५-६६ की तुलना में अधिक उत्पादन करने का लक्ष्य रखा गया है।

लोहा एवं इस्पात उद्योग के विकास के लिए ११० करोड़ रु० के आयोजन में से ८२ करोड़ रु० भिलाई, राउरकेला तथा दुर्गापुर के लोहे एवं इस्पात के कारखानों का विस्तार करने के लिए आयोजित था। शेष राशि में से २७.४ करोड़ रु० बुकारो इस्पात कारखाने की स्थापनार्थ आवंटित किया गया। भारी इंजीनियरिंग तथा मशीन निर्माण उद्योग के आयोजित व्यय ९८ करोड़ रु० में से ८१ करोड़ रु० उन परियोजनाओं की पूर्ति के लिए है जो पूर्ण होने के निकट थीं। इन परियोजनाओं में भोपाल, हरिद्वार, तिरुचि, हैदराबाद के भारी बिजली के सामान के कारखाने, भारी इंजीनियरिंग निगम राँची तथा खनिज एवं सहायक यन्त्र परियोजना, दुर्गापुर सम्मिलित थीं। हिन्दुस्तान मशीन टूल्स के बंगलौर, पिंजौर (Pinjore), केरल तथा हैदराबाद के कारखानों का विस्तार भी किया जाना था। रासायनिक खाद के कारखानों की स्थापना के महत्व का ध्यान में रखते हुए इन कारखानों की मशीनें एवं अन्य सामान का निर्माण करने हेतु दो परियोजनाओं की प्रारम्भिक जाँच-पड़ताल का आयोजन किया गया।

खनिज तेल की खोज एवं शोधन-कार्यक्रमों के अन्तर्गत कोयली (Koyali) योजना तथा बरौनी (Barauni) के तेल शोधन के कारखानों की पूर्ति तथा मद्रास में नया तेलशोधन कारखाना तथा सरकारी एसो लुब्रीकेंट तेल परियोजना (Govt Esso Lub Oil Project) के निर्माण का आयोजन किया गया। कच्चे तेल का उत्पादन ३५ लाख टन (सन् १९६५-६६ में) से बढ़कर सन् १९६६-६७ में ६० लाख टन होने का अनुमान है। इसी प्रकार तेल शोधनक्षमता १०.८ लाख टन से बढ़कर १६० लाख टन हो जानी थी। योजना में ४६ करोड़ रु० का आयोजन कोयला, कच्चा लोहा, खेतरी ताम्र परियोजना तथा निवेली लिग्नाइट निगम (Neyveli Lignite Corporation) के विकास-कार्यक्रमों के लिए किया गया था।

योजना में रासायनिक खाद के नामरूप (Nomrup) गोरखपुर तथा दुर्गापुर के कारखानों की पूर्ति तथा कोचीन एवं मद्रास के नये कारखानों का निर्माण-काम प्रारम्भ करने का आयोजन था। Trombay Fertiliser Project तथा FACT Alwaye के विस्तार करने का भी आयोजन था। औद्योगिक क्षमता एवं उत्पादन के लक्ष्य तालिका न० ९२ के अनुसार निर्धारित किये गये हैं।

इस तालिका से ज्ञात होता है कि औद्योगिक क्षेत्र के अधिकतर लक्ष्यों की पूर्ति इस योजनाकाल में नहीं की जा सकी।

यातायात एवं संचार

इस मद के अन्तर्गत भी चालू परियोजनाओं की पूर्ति तथा नये नयी परि

तालिका म० ९२—१९६६ ६७ वर्ष की योजना के औद्योगिक लक्ष्य

मद	१९६६ ६७ के लक्ष्य		१९६६ ६७ वर्ष म उपलब्धि		वास्तविक उत्पादन का लक्ष्य से
	क्षमता	उत्पादन	क्षमता	उत्पादन	प्रतिशत
(१) इस्पात क ढेले (लाख टन)	८९	७०	७६	६६ १	९४
(२) तयार इस्पात (लाख टन)	६७	५२	५५	४४ २	८५
(३) बिक्री क लिए पिड लोह (लाख टन)	१५	१३	१२	१० १	७८
(४) अल्यूमानियम (हजार टन)	५०	३५	९३	७४ २	२१२
(५) मशीनों के औजार (लाख रु०)	५१००	३५००	४५००	२९९५	८६
(६) बाईसिकिल (लाख म)	२००	१८०	१६७ ९	१७१ ९	९५
(७) सिलाई की मशीनें (हजार)	६५०	६००			
(८) नाइट्रोजिनस खाद (N) (हजार टन)	६६६ ५	४००	५८५	२९३	७३
(९) फास्फेटिक खाद P_2O_5) (हजार टन)	४००	२००	२३७	१४४	७२
(१०) कागज आदि (हजार टन)	७००	५८०	७११ २	५८० ०	१००
(११) अखबारी कागज (लाख टन)	५०	३०	३० ०	२९ ०	१००
(१२) सीमेन्ट (लाख टन)	१४८	१२५	१२२ २	११० ७	८९
(१३) सूती वस्त्र (मिल के बने) (लाख मीटर)		५२५००	—	४२०२०	८०
(१४) जूट (हजार टन)	१२१९	१३५०	१२००	११००	८२
(१५) शकर (लाख टन)	३३ ०	३४	३३ ८	२१ ५	६३

योजनाओ, जो सुरक्षा अथवा अन्य दृष्टिकोण से आवश्यक हो को प्राथमिकता दी गयी है। इस मद के कुल आयोजन ४२८ करोड रु० म से २२५ करोड रु० रेलो १०४ ७१ करोड रु० सडको के निर्माण १६ ०५ करोड रु० सडक यातायात १४ ९५ करोड रु० बन्दरगाहो १२ ५० करोड रु० फरक्का बाँध ३० लाख रु० जहाजी यातायात २ २५ करोड रु० आन्तरिक जल यातायात ८४ लाख रु० प्रकाशगृहो, १ ९४ करोड रु० पर्यटन (Tourism) १९ ५६ करोड रु० हवाई यातायात २६ ३० करोड रु० डाक एव तार २ ५३ करोड रु० अन्य सचार साधनों तथा १ ९० करोड रु० आकाशवाणी प्रसारण के लिए आयोजित किया गया।

तृतीय योजना म जिन रेलवे लाइनो का काय प्रारम्भ हुआ था उनकी पूर्ति के लिए सन १९६६ ६७ वर्ष की योजना म आयोजन किया गया। झुण्ड (Jhund) से काण्डला तक की बडी लाइन का काय तेजी से किया जाना था। बलाडिला कोट

बनासा लाइन का निर्माण-कार्य में तेजी से विकास किया जाना था। पोकरन से जैसलमेर की नयी लाइन डालने का कार्य प्रारम्भ किया जाना था। लगभग ७०० किलोमीटर रेलमार्ग का विद्युतीकरण सन् १९६६-६७ में किया जाना था। [illegible]-दुर्गापुर तथा कानपुर, टूंडला मार्गों के विद्युतीकरण का कार्य प्रारम्भ किया गया। केन्द्रीय सड़क यातायात निगम को और अधिक सड़क गाड़ियाँ क्रय करनी थीं और राज्य सरकारें द्वारा सड़क यातायात के वाहन संचालित करने थे। प्रत्येक बन्दरगाह पर आवश्यक यन्त्रादि में सुधार करने का आयोजन था जिससे अधिक खाद्यान्नों, खनिज तेल उत्पादन एवं अन्य निर्यात एवं आयात की वस्तुओं का लाना-ले जाना सम्भव हो सके। साख उपलब्ध होने पर जहाजी यातायात की क्षमता जो तीसरी योजना के अन्त में लगभग १५ ४ लाख GRT थी में वृद्धि की जानी थी। सन् १९६६ ६७ वर्ष में वर्तमान आकाशवाणी-स्टेशनों को मजबूत बनाया जाना था और सीमा-क्षेत्रों के लिए नवीन स्टेशनों की स्थापना की जानी थी। विदेशी प्रसारण को दृढ़ बनाने हेतु दिल्ली के २५० KWSW के दो अतिरिक्त प्रसारण-केन्द्र स्थापित किये जाने थे।

राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय एवं मूल्य स्तर

सन् १९६६ ६७ की योजना के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय सन् १९६०-६१ के मूल्यों के आधार पर १५१७३ करोड़ रु० थी जो सन् १९६५ ६६ की तुलना में लगभग १% अधिक थी। दूसरी ओर, प्रति व्यक्ति आय सन् १९६५-६६ में ३०७ ३ (१९६०-६१ के मूल्यों पर) से घटकर सन् १९६६ ६७ में ३०२ ४ हो गयी। सन् १९६६-६७ वर्ष में थोक मूल्य-निर्देशांक १६५ १ से बढ़कर १९१ ३ हो गया अर्थात इसमें लगभग १६% की वृद्धि हुई। औद्योगिक उत्पादन का निर्देशांक सन् १९६५ में १५३ ८ था जो सन् १९६६ में घटकर १५० ७ हो गया अर्थात् लगभग २% की कमी हो गयी। इसी प्रकार कृषि-उत्पादन के निर्देशांक में भी कमी हुई।

सन् १९६६ ६७ वर्ष की योजना के इन तथ्यों से ज्ञात हुआ कि योजना को कठिन परिस्थितियों में होकर गुजरना पड़ा और सभी क्षेत्रों में उत्पादन में लक्ष्यों के अनुरूप वृद्धि नहीं हो सकी।

सन् १९६७-६८ की वार्षिक योजना का व्यय एवं प्राथमिकताएँ

इस योजना में सरकारी क्षेत्र का कुल व्यय २ २४६ करोड़ रु० अनुमानित किया गया है जिसमें से १,१७२ करोड़ रु० केन्द्र सरकार द्वारा १,०१० करोड़ रु० राज्य सरकारों द्वारा तथा ६४ करोड़ रु० केन्द्र द्वारा प्रचालित क्षेत्रों द्वारा विकास-परियोजनाओं पर व्यय किया जाना था। यह राशि विभिन्न मदों पर निम्न अंकित दी गयी तालिकानुसार आयोजित थी।

व्यय-वितरण की इस तालिका से ज्ञात होता है कि सन् १९६७-६८ की योजना में सर्वाधिक महत्व कृषि उत्पादन एवं कृषि के सहायक अन्य कार्यक्रमों को दिया गया। सहायक कार्यक्रमों में ग्रामीण विद्युतीकरण द्वारा सिंचाई की व्यवस्था उल्लेखनीय

तालिका सं० ६३—सन् १९६७ ६८ की योजना का व्यय वितरण
(करोड रुपया म)

विकास की मद	१९६७ ६८ के आयोजित व्यय	१९६७ ६८ योजना का वास्तविक व्यय	कुल वास्तविक व्यय से प्रतिशत
१	२	३	४
कृषि कार्यक्रम	२६६ ६५	२४८	११ ८७
सामुदायिक विकास एवं सहकारिता	७६ ८५	७०	३ ३४
सिंचाई एवं बाढ़ नियन्त्रण	१४६ ७७	१४४	६ ६२
शक्ति	३८४ ७८	३६२	१८ ७४
उद्योग एवं खनिज	५२० १६	४७२	२२ ६०
ग्रामीण एवं लघु उद्योग	४३ ५५	४४	२ १०
यातायात एवं संचार	४१८ ७६	३९३	१८ ८३
समाज सेवाएं	३३० ०३	२६४	१४ १०
अन्य कार्यक्रम	२५ ४६	३१	१ ५०
	२,२४६ ०७	२०९०	१०० ०

खाद का उत्पादन कीटाणुनाशक रसायनों का उत्पादन तथा कृषि यन्त्रों का उत्पादन आदि सम्मिलित था। कृषि विकास के लिए इस वर्ष म कुल ५२३ २७ करोड रु० का आयोजन था जिसमें सामुदायिक विकास सहकारिता, सिंचाई आदि पर किया जाने वाला व्यय भी सम्मिलित था।

योजना का वास्तविक व्यय आयोजित व्यय से ७% कम रहा। कृषि कार्यक्रमों और उद्योग एवं खनिज पर आयोजित व्यय से कम राशि व्यय की गयी। सन् १९६७ ६८ वर्ष मे विकास व्यय का केवल ११ ८७% कृषि विकास पर उपयोग हुआ जबकि उद्योगों पर कुल व्यय का २२ ६% व्यय किया गया। उद्योगों पर इस प्रकार कृषि की तुलना मे लगभग दुगनी राशि व्यय की गयी। शक्ति एवं यातायात तथा संचार पर योजना के अन्तर्गत पर्याप्त राशि व्यय की गयी।

अर्थ-साधन

सन् १९६७ ६८ वर्ष की योजना के आयोजित व्यय २ २४६ करोड रु० म से १ २३६ करोड रु० केन्द्रीय सरकार की परियोजनाओं और १ ०१० करोड रु० राज्य सरकार की परियोजनाओं पर व्यय किया जाना था। इस योजना के कुल व्यय का लगभग ५२% भाग बजट के साधनों से प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया जबकि सन् १९६६ ६७ की योजना के वास्तविक अन्तिम अनुमानों के अनुसार इसके कुल व्यय का केवल ४४% भाग बजट के साधनों से प्राप्त होने का अनुमान था। सन् १९६५ ६६ वर्ष म बजट के साधनों से ६८१ करोड रु० प्राप्त होने का अनुमान लगाया

गया था जबकि सन् १९६७-६८ में इन साधनों से १,१३३ करोड़ रु० प्राप्त करने का आयोजन किया गया। नीचे दी गयी तालिका से ज्ञात होता है कि बजट के साधनों में से चालू आय के आधिक्य, सरकारी व्यवसायों से आधिक्य तथा अतिरिक्त कर से प्राप्त होने वाली राशियों में अत्यधिक वृद्धि होने का अनुमान लगाया गया। सन् १९६७-६८ वर्ष की योजना के लिए १,००१ करोड़ रु० की विदेशी सहायता प्राप्त होने का अनुमान था जबकि सन् १९६६-६७ में ९०० करोड़ रु० की विदेशी सहायता प्राप्त हुई थी। सन् १९६६-६७ वर्ष की योजना के समान ही सन् १९६७-६८ वर्ष में भी हीनार्थ प्रबन्धन की राशि अत्यन्त न्यून (१४ करोड़ रु०) रखी गयी है परन्तु सन् १९६६-६७ के अन्तिम वास्तविक अनुमानों के अनुसार इस वर्ष १४ करोड़ रु० के आयोजित हीनार्थ प्रबन्धन के विरुद्ध ३५० करोड़ रु० का हीनार्थ प्रबन्धन किया गया।

तालिका सं० ६४—सन् १९६७-६८ वर्ष की योजना के अर्थ-साधन

(करोड़ रुपयों में)

मद	१९६७-६८ वर्ष में प्रस्तावित साधन	१९६७-६८ में साधनों से सम्भावित उपलब्धि (अन्तिम अनुमान)
(अ) बजट के साधन		
१—चालू राजस्व का आधिक्य (वर्तमान करों के आधार पर)	२४६	—१२
२—रेलों का अनुदान	—२६	—६०
३—अन्य सरकारी उद्योगों से आधिक्य	२३९	१०८
४—अतिरिक्त कर एवं सरकारी उद्योगों से अतिरिक्त आधिक्य	३३२	२६६
५—सार्वजनिक ऋण शुद्ध	२०८	२००
६—लघु बचत	१३६	११०
७—स्वर्ण बॉण्ड, इनामी बॉण्ड अनिवार्य बचत तथा वार्षिकी जमा	१९	२७
८—अनिधिक ऋण शुद्ध	८६	१००
९—विविध पूँजीगत प्राप्तियाँ (शुद्ध)	—५१	३२
(अ) का योग	१,१८२	८५५
(ब) विदेशी सहायता (पी० एल० ४८० के साधनों सहित)	९९६	९९१
(स) हीनार्थ प्रबन्धन	१४	३५९
(द) साधनों की कमी	५४	—
योग	२,२४६	२,२०५

अब साधनों की तालिका से ज्ञात होता है कि सन १९६७ ६८ की योजना में साधनों के सम्बन्ध में वही परिस्थिति जारी रही जो सन् १९६६ ६७ में थी। चालू राजस्व के अतिरेक में प्रत्येक योजना के समान अनुमानानुसार राशि प्राप्त नहीं हो सकी अर्थात् सरकार का चालू व्यय अनुमान से कहीं अधिक रहने के कारण इस साधन के बजाय २४६ करोड रु० का अतिरेक प्राप्त होने से ११ करोड रु० की हीनता रही। रेलों के अनुदान की ऋणात्मक राशि भी अनुमान से अधिक रही क्योंकि इस वर्ष में कोयले के मूल्यों में वृद्धि होने के कारण रेलों का सचालन-व्यय बढ गया। अन्य सरकारी व्यवसायों से भी अनुमान से लगभग १०० करोड रु० कम प्राप्त हुआ। बजट के अन्य खातों में साधनों की उपलब्धि अनुमान के लगभग बराबर रहा। योजना के कुल आयोजित व्यय का ५३% भाग आन्तरिक साधनों से प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया था परन्तु वास्तविक साधनो की उपलब्धि कुल व्यय की केवल ३९% रहा। इसी कारण साधनों की कमी का समस्त भार हीनार्थ प्रबन्धन पर पड़ा। और हीनार्थ प्रबन्धन की राशि १४ करोड रु० के स्थान पर ३५६ करोड रु० होने का अनुमान है। ३६ करोड रु० जो साधनों की न्यूनतम बनायी गयी उसके भी अन्तत हीनार्थ प्रबन्धन में ही सम्मिलित होने की सम्भावना है। विदेशी सहायता की प्राप्ति अनुमानों के अनुसार हुई।

सन १९६७ ६८ की योजना के साधनों की उपलब्धि उस समय से सम्बद्ध है जब योजना का व्यय २२४१ करोड रु० अनुमानित था। वित्तीय साधनों में सम्बन्धित वास्तविक उपलब्धि के अनुसार योजना के व्यय का ४२ ६% भाग अर्थात् ८८४ करोड रु० आन्तरिक साधनों से प्राप्त हुआ ९७० करोड रु० की विदेशी सहायता प्राप्त हुई तथा २२४ करोड रु० से हीनार्थ प्रबन्धन किया गया।

सन् १९६७ ६८ वर्ष की योजना के लक्ष्य एवं कार्यक्रम

सन् १९६७ ६८ वर्ष की योजना में प्रत्येक क्षेत्र के व्यय का अधिकतर भाग (विशेषकर सिंचाई शक्ति और उद्योग) उन परियोजनाओं के लिए आयोजित किया गया है जो पहले से चल रही थी। नवीन परियोजनाओं में उनको सम्मिलित किया गया है जिनका सम्पूर्ण विवरण तैयार कर लिया गया था अथवा जिनका प्रारम्भिक कार्य पूर्ण हो गया था अथवा पूर्ण होने के समीप था तथा जिनके लिए आवश्यक विदेशी विनिमय की व्यवस्था की जा चुकी थी अथवा व्यवस्था करने के लिए साधन उपलब्ध थे। इस प्रकार इस वर्ष की परियोजनाओं के क्रियान्वयन करने में देर होने की सम्भावना नहीं थी। इस वर्ष की योजना के लक्ष्य निर्धारित करने समय सन् १९६६ ६७ की सम्भावित उपलब्धियो (Achievements) सन् १९६६ ६७ वर्ष में अर्थ व्यवस्था की सामान्य परिस्थितियां विभिन्न परियोजनाओं को कार्यान्वित करने की तत्परता योजना में इस परियोजना के आयोजित व्यय स्थगित चतुर्थ योजना के प्रारूप में सम्मिलित परियोजनाओं, वर्तमान में उपलब्ध उत्पादन-क्षमता के गहन उप

योग तथा उत्पादन के आवश्यक घटकों की उपलब्धि को दृष्टिगत किया गया।

कृषि

सन् १९६७ ६८ वर्ष में पिछले दो वर्षों के प्रतिकूल मानसून के पश्चात्, अच्छे मानसून एवं वर्षा की सम्भावना व्यक्त की गयी जो अब तक की वर्षा की स्थिति से मेल खाती थी। सन् १९६४ ६५ वर्ष में ८९० लाख टन का खाद्यान्न उत्पन्न किया गया, परन्तु सन् १९६५ ६६ एवं सन् १९६६ ६७ वर्ष में प्रतिकूल मानसून के फलस्वरूप उत्पादन सन् १९६४ ६५ के बराबर नहीं हो सका। सन् १९६७ ६८ वर्ष में पिछले दो वर्षों में कृषिक्षेत्र की नवीन कौशलता (New Strategy) के अन्तर्गत कृषि उत्पादनक्षमता बढ़ाने के लिए जो व्यवस्थाएँ की गयी थीं, उनका पूर्णतम उपयोग सम्भव होने की सम्भावना थी। नवीन कौशलता के अन्तर्गत अधिक उत्पादन देने वाली फसलों एवं बीजों की व्यवस्था से कृषिक्षेत्र में क्रान्तिकारी प्रगति सम्भव हो सकती है। इसके अतिरिक्त रासायनिक खाद के आयात की व्यवस्था से खाद की पर्याप्त पूर्ति सम्भव होने की सम्भावना थी।

मानसून अनुकूल रहने पर इस वर्ष में १,००० लाख टन खाद्यान्न उत्पन्न होने की सम्भावना की गयी जो सन् १९६४ ६५ के उत्पादन से ९ ७% अधिक थी। उत्पादन का यह लक्ष्य तभी पूर्ण हो सकता था जब खरीफ एवं रबी दोनों ही फसलों में मौसम अनुकूल रहता। इसी प्रकार गैर खाद्यान्न फसलों के उत्पादन में भी सन् १९६४-६५ की तुलना में कम से कम उतनी ही वृद्धि होने का अनुमान है जितना अनुमान खाद्यान्नों के लिए था। यह सम्भावना की जाती है कि कृषि उत्पादन का निर्देशांक सन् १९६७ ६८ में १६६ १ (सन् १९४९ ५०=१००) होगा जबकि सन् १९६६ ६७ के लिए यह १२३ ८ था। इस प्रकार सन् १९६७ ६८ में सन् १९६६-६७ वर्ष की तुलना में कृषि उत्पादन में ३६ ६% की वृद्धि करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

स्थगित चतुर्थ योजना के प्रारम्भ में कृषि उत्पादन की वृद्धि को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है। इसके लिए योजना में नवीन नीति जिसको नवीन कौशलता (New Strategy) का नाम दिया गया था, की घोषणा की गयी थी। इस नवीन नीति के चार मुख्य अंग थे,

(१) जिन क्षेत्रों में सिंचाई-सुविधाएँ उपलब्ध हैं उनमें सघन खेती (Intensive) एवं अधिक उपज देने वाले सुधरे हुए बीज तथा रासायनिक खाद का प्रयोग किया जायगा। सघन कृषि जिला कार्यक्रम एवं सघन कृषिक्षेत्र कार्यक्रम के अन्तर्गत चुने हुए क्षेत्रों में कृषि सम्बन्धी समस्त सुविधाओं को केन्द्रित कर कृषि उत्पादन में वृद्धि की जाय।

(२) कृषि में उपयोग आने वाले उत्पादक घटकों (Inputs)—बीज, खाद, विद्युतशक्ति, सिंचाई, कीटाणुनाशक रसायन, साख एव तान्त्रिक ज्ञान की पूर्ति में वृद्धि की जाय जिससे कृषक को यह घटक पर्याप्त मात्रा में उचित समय पर प्राप्त हो सकें।

(३) भूमि-सुधार एवं अधिक व्यावहारिक एवं उपयोगी कृषि नीति द्वारा कृषक को अधिक उत्पादन करने हेतु प्रोत्साहित किया जाय।

(४) अल्प काल में उपजने वाली फसलों को उगाया जाय जिसमें उपलब्ध भूमि से अधिक उपज प्राप्त की जा सके।

नवीन नीति में भूमि की उत्पादकता बढ़ाने के लिए सघन कृषि को अत्यधिक महत्व दिया गया है परन्तु इस नीति की सफलता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करेगी कि ग्रामों में रहने वाला अशिक्षित कृषक इस कितनी स्वाभाविकता से स्वीकार करता है। सन् १९६७ ६८ वर्ष की योजना में नवीन नीति के कुछ लाभ प्राप्त होने की सम्भावना थी।

कृषिक्षेत्र के लक्ष्य एवं उपलब्धियाँ निम्न प्रकार थीं—

तालिका सं० ९५—कृषिक्षेत्र की उपलब्धियाँ एवं लक्ष्य सन् १९६७ ६८

मद	इकाई	लक्ष्य १९६७ ६८	उपलब्धि	उपलब्धि का लक्ष्य से प्रतिशत
खाद्यान्न	लाख टन	१०००	९५५ ९	९५ ६
तिलहन	लाख टन	९०	८२ ०	९१
गन्ना (गुड)	लाख टन	१२०	९९ ६	८२
कपास	लाख गाँठ	७०	५५ ६	७९
जूट	लाख गाँठ	७४	६३ ७	८५
नाइट्रोजियस खाद का उपभोग (N)	हजार टन	१३५०	११५०	८५
कृषि योग्य भूमि की सुरक्षा	लाख एकड़	२९	३४	९०
अधिक उपज वाले बीजों का उपयोग—भूमि का परिमाण	लाख एकड़	१५०	१५०	१००
कृषि उत्पादन निर्देशांक	(१९४९ ५० =१००)	१६९ १	१६१ ८	९६
खाद्यान्नों के उत्पादन निर्देशांक	(१९४९ ५० =१००)	१६० ५	१५९ ९	९९

इस तालिका से ज्ञात होता है कि सन् १९६७ ६८ की योजना में कृषिक्षेत्र के लक्ष्यों की लगभग पूर्ति करना सम्भव हो सकी। खाद्यान्नों के उत्पादन में विशेष प्रगति हुई। सन् १९६६ ६७ की तुलना में इस वर्ष में खाद्यान्नों के उत्पादन लगभग २०% की वृद्धि और कृषि उत्पादन में लगभग २२% की वृद्धि हुई। योजनाकाल के १७ वर्षों में किसी भी एक वर्ष में कृषि उत्पादन में इतनी अधिक वृद्धि नहीं हुई।

उद्योग

सन् १९६६ ६७ वर्ष में उद्योगों की गिरती हुई स्थिति को ध्यान में रखकर सन् १९६७ ६८ की योजना के औद्योगिक कार्यक्रम निर्धारित किए गए थे। औद्योगिक उत्पादन की माँग में कमी से प्रतीत होता है कि विकास एवं पूँजी निर्माण की गति

मन्द हो गयी थी, परन्तु कृषि-क्षेत्र की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले उद्योगों की वस्तुओं की माँग में इस वर्ष अत्यधिक वृद्धि हुई। रासायनिक खाद, पम्पों—डीजल तथा विद्युत से चलने वाले कीटाणुनाशक रसायन आदि के उद्योगों के उत्पादन में सन् १९६६-६७ वर्ष में पर्याप्त वृद्धि हुई। कृषि सम्बन्धी उद्योगों एवं टिकाऊ वस्तुओं के उद्योगों में उत्पादन और भी अधिक हो सकता था यदि उदार आयात-नीति के फल पूर्णरूपेण इन उद्योगों को प्राप्त हो गये होते। सन् १९६७-६८ वर्ष में कच्चे माल, कल-पुर्जों आदि की पूर्ति में तथा उत्पादित वस्तुओं की माँग में वृद्धि होने से औद्योगिक उत्पादन का स्तर ऊँचा रहने की सम्भावना की गयी थी।

सन् १९६७-६८ की योजना में १९६६-६७ की उपलब्धियों, स्थगित चतुर्थ योजना के प्रारूप के आयोजना तथा प्राथमिकता प्राप्त उद्योगों के उत्पादन, एवं उत्पादनक्षमता की प्रगति बनाये रखने के उद्देश्य को दृष्टिगत करके औद्योगिक कार्य-क्रम निर्धारित किए गये। वर्तमान में उपलब्ध उत्पादनक्षमता का पूर्णतम एवं विविधता के साथ उपयोग करने पर विशेष ध्यान दिया गया। अर्थ-व्यवस्था के वर्तमान साधनों की कठिनाइयों को दृष्टिगत करते हुए सन् १९६७-६८ वर्ष के लिए सरकारी क्षेत्र के औद्योगिक विकास के कार्यक्रमों के लिए ५२० करोड़ रु० का आयोजन किया गया है जो पिछले वर्ष के सम्भावित व्यय से लगभग २२ करोड़ रु० कम है। इस राशि में से ४८३.०२ करोड़ रु० केन्द्रीय सरकार द्वारा, ३६.५३ करोड़ रु० राज्य सरकारों द्वारा एवं ४० लाख रु० केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों द्वारा औद्योगिक विकास पर व्यय किया जाना था। ४८३ करोड़ रु० में से केन्द्र सरकार द्वारा ४८० करोड़ रुपया जारी परि-योजनाओं पर व्यय किया जाना था। इस वर्ष में बरौनी के खाद के कारखाने का निर्माण एवं नामरूप एवं ट्राम्बे के खाद के कारखानों के विस्तार का कार्य प्रारम्भ किया जाना था। गुजरात की आरमोटिक (Armotic) परियोजना का निर्माण, ट्रावनकोर टिटेनियम (Titanium) उत्पाद के कारखाने का विस्तार, दूसरा पन्दिर कारखाने का निर्माण एवं इण्डियन तेलशोधन के कारखाने का निर्माण प्रारम्भ किया जाना था।

सन् १९६७-६८ की योजना में उद्योगों को प्राथमिकता स्थगित चतुर्थ योजना में निर्धारित प्राथमिकताओं के आधार पर दी गयी थी। यह प्राथमिकताएँ निम्न प्रकार थीं—

(अ) कृषिक्षेत्र के औद्योगिक उत्पादन घटक—इनमें रासायनिक खाद, कीटाणु-नाशक रसायन, कृषि फार्मों के औजार एवं यन्त्र तथा अन्य उत्पादन-सम्बन्धी सामग्री के उद्योग सम्मिलित थे।

(आ) धातु एवं मशीन निर्माण उद्योग—इनमें इस्पात, अल्यूमिनियम, जस्ता, यन्त्र निर्माण सम्बन्धी सभी उद्योग सम्मिलित थे।

(इ) मध्य श्रेणी वस्तुएँ—इनमें औद्योगिक रसायन, खनिज तेल, कागज, लोहा एवं इस्पात का ढालना तथा फोर्जिंग, रिफ्रैक्टरीज एवं सीमेंट उद्योग सम्मि-लित हैं।

(ई) ऐसे उद्योग जो आवश्यक उपभोक्ता वस्तुएँ उत्पादित करते है जैसे शक्कर, कपडा एव मिट्टी का तेल।

तालिका स० ६६—सन् १९६७ ६८ योजना के औद्योगिक क्षेत्र के लक्ष्य एव उपलब्धिया

मद	इकाई	१९६७ ६८ के लिए लक्ष्य	१९६७ ६८ की उपलब्धि	उपलब्धि का लक्ष्य से प्रतिशत
(१)	(२)	(३)		
तैयार इस्पात	लाख टन	५७	४१ ५	७५
विक्रय के पिण्ड लोह	लाख टन	१२	११ २	९३
इस्पात के ढेले	लाख टन	७५	६२ ८	८५
धातु शोधन एव अन्य भारी यान्त्रिक सामान	हजार टन	२००	१८०	९०
मशीनो के औजार	करोड रु०	२९ ०	२४ ०	८३
औद्योगिक एव वाणिज्य प्रयोजन औजार	करोड रु०	१० ०	७ ८५	७९
व्यावसायिक मोटर गाडियाँ	हजार स०	४० ०	२७ ८	६९
सीमेन्ट	लाख टन	१३२	११४ ६	९७
मिल का बना कपडा	लाख मी०	४२ ०००	४२ ०००	१००
शक्कर	लाख टन	२४	२२ २	१००
नाइट्रोजियस खाद	N के हजार टन	५२०	३८०	६७
फास्फटिक खाद	P_2O_5 के हजार टन	२६६ ०	२००	७८
कोयला	लाख टन	७२५	७१०	९७
कच्चा लोहा	लाख टन	२६५	२७०	१०२
शोधित खनिज तेल		१४२	१८६	९९

औद्योगिक उपलब्धियो की तालिका से ज्ञात होता है कि सन् १९६७ ६८ की योजना के अधिकतर महत्वपूर्ण उद्योगो मे लक्ष्यो की पूर्ति नही हो सकी। नाइट्रोजियस खाद व्यावसायिक तयार इस्पात एव औद्योगिक औजारो का उत्पादन लक्ष्य से अधिक कम रहा। सन् १९६७ वर्ष मे औद्योगिक उत्पादन का निर्देशांक १५१ ४ था जो सन् १९६६ के निर्देशांक से एक बिन्दु कम था।

सन् १९६७ ६८ योजनाकाल मे १५ लाख एकड भूमि के लिए अतिरिक्त सिचाई प्रदान करने का आयोजन किया था जबकि इस वर्ष मे २० लाख एकड भूमि के लिए अतिरिक्त सुविधाओ का आयोजन किया गया और २३ लाख एकड भूमि मे

अतिरिक्त सिंचाई-सुविधाओं का उपयोग किया गया। सन् १९६७ ६८ वर्ष में २०८ ९ लाख एकड़ भूमि के लिए सिंचाई-सुविधाएँ उपलब्ध थीं जिसमें से १७४८ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई-सुविधाओं का उपयोग किया गया। इस वर्ष में १८ ? लाख K W की शक्ति-उत्पादन में वृद्धि की गयी जबकि लक्ष्य २० ४६ लाख किलोवाट रखा गया था।

सन् १९६७ ६८ की योजना के अन्तर्गत रेलों द्वारा ढोया जाने वाला सामान १९९६ लाख टन हो गया और रेलों के यात्री यातायात में लगभग ८% की वृद्धि हुई। इस वर्ष में ६००० किलोमीटर लम्बी पक्की सड़कें और २१००० किलोमीटर लम्बी कच्ची सड़कों का निर्माण किया गया। व्यापारिक मोटर गाड़ियों की संख्या ३३६ १ हजार से बढ़कर ?४? हजार हो गयी और जहाजी यातायात की क्षमता १८८० हजार GRT से बढ़कर १९?० हजार GRT हो गयी। इस वर्ष में ४०० तार के कार्यालय तथा ८? हजार नये टेलीफोन स्थापित किये गये। ? आकाशवाणी प्रसारण केन्द्रों की स्थापना की गयी।

शिक्षा के क्षेत्र में भी इस वर्ष में सुधार हुआ। ६-११ वर्ष के आयु-वर्ग में स्कूल जाने वाले बच्चों का प्रतिशत ७९ ६ से बढ़कर ८० ९ हो गया, ११ से १४ वर्ष के आयु वर्ग में यह प्रतिशत ३२ ६ से बढ़कर ३४ ३ हो गया और १४ से १७ वर्ष के आयु-वर्ग में १८ ५% से बढ़कर १९ ?% हो गया। अस्पतालों की संख्या में ३०० की और अस्पताल की शय्याओं की संख्या में ९००० की वृद्धि हुई तथा सम्भावित जीवनकाल में ५१ २ वर्ष से बढ़कर ५? ? वर्ष हो गया।

राष्ट्रीय आय, मूल्य स्तर एवं पूँजी निर्माण

सन् १९६७ ६८ वर्ष में थोक मूल्य निर्देशांक १९१ ३ (सन् १९६६ ६७ में) से बढ़कर २१२ ४ हो गया अर्थात मूल्य-स्तर में ११% की वृद्धि हुई। इस वर्ष में खाद्यान्नों का थोक मूल्य निर्देशांक १७८ ५ से बढ़कर २२२ ८ हो गया अर्थात् इसमें २५% की वृद्धि हुई। दूसरी ओर निर्मित वस्तुओं के मूल्य निर्देशांक में १% से भी कम की वृद्धि हुई। इस प्रकार मूल्य-स्तर की वृद्धि का मुख्य कारण खाद्यान्नों के मूल्यों की वृद्धि था।

सन् १९६७ ६८ वर्ष में राष्ट्रीय आय सन् १९६० ६१ के मूल्यों के आधार पर १६,८२५ करोड़ रु० अनुमानित है जो पिछले वर्ष की राष्ट्रीय आय से लगभग ९% अधिक थी। इस वर्ष में प्रति व्यक्ति आय ३०२ ४ (सन् १९६६ ६७) से बढ़कर ३२१ ? रु० होने का अनुमान है अर्थात प्रति व्यक्ति आय में ६% की वृद्धि हुई। योजना में चालू मूल्यों के आधार पर राष्ट्रीय आय में ४२७५ करोड़ रु० की वृद्धि हुई और सन् १९६० ६१ के मूल्यों के आधार पर १३५२ करोड़ रु० की राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई। इस वर्ष में सकल पूँजी-निर्माण ३२०० करोड़ रु० होने का अनुमान है।

सन् १९६८ ६९ की वार्षिक योजना

सन् १९६८ ६९ वष की योजना को योजना आयोग द्वारा पिछले वष की अनुकूल परिस्थितियों के फलस्वरूप अथ व्यवस्था म उदय हुए सुधारो तथा सन् १९६८ ६९ वष म अथ व्यवस्था को चतुथ योजना के प्रगति पथ की प्रारम्भिक तयारी करने के स दभ म तयार किया गया था। यह योजना जुलाई सन् १९६८ म ससद म प्रस्तुत की गयी। इस योजना क दिशा निर्देश के प्रमुख तत्व निम्न प्रकार थे

(१) अथ व्यवस्था की वतमान आर्थिक कठिनाइयो के स दभ म विकास की गति को इतना ही रखा जायगा जो मुद्रा प्रसार के दबाव के बगैर बिना ही प्राप्त की जा सकती हो। अथ व्यवस्था म साधनो की स्थिति अत्यत कठिन होने के कारण वतमान म निर्मित व्यवस्थाओं एव सगठनो (Infra structure) का पूणत उपयोग करने को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया था। अथ व्यवस्था म जो विभिन्न क्षेत्रों म विकास म रुकावटें पड रही थी उन रुकावटों को दूर करने का प्रयत्न भी किया जाना था।

(२) कृषिक्षेत्र के विकास को सर्वाधिक प्राथमिकता प्रदान की गयी थी। उन समस्त विकास कायक्रमों को जिनमे कृषि विकास को प्रत्यक्षरूप से सहायता मिलती है, अत्यधिक महत्व दिया गया। कृषि विकास की नवीन नीति जो सन् १९६६ ६७ से सचालित की गयी थी को जारी रखा गया और इसके अन्तगत गहन कृषि अधिक उपज वाले बीजों का आयोजन तथा बहु फसल कायक्रमो का विस्तार किया जाना था।

(३) बडी सिंचाई परियोजनाओ म उन परियोजनाओ के पर्याप्त अथ साधन की व्यवस्था की गयी थी जिनमे सिंचाई का लाभ शीघ्र प्राप्त होने की सम्भावना थी। लघु सिंचाई कायक्रमो का जो विद्युतकरण क साथ सचालित होती था पर विशेष ध्यान दिया जाना था।

(४) औद्योगिक क्षेत्र म सन् १९६८ ६९ वष म बेकार पडी अथवा अल्प उपयोग की जाने वाली क्षमता का पूणत उपयोग कर औद्योगिक प्रगति को तीव्र गति देने क प्रयत्न किय जाने थे। सरकारी क्षत्र के औद्योगिक व्यवसायों की काय कुशलता एव काय-सचालन म सुधार किये जाने थे तथा ऐसे उद्योगों जिनके द्वारा कृषिक्षेत्र को आवश्यक कृषि सामग्री जसे रासायनिक खाद कीटाणुनाशक रसायन ट्रैक्टर डिजिल इजिन पम्प आदि उपलब्ध होते हैं म अधिक विनियोजन को प्रोत्साहित किया जाना था।

(५) यातायात एव सचार के क्षेत्र म उन परियोजनाओं का पूर्ति पर विशेष ध्यान दिया जाना था जिनकी पूर्ति शीघ्र ही होने वाली थी।

(६) समाज-सेवाओ के कायक्रमों म परिवार नियोजन को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया था।

उपयुक्त व्यय वितरण से ज्ञात होता है कि यद्यपि सन् १९६८ ६९ वर्ष में कृषि उत्पादन को सर्वाधिक महत्व दिया गया, फिर भी कृषि विकास के लिए आयोजित व्यय सन् १९६७ ६८ की तुलना में कम था। इसके अतिरिक्त सामुदायिक विकास तथा सहकारिता शक्ति ग्रामीण एव लघु उद्योगों तथा ग्रामीण कायशालाओं के लिए पिछले वर्ष की तुलना में कम व्यय आयोजित किया गया। दूसरी ओर सगठित उद्योगो शिक्षा वैज्ञानिक शोध स्वास्थ्य परिवार नियोजन तथा पिछड़ी जातियो के कल्याण के लिए इस वर्ष अधिक व्यय आवटित किया गया। कृषि विकास के लिए कम व्यय का आयोजन इसलिए किया गया कि इस क्षेत्र को वित्तीय साधन सहकारी सस्थाओं तथा भूमिबन्धक अधिकोषों आदि को सुदृढ कर प्रदान करने की व्यवस्था की गयी थी। इस प्रकार सरकार द्वारा जो ऋण कृषिक्षेत्र को प्रदान किए जाने थे उनमें कमी करने की व्यवस्था की गयी थी।

योजना का अनुमानित वास्तविक व्यय योजना के आयोजित व्यय के लगभग बराबर है। योजना मे सिंचाई एव शक्ति को छोडकर अन्य सभी मदो पर अनुमानित व्यय आयोजित व्यय के लगभग बराबर है। केन्द्र द्वारा योजना कायक्रमो पर १,१११ ८ करोड रु० व्यय किया गया जो आयोजित व्यय से ९६ करोड रु० कम है। दूसरी ओर राज्य द्वारा १ ०५९ ९ करोड रु० व्यय किया गया जो उनके आयोजित व्यय से ८७ ६ करोड रु० अधिक है

अर्थ साधन

सन् १९६८ ६९ की योजना के अर्थ साधनो के अनुमान केन्द्रीय सरकार के बजट अनुमानों तथा राज्य सरकारो के साथ हुए विचार विमर्श पर आधारित थे। आन्तरिक बजट के साधनो से इस वर्ष में १ १५४ करोड रु० तथा विदेशी सहायता से ८७६ करोड रु० प्राप्त होने का अनुमान है। इस प्रकार योजना के कुल व्यय की शेष राशि ३०७ करोड रु० की व्यवस्था हीनार्थ प्रबन्धन द्वारा की जाने की सम्भावना की जा सकती है। विभिन्न मदो से अर्थ साधन निम्न प्रकार प्राप्त होने की सम्भावना है—

तालिका स० ९८—सन् १९६८ ६९ योजना के अर्थ-साधन

(करोड रुपया में)

	केन्द्र	राज्यों के अन्तर्गत	योग
(अ) आन्तरिक बजट के साधन			
(१) सन् १९६५ ६६ की कर की दरो के आधार पर चालू आय का आधिक्य।	१३४	५२	१८६
(२) सन् १९६५ ६६ की किराये भाडे की दरो के आधार पर रेलो का अनुदान।	(—)६९	—	(—)६९

(३) सरकारी क्षेत्र के व्यवसायों का आधिक्य (योजना के अन्तर्गत की गयी अतिरिक्त साधन प्राप्ति-सम्बन्धी कार्यवाहियों को छोड़कर)	६८	८१	१३६
(४) अतिरिक्त कर (सरकारी व्यवसायों की आय बढ़ाने की कार्यवाहियों सहित)	२६४	१४८	४४६
(५) जन ऋण (शुद्ध)	६१	६७	१५८
(६) लघु बचत	४०	८०	२१०
(७) स्वर्ण बाण्ड, इनामी बाण्ड तथा अनिवार्य जमा	(—)१	—	(—)१
(८) वार्षिक जमा	(—)६	—	(—)६
(९) निधिमुक्त ऋण	४६	३७	८३
(१०) अन्य पूँजीगत प्राप्तियाँ (शुद्ध)	२८८	(—)१८२	६२
योग (अ)	८२५	३१६	११५४
(ब) बजट के साधनों के अनुरूप विदेशी सहायता			
(१) पी० एल० ४८० के अतिरिक्त	६०४	—	६०४
(२) पी० एल० ४८० के अन्तर्गत	२३२	—	२३२
योग (ब)	८३६	—	८३६
राज्यों को सहायता	(—)६१५	६१५	—
समस्त बजट के साधन	१,०९६	९२४	२,०२०
हीनार्थ प्रबन्धन	२८९	१८	३०७
कुल साधन	१,३८५	९४२	२,३२७[1]

चालू आय का आधिक्य—सन् १९६८-६९ की योजना के लिए सन् १९६७-६८ की कर की दरों के आधार पर १८६ करोड़ रु० का आधिक्य चालू आय से प्राप्त होने का अनुमान है। यह आधिक्य सन् १९६७-६८ वर्ष के दोहराये गये अनुमानों की तुलना में १६७ करोड़ रु० अधिक है। इस अधिक राशि में १५१ करोड़ रु० केन्द्र सरकार को और ४६ करोड़ रु० राज्य सरकारों को प्राप्त होने का अनुमान है। केन्द्र सरकार को अधिक राशि प्राप्त होने के प्रमुख कारण औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि के फलस्वरूप उत्पादन-कर में ७८ करोड़ रु० की अनुमानित वृद्धि, वार्षिक जमा योजना की समाप्ति के कारण आय-कर की प्राप्ति में वृद्धि तथा अन्य करों की प्राप्ति में वृद्धि है। वार्षिक जमा-योजना की समाप्ति के फलस्वरूप होने वाली हानि का आयोजन योजना के अर्थ-साधनों में कर दिया गया है। सरकारी चालू व्यय के सन् १९६७-६८ के स्तर पर ही रहने का अनुमान है क्योंकि ऋण के सम्बन्ध में बढ़े हुए व्यय तथा अन्य गैर-योजना व्ययों की वृद्धि की पूर्ति खाद्यान्न अनुदान की समाप्ति से होने वाली बचत से हो जायगी।

---

१ योजना का मौलिक आयोजित व्यय २,३३७ करोड़ रु० था जो बाद में बढ़ाकर २,३५६ करोड़ रु० कर दिया गया था।)

इसी प्रकार राज्य सरकारो की सन् १९६८-६९ की कर की दरो के आधार पर चालू आय में ६५ करोड रु० की वृद्धि होने का अनुमान है। यह वृद्धि आर्थिक प्रगति के फलस्वरूप समस्त करो की प्राप्ति में वृद्धि विशेषकर बिक्री कर मोटरगाड़ी कर भूमि लगान की अच्छी वसूली आदि तथा राज्यों का अंश केन्द्रीय उत्पादन कर तथा आय कर की प्राप्तियां में बढ जाने के कारण होने का अनुमान है। दूसरी ओर राज्य सरकारो के कर्मचारियों को अधिक महगाई भत्ता देने ऋणो पर ब्याज में वृद्धि कर वसूली पर अधिक व्यय तथा प्रशासनिक व्यय में वृद्धि होने का अनुमान है। इस प्रकार केवल ४६ करोड रु० ही चालू आय से विकास के लिए उपलब्ध होने का अनुमान है।

रेलो का अनुदान

सन् १९६५-६६ की किराया भाड़ा की दरो के आधार पर सन् १९६७-६८ वर्ष में (—) ६२ करोड रु० रेलों में उदय होने वाली हीनता का अनुमान है। सन् १९६८-६९ वर्ष में यह हीनता (—) ६६ करोड़ रु० अनुमानित है। हीनता में ७ करोड रु० की वृद्धि रेलो के साधारण कार्य संचालन व्यय (Ordinary Working Expenses) में महगाई भत्ता बढ़ने के कारण वृद्धि ईंधन डीजिल तेल तथा बिजली के मूल्यों में वृद्धि साधारण बजट के लिए दिये जाने वाले अनुदान में वृद्धि आदि के कारण उदय होने का अनुमान है।

सरकारी व्यवसायो का अनुदान

सन् १९६७-६८ वर्ष में सरकारी व्यवसायों में अपने विकास कार्यक्रमों के लिए १३८ करोड रु० प्रदान करने का अनुमान है। सन् १९६८-६९ वर्ष में इस साधन से ४१ करोड रु० अधिक प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया है। इस वृद्धि का प्रमुख कारण देश की आर्थिक स्थिति में सुधार होने के कारण सरकारी व्यवसायों की निर्मित क्षमता के अधिक उपयोग तथा पिछले वर्षों में एकत्रित सामग्री संग्रह (Inventories) का उपयोग किया जाना है।

अतिरिक्त कर

केन्द्र सरकार द्वारा लगाये गये अतिरिक्त कर की विभिन्न मदों से सन् १९६८-६९ वर्ष में आगे दी गयी तालिकानुसार राशियाँ प्राप्त होने का अनुमान है।

दूसरी ओर राज्य सरकारो द्वारा अपने बजटों में जो विभिन्न कार्यवाहियाँ सम्मिलित की गयी हैं उनसे १३८ करोड रु० के अतिरिक्त साधन प्राप्त होने का अनुमान है। इसके अतिरिक्त राज्य सरकारों द्वारा अन्य कार्यवाहियों द्वारा अपने अन्य साधनो को बढाने के प्रयत्न किए जाने हैं जिनके बारे में अभी तक कोई निश्चित जानकारी उपलब्ध नहीं है।

अन्य साधन

पूँजी विपणि की वर्तमान स्थिति का ध्यान में रखते हुए जन ऋण में राष्ट्र

तालिका सं० ९८—केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त कर तथा सरकारी व्यवसायों की आयवृद्धि-सम्बन्धी कार्यवाहियों से प्राप्त साधन

(करोड़ रु० में)

	सन् १९६८-६९ में अनुमानित प्राप्ति
(अ) केन्द्रीय बजट में सम्मिलित कार्यवाहियाँ	
(१) केन्द्रीय उत्पादन-कर	३६.४
(२) आयात-कर	१९.३
(३) निगम कर (Corporation Tax)	(—) ४.०
(४) आय-कर	(—) ४.० (वार्षिक जमा में ह्रास वाली हीनता का निकाल कर)
(५) डाक व तार की परिवर्तित दरें	२२.५
योग	७०.२
(ब) रेलवे-बजट में सम्मिलित कार्यवाहियाँ	
(१) यात्री किराये में वृद्धि	१३.४
(२) माल में वृद्धि	१५.०
योग	२८.४
महायोग	९८.६

१९६८-६९ वर्ष में १५० करोड़ रु० प्राप्त होने का अनुमान है। लघु बचत में पिछले वर्ष की तुलना में १० करोड़ रु० अधिक प्राप्त होने की सम्भावना है। निर्दिष्ट रूप में १० करोड़ नवीन प्राविधिक निधि योजना (जिसमें सभी नागरिक रुपया जमा कर सकते हैं) से प्राप्त होगा। इस मद में प्राप्त होने वाली राशि ८३ करोड़ रु० पिछले वर्ष की प्राप्त राशि से इसलिए कम है कि प्राविधिक निधि में अतिरिक्त मँहगाई-भत्ते की कम राशि जमा की जायगी और कुछ जमा-राशि को निकाल लेने की अनुमति भी कर्मचारियों को दे दी गयी है।

विदेशी सहायता

सन् १९६७-६८ वर्ष में अच्छी फसल होने के कारण सन् १९६८-६९ में पी० एल० ४८० के अन्तर्गत कम खाद्यान्न आयात करने की आवश्यकता होगी। पिछले वर्ष की तुलना में सन् १९६८-६९ में विदेशी सहायता से १५ करोड़ रु० कम प्राप्त होने का अनुमान है।

यद्यपि सन् १९६८-६९ वर्ष की योजना का मूलाधार बिना मुद्रा प्रसार के विकास करना है परन्तु अर्थ-साधनों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस योजना के साधनों में वर्तमान अनुमानानुसार ३०७ करोड़ रु० की हीनता है। इस हीनता में

वास्तव में कुछ वृद्धि होने की ही सम्भावना की जा सकती है क्योंकि राज्य सरकारों द्वारा अतिरिक्त कर सम्बन्धी कार्यवाहियों के सम्बन्ध में कोई निश्चित कदम नहीं उठाये गये हैं। इस प्रकार साधनों की हीनता की पूर्ति हीनार्थ प्रबन्धन द्वारा किया जाना स्वाभाविक होगा। सिद्धान्त रूप में भले ही यह स्वीकार कर लिया गया हो कि सन् १९६८ ६९ के विकास कार्यक्रमों के लिए मुद्रा प्रसार नहीं किया जायगा परन्तु वस्तुत स्थिति इसके विपरीत रहने की ही अधिक सम्भावना है।

उत्पादन के लक्ष्य एवं उपलब्धियाँ

सन् १९६८ ६९ योजना के उत्पादन एवं अन्य विकास सम्बन्धी लक्ष्य एवं उपलब्धियाँ निम्न प्रकार हुईं—

तालिका स० १००—सन् १९६८ ६९ की योजना के विकास-सम्बन्धी लक्ष्य एवं उपलब्धियाँ

मद	इकाई	१९६८ ६९ का लक्ष्य	१९६८ ६९ की उपलब्धियाँ
कृषिक्षेत्र			
खाद्यान्न	लाख टन	१०२० ०	९९०
गन्ना (गुड)	लाख टन	१२५ ०	१२०
तिलहन	लाख टन	१०० ०	६६
कपास	लाख गाँठ (१८० किलो प्रति गाँठ)	६७ ०	५५
जूट	लाख गाँठ (१८० किलो प्रति गाँठ)	६६ ०	३१
रासायनिक खादों का उपयोग			
(अ) नाइट्रोजियम (N)	हजार टन	१७०० ०	१२१०
(ब) फास्फेटिक P_2O	हजार टन	६५०	उ० नहीं
(स) पोटैसिक K_2O	हजार टन	४५०	१७०
सिंचाई			
सिंचाई के साधन (सकल)	लाख एकड़	२३१	२२५
सिंचाई का उपयोग (सकल)	लाख एकड़	१९३	१८५
शक्ति			
निर्मित विद्युत् क्षमता	लाख KW	१५२ २	१४२
विद्युत् युक्त ग्राम	हजार म	६५ ७	उ० नहीं
शक्ति युक्त पम्पों के सेट	हजार म	९५४	१०६६

ग्रामीण एवं लघु उद्योग			
हाथकरघा शक्तिकरघा एवं खादी का कपड़ा	लाख मीटर	३२,०००	३४,०००
कच्चा रेशम	हजार किलो	२०५०	२२५०
उद्योग एवं खनिज			
इस्पात के टेल	लाख टन	७५	६४
एल्यूमीनियम	हजार टन	११०	११६
तांबा	हजार टन	६ ५	६ २
जस्ता	हजार टन	२५ ०	२४४
मशीनों के औजार	करोड़ रु०	२५ ०	२१ ०
व्यापारिक वाहन	हजार	३५	३६
सीमेंट	लाख टन	१२५	१३२
कपड़ा (मिल का बना)	लाख मीटर	४३,०००	४२,१२३
शक्कर	लाख टन	२६ ०	३२ ०
नाइट्रोजियम खाद	हजार टन (N)	६००	५८२ ५
फास्फेटिक खाद	हजार टन (P_2OS)	३००	२१० २
यातायात एवं संचार			
रेलों द्वारा ढोया गया सामान	लाख टन	२०४०	२०५०
बड़े बन्दरगाह (माल का वजन)	लाख टन	५६४	५५०
विद्यार्थियों का अतिरिक्त पंजीयन			
कक्षा १ से ५	लाख	२३ ४६	२२ ६
कक्षा ६ से ८	लाख	६ ७४	१० १
कक्षा ९ से ११	लाख	४ ८२	५ ०
स्वास्थ्य			
अस्पताल शैयाएँ	हजार में	२५५७	२५५ ७

सन् १९६८ ६९ के लक्ष्यों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि इस वर्ष में सन् १९६७-६८ की असामान्य उपलब्धियों को आधार मानकर यह लक्ष्य निर्धारित किए गये। वास्तव में, इन असामान्य अनुकूल परिस्थितियों का जारी रहना निश्चित नहीं था। कृषिक्षेत्र का लक्षित विकास मानसून की अनुकूलता पर निर्भर था परन्तु अधिसंग्रह का आयोजन कर इस बात का प्रयत्न अवश्य किया जाना था कि मानसून के प्रतिकूल होने पर भी अर्थ-व्यवस्था के समस्त क्षेत्रों पर पड़ने वाले कुप्रभाव की तीव्रता को कम किया जा सके। औद्योगिक क्षेत्र के लक्ष्यों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि सन् १९६८-६९ में इंजीनियरिंग एवं मकान निर्माण उद्योगों में संकुचन (Recession) की समाप्ति के साथ-साथ पुन प्राप्ति (Recovery) द्रुत गति से हो सकेगी क्योंकि यह लक्ष्य अत्यन्त अभिलाषी रखे गये हैं। औद्योगिक उत्पादन में लक्ष्यों

की अभिलाषी रखने का प्रमुख कारण निर्यात संवर्द्धन के लिए की गयी कार्यवाहियों का प्रभाव तथा सन् १९६७ ६८ की उपलब्धियों के कारण माँग में वृद्धि होने की सम्भावनाएं थी।

योजना के कृषि विकास कार्यक्रमों में सर्वाधिक महत्व अधि उपज वाले बीजों के प्रचार को दिया गया। प्रत्येक राज्य अपने कृषि उत्पादन के लक्ष्यों के आधार पर आवश्यकतानुसार अधि उपज वाले बीजों का उत्पादन करे जिससे छोटे बड़े सभी कृषक इन बीजों को प्राप्त कर सकें। इस कार्यक्रम में सन् १९६७ ६८ में सराहनीय संगठनात्मक प्रगति हुई थी जिसके प्रोत्साहन से इसका लक्ष्य १५० लाख एकड़ (सन् १९६७ ६८) से बढ़ाकर सन् १९६८ ६९ में २१० लाख एकड़ कर दिया गया।

रासायनिक खाद के संवर्द्धन कार्यक्रम के अन्तर्गत अब कृषक को इनकी उपयोगिता बताने के स्थान पर उसे इनके विवेकपूर्ण उपयोग करने की शिक्षा प्रदान की जाती थी जिससे वह रासायनिक खाद के उपयोग का अधिकतम लाभ प्राप्त कर सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पाँच एकड़ के प्लाट पर बहुफसल प्रदर्शन (Multi Crop Demonstration) परियोजना १०० एकड़ के खण्ड पर पायलट प्रदर्शन परियोजना (Pilot Demonstration Project) तथा १०० एकड़ के खण्ड पर Soil Conditioners के प्रदर्शनों की परियोजना सम्मिलित की गयी थी। कृषकों को बिना मूल्य Soil Conditioner प्रदान करने की योजना भी रखी गयी। यह सभी कार्यक्रम प्रारम्भ में ही क्षेत्रों में सम्मिलित किए जाते थे जहाँ सिंचाई के निश्चित साधन उपलब्ध थे।

कृषि विकास कार्यक्रमों का यद्यपि अधिकतर लाभ खाद्यान्नों के उत्पादन को ही मिलेगा फिर भी २ ४३ करोड़ रु० का आयोजन कपास जूट मूंगफली काजू लाख नारियल तथा तम्बाकू जैसी व्यापारिक फसलों के सुधार के लिए किया गया।

सन् १९६८ ६९ वर्ष की योजना में ग्रामीण एवं लघु उद्योगों के विकास को सन् १९६७ ६८ की तुलना में कम राशि आयोजित की गयी। दूसरी ओर संगठित उद्योगों में भी पिछले वर्ष की राशि ५२० करोड़ से केवल १९ करोड़ अधिक इस वर्ष आयोजित किया गया। इस प्रकार इस योजना में औद्योगिक क्षेत्र में निर्वाह सम्बन्धी कार्यक्रम (Maintenance Programmes) ही संचालित करना था। केवल अत्यधिक प्राथमिकता वाले उद्योगों जैसे रासायनिक खाद में नवीन विनियोजन का आयोजन था। वास्तव में औद्योगिक उत्पादन के लक्ष्यों की उपलब्धि औद्योगिक क्षेत्र की निर्मित क्षमता (Installed Capacity) के पूर्णतम उपयोग तथा सरकारी क्षेत्र के व्यवसायों के कुशल संचालन पर निर्भर थी परन्तु यह दोनों ही घटक अनुकूल स्थिति में नहीं प्रतीत हो रहे थे। औद्योगिक क्षेत्र में श्रमिक कलह (Labour Unrest) व्यापक हो गया था। औद्योगिक वस्तुओं की माँग और मूल्य में कमी हो गया था जबकि अधिक मजदूरी की माँग की जा रही थी। ऐसी परिस्थिति में उद्योगों द्वारा सक्रिय उत्पादन की आशा करना उचित नहीं था।

औद्योगिक क्षेत्र के इस प्रतिकूल वातावरण में मानसून की अनुकूलता के शुभ समाचार भी थे जिनके फलस्वरूप कृषिक्षेत्र के लक्ष्यों की पूर्ति होना सम्भव हो सका। कृषिक्षेत्र में यद्यपि खाद्यान्नों के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई परन्तु जूट और कपास का उत्पादन लक्ष्य से बहुत कम रहा। सन् १९६८-६९ वर्ष में औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि होने का अनुमान है और अधिकतर उद्योग जो माँग की कमी के कारण संकुचन से पीड़ित थे, पुनः प्राप्ति की ओर अग्रसर हो गए।

चौथी योजना का दिशा निर्देश

[Approach to Fourth Plan]

[चतुर्थ योजना के आधारभूत उद्देश्य—स्थिरता के साथ आर्थिक प्रगति, आत्म निर्भरता की ओर अग्रसर, क्षेत्रीय सन्तुलन, नीतियाँ एवं निर्देश, कृषि, उद्योग, वृहद् उद्योगों का विकास, गैर कृषि रोजगार-व्यवस्था, सिंचाई, शक्ति, परिवहन, शिक्षा, स्वास्थ्य, शहरी क्षेत्रों का विकास, अनुसूचित जातियों और वर्गों की स्थिति में सुधार, आर्थिक सत्ताओं का विकेन्द्रीयकरण एवं एकाधिकार, उचित मूल्य की दुकानें, सरकारी एजेन्सी द्वारा आयात—निर्यात और सरकारी एजेन्सी, नियन्त्रणों को न्यूनतम करना, एकाधिकार पर नियन्त्रण, विकास एवं वितरण, रोजगार, आय एवं उपभोग की विषमताओं में कमी, उपसंहार।]

योजना आयोग ने चतुर्थ योजना की नीतियों एवं कार्यक्रमों का दिशा निर्देश पत्र (Approach to the Fourth Five Year Plan) राष्ट्रीय विकास परिषद् की १७ व १८ मई सन् १९६८ की सभा में प्रस्तुत किया। इस प्रलेख में योजना आयोग ने चतुर्थ योजना के रूप के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किए। इस प्रलेख में दिए गये तथ्यों पर राष्ट्रीय विकास परिषद् को अन्तिम निर्णय लेने थे और वह निर्णय योजना आयोग को चतुर्थ योजना की तैयारी में पथ प्रदर्शन करेंगे। प्रलेख में जो प्रस्ताव सम्मिलित किए गये हैं वे वर्तमान आर्थिक स्थिति के विश्लेषण तथा भविष्य में विकास की सम्भावनाओं पर आधारित हैं। राष्ट्रीय विकास परिषद् में मुख्यमन्त्रियों द्वारा साधनों की सम्भावना के अनुसार उपलब्धि सन्देहात्मक समझा गया परन्तु योजना आयोग के प्रस्तावों एवं विचारों का सामान्य रूप से अनुमोदन कर दिया गया।

चतुर्थ योजना के आधारभूत उद्देश्य

चतुर्थ योजना के समस्त कार्यक्रम निम्न तीन मुख्य उद्देश्यों की पूर्ति को आधारभूत मानते हुए निश्चय किए जायेंगे:

(१) स्थिरता के साथ आर्थिक प्रगति (Growth With Stability)—*स्थिरता के साथ आर्थिक प्रगति का तात्पर्य यह है कि प्रगति की साध्य (Feasible)* दर प्राप्त करने के लिए ऐसे कार्यक्रम संचालित किए जायें जिनसे अर्थ-व्यवस्था में मुद्रा प्रसार और अधिक न हो और मूल्य-स्तर में असामान्य वृद्धि न हो। योजना

आयोग के अनुमानानुसार, कृषि की सन् १९६७ ६८ की प्रगति को देखते हुए कृषि क्षेत्र के उत्पादन म ५% वार्षिक वृद्धि होना सायक होगा। दूसरी ओर, औद्योगिक क्षेत्र मे ८% से १०% वार्षिक प्रगति होने का अनुमान लगाया गया है। इन अनुमानों के आधार पर यह सम्भावना की गयी है कि चतुर्थ योजनाकाल में अर्थ व्यवस्था म ५% से ६% वार्षिक (चक्रवृद्धि) आर्थिक प्रगति करना सम्भव होगा।

अर्थ व्यवस्था म अस्थिरता कृषि उत्पादो के मूल्यों में अत्यधिक उच्चावचान होने के कारण उत्पन्न होती है क्योंकि कृषि उत्पादो का मूल्य स्तर अन्य क्षेत्रों के उत्पादो एव सेवाओ के मूल्य स्तर को नियन्त्रित करता है। इस अस्थिर परिस्थिति के निवारण के लिए अधिसग्रह (Buffer Stock) की स्थापना लगभग सभी महत्व पूर्ण कृषि उत्पादो के लिए आवश्यक समझी गयी है। इस सग्रह का उपयोग कृषि उत्पादों के मूल्यों को स्थिर रखने में सहायक होगा परन्तु यह सग्रह कृषि उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि करके ही निर्मित किये जा सकते हैं। अधिसग्रह के निर्माण के लिए विकास विनियोजन के अतिरिक्त अर्थ-साधनों की आवश्यकता होगी और यह साधन केन्द्र एव राज्य सरकारों को एकत्रित करना होंगे।

स्वयं स्फूर्त प्रगति के लक्ष्य तथा विदेशी सहायता को कम करने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमें अपनी आन्तरिक बचत को राष्ट्रीय आय के ८% से बढाकर १२% करना आवश्यक होगा। इस बचत को प्राप्त करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र में २०० से ३०० करोड रु० वार्षिक के अतिरिक्त अर्थ-साधन प्राप्त करने होंगे। इन अतिरिक्त साधनों की प्राप्ति सार्वजनिक तथा सरकारी क्षेत्र के व्यवसायों के अधिक कुशल कार्य सचालन तथा मूल्य समायोजन से प्राप्त होने वाले लाभ लघु बचत को प्रभावशाली बनाकर विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रो मे तथा अतिरिक्त करारोपण द्वारा की जायगी।

(२) **आत्म निर्भरता की ओर यथासम्भव तीव्र गति से अग्रसर होना (Move Towards Self Reliance As Speedily As Possible)**—आत्म निर्भरता प्राप्त करने हेतु हमें वर्तमान शुद्ध विदेशी सहायता (अर्थात ऋणों पर ब्याज शुद्ध वृद्धि तथा पुराने ऋणों के भुगतान की राशि घटाने के बाद) चतुर्थ योजना के अन्तिम वर्ष तक वर्तमान स्तर का आधा करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु आयात को कम करने तथा निर्यात को बढाने के लिए अथक प्रयत्न करना आवश्यक होगा।

निर्यात—जहाँ तक निर्यात का सम्बन्ध है हमारे वर्तमान निर्यात का लगभग चौथाई भाग परम्परागत वस्तुओं से बनता है जो अन्तर्राष्ट्रीय निर्माण परिस्थितियों के अतिरिक्त प्रतिकूल जलवायु के वर्षों में कच्चे माल के कम उत्पादन से प्रभावित होते हैं। चतुर्थ योजना के इन प्रतिकूल वर्षों मे भी अधिसग्रह (Buffer Stock) की सहायता इन निर्यातों को सामान्य स्तर पर बनाये रखा जा सकेगा। इसके अतिरिक्त ऐसे नवीन कृषि उत्पादों की खोज की जाय जिनकी अन्तर्राष्ट्रीय विपणियों में माँग हो और जिनका उत्पादन देश मे किया जा सकता हो। निर्यात योग्य कृषि उत्पादों का

आन्तरिक उपभोग कम रखने के लिए उत्पादन-कर लगाये जायेंगे तथा राज्य द्वारा निर्यात के लिए इन उत्पादों का सीधे क्रय किया जायगा।

निर्यात की वृद्धि में गैर-परम्परागत वस्तुओं का भाग अधिक रहेगा। उन चुनी हुई गैर परम्परागत वस्तुओं की निर्यात वृद्धि के लिए विशेष प्रयत्न किए जायेंगे जिनका अधिक निर्यात दीर्घ काल तक बनाये रखा जा सकेगा। शेषकालीन मौग वाली वस्तुओं में कच्चा लोहा, लोहा व इस्पात, इन्जीनियरिंग उत्पाद तथा रसायन आदि सम्मिलित किये जा सकते हैं।

विकासशील राष्ट्रों को इन्जीनियरिंग वस्तुओं का निर्यात बढ़ाने का विशेष प्रयत्न किया जायगा। इन राष्ट्रों में प्रतिकूल भुगतान शेष होने के कारण हम अपना निर्यात स्थगित भुगतान पर ही बढ़ाना सम्भव होगा क्योंकि इन राष्ट्रों को अन्य देशों से स्थगित भुगतान पर इन्जीनियरिंग वस्तुओं को प्राप्त करना सम्भव है। रासायनिक पदार्थों के क्षेत्र में औषधियाँ, प्लास्टिक तथा प्लास्टिक की वस्तुओं तथा रासायनिक रेशों के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि करके निर्यात बढ़ाने का प्रयत्न किया जायगा। दूसरी ओर यात्री भ्रमण (Tourism) के विकास द्वारा विदेशी विनिमय का अधिक अर्जन किया जायगा। इसके लिए भ्रमण सुविधाओं एवं सेवाओं में वृद्धि की जायगी। सामुद्रिक जहाजी यातायात के विकास द्वारा भी विदेशी मुद्रा का अधिक उपार्जन किया जायगा।

आयात—अर्थ-व्यवस्था के विकास के साथ-साथ अलौह धातुओं, खनिज तत्वों तथा रासायनिक खाद सामग्रियों के आयात में वृद्धि होने की सम्भावना है क्योंकि इन पदार्थों का उत्पादन प्राकृतिक साधनों की कमी के कारण देश में बढ़ाया नहीं जा सकता। इसलिए अन्य वस्तुओं के आयात को न्यूनतम मात्रा तक कम करना आवश्यक होगा। कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि होने के कारण पी० एल० ४८० के अन्तर्गत कृषि उत्पादों के आयात को तीन वर्षों में बिल्कुल बन्द करने का प्रयत्न किया जायगा। रेशेदार कृषि उत्पादों, कुछ प्रकार के इस्पात तथा यन्त्रों आदि के आयात में धीरे धीरे कमी की जायगी। योजना आयोग के मोटे अनुमानानुसार हम अपनी वर्तमान शुद्ध विदेशी सहायता (अर्थात प्रत्येक वर्ष में प्राप्त विदेशी सहायता में से देय ब्याज तथा पुराने ऋणों की शोध्य किश्तें घटाने के बाद की राशि) को चतुर्थ योजना के अन्त तक आधा करने के लिए निर्यात में लगभग ७% प्रति वर्ष की वृद्धि करना तथा आयात का न्यूनतम करना आवश्यक होगा।

विदेशी सहयोग तथा विदेशी तान्त्रिक ज्ञान के आयात को भी चतुर्थ योजना में कम करने का प्रयत्न किया जायगा। केवल उन्हीं क्षेत्रों में विदेशी सहयोग एवं तान्त्रिक ज्ञान का आयात स्वीकृत किया जायगा जिनमें आन्तरिक साधन उपलब्ध न हों। विदेशी सहयोग से उपभोक्ता वस्तु उद्योगों की स्थापना नहीं की जायगी। केवल निर्यात के लिए उत्पन्न की जाने वाली उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों को विदेशी

सहयोग से स्थापित करने की अनुमति दी जायगी। विदेशी सहयोग की प्रत्येक परि-योजना की स्वीकृति के पूर्व कठोर जाँच की जायगी जिससे ऐसी परियोजनाओं का संचालन न किया जाय जिनमें अधिक महँगी पूँजीगत वस्तुओं तथा अधिक तान्त्रिक ज्ञान का आयात करना पड़े।

तान्त्रिक ज्ञान के आयात में कठोर प्रतिबन्ध नहीं लगाये जायेंगे यदि यह आयात एक ही बार में हो जाता हो तथा इसके द्वारा भविष्य में और आयात आवश्यक न होता हो तो इसके साथ ही यह भी देखा जायगा कि विदेशी तान्त्रिक ज्ञान के आयात से हमारे तान्त्रिकों को हतोत्साहन तो नहीं होता है।

(३) क्षेत्रीय सन्तुलन (Regional Balance)—वर्तमान क्षेत्रीय असन्तुलन का प्रमुख कारण विकास हेतु आवश्यक सुविधाओं एवं सेवाओं का विषम वितरण है। इसी कारण के फलस्वरूप विभिन्न राज्यों में ही असन्तुलित विकास नहीं हुआ है प्रत्युत एक ही राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में विकास में विषमता विद्यमान है। इस असन्तुलन को दूर करने के लिए सभी क्षेत्रों में विकास-सम्बन्धी सेवाओं एवं सुविधाओं का आयोजन किया जाना आवश्यक है। प्रत्येक क्षेत्र में विद्यमान परिस्थितियों तथा उपलब्ध प्राकृतिक साधनों को ध्यान में रखकर पृथक्-पृथक् विकास-कार्यक्रम निर्धारित किये जायेंगे। विकास सम्बन्धी सुविधाओं के आयोजन के लिए तथा विकास-कार्यक्रमों के संचालनार्थ प्रारम्भ में अर्थ-साधनों की कमी महसूस होगी। इस कमी की पूर्ति के लिए विशेष कार्यक्रमों का आयोजन किया जायगा तथा राज्य द्वारा धन जुटाया जायगा।

नीतियाँ एवं निर्देश

उपर्युक्त तीन मूलभूत उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में जो नीतियाँ एवं निर्देश अपनाने का संकेत दिया गया है वह निम्न प्रकार है

कृषि—कृषि कार्यक्रमों के चतुर्थ योजना में दो मुख्य उद्देश्य होंगे—प्रथम, कृषि उत्पादन में ५% प्रति वर्ष की वृद्धि तथा द्वितीय, ग्रामीण जनता के प्रत्येक नागरिक को विकास कार्यक्रमों में सक्रिय भाग लेने और लाभ प्राप्त करने का अवसर प्रदान करना। कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के लिए गहन कृषि विधियों का विस्तार किया जायगा। सिंचाई-सुविधा प्राप्त अथवा निश्चित वर्षा वाले क्षेत्रों में अधिक उपज वाले बीजों के उपयोग का विस्तार होगा। इन क्षेत्रों की अन्य समस्याओं, उन्नत खाद-सुविधा, पौध संरक्षण आदि पर विशेष ध्यान दिया जायगा। गहन कृषि-विधियों का उपयोग दालों, अन्य खाद्य फसलों तथा व्यापारिक फसलों आदि के उत्पादन के लिए भी किया जायगा। शोध-कार्य, शिक्षा एवं अन्य सुविधाओं का भी विस्तार किया जायगा।

लघु कृषकों एवं गैर सिंचित क्षेत्रों की समस्याओं पर भी ध्यान दिया जायगा। शुष्क क्षेत्रों में कृषि-उत्पादन बढ़ाने के लिए शोध कार्य की सहायता ली जायगी। लघु

श्रमिकों को अति उपज वाले बीजों के उपयोग के लिए प्रोत्साहित किया जायगा। शुष्क क्षेत्रों के लघु श्रमिकों की समस्याओं के निवारण के लिए आय के सहायक साधनों जैसे पशु पालन आदि को प्रोत्साहित किया जायगा।

वर्तमान सिंचाई परियोजनाओं के प्रबन्ध एवं जल वितरण में आवश्यक परिवर्तन किये जायेंगे जिससे इनके द्वारा एक से अधिक फसलों के लिए सिंचाई-सुविधाएँ उपलब्ध करायी जा सकें। जल-पूर्ति के अन्य साधनों का भी विस्तार किया जायगा।

बड़े एवं मध्यम वर्ग के कृषकों को अधिक उपज वाले बीजों के उपयोग से अधिक लाभ प्राप्त होने लगा है। इसके अतिरिक्त लाभ को कृषि के विकास पर विनियोजित करने के लिए इन कृषकों को प्रोत्साहित किया जायगा।

सहकारी भूमि विकास-अधिकोष तथा सहकारी केन्द्रीय अधिकोषों से कृषि-क्षेत्र को स्वतः वित्त प्रदान करने वाले व्यवसाय उत्थान में सहायता प्राप्त होगी। दूसरी ओर लघु कृषकों को वित्तीय संस्थाओं एवं राज्य द्वारा वित्त प्रदान किया जायगा। जल-कूप (Tubewells) एवं अन्य लघु सिंचाई सुविधाओं का आयोजन सरकार द्वारा किया जायगा।

कृषि विकास हेतु जिला स्तर पर विभिन्न कृषि सेवाओं जैसे रासायनिक खाद का वितरण तथा साख सुविधा आदि का आयोजन विभिन्न संस्थाओं के द्वारा किया जायगा। इन सेवाओं के लिए सहकारी संस्थाओं का प्रमुख रूप से उपयोग किया जायगा। जिला सहकारी भूमि विकास अधिकोषों तथा सहकारी केन्द्रीय बैंकों की अंश पूँजी में पर्याप्त वृद्धि करके इन सेवाओं की व्यवस्था की जायगी। यदि सहकारी संस्थाएं इन सेवाओं की उचित व्यवस्था करने में असमर्थ रहेंगी तो अन्य संस्थाओं जैसे व्यापारिक अधिकोषों आदि का उपयोग किया जायगा। प्रत्येक जिले की कृषि स्थिति तथा विद्यमान संस्थाओं को ध्यान में रखकर इन सेवाओं की व्यवस्था की जायगी।

भूमिहीन श्रमिकों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए उन्हें अधिक रोजगार के अवसर प्रदान किये जायेंगे। समन्वित जिला विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत जो विभिन्न सेवाओं जैसे लघु सिंचाई, प्राकृतिक साधनों का विकास एवं संरक्षण, यातायात एवं संचार में सुधार आदि का आयोजन करने के लिए विभिन्न संस्थाओं में रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी जिसका लाभ भूमिहीन श्रमिकों को प्राप्त होगा। कृषि भूमि पर जनसंख्या के बढ़ते हुए दबाव को कम करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगिक क्रियाओं की तीव्र गति से वृद्धि की जायगी जिससे बढ़ती हुई श्रम शक्ति तथा कृषि क्षेत्र में लगी हुई वर्तमान श्रम शक्ति का कुछ भाग उद्योगों में रोजगार प्राप्त कर सके। ग्रामीण उद्योगों, दस्तकारी उद्योगों, कृषि उत्पादों का विधिकरण (Processing) करने वाले उद्योगों का यथासम्भव विकास किया जायगा।

उद्योग

चतुर्थ योजना के औद्योगिक विकास के कार्यक्रम निम्नलिखित मूलभूत निर्देशों के सन्दर्भ में निर्धारित किये जायेंगे :

(अ) ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करना जिसके अन्तर्गत वर्तमान उत्पादनक्षमता का अधिकतम उपयोग किया जा सके ।

(आ) नवीन विनियोजन योजना की प्राथमिकताओं के आधार पर किया जाय और शीघ्र काल में पूर्ण होने वाली उन औद्योगिक परियोजनाओं में विनियोजन की छूट दी जाय जिनके द्वारा निर्यात में वृद्धि होना अथवा आयात पर निर्भरता कम करना सम्भव हो ।

(इ) एक विस्तृत साहसी-वर्ग के उत्थान को प्रोत्साहित किया जाय तथा उद्योगों के नियन्त्रण एवं अधिकार का अधिक विकेन्द्रीयकरण किया जाय ।

(ई) उपर्युक्त समस्त तत्त्वों की पूर्ति न्यूनतम राजकीय नियन्त्रण के अन्तर्गत की जाय ।

चतुर्थ योजना के औद्योगिक विकास-कार्यक्रमों के द्वारा निम्नलिखित आधारभूत उद्देश्यों की पूर्ति की जायगी :

(१) आत्मनिर्भर (Self reliant) औद्योगिक प्रगति की प्राप्ति के लिए औद्योगिक एवं तांत्रिक क्षमता का लगातार आयोजन किया जाना ।

(२) उन औद्योगिक क्षेत्रों की क्षमता में विकास करना जिनके द्वारा निर्यात में आवश्यकतानुसार वृद्धि तथा आयात को सीमित किया जा सके जिससे भुगतान-शेष की स्थिति में सुधार किया जा सके ।

(३) पूँजी एवं कर्मचारी वर्ग के साधनों का इस प्रकार संगठित करना कि देश में यथासम्भव व्यापक औद्योगीकरण किया जा सके ।

उपर्युक्त दो उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निजी एवं सरकारी दोनों ही क्षेत्रों की औद्योगिक इकाइयों के लिए कार्यक्रम एवं लक्ष्य निर्धारित किये जायेंगे । शेष बचे हुए महत्त्वपूर्ण उद्योगों के लिए योजना आयोग विकास की सम्भावनाएँ निर्धारित करेगा । इस काम में उद्योगों का भी सहयोग प्राप्त किया जायगा ।

बृहद उद्योगों का विकास

चतुर्थ योजना में केन्द्रीय सरकार के औद्योगिक विनियोजन के अन्तर्गत तीसरी योजना से चालू कार्यक्रमों को पूर्ण करने का व्यय, स्वीकृत परियोजनाओं का व्यय, रासायनिक खाद एवं अन्य कृषि सम्बन्धी सामग्रियों एवं कच्चे माल की पूर्ति से सम्बन्धित उद्योगों का व्यय तथा पाँचवी योजना की अग्रिम कार्यवाहियों का व्यय सम्मिलित किया जायगा । वर्तमान सरकारी क्षेत्र के बड़े व्यवसायों की उत्पादनक्षमता का पूर्ण उपयोग करने तथा इन व्यवसायों को अधिक लाभप्रद बनाने के लिए इनकी वस्तुओं के लिए विदेशी बाजारों की खोज की जावेगी । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए

विपणि सम्बद्ध न एव विपणि शाप आवश्यक होगा और स्थगित भुगतान पर निर्यात की व्यवस्था के लिए आवश्यक वित्तीय साधनों का आयोजन करना आवश्यक होगा।

निजी एव सरकारी क्षेत्र के व्यवसायों की उत्पादकता एव लाभोपार्जन की क्षमता बढ़ाने को सर्वाधिक महत्व दिया जायगा। सरकारी व्यवसायों म इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पर्याप्त प्रारम्भिकता (Initiative) तथा काय सचालन म प्रबन्धकाय स्वतन्त्रता (Autonomy) का आयोजन आवश्यक है। दूसरी ओर सरकारी व्यवसायों के कमचारियों की नियुक्ति पदोन्नति आदि से सम्बन्धित नीति पर भी विचार किया जा रहा है। इन व्यवसायों के उच्चाधिकारियों की नियुक्ति सरकारी अधिकारियों को डेप्यूटेशन (Deputation) पर लेकर की जाती है और यह अधिकारी कुछ ही वर्षों बाद स्थानान्तरित कर दिए जाते हैं। यह पद्धति इन व्यवसायों के कुशल सचालन म सहायक नही होती है। इस पद्धति म आवश्यक सुधार करने पर भी सरकार द्वारा विचार किया जा रहा है।

केवल उन उद्योगो को छोडकर जिनमे तान्त्रिक दृष्टिकोण से बडे आकार की इकाइयाँ स्थापित करना मितव्ययतापूर्ण होता है अन्य समस्त उद्योगो म अधिकार एव क्षेत्र सम्बन्धी विकेन्द्रीयकरण किया जायगा। विभिन्न उपभोक्ता एव कृषि सम्बन्धी उद्योगो का स्थापना विकेन्द्रीयकरण के आधार पर की जायगा। राजकोषीय एव साख सुविधाएँ प्रदान कर इन उद्योगो के विकास हेतु नवीन साहसियो एव सहकारी संस्थाओ का प्रोत्साहित किया जाना है। इस प्रकार के उद्योगो की स्थापना की अनुमति बडे उद्योगपतियो को नहीं दी जायगी।

गैर-कृषि रोजगार व्यवस्था

गैर कृषि रोजगार के अवसरो म पर्याप्त वृद्धि करने हेतु समस्त देश म लघु एव विकेन्द्रित औद्योगिक इकाइयो की स्थापना करना आवश्यक है। छोटे छोटे नगरो म इन औद्योगिक इकाइयो की स्थापना करने हेतु तान्त्रिक प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों का प्रबन्ध विपणन एव लागत जोखो से सम्बन्धित अल्पकालीन प्रशिक्षणो की व्यवस्था की जायगी। इन व्यक्तियो को सहकारी संस्थाएँ सगठित करके ग्रामीण क्षेत्रो म कृषि यन्त्रो की मरम्मत आदि की सेवाओ की इकाइयाँ स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया जायगा। लघु उद्योगो के विकास के लिए मध्यम श्रेणी की तान्त्रिकताओ की खोज भी की जायगी जिनका सरलता से लघु उद्योगो म उपयोग किया जा सकेगा और व्यापार अधिक कुशलता से किया जा सकेगा।

सिंचाई—निर्माणाधीन सिंचाई-परियोजनाओ की शीघ्र पूर्ति को विशेष महत्व दिया जायगा तथा पूर्ण हुई परियोजनाओ की क्षमता का पूर्णरूपेण उपयोग किया जायगा। सिंचाई की नवीन परियोजनाओ पर विचार प्रत्येक राज्य तथा प्रत्येक नदी-घाटी के दीर्घकालीन विकास कायक्रमों को ध्यान म रखकर किया जायगा। प्रत्येक नवीन परियोजनाओं का विस्तृत ब्यौरा तैयार किया जायगा तथा उनका नियोजन एव

लाभों का ठीक-ठीक अनुमान लगाया जायगा। जिन क्षेत्रों में सिंचित भूमि का औसत कम है उनकी आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान दिया जायगा। पांचवीं योजना में सम्मिलित किये जाने वाले दीर्घकालीन सिंचाई कार्यक्रमों पर प्रारम्भिक कार्य चतुर्थ योजना में ही कर लिया जायगा।

शक्ति—विद्युत परियोजनाओं में जो निर्माणाधीन परियोजनाओं की शीघ्र पूर्ति एवं पूर्ण हुई योजनाओं की क्षमता के पूर्ण उपयोग को विशेष महत्व दिया जायगा। विद्युत कार्यक्रम देश के सभी पांच क्षेत्रों में विद्युत-व्यवस्था के एकीकृत-परिचालन पर आधारित होंगे। चतुर्थ योजनाकाल में पूरे भारत में विद्युत लाइनों का एक जाल सा बिछा देने का लक्ष्य है। इसके लिए अन्तर्प्रान्तीय तथा अन्तर-क्षेत्रीय लाइनों का निर्माण-कार्य केन्द्रीय सरकार अपने हाथ में ले सकती है।

परिवहन

पिछली तीन योजनाओं में कुल विनियोग का 1/5 भाग परिवहन के विकास पर व्यय किया गया जिससे आर्थिक प्रगति में परिवहन के साधनों की न्यूनता बाधक न बन सके। परिवहन की परियोजनाएँ दीर्घ काल में पूरी होती हैं और इन पर विनियोजन भी बड़ी मात्रा में करना होता है। इसलिए इस क्षेत्र के विनियोजन-कार्यक्रम निर्धारित करते समय अर्थ व्यवस्था की दीर्घकालीन आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जायगा। अर्थ व्यवस्था की परिवहन की आवश्यकताओं की पूर्ति न्यूनतम लागत पर करने के लिए रेल, सड़क परिवहन, जहाज, अन्तर्देशीय जल परिवहन तथा हवाई जहाज सभी प्रकार के परिवहन के संचालन में समन्वय स्थापित करना आवश्यक है।

बन्दरगाहों के विकास एवं उन पर आवश्यक सुविधाओं की ओर विशेष ध्यान दिया जायगा। भारतीय जहाजों एवं उनके सम्बद्ध पुर्जों आदि के उत्पादन को अधिक प्राथमिकता दी जाना आवश्यक है। राज्य सरकारों को पिछड़े हुए क्षेत्रों को विकसित क्षेत्रों से जोड़ने के लिए सड़क-परिवहन में सुधार करना होगा। कृषि-व्यवसाय को व्यापारिक व्यवसाय का रूप देने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में सड़क परिवहन की पर्याप्त व्यवस्था करना अत्यन्त आवश्यक होगा। हवाई जहाजों के माल ढोने की क्षमता में वृद्धि तथा हवाई अड्डों में सुधार करने पर भी ध्यान देना आवश्यक होगा।

शिक्षा—शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रमों में निम्नलिखित महत्वपूर्ण बातों को सम्मिलित किया जायगा

(अ) पिछड़े क्षेत्रों एवं वर्गों तथा बालिकाओं के लिए प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी और प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में होने वाले अपव्यय को कम करने का प्रयत्न किया जायगा।

(आ) माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा में और अधिक अवसर सभी वर्गों को प्रदान करना आवश्यक होगा। साधनों की कमी के कारण संस्थाओं के विस्तार में मितव्ययता करना आवश्यक होगा परन्तु शिक्षा के स्तर को बनाये रखने के लिए अधिक प्रयास करना होगा।

(इ) तान्त्रिक एव व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र म प्रशिक्षित श्रम शक्ति की भविष्य की माँग क अनुमान के आधार पर शिक्षा प्रदान की जाना चाहिए जिससे आवश्यकता से अधिक लोगों को तान्त्रिक एव व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने म राष्ट्रीय साधनों का अपव्यय न हो।

(ई) शोध काय का विस्तार करना आवश्यक होगा। इस काय के लिए विश्वविद्यालयों एवं अन्य संस्थाओं के काय म सम वय स्थापित किया जायगा।

(उ) ऐसे व्यक्तियों की सुविधा के लिए जो शिक्षा संस्थाओं को प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण शीघ्र छोड़ देते हैं आंशिक समय (Part time) शिक्षा तथा डाक पाठ्यक्रमों की सुविधाओं का विस्तार किया जायगा।

(ऊ) शिक्षा के गुणों म सुधार करने के लिए शिक्षकों की योग्यताओं एव स्तर म सुधार, भारतीय मौलिक पुस्तकों का प्रकाशन तथा विद्यार्थी कल्याण कायक्रम सचालित करने होंगे।

स्वास्थ्य

ग्रामीण क्षेत्रों म प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना एव उन्हें सुदृढ़ बनाने के लिए अधिक प्राथमिकता देना आवश्यक होगा। हैजा और फाइलेरिया के प्रकोप से पीड़ित क्षेत्रों म जल प्रवाह (Drainage) तथा जल पूर्ति (Water Supply) पर विशेष ध्यान दिया जायगा। स्वास्थ्य केन्द्रों का विस्तार स्थानीय संस्थाओं द्वारा ही करना होगा जिससे स्थानीय साधनों से ही यह सुधार किया जा सके। स्वास्थ्य केन्द्रों म चिकित्सा कराने वालों से कुछ मामूली राशि भी वसूल की जायगी। सरकारी स्वास्थ्य बीमा योजना के अतिरिक्त उद्योगों एव सहकारी संस्थाओं म विशेष समूहों के लिए स्वास्थ्य बीमा योजना सचालित की जायगी।

परिवार नियोजन—परिवार नियोजन कायक्रम को सर्वाधिक प्राथमिकता दी जायगी और इसे १० वष के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा सचालित कायक्रम समझा जायगा। इस पर किए गए व्यय के अनुरूप उपलब्धियाँ होनी चाहिए। इसमे शोध काय की भी आवश्यकता है।

शहरी क्षेत्रों का विकास

शहरों व नगरों मे जनसख्या म तीव्र गति से वृद्धि होने के कारण नागरिक सुविधाओं का स्तर गिर गया है तथा गन्दी बस्तियों की सख्या म वृद्धि हो गया है। इसीलिए शहरों मे विकास-कार्यक्रमों म न्यून आय के वग के लिए निवास गृहों का निर्माण, गन्दी बस्तियों की सफाई व सुधार, यातायात, जल पूर्ति तथा जल प्रवाह के कायक्रम सचालित करना आवश्यक होगा।

अनुसूचित जातियों और वर्गों की स्थिति म सुधार

अनुसूचित वर्गों एव जातियों की स्थिति म सुधार करने हेतु पिछली योजनाओं म जो विशेष कायक्रम सचालित किए गए, वह इस मान्यता पर आधारित थे कि इस

समुदाय को अर्थ-व्यवस्था के सामान्य विकास का भी लाभ प्राप्त होगा परन्तु पिछले अनुभवों से यह स्पष्ट है कि इस समुदाय को सामान्य आर्थिक प्रगति से कम ही लाभ प्राप्त हुआ। चतुर्थ योजना में ऐसी कार्यवाहियाँ संचालित करने के विशेष प्रयत्न किए जायेंगे जिनके द्वारा इस समुदाय को आर्थिक प्रगति एवं सामाजिक सुधारों का उचित लाभ प्राप्त हो सके।

आर्थिक सत्ताओं का विकेन्द्रीयकरण तथा एकाधिकार

भारतीय अर्थ-व्यवस्था एक मिश्रित अर्थ-व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत आर्थिक क्रियाओं की विभिन्न विधियों से सह अस्तित्व होता है। यद्यपि इनमें से प्रत्येक विधि के अपने उद्देश्य प्रोत्साहन तथा कार्य संचालन के तरीके होते हैं परन्तु इन सभी का अन्तिम लक्ष्य जन समाज का अधिकतम हित होता है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए *अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में निम्नलिखित संगठनात्मक सुधार किए जायेंगे।*

(अ) उचित मूल्य की दुकानें—उचित मूल्य की दुकानों को मूल्य-स्तर को स्थिर रखने तथा उपभोक्ता वस्तुओं के उपयुक्त वितरण का प्रमुख माध्यम समझा जायगा परन्तु इन दुकानों को अन्तत सहकारी उपभोक्ता भण्डारों एवं बहु उद्देशीय सहकारी *संस्थाओं के अधिकार एवं नियन्त्रण में कर दिया जायगा अर्थात् अभी तक यह दुकानें* सरकार द्वारा दिए कोटे (Quota) का नियन्त्रित मूल्य पर वितरण करती हैं परन्तु चतुर्थ योजना में यह प्रयत्न किया जायगा कि सहकारी संस्थाएं खुले बाजार एवं सरकार से उपभोक्ता-वस्तुएँ उपलब्ध कर उचित मूल्य पर बेचें और मुनाफाखोरी को रोकने में सहायक हों। ग्रामीण क्षेत्रों में इस प्रकार की सहकारी संस्थाओं का *विस्तार किया जायगा।*

(आ) सरकारी एजेन्सी द्वारा आयात—अनावश्यक आयात को रोकने तथा आयात की गयी सामग्री का उचित वितरण करने हेतु आयात का कार्य सरकारी एजेंसियों द्वारा किया जायगा। इन एजेन्सियों में राजकीय व्यापार निगम, खनिज एवं धातु व्यापार निगम, खाद्यान्न निगम आदि सम्मिलित होंगे।

(इ) निर्यात और सरकारी एजेन्सी—जिन वस्तुओं के आन्तरिक एवं विदेशी मूल्यों में अधिक अन्तर हो उनका निर्यात राजकीय स्तर पर करना उपयोगी होगा। जब आन्तरिक मूल्य अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों से अधिक हों तो आन्तरिक उत्पादकों को लागत मूल्य का भुगतान किया जा सकता है यदि एक विनिमय विनिमय संचिति की स्थापना इस उद्देश्य से कर ली जाय। अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य, आन्तरिक मूल्यों से अधिक होने पर इस प्रकार की संचिति की स्थापना की जानी चाहिए। बड़े पैमाने पर आयात निर्यात *करने वाली सरकारी एजेंसी को नवीन वस्तुओं के निर्यात-प्रवर्तन का कार्य भी करना* चाहिए।

(ई) नियन्त्रणों को न्यूनतम करना—निर्यात एवं आयात को छोड़कर अन्य क्षेत्रों में मूल्य एवं वितरण नियन्त्रण को न्यूनतम करना उचित होगा। जहाँ भी इन

नियन्त्रणों का उपयोग किया जायगा, उनका उद्देश्य एवं क्रियान्वयन विधि को स्पष्ट-रूप से व्यक्त किया जाना चाहिए।

(उ) विनियोजन, प्रवेश एवं प्रावटन की वर्तमान नियन्त्रण विधि—लाइसेंस-निगमन पूंजी निगमन नियन्त्रण तथा आयात की मात्रा पर प्रतिबन्ध सन्तोषप्रद नहीं रहा है। नियन्त्रण की इस समस्त विधि का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना आवश्यक होगा। इस विधि के स्थान पर उद्योगों में प्रवेश एवं संचालन का स्वतन्त्र कर दिया जाना चाहिए और प्रतिस्पर्धा द्वारा कार्यकुशलता एवं लागत के प्रति जागरूकता उत्पन्न की जानी चाहिए परन्तु कुछ साधनों की कमी होने के कारण उनके उपयोग का निर्दिष्ट दिशाओं में लगाने के लिए समस्त औद्योगिक क्षेत्र के विनियोजन को स्वतन्त्र नहीं किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में जो नीति अपनायी जा सकती है उसके मुख्य तत्व निम्न प्रकार हैं

(१) समस्त आधारभूत एवं सामरिक महत्व के उद्योगों जिनमें विनियोजन एवं विदेशी विनिमय की अधिक आवश्यकता होती है के सम्बन्ध में सावधानी से योजनाएँ तैयार की जायें और उनका लाइसेंसिंग किया जाय। लाइसेंस प्राप्त निजी एवं सरकारी क्षेत्र के उद्योगों के लिए साख विदेशी विनिमय दुर्लभ सामग्री आदि की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

(२) जिन उद्योगों में पूंजीगत उपकरणों के लिए ही विदेशी विनिमय की आवश्यकता होती है उनके लिए लाइसेन्स की आवश्यकता नहीं होना चाहिए। इन उद्योगों की कुल पूंजीगत उपकरणों की आवश्यकता का कुछ प्रतिशत जैसे १०% विदेशी विनिमय दिया जा सकता है। विदेशी विनिमय का वितरण नियमित होना चाहिए और पूंजीगत उपकरणों से सम्बद्ध विदेशी विनिमय की आवश्यकताओं की जाँच पूँजीगत उपकरण समिति द्वारा की जानी चाहिए। जिन उद्योगों में निर्वाह सम्बन्धी उपकरणों की निरन्तर आवश्यकता होती है उनका लाइसेंसिंग जारी रखना आवश्यक होगा।

(३) जिन उद्योगों में पूंजीगत उपकरण अथवा कच्चे माल के लिए विदेशी विनिमय की आवश्यकता नहीं होती है उन्हें लाइसेंसिंग से मुक्त कर देना चाहिए। इन उद्योगों को निजी क्षेत्र में विपणि की आवश्यकताओं के अनुसार संचालित करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए परन्तु लघु एवं परम्परागत उद्योगों को अनुचित प्रतिस्पर्धा से संरक्षण प्रदान करने हेतु वर्तमान सुविधाएं जारी रखी जा सकती हैं।

(४) इस बात का भी पता लगाना होगा कि निर्वाह-सम्बन्धी उपकरणों का आयात विशेषकर यन्त्रों, औज़ारों तथा अन्य कच्चे माल को किस सीमा तक आयात नियन्त्रण से मुक्त किया जा सकता है और उन पर उचित तटीय शुल्क लगाया जा सकता है। विभेदात्मक संरक्षण की पद्धति को फिर से अपनाया जा सकता है और तटीय कर के अतिरिक्त निश्चित काल के लिए संरक्षण कर भी लगाया जा सकता है।

(४) आर्थिक क्रियाओं के कुछ विशेष क्षेत्रों में केन्द्रित होने से इन क्षेत्रों में सामाजिक एवं आर्थिक सेवाएँ प्रदान करने की लागत बढ़ती जा रही है। भविष्य में मन्द्राय क्षेत्रों को विकेन्द्रित करने की योजना पर सक्रिय विचार करना होगा।

एकाधिकार पर नियन्त्रण

निजी क्षेत्र में नवीन औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित करने की स्वतन्त्रता प्रदान करने से प्रतिस्पर्धा बढ़ जायगी जिसके फलस्वरूप आर्थिक सत्ताओं के केन्द्रीयकरण एवं एकाधिकारण स्थापित होने की सम्भावनाएँ कम हो जायेंगी। इस सम्बन्ध में संसद द्वारा अधिनियम बनाया जा रहा है जिसके द्वारा अनुचित केन्द्रीयकरण तथा प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक रीतियों का नियन्त्रण किया जायगा। एकाधिकार एवं केन्द्रीयकरण पर नियन्त्रण करने के लिए निम्नलिखित अन्य कार्यवाहियाँ करने का भी सुझाव है

(अ) सिद्धान्तरूप से नवीन लाइसेन्स किसी औद्योगिक संस्था को तब ही दिए जायँ जब उसके द्वारा पूर्व में प्राप्त लाइसेन्सों की स्वीकृतियों की जाँच कर ली जाय।

(आ) वित्तीय संस्थाओं की साख-नीति की पुनरावृत्ति की जायगी जिससे साख का अनुचित अनुपात बड़े औद्योगिक गृह प्राप्त न कर सकें। हाल में स्थापित राष्ट्रीय साख परिषद् (National Credit Council) अर्थ-व्यवस्था में साख की पूर्ति को नियन्त्रित करेगी। योजना द्वारा निर्धारित विशेष प्रकार की औद्योगिक इकाइयों तथा विशिष्ट क्षेत्र में साख का प्रवाह निर्देशित किया जायगा। इसके साथ ही एक ओर, धनी एवं साधनयुक्त उद्योगपतियों तथा विकसित क्षेत्रों और दूसरी ओर, पिछड़े हुए वर्गों, क्षेत्रों एवं गरीब उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं को प्राप्त होने वाली साख एवं उसकी शर्तों के भेद को कम किया जायगा।

(इ) सरकार जब किसी औद्योगिक संस्था का प्रबन्ध अपने हाथ में संरक्षक के रूप में ले तो उसे उस संस्था का पूर्ण अथवा आंशिक अधिकार अपने हाथ में लेना चाहिए। इसी प्रकार शासकीय वित्तीय संस्थाओं (जीवन बीमा निगम सहित) को उन कम्पनियों में जिनमें इन संस्थाओं ने विनियोजन किया है, अंशधारियों के पूर्ण अधिकारों का उपयोग करना चाहिए। इस प्रकार यह संस्थाएँ कम्पनियों के निर्णयों को प्रभावित कर सकेंगी और मिश्रित अर्थ-व्यवस्था अधिक प्रभावशाली ढंग से काम कर सकती है।

(ई) प्रबन्ध अभिकर्ता प्रणाली की समाप्ति पर विचार किया जा रहा है। यह समाप्ति प्रभावशाली होना चाहिए।

विकास एवं वितरण

चतुर्थ योजना में विकास के प्रयासों को तीव्र करने के साथ-साथ विकास के लाभों को निर्बल एवं निर्धन वर्ग तक पहुँचाना भी एक महत्वपूर्ण उद्देश्य होगा। धनी

राष्ट्रों में राजकोषीय (Fiscal) मूल्य एवं अन्य नीतियों द्वारा आय का हस्तान्तरण निधन वर्ग को किया जाता है परन्तु निधन राष्ट्र में इन नीतियों को महत्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त नहीं होती हैं। इसलिए इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विकास को देश के सभी स्थानों में ले जाना आवश्यक है और इसके लिए विकास की आवश्यक सुविधाओं एवं सेवाओं का विस्तार सभी स्थानों पर किया जाना चाहिये।

रोजगार

रोजगार के अवसरों में और अधिक वृद्धि करना चतुर्थ योजना का एक मुख्य उद्देश्य है। रोजगार का प्रकार ऐसा होना चाहिए कि और अधिक विकास में सहायक हो। कृषि के क्षेत्र में गैर निश्चित कृषि, लघु कृषकों तथा श्रम शक्ति का उत्पादन के साधन के रूप में पूर्णत उपयोग पर विशेष ध्यान देने से लाभप्रद रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी। औद्योगिक क्षेत्र में उद्योगों के विकेन्द्रीयकरण तथा लघु उद्योगों को प्रोत्साहित करने से भी रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी।

जनसाधारण के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए जनोपयोगी सेवाओं का विस्तार करना आवश्यक होता है। अभी शिक्षा एवं स्वास्थ्य-सेवाओं का बड़े पैमाने पर विस्तार किया गया है। इसके अतिरिक्त पौष्टिक भोजन की व्यवस्था पर भी ध्यान दिया जाना आवश्यक है। प्रसूति एवं शिशु कल्याण केन्द्रों द्वारा भी पिछड़े एवं निधन वर्ग को सुविधा पहुँचायी जायगी।

आय एवं उपभोग की विषमताओं में कमी

विकसित नगरों के क्षेत्रों में भूमि के मूल्य में अत्यधिक वृद्धि होने के कारण अनुपार्जित आय कुछ धनी वर्गों को प्राप्त होती है। इस अधिक आय को विकास के लिए उपलब्ध कराने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

कम्पनियों और फर्मों के अधिकारियों को प्राप्त होने वाले पारिश्रमिकों एवं लाभों को भी सीमित करना आवश्यक होगा। इस प्रकार जन अधिकारियों एवं सार्वजनिक उत्सवों पर होने वाले व्ययों की जाँच करना आवश्यक है।

विषमताओं को कम करने का दूसरा तरीका यह भी है कि सामान्य नागरिक की जनोपयोगी सेवाओं और सार्वजनिक प्रशासन के सम्बन्ध में स्थिति सुधारी जाय। सामान्य नागरिकों को जनोपयोगी सेवाओं का पूर्णत लाभ प्रदान कर उनके उत्पीड़न को दूर किया जा सकता है।

उपसंहार

चतुर्थ योजना के दिशानिर्देश पत्र में आर्थिक प्रगति की दर ५% (चक्र-वृद्धि) प्रति वर्ष प्राप्त करना सम्भव समझा गया है। सन् १९६८ ६९ में (सन् १९६८ ६९ के मूल्यों के आधार पर) राष्ट्रीय आय लगभग ३०००० करोड़ रु० अनुमानित है। इस राष्ट्रीय आय की राशि से यदि चतुर्थ योजना प्रारम्भ होगी तो चतुर्थ योजना

काल में ५% प्रति वर्ष (चक्रवृद्धि) प्रगति की दर से राष्ट्रीय आय की वार्षिक वृद्धियाँ कुल मिलाकर पाँच वर्षों में २४००० करोड़ रु० (सन् १९६८-६९ के मूल्यों पर) होना चाहिए। दूसरी ओर, राज्य एवं केन्द्रीय सरकार को ३०० करोड़ रु० प्रति वर्ष अतिरिक्त अर्थ-साधन प्राप्त करना आवश्यक बताया गया है अर्थात् पाँच वर्षों में कुल मिलाकर ३००० करोड़ रु० के अतिरिक्त अर्थ-साधन केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा जुटाने हैं। यह राशि राष्ट्रीय आय की कुल वृद्धियों (अर्थात् २४,००० करोड़ रु०) की १२½% है। इस प्रकार इतने अर्थ-साधन की प्राप्ति कोई कठिन कार्य नहीं होना चाहिए यदि राज्य सरकारें करारोपण के विभिन्न साधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करें।

दूसरी ओर, योजना-आयोग के अनुसार वर्तमान आन्तरिक बचत की दर ८% है जो प्रगति के लक्ष्य की पूर्ति हेतु १२% तक बढ़ाना आवश्यक होगा। आन्तरिक बचत की दर में इतनी वृद्धि होने पर योजना के पाँच वर्षों में ७,००० करोड़ रु० की अतिरिक्त बचत होगी जो कुल राष्ट्रीय आय की वृद्धि की २९% होगी। इस प्रकार अतिरिक्त आय व विकास के लिए पर्याप्त अर्थ-साधनों का प्राप्त करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक होगा कि बचत करने के लिए प्रभावशाली प्रोत्साहन एवं सुविधाएँ बड़े पैमाने पर प्रदान की जायें और इस सम्बन्ध में ग्रामीण क्षेत्रों में बचत करने के लिये विशेष प्रयास किए जायें।

देश में सरकारी औद्योगिक व्यवसायों का संचालन कुछ सन्तोषपूर्वक नहीं किया जा सका है और विभिन्न समितियों (विशेषकर हजारी-समिति) द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया है कि सरकारी मूल्य नियन्त्रण औद्योगिक सामग्रियों के वितरण पर नियन्त्रण तथा औद्योगिक इकाइयों के लाइसेंसिंग करने की पद्धति ने देश में आर्थिक समानता लाने के बजाय आर्थिक सत्ताओं के केन्द्रीयकरण को प्रोत्साहित किया है। इन तथ्यों को ध्यान में रखकर चतुर्थ योजना में सरकारी नियन्त्रणों को ढीला करने तथा निजी क्षेत्र के उद्योग एवं व्यवसायों का प्रतिस्पर्धा के आधार पर संचालित करने का लक्ष्य रखा जाना है। सम्भवतः यह मान्यता है कि समाजवाद लाने के लिए सरकारी क्षेत्र का तीव्र गति से विस्तार आवश्यक है। कुछ सीमा तक त्याग दी गयी है। सरकारी नियन्त्रणों का अब न्यूनतम उपयोग किया जाता है और उनके स्थान पर विपणि-शक्तियों को फिर से मान्यता प्रदान की जा रही है। अर्थ व्यवस्था में इस प्रकार के मूलभूत परिवर्तन का क्या प्रभाव पड़ेगा, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है परन्तु इतना अवश्य ध्यान देने योग्य है कि सरकारी-नियन्त्रणों की छूटों को निजी क्षेत्र निर्धन वर्ग के शोषण के लिए किस सीमा तक उपयोग कर सकेगा? इस नियन्त्रणों का प्रमुख उद्देश्य निर्दिष्ट दिशा में विकास कर आर्थिक विषमताओं को कम करना रहा है। क्या इन उद्देश्यों की पूर्ति नियन्त्रणों को ढीला कर की जा सकेगी, यह सन्देहात्मक है।

चतुर्थ योजना के दिशानिर्देश पत्र मे मूल्यो को बढने से रोकने के लिए उचित मूल्य की दुकानो को सर्वाधिक महत्व दिया गया है और इन दुकानो को अन्तत सहकारी उपभोक्ता भण्डारो म परिवर्तित करने का लक्ष्य रखा गया है। सहकारी सस्थाओं का सचालन अभी तक अपने देश म सफल नही रहा हैं। चतुर्थ योजनाकाल के अन्त तक क्या यह सहकारी भण्डार इतने सुदृढ एव कुशल हो जायेंगे कि उचित मूल्य की दुकानो के उद्देश्यो की पूर्ति कर सकें यह सन्देहास्पद प्रतीत होता है।

चतुर्थ योजना म सामाजिक विषमताओ को कम करने के लिए उद्योगो के विकेन्द्रीयकरण, क्षेत्रीय असन्तुलन को कम करने विकास-कायक्रमों का फलाव सभी स्थानो म करने रोजगार के अवसरो म वृद्धि करने आदि का आयोजन करने का सुझाव योजना आयोग ने दिया है। यह सभी कायक्रम पिछली तीन योजनाओ म भी सम्मिलित किए गये थे परन्तु इनकी सफलता कुछ सराहनीय नही रही। चतुर्थ योजना म विकास कायक्रमो का रूप के सभी क्षेत्रो म फलाने का जो प्रस्ताव है यदि यह प्रभावशाली रूप से क्रियान्वयन किया जा सका तो पिछड़े हुए वर्गों एव क्षेत्रो का विकास शीघ्र ही सम्भव हो सकेगा। विकास कायक्रमो का फलाव स्थानीय नागरिको की सामाजिक स्वीकृति के आधार पर होना चाहिए अन्यथा जनसाधारण इसम पर्याप्त रुचि नहीं रख सकता है। सामाजिक स्वीकृति कायक्रमों के स्थानीय महत्व एव सचालन विधि पर निभर रहता है। इन दो बातों की ओर अभी कुछ भी निर्देश स्पष्ट नही किए गये है।

चतुर्थ योजना के दिशानिर्देश पत्र से यह भी आभास होता है कि अभी तक जो नीतियाँ हमारी योजनाओ की आधारशिला बनी रही उनम अब योजना आयोग का विश्वास नहीं के बराबर रह गया है और चतुर्थ योजना म नीतियो का इतना अधिक हेर फेर प्रस्तावित है कि चतुर्थ योजना का स्वरूप क्रियान्वयन एव विधियाँ पहले की तीन योजनाओ से बडी सीमा तक भिन्न रहेंगी। इसका यह नतीजा भी हो सकता है कि चतुर्थ योजना हमारी नियोजित अथव्यवस्था की स्वाभाविक कडी न होकर अपने आप म एक पृथक कायक्रम का स्वरूप बन सकती है। यह नवीनता विकास के लिए वरदान अथवा अभिशाप दानों ही बन सकती है।

योजना आयोग ने इस पत्र द्वारा अपनी स्थिति को स्पष्ट कर दिया है। इस पत्र से स्पष्ट हो जाता है कि योजना आयोग ने अब एक सलाहकार सस्था का रूप ग्रहण कर लिया है। अन्तिम निणय सरकार को ही करने हैं। योजना आयोग ने तो इस पत्र म केवल उद्देश्य और उनकी प्राप्ति के लिए अपनायी जाने वाली आवश्यक नीतियाँ प्रस्तावित की हैं।

प्रस्तावित चौथी पंचवर्षीय योजना, सन् १९६९-७४

[Draft Fourth Five Year Plan 1969-74]

[उद्देश्य, व्यय एवं विनियोजन, अर्थ-साधन—चालू आय से अतिरेक, सार्वजनिक व्यवसायों का अधिरेक, रिजर्व बैंक से लिये गये ऋण, सार्वजनिक ऋण, लघु बचत, वार्षिकी जमा, राज्य प्राविधिक निधि, विविध पूँजीगत प्राप्तियाँ, जीवन बीमा निगम द्वारा ऋण, विदेशी सहायता, हीनार्थ प्रबन्धन, अतिरिक्त साधनों की व्यवस्था, निजी क्षेत्र का विनियोजन, विदेशी साधन, व्यय एवं कार्यक्रम, कृषि क्षेत्र, सिंचाई, शक्ति, ग्रामीण एवं लघु उद्योग, उद्योग एवं खनिज, यातायात एवं संचार, समाज-सेवाएँ, योजना की आलोचना, सन् १९६९-७० वर्ष की योजना, आयोजित व्यय, अर्थ-साधन, योजना के लक्ष्य]

नवम्बर सन् १९६७ में पुनर्गठित योजना-आयोग ने विद्यमान परिस्थितियों का अध्ययन कर यह सुझाव प्रस्तुत किया कि चौथी योजना का प्रारम्भ १ अप्रैल, सन् १९६६ का न होकर १ अप्रैल सन् १९६९ को किया जाय। योजना-आयोग के इस सुझाव को स्वीकार कर लिया गया और तृतीय योजना एवं चौथी योजना के मध्य के तीन वर्षों को तीन वार्षिक योजनाओं द्वारा पूरित किया गया। चतुर्थ योजना को इस प्रकार तीन वर्ष से स्थगित किया गया जिससे इस मध्यकाल में भारतीय अर्थ-व्यवस्था प्राकृतिक, आर्थिक, मौद्रिक कठिनाइयों के आघातों से मुक्त होकर सामान्य स्थिति में आ जाये, यहाँ से विकास-सम्बन्धी निर्णय लेना सुलभ हो सके। योजना के स्थगन के पश्चात् ही नवीन चौथी योजना के निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। नवीन चतुर्थ योजना के प्रस्तावित प्रारूप को राष्ट्रीय विकास परिषद् की १९ व २० अप्रैल सन् १९६९ की बैठकों में अन्तिम रूप दिया गया और २१ अप्रैल, सन् १९६९ को यह प्रारूप लोकसभा में प्रस्तुत किया गया।

चतुर्थ योजना के वर्तमान प्रारूप को प्रकाशित करने के पूर्व योजना-आयोग ने इस योजना की नीतियों एवं कार्यक्रमों का दिशानिर्देश-पत्र मई, सन् १९६८ में प्रकाशित किया था। इस दिशानिर्देश-पत्र में यह अंकित किया गया था कि चतुर्थ योजना की नीतियों एवं कार्यक्रमों को तीन मुख्य उद्देश्यों के आधार पर निर्धारित किया जायगा। और यह उद्देश्य थे—(१) स्थिरता के साथ आर्थिक प्रगति (२) आत्म-

निर्भरता (Self Reliance) की ओर यथासम्भव तीव्र गति से अग्रसर होना तथा (३) क्षेत्रीय सन्तुलन।

उद्देश्य

चौथी योजना में देश की आर्थिक एवं सामाजिक क्रियाओं को इस प्रकार गतिमान करने का प्रस्ताव है कि यह स्थिरता के निर्वाह एवं आत्म निर्भरता की ओर अग्रसर होने के लिए उपयुक्त एवं अनुकूल हो। योजना के अन्तर्गत वर्तमान में उपलब्ध हो सकने वाले समस्त साधनों तथा भविष्य में उत्पन्न होने वाले साधनों का अधिकतम उपयोग करने का लक्ष्य रखा गया है। योजना का बुनियादी उद्देश्य समानता एवं सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित करने वाले उपायों द्वारा जनता के जीवन-स्तर को द्रुत गति से ऊँचा उठाना है और जनसामान्य निर्बल वर्गों तथा कम अधिकार प्राप्त लोगों पर विशेष बल देना है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए योजना में बताया गया है—

(क) नियोजन के द्वारा आय एवं सम्पत्ति के वितरण में अधिकाधिक समानता लायी जाय।

(ख) आय सम्पत्ति एवं आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण में क्रमशः कमी हो।

(ग) विकास का लाभ समाज के उन लोगों को अधिकाधिक प्राप्त हो जिनको अपेक्षाकृत कम अधिकार प्राप्त हैं विशेषकर अनुसूचित आदिम जातियों को जिनके आर्थिक एवं शैक्षणिक हितों को आगे बढ़ाने पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

चौथी योजना में इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि आर्थिक एवं सामाजिक संस्थाओं का इस प्रकार पुनर्गठन किया जाय कि इनके द्वारा एक ओर द्रुत गति से आर्थिक प्रगति हो सके और दूसरी ओर यह प्रगति देश में सामाजिक न्याय स्थापित कर सके। विकास के सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति विकास के प्रकार एवं मार्ग पर निर्भर रहती है और यह विकास मार्ग आर्थिक एवं सामाजिक संस्थाओं के संगठन एवं संचालन पर निर्भर होता है। योजना में इसी कारण सामाजिक एवं आर्थिक प्रजातन्त्र को सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता को महत्वपूर्ण समझा गया है और प्रजातान्त्रिक मूल तत्वों को बढ़ावा देने के लिए सामान्य नागरिक में योजना के भागीदार की भावना उत्पन्न करने को महत्व दिया गया है। निम्न वर्गों में उद्यम की भावना को बढ़ावा देना तथा समाज के समस्त वर्गों को समाज के निर्माण में सम्मिलित करने की आवश्यकता को मान्यता प्रदान की गयी है।

यदि हम वर्तमान प्रस्तावित चौथी योजना के उद्देश्यों एवं स्थगित चौथी योजना तथा पिछली तीन योजना के उद्देश्यों से तुलना करें तो हमें ज्ञात होता है कि योजना आयोग ने उद्देश्यों को अधिक विस्तृत रखने की परम्परा को छोड़ दिया है और उद्देश्यों का संक्षिप्तीकरण करके केवल तीन आधारभूत लक्ष्यों में सम्बद्ध कर दिया है और यह लक्ष्य हैं— आत्म निर्भरता सामाजिक एवं आर्थिक समानता एवं द्रुत गति

से विकास। इन लक्ष्यों की पूर्ति हेतु किस क्षेत्र को कितना महत्व दिया गया है इसका विवरण उद्देश्यों की सूची में नहीं सम्मिलित किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि योजना के उद्देश्य अब केवल एक आदर्श की ओर इशारा करते हैं और इस आदर्श की किस निश्चित सीमा तक पूर्ति की जा सकती है, इस सम्बन्ध में उद्देश्यों में कोई विवरण सम्मिलित नहीं किया गया है। उदाहरण के लिए, स्थगित चौथी योजना के उद्देश्यों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि आत्म निर्भरता एवं मूल्य स्तर को स्थिर रखने के उद्देश्यों के अतिरिक्त कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्रों के विकास कार्यक्रमों के लक्ष्य भी स्पष्ट किये गये थे। इसी प्रकार जनसंख्या की वृद्धि को रोकने एवं समाज सेवाओं की उपयुक्त व्यवस्था करने के उद्देश्यों को भी आधारभूत उद्देश्यों में सम्मिलित किया गया था। वर्तमान चौथी योजना में उद्देश्यों का स्पष्टीकरण कर अब केवल उन्हीं आधारभूत दीर्घकालीन उद्देश्यों को सम्मिलित किया गया है जो दीर्घ काल तक योजना के आधारभूत लक्ष्य रहने वाले हैं और जिनकी सम्पूर्ण उपलब्धि कई योजना द्वारा भी सम्भव नहीं हो सकेगी। इस प्रकार इस उद्देश्य-सूची से एक मात्र चौथी योजना के उद्देश्यों का ठीक ज्ञान नहीं प्राप्त होता है और न ही विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों (Economic Sections) से सम्बन्धित योजना की प्राथमिकताओं का स्पष्टीकरण होता है।

व्यय एवं विनियोजन

प्रस्तावित चौथी योजना का कुल व्यय २४,९९८ करोड़ रु० निर्धारित किया गया है जिसमें से १४,३९८ करोड़ रु० सरकारी क्षेत्र का व्यय होगा और १०,००० करोड़ रु० का विनियोजन निजी क्षेत्र में होने का अनुमान है। सरकारी क्षेत्र के व्यय में से १२,२५२ करोड़ रु० का विनियोजन और शेष २,१४६ करोड़ रु० चालू व्यय के लिए आयोजित है। इस प्रकार योजनाकाल में कुल विनियोजन २२,२५२ करोड़ रु० होने का अनुमान लगाया गया है। सरकारी क्षेत्र की कुल आयोजित राशि में से ७,२०७ करोड़ रु० केन्द्रीय परियोजनाओं के लिए, ६,०६६ करोड़ रु० राज्यों की योजनाओं के लिए ३९८ करोड़ रु० केन्द्र-शासित प्रदेशों की योजनाओं के लिए तथा ७२७ करोड़ रु० केन्द्र द्वारा संचालित कार्यक्रमों के लिए आयोजित किया गया है। योजना के व्यय में इन अनुमानों की वे राशियाँ प्रायः सम्मिलित नहीं की गयी हैं जो स्थानीय संस्थाओं द्वारा अपने साधनों से विकास-कार्यक्रमों पर व्यय की जायेंगी। इसी प्रकार विकास-सेवाओं एवं संस्थाओं जिनकी स्थापना पहले की योजनाओं में की गयी है, के निर्वाह-व्यय को भी योजना के व्यय में सम्मिलित नहीं किया गया है।

चौथी योजना में राज्यों को प्रदान की जाने वाली केन्द्रीय सहायता के वितरण की विधि एवं प्रकार में भी परिवर्तन कर दिया गया है। आसाम, नागालैण्ड तथा जम्मू एवं काश्मीर की आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात्, जो केन्द्रीय सहायता के लिए राशि उपलब्ध होगी, उसका ६०% भाग विभिन्न राज्यों में उनकी जनसंख्या के

अनुपात मे वितरित किया जायगा १०% भाग उन राज्यो को दिया जायगा जिनकी प्रति व्यक्ति आय राष्ट्रीय औसत प्रति व्यय आय से कम है तथा १०% भाग प्रति व्यक्ति आय के सन्दभ मे करारोपण के प्रयासो के आधार पर वितरित होगा। १०% भाग उन राज्यों को दिया जायगा जिनमे बडी सिंचाई एव शक्ति परियोजनाओं (जो जारी हैं) के सम्बन्ध म अधिक व्यय होना है। शेष १०% राशि राज्यो म विशिष्ट समस्याओं के निवारणार्थ वितरित की जायगी, जसे बाढ सूखा आदिवासी क्षेत्र आदि।

अभी तक राज्यो को केन्द्रीय सहायता विशिष्ट परियोजनाओ पर व्यय करने के लिए राशि दी जाती थी परन्तु चौथी योजना मे यह सहायता एकमुश्त राशि के रूप मे दी जायगी जिसका उपयोग राज्य अपनी आवश्यकतानुसार विभिन्न परियोजनाओ पर कर सकते हैं। केन्द्र द्वारा सचालित परियोजनाओं की लागत केन्द्रीय सरकार ही वहन करेगी और इन परियोजनाओ म वे ही सम्मिलित की जायेंगी जो निम्नलिखित शर्तों की पूर्ति करेंगी—

(१) जो प्रदशन लघ परियोजनाओं (Pilot Projects) सर्वेक्षण एव शोध काय से सम्बद्ध हो ,

(२) जिनका क्षेत्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय महत्व हो

(३) जिनके प्रारम्भिक सचालन के लिए एक बडी राशि की आवश्यकता हो और इसके बाद ही इसको विभिन्न क्षेत्रो म बाँटना सम्भव हो

(४) जिनका अखिल भारतीय महत्व हो।

चौथी योजना के व्यय का वितरण विभिन्न मदो पर तालिका स० १०१ के अनुसार किया गया है।

चौथी योजना के प्रस्तावित व्यय एव विनियोजन का अध्ययन करने से हम ज्ञात होता है

(१) वतमान प्रस्तावित चौथी योजना का सरकारी क्षत्र का व्यय सन् १९६६ की प्रस्तावित चौथी योजना के व्यय से लगभग २००० करोड रु० कम है जिसके फलस्वरूप चौथी योजनाकाल के प्रत्येक वष म सरकारी क्षेत्र का व्यय पिछली तीन वार्षिक योजनाओ के लगभग बराबर ही होगा। इन तीन वार्षिक योजनाओ म किन्ही मूलभूत नीतियो एव कार्यक्रमों को समायोजित एव प्रारम्भ नहीं किया गया जिसे दूसरे शब्दो म इस प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता है कि इन तीन वर्षों म योजना का अवकाश रहा और अथ व्यवस्था म केवल सामान्य विनियोजन ही किया गया। यदि चौथी योजना के प्रारम्भिक वर्षों म भी व्यय एव विनियोजन की गति योजना अवकाश काल के समान रहती है तो विकास की तीव्र गति की सम्भावना करना उचित नहीं कहा जा सकता है।

(२) चौथी योजना के विनियोजन के प्रकार का अध्ययन करने से हम ज्ञात

तालिका सं० १०१—प्रस्तावित चौथी योजना का व्यय एवं विनियोजन

(करोड़ रु० में)

विकास की मद	सरकारी क्षेत्र				निजी क्षेत्र		सरकारी एवं निजी क्षेत्र		
	कुल व्यय	चालू व्यय	विनियोजन	कुल व्यय का प्रतिशत वितरण	विनियोजन	प्रतिशत वितरण	कुल विनियोजन ४ तथा ६ ८ का योग	कुल व्यय (२+६)	प्रतिशत वितरण
१	२	३	४	५	६	७		९	१०
कृषि एवं सम्बन्धित क्षेत्र	२,२१७	५५०	१६६७	१५ ४	१,८००	१८ ०	३,४६७	४,०१७	१६ ५
सिंचाई एवं बाढ़ नियन्त्रण	९६४	१४	९५०	६ ७	—	—	९५०	९६४	३ ९
शक्ति	२,०८५	—	२,०८५	१४ ४	५०	० ५	२,१३५	२,१३५	८ ७
ग्रामीण एवं लघु उद्योग	२९५	१११	१८४	२ १	५००	५ ०	६८४	७९५	३ ३
उद्योग एवं खनिज	३,०९०	३५	३,०५५	२१ ५	२,१५०	२१ ५	५,२०५	५,२४०	२१ ५
यातायात एवं संचार	३,१७३	४०	३,१३३	२२ ०	१,०१०	१० १	४,१४३	४,१८३	१७ २
शिक्षा	८०२	५३९	२६३	५ ६	५०	० ५	३१३	८५२	३ ५
वैज्ञानिक शोध	१३४	४१	९३	० ९	—	—	९३	१३४	० ५
स्वास्थ्य	४३७	३०५	१३२	३ ०	—	—	१३२	४३७	१ ८
परिवार नियोजन	३००	२५०	५०	२ १	—	—	५०	३००	१ २
जलपूर्ति एवं सफाई	३३९	२	३३७	२ ४	—	—	३३७	३३९	१ ४
गृहनिर्माण एवं नगरों का विकास	१७१	—	१७१	१ २	२,६८०	२६ ८	२,८५१	२,८५१	११ ७
पिछड़े वर्गों का कल्याण	१३४	१३४	—	० ९	—	—	—	१३४	० ५
समाज कल्याण	३७	३७	—	० ३	—	—	—	३७	० २
श्रम कल्याण एवं दस्तकारों को प्रशिक्षण	३७	१८	१९	० ३	—	—	१९	३७	० २
अन्य कार्यक्रम	१८३	७०	११३	१ २	—	—	११३	१८३	० ७
निर्माण स्कन्ध (Inventions)	—	—	—	—	१,७६०	१७ ६	१,७६०	१,७६०	७ २
योग	१४,३९८	२,१४६	१२,२५२	१०० ०	१०,०००	१०० ०	२२,२५२	२४,३९८	१०० ०

होता है कि निजी क्षेत्र को कुल विनियोजन का ४५% भाग आयोजित किया गया है जबकि तृतीय योजना में यह प्रतिशत केवल ३६% ही था। निजी क्षेत्र में १० ००० करोड़ रु० के विनियोजन का अनुमान लगाया गया है जो तृतीय योजना के ४१०० करोड़ रु० के विनियोजन पर १४४% की वृद्धि प्रदर्शित करता है। इन आँकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि चौथी योजना में निजी क्षेत्र के महत्व को बढ़ा दिया गया है।

(३) सार्वजनिक क्षेत्र में होने वाले विनियोजन में प्रथम योजना की तुलना में द्वितीय योजना में १३५% की और द्वितीय योजना की तुलना में तृतीय योजना में ८८% की वृद्धि हुई परन्तु तृतीय योजना की तुलना में चतुर्थ योजना में सार्वजनिक क्षेत्र का विनियोजन केवल ६७% ही अधिक है। अभी तक की योजनाओं में सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के विनियोजन का अनुपात निम्न प्रकार रहा है—

	सार्वजनिक क्षेत्र के विनियोजन का कुल विनियोजन से प्रतिशत	निजी क्षेत्र के विनियोजन का कुल विनियोजन से प्रतिशत
प्रथम योजना	४३	५७
द्वितीय योजना	५१	४६
तृतीय योजना	६३	३७
चतुर्थ योजना	५५	४५

इन आँकड़ों से यह प्रतीत होता है कि तृतीय योजना तक भारतीय योजना की प्रवृत्ति जारी रही कि सार्वजनिक क्षेत्र को विकास विनियोजन का अधिक भाग आयोजित किया जाता रहे और इसीलिए सार्वजनिक क्षेत्र का प्रतिशत अंश बढ़ता रहा परन्तु चौथी योजना में इस प्रवृत्ति को मोड़ दे दिया गया है और निजी क्षेत्र के प्रतिशत अंश को बढ़ा दिया गया है। निजी क्षेत्र का १० ००० करोड़ रु० की जो विनियोजन राशि आयोजित की गयी है इसके निर्धारण में निजी क्षेत्र से कोई विचार विमर्श नहीं किया गया है।

(४) यद्यपि चतुर्थ योजना का मौद्रिक व्यय एवं विनियोजन पिछली तीन योजनाओं से अधिक प्रतीत होता है परन्तु यदि मूल्य स्तर की वृद्धि के सन्दर्भ में हम इसका अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि सन् १९६० ६१ के मूल्यों के आधार पर चतुर्थ योजना का कुल वास्तविक व्यय १३३१५ करोड़ रु० (सन् १९६ ६१ का थोक मूल्य निर्देशांक १२४ ६ तथा सन् १९६७ ६८ का २१२ ६) और सरकारी क्षेत्र का वास्तविक व्यय ८३७० करोड़ रु० के लगभग आता है। तृतीय योजना में सरकारी क्षेत्र का वास्तविक व्यय ८५७७ करोड़ रु० था अर्थात् चतुर्थ योजना का सरकारी क्षेत्र का व्यय तृतीय योजना से सन् १९६० ६१ मूल्यों के आधार पर कम है तथा चतुर्थ

१ विनियोजन अनुपात Notes on Approach to the Fourth Plan—6 में दी विनियोजन राशियों के आधार पर निकाले गये हैं।

योजना का कुल व्यय भी तृतीय योजना के व्यय (८५७७ ४१६०) से केवल ५८८ करोड़ रु० ही अधिक है। इन विचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि चतुर्थ योजना का आकार लगभग तृतीय योजना के समान ही है।

(५) चतुर्थ योजना के अन्तर्गत पाँच वर्षों में आयोजित राशि का इस प्रकार वितरित किया जायगा कि विनियोजन की दर राष्ट्रीय आय से १३ ८% और बचत १२ ६% सन् १९७३ ७४ तक हो जाय। सन् १९६७ ६८ वर्ष में विनियोजन एवं बचत की यह दरें ११ ५% एवं ८ ०% अनुमानित थीं।

(६) जहाँ तक योजना के व्यय वितरण का सम्बन्ध है, कृषिक्षेत्र को जो राशि आयोजित की गयी है वह तृतीय योजना की वास्तविक राशि की लगभग १½ गुना है परन्तु उद्योगों में की गयी आयोजित राशि में तृतीय योजना की तुलना में ८०% अधिक है अर्थात् उद्योगों के महत्व को चौथी योजना में यथावत् रखा गया है। यातायात एवं संचार पर तृतीय योजना में कुल व्यय का २० १% व्यय किया गया है जबकि चौथी योजना में इस मद के लिए २०% राशि निर्धारित की गयी। चौथी योजना में उपरिव्यय-सुविधाओं को बढ़ाने के लिए विशेष आयोजन किये गये हैं। शक्ति के विकास के लिए आयोजित राशि का कुल व्यय से प्रतिशत तृतीय योजना के समान ही है।

अर्थ साधन

चतुर्थ योजना के अर्थ साधनों के अनुमान तृतीय योजना एवं तीन वार्षिक योजनाओं में विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध साधनों के आधार पर निर्धारित किये गये हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि योजनाकाल में २०० से ३०० करोड़ रु० के अतिरिक्त साधन प्रति वर्ष प्राप्त करना सम्भव हो सकेगा। विभिन्न मदों से अर्थ-साधन निम्न प्रकार प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया है—

तालिका सं० १०२—प्रस्तावित चतुर्थ योजना के अर्थ-साधन

(करोड़ रुपयों में)

क्रम संख्या (१)	मद (२)	केन्द्र द्वारा (३)	राज्यों द्वारा (४)	योग (५)
(१)	बजट के स्रोत (जीवन बीमा निगम एवं राज्य सरकारों के व्यवसायों द्वारा बाजार से लिए गये ऋणों को छोड़कर)	६,८६८	१,११४	७,९८२
(२)	सन् १९६८ ६९ की कर दरों के आधार पर चालू आय का अतिरेक	२,३५५	१००	२,४५५
(३)	सार्वजनिक व्यवसायों का सन् १९६८-६९ की दरों-मूल्यों के आधार पर अतिरेक	१,१७५	५५५	१,७३०
	(अ) रेलों का अतिरेक	२६५	—	२६५

(ब) अन्य व्यवसायों का अतिरेक	९१०	५५५	१४६५
(४) रिजर्व बैंक का रोका हुआ लाभ	१३३	३२	१६५
(५) सार्वजनिक ऋण	७५०	४१६	११६६
(६) लघु बचत	२७४	५२६	८००
(७) वार्षिकी जमा अनिवार्य जमा इनामी बाण्ड तथा स्वर्ण बाण्ड	—१०४	—	—१०४
(८) सरकारी प्राविधिक निधि	३४३	२९७	६४०
(९) विविध पूंजीगत प्राप्तियां (शुद्ध)	१९४२	—८१२	११३०
(१०) जीवन बीमा निगम से ऋण तथा राज्य व्यवसायों का बाजार से ऋण	—	३४३	३४३
(अ) राज्य सरकारों को गृह निर्माण एवं जलपूर्ति हेतु जीवन बीमा निगम द्वारा ऋण	—	९६	९६
(ब) राज्य व्यवसायों के बाजार से ऋण	—	११६	११६
(स) जीवन बीमा निगम द्वारा राज्य व्यवसायों को ऋण	—	१३१	१३१
(११) विदेशी सहायता	२५१४	—	२५१४
(अ) PL ४८० के अतिरिक्त	२१३४	—	२१३४
(ब) PL ४८० के अन्तर्गत	३८०	—	३८०
(१२) बजट के समस्त साधन (१+१०+११)	८९८२	१४५७	१०,८३९
(१३) अतिरिक्त साधनों की व्यवस्था	१६००	११०९	२७०९
(१४) हीनार्थ प्रबन्धन	८५०	—	८५०
समस्त अर्थ साधन (१२+१३+१४)	११८३२	२५६६	१४४९८
(१५) राज्यों की योजनाओं को सहायता	—३५००	३५००	—
(१६) समस्त साधन (शुद्ध)	८३३२	६०६६	१४४९८

चालू आय से अतिरेक

सन् १९६८ ६९ के मूल्यों के आधार पर केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों का अनुमानित चालू आय २४५५ करोड़ रु० है। इस राशि के निर्धारण में यह मान लिया गया है कि योजनाकाल में खाद्य अनुदान (Food Subsidy) नहीं दी जायगी कर्मचारियों के मँहगाई भत्ते एवं वेतन स्तर में वृद्धि नहीं होगी तथा गैर-योजना-व्यय में कोई वृद्धि नहीं होगी। राज्य सरकारों द्वारा केवल १०० करोड़ रु० ही चालू आय के अतिरेक का अनुमान लगाया गया है। पिछली योजनाओं के अनुभवों से यह ज्ञात है कि गैर योजना-व्यय में निरन्तर तीव्र गति से वृद्धि होती रही है और किसी भी योजना में चालू आय का अतिरेक अनुमान के अनुसार प्राप्त नहीं हुआ है। प्रायः चालू आय से अतिरेक के स्थान पर हीनता ही होती रही है।

सार्वजनिक व्यवसायों का आधिक्य

सन् १९६९ ७० वर्ष के बजट में रेलों के विकास कार्यक्रमों के लिए अनुमान

२१ करोड़ रु० अनुमानित है परन्तु चतुर्थ योजना में रेल-यात्रा एवं माल में अधिक गतिविधि बढ़ने से वृद्धि होने का अनुमान है जिसके फलस्वरूप रेलों में २६५ करोड़ रु० अर्थात् ५३ करोड़ रु० प्रति वर्ष औसत में विकास के लिए उपलब्ध होने का अनुमान लगाया गया है। तृतीय योजना में रेलों द्वारा केवल ६२ करोड़ रु० ही विकास कार्यक्रमों के हेतु अनुदान दिया गया। तीन वार्षिक योजनाओं के अन्तर्गत रेलों से अनुमान के स्थान पर हीनता अनुमानित है। इस हीनता की राशि लगभग १२० करोड़ रु० हो सकती है। पिछली योजनाओं के अनुभवों के आधार पर रेलों से ५[illegible] करोड़ रु० प्रति वर्ष प्राप्त करना अत्यन्त अभिलाषी अनुमान प्रतीत होता है। डाक एवं तार विभाग द्वारा २२५ करोड़ रु० विकास के लिए उपलब्ध होने का अनुमान लगाया गया है जबकि चालू वर्ष (सन् १९६९-७०) के बजट में इस स्रोत से १८ करोड़ रु० प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया। यह अनुमान भी कुछ अभिलाषी प्रतीत होता है। केन्द्र सरकार के अन्य व्यवसायों से चतुर्थ योजना में ६८५ करोड़ रु० प्राप्त होने का अनुमान है जबकि चालू वर्ष में इस स्रोत से १०८ करोड़ रु० प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया। राज्य सरकारों के व्यवसायों में राज्यों के विद्युत मण्डलों द्वारा ५१२ करोड़ रु० प्राप्त होने का अनुमान इस आधार पर लगाया गया है कि योजना-काल में शक्ति का अधिक उत्पादन एवं विक्रय होगा। ४२ करोड़ रु० राज्यों के अन्य व्यवसायों से प्राप्त होने का अनुमान है। सन् १९६८-६९ में राज्य सरकारों के व्यवसायों से केवल ७६ करोड़ रु० प्राप्त होने के अनुमान हैं।

रिजर्व बैंक के रोके गये लाभ

अभी तक की योजनाओं में रिजर्व बैंक द्वारा अपने रोक गये लाभों में से जो ऋणादि कृषि एवं औद्योगिक विनियोजन के लिए दिये जाते थे उन्हें योजना के सार्वजनिक क्षेत्र का व्यय नहीं माना जाता था परन्तु चौथी योजना में उन परियोजनाओं के, जो विकास की प्रकृति की हों, का वह समस्त व्यय जो रिजर्व बैंक द्वारा अपने दीर्घकालीन संचालन फण्डों (Operations Funds) से किया जाता हो, योजना के सरकारी क्षेत्र में सम्मिलित किया गया है। इस मद में रिजर्व बैंक द्वारा २२ करोड़ रु० राज्य सरकारों को सहकारी संस्थाओं के अंश-पूँजी में भाग लेने के लिए दिया जायगा तथा १२३ करोड़ रु० अन्य कार्यक्रमों हेतु दिए जाने का अनुमान है।

सार्वजनिक ऋण

तृतीय योजनाकाल में ८१५ करोड़ रु० केन्द्रीय एवं राज्य सरकार की दीर्घकालीन प्रतिभूतियों के अन्तर्गत प्राप्त हुआ। सन् १९६६-६७ एवं सन् १९६७-६८ वर्षों में इस मद में क्रमशः २२२ करोड़ एवं २१६ करोड़ रु० प्राप्त हुआ। इन आँकड़ों को आधार मानते हुए चौथी योजना में १ १६६ करोड़ रु० सार्वजनिक ऋण (शुद्ध) के रूप में प्राप्त होने का अनुमान है।

लघु बचत

सन् १९६८-६९ वर्ष में लघु बचत के अन्तर्गत प्राप्त होने वाली शुद्ध राशि १२० करोड़ रु० थी। परिवारों एवं कर्मचारी प्राविडेंट फण्ड से इस मद में चतुर्थ योजना में अधिक धनराशि प्राप्त होने की सम्भावनाओं के आधार पर ८०० करोड़ रु० की उपलब्धि का अनुमान लगाया गया है।

वार्षिकी जमा

वार्षिकी जमा योजना एवं अनिवार्य जमा के समाप्त हो जाने के कारण १०४ करोड़ रु० था। इनकी जमाराशि के शोधन का अनुमान लगाया गया।

राज्य प्राविधिक निधि

अथवा कर्मचारी प्राविडेंट फण्ड के अन्तर्गत सन् १९६८-६९ में केन्द्र एवं राज्य सरकारों के कर्मचारियों के प्राविडेंट फण्ड में ९० करोड़ रु० जमा होने का अनुमान है। चौथी योजना में इस मद के अन्तर्गत ६४० करोड़ रु० प्राप्त होने का अनुमान है।

विविध पूँजीगत प्राप्तियाँ

इस मद के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार को १,९४२ करोड़ रु० चौथी योजना में प्राप्त होने का अनुमान है। इस राशि में अधिकतर भाग राज्य सरकारों द्वारा केन्द्र सरकार को ऋणों के शोधनस्वरूप दिया जायगा। दूसरी ओर, राज्य सरकारों द्वारा इस शीर्षक के अन्तर्गत ८१२ करोड़ रु० का शोधन करना होगा। राज्य सरकारों को अपने ऋणों के शोधनार्थ ८५० करोड़ रु० अपनी चालू आय से भी देना होगा। इस प्रकार पूँजीगत प्राप्तियों के अन्तर्गत शुद्ध राशि १,१३० करोड़ रु० अनुमानित है।

जीवन बीमा निगम द्वारा ऋण

अभी तक की योजनाओं में जीवन बीमा निगम द्वारा जो ऋण राज्य सरकारों को गृह निर्माण एवं जलपूर्ति के लिए दिये जाते थे, सरकारी क्षेत्र के योजना-व्यय में सम्मिलित नहीं किए जाते थे। अब इन ऋणों की राशि को योजना व्यय एवं आय साधनों में सम्मिलित कर लिया गया है। इनके अतिरिक्त राज्य सरकारों के व्यवसायों द्वारा १३१ करोड़ रु० जीवन बीमा निगम से ऋण प्राप्त होने का अनुमान है। यह व्यवसाय जनता से ११६ करोड़ रु० ऋण प्राप्त कर सकेंगे यह अनुमान लगाया गया है।

विदेशी सहायता

चौथी योजनाकाल में ३,७३० करोड़ रु० की विदेशी सहायता प्राप्त होने का अनुमान है जिसमें से १,२१६ करोड़ रु० विदेशी ऋणों के शोधन पर व्यय हो जायगी। केन्द्रीय सरकार द्वारा १,०३६ करोड़ रु० तथा १८० करोड़ रु० सार्वजनिक व्यवसायों द्वारा विदेशी ऋणों का शोधन किया जायगा। इस प्रकार योजना के विकास-कार्यक्रमों के लिए २,५१४ करोड़ रु० विदेशी सहायता से उपलब्ध होने का अनुमान है।

हीनार्थ प्रबन्धन

चतुर्थ योजना के अन्तर्गत वास्तविक आय में वृद्धि होने के कारण अधिक मुद्रा

पूर्ति की आवश्यकता होना स्वाभाविक है। योजना के अन्तर्गत आर्थिक गतिविधि में अधिक सक्रियता आने के कारण अधिक मुद्रा का आयोजन आवश्यक समझा गया है। इन्हीं कारणों से योजना में ८५० करोड़ रु० के हीनार्थ प्रबन्धन का आयोजन किया गया है।

अतिरिक्त साधनों की व्यवस्था

प्रस्तावित चतुर्थ योजना में २,७०६ करोड़ रु० के अतिरिक्त साधनों की व्यवस्था करना योजना के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक समझा गया है। इस राशि में से १,१०० करोड़ रु० राज्य सरकारों द्वारा और १,६०६ करोड़ रु० केन्द्रीय सरकार द्वारा एकत्रित किया जायगा। अतिरिक्त साधन प्राप्त करने के लिए सार्वजनिक संस्थाओं का लाभप्रद संचालन, अधिक लघु बचत प्राप्त करना विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों से, अतिरिक्त कर—विशेषकर कृषि-आयों एवं नगरों की सम्पत्ति पर आदि का उपयोग किया जाना है। निम्नलिखित कार्यवाहियों द्वारा अतिरिक्त साधन प्राप्त करने के प्रयत्न किए जाने हैं—

(१) विद्युत व्यवस्थाओं में उपयोग की जाने वाली पूँजी का ११% तक लाभ प्राप्त करने की कार्यवाहियाँ की जायगी, जैसा राज्य विद्युत मण्डलों के संचालन से सम्बन्धित समिति (वेंकटारमन समिति) ने सुझाव दिया है और जिसे सिद्धान्त रूप से स्वीकार कर लिया गया है।

(२) राज्य सरकारों को अपनी व्यापारिक सिंचाई परियोजनाओं जिनमें बहु-उद्देश्यीय परियोजनाएँ भी सम्मिलित हैं, में लगभग ८१ करोड़ रु० की वार्षिक हानि वहन करनी पड़ती है। निजलिंगप्पा समिति के सिफारिशों को क्रियान्वित करके इस हानि को लाभ में बदला जा सकता है। इस समिति ने सिफारिश की है कि सिंचाई का शुल्क सिंचाई से प्राप्त होने वाले लाभ का २५ से ४०% होना चाहिए। इन परियोजनाओं के संचालन एवं निर्वाह व्यय की पूर्ति हेतु अधिशुल्क भी लगाया जा सकता है।

(३) जनोपयोगी सेवा सम्बन्धी व्यवसायों को छोड़कर अन्य सार्वजनिक क्षेत्र के औद्योगिक एवं व्यापारिक व्यवसायों में उपयोग होने वाली पूँजी के १५% तक लाभ को बढ़ाया जाय और इस प्रकार प्राप्त होने वाले अतिरिक्त साधनों का उपयोग इन्हीं व्यवसायों के विकास एवं विस्तार के लिए किया जाय।

(४) ग्रामीण क्षेत्रों से अतिरिक्त साधन प्राप्त करने हेतु ग्रामीण ऋणपत्रों का निर्गमन किया जाय और इस प्रकार प्राप्त साधनों का उपयोग ग्रामीण जनता को लाभ प्रदान करने वाली परियोजनाओं पर किया जाय।

(५) कृषि आयकर का विस्तार एवं सुधार किया जाय जिससे समस्त राज्यों में इस कर की समान दरें हो जाय तथा इसकी दरें केन्द्रीय गैर-कृषिकरों के बराबर हों।

(६) वस्तुओ पर लगने वाले करो म बढाकर केवल साधनो को ही नही बढाया जा सकता है बल्कि अन्य आर्थिक उद्देश्यो की पूर्ति भी की जा सकती है। बिक्री कर की दरो म देश भर म समानता लायी जाय और जहाँ इसकी दरें कम है उन्हें बढाया जाय।

(७) आय एव सम्पत्ति कर को अधिक प्रभावशाली बनाया जाय। समस्त कर देय आय को करो के जाल म आने के लिए बाध्य किया जाय, आय एव सम्पत्ति का उपहार आदि के रूप म विभक्त करने पर रोक लगायी जाय जीवनकाल म जो धन सचय किया जाय उस पर जायदाद कर लगाया जाय तथा पूँजीगत लाभो पर अधिक कठोरता से कर लगाया जाय म यम आय वर्ग के लोगो पर अधिक आय-कर लगाया जाय।

(८) विकासोन्मुख नागरिक क्षेत्रो म भूमि के मूल्य म अनुपार्जित वृद्धि हो रही है। भूमि पर होने वाला इस अनुपार्जित मूल्य वृद्धि पर कर लगाकर प्राप्त साधनो का उपयोग नगरो के विकास कायक्रमो पर व्यय किया जाय।

(९) कर प्रोत्साहनो को उनके उद्देश्य पूर्ति के पश्चात समाप्त कर अतिरिक्त प्राप्त किये जा सकते हैं।

चतुर्थ योजना म अतिरिक्त अर्थ साधन प्राप्त करना सम्भव हो सकेगा या नही इस प्रश्न पर विचार पिछली योजनाओ के अनुभवो के आधार पर किया जा सकता है। भारतीय अर्थ यवस्था के नियोजनकाल की सबसे बडी विशेषता यह है कि अतिरिक्त करारोपण द्वारा निरन्तर साधनो म वृद्धि होती रही और अभी तक की योजनाओ म अतिरिक्त करों से प्राप्त होने वाली राशि अनुमान से अधिक रही है। चतुर्थ योजना के कार्यक्रमो द्वारा जब स्वचालित विकास की ओर एक कदम और आगे बढने का लक्ष्य रखा गया है यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम विदेशी सहायता पर से अपनी निर्भरता को कम करना चाहिए और इसके लिए हम अपने आन्तरिक साधनो को बढाना आवश्यक है। आन्तरिक साधनो को बढाने के अतिरिक्त करारोपण एक महत्वपूर्ण साधन है। तृतीय योजना मे योजना के वास्तविक व्यय का २८% भाग और तीन वार्षिक योजनाओ म लगभग ४०% भाग विदेशी सहायता द्वारा प्राप्त होने का अनुमान है परन्तु चतुर्थ योजना के कुल सरकारी क्षेत्र के व्यय का केवल १७ ५% भाग ही विदेशी सहायता द्वारा प्राप्त करने का अनुमान है। इस प्रकार चतुर्थ योजना म विदेशी सहायता पर निर्भरता कम और आन्तरिक साधनो की वृद्धि को अधिक महत्व प्रदान किया गया है।

पिछली तीन योजनाओ के अतिरिक्त साधनो के प्राप्त करने के प्रयासो की सफलता से यह प्रतीत होता है कि चतुर्थ योजना म भी अतिरिक्त साधनों की उपलब्धि सम्भव हो सकेगी। अतिरिक्त करारोपण के सम्बन्ध म पिछली तीन योजनाओ म परिस्थिति निम्न प्रकार था —

तालिका सं० १०३—अतिरिक्त करारोपण विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत

मद	प्रथम योजना	द्वितीय योजना	तृतीय योजना	चतुर्थ योजना के अनुमान
अतिरिक्त करारोपण का योजना में लक्ष्य (करोड़ रुपये में)	—	४५०	१३७०	२३०६
अतिरिक्त करारोपण द्वारा वास्तविक लक्ष्य प्राप्ति (करोड़ रुपयों में)	७७०	१०५०	२५००	—
अतिरिक्त करारोपण का योजना के व्यय से प्रतिशत	१२.५	२३.०	२०.८	१६.०
अतिरिक्त करारोपण का वास्तविक औसत	५४	२१०	४४०	४४२
अतिरिक्त करारोपण का औसत राष्ट्रीय आय से प्रतिशत	०.५५	१.५८	३.०	१.५
कुल कर-आय (करोड़ रुपयों में)	७८३	१२५०	२६२५	—
कुल कर का राष्ट्रीय आय से प्रतिशत (योजना के अन्तिम वर्ष में)	७.७	६.६	१४	—
प्रति व्यक्ति अतिरिक्त कर (रुपया)	१.४२	५.०	१०.६२	४६

करारोपण-सम्बन्धी इस तालिका से स्पष्ट है कि चौथी योजना में जो अतिरिक्त अर्थ-साधनप्राप्ति का आयोजन किया गया है उसके द्वारा जनता पर अधिक भार नहीं पड़ेगा और योजना के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय में इतनी अधिक वृद्धि हो जायगी कि अतिरिक्त कर राष्ट्रीय आय का केवल १.५% ही होगा। तृतीय योजना में जो अतिरिक्त करारोपण का भार रहा है चौथी योजना के अतिरिक्त करारोपण से इस भार में कुछ कमी ही होने की सम्भावना की जा सकती है।

यदि कृषिक्षेत्र पर वांछनीय करारोपण किया जा सका, सरकारी व्यवसायों जिनमें लगभग ३००० करोड़ रु० विनियोजित है, को कम से कम ६% लाभ पर सचालित किया जा सके, ग्रामीण क्षेत्रों में अल्प बचत का विस्तार किया जा सके, ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक-जमा को बढ़ाया जा सके तो अतिरिक्त साधनों की प्राप्ति में कोई विशेष कठिनाई नहीं होगी।

निजी क्षेत्र का विनियोजन

निजी क्षेत्र के सम्बन्ध में अस्पष्ट अनुमानों के अनुसार निजी क्षेत्र में योजना काल में १३६०० करोड रु० की बचत उदय होगी। परिवारों एवं सहकारी क्षेत्र की बचत १२०४० करोड रु० तथा १८६० करोड रु० सम्मिलित क्षेत्र (Corporate Sector) में बचत होने का अनुमान है। निजी क्षेत्र की इस बचत की राशि में से ३६३० करोड रु० केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र को ऋण के रूप में ले लिया जायगा और इस प्रकार ९९७० करोड रु० आन्तरिक बचत और कुछ राशि विदेशी सहायता से निजी क्षेत्र को प्राप्त होने का अनुमान है। इन्हीं अनुमानों के आधार पर योजना में निजी क्षेत्र का विनियोजन १०,००० करोड रु० आयोजित किया गया है।

विदेशी साधन

चतुर्थ योजनाकाल में ९९३० करोड रु० के आयात की आवश्यकता का अनुमान है। इसमें से ७८३० करोड रु० निर्वाह सम्बन्धी आयात, अर्थात् कच्चा माल एवं अन्य प्रसाधन जो कृषि एवं उद्योगों के उत्पादन में वृद्धि करने में सहायक हो, में होगा। निर्वाह सम्बन्धी आयात में रासायनिक खाद, कीटाणुनाशक रसायन, अधात्विक खनिज तेल, रसायन, अलौह धातु, विशिष्ट प्रकार का इस्पात तथा मशीनों के पुर्जे एवं औजार सम्मिलित हैं। निर्वाह सम्बन्धी आयात के अतिरिक्त १३०० करोड रु० परियोजना आयात अर्थात् विभिन्न परियोजनाओं के लिए संयन्त्र एवं मशीनों के आयात पर व्यय किया जायगा। शेष ५०० करोड रु० की राशि खाद्यान्नों के आयात पर योजना के प्रथम दो वर्षों में व्यय होगी। अदृश्य मदों के अन्तर्गत १४० करोड रु० का अधिक व्यय होगा क्योंकि लाभांश, कमीशन, बीमा आदि के सम्बन्ध में विदेशों को अधिक भुगतान करने की आवश्यकता होगी। विदेशी ऋणों के शोधन एवं ब्याज आदि के सम्बन्ध में २२८० करोड रु० की विदेशी विनिमय की आवश्यकता होगी। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का भी २८० करोड रु० का शोधन चतुर्थ योजनाकाल में किया जायगा। इस प्रकार विदेशी ऋण के शोधन एवं ब्याज को छोड़कर १०,०५० करोड रु० के विदेशी विनिमय की आवश्यकता चतुर्थ योजना में होगी। वर्तमान नीति एवं कार्यक्रमों के अनुसार चतुर्थ योजनाकाल में १७५० करोड रु० की शुद्ध विदेशी सहायता की आवश्यकता होगी। इस राशि की उपलब्धि तब ही हो सकेगी जब योजनाकाल में ४०३० करोड रु० की विदेशी सहायता का उपयोग किया जाय क्योंकि इसमें से २२८० करोड रु० विदेशी ऋणों एवं उनके ब्याज के शोधन के लिए उपयोग हो जायगा। योजना काल में ३८० करोड रु० की खाद्यान्न की सहायता PL 480 के अन्तर्गत प्राप्त होने का अनुमान है और शेष ३६५० करोड रु० अन्य विदेशी सहायता के रूप में प्राप्त होने का अनुमान है।

१०,०५० करोड रु० की विदेशी विनिमय की आवश्यकता में से १७५० करोड

रु० की विदेशी सहायता द्वारा पूर्ति की जायगी और शेष ८२०० करोड़ रु० का निर्यात करने की आवश्यकता होगी। सन् १९६८-६९ में १३४० करोड़ रु० का निर्यात होने का अनुमान है। इसे सन् १९७३-७४ तक १९०० करोड़ रु० तक बढ़ाना आवश्यक होगा अर्थात योजनाकाल में ७% प्रति वर्ष चक्रवृद्धि दर से निर्यात में वृद्धि करने की आवश्यकता होगी।

चतुर्थ योजना के व्यय एव कार्यक्रम

कृषि-क्षेत्र

चतुर्थ योजना के कृषि-क्षेत्र के विकास-कार्यक्रमों के दो मुख्य उद्देश्य थे—प्रथम कृषि-क्षेत्र के आगामी दस वर्षों के काल में विकास की ५% वार्षिक दर निरन्तर की वृद्धि करना तथा द्वितीय ग्रामीण जनसंख्या के यथासम्भव अधिक से अधिक भाग का जिसमें लघु कृषक तथा शुष्क क्षेत्रों के कृषक भी सम्मिलित हों, को विकास-कार्यक्रमों में भाग लेने तथा विकास का लाभ पाने के योग्य बनाना। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कृषि-क्षेत्र के कार्यक्रमों के दो प्रकार हैं—उत्पादन को अधिकतम करने के कार्यक्रम तथा कृषि-क्षेत्र के असन्तुलनों को समाप्त करने वाले कार्यक्रम।

कृषि एव उससे सम्बन्धित सहायक कार्यक्रमों के लिए योजना में २२१७.४८ करोड़ रु० का व्यय आयोजित है। इस व्यय का वितरण विभिन्न मदों पर निम्न प्रकार किया गया है—

तालिका सं० १०४—कृषि एव सहायक क्षेत्रों में चतुर्थ योजना में व्यय वितरण

(करोड़ रु०)

क्रम संख्या	मद	आयोजित व्यय
(१)	कृषि उत्पादन	५१०.२३
(२)	छोटी सिंचाई-परियोजनाएँ	४८४.६७
(३)	भूमि-सुरक्षा	१५१.०८
(४)	क्षेत्र विकास	२६.५१
(५)	पशु पालन	९०.६१
(६)	दुग्धशाला एव दुग्ध-पूर्ति	४५.११
(७)	मछली उद्योग	८२.५७
(८)	वन	६२.३०
(९)	गोदाम, भण्डारागार एव विपणन	६५.२४
(१०)	खाद्य-प्रविधिकरण	१८.६०
(११)	कृषि-संस्थाओं को केन्द्रीय सहायता	२८२.००
(१२)	बफरस्टॉक (Buffer Stock)	१२५.००
(१३)	सामुदायिक विकास सहकारिता एव पंचायत	२६७.२२
	योग	२२१७.४८

कृषिक्षेत्र के व्यय वितरण से ज्ञात होता है कि लघु सिंचाई-परियोजनाओं एव कृषि उत्पादन सम्बन्धी कार्यक्रमों को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। लघु सिंचाई परियोजनाओ के अन्तर्गत भूमि पर एव भूमि के अन्दर के जल के साधनों की परियोजनाओं को, जिनमे प्रत्येक की लागत १५ लाख रु० से कम है सम्मिलित किया गया है। चतुर्थ योजना के कृषि उत्पादन के सम्बन्ध मे लक्ष्य निम्न प्रकार निर्धारित किये गये हैं—

तालिका स० १०५—चौथी योजना मे कृषिक्षेत्र के लक्ष्य

क्रम सख्या	मद	इकाई	चतुर्थ योजना का लक्ष्य (१६७३ ७४)
(१)	खाद्यान्न	लाख टन	१२६०
(२)	जूट	लाख गाँठ	७४
(३)	कपास	लाख गाँठ	८०
(४)	तिलहन	लाख टन	१०५
(५)	गन्ना (गुड)	लाख टन	१५०
(६)	बहुफसल क्षेत्र	अतिरिक्त लाख	६०
(७)	भूमि सुरक्षा	हेक्टेयर	५६
(८)	भूमि को कृषि योग्य बनाना	हेक्टेयर	१०
(९)	बडी एव मध्यम परियोजनाओ से उपलब्ध सिंचाई का उपयोग	हेक्टेयर	४२
(१०)	अधिक उपज के बीजो का उपयोग	हेक्टेयर	१५६
(११)	नाइट्रोजियस खाद का उपयोग	लाख टन (N)	३७ ०
(१२)	फास्फेटिक खाद का उपयोग	लाख टन P_2O_5	१८ ०
(१३)	पोटासिक खाद का उपयोग	लाख टन K O	११ ०

चतुर्थ योजना में खाद्यान्नो के उत्पादन मे ३१ ६%, कपास के उत्पादन म ३३% गन्ना के उत्पादन मे २५% जूट के उत्पादन म १६% तथा तिलहन के उत्पादन म २४% की वृद्धि करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। उत्पादन म वृद्धि करने हेतु गहन खेती को ही अधिक महत्व दिया गया है क्योंकि भूमि के परिमाण म विशेष वृद्धि करना सम्भव नही है। गहन कृषि के सम्बन्ध म निम्नलिखित व्यवस्थाएँ सम्मिलित हैं—

(१) सिंचाई की सुविधाओ का विस्तृत उपयोग तथा भूमि पर एव भूमि के अन्दर की जलपूर्ति का अधिकतम उपयोग। सिंचाई की वर्तमान सुविधाओं का विशेष कार्यक्रमो के अन्तर्गत गहन फसल प्राप्त करने हेतु उपयोग।

(२) रासायनिक खाद, पौध सुरक्षा सम्बन्धी सामग्री कृषि यन्त्रो एव साख की उपलब्धि म विस्तार।

(३) अनाजों के अधिक उपज देने वाले बीजों का उपयोग कर उत्पादन बढ़ाने की सम्भावनाओं का पूर्णतम शोषण।

(४) चुने हुए उपयुक्त क्षेत्रों में व्यापारिक फसलों के उत्पादन स्तर को बढ़ाने के लिए गहन प्रयास।

(५) कृषि विपणन-पद्धति में सुधार करके उत्पादकों के हितों की सुरक्षा करना तथा मुख्य कृषि-फसलों के न्यूनतम मूल्य का आश्वासन।

चतुर्थ योजना में छोटे कृषकों की स्थिति में सुधार करने के लिए विशेष प्रयास किए जाते हैं। इनके लिए इन किसानों को सिंचाई सुविधाओं, कृषि-साख एवं पशु-पालन-सम्बन्धी सुविधाओं की व्यवस्था की जायगी। लघु सिंचाई की परियोजनाओं की स्थापना राज्य सरकार, पंचायतों तथा अन्य उपयुक्त संस्थाओं द्वारा की जायगी। इसके अतिरिक्त २० चुने हुए जिलों में पाइलट प्रयोग किए जायेंगे। प्रत्येक जिले में एक लघु कृषक विकास संस्था की स्थापना की जायगी। इस परियोजना को केन्द्रीय सरकार के कार्यक्रमों में सम्मिलित किया गया है। यह संस्था लघु कृषकों की समस्याओं का अध्ययन कर उन्हें कृषि के आवश्यक प्रसाधनों, सेवाओं एवं साख की व्यवस्था करेगी। इन सुविधाओं का आयोजन वर्तमान सरकारी, सहकारी एवं निजी संस्थाओं द्वारा किया जायगा। आवश्यकता पड़ने पर यह संस्था स्वयं सिंचाई एवं अन्य सेवाओं की व्यवस्था भी कर सकती है। यह संस्था लघु कृषकों के लाभ के लिए आदर्श विकास-परियोजनाएँ भी बनायेगी। इस प्रयोग की सफलता के आधार पर इसका अन्य क्षेत्रों में विस्तार किया जायगा।

सिंचाई

देश में भूमि के ऊपर के जल-साधनों की वार्षिक पूर्ति का अनुमान १६८० लाख हेक्टेयर मीटर लगाया है। इसमें से केवल ५६० लाख हेक्टेयर मीटर का भौगोलिक कारणों से उपयोग सिंचाई के लिए किया जा सकता है। सन् १९५१ के अन्त तक केवल ९५ लाख हेक्टेयर मीटर अर्थात् कुल साधनों का [illegible] भाग सिंचाई के लिए उपयोग होता था। तृतीय योजना के अन्त तक १८५ लाख हेक्टेयर मीटर अर्थात् समस्त पूर्ति के $\frac{1}{3}$ भाग का उपयोग सिंचाई के लिए किया जाने लगा था। चतुर्थ योजना ५० लाख हेक्टेयर मीटर पूर्ति का और उपभोग सिंचाई के लिए होने लगा और इस प्रकार इस जलपूर्ति में से २५५ लाख हेक्टेयर मीटर अर्थात् ४६% भाग का उपयोग होने लगेगा। सन् १९६८-६९ के अन्त तक भूमि के ऊपर का जल उपयोग कर लगभग २६७ लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई-क्षमता उत्पन्न होने का अनुमान है और अब लगभग ३३७ लाख हेक्टेयर भूमि के लिए सिंचाई-सुविधाओं का विस्तार हो सकता है।

भूमि के अन्दर के जल में से २२० लाख हेक्टेयर मीटर जल का सिंचाई के लिए उपयोग किया जा सकता है जिससे २२० लाख हेक्टेयर भूमि पर सिंचाई-सुविधाओं

का विस्तार किया जा सकता है। सन् १९६८-६९ के अन्त तक १०६ लाख हेक्टेयर भूमि के लिए सिंचाई सुविधाएँ बढ़ायी जाने का अनुमान है और अब केवल १११ लाख एकड़ और भूमि के लिए सिंचाई की सुविधाएँ उत्पन्न की जा सकती है।

देश में कृषि योग्य भूमि १६४० लाख हेक्टेयर है जिसमें से १५८० लाख हेक्टेयर पर कृषि की जाती है और १३८० लाख हेक्टेयर भूमि को बोया जाता है। भूमि के ऊपर एवं अन्दर के जल के साधनों से ८२० लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई की जा सकने का अनुमान है। अगले १५ से २० वर्षों में जलपूर्ति के बड़े भाग का उपयोग सिंचाई के लिए करने का लक्ष्य रखा गया है। सन् १९६८-६९ के अन्त तक ४७५ लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाईक्षमता उत्पन्न की गयी जिसमें से ३६० लाख हेक्टेयर भूमि पर सिंचाई किये जाने का अनुमान है।

सिंचाई की आयोजित राशि ६६४ करोड़ रु० में से ८५७ करोड़ रु० बड़ा एवं मध्यम श्रेणी की परियोजनाओं तथा १०६.८ करोड़ रु० बाढ़ नियन्त्रण के लिए आयोजित है। इसके अतिरिक्त कृषि कार्यक्रमों में ४७५.७ करोड़ रु० लघु सिंचाई तथा शक्ति में ३६३ करोड़ रु० ग्रामीण विद्युतीकरण के लिए आयोजित है। सिंचाई के लिए आयोजित व्यय में से ७१७ करोड़ रु० ऐसी परियोजनाओं के लिए आयोजित किया गया है जिन पर कार्य प्रारम्भ हो चुका है अथवा जो पूर्ण होने के समीप है।

चतुर्थ योजनाकाल में बड़ी एवं मध्यम श्रेणी की परियोजनाओं से ४७.१ हेक्टेयर एकड़ भूमि के अतिरिक्त सिंचाई सुविधाएं उत्पन्न होने का अनुमान है जिसमें से ४२.५८ लाख हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि पर इन सुविधाओं का उपयोग किया जायगा। योजना के अन्त तक २४३.८२ लाख हेक्टेयर भूमि पर सिंचाई करने की क्षमता हो जाने का अनुमान है।

शक्ति

चौथी योजना में २०८५ करोड़ रु० का आयोजन शक्ति के विकास के लिए किया गया है इसमें से ९०६ करोड़ रुपया चालू शक्ति उत्पादन परियोजनाओं तथा १५२ करोड़ रु० नवीन शक्ति उत्पादन परियोजनाओं के लिए आयोजित है। ६४५ करोड़ रु० का आयोजन शक्ति के वितरण के लिए २९३ करोड़ रु० का आयोजन ग्रामीण विद्युतीकरण के लिए तथा १६ करोड़ रु० का आयोजन जाँच पड़ताल आदि के लिए किया गया है। शक्ति उत्पादन सम्बन्धी चालू परियोजनाओं द्वारा ९० लाख किलोवाट शक्ति उत्पादनक्षमता में वृद्धि चतुर्थ योजना में होगी। बड़ी जलविद्युत परियोजनाओं में व्यास, यमुना, रामगंगा, उबाई, शरावती, इडुक्की, कालीनदी द्वारा शक्ति का उत्पादन योजनाकाल में प्रारम्भ हो जायगा। सनतालडीह, कोठागुडम, नासिक, कोराडी तथा धुवारन के थर्मल स्टेशनों द्वारा भी शक्ति उत्पादन प्रारम्भ हो जायगा। योजनाकाल में क्षेत्रीय शक्ति परियोजनाओं को इस प्रकार जोड़ने का प्रस्ताव

है कि समस्त भारत को एक ग्रिड (Grid) में सम्बद्ध किया जा सके। ग्रामीण विद्युतीकरण के कार्यक्रम के अन्तर्गत ७,४० ००० सिंचाई पम्पों का विद्युतीकरण किया जायगा। एक ग्रामीण विद्युतीकरण निगम की स्थापना का भी आयोजन किया गया है जिसके लिए योजना में ४५ करोड़ रु० का आयोजन किया गया है। यह निगम राज्यों के ग्रामीण विद्युतीकरण के चुने हुए कार्यक्रमों को वित्तीय सहायता प्रदान करेगा। निगम १०५ करोड़ रु० के अतिरिक्त साधन एकत्रित करेगा। निगम द्वारा जो वित्त प्रदान किया जायगा, उसके द्वारा ५ ००,००० अतिरिक्त पम्पों का विद्युतीकरण किया जा सकेगा। योजनाकाल में ७५ ६ लाख KW की अतिरिक्त शक्ति की क्षमता उत्पादित होने का अनुमान है और योजना के अन्त तक २२० ७ लाख KW शक्ति-उत्पादन करने की क्षमता हो जाने का अनुमान लगाया गया है।

ग्रामीण एवं लघु उद्योग

चतुर्थ योजना के लघु एवं ग्रामीण उद्योगों से सम्बन्धित विकास-कार्यक्रमों का प्रमुख उद्देश्य यह है कि लघु उद्योगों में उत्पादन-तान्त्रिकताओं में निरन्तर सुधार किया जा सके जिससे इनके द्वारा अच्छी क्वालिटी की वस्तुओं का उत्पादन किया जा सके और यह उद्योग अपने पैरों पर खड़े होने के योग्य हो जाय। इसके अतिरिक्त लघु एवं ग्रामीण उद्योगों के विकास द्वारा औद्योगिक कार्यक्रमों का विकेन्द्रीकरण एवं उद्योगों के छितराव (Dispersal) की व्यवस्था की जानी है। औद्योगिक लाइसेंसिंग व्यवस्था द्वारा लघु उद्योगों को बड़े उद्योगों के साथ होने वाली प्रतिस्पर्धा में सुरक्षा प्रदान नहीं की जा सकी है और न ही बड़े नगरों में उद्योगों को ही रोका जा सका है। इसी कारण चौथी योजना में बहुत से उद्योगों को लाइसेन्स से मुक्त (Delicensing) किया जायगा। ऐसी परिस्थितियों में उद्योगों के छितराव के लिए कुछ प्रयत्न (Positive) कार्यवाहियाँ, जैसे साख-सुविधाओं को ढीली शर्तें, न्यून पूर्ति वाले कच्चे मालों की पर्याप्त उपलब्धि, तान्त्रिक सहायता का आयोजन, अच्छे औजारों की व्यवस्था, करों में छूट भेदात्मक उत्पादन कर आदि, की जायगी। इसके अतिरिक्त लघु एवं परम्परागत उद्योगों को अनुचित प्रतिस्पर्धा से सुरक्षा प्रदान करने के लिए वर्तमान उत्पादन सम्बन्धी प्रतिबन्धों (Reservations) को जारी रखा जायगा तथा उनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन एवं सुधार किया जायगा। लघु एवं ग्रामीण उद्योगों का संगठन सहकारी संस्थाओं के अन्तर्गत जहाँ तक उपयुक्त हो किया जायगा। चौथी योजना के आयोजित व्यय २९८ करोड़ रु० का वितरण विभिन्न प्रकार के उद्योगों में तालिका सं० १०६ के अनुसार किया गया है।

आगे की तालिकानुसार, सरकारी क्षेत्र के आयोजित व्यय २९८७१ करोड़ रु० के अतिरिक्त ग्रामीण एवं लघु उद्योगों में ५०० करोड़ रु० निजी क्षेत्र में, जिसमें वित्तीय एवं अधिकोषण संस्थाएँ सम्मिलित हैं विनियोजित किया जायगा। इसके अतिरिक्त योजना के विशिष्ट एवं पिछड़े क्षेत्रों के विकास-कार्यक्रमों पुनर्वास के कार्य-

तालिका सं० १०६—चौथी योजना में ग्रामीण एवं उद्योगों का सरकारी क्षेत्र के व्यय का वितरण

(करोड़ रुपये में)

क्रम संख्या	उद्योग	१९६६-६९ का अनुमानित व्यय	चतुर्थ योजना में आयोजित व्यय
(१)	लघु उद्योग	५२.४६	१०१.७४
(२)	औद्योगिक संस्थान	७.३५	१८.१५
(३)	हाथकरघा उद्योग एवं शक्ति करघा	१३.८३	४२.९८
(४)	खादी एवं ग्राम उद्योग	५४.०३	९६.४३
(५)	रेशम उद्योग	३.७५	११.३७
(६)	नारियल का रेशा उद्योग	१.२१	४.४२
(७)	दस्तकारी	४.८०	१४.४२
(८)	ग्रामीण उद्योग परियोजनाएँ	६.७०	४.५०
(९)	सांख्यकी का संग्रहण	—	०.६०
	योग	१४४.१३	२९४.७१

क्षमा, सहकारी प्रविधिकरण उद्योगों तथा औद्योगिक क्षेत्रों के कार्यक्रमों में भी ग्रामीण एवं लघु उद्योगों के लिए राशियाँ आयोजित की गयी हैं।

उद्योग एवं खनिज

चतुर्थ योजना में सम्मिलित औद्योगिक विकास विनियोजन के निम्नलिखित तीन मुख्य उद्देश्य हैं—

(१) उन परियोजनाओं के विनियोजन को पूर्ण करना जिनके लिए स्वीकृति दी जा चुकी है।

(२) वर्तमान उत्पादनक्षमताओं को इस स्तर तक उन उद्योगों में बनाना जिनके द्वारा अनिवार्यताओं की वस्तुओं की बढ़ी हुई माँग की पूर्ति होनी है आयात प्रतिस्थापन सम्बन्धी वस्तुओं का उत्पादन पर्याप्त मात्रा में हो सके तथा निर्यात सम्वद्धन के लिए पर्याप्त वस्तुएं उपलब्ध हो सकें।

(३) आन्तरिक विकास एवं सुविधाओं का लाभ उठाकर नवीन उद्योगों अथवा उद्योगों के विस्तार के लिए नवीन आधार की स्थापना करना।

औद्योगिक विकास के कार्यक्रमों द्वारा औद्योगिक संरचना के असन्तुलनों को दूर करने तथा वर्तमान उत्पादनक्षमता का अधिकतम उपयोग करने का प्रयत्न किया जायगा।

चतुर्थ योजना में ५,२०० करोड़ रु० का विनियोजन संगठित उद्योगों एवं खनिज क्षेत्र में किया जायगा। इस राशि में २,८०० करोड़ रु० सरकारी क्षेत्र में और

२,४०० करोड़ रु० निजी क्षेत्र में विनियोजित किया जायगा। सरकारी क्षेत्र में संगठित उद्योगों एवं खनिज पर ३,०९० करोड़ रु० के व्यय का आयोजन है। इस राशि में २५० करोड़ रु० निजी एवं सहकारी क्षेत्र की वित्तीय संस्थाओं द्वारा हस्तान्तरित हो जायगा और ४० करोड़ रु० पोष वाले उद्योगों के विकास-कार्यक्रमों के लिए रखा गया है और इन दोनों राशियों को कुल आयोजित व्यय से कम करने पर सरकारी क्षेत्र का विनियोजन २,८०० करोड़ रु० बचता है। ३,०९० करोड़ रु० की आयोजित व्यय की राशि में से २,९१० करोड़ रु० केन्द्रीय क्षेत्र में और १८० करोड़ रु० राज्यों एवं केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों द्वारा व्यय किया जायगा। केन्द्रीय क्षेत्र की राशि का विभाजन विभिन्न प्रकार के उद्योगों पर निम्न प्रकार किया गया है—

तालिका नं० १०८—चतुर्थ योजना में केन्द्रीय क्षेत्र के औद्योगिक एवं खनिज में होने वाले आयोजित व्यय का वितरण

(करोड़ रुपये में)

क्रम संख्या उद्योग का प्रकार	चालू परियोजनाओं पर व्यय	नवीन परियोजनाओं पर व्यय	योग
(अ) उद्योगों पर आयोजित व्यय	१,३२८.३७	८०६.६०	२,१३४.९७
(१) धातु-सम्बन्धी उद्योग	६८२.४३	३०४.००	९८६.४३
(२) यन्त्र निर्माण एवं इन्जीनियरिंग उद्योग	१००.४७	५२.५५	१५३.०२
(३) रासायनिक खाद एवं कीटाणु-नाशक औषधियाँ	२१७.४६	२६४.६७	४८२.४६
(४) मध्यमिक वस्तुओं का निर्माण	५६.२५	१२५.५७	१८१.८२
(५) उपभोक्ता-वस्तुएँ	५.३४	३१.६५	३६.९९
(६) अन्य परियोजनाएँ	२७२.३५	१२.८६	२८५.२१
(ब) खनिज विकास	५७०.६२	१४६.५२	७१७.१४
(स) अणु शक्ति	४१.६९	१६.२१	५७.९०
योग (अ+ब+स)	१,९४०.६८	९६९.३३	२,९१०.०१

इस तालिका से ज्ञात होता है कि केन्द्रीय सरकार द्वारा किये जाने वाले व्यय का ६७% भाग चालू परियोजनाओं पर व्यय होना है। कृषि-क्षेत्र के विकास के लिए रासायनिक खाद एवं कीटाणुनाशक औषधियों के उद्योगों के विस्तार हेतु कुल व्यय का लगभग १०% भाग आयोजित किया गया। चतुर्थ योजना में भी भारी एवं पूँजीगत उद्योगों को अधिक महत्व रखा गया जिसके परिणामस्वरूप ही उपभोक्ता-उद्योगों के लिए केन्द्रीय क्षेत्र में केवल १.८% भाग व्यय ही आयोजित किया गया है। केन्द्रीय क्षेत्र के कार्यक्रमों में ५०० करोड़ रु० दुर्गापुर इस्पात कारखाने में विनियोजित किया जायगा तथा इस्पात के सभी वर्तमान कारखानों के विस्तार का आयोजन भी योजना में किया गया है। कायना एवं भारदा की अल्युमिनियम परियोजनाओं पर १०० करोड़ रु० विनियोजित किया जाना है।

चतुर्थ योजना में औद्योगिक उत्पादन एवं क्षमता सम्बन्धी लक्ष्य निम्न प्रकार निर्धारित किए गये हैं—

तालिका सं० १०८—चतुर्थ योजना में औद्योगिक उत्पादन के लक्ष्य

उद्योग	इकाई	१९६८ ६९ की अनुमानित उत्पादनक्षमता		१९७३ ७४ का लक्ष्य		उत्पादन में वृद्धि का प्रतिशत १९६८ ६९ के स्तर पर
		क्षमता	उत्पादन	क्षमता	उत्पादन	
इस्पात के ढेले	लाख टन	९०	६५	१२०	१०८	६६
तयार इस्पात	लाख टन	६९	४६	९०	८१	७६
विक्रय के लिए पिण्डलोह	लाख टन	१२	१२	४२	३८	२१२
अल्युम्यूनियम	हजार टन	११७	१२०	२४०	२२०	८३
तावा	हजार टन	९६	९५	४७ ५	३५ ५	२७३
धातुशोधन एवं अन्य भारी मशीनें	हजार टन	४८	२०	११५	७५	२७५
कृषि के लिए ट्रैक्टर	हजार टन	२०	१४	६८	५०	२५७
नाइट्रोजियस खाद	हजार टन (N)	१ ०२४	५५०	३ ७००	३ ०००	४४६
फास्फेटिक खाद	हजार टन P_2 05	४२१	२२०	१ ८००	१ ५००	५८७
अखबारी कागज	हजार टन	३०	३०	१६५	५०	६७
औषधियां एवं फार्मेसी पदार्थ	लाख रु०	—	२३ ५००	—	२५ ०००	६ ०
कायला	लाख टन	९००	६६५	—	९३५	३५
कच्चा लोहा	लाख टन	—	२६०	—	५३४	१०६
अशोधित खनिज तेल	लाख टन	६१ ५	५८ ५	—	९७	६६
औद्योगिक मशीनें (वस्त्र सीमेंट शक्कर एवं कागज सम्बन्धी)	करोड रु०	८७	४० ७	—	९८ ५	१४२
मशीनों के औजार	करोड रु०	५०	२५	—	६५	१६०
व्यापारिक मोटर गाडियाँ	हजार टन	१००	७२	—	२१०	१९२
कागज आदि	हजार टन	७५०	६४०	—	९६०	५०
सीमेन्ट	लाख टन	१४५	१२५	—	१८०	४४

तालिका म० ११०—चतुर्थ योजना मे यातायात एव सचार-सम्बन्धी लक्ष्य

क्रम सख्या (१)	मद (२)	इकाई (३)	१६६८ ६६ अनुमानित उपलब्धि (४)	१६६३ ६४ के लिए लक्ष्य (५)
(१)	रेलो द्वारा ढोया गया माल	लाख टन	२ ०३०	२ ८०० म २ ६००
(२)	रेल के इ जिन	सख्या	११ ५१६	१२ १७१
(३)	वगन (चार पहियो के आधार पर)	सख्या	४ ८४ १८६	५ ६० २७८
(४)	लाइनो पर डीजल-गाडियाँ	कि० मी०	१६ २००	२ २००
(५)	लाइनो का विद्युतीकरण	कि० मी०	२ ६००	४ ६००
(६)	इकहरी लाइनों का दोहरा करना	कि० मी०	—	१ ८००
(७)	मीटर गज को चौडी लाइन म बदलना	कि० मी०	—	१ ५००
(८)	पक्की सडकें	कि० मी०	३ १७ ०००	३ ६७ ०००
(९)	सडको द्वारा ले जाया जाने वाला माल	हजार लाख टन कि० मी०	४००	८४०
(१०)	सडको द्वारा यात्रियो को ले जाना	हजार लाख यात्री	६२०	१ ४००
(११)	ट्रको की सख्या	कि० मी०	३ ०० ०००	४ ७० ०००
(१२)	बसो की सख्या	सख्या	८० ०००	१ १५ ०००
(१३)	बडे बन्दरगाहो पर माल	लाख टन	५५०	६००
(१४)	जहाजी यातायातक्षमता	GRT लाख	२१ ४	३५
(१५)	हवाई मार्गों की क्षमता	लाख कि० मी०	६ ६१०	१२ ८२०

भाग ग्रामीण सडको के विकास पर व्यय करना है। योजना म हल्दिया डाक मगलौर एव ट्यूटीकोरिन (Tuticorin) बन्दरगाह योजनाए पूरी हो जाने का अनुमान है तथा मोर्मोगाओ (Mormugao) एव मद्रास बन्दरगाह पर कच्चा लोहा लाने आदि के लिए आधुनिक सुविधाओं का आयोजन किया जायगा तथा विशाखापत्तनम के बाहरी हारबर (Harbour) का निर्माण किया जायगा। योजना के अन्त तक जहाजरानी की सुविधाएँ इतनी हो जायेंगी कि भारतीय विदेशी जहाजी यातायात का ४०% भाग भारतीय जहाज सचालित कर सकेंगे। बम्बई कलकत्ता दिल्ली और मद्रास के हवाई अड्डो पर सुविधाओं म वृद्धि की जायगी।

योजनाकाल म ७ ६० ००० नये टेलीफोन लगाये जायेंगे ८१ ००० नये डाकखाने खोले जायेंगे बगलौर के टेलीफोन के कारखाने का विस्तार किया जायगा दूरसचार के लिए प्रसाधन निर्माण करने के लिए एक कारखाना स्थापित किया जायगा

और हिन्दुस्तान टेलीप्रिंटर्स की उत्पादनक्षमता ८,८०० टेलीप्रिंटर्स से बढ़ाकर ८ ५०० टेलीप्रिंटर्स कर दी जायगी।

समाज-सेवाएँ

समाज सेवाओं में सम्मिलित विभिन्न मदों के लक्ष्य निम्न प्रकार निर्धारित किए गए हैं—

तालिका सं० १११—चतुर्थ योजना में समाजसेवा सम्बन्धी लक्ष्य

क्रम संख्या	मद	इकाई	१९६८-६९ में सम्भावित उपलब्धि	१९७३-७४ के लिए लक्ष्य
	शिक्षा			
(१)	६ से ११ वर्ष आयु वर्ग में स्कूल जाने वालों का प्रतिशत	प्रतिशत	७७ ६	८५ ०
(२)	११ से १४ वर्ष आयु वर्ग में स्कूल जाने वालों का प्रतिशत	प्रतिशत	३२ ४	४२ १
(३)	१४ से १७ वर्ष आयु वर्ग में स्कूल जाने वालों का प्रतिशत	प्रतिशत	१९ ४	२५ ०
(४)	१७ से २३ वर्ष आयु वर्ग में विश्वविद्यालीय शिक्षा प्राप्त करने वालों का प्रतिशत	प्रतिशत	२ ६	२ ८
(५)	डिग्री स्तर तान्त्रिक शिक्षा	विद्यार्थी संख्या	१७ ०००	२५,०००
(६)	डिप्लोमा-स्तर तान्त्रिक शिक्षा	विद्यार्थी संख्या	३१ ५००	४८,५००
(७)	मेडीकल कालेजों की संख्या	संख्या	९३	१०३
(८)	मेडीकल कालेजों से पास होने वालों की संख्या	संख्या	९ ०८०	१०,२००
	स्वास्थ्य			
(९)	अस्पतालों में शय्याएँ	संख्या	२,५५ ७००	२ ८१ ६००
(१०)	प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र	संख्या	४ ८४०	५,२२५
(११)	डाक्टरों की संख्या	संख्या	१,०२ ५२०	१,३७ ९३०
(१२)	ग्रामीण परिवार नियोजन केन्द्र	सचयी संख्या	४ ८४०	५ ५४०
(१३)	नगरों में परिवार नियोजन केन्द्र	सचयी संख्या	१ ८५६	१ ८५६
(१४)	परिवार नियोजन प्रशिक्षण केन्द्र	सचयी संख्या	४८	५१

चतुर्थ योजना में प्राथमिक शिक्षा (Elementary Education) के विस्तार, पिछड़ी जातियों एवं क्षेत्रों के शिक्षा की सुविधाओं के विस्तार तथा लड़कियों की शिक्षा

की ओर विशेष महत्व दिया गया है। विज्ञान की शिक्षा शिक्षकों के प्रशिक्षण, स्नातकोत्तर शिक्षा एव शोध कार्य में सुधार, भारतीय भाषाओं के स्तर विकास, पाठ्य पुस्तकों के उत्पादन तान्त्रिक शिक्षा एकीकरण तथा उसे स्वय रोजगार करने योग्य बनाने को अधिक महत्व दिया गया है।

चतुर्थ योजना के अन्तर्गत मलेरिया कोढ़, चेचक क्षय रोग के उन्मूलन कार्यक्रमों का विस्तार किया जायगा। परिवार नियोजन के कार्यक्रमों द्वारा जन्म दर को सन् १९७३ ७४ तक ३९ तक से घटाकर ३१ प्रति हजार करने का लक्ष्य रखा गया है। *योजनाकाल में लगभग १८० लाख जन्मों को परिवार नियोजन द्वारा रोका जा सकेगा।* चौथी योजना में बडे बडे नगरों में जलपूर्ति के साथ पानी के बहाव (Sewerage एव Drainage of Water) की व्यवस्था की जानी है। लगभग १०० करोड रु० ग्रामीण क्षेत्रों में जल-पूर्ति पर व्यय किया जायगा।

योजना की आलोचना

योजना के विनियोजन एव विकास कार्यक्रमों का अध्ययन करने के पश्चात् योजना का आलोचनात्मक अध्ययन करना भी आवश्यक है। प्रस्तावित चतुर्थ योजना की आलोचना निम्नलिखित तथ्यों के सम्बन्ध में की जाती है—

(१) *निर्धन वर्ग के जीवन स्तर में सुधार करने हेतु पर्याप्त आयोजन नहीं है*—स्थगित चतुर्थ योजना के निर्माण के समय जन साधारण के उपभोग स्तर को न्यूनतम स्तर तक लाने के लिए विशेष प्रयत्न किये जाने की बात विचार की गयी थी। सन् १९६० ६१ के मूल्यों पर यह निर्धारित किया गया था कि न्यूनतम जीवन स्तर के लिए प्रति व्यक्ति प्रति माह ३५) रु० की लागत होनी चाहिए और यह अनुमान लगाया गया था कि सन् १९६० ६१ में लगभग २०% जनसख्या को ही यह न्यूनतम जीवन (अथवा इससे अधिक) उपलब्ध था। योजना बनाते समय यह विचार किया गया कि *यदि समस्त जनसख्या को यह न्यूनतम जीवन स्तर प्रदान करना हो तो सन् १९६६ ७५* के बीच १२% प्रति वर्ष की दर से आर्थिक प्रगति होना आवश्यक होगा। वर्तमान प्रस्तावित योजना में अनुमान लगाया गया कि निर्धन वर्ग का उपभोग स्तर चतुर्थ योजना के अन्त तक सन् १९६७ ६८ के मूल्यों पर ३२० रु० प्रति वर्ष अर्थात् २७ रु० प्रति माह प्रति व्यक्ति होगा। सन् १९६० ६१ के मूल्यों के आधार पर यह उपयोग स्तर १५ रु० प्रति व्यक्ति प्रति माह होगा जो वांछित न्यूनतम स्तर से बहुत कम होगा। *इस प्रकार सन् १९८० ८१ तक भी निर्धन वर्ग न्यूनतम जीवन स्तर का लगभग आधा* ही भाग प्राप्त कर सकेगा।

(२) **रोजगार**—चतुर्थ योजना के कार्यक्रमों द्वारा उदय होने वाले रोजगार के अवसरों का अनुमान लगाने में योजना आयोग असमर्थ रहा है। योजना आयोग के विचार में विभिन्न परियोजनाओं की रोजगारक्षमता उनके क्रियान्वयन के प्रकार व परिमाण पर निर्भर रहता है और परियोजनाओं का क्रियान्वयन ऐसे विभिन्न घटकों

पर निर्भर रहता है जो अनिश्चित होते हैं। योजना-आयोग ने अगस्त, सन् १९६८ में एक समिति की स्थापना की है जो बेरोजगारी के परिमाण एवं प्रकार के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी तैयार कर आयोग के समक्ष प्रस्तुत करेगी। वर्तमान अनुमानों के अनुसार चतुर्थ योजना लगभग १६० लाख बेरोजगारों से प्रारम्भ होगी और योजनाकाल में २३० लाख नवीन श्रम-शक्ति रोजगार के लिए तैयार होगी। योजना में विभिन्न-कार्यक्रमों का बेरोजगारी के सम्बन्ध में अनुमान नहीं किया गया है क्योंकि बेरोजगारी के सम्बन्ध में आयोग के पास विश्वसनीय जानकारी नहीं थी। बेरोजगारी एक सामाजिक एवं आर्थिक दोष है और इसे इतना महत्वहीन स्थान दिया जाना उचित प्रतीत नहीं होता है।

(३) **मूल्य स्तर**—प्रस्तावित चतुर्थ योजना में मूल्य स्तर को स्थिर रखने पर विशेष महत्व प्रदान किया गया है। कृषि पदार्थों के मूल्यों में सन् १९६७-६८ एवं सन् १९६८-६९ में कुछ गिरावट हुई है। औद्योगिक उत्पादन के मूल्य-स्तर में कोई विशेष वृद्धि इन वर्षों में नहीं हुई। ऐसी परिस्थिति में यदि मूल्य-स्तर को स्थिर रखने के प्रयत्न किये जायेंगे तो अर्थ-व्यवस्था की गतिशीलता को क्षति पहुँच सकती है और विनियोजन एवं विकास की गति मन्द हो सकती है। मूल्यों को विनियोजन एवं विकास के अनुरूप बढ़ने देना आवश्यक होगा।

(४) **निर्यात**—योजना में देश के निर्यात में ७% प्रति वर्ष की वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया है परन्तु निर्यात-वृद्धि के लिए निर्यात के उत्पादन में वृद्धि, उनके गुणों में सुधार एवं उनकी लागत में कमी करना आवश्यक होगा। योजना में इन कार्यवाहियों की ओर कोई संकेत एवं विशिष्ट आयोजन नहीं किये गये हैं।

(५) **विदेशी सहायता**—योजना में सिद्धान्त रूप से यह स्वीकार किया गया है कि भारतीय अर्थ-व्यवस्था की विदेशी सहायता पर निर्भरता को योजनाकाल में कम किया जायगा परन्तु वास्तव में योजना में विदेशी सहायता से तृतीय योजना की तुलना में और अधिक साधन प्राप्त करने का आयोजन किया गया है। चतुर्थ योजना में सकल विदेशी सहायता की राशि २७३० करोड़ रु० अनुमानित है जबकि तृतीय योजना में सकल विदेशी सहायता की राशि २६०० करोड़ रु० आवश्यक समझी गयी थी। इस प्रकार अर्थ-व्यवस्था की विदेशी सहायता पर निर्भरता चतुर्थ योजना में बढ़ गयी है।

(६) **अर्थ-साधन**—चतुर्थ योजना के निर्माण में वित्तीय साधनों की उपलब्धि को अधिक महत्व दिया गया है। चतुर्थ योजना में अतिरिक्त अर्थ-साधनों की प्राप्ति के सम्बन्ध में जो लक्ष्य रखे गये हैं वे तृतीय योजना में अतिरिक्त साधनों की वास्तविक प्राप्ति के बराबर हैं। तृतीय योजनाकाल की प्राप्ति एवं तीन वार्षिक योजनाओं में जो अर्थ-व्यवस्था में सुधार हुए हैं उनको ध्यान में रखते हुए आयोजित अतिरिक्त साधनों से कहीं अधिक प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित किया जा सकता था।

(७) सरकारी व्यवसायों का लाभ—प्रस्तावित चतुर्थ योजना में सरकारी व्यवसायों में उपयोग होने वाली पूँजी पर १५% तक लाभ प्राप्त करने की सम्भावना व्यक्त की गयी है जबकि पिछले कुछ वर्षों में इन व्यवसायों का लाभ अत्यन्त कम अथवा नकारात्मक रहा है। यह तथ्य निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है—

तालिका सं० ११२—केन्द्रीय सरकार के व्यवसायों से प्राप्त लाभ के बजट अनुमान एवं वास्तविक प्राप्ति

(करोड़ रुपयों में)

वर्ष	बजट अनुमान	वास्तविक उपलब्धि
१९६४ ६५	६२ ५४	२७ ४०
१९६५ ६६	४४ ४२	२२ ९९
१९६६ ६७	३१ ३७	—११ ९३
१९६७ ६८	९ २६	—४२ ५८
१९६८ ६९	१८ ४२	१ २७

इस तालिका के आधार पर यह अनुमान लगाना अनुचित न होगा कि चतुर्थ योजना में सरकारी व्यवसायों से उपलब्ध होने वाले अतिरेक की राशि प्राप्त होना कठिन होगा।

(८) विनियोजन—प्रस्तावित चतुर्थ योजना में बचत एवं विनियोजन में पर्याप्त वृद्धि करने के लिए कोई विशेष प्रयास करने का आयोजन नहीं किया गया है। वास्तव में साधनों का उदय होना नियोजित विकास के प्रकार एवं परिमाण पर निर्भर रहता है। तृतीय योजना के अन्त में आन्तरिक बचत राष्ट्रीय आय की लगभग ११% थी जो तीन वर्षों के योजना-अवकाश में घटकर ८ ०% रह गयी। चतुर्थ योजना में आन्तरिक बचत को राष्ट्रीय आय का १२ ९% करने का लक्ष्य सन् १९७३ ७४ के लिए रखा गया है। सन् १९५० ५१ से सन् १९६० ६१ के काल में बचत का यह प्रतिशत लगभग दुगना हो गया जबकि सन् १९६० ६१ से सन् १९७३ ७४ काल में इस प्रतिशत में केवल १०९% की वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया है जो सराहनीय नहीं समझा जा सकता है। इसी प्रकार चतुर्थ योजना के अन्तिम वर्ष में राष्ट्रीय आय का १३ ८% विनियोजन करने का लक्ष्य है जबकि तृतीय योजना के अन्त में विनियोजन का प्रतिशत १४% था। इस प्रकार चतुर्थ योजना में विनियोजन के लक्ष्य में कोई सुधार नहीं किया गया है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के अध्ययन से प्रतीत होता है कि चतुर्थ योजना के निर्माण में अर्थ व्यवस्था की बदलती हुई परिस्थितियों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है और वर्तमान में जो सम्भावनाएँ अर्थ व्यवस्था में उदय हुई हैं उनका उपयुक्त शोषण करने की व्यवस्था नहीं की गयी है। आशा है कि चतुर्थ योजना के अन्तिम

प्रतिवेदन योजना की नीतियों और कार्यक्रमों को अधिक लचीला रखा जायगा जिससे बदली परिस्थितियों का लाभ विकास के लिए उपलब्ध हो सके।

सन् १९६९-७० वर्ष की योजना

सन् १९६९-७० वर्ष की योजना चतुर्थ पंचवर्षीय योजना का ही एक अंश है और प्रस्तावित योजना का अन्तिम रूप देने में कुछ देर होने के कारण इस वार्षिक योजना का प्रकाशन अलग से कर दिया गया है। इस वार्षिक योजना का मुख्य उद्देश्य एवं लक्ष्य निम्न प्रकार हैं—

(१) विनियोजन की दर जो सन् १९६८-६९ वर्ष में राष्ट्रीय आय का ११ २% अनुमानित है को बढ़ाकर १२% करना।

(२) सन् १९६८-६९ में होने वाले शुद्ध स्थिर विनियोजन (Net Fixed Investment) में १०% की वृद्धि करना।

(३) कृषि में ५% एवं उद्योगों में ८% प्रगति कर राष्ट्रीय आय में ५ ५% की प्रगति करना।

(४) खाद्यान्नों एवं अन्य महत्वपूर्ण कृषि कच्चे माल की पूर्ति का कुशल प्रबन्ध कर मूल्यों का सन् १९६८-६९ के स्तर पर स्थिर करना।

(५) निर्यात में ७% वृद्धि कर तथा देश में उपलब्ध उत्पादनक्षमताओं का अधिक उपयोग कर भुगतान शेष को सन् १९६८-६९ में उपलब्ध विदेशी सहायता की राशि तक सीमित रखना।

योजना का आयोजित व्यय

सन् १९६९-७० की योजना का सरकारी क्षेत्र का व्यय २,२७१ करोड़ रु० निर्धारित किया गया है जो सन् १९६८-६९ वर्ष की योजना के अनुमानित व्यय २,३६१ करोड़ रु० से लगभग ४% कम है। सन् १९६८-६९ वर्ष में स्थिर विनियोजन १,७८५ करोड़ रु० अनुमानित है। सन् १९६९-७० वर्ष स्थिर विनियोजन में १०% वृद्धि करने का लक्ष्य है अर्थात् इस वर्ष में १,९७० करोड़ रु० का स्थिर विनियोजन करने का लक्ष्य रखा गया है। विभिन्न मदों पर आयोजित व्यय निम्न प्रकार है—

तालिका सं० ११३—सन् १९६९-७० वर्ष की योजना का आयोजित व्यय

(करोड़ रुपया)

मद	१९६८-६९ में अनुमानित व्यय	१९६९-७० के लिए आयोजित व्यय
कृषि एवं सहायक कार्यक्रम	४५५ ८	३६२ २
सिंचाई एवं बाढ़ नियन्त्रण	१६३ २	१३५ ६
शक्ति	३६८ २	३६० १
उद्योग एवं खनिज	४६४ ६	५७६ ६
ग्रामीण एवं लघु उद्योग	४४ ४	३८ ५

यातायात एवं संचार	४२८ ५	४४७ ७
शिक्षा	१२६ १	६६ ८
वैज्ञानिक शोध	२० १	२१ ६
स्वास्थ्य	५५ ०	५५ ३
परिवार नियोजन	३३ ४	४१ ६
जल पूर्ति एवं सफाई	५८ २	४५ ७
गृह निर्माण एवं नगरों का विकास	२२ ०	२४ १
पिछड़े वर्गों का कल्याण	२५ ६	१६ ३
समाज कल्याण	६ ७	४ ४
श्रम कल्याण एवं दस्तकारों का प्रशिक्षण	१० ३	६ ३
अन्य कार्यक्रम	४२ ८	३८ ४
योग	२ ३६० ५	२ २७० ५

सन् १९६८ ६९ के अनुमानित व्यय से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि सन् १९६९ ७० की योजना में कृषि एवं सिंचाई के लिए आयोजित व्यय बहुत कम कर दिया गया जबकि उद्योग एवं खनिज विकास के आयोजित व्यय में पिछले वर्ष से लगभग १०० करोड़ रु० अधिक आयोजित किया गया। सन् १९६९ ७० की योजना का आयोजित प्रस्तावित व्यय चौथी योजना के सरकारी क्षेत्र के व्यय का १५ ८% है। व्यय की यह राशि वित्तीय साधनों की उपलब्धि के अनुकूल रखी गयी है।

अर्थ साधन

सन् १९६९ ७० की योजना के अर्थ साधनों की व्यवस्था राज्य सरकारों के साथ सितम्बर सन् १९६८ एवं जनवरी सन् १९६९ में किए गये विचार विमर्श के आधार पर की गयी है। योजना के व्यय का ५७ ४% भाग (अर्थात १ ३०४ करोड़ रु०) बजट के साधनों से प्राप्त करने की व्यवस्था की गयी है। ७१३ करोड़ रु० अर्थात योजना के व्यय का ३१ ४% भाग विदेशी सहायता से प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया है। योजना में २५४ करोड़ रु० का होनार्थ प्रबन्धन की व्यवस्था है। विभिन्न स्रोतों से निम्न प्रकार अर्थ साधन प्राप्त होने का अनुमान है—

तालिका सं० ११४—सन् १९६९ ७० योजना के अर्थ-साधन

(करोड़ रुपया में)

मद	केन्द्र	राज्य	योग
बजट के साधन (जीवन बीमा निगम से अनुबन्धित ऋणों एवं राज्य व्यवसायों के बाजार से लिए गये ऋणों को छोड़कर)	८६१	१३०	९९१
जीवन बीमा निगम से ऋण एवं राज्य व्यवसायों के बाजार से लिए गये ऋण (सकल)	—	६५	६५

आन्तरिक बजट के साधनों का योग	८६१	१९५	१,०५६
विदेशी सहायता	७१३	—	७१३
अतिरिक्त आय-साधन की प्राप्ति	१०६	१४२	२४८
हीनार्थ-प्रबन्धन	२५४	—	२५४
राज्य-योजनाओं को सहायता	—६१५	६१५	—
योजना के शुद्ध साधन	१,३१९	९५२	२,२७१

राज्य सरकारों ने सन् १९६९-७० की योजना के लिए बजट में १००८ करोड़ रु० का आयोजन किया गया है जो योजना आयोग द्वारा स्वीकृत व्यय से ४६ करोड़ रु० अधिक है। राज्य सरकारों के बजट में केन्द्र की सहायता की राशि ६४४ करोड़ रु० रखी गयी है जो योजना में आयोजित राशि से २९ करोड़ रु० कम है। दूसरी ओर राज्यों के बजट के साधन में २८० करोड़ रु० अनुमानित किये गये हैं जो योजना में अनुमानित राशि से १२ करोड़ रु० कम है। इस प्रकार राज्यों के बजट में योजना के अर्थ-साधनों में ११३ करोड़ रु० (२९ + २६ + १२) की हीनता बतायी गयी है। राज्यों के गैर योजना-व्यय में भी २१३ करोड़ रु० की हीनता है इस प्रकार राज्यों के बजट में ३२० करोड़ रु० की हीनता का अनुमान है। राज्यों के अर्थ साधनों का पुनर्मूल्यांकन पाँचवें वित्त-आयोग के प्रतिवेदन के सन्दर्भ में किया जाना है।

सन् १९६९-७० के केन्द्रीय बजट में जो अतिरिक्त साधनों के प्राप्त करने की कार्यवाहियाँ निर्धारित की गयी हैं, १४२ करोड़ रु० प्राप्त होने का अनुमान है जिसमें से २६ करोड़ रु० राज्य सरकारों का अंश है। दूसरी ओर राज्य सरकारों द्वारा जो कार्यवाहियाँ अतिरिक्त साधन प्राप्त करने के लिए घोषित की गयी हैं उनसे केवल ३७ करोड़ रु० प्राप्त होने का अनुमान है। इस प्रकार अतिरिक्त साधनों में लगभग ६० करोड़ रु० की हीनता हो सकती है।

योजना में ७१३ करोड़ रु० की शुद्ध विदेशी सहायता प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया है। २१३ करोड़ रु० की विदेशी सहायता का उपयोग विदेशी दायित्व ऋणों के भुगतान पर ही जायगा। ७१३ करोड़ रु० की सहायता में से २२२ करोड़ रु० PL 480 के अन्तर्गत प्राप्त होने का अनुमान है। सन् १९६८-६९ वर्ष में निर्यात १३६० करोड़ रु० हुआ जो सन् १९६७-६८ की तुलना में १३.५% अधिक और सन् १९६४-६५ के सम्पन्न वर्ष से ५.८% अधिक है। गैर-परम्परागत वस्तुओं का निर्यात में ६०% अंश था। इन्जीनियरिंग वस्तुओं, लोहा एवं इस्पात, दस्तकारी की वस्तुएँ रसायन एवं अन्य सहायक उत्पाद, कागज मोती एवं मूल्यवान पत्थर आदि के निर्यात में विशेष वृद्धि हुई। सन् १९६९-७० वर्ष में इन्जीनियरिंग वस्तुओं, रसायन एवं सहायक वस्तुओं—चाय निर्मित जूट माल्स के निर्यात में वृद्धि होने की सम्भावना है। बन्दरगाहों पर सुविधाएँ बढ़ने के कारण कच्चा लोहा मछली और मछली के उत्पादों का निर्यात भी बढ़ सकेगा। सन् १९६९-७० में इस प्रकार निर्यात में ७% की वृद्धि का अनुमान है अर्थात् इस वर्ष में निर्यात १४५० करोड़ रु० हो सकेगा।

दूसरी ओर सन् १९६८-६९ में आयात १८६२ करोड़ रु० का हुआ है। सन् १९६९-७० में खाद्यान्नों के आयात में कमी तथा औद्योगिक निर्वाह आयात में ५% की वृद्धि होने का अनुमान है। इस वर्ष में १६०० करोड़ रु० का आयात होने का अनुमान है। *इस प्रकार इस वर्ष व्यापार शेष में ४५० करोड़ रु० की हीनता का* अनुमान है। अदृश्य मदों, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की शोधन तथा विदेशी ऋणों के सेवा-व्ययों के कारण यह हीनता लगभग ९६० करोड़ रु० का प्रतिकूल भुगतान शेष हो जायगा। यह अनुमान लगाया गया है कि सन् १९६९-७० वर्ष में ६६० करोड़ रु० के बराबर सकल सहायता (खाद्य पदार्थों सरकारी एवं निजी क्षेत्र की परियोजना एवं निर्वाह सहायता सहित) प्राप्त हो सकेगी।

सन् १९६९-७० वर्ष की योजना के लक्ष्य

योजना के भौतिक लक्ष्य निम्न प्रकार निर्धारित किये गये हैं—

तालिका स० ११५—सन् १९६९-७० योजना के भौतिक लक्ष्य

मद	इकाई	१९६८-६९ में सम्भावित	१९६९-७० का लक्ष्य	१९६८-६९ पर १९६९-७० के लक्ष्य की प्रतिशत वृद्धि
(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
खाद्यान्न	लाख टन	९६०	१०१०	५
तिलहन	लाख टन	६९	८५	२३
गन्ना (गुड़)	लाख टन	१२०	१२५	४
कपास	लाख गाँठ	५३	६०	१३
जूट	लाख गाँठ	३१	६४	१०६
अधिक उपज वाले बीजों का क्षेत्र	लाख हेक्टेयर	८५	१०९	३०
अतिरिक्त लघु सिंचाईक्षेत्र	लाख हेक्टेयर	१५	१४	—१
रासायनिक खाद का उपयोग				
नाइट्रोजियस खाद	लाख हेक्टेयर (N)	१२१	१७०	४०
फास्फटिक खाद	लाख हेक्टेयर P_2O_5	—	६०	—
पोटेसिक खाद	लाख हेक्टेयर K_2O	१७	३०	७६
सिंचाई की क्षमता	लाख हेक्टेयर	९०	९८	९
सिंचाई का उपयोग	लाख हेक्टेयर	७४	८०	८
शक्ति की क्षमता	लाख किलोवाट	१४२	१५९	१२
पम्पों का शक्तिकरण	हजार	१०६९	११८१	१०
इस्पात के ढेले	लाख टन	६४	७५	१७

अल्यूमीनियम	हजार टन	११६ ०	१४१ ०	२२
तांबा	हजार टन	९ २	९ ५	३
कृषि ट्रैक्टर	हजार	१५६	२००	२०
नाइट्रोजिनस खाद का उत्पादन	हजार टन (N)	५४२ ५	९००	६६
फास्फेटिक खाद का उत्पादन	हजार टन (N) (P_2O_5)	२१० २	३४०	६२
असाधित खनिज तेल	लाख टन	५६	७८	२४
मशीनों के औजार	लाख रुपया	२१००	३२५०	५५
व्यापारिक मोटरगाड़ियाँ	हजार	३६ ०	४० ०	११
सीमेन्ट	लाख टन	११२	१२५	११
मिल का बना सूती कपड़ा	लाख मीटर	४३१३७	४५०००	५
शक्कर	हजार टन	३३००	३७००	१२
रेलों द्वारा ढोया गया सामान	लाख टन	२०४०	२१४०	४
बड़े बन्दरगाहों पर सामान	लाख टन	५५०	५९०	७
कक्षा १ से ५ तक अतिरिक्त विद्यार्थियों की संख्या	हजार	२२९०	२१७०	—५
कक्षा ६ से ८ तक अतिरिक्त विद्यार्थियों की संख्या	हजार	१०१०	९४०	—७
कक्षा ९ से ११ तक अतिरिक्त विद्यार्थियों की संख्या	हजार	५००	५३०	६
अस्पतालों में शयाएँ	संख्या	१०२५२०	१०९०००	७

सन् १९६९ ७० की योजना में कृषिक्षेत्र के उत्पादन में ५ ५% वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया है। इस लक्ष्य की उपलब्धि के लिए कृषि की नवीन कौशलता (New Strategy) के अन्तर्गत गहन कृषि का विस्तार किया जायगा। औद्योगिक उत्पादन में पुन प्राप्ति (Recovery) सन् १९६७ ६८ की अन्तिम तिमाही से प्रारम्भ हुई और इस क्षेत्र में सन् १९६८ ६९ में पर्याप्त प्रगति हुई। सन् १९६८ ६९ में औद्योगिक क्षेत्र की प्रगति की दर ६ २% लक्ष्य के बराबर ही रही। सन् १९६९ ७० में कच्चे माला में, विशेषकर जूट कपास एवं मूँगफली की अधिक उपलब्धि आय-वृद्धि के कारण उपभोक्ता-वस्तुओं की माग में वृद्धि, निर्यात-वृद्धि के लिए प्रोत्साहन, तथा निजी एवं सरकारी क्षेत्र में अधिक विनियोजन के कारण सन् १९६९-७० वर्ष में औद्योगिक प्रगति का लक्ष्य ८% निर्धारित किया गया है।

सन् १९६९ ६९ की योजना का एक उद्देश्य मूल्य-स्तर को स्थिर रखना भी था। सन् १९६८ ६९ का थोक मूल्य निर्देशांक लगभग २१०२ रहा जो सन् १९६७-६८ के थोक मूल्य निर्देशांक २१२ ४ से १ १% कम था। सन् १९६९ ७० की योजना के प्रारम्भ में सरकार के पास ४५ लाख टन अनाज का भण्डार होने के कारण यह सम्भावना की जाती है कि खाद्यान्नों का मूल्य-स्तर स्थिर रहेगा। अधिग्रहण की

कायवाहियो द्वारा छूट के लक्ष्यों के उच्चावचनो को रोकना सम्भव हो सकेगा। सरकार द्वारा मूल्यो के स्तर म स्थिरता रखने के लिए विभिन्न वस्तुओ के पुष्टि-मूल्य (Support Prices) निर्धारित कर दिये गये हैं और राज्य व्यापार निगम (State Trading Corporation) को पुष्टि मूल्य सम्बन्धी क्रय विक्रय करने का उत्तर दायित्व सौंप दिया गया है। इस प्रकार सन् १९६९-७० वर्ष म मूल्यो के स्थिर रहने की पर्याप्त सम्भावना है।

———

अध्याय ३५

भारतीय नियोजित अर्थ-व्यवस्था एवं औद्योगिक नीति

[Industrial Policy in the Planned Economy of India]

[औद्योगिक नीति प्रस्ताव, सन् १९४८ के उद्देश्य उद्योगों का राष्ट्रीयकरण, पूंजी तथा श्रम के सम्बन्ध, लघु उद्योग, विदेशी पूंजी, तटकर नीति कर-व्यवस्था, श्रमिकों के लिए गृह-व्यवस्था—औद्योगिक (विकास तथा नियमन) अधिनियम, सन् १९५१, दत्त-समिति चतुर्थ योजना में औद्योगिक लाइसेन्सिंग नीति प्रथम पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक नीति, औद्योगिक नीति प्रस्ताव सन् १९५६—केन्द्रीय सरकार का अनन्य एकाधिकार क्षेत्र, राज्य एवं व्यक्तिगत मिश्रित क्षेत्र, व्यक्तिगत उद्योग के क्षेत्र, सन् १९४८ एवं सन् १९५६ की औद्योगिक नीतियों की तुलना—द्वितीय योजना में औद्योगिक नीति, द्वितीय योजना में ग्रामीण एवं लघु उद्योग-सम्बन्धी नीति कर्वे समिति की सिफारिशें तृतीय योजना में औद्योगिक नीति, ग्रामीण एवं लघु उद्योग विकास नीति, चतुर्थ योजना में औद्योगिक नीति]

स्वतन्त्रता के पश्चात् ही भारत सरकार ने आयोजित अर्थ-व्यवस्था तथा उद्योगों के राष्ट्रीयकरण पर विचार किया और प्राचीन पूंजीवादी-व्यवस्था पर आवश्यक नियन्त्रण रखना आवश्यक समझा। राष्ट्र के सन्तुलित विकास तथा जन-कल्याण के लिए यह आवश्यक था कि सरकार औद्योगिक क्षेत्र में हस्तक्षेप करे तथा औद्योगिक विकास हेतु अधिकतम प्रयत्न करे। दिसम्बर सन् १९४७ में औद्योगिक सम्मेलन (Industrial Conference) ने उत्पादन में वृद्धि करने के लिए अनेक सिफारिशें कीं और साथ ही एक केन्द्रीय सलाहकार परिषद् थोड़ी अवधि के लिए प्राथमिकता बोर्ड तथा एक राष्ट्रीय योजना आयोग की स्थापना का सुझाव दिया। इसी वर्ष मेरठ में हुए कांग्रेस अधिवेशन ने राष्ट्रीय सरकार को भावी औद्योगिक नीति का निर्धारण किया। इस पृष्ठभूमि में स्वर्गीय डॉ० श्यामाप्रसाद मुकर्जी तत्कालीन उद्योगमन्त्री ने ६ अप्रैल, सन् १९४८ को संसद में भारत सरकार की औद्योगिक नीति की घोषणा की जिसके अन्तर्गत श्रम पूंजी तथा साधारण जनता द्वारा देश में शीघ्र औद्योगीकरण की आशा जाग्रत हुई।

सरकार द्वारा औद्योगिक नीति का घोषणा करना भारत के औद्योगिक नियोजन के इतिहास म एक महत्वपूर्ण चरण था। १५ अगस्त सन् १६४७ का स्वतन्त्रता प्राप्त होने के पश्चात देश भर म एक नूतन जाग्रति का प्रादुर्भाव और जनता को सरकार से बड़ी बड़ी आशाए होने लगी। जनसमुदाय म नवीन भारत के निर्माण म सहयोग प्रदान करने का भावना उत्पन्न हो गयी थी। उद्योगपति भी यह जानने के लिए उत्सुक थे कि देश के औद्योगिक विकास म उनको क्या स्थान दिया जायगा।

यह औद्योगिक नीति प्रस्ताव प्रतिक्रियावादी, क्रान्तिकारी समाजवादी तथा पूजीवादी पारस्परिक विरोधा का परिहार करने हुए एक मिश्रित अर्थ व्यवस्था का प्रतिपादन करता था। इसके द्वारा लोक तथा अलोक साहस की सीमाओ को निर्धारित किया गया था। इसम पूँजी तथा श्रम दोनो के पारस्परिक सम्बन्धों की व्यवस्था था। विदेशी पूजी के विषय म राजकीय नीति का स्पष्टीकरण किया गया तथा उन उपायो की ओर सकेत किया गया जिन्ह इन नीतियो की पूर्ति के लिए सरकार काम म ला सकी थी।

औद्योगिक नीति प्रस्ताव सन् १६४८ के उद्देश्य

(१) ऐसा सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना जिसम न्याय एव अवसरो की समान उपलब्धि समस्त जनसमुदाय को प्राप्त हो सके।

(२) देश के सम्भावी साधनो का शोषण करके जनसमुदाय के जीवन स्तर म तीव्र गति म वृद्धि करना।

(३) शिक्षा का सुविधाओ एव स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओ को अधिक विस्तृत करना।

(४) कृषि तथा औद्योगिक दोनो ही क्षेत्रो के उत्पादन म वृद्धि करना।

(५) समाज का विभिन्न सेवाओ म रोजगार के अवसर प्रदान करना।

(६) आर्थिक नियोजन तथा समन्वित प्रयास की आवश्यकता पर विचार करना।

(७) राष्ट्रीय योजना आयोग की स्थापना का आवश्यकता पर विचार करना।

(८) औद्योगीकरण के क्षेत्र म राज्य के उत्तरदायित्वो की सीमाओ को निर्धारित करना।

(९) क्षेत्र के नियमन की सीमाओ को निर्धारित करना।

प्रस्ताव म कहा गया कि तत्कालीन परिस्थितियो म उत्पादन का वृद्धि को महत्व दिया जाना उचित होगा क्योकि विद्यमान सम्पत्ति का पुनर्वितरण करने से केवल न्यूनता का ही वितरण (Distribution of Scarcity) होगा। प्रस्ताव म पूजीगत वस्तुओ तथा आधारभूत उपभोक्ता वस्तुओ एव ऐसी वस्तुओ के उत्पादन म सत्वर वृद्धि करने के प्रयत्न किए गए जिनके निर्यात से विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सके।

उद्योगों का राष्ट्रीयकरण—औद्योगिक नीति प्रस्ताव में बताया गया कि तत्कालीन परिस्थितियों में जबकि अधिकतर जनता का जीवन-स्तर न्यूनतम से भी कम है यह आवश्यक है कि कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि का विशेष प्रयत्न किया जाय। उत्पादन में वृद्धि के प्रश्न का हल करने से पूर्व यह निश्चित करना आवश्यक समझा गया कि राज्य किस सीमा तक औद्योगिक क्षेत्र में भाग लेगा तथा निजी क्षेत्र को किन किन नियन्त्रणों की दशा में कार्य करना होगा। तत्कालीन परिस्थितियों में राज्य के पास इतने साधन नहीं थे कि वह औद्योगिक क्षेत्र में यथोचित तथा वांछनीय सीमा तक भाग ले सके, इसलिए यह निश्चय किया गया कि राज्य राष्ट्रीय आय की पर्याप्त वृद्धि करने के लिए कुछ समय तक अपनी कार्यवाहियों को उस क्षेत्र में ही बढ़ाये जिसमें वह अभी तक कार्य करता आ रहा है। इसके साथ ही नये उद्योगों की स्थापना को भी अपने कार्यक्षेत्र में ले लें। इस प्रकार वर्तमान उत्पादक साहस के उद्योगों के राष्ट्रीयकरण को कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया गया परन्तु इस अवधि में राज्य को निजी क्षेत्र पर समुचित नियन्त्रण द्वारा उसका नियमित संचालन करना था।

इन निश्चयों के आधार पर राज्य तथा व्यक्तिगत क्षेत्रों को सीमाबद्ध करने के लिए उद्योगों को चार श्रेणियों में विभक्त किया गया—

(१) केन्द्रीय सरकार का अनन्य एकाधिकार क्षेत्र—युद्ध सामग्री का निर्माण, अणु शक्ति का उत्पादन तथा नियन्त्रण, रेल-यातायात का स्वामित्व एवं प्रबन्ध—ये उद्योग केवल सरकार द्वारा ही स्थापित तथा सञ्चालित किए जाते थे।

(२) राज्य जिसमें केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा रियासती सरकारों तथा अन्य स्थानीय संस्थाओं, जैसे नगरपालिका, निगम आदि का क्षेत्र शामिल है—कोयला, लोहा तथा इस्पात, वायुयान निर्माण, जलयान निर्माण, टेलीफोन, टेलीग्राफ तथा बेतार के तार के यन्त्रों या उपकरणों का निर्माण (रेडियो तथा टेलीविजन सेट को छोड़ कर) तथा खनिज तेल के उद्योग केवल राज्य द्वारा ही खोले जाने थे, परन्तु इन उद्योगों की जो इकाइयाँ पहले से ही कार्य कर रही हैं उनको दस वर्ष तक कार्य करने की अनुमति प्रदान की जानी थी। दस वर्ष पश्चात् सरकार इस बात का निश्चय करेगी कि उनका राष्ट्रीयकरण किया जाय अथवा नहीं।

(३) निजी साहस का स्वामित्व परन्तु सरकार का नियमन तथा नियन्त्रण का क्षेत्र—नमक, मोटर, ट्रैक्टर, प्राइममूवर, विद्युत्, इन्जीनियरिंग यन्त्र, उपकरण, भारी रसायन, खाद, फार्मेसी की औषधियाँ, विद्युत् रसायन उद्योग, अलौह धातु, रबर-निर्माण, शक्ति तथा औद्योगिक अल्कोहल, सूती तथा ऊनी वस्त्र, सीमेंट, चीनी, कागज, समाचार-पत्र का कागज, वायु तथा जल-यातायात तथा वे खनिज और उद्योग जो सुरक्षा से सम्बन्धित हों। इस वर्ग के उद्योगों का राष्ट्रीयकरण तो नहीं किया जायगा, परन्तु उन पर पर्याप्त सरकारी नियन्त्रण रहेगा।

(४) निजी साहस के अधीन परन्तु जिसमें औद्योगिक सहकारी समितियों के सचालन को प्राथमिकता दी जाती थी—गृह तथा लघु उद्योग और कृषि के सहायक ग्रामीण उद्योग—इन पर निजी साहस का स्वामित्व रहना था, परन्तु इनको सहकारी संस्थाओं द्वारा संचालित करने का अधिक महत्व दिया जाता था।

(५) स्वतन्त्र निजी साहस का क्षेत्र—अन्य सभी उद्योग निजी साहस द्वारा चलाये जा सकते थे।

पूंजी तथा श्रम के सम्बन्ध—सरकार ने पूंजी तथा श्रम में सहयोगी सम्बन्धों को स्थापित करने के लिए सन् १९४७ के औद्योगिक सम्मेलन द्वारा पारित किए गये प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया। इस प्रस्ताव में कहा गया था कि पूंजी और श्रम के पारिश्रमिक का प्रबन्ध इस प्रकार किया जाना चाहिए कि अधिक लाभ पर कर तथा अन्य विधियों द्वारा रोक लगायी जा सके। पूंजी और श्रम के सामूहिक परिश्रम से उत्पादित आय में से श्रम को उचित पारिश्रमिक, उद्योग में लगायी गयी पूंजी का उचित प्रतिफल तथा उद्योगों के विकास के लिए यथोचित संचय (Reserve) का प्रबन्ध करने के पश्चात् शेष भाग को पूंजी तथा श्रम में बांटा जाय। श्रम को लाभ में से मिलने वाला भाग श्रम की उत्पादन शक्ति के आधार पर होना चाहिए। इसके साथ, सरकार केन्द्र तथा प्रान्तों में अधिकारी नियुक्त करेगी जो श्रम तथा पूंजी के पारिश्रमिक तथा श्रम के कार्य करने की दशाओं के विषय में सलाह देंगे।

गृह उद्योग—भारत के इतिहास में प्रथम बार गृह उद्योगों को औद्योगिक नीति में सम्मिलित किया गया। यह मान लिया गया कि देश की अर्थ-व्यवस्था में गृह उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये उद्योग व्यक्तिगत ग्रामीण तथा सहकारी साहस को प्रोत्साहित करते हैं तथा स्थानीय साधनों—मानवीय एवं भौतिक का उपयोग करने में सहायक होते हैं। इनके द्वारा स्थानीय आत्मनिर्भरता प्राप्त की जा सकती है। इनसे उपभोक्ता की आवश्यक वस्तुओं जैसे खाद्यान्न, वस्त्र, कृषि औजार आदि के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हो सकती है। इन उद्योगों के विकास के लिए कच्चा माल, सस्ती शक्ति, तान्त्रिक सलाह, विपणि संगठन तथा बड़े उद्योगों से प्रतिस्पर्धा से सुरक्षा का आयोजन किया जाय। ये सभी कार्य प्रान्तीय सरकार द्वारा किए जाने थे। केन्द्रीय सरकार केवल यह जानकारी प्राप्त करे कि इन उद्योगों का बड़े उद्योगों के साथ किस प्रकार सामंजस्य स्थापित किया जा सकता था। प्रस्ताव में यह भी कहा गया कि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में विदेशों से बड़े उद्योगों के लिए पूंजीगत सामान प्राप्त करना कठिन है इसलिए लघु औद्योगिक सहकारी समितियों को बढ़ावा दिया जाय।

विदेशी पूंजी—औद्योगिक नीति प्रस्ताव सन् १९४८ की घोषणा के तुरन्त बाद विदेशी विनियोजकों ने भारत सरकार को विदेशी पूंजी की वापसी, लाभों के भुगतान तथा विदेशी व्यवसायों को भारतीय व्यवसायों की तुलना में प्राप्त होने वाले

धीरे धीरे किया जाय जिससे सम्पूर्ण लेख पट के लेख का प्रतिस्थापन हो सके। यह कार्य बहुत धीरे धीरे नहीं होना चाहिए परन्तु इसके लिए कोई ऐसी कार्यवाही भी नहीं होनी चाहिए जिससे कोई बर्बादी हो।[1]

इन विचारों से पूर्णतः सहमत न होते हुए प्रोफेसर के० टी० शाह ने प्रस्ताव पर अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये "यह कोई ऐसी नीति नहीं थी जो एक ऐसे राज्य को अपनानी चाहिए जो विकासशील हो तथा राष्ट्र के हित के लिए अधिकतम मात्रा में कार्यवाही करने के लिए इच्छुक हो। मैं इस प्रस्ताव से केवल इसलिए ही असन्तुष्ट नहीं कि इसमें कुछ कार्यवाहियों को कम रखा गया है परन्तु इसीलिए भी कि इसमें अनेक कार्यवाहियों पर प्रकाश न डालने का दोष भी है। अधिकतम दूषित उदाहरणों को राज्य के लिए छोड़ा गया तथा सर्वोत्तम उदाहरण पूंजीपतियों के लिए छोड़े गये हैं जो केवल लाभ के लिए ही कार्य करते हैं। इस कथन से क्या लाभ है कि दस वर्ष तक पूंजीपति को शोषण करने का अधिकार दिया जायगा जिसमें वह समस्त धन का संग्रह कर ले और भविष्य की पीढ़ियों के लिए केवल छिलका ही छोड़ दे।"[2]

औद्योगिक नीति प्रस्ताव सन् १९४८ के क्रियान्वित करते समय यह अनुभव किया गया कि उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के सम्बन्ध में केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों में समन्वय का अभाव रहा और राज्य सरकारों ने कुछ उद्योगों का राष्ट्रीयकरण सम्भावित समय के पूर्व ही कर लिया। राज्य सरकारों में उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के लिए विशेष उत्साह था जिसके फलस्वरूप, पर्याप्त साधनों एवं क्रमबद्ध प्राथमिकताओं पर विचार

1 One had to be careful that in taking any step the existing structure was not injured much. In the state of affair in the world and India today any attempt to have a clean slate i. e. a sweeping away of all that they had got would certainly not bring progress nearer but rather delay it tremendously. The alternative to that clean slate was to try to rub out here and there to write on it gradually to replace the writing on the whole slate not too slowly but nevertheless without a great measure of destruction in its trail. *—Late Pt. Jawahar Lal Nehru*

2 This was not a policy that a state desiring to be progressive desiring to advance the well being of the country to the utmost possible degree should adopt. I am disappointed with the resolution not only because of its sins of commission but also because of its sins of omission. The worst possible examples were left to the state and the best possible examples were left to the capitalists seeking profits and profits only. *What was the use of saying that for ten years the capitalist would be* given a chapter of exploitation under which he could take out all the kernal and leave the husk to posterity.

—Prof. K. T. Shah

किए बिना ही उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया गया। लोक क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयों का प्रबन्ध एवं प्रशासन सरकारी प्रशासन अधिकारियों के हाथ में सौंपा गया जो व्यापार व प्रशासन-कला से अनभिज्ञ थे। इन अधिकारियों को आवश्यकतानुसार प्रशिक्षण प्रदान करने का पर्याप्त आयोजन नहीं किया गया। औद्योगिक प्रस्ताव एवं औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम, सन् १९५१ द्वारा अलोक क्षेत्र की कार्यवाहियों पर इतने प्रतिबन्ध लगा दिए गए कि अलोक क्षेत्र का विस्तार करने के लिए कोई प्रोत्साहन न रहा।

औद्योगिक (विकास तथा नियमन) अधिनियम, सन् १९५१
[Industries (Development and Regulation) Act, 1951]

औद्योगिक नीति प्रस्ताव सन् १९४८ को तीन वर्ष तक कार्यान्वित करने में भारत सरकार को जो अनुभव प्राप्त हुए तथा भारतीय संविधान के अनुसार देश में धन के केन्द्रीयकरण को रोकने हेतु यह आवश्यक समझा गया कि औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था पर नियन्त्रण रखा जाय और इसके लिए एक अधिनियम का निर्माण करना आवश्यक समझा गया। दूसरी ओर सन् १९५१ में प्रथम पंचवर्षीय योजना प्रारम्भ होने पर अर्थ-व्यवस्था को योजना के उद्देश्यों के अनुरूप सचालित करने के लिए अलोक क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयों के नियमन करने की आवश्यकता महसूस की गयी। इन्हीं कारणों से अक्टूबर सन् १९५१ में औद्योगिक (विकास एवं नियमन) अधिनियम, सन् १९५१ पास किया गया जो ८ मई सन् १९५२ से लागू हुआ।

प्रारम्भ में यह अधिनियम केवल ३६ उद्योगों पर लागू होता था, परन्तु धीरे-धीरे इसके कार्यक्षेत्र को विस्तृत किया गया और अब यह १९२ उद्योगों पर लागू होता है। प्रारम्भ में यह अधिनियम केवल ऐसी औद्योगिक इकाइयों पर लागू होता था जिनमें एक लाख रुपया या इससे अधिक पूँजी विनियोजित थी। सन् १९५३ में इस अधिनियम में संशोधन किया गया और यह सभी औद्योगिक इकाइयों पर लागू होने लगा चाहे उनका आकार कुछ भी क्यों न हो। सन् १९५६ के संशोधन द्वारा यह अधिनियम उन इकाइयों पर लागू किया गया जिनमें ५० व्यक्ति शक्ति की सहायता से अथवा १०० व्यक्ति बिना शक्ति की सहायता से कार्य करते थे। फरवरी सन् १९६० के संशोधन द्वारा यह निर्धारित किया गया कि ऐसी औद्योगिक इकाइयाँ, जिनमें १०० से कम श्रमिक कार्य करते हों और जिनकी स्थायी सम्पत्तियाँ १० लाख रु० से कम हैं उनका इस अधिनियम के अन्तर्गत लाइसेन्स लेना आवश्यक नहीं है। जनवरी सन् १९६४ से यह १० लाख रु० की सीमा बढ़ाकर २५ लाख रु० कर दी गयी है (केवल कुछ चुने हुए उद्योगों को छोड़ कर)।

इस अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य उद्योगों का विकास एवं नियमन, देश की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक विचारधाराओं के अनुरूप करना है। इसके द्वारा सरकार को देश में उपलब्ध साधनों के उचित उपयोग करने, लघु एवं वृहद् उद्योगों

का समन्वित विकास करने तथा उद्योगों का देश में उचित क्षेत्रीय वितरण करने के लिए कार्यवाहियाँ करने का अधिकार मिल गया है।

अधिनियम में किए गए आयोजनों को हम तीन भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं—

(अ) निरोधात्मक आयोजन—*इस वर्ग के अन्तर्गत ऐसे आयोजन सम्मिलित किए जा सकते हैं जिनके द्वारा सरकार औद्योगिक इकाइयों को राष्ट्रीय आर्थिक नीति में विरोध में की जाने वाली कार्यवाहियों का प्रतिबन्धित कर सकती है। इन आयोजनों में तीन मुख्य कार्यवाहियाँ सम्मिलित हैं—*

(१) औद्योगिक इकाइयों का रजिस्ट्रेशन तथा लाइसेंसिंग—अधिनियम के अन्तर्गत दी हुई अनुसूची में सम्मिलित समस्त उद्योगों की वर्तमान लोक एवं अलोक क्षेत्रों की इकाइयों को अनिवार्य रूप से निश्चित अवधि के अन्दर रजिस्ट्रेशन का प्रमाण पत्र प्राप्त करना होता है। इन उद्योगों में स्थापित होने वाली नवीन इकाइयों की स्थापना केन्द्रीय सरकार से लाइसेंस प्राप्त कर के की जा सकती है। केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों को नवीन औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित करने के लिए लाइसेंस लेने की आवश्यकता नहीं होती परन्तु राज्य सरकारों को नवीन इकाइयों की स्थापना करने के पूर्व केन्द्रीय सरकार से स्वीकृति लेनी होगी। *लाइसेंस जारी करते समय केन्द्रीय सरकार नवीन औद्योगिक इकाइयों को निर्धारित शर्तों की पूर्ति करने के लिए निर्देश दे सकती है। रजिस्टर्ड एवं लाइसेंस प्राप्त औद्योगिक इकाइयों को किसी नवीन वस्तु का निर्माण करने के पूर्व केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है। औद्योगिक इकाइयों के विस्तार करने तथा स्थान-परिवर्तन करने के लिए* भी लाइसेंस अथवा स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है।

(२) अनुसूचित उद्योगों की जाँच पड़ताल—जब किसी लाइसेंस प्राप्त अथवा रजिस्टर्ड उद्योग के उत्पादन में अधिक कमी हो जाय अथवा उसकी वस्तुओं के गुणों में गिरावट हो जाय अथवा उसके उत्पादन के मूल्यों में असामान्य वृद्धि हो जाय अथवा उस उद्योग का प्रबन्ध ठीक न हो तो केन्द्रीय सरकार उस औद्योगिक इकाई की जाँच पड़ताल करा सकती है और जाँच पड़ताल के आधार पर उद्योग को आवश्यक निर्देश दे सकती है।

(३) रजिस्ट्रेशन अथवा लाइसेंस का निरस्त करना—अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार को अधिकार प्राप्त है कि जब रजिस्ट्रेशन मिथ्या प्रतिनिधित्व द्वारा प्राप्त किया गया हो अथवा रजिस्ट्रेशन किसी भी कारण से प्रभावशाली न रहा हो तो ऐसे रजिस्ट्रेशन को निरस्त वह कर सकती है। इसी प्रकार लाइसेंस जारी होने के पश्चात् किसी उद्योग की स्थापना निर्धारित अवधि के अन्दर न की जाय तो केन्द्रीय सरकार ऐसे लाइसेंस को निरस्त कर सकती है। केन्द्रीय सरकार को जारी किए हुए लाइसेंस में सुधार करने का अधिकार भी है।

(ब) सुधारात्मक आयोजन—जब कोई औद्योगिक इकाई केन्द्रीय सरकार

द्वारा जारी किये निर्देशों का पालन न करे अथवा इसे इस प्रकार सचालित किया जाय कि इसकी कार्यवाहियाँ सम्बन्धित उद्योग अथवा जनता के हित में हों तो केन्द्रीय सरकार इस इकाई का प्रबन्ध अथवा नियन्त्रण अपने हाथ में ले सकती है। सरकार द्वारा प्रबन्ध अपने हाथ में ले लेने पर कम्पनी के अंशधारियों के अधिकारों को कम कर दिया जाता है अथवा यह अधिकार केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति के अधीन हो जाते हैं।

(स) रचनात्मक आयोजन—इस अधिनियम में औद्योगिक शान्ति एवं सहयोग की भावना उत्पन्न करने के लिए सरकार, उद्योग, श्रम एवं अन्य हितों के प्रतिनिधित्व पर आधारित कुछ संस्थाओं की स्थापना का आयोजन किया गया था। इनमें से कुछ प्रमुख संस्थाएं निम्न प्रकार हैं—

(१) केन्द्रीय सलाहकार परिषद् (Central Advisory Council)—इस परिषद् में ३० सदस्य हैं जिनमें केन्द्रीय उद्योग एवं वाणिज्यमन्त्री भी सम्मिलित हैं। इसके सदस्य केन्द्रीय सरकार द्वारा नामजद किये जाते हैं। उद्योग एवं वाणिज्यमन्त्री इस परिषद् का सभापति होता है। यह परिषद् केन्द्रीय सरकार को अनुसूचित उद्योग, विकास एवं नियमन अधिनियम के प्रशासन तथा अधिनियम के लिए नियम (Rules) बनाने के सम्बन्ध में सलाह देती है।

(२) केन्द्रीय सलाहकार परिषद् की स्टैंडिंग समिति (Standing Committee)—स्टैंडिंग समितियों की स्थापना समय-समय पर विभिन्न उद्योगों की पृथक्-पृथक् वर्तमान स्थिति की जाँच करने के लिए की जाती है।

(३) विकास-परिषदें—अधिनियम में विभिन्न अनुसूचित उद्योगों की पृथक् अथवा उनके समूहों की विकास-परिषदें स्थापित करने का आयोजन किया गया है। इन परिषदों में सम्बन्धित उद्योगों के श्रम, पूँजी, उपभोक्ता, तान्त्रिक-विशेषज्ञों आदि के प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं। प्रत्येक परिषद् एक समामेलित संस्था होती है जो सम्पत्ति अधिकार में रख सकती है तथा अन्य पक्षों पर अपने नाम से मुकदमा कर सकती है एवं उस पर मुकदमा किया जा सकता है। इन परिषदों के मुख्य कार्य निम्न प्रकार हैं—

(अ) उत्पादन के लक्ष्यों की सिफारिश करना, उत्पादन-कार्यक्रमों में समन्वय स्थापित करना तथा समय-समय पर उद्योग की प्रगति की जाँच करना।

(आ) अपव्यय को दूर करने, अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने, वस्तुओं के गुणों में सुधार करने तथा लागत को कम करने के लिए कुशलता के प्रमापों के सम्बन्ध में सुझाव देना।

(इ) स्थापित उत्पादन-क्षमता का पूर्णतम उपयोग प्राप्त करना।

(ई) कुशल विपणन की व्यवस्था करना।

(उ) नियन्त्रित कच्चे माल की वितरण-सहायता प्रदान करना।

(ऊ) कर्मचारियों के तान्त्रिक प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।

(ए) वनानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान करना।

(ऐ) सांख्य का संग्रहण करना आदि।

इस समय १४ परिषदें काम कर रही हैं। ये निम्नलिखित उद्योगों से सम्बद्ध हैं—

(१) अकार्बनिक रसायन (२) शक्कर (३) भारी बिजली का सामान (४) औषधियाँ (५) मकान निर्माण (६) ऊनी वस्त्र, (७) कलात्मक रेशमी वस्त्र (८) मशीनों के औजार (९) अलौह धातु (१०) तेल, वार्निश आदि (११) खाद्य सामग्री (१२) कार्बनिक रसायन (१३) कागज लुगदी एवं अन्य सहायक उद्योग (१४) मोटरगाड़ियाँ व सहायक उद्योग यातायात वाहन उद्योग, ट्रैक्टर तथा भूमि पर चलने वाले अन्य औजार।

(४) औद्योगिक पैनल (Industries Penels)—जो उद्योग अभी पूर्णतः विकसित नहीं हैं अथवा जिनमें विकास परिषदों की स्थापना करना सम्भव नहीं है, उन अनुसूचित उद्योगों में औद्योगिक पैनल की स्थापना की गयी है। यह पैनल सम्बन्धित उद्योगों की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करते हैं तथा उनके कच्चे माल एवं तान्त्रिक ज्ञान की आवश्यकताओं की जानकारी प्राप्त कर सरकार को सिफारिशें करते हैं।

केन्द्रीय सरकार को अनुसूचित उद्योगों पर एक कर लगाने का अधिकार है। यह कर उत्पादित वस्तुओं के नकद थोक मूल्य के १% प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता है। इस कर से प्राप्त धन को विकास परिषदें वनानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान डिजायन एवं गुण में सुधार तान्त्रिकों के प्रशिक्षण एवं प्रशासन व्यय के लिए व्यय करेंगी।

दत्त समिति

अधिनियम के उपयुक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि औद्योगिक क्षेत्र के नियोजित व्यवस्था की ओर यह एक महत्वपूर्ण कदम था। इसके द्वारा सरकार को यह अधिकार हो गया कि विभिन्न उद्योगों का प्राथमिकताओं के अनुसार संचालन तथा सार्वजनिक एवं अलोक क्षेत्रों में समन्वय स्थापित किया जा सके। प्रजातान्त्रिक नियोजन की सफलतार्थ यह कार्यवाही अत्यन्त आवश्यक थी, परन्तु इस अधिनियम के फलस्वरूप अलोक क्षेत्र में नवीन उद्योगों में पूँजी विनियोग करने के प्रोत्साहन को ठेस पहुँची क्योंकि औद्योगिक लाइसेंसिंग एवं नियन्त्रण का लाभ बड़े बड़े उद्योगपतियों एवं औद्योगिक गृहों को ही उपलब्ध हुआ। केन्द्रीय सरकार द्वारा एक औद्योगिक लाइसेंसिंग जाँच समिति (दत्त समिति) की स्थापना की गयी जिसको सन् १९५६ से सन् १९६६ के दशक में औद्योगिक लाइसेंसिंग पद्धति के दोषों की जाँच कर यह बताना था कि इस पद्धति के अन्तर्गत कुछ आवेदकों को अन्य आवेदकों की तुलना में क्या अधिक लाभ प्रदान किया गया है। समिति को यह भी जाँच करना थी कि लाइसेन्स के क्रियान्वयन

की स्थिति एवं उनके द्वारा बन्न वाली उत्पादनक्षमता का क्या परिमाण रहा। समिति ने ७३ बड़े औद्योगिक गृहों का विस्तृत अध्ययन किया। समिति के अनुसार ५१ ज्यादा से सम्बन्धित बड़ औद्योगिक गृहों का १०% या इससे भी अधिक लाइसेंसों पर नियन्त्रण प्राप्त था। लाइसेंस प्राप्त उत्पादनक्षमता म बड़ औद्योगिक गृहों को अधिक अनुपातिक क्षमता प्राप्त हुई। ३७ उत्पादों के सम्बन्ध म जितनी उत्पादन क्षमताएं लिए लाइसेंस जारी किए गए उनका २५% स अधिक भाग बड़ औद्योगिक गृहों को प्राप्त हुआ। समिति के अनुसार, सन् १९५६ ६६ के दशक म जारी किए गये लाइसेन्सों में से ३१ ८% को क्रियान्वित नहीं किया गया। औद्योगिक लाइसेन्सों का क्रियान्वयन प्राय बड़ औद्योगिक गृहों द्वारा नहीं किया गया। बिड़ला ग्रुप द्वारा १९६ और टाटा ग्रुप द्वारा ४७ लाइसेन्सों का क्रियान्वयन नहीं किया गया। प्राय बड़ व्यापार गृहों में एक ही उत्पादन के लिए एक स अधिक लाइसेन्स प्राप्त किए और फिर उनमें एक या कुछ का ही क्रियान्वयन किया। सन् १९६६ म देश में २९८६४ (सार्वज निक एव निजी) समामेलित कम्पनियाँ थीं। इनमें से २१६० बड़ औद्योगिक गृहों के नियन्त्रण म थीं। समामेलित निजी क्षेत्र को जारी किए लाइसेन्सों म २८% इन २१६० कम्पनियों को जारी किये गये। दूसरी ओर २८,६९८ कम्पनियों को ६०% लाइसेन्स प्राप्त हुए।

सन् १९५६ से १९६६ क दशक में २० ०१६ लाइसेन्स जारी किये गये। इनमें से ६१८१ को क्रियान्वयन किया गया, ६७२ का आंशिक क्रियान्वयन किया गया १७३६ समर्पण कर दिए गए और उन्हें खण्डित कर दिया गया तथा १२७६ का क्रियान्वयन नहीं किया गया। १४८ लाइसेन्सों के सम्बन्ध में जानकारी उपलब्ध नहीं हुई। क्रियान्वित न किये गए लाइसेन्सों में ८२१ तीन वर्ष से भी अधिक पुराने थ। क्रियान्वित न किये गये लाइसेन्सों के परिणामस्वरूप नवीन आवेदकों को उत्पादनक्षमता का निर्माण अथवा विस्तार करने की स्वीकृति नहीं दी गयी क्योंकि आयोजित समस्त उत्पादनक्षमता के लिए लाइसेन्स जारी किये जा चुके। इस प्रकार बड़े उद्योगपति अधिकारियों से मिलकर प्रतिस्पर्धा स अपने आप को मुक्त रखने में समर्थ हो गये।

दत्त समिति ने औद्योगिक गृहों को वित्त प्रदान करने वाली संस्थाओं के कार्य-कलापों का भी अध्ययन किया। सन् १९५६ ६६ के दशक में सार्वजनिक क्षेत्र की वित्तीय संस्थाओं द्वारा निजी क्षेत्र को ८०८ करोड़ रु० की दीर्घकालीन सहायता स्वीकृत की गयी। ८०८ करोड़ रु० की इस राशि में से ३६१ करोड़ रु० की सहायता ७३ बड़े औद्योगिक गृहों को प्रदान की गयी। १८३ करोड़ रु० की राशि से अर्थात कुल वित्तीय सहायता का २३% भाग २० बड़े औद्योगिक गृहों को प्रदान किया गया। इस प्रकार वित्तीय संस्थाओं की सहायता का अधिकतर लाभ बड़े औद्योगिक गृहों को उपलब्ध हुआ जिसका प्रमुख कारण इन संस्थाओं में पारस्परिक समन्वय की कमी तथा इनके द्वारा सहायता के सम्बन्ध में स्पष्ट प्राथमिकताओं का निर्धारित न किया जाना था।

चतुर्थ योजना में औद्योगिक लाइसेन्सिंग नीति—औद्योगिक लाइसेन्सिंग के उपयुक्त दोषों एवं विभिन्न औद्योगिक उत्पादों एवं कच्चे माल की पूर्ति में पर्याप्त वृद्धि होने के कारण अब उत्पादन एवं मांग को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता महसूस की गयी है। पूंजीगत प्रासाधनों की पूर्ति में वृद्धि होने, औद्योगिक आधार के सुदृढ़ होने तथा कच्चे माल की पर्याप्त उपलब्धि हो जाने के कारण देश में ऐसे उद्योगों के विस्तार की आवश्यकता महसूस की गयी है जो देश के साधनों पर ही निर्भर रहते हैं। प्रस्तावित चतुर्थ योजना में औद्योगिक लाइसेन्सिंग नीति के मुख्य तथ्य निम्न प्रकार हैं—

(१) समस्त आधारभूत एवं सामरिक महत्व के उद्योगों जिनमें विनियोजन अधिक मात्रा में किया जाना है तथा जिन्हें विदेशी विनिमय की अधिक आवश्यकता होती है का नियोजन सतर्कता से किया जायगा और इनका लाइसेन्सिंग किया जायगा। इन उद्योगों के सम्बन्ध में लाइसेन्स जारी करने के पश्चात साख, विदेशी विनिमय तथा अल्प पूर्ति (Scarce) वाले कच्चे माल इनको उचित समय पर प्रदान किये जाने चाहिए।

(२) ऐसे उद्योग जिन्हें विदेशी विनिमय द्वारा पूंजीगत प्रासाधनों की प्राप्ति के लिए सीमान्त सहायता की आवश्यकता हो उन्हें लाइसेन्सिंग से मुक्त रखा जाय। इन उद्योगों में विदेशी विनिमय की आवश्यकता उनके कुल पूंजीगत प्रासाधनों के मूल्य के १०% के बराबर निर्धारित की जा सकती है परन्तु ऐसे उद्योगों जिनमें पूंजीगत प्रासाधनों के लिए तो विदेशी विनिमय की कम आवश्यकता हो परन्तु इनके निर्वाह आयात बड़ी मात्रा में आवश्यक हो तो इन उद्योगों को लाइसेन्स लेना आवश्यक होना चाहिए।

(३) ऐसे उद्योग जिनमें पूंजीगत प्रासाधनों अथवा कच्चे माल के लिए विदेशी विनिमय की आवश्यकता नहीं हो, उन्हें औद्योगिक लाइसेन्सिंग से मुक्त रखा जाय। इन उद्योगों में निजी क्षेत्र को विपणि की परिस्थितियों के अनुसार स्वतन्त्रतापूर्वक संचालित करने का अधिकार होना चाहिए।

उपयुक्त प्रस्तावित औद्योगिक लाइसेन्सिंग की छूट से कुछ प्रतिकूल परिस्थितियाँ उदय हो सकती हैं जैसे बड़े नगरों में उद्योगों का अधिक केन्द्रीयकरण, परम्परागत एवं लघु उद्योगों को अवाञ्छनीय प्रतिस्पर्धा का सामना तथा आर्थिक सत्ताओं का केन्द्रीयकरण। इन दोषों से सुरक्षा प्रदान करने हेतु पीछे पगों का सुरक्षा की उचित व्यवस्था करना आवश्यक होगा।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक नीति

प्रथम योजना में सन् १९४८ की औद्योगिक नीति के सिद्धान्तों का आधार माना गया और औद्योगिक विकास के कार्यक्रम इस प्रकार निर्धारित किए गये जिससे सरकारी एवं निजी—दोनों क्षेत्रों का विस्तार एवं विकास हो सके। योजना में ४२

उद्योगों का विस्तार करने का विस्तृत कार्यक्रम बनाया गया तथा इन उद्योगों के विकास का कार्य निजी क्षेत्र को दिया गया। इन उद्योगों में यान्त्रिक इन्जीनियरिंग, विद्युत इन्जीनियरिंग, धातु उद्योग, रासायनिक पदार्थ उद्योग, तटकर ईंधन, खाद्य उद्योग आदि सम्मिलित थे। दूसरी ओर सरकारी क्षेत्र में ऐसे उद्योग सम्मिलित किए गये जिनसे पूँजीगत एवं आधारभूत वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाया जा सके। प्रथम योजना की औद्योगिक प्राथमिकताएं निम्न प्रकार थीं—

(अ) उत्पादकों के लिए आवश्यक वस्तुओं के उद्योग, जैसे पटसन एवं प्लाई वुड (Plywood) तथा उपभोक्ताओं की दृष्टि से आवश्यक उद्योग, जैसे वस्त्र, शक्कर, साबुन एवं वनस्पति उद्योगों की वर्तमान उत्पादन शक्ति का पूर्णतम उपयोग।

(आ) पूँजीगत एवं उत्पादक वस्तुओं के उद्योगों की उत्पादन-शक्ति में वृद्धि, जैसे लोहा एवं इस्पात, एल्यूमीनियम, सीमेंट, खाद, भारी रसायन, मशीनों के पुर्जे आदि।

(इ) जिन औद्योगिक इकाइयों पर बड़ी मात्रा में पूँजी विनियोजित हो चुकी है उनकी पूर्ति।

(ई) औद्योगिक विकास हेतु मूलभूत वस्तुओं के उत्पादन से सम्बन्धित उद्योगों की स्थापना, जैसे जिप्सम से गंधक का निर्माण, रेयन की लुग्दी आदि।

औद्योगिक नीति प्रस्ताव सन् १९५६—सन् १९५६ में सन् १९४८ की औद्योगिक नीति को आठ वर्ष व्यतीत हो गये थे। इस नीति के ८ वर्षों के अनुभवों तथा मध्य अवधि के परिवर्तनों के आधार पर नीति की घोषणा करना आवश्यक समझा गया। इन ८ वर्षों में भारतीय संविधान का जन्म हुआ जिसके द्वारा राज्कीय नीति निर्देशक तत्व निश्चित किए गये हैं। लोकसभा द्वारा सन् १९५४ में समाजवादी प्रकार के समाज की स्थापना करना राज्य की आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों का उद्देश्य मान लिया गया। इसके साथ प्रथम पंचवर्षीय योजना भी पूर्ण हो चुकी थी तथा इसके अनुभवों के आधार पर भविष्य नियोजन हेतु नवीन औद्योगिक नीति की आवश्यकता थी। समाजवादी प्रकार के समाज की स्थापना के लिए लोक साहस की स्थापना एवं असमानताओं में कमी करने का सुझाव दिया गया। जनसमुदाय के कल्याण के लिए शीघ्र औद्योगीकरण की आवश्यकता समझी गयी और इन्हीं समस्त कारणों से औद्योगिक नीति में आवश्यक परिवर्तन किए गये।

३० अप्रैल सन् १९५६ को औद्योगिक नीति-सम्बन्धी प्रस्ताव स्वयं प्रधानमंत्री स्व० श्री जवाहरलाल नेहरू ने संसद के सम्मुख प्रस्तुत किया था। प्रस्ताव में उत्पादन में निरन्तर वृद्धि एवं समान वितरण को अधिक महत्त्व दिया गया था तथा राज्य को औद्योगिक विकास में क्रियाशील भाग लेने की सिफारिश की गयी थी। प्रस्ताव के अनुसार राज्य को शस्त्र, परमाणु-शक्ति तथा रेल-यातायात पर एकाधिकार प्राप्त करने के साथ-साथ ६ आधारभूत उद्योगों की नवीन इकाइयों की स्थापना का एक-

मात्र अधिकार भी होना चाहिए था। शेष सभी उद्योगों में व्यक्तिगत साहस को कार्य करने का अवसर दिया जाय, परन्तु राज्य को इस क्षेत्र में भी भाग लेने की सिफारिश की गयी।

नवीन औद्योगिक नीति द्वारा समस्त उद्योगों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया जो निम्न प्रकार हैं—

(अ) केन्द्रीय सरकार का अनन्य एकाधिकार क्षेत्र—इस वर्ग में १७ उद्योग सम्मिलित किए गये जिन्हें प्रथम अनुसूची (Schedule 'A') में रखा गया। इन उद्योगों की नवीन इकाइयों की स्थापना करने का उत्तरदायित्व राज्य का ही होगा, परन्तु निजी उद्योगपतियों के स्वामित्व में इन उद्योगों की जो वर्तमान इकाइयाँ हैं उनके विस्तार एवं उन्नति के लिए राज्य द्वारा समस्त सुविधाएं प्रदान की जायेंगी और आवश्यकता पड़ने पर राज्य भी राष्ट्र के हितार्थ निजी क्षेत्र में सहयोग की याचना कर सकता है। रेलवे तथा वायु यातायात, शस्त्र एवं परमाणु शक्ति का विकास केन्द्रीय सरकार द्वारा ही किया जायगा। निजी क्षेत्र का जब सहयोग प्राप्त किया जायगा तो राज्य पूंजी का अधिक भाग देकर अथवा अन्य विधियों द्वारा ऐसी इकाइयों की नीतियों के निर्धारण एवं नियन्त्रण की शक्ति अपने अधिकार में रखेगा। इस वर्ग में निम्नांकित उद्योग सम्मिलित किए गये—

(१) *सुरक्षा सम्बन्धी उद्योग—अस्त्र, शस्त्र तथा अन्य युद्ध सामग्री के निर्माण के उद्योग तथा अणु शक्ति उत्पादन।*

(२) *वृहद् उद्योग—लोहा एवं इस्पात, लोहा एवं इस्पात की भारी ढली हुई वस्तुएं, लोहा एवं इस्पात के उत्पादन, खनिज तथा मशीनों के भारी औजार निर्माण करने के लिए भारी मशीनों के उद्योग, भारी बिजली का सामान बनाने वाले उद्योग आदि।*

(३) खनिज सम्बन्धी उद्योग—कोयला, लिगनाइट, खनिज तेल, लोहा खनिज, *जिप्सम, मैंगनीज, सल्फर, सोना, चाँदी, ताँबा, हीरा इत्यादि।*

(४) यातायात एवं संवादवाहन सम्बन्धी उद्योग—वायुयानों का निर्माण, वायु यातायात, जलयानों का निर्माण, टेलीफोन, टेलीग्राफ, वायरलेस, रेल यातायात इत्यादि।

(५) विद्युत उत्पादन एवं वितरण।

(आ) राज्य तथा व्यक्तिगत मिश्रित क्षेत्र—इस वर्ग में व्यक्तिगत पूंजीपतियों एवं सरकार दोनों को नवीन औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित करने का अवसर प्राप्त होगा, अर्थात् इस वर्ग के उद्योगों की नवीन इकाइयों की स्थापना का उत्तरदायित्व सामूहिक होगा, परन्तु इस वर्ग के उद्योगों को क्रमशः शासकीय क्षेत्र में ले लिया जायगा। इस वर्ग में कुल १२ उद्योग हैं जिन्हें अनुसूची ब (Schedule B) में रखा गया है। ये उद्योग इस प्रकार हैं—

(१) मिनरल्स कन्सेशन रूल्स सन् १६६० की धारा ३ में परिभाषित लघु खनिजों के अतिरिक्त अन्य सभी खनिज।

(२) अल्यूमीनियम तथा अलौह धातुएँ जो अनुसूची 'अ' में सम्मिलित न हों

(३) मशीन औजार

(४) लौह मिश्रण तथा औजार इस्पात

(५) रासायनिक उद्योगों में उपयोग आने वाली आधारभूत तथा मध्यवर्ती वस्तुएँ

(६) एंटीबायोटिक्स एवं अन्य आवश्यक दवाइयाँ,

(७) खाद

(८) कृत्रिम रबर

(९) कोयले का कार्बन में परिवर्तन

(१०) रासायनिक लुग्दी,

(११) सड़क-यातायात,

(१२) समुद्र यातायात।

(स) व्यक्तिगत उद्योग के क्षेत्र—शेष समस्त उद्योग इस तीसरे वर्ग में सम्मिलित किये गये। इसमें लघु उद्योगों के साथ साथ बुनाई उद्योग, कागज, सीमेंट वस्त्र, शक्कर आदि सभी उद्योग सम्मिलित हैं। इन उद्योगों का भावी विकास साधारणतः निजी क्षेत्र द्वारा ही किया जायगा परन्तु सरकार को इस क्षेत्र में भी अपनी औद्योगिक इकाइयां स्थापित करने का अधिकार होगा। सरकार इन उद्योगों के विकास एवं विस्तार के लिए यातायात पूँजी शक्ति तथा अन्य आवश्यक साधनों का आयोजन करने का प्रयास करेगी तथा उपयुक्त एवं उचित कर-नीति द्वारा इनके विकास को प्रोत्साहित किया जायगा।

औद्योगिक नीति की अन्य विशेषता

(१) समाजवादी प्रकार के समाज का निर्माण करने तथा सम्पत्ति का समान वितरण करने के लिए प्रमुख आधारभूत उद्योगों, सुरक्षा एवं जनोपयोगी उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र में रखा जायगा। अन्य अनेक उद्योगों जिनमें अधिक पूंजी की आवश्यकता हो तथा जिनमें अधिक जोखिम के कारण निजी साहस विनियोजन करने को तत्परता न हो, का विकास करने का उत्तरदायित्व सरकार का ही होगा। इस प्रकार सरकारी क्षेत्र का औद्योगिक विकास के अधिक से अधिक भाग पर आच्छादित होना पड़ेगा। सरकार क्रमशः समस्त बड़े-बड़े उद्योगों का स्वामित्व तथा प्रबन्ध अपने हाथ में लेती जायगी।

(२) सरकार देश की समस्त आर्थिक क्रियाओं में बढ़ता हुआ भाग लेगी तथा धन शक्ति एवं आय के केन्द्रीयकरण को रोकने का चेष्टा करेगी।

(३) उद्योगों के तीन वर्गों में विभाजन का अर्थ यह नहीं होगा कि इन वर्गों को स्थिर मान लिया जायगा। विशेष परिस्थितियों में इन वर्गों में हेर-फेर हो सकेगा तथा विनियोजित व्यवस्था के संचालन अनुभवों के आधार पर सरकारी तथा निजी साहस के कार्यक्षेत्र में परिवर्तन हो सकेगा। इस प्रकार औद्योगिक नीति में परिवर्तनशीलता को विशेष स्थान दिया गया जो नियोजित अर्थ-व्यवस्था के विकास हेतु आवश्यक होती है।

(४) सन् १९५६ के औद्योगिक नीति प्रस्ताव में राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में गृह तथा लघु उद्योगों के विकास को महत्वपूर्ण बताया गया है। इनसे रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है, राष्ट्रीय आय का समान वितरण हो सकता है तथा निष्क्रिय पूंजी एवं निपुणता के साधनों में गतिशीलता उत्पन्न होता है। इस प्रस्ताव द्वारा लघु उत्पादकों की प्रतिस्पर्धा सम्बन्धी क्षमता में वृद्धि करने का प्रयत्न किया जायगा। इसके साथ लघु एवं वृहद् उद्योगों में समन्वय स्थापित करने के लिए सरकार आवश्यक कार्यवाही करेगी। सगठित उद्योगों का उत्पादन सीमा निश्चित कर भेदात्मक नीति (Discriminating Policy) द्वारा तथा प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता प्रदान कर ग्राम एवं कुटीर उद्योगों को सरकार सगठित करेगी।

(५) सरकार देश के विभिन्न क्षेत्रों के असन्तुलित औद्योगिक विकास को रोकने का प्रयत्न करेगी तथा इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु औद्योगिक दृष्टिकोण से पिछड़े हुए क्षेत्रों में शक्ति, जल तथा यातायात सम्बन्धी सुविधाओं का आयोजन करेगी। जिन क्षेत्रों में बेरोजगारी अधिक मात्रा में होगी उनको अधिक औद्योगिक सुविधाएं प्रदान की जायेंगी।

(६) देश का सन्तुलित औद्योगिक विकास करने के लिए तान्त्रिकों एवं प्रबन्धकों की आवश्यकता होगी, इसीलिए सरकार आवश्यक शिक्षा एवं प्रशिक्षण सुविधाओं का प्रबन्ध करेगी।

(७) देश के औद्योगिक विकास में निजी क्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थान होगा। निजी क्षेत्र को निश्चित सीमाओं में तथा निश्चित योजनाओं के अनुसार विकास करने का अवसर प्रदान किया जायगा।

(८) सरकार इस बात का प्रयत्न करेगी कि उद्योगों का संचालन निर्धारित औद्योगिक नीति के अनुसार हो, परन्तु एक ही उद्योग में शासकीय तथा व्यक्तिगत इकाइयों के साथ किसी प्रकार का पक्षपात नहीं किया जायगा।

सन् १९४८ एवं सन् १९५६ की औद्योगिक नीतियों का तुलनात्मक अध्ययन—दोनों ही नीतियों के आधारभूत सिद्धान्त समान हैं तथा दोनों ही नीतियों द्वारा मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का प्रतिपादन किया गया है। दोनों में ही व्यक्तिगत एवं सरकारी क्षेत्र के सह-अस्तित्व के सिद्धान्त को मान्यता दी गयी है। दोनों में ही शासकीय क्षेत्र के विस्तार को आवश्यक बताया गया है। औद्योगिक प्रबन्ध के समाजीकरण, योजनात्मक

तथा प्रबन्ध सरकारी तथा इस व आर्थिक साधनों के विकास का दोनों में ही मन्द दिया गया है, परन्तु यह समझना उचित न होगा कि नवीन औद्योगिक नीति पुरानी औद्योगिक नीति की मामूली पुनरावृत्ति है। कतिपय कारण दोनों नीतियों के पृथक्कीकरण तथा भिन्न अस्तित्व का अन्तर कर स्पष्ट प्रस्तुत करते हैं। वे निम्न प्रकार हैं—

(१) सामकीय क्षेत्र का विस्तार—नवीन औद्योगिक नीति में सामकीय क्षेत्र के निरन्तर विस्तार का आयोजन किया गया है जबकि सन् १९४८ में निश्चित उद्योगों का ही शासकीय एकाधिकार में रखा गया था। इससे यह स्पष्ट है कि शासन नये उद्योगों का विकास अपने हाथ में ले सकता है।

(२) समाजवादी व्यवस्था की स्थापना—नवीन औद्योगिक नीति में समाजवादी प्रकार के समाज के निर्माण का लक्ष्य रखा गया है। धन, आय एवं शक्ति के विकेन्द्रीयकरण को विशेष महत्त्व दिया गया है। असमानताओं को कम करने के लिए शासकीय क्षेत्र व्यापारिक क्षेत्र में भी अधिकाधिक भाग लेगा। सन् १९४८ की नीति में अधिक उत्पादन को विशेष महत्त्व दिया गया क्योंकि तत्कालीन न्यूनताओं का निवारण करना अत्यन्त आवश्यक था।

(३) उद्योगों का क्षेत्रीय विकास—नवीन औद्योगिक नीति में देश के सन्तुलित विकास को अधिक महत्त्व दिया गया है। इसी उद्देश्य से औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए क्षेत्रों के विकास के लिए ठोस कदम उठाने का आयोजन किया गया है। सन् १९४८ की औद्योगिक नीति में इस ओर विशेष ध्यान आकर्षित नहीं किया गया है।

(४) उद्योगों के वर्गीकरण में शिथिलता—नवीन नीति में उद्योगों के वर्गीकरण में शिथिलता रखी गयी है। परिणामस्वरूप, योजना की आवश्यकतानुसार कोई भी उद्योग किसी भी क्षेत्र में स्थापित किया जा सकता है चाहे वह किसी भी वर्ग का हो।

(५) औद्योगिक श्रमिकों की कार्य करने की दशाओं में आवश्यक सुधार करने तथा उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि करने, औद्योगिक शान्ति स्थापित करने, सामूहिक विचार-विमर्श करने, श्रमिकों एवं तान्त्रिकों को जहाँ भी सम्भव हो, प्रबन्ध में भाग लेने के अवसर प्रदान करने आदि का उत्तरदायित्व सरकारी क्षेत्र का नवीन नीति में निश्चित किया गया।

नवीन औद्योगिक नीति की आलोचना विभिन्न पक्षों ने की है। प्रतिक्रियावादी तथा दक्षिणपन्थीय नेताओं ने इसे अदूरदर्शितापूर्ण तथा अतिशय क्रान्तिकारी बताया है। दूसरी ओर समाजवादी एवं वामपन्थीय नेताओं ने इसे समाजवादी व्यवस्था हेतु पूर्णरूपेण अनुपयुक्त बताया है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से औद्योगिक नीति की आलोचना करते हुए लोगों ने बताया है कि इसमें शासकीय क्षेत्र को अत्यधिक महत्त्व एवं अधिकार दिया गया है। फलस्वरूप व्यक्तिगत क्षेत्र में अनिश्चितता की भावना जाग्रत

हो सकती है। साथ ही, शासन के कन्धों पर अधिक भार पड़ सकता है। दूसरी बार, औद्योगिक नीति में राष्ट्रीयकरण जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न पर स्पष्टरूपेण कुछ नहीं कहा गया है। फलतः व्यक्तिगत उद्योगपति नये उद्योगों में पूँजी विनियोजित करने के लिए प्रोत्साहित न होंगे। आवश्यकतानुसार सरकार नीति के निर्धारित सिद्धान्तों में परिवर्तन कर सकती है। यह सम्भावना भी व्यक्तिगत साहसियों में अनिश्चितता की भावना जाग्रत कर सकता है।

उपरोक्त अस्पष्टताओं के होते हुए भी नवीन औद्योगिक नीति द्वारा कई भ्रमपूर्ण बातों का निवारण हो गया है। समाजवादी प्रकार के समाज की स्थापना हेतु सरकार को विस्तृत साधन एवं अधिकार प्राप्त हो गये हैं। इस नीति द्वारा देश के शीघ्र औद्योगीकरण में सहायता मिला है।

द्वितीय योजना में औद्योगिक नीति—प्रथम पंचवर्षीय योजना को वास्तव में प्रारम्भिक तैयारी का कार्यक्रम कहना चाहिए जो औद्योगीकरण के लिए आवश्यक होता है। वृहद् उद्योगों की स्थापना के पूर्व की विपणि, कच्चे माल व ईंधन विनियोग का चयन, उत्पादनलागत, तान्त्रिक एवं प्रबन्ध की व्यवस्थासम्बन्धी अनेक समस्याओं का अध्ययन करना आवश्यक होता है। बहुत सी औद्योगिक योजनाओं के लिए विदेशी तान्त्रिक सहायता प्राप्त करना भी आवश्यक होता है। इसके साथ ही औद्योगिक विकास का जो अर्थ चाहिए उसका किस प्रकार प्रबन्ध किया जाय इस पर भी विचार करना आवश्यक होता है। द्वितीय योजना के औद्योगिक कार्यक्रम निश्चित करने के पूर्व उपर्युक्त समस्त समस्याओं का पूर्णरूपेण अध्ययन कर लिया गया था। योजना के कार्यक्रम औद्योगिक नीति प्रस्ताव द्वारा निर्धारित रीतियों के आधार पर ही बनाये गये तथा उन नीतियों की सीमाओं में भी ही औद्योगिक प्राथमिकताएं निम्न प्रकार निश्चित की गयी—

(१) लोहा तथा इस्पात, भारी रसायन एवं नाइट्रोजन खार के उत्पादन में वृद्धि तथा भारी इन्जीनियरिंग एवं मशीन निर्माण उद्योगों का विकास।

(२) अन्य विकास सम्बन्धी एवं उत्पादक वस्तुओं जैसे अल्यूमिनियम, सीमेंट, रासायनिक लुग्दी, रंग, फास्फेट की खाद, आवश्यक औषधियों की उत्पादनक्षमता में वृद्धि।

(३) वर्तमान राष्ट्रीय महत्व के उद्योगों का नवीनीकरण तथा पुनः मशीनें आदि लगाना जैसे जूट, सूती वस्त्र एवं शक्कर उद्योग।

(४) जिन उद्योगों की उत्पादनक्षमता एवं वास्तविक उत्पादन में बहुत अन्तर है उनकी उत्पादनक्षमता का पूर्णतम उपयोग।

(५) उद्योगों के विकेन्द्रित क्षेत्र के उत्पादन लक्ष्यों एवं सामूहिक उत्पादन कार्यक्रमों की आवश्यकतानुसार उपभोक्ता वस्तुओं की उत्पादनक्षमता में वृद्धि।

द्वितीय योजना मे लघु एव ग्रामीण उद्योग सम्बन्धी नीति

कर्वे-समिति की सिफारिशें—द्वितीय पचवर्षीय योजना के लिए जो ग्रामीण एव लघु उद्योगो के विकास से सम्बद्ध राज्य सरकारों एव विभिन्न परिषदों द्वारा योजनाए निर्मित की गयी थी उन पर ग्रामीण लघु उद्योग समिति (Village Small Scale Industries Committee) ने विचार किया तथा अनुमोदन किया कि २६० करोड रु० का आयोजन इन उद्योगों के विकास हेतु किया जाय। इस राशि में ६५ करोड रु० की कार्यशील पूँजी की आवश्यकताओं को भी सम्मिलित किया गया था। द्वितीय योजना म लघु एव गृह उद्योग-सम्बन्धी कार्यक्रम प्रथम योजना की तुलना म अत्यधिक विस्तृत है। योजना आयोग ने जून सन् १९५५ में इन उद्योगों के कार्यक्रमों तथा समस्याओं का अध्ययन करने के लिए ग्रामीण एव लघु उद्योग (द्वितीय पचवर्षीय योजना) समिति की जो कर्वे-समिति के नाम से प्रसिद्ध है, नियुक्ति की। इस समिति ने अपनी सिफारिशें करते समय निम्न उद्देश्यों को आधार माना—

(१) जहा तक सम्भव हो द्वितीय योजनाकाल म परम्परागत ग्रामीण उद्योगों म तान्त्रिक बेरोजगारी का और अधिक विस्तार न हो

(२) विभिन्न ग्रामीण एव लघु उद्योगो द्वारा द्वितीय योजनाकाल में अधिकतम रोजगार के अवसर प्रदान किये जायें,

(३) विकेन्द्रित समाज की स्थापना तथा आर्थिक विकास की तीव्र गति के लिए आधारभूत प्रकार के आयोजन किये जायें।

वास्तव म तान्त्रिक बेरोजगारी की समस्या जो आधुनिक उत्पादन की विधियों के उपयोग के कारण उत्पन्न होती है के विस्तार को रोकने के लिए लघु एव ग्रामीण उद्योगों में रोजगार के अवसरों को बनाना विकेन्द्रित समाज की स्थापना करना तथा उत्पादन की गति में वृद्धि करना अत्यन्त आवश्यक होगी। समिति ने रोजगार की समस्या को सर्वाधिक महत्व दिया है और इसलिए उत्पादन की वृद्धि के उद्देश्य की पूर्ति हेतु कोई ऐसी कार्यवाही करने का सुझाव नहीं है जिससे रोजगार की स्थिति पर बुरा प्रभाव पडे। यद्यपि उत्पादन की गति में वृद्धि के लिए उत्पादन की तान्त्रिक विधियों मे सुधार करना आवश्यक होगा परन्तु समिति ने इन सुधारों की सीमा उस अवस्था पर निश्चित की है जहा रोजगार के अवसरों म कमी न होती हो। समिति की इस सिफारिश का यह अर्थ कदापि नहीं है कि आर्थिक दृष्टि से अनुपयुक्त तान्त्रिक विधियों द्वारा रोजगार के अवसर बढाने का आयोजन किया जाय। समिति की सिफारिशों में यह स्पष्टरूपेण वर्णित है कि नयी पूँजी का विनियोजन यथासम्भव आधुनिक उत्पादन सामग्री में किया जाय अथवा ऐसी सामग्री में किया जाय जिसमें सुधार किए जा सकते हों। समिति के विचार में एस बेरोजगारों एव अर्द्ध-रोजगार-प्राप्त व्यक्तियों को जो ग्रामीण एव लघु उद्योग क्षेत्र से सम्बद्ध है उन्हीं व्यवसायों मे लाभप्रद रोजगार दिये जाने का प्रबन्ध करना चाहिए जिनमें उन्हें

परम्परागत प्रशिक्षण अनुभव एव सामग्री प्राप्त है। इस प्रकार की व्यवस्था से उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए नयी पूंजी एव प्रशिक्षित श्रम की समस्या का निवारण हो सकता है। इस प्रकार भारी एव आधारभूत उद्योगों के विकास के लिए उपभोक्ता वस्तुओं की पूर्ति परम्परागत उद्योगों की विद्यमान पूँजी एव श्रम के साधनों से की जा सकती है। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति हेतु द्वितीय योजना में ग्रामीण एव लघु उद्योगों के विकास को विशेष स्थान दिया गया था।

समिति की अन्य सिफारिशों का समावेश इस प्रकार है—

(१) आर्थिक जावन का सामूहिक सगठन जो विकेन्द्रीयकरण अथवा सहकारिता पर आधारित हो।

(२) उत्पादकों द्वारा कच्चे माल, औजार तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की योजनाबद्ध पूर्ति के लिए क्रय तथा विक्रय सहकारी समितियों की स्थापना करना। सहकारी समितियों द्वारा वस्तुओं को सगठित विपणि की सुविधा का भी आयोजन किया जाय। प्रारम्भिक अवस्था में सहकारिता को राजकीय प्रतिभूति (Guarantee) प्राप्त होना चाहिए।

(३) सहकारी विकास एव गोदाम-व्यवस्था निगम (Co operative Development Warehousing Corporation) की स्थापना के पश्चात इस सस्था के कार्यक्षेत्र में ग्रामीण एव लघु उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के विपणि को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

(४) दीर्घकालीन साख की सुविधा प्रदान करने के लिए राज्य के वित्तीय निगमों में एक लघु उद्योग विकास की स्थापना की जानी चाहिए।

(५) रिजर्व बैंक को ग्रामीण एव सहकारी उद्योगों को वित्त प्रदान करने के कार्यक्रमों के लिए पूर्णरूपेण उत्तरदायी कर दिया जाय जिस प्रकार कृषि-साख हेतु रिजर्व बैंक उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त स्टेट बैंक आफ इण्डिया को लघु एव ग्रामीण उद्योगों को वित्तीय सुविधाएं प्रदान करनी चाहिए।

(६) केन्द्र में एक पृथक विभाग जो कैबिनेट श्रेणी के मन्त्री के अधीन हो की स्थापना ग्रामीण एव लघु उद्योगों के लिए की जानी चाहिए। इसके साथ, कैबिनेट की एक समिति की स्थापना ग्रामीण एव लघु उद्योगों के लिए की जानी चाहिए।

(७) उपर्युक्त सिफारिशों के अतिरिक्त समिति ने कुछ प्रतिबन्ध सम्बन्धी सिफारिशें की। लघु एवं ग्रामीण उद्योगों के प्रारम्भिक विकासकाल में उपभोक्ता वृहद् उद्योगों के उत्पादन की अधिकतम सीमा निश्चित की जानी चाहिए। इस कार्यवाही से लघु एव ग्रामीण उद्योगों में उत्पादित उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में वृद्धि हो सकेगी। समिति ने कपडा बुनने तथा हाथ से चावल कूटने के उद्योगों का सरक्षण देने के लिए चावल के कारखानों के उत्पादन पर प्रतिबन्ध लगाने की सिफारिश की जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में ये उद्योग उन्नत हो सकें। इस प्रकार समिति के विचार में मिलो

द्वारा कपड़ा बुनने की सीमा ५० ००० लाख गज तथा शक्ति से चलने वाले करघों का उत्पादन दो हजार लाख गज सीमित किया जाना चाहिए। शेष कपड़े की समस्त माँग की पूर्ति हाथ करघा उद्योग द्वारा की जानी चाहिए। वनस्पति तेल एवं चमड़ा उद्योग की उत्पादनक्षमता में विस्तार पर भी प्रतिबंध लगाने की सिफारिश की गयी है। नये तेल मिलों की स्थापना पर रोक लगाना आवश्यक बताया गया है। केवल उन क्षेत्रों में तेल की मिलें स्थापित की जायें जहाँ तेल घरने के अन्य साधन उपलब्ध न हों। उपर्युक्त वर्गों बृहद् उद्योगों पर भेदमूलक (Differential) उत्पादन-कर (Excise Duty) लगाने का भी सुझाव दिया गया है। इस वर्ग में एक और उपलब्ध से अतिरिक्त कर प्राप्त करके लघु उद्योगों का पुनर्वास (Rehabilitation) किया जा सकेगा तथा दूसरी ओर ग्रामीण उद्योगों से उत्पादित वस्तुओं के मूल्य बृहद् उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की तुलना में प्रतिस्पर्धीय हो सकें।

द्वितीय योजना में उपर्युक्त समस्त सिफारिशों को कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया जाना था। योजना में ग्रामीण एवं लघु उद्योगों के विकास का अधिक महत्व दिया जाने के निम्नलिखित मुख्य कारण थे—

(१) अर्थ व्यवस्था में तान्त्रिक परिवर्तन (Technological Changes) होने के कारण बेरोजगारी बड़ी मात्रा में विद्यमान थी एवं इसका और अधिक विस्तार रोकना अत्यन्त आवश्यक था।

(२) बेरोजगारी जो विभिन्न कारणों से वृद्धि की ओर अग्रसर थी को दूर करने के लिए रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने की आवश्यकता थी।

(३) ग्रामीण एवं लघु उद्योगों में पूँजीगत उत्पादन सामग्री (Capital Equipment) का अभाव था। इन उद्योगों की उन्नति शीघ्र समय पूर्व ही उत्पादन से प्रतिस्पर्धा होने के कारण हुई। इन उद्योगों के उत्पादन में वृद्धि करने तथा रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए पूँजीगत सामग्री पर अधिक विनियोजन की आवश्यकता नहीं होती थी। इस प्रकार राष्ट्र के अधिकतम अर्थ-साधनों का विनियोजन पूँजीगत भारी एवं लघु आधारभूत उद्योगों में किया जा सकता था।

(४) ग्रामीण एवं लघु उद्योगों के क्षेत्र में रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए राज्य पर वित्तीय भार कम पड़ता।

(५) आर्थिक उत्पादन में विकेन्द्रीयकरण की स्थापना करना सामाजिक एवं आर्थिक दोनों ही दृष्टिकोणों से आवश्यक था और इसके लिए ग्रामीण एवं लघु उद्योगों का विकास होना आवश्यक था।

(६) बृहद् उद्योगों की स्थापना से ग्रामीण एवं नगरों के जीवन-स्तर का अन्तर और भी गम्भीर होने की सम्भावना रहती है। इस अन्तर को रोकने के लिए ग्रामीण उद्योगों का विकास होना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय योजना में ग्रामीण एवं लघु उद्योगों के विकास द्वारा राज-

गार के अवसरों की वृद्धि, बेरोजगारी के विस्तार को रोकना उपभोक्ता वस्तुओं की पूर्ति को बढ़ाना पूँजीगत एवं आधारभूत उद्योगों के लिए अधिक अर्थ साधन उपलब्ध कराना विकेन्द्रित समाज की स्थापना करना आदि उद्देश्यों की पूर्ति का लक्ष्य रखा गया था। सन् १९५६ के औद्योगिक नीति प्रस्ताव में भी ग्रामीण एवं लघु उद्योगों को सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता बतलाया गया थी। इसके साथ इन उद्योगों एवं वृहद् उद्योगों के क्षेत्रों में सामंजस्य स्थापित करने को भी महत्व दिया गया। ग्रामीण क्षेत्र में बिजली के विस्तार तथा शक्ति के सस्ते मूल्य पर प्राप्त होने से ग्रामीण उद्योगों को सुदृढ़ बनाने में सहायता प्राप्त हो सकती थी और जब तक ये उद्योग पर्याप्त सुदृढ़ता प्राप्त नहीं कर लेते इन्हें संरक्षण देने के लिए वृहद् उद्योगों के क्षेत्र के उत्पादन को सीमित करना भेदपूर्ण कर व्यवस्था तथा लघु उद्योगों को प्रत्यक्षरूपेण सहायता देना आवश्यक था।

उपर्युक्त विवरण के अध्ययन से बहुत से परस्पर विरोधी प्रश्न सम्मुख आते हैं। उनका विश्लेषण निम्न प्रकार किया जा सकता है—

(१) तान्त्रिक परिवर्तनों के कारण होने वाली बेरोजगारी को रोकने के लिए क्या लघु एवं ग्रामीण उद्योगों में परम्परागत एवं अकुशल उत्पादन विधियों का ही उपयोग किया जाता रहेगा? एक ओर ग्रामीण एवं लघु उद्योगों के उत्पादन में वृद्धि करने की आवश्यकता है और दूसरी ओर बेरोजगारी के भय से तान्त्रिक सुधार भी नहीं किए जा सकते हैं। तान्त्रिक सुधारों की अनुपस्थिति में उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन की लागत भी अधिक रहती है तथा पर्याप्त मात्रा एवं गुण (Quality) का उत्पादन भी नहीं हो सकता था। जब राष्ट्र में पूँजीगत एवं आधारभूत उद्योगों का विकास आधुनिक तान्त्रिक विधियों द्वारा किया जाना था तो फिर लघु एवं ग्रामीण क्षेत्र में परम्परागत उत्पादन विधियाँ किस प्रकार उपयुक्त हो सकती थीं और यदि प्रारम्भिक काल में इस व्यवस्था को शासकीय सहयोग द्वारा चलाया भी जाता तो दीर्घ काल तक ग्रामीण एवं लघु उद्योगों को इस अवस्था में लाने के लिए कि वे वृहद् उद्योगों से स्वतः ही सामंजस्य स्थापित कर सकें उनमें तान्त्रिक परिवर्तन करना अनिवार्य था।

(२) द्वितीय महत्वपूर्ण प्रश्न जो हमारे सम्मुख आता है वह यह है कि क्या तान्त्रिक परिवर्तनों द्वारा ही बेरोजगारी उत्पन्न होती है अथवा तान्त्रिक परिवर्तन बेरोजगारी पर किस सीमा तक प्रभाव डालते हैं? तान्त्रिक परिवर्तनों द्वारा एक ओर श्रम को हटा कर मशीन का उपयोग किया जाता है तथा दूसरी ओर उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि भी होती है। उत्पादन में वृद्धि होने से लघु साहसियों की आय में वृद्धि होना भी स्वाभाविक है। आय की वृद्धि के साथ बचत तथा विनियोजन में भी वृद्धि हो सकती है तथा पूँजी निर्माण में वृद्धि के साथ साथ रोजगार के अवसरों में वृद्धि सम्भव होती है परन्तु प्रारम्भिक काल में तान्त्रिक सुधार करने के लिए पूँजी की

जनशक्ति का प्रयोग करना आवश्यक होता है तथा जब यह विधि प्रारम्भ हो जाय तो गृह एवं लघु उद्योगों के क्षेत्र का स्वाभाविक विकास सम्भव हो सकता है। दूसरी ओर, तांत्रिक परिवर्तनों को प्रोत्साहन न दिये जाने पर बेरोजगारी के विस्तार की गम्भीरता को केवल अल्प समय के लिए ही टाला जा सकता है। भारत जैसे राष्ट्र में जहाँ जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होती है, केवल विद्यमान श्रम को ही रोजगार देने की समस्या नहीं है, प्रत्युत श्रम में जो वृद्धि होती है उसके लिए भी रोजगार के अवसर प्रदान करना आवश्यक होता है। नवीन रोजगार के अवसर अधिक विनियोजन द्वारा ही सम्भव हो सकते हैं। इस प्रकार तांत्रिक सुधार बेरोजगारी की समस्या के निवारण में बाधक के स्थान पर सहायक हो सकते हैं।

(२) द्वितीय योजना में लघु एवं ग्रामीण उद्योगों के विकास का मुख्य उद्देश्य योजना के विनियोग-कार्यक्रमों एवं पूँजीगत तथा आधारभूत उद्योगों में विनियोजन एवं सामाजिक कार्यक्रमों पर अधिक व्यय के कारण जनसमुदाय को जो अधिक क्रयशक्ति प्राप्त होनी थी उसके लिए उपभोक्ता-वस्तुओं की पूर्ति करना आवश्यक था। इससे स्पष्ट नहीं होता है कि इन उद्योगों को व्यवस्था में उपभोक्ता-वस्तुओं की पूर्ति हेतु स्थायी स्थान दिया जायगा अथवा भविष्य में उपभोक्ता-वस्तुओं का उत्पादन भी वृहद् उद्योगों द्वारा किया जायगा। यद्यपि विकेन्द्रित समाज की स्थापना हेतु इन उद्योगों को स्थायी स्थान प्राप्त हो सकता था परन्तु विकेन्द्रित समाज का स्थान सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार द्वारा भी लिया जा सकता था। पूँजीगत उद्योगों के विकास से उपभोक्ता उद्योगों का विकास होना स्वाभाविक ही होता है तथा इस प्रकार निकट भविष्य ही में ग्रामीण एवं लघु उद्योगों का अस्तित्व भी समाप्त होना सम्भव था क्योंकि सार्वजनिक संस्थान द्वारा कोई भी क्षेत्र दीर्घ काल तक उन्नति नहीं कर सकता।

तृतीय योजना में औद्योगिक नीति

बृहद् उद्योग—तृतीय पंचवर्षीय योजना में उद्योगों का विस्तार करने हेतु सन् १९५६ के औद्योगिक प्रस्ताव को ही अपनाया गया और निजी एवं सरकारी क्षेत्र को एक-दूसरे के सहायक एवं पूरक के रूप में कार्य करने का आयोजन किया गया, इसीलिए नाइट्रोजन खाद तथा पिग-लौह के कारखाने निजी क्षेत्र में स्थापित करने की आज्ञा प्रदान करने का आयोजन किया गया। योजना में औद्योगिक कार्यक्रमों की प्राथमिकताएँ निर्धारित करते समय उत्पादन-क्षमता एवं वास्तविक उत्पादन के अन्तर को दूर करने, वर्तमान कारखानों के विस्तार व नवीन संस्थानों की स्थापना पर प्राथमिकता देने तथा ऐसे व्यवसायों को बढ़ावा देना जिनसे निर्यात में वृद्धि अथवा आयात में कमी सम्भव हो सके आदि बातों को दृष्टिगत किया गया। औद्योगिक प्राथमिकताएँ उपर्युक्त बातों के आधार पर तृतीय योजना में निम्न प्रकार निर्धारित की गयीं—

(१) उन परियोजनाओं की पूर्ति जो द्वितीय योजना में सम्मिलित की गयीं

अथवा जो सन् १९५७-५८ में विदेशी मुद्रा की कठिनाई के कारण स्थगित कर दी गयी थी।

(२) भारी इन्जीनियरिंग, मशीन निर्माण, ढलन आदि के उद्योग, औजारों की धातु तथा विशेष इस्पात, लोहा एवं इस्पात तथा अलौह धातुओं के विस्तार एवं उनकी क्षमता में परिवर्तन तथा खाद एवं खनिज तेल की वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि।

(३) अल्यूमिनियम, खनिज तेल, घुलने वाली लुग्दी (Dissolving Pulp), रसायन आदि जैसे आधारभूत कच्चे माल तथा उत्पादक वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि।

(४) दवाइयाँ, कागज, कपड़ा, शक्कर, वनस्पति तेल तथा घरों का सामान आदि जैसी वस्तुओं के उत्पादन को घरेलू उद्योगों द्वारा बढ़ाना जिससे इनकी पूर्ति की जा सके।

ग्रामीण एवं लघु उद्योग विकास सम्बन्धी नीति—तृतीय योजना में प्रथम एवं द्वितीय योजना के समान ही ग्रामीण एवं लघु उद्योगों के विकास द्वारा रोजगार के विस्तार, अधिक उत्पादन तथा अधिक समान वितरण के उद्देश्यों की पूर्ति करना था। परन्तु इन उद्देश्यों की पूर्ति तृतीय योजना में बड़े पैमाने पर करने की आवश्यकता थी। तृतीय योजना के कार्यक्रम निम्नलिखित उद्देश्यों को दृष्टिगत करके निर्धारित किए गये हैं—

(१) कुशलता में सुधार, तान्त्रिक सलाह की उपलब्धि, अच्छे औजार एवं सामग्री, साख आदि प्रत्यक्ष सुविधाओं को अधिक महत्व देकर श्रमिक की उत्पादकता में सुधार एवं उत्पादन लागत को कम किया जाना।

(२) धीरे धीरे अनुदानों (Subsidies), विक्रय व्यवहार (Sales Rebate) तथा सुरक्षित बाजारों को कम करना।

(३) ग्रामीण क्षेत्रों एवं नगरों में उद्योगों का विस्तार एवं विकास।

(४) वृहद् उद्योगों के सहायक उद्योगों के रूप में लघु उद्योगों का विकास।

(५) दस्तकारों का सहकारी संस्थाओं में संगठित करना।

तृतीय योजना में ग्रामीण एवं लघु उद्योगों के लिए तान्त्रिक एवं प्रबन्ध सम्बन्धी व्यक्तियों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में समुदाय प्रकार (Cluster Type) की संस्थाओं की स्थापना की जानी थी, जिनके द्वारा कुछ ग्रामों के समूहों को विभिन्न दस्तकारियों में प्रशिक्षण प्रदान किया जा सके।

खादी, ग्रामीण उद्योगों एवं हस्तकला के क्षेत्र में प्रशिक्षण के कार्यक्रम उनके विकास के कार्यक्रम में सम्मिलित किये गये। तृतीय योजना में समस्त ग्रामीण लघु उद्योगों में अच्छे औजारों के उपयोग को महत्व दिया गया। लघु उद्योगों के क्षेत्र में प्रशिक्षण का प्रबन्ध करने के लिए लघु उद्योग सेवा संस्थाओं (Small Scale Service Institutes) द्वारा औद्योगिक विस्तार-सेवा के केन्द्रों को खण्ड-स्तर पर

स्थापित किया जाना था। तृतीय योजना में साख सुविधाओं के विस्तार का आयोजन किया गया है, परन्तु सामान्य साख की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिकोषण-संस्थाओं को कार्यवाही करनी थी। योजना में तान्त्रिक सुधार, उत्पादन लागत का एकीकरण (Pooling of Production Costs) तथा यातायात एवं अन्य वितरण के व्यय को कम करके ग्रामीण एवं लघु उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के मूल्य कम किये जाने का आयोजन था, जिससे वे अपने पैरों पर सुदृढ़ता से खड़े हो सकें। मूल्यों के कम होने पर अनुदान तथा अवहार को समाप्त कर दिया जाना था।

यद्यपि औद्योगिक क्षेत्र में द्वितीय योजना में पर्याप्त वृद्धि हुई परन्तु प्रमुख उद्योगों जैसे इस्पात, अल्यूमिनियम, रासायनिक खाद, सीमेंट आदि के उत्पादन में लक्ष्यों के अनुरूप वृद्धि नहीं हुई। इस भाँति तृतीय योजना में भी औद्योगिक उत्पादन में जो वृद्धि की प्रवृत्ति है, उसके अनुसार लक्ष्यों की पूर्ति होना सम्भव प्रतीत नहीं होता। औद्योगिक क्षेत्र में द्वितीय एवं तृतीय योजनाओं में जो विनियोजन किये गये हैं, वह अधिकतर कुछ गिने-चुने केन्द्रों पर ही हुए हैं। विनियोजन का विस्तार देश में व्यापक नहीं रहा है जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक विषमताओं एवं क्षेत्रीय विषमताओं में कमी नहीं हुई है। अभी तक जो कार्यक्रम औद्योगिक क्षेत्र में सचालित किये गये हैं, उनसे वास्तविक उत्पादन प्राप्त करने का समय अधिक होने के कारण अर्थ-व्यवस्था को वर्तमान में वित्तीय भार उठाना पड़ रहा है। विभिन्न क्षेत्रों से आर्थिक विकास के लिए विभिन्न कार्यक्रम सचालित करने हेतु केन्द्रीय सरकार पर राजनीतिक दबाव डाला गया जिसके फलस्वरूप सीमित साधनों को अधिक विकास-कार्यक्रमों के लिए आयोजित किया गया। इस प्रकार विभिन्न कार्यक्रमों के लिए पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं हुए।

चतुर्थ योजना में औद्योगिक नीति

चतुर्थ योजना में औद्योगिक विकास के सम्बन्ध में सन् १९५६ की औद्योगिक नीति को ही आधार माना गया और औद्योगिक विकास के कार्यक्रम अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के विकास के स्तर, तान्त्रिक क्षमता की उपलब्धि तथा भौतिक एवं वित्तीय साधनों के सन्दर्भ में निर्धारित किए गये हैं। औद्योगिक कार्यक्रमों में निम्नलिखित सिद्धान्तों को आधार माना गया है—

(१) द्रुत गति से अर्थ-व्यवस्था को आत्म निर्भर (Self Reliant) बनाने के लिए अर्थ-व्यवस्था में पूँजीगत प्रासाधनों के उद्योगों का विस्तार होना आवश्यक है। विनियोजन की वृद्धि-दर समस्त आय की वृद्धि दर से अधिक होने के कारण अर्थ-व्यवस्था में पूँजीगत प्रासाधनों तथा कृषि में उपयोग आने वाली निर्मित वस्तुओं की माँग में तेजी से वृद्धि होने का अनुमान है। पूँजीगत प्रासाधनों में धातु, खनिज तेल उत्पाद तथा रासायनिक पदार्थों की माँग में अधिक तेजी से वृद्धि होगी। इन्हीं वस्तुओं के लिए वर्तमान में देश को आयात पर निर्भर रहना पड़ता है। आत्म निर्भरता के लक्ष्य

की ओर बढ़ने पर यह आवश्यक है कि इन उद्योगों का तेजी से विकास कर आन्तरिक उत्पादन में वृद्धि की जाय। इन उद्योगों के विकास में पूँजी की बड़ी मात्रा में आवश्यकता होती है जिसकी देश में कमी है। औद्योगिक कार्यक्रम के निर्धारित व्यय में से बड़ा भाग इन उद्योगों के विकास के लिए उपयोग करना अनिवार्य है परन्तु इन उद्योगों से सम्बन्धित विकास-कार्यक्रमों की सूक्ष्म छानबीन करने की आवश्यकता होगी जिससे इनकी पूँजी प्रधानता में बिना लागत, उत्पादन एवं कुशलता को क्षति पहुँचाए कमी की जा सके।

(२) गैर कृषि रोजगार में वृद्धि करना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इन क्षेत्रों में बेरोजगारी तेजी से बढ़ रही है। इसी कारण चतुर्थ योजना में उद्योगों के छितराव (Dispersal) को अधिक महत्व दिया गया है। वर्तमान बड़े नगरों में और उद्योगों की स्थापना के लिए जिन उपरिव्यय सुविधाओं की आवश्यकता होगी, उनकी लागत नए क्षेत्रों में इन उपरिव्यय सुविधाओं की लागत से कहीं अधिक आता है। ऐसी परिस्थिति में उद्योगों का छितराव छोटे नगरों एवं ग्रामीण क्षेत्र में करने से औद्योगिक विकास की कुल लागत को कम रखा जा सकता है।

(३) मध्यकालीन अवस्था (Transitional State) में परम्परागत उद्योगों में पूँजी प्रधान तांत्रिकताओं के अनियन्त्रित विस्तार की उत्पन्न होने वाली तांत्रिक बेरोजगारी को रोका जायगा परन्तु यह व्यवस्था केवल अस्थायी होगी क्योंकि अन्ततः परम्परागत उद्योगों की स्थिति में सुधार करने के लिए सुधरी हुई तांत्रिकताओं के उपयोग द्वारा इनकी उत्पादकता बढ़ाना आवश्यक है। परम्परागत उद्योगों को सुदृढ़ आधार प्रदान करने हेतु तांत्रिक सुधार अनिवार्य हैं और इनकी प्रगति एवं विस्तार को तांत्रिक बेरोजगारी के भय के कारण रोक देना बेरोजगारी की समस्या एक समय के लिए स्थगित करना होगा जबकि इसका निवारण असम्भव हो जायगा। इस प्रकार परम्परागत उद्योगों को प्रदान की जाने वाली सहायता अनुदान (Subsidy) आदि केवल निश्चित काल के लिए ही स्वीकृत की जानी चाहिए। जैसे ही यह उद्योग सुदृढ़ होने लगें अनुदानों आदि को बन्द कर दिया जायगा।

चतुर्थ योजना में समस्त उद्योगों के लिए लक्ष्य निर्धारित नहीं किए गये हैं। केवल प्राथमिकता प्राप्त उद्योगों के निश्चित लक्ष्य निर्धारित किए गये हैं। नये उद्योगों के सम्बन्ध में आवश्यकताओं के अनुमान तथा सम्भावित उत्पादन औद्योगिक परियोजनाओं आदि से विचार विमर्श कर निर्धारित किए गये हैं। विनियोजनों को इच्छित औद्योगिक क्षेत्रों में प्रवाहित करने के लिए राजकोषीय एवं स्वस्थनीय नीतियों का उपयोग किया जायगा। मूल्य एवं वितरण नियन्त्रण को अनुकूल परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर समाप्त कर दिया जायगा। औद्योगिक एकाधिकार एवं केन्द्रीयकरण से बचने के लिए नए औद्योगिक लाइसेन्स जारी करते समय आवेदक औद्योगिक-गृहों की पिछले लाइसेंसों के सम्बन्ध में प्राप्त की गयी उपलब्धियों की जाँच की जायगी। प्रायः उपभोक्ता

वस्तुओं के उत्पादन के सम्बन्ध में तथा औद्योगिक इकाइयों की स्थापना की स्वीकृति बड़े औद्योगिक गृहों को नहीं दी जायगी। वित्तीय संस्थाओं द्वारा भी उनको ऋण-सुविधाओं का अनुचित अनुपात बड़े औद्योगिक गृहों को प्रदान करने पर भी प्रतिबन्ध लगाने का प्रयत्न किया जायगा।

चतुर्थ योजना में उद्योगों का विकास पिछड़े हुए क्षेत्र में करने का भी प्रस्ताव है। वर्तमान में उद्योगों की स्थापना से सम्बन्धित आर्थिक घटक विकसित क्षेत्रों में ही पाये जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप पिछड़े हुए क्षेत्रों के हित में उद्योगों का विकास सम्भव नहीं होता है। पिछड़े हुए क्षेत्रों में उद्योगों को आकर्षित करने के लिए राजकोषीय वित्तीय एवं अन्य सुविधाएँ प्रदान की जायेंगी। चतुर्थ योजना में इस सम्बन्ध में कदम प्रारम्भिक कार्य होने की सम्भावना है।

विदेशी सहयोग (Foreign Collaboration) केवल उन्हीं उद्योगों में स्वीकृत किया जायगा जिनमें आन्तरिक उत्पादनक्षमता कम हो और उसके बढ़ने की सम्भावना न हो। उपभोक्ता उद्योगों में विदेशी सहयोग प्रायः स्वीकृत नहीं किया जायगा जब तक कि इस सहयोग के फलस्वरूप निर्यात में वृद्धि नहीं हो सकती हो। उन क्षेत्रों को निर्धारित करने के लिए जिनमें विदेशी सहयोग आवश्यक हो तथा विदेशी सहयोग स्वीकार करने की विधि निर्धारित करने के लिए एक विदेशी विनियोजन बोर्ड (Foreign Investment Board) की स्थापना करने का प्रस्ताव है।

भारतीय नियोजित अर्थ व्यवस्था मे खाद्य नीति

[Food Policy in the Planned Economy of India]

[रचनात्मक कार्यक्रम क्रियात्मक कार्यक्रम, प्रथम योजना मे खाद्य-नीति द्वितीय योजना मे खाद्य नीति अशोक मेहता खाद्यान्न जाच समिति, सहकारी कृषि तृतीय योजना मे खाद्य नीति वितरण सम्बन्धी क्रियाएँ—उचित मूल्य की दुकान खाद्यान्नो का सग्रहण राशनिग खाद्यान्नो के स्थानान्तरण पर प्रतिबन्ध बफर स्टाक, रिजर्व बैंक द्वारा साख नियन्त्रण निजी एकत्रीकरण पर नियन्त्रण, खाद्यान्नो मे सरकारी व्यापार उत्पादन सम्बन्धी क्रियाएँ—पैकेज कार्यक्रम जिला स्तरीय गहरी कृषि, कृषि उत्पाद मूल्य नीति, सहकारी कृषि चतुर्थ योजना मे खाद्य नीति]

भारत मे खाद्यान्नो के अभाव ने स्थायी एव गम्भीर स्थिति का रूप ग्रहण कर लिया है। देश के स्वतन्त्र होने के पूर्व कृषि विकास एव खाद्यान्नो के उत्पादन को बढाने हेतु कोई विशेष कार्यवाही नही की गयी क्योकि विदेशी सरकार ने समस्त जन समुदाय को पर्याप्त खाद्य-पदार्थ प्रदान करने का उत्तरदायित्व कभी भी स्वीकार नहीं किया। स्वतन्त्रता के पश्चात खाद्य समस्या पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा और अधिक अन्न उपजाओ अभियान (जो सन् १९४२ मे आरम्भ किया गया था) को और अधिक प्रोत्साहन एव सुदृढता प्रदान की गयी परन्तु सरकार की सुनिश्चित नीति न होने के कारण इन कार्यक्रमो को सफलता नही प्राप्त हुई। सन् १९५१ मे पचवर्षीय योजना के आरम्भ होने के पश्चात् खाद्य समस्या के निवारण हेतु ठोस कार्यक्रमो का प्रारम्भ किया गया। यह कार्यक्रम दो वर्गों मे वर्गीकृत किये जा सकते हैं—

प्रथम योजना मे खाद्य नीति

(१) रचनात्मक कार्यक्रम—इनके अन्तर्गत भूमि के स्वामित्व का निश्चय करना भूमि प्रबन्धन भूमि के अधिपत्य की अधिकतम सीमा निर्धारण करना भूमि का एकत्रीकरण (Consolidation of Holdings) आदि सम्मिलित थे।

(२) क्रियात्मक कार्यक्रम—इनके अन्तर्गत अच्छे बीज कृषि विधियों मे सुधार प्राकृतिक एव रासायनिक खाद की सुविधा सिचाई की सुविधा आर्थिक सहायता,

कृषि-उत्पादन के विपणन की व्यवस्था, परती भूमि को उपज-योग्य बनाना, पौधों की सुरक्षा, भूमि की सुरक्षा, आदि सम्मिलित थे।

प्रथम योजना के प्रथम तीन वर्षों में मौसम अनुकूल रहने के कारण खाद्यान्नों के उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि हुई और विदेशों से आयात होने वाले अनाज की मात्रा में कमी हुई। योजना म खाद सिंचाई की योजनाओं अच्छे बीज के आयातन तथा अन्य सुधार किये गये। इसके अतिरिक्त खाद्य नियन्त्रण राशनिंग तथा मूल्यों को स्थिर रखने के प्रयत्न भी किए गये। सन् १९५२ में श्री किदवई के खाद्य मंत्री होने पर खाद्यान्न के मूल्य एवं वितरण पर से आंशिक रूप से नियन्त्रण हटा लिया गया। कुछ समय तक मूल्यों में वृद्धि हुई, परन्तु धीरे धीरे मूल्य-स्तर स्थिर होने लगा। प्रति वर्ष आयात घटता चला गया और सन् १९५४ में खाद्यान्नों पर नियन्त्रण हटा लिया गया। सन् १९५४-५५ में मानसून अनुकूल न रहने के कारण खाद्यान्नों के उत्पादन मे कमी हुई। इस वर्ष म भीषण बाढ के फलस्वरूप बहुत सी भूमि पर खड़ी फसल की हानि हुई। सन् १९५५-५६ म पुन असम, बगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश में बाढ आयी और फसलों को हानि पहुँची। सन् १९५५ के पश्चात् से खाद्यान्नों के आयात म निरन्तर वृद्धि होती रही।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना मे खाद्य-नीति

द्वितीय योजना म प्रथम योजना की कृषि उत्पादन की सफलताओं का दृष्टिगत कर, कृषि विकास के साथ साथ औद्योगिक विकास को भी महत्त्व दिया गया। इस योजना में कृषि विकास के कार्यक्रमों को इसी प्रकार जारी रखा गया, जैसा प्रथम योजना में संचालित थे। केवल उन कार्यक्रमों पर व्यय होने वाली राशियों म वृद्धि हो गयी। प्रथम एवं द्वितीय दोनों ही योजना म बडी-बडी सिंचाई योजनाओं पर अधिक राशि विनियोजित की गयी जिनका लाभ कालान्तर म प्राप्त होना सम्भव था। लघु सिंचाई-कार्यक्रमों के सम्बन्ध मे यह मान लिया गया कि इनकी व्यवस्था निजी क्षेत्र द्वारा कर ली जायगी, परन्तु यह अनुमान सत्य सिद्ध नहीं हुए और लघु सिंचाई-सुविधाओं म पर्याप्त वृद्धि नहीं हुई। द्वितीय योजना के प्रारम्भ से ही जलवायु अनुकूल न रहने के कारण खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि के स्थान पर कमी होने लगी। योजना के प्रथम तीन वर्षों में खाद्य स्थिति ने गम्भीरता ग्रहण कर ली।

अशोक मेहता खाद्यान्न जाँच-समिति

भारत सरकार ने जुलाई, सन् १९५७ मे श्री अशोक मेहता की अध्यक्षता म खाद्यान्न जाँच समिति की स्थापना की। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट नवम्बर, सन् १९५७ म प्रकाशित की। समिति के विचार में अनाज के मूल्यों मे उतार चढाव अत्यधिक होने के कारण कृषक को अपनी आय के सम्बन्ध मे निश्चितता नहीं रहती है जिससे उसे अधिक अनाज उपजाने हेतु पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त नहीं होता है।

इसके साथ ही, विकास व्यय एवं विनियोजन में वृद्धि होने के कारण जन साधारण में अधिक उपभोग एवं अच्छा अनाज उपयोग करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। समिति ने खाद्यान्नों के मूल्यों के स्थिरता लाने के लिए मूल्य स्थिरीकरण बोर्ड (Price Stablisation Board) की स्थापना की सिफारिश की। खाद्यान्नों के क्रय विक्रय द्वारा मूल्यों में स्थिरता लाने हेतु खाद्यान्न स्थिरीकरण संगठन की स्थापना का सुझाव दिया गया जो बफर स्टाक का निर्माण करे और समय समय पर मूल्यों को स्थिर रखने हेतु इसका उपयोग करे। बफर स्टाक बनाने हेतु सरकार को अनाज का अनिवार्य संग्रहण (Procurement) करना चाहिए। समिति ने अनाज के बड़े व्यापारियों और उत्पादकों के लिए लाइसेंस देना आवश्यक बनाया जिससे उनके संग्रहों पर नियंत्रण रखा जा सके। समिति ने उचित मूल्य की दुकानें खोलने का भी सुझाव दिया। समिति की राय में खाद्य समस्या के निवारण हेतु सरकारी व्यापार आवश्यक था।

समिति की बहुत सी सिफारिशों को सरकार ने स्वीकार कर लिया और इनके अनुरूप कार्यवाहियाँ प्रारम्भ की गयी। अनाज के सरकारी व्यापार के प्रस्ताव पर अत्यधिक वाद विवाद हुआ और श्री एस० के० पाटिल के खाद्य मंत्री बनने पर खाद्यान्नों के सरकारी व्यापार के प्रस्ताव को संशोधित किया गया और अन्त में इसे त्याग दिया गया। तत्पश्चात् खाद्यान्नों की पूर्ति हेतु आयात पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। दूसरी बार बफर स्टाक के निर्माण को अधिक महत्व दिया गया।

सहकारी कृषि

द्वितीय योजना के प्रारम्भ के अल्प समयोपरान्त ही यह मान लिया गया कि भारत जैसे अल्प विकसित राष्ट्र का शीघ्र औद्योगीकरण करने के लिए एक समन्वित भूमि नीति की आवश्यकता है जिससे कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हो सके। इसी उद्देश्य को ध्यानस्थ कर अखिल भारतीय कांग्रेस समिति (A I C C.) ने अपने वार्षिक अधिवेशन सन् १९५९ में नवीन भूमि सम्बन्धी नीति का प्रस्ताव पारित किया जिसमें सहकारिता को ग्रामीण व्यवस्था का आधार मान लिया गया। भूमि-सम्बन्धी इस नवीन नीति में पंचायतों पर आधारित सामूहिक सहकारी कृषि का उद्देश्य रखा गया। सामूहिक सहकारी कृषि के पूर्व सेवा सहकारी (Service Co operative) समितियों की स्थापना का आयोजन किया गया, जिनके द्वारा अच्छा बीज खाद खेती के उपकरण, वैज्ञानिक परामर्श आदि का प्रबन्ध किया जाता है। इस प्रस्ताव के अनुसार राज्य सरकारों को भूमि की अधिकतम सीमा (Ceilings of Land) निश्चित करने के लिए सन् १९५९ के अन्त तक विधान निर्मित करने थे। अधिकतम भूमि की सीमा निश्चित करने से जो भूमि का आधिक्य हो वह ऐसी सहकारी समितियों को दिया जाना था जिनके भूमिहीन एवं अधिकतम सीमा से कम भूमि वाले कृषक ही सदस्य हों। इस सम्पूर्ण व्यवस्था द्वारा सम्पूर्ण देश में एक ग्राम में

एक सामूहिक सहकारी फार्म (*Joint Co-operative Farm*) की स्थापना का उद्देश्य था।

नागपुर प्रस्ताव द्वारा ग्रामीण व्यवस्था का जो आयोजन किया गया है, उसके मुख्य लक्षण निम्न प्रकार हैं—

(१) ग्रामों की व्यवस्था पंचायतों एव सहकारी समितियों के आधार पर होनी चाहिए। ग्रामों के समस्त स्थायी निवासियों का (उनके पास भूमि हो अथवा नहीं) ग्रामीण सहकारी समितियों का सदस्य बनाया जा सकता था। ये सहकारी समितियाँ अपने सदस्यों के हितार्थ कृषि की वैज्ञानिक विधियों का प्रचलन करेंगी, साख की सुविधाओं का प्रबन्ध करेंगी कृषकों के कृषि उत्पादन का क्रय कर उसके विक्रय का प्रबन्ध करेंगी तथा गोदाम की सुविधाएँ प्रदान करेंगी।

(२) भविष्य में सामूहिक सहकारी खेती की व्यवस्था की जायगी जिसमें भूमि का कृषि के लिए एकत्रित कर लिया जायगा, परन्तु कृषकों का भूमि पर अधिकार अक्षुण्ण (जैसा का तैसा) रहेगा तथा उन्हें भूमि के शुद्ध उत्पादन में से भूमि के अधिकार के आधार पर भाग दिया जायगा। जो भूमि पर कार्य करेंगे, उन्हें कार्यानुसार पारिश्रमिक दिया जायगा।

(३) सामूहिक सहकारी फार्मों की स्थापना के पूर्व देश भर में तीन वर्षों में सेवा सहकारी (Service Co-operative) की स्थापना की जायगी।

(४) अधिकतम अधिकार में रहने वाली भूमि की सीमा निश्चित करने के लिए राज्यों में विधान पास किए जायेंगे। समस्त भूमि का आधिक्य (Surplus) पंचायतों के अधिकार में होगा जिसका प्रबन्ध सहकारी समितियों द्वारा किया जायगा।

(५) फसल के बोने से पूर्व ही फसल से उत्पादित वस्तुओं का न्यूनतम मूल्य निश्चित कर दिया जायगा तथा आवश्यकता पड़ने पर निर्धारित मूल्य पर फसल को क्रय करने का प्रबन्ध किया जायगा।

(६) राज्य खाद्यान्नों का व्यापार अपने हाथ में ले लेगा।

(७) बेकार पड़ी एव कृषि-उपयोग में न आने वाली भूमि का कृषि हेतु उपयोग करने के लिए प्रयत्न किए जायेंगे।

इस प्रकार कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि करने के लिए भूमि-सुधार-सम्बन्धी कार्यवाहियों को द्वितीय योजना में कार्यान्वित किया जाना था। द्वितीय योजनाकाल में लगभग समस्त राज्यों में वर्तमान एव भविष्य में अधिकतम अधिकार में रहने वाली भूमि की सीमा निश्चित करने हेतु विधान बना दिए गये हैं। यह अधिकतम भूमि की सीमा विभिन्न क्षेत्रों की भूमि के प्रकार के अनुसार निर्धारित की गयी है। इसके अतिरिक्त भूमि के एकत्रीकरण (Consolidation of Holdings) का कार्य २६३ लाख एकड़ भूमि पर ३१ मार्च, सन् १९६१ तक पूरा हो चुका था तथा १०७ लाख एकड़ पर कार्य अभी जारी था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सहकारी कृषि का ठोस एव दृढ़ आधार

प्रदान करने के लिए कार्यवाहियाँ की गयी। ११ जून सन् १९५९ को एक Working Group) का स्थापना की गयी। इसे ऐसे कार्यक्रम निर्धारित करने थे जिससे ऐच्छिक रूप से सहकारी कृषि समितियों की स्थापना होने पर उन्हें वित्तीय तान्त्रिक एवं अन्य सहायता प्रदान की जा सके। इस ग्रुप की रिपोर्ट १५ फरवरी सन् १९६० को प्रकाशित की गयी जिसमें सहकारी कृषि समितियों की स्थापना के लिए आवश्यक कार्यवाहियाँ अंकित की गयी। इस ग्रुप की अधिकतर सिफारिशों को राष्ट्रीय विकास परिषद् ने सितम्बर सन् १९६० में स्वीकार कर लिया और इन्हें समस्त राज्यों के पास मार्ग दर्शन के लिए भेज दिया। इन्हीं के आधार पर सहकारी कृषि सम्बन्धी नीतियाँ इनका संगठन प्रबन्ध एवं वित्तीय सहायता आदि निर्धारित की जाती थी। जून सन् १९६१ में देश में ६ ३२८ सहकारी कृषि समितियाँ थी जिनमें सदस्य संख्या ३ ०५ लाख व्यक्ति था।

द्वितीय योजनाकाल में सरकार के विभिन्न प्रयत्नों को पर्याप्त सफलता नहीं प्राप्त हुई और खाद्यान्नों का उत्पादन लक्ष्य के अनुरूप नहीं हुआ। खाद्यान्नों के मूल्यों में निरन्तर वृद्धि होती रही जिसके फलस्वरूप जनसमुदाय व्यापारी एवं उत्पादकों में खाद्यान्नों का संग्रह करने की प्रवृत्ति तीव्र होती रही। खाद्यान्नों की कमी की पूर्ति आयात द्वारा की गयी।

तृतीय योजना में खाद्य नीति

तृतीय योजना में कृषि विकास को विशेष महत्व प्रदान किया गया और योजना के अन्त तक कृषि उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। योजना में पिछली योजनाओं के कृषि विकास कार्यक्रमों को जारी रखा गया और लघु सिंचाई योजनाओं को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया। योजना में अपनायी गयी खाद्य नीति में खाद्यान्नों के उत्पादन के साथ साथ इनके उचित वितरण पर विशेष ध्यान दिया गया। पिछली दो योजनाओं के अनुभवों से सरकार को ज्ञात हुआ कि विपणि-तान्त्रिकता द्वारा निर्धन वर्ग के जनसमूह को उचित मात्रा में उचित मूल्य पर खाद्यान्न उपलब्ध नहीं हो पाते हैं और इसी कारण इस वर्ग को खाद्यान्नों की उचित मात्रा उचित मूल्य पर प्रदान करने हेतु सरकार ने उचित मूल्य की दुकानों तथा राशनिंग द्वारा खाद्यान्नों का वितरण अपने हाथ में ले लिया है। सरकारी वितरण को सफल बनाने हेतु अनाज का संग्रह देश एवं विदेशों से सरकार द्वारा किया गया है। इसके साथ ही, एक राज्य से दूसरे राज्य में खाद्यान्नों के स्थानान्तरण को सरकार ने अपने हाथ में लिया है। सरकार की वर्तमान खाद्य-नीति के विभिन्न अंगों को हम दो वर्गों में विभक्त कर सकते है—वितरण सम्बन्धी क्रियाएं एवं उत्पादन सम्बन्धी क्रियाएं।

वितरण-सम्बन्धी क्रियाएँ

(१) उचित मूल्य की दुकानें—सन् १९६४ वर्ष के अन्त में देश भर में

१०५,००० उचित मूल्य की दुकानें थी। इन दुकानों द्वारा जनता को नियंत्रित मूल्यों पर सरकार द्वारा खाद्यान्न विक्रय किया जाता है। इन दुकानों का प्रमुख उद्देश्य खुले बाजार के मूल्यों को नियन्त्रित करना है। जब खुले बाजार में खाद्यान्नों के मूल्य नियन्त्रित मूल्य से अधिक हो जाते हैं तो उपभोक्ता इन दुकानों से खाद्यान्न क्रय करने लगते हैं परन्तु जब खाद्यान्नों के मूल्य नियन्त्रित मूल्य से बहुत अधिक हो जाते हैं और यह परिस्थिति जारी रहती है तो यह दुकानें पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न प्रदान करने में असमर्थ होती हैं। इन दुकानों द्वारा सन् १६६० में ४३ लाख टन, सन् १६६३ में ५१ लाख टन और सन् १६६४ में ८६ लाख टन अनाज वितरित किया गया। सन् १६६५ में इन दुकानों द्वारा लगभग ६६ लाख टन अनाज वितरित होने का अनुमान है। इस प्रकार इन दुकानों द्वारा वितरित होने वाले खाद्यान्नों की मात्रा वर्ष प्रति वर्ष बढ़ती जा रही है। इसका प्रमुख कारण खाद्यान्नों के बढ़ते हुए मूल्य हैं। सरकार द्वारा जो अनिवार्य संग्रहण क्रियाएँ की गयी हैं उनके फलस्वरूप खुले बाजार में खाद्यान्नों की उपलब्धि कम हो गयी है जिसके फलस्वरूप उपभोक्ताओं को उचित मूल्य की दुकानों से खाद्यान्न क्रय करना अनिवार्य हो गया है।

(२) **खाद्यान्नों का संग्रहण**—खाद्यान्नों के उचित मूल्यों पर वितरित करने तथा राशनिंग के अन्तर्गत पर्याप्त वितरण करने हेतु सरकार द्वारा चावल एवं गेहूँ का संग्रहण किया जाता है। कुछ राज्यों में यह संग्रहण अनिवार्य रूप से उत्पादकों एवं व्यापारियों से किया जाता है। सन् १६६०-६१ में लगभग ५.८ लाख टन अनाज संग्रह किया गया जो सन् १६६४-६५ (अगस्त तक) में ३० लाख टन हो गया। इसी प्रकार आयात की मात्रा को कम किया गया है। सन् १६६२ वर्ष में ३६.४ लाख टन, सन् १६६३ में ४४.६ लाख टन सन् १६६४ में ६२.६ लाख टन तथा सन् १६६५ में भी लगभग इतना ही अनाज आयात किया गया। सरकारी अनिवार्य संग्रहण के खुले बाजार में अनाज की उपलब्धि में कमी हो गयी है जिसके फलस्वरूप जनसमुदाय को न तो सरकारी दुकानों और न खुले बाजार से ही पर्याप्त अनाज उपलब्ध हो पाता है।

(३) **राशनिंग (Rationing)**—आयात एवं आन्तरिक संग्रहण से प्राप्त होने वाले अनाज का अधिक प्रभावशाली उपयोग करने हेतु ऐसे क्षेत्रों में, जहाँ क्रय शक्ति अधिक है, वैधानिक राशनिंग का आयोजन किया गया है जिससे ऐसे कम क्रय क्षेत्रों में अनाज की कमी न हो सके। इसी कारण १ जनवरी, सन् १६६६ से १ लाख एवं इससे अधिक जनसंख्या वाले समस्त नगरों में अनाज के राशनिंग की व्यवस्था की गयी है। ५०,००० से १ लाख की जनसंख्या वाले नगरों में भी आंशिक राशनिंग की व्यवस्था की गयी है। राशनिंग की उचित व्यवस्था होने के पश्चात् खाद्यान्नों के स्थानान्तरण पर लगे हुए प्रतिबन्धों को हटाना सम्भव हो सकता क्योंकि दबे हुए अन्य भागों में खाद्यान्नों की उपलब्धि एवं मूल्य स्तर की स्थिरता में सुधार हो जायगा।

(४) खाद्यान्नों के स्थानान्तरण पर प्रतिबन्ध—खाद्यान्नों की कमी के वातावरण में मूल्य वृद्धि के फैलाव को रोकने हेतु खाद्यान्नों के स्थानान्तरण पर प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक समझा गया अन्यथा निजी साहस के अन्तर्गत खाद्यान्नों का स्थानान्तरण आधिक्य वाले क्षेत्रों से कमी वाले क्षेत्रों में इतना अधिक होने लगता है कि आधिक्य वाले क्षेत्रों में भी मूल्यों में इतनी अधिक वृद्धि हो जाती है कि निर्धन वर्ग को कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त वह क्षेत्र जिनमें क्रय शक्ति अधिक होती है इतना अधिक अनाज आकर्षित कर लेते हैं कि अन्य क्षेत्रों में अनाज की कमी एवं मूल्यों का अत्यधिक वृद्धि होने लगता है। इस प्रकार अनाज के क्षेत्रों की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य विभिन्न राज्यों में अनाज का समान वितरण उचित मूल्य पर करना है। खाद्यान्न के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में तथा एक जिले से दूसरे जिले में स्थानान्तरित करने पर प्रतिबन्ध लगाकर विभिन्न क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति अनाज की उपलब्धि में समानता लायी गयी है तथा देश के विभिन्न क्षेत्रों में अनाज के मूल्यों में समानता रखने का प्रयत्न किया गया है।

(५) बफर स्टाक (Buffer Stock)—द्वितीय योजना के मध्य में ही सरकार द्वारा यह प्रयत्न किया गया कि सरकार अपने संग्रह में पर्याप्त अनाज रखे जो कम पूर्ति के समय बाजार में नियन्त्रित मूल्यों पर जनता को उपलब्ध कराया जा सके। यह एक प्रकार से खाद्यान्नों का रिजर्व स्टाक है जो खाद्यान्नों की कमी के समय अथवा मूल्य में वृद्धि के समय उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त बफर स्टाक की क्रियाओं द्वारा गिरते हुए मूल्यों को रोकने की क्रिया भी सम्पन्न की जाती है। खाद्यान्न के अधिकतम एवं न्यूनतम मूल्य निर्धारित कर दिये जाते हैं। मूल्यों के अधिकतम मूल्य से बढ़ने पर बफर स्टाक में से अनाज का विक्रय किया जाता है और मूल्यों के न्यूनतम स्तर से कम होने पर बफर स्टाक के लिए निश्चित मूल्य पर खाद्यान्न का क्रय किया जाता है। बफर स्टाक की तान्त्रिकता केवल अल्पकालीन कठिनाइयों को दूर करने के लिए उपयुक्त होती है। जब खाद्यान्न की कमी दीर्घ काल तक जारी रहे तो यह तान्त्रिकता सफल नहीं होती है। बफर-स्टाक की तान्त्रिकता का उपयोग करने हेतु गेहूँ चावल तथा ज्वार के मूल्य निर्धारित किये गये हैं।

(६) रिजर्व बैंक द्वारा साख नियन्त्रण—रिजर्व बैंक द्वारा चुने हुए कृषि पदार्थों की जमानत पर ही साख प्रदान करने की नीति का अनुसरण समय समय पर किया गया है। खाद्यान्न की जमानत पर साख प्रदान करने पर समय समय पर रिजर्व बैंक ने प्रतिबन्ध लगाये जिसके फलस्वरूप व्यापारियों द्वारा अनाज के अधिक संग्रह तथा अनावश्यक सट्टेबाजी को रोकना सम्भव हो सका। इन क्रियाओं से बढ़ते हुए मूल्यों को रोकने में सहायता प्राप्त हुई।

(७) निजी एकत्रीकरण पर नियन्त्रण—अनाज के अनावश्यक एकत्रीकरण

(Hoarding) का प्रतिबन्धित करने हेतु सुरक्षा नियमों (Defence of India Rules) तथा (Essential Commodities Act, 1964) द्वारा संग्रहण करने वाले व्यापारियों एवं उपभोक्ताओं को दण्ड देने के आयोजना का मुख्य उद्देश्य अनाज की कृत्रिम कमी के प्रादुर्भाव को रोकना है।

परन्तु सरकारी अनिवार्य संग्रहण (Compulsory Procurement) तथा एकत्रीकरण पर प्रतिबन्ध के फलस्वरूप कृषकों में नियन्त्रण वाले अनाजों के उत्पादन करने के प्रति प्रोत्साहन कम होता जा रहा है। वर्तमान मूल्य-कलेवर (Market Structure) कुछ ऐसा है कि अच्छे अनाजों जैसे गेहूँ, चावल आदि के नियन्त्रित मूल्य अन्य मोटे अनाजों के मुक्त बाजारों के मूल्यों से कम अथवा बराबर हैं जबकि मोटे अनाजों की उत्पादन लागत अच्छे अनाजों से कम होती है। ऐसी परिस्थिति में किसान सरकारी अधिकारियों की तारणाओं से बचने के लिए मोटे अनाजों, तिलहन आदि के उत्पादन करने के लिए अधिक प्रोत्साहित होता है और यदि अच्छे अनाजों के मूल्यों एवं वितरण पर इसी प्रकार नियन्त्रण जारी रहते हैं तो कुछ वर्षों में अच्छे अनाजों के उत्पादन में कमी होना स्वाभाविक होगा।

(८) **खाद्यान्नों में सरकारी व्यापार**—खाद्यान्नों के राजकीय व्यापार के सम्बन्ध में बहुत वाद विवाद होने के पश्चात् द्वितीय योजना में इस कार्य को स्थगित कर दिया गया था, परन्तु तृतीय योजना में उपस्थित खाद्य समस्या की गम्भीरता के फलस्वरूप इस बात पर फिर विचार किया गया और १ जनवरी सन् १९६५ को खाद्य निगम (Food Corporation of India) की स्थापना की गयी। यह निगम खाद्यान्नों एवं अन्य खाद्य-पदार्थों के क्रय स्टोर करने, स्थानान्तरण, यातायात, वितरण एवं विक्रय की व्यवस्था करेगा। यह खाद्यान्नों एवं खाद्य-पदार्थों के उत्पादन की क्रिया को कर सकता है। चावल तथा आटा की मिलें तथा खाद्यान्नों एवं खाद्य-पदार्थों के विनिरण (Processing) के व्यवसायों को भी स्थापित कर सकता है। निगम एक स्वतन्त्र संगठन (Autonomous Organisation) है, जो व्यापारिक सिद्धान्तों के आधार पर संचालित होगा। निगम ने अपना केन्द्रीय कार्यालय मद्रास में तथा क्षेत्रीय कार्यालय हैदराबाद, बंगलौर, त्रिवेन्द्रम, थनजावर (Thanjaver) में स्थापित किये हैं। इस प्रकार निगम ने अपना कार्य दक्षिणी राज्यों में प्रारम्भ किया है।

उत्पादन सम्बन्धी क्रियाएँ

तृतीय योजना में सिंचाई की सुविधाओं में वृद्धि, लघु सिंचाई परियोजनाओं का विस्तार, अच्छे बीज की उपलब्धि, प्राकृतिक एवं रासायनिक खाद का अधिक उपभोग, पौधों की सुरक्षा, भूमि-सुरक्षा आदि सामान्य प्रक्रियाओं द्वारा कृषि उत्पादन में वृद्धि करने का आयोजन किया गया। इनके अतिरिक्त योजना में निम्नलिखित विशेष कार्यक्रम उत्पादन में वृद्धि करने हेतु संचालित किये गये।

(१) पकेज कार्यक्रम (Package Programme)—यह कार्यक्रम सन् १९६० ६१ में प्रारम्भ किया गया था। इसके अन्तर्गत कृषकों को निर्दिष्ट कृषि विधियाँ रासायनिक खाद एवं सामग्रियों का उपयोग करने के लिए सलाह एवं सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। कृषकों को इन पैकेज कार्यक्रमों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना आवश्यक है। इसके साथ ही रासायनिक खाद जो पैकेज कार्यक्रम का मुख्य अंग है की उपलब्धि की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए। पैकेज कार्यक्रम उन सभी क्षेत्रों में क्रियान्वित किये जाने चाहिए जहाँ सिंचाई की सुविधाएं उपलब्ध हैं। पकेज कार्यक्रमों द्वारा गेहूँ एवं चावल के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि की जा सकती है।

(२) जिला स्तर पर गहरी खेती के कार्यक्रम—फोर्ड फाउन्डेशन की सिफारिश पर यह कार्यक्रम सन् १९६१ ६२ में प्रारम्भ किया गया। इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि करना तथा खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि करने की प्रभावशाली विधियों का प्रदर्शन करना है। प्रारम्भ में यह कार्यक्रम चुने हुए जिलों में कार्यान्वित किये गये हैं। उनके सफल होने पर इन्हें अन्य क्षेत्रों में फैला दिया जायगा। इस कार्यक्रम का काल लगभग ५ वर्ष होता है और जिले में उत्पन्न होने वाले सभी खाद्यान्नों की उत्पादकता में वृद्धि करने का प्रयास किया जाता है। यह कार्यक्रम देश भर में लगभग १२ जिलों में चालू किया गया है। इस कार्यक्रम के फलस्वरूप इन जिलों में खाद्यान्नों की उत्पादकता में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

(३) कृषिउत्पाद मूल्य नीति—कृषि उत्पादकों को उचित मूल्य प्रदान करने हेतु सरकार द्वारा प्रत्येक फसल के लिए धान चावल गेहूँ चना ज्वार बाजरा तथा मक्का के मूल्य निर्धारित किये जाते हैं। अन्य मोटे अनाजों के सम्बन्ध में राज्य सरकारों को मूल्य निर्धारित करने का अधिकार दिया गया है। केन्द्रीय एवं राज्य सरकारें इस प्रकार निर्धारित किये गये मूल्यों पर अनाज आदि क्रय करने को तयार रहती हैं। वे इन मूल्यों पर कृषकों को खाद्यान्न बेचने का आदेश भी दे सकती हैं।

केन्द्रीय सरकार द्वारा एक कृषि मूल्य आयोग (Agricultural Prices Commission) की स्थापना की गयी है। यह आयोग सरकार को कृषि मूल्यों के सम्बन्ध में आवश्यक सलाह देगा। आयोग द्वारा विशेषकर धान चावल गेहूँ ज्वार मक्का चना दालें गन्ना तिलहन कपास तथा जूट के मूल्य-स्तर एवं नीति के सम्बन्ध में सरकार को सलाह देता है। आयोग अपनी सिफारिशें इस प्रकार देता है कि मूल्य नीति द्वारा उत्पादकों में अच्छी कृषि विधियों के उपयोग एवं अधिक उत्पादन करने हेतु प्रोत्साहन बना रहे और अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्रों पर बुरा प्रभाव न पड़े।

(४) सहकारी कृषि—तृतीय योजना में सहकारी कृषि वकिंग ग्रुप की सिफारिशों के आधार पर सहकारी कृषि के विकास का विस्तृत कार्यक्रम तयार किया गया।

इसके अन्तगत ३१८ पायलट परियोजनाओं (Pilot Projects) का आयोजन किया गया। प्रत्येक जिले के चुने हुए सामुदायिक विकास खण्ड म जहाँ पंचायतराज संस्था एवं सहकारी समितियाँ सफल रही हों, एक पायलट परियोजना संचालित की जानी थी। प्रत्येक परियोजना मे कम से कम १० सहकारी कृषि समितियाँ सम्मिलित हैं, जो सहकारी कृषि के लाभों का अन्य लोगों मे प्रदर्शन करती हैं जिससे सहकारी कृषि की ओर जनसमुदाय आकर्षित हो। सन् १९६३ वष के अन्त तक १८० पायलट-परियोजनाएँ संचालित की जा चुकी थी। सन् १९६४ वष के अन्त तक इन पायलट-परियोजनाओं के अन्तगत स्थापित १६०६ समितियाँ थीं, जिनकी सदस्य संख्या ३१,५१८ थी और इनके द्वारा कृषि किए जाने वाला क्षेत्र १ ६२ लाख एकड था। इसके अतिरिक्त १७८३ कृषि सहकारी समितियाँ पायलट-परियोजनाओं के बाहर थीं जिनकी सदस्य संख्या ३९ ४८४ और भूमि २ ०५ लाख एकड थी।

चतुर्थ योजना मे खाद्य नीति

खाद्यान्न नीति समिति सन् १९६६ द्वारा देश की खाद्य-नीति के तीन आधारभूत उद्देश्य निर्धारित किए—उत्पादन म आत्म निर्भरता (Self Reliance) प्राप्त करना, खाद्यान्नों का समान वितरण उत्पादन एवं वितरण के सम्बन्ध म खाद्यान्नों के मूल्यों मे स्थिरता प्राप्त करना। समिति ने सुझाव दिया कि वितरण एवं मूल्य स्थिरता मे सम्बन्धित उद्देश्यों की पूर्ति खाद्य पदार्थों की पूर्ति का नियोजित प्रबन्ध कर की जा सकती है। नियोजित प्रबन्ध के अन्तगत खाद्यान्नों का संग्रहण (Procurement), खाद्यान्नों के अन्तर्राज्यीय आवागमन पर नियन्त्रण, सार्वजनिक वितरण-व्यवस्था तथा अधिक संग्रह स्थापित करना आदि कार्यवाहियाँ सम्मिलित हैं। चौथी योजना की खाद्य नीति के तत्व इन सिफारिशों के आधार पर निर्धारित किए गये हैं और इस नीति के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

(१) खाद्यान्नों के उपभोक्ता मूल्यों की स्थिरता का आश्वासन, विशेषकर अल्प आय वाले उपभोक्ता के हितों की सुरक्षा का आश्वासन।

(२) उत्पादकों को निरन्तर उचित मूल्य प्राप्त होते रहने की व्यवस्था जिससे उनमे अधिक उत्पादन करने हेतु प्रोत्साहन बना रहे।

(३) खाद्यान्नों का पर्याप्त अतिसंग्रह *(Buffer Stock)* बनाना जिससे उपर्युक्त दोनों उद्देश्यों की पूर्ति (खाद्यान्नों की कमी एवं अधिक मूल्य होने पर अतिसंग्रह से खाद्यान्न बेचकर अथवा गिरते हुए मूल्यों को बनाये रखने हेतु अतिसंग्रह के लिए खाद्यान्न क्रय कर) की जा सके।

कम आय वाले उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा के लिए खाद्यान्नों का वितरण उचित मूल्य की दुकानों एवं सहकारी संस्थाओं द्वारा किया जायगा तथा खाद्यान्नों के निजी व्यापार का नियमन किया जायगा। कृषकों को उचित मूल्य प्रदान करने हेतु सरकारी क्रय खाद्य निगम, सहकारिताओं तथा अन्य संस्थाओं द्वारा किया जायगा।

योजना में अधिमग्रह की व्यवस्था को विशेष महत्व दिया गया है क्योंकि इसके द्वारा प्रतिकूल फसल वाले वर्षों में खाद्यान्नों की पूर्ति की जा सकती है तथा खाद्यान्नों के मूल्यों को वर्ष भर सभी ऋतुओं में स्थिर रखा जा सकता है। अधिमग्रह की स्थापना का प्रारम्भ सन् १९६८-६९ की योजना में कर दिया गया है और इस वर्ष में २० लाख टन अनाज का अधिमग्रह बनाने की व्यवस्था की गयी है। चतुर्थ योजना में ७० लाख टन अनाज का अधिमग्रह स्थापित करने का आयोजन किया गया है।

खाद्यान्नों की पूर्ति के प्रबन्ध में सतर्कता के साथ निर्णय करने की आवश्यकता है और इन निर्णयों को समय समय पर खाद्यान्नों की उपलब्धि, मूल्य प्रवृत्ति, अन्तर्राज्य मूल्य विभिन्नता तथा अधिमग्रह की उपलब्धि अथवा उसे बनाये रखने की आवश्यकता के आधार पर परिवर्तन करते रहना आवश्यक होगा। खाद्य नीति के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निम्नलिखित कार्यवाहियाँ की जायेंगी—

(अ) खाद्यान्नों की सार्वजनिक वितरण पद्धति को जारी रखना—चतुर्थ योजना में उचित मूल्य की दुकानों की व्यवस्था को समाप्त करने के प्रयास किए जायेंगे और खाद्यान्नों का उचित मूल्य पर वितरण सहकारी उपभोक्ता भण्डारों तथा बहुउद्देश्यीय सहकारी समितियों द्वारा किया जायगा।

(आ) खाद्यान्नों के विपणि अतिरेक (Marketable Surplus) का कुछ प्रतिशत सरकारी क्षेत्र द्वारा क्रय किया जाना जिससे सार्वजनिक वितरण पद्धति का सचालन किया जा सके तथा अधिमग्रह वांछित मात्रा में बनाया जा सके।

(इ) खाद्यान्नों के स्थानान्तरण पर ऐसे प्रतिबन्ध लगाना जो खाद्यान्न संग्रह के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक हों अथवा जो खाद्यान्नों की कमी होने पर देश भर में मूल्यों को अधिक बढ़ने से रोकने हेतु आवश्यक हों।

(ई) खाद्यान्नों के निजी व्यापार का नियमन जिससे सट्टा एवं सग्रह (Hoarding) को रोका जा सके।

(उ) खाद्यान्नों की जमानत पर बैंकों द्वारा दिये जाने ऋण का नियमन।

(ऊ) वायदा व्यापार (Forward Trading) पर प्रतिबन्ध जारी रखना।

चतुर्थ योजना में सन् १९६९-७० के अन्त तक खाद्य विभाग द्वारा खाद्यान्नों के सग्रह, स्थानान्तरण, बन्दरगाहों पर खाद्यान्नों का स्टोर करना आदि कार्य खाद्य निगम को सौंप दिये जायेंगे। चतुर्थ योजना में इस प्रकार खाद्य निगम का कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत हो जायगा।

चतुर्थ योजना में अधिमग्रह की स्थापना खाद्य-नीति का आधारशिला है। अधिमग्रह की उपयुक्त व्यवस्था करने के लिए गोदामों एवं स्टोरों का पर्याप्त प्रबन्ध आवश्यक होगा। इसी कारण योजना में ६१ करोड़ रु० की व्यवस्था स्टोर की सुविधाओं को बढ़ाने के लिए की गयी है। योजना के प्रारम्भ में केन्द्रीय सरकार, खाद्य निगम, राज्य सरकारों, केन्द्रीय गोदाम निगम (Central Warehousing Cor

नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत मूल्य-नीति

[Price Policy Under Planned Economy]

[विकासोन्मुख राष्ट्रों मे मूल्य नियमन की आवश्यकता, मूल्य नियमन नीति के उद्देश्य मिश्रित अर्थ-व्यवस्था मे मूल्य नीति अतिरिक्त आय के व्यय करने पर प्रतिबन्ध, अतिरिक्त आय के अनुरूप उत्पादन म वृद्धि, मिश्रित अर्थ-व्यवस्था म मूल्य नीति के सिद्धान्त साम्यवादी अर्थ व्यवस्था मे मूल्य-नीति भारतीय योजनाओ म मूल्य नीति एव स्तर—प्रथम एव द्वितीय पचवर्षीय योजना मे मूल्य नीति तृतीय योजना मे मूल्य-नीति, तृतीय योजना म मूल्य स्तर, चतुर्थ योजना म मूल्य]

विकासोन्मुख राष्ट्रों म विकास की गति के साथ-साथ मूल्यों म वृद्धि होना स्वाभाविक होता है। जब तक यह वृद्धि जनसाधारण की मौद्रिक आय की वृद्धि के अनुपात से बहुत अधिक नही होती है मूल्य नियमन सम्बन्धी कोई विशेष समस्या उपस्थित नहीं होती है परन्तु जब मूल्यो की वृद्धि विनियोजन एव राष्ट्रीय आय-वृद्धि की तुलना म अधिक होने लगती है तो मुद्रा स्फीति के दोषो म बचने हेतु मूल्य नियमन की आवश्यकता पडती है। वास्तव म मूल्य का मुख्य कार्य माँग और पूर्ति म सन्तुलन स्थापित करना होता है। मूल्य परिवर्तनो के स्वय शोध्य (Self Liquidating) होने पर इनके द्वारा माँग पूर्ति म सन्तुलन स्थापित किया जा सकता है। स्वय शोध्य का अर्थ यह है कि मूल्यो म वृद्धि होने पर पूर्ति की मात्रा बढ जानी चाहिए जो माँग के अनुकूल हो जाय और फिर पूर्ति बढने से मूल्यो को अपने सामान्य स्तर पर आ जाना चाहिए। दूसरी ओर मूल्य घटने पर (माँग कम होने के कारण) पूर्ति की मात्रा घट जानी चाहिए और माँग के अनुकूल हो जानी चाहिए। पूर्ति कम होने पर मूल्य फिर अपने सामान्य स्तर पर आ जाते हैं। यह मूल्यो की एक सामान्य गति है और इस गति पर बहुत से घटको का प्रभाव पडता रहता है। अल्प विकसित राष्ट्रों म माँग बढने पर मूल्य तो बढ जाते हैं परन्तु पूर्ति शीघ्रता के साथ नहीं बढ़ पाती है जिसके कारण मूल्यो की एक वृद्धि दूसरी वृद्धि का कारण बनती रहती है और इस प्रकार मूल्य वृद्धि का एक दूषित चक्र बन जाता है। योजना अधिकारी को ऐसे प्रयत्न करने होते हैं कि इस दूषित चक्र का प्रादुर्भाव न हो और मूल्य सामान्य स्तर से अधिक ऊँचे न जाय।

विकासोन्मुख राष्ट्रों में मूल्य-नियमन की आवश्यकता

विकासोन्मुख अर्थ-व्यवस्था में जहाँ विकास-व्यय एवं विनियोजन की राशि में किया जाता है जन समूह की मौद्रिक आय में वृद्धि होना स्वाभाविक होता है। इसके अतिरिक्त आय के अधिकांश भाग का उपयोग उपभोक्ता-वस्तुओं के लिए होता है तथा इस प्रकार विकास-व्यय एवं विनियोजन की राशि उपभोक्ता वस्तुओं की उपलब्धि पर निर्भर होती है। मौद्रिक आय की वृद्धि के फलस्वरूप माँग में होने वाली वृद्धि पर नियन्त्रण रखने के लिए जन समूह की क्रय शक्ति का कम किया जाना चाहिए। इसके लिए प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर ऋण एवं लघु बचत की गति को तीव्र किया जाना चाहिए। इसके साथ अधिक पारिश्रमिक की माग को दबाना अत्यन्त आवश्यक होता है क्योंकि मजदूरी की वृद्धि से मूल्यों में वृद्धि होना स्वाभाविक होता है। साख प्रसार भी केवल उत्पादक कार्यक्रमों की आवश्यकतानुसार होना चाहिए और सट्टे-बाजी (Speculation) एवं संचय (Hoarding) हेतु साख प्रसार पर भी अवरोध लगाना वांछनीय होता है।

वास्तव में, मूल्यों की वृद्धि अपने आप में कोई दूषित स्थिति नहीं होती है। जब मूल्यों की वृद्धि के साथ उत्पादन में इसके अनुकूल वृद्धि नहीं होती है, तब शोचनीय स्थिति उत्पन्न होती है। आर्थिक विकास के साथ मूल्यों में वृद्धि होना स्वाभाविक होता है। आर्थिक विकास हेतु राष्ट्रीय आय के कुछ अधिक भाग का विनियोजन उत्पादक उद्योगों में करना आवश्यक होता है। इस विनियोजन के फलस्वरूप उत्पादक-वस्तुओं की पूर्ति में वृद्धि के साथ साथ रोजगार एवं आय में भी वृद्धि होती है। आय की वृद्धि के अधिकतम भाग को अल्प विकसित राष्ट्रों में उपभोक्ता-वस्तुओं के क्रय के लिए व्यय किया जाता है जिससे उपभोक्ता-वस्तुओं की माग एवं मूल्यों में वृद्धि होनी प्रारम्भ हो जाती है। मूल्यों की वृद्धि को रोकने हेतु एक ओर बढ़ी हुई आय को बचत, कर तथा ऋण के रूप में जनता के हाथों से वापस ले लेना चाहिए और दूसरी ओर, आवश्यक उपभोक्ता-वस्तुओं के मूल्यों पर नियन्त्रण रखना चाहिए। आर्थिक विकास के अन्तर्गत अधिक विनियोजन के फलस्वरूप राष्ट्र के उत्पादन के कुछ साधनों का उपभोग उपभोक्ता-वस्तुओं के क्षेत्र से हटकर उत्पादक वस्तुओं के क्षेत्र में होने लगता है। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन के साधनों की मांग एवं मूल्य बढ़ जाते हैं जिससे उपभोक्ता-वस्तुओं की लागत में वृद्धि हो जाती है और इनके मूल्यों में वृद्धि होना स्वाभाविक है। इस परिस्थिति के प्रभाव को दूर करने के लिए मूल्य नियन्त्रण की आवश्यकता होती है। योजना अधिकारी को अपनी वित्तीय मौद्रिक नीतियों द्वारा जिसमें मुख्यतः ब्याज की नीति एवं चुने हुए व्यवसायों को साख की अधिक सुविधाओं द्वारा किये जाने वाले व्यय पर नियन्त्रण रखना चाहिए जिससे आय की वृद्धि अवांछनीय क्षेत्रों में न हो सके। दूसरी ओर, कर-नीति द्वारा आय को कम कर देना चाहिए तथा विशेष वस्तुओं एवं सेवाओं पर व्यय करने की प्रवृत्ति का नियन्त्रण कर देना

चाहिए। इसके साथ ही राजकीय मौद्रिक तथा कर-सम्बन्धी नीतियों द्वारा समाज में बचत के प्रति प्रोत्साहन उत्पन्न करना चाहिए।

इन समस्त कार्यवाहियों में एक ओर, माँग उन्हीं क्षेत्रों में बढ़ सकेगी जिसमें योजना अधिकारी चाहता है और दूसरी ओर जनसमुदाय अपनी आय की वृद्धि का समस्त भाग उपभोग पर व्यय न कर सकेगा तथा विनियोग के लिए अधिक धन एवं साधन उपलब्ध हो सकेंगे। उपर्युक्त कार्यवाहियों द्वारा माँग के क्षेत्र पर नियन्त्रण किया जा सकता है। माँग पर नियन्त्रण रखने के साथ साथ, पूर्ति के क्षेत्र में उत्पादक-वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि के साथ उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाना भी आवश्यक है जिससे उत्पादन क्षेत्र के विकास द्वारा बढ़ी आय के फलस्वरूप जो उपभोग-व्यय बन गया है, उसके लिए उपभोक्ता वस्तुएँ उपलब्ध करायी जा सकें। मूल्य-नियमन नीति द्वारा योजना-अधिकारी को एक ओर साधनों के अनावश्यक उत्पादक एवं उपभोक्ता वस्तुओं के लिए उत्पादन में साधनों के उपयोग को हतोत्साहित करना चाहिए और दूसरी ओर आर्थिक विकास के लिए आवश्यक उत्पादक वस्तुओं एवं आधारभूत उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में साधनों के उपयोग को प्रोत्साहन देना चाहिए।

माँग पर नियन्त्रण करना अत्यधिक कठिन होता है तथा माँग को सीमित करने के लिए जो प्रयास किये जाते हैं, उनका प्रभावशाली होना नैतिक चरित्र के न्यून स्तर के कारण सन्देहजनक होता है। ऐसी परिस्थिति में पूर्ति की ओर ठोस कार्यवाहियाँ करना उचित है। पूर्ति में वृद्धि आयात एवं उत्पादन वृद्धि द्वारा करने के लिए प्रभावशाली एवं गतिशील कार्यवाहियाँ कर तथा आधारभूत उपभोक्ता वस्तुओं के विशेषकर खाद्यान्न, वस्त्र आदि जिन पर जनसमुदाय की आय का अधिक भाग व्यय होता है, उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि कर ही की जा सकती है। भारत जैसे राष्ट्र में जहाँ जनसमुदाय का न्यून जीवन-स्तर है तथा अधिकतर जनसंख्या अपनी व्यक्तिगत आय का अधिकांश खाद्यान्न पर व्यय करता है नियोजन की सफलता एवं मूल्य नियमन-नीति दोनों खाद्यान्नों की पूर्ति पर निर्भर है। खाद्यान्न एवं कृषि उत्पादन में कमी होने पर भारत की अर्थ-व्यवस्था छिन्न भिन्न हो जाती है तथा देश के आन्तरिक एवं विदेशी—दोनों ही साधनों में अनुमान की तुलना में अत्यन्त कमी हो जाती है। कृषि उत्पादन में कमी होने पर एक ओर, खाद्यान्न एवं कच्चे माल के आयात हेतु अधिक विदेशी विनिमय की आवश्यकता होती है तथा दूसरी ओर कृषि उत्पादन के निर्यात में कमी होने से विदेशी विनिमय का उपार्जन कम होता है। इस प्रकार उपलब्ध विदेशी साधनों द्वारा योजना के कार्यक्रमों के लिए आवश्यक पूँजीगत वस्तुएँ आयात करना असम्भव हो जाता है। इसके साथ ही, खाद्यान्न एवं कच्चे माल का उत्पादन कम होने से जनसंख्या के एक बड़े भाग की आय कम हो जाती है और औद्योगिक संस्थाओं के लाभ पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिससे विकास के लिए कर, बचत एवं ऋण के रूप

में अनुमानित राशियाँ प्राप्त नहीं हो सकती हैं। खाद्यान्नों एवं कच्चे माल के उत्पादन में कमी होने से इनके मूल्यों में वृद्धि हो जाती है, जिसके फलस्वरूप कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के मूल्यों में भी वृद्धि हो जाती है और इस प्रकार अर्थ-व्यवस्था के सामान्य मूल्य स्तर में वृद्धि होती है। उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मूल्य नियमन नीति का आधार खाद्यान्न एवं कच्चे माल की पूर्ति में पर्याप्त वृद्धि करना होना चाहिए।

मूल्य नियमन-नीति के उद्देश्य

विकासोन्मुख अर्थ-व्यवस्था में मूल्य नियमन नीति द्वारा निम्न उद्देश्यों की पूर्ति करना आवश्यक होता है—

(१) मूल्य नियमन नीति द्वारा योजना की प्राथमिकताओं एवं लक्ष्यों के अनुकूल ही मूल्यों में परिवर्तन होने का आश्वासन प्राप्त करना।

(२) इसके द्वारा कम आय वाले लोगों द्वारा उपयोग की जाने वाली आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों की अधिक वृद्धि को रोकना।

(३) मुद्रा-स्फीति की प्रवृत्तियों पर रोक लगाना जिससे मुद्रा स्फीति के दोषों को रोकने में सहायता मिल सके।

उपर्युक्त तीनों ही उद्देश्य एक दूसरे से घनिष्ट रूप में सम्बन्धित हैं और मूल्य नियमन नीति द्वारा तीनों ही उद्देश्यों की पूर्ति एक साथ होती रहती है।

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था में मूल्य-नीति

अल्प विकसित राष्ट्रों की नियोजित अर्थ व्यवस्था में समन्वित मूल्य नियमन नीति एक आवश्यक लक्षण है। मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत इसकी और भी अधिक आवश्यकता पड़ती है। मिश्रित अर्थ व्यवस्था में निजी क्षेत्र तथा स्वतन्त्र बाजार का सर्वथा लोप नहीं किया जाता है जिसके कारण बाजार के उच्चावचन से घटक मूल्यों पर प्रभाव डालते हैं। निजी व्यवसायी सदैव बढ़ते हुए मूल्यों का अधिक लाभ उठाना चाहता है। वह वस्तुओं की अवास्तविक कमी का वातावरण उत्पन्न करने में सदैव तत्पर रहता है। ऐसी परिस्थितियों में योजना अधिकारी की बड़ी तत्परता से मूल्यों पर नियन्त्रण रखना आवश्यक होता है। मूल्यों की अधिक वृद्धि में केवल जनसाधारण को ही कठिनाई नहीं वरन् योजना के समस्त आँकड़े लक्ष्य व्यय एवं आय सम्बन्धी अनुमान गड़बड़ हो जाते हैं और योजना पूर्णरूपेण डाँवाडोल पड़ती है।

इसी कारण मिश्रित अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत योजना अधिकारी को मूल्यों के प्रति अत्यधिक सतर्कता रखनी पड़ती है। मूल्य स्तर को नियन्त्रित करने हेतु बहुत सी मौद्रिक एवं वित्तीय कार्यवाहियों का उपयोग किया जाता है जिनके द्वारा जनसमुदाय की आय की वृद्धि को या तो उपभोग पर व्यय करने से रोक दिया जाता है या फिर उपभोक्ता वस्तुओं की पूर्ति में आय की वृद्धि के अनुरूप वृद्धि की जाती है। प्रथम क्रिया

को हम वृहद् अर्थशास्त्रीय (Macro Economics) क्रिया तथा दूसरी क्रिया को सकुचित अर्थशास्त्रीय (Micro Economics) क्रिया कह सकते हैं।

अतिरिक्त आय के व्यय करने पर प्रतिबन्ध

वृहद् अर्थशास्त्रीय क्रियाओ के अन्तर्गत मौद्रिक नीति को इस प्रकार सचालित किया जाता है कि अवाछनीय क्षेत्रो म किए जाने वाले व्यय तथा उससे उपार्जित होने वाली आय को प्रतिबन्धित किया जा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ब्याज की दरो म समायोजन तथा साख को चुनी हुई आर्थिक क्रियाओ एव क्षेत्रो का ही प्रदान करने का आयोजन किया जाता है। दूसरी ओर वित्तीय नीति (Fiscal Policy) द्वारा विकास कार्यक्रमो मे अधिक विनियोजन से उदय हुई अधिक आय को अवाछनीय क्रियाओ पर व्यय करने से रोका जाता है। इसके लिए उचित करारोपण किया जाता है। करारोपण द्वारा दुर्लभ उपभोक्ता वस्तुओ एव सेवाओ पर किए जाने वाले व्यय को प्रतिबन्धित किया जाता है। इसके अतिरिक्त मौद्रिक एव वित्तीय नीतियों का सचालन इस प्रकार किया जाता है कि जन समुदाय म अधिक से अधिक आय बचत की जाय। विनियोजित बचत एव मुद्रा का सग्रह दोनो ही मूल्य स्तर को बढ़ने से रोकते है। यदि बचत किया गया धन उत्पादन क्रियाओ म विनियोजित कर दिया जाता है तो एक ओर यह दीर्घ काल में राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि म सहायक होता है और दूसरी ओर आय का वह भाग जो विनियोजित कर दिया जाता है, उपभोग पर व्यय नही किया जाता है और इस प्रकार आय की वृद्धि से उपभोक्ता वस्तुओ की माँग एव मूल्यो म वृद्धि नहीं होती है। जब अतिरिक्त आय से प्राप्त धन को विनियोजित न करके उसे सग्रह कर लिया जाता है तो भी उपभोक्ता वस्तुओ की माँग मे वृद्धि नही होती है और मूल्य स्तर म कोई विशेष परिवर्तन नही होता है परन्तु अतिरिक्त आय का धन अधिक विनियोजन एव उत्पादन वृद्धि के लिए उपलब्ध नही होता है।

अतिरिक्त आय के अनुरूप उत्पादन वृद्धि

सकुचित अर्थशास्त्रीय (Micro Economics) क्रियाओ के अन्तर्गत अर्थ व्यवस्था म आधारभूत विनियोजन वस्तुओ की उत्पादन-वृद्धि के साथ, उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन म इतनी वृद्धि करने के प्रयत्न किए जाते हैं कि वह अतिरिक्त विनियोजन के फलस्वरूप बढी हुई आय एव उपभोग-व्यय-वृद्धि के अनुरूप हो। इस कार्य के लिए एक ओर साधनो को आर्थिक प्रगति हेतु आवश्यक विनियोजन वस्तुओ एव आधारभूत उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन के लिए उपयोग करने को प्रोत्साहित किया जाता है और इन वस्तुओ के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं म साधनों के उपयोग को हतोत्साहित किया जाता है। यह प्रोत्साहन एव हतोत्साहन मूल्य-नीति द्वारा किया जा सकता है परन्तु अनावश्यक वस्तुओ के मूल्यों म वृद्धि करने से अनावश्यक उपभोग

से बचे हुए साधन उत्पादक विनियोजन के लिए उपलब्ध करना कठिन होता है और इस दूसरी क्रिया के लिए मौद्रिक एवं वित्तीय नीति का उपयोग किया जाता है। इसी प्रकार बढ़ते हुए मूल्यों द्वारा यदि आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन का प्रोत्साहन दिया जाय तो वांछनीय विनियोजन-वस्तुओं की माँग में अवांछनीय कमी हो सकती है और उपभोक्ता वस्तुओं की उत्पादन लागत में अनुचित वृद्धि होना सम्भावित हो सकता है। इस प्रकार मूल्य-वृद्धि द्वारा प्रोत्साहन एवं हतोत्साहन के फलस्वरूप, वांछनीय उद्देश्यों की पूर्ति नहीं की जा सकती है। इसलिए मूल्य-अस्थिरता के भार को सीमित करने का प्रयत्न किया जाता है।

आवश्यक वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन को मूल्य-अस्थिरता के क्षेत्र से पृथक् करने के लिए इनका उत्पादन सरकारी क्षेत्र में किया जाता है। सरकारी क्षेत्र में उत्पादन कल्याण के लिए किया जाता है और इसका अन्तिम लक्ष्य लाभोपार्जन नहीं होता है। जिन क्षेत्रों में सरकार इनका उत्पादन अपने हाथों में नहीं ले सकती हो, वहाँ कर-सम्बन्धी छूटों से आवश्यक वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन को प्रोत्साहित किया जाता है। जब कर-सम्बन्धी छूटों द्वारा भी इन वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहित न किया जा सकता हो और उत्पादकों को अधिक मूल्य प्रदान किया जाना आवश्यक हो तो मूल्य-स्तर को बढ़ने से रोकने के लिए ऐसे क्षेत्रों को विक्रय-अनुदान (Sales Subsidies) दी जाती है जिसके द्वारा विक्रेता को मूल्य का कुछ भाग सरकार प्रदान करती है। आधारभूत उपभोक्ता-वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहित करने हेतु मूल्य-वृद्धि के स्थान पर उत्पादन-लागत के घटकों के मूल्यों को सीमित रखना चाहिए। जब इस क्रिया द्वारा भी आधारभूत उपभोक्ता-वस्तुओं के मूल्य की वृद्धि को नियन्त्रित न किया जा सकता हो तो फिर इन वस्तुओं का मूल्य नियन्त्रण (Price Control) एवं वितरण राज्य को अपने हाथ में ले लेना चाहिए।

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था में मूल्य-नीति के सिद्धान्त

(१) विकासोन्मुख अर्थ-व्यवस्था में विनियोजन एवं निर्माण व्यय वर्ष प्रति वर्ष बढ़ते रहते हैं, जिसके फलस्वरूप जनसाधारण की आय में वृद्धि होती है। इस अतिरिक्त आय के उस सम्भावित भाग, जो आय की वृद्धि के फलस्वरूप अतिरिक्त मुद्रासंग्रह में उपयोग हो जाता है, छोड़कर शेष के अनुरूप उपभोक्ता-वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि होनी चाहिए। यदि इस शेष आय का कुछ भाग बचत एवं कर में प्राप्त कर लिये जायें तो अन्तिम शेष के अनुरूप उपभोक्ता-वस्तुओं में वृद्धि होनी चाहिए, अर्थात् उत्पादन में वृद्धि करते समय भी यह विचार करना होगा कि कुल उत्पादन की वृद्धि में से (अ) तैयार वस्तुओं का भाग, जो विक्रय के लिए उपलब्ध नहीं होता, (ब) अर्द्ध-निर्मित वस्तुएँ तथा (स) विनियोजन-वस्तुएँ घटा देनी चाहिए क्योंकि केवल शेष वस्तुएँ ही आय के शेष को आच्छादित करने के लिए उपलब्ध होती हैं। इस विचार को हम आगे दिये हुए सूत्र से समझ सकते हैं—

आय की वृद्धि—(धन का संग्रह + बचत + कर) = उत्पादन की वृद्धि —(वस्तुओं का संग्रह + अर्द्ध निर्मित वस्तुएं + विनियोजन-वस्तुएं)

इस प्रकार आय की वृद्धि का शेष जब उत्पादन की वृद्धि के शेष के बराबर हो तो मूल्यों में वृद्धि नहीं होगी। राज्य द्वारा इसलिए यह प्रयत्न करने चाहिए कि आय की वृद्धि का शेष कम रहे और उत्पादन का शेष यथासम्भव बढ़ता रहे।

(२) प्रत्येक क्षेत्र (Sector) अथवा समूह की आय की वृद्धि के अनुरूप उस क्षेत्र अथवा समूह के उत्पादन में वृद्धि होनी चाहिए अथवा इस आय की वृद्धि को दूसरे क्षेत्र, एवं समूहों में हस्तान्तरित करके इसकी आय की वृद्धि उत्पादन की वृद्धि के अनुरूप कर देनी चाहिए।

(३) यथासम्भव बचत को विनियोजन की वृद्धि के समान करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

(४) आधारभूत उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्यों को नियन्त्रित करने का प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि इन वस्तुओं के मूल्य ही अन्य अनावश्यक वस्तुओं को नियन्त्रित करते हैं। मूल्यों के सामान्य स्तर को नियन्त्रित करने में कोई विशेष लाभ नहीं होता है क्योंकि जब तक आधारभूत उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्य नियन्त्रित नहीं होते हैं मूल्य नीति प्रभावशाली नहीं हो सकती है। यदि आधारभूत वस्तुओं के उत्पादन वृद्धि हेतु बढ़ते हुए मूल्यों का प्रोत्साहन देना आवश्यक हो तो मूल्यों को कुछ सीमा तक बढ़ने देना चाहिए। मूल्य नियन्त्रण वितरण पर नियन्त्रण एवं मूल्य प्रोत्साहन इन तीनों विधियों का सम्मिलित उपयोग मूल्य नियमन के लिए किया जाना चाहिए।

(५) जब मूल्यों एवं वितरण पर नियन्त्रण किया जाय तो जनसाधारण में नियन्त्रित सप्लाई द्वारा यह आश्वासन उत्पन्न करना चाहिए कि उन्हें उनकी आवश्यकतानुसार वस्तुएं भविष्य में मिलती रहेंगी है। उनमें न्यूनता की मनोवैज्ञानिक भावना को जाग्रत नहीं होने देना चाहिए क्योंकि इस भावना के जाग्रत होने पर वस्तुओं की पूर्ति द्वारा वस्तुओं की उचित माँग की ही पूर्ति नहीं करना होती है अपितु मनोवैज्ञानिक माँग की भी पूर्ति करना होती है। न्यूनता के वातावरण में उपभोक्ता व्यापारी एवं उत्पादक सभी में वस्तुओं को आवश्यकता से अधिक संग्रह करने की भावना होती है जिसके फलस्वरूप कृत्रिम न्यूनता का बोलबाला हो जाता है और मूल्य निरन्तर बढ़ते रहते हैं। इस प्रकार राज्य को भरसक प्रयत्न करना चाहिए कि जन समुदाय में न्यूनता की भावना सुदृढ़ न होने पाये और यह सम्भव तब ही हो सकता है जब नियन्त्रित वितरण की कुशल व्यवस्था हो और आधारभूत वस्तुएं नियन्त्रित मूल्य पर आवश्यकतानुसार सभी वर्गों को उपलब्ध करायी जाती रहें।

(६) अस्थायी एवं आकस्मिक मूल्य वृद्धि को नियन्त्रित करने हेतु बफर स्टॉक (Buffer Stock) का आयोजन किया जाना चाहिए। बफर-स्टाक द्वारा राज्य-पूर्ति में माँगानुसार अल्प काल में वृद्धि कर सकता है और अल्पकालीन एवं अस्थायी मूल्य-

वृद्धि को रोक सकता है। अल्पकालीन एवं अस्थायी मूल्य वृद्धियाँ प्रभावशाली नियंत्रण के फलस्वरूप, स्थायित्व ग्रहण करने लगती हैं। बफर-स्टॉक द्वारा दीर्घकालीन एवं स्थायी मूल्य वृद्धि तथा उत्पादन की कमी का निवारण नहीं किया जा सकता है।

उपर्युक्त विवरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि मिश्रित अर्थ-व्यवस्था मूल्य प्रोत्साहन (Price Incentive) की खुली छूट नहीं दी जाती है, परन्तु मूल्य प्रोत्साहन को चुने हुए क्षेत्रों विशेषकर आधारभूत उपभोक्ता-वस्तुओं के क्षेत्र तथा उन क्षेत्रों में, जो निजी क्षेत्र में संचालित हों और जिन पर राज्य पूर्ण नियंत्रण न कर सकता हो के लिए मूल्य प्रोत्साहन अनिवार्य होता है।

साम्यवादी अर्थ-व्यवस्था में मूल्य-नीति

साम्यवाद में अर्घ के नियम (Law of Value) का उतना महत्व नहीं होता, जितना पूँजीवाद में। साम्यवाद में उत्पादन के साधनों और श्रम-शक्ति का बँटवारा अर्घ के सिद्धान्त के आधार पर नहीं होता प्रत्युत योजनाकर्त्ताओं द्वारा होता है। वस्तु के अर्घ एवं मूल्य में निश्चित सम्बन्ध होना आवश्यक नहीं है क्योंकि मूल्य-निर्धारण करते समय समाज की आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इसलिए उत्पादन एवं उपभोक्ता की वस्तुओं के मूल्यों में काफी अन्तर पाया जाता है। मूल्य पर माँग एवं पूर्ति का प्रभाव अत्यन्त सीमित रहता है। वस्तुओं की माँग एवं पूर्ति का सन्तुलन जनता की माँग पर नहीं छोड़ा जाता है इसलिए माँग का इतना प्रभाव नहीं होता कि वह प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन की मात्रा निर्धारित करे। पारस्परिक सन्तुलन हेतु फुटकर मूल्य के स्थान पर राज्य अधिकारियों द्वारा संचालित उत्पादन से संचित किया जाता है। उत्पादन की मात्रा माँग से सदैव कम रखी जाती है जिससे माँग और पूर्ति का सन्तुलन कभी बिगड़ने न पाये। उपभोक्ता-वस्तुओं की मात्रा और माँग में अधिक से अधिक अन्तर रखा जाता है। राष्ट्रीय साधनों को उपभोग के क्षेत्र से हटाकर भारी उद्योगों में लगाने की यह प्रचलित विधि है। मूल्य के स्तर में स्थिरता रखी जाती है। जनता की क्रय शक्ति एवं वस्तुओं की पूर्ति में सन्तुलन बनाए रखा जाता है। इस सन्तुलन की गड़बड़ी को अधिनियम करारोपण तथा राशनिंग द्वारा ठीक कर दिया जाता है।

साम्यवादी राष्ट्रों में मूल्य नियमन की समस्या इतनी गम्भीर नहीं होती। मूल्यों को अपने आर्थिक कार्य— माँग एवं पूर्ति—में सन्तुलन स्थापित करने का अवसर नहीं दिया जाता है। समस्त उत्पादन के घटक एवं उत्पादक तथा उपभोक्ता-वस्तुओं की पूर्ति एवं उत्पादन राज्य के हाथ में होता है। राज्य को मूल्य नियमन की समस्या का सामना नहीं करना पड़ता है क्योंकि बाजार के किसी भी घटक का मूल्य पर प्रभाव नहीं डालने दिया जाता है। साम्यवादी राष्ट्रों में राज्य को स्वयं मूल्य-निर्धारण करना होता है अतः मूल्य नियमन का प्रश्न ही नहीं उठता है।

भारतीय योजनाओं में मूल्य नीति एवं स्तर

प्रथम एवं द्वितीय योजना में मूल्य नीति

भारत में नियोजित अर्थ व्यवस्था के प्रारम्भ से ही मूल्य नियमन को विशेष महत्व दिया गया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्त में प्रारम्भ की तुलना में थोक मूल्यों के निर्देशांक १६% कम रह थे। कोरिया का युद्ध समाप्त होने एवं मुद्रा स्फीति को कम करने वाली कार्यवाहियों के फलस्वरूप सन् १९५२ में थोक मूल्य निर्देशांक में कमी हुई और अगले दो वर्ष तक मूल्यों में कुछ स्थिरता रही। सन् १९५३-५४ की बहुत अच्छी फसल के कारण मूल्यों में अत्यधिक कमी हुई। जुलाई सन् १९५५ से मूल्यों में वृद्धि होना प्रारम्भ हो गया।

प्रथम योजना के मूल्यों के इन उच्चावचनों के वातावरण में राज्य ने निश्चय किया कि उपस्थित वातावरण के अनुकूल यथोचित मूल्य निर्धारित किये जाय और मूल्यनियन्त्रण करनीति द्वारा एवं अन्य कार्यवाहियों द्वारा मूल्यों को इस निर्धारित सीमा से नीचे न गिरने दिया जाय और खाद्यान्नों के उत्पादक मूल्यों के परिवर्तनों से कोई हानि न होने दी जाय। श्रमिकों के रहन सहन की लागत का निर्देशांक (सन् १९४९=१००) मार्च सन् १९५१ में १०३ था जो मार्च सन् १९५६ में घटकर १०० रह गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में खाद्य एवं अन्य सामग्री के उचित सन्तुलन बनाये रखने पर विशेष जोर दिया गया। योजनाकाल में मूल्यों को विभिन्न प्रकार की फसलों को उगाने के सम्बन्ध में प्रोत्साहन प्रदान करता था। खाद्यान्नों के उत्पादन को पर्याप्त मात्रा में बढ़ाने हेतु इनके मूल्यों का उचित स्तर पर बनाये रखना आवश्यक था जिसमें अन्य फसलों की तुलना में उत्पादक को खाद्यान्नों की फसल से अधिक लाभ प्राप्त हो सके और वह अन्य फसलों की ओर अधिक आकर्षित न हो। मूल्यों से अत्यधिक उच्चा-वचन को रोकने हेतु खाद्यान्नों के बफर स्टाक का निर्माण आयात एवं निर्यात के कोटे (Quota) की मात्रा की समय के पूर्व घोषणा अग्रिम सौदा (Forward Market Operations) पर नियन्त्रण एवं अन्य वित्तीय तथा साखनियन्त्रण-कार्यवाहियों का आयोजन द्वितीय योजना में किया था। द्वितीय योजनाकाल में मूल्यों में निरन्तर वृद्धि होती रही। सामान्य थोक मूल्य निर्देशांक में योजनाकाल में ३३% खाने की सामग्री के मूल्य निर्देशांक में ४८% औद्योगिक कच्चे माल में ४७% निर्मित वस्तुओं में २३% से भी अधिक वृद्धि हुई। मूल्यों की निरन्तर वृद्धि के दो मुख्य कारण थे—प्रथम जनसंख्या की वृद्धि एवं द्वितीय मौद्रिक आय की वृद्धि। इन दोनों ही कारणों से उपभोक्ता-वस्तुओं की माँग में वृद्धि हुई परन्तु पूर्ति में अधिक वृद्धि न हो सकी। सन् १९५७-५८ में खाद्यान्नों का उत्पादन पिछले वर्ष की तुलना में लगभग ६० लाख टन कम और सन् १९५९-६० में पिछले वर्ष की तुलना में ४० लाख टन कम था। इसी वर्ष में कपास के उत्पादन में १८% जूट के उत्पादन में १२% तथा तिलहन के

उत्पादन मे १२% की कमी हुई। कृषि उत्पादन की इस कमी की प्रतिक्रिया के कारण मूल्यों मे सामान्य वृद्धि होना स्वाभाविक था। द्वितीय योजनाकाल में श्रमिकों के रहन सहन की लागत का निर्देशांक (१९४९=१००) योजना के प्रारम्भ म ९६ था जो योजना के अन्त म १२४ हो गया।

द्वितीय योजना के अनुभवों म यह स्पष्ट हो गया कि उद्योग, खनिज एव यातायात मे अधिक विनियोजन होने पर मूल्यों की वृद्धि को रोकने के लिए कृषि उत्पादन म पर्याप्त वृद्धि करना आवश्यक होगा परन्तु कृषि उत्पादन मानसून पर निर्भर रहता है जो एक अनिश्चित घटक है और जिस पर कोई नियन्त्रण सम्भव नहीं है। ऐसी परिस्थिति म देश का शीघ्र औद्योगीकरण यथोचित मूल्य स्तर के साथ करने के लिए कृषि उत्पादन का पर्याप्त सचय राज्य को रखना चाहिए जिसम मूल्यों के मौसमी परिवर्तनों पर राज्य नियन्त्रण रख सके। प्रथम एव द्वितीय योजनाकाल म थोक मूल्य निर्देशांक म परिवर्तन निम्न तालिका म दर्शाये गये हैं—

तालिका स० ११६—प्रथम एव द्वितीय योजनाकाल मे मूल्यों मे परिवर्तन
(आधार १९५२ ५३=१००) थोक मूल्य निर्देशांक

वस्तु	प्रथम योजना			द्वितीय योजना		
	१९५१-५२	१९५५ ५६	परिवर्तन का प्रतिशत	१९५५ ५६	१९६० ६१	परिवर्तन का प्रतिशत
खाद्य पदार्थ	१११ ०	८६ ६	—२२	८६ ६	१२० ०	+४८
शराब एव तम्बाकू	१२१ ६	८१ ०	—३३	८१ ०	१०६ ६	—२६
ईंधन, शक्ति, प्रकाश आदि	९६ ५	९४ २	—१३	९५ २	१२० २	—२६
औद्योगिक कच्चा माल	१८८ ४	९९ ०	—३०	९९ ०	१६१ ४	—६३
निर्मित वस्तुएं	११९ ०	९९ ६	—१६	९९ ६	१२२ ८	—२३
समस्त वस्तुएँ	११० ०	९२ ४	—१६	९२ ४	१२८ ७	+३३

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि द्वितीय योजनाकाल म समस्त वस्तुओं के मूल्य म वृद्धि हुई है और राज्य द्वारा सचालित मूल्य नियमन-नीति को विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। द्वितीय योजनाकाल मे मूल्य नियमन नीति के असफल होने के मुख्य कारण इस प्रकार हैं—

(१) मूल्य नियमन नीति के सचालन में प्रभावशीलता की कमी थी।

(२) मूल्य नियमन नीति से सम्बन्धित कार्यवाहियों मे पारस्परिक समन्वय की कमी थी। अर्थ व्यवस्था की विभिन्न केन्द्रों पर कार्यवाहियाँ नहीं की गयीं और समन्वित नीति का सचालन नहीं किया गया। मूल्य नियमन नीति का सचालन-क्षेत्र केवल खाद्यान्नों, व्यापारिक फसलों, कुछ क्षेत्रों एव कुछ व्यवहारों तक ही सीमित था।

(३) मूल्य नियमन नीति को दीर्घकालीन आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित नहीं किया गया और इसे योजना के अन्य नीतियों के साथ प्रारम्भ से ही समन्वित नहीं किया गया था।

ततीय योजना में मूल्य-नीति

तृतीय पचवर्षीय योजना में मूल्य नियमन नीति की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। साधारणतः तृतीय योजना के अन्तर्गत किए गये विनियोजन से मूल्यों में वृद्धि होना स्वाभाविक होगा। मूल्य नियमन नीति द्वारा इस वृद्धि को सीमित रखकर आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्यों को विशेषरूप से स्थिर रखने का प्रयत्न किया जायगा। मूल्यों की गति विभिन्न घटकों पर निर्भर होती है जिनमें से कुछ समस्त माग पर प्रभाव डालते हैं तथा कुछ पृथक पृथक वस्तुओं की माग एवं पूर्ति द्वारा संचालित होते हैं इसलिए मूल्य नियमन नीति को राजकोषीय कार्यवाहियों मौद्रिक एवं व्यापारिक नीतियों तथा आवश्यकता पड़ने पर प्रत्यक्ष वितरण एवं नियन्त्रण के द्वारा बहुत सी अवस्थाओं को प्रभावित करना होता है। इन समस्त क्षेत्रों में सामूहिक प्रयासों द्वारा ही सापेक्षिक स्थिर मूल्यों पर आर्थिक विकास सम्भव हो सकता है। मूल्यों की स्थिरता वास्तव में एक उद्देश्य एवं योजना की सफलता की एक आवश्यक शर्त दोनों ही है। द्वितीय योजना के अनुभवों से यह स्पष्ट हो गया है कि मूल्यों की वृद्धि द्वारा योजनाओं के कार्यक्रम की सफलता पर कितना दुष्प्रभाव होता है। मूल्यों की वृद्धि से एक ओर योजना की निर्धारित राशि द्वारा किए गये कार्यक्रमों को पूर्णतः सफल नहीं बनाया जा सकता तथा दूसरी ओर जीवन निर्वाह की लागत बढ़ जाने से कारखानों में हड़ताल आदि के कारण उत्पादन में भी पर्याप्त वृद्धि नहीं होती। द्वितीय पचवर्षीय योजना में सुदृढ़ मूल्य नियमन नीति को विशेष महत्व नहीं दिया गया था। यह बात अवश्य मान ली गया था कि द्वितीय योजनाकाल में मुद्रा स्फीति के दबाव के नियन्त्रण करने की समस्या उपस्थित होगी तथा विकास कार्यक्रमों के हेतु विनियोजन की नवीन माँगों की तुलना में पूर्ति कम होना स्वाभाविक ही होगा। फिर भी योजना आयोग ने यह विचार प्रकट किया कि कठिनाइयों के भय से विकास कार्यक्रमों को छोटा अथवा कम नहीं किया जाना चाहिए। इस प्रकार द्वितीय योजना के प्रारम्भ में विकास को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया तथा मुद्रा स्फीति पर नियन्त्रण करने एवं मूल्यों की स्थिरता को आधारभूत घटक का स्थान नहीं दिया गया।

द्वितीय योजना एवं तृतीय योजना के प्रारम्भ के वातावरण में बहुत अन्तर था। द्वितीय योजनाकाल में मूल्यों में ३५% वृद्धि हो गयी थी। तृतीय योजनाकाल में मुद्रा स्फीति के दबाव को रोकने के लिए अधिक आयात भी नहीं किया जा सकता था क्योंकि विदेशी विनिमय का सचय नहीं था। रुपये के वास्तविक मूल्य में इतनी कमी हो गयी थी कि जनता रुपये के स्थान पर वस्तुएँ रखना पसन्द करने लगी थी। मूल्यों में वृद्धि होने के कारण श्रमिक वर्ग के जीवन स्तर की लागत में वृद्धि हो गयी थी

तथा सरकारीय एवं निजी दोनों ही प्रकार के कारखानों में हड़ताल की धमकियों का बोलबाला था। इन सब परिवर्तित परिस्थितियों का सामना करने के लिए सुदृढ़ मूल्य-नियमन-नीति अत्यन्त आवश्यक थी। स्थिर-मूल्य-नीति का यह तात्पर्य कदापि नहीं होता है कि बाजार-भाव में मूल्यों में कोई परिवर्तन न होने दिया जाय। विकास की ओर अग्रसर अर्थ-व्यवस्था में जिसमें १० ४०० करोड़ रु० का विनियोजन करने का लक्ष्य था, जो राष्ट्रीय आय का लगभग १६% था तथा जहाँ आन्तरिक बचत राष्ट्रीय आय की केवल ८% थी—मूल्यों की वृद्धि अनिवार्य थी परन्तु यह वृद्धि मर्यादित होनी चाहिए, अर्थात् ५ वर्ष में ७ या ८% मूल्यों की वृद्धि को मर्यादित कहा जा सकता था। आवश्यक उपभोक्ता-वस्तुओं के मूल्यों में अधिक वृद्धि रोकने के लिए मूल्य नियंत्रण नीति की आवश्यकता थी।

उपर्युक्त विचारधारा से यह स्पष्ट है कि मूल्य-वृद्धि का कारण नियोजित अर्थ-व्यवस्था के विस्तृत विनियोजन-कार्यक्रम होते हैं। जब राष्ट्रीय आय के बड़े भाग का उत्पादक पूँजीगत एवं उत्पादक वस्तुओं के उत्पादन में विनियोजन किया जाता है तो उपभोक्ता-वस्तुओं के उत्पादन में एक ओर पर्याप्त वृद्धि नहीं होती और दूसरी ओर अधिक विनियोजन द्वारा जनसाधारण की मौद्रिक आय में वृद्धि के कारण उपभोक्ता-वस्तुओं की माँग में वृद्धि हो जाती है। यदि विनियोजन एवं उपभोक्ता-वस्तुओं के उत्पादन में उचित अनुपात बना रहे तो मूल्यों की वृद्धि गम्भीर रूप ग्रहण नहीं कर सकती है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में ३ ३६० करोड़ रु० का विनियोजन किया गया और उत्पादन की वृद्धि का प्रतिशत ३०.५ रहा। इस प्रकार विनियोजन की वृद्धि राशि की तुलना में उत्पादन अधिक हुआ जिसके फलस्वरूप मूल्यों में ३८% की कमी हुई। द्वितीय योजना में विनियोजन की राशि ६ ७५० करोड़ रु० प्रथम योजना की तुलना में दुगुनी थी जबकि उत्पादन की वृद्धि केवल २७.५% हुई। वास्तव में, उत्पादन की वृद्धि प्रथम योजना के आँकड़ों के आधार पर लगभग ६०% होनी चाहिए थी, द्वितीय योजना में उत्पादन की वृद्धि कम होने के कारण मूल्यों में ३०% की वृद्धि हुई। तृतीय योजना में प्रथम एवं द्वितीय योजना के सामूहिक आँकड़ों को आधार माना जा सकता है। तृतीय योजना का विनियोजन प्रथम एवं द्वितीय योजना के सम्मिलित विनियोजन के लगभग बराबर रखा गया। प्रथम एवं द्वितीय योजना के सम्मिलित विनियोजन १० ११० करोड़ रु० पर उत्पादन में दस वर्षों में वृद्धि ३३.५% हुई। तृतीय योजना में १० ४०० करोड़ रु० के विनियोजन पर उत्पादन में केवल ५०% की वृद्धि होने का अनुमान है। प्रथम एवं द्वितीय योजना के सम्मिलित विनियोजन १० ११० करोड़ रु० एवं उत्पादन की वृद्धि का ३३.५% होने पर दस वर्षों में मूल्यों की वृद्धि १४% है। तृतीय योजना में जब १० ४०० करोड़ रु० के विनियोजन पर उत्पादन में जब केवल ५०% की वृद्धि का अनुमान था तो मूल्यों में इस अनुपात में इससे भी अधिक वृद्धि की सम्भावना की जा सकती थी।

परन्तु मूल्यों की वृद्धि का विनियोजन की राशि पर ही आधारित नहीं किया जा सकता है। विनियोजन का प्रकार एवं विनियोजन का अर्थ प्रबन्धन भी मूल्यों पर प्रभाव डालता रहता है। भारत में मूल्यों का स्तर कृषि उत्पादन की पूर्ति पर बड़ी सीमा तक निर्भर रहता है। कृषि उत्पादन के मूल्यों के उच्चावचनों की प्रतिक्रिया अन्य वस्तुओं के मूल्यों पर पड़ती रहती है। तृतीय योजना में इसी कारण कृषि उत्पादन में आत्म निर्भरता का लक्ष्य रखा गया। कृषि उत्पादन की वृद्धि के कार्यक्रमों को तृतीय योजना में अधिक महत्व दिया गया। इसके अतिरिक्त तृतीय योजना के अर्थ प्रबन्धन में मूलभूत परिवर्तन किये गये। द्वितीय योजना के समस्त व्यय ४,६०० करोड़ रु० में से ९४८ करोड़ रु० अर्थात् २० ६% हीनार्थ प्रबन्धन से प्राप्त हुआ। तृतीय योजना में सहकारी क्षेत्र के व्यय ७,५०० करोड़ रु० में से केवल ५५० करोड़ रु० अर्थात् ७ ३% हीनार्थ प्रबन्धन से प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया। इस कारण मूल्यों पर मुद्रा प्रसार का इतना अधिक दबाव तृतीय योजना में न रहने का अनुमान था जितना द्वितीय योजना में रहा था। दूसरी ओर द्वितीय योजना में विदेशी विनिमय के संचयों का उपयोग करके मुद्रा प्रसार के दबाव को कम किया जा सकता था परन्तु तृतीय योजना में यह संचय न्यूनतम सीमा पर आ गये हैं और अब मुद्रा प्रसार के दबाव को रोकने का यह साधन भी उपलब्ध नहीं हो सकता था। इसी प्रकार द्वितीय योजना के ६,७५० करोड़ रु० के विनियोजन में २,१०० करोड़ रु० के विदेशी विनिमय की आवश्यकता पड़ी थी जबकि द्वितीय योजना के प्रारम्भ में इससे आधी राशि के विदेशी विनिमय की आवश्यकता का अनुमान था। तृतीय योजना के १०,४०० करोड़ रु० के विनियोजन में २,६०० करोड़ रु० के विदेशी विनिमय की आवश्यकता का अनुमान लगाया गया। विदेशी विनिमय की आवश्यकता अनुमान से अधिक हो सकती थी। अधिक विदेशी विनिमय की आवश्यकता की पूर्ति करने हेतु आयात को कम और निर्यात को बढ़ाना आवश्यक होता है। आयात की कमी एवं निर्यात की वृद्धि से अर्थ-व्यवस्था में वस्तुओं की कमी होना स्वाभाविक होता है और इस प्रकार यह घटक भी मूल्यों की वृद्धि का प्रेरक होता है। विदेशी सहायता की पर्याप्त मात्रा में उपलब्धि होने पर अर्थ-व्यवस्था में वस्तुओं की पूर्ति में वृद्धि हो सकती है और मूल्यों की वृद्धि को भी रोका जा सकता है। इस प्रकार विदेशी सहायता की उपलब्धि मूल्य नियमन नीति की सफलता पर प्रभाव डालती रहेगी। इन सब विचारों के आधार पर यह कहना उचित होगा कि तृतीय योजना में मूल्य नियमन नीति का प्रभावशाली एवं समन्वित संचालन अत्यन्त आवश्यक था और इसकी सफलता पर योजना की सफलता निर्भर थी। तृतीय योजना की मूल्य नियमन नीति के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्यवाहियाँ करने का आयोजन किया गया—

(१) कर-नीति—राज्य की कर नीति द्वारा अर्थ व्यवस्था से क्रय शक्ति के

ऐसे आधिक्य को हटाना होता है, जो उपलब्ध पूर्ति के स्तर से अधिक हो। इस प्रकार कर का भार इतना होना चाहिए कि योजना के अनुकूल उपभोग को सीमित रखा जा सके। सरकारी क्षेत्र के विनियोजन के लिए आवश्यक साधन जनता से प्राप्त होने चाहिए न कि नवीन क्रय शक्ति उत्पन्न करके। वास्तव में कर नीति द्वारा उपभोग का प्रतिबंधित करना तथा बचत में प्रभावशाली गतिशीलता उत्पन्न करना होना चाहिए। सरकारी व्यवसायों को भी अपनी वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्य इस प्रकार निर्धारित करना चाहिए कि इन पर हुए विनियोजन पर पर्याप्त लाभ प्राप्त हो सकें तथा लोक-बचत (Public Saving) में पर्याप्त वृद्धि हो सके।

(२) **मौद्रिक नीति**—मौद्रिक नीति द्वारा साख पर नियन्त्रण एवं नियमन करना चाहिए। बैंक द्वारा उत्पादित साख द्वारा निजी क्षेत्र के विनियोजन को अर्थ साधन उपलब्ध होते हैं। साख पर पर्याप्त नियन्त्रण कर एक ओर, निजी क्षेत्र के विनियोजन योजना के अनुकूल रखा जा सकता और दूसरी ओर, विनियोजन के लिए उपलब्ध सीमित साधनों पर निजी क्षेत्र का अधिक दबाव नहीं हो सकेगा। सट्टे के सौदों के लिए वस्तुओं का संग्रह तथा अन्य कच्चे एवं निर्मित माल के संग्रह को हतोत्साहित किया जाय। रिजर्व बैंक के द्वारा संचालित साख नियन्त्रण-नीति के साथ साथ बैंकों द्वारा प्राप्त किये गये ऋणों के निश्चित सीमाओं से अधिक होने पर दण्डनीय ब्याज (Penal Interest) का भी आयोजन किया गया।

(३) **व्यापारिक नीति**—व्यापारिक नीति द्वारा देश की वस्तुओं की कमी को दूर किया जा सकता है परन्तु भारत में दीर्घकाल आयात को कम और निर्यात को बढ़ाने की आवश्यकता होती है। योजना के कार्यक्रमों को संचालित करने हेतु घरेलू उत्पादन के कुछ भाग को निर्यात करना आवश्यक था जिसके कारण देश में वस्तुओं की कमी होने से उपभोक्ता को अधिक मूल्य देना पड़ता।

(४) **प्रत्यक्ष वितरण एवं प्रत्यक्ष नियन्त्रण**—मौद्रिक एवं कर नीति को उचित स्वरूप देने से अर्थ-व्यवस्था में मूल्यों में स्थिरता लाना सम्भव नहीं था। कुछ क्षेत्र ऐसे थे जहाँ वितरण एवं मूल्य नियन्त्रण सम्बन्धी कार्यवाहियाँ करना आवश्यक था। मूल्य नियन्त्रण द्वारा कम पूर्ति वाली आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों को यथोचित सीमाओं के अन्दर रखा जा सकता था, जिससे अधिकतम मूल्य देने वाला ही इन वस्तुओं को प्राप्त करने में समर्थ न हो अपितु कम आय वाले लोग भी इस वस्तु का उपभोग कर सकें। दूसरी ओर कम पूर्ति वाली वस्तुओं का विभिन्न उपभोगों के लिए प्राथमिकताओं के अनुसार वितरण किया जा सकता था। वास्तव में आधारभूत अनिवार्यताओं के मूल्यों में यथोचित स्थिरता बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक था। आराम एवं विलासिताओं की वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि होने पर जनसाधारण पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है, इसलिए इनके मूल्यों का नियन्त्रित करना इतना आवश्यक नहीं होता है।

इस्पात सीमेंट, कपास शक्कर कोयला आदि के मूल्यों पर राज्य का नियन्त्रण रखने का अधिकार था। खाद के मूल्यों का सेन्ट्रल फर्टीलाइजर पूल द्वारा नियन्त्रित किया जाता था। आवश्यक वस्तुओं सम्बन्धी विधान एवं औद्योगिक विकास एवं नियमन विधान के अन्तर्गत राज्य को अन्य भी वस्तुओं के मूल्यों एवं वितरण पर नियन्त्रण करने का अधिकार था। इसके अतिरिक्त राज्य मूल्यों में समायोजन उत्पादन कर (Excise Duty) में भी परिवर्तन कर सकता था। उत्पादन कर में परिवर्तन अभी केवल बजट पास करते समय ही किए जाते हैं परन्तु अब यह बात विचाराधीन है कि उत्पादन कर में परिवर्तन आवश्यकतानुसार वर्ष में किसी भी समय करने का अधिकार राज्य को होना चाहिए।

(५) उपभोक्ता द्वारा दिए गए मूल्यों एवं उत्पादक द्वारा प्राप्त किए गए मूल्यों में भारत में बड़ा अन्तर रहता है। यह अन्तर वस्तुओं की कमी होने पर और भी बढ़ जाता है। तृतीय योजना में मध्यस्थों के लाभ को कम करने हेतु सरकारी एवं सहकारी संस्थाओं द्वारा व्यापार करने को अधिक प्रोत्साहन देने की आवश्यकता पर जोर दिया गया। मध्यस्थों के लाभ को कम करने हेतु मूल्यों के अप्राकृतिक (Artificial) ऊँचा बनाने को नियन्त्रित करना सम्भव हो सकता था।

(६) भारत की अर्थ व्यवस्था में, जहाँ कम आय वाले परिवारों की आय का अधिकतर भाग खाद्यान्नों पर व्यय होता है, खाद्यान्नों के मूल्य में यथोचित स्थिरता लाना अत्यन्त आवश्यक है। खाद्यान्नों के मूल्यों को स्थिर रखने हेतु न तो पूर्ण मूल्य नियन्त्रण और न पूर्ण अनियन्त्रण (Decontrol) सफल हो सकते हैं। राज्य को अपने पास खाद्यान्नों के संग्रह इतने रखने चाहिए कि वह बाजार में अपनी कार्यवाही द्वारा मूल्यों को निश्चित सीमाओं के अन्दर रख सकें। तृतीय योजना के आरम्भ में भारत सरकार के पास २८ लाख टन खाद्यान्नों का संग्रह था और अगले कुछ वर्षों में PI ४८० के अन्तर्गत १६४ लाख मिट्रिक टन खाद्यान्न आयात होने की सम्भावना थी। इस प्रकार तृतीय योजना में मानसून के प्रतिकूल होने पर राज्य खाद्यान्नों के मूल्यों को यथोचित सीमाओं के अन्दर रखने में समर्थ हो सकता था।

उपर्युक्त समस्त विवरण से स्पष्ट है कि सामान्य मूल्य-स्तर में स्थिरता कृषि उत्पत्ति के मूल्यों पर निर्भर रहता है। भारत में कृषि उत्पादन बहुत सीमा तक प्राकृतिक परिस्थितियों विशेषकर अनुकूल मानसून पर निर्भर होता है। यदि तृतीय योजना काल में मानसून अनुकूल रहता तो मूल्यों पर किए गए नियन्त्रणों के सफल होने में कोई विशेष कठिनाई न होती। भारत में शीघ्र औद्योगीकरण, अधिक आय एवं ग्रामों में यातायात शक्ति एवं पानी की सुविधाओं में वृद्धि के कारण जनसमुदाय में नागरिक जीवन की ओर पर्याप्त आकर्षण उत्पन्न हो गया है। अनेक ग्रामीण ग्रामों में रह कर भी आधुनिक सुविधाओं का उपभोग करने लगे हैं। नागरिक जीवन में उद्योगों द्वारा उत्पादित उपभोक्ता वस्तुओं का विशेष स्थान प्राप्त होता है। यदि खाद्यान्नों के मूल्य

स्तर की वृद्धि को रोका जाय तो जनसाधारण के पास अपनी आय में से अधिक राशि उद्योगों द्वारा उत्पादित उपभोक्ता वस्तुओं हेतु उपलब्ध होगी और इस प्रकार औद्योगिक क्षेत्र द्वारा उत्पादित उपभोक्ता-वस्तुओं की माँग में वृद्धि होना स्वाभाविक होगा। माँग वृद्धि के अनुसार इनके उत्पादन एवं पूर्ति में पर्याप्त वृद्धि होनी चाहिए, अन्यथा इन वस्तुओं के मूल्यों की वृद्धि कृषि-पदार्थों के मूल्यों पर प्रभाव डालने लगेगी। इस प्रकार कृषि एवं उद्योग दोनों ही क्षेत्रों के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि होना आवश्यक था।

उपभोक्ता-वस्तुओं के मूल्य-स्तर का प्रभाव विनियोजन-सामग्री के मूल्यों पर भी पड़ता है। पूँजीगत वस्तुएँ उत्पादन करने वाले उद्योग भी मूल्यों में वृद्धि के साथ अपना माल अधिक मूल्य पर बेचकर श्रमिकों को अधिक पारिश्रमिक देने तथा स्वामी को यथोचित वास्तविक लाभ प्राप्त करने के लिए अपनी वस्तुओं का अधिक मौद्रिक मूल्य प्राप्त करना आवश्यक समझते हैं। जब विनियोजन-सामग्री के मूल्यों में वृद्धि हो जाती है तो इस सामग्री द्वारा उत्पादित वस्तुओं का मूल्य अधिक होना स्वाभाविक होता है।

इस प्रकार मूल्यों की वृद्धि का एक दूषित चक्र बन जाता है, जिसमें एक क्षेत्र के मूल्य दूसरे क्षेत्र के मूल्यों पर निरन्तर प्रभाव डालते रहते हैं। यदि किसी भी एक क्षेत्र को खुली छूट दे दी जाय तथा अन्य क्षेत्रों के मूल्यों पर नियन्त्रण रखने का प्रयत्न किया जाय तो सफलता की प्राप्ति अत्यन्त कठिन होती है। ऐसी परिस्थिति में मूल्य-नियन्त्रण-नीति इस प्रकार निर्धारित की जानी थी कि इससे उपभोग एवं उत्पादन के समस्त क्षेत्रों पर समन्वित प्रभाव पड़े। योजना की सफलता हेतु इस प्रकार केवल मूल्य-नियन्त्रण नीति नहीं, अपितु समन्वित मूल्य नियमन नीति की आवश्यकता थी।

तृतीय योजना में मूल्य-स्तर—मूल्यों के सम्बन्ध में सरकार की सतर्कता के बावजूद भी तृतीय योजनाकाल में मूल्यों में निरन्तर वृद्धि होती रही है। मूल्यों में वृद्धि के तीन प्रमुख कारण हैं—प्रथम, तृतीय योजनाकाल में कृषि-उत्पादन में वृद्धि नहीं हुई है, द्वितीय जनसंख्या में निरन्तर अनुमान से अधिक वृद्धि होती रही है और तृतीय, सन् १९६२ में चीनी आक्रमण और सन् १९६५ में पाकिस्तानी आक्रमण के कारण सुरक्षा-व्यय में सर्वाधिक वृद्धि हुई जिसके फलस्वरूप जनसाधारण की क्रय शक्ति में भी वृद्धि हो गयी परन्तु उपभोक्ता-वस्तुओं के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि नहीं हो सकी। सन् १९६०-६१ से १९६८-६९ के योजनाकाल में मूल्य-स्तर तालिका सं० ११७ के अनुसार रहा है।

मूल्य निर्देशांक-तालिका से ज्ञात होता है कि तृतीय योजनाकाल में खाद्य-पदार्थों एवं औद्योगिक कच्चे माल के मूल्यों में अधिक वृद्धि हुई है। खाद्य पदार्थों के मूल्य में योजनाकाल में [illegible]२.८% की वृद्धि हुई। निर्मित वस्तुओं के मूल्यों में कुल ४१% की वृद्धि हुई। सामान्य मूल्य निर्देशांक में भी इस काल में निरन्तर वृद्धि होती रही और मूल्य वृद्धि का प्रतिशत (सन् १९६०-६१ के स्तर पर) लगभग ३२.२ हो गया। मूल्यों की निरन्तर वृद्धि का कारण कृषि-उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि न होना तथा सुरक्षा व्यय

तालिका स० ११७—थोक मूल्यो के निर्देशाक (१९६० ६१ से १९६८ ६९) आधार १९५२ ५३=१००

वर्ष	समस्त वस्तुए़		कृषि वस्तुए		खाद्य वस्तुए		शराब एव तम्बाकू		ईधन एव शक्ति आदि		औद्योगिक कच्चे माल		निर्मित वस्तुए़	
	निर्देशाक	गत वर्ष पर % परिवतन	निर्देशाक	गत वर्ष पर % परिवतन	निर्देशाक	गत वर्ष पर % परिवतन	निर्देशाक	गत वर्ष पर % परिवतन	निर्देशाक	गत वर्ष पर % परिवतन	निर्देशाक	गत वर्ष पर % परिवतन	निर्देशाक	गत वर्ष पर % परिवतन
१९६० ६१	१२४ ९	—	१२३ ८	—	१२० ०	—	१०९ ९	—	१२० ०	—	१४५ ४	—	१२३ ९	—
१९६१ ६२	१२५ १	० ८	१२२ ९	० ७	१२० १	० १	१०० ३	—८ ७	१२२ १	१ ८	१४२ ६	—१ ९	१२६ ६	२ २
१९६२ ६३	१२७ ९	२ २	१२३ ३	० ३	१२६ १	५ ०	१०० ९	० ६	१२४ ४	१ ९	१३६ ५	—४ ३	१२८ ८	१ ७
१९६३ ६४	१३५ ३	५ ८	१३१ ५	६ ७	१३६ ८	८ ५	११९ ६	१८ ५	१[illegible]९ ४	१२ १	१३९ ५	२ २	१३१ १	१ ८
१९६४ ६५	१५२ ७	१२ ९	१५५ ८	१८ ५	१५९ ९	१६ ९	१३१ २	९ ७	१४४ ९	३ ९	१६२ ७	१६ ६	१३७ ३	४ ७
१९६५ ६६	१६५ १	८ १	१६९ ३	८ ७	१६८ ८	५ ६	१३६ ६	४ १	१५३ ०	५ ६	१८९ १	१६ २	१४९ २	८ ७
१९६६ ६७	१९१ ३	१५ ९	१९९ ०	१७ ५	१९९ ९	१८ ४	१३० ३	—४ ६	१६९ ७	१० ९	२२८ ७	२० ९	१६३ ०	९ २
१९६७ ६८	२१२ ६	११ १	२२० ७	१० ९	२४२ २	२१ २	१३६ ६	४ ८	१८४ ५	८ ६	२२० ५	—३ ६	१६५ ५	१ ५
१९६८ ६९	२१० २	—१ १	२१६ ७	—१ ८	२३१ ३	—४ ५	२०२ १	[illegible]	१९२ ५	४ ३	२२२ ७	१ ०	१६८ ६	१ ९
१९६० ६१ पर १९६५ ६६ म % वृद्धि		३२ २		३६ ८		४० ७		२४ ३		२७ ५		३० १		१८ ८
१९६० ६१ पर १९६८ ६९ म % वृद्धि		६८ ३		७५ ०		९२ ३		८३ ०		६० ४		५३ २		३६ १

में आयधिक वृद्धि के अतिरिक्त सरकार की नीतियों का अकुशल संचालन भी था। मूल्यों की वृद्धि को मुद्रा की पूर्ति की वृद्धि ने भी प्रोत्साहित किया है। सन् १९६०-६१ में जनता के पास मुद्रा की पूर्ति २,८६९ करोड़ रु० थी जो सन् १९६५-६६ में ४,५२६ करोड़ रु० हो गयी, अर्थात् मुद्रा की पूर्ति में ५८% की वृद्धि हुई जबकि राष्ट्रीय आय में इस काल में लगभग १२% की वृद्धि होने का अनुमान है।

तृतीय योजना में खाद्यान्नों के मूल्यों को नियन्त्रित करने हेतु विशेष कार्यवाहियां की गयीं। उचित मूल्य दुकानों (Fair Price Shops) की संख्या बढ़ाकर १२½ लाख के लगभग कर दी गयी। इन दुकानों द्वारा सन् १९६२ में ४२ लाख टन, सन् १९६३ में ५१ लाख टन सन् १९६४ में ८६ लाख टन तथा सन् १९६५ में ९९ लाख टन अनाज वितरित किया गया। दूसरी ओर सरकार ने चावल एवं अन्य खाद्यान्नों का उपार्जन (Procurement) को अधिक महत्व दिया है। खाद्यान्नों की मूल्य-वृद्धि को नियन्त्रित करने के लिए आयात भी बड़ी मात्रा में किये गये। सन् १९६४ में ६३ लाख टन सन् १९६६ में ४६ लाख टन और सन् १९६७ में ८६ लाख टन खाद्यान्न आयात किये गये। सन् १९६५ वर्ष में आयात की मात्रा ७५ लाख टन थी। इन सब कार्यवाहियों के होते हुए भी खाद्यान्नों के मूल्यों की वृद्धि जारी रही।

मूल्य नियन्त्रण एवं वितरण-नियन्त्रण के अतिरिक्त सरकार द्वारा समय-समय पर रिजर्व बैंक की साख-नीति में परिवर्तन किये गये जिससे आवश्यक उपभोग-वस्तुओं के अनावश्यक संग्रहण को रोका जा सके। इसके अतिरिक्त विभिन्न अधिनियमों द्वारा खाद्यान्नों के संग्रह तथा आवश्यक वस्तुओं पर अधिक मुनाफाखोरी को प्रतिबन्धित करने की व्यवस्था की गयी। सुरक्षा नियमों का उपयोग भी बढ़ते मूल्यों को रोकने हेतु किया गया और संग्रह करने वाले व्यापारियों एवं उत्पादकों को दण्डित करने का आयोजन किया गया।

तीन वार्षिक योजनाओं के अन्तर्गत पहले दो वर्षों में मूल्य वृद्धि जारी रही परन्तु सन् १९६८-६९ वर्ष में मूल्य वृद्धि की प्रवृत्ति में रुकावट आ गयी। सन् १९६८-६९ वर्ष सन् १९६७-६८ की तुलना में सामान्य थोक मूल्य निर्देशांक में १.१% की कृषि पदार्थ मूल्य निर्देशांक में १.८% की और खाद्य-पदार्थों के मूल्य निर्देशांक में ४.५% की कमी हुई। पिछले आठ वर्षों में प्रथम बार इन मूल्य निर्देशांकों में कमी आयी है। दूसरी ओर, शराब एवं तम्बाकू के मूल्य-निर्देशांक में सन् १९६८-६९ वर्ष में ५५.२% की वृद्धि हुई जो मूल रूप से उत्पादन कर आदि की वृद्धि के कारण उदय हुई है। निर्मित वस्तुओं के मूल्य निर्देशांक में १.६% की वृद्धि हुई जो सन् १९६७-६८ की वृद्धि के प्रतिशत से अधिक है।

सन् १९६५-६६ की तुलना में यदि विभिन्न मूल्यों के निर्देशांकों का अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि तृतीय योजना की समाप्ति के बाद के तीन वर्षों में सामान्य थोक मूल्य निर्देशांक में २७.२% की वृद्धि हुई। कृषि पदार्थों के मूल्यों में २८% की

और खाद्यान्नों के मूल्यों में ३७% की वृद्धि हुई। सन् १९६५ ६६ एव सन् १९६६ ६७ वर्षों में लगातार मानसून प्रतिकूल रहने के कारण कृषि उत्पादन को क्षति पहुँची और सन् १९६७ ६८ के वर्ष में कृषि पदार्थों एव खाद्यान्नों का मूल्य निर्देशाक भारतीय इतिहास में सबसे अधिक था। दूसरी ओर औद्योगिक कच्चे माल एव निर्मित वस्तुओं के मूल्य निर्देशाक सन् १९६५ ६६ की तुलना में सन् १९६८ ६९ में क्रमश १० ८% तथा १३% की वृद्धि हुई। इस प्रकार सन् १९६६ ६९ काल में कृषि पदार्थों के मूल्यों में निर्मित वस्तुओं के मूल्यों की तुलना में दुगनी से भी अधिक वृद्धि हुई।

सन् १९६० ६१ के मूल्यों की तुलना यदि सन् १९६८ ६९ के मूल्यों से की जाय तो ज्ञात होता है कि इस आठ वर्ष के काल में कृषि पदार्थों के थोक मूल्यों में ७५% की तथा खाद्य-पदार्थों के मूल्यों में ९२ ३% की वृद्धि हुई जबकि औद्योगिक कच्चे माल एव निर्मित वस्तुओं के थोक मूल्य निर्देशाक में क्रमश ५२ २% एव ३६ १% की वृद्धि हुई। इस प्रकार कृषि पदार्थों के थोक मूल्यों में निर्मित वस्तुओं की तुलना में लगभग दुगुनी वृद्धि हुई। सन् १९६० ६१ की तुलना में सन् १९६८ ६९ में थोक मूल्य सामान्य निर्देशाक ६८ ३% अधिक था। नियोजित अर्थ व्यवस्था के प्रारम्भ से सन् १९६८ ६९ तक सामान्य थोक मूल्य निर्देशाक में ९१% की खाद्यान्नों में १०८% तथा निर्मित वस्तुओं में ४१ ७% की वृद्धि हुई।

भारतीय नियोजित अर्थ व्यवस्था में मूल्यों में निरन्तर वृद्धि का मूल कारण मुद्रा की पूर्ति में निरन्तर वृद्धि होना है। नियोजित अर्थ व्यवस्था के १७ वर्षों में मुद्रा की पूर्ति १८०४ करोड़ रु० सन् (१९५१ ५२) से बढ़कर सन् १९६७ ६८ में ४३५० करोड़ रु० हो गयी अर्थात् लगभग १९९०% की वृद्धि हुई। दूसरी ओर राष्ट्रीय आय स्थिर मूल्यों के आधार पर ९१०० करोड़ रु० (सन् १९५१ ५२) से बढ़कर सन् १९६७ ६८ में १५७०० करोड़ रु० हो गया अर्थात् ७३% की वृद्धि हुई। राष्ट्रीय आय में

तालिका स० ११८—मुद्रा पूर्ति, राष्ट्रीय आय एव मूल्यों के निर्देशाक

(१९५२ ५३=१००)

वर्ष	मुद्रा पूर्ति का निर्देशाक	१९५२ ५३ के स्तर पर वृद्धि का %	थोक मूल्यों का निर्देशाक	१९५२ ५३ के स्तर पर वृद्धि का%	राष्ट्रीय आय का स्थिर मूल्यों पर निर्देशाक	१९५२ ५३ के स्तर पर वृद्धि का%
१९५५ ५६	१२३ ८	+ २४	९२ ५	— ७ ५	११० ८	+११
१९६० ६१	१५२ ६	+ ५३	१२४ ९	+ २५	१३४ ५	+३५
१९६५ ६६	२५६ ९	+१५७	१६५ १	+ ६५	१५१ ४	+५१
१९६६ ६७	२८० ४	+१८०	१९१ ३	+ ९१	१५२ ९	+५३
१९६७ ६८	३०३ २	+२०३	२१२ ४	+११२	१६६ ८	+६७
औसत वार्षिक वृद्धि १९५१ ५२ से १९६७ ६८ तक		+७ ०९		+३ ६६		+४ ४८

मुद्रा पूर्ति की तुलना में अत्यधिक वृद्धि होने के कारण मूल्य स्तर में इस बात में ७०% की वृद्धि हुई। विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत मुद्रा पूर्ति, राष्ट्रीय आय एवं थोक मूल्य निर्देशांक की स्थिति तालिका सं० ११८ के अनुसार थी। (पृष्ठ ८१४)

उपर्युक्त तालिका में तुलना के आधार वर्ष सन् १९५२/५३ को इसलिए माना गया है कि यह एक सामान्य वर्ष जब सन् १९५१/५२ में कोरिया के युद्ध के कारण मूल्य स्तर सामान्य से अधिक था। इस तालिका से यह भी ज्ञात होता है कि मुद्रा की पूर्ति की वृद्धि की औसत वार्षिक दर राष्ट्रीय आय (स्थिर मूल्यों पर) की औसत वार्षिक दर से दुगुनी रही जिसके परिणामस्वरूप मूल्यों के ३.६६% प्रति वर्ष की औसत वृद्धि हुई।

चतुर्थ योजना में मूल्य

प्रस्तावित चतुर्थ योजना के प्रतिवेदन में मूल्य-नीति पिछली योजनाओं में मूल्य स्तर, तथा चतुर्थ योजना में मूल्यों की सामान्य प्रवृत्ति के सम्बन्ध में कुछ भी अंकित नहीं किया गया है। सन् १९६८-६९ वर्ष में मूल्यों में कुछ कमी आ जाने के कारण मूल्यों से सम्बन्धित समस्या को चतुर्थ योजना में कोई स्थान न देना उचित नहीं होता है। यद्यपि चतुर्थ योजना के प्रतिवेदन मूल्य नीति एवं स्तर के सम्बन्ध में विशिष्ट रूप से कोई उल्लेख नहीं किया गया परन्तु योजना के कार्यक्रमों का निर्धारण इस प्रकार किया गया है कि इस योजनाकाल में स्थिर मूल्य-स्तर पर आर्थिक प्रगति सम्भव हो सके। विभिन्न कृषि उत्पादों के अधिग्रह की व्यवस्था वास्तव में मूल्य-स्तर को स्थिर रखने के लिए ही की गयी है।

चतुर्थ योजनाकाल में मूल्य की सम्भावित प्रवृत्ति का अनुमान पिछली योजनाओं की घटनाओं एवं वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर लगाया जा सकता है। सन् १९६९-७० वर्ष में २५४ करोड़ रु० का हीनार्थ प्रबन्धन करने का आयोजन किया गया है और यह मान लिया गया है कि सन् १९६८-६९ में जिस प्रकार लगभग २६० करोड़ रु० के हीनार्थ प्रबन्धन करने से मूल्यों के स्तर में वृद्धि हुई उसी प्रकार सन् १९६९-७० में भी उत्पादन-वृद्धि की प्रवृत्ति जारी रहेगी और मूल्य-स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। यदि मुद्रा पूर्ति की प्रवृत्ति चतुर्थ योजना में वही रहती है जो पिछले चार वर्षों में रही है (अर्थात् ८% प्रति वर्ष की औसत वृद्धि) और कृषि उत्पादन में ५% प्रति वर्ष तथा औद्योगिक उत्पादन में ७% प्रति वर्ष की वृद्धि जारी रहती है तो मूल्यों में यथोचित स्थिरता बनाए रखना सम्भव होगा और मुद्रा-स्फीति से प्रेरित मूल्य-वृद्धि होने की सम्भावना की जा सकती है। सक्रिय मुद्रा पूर्ति (Activated Money Supply) का निर्देशांक (सन् १९५१-५२ = १००) सन् १९६९-७० चालू वर्ष में लगभग ४६० है और इसमें लगभग ८% प्रति वर्ष की औसत वार्षिक-वृद्धि होती रही है। यदि योजनाकाल में इस सक्रिय मुद्रा पूर्ति के निर्देशांक में २०% की वृद्धि होती है तो मूल्य स्थिरता को बनाये रखना सम्भव होगा और अर्थ-व्यवस्था के गतिमान होने के कारण योजनाकाल में मूल्यों में लगभग २% प्रति वर्ष की वृद्धि की सम्भावना

की जा सकती है। भारतीय नियोजित अर्थ-व्यवस्था में उन वर्षों में मूल्यों में सबसे अधिक वृद्धि हुई है जबकि कृषि उत्पादन में गिरावट हुई है। वास्तव में कृषि उत्पादन एवं थोक मूल्यों में समान अनुपात में परिवर्तन हुआ है। इन अनुभवों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कृषि उत्पादन की वृद्धि का जारी रहना मूल्य स्थिरता के लिए आवश्यक है परन्तु मुद्रा पूर्ति के प्रभाव को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। कृषि उत्पादन में ५% प्रति वर्ष की वृद्धि होने पर मुद्रा-पूर्ति में ४·५% से अधिक वृद्धि प्रति वर्ष नहीं होना चाहिए। इस प्रकार मूल्यों की स्थिरता कृषि उत्पादन की प्रगति एवं हीनार्थ प्रबन्धन पर निर्भर रहेगी।

अध्याय ३७

भारतीय नियोजित अर्थ-व्यवस्था में रोजगार-नीति

[Employment Policy in the Planned Economy of India]

[अल्प विकसित राष्ट्रों में बेरोजगार, प्रथम योजना में रोजगार, द्वितीय योजना में रोजगार, तृतीय योजना में रोजगार, चतुर्थ योजना में रोजगार]

बेरोजगार ऐसी अवस्था को कहा जा सकता है जिसमें लोग अपनी इच्छा के विरुद्ध बेकार रहते हों। पूर्ण रोजगार उस व्यवस्था को कहना चाहिए जिसमें बेरोजगार न हों, अर्थात् जिसमें समस्त काम करने योग्य (शारीरिक व मानसिक दृष्टिकोण से) एवं काम करने के लिए इच्छा रखने वाले व्यक्तियों को कार्य मिलता हो। इसका तात्पर्य यह हुआ कि बेरोजगार विवशतापूर्ण बेकारी (Involuntary Idleness) का दूसरा नाम है। यह विवशतापूर्ण बेकारी अल्प विकसित राष्ट्रों में एक सामाजिक एवं आर्थिक समस्या का रूप ग्रहण कर लेती है। बेरोजगार लोगों के पास क्रय-शक्ति की कमी होती है जिससे वह कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन के लिए प्रभावशील माँग उत्पन्न नहीं करते हैं। दूसरी ओर श्रम-उत्पादन एक महत्वपूर्ण घटक होता है और जब श्रम का कोई भी भाग उपयोग नहीं होता उत्पादन अधिकतम नहीं हो सकता और आर्थिक ढाँचे को सुव्यवस्थित, सन्तुलित एवं सुदृढ़ नहीं कहा जा सकता है। सामाजिक दृष्टिकोण से बेरोजगार लोग समाज के विकास में एक रुकावट होते हैं। यह राष्ट्रीय उत्पादन में अपना अनुदान नहीं दे सकते और बेरोजगार प्राप्त लोगों पर एक भार होते हैं। इस प्रकार समस्त समाज का जीवन स्तर सन्तोषजनक नहीं होता। लम्बे समय तक बेरोजगार रहने पर इनका नैतिक पतन हो जाता है।

अल्प विकसित राष्ट्रों में बेरोजगार—अल्प विकसित राष्ट्रों में बेरोजगार की समस्या अत्यन्त गम्भीर होती है और नियोजन का मुख्य उद्देश्य पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करना होता है। इन राष्ट्रों में बेरोजगार के कई स्वरूप हो जाते हैं, जिनमें से मुख्य अदृश्य बेरोजगार, आंशिक बेरोजगार, शिक्षित-वर्ग की बेरोजगारी, औद्योगिक क्षेत्र के बेरोजगार, कृषिक्षेत्र की बेरोजगारी आदि। जैसा हमें ज्ञात है कि अल्प विकसित राष्ट्र प्रायः कृषिप्रधान होते हैं और जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग कृषि से ही आजीविकोपार्जन करता है। इन देशों में अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में रोजगार के अवसर अत्यन्त सीमित होते हैं और बढ़ती हुई श्रम शक्ति कृषि पर ही भार बनती जाती है। धीरे-धीरे भूमि पर श्रम का भार इतना अधिक हो जाता है कि यदि इस श्रम का कुछ भाग

कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों में लगा दिया जाय और श्रम के प्रतिस्थापन हेतु संगठन सम्बन्धी एवं तान्त्रिक सुधार भी कृषि में न किए जायें तो भी उत्पादन का स्तर पहले के समान ही रहता है। इस प्रकार वह श्रम जिसको कृषिक्षेत्र से हटाने पर उत्पादन स्तर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, अदृश्य बेरोजगार कहलाता है। अदृश्य बेरोजगार के अतिरिक्त कृषिक्षेत्र में आंशिक बेरोजगार एवं कृषि वर्ग के बेरोजगार की समस्या भी होती है। कृषि उद्यम ऐसा उद्यम है जिसमें वर्ष भर श्रम की आवश्यकता समान नहीं रहती है। फसल काटने एवं बोने समय ग्रामीण क्षेत्रों में श्रम की कमी हो जाती है जबकि शेष समस्त वर्ष में श्रम को रोजगार उपलब्ध नहीं होता है। ऐसे लोगों को जो केवल थोड़े समय तक ही रोजगार पाते हैं आंशिक बेरोजगार कहते हैं। इनके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे भी लोग होते हैं जो लघु उद्योगों का संचालन करते हैं परन्तु पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध न होने के कारण उन्हें अपने व्यवसाय बन्द कर बेरोजगार रहना पड़ता है। इसके अतिरिक्त अल्प विकसित राष्ट्रों में शिक्षित वर्गों में बेरोजगार की समस्या बड़ी गम्भीर होती है। शिक्षित वर्ग में बेरोजगार के मुख्य तीन कारण हैं—प्रथम जनसमुदाय में इस विचारधारा का प्रचलन कि किसी व्यक्ति द्वारा शिक्षा में किए गये विनियोजन का प्रतिफल पारिश्रमिकयुक्त नौकरी के रूप में मिलना चाहिए। द्वितीय, प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति उसके द्वारा प्राप्त विशेष शिक्षा के लिए उपयुक्त नौकरी चाहता है जिसके फलस्वरूप कुछ व्यवसायों में सेवाओं की अत्यन्त न्यूनता हो जाती है तथा कुछ में योग्य कर्मचारी उपलब्ध भी नहीं होते। तृतीय शिक्षित बेरोजगारों में सामान्यतः कार्यालय में सेवा करने की प्रवृत्ति पायी जाती है जिससे कार्यालयों की नौकरियों की अत्यन्त कमी प्रतीत होती है।

अल्प विकसित राष्ट्रों में श्रम शक्ति में प्रति वर्ष तीव्रता से वृद्धि होती है इसलिए नियोजन द्वारा इस प्रकार का आयोजन करने की आवश्यकता होती है जिससे वर्तमान बेरोजगार श्रम एवं योजनाकाल में होने वाली श्रम की वृद्धि दोनों को ही रोजगार के अवसर प्रदान किए जा सकें। इस प्रकार योजना बनाते समय केवल वर्तमान बेरोजगार का ही अनुमान लगाना पर्याप्त नहीं होता अपितु योजनाकाल में होने वाली श्रम की वृद्धि का अनुमान भी आवश्यक होता है। इन अनुमानों के लिए योजना अधिकारी को विस्तृत सूचनाएं एकत्रित करने की आवश्यकता होती है। इन अनुमानों के आधार पर रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने का आयोजन किया जाना चाहिए। रोजगार के अवसरों में वृद्धि के लिए अर्थ व्यवस्था के समस्त क्षेत्रों के विकास एवं विस्तार की आवश्यकता होती है। बड़े पैमाने का विनियोजन कर ही रोजगार के अवसर बढ़ाये जा सकते हैं। अधिक विनियोजन करने हेतु अधिक घरेलू बचत एवं विदेशी सहायता प्राप्त होनी चाहिए। आन्तरिक बचत की मात्रा बढ़ाने के लिए सामान्य उपभोग को कम करना आवश्यक होता है जिससे जनसाधारण के वर्तमान न्यून स्तर पर बुरा प्रभाव पड़ने का भय होता है। दूसरी ओर विनियोजन का प्रकार

भी निश्चय करना होता है। रोजगार के अवसर बढ़ाने हेतु औद्योगिक अथवा कृषि-क्षेत्र के विकास में अधिक विनियोजन किया जाना चाहिए। देश में खाद्यान्नों की कमी के कारण कृषि विकास को अधिक महत्त्व देना आवश्यक होता है और इसके लिए कृषिक्षेत्र में अधिक विनियोजन आवश्यक होता है परन्तु कृषिक्षेत्र में बेरोजगार एवं आंशिक बेरोजगारी की बहुतायत होती है जिन्हें वहाँ से हटाकर ही कृषि-व्यवस्था में सुधार सम्भव होता है। इस प्रकार कृषिक्षेत्र में बड़े पैमाने के विनियोजन द्वारा रोजगार के अवसरों में पर्याप्त वृद्धि नहीं की जा सकती है। परिणामस्वरूप, रोजगार में वृद्धि हेतु औद्योगिक क्षेत्र का विकास एवं विस्तार आवश्यक होता है। यहाँ भी योजना अधिकारी को कुछ महत्त्वपूर्ण निश्चय करने होते हैं। औद्योगिक विनियोजन किस प्रकार के उद्योगों (वृहद् अथवा लघु) में किया जाय? बड़े पैमाने के उद्योगों के विकास के लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है क्योंकि यह पूँजीप्रधान होते हैं। इस प्रकार वृहत् उद्योगों के विकास में पर्याप्त रोजगार के अवसर नहीं बढ़ाये जा सकते हैं। लघु उद्योगों के विकास द्वारा कम पूँजी के विनियोजन से ही अधिक रोजगार के अवसर उत्पन्न किए जा सकते हैं परन्तु केवल लघु उद्योगों के विकास से देश को शक्तिशाली एवं अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ़ नहीं बनाया जा सकता है।

आधुनिक युग में वही अर्थ-व्यवस्था सुदृढ़ है जिसमें लोहा, इस्पात, इन्जीनियरिंग, रसायन, मशीन निर्माण आदि उद्योग उन्नतशील हैं। लघु उद्योगों एवं कृषि विकास के लिए बड़े उद्योगों की स्थापना एवं विस्तार आवश्यक होता है। इस प्रकार योजना अधिकारी को औद्योगिक विनियोजन राशि के सम्बन्ध में बड़े जटिल एवं गम्भीर निश्चय करने होते हैं।

प्रथम योजना में रोजगार

योजना के कार्यक्रमों के फलस्वरूप, जनसंख्या के व्यावसायिक ढाँचे में कोई विशेष परिवर्तन होने की सम्भावना नहीं थी। योजना आयोग ने बेरोजगारी की बढ़ती हुई समस्या को सीमित करने के लिए योजना में व्यय की राशि को लगभग ५०० करोड़ रु० से बढ़ाया था। योजना-आयोग के अनुमानानुसार रोजगार के अवसरों में ५७.५ लाख की वृद्धि होने का अनुमान था।

शिक्षित बेरोजगारों की समस्या के बारे में योजना में बताया गया कि इनके लिए पर्याप्त मात्रा में रोजगार के अवसरों में वृद्धि तब ही हो सकती है जब औद्योगिक विकास की गति भविष्यत् योजनाओं में तीव्र कर दी जाय परन्तु प्रथम पंचवर्षीय योजना में शिक्षित बेरोजगारों को अपने स्वतन्त्र व्यवसाय स्थापित करने हेतु आवश्यक आर्थिक सहायता प्रदान करने का आयोजन किया गया था। इसके साथ, इस बात पर भी जोर दिया गया कि शिक्षित समुदाय को शारीरिक श्रम वाले रोजगारों को अनादर की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। योजनाकाल में रोजगार दफ्तरों के साथ रजिस्टर्ड हुए बेरोजगारों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती रही। मार्च सन् १९५१

में रजिस्टर्ड बेरोजगारों की संख्या ३,३७,००० से बढ़कर मार्च, सन् १९५६ में ७,०५,००० हो गया। रोजगार के दफ्तरों में बेरोजगारों की पंजीयत संख्या केवल नगरों के बेरोजगार के एक भाग का ही प्रतिनिधित्व करता है। योजना आयोग के अनुमानानुसार सन् १९५६ के प्रारम्भ में लगभग ५३ लाख बेरोजगार थे जिनमें से २५ लाख नगरों में तथा २८ लाख ग्रामों में बेरोजगार होने का अनुमान था।

द्वितीय योजना में रोजगार

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में बेरोजगारी की समस्या की गम्भीरता एवं विस्तार को रोकने के लिए कार्यक्रम निश्चित किए गये थे। योजना निर्माण के साथ यह अनुमान लगाया गया कि योजना के प्रारम्भ में २५ लाख नागरिक तथा २८ लाख व्यक्ति ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार थे। इसके साथ यह भी अनुमान था कि योजनाकाल में २० लाख व्यक्तियों से प्रति वर्ष श्रम की पूर्ति में वृद्धि होगी। योजनाकाल में नागरिक एवं ग्रामीण क्षेत्र में क्रमशः ३८ लाख एवं ६२ लाख व्यक्तियों से श्रम पूर्ति की वृद्धि का अनुमान था। इस प्रकार पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करने के लिए १५३ लाख रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने की आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त अर्द्ध रोजगार एवं अदृश्य बेरोजगारी जो कृषि में बड़ी मात्रा में थी को कम करना भी आवश्यक समझा गया था। शिक्षा प्रसार भूमि सुधार तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्र आजिविकोपार्जन की स्वाभाविक इच्छा के कारण जनसमुदाय में मजदूरी पर काम करने की प्रवृत्ति में वृद्धि होती जा रही थी जिससे बेरोजगारी की समस्या ने एक स्पष्ट रूप ग्रहण कर लिया।

अल्प विकसित राष्ट्रों में बेरोजगारी की समस्या का निवारण दीर्घकालीन विकास कार्यक्रमों द्वारा ही हो सकता है। पाँच वर्षों के अल्प काल में इस समस्या के विस्तार एवं मात्रा को कम किया जा सकता है परन्तु पूर्ण रोजगार व्यवस्था करना अत्यन्त कठिन ही नहीं प्रत्युत असम्भव है। इसी कारण द्वितीय योजना में इस समस्या के निवारणार्थ जो आयोजन किए गये थे उनके द्वारा समस्या की तीव्रता (Intensity) में अवश्यमेव कमी हो जानी थी परन्तु समस्या का समूल उन्मूलन असम्भव था।

भारत जैसे राष्ट्र में जहाँ श्रम की पूर्ति अत्यधिक है और जिसमें प्रति वर्ष २० लाख व्यक्तियों की वृद्धि होती है पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करना स्वाभाविक एवं वांछनीय है परन्तु अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में पूँजीप्रधान एवं श्रमप्रधान तान्त्रिकताओं के निश्चयार्थ केवल रोजगार के अवसरों की आवश्यकताओं को ही आधार नहीं माना जा सकता है क्योंकि अन्य घटक भी तान्त्रिकताओं के चलन पर प्रभाव डालते हैं। कुछ क्षेत्रों में उपयोग होने वाली तान्त्रिकताओं में कोई चुनाव का स्थान ही नहीं होता क्योंकि उनके उत्पादन का प्रकार ऐसा होता है जिसमें पूँजी प्रधान तान्त्रिकताओं का ही उपयोग किया जा सकता है। एक ओर भारी उद्योगों रेल उद्योग यातायात एवं संचार आदि का विकास आवश्यक है तथा दूसरी ओर इनमें सवभाग तथा दीर्घ काल में उपयोग में आने वाली मशीनों आदि सामग्री का

उपयोग होना स्वाभाविक है। रोजगार के अवसरों में वृद्धि हेतु इनको श्रमप्रधान करना किसी प्रकार उचित नहीं कहा जा सकता। कृषि के क्षेत्र में भी उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि करने के लिए आधुनिक वैज्ञानिक विधियों जो पूँजीप्रधान हैं का उपयोग वांछनीय है। कृषि के यन्त्रीकरण (Mechanisation) द्वारा सम्भवतः इससे द्वारा उत्पादित बेरोजगारी की हानियों की तुलना में अधिक लाभ हो सकता है। यदि सिंचाई एवं शक्ति की योजनाओं का तान्त्रिकताओं का चुनाव विदेशी मुद्रा के साधनों की बचत करने की आवश्यकता तथा श्रम की पूर्ति पर आधारित होता है। यदि विदेशी मुद्रा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो सके तो सिंचाई एवं शक्ति के कार्यक्रमों को शीघ्र सेवायोग्य (Serviceable) बनाने के लिए पूँजीप्रधान तान्त्रिकताओं का उपयोग वांछनीय है क्योंकि इनके द्वारा कृषि एवं औद्योगिक विकास निर्धारित होता है।

विकसित राष्ट्रों में बेरोजगारी की समस्या का निदान विस्तृत निर्माण (Construction) कार्यक्रमों को क्रियान्वित करके किया जाता है परन्तु निर्माण-कार्यक्रमों में अधिक विनियोजन की आवश्यकता होती है तथा निर्माण-कार्य पूरा होने के पश्चात् बड़ी मात्रा में श्रम बेरोजगार हो जाता है। निर्माण कार्यक्रमों द्वारा केवल अल्प काल के लिए बेरोजगारी के दबाव को कम किया जा सकता है। निर्माण-कार्य के पूर्ण होने पर इनसे पृथक् हुए श्रम को अन्य व्यवसायों में रोजगार प्रदान करने के लिए प्रशिक्षण आदि की समस्याएँ भी प्रस्तुत होती हैं।

इस प्रकार केवल उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों का क्षेत्र ही ऐसा है जिसमें तान्त्रिकताओं के चुनाव में थोड़ी कठिनाई होती है। देश की आर्थिक स्थिति एवं भविष्य के कार्यक्रमानुसार इन उद्योगों का विकास पूँजीप्रधान एवं श्रमप्रधान—दोनों ही तान्त्रिकताओं के उपयोग द्वारा किया जा सकता है। आधारभूत एवं भारी उद्योगों के विकास को प्राथमिकता देने के कारण धन-साधनों के अधिकतम भाग को इन उद्योगों के विकास में विनियोजित किया जाता है। उपभोक्ता-वस्तुओं के विकास के लिए इस प्रकार कम साधन और विदेशी अर्थ साधन उपलब्ध होने के कारण इन उद्योगों का उत्पादन श्रमप्रधान तान्त्रिकताओं द्वारा करना स्वाभाविक ही है। दूसरी ओर, बेरोजगारी की समस्या के विस्तार को रोकने के लिए उपभोक्ता-वस्तुओं के उद्योग में पूँजीप्रधान तान्त्रिकताओं के उपयोग को प्राथमिकता न देकर श्रमप्रधान तान्त्रिकताओं को ही प्राथमिकता प्रदान की जाती है। योजना आयोग के अनुसार श्रम-प्रधान तान्त्रिकताओं के उपयोग में प्रति व्यक्ति बचत अधिक नहीं होती है, परन्तु समस्त क्षेत्र की बचत पूँजीप्रधान तान्त्रिकताओं के उपयोग द्वारा उत्पादित बचत से कहीं अधिक होती है। इस प्रकार पूँजी-निर्माण के लिए पर्याप्त बचत प्राप्त हो सकती है। दूसरी ओर यदि पूँजीप्रधान तान्त्रिकताओं का उपयोग किया जाय तो प्रति व्यक्ति उत्पादन आय अवश्य ही अधिक होगी, परन्तु जनसंख्या का बड़ा भाग बेरोजगार रहेगा जिसके जीवन निर्वाह का भार भी उत्पादक नागरिकों पर ही रहेगा। इस प्रकार उत्पादक

नागरिकों की आय का कुछ भाग बेरोजगार नागरिकों के जीवन निर्वाह पर व्यय हो जायगा और पूँजी निर्माण हेतु बचत की मात्रा पर्याप्त होना अत्यन्त कठिन होगी। इस प्रकार श्रम-तान्त्रिकताओं का उपयोग किया जाना वाञ्छनीय है परन्तु छोटे छोटे उत्पादकों की बचत को एकत्रित करने के लिए संगठन सम्बन्धी सुधार आवश्यक होते हैं। द्वितीय योजना में इसी कारण उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन हेतु ग्रामीण एवं लघु उद्योगों के विकास को विशेष महत्व दिया गया। साथ ही परम्परागत उत्पादन विधियों को गतिशील बनाने के प्रयास किए गये जिससे एक ओर तान्त्रिक परिवर्तनों से उत्पन्न होने वाली बेरोजगारी का भय न रहे तथा दूसरी ओर, इन उद्योगों की उपयोग में न आने वाली उत्पादनक्षमता का अधिक भाग पूँजी विनियोजन किए बिना ही उपयोग किया जा सके। इस प्रकार द्वितीय योजना में बेरोजगारी की समस्या के विस्तार को रोकने एवं उसकी गम्भीरता को कम करने के लिए उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों में श्रमप्रधान तान्त्रिकताओं के उपयोग को प्रधानता दी गयी थी। बेरोजगारी की समस्या के निवारणार्थ ग्रामीण एवं लघु उद्योगों के विकास को द्वितीय योजना में विशेष स्थान दिया गया था। इस सम्बन्ध के सभी कार्यक्रम इसी आधारभूत नीति पर आधारित थे।

योजना आयोग के अनुमानानुसार योजनाकाल में कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में ८० लाख रोजगार के नवीन अवसर उत्पन्न किए जाने का अनुमान था। ये अवसर विभिन्न क्षेत्रों में निम्न प्रकार उत्पन्न होने का अनुमान था—

तालिका सं० ११६—द्वितीय योजना में अतिरिक्त रोजगार अवसर

क्षेत्र	रोजगार अवसर (लाख में)
(१) निर्माण	२१ ००
(२) सिंचाई एवं शक्ति	५१
(३) रेलें	२ ५३
(४) अन्य यातायात एवं संचार	१ ८०
(५) उद्योग एवं खनिज	७ ५०
(६) लघु एवं गृह उद्योग	४ ५०
(७) वन, मत्स्योद्योग राष्ट्रीय विस्तार एवं अन्य सहायक योजनाएं	४ १३
(८) शिक्षा	३ १०
(९) स्वास्थ्य	१ १६
(१०) अन्य समाज सेवाएं	१ ४२
(११) शासकीय सेवाएं	४ ३४

	५१ ६६
(१२) अन्य—जिनमें व्यापार एव वाणिज्य भी सम्मिलित हैं (३ से ११ तक के योग का ४०%)	२० ०४
योग	७६ ०३
	अथवा
	लगभग ८० लाख

शिक्षित बेरोजगारी अर्थ-व्यवस्था की सामान्य बेरोजगारी का ही भाग है। शिक्षित बेरोज्गारी की गम्भीरता के तीन मुख्य कारण हैं। प्रथम जनसमुदाय में इस विचारधारा का प्रचलन है कि किसी व्यक्ति द्वारा शिक्षा में किए गए विनियोजन का प्रतिफल पारिश्रमिकयुक्त नौकरी के रूप में मिलना चाहिए। द्वितीय प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति उसके द्वारा प्राप्त विशेष शिक्षा के लिए उपयुक्त नौकरी चाहता है, जिसके फलस्वरूप कुछ व्यवसायों में सेवार्थी की अत्यन्त न्यूनता हो जाती है तथा कुछ में योग्य कर्मचारी उपलब्ध भी नहीं होते। तृतीय शिक्षित बेरोजगार में सामान्यतः कार्यालयों में सेवा करने की प्रवृत्ति पायी जाती है, जिससे कार्यालयों की नौकरियों की अत्यन्त कमी प्रतीत होती है। सन् १९५५ में नियुक्त किए गये अध्ययन मण्डल (Study Group) के अनुसार द्वितीय योजनावधि में शिक्षित वर्ग के २० लाख रोजगार-अवसर उत्पन्न करने पर शिक्षित बेरोजगारी की समस्या का निवारण हो सकता था। केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों की विभिन्न योजनाओं द्वारा लगभग १० लाख नवीन रोजगार अवसर इस वर्ग के लिए उत्पन्न किये जा सकने का अनुमान था। २·४ लाख व्यक्तियों को ५ वर्षों में सेवा निवृत्त हुए कर्मचारियों के स्थान पर रोजगार प्राप्त होने का अनुमान था। इसके अतिरिक्त २ लाख व्यक्तियों को निजी क्षेत्र में भी रोजगार प्राप्त होने का अनुमान था। शिक्षित बेरोजगारों के लिए रोजगार दिलाने के लिए केवल रोजगार के अवसरों की संख्या जानना ही पर्याप्त नहीं होता, प्रत्युत बेरोजगारों की *शिक्षा के प्रकार एवं क्षेत्रीय तथा व्यावसायिक गतिशीलता को भी दृष्टिगत करना* आवश्यक होता है। अध्ययन मण्डल ने बेरोजगारों को रोजगार की व्यवस्था करने के *लिए दो प्रकार की योजनाओं का महत्व दिया था—प्रथम, वे योजनाएँ जिनका* क्रियान्वित करना उत्पादन के साधनों में स्वल्पनीय परिवर्तन करने के लिए आवश्यक हो। इस प्रकार की योजनाओं में उत्पादन एवं वितरण के क्षेत्र में सहकारिता को सुदृढ़ बनाने के कार्यक्रम थे। दूसरे प्रकार की वे योजनाएँ थीं जिनका देश के सामान्य आर्थिक विकास के लिए प्राथमिकता देना आवश्यक था। लघु उद्योगों में उत्पादन एवं *उनकी उत्पत्ति (Products) का विक्रय सहकारी संस्थाओं द्वारा किया जाना था तथा* इस प्रकार इन उद्योगों के माध्यम से शिक्षित बेरोजगारों को रोजगार प्राप्त हो सकता था। ग्रामीण उद्योगों के परम्परागत उत्पादन-क्षेत्र में शिक्षित-वर्ग का रोजगार दिलाने का आयोजन इसीलिए नहीं किया गया क्योंकि इनमें लगे हुए दस्तकार ही बेरोजगार

अथवा अर्द्ध रोजगार प्राप्त थे तथा इन उद्योगों के विकास द्वारा इन दस्तकारों को लाभप्रद रोजगार के अवसर प्रदान करना आवश्यक था। दूसरी ओर भारी उद्योगों में तान्त्रिक प्रशिक्षण प्राप्त लोगों को ही रोजगार प्राप्त हो सकता था। अध्ययन मण्डल ने इसलिए निम्न व्यवसायों में शिक्षित बेरोजगारों को रोजगार प्रदान करने का आयोजन करने का अनुमोदन किया था—

(१) निर्माण उद्योग—हाथ के औजार, खेल का सामान, फर्नीचर आदि

(२) सहायक उद्योग—फाउण्ड्रीज, उपकरण निर्माण के लघु कारखाने, मोटर-गाड़ी की दूकानें, मशीनों के औजार आदि

(३) मशीनों, मोटरगाड़ियों एवं साइकिलों आदि की मरम्मत की दूकानें।

इनके अतिरिक्त अध्ययन मण्डल ने एक सरकारी माल यातायात की योजना का भी निर्माण किया जिसमें १,२०० शहरों के अन्दर चलायी जाने वाली यातायात गाड़ियों की इकाइयाँ तथा ७४० एक नगर से दूसरे नगर को चलायी जाने वाली गाड़ियों की इकाइयों की स्थापना का आयोजन था। उपर्युक्त समस्त योजनाओं में २ ३५ लाख व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त होने का अनुमान था। इन योजनाओं पर १३० करोड़ रु० व्यय होने की सम्भावना थी। इन योजनाओं को प्रयोगात्मक योजनाओं के रूप में चलाया जाना था तथा इनकी उन्नति के साथ इनके कार्यक्षेत्र में वृद्धि की जानी थी।

उपर्युक्त रोजगार की नीति एवं कार्यक्रमों से यह स्पष्ट है कि ८० लाख व्यक्तियों को रोजगार के अवसर कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में प्रदान किये जाने थे। कृषिक्षेत्र में जो श्रम की पूर्ति में वृद्धि होनी थी वह कृषि सिंचाई तथा सामुदायिक विकास के कार्यक्रमों के फलस्वरूप कृषक की आय में वृद्धि होने के कारण कृषि में खप जानी थी तथा अर्द्ध रोजगार की समस्या का भी कुछ सीमा तक निवारण हो जाना था।

८० लाख रोजगार के अवसर उत्पन्न होने पर इसके अनुसार उपभोग की वस्तुओं की पूर्ति में विस्तार करना आवश्यक था। यदि प्रति व्यक्ति आय का औसत प्रति मास १०० रु० अनुमानित किया जाय तो श्रमिकों के हाथ में प्रति वर्ष ९६० करोड़ रु० की आय होनी थी जिसको वे उपभोक्ता वस्तुओं के क्रय तथा बचत पर व्यय कर सकते थे। यदि यह मान लिया जाय कि इस आय का १०% भाग बचत कर लिया जाय (जो अनुमान भी अत्यन्त अभिलाषी था) तो शेष ८६४ करोड़ रु० उपभोग पर व्यय किये जाने का अनुमान लगाया जा सकता था। अर्थ-व्यवस्था में श्रम की पूर्ति एवं रोजगार के अवसर धीरे धीरे बढ़ने थे। लगभग ५०० करोड़ रु० की अतिरिक्त उपभोक्ता वस्तुओं की पूर्ति में वृद्धि होने पर रोजगार के कार्यक्रम सफल हो सकते थे। उपभोक्ता-वस्तुओं के उत्पादन का लगभग ५०% भाग बाजार में विक्रय हेतु प्रस्तुत होता है तथा इस प्रकार यदि उपभोक्ता वस्तुओं की आवश्यकता से दुगुना उत्पादन होता तभी

रोजगार प्राप्त अतिरिक्त व्यक्तियों को उपभोक्ता वस्तुएँ उपलब्ध हो सकती थीं। द्वितीय योजना में, जो पहले से ही रोजगार प्राप्त वर्ग था, उसकी आय में वृद्धि होती थी तथा उनकी उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में भी वृद्धि होती थी। दूसरी ओर, कृषि उत्पादन की वृद्धि का बड़ा भाग अदृश्य बेरोजगार एवं अर्द्ध-बेरोजगार, जिनके लिए *योजना में कोई विशेष आयोजन नहीं किया गया था के जीवनयापन हेतु उपयोग हो* जाता था। औद्योगिक क्षेत्र के विनियोजन कार्यक्रम का अधिकांश पूँजीगत एवं आधार भूत उद्योगों के लिए निर्धारित किया गया तथा उपभोक्ता वस्तुओं की अतिरिक्त पूर्ति का उत्तरदायित्व ग्रामीण एवं लघु उद्योगों पर डाला गया था। इस प्रकार औद्योगिक क्षेत्र द्वारा उत्पादित उपभोक्ता-वस्तुओं के उत्पादन में बड़ी मात्रा में वृद्धि होना कठिन था। उपयुक्त परिस्थितियों में उपभोक्ता वस्तुओं की कमी एवं उनके अत्यधिक मूल्यों का भय उपस्थित हो सकता था। सरकार को उपभोग पर नियन्त्रण रखना आवश्यक *था तथा रोजगार प्राप्त व्यक्तियों की आय के अधिकाधिक भाग को विनियोजन की* ओर आकर्षित करना उचित था।

द्वितीय योजना ५३ लाख बेरोजगार व्यक्तियों से प्रारम्भ हुई और योजना-काल में ११७ लाख नवीन श्रम शक्ति तैयार हुई। योजना के कार्यक्रमों द्वारा ६५ लाख *रोजगार के अवसर कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में और १५ लाख रोजगार के अवसर* कृषि-क्षेत्र में बढ़ाये गये। इस प्रकार योजना के समाप्त होने तक लगभग ९० लाख व्यक्ति बेरोजगार थे। इसके अतिरिक्त मई सन् १९५५ और अगस्त, सन् १९५७ के मध्य किये गये *राष्ट्रीय सम्पिल सर्वे द्वारा यह अनुमान लगाया गया कि नगरों में रोज*गार में लगी हुई जनसंख्या का ८ से ९ प्रतिशत और ग्रामों में १० से १२ प्रतिशत व्यक्तियों को प्रत्येक सप्ताह ४२ या इससे कम घण्टे कार्य उपलब्ध था। इन अनुमानों के आधार पर देश में १५ से १८ करोड़ व्यक्ति अल्प रोजगार प्राप्त थे। इन *आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि द्वितीय योजना के अन्त में बेरोजगारी की समस्या की* गम्भीरता और भी बढ़ गयी और अर्थ-व्यवस्था का विकास इतनी तीव्र गति से नहीं हुआ कि रोजगार अवसर समस्त उपलब्ध श्रम शक्ति को प्रदान किये जा सकें। इन *आँकड़ों से यह भी सिद्ध होता है कि अर्थ व्यवस्था का संगठन इस प्रकार नहीं किया* जा सका जिससे देश में उपलब्ध समस्त श्रम-शक्ति को देश के आर्थिक विकास में अपना योगदान देने के अवसर प्रदान किये जा सकें।

तृतीय योजना में रोजगार

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में निरन्तर मानसून की प्रतिकूलता से कृषि-उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि न होने हुए भी राष्ट्रीय आय में २०% हुई जो लक्ष्य से केवल ५% कम थी। विनियोजन के क्षेत्र में लक्ष्य की लगभग पूर्ण प्राप्ति हुई यद्यपि निजी क्षेत्र के विनियोजन की राशि लक्ष्य से अधिक हुई। वास्तव में द्वितीय योजना की *सफल*ताओं से योजना आयोग को तृतीय योजना को अधिक बड़ी योजना का निर्माण करने

के लिए प्रोत्साहन मिलना चाहिए था। तृतीय योजना में १०४०० करोड़ रु० (सन् १९५८ ५९ के मूल्यों पर) समस्त विनियोजन करने का लक्ष्य रखा गया। इस राशि में से ६ ३०० करोड़ रु० शासकीय एवं ४ १०० करोड़ रु० व्यक्तिगत क्षेत्र में विनियोग किया जाना था। यदि इस विनियोजन की राशि तथा द्वितीय योजना की विनियोजन राशि की तुलना करना चाहें तो इस राशि को सन् १९५२ ५३ के मूल्यों के आधार पर निर्धारित करना आवश्यक होगा। जैसा विदित ही है द्वितीय योजनाकाल में निरन्तर मूल्यों में वृद्धि हुई १० ४०० करोड़ रु० की विनियोजन राशि सन् १९५२ ५३ के मूल्यों के आधार पर लगभग ९ ३५० करोड़ रु० के समतुल्य होगा। इस प्रकार तृतीय योजना में वास्तव में द्वितीय योजना में लगभग ५०% अधिक विनियोजन करने का लक्ष्य रखा गया जबकि द्वितीय योजना में प्रथम योजना की अपेक्षा दुगुना विनियोजन करने का लक्ष्य था। विनियोजन की इस राशि के आधार पर तृतीय योजना को परिवर्तन विरोधी (Conservative) कहना त्रुटिपूर्ण न होगा। योजना आयोग ने प्रथम दो योजनाओं की सफलताओं से कोई विशेष प्रोत्साहन प्राप्त नहीं किया ऐसा प्रतीत होता था।

दूसरी ओर बेरोजगारी की समस्या का निवारण करने के लिए भी पर्याप्त आयोजन नहीं किए गए। यद्यपि द्वितीय योजना के प्रारम्भ में लगभग ५३ लाख व्यक्ति बेरोजगार थे तथापि इस योजना के अन्त तक बेरोजगारी की संख्या में ७ लाख की वृद्धि होने का अनुमान था। इस प्रकार तृतीय योजना लगभग ९० लाख बेरोजगारों के साथ प्रारम्भ हुई। यद्यपि द्वितीय योजना का लक्ष्य योजनाकाल में जनसंख्या की वृद्धि से कार्य-योग्य व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि को रोजगार के अवसर प्रदान करना था तथापि यह अनुमान लगाया गया कि इस लक्ष्य की पूर्ति नहीं हो सकी तथा द्वितीय योजना में ९० लाख व्यक्ति बेरोजगार रहे। इस प्रकार तृतीय योजनाकाल में द्वितीय योजना के अवशिष्ट बेरोजगार (९० लाख) एवं तृतीय योजना के नवीन रोजगार योग्य व्यक्ति जिनकी अनुमानित संख्या १७० लाख थी, के लिए रोजगार का आयोजन करने की आवश्यकता थी। तृतीय योजना में केवल १४० लाख रोजगार के अवसर उत्पन्न करने का आयोजन किया गया जिसमें से १०५ लाख कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में तथा ३५ लाख कृषि के क्षेत्रों में होंगे।[1] कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों की वृद्धि आगे दी गई तालिकानुसार होने का अनुमान था।

तृतीय योजना में उत्पन्न होने वाले अतिरिक्त रोजगार के अनुमान निम्नलिखित तीन मान्यताओं पर आधारित थे—

1 Gyan Chand *Social Purpose in Planning* *Yojna* 24th August 1960 p 19

२ सन् १९६१ की जनगणना के अनुमानानुसार।

तालिका सं० १२०—तृतीय योजना में कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में रोजगार के अतिरिक्त अवसर

(लाख में)

(१) निर्माण	
(अ) कृषि एवं सामुदायिक विकास	६ १०
(ब) सिंचाई एवं शक्ति	४ ६०
(स) उद्योग एवं खनिज—वृहद् एवं लघु उद्योग सहित	४ ६०
(द) यातायात एवं संचार—रेलों सहित	२ ४०
(य) समाज-सेवाएँ	३ ५०
(र) अन्य	० ५०
योग	२३ ००
(२) सिंचाई एवं शक्ति	१ ००
(३) रेलें	१ ४०
(४) अन्य यातायात एवं संचार	८ ८०
(५) उद्योग एवं खनिज	३ ५०
(६) लघु उद्योग	९ ००
(७) वन, मछली पकड़ना तथा अन्य सहायक सेवाएँ	३ २०
(८) शिक्षा	५ ६०
(९) स्वास्थ्य	१ ४०
(१०) अन्य समाज-सेवाएँ	० ८०
(११) सरकारी नौकरी	१ ५०
(१२) अन्य वाणिज्य एवं व्यापार सहित	३३ ८०
महायोग	१०५ २०

(१) वर्तमान उत्पादन एवं रोजगारक्षमता को गिरने नहीं दिया जायगा। नियोजकों की उन कठिनाइयों को दूर किया जायगा जो वर्तमान क्षमता को बनाये रखने में आयेंगी और वर्तमान इकाइयों में रोजगार का स्तर बनाये रखा जायगा।

(२) योजना के विभिन्न विकास-कार्यक्रमों को कुशलता एवं मितव्ययिता के साथ संचालित किया जायगा और उत्पादन को लगातार जारी रखने का आश्वासन रहेगा।

(३) निर्माण-कार्यक्रमों के विभिन्न विचारधाराओं को संगठित कर श्रम-प्रधान विधियों का उपयोग किया जावेगा।

अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में अतिरिक्त रोजगार के अवसरों के अनुमान निम्न प्रकार अनुमानित किये गये—

(१) निर्माण—योजना मे विभिन्न मदो के प्रत्येक निर्माण-कार्य के अन्तर्गत प्रत्येक १ करोड रु० के विकास व्यय पर वर्ष म लगभग २०० दिवस तक रोजगार पाने वालों की सख्या अनुमानित की गयी। इस प्रकार कार्यों म अतिरिक्त रोजगार के अनुमान सन् १९६५ ६६ म सन् १९६० ६१ की तुलना म विकास व्यय की वृद्धि के आधार पर निर्धारित किये गय। सिचाइ-कायक्रमो म सन् १९६५ ६६ का विकास व्यय सन् १९६० ६१ की तुलना म २७ ५ करोड रु० अधिक होने का अनुमान था। द्वितीय योजना के अनुभवो के आधार पर सिंचाई के क्षेत्र मे रोजगार एव विनियोजन का अनुपात ७ ००० व्यक्ति-वर्ष प्रति करोड है। इस आधार पर तृतीय योजना के सिंचाई के निर्माण-कार्यक्रमों म लगभग २ ६३ लाख व्यक्ति-वर्ष का अतिरिक्त रोजगार सम्भव होगा। इसी प्रकार शक्ति के कायक्रमो पर होने वाला व्यय द्वितीय योजना के अन्तिम वर्ष की तुलना म तृतीय योजना के अन्तिम वर्ष म १४० करोड रु० अधिक होगा। द्वितीय योजना के अनुभवो के आधार पर प्रत्येक १ करोड रु० के शक्ति के क्षेत्र म हुए व्यय पर १ ६०० व्यक्ति वर्ष रोजगार बढता था। इस आधार पर शक्ति के क्षेत्र के निर्माण कायक्रमो म तृतीय योजना म १ २४ लाख व्यक्ति वर्ष रोजगार बढ सकेगा। इस प्रकार सिंचाई एव शक्ति दोनो को मिलाकर निर्माण-कायक्रमों म ४ ८७ (अथवा ४ ९० लाख व्यक्ति वर्ष अतिरिक्त रोजगार उत्पन्न हो सकेगा)।

यातायात के अन्तगत जो निर्माण कार्य होगा उसे रेल सडक बन्दरगाह एव हार्बर तथा अन्य यातायात एव सचार म विभक्त किया गया। इन क्षेत्रो म द्वितीय योजना के अन्तिम वर्ष एव तृतीय योजना के अन्तिम वर्ष के विकास व्यय के अन्तर के आधार पर रोजगार की वृद्धि का अनुमान रेलो म १ लाख व्यक्ति वर्ष लगाया गया है।

सडको म २ १४ लाख व्यक्ति वर्ष तथा अन्य समस्त यातायात एव सचार म ३१ ००० व्यक्ति वर्ष के अतिरिक्त रोजगार का अनुमान लगाया गया। इस प्रकार यातायात एव सचार के निर्माण कायक्रमों से ३ ४५० अतिरिक्त रोजगार के अवसर उत्पन्न होंगे। अन्य क्षेत्रों के निर्माण-कायक्रमो म भी इस प्रकार अतिरिक्त रोजगार के अनुमान लगाये गये।

निर्माण के अतिरिक्त अन्य कायक्रमो (कृषि के अतिरिक्त) म अतिरिक्त रोजगार के अवसरों का अनुमान या तो निश्चित मूल्यों पर प्रत्येक व्यक्ति को जारी रहने वाला रोजगार प्रदान करने हेतु आवश्यक पूजी की राशि के आधार पर लगाये गये अथवा प्रति व्यक्ति उत्पादन (जिसम उत्पादकता की वृद्धि के लिए आवश्यक समायोजन कर दिया गया) पर आधारित किये गये। लघु उद्योग बोर्ड द्वारा स्थापित किये गये वर्किंग ग्रुप के अनुमानानुसार, लघु उद्योगो म एक व्यक्ति को रोजगार देने के लिए लगभग ५ ००० रु० के विनियोजन की आवश्यकता होती है। दस्तकारी म १ ५०० रु० तथा नारियल के रेशे के उद्योग (Coir Industry) एव रेशम (Sericulture) म लगभग

१,००० रु० की आवश्यकता होती है। तृतीय योजना में ग्रामीण एवं लघु उद्योगों पर सरकारी क्षेत्र में व्यय होने वाली राशि पर ३.५७ लाख रोजगार के अवसरों में वृद्धि होने का अनुमान लगाया गया। दूसरी ओर, इस मद पर निजी क्षेत्र में विनियोजित होने वाली राशि पर ५ लाख रोजगार के अवसर बढ़ने की सम्भावना की गयी। इस प्रकार ग्रामीण एवं लघु उद्योगों में तृतीय योजना में ८.५७ अथवा ९ लाख रोजगार के अवसर बढ़ने का अनुमान लगाया गया। हाथकरघा, शक्ति से चलने वाले करघे, खादी एवं ग्रामीण उद्योगों पर सरकारी क्षेत्र में १२० करोड़ रु० व्यय होना था जिसके द्वारा आंशिक रोजगार प्राप्त व्यक्तियों को पूर्ण रोजगार की सुविधाएँ प्राप्त करने का आयोजन किया गया।

शिक्षा के क्षेत्र में ५.६ लाख रोजगार के अवसर बढ़ने का अनुमान लगाया गया। इसमें ३.७८ लाख अतिरिक्त शिक्षकों की आवश्यकता शिक्षा प्राप्त करने वाले ६ से ११ वर्ष के बच्चों की वृद्धि के कारण होगी। १.२३ लाख अतिरिक्त शिक्षकों की आवश्यकता ११ से १४ वर्ष के बच्चों के लिए, ०.७७ लाख शिक्षकों की आवश्यकता १४ से १७ वर्ष के बच्चों के लिए तथा ०.४० लाख अतिरिक्त शिक्षकों की आवश्यकता विश्वविद्यालयीय शिक्षा के लिए होगी। इस प्रकार तृतीय योजना में लगभग ६.१८ लाख अतिरिक्त शिक्षकों की आवश्यकता होगी, परन्तु उपयुक्त शिक्षकों की पर्याप्त उपलब्धि न होने के कारण शिक्षकों की संख्या में ३०,००० की कमी कर तृतीय योजना में ५.८८ अथवा ५.८० लाख अतिरिक्त शिक्षकों को रोजगार प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया।

खनिज के क्षेत्र में अतिरिक्त रोजगार के अवसरों का अनुमान उत्पादन की वृद्धि के आधार पर लगाया गया। खनिज एवं उद्योगों के क्षेत्रों में अतिरिक्त रोजगार के अवसरों का अनुमान ७.५ लाख लगाया गया और इसमें से ०.८ लाख खनिज के क्षेत्र में उत्पन्न होने की सम्भावना की गयी। कोयले का उत्पादन ५४६ लाख टन से बढ़ कर ९७० लाख टन हो जाने का अनुमान लगाया गया और इस प्रकार ४२४ लाख टन की कोयले के उत्पादन में वृद्धि होने का अनुमान था जबकि प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष उत्पादकता तृतीय पंचवर्षीय योजना में १४० टन से बढ़ कर १८० टन अनुमानित थी और इस प्रकार कोयले के उत्पादन में रोजगार के अवसर की वृद्धि १.५ लाख होगी। इसी प्रकार कच्चे लोहे का उत्पादन १०७ लाख टन से बढ़ कर ३०० लाख टन होने का अनुमान था जबकि प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष उत्पादकता १७० टन से बढ़कर २२५ टन हो जायगी और इस प्रकार इस क्षेत्र में ०.७ लाख रोजगार के अवसरों की वृद्धि होगी। इस प्रकार कोयले एवं लोहे के उत्पादन की वृद्धि से २.२ लाख रोजगार के अवसर बढ़ने का अनुमान था। अन्य खनिजों के सम्बन्ध में सन् १९५१ से १९५८ तक के अनुभवों के आधार पर अनुमान लगाया गया है। इनमें प्रति वर्ष ७,००० रोजगार के अवसर बढ़ते हैं। इसी आधार पर तृतीय योजनाकाल में अन्य खनिजों के

क्षेत्र में ३५ ००० रोजगार के अवसर बढने की सम्भावना की गयी। इस प्रकार खनिज के क्षेत्र में तृतीय योजना में २ ५५ लाख रोजगार के अवसर बढ़ने का अनुमान लगाया गया।

बडे एवं मध्यम श्रेणी के उद्योगों में रोजगार के अवसरों की वृद्धि का अनुमान इन उद्योगों में विनियोजित होने वाली पूंजी के आधार पर लगाया गया। निम्नलिखित तालिका में विभिन्न उद्योगों में प्रति व्यक्ति पूंजी विनियोजन की आवश्यकता अंकित की गयी है—

प्रति व्यक्ति पूँजी विनियोजन की विभिन्न उद्योगों में आवश्यकता[1]

उद्योग का नाम	प्रति व्यक्ति की पूंजी की आवश्यकता
	(रुपया)
इस्पात	१,६० ०००
खाद	४०,०००
मशीन औजार (Graded)	२५ ०००
भारी मशीनों के बनाने की मशीनें	१ ०० ०००
फाउण्ड्री फोर्ज मशीनें	१ ०० ०००
कोयला निकालने की मशीनें	६० ०००
भारी बिजली का सामान	५० ०००

उपर्युक्त आँकड़ों का अनुमान लगाने के लिए अभी तक भारत में बहुत कम सूचनाएं एवं आँकडे उपलब्ध हैं, अतः इन आँकड़ों द्वारा लगाये गये रोजगार के अनुमान भी केवल एक प्रकार की प्रवृत्ति का प्रदर्शन करते हैं। यह अनुमान ठीक ठाक प्राप्त करने हेतु दीर्घ काल तक इन उद्योगों का अध्ययन करने की आवश्यकता है।

खनिज उद्योग, रेल यातायात निर्माण, स्वास्थ्य शिक्षा जन संचार सचार आदि क्षेत्रों के विकास एवं विस्तार के साथ साथ व्यापार अधिकोषण बीमा यातायात (सडक एवं रेल यातायात को छोड कर) स्टोरेज गोदाम व्यवसाय एवं विविध व्यक्तिगत सेवाओं के क्षेत्र का विस्तार एवं विकास होना स्वाभाविक होगा। इनमें उत्पन्न होने वाले रोजगार का प्रकार ऐसा होगा जिसका ठीक ठाक अनुमान लगाना अत्यन्त कठिन होता है। इनमें से कुछ क्षेत्रों में श्रमिक स्वयं अपने काम में लगा रहता है और नियोक्ता एवं कर्मचारी का प्रश्न नहीं उठता है। भारत के श्रमिकों में बहुत बडी संख्या स्वयं अपना काम कर जीविकोपार्जन करती है। इन क्षेत्रों के रोजगार के अतिरिक्त अवसरों में से कुछ आंशिक रोजगार प्राप्त व्यक्तियों को चले जाते हैं और कुछ बेरोजगार व्यक्तियों को उपलब्ध होते हैं। तत्कालीन सूचनाओं एवं आँकड़ों के

1 *Third Five Year Plan p 757*

आधार पर यह अनुमान लगाना कि इन क्षेत्रों के अतिरिक्त रोजगार-अवसरों में कितने आंशिक बेरोजगारों को और कितने बेरोजगारों को प्राप्त होंगे कठिन ही नहीं प्रयुत असम्भव था, फिर भी जो कुछ भी अध्ययन किए गए, उनके आधार पर यह अनुमान लगाया गया कि तालिका म० १२० म दिए गये १ से ११ तक की मदों से जितने रोजगार के अवसर बढ़ेंगे, उसके लगभग ५६% उपयुक्त दिए गये अन्य क्षेत्रों में भी रोजगार के अवसर बढ़ेंगे। इस आधार पर इन क्षेत्रों में ३७ ८० लाख रोजगार के अवसर बढ़ने की सम्भावना की गयी।

कृषि के क्षेत्र में यह अनुमान लगाना अत्यन्त कठिन था कि रोजगार के अवसरों का कितना भाग बेरोजगारों को प्राप्त होगा और कितना आंशिक बेरोजगारों को पूर्ण रोजगार उपलब्ध करायेगा। जो भी सीमित जाच अभी तक इस सम्बन्ध में की गयी, उससे ज्ञात हुआ कि सिंचाई भूमि सुरक्षा तथा बाढ़ नियन्त्रण से लाभ उठाने वाली भूमि के शुद्ध क्षेत्र के लगभग ३०% के बराबर कृषि में रोजगार के अवसर बढ़ेंगे। यदि प्रति व्यक्ति ४ एकड़ का सामान्य माप मान लिया जाय तो सिंचाई की अतिरिक्त सुविधाओं से १५ लाख भूमि-सुरक्षा एवं कृषि-योग्य भूमि को बनाने से १२ लाख, बाढ़ नियन्त्रण आदि से २ लाख तथा भूमिहीन कृषि श्रमिकों को भूमि देकर उनका पुनर्वास करने से ५ लाख रोजगार के अवसर बढ़ सकेंगे। इस प्रकार कृषि के क्षेत्र में ३५ लाख रोजगार के अवसर बढ़ने का अनुमान लगाया गया।

तृतीय योजना के विभिन्न कार्यक्रम के सचालन में रोजगार के अवसर बढ़ाने हेतु कुछ विशेष विचारधाराओं को दृष्टिगत किया जाना था। उनमें से मुख्य मुख्य निम्न प्रकार थीं—

(१) तृतीय योजनाकाल में अतिरिक्त रोजगार के अवसरों का समस्त देश में अधिक समानता के साथ विस्तार करने का प्रयत्न किया जायगा।

(२) ग्रामीण क्षेत्र में औद्योगीकरण में विस्तृत कार्यक्रमों का सचालन किया जायगा जिसमें ग्रामीण विद्युतीकरण ग्रामीण औद्योगिक एस्टेट का विकास, ग्रामीण उद्योगों का विस्तार आदि को विशेष महत्व दिया जायगा।

(३) ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि ग्रामीण एवं लघु उद्योगों के विकास के साथ साथ ग्रामीण कार्यशालाओं को सगठित किया जायगा जिनके द्वारा औसत से २५ लाख व्यक्तियों को वर्ष में १०० दिन रोजगार उपलब्ध हो सकेगा। ग्रामीण कार्यशालाएँ (Rural Works) कार्यक्रमों द्वारा रोजगार के अवसर की वृद्धि के साथ ग्रामीण जन शक्ति का आर्थिक विकास में उपयोग भी सम्भव हो सकेगा। ग्रामीण कार्यशालाओं में पाँच प्रकार के कार्यक्रम सम्मिलित थे—

(अ) राज्य एवं स्थानीय सस्थाओं की योजनाओं में सम्मिलित किए गये कार्यक्रम जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों का कुशल (Skilled) एवं अर्द्ध कुशल श्रमिकों का उपयोग होना।

(आ) समाज द्वारा अथवा लाभ प्राप्त करने वाले नागरिकों द्वारा सचालित वह कार्यक्रम जो विधान (Law) के अन्तर्गत उनके लिए अनिवार्य हैं।

(इ) ऐसे विकास-कार्यक्रम जिनमें स्थानीय जनता श्रम का अनुदान दे और राज्य द्वारा कुछ सहायता प्रदान की जाय।

(ई) ऐसी परियोजनाएँ जिनसे ग्रामीण जनसमुदाय आय उपार्जन करने वाली सम्पत्तियों का निर्माण कर सके।

(उ) बेरोजगारी के अधिक दबाव वाले क्षेत्रों में सगठित किए जाने वाले सहायक कार्यशाला कार्यक्रम।

प्रयोगात्मक रूप से ३४ पायलट परियोजनाओं (Pilot Projects) का प्रारम्भ किया गया जिनके द्वारा ग्रामीण जन शक्ति का उपयोग किया गया। प्रत्येक परियोजना पर लगभग २ लाख रु० व्यय किया जाना था। इन परियोजनाओं में सिंचाई का लगाना, भूमि सुरक्षा, नालियाँ बनाना, भूमि को कृषि योग्य बनाना तथा सचार, के साधनों में सुधार करना आदि सम्मिलित थे। इन परियोजनाओं से प्राप्त अनुभवों के आधार पर इन योजनाओं की स्थापना बड़े पैमाने पर अन्य क्षेत्रों में भी की जानी थी। तत्कालीन अनुमानों के अनुसार इन परियोजनाओं द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में तृतीय योजना के प्रथम वर्ष में १ लाख व्यक्तियों द्वितीय वर्ष में ४ लाख से ५ लाख व्यक्तियों को तृतीय वर्ष में १० लाख व्यक्तियों को रोजगार प्रदान किए जा सकेंगे और योजना के अन्त तक इन ग्रामीण कार्यशालाओं द्वारा लगभग २५ लाख व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध हो सकेगा।

(४) *अभी तक बेरोजगारी की समस्या का अध्ययन समस्त देश अथवा राज्यों* को इकाई मानकर किया गया। तृतीय योजना में इस समस्या का अध्ययन एवं निवारण जिला एवं खण्ड स्तर पर करने का प्रयास किया जाना था। प्रत्येक राज्य की बेरोजगारी की समस्या को जिला स्तर पर विभक्त कर लिया जाना था और इस समस्या का निवारण ग्राम खण्ड अथवा जिला स्तर पर करने का प्रयत्न किया जायगा।

(५) *विभिन्न परियोजनाओं के निर्माण कार्यक्रमों में श्रमप्रधान विधियों को* अधिक महत्व दिया जाना था यदि मशीनों से चलने वाली विधियों से निर्माण कार्य में कोई विशेष बचत नहीं होती हो।

(६) ऐसे क्षेत्रों में जिनमें जनसंख्या का दबाव अधिक था और विकास के बड़े कार्यक्रम भी वहाँ की समस्त श्रम शक्ति को रोजगार प्रदान न कर सकते हों, वहाँ के लोगों की बड़ी मात्रा को उचित प्रशिक्षण देकर अन्य क्षेत्रों में जहाँ इस प्रकार के प्रशिक्षित श्रम की कमी हो काय करने के अवसर प्रदान किए जाने थे।

(७) लघु इकाइयों को अपनी क्षमता का पूर्ण उत्पादन करने हेतु आवश्यक सुविधाएँ दी जानी थी। लोहा एवं इस्पात अलौह धातुएँ धागा (Yarn) रसायन एवं रंग तथा अन्य कच्चे माल आदि का उचित प्रबन्ध किया जाना था।

(८) ग्रामीण औद्योगीकरण एवं विद्युतीकरण द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगिक विकास के केन्द्रों की स्थापना की जानी थी। इन औद्योगिक केन्द्रों को यातायात एवं अन्य सुविधाओं से जोड़ दिया जाना था। यह केन्द्र छोटे-छोटे नगर अथवा केन्द्रित ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित होने थे जिनकी ओर कुशल श्रमिक एवं व्यवसायी जनता कार्य संचालन करने हेतु आकर्षित हो सकें।

(६) पिछले दस वर्षों में देश के औद्योगिक ढाँचे में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो गये थे। कुछ नवीन उद्योगों जैसे लोहा एवं इस्पात, रसायन, खनिज तेल का शोधन, यातायात एवं बिजली इन्जीनियरिंग, रबर के टायर, एल्यूमिनियम आदि की स्थापना देश में हुई और पुराने उद्योगों जैसे सूती वस्त्र, जूट एवं चाय में उत्पादन की नवीन विधियों के उपयोग को महत्त्व दिया जाने लगा। इस प्रकार देश के लगभग सभी बड़े उद्योगों में उत्पादन की नवीन विधियों का उपयोग किया जाने लगा। उत्पादन की नवीन विधियों में शिक्षित एवं प्रशिक्षित कर्मचारियों की आवश्यकता होती है और इन उद्योगों के विस्तार के साथ-साथ शिक्षित व्यक्तियों को रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध होते हैं। शिक्षित बेरोजगारों की संख्या का ठीक ठीक अनुमान लगाना तो अत्यन्त कठिन था परन्तु यह अनुमान लगाया गया है कि द्वितीय योजना के अन्त में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या लगभग १० लाख थी और तृतीय योजनाकाल में हाई स्कूल अथवा उससे ऊँची शिक्षा प्राप्त नये रोजगार प्राप्त करने वालों की संख्या ४० लाख होगी। कृषि, उद्योग एवं यातायात के विकास के साथ-साथ तान्त्रिक एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त लोगों की माँग में वृद्धि होगी। तृतीय योजना में शिक्षा के पुनर्संगठन पर जोर दिया जाना था जिससे इस काल में उपयुक्त शिक्षित व्यक्ति उपलब्ध हो सकें। ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारी साख, विपणि एवं कृषि संस्थाओं में उत्पादन करने वाले उद्योगों (Processing Industries) वनानिक कृषि के विकास तथा जिला, खण्ड तथा ग्राम-स्तर पर लोकतन्त्रीय संस्थाओं की स्थापना से शिक्षित व्यक्तियों को अधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध हो सकेंगे। इसके अतिरिक्त ग्रामीण केन्द्रों में शिक्षित व्यक्तियों को लघु उद्योगों की स्थापना के अवसर भी उपलब्ध होने की सम्भावना थी।

तृतीय योजना के रोजगार के कार्यक्रमों का विस्तृत अध्ययन करने के पश्चात् उन पर आलोचनात्मक दृष्टि डालना भी आवश्यक है। रोजगार-कार्यक्रमों के सम्बन्ध में हम अपनी आलोचना निम्न प्रकार सूत्रबद्ध कर सकते हैं—

(१) द्वितीय योजनाकाल के प्रारम्भ में देश में ५३ लाख व्यक्तियों के बेरोजगार होने का अनुमान था। द्वितीय योजनाकाल में १ करोड़ नवीन श्रमिकों की वृद्धि का अनुमान था जबकि वास्तविक वृद्धि १.१७ करोड़ श्रमिक हुई। इस प्रकार द्वितीय योजनाकाल में पूर्ण रोजगार प्रदान करने हेतु १.७० करोड़ रोजगार के अवसर बनाने की आवश्यकता थी, जबकि वास्तव में केवल ८० लाख रोजगार के अवसर ही द्वितीय

योजना म बनाये जा सके और इस प्रकार तृतीय योजना ६० लाख बेरोजगार व्यक्तियों से प्रारम्भ हुई है। तृतीय योजनाकाल म सन् १९६१ की जनगणना के प्रारम्भिक अनुमानो क अनुसार १ ७० करोड नवीन श्रमिकों की वृद्धि होने का अनुमान था और इस प्रकार तृतीय योजना म पूर्ण रोजगार की व्यवस्था हेतु २ ६० करोड रोजगार के अवसर उत्पन्न करने की आवश्यकता था जबकि तृतीय योजना म १ ४० करोड रोजगार क अवसर बनाने का आयोजन किया गया और इस प्रकार तृतीय योजना १ २० करोड बेरोजगारों से अन्त होना थी। राष्ट्रीय अथ व्यवस्था क विस्तार एव विकास के साथ साथ बेरोजगारी का बढना कुछ असगत प्रतीत होता है। वास्तव म देश म श्रम शक्ति का वृद्धि अनुमान स अधिक होने के कारण बेरोजगारी की समस्या का निवारण एक जटिल समस्या बन गया है। जब तक विनियोजन के प्रकार म महत्व पूर्ण परिवर्तन नही किये जायेंगे तथा जनसख्या की वृद्धि पर नियन्त्रण नहीं रखा जायगा देश का बेरोजगारी की समस्या का निवारण नहीं हो सकेगा।

(२) तृतीय योजना म अतिरिक्त रोजगार क अनुमानो म १०५ लाख रोजगार क अवसर कृषि क अतिरिक्त अन्य क्षेत्रो म बनने का अनुमान था। इसम से लगभग २३ लाख व्यक्तियों अर्थात २२% निर्माण कार्यों म बनाये जाने का अनुमान था। निर्माण कार्यों म रोजगार क अवसरों क अनुमान सन् १९६० ६१ क अनुभवो के आधार पर विकास व्यय की वृद्धि को आधार मान कर निर्धारित किये गये। सन् १९६५ ६६ तक मूल्यो म वृद्धि होना स्वाभाविक होगा और इसके साथ साथ श्रमिकों क पारिश्रमिक म भी थोडा बहुत वृद्धि अवश्य हो जानी थी। इस प्रकार विकास व्यय द्वारा होने वाले कार्य की मात्रा एव रोजगार प्रदान करने की क्षमता कम हो जाना स्वाभाविक थी। ऐसी परिस्थिति म निर्माण म प्राप्त होने वाले रोजगार के अवसरो का अनुमान सवथा ठीक नहीं कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त विभिन्न निर्माण-कार्यों म लगे हुए श्रमिकों म निर्माण काय पूरा होने पर हटा दिया जाता है और उन्हें दूसरे निर्माण कार्यों पर रोजगार देने म बहुत सी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। किसी निर्माण काय से पृथक हुए श्रमिकों को दूसरे निर्माण काय म रोजगार देने के लिए उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण देना तथा उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करना आवश्यक होता है। ये दोनो ही काय शीघ्रता से नहीं किये जा सकते हैं। इस प्रकार नवीन निर्माण कार्यों म जहाँ रोजगार म वृद्धि होती वही सम्पूर्ण हुए निर्माण-कार्यों से वे रोजगारी भी बढ़ती। वास्तव म निर्माण काय से अतिरिक्त रोजगार क अनुमान लगाते समय पूर्ण हुए निर्माण-कार्यों से पृथक हुए श्रमिकों को भी दृष्टिगत करना चाहिए था।

(३) निर्माण-कार्यो म प्राप्त हुए रोजगार को स्थायी स्वरूप नहीं दिया जा सकता। किसी निर्माण-काय क पूर्ण होने पर उस पर लगे हुए श्रम का बेरोजगार हो जाना स्वाभाविक है। यदि भविष्य म क्रियान्वित होने वाली योजनाओं म निरन्तर

निर्माण-कार्य में वृद्धि होती रहे तो पूरा हुए निर्माण-काम से अलग हुए बेरोजगारों को कुछ सीमा तक एवं नवीन श्रमिकों को सीमित मात्रा में रोजगार उपलब्ध हो सकता है किन्तु भविष्य की योजनाओं में नवीन निर्माण-कार्य बढ़ते ही रहेंगे यह सम्भावना करना उचित न होगा। ज्यों ज्यों अर्थ-व्यवस्था में पूर्णता आती जायगी, निर्माण कार्य भी कम होते जायेंगे। इसके अतिरिक्त जैसे-जैसे निर्माण-कार्यों में काम करने वाले श्रमिकों की संख्या बढ़ती जायगी, नवीन निर्माण-कार्यों की अतिरिक्त रोजगार प्रदान करने की क्षमता भी घटती जायगी क्योंकि इनमें पूरा हुए कार्यों से पृथक् हुए श्रमिकों को रोजगार देना आवश्यक हो जायगा।

(४) लघु उद्योगों एवं बड़े तथा मध्यम श्रेणी के उद्योगों में अतिरिक्त रोजगार के अवसर इन उद्योगों की नवीन विनियोजन की राशि पर आधारित थे। तत्कालीन मूल्यों के आधार पर विभिन्न उद्योगों में एक व्यक्ति को रोजगार उपलब्ध कराने के लिए विनियोजन की राशि अनुमानित कर ली गयी थी और इसी आधार पर विभिन्न उद्योगों में होने वाली नवीन विनियोजन-राशि के आधार पर रोजगार-क्षमता ज्ञात की गयी। इन क्षेत्रों में भी रोजगार का अनुमान तभी ठीक हो सकते थे, जब मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि नहीं होती। मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि होने पर विभिन्न उद्योगों की विनियोजन राशि अनुमान के अनुसार रहते हुए भी उनकी रोजगारक्षमता कम हो जायगी।

(५) कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों को विभिन्न मदों से प्राप्त होने वाला अतिरिक्त रोजगार ६३.५० लाख है और इसका लगभग ५६%, अर्थात् ३५.८० लाख अतिरिक्त रोजगार के अवसर व्यापार, अतिथिगृह, होटल, यातायात (रेलों एवं सड़कों को छोड़कर), स्टोरेज, गोदाम तथा व्यवसायों एवं व्यक्तिगत सेवाओं आदि से प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इस प्रकार के अतिरिक्त रोजगार के अवसरों का प्रतिशत केवल ४२ था। तृतीय योजना में इस प्रतिशत को ५६ अनुमानित करने का कोई आधार स्पष्ट नहीं होता है। इसके अतिरिक्त यह प्रतिशत सन् १९५१ की जनगणना पर आधारित है और इसमें सन् १९६१ की जनगणना के आँकड़ों के अनुसार यह प्रतिशत ५०% से कम ही था।

(६) कृषि के क्षेत्र के अतिरिक्त रोजगार के अवसरों का अनुमान इस भविष्य पर आधारित है जिसे कृषि एवं सिंचाई-सम्बन्धी विभिन्न परियोजनाओं से लाभ पहुँचेगा। वास्तव में कृषि-क्षेत्र में जो भी सुधार एवं लाभ उपलब्ध कराये जाते थे, उनसे आंशिक बेरोजगारी एवं अदृश्य बेरोजगारी तो अवश्य कम होती परन्तु अतिरिक्त रोजगार के अवसरों की वृद्धि अत्यन्त सीमित होती। कृषि-योग्य भूमि की वृद्धि एवं कृषि भूमि के पुनर्वितरण से अवश्य ही रोजगार के अवसरों में कुछ वृद्धि होती परन्तु इस वृद्धि का अनुमान ठीक ठीक लगाना सम्भव नहीं था। दूसरी ओर, कृषि-क्षेत्र की योजनाओं की सफलता बड़ी सीमा तक जलवायु एवं वर्षा की अनुकूलता पर आधारित होती है और इन दोनों के सम्बन्ध में निश्चय करना सर्वथा असम्भव है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि अतिरिक्त रोजगार के अनुमानों का ठीक ठीक सिद्ध होना बहुत से घटकों पर निर्भर था जिनमें मूल्यों की स्थिरता एवं जलवायु की अनुकूलता प्रमुख थे।

बेरोजगार के सम्बन्ध में जो भी आँकड़े उपलब्ध होते हैं वे केवल अनुमान मात्र होते हैं और विभिन्न संस्थाओं एवं समितियों द्वारा जो आँकड़े प्रस्तुत किए जाते हैं उनमें एकरूपता का अभाव पाया जाता है। यही कारण है कि प्रस्तावित चतुर्थ योजना (सन् १९६६-७४) में नियोजकों ने यह स्वीकार किया है कि रोजगार-सम्बन्धी जो भी आँकड़े अभी तक उपलब्ध हैं वे केवल अटकल (Guess) मात्र हैं और इन पर विश्वास किया जाना सम्भव नहीं है। फिर भी अभी तक के उपलब्ध आँकड़ों से *बेरोजगार की समस्या का अनुमान तो लगाया ही जा सकता है। निम्नलिखित* तालिका में अभी तक के उपलब्ध आँकड़ों को स्पष्ट किया गया है।

तालिका सं० १२१—भारत में योजनाओं के अन्तर्गत बेरोजगार समस्या

(लाख में)

योजना	बेरोजगारों का पिछला आधिक्य	योजनाकाल नयी श्रम शक्ति	२ व ३ का योग	योजनाकाल रोजगार की व्यवस्था	योजना के अन्त में बेरोजगार
प्रथम योजना	३३	९०	१२३	७०	५३
द्वितीय योजना	५३	११८	१७१	१००	७१
तृतीय योजना	७१	१७०	२४१	१४५	९६
तीन वार्षिक योजनाएँ[1]	९६	७८	१७४	११०	६४
चतुर्थ योजना	६४	२३०[2]	२९४	?	?

चतुर्थ योजना में रोजगार

इस तालिका के आँकड़ों से प्रतीत होता है कि चतुर्थ योजना में लगभग तीन करोड़ लोग रोजगार की माँग करने के लिए प्रस्तुत होंगे। प्रस्तावित चतुर्थ योजना (सन् १९६६-७४) में बेरोजगारी की समस्या के परिमाण का ठीक-ठीक ज्ञान न होने *के कारण इस सम्बन्ध में योजना आयोग ने न तो यह अनुमान लगाया है कि योजना* काल में कितने लोगों को रोजगार की आवश्यकता होगी और न ही यह बताया है कि योजना के विकास विनियोजन द्वारा कितने नये रोजगार के अवसर उदय हो सकेंगे।

---

१ तीन वार्षिक योजनाओं में *नयी श्रम शक्ति का अनुमान प्रथम प्रस्तावित चतुर्थ योजना (सन् १९६६-७१) में अनुमानित नवीन श्रम शक्ति २३० लाख के आधार* पर ३ वर्षीय औसत द्वारा *अनुमानित की गयी है तथा वार्षिक योजनाओं के* अन्तर्गत रोजगार के अवसरों का अनुमान भी प्रथम प्रस्तावित योजना में अनुमानित रोजगार अवसरों की वृद्धि के आधार पर किया गया है।

२ प्रथम प्रस्तावित चतुर्थ योजना में अनुमानित।

विश्वसनीय आकडो की अनुपलब्धि के कारण यह पता न लगया कुछ सीमा न्चित माना जा सकता है कि चतुथ योजना मे कितने लोग रोजगार मांगेंगे परन्तु विनियोजन कायक्रमो के प्रकार एव परिमाण के आधार पर न्यनम उपयोग होन वाले अतिरिक्त श्रम का अनुमान लगाया जाना सम्भव होना चाहिए था। भारत सरकार द्वारा दतवाला समिति की स्थापना की गयी है जो बेरोजगार की समस्या विस्तृत अध्ययन कर आवश्यक आँकडे एव सिफारशें प्रस्तुत करगी।

चतुथ योजना के विभिन्न कायक्रमो म रोजगार के अवसरों की वृद्धि का तत्व निहित है और यह आशा की जाती है कि योजना के विकास-कायक्रमों के फलस्वरूप, रोजगार के अवसरों में पयाप्त वृद्धि हो सकगी परन्तु विभिन्न कायक्रमों द्वारा कितनी रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी इसका अनुमान नहीं लगाया गया है। चतुथ योजना के निम्नलिखित कायक्रम रोजगार के अवसरों की वृद्धि में विशेषरूप से सहायक होंगे—

(१) चतुथ योजना म श्रमप्रधान कायक्रमों पर विशेष जोर दिया गया है जैसे सडकों का निर्माण, लघु सिचाई-परियोजनाएँ, भूमि-सुरक्षा, क्षेत्र विकास-कायक्रम, सहकारिता, सिचाई बाढ नियत्रण, ग्रामीण विद्युतीकरण, लघु एव ग्रामीण उद्योग तथा नगरों का विकास-योजनाएँ। योजना म श्रमप्रधान कायक्रमों पर अय योजनाओं में अधिक व्यय आयोजित किया गया है। सावजनिक वित्तीय सस्थाओं द्वारा योजना काल म प्रति वष २६० करोड रु० की ऋण सहायता श्रमप्रधान कायक्रमों को दी जायगी।

(२) कृषिक्षेत्र में तीव्र गति से विकास करने की व्यवस्था के फलस्वरूप, ग्रामीण क्षेत्रों म नवीन रोजगार के अवसर उदय होन की सम्भावना है। कृषि के विकास के फलस्वरूप कृषिक्षेत्र म आशिक रोजगार प्राप्त लोगों को पूर्ण रोजगार उपलब्ध होने की भी सम्भावना है।

(३) सगठित उद्योगों एव खनिज के कारण हुए विकास, लघु एव सहायक उद्योगों के प्रोत्साहन तथा ग्रामीण एव घरेलू उद्योगों को निरन्तर सहायता प्रदान करने, ग्रामीण विद्युतीकरण का विस्तृत आयोजन, मरम्मत एव निर्वाह-सेवाओं की दुकानों का विकास निर्माण क्रिया का अधिक आयोजन, यातायात सचार शक्ति एव प्रशिक्षण सुविधाओं के विस्तार के परिणामस्वरूप रोजगार के अवसर स्वत रोजगार अवसरों (Self Employed Opportunities) में वृद्धि होन का अनुमान है।

(४) ग्रामीण औद्योगीकरण को महत्व देने, उद्योगों के ग्रामीण क्षेत्रों के हित में छितराव तथा कृषि से सम्बन्धित उद्योगों के विकास के फलस्वरूप, शिक्षित लोगों की आवश्यकता बढ़ने का अनुमान है जिससे ग्रामीण क्षेत्र म शिक्षित नवयुवकों को रोजगार उपलब्ध हो सकेगा।

(५) सेवा क्षेत्र—शिक्षा स्वास्थ्य परिवार नियोजन आदि के विस्तार के कारण शिक्षकों डाक्टरों तथा अय प्रशिक्षित लोगों को अधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध हो सकेंगे।

(६) योजना में द्रुत गति से प्रगति करने तथा उत्पादन क्रियाओं के समस्त क्षेत्र में छितराव के फलस्वरूप रोजगार के अवसरों में वृद्धि स्वाभाविक होगी।

(७) शिक्षित बेरोजगारों को यद्यपि विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से अधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध होने लगेंगे परन्तु शिक्षा की प्रगति आर्थिक प्रगति की तुलना में अधिक तेजी से होने के कारण इस समस्या का स्थायी निवारण शिक्षा के पाठ्यक्रमों में परिवर्तन करने का प्रस्ताव किया गया जिससे व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त श्रम शक्ति में वृद्धि हो सके और स्वयं रोजगार करने वाले लोगों को अधिक अवसर उपलब्ध हो सकें। रोजगार एवं प्रशिक्षण से सम्बद्ध श्रम आयोग के एक अध्ययन ग्रुप ने यह अनुमान लगाया है कि शिक्षित बेरोजगारों (जो मैट्रिक या अधिक शिक्षा प्राप्त हैं) की संख्या सन् १९६४ दिसम्बर में ८.०५ लाख थी जो सन् १९६७ दिसम्बर में १०.८७ लाख हो गयी अर्थात् ३५% की वृद्धि हुई। शिक्षित बेरोजगारों में लगभग ७०% ऐसे थे जिन्हें किसी कार्य का अनुभव अथवा व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त नहीं था। इस ग्रुप ने अनुमान लगाया कि सन् १९७५-७६ तक शिक्षित बेरोजगारों की संख्या बढ़कर लगभग १६ लाख हो जायगी। इस प्रकार शिक्षित बेरोजगारों की समस्या के निवारण की उचित व्यवस्था करना आवश्यक है।

अध्याय ३८

भारतीय नियोजन एवं सामाजिक व्यवस्था

[Indian Planning and the Pattern of Society]

[आर्थिक विकास के लक्षण, सामाजिक पूँजी, समाजवादी प्रकार का समाज, समाजवादी समाज के सिद्धान्त तृतीय योजना में समाजवादी समाज की व्यवस्था चतुर्थ योजना के सामाजिक उद्देश्य]

अल्प विकसित राष्ट्रों में सामाजिक संगठन इस प्रकार का होता है कि लोग अपने परम्परागत व्यवसायों में ही काम करना अधिक उचित समझते हैं। कुछ व्यवसायों और विशेषकर व्यापार-सम्बन्धी व्यवसायों को अच्छा नहीं समझा जाता। जाति-भेद अत्यधिक होता है और प्रत्येक जाति एक विशेष व्यवसाय से ही सम्बन्धित होती है। यदि कोई व्यक्ति अपनी जाति द्वारा अपनाये गये व्यवसाय से अन्य व्यवसाय करना चाहता है तो समाज इसकी आज्ञा नहीं देता और उसकी जाति वाले उसे बुरी दृष्टि से देखते हैं। क्षेत्रीय तथा धार्मिक भेद भाव भी इतना अधिक होता है कि इसके द्वारा आर्थिक विकास में गम्भीर बाधाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इस प्रकार श्रमिकों में क्षेत्रीय तथा व्यवसाय-सम्बन्धी गतिशीलता का अत्यन्त अभाव होता है। श्रम को अपने परम्परागत निवास-स्थान तथा अपनी जाति एवं समूह से इतना आकर्षण होता है कि वह समय-समय पर अपने व्यवसाय से अवकाश लेना चाहता है जिससे वह अपने सम्बन्धियों के साथ रह सके। इससे उद्योगों में अनुपस्थिति की समस्या अत्यधिक गम्भीर होती है। भावी साहसी जो नवीन औद्योगिक इकाइयों को स्थापित करना चाहते हैं, तान्त्रिक तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करते हैं परन्तु उनके जातिभाई उन्हें अनादर की दृष्टि से देखते हैं। शारीरिक श्रम तथा हस्तकला का कार्य करना समाज में हेय समझा जाता है। पुस्तकीय ज्ञान को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है। जनसमुदाय में बाबूगीरी के कामों (White collar Jobs) का अधिक आदर प्राप्त होता है। लोग किसी कार्यालय में लिपिक बनना पसन्द करते हैं किन्तु अधिक पारिश्रमिक वाले शारीरिक श्रम उनको रुचिकर नहीं होते। इस प्रकार की प्रवृत्ति से राष्ट्रीयता की भावना में कुछ कमी हो जाती है। शिक्षा का प्रसार होने से शिक्षित बेरोजगारों की समस्या इसी प्रवृत्ति के कारण दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है। जनसमुदाय में कोई भी विवेकपूर्ण नवीन परिवर्तन स्वीकार करने की चाह नहीं होती। नियोजन-अधिकारियों के अनुमानानुसार कोई भी योजना सफलतापूर्वक कार्यान्वित नहीं हो पाती और विकास की प्रगति मन्द हो जाती है।

अल्प विकसित राष्ट्रों में उपयोग की जाने वाली आर्थिक विकास की विभिन्न विधियों ने कुछ विशेष एवं महत्वपूर्ण सामाजिक बाधाओं की जानकारी प्रदान की है। लगभग सभी अल्प विकसित राष्ट्रों में समाजवाद के अन्तिम लक्ष्य आर्थिक एवं सामाजिक समानता की प्राप्ति हेतु प्रयास किये जाने लगे हैं। इस लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु इन देशों में विभिन्न प्रकार की विधियों का उपयोग परिस्थिति के अनुसार होने लगा है। सामान्यतः यह विश्वास अब दृढ़ हो गया है कि देश की सामाजिक एवं आर्थिक सम्पन्नता के लिए आर्थिक नियोजन को अपनाना अनिवार्य है। अल्प विकसित राष्ट्रों की योजनाओं में आर्थिक एवं सामाजिक दोनों प्रकार की उन्नति के लिए आयोजन किये जाते हैं परन्तु दुर्भाग्यवश आर्थिक कार्यक्रमों को इन योजनाओं में अधिक महत्व दिया जाता है और सामाजिक उन्नति के कार्यक्रमों को आर्थिक कार्यक्रमों का सह उत्पादक समझा जाता है। इन योजनाओं के सामाजिक कार्यक्रमों में भी समाज की भौतिक सम्पत्तियों जैसे स्कूल, चिकित्सालय, मनोरंजन गृह आदि के वर्णन पर विशेष जोर दिया जाता है। नागरिकों की व्यक्तिगत एवं सामुदायिक बुराइयों को दूर कर सामाजिक क्रान्ति लाने के प्रति विशेष प्रयास नहीं किये जाते हैं। वास्तव में अल्प विकसित राष्ट्रों की सर्वतोमुखी उन्नति के लिए ऐसी सामाजिक संस्थाओं की अत्यधिक आवश्यकता होती है जो जनसाधारण में कर्त्तव्यपरायणता एवं कर्तव्य के प्रति तत्परता उत्पन्न कर सके तथा उनमें अपने सामाजिक कर्त्तव्यों के पूर्ति के लिए जागरूकता उत्पन्न करे। आर्थिक विकास के साथ साथ इन सामाजिक दोषों में और भी वृद्धि होती जाती है। योजना अधिकारियों को इन सामाजिक दोषों को दूर करने के लिए भौतिक सम्पन्नता के समान ही आयोजन करने चाहिए। योजनाओं के सामाजिक उद्देश्यों को आर्थिक उद्देश्यों के समान ही महत्व दिया जाना चाहिए। आर्थिक सम्पन्नता सामाजिक सम्पन्नता का केवल एक साधन अथवा अंग है। केवल इस एक अंग को पुष्ट करने से सामाजिक सम्पन्नता सम्भव नहीं हो सकती है। योजनाओं में केवल भौतिक विनियोजन एवं उससे प्राप्त भौतिक उत्पादन को ही दृष्टिगत नहीं करना चाहिए अपितु मानव में किये जाने वाले विनियोजन को भी विशेष महत्व दिया जाना चाहिए। भौतिक विनियोजन को अर्थशास्त्री उत्पादक मानते हैं क्योंकि इसके फल शीघ्र ही उपलब्ध हो जाते हैं परन्तु मानव में होने वाले विनियोजन का फल दीर्घ काल में प्राप्त होता है और इसलिए इसे कुछ अर्थशास्त्री अनुत्पादक मानते हैं।

प्रत्येक योजना की सफलता पूंजी निर्माण अत्यन्त आवश्यक होता है। योजना के कार्यक्रम निर्धारित करते समय वित्तीय एवं भौतिक साधनों को दृष्टिगत कर योजना के लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं परन्तु प्रायः राष्ट्र की सामाजिक पूंजी को दृष्टिगत नहीं किया जाता है। वास्तव में, आर्थिक पूंजी निर्माण के समान ही सामाजिक पूंजी निर्माण की भी आवश्यकता योजना की सफलता के लिए होती है। जनसमुदाय के सामाजिक सचयों को दृष्टिगत किये बिना जिन योजनाओं को

निर्माण एवं संचालन किया जाता है वे कभी पूर्णत सफल नहीं हो सकते हैं। इनमें राष्ट्र की भौतिक सम्पत्तियों में वृद्धि हो सकती है परन्तु इस वृद्धि के लिए भी अधिक अपव्यय एवं त्याग करना होता है। इनके द्वारा जनसाधारण के चरित्र सम्बन्धी गुणों में कोई सुधार सम्भव नहीं हो सकता है।

किसी भी राष्ट्र की आर्थिक सम्पन्नता के लिए, उसके विकास की आर्थिक विधियों के अनुसार, जन-साधारण में नैतिक शील एवं आध्यात्मिक गुणों की आवश्यकता होती है। ब्रिटेन फ्रांस जर्मनी तथा संयुक्त राज्य अमेरिका की वर्तमान प्रगति पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत हुई है। पूँजीवाद की आधारशिला व्यक्तियों एवं वर्गों के अपने हित के लिए कार्य करने की आर्थिक स्वतन्त्रता है। इसके अन्तर्गत प्रारम्भिकता का प्रादुर्भाव उपक्रमियों के समाज द्वारा हुआ। यह उपक्रमी नवीनता एवं परिवर्तन की भावना से भरपूर थे। श्रम को अपना कार्य चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। इसके लिए उस जाति तथा भाषा सम्बन्धी एवं वैधानिक कोई बाधाएँ नहीं थीं। जब संयुक्त पूँजी वाली कम्पनियों का जन्म हुआ तो ऐसे विनियोगों के वर्ग की आवश्यकता हुई जो व्यवसायियों को अपनी पूँजी दें और जो व्यवसायियों का विश्वास करते कि व्यवसायी उनके साथ विश्वासघात नहीं करेंगे। यद्यपि इन देशों में भी बहुत-सी कुरीतियों कपट तथा असमानताओं का प्रादुर्भाव औद्योगिक विकास-काल में हुआ, परन्तु कुछ ही पीढ़ियों के पश्चात् ये नैतिक बुराइयाँ कम हो गयीं और विकास की गति तीव्र हो गयी। वास्तव में इन देशों की आर्थिक प्रगति का मुख्य कारण वहाँ का सामान्य नैतिक-स्तर है।

आर्थिक विकास के लक्षण

अल्प विकसित राष्ट्रों के आर्थिक विकास में निम्नलिखित सामान्य लक्षण उपस्थित रहते हैं—

(१) नकल की अर्थ-व्यवस्था (Imitation Economy)—अल्प विकसित राष्ट्रों का आर्थिक विकास पूर्णत नकल पर आधारित है। इन देशों में किन्हीं विशेष विधियों का बहुत कम आविष्कार हुआ है और प्राय भाग तकनीकों, जो विकसित राष्ट्रों द्वारा विकास के प्रारम्भिक काल में उपयोग की गयी हैं और जिनमें बाद में अनुभव के आधार पर परिवर्तन किये गये हैं, का उपयोग किया जाता है। विकसित राष्ट्रों के आर्थिक विकास की विधियों को अपनाने के साथ वहाँ के सामाजिक मूल्यों के स्तर को अपनाना सफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

(२) अल्प विकसित राष्ट्रों में निजी व्यवसायियों द्वारा आर्थिक प्रगति के बहुत थोड़े कार्यक्रमों का संचालन किया जाता है और अधिकतर कार्यक्रम सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा संचालित करने होते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र की कार्यकुशलता सरकारी अधिकारियों की सचाई, ईमानदारी एवं कार्यक्षमता राजनीतिक नेताओं की सूझ बूझ तथा जनसमुदाय की सामाजिक जागरूकता एवं सहयोग की भावना पर निर्भर

होती है। सामाजिक जागरूकता का अर्थ जिम्मेदारी की भावना तथा सामाजिक जीवन के प्रति रुचि में है। दूसरी ओर निजी साहसियों को भी राजकीय प्रतिबन्धों एवं नियमों के अधीन ईमानदारी से कार्य करना चाहिए। सरकारी नियमों एवं प्रतिबन्धों की प्रभावशीलता सरकारी अधिकारियों एवं निजी साहसियों के नैतिक स्तर पर निर्भर रहती है।

(३) अल्प विकसित राष्ट्रों में जनसाधारण अपनी अनिवार्यताओं की पूर्ति भी नहीं कर पाते हैं। इन राष्ट्रों में विभिन्न वर्गों एवं व्यवसायों के लोगों की आय में अत्यधिक विषमता होती है। आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में विकास का अधिकतर लाभ समाज के उच्च वर्गों को प्राप्त होता है जो प्रायः सामाजिक दोषों में भरपूर रहते हैं और निम्न वर्गों की आर्थिक सम्पन्नता में बाधाएँ खड़ी करते हैं। इसके अतिरिक्त आर्थिक सम्पन्नता के फलस्वरूप जनसाधारण का दृष्टिकोण भौतिक सम्पन्नता की ओर अधिक आकर्षित होने लगता है। जनसाधारण उच्च वर्गों के आर्थिक एवं सामाजिक स्तर की नकल करना चाहता है और वह धनोपार्जन को जीवन का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य मानने लगता है। जनसाधारण धनोपार्जन के लिए निरन्तर प्रयास करता रहता है और इस बात पर कभी ध्यान नहीं देता कि इनके प्रयासों द्वारा क्या सामाजिक परिणाम होते हैं और उनके प्रयासों में कौन कौन से सामाजिक दोष निहित हैं। ऐसी परिस्थिति में नियोजित अर्थ-व्यवस्था के सफलतार्थ जनसाधारण के सामाजिक संचय बनाना अत्यन्त आवश्यक होता है।

(४) अल्प विकसित राष्ट्रों में आर्थिक गतिविधि राजनीतिक गतिविधि पर आधारित होती है। अधिकतर राष्ट्रों में आर्थिक विकास के कार्यक्रमों का संचालन विदेशी साम्राज्यवाद से मुक्त होने के पश्चात ही संचालित किया गया है। राष्ट्रीय नेताओं को राजनीतिक सत्ता कठोर त्याग एवं कठिनाई के पश्चात प्राप्त होता है जिसके फलस्वरूप व्यक्तिगत हित राजनीतिक ढाँचे में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेता है। राजनीतिक क्षेत्र में सामाजिक संचयों में गम्भीरता में कमी होती है जिससे समाज की सामाजिक सम्पन्नता में बाधाएँ खड़ी हो जाती हैं।

उपर्युक्त लक्षणों से यह स्पष्ट है कि अल्प विकसित राष्ट्रों में सामाजिक पूँजी का निर्माण उतना ही आवश्यक है जितना आर्थिक पूँजी का निर्माण। सामाजिक एवं आर्थिक पूँजी का पर्याप्त संचय होने पर नियोजित अर्थ-व्यवस्था को पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है।

सामाजिक पूँजी

सामाजिक पूँजी की परिभाषा देना अत्यन्त कठिन है। यह बताना कि इसके अन्तर्गत कौन से गुणों को सम्मिलित करना चाहिए यह भी एक कठिन समस्या है। प्रत्येक देश की सामाजिक व्यवस्था एवं वातावरण दूसरे राष्ट्रों की तुलना में भिन्न होता है और इसी प्रकार सामाजिक पूँजी की सीमाएँ प्रत्येक राष्ट्र में अलग हो जाती

हैं, फिर भी विषय का स्पष्ट परिचय देने हेतु निम्नलिखित घटकों को सामाजिक पूँजी में प्रायः सम्मिलित किया जाता है—

(१) आत्मविश्वास, आत्मसंयम तथा अवसरों के अनुकूल उन्नति करने की तत्परता।

(२) उन सामाजिक तत्त्वों एवं उद्देश्यों में विश्वास जो देश प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है।

(३) शासन-व्यवस्था, राजनैतिक नेतृत्व, नियोजन अधिकारी, व्यापारी एवं वे सब जिनका नियोजन के संचालन से सम्बन्ध है, उनमें जनता का विश्वास।

(४) कार्य के प्रति जनसाधारण में ईमानदारी, सच्चाई तथा राष्ट्रीयता की भावना।

(५) हस्तकौशल एवं शारीरिक कार्य के प्रति जनसाधारण में उदासीनता न होना।

(६) सहकारिता, एकता, सामाजिक समानता एवं सद्भाव की भावना।

(७) किसी व्यवसाय की प्रारम्भिकता या पैतृक व्यवसाय पर आधारित न होना।

(८) शिक्षा का उचित स्तर जिससे समाज एवं देश के प्रति जागरूकता उत्पन्न हो तथा चरित्र का निर्माण हो, आदि।

अल्प-विकसित राष्ट्रों की नियोजित अर्थ-व्यवस्था की प्रारम्भिक अवस्था में उपरोक्त सामाजिक घटकों का लोप होता है और जब तक सक्रिय प्रयत्न नहीं किए जायें, सामाजिक कठिनाइयाँ हमारे आर्थिक कार्यक्रमों पर विपरीत प्रभाव डालती रहती हैं। ऐसी परिस्थिति में यह अत्यन्त आवश्यक है कि सामाजिक घटकों को बढ़ाने के सतत प्रयत्न किए जायें। यह वास्तव में अल्प विकसित राष्ट्रों की कठिन समस्या है जिसका हल अभी तक राजनैतिक एवं सामाजिक नेता नहीं निकाल पाये हैं। सामाजिक पूँजी के संचयार्थ दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन दोनों ही प्रकार के कार्यक्रमों को अपनाया जा सकता है। दीर्घकालीन कार्यक्रमों के अन्तर्गत शिक्षा में आवश्यक सुधार करना मुख्य रूप से महत्त्वपूर्ण है। शास्त्रिक योग्यता एवं सैद्धान्तिक ज्ञान पर अत्यधिक जोर नहीं दिया जाना चाहिए। विद्यार्थियों में शारीरिक कार्य के प्रति उदासीनता नहीं उत्पन्न होनी चाहिए। धर्म एवं दर्शन-शास्त्र के प्रारम्भिक सिद्धान्तों का हर प्रकार के अध्ययन की विषय-सामग्री में स्थान देना चाहिए, जिससे विद्यार्थियों के शील एवं आदर्श में वृद्धि हो। विद्यार्थियों का अध्ययनकाल समाप्त होते ही राज्य का योग्यतानुसार उनके रोजगार का आयोजन करना चाहिए। अध्ययनकाल की गतिविधियों को रोजगार प्रदान करते समय दृष्टिगत रखना चाहिए। इन तरीकों से विद्यार्थी अपने अध्ययनकाल में भी तत्परता से कार्य करेंगे। व्यावहारिक ज्ञान को विशेष महत्त्व दिया जाना चाहिए और उच्च सैद्धान्तिक शिक्षा

केवल विशेष रूप से योग्य विद्यार्थियों के लिए ही दी जानी चाहिए। शिक्षा का प्रभाव निम्न स्तर से सुधारना आवश्यक होता है। शिक्षा के गुणों (Standard) पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए, न कि स्कूलों की संख्या पर। शिक्षाक्षेत्र के उन सब सुधारों का फल दीर्घ काल में प्राप्त हो सकता है। जब नयी विधियों के अन्तर्गत पढ़े हुए विद्यार्थी देश की बागडोर सम्भालेंगे तब इस शिक्षा का लाभ प्राप्त हो सकेगा। इस मध्यवर्ती काल में कुछ अल्पकालीन कार्यवाहियाँ सामाजिक समता की वृद्धि हेतु की जा सकती हैं। ऐसे प्रयास करने चाहिए कि समाजघाती लोग सामाजिक प्रतिष्ठा न बना सकें। यदि वे समाज पर कुप्रभाव डालते हों और अपने सामाजिक दायित्वों को अपनी आर्थिक सम्पन्नता से छिपाते हों तो ऐसे लोगों को सामाजिक दण्ड देने की पद्धतियों का जन्म देना चाहिए।

समाजवादी प्रकार का समाज

समाजवादी प्रकार के समाज का विचार सर्वप्रथम स्व० प० जवाहरलाल नेहरू द्वारा राष्ट्रीय विकास परिषद् में भाषण देते हुए नवम्बर सन् १९५४ में प्रकट किया गया। लोकसभा ने सन् १९५४ के शीतकालीन अधिवेशन में एक प्रस्ताव द्वारा यह निश्चित किया कि देश की आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों का उद्देश्य राष्ट्र में समाजवादी प्रकार के समाज का निर्माण करना होगा। जनसमुदाय के भौतिक कल्याण द्वारा ही देश को उन्नतिशील नहीं बनाया जा सकता है। भौतिक सम्पन्नता तो केवल साधन मात्र है जो प्रगतिशील विद्वत्तापूर्ण एवं सांस्कृतिक जीवन के निर्माण में सहायक होती है। आर्थिक विकास द्वारा राष्ट्र की उत्पादनक्षमता में विस्तार के साथ साथ देश में ऐसे वातावरण का भी निर्माण होना चाहिए जिससे मानवीय शक्तियों एवं इच्छाओं का अनावरण करने तथा प्रयोग करने के अवसर उपलब्ध हों। इस प्रकार समाज के विकास कार्यक्रमों एवं आर्थिक क्रियाओं को प्रारम्भ से ही समाज के अन्तिम उद्देश्यों पर आधारित होना चाहिए। अल्प विकसित राष्ट्रों में वर्तमान आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था में भौतिक सम्पन्नता प्राप्त करना ही मुख्य उद्देश्य नहीं होता है अपितु समाज की व्यवस्था में संस्थनाय (Institutional) परिवर्तन करना भी वांछनीय होता है। ये संस्थनीय परिवर्तन एक नवीन सामाजिक व्यवस्था के लिए अत्यन्त आवश्यक होते हैं।

भारत में उपर्युक्त उद्देश्यों को दृष्टिगत करते हुए राज्य के उत्तरदायित्वों को निर्धारित किया गया है। राजकीय नीति निर्धारक तत्वों (Directive Principals of State Policy) द्वारा राज्य के कर्तव्यों का विश्लेषण भी किया गया है। इन तत्वों के अनुसार राज्य को एसे समाज का निर्माण करना चाहिए कि सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय राष्ट्र के समस्त नागरिकों को उपलब्ध हो। इन्हीं आधारभूत नीति निर्धारक-तत्वों का अधिक सूक्ष्म करके लोकसभा में दिसम्बर सन् १९५४ में समाजवादी प्रकार के समाज की स्थापना राजकीय नीतियों के अन्तिम उद्देश्य के रूप में स्वीकार की गयी।

अखिल भारतीय कांग्रेस के अवाडी अधिवेशन में २२ जनवरी, सन् १९५५ को स्व० प० गोविन्दवल्लभ पन्त ने आर्थिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इस प्रस्ताव द्वारा निम्नांकित सिफारिशें की गयीं—

(१) भारत का आर्थिक एवं सामाजिक लक्ष्य एक समाजवादी प्रकार के समाज का निर्माण होना चाहिए।

(२) जनसाधारण के जीवन-स्तर एवं उत्पादन के स्तर में वृद्धि होनी चाहिए।

(३) दस वर्षों में पूर्ण रोजगार की व्यवस्था होनी चाहिए।

(४) राष्ट्रीय धन का समान वितरण होना चाहिए।

(५) आर्थिक नियोजन द्वारा जनसाधारण की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति होना चाहिए।

समाजवादी प्रकार के समाज का अर्थ स्पष्ट करते हुए यह बताया गया कि यह एक ऐसी आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था होगी जिसमें व्यक्तिगत लाभ के स्थान पर सामाजिक लाभ को अधिक महत्त्व दिया जायगा। इस व्यवस्था में विकास का प्रकार एवं आर्थिक तथा सामाजिक क्रियाओं को इस प्रकार योजनाबद्ध किया जायगा कि राष्ट्रीय आय एवं रोजगार की वृद्धि के साथ-साथ धन एवं आय की विषमताओं को भी कम करने का आयोजन हो सकेगा। उत्पादन, वितरण, उपभोग, विनियोजन तथा अन्य समस्त आर्थिक एवं सामाजिक विषयों के हेतु नीति निर्धारण सामाजिक हित से सम्बन्धित संस्थाओं द्वारा ही किया जाना चाहिए। आर्थिक विकास का लाभ अधिक से अधिक समाज के पिछड़े हुए वर्गों को प्राप्त होना चाहिए तथा धन, आय एवं आर्थिक शक्तियों के केन्द्रीयकरण में निरन्तर कमी होनी चाहिए। असामाजिक एवं आर्थिक ढाँचे में इस प्रकार परिवर्तन किए जाने चाहिए जिससे निम्न वर्ग के व्यक्तियों को, जो अभी तक अवसरहीन हैं तथा जिन्हें संगठित प्रयासों द्वारा आर्थिक सम्पन्नता में सहयोग देने के अवसर प्रदान नहीं किये गये हैं, अपना जीवन स्तर सुधारने एवं राष्ट्र को सम्पन्न बनाने के लिए अधिक कार्य करने के अवसर प्राप्त हो सकें। इस विधि द्वारा निम्न वर्ग के जनसमुदाय की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में उन्नति हो सकती है। वे परिस्थितियाँ जिनमें कोई व्यक्ति जन्म लेता है अथवा अपना जीवन न्यून व्यवसाय से प्रारम्भ करता है, उसकी उन्नति एवं सम्पन्नता में बाधक नहीं होनी चाहिए। इसके लिए राज्य द्वारा उपयुक्त वातावरण एवं परिस्थितियाँ उत्पन्न की जानी चाहिए। इन परिस्थितियों के निर्माणार्थ शासकीय क्षेत्र का विस्तार एवं विकास अत्यावश्यक होगा। शासकीय क्षेत्र का केवल उन्हीं अवस्थाओं का विकास नहीं करना चाहिए, जिनके विकास के लिए व्यक्तिगत क्षेत्र तत्पर न हों, प्रत्युत उसे समस्त शासकीय एवं व्यक्तिगत विनियोजन का प्रकार निर्धारित करना चाहिए। दूसरी ओर व्यक्तिगत क्षेत्र को समाज द्वारा स्वीकृत नीतियों एवं योजनाओं के प्रारूप की सीमाओं में कार्य करने का अवसर प्राप्त होना चाहिए।

समाजवादी प्रकार के समाज को एक स्थिर एवं कठोर व्यवस्था नहीं समझना चाहिए। इस व्यवस्था में राष्ट्र की आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों का समय समय पर ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुसार निश्चित किया जायगा। इसमें प्रयोगात्मक कार्यवाहियों को भी उचित स्थान प्राप्त होगा। शासकीय क्षेत्र के विस्तार द्वारा नीति-निर्धारण करने की शक्तियों के केन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन नहीं दिया जायगा। वास्तव में शासकीय उपक्रमों को स्वतन्त्रता के साथ निश्चित नियमों के अन्तर्गत कार्य करने के अवसर प्रदान किए जायेंगे। इनका संगठन एवं प्रबन्धन इस प्रकार का होगा जिसमें प्रयोगात्मक कार्यवाहियों की आवश्यकता होगी। ये ही नियम समाज के समस्त क्षेत्रों पर लागू होंगे।

समाजवादी प्रकार की व्यवस्था द्वारा निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्यों की पूर्ति की जायगी—

(१) समाजवादी प्रकार के समाज का आधारभूत उद्देश्य देश में अवसर की समानता तथा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय के आधार पर एक आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना है।

(२) इस समाज में जाति, सम्प्रदाय, लिंग अथवा सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर आधारित भेद भाव दूर कर दिया जायगा और प्रत्येक कार्य करने योग्य व्यक्ति को जीविकोपार्जन करने के अवसर प्रदान किए जायेंगे। दूसरे शब्दों में, समाजवादी प्रकार के समाज का उद्देश्य पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करना है।

(३) राज्य समाज के मुख्य उत्पादन के साधनों एवं कच्चे माल के साधनों को अपने अधिकार अथवा प्रभावशाली नियन्त्रण में इसलिए रखेगा कि इनका उपयोग अधिकतम राष्ट्रीय हित के लिए किया जा सके।

(४) समाज अर्थ-व्यवस्था का संगठन इस प्रकार करेगा कि इसके द्वारा धन एवं उत्पादन के साधनों का केन्द्रीयकरण सामान्य अहित के लिए न हो सके।

(५) देश के समस्त राष्ट्रीय धन के उत्पादन में वृद्धि एवं द्रुत गति के लिए विधिवत् प्रयत्न किए जायेंगे।

(६) राष्ट्रीय धन का समान वितरण करना आवश्यक होगा जिससे वर्तमान आर्थिक विषमताओं में अधिकतम कमी की जा सके।

(७) वर्तमान सामाजिक ढाँचे में आवश्यक परिवर्तन शान्तिपूर्ण एवं प्रजातान्त्रिक विधियों द्वारा किए जायेंगे।

(८) समाजवादी प्रकार के समाज की स्थापना के लिए आर्थिक एवं राजनीतिक सत्ता का विकेन्द्रीयकरण करना आवश्यक होगा जिसके लिए ग्राम पंचायतों एवं लघु एवं गृह उद्योगों का बड़े पैमाने पर विस्तार किया जायगा।

अखिल भारतीय कांग्रेस ने समाजवाद एवं समाजवादी प्रकार के समाज में कुछ महत्वपूर्ण अन्तर बताये हैं। समाजवादी प्रकार का समाज उस व्यवस्था को कहते हैं जिसमें उत्पादन के मुख्य साधन समाज के अधिकार एवं नियन्त्रण में हों जहाँ

उत्पादन में निरन्तर वृद्धि की जाय तथा जहाँ राष्ट्रीय धन का समान वितरण हो। दूसरी ओर, समाजवाद में अवसर की समानता, उत्पादन के लगभग समस्त साधनों पर सामाजिक अधिकार एवं नियन्त्रण व्यक्तिगत साहस की समाप्ति, व्यक्तिगत सम्पत्ति की समाप्ति आय का समान वितरण आदि निहित हैं। समाजवादी प्रकार के समाज की व्यवस्था यद्यपि पूँजीवाद एवं समाजवाद का सम्मिश्रण होती है परन्तु इसके उद्देश्य समाजवाद के समान ही होते हैं। समाजवादी प्रकार के समाज का मुख्य उद्देश्य अवसर, धन एवं आय का समान वितरण होता है परन्तु इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु जो विधियाँ अपनायी जायेंगी वे समाजवाद की विधियों से कुछ भिन्न होंगी। समाजवाद में व्यक्तिगत साहस व्यक्तिगत सम्पत्ति एवं व्यक्तिगत लाभ को सर्वथा समाप्त कर दिया जाता है और अर्थ व्यवस्था पर राज्य का सम्पूर्ण अधिकार एवं नियन्त्रण होता है। इस प्रकार समाजवाद द्वारा आर्थिक एवं राजनैतिक सत्ता का केन्द्रीयकरण राज्य के हाथों में हो जाता है। समाजवादी प्रकार के समाज में व्यक्तिगत एवं राजकीय दोनों साहस अर्थ-व्यवस्था में स्थान प्राप्त करते हैं तथा इस प्रकार एक मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का निर्माण करने का उद्देश्य होता है जिसमें आधारभूत उत्पादन के साधनों एवं क्षेत्रों पर अधिकार एवं नियन्त्रण राजकीय क्षेत्र का होगा तथा अन्य क्षेत्रों में व्यक्तिगत साहसियों को राजकीय नियमन एवं राष्ट्रीय नीतियों के अनुसार कार्य करने का अवसर दिया जायगा।

समाजवादी समाज के सिद्धान्त

श्री श्रीमन्नारायण ने ११ जून सन् १९५५ को समाजवादी प्रकार के समाज पर आकाशवाणी से भाषण करते हुए उचित समाज-व्यवस्था के निम्नांकित आठ सिद्धान्त स्पष्ट किए—

(१) पूर्ण रोजगार—समाजवादी प्रकार के समाज की स्थापना करने के लिए पूर्ण रोजगार का प्रबन्ध किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। देश के प्रत्येक कार्य करने योग्य व्यक्ति को अपनी जीविकोपार्जन हेतु लाभप्रद रोजगार मिलना चाहिए। ऐसे समाजवादी प्रकार के समाज की स्थापना की जानी चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति श्रम एवं पूर्ण परिश्रम द्वारा अपनी जीविका उपार्जित करें।

(२) राष्ट्रीय धन का अधिकतम उत्पादन—देश के आर्थिक जीवन का संगठन इस प्रकार किया जाय कि उपभोक्ता-वस्तुओं के समस्त उत्पादन में वृद्धि होने के परिणामस्वरूप जीवन-स्तर में वृद्धि हो सके। यह विचार करना उचित नहीं है कि लघु एवं ग्रामीण उद्योगों के विकास जो पूर्ण रोजगार हेतु आवश्यक हैं के फलस्वरूप देश के जीवन स्तर में कमी रहेगी। विकेन्द्रित उत्पादन भी जो औद्योगिक सहकारी समितियों द्वारा किया जायगा उत्पादन लागत बड़े कारखानों की उत्पादन-लागत से अधिक होना आवश्यक नहीं है। समाजवादी प्रकार के समाज में पूर्ण उत्पादन पूर्ण रोजगार द्वारा ही हो सकता है।

(३) **अधिकतम राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता**—एक राष्ट्र पूर्ण रोजगार एवं उत्पादन में वृद्धि निर्यात अर्थव्यवस्था द्वारा पड़ोसी अल्पविकसित राष्ट्रों का शोषण कर प्राप्त कर सकता है परन्तु ऐसे समाज को जो आन्तरिक समाजवाद की स्थापना विदेशों का आर्थिक शोषण कर करता हो वास्तविक रूप में समाजवादी समाज नहीं कहा जा सकता है।

(४) **आर्थिक एवं सामाजिक न्याय**—भारतीय समाज में सामाजिक विषमताओं एवं अन्य प्रकार के अन्यायों के निवारण के साथ साथ अधिक आर्थिक समानता की भी आवश्यकता है। समाजवादी प्रकार के समाज की सुदृढ़ आधारशिला के लिए धनी एवं निर्धन के अन्तर को दूर करना आवश्यक है।

(५) **समाजवादी प्रकार के समाज में शान्तिपूर्ण अहिंसक तथा लोकतन्त्रीय विधियों का उपयोग किया जाना चाहिए।** समाजवादी एवं साम्यवादी राष्ट्रों में समाजवाद की स्थापना में वर्ग युद्ध (Class Conflict) हिंसा एवं राष्ट्रीयकरण करने का प्रयत्न किया जाता है। भारत में इस प्रकार की किसी विधि के उपयोग का विचार नहीं है।

(६) **ग्रामीण पंचायतों एवं औद्योगिक सहकारी समितियों की स्थापना द्वारा** आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति का विकेन्द्रीयकरण समाजवादी समाज का एक मूल सिद्धान्त है। अहिंसक एवं प्रजातान्त्रिक समाज में नियोजित व्यवस्था की स्थापना केन्द्रित एवं यन्त्रीकरण उत्पादन द्वारा सम्भव नहीं हो सकती। अधिक केन्द्रीयकरण द्वारा आर्थिक एवं राजनीतिक शक्तियों का कुछ ही व्यक्तियों के हाथ में केन्द्रित होना अनिवार्य हो जाता है।

(७) **जनसंख्या के अत्यन्त निर्धन एवं न्यूनतम वर्गों की तीव्रतम आवश्यकताओं को अधिकतम प्राथमिकता प्रदान की जानी चाहिए** जो सर्वाधिक दलित व्यक्ति हैं उन्हें सर्वाधिक महत्व दिया जाना चाहिए और जो समाज में उच्च स्थान रखते हैं उन्हें हमारी समाजवादी प्रकार के समाज की योजनाओं में अन्तिम स्थान मिलना चाहिए।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के कार्यक्रमों का उद्देश्य देश में समाजवादी प्रकार के समाज की स्थापना की ओर प्रयास करना निश्चित किया गया। समाजवादी प्रकार के समाज की स्थापना द्वारा जीवन स्तर में वृद्धि करना समस्त जनसमुदाय के अवसरों की समान उपलब्धि में वृद्धि करना पिछड़े वर्गों में उत्साह एवं साहस उत्पन्न करना तथा समाज के समस्त वर्गों में सहकारी भावना जाग्रत करना आदि उद्देश्यों की पूर्ति की जानी थी।

तृतीय योजना में समाजवादी समाज

तृतीय योजना का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य धन और आय की विषमता को कम करना भी है जिससे समाज का स्वरूप समाजवादी हो सके और समस्त जनसमुदाय

को उन्नत करने का अधिकतम अवसर प्राप्त हो सके। समाजवादी समाज का अर्थ यह है कि ऐसी नीतियों का निर्धारण हो, जिससे समस्त समाज का हित हो न कि गिने चुने कुछ ही लोगों का। आर्थिक विषमता के निवारणार्थ योजना के अन्तर्गत अनेक प्रकार के आर्थिक उपाय करने का आयोजन किया गया। तृतीय योजना में विनियोजन का प्रकार, राज्य द्वारा आर्थिक क्रियाओं का नियन्त्रण एवं सचालन वित्तीय नीति में परिवर्तन से साधनों की गतिशीलता समाज-सेवाओं का विस्तार भूमि के अधिकार एवं प्रबन्ध में संस्थनीय (Institutional) परिवर्तन सहकारी संस्थाओं का विस्तार आदि सम्मिलित किये गये। इन समस्त प्रयासों द्वारा नवीन आय का निर्माण होगा तथा आय की विषमता में भी कमी हो सकेगी।

नियोजित अर्थ-व्यवस्था में उपर्युक्त समस्त कार्यवाहियों में समन्वय स्थापित कर एक ओर निम्न श्रेणी के वर्गों की आय एवं अवसर की उपलब्धि में वृद्धि होनी चाहिए तथा दूसरी ओर, उच्च श्रेणी के वर्गों का धन और अधिकार कम होना चाहिए।

सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से यह कहा जा सकता है कि तृतीय योजना भारत में समाजवादी समाज की स्थापना की ओर एक दृढ़ कदम था, किन्तु समाजवादी समाज का अर्थ स्पष्ट होना अत्यन्त आवश्यक है। ऊटी (Ootacmond) में हुए अखिल भारतीय कांग्रेस सम्मेलन में भी समाजवादी समाज के सिद्धान्तों का स्पष्ट करने की आवश्यकता बतायी गयी थी तथा जनसमुदाय में यह विचारधारा स्वाभाविक ही थी कि तृतीय योजना में समाजवादी समाज का पूर्णरूपेण स्पष्टीकरण कर दिया जायगा। 'परन्तु यह स्पष्ट है कि प्रस्तावित तृतीय पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा में देश में समाजवादी समाज की स्थापना के लिए प्रथम एवं द्वितीय योजना के अन्तर्गत की गयी कार्यवाहियों में कोई वर्णन नहीं है। साथ ही तृतीय योजना के प्रस्तावों और कार्यक्रमों में भारतीय समाज को समाजवादी आधारों पर निर्माण करने के उद्देश्य से परिवर्तित करने के सम्बन्ध में भी कुछ स्पष्ट नहीं किया गया है।'[1] तृतीय योजना की विस्तृत रिपोर्ट में योजना के भौतिक कार्यक्रमों का विस्तृत वर्णन किया गया है, परन्तु समाजवादी समाज की स्थापना के लिए की गयी कार्यवाहियों का विशिष्ट वर्णन नहीं किया गया। वास्तव में, आय की विषमता को दूर करने वाले कार्यक्रमों का ब्यौरा एक पृथक अध्याय में किया जाना चाहिए था। यद्यपि तृतीय योजना में पूँजीवादी समाज एवं अनीक क्षेत्र पर आधारित व्यवस्था का सैद्धान्तिकरूपेण स्वीकार नहीं किया गया

1 'What is clear, however is that the Draft Third Plan does not contain an assessment of what the first two plans have done for taking the country in the direction of a Socialist Society Nor does it limit up integrately the proposals and programmes of the Third Plan with the transformation of Indian Socialist lines'

—Dr V K R V Rao, '*Ideology of Third Plan* —*Yojna* 24th, p 4

तथापि केवल इस प्रकार की व्यवस्था द्वारा ही समाजवादी समाज की स्थापना सम्भव नहीं हो सकती थी। तृतीय योजना में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था को सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से मान्यता प्राप्त हुई परन्तु मिश्रित अर्थ-व्यवस्था ऐसे संस्थनीय परिवर्तनों जिनके द्वारा सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक शक्तियों को सन्तुलित किया जाता है की अनुपस्थिति में समाजवादी समाज की स्थापना में सहायक सिद्ध नहीं हो सकती। संस्थनीय परिवर्तनों की अनुपस्थिति के कारण ही हम देखते हैं कि जनसमुदाय से योजना के कार्यक्रमों में अवांछनीय सहयोग प्राप्त नहीं होता है।

योजना के उद्देश्यों से यह स्पष्ट है कि विषमताओं को कम करने के उद्देश्य जो समाजवादी समाज की स्थापना में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व होने चाहिए को अन्तिम स्थान प्राप्त हुआ था अर्थात योजना के पांच उद्देश्यों में अन्तिम उद्देश्य विषमताओं को कमी था। इसके अतिरिक्त योजना में प्रत्येक उद्देश्य की पूर्ति हेतु बनाये गये कार्यक्रमों का पृथक पृथक अध्यायों में स्पष्ट किया गया परन्तु विषमताओं में कमी करने के लिए की जाने वाली कार्यवाहियों का वर्णन पृथक अध्याय में नहीं किया गया। समाजवादी समाज की स्थापनार्थ सामाजिक पूंजी (Social Capital) में वृद्धि होना आवश्यक है परन्तु योजना में सामाजिक पूंजी में वृद्धि करने के लिए किन्हीं ठोस प्रयासों का उल्लेख नहीं किया गया। आय एवं धन का समान वितरण आर्थिक शक्तियों के केन्द्रीयकरण पर रोक भूमि व्यवस्था में कृषि क्षेत्र के श्रमिक एवं निर्धन कृषक की दशा सुधारने के लिए परिवर्तन अवसर की समानता तथा वर्ग रहित समाज की स्थापना आदि सामाजिक पूंजी में वृद्धि करने में सहायक सिद्ध होते हैं, परन्तु इन सभी क्षेत्रों में व्यावहारिक दृष्टिकोण से अत्यन्त कम कार्य हुआ है। यद्यपि गत चौदह वर्षों में राष्ट्रीय आय में ४०% की वृद्धि हुई तथापि उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर यही अनुमान लगाया जाता है कि अधिकांश जनसमुदाय की आय स्थिर ही है अथवा कम हुई है। प्रथम तथा द्वितीय योजना में राष्ट्रीय आय के नियोजित पुनर्वितरण का आयोजन नहीं किया गया तथा यह सूचना भी उपलब्ध नहीं है कि अतिरिक्त राष्ट्रीय आय का समाज के विभिन्न वर्गों में किस प्रकार वितरण हुआ है। डा० ज्ञानचन्द ने इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि साधारणतः यह माना जाता है कि मुद्रा स्फीति के दबाव में निरन्तर वृद्धि होने के कारण गत दो (प्रथम एवं द्वितीय) योजनाओं की अवधि में बड़े व्यापारियों उद्योगपतियों एवं विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों को ही लाभ हुआ है। इस कथन की पुष्टि कुछ सीमा तक एकाधिकार आयोग एवं महलनाबिस समिति के प्रतिवेदन से भी होती है। इस प्रकार यद्यपि हमारी योजनाओं के सामाजिक कल्याण के कार्यक्रमों के विस्तार द्वारा दलित वर्गों के जीवन स्तर में सुधार हुआ है परन्तु धनी-वर्ग को योजनाओं का अधिक लाभ प्राप्त हुआ है जिसके फलस्वरूप आर्थिक एवं सामाजिक समानता के लक्ष्य के समीप हम अभी तक नहीं पहुँच सके हैं।

चतुर्थ योजना के समाजवादी उद्देश्य

चतुर्थ योजना में वृहद विकास-कार्यक्रमों के संचालन में अर्थ व्यवस्था में कुछ सामाजिक दोष उदय हो सकते हैं यदि सरकार द्वारा इनको सीमाबद्ध करने के लिए विशेष प्रयास नहीं किये जायें। यह दोष आय एवं धन का अधिक केन्द्रीयकरण, बड़े बड़े नगरों एवं केन्द्रों का अति विस्तार, विषम क्षेत्रीय विकास, नागरिक बेरोजगारी तथा ग्रामीण आंशिक बेरोजगारी हो सकते हैं। इन दोषों को सीमाबद्ध करने के लिए ही एकाधिकारों पर नियन्त्रण करने का अधिनियम बनाया जा रहा है। सरकार द्वारा औद्योगिक लाइसेंसिंग के अधिकार का उपयोग साधनों के न्यायपूर्ण आवंटन के लिए किया जाता है, सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं द्वारा ऐसी नीतियों को सचेत रूप से अपनाया जाता है कि धन एवं आय के केन्द्रीयकरण को बढ़ावा न मिले। १४ बैंकों के राष्ट्रीयकरण का उद्देश्य भी धन एवं आय के केन्द्रीयकरण एवं सामाजिक दोषों को सीमाबद्ध करना है।

आय की विषमता—धनी राष्ट्रों में आय की विषमता को कम करने के लिए राजकोषीय कार्यवाहियों (Fiscal Measures) का उपयोग किया जाता है परन्तु एक निर्धन राष्ट्र में राजकोषीय कार्यवाहियों द्वारा जो धन सम्पन्न-वर्ग से करादि के रूप में प्राप्त होता है उसका अर्थ-व्यवस्था में विनियोजन कर दिया जाता है जिससे भविष्य के उपभोग में वृद्धि करना सम्भव हो सके। इस प्रकार अतिरिक्त विनियोजन का भी अधिक लाभ धनी वर्ग को ही प्राप्त होता है और निर्धन वर्ग की स्थिति में अल्प काल में सुधार सम्भव नहीं होता है। ऐसी परिस्थिति में अर्थ-व्यवस्था की द्रुत गति से विकास कर व्यवसायों के विभिन्न क्षेत्रों में एवं उनकी स्वामित्व (Ownership) में अधिक छितराव (Diffusion) कर, निर्बल इकाइयों की उत्पादनक्षमता बढ़ा कर तथा उत्पादक कार्य एवं रोजगार के अवसरों का विस्तार कर ही सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति की जा सकती है। इन विभिन्न कार्यवाहियों पर योजना के विभिन्न पहलुओं के सन्दर्भ में विचार करना होता है तथा विभिन्न आर्थिक कार्यक्रमों का सामाजिक उद्देश्यों के साथ प्रभावशाली समन्वय स्थापित करना होता है।

कमजोर वर्गों की सुविधाएँ

कमजोर उत्पादक—इस वर्ग में विभिन्न प्रकार के उत्पादक सम्मिलित हैं जिनकी समस्याओं एवं आवश्यकताओं में अत्यधिक विभिन्नता है। इनमें से प्रत्येक वर्ग की समस्याओं का अध्ययन कर ही यह जानकारी प्राप्त हो सकती है कि यह वर्ग सामान्य विकास कार्यक्रमों में भाग लेने तथा उससे लाभ प्राप्त करने में क्यों असमर्थ रहता है। इन कारणों का अध्ययन कर इनके सम्बन्ध में सुधारात्मक कार्यवाहियाँ करने की आवश्यकता होगी। इन उत्पादकों को एक ओर अपने पैरों पर खड़ा होने के योग्य तथा फिर विकास करने योग्य बनाने के लिए कार्यवाहियाँ की जाती हैं। इस वर्ग की सहायतार्थ तान्त्रिक एवं वित्तीय सहायता की परियोजनाओं सहकारी अथवा

अन्य सगठनों के अन्तर्गत उत्पादन साख एव विपणन की व्यवस्था करने का विशेष आयोजन किये जाते हैं। प्रत्येक परम्परागत ग्रामीण उद्योग के सम्बन्ध में विकास-कार्यक्रमों का एक प्रारूप निर्धारित किया जाता है।

अनुसूचित-वर्ग एवं जातियां—यह वर्ग किन्ही विशेष क्षेत्रों में रहते हैं और इनकी आर्थिक प्रगति के लिए इनके क्षेत्रों का आर्थिक विकास करने तथा उन्हें देश के अन्य भागों के साथ समन्वित करना आवश्यक है। इन क्षेत्रों के विकास-कार्यक्रमों का निर्माण इनमें उपलब्ध सम्भावित आर्थिक साधनों के आधार पर किया जाता है। अनुसूचित जातियों का सामाजिक समन्वय ग्रामीण समाज में किया जाना आवश्यक है। इस वर्ग में सम्बन्धित क्षेत्रों में आधारभूत उपरिव्यय सुविधाओं (Infra Structure) का विकास द्रुत गति से किया जाता है।

भूमिहीन श्रम—भूमिहीन श्रम का बहुत बडा वर्ग अपनी जीविकोपार्जन हेतु मजदूरी पर निर्भर रहता है क्योंकि उनके पास उत्पादन सम्बन्धी प्रसाधन नहीं होते हैं। इस वर्ग में से कुछ लोगों को पशुपालन-व्यवसायों की सुविधाएं प्रदान कर अथवा उन्हें भूमि वितरित कर उत्पादक में बदला जा सकता है परन्तु इस वर्ग के अधिकतर भाग को रोजगार के अधिक एव वर्ष भर अवसर प्रदान कर इनकी स्थिति में सुधार किया जा सकता है। क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम तथा उद्योगों के विस्तार एव अन्य आर्थिक क्रियाओं द्वारा इस वर्ग को अधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध हो सकेंगे। इसी प्रकार उपरिव्यय सुविधाओं के विस्तार के कार्यक्रम तथा प्राकृतिक साधनों के विकास एव सरक्षण से सम्बन्धित कार्यक्रमों में अधिक श्रम को रोजगार उपलब्ध हो सकेंगे। क्षेत्रीय विकास-कार्यक्रमों को स्थानीय विकास-कार्यक्रमों से समन्वित कर इस वर्ग को आवश्यक रोजगार सुविधाएं प्रदान करना सम्भव हो सकेगा।

प्रस्तावित चतुर्थ योजना में समाजवादी समाज की स्थापना के सम्बन्ध में कोई विशिष्ट कार्यवाहियाँ निर्धारित नहीं की गयी हैं। योजना का प्रतिवेदन इस सम्बन्ध में लगभग मौन है और इस सम्बन्ध में कोई विवरण नहीं दिया गया है यद्यपि योजना में सम्मिलित कार्यक्रमों का झुकाव अर्थ-व्यवस्था को समाजवादी कल्याण की ओर ले जाना अवश्य है।

अध्याय ३९

भारतीय नियोजित अर्थ-व्यवस्था एवं आर्थिक विषमता

[Economic Inequalities Under Planned Economy of India]

[ग्रामीण एवं नागरिक क्षेत्र में उपभोग-व्यय, ग्रामीण जन-समाज की स्थिति—उच्च श्रेणी का वर्ग, निम्न श्रेणी का वर्ग, नागरिक समाज—उच्च-वर्ग, मध्यम-वर्ग, निम्न-वर्ग, राष्ट्रीय उत्पादन का नागरिक एवं ग्रामीण क्षेत्र में वितरण, महलनोबिस-समिति, एकाधिकार आयोग, आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण के कारण—द्वितीय महायुद्ध में अति धनोपार्जन, ब्रिटिश संस्थाओं का विक्रय, तान्त्रिक विकास, प्रबन्ध अभिकर्ता प्रणाली, अन्तर-कम्पनी विनियोजन, सरकारी नियोजित विकास-कार्यक्रम, आर्थिक केन्द्रीयकरण का प्रभाव, आयोग की सिफारिशें—विधि-सम्बन्धी सुझाव, अन्य सुझाव, आलोचना, एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक व्यवहार बिल सन् १९६७]

भारतीय नियोजित अर्थ-व्यवस्था के काल में इतना विकास हुआ है कि इतना भूत काल में भी कभी भी इतने कम समय में नहीं हुआ, परन्तु नियोजित अर्थ-व्यवस्था की वास्तविक सफलता समस्त अर्थ-व्यवस्था के सामूहिक आंकड़ों से स्पष्ट नहीं हो सकती है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था के फलस्वरूप समाज के विभिन्न वर्गों के जीवन में क्या सुधार हुआ यह देखना भी आवश्यक है। नियोजन के काल के १८ वर्षों के पश्चात् आज भी जनसाधारण में असन्तोष, अज्ञान, निर्धनता, विषमता आदि उपस्थित हैं। नियोजित अर्थ-व्यवस्था की वास्तविक सफलता का अध्ययन करने हेतु भारत के जन-जीवन को दो मुख्य वर्गों—ग्रामीण एवं नागरिक जन-समाज में विभक्त किया जा सकता है। नियोजनकाल में नागरिक जन-जीवन के सुधार के लिए अधिक महत्व दिया गया जबकि निर्धनता की व्यापकता ग्रामीण समाज में अधिक गम्भीर थी।

नागरिक एवं ग्रामीण क्षेत्र में उपभोग-व्यय

नवीनतम उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों की जनसंख्या के ५९% भाग को प्रति दिन प्रति व्यक्ति ७० पैसे से अधिक उपभोग-व्यय उपलब्ध नहीं होता है जबकि नगरों एवं बड़े शहरों में यह प्रतिशत क्रमशः ३८ तथा १२ है। बड़े शहरों का जीवन-स्तर अन्य क्षेत्रों की तुलना में ऊँचा है। बड़े नगरों की ३४% जनसंख्या अधिक उपभोग-व्यय के वर्ग अर्थात् १८३ पैसे प्रति दिन प्रति व्यक्ति में आती है जबकि यह

प्रतिशत अन्य नागरिक (Urban) क्षेत्रों में १३% और ग्रामीण क्षेत्रों में केवल ३% है।

उपभोग व्यय के सम्बन्ध में सर्वप्रथम सर्वेक्षण राष्ट्रीय सम्पिल सर्वे द्वारा अपने ११वें चक्र के सर्वेक्षण (अगस्त सन् १९५६ से अगस्त, सन् १९५७) में किया गया था। तत्पश्चात् यह अध्ययन चौदहवें (सन् १९५८ ५९) पन्द्रहवें (सन् १९५९ ६०) सोलहवें (सन् १९६० ६१) तथा अठारहवें (सन् १९६३ ६४) चक्र के सर्वेक्षण में दोहराया गया है। इन अध्ययनों के आधार पर हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि नियोजित विकास के द्वारा हमारे समाज के आर्थिक कलेवर में क्या परिवर्तन हुआ है। राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय के आँकड़ों से हम केवल सम्पूर्ण देश की औसत प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि का ज्ञान होता है। यह आँकड़े यह स्पष्ट करने में असमर्थ हैं कि राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि का वितरण समाज के विभिन्न वर्गों में किस प्रकार हुआ है। बढ़ी हुई राष्ट्रीय आय के वितरण के सम्बन्ध में विश्वसनीय आँकड़े उपलब्ध न होने के कारण हम राष्ट्रीय सम्पिल सर्वे द्वारा प्रकाशित उपभोक्ता-व्यय के आँकड़ों के आधार पर ही यह ज्ञात किया जा सकता है कि समाज के विभिन्न वर्गों को आर्थिक प्रगति का किस सीमा तक लाभ प्राप्त हुआ है।

तालिका सं० १२२—प्रति व्यक्ति प्रति दिन उपभोक्ता-व्यय के आधार पर जनसंख्या का वितरण

प्रति व्यक्ति प्रति दिन उपभोक्ता व्यय (पैसा) के आधार पर वर्ग	ग्रामीण क्षेत्र (जनसंख्या का प्रतिशत वितरण)			नागरिक क्षेत्र (जनसंख्या का प्रतिशत वितरण)			बड़े नगर (जनसंख्या का प्रतिशत वितरण)		
	१९५६ ५७	१९५८ ५९	१९६३ ६४	१९५६ ५७	१९५८ ५९	१९६३ ६४	१९५६ ५७	१९५८ ५९	१९६३ ६४
५० पैसे तक	५५ ६	४५ ००	३२ ०	३६ ०	२२ ८	१६ ४	११ २	७ ४	४ ८
५० पैसे से ७० पैसे	२२ ०	२२ ५	२३ ३	२२ २	२४ ०	१०	१६ ६	१८	३७
७० पैसे से ९३ पैसे	११ ७	१५ ८	१९ ४	१५ ७	२० ८	२१ ३	१६ ८	२० ८	१५ ७
९३ पैसे से १४३ पैसे	७ ३	११ १	१४	१६ ६	१९ २	२१ ०	२५ १	२ ८	२६ १
१४३ पैसे से १८३ पैसे	१ ७	२ ८	३ ७	४ ६	५ ८	७ ३	१० १	११	११ ८
१८३ पैसे और उससे अधिक	१ ४	२ ८	२ ६	६ ६	७ ८	१२ ८	२० २	१३ ४	३ ६
समस्त वर्ग	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००

७० पैसे से कम उपभोग व्यय करने वाले वर्ग को सबसे निर्धन-वर्ग माना जा सकता है। ग्रामीण जनसंख्या में इस निर्धन वर्ग का प्रतिशत सन् १९५६ ५७ में ७८%

था जो सन् १९५८-५९ में घटकर ६८% तथा सन् १९६३-६४ में ५९% हो गया। इस वर्ग में प्रायः भूमिहीन श्रमिक, अत्यन्त अल्प भूमि वाले कृषक, आदिवासी, अनुसूचित जातियाँ तथा छोटे दस्तकार सम्मिलित हैं। ग्रामीण जनसंख्या में सबसे अधिक प्रति दिन प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय वाले वर्ग अर्थात् १८३ पैसे तथा इससे अधिक प्रति दिन प्रति व्यक्ति व्यय करने वाले वर्ग का प्रतिशत सन् १९५६-५७ में १·४% था जो सन् १९६३-६४ में बढ़कर २.९% हो गया। इस वर्ग में बड़े बड़े भूमिधारी, साहूकार तथा दुकानदार सम्मिलित हैं। विभिन्न वर्गों के प्रतिशतों में जो यह सुधार हुआ है इसका कारण मूल्यों की वृद्धि एवं व्यक्तिगत आय में मुद्रा-स्फीति के फलस्वरूप हुई मौद्रिक वृद्धि भी है। सन् १९५६-५७ से सन् १९६३-६४ के काल में थोक मूल्य निर्देशांक में (सन् १९५२-५३=१००) २९% की वृद्धि हुई है।

नागरिक क्षेत्र में सन् १९५६-५७ में जनसंख्या का सबसे अधिक भाग ७० पैसे से कम उपभोग-व्यय करने वाले वर्ग का था (जनसंख्या का ५८%)। सन् १९६३-६४ में नागरिक क्षेत्र में जनसंख्या का सबसे अधिक प्रतिशत ७० पैसे से १४३ पैसे के उपभोग-व्यय वाले वर्ग में (४२%) केन्द्रित था। इस क्षेत्र में सबसे अधिक उपभोग-व्यय करने वाले वर्ग (अर्थात् १८३ पैसे तथा उससे अधिक प्रति दिन प्रति व्यक्ति व्यय) का प्रतिशत सन् १९५६-५७ में ८% था जो सन् १९६३-६४ में बढ़कर १२% हो गया।

बड़े बड़े नगरों (बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली तथा मद्रास) में १९६३-६४ में जनसंख्या का ४२% भाग ७० पैसे से १४३ पैसे प्रति व्यक्ति प्रति दिन उपभोग-व्यय करता था। इन नगरों में सबसे अधिक उपभोग-व्यय करने वाले वर्ग (अर्थात् १८३ तथा उससे अधिक प्रति व्यक्ति प्रति दिन उपभोग-व्यय) जनसंख्या के ३४% व्यक्ति सम्मिलित थे। बड़े नगरों पिछले ७ वर्षों में मध्यम-वर्ग (अर्थात् ७० पैसे से १४३ पैसे तक व्यय करने वाला) का प्रतिशत एक समान (४२%) रहा है। इन नगरों में सन् १९५६-५७ से १९६३-६४ के काल में अधिक उपभोग-व्यय करने वाले वर्ग के प्रतिशत में वृद्धि हुई है मध्यम-वर्ग के व्यय करने वालों के वर्ग का प्रतिशत स्थिर रहा है तथा निम्न-वर्ग (अर्थात् ७० पैसे से कम व्यय करने वाले वर्ग) का प्रतिशत २८% से घटकर १३% हो गया है।

यदि विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न व्यय वर्गों के प्रतिशतों की तुलना करें तो ज्ञात होता है कि सन् १९६३-६४ में निर्धन वर्ग (७० पैसे से कम) का प्रतिशत ५९%, ग्रामीण क्षेत्रों में, २७.४% नागरिक क्षेत्रों में तथा १२.५% बड़े नगरों में था। जैसा हमें विदित है कि भारत की जनसंख्या का अधिकतर भाग ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है और वहाँ के भाग का ५९% भाग निर्धन वर्ग में सम्मिलित था अर्थात् देश की जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग निर्धन वर्ग में ही सम्मिलित था। दूसरी ओर मध्यम वर्ग (७० पैसे से १४२ पैसे) में ग्रामीण क्षेत्रों की ३४% नागरिक क्षेत्रों की ४२.५% तथा बड़े नगरों की ४१.८% जनसंख्या सम्मिलित थी। नागरिक क्षेत्रों एवं बड़े नगरों की जनसंख्या

का लगभग समान प्रतिशत इस मध्यम वर्ग में सम्मिलित था। अधिक उपभोग व्यय करने वाले वर्ग (१८३ पैसे तथा अधिक) का ग्रामीण क्षेत्रों की जनसंख्या का २ ६%, नागरिक क्षेत्रों की जनसंख्या का १२ ८% तथा बड़े नगरों की जनसंख्या का ३३ ६% भाग सम्मिलित था। इस विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्रों की जनसंख्या में निर्धनता अब भी व्यापक है और नियोजित विकास का सर्वाधिक लाभ बड़े नगरों की जनसंख्या को उपलब्ध हुआ है।

यदि हम वास्तविक उपभोग औसत व्यय का अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग व्यय बड़े नगरों की तुलना में आधे से भी कम है। निम्नलिखित तालिका से इस सम्बन्ध में आवश्यक तथ्य ज्ञात होते हैं।

तालिका सं० १२३—भारत में समस्त वर्गों का प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग व्यय

(रुपया में)

मदें	ग्रामीण क्षेत्र १९५६ ५७	ग्रामीण क्षेत्र १९५८ ५९	ग्रामीण क्षेत्र १९६३ ६४	नागरिक क्षेत्र १९५६ ५७	नागरिक क्षेत्र १९५८ ५९	नागरिक क्षेत्र १९६३ ६४	बड़े नगर १९५६ ५७	बड़े नगर १९५८ ५९	बड़े नगर १९६३ ६४
खाद्य पदार्थ	१२ १३	१३ ९३	१५ ६७	१८ १२	१६ ९१	१९ ६५	२२ ०४	२१ ९१	२८ ३२
गैर खाद्य मदें (Non food items)	५ ०१	६ २०	६ ७०	१० ६५	११ १५	१३ ०१	१७ ६६	१८ ००	२३ ७१
कुल उपभोग व्यय	१७ १४	२० १३	२२ ३७	२८ ७७	२८ ०६	३२ ६६	३९ ७०	३९ ९१	५२ ०३

इस तालिका से ज्ञात होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में उपभोग व्यय का ७१% भाग सन् १९५६ ५७ में खाद्य पदार्थों पर व्यय किया जाता था। यह प्रतिशत सन् १९५८ ५९ में घटकर ६९ ३% तथा सन् १९६३ ६४ में ७० १% हो गया। समस्त उपभोग व्यय का इतना अधिक भाग खाद्य-पदार्थों पर व्यय होने का तात्पर्य यह है कि ग्रामीण नागरिकों में निर्धनता व्यापक है जिसके परिणामस्वरूप उन्हें अपने उपभोग-व्यय में अनिवार्यताओं को ही अधिक महत्व देना पड़ता है। नागरिक क्षेत्र एवं बड़े नगरों में उपभोग व्यय का क्रमशः ६०% एवं ५५% भाग खाद्य पदार्थों पर व्यय किया जाता था। ग्रामीण क्षेत्रों में उपभोग-व्यय सन् १९५६ ५७ में १७ १४ रुपये जो बढ़कर सन् १९६३ ६४ में २२ ३७ रु० हो गया अर्थात् ३० ५% की वृद्धि हुई। दूसरी ओर नागरिक क्षेत्र में उपभोग व्यय में इस काल में २८% की और बड़े नगरों में ३०% की वृद्धि हुई। यद्यपि तीनों क्षेत्रों में उपभोग व्यय की वृद्धि लगभग समान है परन्तु ग्रामीण क्षेत्र का औसत मासिक उपभोग-व्यय नागरिक क्षेत्रों एवं बड़े नगरों के सन् १९६० ६४

के उपभोग-व्यय का क्रमशः ६८% तथा ४३% था। इन आँकड़ों के आधार पर यह स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्रों का जीवन स्तर तुलना में बहुत कम है।

देश के विभिन्न राज्यों में उपभोग व्यय के आधार पर जनसंख्या का वितरण निम्नलिखित तालिका में दिया गया है।

तालिका सं० १२४—राज्यों की जनसंख्या का प्रति दिन प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय के आधार पर वितरण

(प्रतिशत)

राज्य का नाम	ग्रामीण क्षेत्र			नागरिक क्षेत्र		
	निर्धन-वर्ग ७० पैसे तक	मध्य-वर्ग ७० से १८३ पैसे तक	उच्च वर्ग १८३ पैसे से अधिक	निर्धन-वर्ग ७० पैसे तक	मध्य वर्ग ७० से १८३ पैसे तक	उच्च-वर्ग १८३ पैसे से अधिक
१ आन्ध्र प्रदेश	६६	३२	२	४४	४८	८
२ असम	६७	३१	२	५	७४	२१
३ बिहार	६४	३४	२	४८	३४	१८
४ गुजरात	५६	४०	४	२४	६५	११
५ जम्मू एवं कश्मीर	२६	७०	४	३०	६२	८
६ केरल	६५	३३	२	५१	३८	११
७ मध्य प्रदेश	६०	३५	५	४८	४२	१०
८ मद्रास	५९	३६	५	३८	५२	१०
९ महाराष्ट्र	६२	३४	४	३२	४९	१९
१० मैसूर	६७	३०	३	४८	४४	८
११ उड़ीसा	६७	३१	२	३२	५५	१३
१२ पंजाब	३७	५६	७	३६	५०	१४
१३ राजस्थान	५६	४१	३	३९	५१	१०
१४ उत्तरप्रदेश	६३	३५	२	५१	४०	९
१५ पश्चिमी बंगाल	५१	४६	३	१७	६२	२१
१६ केन्द्र प्रशासित क्षेत्र	४९	५०	१	१८	५९	२३

इस तालिका के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न राज्यों में उपभोग-व्यय में पर्याप्त विभिन्नता है और आन्ध्र प्रदेश, बिहार, केरल, मध्य-प्रदेश, महाराष्ट्र, मैसूर, उड़ीसा और उत्तरप्रदेश में ग्रामीण क्षेत्रों की ६०% से अधिक जनसंख्या निर्धन-वर्ग में सम्मिलित है। लगभग इन्हीं राज्यों के नागरिक क्षेत्र की जनसंख्या का ४०% से अधिक भाग निर्धन-वर्ग में सम्मिलित है। इस आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन राज्यों की जनसंख्या का बड़ा भाग अभी भी निर्धनता से पीड़ित है। असम, पंजाब एवं जम्मू तथा कश्मीर में ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धन-वर्ग का प्रतिशत ४०% से कम है और मध्यम-वर्ग जनसंख्या का लगभग ६०% भाग है। ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च-वर्ग अत्यन्त न्यून मात्रा में है। दूसरी ओर नागरिक

क्षेत्र में केरल, मध्यप्रदेश, मैसूर और उत्तरप्रदेश में जनसंख्या का लगभग आधा भाग निर्धन है। उपभोग व्यय के आधार पर नागरिक एवं ग्रामीण क्षेत्र दोनों ही में असम की स्थिति अन्य राज्यों की तुलना में सबसे अच्छी है। नागरिक क्षेत्र में जम्मू एवं कश्मीर, गुजरात तथा पश्चिमी बंगाल में मध्यम वर्ग में जनसंख्या का ६०% से अधिक भाग है। नागरिक क्षेत्रों के सम्बन्ध में असम, पश्चिमी बंगाल तथा केन्द्र प्रशासित प्रदेशों में २०% से अधिक जनसंख्या उच्च वर्ग में सम्मिलित है। इस समस्त विवरण से यह स्पष्ट है कि विभिन्न राज्यों के जीवन स्तर में अत्यधिक विषमता के साथ-साथ लगभग सभी राज्यों में ग्रामीण एवं नागरिक क्षेत्रों के जीवन स्तर में भी अत्यधिक अन्तर है।

उपभोग व्यय के आधार पर किये गये इस विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि देश में निर्धनता व्यापक रूप से विद्यमान है, विभिन्न क्षेत्रों के जीवन स्तर में विषमता तथा ग्रामीण क्षेत्रों की जनसंख्या के जीवन स्तर में सुधार न्यून मात्रा में हुआ है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तिम लक्ष्य समाजवादी समाज की स्थापना की ओर कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई है और अभी भी समाज में निर्धन एवं धनी का अन्तर उतना ही गम्भीर है जितना नियोजित अर्थ-व्यवस्था के प्रारम्भ के पूर्व था। नियोजित अर्थ-व्यवस्था की सफलता का अध्ययन करने हेतु विभिन्न वर्गों का अध्ययन निम्न प्रकार किया जा सकता है—

(अ) ग्रामीण जन समाज

(१) उच्च श्रेणी का वर्ग—इसमें बड़े-बड़े कृषक, जिनके अधिकार में अधिक भूमि एवं पूँजी है, बड़े-बड़े जमींदार एवं जागीरदार, जिनको राज्य से अधिक मुआवजा मिलता है और जो अधिक भूमि को अधिकार में रखते हैं तथा साहूकार, जो कृषकों को अधिक ब्याज पर ऋण देता है, छोटे-छोटे उद्योग चलाता एवं व्यापार करता है, सम्मिलित हैं। ग्रामीण समाज का अध्ययन करने हेतु श्री जयप्रकाशनारायण की अध्यक्षता में नियुक्त हुए अध्ययन ग्रुप की रिपोर्ट के अनुसार इस वर्ग के ग्रामीण परिवारों के लगभग २०% परिवार आते हैं और इनकी आय १००० रु० प्रति वर्ष से अधिक है। योजनाओं के अन्तर्गत संचालित ग्रामीण विकास-कार्यक्रमों, जैसे सामुदायिक विकास, सहकारिता, पंचायतों आदि का अधिकतर लाभ इस वर्ग को ही प्राप्त हुआ है। इस वर्ग में कुछ शिक्षित व्यक्ति हैं जो ग्रामीण समाज पर प्रभुत्व रखने में सफल रहते हैं। इन्हें राज्य द्वारा दी गयी सुविधाओं का ज्ञान है और यह उनका पूरा-पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न भी करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के निर्माण-कार्यों के ठेके आदि भी इसी वर्ग के लोगों को प्राप्त होते हैं और यह उनका लाभ उठा लेते हैं। इस वर्ग की सम्पन्नता में अवश्य ही सुधार हुआ है। बड़े-बड़े कृषक खाद्यान्नों एवं कृषि उत्पादन के मूल्यों की वृद्धि के कारण अधिक लाभोपार्जन करने में सफल रहे हैं परन्तु अज्ञान के कारण अतिरिक्त आय का उपयोग जीवन-स्तर में वृद्धि करने अथवा

धन का उत्पादक उपयोग करने हेतु नहीं किया जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में चलाये गये विभिन्न राजकीय कार्यक्रमों में लगे हुए सरकारी अधिकारियों के साथ भी इन्हीं का सम्पर्क घनिष्ट है।

(२) **निम्न श्रेणी का वर्ग**—इस वर्ग में कृषि मजदूर, कम भूमि वाले कृषक तथा छोटे-छोटे दस्तकार सम्मिलित हैं। इस वर्ग में ग्रामीण परिवारों के लगभग ८०% परिवार सम्मिलित हैं और इनकी वार्षिक आय १००० रु० से कम है। ग्रामीण परिवार के लगभग ५०% परिवार ऐसे हैं जिनकी वार्षिक आय ५०० रु० से भी कम है। २५० रु० से कम वार्षिक आय वाले परिवारों की संख्या भी ग्रामीण क्षेत्र में अधिक है। इस वर्ग को नियोजित अर्थ-व्यवस्था द्वारा प्राप्त लाभों का भाग उचित रूप में प्राप्त नहीं हुआ है। यह वर्ग अब भी विकास-कार्यक्रमों से अनभिज्ञ है। इसकी आय एवं जीवन स्तर में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ है। इन्हें वर्ष भर के लिए रोजगार उपलब्ध नहीं होता है और राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि होने पर भी इनकी आय में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई है। अज्ञान एवं रूढ़िवादी भावनाओं के कारण यह वर्ग न तो राज्य द्वारा उपलब्ध करायी गयी शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य सेवाओं का लाभ ही उठाता है और न इसमें नियोजन के प्रति जागरूकता ही है। ग्रामीण क्षेत्र में खोले गये स्कूलों की संख्या तो बहुत अधिक है परन्तु इन स्कूलों की दशा अत्यन्त दयनीय है। बहुत से स्कूलों में योग्य अध्यापक ही उपलब्ध नहीं होते हैं। इनके पास ग्रामीण समाज में शिक्षा के प्रति रुचि उत्पन्न करने के साधन नहीं हैं। निम्न वर्ग के लोग अपने बच्चों को स्कूल भेजने में कोई रुचि नहीं दिखाते हैं क्योंकि इनको अपनी अनिवार्यताओं को पूरा करने हेतु सपरिवार काम करना आवश्यक होता है। ग्रामीण समाज ग्रामीण क्षेत्रों में संचालित योजना-कार्यक्रमों को एक राजकीय कार्यवाही मानता है जिसे संचालित करने का कर्त्तव्य सरकारी अधिकारियों का है। *सहकारी संस्थाएँ सफलतापूर्वक नहीं चलायी जाती हैं।* इनके लिए ईमानदार एवं तत्पर अधिकारियों की आवश्यकता होती है, जिनकी समाज में अत्यन्त कमी है। सहकारिता का लाभ भी उच्च श्रेणी के वर्ग को ही मिलता है।

(ब) नागरिक समाज

(१) **उच्च वर्ग**—इस वर्ग में बड़े बड़े उद्योगपति, व्यवसायी, व्यापारी एवं ठेकेदार सम्मिलित किये जा सकते हैं। इस वर्ग को योजनाकाल में सबसे अधिक लाभ प्राप्त हुआ बताया जाता है। योजनाकाल के बड़े पैमाने के विनियोजन के कारण नागरिक क्षेत्र के प्रायः सभी वर्गों की आय में कुछ न कुछ वृद्धि हुई है। आय की वृद्धि के कारण उपभोक्ता-वस्तुओं की माँग में अत्यधिक वृद्धि हुई है जबकि नियोजित अर्थ-व्यवस्था में नवीन विनियोजन में उत्पादक एवं पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन को विशेष महत्व प्रदान किया गया। इसके साथ ही उपभोक्ता-वस्तुओं के आयात पर भी प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं अथवा आयात कर को इतना अधिक बढ़ा दिया गया है कि

आयात की हुई वस्तुएं देश के बाजारों में बिक न सकें। इस प्रकार देश के उपभोक्ता-उद्योगों को एक ओर संरक्षण दिया गया है और दूसरी ओर, विदेशी विनिमय की बचत कर उत्पादक एवं पूंजीगत वस्तुओं का अधिक आयात करना सम्भव हो सका है परन्तु इस स्थिति का देश के उद्योगपतियों ने अनुचित लाभ उठाया है। उन्हें प्रतिस्पर्धा का भय नहीं रह गया है और अधिक माँग की उपस्थिति में वे अधिक मूल्य पर अपनी वस्तुएं बेचकर लाभ उपार्जित करते हैं। इसके अतिरिक्त उद्योगपतियों में अपनी उत्पादन लागत को कम करने के प्रति कोई प्रोत्साहन भी नहीं है क्योंकि न तो उन्हें प्रतिस्पर्धा का भय है और न वस्तुओं के दाम कम न करने का डर है। राज्य ने इस काल में नवीन औद्योगिक इकाइयों की स्थापना के सम्बन्ध में हर प्रकार से प्रोत्साहित किया है और देश में बहुत सी लघु, मध्यम एवं वृहद् औद्योगिक इकाइयों की स्थापना की गयी है। इन उद्योगों को मशीनों, पूंजीगत वस्तुओं एवं कच्चे माल का अत्यधिक आवश्यकता थी और बड़े पैमाने के विनियोजन को कार्यान्वित करने के लिए विनियोजित वस्तुओं का अत्यधिक माँग थी। विनियोजित वस्तुओं के निर्माताओं ने, जिनमें बड़े बड़े पूंजीपति सम्मिलित हैं, इस परिस्थिति का पूरा-पूरा लाभ उठाया है। विदेशों से इन पूंजीगत वस्तुओं के आयात करने में राज्य ने कठोर नियन्त्रणों का उपयोग किया है जिसके फलस्वरूप नवीन औद्योगिक इकाइयों को देश में बनी हुई पूंजीगत वस्तुओं का अधिकतर उपयोग करना पड़ा है। इस प्रकार पूंजीगत वस्तुओं के निर्माताओं ने इस एकाधिकार के वातावरण का लाभ उठाया और उनके लाभ का दर सामान्य से अधिक रहा है। पिछले १५ वर्षों में निर्माण कार्य इतना अधिक हुआ है जितना सम्भवतः पिछले ५० वर्षों में भी नहीं हुआ होगा। इसमें से ७०% से ८०% निर्माण सरकारी एवं अर्द्ध-सरकारी क्षेत्र में किया गया है। सरकारी क्षेत्र एवं अर्द्ध सरकारी क्षेत्र के निर्माण कार्य ठेके द्वारा कराये जाते हैं। नियोजित अर्थ व्यवस्था के १५ वर्षों में ठेकेदार वर्ग की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो गयी है। ठेकेदारों ने आजकल में अत्यधिक लाभोपार्जन किया है। इस लाभ का कुछ भाग दोषपूर्ण निर्माण कार्य तथा नियन्त्रित मूल्य वाले सामान का दुरुपयोग कर प्राप्त किया गया है। सरकारी अधिकारियों एवं प्रशासन में कर्त्तव्य के प्रति तत्परता की कमी के कारण ठेकेदारों को अधिक लाभोपार्जन में सहायता मिली है। इसके अतिरिक्त इस वर्ग के लोगों को अन्य प्रकार से अवधानिक आय उपार्जित करने के अवसर प्राप्त हुए हैं। ठेकेदारों का सरकारी क्षेत्रों की परियोजनाओं, व्यापारियों को मूल्य नियन्त्रण, लाइसेंस नियमन, वस्तुओं के वितरण परिमित नियमन आदि का दुरुपयोग तथा लाइसेंस प्राप्त आयातकर्ताओं द्वारा आयात के प्रतिबन्धों का दुरुपयोग कर अवधानिक लाभोपार्जन के अवसर प्राप्त हुए हैं। श्री वी० आर० गिनाय के अनुसार इस प्रकार के अवधानिक लाभ की मात्रा ५०० करोड़ रु० से ७५० करोड़ रु० प्रति वर्ष रही है जो उच्च-वर्ग के लोगों को ही प्राप्त हुई है।

(२) मध्यम-वर्ग

(क) उच्च मध्यम वर्ग (Upper Middle Class)—इस वर्ग में मध्य श्रेणी के उद्योगपति एवं व्यापारी, सरकारी एवं निजी क्षेत्र के उच्च पदाधिकारी आदि सम्मिलित किए जा सकते हैं। पिछले १५ वर्षों में इस वर्ग को अधिक कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा है। इनकी आय में वृद्धि के साथ-साथ इनको जो निवास गृह आदि की सुविधाएँ नियोक्ताओं द्वारा दी जाती हैं उनके कारण इनकी वास्तविक आय इतनी कम नहीं रही है कि यह जीवन-स्तर का निर्वाह न कर सकें। परन्तु इनमें कुछ ने योजना के विकास-कार्यक्रमों में अवैधानिक आयोपार्जन करने के प्रयास भी किए हैं जिनके कारण इनकी सम्पन्नता अन्य वर्गों की तुलना में अधिक रही है। सामान्यतः इस वर्ग की स्थिति सन्तोषजनक रही है।

(ख) निम्न मध्यम वर्ग (Lower Middle Class)—इस वर्ग में छोटे-छोटे उद्योगपति, व्यवसायी, व्यापारी, सरकारी एवं निजी क्षेत्र के कम आय वाले कर्मचारी सम्मिलित किए जा सकते हैं। इस वर्ग में अधिकतर लोग सरकारी, अर्द्ध-सरकारी संस्थाओं तथा निजी क्षेत्र के व्यवसायों के कर्मचारी हैं। इस वर्ग के लोग प्रायः शिक्षित एवं समझदार हैं। वे समाचार-पत्र पढ़ते हैं, रेडियो सुनते हैं और देश की समस्याओं के सम्बन्ध में विचार विमर्श करते हैं। राजनीतिक एवं सामाजिक सभाओं में इस वर्ग के लोग ही अधिक मात्रा में उपस्थित रहते हैं। इन लोगों में उन्नति करने की अभिलाषा भी अत्यधिक है, परन्तु यह वर्ग अन्य वर्गों की तुलना में सबसे अधिक असंगठित है और अपनी कठिनाइयों को राज्य के सामने प्रस्तुत करने में समर्थ नहीं है। इस वर्ग के सामाजिक जीवन में अभी तक महत्वपूर्ण परिवर्तन भी नहीं हुए हैं और अधिकतर लोग या तो सामूहिक परिवार (Joint Family) में रहते हैं या फिर सामूहिक परिवार का निर्वाह करते हैं। इनके परिवारों में आयोपार्जन करने वालों की संख्या कम और आश्रितों की संख्या अधिक है। कुछ कुछ परिवारों में स्त्रियाँ भी नौकरी आदि कर आय उपार्जित करती हैं। यह वर्ग सदैव जीवन स्तर को यथोचित स्तर पर रखने का प्रयत्न करता है जो उच्च मूल्य-स्तर के कारण इनके साधनों के बाहर रहता है। इस वर्ग के अभिलाषी होने के कारण इनमें अपने जीवन-स्तर को बनाने की प्रवृत्ति भी उपस्थित है। इस वर्ग में बच्चों को अच्छी शिक्षा देने पर भी अधिक जोर दिया जाता है जिससे बच्चों का भविष्य उज्ज्वल हो सके, परन्तु शिक्षा के स्तर में निरन्तर कमी एवं शिक्षा की लागत में वृद्धि होने के कारण इनकी कठिनाइयाँ और भी गम्भीर हो गयी हैं। इस वर्ग के जीवन-निर्वाह की लागत का अनुमान मूल्य निर्देशांक के आधार पर नहीं लगाया जा सकता है। इनके जीवन निर्वाह की लागत में शिक्षा एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों की लागत भी सम्मिलित रहती है।

बढ़ते हुए मूल्यों का सबसे अधिक प्रभाव इस वर्ग पर पड़ा है। देश में निर्मित वस्तुओं को पर्याप्त मात्रा में इन्हें क्रय करना असम्भव है क्योंकि इनके पास साधनों

की इतनी कमी रहती है कि नवीन वस्तु खरीदने के लिए इन्हें दूसरी वस्तु के क्रय का विचार छोड़ना पड़ता है। देश के उद्योगों को संरक्षण मिलने के कारण इन उद्योगों के उत्पादन का मूल्य निरन्तर बढ़ता जा रहा है। उद्योगपतियों को विदेशी प्रतिस्पर्धा का भय न होने के कारण वे अधिक मूल्य पर अपना सामान बेचने का प्रयत्न करते हैं। मूल्यों की वृद्धि का दूसरा कारण औद्योगिक श्रमिकों को अधिक लाभ उपलब्ध कराना भी है। औद्योगिक श्रमिक संगठित हैं और राज्यों एवं केन्द्र दोनों में श्रमिक नेता मन्त्रियों के पद ग्रहण किए हुए हैं जिसके कारण श्रमिकों की माँगों की पूर्ति करना उद्योगपतियों को आवश्यक हो गया है। उद्योगपति श्रमिकों को दिये जाने वाले लाभों को अपनी वस्तुओं के मूल्य में जोड़ देता है और इस प्रकार श्रमिकों के लाभ का बहुत बड़ा भाग मध्यम वर्ग के उपभोक्ताओं को वहन करना पड़ता है। सरकारी क्षेत्र के व्यवसायों में भी श्रमिकों को दिये गये लाभों की लागत अन्तिम रूप से उपभोक्ता को ही देनी पड़ती है। इस प्रकार उपभोक्ता को उद्योगों एवं व्यवसायों के समस्त व्यय सरकारी कर आदि का भार वहन करना पड़ता है परन्तु निम्न मध्यम वर्ग का यह भार असहनीय हो जाता है क्योंकि इसकी आय स्थिर रहती है और इसे अपने आश्रितों का निर्वाह करना आवश्यक होता है। जब इस वर्ग के लोग अपनी तुलना औद्योगिक श्रमिकों (परिवारों जिनमें आय-उपार्जन करने वाले अधिक और आश्रित कम हैं) से करते हैं तो इनमें असन्तोष की भावना जाग्रत होना स्वाभाविक है और इन्हें ऐसा लगता है कि योजना का लाभ इनको तनिक भी प्राप्त नहीं हो रहा है।

इस वर्ग में बेरोजगारी का भार भी अत्याधिक है। यह वर्ग रोजगार प्राप्त करने हेतु एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने के लिए तत्पर रहता है परन्तु प्रदेश एवं भाषा-भाषी भावनाओं, जाति भेद, साम्प्रदायिकता आदि के कारण इन्हें आय उपार्जन के पर्याप्त अवसर नहीं मिल पाते हैं। अवसर उपलब्ध होते हुए भी जब इन्हें नहीं दिये जाते तो इनमें असन्तोष की भावनाएं जाग्रत होती हैं परन्तु इन्हें अपने उत्पीड़न को प्रस्तुत करने के अवसर भी उपलब्ध नहीं हैं।

इस प्रकार इस वर्ग के सदस्यों को नियोजन की कार्यवाहियों में अधिक रुचि नहीं है। इनको एक ओर नियोक्ताओं के शोषण, वहम तथा घृणा को सहन करना पड़ता है और दूसरी ओर बढ़ते हुए मूल्यों के दबाव से दबे रहना पड़ता है। यदि यह वर्ग ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों में आता है तो निवास गृहों की समस्या उपस्थित होती है। नगरों में मकानों के किराये इतने अधिक हो गये हैं कि इनको अपनी आय का लगभग २०% किराये के रूप में देना पड़ता है। यदि इस वर्ग के लोग ग्रामों में रहते हैं तो बच्चों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध सम्भव नहीं है। समाज में इनका स्थान ऐसा है कि यह अपने व्ययों को कम करने में असमर्थ हैं और जिस क्षेत्र में भी यह बचत करते हैं मूल्यों की निरन्तर वृद्धि उस बचत के लाभ से इन्हें वंचित कर देती है।

प्रो० सी० एन० वकील के शब्दों में, "जाति, धर्म भाषा तथा क्षेत्र पर आधारित न होने वाले वास्तविक पिछड़े वर्ग (निम्न मध्यम-वर्ग) पर कोई विचार नहीं किया जाता है। योजना के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अधिकारियों को परिस्थितियों के इस पहलू पर विचार करना चाहिए। आर्थिक एवं सामाजिक ढांचे में द्रुत गति से होने वाले परिवर्तनों के मध्य में इस समस्या का निरन्तर अध्ययन करना आवश्यक है। देश के विभिन्न भागों के इस वर्ग के सदस्यों के जीवन का गहन अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है। देश की भविष्य में आर्थिक राजनीतिक एवं सामाजिक सुदृढ़ता के लिए इस वर्ग की समस्याओं का अध्ययन एवं निवारण आवश्यक है। नियोजन का सबसे अधिक सहयोग देने की क्षमता रखने वाले वर्ग को योजनाओं की सफलता में सक्रिय कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु आश्वासन के अतिरिक्त वास्तविक सुविधाओं की उपलब्धि आवश्यक है।"[1]

(ग) निम्न वर्ग—इस वर्ग में नगरों के औद्योगिक श्रमिकों छोटे छोटे व्यापारियों आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। औद्योगिक श्रमिकों के कल्याण हेतु योजनाओं में विशेष कार्यवाहियां की गयी हैं। ये श्रमिक संगठित हैं और अपनी कठिनाइयों एवं मांगों को सामूहिक रूप से प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। योजनाओं की नीति से इस वर्ग के जीवन में पर्याप्त सुधार हुआ है। श्रमिकों के प्रशिक्षण, चिकित्सा आदि का भी प्रबंध किया गया है। इनके पारिश्रमिक में भी वृद्धि हुई है यद्यपि यह वृद्धि मूल्य वृद्धि के अनुकूल नहीं है। औद्योगिक श्रमिकों के निवास-गृहों का निर्माण बड़े-बड़े केन्द्रों में राज्य द्वारा किया गया है परन्तु इनकी वर्तमान अवस्था अन्य उन्नतशील राष्ट्रों के औद्योगिक श्रमिकों की तुलना में अत्यन्त दयनीय है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था में उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि होने पर भी समाज के समस्त वर्गों को समान लाभ प्राप्त नहीं हुआ है। वास्तव में, उत्पादन की वृद्धि को जितना महत्व दिया गया, उतना ही महत्व वितरण को भी

---

1 But the real backward class—the lower middle class—irrespective of cast religion language or region remains unnoticed for the sake of many objectives of the Plan those in charge must come to grip with this aspect of the situation The rapidly changing economic and social pattern rejoins constant examination An intensive study of the life of the members of this class in different parts of the country is urgently called for A careful examination of their problems and timely solution is necessary in the interest of the future economic political and social stability of the country The largest potential supporters of the plan require something more tangible than vague words to spur them into working actively for its success

—Prof C N Vakil Plan Impact on Large Sections of People is not Strong *The Economic Times* 15th June 1961

देना चाहिए था। सम्पन्नता के वितरण की विषमता के कई कारण रहे हैं। देश के आर्थिक ढाँचे में जो संस्थागत परिवर्तन किये गये वे या तो पर्याप्त नहीं हैं या फिर उनमें प्रभावशालिता की कमी है। सरकारी क्षेत्र का विस्तार एवं निजी क्षेत्र पर नियन्त्रण की प्रभावशीलता पर्याप्त नहीं रही है। इसके अतिरिक्त प्रशासन के विभिन्न भागों के कारण भी वितरण की विषमता अभी भी बनी हुई है। राष्ट्रीय चरित्र की हीनता, वस्तु व्यवसायियों की कमी व अकुशल संगठन आदि कारणों ने भी निर्बल वर्ग की निर्बलता के जाल से मुक्त होने से रोक रखा है। वर्तमान परिस्थितियों में यह आवश्यक हो गया है कि भविष्य की योजनाओं के कार्यक्रमों का प्रकार एवं संचालन विधि इस प्रकार निर्धारित की जानी चाहिए कि उत्पादन की वृद्धि के साथ साथ वितरण में समानता लायी जा सके और योजना के लाभों का बड़ा भाग निर्बल वर्गों को प्राप्त हो सके।

महलनाबिस समिति

केन्द्रीय सरकार ने अतिरिक्त आय के वितरण के सम्बन्ध में जाँच करने हेतु महलनाबिस समिति तथा एकाधिकार आयोग (Monopolies Commission) की स्थापना की थी। महलनोबिस समिति ने अपनी रिपोर्ट का पहला भाग अप्रैल सन् १९६४ में अन्त में सरकार के सम्मुख प्रस्तुत किया। समिति ने अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट कहा है कि प्रथम एवं द्वितीय योजना के दस वर्षों में लगभग १९,००० करोड़ रु० की अतिरिक्त राष्ट्रीय आय उपार्जित हुई जिसमें से २,५५० करोड़ रु० सरकारी व्यय की वृद्धि में तथा २,५२० करोड़ रु० अतिरिक्त घरेलू बचत में उपयोग हुआ अर्थात् ५,००० करोड़ रु० ऐसी राशि मानी जा सकती है जो भविष्य के आर्थिक विकास के लिए उपलब्ध हुई। शेष १३,९३० करोड़ रु० निजी उपभोग में वृद्धि के लिए उपलब्ध था। इन दस वर्षों में जनसंख्या में प्रतिवर्ष २% अर्थात् ७० ल० लाख व्यक्तियों की वृद्धि हुई और अतिरिक्त राष्ट्रीय आय में से लगभग ८,५६० करोड़ रु० इस अतिरिक्त जनसंख्या ने उपभोग पर उपयोग किया। इस प्रकार अतिरिक्त राष्ट्रीय आय में से ५,३७० करोड़ रु० के वितरण के सम्बन्ध में जाँच कर पता लगाना रहा कि राशि किसके हाथ में रही। इसके सम्बन्ध में समिति ने अपने नतीजा का स्पष्ट नहीं किया है परन्तु समिति ने कुछ क्षेत्रों में आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को अंकित किया है। समिति के विचार में नियोजित अर्थ व्यवस्था के संचालन के फलस्वरूप बड़े व्यापारों के विस्तार में सहायता मिली है। समिति ने विभिन्न वित्तीय संस्थाओं, जैसे औद्योगिक वित्त निगम तथा राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम को ऋण देने की नीति के फलस्वरूप निजी क्षेत्र में बड़े व्यापारों के विकास होने की ओर संकेत किया है। सरकार की मुद्रा प्रसार की नीति अपरिव्यय (Overhead Facilities) तथा कर सम्बन्धी उद्योगों को दी गयी रियायतों द्वारा निजी क्षेत्र में बड़े व्यवहारों की स्थापना को प्रोत्साहन मिला है। समिति के अनुसार सन् १९५१ में दस

समूहों (Group) की ८७६ सीमित दायित्व वाली कम्पनियों में किसी न किसी प्रकार का हित था। इन कम्पनियों की अंश-पूंजी २०/ करोड़ रु० थी। सन् १९५८ में इन दस समूहों के हित ६२६ कम्पनियों में हो गए जिनकी अंश-पूंजी २६० करोड़ रु० थी। समिति ने बताया कि विभिन्न कम्पनियों पर नियन्त्रण रखने के लिए एक कम्पनी अपना धन दूसरी कम्पनियों में विनियोजित करती है। बड़े-बड़े बैंकों में तथा बड़ी औद्योगिक इकाइयों में सामान्य संचालकों द्वारा सम्बन्ध स्थापित किए गए हैं। विदेशी विनियोजन द्वारा भी बड़े व्यापारिक समूह के हाथों में आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण को सहायता मिली है। समिति ने बताया है कि प्रथम दो योजनाकाल में देश में बड़े व्यापार एवं बड़े बैंकों की प्रगति में घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। ?२२ बैंकिंग कम्पनियों में से १५ बड़े बड़े बैंक देश की कुल जमा राशि के ८०% प्रतिशत भाग पर नियन्त्रण रखते हैं।

समिति ने सिफारिश की है कि समामेलित संस्थाओं व पारस्परिक सम्बन्धों, सरकारी क्षेत्र के व्यवसायों एवं निजी क्षेत्र के व्यवसायों के सामान्य संचालकों तथा समाचार-पत्र उद्योग एवं अन्य संस्थाओं के सम्बन्धों की जाँच की जानी चाहिए। समिति ने यह जाँच करने की सिफारिश भी की है कि निजी क्षेत्र की कम्पनियों के संचालकों को सरकारी क्षेत्र के व्यवसायों में संचालक बनाने से सरकारी व्यवसायों को किस सीमा तक उनके विशेष ज्ञान का लाभ प्राप्त हुआ तथा इस प्रकार की व्यवस्था से आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण को छूट दी, बड़े व्यापारों से सम्बन्धित व्यक्तियों के हाथ में रहने से किस सीमा तक सहायता मिली है। समिति ने बताया कि देश की विभिन्न भाषाओं में जारी किए जाने वाले दैनिक समाचार-पत्रों में से ६७.७% पर अधिकार विभिन्न समूहों अथवा संस्थाओं आदि को प्राप्त है।

समिति के विचार से अतिरिक्त राष्ट्रीय आय का वितरण ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में नागरिक क्षेत्रों में असमान रहा है। कृषि-श्रमिकों का जीवनस्तर तथा कर्म-चारी-वर्ग की आय में सामान्यतः उसी अनुपात में वृद्धि हुई है जितनी देश में प्रति व्यक्ति औसत आय में वृद्धि हुई है। खानों एवं कारखानों में श्रमिकों की आय में अन्य श्रमिकों की तुलना में अधिक वृद्धि हुई है। कृषि श्रमिक समूह को अतिरिक्त राष्ट्रीय आय में कोई भाग नहीं प्राप्त हुआ है। समिति का विचार है कि नगर के रहने वाले औसत व्यक्ति को खाना एवं कपड़ा ग्रामीण क्षेत्र के औसत व्यक्ति से अधिक नहीं प्राप्त होता है। आय के वितरण में इतनी विषमता नहीं है जितनी धन एवं सम्पत्ति के वितरण में है।

महलनोबिस-समिति के विचारों से यह तो स्पष्ट है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था द्वारा विषमताओं में कोई कमी नहीं हुई है और विभिन्न नियोजित कार्यक्रमों की क्रियान्वित विधि (Implementation) के फलस्वरूप आर्थिक सत्ताओं के केन्द्रीकरण को सहायता मिली है और बड़े व्यापारों का विस्तार हुआ है। यद्यपि समिति

न यह स्पष्ट नहीं किया कि अतिरिक्त राष्ट्रीय आय का वितरण विभिन्न वर्गों में किस प्रकार हुआ, परन्तु यह अवश्य स्पष्ट किया है कि कृषि श्रमिक समूह को अतिरिक्त राष्ट्रीय आय में से कोई अंश प्राप्त नहीं हुआ है। इस प्रकार देश की लगभग १०% से १५% जनसंख्या को नियोजित अर्थव्यवस्था का कोई लाभ प्राप्त नहीं हुआ है। ग्रामीण क्षेत्रों में सामान्यतः आय में कम वृद्धि हुई क्योंकि बड़े व्यापारों का विकास एवं विस्तार नगरों में हुआ है। समिति की सिफारिशों एवं सुझावों पर उस समय तक कोई कार्यवाही नहीं की जायगी जब तक एकाधिकार आयोग भी अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं कर देता है।

भारत की योजनाओं के प्रमुख उद्देश्य हैं—(अ) कृषि एवं उद्योगों का विस्तार कर राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना तथा (आ) श्रम शक्ति का उपयोग, रोजगार में वृद्धि, अवसरों की समानता का आयोजन, आय एवं धन की विषमताओं को कम करना तथा आर्थिक सत्ताओं का अधिक समान वितरण। इस प्रकार प्रथम उद्देश्य मुख्य रूप से आर्थिक है और द्वितीय उद्देश्य सामाजिक सुधारों से सम्बन्ध रखता है। भारत में योजनाओं का संचालन इस प्रकार किया गया है कि इन दोनों उद्देश्यों में एक दूसरे से दूरी बढ़ती जा रही है अर्थात् आर्थिक एवं सामाजिक उद्देश्यों में पर्याप्त समन्वय स्थापित नहीं किया जा सका है। आर्थिक विकास-कार्यक्रमों का निर्धारण सामाजिक उद्देश्यों पर पूर्णतः विचार किए बिना ही किया गया है। इसी कारण सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों द्वारा भी आर्थिक सत्ताओं से केन्द्रीयकरण को सहायता मिली है। इसके अतिरिक्त निर्धारित योजनाएं और उसके संचालन में भी अन्तर पाया जाता है क्योंकि आर्थिक नियोजन के उद्देश्यों को अत्यन्त संकीर्ण मान लिया जाता है। हमारी योजनाओं के उद्देश्य स्वयं स्फूर्त (Self Reliant) अर्थ-व्यवस्था की स्थापना एवं आधुनीकरण के फलस्वरूप औद्योगीकरण के कुछ पक्षों को अधिक महत्व प्रदान किया गया है और साधनों के विकास, क्षेत्रीय विकास, श्रम शक्ति का उपयोग तथा अत्यन्त महत्वपूर्ण सामाजिक एवं कल्याण सम्बन्धी विकास कार्यक्रमों की आवश्यकता से कम महत्व प्रदान किया गया है। ऐसी परिस्थिति में आर्थिक प्रगति द्वारा आर्थिक विषमताओं में वृद्धि होना स्वाभाविक है। प्रत्येक आर्थिक कार्यक्रम के सामाजिक तत्वों को भी उतना ही महत्व दिया जाना चाहिए जितना आर्थिक कार्यक्रम को दिया जाता है। इस प्रकार नियोजन के उद्देश्यों को कार्यान्वित करने की विधि से सामाजिक उद्देश्य प्रभावित होते हैं।

भारत की नियोजित अर्थव्यवस्था में विदेशी सहायता ने भी आर्थिक विषमताओं को बढ़ावा दिया है। निजी क्षेत्र में जिन विदेशी औद्योगिक संस्थाओं ने विदेशी सहयोग प्राप्त कर विभिन्न कारखानों की स्थापना की जाती है, उनमें बड़े व्यापार गृहों का ही लाभ होता है क्योंकि वे ही इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं। तृतीय योजना में इसलिए विदेशी सहयोग की सुविधाओं को लघु एवं मध्यम श्रेणी तथा

सरकारी इकाइयों तक पहुँचाने का महत्व दिया गया, परन्तु इस सम्बन्ध में कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई क्योंकि विदेशी सहयोग प्राय आधुनिक तान्त्रिकताओं का उपयोग करने के लिए किया जाता है जिसका उपयोग बड़े व्यापार ही कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त बड़े उद्योगों की स्थापना व नवीन उपयोग आने वाली तान्त्रिकताएँ जो भारत के लिए उपयुक्त हैं, आयात व प्रतिस्थापन तथा उद्योगों के स्थानीयकरण के सम्बन्ध में क्रमबद्ध एवं स्पष्ट नीति निर्धारित नहीं की गयी है।

एकाधिकार-आयोग का प्रतिवेदन

एकाधिकार आयोग की स्थापना केन्द्रीय सरकार द्वारा अप्रैल, सन् १९६४ में की गयी थी और इसे अक्टूबर, सन् १९६५ के अन्त तक अपना प्रतिवेदन देने को कहा गया था। इस आयोग की स्थापना श्री के० सी० दास गुप्ता (रिटायर्ड सुप्रीम कोर्ट न्यायाधीश) की अध्यक्षता में की गयी थी। एकाधिकार आयोग को निम्नलिखित बातों की जाँच कर अपनी सिफारिशें देनी थीं—

(१) *निजी व्यक्तियों के हाथों में आर्थिक सत्ताओं के केन्द्रीयकरण के प्रसार* एवं इसके प्रभाव की जाँच करना। इसके साथ ही आर्थिक क्रियाओं के मुख्य-मुख्य क्षेत्रों (कृषि-क्षेत्र को छोड़कर) में प्रचलित एकाधिकारिक (Monopolistic) तथा प्रतिबंधीय (Restrictive) प्रथाओं की जाँच निम्नलिखित बातों के सन्दर्भ में करना—

(अ) वे तथ्य, जिनके द्वारा इन एकाधिकारिक एवं प्रतिबंधीय प्रथाओं का जन्म हुआ एवं उनको पुष्टि प्राप्त हुई।

(आ) विधि सम्बन्धी (Legislative) तथा अन्य ऐसे सुझाव देना जिनके द्वारा जन हित को सुरक्षा प्रदान की जा सके। आयोग को नये विधान एवं संस्था की स्थापना करने के सुझाव देने का अधिकार भी दिया गया जिनके द्वारा एकाधिकार केन्द्रीयकरण को नियन्त्रित किया जा सके।

(इ) आयोग किसी अन्य बात पर किसी क्षेत्र की कार्यविधि पर तथा वित्तीय संस्थाओं की कार्य विधि पर भी अपना प्रतिवेदन दे सकता था यदि यह उपर्युक्त सम्बन्धित एकाधिकारिक केन्द्रीयकरण को प्रभावित करते हों।

एकाधिकार-आयोग ने अपना प्रतिवेदन निश्चित अवधि अर्थात् ३१ अक्टूबर सन् १९६५ को केन्द्रीय सरकार को प्रस्तुत कर दिया। आयोग के एक सदस्य श्री आर० सी० दत्त ने कुछ बातों पर अपना विरोधी मत प्रतिवेदन में अंकित किया है। आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को आयोग ने दो भागों में विभक्त किया—

(१) **उत्पाद-सम्बन्धी केन्द्रीयकरण**—जब किसी वस्तु अथवा सेवा के उत्पादन अथवा वितरण पर पूँजी के स्वामित्व अथवा अन्य किसी कारण से एक ही संस्था अथवा कुछ ही संस्थाओं का (जो किसी एक परिवार अथवा कुछ परिवारों द्वारा नियन्त्रित हों) नियन्त्रण हो तो इसे उत्पादन-सम्बन्धी केन्द्रीयकरण कहा गया।

(२) **अखिल देशीय केन्द्रीयकरण (Countrywise Concentration)**—जब

बहुत सी संस्थाएं जो विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन अथवा वितरण करती हों किसी एक व्यक्ति या परिवार अथवा वित्तीय एवं व्यापारिक हितों से सम्बद्ध संस्थाओं द्वारा नियन्त्रित की जाती हों तो उसे अखिल देशीय केन्द्रीयकरण कहा गया।

आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण के कारण

(१) **द्वितीय महायुद्ध में अति धनोपार्जन**—द्वितीय महायुद्ध में कुछ उद्योग पतियों द्वारा बहुत अधिक धनोपार्जन किया गया और जब स्वतन्त्रता के पश्चात् सरकार द्वारा औद्योगिक विकास के कार्यक्रमों का संचालन किया गया तो इन उद्योग पतियों ने नये उद्योगों की स्थापना में विस्तार में इस धन का उपयोग किया जिसके द्वारा उनी उद्योगपति को अपने धन में वृद्धि करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

(२) **ब्रिटिश संस्थाओं का विक्रय**—स्वतन्त्रता के पश्चात् बहुत सी ब्रिटिश व्यापारिक संस्थाएं अपने उद्योगों एवं व्यापारों का विक्रय कर अपने देश को लौट गयी। सामान्यतः ये सभी उद्योग अत्यन्त कुशलता के साथ संचालित किये जाते थे। भारतीय उद्योगपतियों को इस प्रकार अपना धन सुव्यवस्थित एवं सुदृढ़ व्यापारों के क्रय करने के लिए उपयोग करने का अवसर प्राप्त हुआ। इन व्यवसायों का साथ का लाभ इन उद्योगपतियों को प्राप्त होता रहा है जिससे इनकी आर्थिक सत्ताओं का विस्तार हुआ।

(३) **तान्त्रिक विकास**—स्वतन्त्रता के पश्चात तान्त्रिक विकास पर विशेष ध्यान दिया गया जिसका अन्ततः लाभ उद्योगपतियों को प्राप्त हुआ है। बड़े बड़े कारखानों की स्थापना तथा उनके लिए कुशल संयन्त्रों एवं कर्मचारियों की प्राप्ति तान्त्रिक विकास का ही परिणाम था।

(४) **प्रबन्ध अभिकर्ता प्रणाली (Managing Agency System)**—इसके द्वारा आर्थिक सत्ताओं के केन्द्रीयकरण को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था। इसके द्वारा यह सम्भव हो सका कि कुछ ही परिवार बहुत सी समामेलित कम्पनियों पर नियन्त्रण रख सकें। यह नियन्त्रण आर्थिक लाभ प्राप्त करने हेतु उपयोग किया गया जिसके फलस्वरूप आर्थिक केन्द्रीयकरण में वृद्धि हुई।

(५) **अन्तर कम्पनी विनियोजन (Inter Corporate Investment)**—एक कम्पनी की पूंजी अन्य कम्पनियों में विनियोजन करने की सुविधा से सहायक कम्पनियाँ (Subsidiary Companies) स्थापित करना सम्भव हो सका जिसके फलस्वरूप एक प्रमुख कम्पनी (Holding Company) पर नियन्त्रण रखने वाला परिवार कई कम्पनियों पर नियन्त्रण प्राप्त कर सका।

(६) **सरकारी नियोजित विकास-कार्यक्रम**—नियोजित आर्थिक विकास हेतु सरकार द्वारा उद्योगों की स्थापना एवं विस्तार के लिए लाइसेन्स प्राप्त करने, पूँजी निर्गमन प्राप्त करने, आयात पर नियन्त्रण तथा विदेशी विनिमय पर नियन्त्रण आदि से सम्बन्धित की गयी कार्यवाहियों ने आर्थिक सत्ताओं के केन्द्रीयकरण को प्रोत्साहित

लिया। बड़े बड़े व्यापारिक समूहों का यह सम्भव हो सका है कि वह इस सरकारी नियन्त्रणों से अधिक से अधिक लाभ उठायें और कम साधनों वाले छोटे उद्योगपति के लिए नए उद्योगों की स्थापना में यह नियन्त्रण बाधक रहे। इसके साथ ही बड़े बड़े व्यापारियों को बैंकों से अधिक साख प्राप्त होने की सुविधा भी मिलती रही। पेटेन्ट सम्बन्धी भी आर्थिक सत्ताओं के केन्द्रीयकरण में सहायक हुआ।

एकाधिकार आयोग ने उत्पाद-सम्बन्धी केन्द्रीयकरण का अध्ययन करने हेतु लगभग १०० चुने हुए उत्पादों पर विस्तृत विचार किया। इन उत्पादों में बच्चों का दूध, शक्कर, चाय, विभिन्न प्रकार के वस्त्र, घरेलू वस्तुएँ, औषधियाँ, यातायात की वस्तुएँ, भवननिर्माण सामग्री आदि सम्मिलित थे। इन उत्पादों में ६५ उत्पाद ऐसे थे जिसके उत्पादन के बहुत बड़े भाग पर कुछ ही बड़े उत्पादकों का नियन्त्रण था।

अखिल देशीय आर्थिक केन्द्रीयकरण का अध्ययन करने हेतु आयोग ने देश के ८३ बड़े-बड़े व्यापारिक समूहों से सम्बद्ध २ ०१६ कम्पनियों का विस्तृत अध्ययन किया। इनमें ७५ व्यापारिक समूह ऐसे थे जिनके नियन्त्रण में रहने वाली कम्पनियों की कुल सम्पत्तियाँ ५ करोड़ से कम नहीं थी। इस अध्ययन से आयोग को यह ज्ञात हुआ कि टाटा ग्रुप में आने वाली ५३ कम्पनियों की कुल सम्पत्ति ४१७ करोड़ रु० की थी। इस टाटा ग्रुप के पश्चात् दूसरा क्रम बिड़ला ग्रुप का है जिनके नियन्त्रण में आने वाली १५१ कम्पनियों की कुल सम्पत्ति २९२ करोड़ रु० थी। इन दो ग्रुपों द्वारा नियन्त्रित कम्पनियों की दत्त पूँजी कुल समामेलित कम्पनियों की दत्त पूँजी (Paid up Capital) (सरकारी कम्पनियाँ एवं बैंकिंग कम्पनियाँ छोड़ कर) की ४४% थी तथा इनकी सम्पत्तियाँ कुल कम्पनियों की सम्पत्तियों की ४७% से कुछ कम थीं।

आर्थिक केन्द्रीयकरण का प्रभाव

आयोग ने अपने प्रतिवेदन में बताया कि एकाधिकारियों द्वारा बहुत सी ऐसी कार्यवाहियाँ की जाती हैं कि नवीन प्रतिस्पर्धा उत्पन्न ही न हो सके और यह एकाधिकारी प्रतिस्पर्धा की अनुपस्थिति में सामान्य उपयोग की वस्तुओं का अत्यधिक मूल्य लगाते हैं। वस्तुओं के संग्रह द्वारा कृत्रिम न्यूनता उत्पन्न की जाती है। एकाधिकार का लाभ उठाने के लिए बहुत सी विधियों का उपयोग किया जाता है जिनमें मूल्य निर्धारण, पुनः विक्रय मूल्य निर्धारण, वस्तु वितरण, एकाधिकारिक अनुबन्ध आदि सम्मिलित हैं। आयोग द्वारा अंकित किये गये आर्थिक केन्द्रीयकरण के प्रभावों को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—

(१) बड़े-बड़े व्यापार गृह सामान्य चुनाव के समय राजनीतिक दलों (विशेषकर सत्तारूढ़ दल) को चन्दा देकर उन अधिकारियों से उनैतिकता कराते हैं और रिश्वतखोरी को बढ़ावा देते हैं।

(२) *नवीन पीढ़ी में सामाजिक एवं विद्वत्तात्मक (Academic) महत्वों के* प्रति जागृति कम होती जा रही है। वे अधिक धनवान लोगों के विलासपूर्ण जीवन एवं उपभोग का अनुकरण करने का अधिक महत्व देने लगी हैं।

(३) आयोग के विचार में आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण ने देश के आर्थिक विकास को अत्यधिक योगदान दिया है। हमारे औद्योगिक विकास के मूल में कुछ ही व्यक्तियों का साहस एवं कुशलता का योगदान है। इनके द्वारा पूंजी निर्माण को बढ़ावा एवं विदेशों से सहयोग प्राप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त बड़ी बड़ी औद्योगिक संस्थाओं द्वारा समाज को कुशल प्रबन्धक भी प्रदान किए गये हैं।

(४) आर्थिक सत्ताओं के केन्द्रीयकरण द्वारा एकाधिकार के सभी दोषों को जन्म मिला है। बड़े बड़े व्यापारिक समूह समाचार-पत्रों पर भी नियन्त्रण रखते हैं और विज्ञापन के माध्यम से भी वे छोटे साहसियों को परास्त करने में सफल होते हैं। इस प्रकार धन एवं आय के विषम वितरण में वृद्धि होना स्वाभाविक है।

आयोग की सिफारिशें

आर्थिक सत्ताओं से उत्पन्न होने वाले दोषों को दूर करने के लिए आयोग ने दो प्रकार के सुझाव दिये—विधि सम्बन्धी (Legislative Measures) तथा अन्य सुझाव।

विधि सम्बन्धी सुझाव

एकाधिकारिक प्रथाओं पर नियन्त्रण करने हेतु आयोग ने एक स्थायी संस्था की स्थापना की सिफारिश की। आयोग के विचार में हम आर्थिक सत्ताओं के केन्द्रीयकरण को सर्वत्र नष्ट करने के लिए कोई कार्यवाही नहीं करना चाहिए प्रत्युत उस पर उचित नियन्त्रण एवं प्रतिबन्ध तब ही लगाये जाने चाहिए जब यह उत्तम उत्पादन एवं वितरण में बाधक होता हो। यह स्थायी संस्था निरन्तर इस बात की जाँच करती रहे कि बड़े व्यापार अपनी सत्ताओं का दुरुपयोग न करें। एकाधिकार की स्थापना एवं एकाधिकार प्रथाएं एवं प्रतिबन्ध पर तब ही नियन्त्रित अथवा प्रतिबन्धित की जाय जब इनसे जनहित को हानि पहुँचती हो।

इस स्थायी संस्था को किसी संस्था की शिकायत प्राप्त होने पर उसकी न्याय सम्बन्धी जाँच (Judicial Enquiry) कराने का अधिकार होना चाहिए और जाँच के फलस्वरूप आवश्यकता पड़ने पर सम्बन्धित पक्ष को प्रचलित प्रथाओं के उपयोग न करने का आदेश देने का अधिकार होना चाहिए। यह संस्था एकीकरण एवं सम्मिश्रण के बड़े व्यापारों के आवेदनों को स्वीकृत करने अथवा न करने का कार्य भी करे तथा बड़े बड़े व्यापारों के विस्तार करने और आवेदन पत्रों पर अपना निर्णय देने का अधिकार भी इसे होना चाहिए। यह संस्था बड़ी बड़ी कम्पनियों से संगठन एवं प्रबन्ध सम्बन्धी सूचनाओं को प्राप्त कर उनकी एकाधिकारिक प्रवृत्तियों से अवगत रहनी चाहिए।

अन्य सुझाव

(१) प्रशासन के भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए राजनीतिक दलों को अपने चुनाव कार्यक्रमों के लिए बड़े बड़े व्यापार गृहों से अनुदान नहीं स्वीकार करना चाहिए।

(२) उद्योगों की स्थापना एवं विस्तार के लाइसेन्स देने की विधि को इस प्रकार सरल बनाया जाय कि लोगों साहसी बिना अधिक धन व्यय किये तथा अधिक प्रतीक्षा किये बिना ही आवश्यक लाइसेन्स प्राप्त कर सकें।

( ) आयात के लाइसेन्स जारी करते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि इसके द्वारा एकाधिकारी व्यापार-गृह जन-साधारण का शोषण न कर सकें।

(४) निजी हाथों होने वाले आर्थिक केन्द्रीकरण को रोकने हेतु सरकारी क्षेत्र में व्यवसायों की स्थापना की जानी चाहिए और उनका सचालन कुशलता से किया जाना चाहिए।

(५) लघु उद्योगों के विकास एवं विस्तार को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए तथा सरकारी क्रय में लघु उद्योगों द्वारा उत्पादित सामग्री को प्राथमिकता दिया जाना चाहिए।

(६) *उपभोक्ता सहकारी समितियों की स्थापना को प्रोत्साहन दिया जाना* चाहिए जिससे वह सगठित रूप से उपभोक्ताओं के हित की रक्षा कर सकें।

सरकारी क्षेत्र की औद्योगिक संस्थाओं के सम्बन्ध में आयोग का विचार था कि यह भी स्थायी संस्था के कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत रहने चाहिए और इन पर निजी क्षेत्र के समान ही नियन्त्रण रहना चाहिए। बड़े-बड़े व्यापार गृहों द्वारा समाचार-पत्रों पर जो नियन्त्रण है इसके सम्बन्ध में आयोग का विचार था कि यह संविधान में विचार व्यक्त करने के आधारों के अनुकूल है।

श्री आर० सी० दत्त ने आयोग द्वारा दिये गये तथ्यों से कुछ भिन्न में अपना मत प्रतिवेदन में अंकित किया। उनके विचार से प्रबन्ध अभिकर्ता प्रणाली आर्थिक सत्ताओं के केन्द्रीयकरण का प्रमुख कारण थी और इस प्रणाली की उपयुक्तता पर पुनः विचार किया जाना आवश्यक था। श्री दत्त के विचार से नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत जो नियन्त्रण लगाये गये, वे उपयुक्त रहे और उनके द्वारा केन्द्रीय-करण को कोई सहायता नहीं मिली। बड़े बड़े व्यापार गृह केवल अपने अनुदानों द्वारा ही सरकारी नीतियों को प्रभावित नहीं करते अपितु वे अर्थ-व्यवस्था के बड़े क्षेत्र को नियन्त्रित करने के कारण बचत एवं विनियोजन को प्रभावित करते हैं जिसके फल-स्वरूप सरकारी नीतियाँ प्रभावित होती हैं। श्री दत्त के विचार में आयोग का यह विचार ठीक नहीं है कि आर्थिक सत्ताओं के केन्द्रीयकरण से देश के औद्योगीकरण एवं आर्थिक विकास को सहायता मिली। वे इस बात से भी सहमत नहीं हैं कि आर्थिक केन्द्रीयकरण द्वारा पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ तथा समाज को कुशल प्रबन्धक प्राप्त हुए। उनका कहना था कि इस नियन्त्रण द्वारा स्वतन्त्र (Unattach-ed) व्यक्तियों को कुशल प्रबन्धक बनने के अवसर नहीं दिये गये। श्री दत्त के विचार से इस केन्द्रीयकरण को तुरन्त रोकने एवं प्रतिबन्धित करने के लिए कार्यवाही की जानी चाहिए क्योंकि इसके द्वारा विषमता बढ़ती है और दीर्घ काल में यह स्वतः विकसित

(Self generating) होने वाली अर्थ-व्यवस्था का जन्म नही दे सकता है। उनके विचार में एकाधिकारिक परिणामों की जाच-पडताल करने हेतु एक स्थायी संस्था की स्थापना की जानी चाहिए परन्तु यह संस्था केवल एक सलाहकार-संस्था होनी चाहिए।

एकाधिकार आयोग के प्रतिवेदन के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि देश में आर्थिक सत्ताओं के केन्द्रीयकरण की समस्या गम्भीर रूप ग्रहण कर सकती है और सरकार को इस ओर ऐसे कदम उठाने चाहिए कि आर्थिक प्रगति की गति भी बनी रहे और आर्थिक विषमताओं में कमी हो सके। इस सम्बन्ध में आयोग की सिफारिशें उपयुक्त प्रतीत होती है।

आलोचना

आयोग द्वारा सत्ताओं के केन्द्रीयकरण की पुष्टि करने हेतु जो वाक्य प्रस्तुत किये गए हैं वे अधिक ठोस प्रतीत नहीं होते है। आयोग द्वारा ६५ वस्तुओं के सम्बन्ध में यह बताया गया कि इनके उत्पादन के ७५% भाग पर तीन बडे उत्पादकों का नियन्त्रण है। इनमें से अधिकतर वस्तुएं ऐसी हैं जिनमें संसार के लगभग सभी राष्ट्रों में कुछ सीमा तक केन्द्रीयकरण विद्यमान है। दूसरी ओर कुछ वस्तुएं ऐसी है जिनकी देश भर में मांग अत्यन्त सीमित है जैसे (Refrigerators) रेफ्रीजरेटर्स। इन वस्तुओं के उत्पादन को नवीन साहसी लेना पसन्द नहीं करते है। इसके साथ ही कुछ वस्तुओं जैसे बच्चों का दूध, इसमें केन्द्रीयकरण इसलिए हो गया है कि वर्तमान उत्पादकों की साख इतनी अधिक है कि नवीन उत्पादन प्रतिस्पर्धा करने की जोखिम लेना उचित नहीं समझते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ आधारभूत वस्तुओं जैसे सामन्ट कोयला आदि के उत्पादन में आयोग को केन्द्रीयकरण के सम्बन्ध कोई प्रमाण प्राप्त नहीं हुए हैं।

आयोग द्वारा अखिल देशीय एकाधिकार की जो परिभाषा दी है वह भी उपयुक्त प्रतीत नहीं होती है क्योंकि कोई भी बडा व्यापारिक संस्था बहुत सी कम्पनियों जो विभिन्न प्रकार के उत्पादन करती है पर नियन्त्रण करने से किसी भी प्रकार के उत्पादन एकाधिकार नहीं प्राप्त कर सकता है। उसे प्रत्येक प्रकार के उत्पादन में विभिन्न अन्य उत्पादकों के साथ प्रतिस्पर्धा अवश्य करनी पड़ती है। ऐसी परिस्थिति में इसे अखिल देशीय (Countrywise) एकाधिकार कहना उचित नहीं है यद्यपि यह नियन्त्रण आर्थिक सत्ताओं के केन्द्रीयकरण में सहायक अवश्य होता है।

आयोग द्वारा औद्योगिक लाइसेंस निगमन तथा पूंजी निगमन नियन्त्रण को एकाधिकार को बढावा देने में सहायक बताया है। इस सम्बन्ध में आयोग ने बताया है कि सन् १९५९ से १९६४ के काल में ६,६१० आवेदन पत्र औद्योगिक लाइसेंस के लिए प्राप्त हुए। इनमें से ५,१७७ ऐसे व्यवसायियों द्वारा थे जो बडे व्यापार गृहों से सम्बद्ध नहीं है और १४३३ बड़े व्यापार गृहों द्वारा प्रस्तुत किए गये। छोटे उद्योग

पतियों द्वारा प्रस्तुत किये गये आवेदन-पत्रों में से ६७.१% अर्थात् १७३२ स्वीकृत किये गये और बड़े उद्योगपतियों के आवेदन पत्रों में से १०२६ अर्थात् ३१.६% स्वीकृत किये गये। इस प्रकार छोटे उद्योगपतियों को स्वीकृत किये गये लाइसेन्स की संख्या बड़े उद्योगपतियों से पाँच गुनी है। इस प्रकार यह कहना उचित नहीं प्रतीत होता है कि सरकारी नियन्त्रण द्वारा छोटे उद्योगपतियों को प्रोत्साहन नहीं मिला है और एकाधिकार को बढ़ावा प्राप्त हुआ है।

आयोग द्वारा यह भी स्वीकार किया गया कि उत्पादन सम्बन्धी एकाधिकार धीरे धीरे अपने आप ही समाप्त हो जायगा क्योंकि नवीन उत्पादों के सम्बन्ध में यह एकाधिकार अल्प काल तक विद्यमान रह सकता है और धीरे धीरे नवीन उत्पादक प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार हो जायेंगे परन्तु अन्तिरदलीय एकाधिकार को सम्भवतः अधिक गम्भीर समझा गया है।

एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक व्यवहार बिल, सन् १९६७
(Monopolies and Restrictive Trade Practices Bill, 1967)

एकाधिकार आयोग की सिफारिशों के आधार पर एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक *व्यापारिक व्यवहार बिल लोकसभा में नवम्बर सन् १९६७ में प्रस्तुत किया गया जो* एक संयुक्त प्रवर समिति को आवश्यक सिफारिशों हेतु सुपुर्द कर दिया गया। प्रवर समिति की सिफारिशें प्राप्त होने के पश्चात् यह बिल लोकसभा द्वारा दिसम्बर, सन् १९६९ में पास कर दिया गया है। इस बिल में एक स्थायी एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक व्यवहार आयोग एक संचालक अन्वेषण (Director of Investigation) तथा एक रजिस्ट्रार समिति (Registrar of Agreements) की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी है। यह आयोग प्रायः जाँच-पड़ताल का कार्य करेगा और सरकार को आवश्यक परामर्श प्रदान करेगा। इस आयोग को एक परामर्शदाता संस्था का स्थान प्रदान किया गया है। इस आयोग में एक अध्यक्ष एवं दो से आठ तक *सदस्य रहेंगे। अध्यक्ष हाईकोर्ट अथवा सुप्रीम कोर्ट का वर्तमान अथवा भूतपूर्व न्याया-*धीश होगा। इस बिल के उद्देश्य निम्न प्रकार हैं—

(१) देश के कच्चे माल के साधनों एवं औद्योगिक क्षमता का श्रेष्ठतम उपयोग एवं वितरण।

(२) नवीन व्यवसायों की स्थापना का प्रोत्साहन जो जनहित विरोधी आर्थिक सत्ताओं के केन्द्रीयकरण के विरुद्ध शक्तिशाली बल का कार्य कर सकें।

(३) देश के कच्चे माल के साधनों का जन हित के लिए नियन्त्रण एवं *नियमन।*

(४) विकास के विभेद (Disparity) को कम करना।

बिल के अनुसार, एकाधिकारिक व्यापारिक व्यवहार उन्हें *कहा जायगा जिनसे* लागत, मूल्य अथवा लाभ में अनुचित वृद्धि होती हो, प्रतिस्पर्धा एवं पूर्ति में कमी

आती हो अथवा सीमित होती हो तथा वस्तुओं के गुणों में गिरावट आती हो। बिल में आर्थिक सत्ताओं के केन्द्रीयकरण को रोकने के लिए बड़े बड़े व्यवसायों एवं औद्योगिक इकाइयों के विस्तार को प्रतिबन्धित करने की व्यवस्था भी की है। यदि किसी बड़े व्यवसाय के आकार को जनहित विरोधी समझा जाय तो सरकार उसके विभाजन का आदेश दे सकती है। यह आशा की जाती है कि इस बिल के द्वारा सरकार एकाधिकारों एवं आर्थिक सत्ताओं के केन्द्रीयकरण को नियन्त्रित एवं प्रतिबन्धित करने में सफल होगी।

———

भारतीय नियोजित अर्थ व्यवस्था एवं विदेशी सहायता

[Foreign Aid Under Planned Economy of India]

[विदेशी पूँजी के स्थान—निजी विदेशी पूँजी, व्यापारिक बैंकों द्वारा पूँजी हस्तान्तरण, सरकार द्वारा दिये गये ऋण एवं अनुदान, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा ऋण, भारतीय योजनाओं में विदेशी सहायता, विदेशी सहायता की आवश्यकता के कारण, विदेशी ऋण एवं ब्याज का शोधन, परियोजना ऋण का अधिक अनुपात, लाभांश, वेतन आदि का शोधन, रुपये का अवमूल्यन, ऋण-शोधन में कठिनाई, PL ४८० के अन्तर्गत प्राप्त विदेशी सहायता, PL ४८० का अनाज की उपलब्धि पर प्रभाव—उत्पादन एवं मूल्य, उपभोग-स्तर, PL ४८० का मौद्रिक प्रभाव, PL ४८० की सहायता के अन्तर्गत रोजगार के अवसर—विदेशी सहयोग, चतुर्थ योजना में विदेशी सहायता]

आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत विनियोजन एवं उत्पादन दोनों ही प्रकार के साधनों में वृद्धि करने की आवश्यकता होती है। अधिक विनियोजन करने के लिए पूँजीगत साधनों एवं कच्चे माल की उपलब्धि को बढ़ाने की आवश्यकता होती है और अधिक विनियोजन के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है और जनसाधारण की क्रय शक्ति बढ़ जाती है जिसके परिणामस्वरूप उपभोग-वस्तुओं की माँग में वृद्धि हो जाती है। विनियोजन एवं उपभोग की वस्तुओं की बढ़ती हुई इस माँग की पूर्ति प्राय आन्तरिक साधनों से की जाती है परन्तु विकास के प्रारम्भिक काल में निर्धन राष्ट्रों में अधिक साधन आन्तरिक स्रोतों से प्राप्त करना सम्भव नहीं होता है और इसीलिए विकास का प्रारम्भ करने के लिए विदेशी पूँजी की आवश्यकता होती है।

विदेशी पूँजी द्वारा एक ओर आन्तरिक बचत एवं साधनों की कमी की पूर्ति की जाती है अर्थात् जब अर्थ व्यवस्था में बचत से अधिक विनियोजन करने का आयोजन किया जाता है तो इस विनियोजन एवं बचत के अन्तर की पूर्ति विदेशी पूँजी द्वारा की जाती है। दूसरी ओर विदेशी पूँजी द्वारा आयात एवं निर्यात के अन्तर की पूर्ति की जाती है। जब अर्थ-व्यवस्था में विनियोजन आन्तरिक बचत से अधिक होता है तो पूँजीगत प्रसाधनों एवं सेवाओं का बड़ी मात्रा में आयात विदेशों से करने की

आवश्यकता होती है। विकास विनियोजन के साथ आयात में निरन्तर वृद्धि होती है परन्तु निर्यात में मन्द गति से प्रगति होती है। ऐसी परिस्थिति में प्रत्येक विकासोन्मुख राष्ट्र को विकास के प्रारम्भिक काल में प्रतिकूल व्यापार एवं भुगतान शेष का सामना करना पड़ता है जिसकी पूर्ति विदेशी पूँजी द्वारा ही सम्भव हो सकती है।

विदेशी पूँजी के स्रोत

विदेशी पूँजी की उपलब्धि निम्नलिखित स्रोतों से होती है—

(१) निजी विदेशी पूँजी

(२) सरकार द्वारा विदेशों को प्रदान किए गए ऋण एवं अनुदान

(३) अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा ऋण एवं अनुदान।

(१) निजी विदेशी पूँजी

निजी विदेशी पूँजी पोर्टफोलियो विनियोजन (Portfolio Investment) प्रत्यक्ष विनियोजन (Direct Investment) अथवा व्यापारिक ऋणों द्वारा एक देश से दूसरे देश में पूँजी हस्तान्तरण द्वारा प्राप्त होती है। पोर्टफोलियो विनियोजन के अन्तर्गत विनियोजन करने वाली विदेशी संस्था अथवा पूँजीपति ऋण लेने वाले देश की किसी फर्म अथवा कम्पनी के बॉण्ड अथवा प्रतिभूतियाँ क्रय कर लेते हैं। दूसरी ओर प्रत्यक्ष विनियोजन के अन्तर्गत विदेशी साहसियों द्वारा दूसरे देश में स्थापित सहायक कम्पनी के समता अंशों में विनियोजन किया जाता है। विदेशी निजी पूँजी के प्रत्यक्ष विनियोजन को आजकल अधिक महत्व दिया जाता है। विभिन्न देशों में व्यापार सम्बन्धी प्रतिबन्ध एवं शुल्क लगने के कारण प्रत्यक्ष विनियोजन की आवश्यकता महसूस की जाती है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत बड़ी बड़ी विदेशी कम्पनियाँ अपनी सहायक कम्पनियों की स्थापना उधार लेने वाले देश में कर देती हैं। सहायक कम्पनियों में पूँजी के प्रत्यक्ष हस्तान्तरण के अतिरिक्त यन्त्रों एवं प्रसाधनों को सहायक कम्पनी को साख पर प्रदान करने की व्यवस्था की जाती है। इसके अतिरिक्त सहायक कम्पनी द्वारा अर्जित लाभ को इसी कम्पनी के विस्तार पर विनियोजित कर दिया जाता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष विनियोजन की राशि में निरन्तर वृद्धि हो सकती है।

पोर्टफोलियो विनियोजन के अन्तर्गत ब्याज की प्रतिस्पर्धी दरों पर साधन प्राप्त करना सम्भव होता है और इस प्रकार ऋण लेने वाला देश प्राप्त साधनों का अधिक स्वतन्त्रता के साथ उपयोग कर सकता है इस प्रकार के विनियोजन पर ऋण लेने वाले देश का अधिक नियन्त्रण रहता है और विदेशी विनियोजक द्वारा शोषण करने के अवसर प्राप्त नहीं होते हैं।

दूसरी ओर प्रत्यक्ष विनियोजन के अन्तर्गत विनियोजन पर विदेशी विनियोजकों का प्रत्यक्ष नियन्त्रण रहता है। इन पर लाभांश लाभोपार्जन के आधार पर दिया जाता है जबकि पोर्टफोलियो विनियोजन में निश्चित दर से ब्याज देना पड़ता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष विनियोजन के अन्तर्गत लाभांश का भार भुगतान शेष पर कम पड़ता

है। प्रत्यक्ष विदेशी विनियोजन से आन्तरिक विनियोजन को भी प्रोत्साहन प्राप्त होता है। विदेशियों के साथ, देश के साहसी सहयोग कर विनियोजन करते हैं और इस सहयोग द्वारा स्थापित उद्योगों के सहायक उद्योगों की स्थापना देश के साहसियों द्वारा की जाती है।

व्यापारिक बैंकों द्वारा पूँजी हस्तान्तरण

निजी पूँजी विदेशों में व्यापारिक बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा भी प्रवाहित होती है। यह पूँजी हस्तान्तरण निम्न प्रकार से होता है—

(अ) व्यापारिक बैंकों का अन्तर्राष्ट्रीय बैंक एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के निर्यात आयात बैंक के ऋणों में साझेदार होना

(आ) सरकारी प्रतिभूतियों के अन्तर्गत विदेशी क्रेताओं को निर्यात-साख व्यापारिक बैंकों द्वारा प्रदान किया जाना

(इ) विदेशी व्यवसायों में व्यापारिक बैंकों द्वारा प्रत्यक्ष विनियोजन किया जाना।

विश्व बैंक एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के निर्यात आयात बैंक विदेशों को ऋण व्यापारिक बैंकों के सहयोग से प्रदान करते हैं। इन संस्थाओं द्वारा जो विदेशों को ऋण प्रदान किए जाते हैं, उनका कुछ प्रतिशत भाग व्यापारिक बैंकों द्वारा दिया जाता है। निर्यात-साख विदेशी निर्यातकर्ताओं द्वारा अल्प आय वाले देशों को इनकी वस्तुएँ आयात करने पर व्यापारिक बैंकों के माध्यम से प्रदान की जाती है। इस प्रकार का *निर्यात-साख ब्रिटेन, फ्रान्स, जर्मनी एवं इटली द्वारा विकासोन्मुख राष्ट्रों को* प्रदान की गयी है। निर्यातकर्ताओं का अपना निर्यात बढ़ाने में यह व्यवस्था सहायक होती है तथा आयात करने वाले विकासोन्मुख राष्ट्रों को अपनी विकास-परियोजनाओं के लिए पूँजीगत संसाधन प्राप्त करना सम्भव होता है परन्तु यह साख अल्पकालीन होती है और इसकी अवधि अधिक से अधिक ५ वर्ष होती है। व्यापारिक बैंक विदेशी व्यवसायों में स्वयं अथवा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ मिलकर प्रत्यक्ष विनियोजन करते हैं। फ्रान्स के व्यापारिक बैंकों ने लैटिन अमेरिका, ब्रिटेन के बैंकों ने अर्जेन्टाइना, भारत और टर्की तथा संयुक्त राज्य अमेरिका, बेल्जियम, जर्मनी, नीदरलैण्ड तथा स्विटजरलैण्ड के व्यापारिक बैंकों ने अन्य देशों में इस प्रकार प्रत्यक्ष विनियोजन किया है।

(२) सरकार द्वारा विदेशों को दिये गये ऋण एवं अनुदान

सरकार द्वारा विदेशों को आर्थिक सहायता ऋण एवं अनुदान तान्त्रिक सहायता एवं खाद्यान्नों के निर्यात द्वारा प्रदान की जाती है। ऋण एवं अनुदान प्रायः विकसित राष्ट्रों द्वारा ही प्रदान किए जाते हैं क्योंकि इनकी अर्थ-व्यवस्थाओं की बचत विनियोजन से अधिक होती है। विकसित राष्ट्रों द्वारा अनुदान प्रायः संचार-व्यवस्था के सुधार एवं स्वास्थ्य एवं शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार करने हेतु प्रदान किये जाते

समथ रहा है जिसके फलस्वरूप विदेशी विनिमय का सकट बना रहा है और आर्थिक गति की दर भी अनुमान से कम रही है। पीछे दी गयी तालिका से ज्ञात होता है कि भारत को प्राप्त विभिन्न देशो की सहायता का उपयोग किस सीमा तक किया गया है।

चतुथ योजना म आत्मनिभरता के लक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए अथ व्यवस्था की विदेशी सहायता पर निभरता का लक्ष्य रखा गया है। इसी कारण प्रस्तावित विनियोजन का कवल ११ २% भाग विदेशी सहायता से प्राप्त करने का अनुमान लगाया गया है।

द्वितीय योजनान्तर म कुछ राष्ट्रो से स्वीकृत सहायता उपयोगित सहायता से कम रही। इसका कारण यह है कि पिछली योजना की स्वीकृति राशियां अगली योजना म उपयोग की गयी। प्रथम योजना म समस्त स्वीकृत राशि का ८०%, द्वितीय योजना म ६४% और तृतीय योजना म ६०% उपयोग किया जाने का अनुमान है। सहायता प्रदान करने वाले राष्ट्रो म सबसे अधिक सहायता संयुक्त राज्य अमरिका द्वारा प्रदान की गयी है। संयुक्त राज्य अमरिका ने कुल उपयोगित सहायता का ५८% भाग प्रदान किया है जबकि अन्य किसी एक राष्ट्र द्वारा इस सहायता का १०% से कम भाग ही प्रदान किया गया है। भारतीय अथ व्यवस्था म अप्रल सन् १९५१ से लेकर मार्च सन् १९६५ तक २१ ४९० करोड रु० का विनियोजन किया गया है, जिसम से १७ ८% भाग विदेशी सहायता से प्राप्त हुआ है।

विभिन्न राष्ट्रो एव अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओ म प्रचुर मात्रा म सहायता अधिकृत होने के कारण हमारी नियोजित अर्थ-व्यवस्था विदेशी सहायता पर निभर होन लगी थी और यह सम्भावना हो गयी थी कि विदेशो से यह सहायता भविष्य मे एक या दो पंचवर्षीय योजनाओ तक इसी प्रकार जारी रहेगी और तब तक हमारी अथ व्यवस्था ऐसी परिस्थिति म पहुंच जायगी कि हम अपने विदेशी भुगतान के दायित्वो की पूर्ति अपने अतिरिक्त निर्यात द्वारा कर सकेंगे परन्तु पाकिस्तान द्वारा भारत पर आक्रमण करने के बाद भारत को सहायता देने वाले कुछ प्रमुख राष्ट्र विदेशी सहायता को पाकिस्तान को काश्मीर सम्बन्धी राजनीतिक रियायतें दिलवाने का साधन बनाने का प्रयत्न करने लगे हैं और भारत को विदेशी सहायता को रोकने की धमकी देकर विवश किया जा रहा है कि भारत या तो अपना काश्मीर सम्बन्धित रवैया बदले या फिर अपने आर्थिक विकास की गति को शिथिल होने दे। विदेशी सहायता के साथ इस प्रकार राजनीतिक बन्धन (Political Strings) लग जाने के कारण भारत को अब उपर्युक्त दो बातो म से एक को अपनाना होगा, परन्तु कुछ अधिक त्याग कर हम उपर्युक्त दोनो कठिनाइयों म बच सकते हैं और विदेशी सहायता की अनुपस्थिति म भी अधिक विकास की गति बनाये रख सकते हैं। पिछले वर्षों म अनुभव के आधार पर हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि विदेशी सहायता की अधिक आवश्यकता हम क्यों पड़ती है। इस सम्बन्ध म निम्नलिखित बातें सम्मुख आती हैं।

विदेशी सहायता की आवश्यकता के कारण

प्रतिकूल व्यापारिक शेष (Unfavourable Balance of Trade)—भारत में नियोजित अर्थ व्यवस्था के प्रारम्भ होने के पूर्व से ही व्यापारिक शेष प्रतिकूल रहा है। यह बात निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है—

तालिका सं० १२८—भारत का आयात एवं निर्यात

(करोड़ रु० में)

वर्ष	आयात	निर्यात	व्यापारिक शेष प्रतिकूल
१९५०-५१	६७२.६१	६०१.४१	७१.२०
१९५५-५६	६६२.७४	५९९.४०	६३.३४
१९६०-६१	११२१.६२	६४२.०७	४७९.५५
१९६१-६२	१०९१.६३	६६०.५८	४३१.०५
१९६२-६३	११३१.४८	६८५.३२	४४६.१६
१९६३-६४	१२२३.८५	७९३.२४	४२९.६१
१९६४-६५	१३४९.०३	८१६.३०	५३२.७३
१९६५-६६	१४०८.५२	८०५.६४	६०२.८८
१९६६-६७	२०७८.२६	११५६.४६	९२१.८०
१९६७-६८	१९८६.३८	११९८.७२	७८७.६६
१९६८-६९	१७८९.८४	१३५७.४८	४३२.३६

यह स्पष्ट है कि पिछले १८ वर्षों में हमारा आयात तीन गुना हो गया है और निर्यात केवल दुगुना हो गया है। निर्यात में पर्याप्त वृद्धि केवल जून सन् १९६६ में अवमूल्यन के पश्चात् हुई है। यदि विदेशी विनिमय के अर्जन के दृष्टिकोण से देखें तो निर्यात में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई क्योंकि सन् १९६८-६९ के निर्यात १३५७ करोड़ रु० से अवमूल्यन के पूर्व के ८५६ करोड़ रु० के निर्यात के बराबर मुद्रा उपलब्धि हुई होगी।

आयात में अधिक वृद्धि मुख्य रूप से तीन कारणों से हुई है—प्रथम विकास-सम्बन्धी आयात में वृद्धि की गयी क्योंकि योजनाओं में सम्मिलित विभिन्न कार्यक्रमों का विदेशी यन्त्र, सामग्री एवं तान्त्रिक ज्ञान की आवश्यकता होती है। यह अनुमान लगाया गया है कि प्रथम योजना में २८४ करोड़ रु० द्वितीय योजना में २४४ करोड़ रु० तथा सामग्री का आयात विकास-कार्यक्रमों के लिए किया गया। आयात में वृद्धि होने का दूसरा कारण भारतीय कृषि-व्यवसाय की असफलता है। भारत में प्रति वर्ष लगभग ६० से ७० लाख टन खाद्यान्नों का आयात किया जाता है जिसकी लागत लगभग १८० से २०० करोड़ रु० होती है। प्रथम पंचवर्षीय योजनाकाल में ४३८ करोड़ रु० द्वितीय योजनाकाल में ७११ करोड़ रु० और तृतीय योजनाकाल में १०१४ करोड़ रु० के खाद्यान्नों का आयात किया गया।

आयात में वृद्धि होने का तीसरा प्रमुख कारण चीनी आक्रमण के बाद से सुरक्षा सम्बन्धी सामग्री का अधिक आयात है। पाकिस्तानी आक्रमण के फलस्वरूप, सुरक्षा सम्बन्धी आयात में और भी वृद्धि होने की सम्भावना है।

दूसरी ओर हमारे निर्यात में नियोजित अर्थ व्यवस्थाकाल में पर्याप्त वृद्धि नहीं हुई है। इसका प्रमुख कारण हमारे उत्पादित एवं निर्मित माल की कीमतें विश्व भर में सबसे अधिक होता है। निर्यात सम्वर्द्धन योजनाओं द्वारा सरकार द्वारा निर्यातकों को सहायता प्रदान की जाती है जिससे वह अपना माल विदेशी बाजारों में उचित मूल्य पर बेच सकें। इस प्रकार हमें १ रु० का विदेशी विनिमय प्राप्त करने के लिए २ या ३ रु० के आन्तरिक मूल्य का सामान देना पड़ता था।

विदेशी ऋण एवं उस पर उपार्जित ब्याज का शोधन

विदेशों से प्राप्त ऋणों का शोधन प्रत्येक वर्ष विदेशों में किया जाता है। इन ऋणों के ब्याज का शोधन भी प्रत्येक वर्ष किया जाता है। यह दोनों शोधन विदेशी विनिमय में किए जाते हैं और इनका भुगतान करने हेतु हम या तो सोना देना चाहिए या फिर अन्य विदेशी सहायता से भुगतान करना चाहिए। भारत सरकार को प्राप्त ५०% से अधिक ऋणों पर ५% या इससे भी अधिक दर से ब्याज देना होता है। विकास ऋणों की यह दर काफी ऊँची है और इसके फलस्वरूप प्रत्येक वर्ष शोधन की जाने वाली ब्याज की राशि भी काफी हो जाती है। निम्नलिखित तालिका से ऋण एवं ब्याज के शोधन की राशियाँ ज्ञात होती हैं—

तालिका स० १२८—भारत की उपलब्ध विदेशी सहायता—सकल एवं शुद्ध

(करोड़ रुपये में)

मद	१९६१-६२	१९६२-६३	१९६३-६४	१९६४-६५	१९६५-६६	१९६६-६७	१९६७-६८
सकल सहायता जिसका भुगतान प्राप्त हुआ	३३८ ४	४४४	५८९ ५	७२३ ५	७७२ १	११२९ ५	१,१८९ ५
खाद्यान्न सहायता	९१ २	१२२ ८	१८५ ७	२२१ ८	२४९ ६	४२९ ८	३५६ ३
(अ) PL ४८०/६६५ के अन्तर्गत	८७ ९	१२२ ८	१८५ २	२१८	२३९	३६० ०	३१० ५
(ब) गेहूँ अनुदान एवं विशेष खाद्य सहायता	३ ३	—	५	३ ८	७ ६	६९ ८	४५ ८
ऋणों का शोधन	६९ ०	५० ०	५९ ०	७० ०	५९ ०	१३८ ०	२१२ ३
ऋणों के ब्याज का शोधन	३२ ८	३८ ६	४७ ६	५० ९	६६ २	१०१ ५	१२० ८

(५) ऋण सेवा-व्यय का भाग	१०१ ८	८८ ६	१०६ ६	१२० ६	१२५ २	२३६ ३	३२३ १
(६) शुद्ध सहायता	२२६ ६	३५५ ४	४८२ ६	५०२ ६	६४६ ६	८६० २	८५६ ४
(७) शुद्ध सहायता खाद्य-सहायता को छोड़कर	१४५ ८	२३२ ६	२६७ २	२८० ८	४०० -	४३० ४	५०० १
(८) ऋण सेवाव्यय का सकल सहायता (१) में प्रतिशत	३०	२०	१६	१७	१६	२१	२८
(९) खाद्य सहायता का शुद्ध सहायता (६) में प्रतिशत	३६	३५	३६	२७	३८	४८	४२

नोट—सन् १९६५ ६६ की राशियाँ डालर का रु० ४ ७६ के बराबर और सन् १९६६ ६७ से डॉलर को रु० ७ ५० के बराबर मानकर रु० में बदली गयी हैं।

विदेशी सहायता की उपलब्धि की तालिका से ज्ञात होता है कि ऋणों के शोधन एवं ब्याज की राशि सकल सहायता की राशि की लगभग २०% हो जाती है। रुपये के अवमूल्यन से ऋण-सेवाव्यय के प्रतिशत में वृद्धि हो गयी है। इसके अतिरिक्त सेवाव्यय निकालने के बाद जो सहायता बचती है उसका लगभग ४०% भाग खाद्य-सहायता होती है। इस प्रकार सकल प्राप्त सहायता का लगभग ४०% भाग ही विकास-कार्यक्रमों के लिए उपलब्ध होता है। योजना के लिए आवश्यक पूँजीगत एवं उत्पादक वस्तुओं की जितनी आवश्यकता होती है, उसके मूल्य से इस प्रकार दुगनी सहायता मिलने पर ही विकास कार्यक्रमों का संचालन सम्भव हो सकता है।

परियोजना-ऋण का अधिक अनुपात

भारत को जो विदेशी सहायता प्राप्त होती है उसका अधिक अनुपात या तो किसी विशिष्ट परियोजना के लिए होता है या फिर किसी विशिष्ट देश में ही उपयोग किया जा सकता है। इसका अर्थ यह होता है कि उपलब्ध सहायता का उपयोग किसी विशिष्ट परियोजना जो सहायता देते समय निर्धारित कर दी जाती है, पर व्यय किया जा सकता है अथवा सहायता की राशि का उपयोग किसी विशिष्ट देश या देशों से सामग्री अथवा प्रसाधन क्रय करने के लिए उपयोग किया जा सकता है। जब सहायता किसी परियोजना से सम्बद्ध रहती है तो उसे प्राप्त करने के लिए सहायता देने वाले देश की इच्छानुसार परियोजनाओं का चयन करना पड़ता है जिससे अर्थ व्यवस्था का समन्वित विकास प्राथमिकताओं के अनुरूप नहीं हो पाता है। किसी देश से सम्बद्ध सहायता होने पर विकास प्रसाधनों को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार से अनुकूल मूल्यों पर क्रय नहीं किया जा सकता है और सम्बद्ध राष्ट्र का वह प्रसाधन सहायता देने वाले राष्ट्र

द्वारा निर्धारित लागत पर क्रय करना पड़ता है। इस प्रकार शर्तयुक्त सहायता के परिणामस्वरूप देश को विकास प्रसाधनों के लिए ३०% या इससे भी अधिक मूल्य देना पड़ता है। प्रायः यह देखा जाता है कि कोई फर्म अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में कच्चे माल एवं पूँजीगत प्रसाधन जो मूल्य रखते हैं उससे कहीं अधिक मूल्य यह तब निर्धारित करती है जब वहाँ प्रसाधन आदि साख पर सहायता के विरुद्ध लिए जाते हैं। हमारे देश के लिए उपलब्ध सहायता का ६०% से ७०% भाग शर्तयुक्त रहा है जिसके कारण हम इस सहायता का पूर्णतम लाभ उठाने में समर्थ नहीं हो सके हैं। शर्तयुक्त उपलब्ध परियोजना-सहायता का हमें केवल ७०% लाभ ही मिलता है क्योंकि इसका ३०% भाग अधिक मूल्य के लिए उपयोग हो जाता है। चतुर्थ योजना में इसीलिए गैर परियोजना सहायता प्राप्त करने के लिए भरसक प्रयत्न किए जाते हैं।

विदेशी विनियोजकों को लाभांश, ब्याज आदि

उपर्युक्त भुगतानों के अतिरिक्त विदेशी विनियोजकों द्वारा भारत में लगायी गयी पूँजी पर लाभांश, ब्याज आदि का शोधन भी विदेशी विनिमय में किया जाता है। इस प्रकार विकास-कार्यक्रमों हेतु अधिक आयात, खाद्यान्नों के आयात, रक्षा के सामान का आयात, ऋणों एवं उसके ब्याज का शोधन तथा विदेशी विनियोजन के लाभांश आदि के शोधन के फलस्वरूप भारत को प्रतिकूल विदेशी शोधन शेष का सामना करना पड़ता है जिसकी पूर्ति अभी तक विदेशी सहायता द्वारा की जाती रही है परन्तु वर्तमान परिस्थितियों में विदेशी सहायता की अनिश्चितता के कारण अब इस प्रतिकूल शोधन शेष की पूर्ति विदेशी सहायता द्वारा किया जाना सम्भव नहीं हो सकता और ऐसी परिस्थिति में हमें आत्म निर्भर बनने का प्रयत्न करना चाहिए। भारत के निरन्तर प्रतिकूल शोधन शेष के कारण रिज़र्व बैंक के सुरक्षित कोष में निरन्तर कमी होती जा रही है और ९ जुलाई सन् १९६५ को हमारा सुरक्षित कोष न्यूनतम वैधानिक सीमा (२०० करोड़ रु०) के बिल्कुल निकट (२०६.५७ करोड़ रु०) तक पहुँच गया था। यदि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष हमें २०० करोड़ रु० की सामयिक सहायता न देता तो हमारी स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो जाती। इन्हीं कारणों से भारतीय रुपये का अवमूल्यन करना पड़ा।

रुपये का अवमूल्यन

भारतीय रुपये के अवमूल्यन के कारण (जून सन् १९६६) हमारी विदेशी सहायता की आवश्यकता में अत्यधिक वृद्धि हो गयी। अवमूल्यन के फलस्वरूप हमारे विदेशी ऋण २,७३४ करोड़ रु० से बढ़कर ४,१०२ करोड़ रु० हो गये। इस प्रकार हमें अपने विदेशी ऋणों के भुगतान के लिए १,३६८ करोड़ रु० अधिक भुगतान करने की आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त विदेशी ऋणों के ब्याज आदि के भुगतान के लिए १½ गुना अधिक राशि प्रति वर्ष की आवश्यकता होने लगी। इसके साथ ही हमारे आयात के मूल्य में भी ५७.५% की वृद्धि हो गयी अर्थात् हमें अपने आयात का

भुगतान करने के लिए ५७.५% अधिक निर्यात करने की आवश्यकता होगी। इस प्रकार विकास आयात एवं निर्वाह आयात के आवश्यक स्तर को बनाये रखने के लिए हमारे ऋण-दायित्व में वृद्धि होना स्वाभाविक है क्योंकि निर्यात में पर्याप्त वृद्धि न होने पर आयात से उदय होने वाले विदेशी विनिमय के दायित्वों का भुगतान कम मात्रा में हो पाता है। इस प्रकार रुपये का अवमूल्यन हो जाने से भी विदेशी सहायता की आवश्यकता प्रारम्भिक काल में अधिक होना स्वाभाविक था।

ऋण शोधन में कठिनाई

विकसित राष्ट्रों द्वारा विकासोन्मुख राष्ट्रों को जो सहायता प्रदान की जाती है उसका प्रमुख उद्देश्य उनके पूँजीगत साधन का पर्याप्त विकास-सुविधा का आयोजन करना है। यह इसीलिए उपयुक्त सहायता प्रदान करते हैं जिसके अन्तर्गत सहायता प्राप्त करने वाले राष्ट्र को पूँजीगत समायोजन एवं उनको सहायता प्रदान करने वाले राष्ट्र से ही क्रय करना पड़ता है। दूसरी ओर विकसित राष्ट्र विकासोन्मुख राष्ट्रों में उपभोक्ता एवं प्रविधिकृत (Processed) वस्तुएँ आयात करने को तैयार नहीं रहते हैं जब तक कि इन वस्तुओं को न्यूनतम मूल्य पर न दिया जाय। इन परिस्थितियों के कारण विकासोन्मुख राष्ट्र अपने ऋणों का शोधन करने में असमर्थ रहते हैं और प्रायः पुराने ऋणों का शोधन नये ऋणों द्वारा कर दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप विकासोन्मुख राष्ट्रों का प्रतिकूल भुगतान शेष एवं विदेशी ऋणदायित्व बढ़ता जाता है। विकासोन्मुख राष्ट्र अपने निर्यात अल्प-विकसित राष्ट्रों को भी करने में समर्थ नहीं होते हैं क्योंकि अल्प-विकसित राष्ट्रों में विकसित राष्ट्रों की वस्तुओं के साथ प्रतिस्पर्धा करना सम्भव नहीं होता है और दूसरी ओर, विकासोन्मुख राष्ट्र विकसित राष्ट्रों के समान स्तर पर निर्यात प्रदान करने में समर्थ नहीं होते हैं। इस समस्या को ध्यान में रखकर चतुर्थ योजना के निर्धारण में योजना-आयोग ने इस व्यवस्था की ओर संकेत किया है कि इस योजना में अन्य विकसित राष्ट्रों को माल पर निर्यात करने के लिए क्रय-साधनों का आयोजन किया जायगा।

भारत सरकार के विदेशी ऋणदायित्व तालिका सं० १२९ के अनुसार थे—

सन् १९६६-६७ वर्ष में ऋण-दायित्व में अधिक वृद्धि का कारण ऋणों की राशि का ६ जून सन् १९६६ को ५७.५% से रुपया अवमूल्यन करने के कारण बढ़ जाना है। इस तालिका से स्पष्ट है कि बाह्य ऋणों की राशि में निरन्तर वृद्धि हो रही है। चतुर्थ योजना में निर्यात में वृद्धि ७% प्रति वर्ष की दर से करने का लक्ष्य है जिसकी पूर्ति होने पर ऋणदायित्व की वृद्धि की दर कम होने की सम्भावना की जा सकती है। सन् १९५०-५१ में विदेशी ऋणदायित्व राष्ट्रीय आय (चालू मूल्यों के आधार पर) का ०.३% था जो तृतीय योजना के अन्त में १२.९% हो गया और सन् १९६७-६८ के अन्त में १६.४% हो गया।

तालिका सं० १२९—भारत का विदेशी ऋणदायित्व
(प्रत्येक वित्तीय वर्ष के अन्त में)

(करोड़ रुपया)

वर्ष	ऋण की राशि	विदेशी ऋण का राष्ट्रीय आय में प्रतिशत
१९५०-५१	३२	०.३
१९५५-५६	११४	१.१
१९६०-६१	७६१	५.७
१९६५-६६	२,५९०	१२.६
१९६६-६७	४,६२३	१९.५
१९६७-६८ (दोहराये गये अनुमान)	५,४०१	१९.४
१९६८-६९ (दोहराये गये अनुमान)	५,९२७	—
१९६९-७० (बजट अनुमान)	६,५७०	—

PL ४८० के अन्तर्गत प्राप्त विदेशी सहायता

सन् १९५४ में संयुक्त राज्य अमरिका ने अपने कृषि साधनों की बहुतायत एवं संसार के विभिन्न राष्ट्रों की कृषि उत्पादन की आवश्यकताओं का ध्यान में रखते हुए एक अधिनियम जिसका नाम *Agricultural Trade Development and Assistance Act* अथवा Public Law 480 दिया गया। इस अधिनियम का उद्देश्य एक ओर अमरीकी किसानों के अतिरिक्त उत्पादन की विक्रय की व्यवस्था करना था जिससे इसके संग्रह करने की लागत को कम किया जा सके और दूसरी ओर अल्प विकसित राष्ट्रों के जनसमुदाय को उचित भोजन प्रदान करना था।

आरम्भ में PL ४८० के कार्यक्रम में केवल तीन प्रकार के समझौते थे परन्तु सन् १९५९ में इसमें एक और प्रकार के समझौते जोड़ दिये गये। यह चार प्रकार के समझौते निम्न प्रकार हैं—

Title No I इसके अन्तर्गत विदेशी सरकारें अमरीका के अतिरिक्त कृषि उत्पादन को अपने देश की मुद्रा में क्रय कर सकती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में इस प्रकार प्राप्त विदेशी मुद्रा का लगभग ८०% भाग क्रय करने वाले देशों को ऋण के रूप में दे दिया जाता है जिसका उपयोग आर्थिक विकास पारस्परिक सुरक्षा तथा अन्य इसी प्रकार के उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है। बची हुई २०% विदेशी मुद्रा का उपयोग संयुक्त राज्य अमरीका अपने कृषि उत्पादों के व्यापारिक बाजारों के विकास, अमरीकी व्यापारियों को ऋण देने तथा इनके विदेशी सहयोगियों को ऋण देने, Fullbright Fellowship) जैसे कार्यक्रमों को सहायता देने विदेशी पत्रिकाओं (Journals) का अनुवाद करने संयुक्त राज्य अमेरिका की सूचना सेवा (*USIS*) तथा अमरीकी दूतावास आदि के व्यय के लिए उपयोग की जाती है।

Title No II—इसके अन्तर्गत आकस्मिक परिस्थितियों एव कठिनाइयों मे विदेशों को खाद्यान्न अनुदान के रूप म दिये जाते हैं।

Title No III—इसके अन्तर्गत खाद्यान्न मजदूरी के आंशिक भुगतान तथा स्कूलों म दोपहर का खाना देने के लिए प्रदान किया जाता है। इस Title के अन्तर्गत निजी एव एच्छिक संस्थाए (Private and Voluntary Agencies) विदेशों म खाद्यान्न वितरित कर सकता है।

Title IV—इसके अनुसार दीर्घकालीन कम ब्याज दर वाले ऋण पर खाद्यान्न विदेशों को बेचे जाते हैं।

PL ४८० के अन्तर्गत सहायता प्राप्त करने वाले देशों म भारत को सबसे अधिक सहायता प्राप्त हुई है। इसके अन्तर्गत गेहूं सर्वाधिक महत्व का अनाज है परन्तु गेहूं के अतिरिक्त चावल मक्का मिलो ज्वार सोयाबीन का तेल तथा सूखा दूध आदि की सहायता प्रदान की जाती है। प्रारम्भ म भारत द्वारा PL ४८० के अन्तर्गत अनाज की सहायता अधिसंग्रह (Buffer Stock) का निर्माण करने के इरादे म किया गया परन्तु वास्तव म सहायतार्थ प्राप्त समस्त अनाज तुरत के उपयोग के लिए उपयोग किया गया। PL ४८० के अन्तर्गत जो देश को सहायता मिलती आ रही है उसने हमारी अर्थ व्यवस्था को दो प्रकार से प्रभावित किया है—अनाज की उपलब्धि पर प्रभाव तथा भारतीय मौद्रिक व्यवस्था पर प्रभाव।

PL ४८० की सहायता का अनाज की उपलब्धि पर प्रभाव

उत्पादन एव मूल्य—अनाज की उपलब्धि से सम्बन्धित प्रभाव के अन्तर्गत अनाज के उत्पादन मूल्य एव उपभोग पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है। PL ४८० के अन्तर्गत प्राप्त अनाज का वितरण उचित मूल्य की दुकानों द्वारा निश्चित मूल्यों पर उपभोक्ताओं को किया गया है। यह वितरण मूल्य खुले बाजार के मूल्य से कम रहे हैं और उपभोक्ता को अनाज क्रय करने के सम्बन्ध मे विकल्प दिया गया कि वे अनाज उचित मूल्य की दुकानों अथवा खुले बाजार जहा से चाहें ले सकते हैं। जब खुले बाजार म अनाज का मूल्य अधिक रहता है तो उपभोक्ता की माग उचित मूल्य की दुकानों पर अधिक होती है। अनाज के मूल्यों मे निरन्तर वृद्धि और उचित मूल्य की दुकानों म १ जनवरी, सन् १९६५ से दोहराये गये मूल्य निश्चित रहने के कारण इन दोनों मूल्यों का अन्तर बढ़ता रहा जिसके परिणामस्वरूप उचित मूल्य की दुकानों पर माँग अधिक रही। यह प्रवृत्ति उन वर्षों मे भी जारी रही जब देश में फसल अच्छी रही क्योंकि क्षेत्रीय प्रतिबन्धों के कारण अनाज का स्थानान्तरण आवश्यकतानुसार नहीं किया जा सका। PL ४८० के अन्तर्गत प्राप्त अनाज का इस प्रकार उचित मूल्य की दुकानों से बाजार मूल्य से कम पर बेचकर बाजार-मूल्यों की वृद्धि को रोकना अथवा कम करना सम्भव हो सका परन्तु अन्य उपभोक्ता-वस्तुओं के सम्बन्ध में यह व्यवस्था सम्भव न हो सकी क्योंकि इनका आयात नहीं किया जा सकता था। ऐसी

परिस्थिति में गेहूं के मूल्य तो नियन्त्रित सीमाओं में रहे परन्तु अन्य उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हो गयी। क्षेत्रीय प्रतिबन्धों के कारण गेहूं अधिक उत्पादन वाले क्षेत्रों जैसे पंजाब आदि में गेहूँ के मूल्य गिर गये। गेहूं के मूल्य में अन्य कृषि उत्पादों की तुलना में कम वृद्धि होने के कारण गेहूं के लिए उपयोग किये जाने वाले कृषि क्षेत्र में अन्य फसलों की तुलना में कम वृद्धि हुई। कृषि साधनों के उपयोग में अन्य फसलों में अधिक उत्पादन करने की प्रवृत्ति को भी प्रोत्साहन मिला। यदि उचित मूल्य की दुकानों के मूल्य एवं खुले बाजार के मूल्यों के अन्तर को कम रखने के लिए उचित मूल्य की दुकानों के अनाज के मूल्यों को समय समय पर उठाया जाता तो कृषि उत्पादों के मूल्य स्तर में समानता रह सकती थी और गेहूं के उत्पादन के लिए और अधिक भूमि एवं कृषि साधनों का उपयोग किया गया होता जिससे गेहूं के उत्पादन में और अधिक वृद्धि हो सकती थी।

उपभोग स्तर

भारत में PL ४८० के अन्तर्गत जो अनाज की सहायता प्राप्त हुई है, इससे जनसाधारण में अनाज एवं कलरी उपभोग (Calorie Consumption) स्तर में वृद्धि हुई। उचित मूल्य की दुकानों से जो आयात किया गया अनाज कम मूल्य पर वितरित किया गया। उसका लाभ अर्थ व्यवस्था के श्रमिक एवं निर्धन वर्ग को प्राप्त हुआ है जो अन्यथा खुले बाजार मूल्यों पर दो समय भरपेट भोजन नहीं कर सकता था परन्तु उपयोग स्तर की यह वृद्धि आत्मनिर्भरता पर आधारित न होने के कारण सराहनीय नहीं है। उचित मूल्य की दुकानों को निरन्तर अपना कार्य प्रभावशाली रूप से करने के लिए देश में अनाज का पर्याप्त संग्रह करना आवश्यक है तभी हमारा अनाज के आयात पर निर्भरता कम हो सकती है।

PL ४८० का मौद्रिक प्रभाव

PL ४८० के अन्तर्गत संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा खाद्यान्न एवं अन्य कृषि पदार्थों की सहायता भारतीय रुपये के भुगतान पर प्रदान की जाती है। इस सहायता की शर्तों के अनुसार PL ४८० के अन्तर्गत आयात किये गये कृषि पदार्थों के मूल्य की राशि भारत सरकार पर ऋण के रूप में समझा जाता है परन्तु इस ऋण की विशेषता यह है कि प्रत्येक आयात किये गये अनाजादि का मूल्य रुपये में संयुक्त राज्य अमरीका को बता दिया जाता है और फिर संयुक्त राज्य अमरिका इस राशि में कुछ भाग भारत सरकार को सहायतार्थ ऋण एवं अनुदान के रूप में दे देता है और शेष राशि संयुक्त राज्य अमरिका के दूतावास द्वारा उपयोग की जाती है अथवा भारत एवं संयुक्त राज्य अमरिका के सहयोग से भारत में स्थापित भारत के व्यवसायों पर कूली (Cooley) ऋण के अन्तर्गत उपयोग होता है।

आयात किये गये अनाजादि का मूल्य भारत सरकार द्वारा १२४ सरकारी व्यापार की परियोजना व्यय के शीर्षक के अन्तर्गत जमा कर लिया जाता है और फिर

इस राशि को रिज़र्व बैंक में U S Government Title Account में जमा कर दिया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका का Disbursing Officer (रिज़र्व बैंक) इस खाते का संचालन करता है और इस खाते में से भारत सरकार को बैंक द्वारा सहायता राशियाँ प्रदान करता है। रिज़र्व बैंक इस खाते में जमा राशि का विनियोजन भारत सरकार की विशेष विनिमय साध्य प्रतिभूतियों पर १ ½% की ब्याज की दर पर विनियोजित करता है। जब भारत सरकार को दिये गये ऋणों का भुगतान रिज़र्व बैंक से माँगा जाता है तो रिज़र्व बैंक इन सरकारी प्रतिभूतियों का शोधन भारत सरकार से प्राप्त करने के बदले इन प्रतिभूतियों को निरस्त कर देता है।

आयात किये गये अनाजों को देश में उचित मूल्य की दुकानों से बेचा जाता है और इस प्रकार जो राशि प्राप्त होती है उसे केन्द्रीय सरकार के बजट में पूँजी-खाते के अन्तर्गत प्राप्त बताया जाता है और दूसरी ओर, इस अनाज के क्रय मूल्य को शोधन बजट में शोधन की ओर प्रदर्शित कर दिया जाता है। इस प्रकार यह दोनों व्यवहार एक दूसरे को रद्द करते हैं और केवल लेखा प्रविष्टि मात्र रह जाते हैं।

भारत सरकार द्वारा जो शोधन PL ४८० के आयात का किया जाता है वह रिज़र्व बैंक संयुक्त राज्य अमरिका के Disbursing Officer के खेते में जमा कर दिया जाता है और इस जमा राशि से रिज़र्व बैंक केन्द्रीय सरकार की प्रतिभूतियाँ क्रय कर लेती है। जैसे जैसे यह Disbursing Officer इस जमा राशि में से रुपया भारत सरकार को सहायतार्थ अथवा दूतावास के व्ययादि के लिए निकालता है भारत सरकार की प्रतिभूतियाँ निरस्त होती जाती हैं। इस प्रकार भारत सरकार की प्रतिभूतियों में विनियोजित राशि बहुत कम रहती है।

यदि आयात किये अनाज के विक्रय से प्राप्त राशि एवं क्रय मूल्य के भुगतान की राशि के समय में कुछ अन्तर रहता है तो इस समयान्तर में मुद्रा-प्रसार हो सकता है परन्तु विक्रय से नवीन प्राप्ति किसी वर्ष में एकत्रित राशि के भुगतान के बराबर अथवा अधिक होने पर मुद्रा प्रसार के प्रभाव का भय नहीं रहता है। विक्रय से प्राप्त राशि द्वारा अर्थव्यवस्था में मुद्रा का संकुचन होता है और इस राशि का संयुक्त राज्य अमेरिका के Disbursing Officer को भुगतान कर दिया जाता है और यह अधिकारी जब इस राशि को भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रवाहित करता है तो मुद्रा का प्रसार होता है। ऐसी परिस्थिति में जब किसी वर्ष में विक्रय से प्राप्त राशि भुगतान की जाने वाली राशि से अधिक अथवा बराबर रहेगी तो मुद्रा-प्रसार नहीं होगा। सन् १९५६-५७ से सन् १९६५-६६ तक के काल में PL ४८० के अन्तर्गत प्राप्त सहायता का मुद्रा की पूर्ति का प्रभाव तटस्थ (Neutral) रहा है।

यह भी प्रश्न उठाया जाता है कि रिज़र्व बैंक द्वारा U.S Disbursing Officer के खाते में जमा राशि का सरकारी प्रतिभूतियों में जो विनियोजन किया जाता है वह भी मुद्रा-प्रसार का एक स्वरूप होता है क्योंकि इससे रिज़र्व बैंक की केन्द्रीय सरकार

पर उधार की राशि बढ़ जाती है परन्तु सरकारी प्रतिभूतियों में इस फण्ड से बहुत कम राशि विनियोजित रहती है क्योंकि अधिकतर जमा राशि को केन्द्रीय सरकार को ऋण एवं अनुदान देने तथा दूतावास के व्यय एवं कूली-ऋणों के लिए निकाल लिया जाता है। सन् १९६७-६८ में सरकारी प्रतिभूतियों में शुद्ध विनियोजित राशि केवल ७१ करोड़ रु० थी जबकि PL ४८० के अन्तर्गत हुए जमा की गयी राशि ब्याज आदि सम्मिलित कर ३३७ करोड़ रु० थी। सन् १९६८-६९ के बजट अनुमानों में यह शुद्ध विनियोजन की राशि केवल ७५ करोड़ रु० ही निर्धारित की गयी। इस प्रकार यह शुद्ध विनियोजन की राशि कुल PL ४८० की जमा राशि की तुलना में बहुत कम होती है और इससे होने वाला मुद्रा प्रसार खाद्यान्नों का आयात न होते हुए भी करना पड़ सकता था।

परन्तु जब PL ४८० के आयात बन्द हो जायेंगे और इसके अन्तर्गत एकत्रित धन का संयुक्त राज्य अमेरिका के अधिकारियों द्वारा उपयोग किया जायगा तो उस समय मुद्रा प्रसार होगा क्योंकि उस प्रसार के बराबर मुद्रा का संकुचन करने के लिए अर्थ व्यवस्था में आयात किया हुआ अनाज बेचकर मुद्रा की पूर्ति को कम करना सम्भव नहीं होगा। PL ४८० के अन्तर्गत ग्यारहवें ऋण समझौते की अन्तिम किस्त का भुगतान १९९७ के लगभग देय होगा। उस समय तक भारत को PL ४८० के अन्तर्गत प्राप्त होने वाले साधनों को बजट के साधनों के ४.८% होते हैं के बराबर तथा संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा PL ४८० संचित अर्थ साधनों का जो उपयोग होगा उसके बराबर आन्तरिक स्रोतों से अर्थ साधनों की व्यवस्था कर लेना चाहिए तब ही हीनार्थ प्रबन्धन को रोका जा सकेगा।

PL ४८० की सहायता के अन्तर्गत रोजगार के अवसर

PL ४८० के आयात के कारण प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रोजगार के रूप में रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई है। बन्दरगाहों पर अनाज उतारने तथा विभिन्न भण्डार गृहों तक अनाज का यातायात करने में सन् १९५६-५७ में १६,७८० व्यक्ति काम करते थे जो सन् १९६५-६६ में बढ़कर १,७४,७८० हो गये। सन् १९५६-५७ में प्रति दिन औसत आयात १,९७८ मीट्रिक टन था जो सन् १९६५-६६ में बढ़कर १७,८७४ मीट्रिक टन हो गया। इस प्रत्यक्ष रोजगार वृद्धि के अतिरिक्त उचित मूल्य की दुकानों के द्वारा जो अनाज का वितरण किया जाता है इनमें काम करने वाले लोगों की संख्या सन् १९५६-५७ में ५,४०० थी जो सन् १९६५-६६ में बढ़कर ३,२८,३६५ हो गयी। PL ४८० के अर्थ साधनों से केन्द्रीय सरकार को जो ऋण सहायता प्राप्त हुआ इससे विनियोजन द्वारा लगभग १४.७ लाख रोजगार के अवसर उत्पन्न होने का अनुमान है जो द्वितीय एवं तृतीय योजना में उत्पन्न नवीन रोजगार के अवसरों के ६.५३% थे।

PL ४८० के अन्तर्गत अनाजादि का आयात करने से देश को विदेशी विनिमय का भी लाभ हुआ क्योंकि खाद्यान्नादि का अनिवार्य आयात करने के लिए PL ४८०

प्रदान की गयी थी जिसमें से १०५१ समझौतों को क्रियान्वित किया गया था। क्रियान्वित समझौतों में से ११ खाद्य, खनिज एवं खनिज तेल में सम्बन्धित थे १००६ निर्माण उद्योगों (Manufacturing Industries) से सम्बन्धित थे और ३४ सेवाओं के सम्बन्ध में किए गए थे। १४४ समझौतों के अन्तर्गत विदेशी कम्पनियों की सहायक कम्पनियाँ भारत में स्थापित की गयीं ४४५ के अन्तर्गत विदेशियों द्वारा कम्पनियों की पूँजी के अंश में विनियोजन किया गया तथा ४६२ समझौते केवल तान्त्रिक सहयोग के सम्बन्ध में किए गये। १०५१ समझौतों में से ५६६ समझौतों के अन्तर्गत उत्पादन अथवा विक्रय के आधार पर विदेशी सहयोगियों को अधिकार शुल्क भुगतान करने की व्यवस्था की गयी।

विदेशी सहयोग सम्बन्धी समझौतों में विभिन्न प्रतिबन्धात्मक धारायें रखे गये। १०५१ समझौतों में से ४५५ में निर्यात सम्बन्धी प्रतिबन्ध (अर्थात् कुछ विशिष्ट देशों एवं उत्पादों पर प्रतिबन्ध तथा निर्यात के कुल मूल्य सम्बन्धी प्रतिबन्ध)—२६ समझौतों के अन्तर्गत निर्यात पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाया गया १५४ समझौतों में कच्चे माल एवं यन्त्रों की पूर्ति के साधनों सम्बन्धी प्रतिबन्ध ६५ समझौतों में उत्पादन के प्रकार पर प्रतिबन्ध ५८ समझौतों में न्यूनतम अधिकार शुल्क सम्बन्धी प्रतिबन्ध लगाये गये तथा १८ समझौतों में उत्पादन की विक्रय विधि के सम्बन्ध में प्रतिबन्ध लगाये गये।

क्रियान्वित विदेशी समझौतों के अन्तर्गत अधिकार-शुल्क एवं लाभांश का विदेशों को शोधन निम्न प्रकार किया गया है—

तालिका सं० १३०—विदेशी सहयोग के अन्तर्गत अधिकार-शुल्क एवं लाभांश का विदेशों को शोधन

(करोड़ रुपयों में)

वर्ष	अधिकार शुल्क	लाभांश
१९६०-६१	१.५१	११.२८
१९६१-६२	१.६२	१४.१४
१९६२-६३	२.३२	१८.३५
१९६३-६४	४.३५	१६.११
१९६४-६५	४.६५	२०.८८
१९६५-६६	६.४०	१६.६५
१९६६-६७	७.६७	२१.५०

लाभांश एवं अधिकार शुल्क की राशि जो विदेशों को भुगतान की जाती है निरन्तर बढ़ती जा रही है। अधिकार शुल्क का लगभग ८०% भाग ब्रिटेन अमेरिका तथा पश्चिमी जर्मनी को भुगतान किया जाता है।

भारत के औद्योगीकरण में विदेशी व्यापारिक विनियोजन का योगदान सराहनीय एवं महत्वपूर्ण रहा है। विभिन्न क्षेत्रों में दीर्घकालीन विदेशी विनियोजन की स्थिति निम्न प्रकार है—